



श्रीगणेशाय नम ॥

❀ पारसभाग ❀

जिम्में

वेदान्त मतानुसार काम क्रोध मद लोभ मोहाहङ्कार  
का नाशन उपाय और दान व्रत करने के लाभ और  
प्रीति दया सत्यासत्य चोरी ईर्ष्यादि बहुत से देह  
सवधीय कर्मोंका निर्णय दृष्टान्तयुक्त वर्णित है ॥

जिगजा

श्रीमद्विद्वद्वृन्दशिरोमणि महात्मा युगलानन्यशरणजी वैकुण्ठ  
वासी अयोध्यानिवासी ने षडे प्रयत्न से निज पुस्तकालय  
में संचित किया था ॥

श्रीमन्महामहोपाध्याय श्रीमहात्माजानकीवरशरणजीके द्वारा  
जो कि उन्हीं महात्माजी के स्थानापन्नहैं षडे परिश्रम से  
प्राप्तहुई सम्पूर्ण निस्स्पृह ईश्वरानुरागी साधु महात्माओंके  
उपकारार्थ जिसके अवलोकनसे सम्पूर्ण घुराइयां मनुष्य  
के हृदय से निकलजाती हैं ॥

वाप ११

लखनऊ

मुशी नवलकिशोर (सी, भा६, ई) के छापेठाने में छापागया

मूल्य ता १००

इसका रजिस्त्री हस्तमंशाय प्रकट न० २५ सन् १८९७ ई० के दिसम्बर सन् १८९३  
१० में ६३५ नम्बर पर हुए है कोई सादर विज्ञा इजाजत द्यापनेका इत्तादा न करे ॥

# इश्तहार ॥

## श्रीमद्भागवत भाषा टीका सयुक्त ॥

इस ग्रन्थ के उत्पन्न होने में कदापि सन्देह नहीं है—इसका भाषा विज्ञक व्रजशैलीमें बहुत ही प्यागद है आशय मत्प्रेक श्लोकोंका है क्यों न हो इसके तिलककार महात्मा व्रजभाषी भट्टगोस्वामी भी हैं—यह तिलक ऐसा सरल है कि इसके द्वारा अल्प संस्कृत पुरुषोंका पूरा कार्य निकलसक्ता है—संस्कृत पाठकभी इससे व्रजोंका पूरा भाष्य समझसकेंगे इसकारण यह ग्रंथ टैपके अक्षरों में उम्दा वाचन सफेद चिकना में छापागया है और विगेय विद्वान् शास्त्रियों के द्वारा शुद्ध कराया गया है जिससे चम्बर की छपी हुई पुस्तकमें किसी पापमें न्यून नहीं है उम्दा तत्सावीरमी मत्प्रेक रूप में युक्त है—आशा है कि इस अमूल्य रत्नके लेनेमें महाशयलोग विलम्ब न करेंगे मूल्यभी इसका मूल्य रक्कागया है—

## श्रीगीतगोविन्दकाव्यम् ॥

### वनमालीभट्टकृत सजीविनीटीकापेतम् ॥

यह गीतगोविन्द काव्य परिष्कृत नयदेनकृत वही है जोकि अतीव उत्तम होने के कारण इस ससार में प्रसिद्ध है भाष्यः परिष्कृतज्ञेय इसको अच्छीभांति जानते हैं भट्टकृत पढ़नेवाले विद्यार्थियों को तो यह काव्य बहुत ही लाभकारी है क्योंकि इसका तिलक वनमालीभट्टमीकृत जिसका कि सजीविनी नाम है अर्थात् इस तिलकका जैसा नाम है वैसा ही गुण है जो विद्यार्थी थोड़ीथी ध्या करण जानते हैं इस तिलक के द्वारा पूर्ण अर्थ मूलका लगा सकते हैं परिष्कृतज्ञेयोंकी रुचि सम्पूर्ण पुस्तकों में अपसर चम्बर की छपी हुई में अधिक होती है क्योंकि उम्दा काव्य और शुद्ध भाषा यह सब उन पुस्तकों में मिलती है यद्यपि वहां से यथातक माला आने में स्वर्ध मद्गुण आदि होने के कारण वहांकी पुस्तकों का मूल्य विरोध है तथापि दूसरे यंत्रालय में वैसा न अपने के कारण लाचार होके उन लोगोंको लेना पड़ता है इस यंत्रालयमें यह पुस्तक जो अक्षरी हुई है वही है चम्बर से कोई काम न्यून नहीं हुआ अर्थात् बहुत उम्दा काव्य सफेद पर बहुत उम्दा छाया कीर्ण है शुद्ध होने में तो हम कहसकें हैं कि चम्बर की छपी हुई पुस्तक में चारों पांच अध्यायोंकी थी इन्हें परन्तु यह पुस्तक ऐसे परिष्कृत से गोर्षा गई है कि परिष्कृतज्ञेयोंको परिष्कृत करके इन्होंने पर भी गलती नहीं मिली और मूल्य इस पुस्तकका चम्बर से बहुत न्यून रक्कागया है हम पूरे तैप म उर्मद करते हैं कि हमारे देगके रहनेवाले परिष्कृत लोग इस पुस्तक को देगके चम्बर की पुस्तक लेना छोड़ देंगे और इसे मद्रवनापूर्वक भंगीदार करेंगे जो लोग मद्रवत कुछ भी नहीं जानते केवल भाषाहीमात्र जानते हैं उनके लिये भी यह काव्य भाषाटीकामें पढ़नी ही थी किमते मिल सकती है क्योंकि यह काव्य गानविद्या माननेवालों तथा गुरुकुलों और भीमपदकों य म कृत विगाके गीतगोविन्द विद्यार्थियों आदि इन सबको मिय है हमारे नुस्ते प्रकारसे इस यंत्रालयमें यह पुस्तक छापी गई है एक तो भाषाटीका युक्त दूसरे सम्कृतटीका सम्मिलित ॥



अथ पारसभाग प्रारम्भः ॥

पहिलाप्रकरण ॥

दोहा ॥ मक्तिभक्त भगवन्त गुरु चतुर नाम वपु एक ॥

तिनके पद वन्दन किये नाशत विघ्न अनेक १

प्रथम मंगलाचरण स्तुति और शुक्र एक उमी महाराज के लिये आकाश के तारे और मेघकी बूँद और वनस्पतियोंकी पत्ती और पृथ्वीके रेणु के समान है कि जिसका पेश्वर्य और उसकी पूर्णताई और सामर्थ्यताई को कोई जीव पहिचान नहीं सकता पुन उसके सम्पूर्ण पहिचानने के मार्ग को कोई नहीं पाइ सकता है और उस महाराज की सृष्टि के विषे किसी और जीवकी सामर्थ्य और बल नहीं चलसका ताते जे महापुरुष सचे हैं सो उनकी भी अन्त अवस्था यही है कि वेभी उसके सम्पूर्ण पहिचानने के विषे अपनी असामर्थ्य वर्णन करते हैं पुन देवता और बड़े ईश्वर भी महाराज की स्तुति और बड़ाई विषे अपनी लक्ष्मता मानते हैं और महाबुद्धिमानों की बुद्धि भी उसके आदि प्रकारा और सागर्य विषे विस्मरताको प्राप्त होती है पुनः जिज्ञासू और प्रीतिमान् भी उसके दरवारकी निकटता के दूढ़ने के विषे विस्मय होइरहे हैं और उसके स्वरूप का पावना सकल्प विषे प्राप्त नहीं होता बहुरि उसका समभावना और भावना स्थूल दृष्टातों से विलक्षण है इसी कारण से बुद्धिरूपी नेत्रों की दृष्टि उसके स्वरूप के देखने विषे मन्द होइजाती है ताते सर्व बुद्धियोंका फल यही है कि उसकी आश्रय कारीगरियों को देखकर महाराजको पहिचाने और किमी मनुष्यका ऐना अधिकार नहीं जो उसके स्वरूपकी बड़ाई का विचारकरे कि वह केसा है और

क्या है और यह भी किसीको उचित नहीं कि जो एक क्षणमात्र भी उसकी आश्रय कारीगरी से अचेतहोये और इसप्रकार न जाने कि इस कारीगरी का कर्त्ता और आश्रय कोई नहीं ताते चाहिये कि कारीगरी को देखकर इसप्रकार माने कि यह सर्व जगत् भी उस महाराज के ऐश्वर्य का प्रतिविम्ब है और उसही के तेजसा प्रकाश है वहुत्रि सर्व आश्चर्यमय जो रचना है सो उसही का अनुभव है और सब कुछ उसके स्वरूप का आभास है ताते सर्व पदार्थ उसही से उत्पन्न हुये हैं और उसही विषे स्थित हैं तात्पर्य यह कि सब वही है काहेते कि कोई पदार्थ भगवन्तकी शक्ति बिना आपकरके स्थित नहीं है ताते स्रष्टाकी आश्रय वही है वहुत्रि उसके प्रियतम जे सन्तजन्त हैं सो वेभी जिज्ञासुओं को शुभमार्ग दिखावनेवाले हैं और भगवन्तके गुह्यमेद लावनेवाले हैं और परमदयालुरूप हैं ताते उनको भी मेरा नमस्कार है आगे ऐमे जानू कि इस मनुष्यको भगवन्तने व्यर्थ बोलने और हँसने के निमित्त नहीं उत्पन्न किया ताते इस मनुष्यका पदमी महाउत्तम है और भयभी अधिक है और यद्यपि यह जीव अनादि नहीं अर्थात् उत्पन्न किया हुआ है पर तो भी अविनाशी रूप है और यद्यपि इस जीवका स्वरूप स्थूलतत्त्वों करके रचा हुआ है पर इसका हृदय जो चैतन्यरूप है सो महाउत्तम और अमर है वहुत्रि यद्यपि इस जीवका स्वभाव आदि उत्पत्ति विषे पशुओं और सिंहों और भूतों के स्वभावके साथ मिला हुआ है पर जब इसको यंत्रकी कुठायि विषे डालिये तब नीचस्वभावों के मेलते शुद्धस्वरूप होइजाता है और भगवन्तके दर्शन और दरवार का अधिकारी होता है ताते प्रसिद्ध हुआ कि अधोगति गहारसातल है और ऊर्ध्वगति जे देवता है सो भी इसी मनुष्यकी गति है और अधोगति विषे जाना यह है कि पशु और सिंहोंके स्वभावविषे गिरना अर्थात् भोगों और क्रोधके वर्णाकार होना वहुत्रि ऊर्ध्वगति जाना यह कि देवताओंके स्वभाव विषे स्थित होना और भोग और क्रोधको अपने वर्णाकार करना और अपने अधीन रखना सो जब इनको अपने वशमें करता है तब भगवन्तकी भक्तिका अधिकारी होता है सो देवताका संग्राम यही है और मनुष्यकी उत्तम अवस्थामी यही है और जब इस मनुष्यको भगवन्तके दर्शन का आनन्द प्राप्त होता है तब एक क्षण भी उमके स्वरूपते इतर रहने नहीं सका और उसी दर्शनका आनन्द उसको स्वर्ग रूप भासता है और यह स्थूलस्वर्ग जो भोगों और आहारका स्थान है सो तिस

को तुच्छरूप जनिता है और यह जो मनुष्य देहरूपी रत्न है सो आदि उत्पत्ति विषे नीचे और मलीन होता है ताते पुरुषार्थ और साधन बिना किसी प्रकार पूर्णपदको नहीं पहुँचता जैसे ताँबे और और धातुको पारस बिना स्वर्ण करना कठिन होता है और यह विद्या सब कोई नहीं पहिधानसक्ता तैसेही मनुष्यरूपी जो धातु है सो तिसको पशुओं के स्वभावरूपी मेलते शुद्ध करना और पूर्ण भागों विषे प्राप्त होना सो यह भी विद्या महागुह्य है और कोई नहीं जानसक्ता ताते यह जो ग्रन्थ है सो भागों का पारस है और इम विषे जे सुन्दर वचन है तेई पारसरूप है ताते इसग्रन्थका नाम पारसभाग राखा है काहेते कि पारस उत्तमताईका नाम है पर वह पारस जो ताँबे को स्वर्ण करना है सो स्थूल और नीच है इसकारिके कि ताँबे और स्वर्ण विषे रङ्गीका भेद है और उस स्वर्ण करके माया के भोग प्राप्त होते हैं सो माया अपिही नाशवान है ताते मायाके भोगमी अल्प काल विषे परिणामी होजाते हैं वहरि यह जो पारसरूपी वचन है सो महा विशेष है काहेते कि इनवचनों करिके महारसानलते ऊर्द्धगति को प्राप्त होता है सो इस अधोगति और ऊर्द्धगति विषे बड़ा भेद है और जब यह मनुष्य निर्मल स्वभावरूपी ऊर्द्धगतिको पहुँचता है तब अविनाशी भागोंको पहुँचता है सो वह कैसा सुख है कि उसका काल और अन्न नहीं वहरि दुस्वरूपी मेलभी उसपरम सुख विषे कदाचित् स्पर्श नहींकरता ताते इसग्रन्थ का नाम पारसभाग कहा है जो पारसकी गोमामी दृष्टिमात्रही कही है ताते जान तू कि ताँबा और अपर धातु तबहीं स्वर्ण होती है जब प्रथम पारसकी प्राप्तिहोवे सो यह स्थूल पारसभी सब ठौर और सब किसीके गृहमें नहीं पायाजाता किसी सिद्ध अवस्थावलि के पास अथवा किसी महाराजा के भण्डार विषे होता है तैसेही वह सूक्ष्म पारस भी भगवन्तही के भण्डार विषे है सो भगवन्त का भण्डार सन्तजनों का हृदय है ताते जो कोई इसपारस को सन्तजनों के हृदय बिना अपर ठौर दृढ़ता है सो व्यर्थही भटकता फिरता है और उसको प्राप्त कुछ नहीं होता इसीकारण ते वह पुरुष अन्तकालमें निर्द्धनताई को प्राप्त होता है और भूटे मदकरिके जो अभिमानी हुआथा सो पीछे निर्लज्जना को प्राप्त होता है ताते भगवन्त ने अपनी दया करिके यह भी उपाय उपकार किया है कि जो सन्तजनोंको इस जगत् विषे कल्याण के निमित्त भेजा है कि वे सन्तजन वचनरूपी पारस को प्रसिद्ध कर

और जीवोंको उपदेशकरें कि हृदयरूपी धातुको साधनरूपी कुडाली में क्योंकर रखिये और मलीन स्वभावोंको क्योंकर दूरकगिये और उत्तम स्वभावोंको क्योंकर प्राप्तहुजिये तब सतजनों के उपदेश करिके ये मनुष्य नीच स्वभावोंसे मुक्त होते हैं और निर्मल स्वभावोंको पावते हैं सो इस वचनरूपी पारसका तात्पर्य यह है कि प्रथम मायाके पदार्थों से निरक्त-चित्तहोवें और भगवन्त की शरण आवें जैसे महापुरुषने भी कहाहै कि सर्व पदार्थोंको त्यागकरि आपको भगवन्तकी शरण विपे लावो सो सर्व विद्याका तात्पर्य यही है और यद्यपि इसका वखान भी बहुत विस्तार करिके समझाजाताहै पर तो भी इसका पहिचानना चारप्रकार का होताहै सो प्रथम यह है कि अपने आपको पहिचानने वदुरि भगवन्तको पहिचाने और तीसरा प्रकार यह है कि मायाको पहिचानने वदुरि परलोकको पहिचानने ॥ इति मङ्गलाचरणसम्पूर्णम् ॥

## पहिला अध्याय ॥

### पहिला सर्ग ॥

ताते जानतू कि अपने आपका पहिचानना यही भगवन्त के पहिचानने की कुञ्जी है सो इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि जिसने अपने को पहिचाना है तिसने निस्सन्देह अपने महाराज को पहिचानाहै वदुरि महागजने भी कहा है कि तैने अपने लक्षण जीवों के मनमें प्रकट किये हैं इस करिके कि आपको पहिचानकर मुझको भी पहिचाने ताते हे भाई ! तेरेसमान तुझको और पहिचानने को कोई निकट नहीं सो प्रथम जब तू आपको भी न पहिचाने तब अगर किसी को क्योंकर पहिचानेगा और जब तू इस प्रकार कहै कि मैं तो आपको पहिचानताहूँ मो यह कहना तेग झूठे काहे से कि जैसा तू आपको पहिचानता है तेसा पहिचानना भगवन्तके पहिचानने की कुञ्जी नहीं इस करिके कि निम प्रकार आपको शरीर हाथ पाव और त्वचा माम स्थूल जो तू पहिचानता है अथवा अपने अतरविपे जब तू भ्रमा होताहै तब आहार को चाहता है और जब कोधवान होताहै तब लड़ाई करताहै और जब कामादिक भोगों को चाहता है

तब उसी सङ्कल्पविषे लीन होजाताहै सो इस प्रकार के पहिचानने में सब पशु भी तेरे समान हैं ताते तुम्हको इस प्रकार यथार्थरूपका पहिचानना चाहिये कि मैं क्या वस्तु हूँ और कहाँते आया हूँ वहुरि किस स्थातविषे जाऊगा और इस सारविषे किस कार्य निमित्त आया हूँ और किस कार्य के निमित्त मुझको भगवन्तने उत्पन्न किया है और मेरी भलाई क्या है और किसविषे है और भाग्यहीनता क्या है वहुरि तेरेविषे जो पशुओं और देवतों के स्वभाव इकट्टे उत्पन्न किये हैं सो इनमें तेरा प्रबल स्वभाव कौन है वहुरि इस प्रकार भी पहिचाने कि तेरा अपना स्वभाव क्या है और परस्वभाव कौन है सो यह तैने जब मलीप्रकार करिके पहिचाना तब श्रद्धामी करसकैगा काहेते कि सब किसी की भलाई और पूर्णता और आहार भिन्न भिन्न हैं जैसे पशुओं की भलाई और पूर्णता सोवने और खाने और युद्धकरनेमे इतर कुञ्ज नहीं ताते जब तू आपकी पशु जानता है तब दिन रात यही पुरुषार्थकर कि पेट और इन्द्रियोंकी प्रालनाहोवे वहुरि सिंहोंकी पूर्णता यह है कि फाड़ना और क्रोधवान् होना और भूत प्रेतोंका प्रभाव यह कि बल और प्रपञ्चरचना सो जब तू सिंह अथवा भूत है तब इसी स्वभाव विषे स्थित होउ तब अपनी पूर्णताको प्राप्तहोवेगा और देवताओं की भली पूर्णताई और आहार भगवन्तका दर्शन है भोगवासना और क्रोध तो पशु और सिंहोंका स्वभाव है सो तिनको स्पर्श नहीं करसक्या सो आदि उत्पत्तिविषे जब तेरा देवभाव है तब यही पुरुषार्थकर कि भगवन्त के दरवारको पहिचाने वहुरि भोगवासना और क्रोधसे आपको मुक्त करे और इसभेदको भी समझे कि भगवन्तने तेरेविषे पशुओं और सिंहोंका स्वभाव इस निमित्त उत्पन्न किया है तब उनके स्वभावों को अङ्गीकारकरे और जिस मार्गविषे तुम्हको जाना है सो तिस मार्गविषे स्वभावों को अपने अधीन कर लेजावे और तू इनके अधीन न होवे इसीकारण तुम्हको चाहिये कि एक स्वभाव को छोड़ा करे और दूसरे स्वभावको शस्त्रकरे और जगत्विषे जितनेकाल तुम्हें जीवना है इस आयुष्को अपने कार्यके सिद्ध करने में बितावे तो उस छोड़े और शस्त्रकरिके अपनी भलाईका शिकारकरे और जब वह भलाई तुम्हको प्राप्त हुई और उन स्वभावोंको तैने वगीकारकिया और भगवन्त के पहिचानने की ओर तेरा मुख हुआ तब तू मुक्त होवेगा सो भगवन्तका पहिचानना कैसा है कि सन्तजनों के स्थितहोनेका स्थान है और मूर्खरूप है



जैसे इतरजीव स्वर्गियों को सुखरूप जानते हैं वैसे सन्तजनों को सुख महाराज की शरण विषे होता है। जो जब इम प्रकार होने स्वर्ग भाव तब कुद्वयक अपने आपका पहिचानना होवेगा और जो कोई इस भेद को नहीं पहिचानता उसको धर्ममार्ग विषे चलना कठिन होता है और अति सुख विषे उसे को आवरण होता है ॥ २ ॥

॥ वदुरिजव तु आपको पहिचानना चाहित है तब इस प्रकार निश्चय जान कि तुम्हको दीपदार्थ करिके उत्पन्न किया है सो पकतो शरीर जो स्थलनेत्रों कोके देखाजाता है और दूसरा चेतन्य है वह सूक्ष्मरूप है और उसको जीव कहते हैं और मन कहते हैं और चित्त भी उसीका नाम है सो तिसको बुद्धिरूपी नेत्रकरि देख सकता है और स्थूल नेत्रोंकी दृष्टि ते परहे ताते तिरा जो निर्जस्वरूप है सो वही चेतन्य तत्त्व है और जेते गुण है सो चेतन्य के अधीन है और उसीके दृष्टसुखे अयत्रा सेनाकी नाई है और मने उसी चेतन्य का नाम हृदय राना है सो यह जो चित्त निस्तन्देह है कि आत्मा और हृदय और मन उसी चेतन्यके नाग है ताते में जो हृदयका वर्णन करता है सो गेरा प्रयोजन शरीर के हृदय स्थानको नहीं कहते जो इसा स्थूल हृदयस्थान का स्वरूप मांस और त्वचा करि रचा हुआ है और पंचभूतों का रचा है ताते नदरूप है और मनुष्य को जो चेतन्यरूप हृदय है सो स्थूल सृष्टि ते विलक्षण है और इस शरीरमें परदेशी की नाई अपने कार्य निमित्त धरिया है वदुरि यह जो स्थूल हृदय का स्थान है सो जीवको घोड़ा जवका गच्छे और सब इन्द्रिय गीळी मकी सेना है और शरीर को राजा जीव है ताते भगवन्तकी पहिचानता और उसका देखना भी जीवको अधिकार है इसी कारण ते दग्ध और उपदेग और पुण्य पापका अधिकारी वही जीव है ताते भाग्यहीन और भाग्यवान् उसी जीवको कहाजाता है और सर्वकाल विषे शरीर उसका अधीन है इसी कारणते उस चेतन्यके स्वरूप का पहिचानना और उसके स्वभावोंका समझना भगवन्त के पहिचानने की कुजी है ताते तू यही पुरुषार्थ करके चेतन्यरूप को पहिचाने काहे ते कि यह चित्तन्यरूपी रत्न हृदय है और दिवनाओंकी नाई निर्मल स्वरूप है और इम रत्न की भवनि परब्रह्म है इम करिके कि यह जीव उमी और ते आया है पदुरि उमी और जावेगा और इम संसार विषे भ्रष्टेनी है सो

अपने कार्य के निमित्त यहा आया है ताते तुम्हकी वह कार्य भी अवश्यमेव पहिचानना चाहिये पर भगवन्तकी दया करिके जानाजाता है ।  
 अथ आत्मसत्ताके अस्यासका वर्णन करता हू ताते जानू कि जबलग जैतन्यरूपको तही पहिचानिये तबलग हृदयके यथार्थ स्वरूपको पहिचान नहीं सका सो इसी कारण से भगवन्तका पहिचानना भी नहीं हो सका और उत्तम भागोंको भी नहीं पावता और जब एकभाव करिके देखिये तो चैतन्यरूप अति प्रकट हो काहेते कि चैतन्य का होना शरीरके आश्रित नहीं जैसे मृतकशरीर और इन्द्रिय प्रकट होतीहै पर चैतन्यसत्ता विना उसको मृतक कहते हैं वहु रियोंमी है कि जब कोई पुरुष क्षेत्रादिक इन्द्रियोंको रोकै और चैतन्यता के अस्यास विषे सर्वसर्पि और स्थूल जगत् विस्मरण कृतेवै तिससन्देह अपने आप को पहिचान लेवे और यथार्थरूप आत्मा को जानै वहु रिये उसी विषे अधिक अस्यासकरे और विचारकरे तब सुगमही परलोक को भी देखलेवे और इस बार्ताको भी प्रत्यक्ष जाने कि जब इस मनुष्यका शरीर छूटा है तब चैतन्यरूप जीवका नाश नहीं होता और अपने आप विषे स्थिर रहता है ॥

चौथा सर्ग ॥

सद्वृत्ति इस जीवका जो शुद्ध स्वरूप है और जो इसका परम स्वभाव है सो तिसका खोलता धर्मशास्त्र विषे प्रमाण नहीं कहा इसीपर एक बार्ता है कि लोगोंने जाकर महापुरुष से पूछाया कि जीवका स्वरूप क्या है तब उन्होंने जीवका परम स्वरूप वर्णन तही किया और भगवन्तकी आज्ञा पापकर इतनाही कहा कि यह महाराज की सत्तामात्र है सो इससे अधिक बखान करना उचित नहीं देखा ताते इतनाही उत्तर दिया कि यह मव सृष्टि दो प्रकारकी रचना है सो एक सृष्टि स्थूल है और दूसरी सत्तारूप सूक्ष्म है सो जिस पदार्थ की मर्याद और आकार और घटना घटना है तिसको स्थूल कहतेहैं और चैतन्यसत्ता जो सूक्ष्म रूप है तिसकी मर्याद और आकार कुछ नहीं और अलण्ड है काहेते कि वह जब इस मनुष्यका हृदय स्रष्टरूप होता तब इसके शरीर विषे एक और विद्या

जैसे इतर नीवास्वर्गों को मुखरूप जानते हैं तैसे सन्तजनों को मुसु महाराज को शरणविषे होता है सो जब इस प्रकार तने समझा तब कुञ्ज एक अपने आपका पहिचानना होवेगा और जो कोई इस भेद को नहीं पहिचानता उसको धर्ममार्ग विषे चलना कठिन होता है और अतिम सुख विषे उसको आवरण होता है ॥

दूसरा सर्ग ॥

वहुरि जब तू आपको पहिचानना चाहता है तब इस प्रकार निश्चय जान कि तुम्हको दोपदार्थ करिके उत्पन्न किया है सो एक तो शरीर जो स्थूलनेत्रों करिके देखा जाता है और दूसरा चैतन्य है वह सूक्ष्मरूप है और उमको जीव कहते हैं और मन कहते हैं और चित्त भी उसीका नाम है सो तिसको बुद्धिरूपी नेत्र करि देख सका है और स्थूल नेत्रोंकी दृष्टि ते परहे ताते तैरा जो निजस्वरूप है सो वही चैतन्य तत्त्व है और जेते गुण है सो चैतन्य के अधीन है और उसीके टहलुये अर्थना सेना की जाई है और मैंने उसी चैतन्य का नाम हृदय रखा है सो यह याचो निस्मन्देह है कि आत्मा और हृदय और मन उसी चैतन्यके नाम है ताते में जो हृदयका वर्णन करता हूँ सो मेरा प्रयोजन शरीर के हृदय स्थानका नहीं कोहते जो इस स्थूल हृदयस्थान का स्वरूप मांस और रक्त चोकरि रचा हुआ है और पंचभूतों का रचा है ताते जब रूप है और मनुष्य को जो चैतन्यरूप हृदय है सो स्थूल सृष्टि ते विलक्षण है और इस शरीरमें परदेशी की नाई अपने कार्य निमित्त आया है वहुरि यह जो स्थूल हृदय का स्थान है सो जीव का घोड़ा अथवा गर्जु है और सब इन्द्रिय भी जीवकी सेना है और शरीरका राजा जीव है ताते भाग्यन्तको पहिचानना और उसको देखना भी जीवको अधिकार है इसी कारण ते दग्ध और उपदेश और पुण्य आपका अधिकारी वही जीव है ताते भाग्यहीन और भाग्यवान् उसी जीवको कहा जाता है और सर्वकाल विषे शरीर उमके अधीन है इसी कारण ते उम चैतन्यके स्वरूप का पहिचानना और उसके स्वभावोंका समझना भाग्यन्तके पहिचानने की कुंजी है ताते तू यही पुरुषार्थ करिके चैतन्यरूप को पहिचाने पाहे ते कि यह चैतन्यरूपी रत्न हृदय है और दिवनाओं की नाई निर्मल स्वरूप है और इस रत्नकी ग्वानि परब्रह्म है इम करिके कि यह जीव उमके ओरते आया है वहुरि उमी और जिविगा और इस संसारके निर्पे परदेशी है सो

अपने कार्य के निमित्त महा आया है तब तब की तब ही कार्य की अवश्यमें  
 पहिचाननी चाहिये पर भगवन्तकी हृदय करिके जाना जाता है ॥  
 तीसरी सर्ग ॥  
 अत्र-आत्मसत्ता के अभ्यासका वर्णन करता है ताते जानू कि जयलग  
 जैतन्यरूपको तर्ही पहिचानिये तबलग हृदयके यथार्थ स्वरूपको पहिचान, नहीं  
 सका सो इसी कारण से भगवन्तका पहिचानना भी नहीं हो सका और उत्तम  
 भागोंको भी नहीं पावता और जत्र एकभाव करिके देखिये तो जैतन्यरूप अति  
 मकट है कहेते कि जैतन्य का होना शरीरके आश्रित नहीं जैसे मृतकशरीर  
 और इन्द्रिय मकट होती है पर जैतन्यसत्ता विना उसको मृतक कहते हैं वदुरि  
 योंमी है कि जब कोई पुरुष नेत्र आदिक इन्द्रियोंको रोकें और जैतन्यता के अ-  
 भ्यास विषे सर्वशरीर और स्थूल जगत् विस्मरण कतेवरे तिससन्देह अपने आप  
 को पहिचान लेवे और यथार्थरूप आत्मा को जाने वदुरि उसी विषे अधिक  
 अभ्यासकरे और विचारकरे तब सुगमही परलोक को भी देखलेवे और इस  
 वार्त्ताको भी प्रत्यक्ष जाने कि जब इस मनुष्यका शरीर छूटना है तब जैतन्यरूप  
 जीवका नश नहीं होता और अपने आप विषे स्थिर रहता है ॥

चौथा सर्ग ॥  
 वदुरि इस जीवका जो शुद्ध स्वरूप है और जो इसका परम स्वभाव है सो  
 तिसका खोलता धर्मशास्त्र विषे प्रमाण नहीं कहा इसीपर एक वार्त्ता है कि लोगो  
 ने जाकर महापुरुष से पूछाया कि जीवका स्वरूप क्या है तब उन्होंने जीवका  
 परम स्वरूप वर्णन नहीं किया और भगवन्तकी आज्ञा पायकर इतनाही कहा  
 कि यह महाराज की सत्तामात्र है सो इससे अधिक बखान करना उचित नहीं  
 देखा ताते इतनाही उत्तर दिया कि यह सत्र सृष्टि दो प्रकारकी रचना है सो एक  
 सृष्टि स्थूल है और दूसरी सत्तारूप सूक्ष्म है सो जिस पदार्थ की मर्याद और  
 आकार और बढना घटना है तिसको स्थूल कहते हैं और जैतन्यसत्ता जो सूक्ष्म  
 रूप है तिसकी मर्याद और आकार कुछ नहीं और अलग है कहेते कि वद  
 जब इस मनुष्यका हृदय सपररूप होता तब इसके शरीर विषे एक ओर बिया

जैसे इनरजीवो सर्गो को मुखरूप जानते हैं तैसे सन्तजनों को मुख महाराज की शरण विषे होता है सो जब इस प्रकार तेने समझा तब कुछ एक अपने आपका पहिचानना होवेगा और जो कोई इस भेद को नहीं पहिचानता उसको घर्मसार्गो विषे चलना कठिन होता है और आरोग्यमुख विषे उसको आवरण होता है ॥

दूसरा सर्गो ॥

॥ वदुरिजवत्तु आपका पहिचानना चाहता है तब इस प्रकार भिन्नश्रयजानि कि तुभको की पदार्थ करिके उत्पन्न किया है सो एकतो शरीर जो स्थूलनेत्रो करिके देखा जाता है और दूसरा चैतन्य है वह सूक्ष्मरूप है और उसको जीव कहते हैं और मन कहते हैं और विचभी उसीका नाम है सो तिसको बुद्धिरूपो नेत्र करि देल सक्ता है और स्थूल नेत्रोकी दृष्टि ते परहे ताते तेरा जो निजस्वरूप है सो वही चैतन्य तत्त्व है और जेते गुण है सो चैतन्य के अधीन है और उसीके दृष्टलुये अर्थना सेनाकी नाई है और मने उसी चैतन्य का नाम हृदय रत्ना है सो यहै योत्तो निस्सन्देह है कि आत्मा और हृदय और मन उसी चैतन्यके नाम है ताते में जो हृदयका घर्षण करता है सो गेरा प्रयोजन शरीर के हृदय स्वानिकी नहीं कोहने जो इस स्थूल हृदयस्थान का स्वरूप भास और रत्नो करि रत्ना हुआ है और पंचभूतो का रत्न है ताते नदरूप है और मनुष्य का जो चैतन्यरूप हृदय है सो स्थूल सृष्टि ते विज्ञक्षण है और इस शरीरमें परदेशी की नाई अपने कार्य निमित्त आया है वदुरि यहा जो स्थूल हृदय का स्थान है सो जीवका घोड़ा अथवा गच्छ है और सब इन्द्रियभी जीवकी सेना है और शरीर की राजा जीव है ताते भगवन्तको पहिचानना और उसका देखना भी जीवको अधिकार है इसी कारण ते दग्ध और उपदेश और पुण्य पापको अधिकारी वही जीव है ताते भाग्यहीन और भाग्यवान् उसी जीवको कहा जाता है और सर्वकाल विषो शरीर उमके अधीन है इसी कारण ते उस चैतन्यके स्वरूप का पहिचानना और उमके स्वभावोका समझना भगवन्तके पहिचानने की कुंजी है ताते स्थली पुण्यार्थ करिके चैतन्यरूपको पहिचानने फाटे ते कि यह चैतन्यरूपी स्त्र हर्षम है और देवताओं की नाई निर्गल स्वरूप है और इम न्य की खानि परवश है ईस करिके कि यह जीव उमो ओरते आया है वदुरि उसी ओर जावेगा और इस समासो विषे अर्दगी है सो

और इसके विप्रे सेना भिन्न भिन्न रहती है पर इस जीवकी जो भगवन्तने उत्पन्न किया है सो परलोकके कार्य निमित्त पैदा किया है सो कार्य इसका क्या है कि अपनी भलाई को बढ़ना और भलाई इस जीवकी यह है कि भगवन्तका पहिचानना और भगवन्तका पहिचानना उसकी आश्चर्यकारी गरी करि होती है सो यह सर्व जगत् भगवन्तही की कारीगरी है और कारीगरी का पहिचानना इन्द्रियों करि होता है सो इन पांचों इन्द्रियोंका आश्रय शरीर है ताते ये इन्द्रिया फामी की नई हैं और शिकार इनका कारीगरी है और यह शरीर पांच तत्वों करि रचा हुआ है और वायु पित्त कफ इसमें प्रबल विकार हैं ताते सर्वदा इसको नाश होने का भय रहता है और यद्यपि यह शरीर भूल और तृपा करि भी नाश हो जाता है और जल और अग्नि और शत्रु और सिंह आदिकभी इसको नाश करनेवाले हैं ताते भूल और प्यास दूर करनेको भगवन्तने जल और अनाज उत्पन्न किया है और शरीरकी रक्षा के निमित्त दो प्रकारकी सेना रची है सो एक स्थूल है जैसे हाथ और पाव और नाजा प्रकारके शस्त्र बहुरि दूसरी सेना सूक्ष्म है सो चाह और क्रोध है पर सर्व कार्यों के पहिचाननेवाली बुद्धि है सो प्रथम बुद्धिकरि के शत्रु को पहिचानता है तब क्रोध करिके जल और अनाजको खींचता है और शरीरकी रक्षा करता है बहुरि श्रवण त्वचा नेत्र रसना नासिका जो पचइन्द्रिय हैं सो यह भी बुद्धिके आश्रित हैं और शरीरका प्रेरक चतुष्टय अन्त करण है सो यह सभी सेना भगवन्तने कार्यनिमित्त बनाई है और जब इस सेना विप्रे किसी को कुत्र विघ्न होजाता है तब इस मनुष्य का स्वार्थ और परमार्थ का कार्य सिद्ध नहीं होता और ये सूक्ष्म स्थूल जो सेना हैं सो सब जीवही के आधीन हैं पर राजा इनका जीव है सो जब रसनाको आज्ञा करता है तब बोलने लगती है और हाथ आज्ञा से ग्रहण करते हैं और चित्तको जब आज्ञा करता है तब चित्त विप्रे चिन्तनकी शक्ति आयफुरती है इसीप्रकार सब अगों और सर्व स्वभावों विप्रे जीवही की आज्ञा बर्धती है तब यह जीव परलोक मार्ग के तोगेको बनाये और भगवन्तकी पहिचानरूपी शिकारको फँसावे और अपनी भलाई के बीज को बढ़ावे और परमार्थ के कार्यविप्रे दृढ़ होवे तब निस्सदेह परमपदको पहुँचता है और शरीरकी रक्षा करनी भी इस निमित्त प्रमाण कही है कि यह जीव शरीर करिके अपने कार्य को सिद्ध करे बहुरि जिसप्रकार देवता भगवन्त की आज्ञाके आ-

होती और एक ओर मूर्खनाहोती सो चैतन्य स्वरूप विषे इसप्रकार विद्या और मूर्खता नहीं ताते इसको अखण्ड कहा जाता है और मर्याद ते रहित है और इस का नाम जीव इस निमित्त कहा है कि यह भगवन्तका उत्पन्न किया हुआ है इसी करके जीवको सूक्ष्मसृष्टि कहा गया है पर तो भी इसका स्वरूप स्थूल नहीं ताते सूक्ष्म है ब्रह्मरिजिन पुरुषों ने इसप्रकार निश्चय किया है कि यह जीव अनादि है सो वे भी भूले हैं और जिन्होंने इस जीवको प्रतिबिम्ब जाना है सो वे भी भूले हैं काहेते कि प्रतिबिम्ब आपकरिके वस्तु कुछ नहीं और जो अनादि है वह उत्पन्न किया हुआ नहीं होता और यह जो जीव है सो उत्पन्न किया हुआ है और शरीर का आश्रय है ताते इसको प्रतिबिम्ब भी कहना योग्य नहीं और जिन्होंने इस शरीर को आत्मा प्रमाण किया है सो वे भी भूले हैं काहेते कि यह शरीर खण्ड खण्ड होजाता है और आत्मा अखण्ड है और ज्ञानस्वरूप भी है सो यह शरीर भी नहीं और प्रतिबिम्ब भी नहीं अर्थ यह कि सत्त्वरूप है और चैतन्य है और देवतोंकी नाई प्रकाशमान है और इस जीवको जो कारणस्वरूप है सो तिसका पहिचानना दुर्नम है और बचन विषे प्रसिद्ध कहा भी नहीं जाता और साधन कालविषे जिज्ञासुको इसनिर्णयकी अपेक्षा भी नहीं रहती काहेते कि धर्म मार्ग विषे जिज्ञासुको यत्र और उद्यम चाहिये है धरि जब विधिसंयुक्त पुरुषाय दृढ़ होजाता है और भली प्रकार दृढ़ अभ्यास करता है तब जिज्ञासु को आपही स्वरूप का ज्ञान भास आवता है और उसको किसीसे कुछ सुननेकी अपेक्षा नहीं रहती काहेते कि स्वरूप का ज्ञान अपने पुरुषार्थ और भगवन्तकी दया मे प्राप्त होता है इसीपर साईने भी कहा है कि जब पुरुष मेरे मार्ग विषे गन और अभ्यास करते हैं तब मैं उनको अपने स्वरूपकी ज्ञान लाखावता हूँ और जिस पुरुष ने यत्र और पुरुषार्थ भली प्रकार न किया होवे तब उसकी आत्मस्वरूप की भाँती प्रसिद्ध करनी योग्य नहीं और जब उसको कहिये तब दृढ़ भी नहीं होती जबलग यत्र के आगेही जीवकी सेना को न पहिचानिये तबतक अंगुम सेना से चिह्न भी नहीं फरसका ॥

पाँचवां सर्ग ॥

श्रीवकी सेनाका वर्णन ॥

ताते जानतु कि जीवकी सेना है और यह गद्यर उसकी राजमण्डल है

और इसके विषे सेना भिन्न भिन्न रहती है पर इस जीवको जो भगवन्तने उत्पन्न किया है सो परलोकके कार्य निमित्त पैदा किया है सो कार्य इसका क्या है कि अपनी भलाई को बढ़ना और भलाई इस जीवकी यह है कि भगवन्तका पहिचानना और भगवन्तका पहिचानना उसकी आश्चर्य कारीगरी करि होती है सो यह सर्व जगत् भगवन्तही की करीगरी है और करीगरी का पहिचानना इन्द्रियों करि होता है सो इन पाचों इन्द्रियोंका आश्रय शरीर है ताते ये इन्द्रिया फामी की नाई हैं और शिकार इनका करीगरी है और यह शरीर पाच तत्वों करि रखा हुआ है और वायु पित्त कफ इसमें प्रबल विकार है ताते सर्वदा इसको नाश होने का भय रहता है और यद्यपि यह शरीर भूल और तृषा करि भी नाश हो जाता है और जल और अग्नि और शत्रु और सिंह आदिकभी इसको नाश करनेवाले हैं ताते भूल और प्रास दूर करनेको भगवन्तने जल और अनाज उत्पन्न किया है और शरीरकी रक्षा के निमित्त दो प्रकारकी सेना रची है सो एक स्थूल है जेमे हाथ और पाव और नाता प्रकारके रास्र बहुरि दूसरी सेना सूक्ष्म है सो चाह और क्रोध है पर सर्व कार्यों के पहिचाननेवाली बुद्धि है सो प्रथम बुद्धिके शत्रुको पहिचानता है तब क्रोध करिके जल और अनाजको खींचता है और शरीरकी रक्षा करता है बहुरि श्रवण त्वचा नेत्र रसना नासिका जो पचइन्द्रिय हैं सो यहभी बुद्धिके आश्रित हैं और शरीरका प्रेरक चतुष्टय अन्त करण है सो यह सभी सेना भगवन्तने कार्यनिमित्त बनाई है और जब इस सेना विषे किसी को कुछ विघ्न होजाता है तब इस मनुष्य का स्वार्थ और परमार्थ का कार्य सिद्ध नहीं होता और ये सूक्ष्म स्थूल जो सेना हैं सो सब जीवही के आधीन हैं पर राजा इनका जीव है सो जब रसनाको आज्ञा करता है तब बोलने लगती है और हाथ आज्ञा से ग्रहण करते हैं और चिचको जब आज्ञा करता है तब चिच विषे विन्तनकी शक्ति आयफुरती है इसीप्रकार सब अंगों और मर्ब स्वभावों विषे जीवही की आज्ञा बर्धती है तब यह जीव परलोक मार्ग के तोगेको बनाये और भगवन्तकी पहिचानरूपी शिकारको फँसावे और अपनी भलाई के बीज को बढ़ावे और परमार्थ के कार्यविषे दृढ़ होवे तब निस्मदेह परमपदको पहुचता है और शरीरकी रक्षा करनी भी इस निमित्त प्रमाण कही है कि यह जीव गरीब कर्मके अपने कार्य को सिद्ध करे बहुरि जिसप्रकार देवता भगवन्त की आज्ञा से आ-



धीन है और मत्स्यता सहित उसकी आज्ञा मानने है तैसेही शरीर और इन्द्रिय और अन्तःकरण इस जीवके भावीनहें और इसकी आज्ञा विपरीत करने है सो यह सबही जीवकी सेना है यद्यपि उस सेनाका प्रबलान धर्मा बहुत विस्तार है पर तौभी समझाने के निमित्त कुछ वर्णन करता हूँ अब ऐसे जान लूँ जो यह शरीर राजाका नगर है और सब इन्द्रिय इस शरीरविषे बसेनेवाले लोग हैं और भोगों की अभिलाषारूपी राजाका प्रधान है और क्रोधरूपी कौतवाल है और जीव इस देश का राजा है बुद्धि इसका मंत्री है पर जीवरूपी राजाको इस सर्वसेना की चाह है काहे ते कि राज्य इनहीं करिके सिद्ध होती है पर अभिलाषारूपी क्रोध प्रधान है सो महाभूटा और पातण्डी है और बुद्धिरूपी मंत्री के कहने से विपर्यय वर्तना है और सर्वदा यही चाहता है कि राजाकी सामग्री सब गँदी सब लेऊ बहुरि क्रोधरूपी जो कौतवाल है सो महातीक्ष्ण और कठोर है और सर्वदा जीवों का घातही चाहता है इसी कारणते जीवरूपी राजाको देण महादुःखी रहता है पर यह जीव जो राजा है सो जब बुद्धिरूपी मंत्री के साथ ममत्त लेवे और अभिलाषारूपी प्रधानको निर्बल करिके अपने वशीकार करे और बुद्धिने विपर्यय जो कुछ कहें सो न माने और कौतवाल की उसके ऊपर प्रयत्न करे तब उसको मर्याद विषे राखसकत है इसी प्रकार क्रोधरूपी कौतवालको प्रबल न होने देवे और मर्यादते उलायिकरि न वर्तने देवे तब इसका देण सुखी होवे सो सदैव बुद्धिरूपी मन्त्रीके कहनेके अनुगारवर्षे जो अभिलाषा और क्रोधको रोमा निर्बल करे कि वहभी बुद्धिभी आज्ञाविषे चले और बुद्धिको उनके आधीन न परे तब इसका राज्य स्वाधीन होवे और सुखेन होवे और मर्यादके दरबारमें विघ्न न होवे परञ्च यह जीव बुद्धिको अभिलाषा और क्रोधके आधीन करदेवे तब इसका राज्य नष्ट होजाता है और राजा भी मन्दभागी होता है सोते इस फरके प्रसिद्ध हुआ कि भोग और शोभी शरीरकी रक्षाके निमित्त उताव्र क्रिये है तैसे ही जल और अनाज भी शरीरकी आधार बनाया है और शरीरकी इन्द्रियों के ठहराने के निमित्त बनाया है ताने शरीर इन्द्रियोंका टटलना है बहुरि इन्द्रिय जो है सो बुद्धिको खरा गणुनाने के निमित्त मनी है कि इन्द्रियों करिके मर्यादकी फाटीगरी की देखे और जाने ताते यह इन्द्रियां बुद्धिकी टहन करीगीनी है और तैसेही बुद्धिकी जीव के निमित्त उत्पन्न किया है सो यह बुद्धि जीव का दीपक है

किं।उसको प्रकाश करिके महाराजको।देखतहै सो महाराज का दर्शन इस जीव का परमस्वर्ग है ताते बुद्धि जीव का दहलुवाहै तैसेही जीवको महाराजके दर्शन निमित्त बनाया है सो जब यह जीव महाराज के दर्शन को प्राप्तहोने तब अपने उत्तम कार्यको पावताहै और महाराज की सेवाविषे लीन होताहै इसीपर महाराजने भी कहाहै कि मैंने सर्वमनुष्यों को अपने भजनके निमित्त उत्पन्न किया है सो इसका अर्थ यही है कि इस जीवको महाराजने उत्पन्न कियाहै और इन्द्रियादिक सेनादीती हैं और शरीररूपी घोड़ा दियाहै कि जिस करिके स्थूल देश से।गमनकरके सूक्ष्म।देगविषे पहुँचे वृद्धि जब यह जीव भगवन्तके उपकारका धन्यवाद।कियाचाहे और।भगवन्तका दर्शन हुआचाहे तब इसप्रकार, प्रथम इसको कनना योग्यहै कि इस शरीररूपी देशविषे बैठकर राज्यकरे और अपना मुक्त भगवन्तकी ओर लवि और इस समार से गमन करने की इच्छारावे और सर्व इन्द्रियों को अपनी दहलविषे लगावे अर्थ यह कि अपने २ कार्य विषे सावधान करे और तब इन्द्रियों करके जो कुछ कार्य करे तिसको चित्तविषे विचारे वृद्धि समय पायके बुद्धिविषे उसका अभ्यासकरे और बुद्धिरूपी मन्त्री उस स्वर्गको पायकर राजाको समझावे सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे देशकी स्वर्ग दूतले धारतेहैं और उतमे दरवान स्वर्गलेकर मन्त्रीको पहुँचावते हैं और वह मन्त्री राजाको समझाय देताहै तैसे इन्द्रियरूपी दूतहैं और चित्त इसका पर्वरियाहै और बुद्धिरूपी मन्त्री है सो इसप्रकार इन्द्रियरूपी दूतोंने जो स्वर्ग चित्तरूपी पर्वरियाके द्वारा मन्त्री बुद्धिरूपीको पहुँचाई है तिनको मन्त्रीके द्वारा जीवरूपी राजा पाता रहे वृद्धि बुद्धिरूपी मन्त्री जब देखे कि इस जीवकी सेनामें काम और क्रोध अथवा कोई और स्वभाव प्रबल हुआहै और राजाकी आज्ञा से विपर्यय होकर विचरने लगाहै और राजाको नाराजिग्रा चाहताहै तब बुद्धिरूपी मन्त्री उसको अपने आधीनकरे और कोमल करके राखे कोहेते कि उन विना शरीरका व्यवहार भी मिद्ध तर्ही।होता और उनका प्रबल होना भी दुःखदायकहै ताते जब इसकी आज्ञा विषे होतेहैं तब वह सर्वस्वभाव भी।यथार्थ मार्गकी सहायता करते हैं और यह जीवरूपी राजा अपने स्वामी को पहुँचता है और सम्मुख होता है और महाराजकी वकशाश को पावताहै पर जब यह जीवरूपी राजा इस प्रकार अपने देश विषे न्याय न करे और दुष्टों के साथ मिल जाये अर्थात् प्राप्तनाके

धीन हैं और प्रसन्नता सहित उसकी आज्ञा मानते हैं तैमही शरीर और इन्द्रिय और अन्तःकरण इसजीवके आधीन हैं और इसकी आज्ञाविषे ही वर्तते हैं सो यह सबही जीवकी सेना है यद्यपि उस सेनाका बलान्तरना बहुत विस्तार है पर तौभी समझाने के निमित्त कुछ वर्षण करता हूँ अब ऐसे ज्ञान भू जो यह शरीर राजाको नगर है और सब इन्द्रिय इस शरीरविषे बसेनेवाले लोग हैं और भोगों की अभिलाषारूपी राजाका प्रधान है और क्रोधरूपी कोतवाल है और जीव इसदेश का राजा है बुद्धि इसका मंत्री है पर जीवरूपी राजाको इस सर्वसेना की चाह है काहे ते कि राज्य इनहीं करिके सिद्ध होती है पर अभिलाषारूपी क्रोध प्रधान है सो महाभूत और पाखण्डी है और बुद्धिरूपी मंत्री के कहने से विपर्यय वर्तना है और सर्वदा योही चाहता है कि राजाकी सांगी सब मेंही स्वर्ण लेऊ बहुरि क्रोधरूपी जो कोतवाल है सो महातीक्ष्ण और क्रूर है और सर्वदा जीवों का घातही चाहता है इसीकारणते जीवरूपी राजाको देश गद्दा दुःखी रहता है पर यह जीव जो राजा है सो जब बुद्धिरूपी मंत्री के साथ सम्मत लवे और अभिलाषारूपी प्रधानको निर्वल करिके अपने वशीकार करे और बुद्धिने विपर्यय जो कुछ कहै सो न माने और कोतवाल की उसके ऊपर प्रबल करे तब उसको मर््यादते विषे राखसकत है इसीप्रकार क्रोधरूपी कोतवाल को प्रबल न होने देवे और मर््यादते उलाचकारि न वर्तने देवे तब इसका देश सुखी होवे ओ सदैव बुद्धिरूपी मंत्रीके कहनेके अनुसार वर्तें जो अभिलाषा और क्रोधको प्रेमानिर्वल करे कि वहभी बुद्धिकी आज्ञाविषे चले और बुद्धि को उनके आधीन न करे तब इसका राज्य स्वाधीन होवे और सुखिन होवे और भगवन्तके दरवारमें विघ्न न होवे परजय यह जीव बुद्धि को अभिलाषा और क्रोधके आधीन करदेवे तब इसका राज्य नष्ट होजाता है और राजा भी मन्दभाग्यी होता है ताते हम करके प्रसिद्ध हुआ कि भोग और रोगभी शरीरकी रक्षाके निमित्त उत्पन्न किये हैं तैसे ही जल और अनाज भी शरीरकी आहार बनाया है और शरीरको इन्द्रियों के बहराने के निमित्त बनाया है ताते शरीर इन्द्रियों का टहलुवा है बहुरि इन्द्रिय जो है सो बुद्धिको खर पछुवाने के निमित्त रची है कि इन्द्रियों करिके भगवन्तकी कारीगरी को देखे और जाने ताते यह इन्द्रिया बुद्धिकी टहन करनेवाली हैं और तैसेही बुद्धिकी जीव के निमित्त उत्पन्न किये हैं सो यह बुद्धि जीवकी दीपक है

किं उसके प्रकाश करिके महाराजको देखता है सो महाराज का दर्शन इस जीव का परमस्वर्ग है ताते बुद्धि जीवका टहलुवा है तैमेही जीवको महाराजके दर्शन निमित्त बनाया है सो जब यह जीव महाराज के दर्शन को प्राप्त होवे तब अपने उत्तम कार्थको पावता है और महाराज की सेवाविषे लीन होता है इसीपर महाराजने भी कहा है कि मैंने सर्वमनुष्यों को अपने भजनके निमित्त उत्पन्न किया है सो इसका अर्थ यही है कि इस जीवको महाराजने उत्पन्न किया है और इन्द्रियादिक सेनादीती हैं और शरीररूपी घोड़ा दिया है कि जिस करिके स्थूल देश सो गमन करके सूक्ष्म देश विषे पहुँचे वहुरि जब यह जीव भगवन्तके उपकारका धन्यवाद किया चाहे और भगवन्तका दर्शन हुआ चाहे तब इस प्रकार प्रथम इसको करना योग्य है कि इस शरीररूपी देश विषे बैठकर राज्य करे और अपना मुल भगवन्तकी ओर लावे और इस ससार से गमन करने की इच्छा राखे और सर्व इन्द्रियों को अपनी टहलुविषे लगावे अर्थ यह कि अपने २ कार्थ विषे सावधान करे और तब इन्द्रियों धरके जो कुछ कार्थ करे तिमको चित्तविषे विचारे वहुरिसमय पायके बुद्धिविषे उसका अभ्यास करे और बुद्धिरूपी मन्त्री उस खबरको पायकर राजाको समझावे सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे देशकी खबर दूतले आवते हैं और उनसे दरवान खबरलेकर मन्त्रीको पहुँचावते हैं और वह मन्त्री राजाको समझाय देता है तैसे इन्द्रियरूपी दूत हैं और चित्त इसका पर्वरिया है और बुद्धिरूपी मन्त्री है सो इस प्रकार इन्द्रियरूपी दूतोंने जो खबरें चित्तरूपी पर्वरियाके द्वारा मन्त्री बुद्धिरूपीको पहुँचाई हैं तिनको मन्त्रीके द्वारा जीवरूपी राजा पाता रहै वहुरि बुद्धिरूपी मन्त्री जब देखे कि इस जीवकी सेनामें काम और क्रोध अथवा कोई और स्वभाव प्रबल हुआ है और राजाकी आज्ञा से विपर्यय होकर भिचरते लगाहै और राजाको नाश किया चाहता है तब बुद्धिरूपी मन्त्री उसको अपने आधीन करे और कोमला करके राखे कहते कि उन बिना शरीरका व्यवहार भी सिद्ध नहीं होता और उनका प्रबल होना भी बुद्धि स्वदायक है ताते जब हमकी आज्ञा विषे होते हैं तब वह सर्वस्वभाव भी यथार्थ मार्गकी सहायता करते हैं और वह जीवरूपी राजा अपने स्वामी को पहुँचता है और सम्मुख होता है और महाराजकी पकशीश को पावता है पर जब यह जीवरूपी राजा इस प्रकार अपने देश विषे न्याय न करे और दुष्टों के साथ मिल जाये अर्थात् वामनाके

आधीन होजावे तब भगवन्तके उपकारका कृपणी होजाताहै और मन्दभागी होनाहै और महाइ स पाताहै ॥

छठासर्ग ॥

श्रीषके स्वभाषना वर्णन ॥

ताते ऐमे जौन तू कि जितने स्वभाव इसशरीरके विषे पाये जाते हैं सो सबों के साथ इसका सम्बन्धहै और इस विषे इतना भेदहै कि कोई स्वभावतो शुभ होते हैं और कोई अशुभ होते हैं सो अशुभ स्वभावों करि इस जीवको नाश होताहै और शुभ स्वभावों करि उत्तम अवस्था को पावताहै सो वह स्वभाव यद्यपि अगणितहै पर तो भी चारप्रकारके स्वभावहैं सो एकस्वभाव पशुओंके हैं और दूसरे सिंहा के तीसरे भेदों के चौथे देवतों के सो प्रथम जो इम मनुष्य विषे भोगोंकी अभिलाषाहै और तृष्णाहै सो इस करके पशु आदिक व्यवहार सिद्ध होताहै अर्थात् कामादिक स्नान पोनादिक भोगों विषे लगे हैं वहरि दूसरा जो क्रोधका स्वभावहै तिसकरके सिंहादिक व्यवहार सिद्ध होताहै जैसे मन क्रम वचन करके ईर्ष्या और दुर्वचन और जीवोंका घात करना और तीसरा भूतोंका स्वभाव मनुष्य विषे यहहै कि छल प्रपञ्च दम्भ कपट करना और उपाधि उदावनी और चौथा स्वभाव देवतोंका इसविषे बुद्धिहै सो बुद्धि करके दिव्य कार्य करतोहै जैसे विद्या और भलाई और निरागको अंगीकार करना और निन्द कर्मोंसे आपको बचाइ रखना और सब जीवोंके सुखको चाहना वहरि बुद्धि करके शुभ कर्मों विषे प्रसन्नताको पावताहै जड़ता और मूर्खताके विघ्नोको समझता है सो इम मनुष्य विषे चारिप्रकार के स्वभाव पाये जाते हैं जैसे पशु और भूत और देव स्वभाव आगे वर्णन कियेहैं पर कूकुरको जो जगत् विषे अपवित्र कहा जाताहै सो तिसका स्वभावही अपवित्रहै शरीरकरके अपवित्र नहीं है पर क्रोध करके जो जीवोंको फाड़ने लगते हैं ताते अपवित्र हैं तैसेही शूकरमें भी शरीर करके अपवित्रता कुछ नहीं है अपवित्र पदार्थों की जो तृष्णा करता है तिसकरके अपवित्र कहा जाताहै तैसेही मून और देवता जो वर्णन कियेहैं सो यहभी स्वभावहीका अर्थहै और इन मनुष्योंको सन्तजनों और शास्त्रोंने यही उपदेश कियेहै कि बुद्धिरूपी नेत्रों के प्रकारा करके मनरूपी भूतके छलको पहिचाने और उनकी तुराई जानकर अपने चित्त सों त्यागें तब उनकी उसके

विघ्न और छलसे रखाहोवे इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि सर्व सन्तुषों विपे भूतोंका स्वभाव प्रत्यक्षहै और मेरे विपे भी है पर महारोजने उसके ऊपर मुझको प्रयत्न कियाहै उसका विघ्न मुझको स्पर्श नहींकरता तेमेही इसमनुष्यको सन्त जनों ने इसीप्रकार आज्ञाकरी है कि तृष्णारूपी शूकर और कौधरूपी कूकरको अपने आधीनकरे जो बुद्धिकी आज्ञानुसार वचने तब इसकरके तेरे सभीस्वभाव भलेहोजावेंगे और यह स्वभावही तेरे पुण्योंके बीजहोंगे और जब तू इससे विपर्यय होकर वचेंगा अर्थात् उनहीं के आधीन होइ चलेगा तब तेरे सवही स्वभाव अशुभ होजावेंगे और वह अशुभ स्वभावही तेरे भाग्यहीनता का बीज होजावेंगे पर जब इसजीवकी जाग्रत अवस्था अथवा स्वप्न विपे अपनी अवस्था प्रत्यक्षहोवे तब निस्सन्देह जाने कि मैं भूनों और कूकुरोंके आधीनहूँ और उनकी आज्ञा विपे वचताहूँ सो इसका दृष्टान्त यहहै कि जैसे किसी धर्मात्मा पुरुष को किसी अधर्मी तमिसी मनुष्यके बन्दीखाने में बाध राखिये तब वह धर्मात्मा पुरुष महाइत्मी और कष्टवान् होताहै बहुरि जैसे कोई देवता किसी कूकुर अथवा किसी दैत्यके बधने विपे आइफैस तब उसकीभी नीच अवस्था होती है तैसेही जब यह मनुष्य विचारकरे और यथार्थ नीतिकी दृष्टिकर देखे तब जाने कि मैं दिन रात अपने मनकी धासनाके आधीन हूँ और यद्यपि देखने में मनुष्यका शरीर दृष्टि आग्रताहूँ पर तौमी स्वभाव करके कूकर शूकर और भूनोंका स्वरूप हूँ सो परलोक विपे यह धार्ता प्रसिद्ध होवेगी क्योंकि जैसा जिसका स्वभावहै सो तैसाही शरीर वहां पावनाहै ताते जिस मनुष्य विपे तृष्णा और अभिलाषा अधिकहै सो शूकरके शरीरको पावेगा और इमप्रकारभी है कि जब कोई स्वप्न विपे आपको कूकुर और सिंहदेखे तब इसका अर्थ यहहै कि उस पुरुषका स्वभाव अपवित्रहै कोहे ते कि स्वप्नमी परलोक को लंखानेहारो है इस करके कि स्वप्न विपे भी यह मनुष्य इन्द्रियादिक देगमे उल्लिखित होजाताहै ताते स्वप्नविपे जीव को अपनी स्वरूप स्वभाव के अनुसार भासनाहै और जैसा इमका हृदय हीता है तैसाही आकार प्रत्यक्ष देखता है और इस वचनका बखान फरनाभी बहुत विस्तार करिके होताहै ताते इस ग्रन्थविपे कहा नहीं जाता बहुरि जब तेने इस प्रकार जाना कि यह चारों स्वभाव तेरे अन्त करण विपे प्रकट हैं तब तू अपनी करतूतिकी विचार करके देख कि मैं इनचारों स्वभावों में मेरे किसकी आज्ञाविपे

चलनाहूँ और यह बातमी निश्चय जान, कि जैसी किया नू करता है, वैसाही, स्वभाव तेरे हृदय के विषे दृढ़ होता है और वही, स्वभाव, तेरे परलोक में भी सगी होगा, सो सर्व स्वभावों का मूल यह चारोंकृत हैं पर जब तू तृष्णारूपी शूकरकी आज्ञा विषे चलता है तब तेरे हृदय में अपवित्रता और निर्लज्जता और लम्पटता और ईर्ष्यादिक अपनक्षण, प्रकट होने हैं और जब तू तृष्णारूपी शूकरको अपने आधीन करे तब समय और शीलता और गम्भीरता और निर्लोभता और निराशंका आदि शुभगुण उपजने हैं बहरि जब तू कोधरूपी कूकुर के आधीन होता है, तब क्रुटिलता और निश्शङ्कता और वदावना और अपनी स्तुतिकरनी, और ईर्ष्यन बोलना और मानता चाहती और और जीवोंको नीच जानना और उनको ह्दावना, इत्यादिक अनेक, अवगुण उत्पन्न होते हैं और जब तू इस कोधरूपी कूकुरको अपने वशमें करे तब घेर्य और सहनशीलता और क्षमा और स्थिति और पराक्रम और दयाआदिक शुभ गुण प्रकट होते हैं बहरि जब तू शैतान और भूतोंकी आज्ञामें चलता है तब तेरे हृदय विषे मलिनता और रोग और कष्ट और इविधा और खलपासण्डाआदिक बुरे स्वभाव आन उदरान क्षेते हैं और जब तू इसको अपने वशीकारकरे और भूतों के स्वभावों के आधीन न होवे तब तेरी बुद्धिकी जीत होती है ताते विवेक और परिज्ञान और विद्या और अनुभव और सबजीवोंका मलाच्छादना और भावआदिक गुण बढ़ते हैं सो यह भलेस्वभाव जब तेरे हृदय विषे प्रकट होने हैं तब सर्वदा तेरेसगी होने हैं और अविनाशी हैं और तेरे परमभागोंका बीज है बहरि जो अशुभकर्म है सो क्षति करके हृदयका स्वभावभी बुरा होजाता है ताते पापभी इसीफला नाम कहा जाता है सो सब करतूनि इसमनुष्य के शुभ और अशुभ कियाके कदाचित् विलग नहीं होने पर मनुष्यका जो यह हृदय है सो दर्पणवत् निर्मल है और जेते बुरेस्वभाव तेरे हैं सो धुएँ और जगलकी नाई हैं ताते इन करके हृदयरूपी दर्पण ऐसा मलिन होजाता है कि मगवन्तके दरवारको नहीं देखसकता बहरि यह जो भले स्वभाव है सो प्रकाशरूप है ताते इन करके हृदयरूपी दर्पणसे अविद्यारूपी मेल उतरजाता है इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि जब कोई निन्दित कर्म तुम्हसे होजाते तब उसके पीछे शीघ्रही भलाकर्मकर तब वह बुराई नष्ट होजावेगी और हृदय मलिन न होनेपावेगा क्योंकि परलोक विषे जैसा किमीका हृदय है

तैसाही प्रकट होजाताहै जिसका हृदय निर्मलहै सो वहभी प्रत्यक्ष हीनाहै इमी पर महाराजनेभी कहाहै कि जिसकी हृदय शुद्ध है उसहीकी भावन्तकी ओर मार्गसुज्ञताहै। कीहेते किआदि उत्पत्ति त्रिपे इममनुष्यका हृदय लोहे कीनाई होताहै सो तिसकी विधि संयुक्तजव मर्दन करिये तव दर्पणवत्निर्मलहोजाता है और सर्वपदार्थोंकी लखावताहै और जव उसको मर्दन नृकरिये तव आपेमा मलिन होजाताहै कि उन विषे कुछ निर्मलताई भासती तही और किसीपदार्थको भी नही लखाता इसीपर महासंज्ञका वचनहै कि निस्मन्देहमें तुम्हारे हृदय की ओर देखताहू और जैसी करतूति तुमा करनेहो सो तिनकी ओरभी देखेताहू॥

सातेवा सर्ग ॥

ताते जान कि जव तुइम प्रकार प्रश्न करे कि जो इस मनुष्य विषे पशु भी और भिहो और भूतों और देवता के स्वभाव प्रकटहै सोतो में समझा पर इस प्रकार तुम क्योंकर कहनेही कि यह मनुष्य दिव्यरज है और कारण इसका निर्मल है और इमका अपना स्वभावभी शुद्ध है और अपर सबही परस्वभावहै मो इस वात्ताको क्योंकर समझावे कि इम मनुष्यको भगवन्तके निर्मल स्वभावके प्राप्तहोने निमित्तही पैदाकियाहै फाहने कि यह चारप्रकारके स्वभावहै और इम मनुष्य विषे इकट्टेहुये उपजे हैं तनि निर्मल स्वभाव इमका क्योंकर अपनाहुआ और अपर स्वभाव परस्वभाव किमकारण कहैगये मो निमका उत्तर यहहै कि इस मनुष्यको भगवन्तने पशुओं और भिहोसे विशेष उत्पन्न कियाहै और सर्व पदार्थोंकी बड़ाई और पूर्णताई भी भिन्नर है और जिस पदार्थकी जो बड़ाई होनी है सोबोही निमका कारण कहा जाताहै जैसे गर्दभने घोड़ा विशेषहै फाहने कि गर्दभको बोक उठावने के निमित्त बनाया है और घोड़े को इम निमित्त उत्पन्नकिया कि उसको दौड़ना और चलना मवारकी आज्ञानुसारहोवे और लड़ाईमें सावधानहोवे पुनः घोड़ा आठ गर्दभकी नाई बोक उठावने का बनभी रखता है और दौड़ने और सम्राम में मावधानताकी बड़ाई अधिकदानी है कि जो गर्दभविषे नहीं पाई जाती पर जव घोड़ा आनी बड़ाई और पूर्णताई हीन होताहै तव बोका उठावनेका अधिकारी रहताहै और गर्दभके पदको पोयता है और उसकी अपनी बड़ाई नष्ट होजाती है तैसेही जिनपुरुषोंने इसप्रकार ममगा



है कि, यह मनुष्यात्मनि और सौत्रने और कामादिक ग्रीग और अनसचनेके निमित्त उत्पन्न हुआ है तो मूढ़ है और जनकी सर्वार्थ्युप इनहीं काव्यों विषे धीन जाती है अथवा जिन्होंने इसप्रकार जीना है कि मूढ़ मनुष्य जीतते और क्रोध करनेके निमित्त उत्पन्न हुआ है तो वह भी महानामसी पुरुष और मूढ़ है ताते यह दोनों प्रकारके मनुष्य भूजे हैं काहेते कि अधिक आहार और भोग तो पशुओं विषे भी पायेजाते हैं जैसे सिंह और बैलका आहार तो मनुष्यते भी अधिक होता है और चिड़ियों विषे कामचैष्टा अधिक होती है तैसेही क्रोध करना और फाड़ना सिंहविषे होता है ताते जो कुछ पशुओंके स्वभावहैं सो यही मनुष्योंको दिये हैं और एकवड़ाई भी इनमें अधिक दी नहीं है सो बुद्धि है कि उस बुद्धि ही करके भगवन्तको पहिचानता है और महाराजकी कारीगरीको भी बुद्धि ही करके जानता है और उस बुद्धि ही करके क्रोध और भोगोंते आपकी वचाये रखता है सो यह देवस्वभाव कहा जाता है और इसी स्वभाव करके यह मनुष्य पशुओं और सिंहोंते विशेष कहा है और इसी कारण कर सर्वमृष्टि मनुष्यके आधीन है इसी परसाई ने भी कहा है कि भरती और आकाश विषे जेती मृष्टि है सो मने तुम्हारी आकाश फारी करि दी नहीं है ताते मनुष्यका जो अर्थ है सो यही बुद्धि है कि इसकी वड़ाई और विशेषता बुद्धि ही करके प्रकट है और अपर जेते स्वभाव इस मनुष्य विषे पायेजाते हैं सो वास्तव में मनुष्यके स्वभाव नहीं केवल इमजीवकी पहल और कार्यके निमित्त उत्पन्न किये हैं बहुरिजव यह जीव मृत्यु होता है तब भोग और क्रोधकी मधुही सामग्री नष्ट होजाती है परन्तु इमजीवकी बुद्धि शुद्ध होती है और देवताकी ताई इसका स्वभाव निर्मल होता है तब चैतन्य देस विषे प्राप्त होता है और निस्मन्देह भगवन्तकी पहिचान और उसके दर्शन विषे लीन होता है बहुरिजिसकी बुद्धि मलिन और विपरीत होती है तब यह भोगों और क्रोधकी मलिनता करके अज्ञान आजाता है सो यद्यपि उसदेश विषे भी जाता है तो भी उसका मुख ससारकी और रहता है अर्थ यह कि उसका हृदय इन्द्रियादिक भोगोंमें बद्धमान होता है और सर्वदा उसकी विषयोंकी खेच रहती है ताते उसको अवोगति कहा है और अवोगतिकी अर्थ यह कि परलोकरूपी उत्तम देश विषे भी उस मनुष्यका हृदय नीचताकी और भिन्ना रहता है इमी परसाईने भी कहा है कि परलोक विषे पापियों माशी शानीचे जन्मकाया रहेगा ताते जिस मनुष्यकी

ऐसी भवस्था है सो भूतों के समान कहना चाहिये बहुरि ऐसे जानि तू कि हृदय रूपी देशकी ऐश्वर्यता अमिर्त है और बड़ाई इसकी यह है कि इस मनुष्यका हृदय सर्वपदार्थों से आश्चर्यरूप है परन्तु मनुष्य अचेतता करके इस आश्चर्यता को नहीं पहिंचानते और विशेषता इस मनुष्यकी दोषकारकरके कही है सो एक विद्या है और द्वितीय बल है बहुरि विद्याकरके जो यह विशेषता कही है सो इसे सबकोई पहिंचानता है सो स्थूल है और दूसरी सूक्ष्म और गुह्य है सो महाइल्हाम है बहुरि स्थूलविद्या यह है कि यह मनुष्य सर्वपदार्थोंकी विद्याका वेत्ता होसकता है और नानाप्रकारकी कारीगरी को पहिंचानसकता है बहुरि अनेकग्रन्थोंकी विद्या को पढ़सकता है जैसे वैद्यक और ज्योतिष और व्याकरण और धर्मशास्त्र और अनेक विद्याके भेदोंको समझता है और यद्यपि येते प्रकारकी विद्याको पढ़ता है तोभी इस मनुष्यका हृदय ऐसा आकाशरूप है कि पढिताईको नहीं प्राप्तहोता और सर्वपदार्थों का ज्ञान इस विषे समायजाता है अथवा सर्व ससारही इसकी चैतन्यताके विषे ऐसी समाय रहा है कि जैसे समुद्र विषे बूद समायजाता है और इस चैतन्य पुरुषकी ऐसी सूक्ष्मगति है कि अपने किंचित सकल्पकरके पाताल और आकाशका कार्य करलेता है और उदय अस्तलों देखआता है सो यद्यपि इस चैतन्यको सम्बन्ध इस शरीरके साथ ऐसा दृढ़ है कि सर्वदा आपको शरीरही जानता है तोभी इसविषे ऐसी शक्ति है कि विद्याके बलकरके आकाशके तारोंका प्रमाणभी पहिंचानता है और योंभी जानता है कि अंगुक्तग्रह अमुक्तस्थान विषे आया है और अमुक्तग्रह अमुक्तग्रह ते इतना दूर है बहुरि विद्याही के बलकरके मखलीको समुद्रकी गहराईसे बाहर निकाल लेता है और आकाशविषे उड़नेहारे पक्षियोंको पृथ्वीपर आनि धारता है और जो कुछ इसजगत्विषे आश्चर्यता और विद्या है सो तिसको पांच इन्द्रियों करके ग्रहण करलेता है सो यह इन्द्रियादिक विद्या सबही स्थूल कहलाती है ताते इसको सब कोई पहिंचानता है बहुरि दूसरी विद्या जो महा आश्चर्यरूप है सो यह है कि इस मनुष्यके हृदयविषे एक वारी अर्थात् खिड़की है सो वही देवलोककी ओरको खुली हुई है जैसे यह पाचों इन्द्रिय आधिभौतिक जगत् की ओर को खुली हुई है पर सूक्ष्मदेश का नाम देवलोक है और चैतन्यदेशभी उसीको कहते हैं सो बहुरि पुरुष तो इसी इन्द्रियादिक देशको समझते हैं पर चैतन्यदेशकी अपेक्षाकरके जो देखिये तो यह सब जगत्

तुच्छमात्रहै ब्रह्मरिचित्तविषे जो सिद्धकी है सो तिसका खुलनामी दोषकारका होता है प्रथम जब निद्रा करके सर्व इन्द्रियों का मार्ग रोका जाता है तब स्वप्न विषे सूक्ष्मदेशकी ओर वह सिद्धकी खुलनी है सो तिसविषे अपूर्व सृष्टिकोमी परिचिन्ता नता है पर प्रत्यक्ष नहीं देखना जैसे मन्ददृष्टिजीवोंको पदार्थोंका स्वरूपभी मितही दृष्टि आता है तैसेही स्वप्नविषे भविष्यकालको इस प्रकार परिचिन्ता है कि जब उस स्वप्नका बलान करिये तब युक्तिकर समझा जाता है अन्यथा नहीं समझा जाता सो यहवार्त्ता प्रसिद्ध है और सबकोई जानता है कि जो प्रत्तविषे किमी भविष्यकालकी प्रकृता नहीं होनी और स्वप्नविषे सबकोई अधिक वाजल्पसं विषय देखता है सो वह देखना इन्द्रियों के मार्गकर नहीं होता और इस स्वप्नका अर्थ खोलना भी बहुत विस्तारकरके होता है ताते इतना कुछ तात्पर्य समझना चाहिये कि इस मनुष्यका हृदय दर्पणवत् निर्मल है सो जैसे दो दर्पण परस्पर सम्मुखहोने समय उनका प्रतिबिम्बरू दृमरेविषे भास आवता है तैसेही चित्त-रूपी दर्पण जब इन्द्रियादिके वृत्ति सों भिन्न होता है तब हिरण्यगर्भ जो स्थूल जगत्का आश्रय है सो तिसका प्रतिबिम्ब चित्तविषे भास आवता है और जब यह चित्त इन्द्रियों की वृत्तिको त्याग जाता है तब भविष्यकालको देखता है इस विषे इतना भेद है कि यद्यपि स्वप्न विषे इन्द्रियों की वृत्ति रोकी जाती है तो भी संकल्पोंका ठहरना नहीं होता और चित्तका फुलना भटकना रहता है ताते स्वप्नविषे भविष्यकालको मन्ददृष्टिकी नाई देखता है और पदार्थोंको प्रत्यक्ष नहीं देखता और जब यह जीव शरीर को छोड़ जाता है तब इन्द्रिय और संकल्प की वृत्ति नष्टहो जाती है तो उसको परलोक प्रत्यक्ष भास आवता है और नरक स्वर्गको भी प्रत्यक्ष देखता है तब महाराजके आपे प्रार्थना करने लगता है कि हे भगवन् तू मेरी सहायना करे ब्रह्मरि ब्रह्मरी युक्यहै कि जब किसी को अकस्मात् कोई संकल्प फुल आवता है तब वही संकल्प सत्यरूपहोय भासता है और इसप्रकार नहीं जाना जाना कि यह संकल्प कहा से आया था सो इसकरके इतना परिचिन्ता सकना है कि विद्याका मार्ग केवल इन्द्रियादी नहीं ताते विद्याका प्रकटहोना सूक्ष्मदेशते होता है और इन्द्रियों को इस स्थूल जगत् के प्रक्षण करने के निमित्त उत्पन्न किया है इसीकारण करके सूक्ष्मदेशकी परिचिन्ता विषे इन्द्रियों करके पटल होता है सो जबतक इन्द्रियोंकी विद्येता दूर न होवे तबतक सूक्ष्मदेशको नहीं पाता ब्रह्मरि

चित्तविषे जो नारी अर्थात् खिडकी कहीथी सो तिमके खुलनेका इमरीपकार, यहैहै किंजम कोई पुरुषइस जगत् विषे पुरुषार्थ और अभ्यासकर इन्द्रियोंको रोके और चित्तको कोप और भोग और मलिन स्वभाव और सर्व अमिलापाते शुद्धकरे बहुरि एकान्त ठौर बैठकर मनको एकत्र करे और चित्तकी वृत्ति चैतन्य देशकी ओर लगावे और मज्जनविषे सावधान होवे तब उसही अभ्यास विषे ऐसा लीनहोता है कि उसको अपना शरीर और सर्वजगत् विस्मरण होजाता है और उसको चित्तविषे किसी पदार्थका ज्ञान नहीं फुरता सो जब इसपुरुषकी ऐसी अवस्था होतीहै तब निस्सन्देह जाग्रत विषेही उसको सूक्ष्म देशकी खिडकी खुलती है और और पुरुषोंको जो स्वप्न विषे भविष्यकालकी खबर होती है सो तिसको जाग्रत विषेही फुझाती है बहुत देवताँ और अवतारोंके स्वरूप की प्रकट देखताहै उनसो सहायता और लाभ पाता है सो जिसके हृदयविषे ऐसा मार्ग खुलता है तिसको और अनेक पदार्थोंका भी ज्ञान होता है कि जिनका वखान नहीं फिराजासकैहै इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि मैंने अपने प्रकाश करके धरती और आकाश को लपेटलिया है और उदय अस्तको मैंने प्रत्यक्ष देखाहै तोते सन्नजनों की जो विद्या है सो तिनको अपनेचित्तके मार्ग विषे खुलीहै और उनका जानना इन्द्रियोंके मार्ग करके नहींहुआ पर प्रथम उन्हों ने भी यत्न और अभ्यास कियाहै इसीपर साई ने भी कहा है कि प्रथम तुमसब प्रदार्थोंसेविरक्त और शुद्धहोवहु बहुरि अपने आपको मुझको अर्पण करो और मायाके कार्यो विषे आसक्त न होवो इम करके कि कार्य तुम्हारे मेरी सहायता करके सिद्धहोवेंगे काहेते कि उदय अस्त विषे मेरी नाई और कोई समर्थ नहीं ताते मेराही आसरा करो और और किसी कार्य की ओर हृदय न देवो और जब तुमने मेरा आसरा लिया तब तुम अपने चित्तको निस्सङ्कल्प कर संव जगत्ते भिन्नहोवो ताते यह जो सब उपदेश और यत्न वर्णन किया है सो जगत्के जंजाल और इन्द्रियादिक भोगोंने हृदयकी शुद्धताके निमित्त कहा है ताते जिज्ञासुओं और सन्तोंका आदिमार्ग यही है बहुरि शास्त्रोंकी विद्याको पढ़ना और उनके भेदको समझना पण्डितों का मार्ग और विशेषताहै परतो भी सन्तजनोंकी विद्या ऐसी है कि वह किसीगान्त्र और किसीउपदेशके आधीन नहींताते उनके हृदय विषे भगवन्तकी सहायता करके सर्वदा अनुभवका

वरसता है सो यह वार्त्ता बहुत पुरुषों को प्राप्त हुई है और उनकी अवस्था ऐसी ही  
 दृढ़ हुई है और शास्त्रोंके वचन और अपनी बुद्धिकरके भी समझा जाता है तब  
 तुम्हको इतना तो अवश्यमेव समझना चाहिये कि इस अवस्था के प्राप्त होने की  
 प्रतीति तेरे हृदय विषे दृढ़ होवे बहुरि सन्तजनोंकी अवस्था और विद्यावाची  
 मार्ग और तीसरी उनकी प्रतीतियों अप्राप्त न होवे और यह जो अवस्था वर्णन  
 विषे आई है सो इस मनुष्यके हृदयकी आश्चर्यता यही है और इसीकरके मनु-  
 ष्यके हृदयकी विशेषता कही है बहुरि इस प्रकारकी अनुमान न किया चाहिये  
 कि यह अवस्था आगेही सन्तजनों और अवतारोंकी प्राप्त हुई है और इससमय  
 विषे किसीको नहीं प्राप्त होनी चाहते कि आदि उत्पत्ति विषे सब मनुष्योंकी  
 हृदय इस पदका अधिकारी होता है जैसे सबलोहा दर्पणका अधिकारी होता है  
 परं जब कोई जङ्गलकरके महामालिन होजावे तब उसकी निर्मलता नष्ट होजाती है  
 तैसेही जिस मनुष्यका हृदय मायाकी वृष्णा और भोगोंकी अभिलाषा करके  
 और पापकर्मों करके मलिन होजाता है और उसके ऊपर यह बुरे स्वभाव प्रबल  
 होजाते हैं तब निस्तन्देह उसकी मनुष्यता नष्ट होजाती है और उस परमपदके  
 पावनेका अधिकारी नहीं कहलाता इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि सबही  
 बालकों का एकधर्म होता है पर पीछे माता पिताकी सङ्गति करके उनको नि-  
 श्चय भिन्न भिन्न होजाता है इसीपर साईने भी कहा है कि तुम्हारे ईश्वर हैं और  
 तुम मेरे उत्पन्न किये हुये हो तब सर्वजीवोंने इस वचनको सत्य करके माना है सो  
 इस वचनविषे प्रसिद्ध हुआ कि इस अवस्था के प्राप्त होनेका सबकोई अधिकारी  
 है इस विषे कुछ भेद नहीं जैसे बुद्धिमान् पुरुष इस वचनको प्रत्यक्ष जानता है कि  
 एकसे दो अधिक होते हैं सो यद्यपि उसी ने किसीसे सुना भी नहीं तो भी इस  
 वचनको निस्तन्देह समझता है तैसेही सर्वजीवोंकी आदि उत्पत्ति विषे यह  
 निश्चय दृढ़ है कि हमारा उत्पत्तिकर्त्ता भी ईश्वर है धरती और आकाश को  
 भी उसीने स्थित किया है तब यह वार्त्ता अपने अनुभव और बुद्धिकी युक्ति  
 करके हमने प्रत्यक्ष समझी है कि उस परमपदको प्राप्त होना केवल उसकी का  
 अधिकार नहीं हमीपर महापुरुष ने भी कहा है कि मैं भी तुम्हारी नाई मनुष्य हूँ  
 पर भगवन्त की सहायता करके मुझको आकाशवाणी होती है तब इस वचन  
 का तात्पर्य यह है कि जिस पुरुषको ऐसी अवस्था प्राप्त होवे और सर्वजीवोंको

उपदेश करके कल्याण का मार्ग दिखावे तब उसको आत्मा और अविचार कहते हैं और उसके बचन ही धर्मशास्त्र कहलाते हैं और जिसको यह अत्रस्था भी प्राप्त होवे और उस विषे उपदेशकी बलभी होवे पर किसी और आचार्यकी उपदेश जगत विषे वर्चमान होवे और इसकरके वह उपदेश न करे जो उस पुरुषकी अवस्था कुछ खिण्डित नहीं होती और तुम्हको भी इसवाचीकी प्रतीति उचित है और यद्यपि इस अवस्था के प्राप्त होने का मूल अभ्यास है पर तो भी भगवन्तकी सहायता करके पहुँच सका है और अपने बलकरके पहुँचना कठिन है। कहते कि मार्गमें विघ्न करनेहार शत्रु भी बहुत हैं और जो मदार्य दुर्लभ होता है तिसका पावना भी दुर्लभ होता है और उस वस्तु के प्राप्त होनेके निमित्त युक्तिभी बहुत चाहती है इसी कारणते कहा है कि सबही खीची बोनवाले अनाजको नहीं पाते और सबही हँदनेवाले अपनी प्रियतम वस्तुको नहीं पाइ सके हैं सो यद्यपि अनाजकी प्राप्ति खेतीही करके होती है और वस्तुका पावनी हँदने करके होता है तो भी अकस्मात् विघ्नभी होजाता है बहुत। यह जो सब बखाने हुआ है सो इस मनुष्यकी बृहत् और उत्तम अवस्था वर्णन करी है और इसका प्राप्त होना यत्र और पूर्ण गुरुदेवकी सहायता विना सम्भन्न नहीं होता और जब जिज्ञासुको यत्र और सद्गुरुकी सगति भी प्राप्त होवे तो भी सर्वप्रकार भगवन्तकी सहायता चाहिये। काहेते कि उसकी सहायता विना कोई कर्म सिद्ध नहीं होता इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि पुरुषार्थ और वढ़ाई भी उसही को प्राप्ति होती है जिसको भगवन्त देता है और धर्मका मार्ग भी वही देखता है जिसको साईं आप देखावे ॥

### आठवांसर्ग ॥

मनुष्यके चतुर्धर्षणम् ॥

॥ ताते ज्ञान तू कि मनुष्यकी विशेषता और विद्याको जो तैने भलीप्रकार समझा सब चाहिये कि बलकरके जिसप्रकार मनुष्यकी विशेषता है सो तिसकी पहिचान इसकरके कि वह भी देवशक्ति है और पशुआदिक में पाई नहीं जाती सो तिसका अर्थ यह है कि जैसे यह सबही शरीरधारी जीव देवता के अधीन हैं सो वह देवता भगवन्त की आज्ञा पाइकर जीवों के मुखके निमित्त मेघ बरसावतें हैं और जिस समय विषे पवन चाहिये है तब पवनको चलावते हैं बहुरि

गर्भविषे जीवों का प्रतिपाल करते हैं और धरतीविषे वनस्पतियों की उत्पत्ति करते हैं इसी प्रकार सत्रही देवता भावन्त ने अपने अपने कर्मोविषे दृढ़ किये हैं तैसेही इस मनुष्य का जो हृदय है सो यह भी देखते हैं और इसविषे भी देवता की नाई बलविया है इसी कारणते केने शरीरों पर इसकी भी आज्ञा चलती है और इसका जो निज शरीर है सो भी इसके हृदयके आधीन है और सर्व अज्ञो विषे चित्तकी आज्ञा वर्तती है जैसे ग्रहोर्वाचा प्रसिद्ध है कि हाथकी अंगुली विषे चित्त का स्थान नहीं कह सके पर चित्तकी प्रेरणा करके प्रत्यक्ष अंगुली हलनी है ऐसेही जिषा चित्तविषे क्रोधका बल होता है तब शरीरके अज्ञो विषे पिसीना होके आविता है सो यह वर्षाकी नाई है बहुरि जब चित्तविषे कामका सकल्प आनी फुरता है तब इन्द्रियोंको चंचलती आना होनी है और जब भोजन करने लगता है तब रसना भी जलको डालने लगती है सो इस वाचाको सबकोई जानता है कि शरीरकी सर्व क्रिया चित्तके फुरने करके होती है बहुरि ज्ञोमी है कि केने पुरुष विशेषता और पुरुषार्थ संयुक्त ऐसे दृढ़ होते हैं कि उनका स्वभाव देवताकी नाई दृढ़ होता है ताते उनकी आज्ञा और शरीरों पर चलती है और उनके तैजकरके सिंह भी कांपने लगते हैं और जब वह वाहे तब रोगी पुरुषको अरोग्य फरलेवे और जब क्रोध करके देखे तब अरोग्य मनुष्य भी रोगी होजावे और जो पुरुष उनसे दूरहोवे तब उसको संकल्प की खैच करके निकट ले आवे हैं और उसके चित्तको भेचलेते हैं बहुरि जब इसप्रकार चाहे कि मेघ वर्षे तब वर्षा होभे लगे सो यह सबही वाचा प्रसिद्ध और निश्चय होती है और बुद्धिकी युक्तिके समी पहिचाना जाता है सो सन्तजनों का बल इससे भी अधिक है बहुरि दृष्टिदोष और मन्त्र यन्त्र आदिक जो फुला है मोर्यह भी मनुष्यके हृदयकी विशेषता और बल है सो वह बलही और शरीर विषे प्रवेश करता है पर जिसका हृदय मलिन होता है सो तिसका बल भी ऐसा होता है कि जब किसी सुन्दर पशुको देखता है तब उसकी ईर्ष्या और दोषदृष्टिकाके तत्कालही वह पशु नष्ट होजावा है सो यह भी मनुष्यके हृदयका बल है पर इसविषे इतना भेद है कि जिसके बलकरके जीवों का हृदय शुभमार्ग विषे दृढ़होवे तब उसको शुद्ध सात्विकी बल कहने हैं और जिसके बलकरके जीवों को शारीरिक अथवा धनका सुख प्राप्त होता है तब उसको सिद्धता और ऐश्वर्य कहते हैं और जिसको बलकरके उपाधि और

वेद छल्पनहोवै सो विसर्को तामसीवल कहते हैं पर तौ भी शुद्ध सात्त्विकीवल और प्रेशवर्य और यन्त्रमन्त्रादिक जिते तामसीवल हैं सो यह सर्वही इसमनुष्य के हृदयका बल और पुरुषार्थ है पर स्यूतदृष्टि करके देखिये तौ इन्हों विषे बड़ा भेद है सो इसका बखान भी सम्पूर्ण इसग्रन्थविषे कहा नहीं जाता पर जो पुरुष इस ज्ञानके भेदको नहीं समझता तो विसर्को सन्तजनोंकी अवस्थाकी पहिचान कुझभी नहीं होती और श्रवणमात्रही वह पुरुष उनको सन्त जानता है पर तौ भी अवतारों और सन्तजनोंकी जो अवस्था है सो यह सबही इसी मनुष्यो का पुरुषार्थ है और इस अवस्था के भी तीन लक्षण हैं उनमेंसे प्रथम यह है कि ससारीजीवि जिस भेदको स्वप्नकरके पहिचानते हैं सो सन्तजनोंको जाग्रदविषेही प्रत्यक्ष भीसता है और दूसरा यह है कि इतरजीवोंका संकल्प अपनेही शरीरमें प्रवेश करता है और सन्तजनोंका संकल्प सुषु शरीरों विषे प्रवेश करजाता है पर इस संकल्पके प्रवेश करके जीवोंका हृदयशुद्धमार्गको पाता है वहरि तीसरा यह है कि औराजीव, जिस विद्या को पढ़कर प्राप्त होते हैं सो विद्या सन्तजनों को बिनापढ़ेही अपनेअनर्पकरणविषेफुर आवंती है इसकी युक्ति यह है कि जो पुरुष बुद्धिमान् शुद्धचित्त होता है सो विसर्को कितनी विद्या अपने हृदयमें ही भास आती है और अनुभवभी इसीको कहते हैं इसीपर साईने भी कहा है कि केते पुरुषोंकी विद्या अपनेही अनुभव करके होती है ताते जिस पुरुषमें यह तीनलक्षण सम्पूर्ण होते हैं तब उसकी अवस्था सन्तजनों और अवतारों आचार्योंकी होती है पर जत्र उसपुरुषकी आज्ञा और उपदेश जगद्विषे वर्तमानहोवै तब उसको आचार्य कहते हैं और जन वैराग्य करके सकुचता है अर्थात् उपदेश नहीं करता है तब उसकी सनकादिक अवस्था कहलाती है पर सन्तजनों की अवस्था विषेभी बड़ा भेद होता है किसीकी अवस्था उत्तमहोती है और किसीकी मध्यम और किसीकी निकृष्टहोती है पर सम्पूर्ण सन्त उमाही को कहते हैं कि जिसमें यह तीनोंलक्षण सम्पूर्णहोवै पर यह तीनोंलक्षणभी इसनिमित्त कहे हैं कि इनका कहुक अश जीवों विषे भी पायाजाता है जैसे स्वप्न और संकल्पका सत्यहोना और अनुभव जो कहभाये व सो मनुष्य इनतीनों करके वह तीनलक्षणभी समझता है काहेते कि इसमनुष्यको यही स्वभाव है कि जिस अवस्थाका अश इस विषे होवा है उसविषे प्रतीविगी करा है इसीकारण करके कहा है कि भगवन्तकी



पूर्णतार्किकों भगवन्तही ठीक जानता है और कोई नहीं पहिचानसकता सो इसका तारुपर्य यह है कि आचार्यों और संतोंविषे इतने तीनलक्षणों से अधिक और भी अनेकलक्षण हैं पर हमको उनकी पहिचान कुछ नहीं काहेते कि उनका अर्थ हमारेविषे कुछ प्राया नहीं जाता इसी कारणते कहा है कि जैसे भगवत्को आप भगवत्ही प्रथम पहिचानता है तैसेही संतजनोकी अवस्थाको संतजनही पहिचानते हैं इतरजीन नहीं जानसकते सो इसका उदाहरण यह है कि जब हमारे देश विषे निद्राकी प्रवृत्ता न होती और कोई पुरुष हमको यह बात सुनाता कि अमुकदेशविषे प्रकृतिपरल्लो गपड़ेहुये दृष्टिआतेहैं पर उनविषे बोलना देसना सुनना कुछ नहीं रहता और उनकी चेष्टाभी शून्य होजाती है और फिर समय पायकर सुचेत हो उठते हैं सो जब हमको निद्रा न होती तब हम कदाचित् इस बातको न समझते काहेते कि यह मनुष्य जो कुछ देसता है सो उसीपर प्रतीति करता है इसीपर साईनेभी कहा है कि यद्यपि मैंने तुमको विद्या समझनेका अधिकार दिया है पर तौभी जबलगाते तुमको मार्ग न दिखाऊ तबजग तुमको उस विद्याके भेदकी युक्ति नहीं सुलती ताते च इसमार्गको आश्रय न जान कि संतजनोविषे कितने लक्षण ऐसेभी होतेहैं कि उनको और कोई पहिचान नहीं सकता और वह सन्त उनलक्षणों करके परमात्माको जाने हैं जैसे यहबीर्य प्रसिद्ध है कि जिस पुरुषको राग और गीतकी पहिचान नहींहोती तिसकी राग और गीतके प्रवण करनेसे आनन्द कुछ नहीं होना और जब कोई उसको और गीत शब्दका अर्थ समझावे तौभी नहीं समझता काहेते कि वह उसको जानताही नहीं चहुँरि जैसे जन्मके अंधेको तेजरूप और सुन्दरताई का ज्ञान कुछभी नहीं होता तैसेही भगवन्तकी सामर्थ्य के विषे यह बात कुछ आश्रय नहीं कि आचार्यों और संतजनोको ऐसीभी कितनी अवस्था प्राप्तहोती है कि उनको और जीव नहीं जानते ॥

नवांसर्ग ॥

पुरुषके चरके बलाने ॥

जानते कि इसमे आगे जो कुछ बर्णन किया है सो इसकरके तेने मनुष्य की विशेषताको समझा और जिज्ञासुओंका मार्गभी तेने पहिचाना पर जब तेने योगीजनों से यह सुनाहोवे कि अन्तरीय अभ्यास मार्ग विषे यह विद्या पटल

हालती है तो तुम्हको इसवचने का तिरस्कार करना प्रमाण नहीं काहेते कि यह वचन निस्सदेह सत्य है कि यह इन्द्रिय और इन्द्रियादिक विद्या जो स्थूल है सो हृदयकी एकाग्रताविषे यह भी पटल है और ईम करके चित्त विक्षेपताको प्राप्त होता है सो इसका दृष्टात यह है कि इस मनुष्यका हृदय तालावकी नाई है और यह पाचों इन्द्रिय तालावविषे जल प्रवेश करने के मार्ग हैं सो जब कोई इस तालाव के भीतर से निर्मलजल निकासवाहे तब इसका उपाय यह है कि प्रथम जो उस तालावविषे बाह्यजल है तिसको निकासे वद्वरि उस मलिन कीचको दूरकरे फिर उस तालाव को स्रोदे और जल प्रवेश करनेवाली मोहरियों को रोकें तब उस तालावविषे निर्मलजल उत्पन्नहोवे पर जबलग वह बाह्यकाजल और कीच दूर न होवे तबलग निर्मलजल कदाचित् नहीं निकसता तैसेही चित्त जब इन्द्रियादिक विद्यासे रहित न होवे तबलग वह सूक्ष्मविद्या कदाचित् नहीं प्रकटहोती ताते जब यह पुरुष स्थूल जगत्की जानताको विस्मरण करे और हृदयके अभ्यास विषे दृढ़ होवे तब निस्सदेह अनुभवविद्याको पाता है और स्थूलविद्याको जो पटल वर्णन किया है सो इसनिमित्त कहा है कि जब यह मनुष्य किसी मत और पन्थको ग्रहण करता है तब उसकी विद्या और युक्तियों को पढ़कर प्रतीति करलेता है फिर एक दूसरे के मतको खण्डन किया चाहता है और उसके बाद विवाद विषे दृढ़ होता है तब ऐसे जानता है कि इस विद्याते इतर और विद्या कोई नहीं वद्वरि तिससे पीछे जब किसी यथार्थ वचनको श्रवण करता है और समझता भी है पर तो भी अपने हृदयविषे ऐसा अनुमान करता है कि जैसी विद्या मैंने आगे पढ़ी है सो यह वचन उससे विपर्यय है ताते उन वचनों को यथार्थ नहीं जानता इसीकारण से यथार्थ विद्याको प्राप्त नहीं होता और संसारी जीव जिस विद्याको और मतको निश्चय करते हैं सो विद्या यथार्थ ज्ञानकी त्वचा है अर्थात् सारवस्तु नहीं और यथार्थ ज्ञान उसको कहते हैं कि उस गुह्यभेद को मलीप्रकार समझे पर जैसे दनकी त्वचा जब दूर होती है तब उसका सर्वरस और गुदा प्रकट होता है तैसे जब पन्थों और मतोंका निश्चय दूर होना है तब यथार्थ वस्तुका ज्ञान प्रकट होता है ताते जानू कि जो पुरुष वादविवादकी विद्याको पढ़ता है उमको यथार्थ ज्ञानकी विद्या नहीं प्राप्त होती और वह जानता है कि जो विद्या मैंने पढ़ी है सो यथार्थरूप यही विद्या है ताते यह अग्निमानही उसको पटल होता है इस करके कि ऐसी विद्या पढ़नेवाले

को अवश्यमेव अभिमान उत्पन्नता है और जब वह पुरुष अभिमानियों के विषय में उमको वह विद्या पटल नहीं होती और साखस्तु के ज्ञानको प्राप्त है और जिसकी अवस्था भी उत्तम होती है और वह यथार्थ मार्गविधिपे ज्ञानता है परमपुरुषविद्यावान् तो ऐसे होते हैं कि अपना जन्म-गुण्य्याप्रतीति, विवेकी खोते हैं और वह स्थूल प्रतीतिही उनको पटल टालती है और जो भयङ्करी बुद्धि मात्र होती है सो भूटी प्रतीति नहीं करता कदाचित् भी और भयान्को से निर्भय होता है प्राप्ति ही वचन विषे जो विद्याको पटल कहा है सो तिसका अर्थ तुम्हको प्रमत्तता खोगम है और तिरस्कार करना प्रमाण नहीं पर तोमी यह वचन उसको कहना योग्य है जिसको अनुभव विद्या खुली है और यह जो मनप्रती भूटे खोग ही तिनको अनुभव विद्या नहीं प्राप्त हुई थोड़े से सूक्ष्मवचन सन्तजनों के उन्हींने प्रदर्शिये है और सर्वदा करतूति उनको यही है कि सारे शरीरको धोते दिते हैं स्वर्णमैली गुदडी और आसनोंको चतावते रहते हैं और साम्प्र विनाही विद्यावानों और विद्याको निंदा करते हैं सो तिनको अतिदण्ड देना उचित है कहते कि यह ज्ञान गतका मार्ग खोजेवाले हैं भागवत और भागवतों से विमुख हैं इसकारके कि भगीवत् और सन्तजनों ने विद्यावानोंकी स्तुतिकसी है और सर्वजगत्को विद्यापटने का उपदेश किया है और यह जो पापी भक्त्यहीन खोग है सो उस अनुभवकी अवस्थाको भी नहीं प्राप्त हुये और विद्यामे भी हीन होता है इनको विद्यावातोंकी निंदा करनी कैसे प्रमाण होवे सो ऐसे पुरुषोंका दण्डन यह है कि जैसे किमीने मुना होवे कि स्वर्ण से रसायन उत्पन्न है काहेने कि रसायन क्रमके अर्धिर्धस्वर्ण उत्पन्न होता है और जब कोई उसको स्वर्ण देवे तब अङ्गीकार न करे और कह कि स्वर्ण किसकाग जाता है और इमका मोज भी तुम्हरे ताने हाता को तो रसायन चाहिये है क्या कि रसायन स्वर्ण का भूने पर जब यह पुरुष स्वर्णभी जालेवे और उसके पास रसायन भी न होवे तब वह पुरुष निर्द्वन और भोग्यहीन रहता है और मुझे है काहेते कि रसायनकी विशेषता भूनकर ही प्रसन्न होता है तैमे ही सन्तजनोंकी अवस्था रसायनकी नाई है सो यह चार्ण तिरस्त्रेह है कि रूपे और स्वर्णसे रसायनका पाना विषय है तैमे ही सन्तजनोंकी अवस्था विद्यावानोंसे विशेष है वद्वि इत विषे प्रकृ जोग भी भेद है कि जैसे उकीके पाम इननाही रसायन है कि १०० मोहर प्रमाण स्वर्ण उसमें होसके औष्कि ही

और पुरुष के पास सहस्राभिर्हरहोये तवउस सहस्र मोहरयलि-पुरुषसे सो मोहर  
 की रसायनवोली विशेष नहीं होता। काहे से कि रसायनकी विद्या औरउसके  
 हूँनेवाले पुरुषजगतविषे बहुतहैं पर रसायनकी पूर्ण विद्या प्राप्त होनी कठिन  
 है इसीकारणोसिद्धिकालमें किसी बिरलेको प्राप्त होतीहै तैसेही हृदयके अ-  
 भ्यासका जो मार्ग है सो यद्यपि महाउत्तम है पर इसकी पूर्णताई को पहुँचना  
 महाहूँनेवाले ही होते योभी पहिँचानना चाहिये कि जिस पुरुषको ध्वनिग्यान अ-  
 र्थवा मंत्रायत्राका कुञ्ज प्रज्ञो होता है तोभी वह पुरुष सर्व विद्यावानों से विशेष  
 नहीं होता काहेते कि जब किसीको प्रथम साधन करके कञ्चुक एकत्रनी होती  
 भी है तो भी बहुत पुरुष पीछेको पसरजाते हैं अथवा किसी सकल्पकरके वावले  
 होजाते हैं और वह जानते हैं कि हम वही अथवाको प्राप्तहुयेहैं तावेपेमा कोई  
 बिरलाही होता है जो अपने हृदयकी शुद्धताकरके पूर्णपदको पहुँचे और बहुत  
 ती विक्षेपताको प्राप्त होजाते हैं जैसे सञ्चास्वप्न भी कोई होता है और विशेष करके  
 तो चित्तको अमही होना है ताते विद्यावानोंसे वह पुरुष विशेष कहाजाता है जिम  
 की अथवा ऐसी होवे कि जिस विधाको और जीय पढ़कर समझें सो तिसको  
 भिना पढेही आसिअये सो यह अवस्था महादुर्लभ है नाते नुमको उचित है कि  
 सन्तजनोंकी अथवा और उनकी विशेषतापे भी तेरी प्रतीतिहोवे और पाख-  
 ढी अनुपूर्वके बचनी करके विद्यावानोंका निरादरभी न करे तब तेरा धर्म नष्ट न  
 होवे बहुरि ज्ञेव नू इसीप्रकार प्रश्न करे कि इस अनुव्यकी घुराई भलाई उत्तममार्ग  
 जो भिगवतकी पहिँचान करके आगे कहा है सो इस भेदको क्याकर पहिँचानिये  
 तब इसकी उत्तर यह है कि जिम पदार्थ करके किसीको प्रमत्तता और आनन्द  
 प्राप्तहोत है तबवही पदार्थउसपुरुषकी भलाई कहीजाती है बहुरि प्रमत्तता और  
 आनन्द उसपदार्थविषे प्राप्त होता है जो पदार्थ इसके स्वत स्वभाव अनुमाग होता  
 है और स्वत स्वभाव उसीको कहने हैं कि जिस पदार्थके निमित्त इसा जीवको  
 भगवन्ने उत्पन्न किया है जैसे कामकी प्रसन्नता यह है कि अपनी इष्ट वस्तु को  
 प्राप्त होना और क्रोधकी प्रमत्तता यह है कि अपने शत्रु को जीते बहुरि शरण  
 को सुख सुन्दरे शब्द और रागविषे होता है तेमही बुद्धिकी प्रसन्नता और भलाई  
 यह है कि कामोंके भेदको पहिँचाने काहेते कि इसका अपना स्वभावभी यह है  
 और भगवन्ने भी इस बुद्धिकी इमी निमित्त उत्पन्न किया है बहुरि काम जो।

क्रोध और पाचों इन्द्रियों के भोग तो पशुओं विषे भी पाये जाते हैं परन्तु यह स्वभाव मनुष्यों में और अधिक है कि जिस पदार्थ के भेदको नहीं जानता तब निस्पन्देह उस पदार्थको छूँदा करता है और जानना चाहता है वद्वरि जब उसके भेदको समझता है तब प्रसन्न होकर उसपर बढ़ाई करता है और यद्यपि वह पदार्थ नीच होवे तो भी उसके ज्ञानविषे ऐसा प्रसन्न होता है कि उस प्रसन्नताको रोकनहीं सका जैसे शतरञ्ज खेलनेवाला पुरुष शतरञ्जकी विद्या बताने से धैर्य नहीं कर-सका और यों भी समझता है कि मैं भली प्रकार खेलता हूँ ताते उस प्रसन्नता को प्रकट किया चाहता है सो जब तैने इसवचनके भेदको समझा कि इस मनुष्यका स्वस्वभाव पहिचान है तब ऐसे जान कि जो पदार्थ जितनाही जानते, योग्य वि-शेष और उत्तम होता है तितनाही उसकी पहिचानविषे आनन्दभी अधिक होता है जैसे कोई बच्चीरके भेदको जानता है तब प्रसन्न होता है और जो पुरुष बादशाह के भेदको जाने, तब वह उससे अधिक प्रसन्नताको पाता है वद्वरि शतरञ्जकी विद्या जाननेवाले पुरुष से ज्योतिष और वैद्यकविद्याका वेत्ता अधिक प्रसन्न होती है ताते यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि जब जानने योग्य पदार्थ उत्तम होवे विसकी पहि-चान विषे आनन्द अधिक होता है ताते कोई पदार्थ भगवन्तके समान उत्तम नहीं कोहते कि सर्व पदार्थोंकी विशेषता उमीकी शक्तिरके होती है और वह सर्व सृष्टिका ईश्वर है और जो कुछ जगत्विषे आश्चर्य है सो सब उसीकी का-रीगरी है इसीकारण से भगवन्तकी पहिचान के समान और पहिचान कोई नहीं और उसके दर्शन समान और दर्शन सुन्दर कोई नहीं, सो वह पहिचान और दर्शन इसमनुष्यका स्वस्वभाव है और इस जीवको भगवत् ने अपनी पहिचान के निमित्त उत्पन्न किया है ताते इस मनुष्यकी भलाई और पूर्णताई भगवत्की पहिचान विषे है पर जिस पुरुषके हृदयमें भगवत्की पहिचानकी प्रीति न होवे तब जानिये कि उसका हृदय रोगी है जैसे किसी पुरुषको अनाजकी रुचि न होवे और गाथीको प्रीति मयुक्त खावे तब वह रोगी कहलाता है और जब उसका उप-चार न करे तब मृत्युको पाता है और इस जगत् विषे भाग्यहीन कहाजाता है तैसे ही जिस मनुष्यको विषयों की प्रीति अधिक होवे और भगवत्की प्रीतिसे शून्य होवे तब उसका हृदय रोगी कहाजायगा पर जब वह भी मानसी गेगका उपचार न करे तब परलोक विषे मन्दगागी होता है और उसकी बुद्धि नष्ट होजाती है

और महादुःखी होता है काहेते कि इन्द्रियादिक भोगोंका सम्बन्ध इस शरीर के साथ है सो मृत्युके समय यह शरीर दूर होजाताहै ताते सर्व भोग भी नष्टताको पाते हैं और वह जीव भोगोंकी खैचविषे बड़े कष्टको प्राप्त होता है ताते परलोक विषे भाग्यहीन कहलाता है और भगवत् की, परिचानका जो सुख है तिसका सम्बन्ध हृदय के साथ है ताते वह सुख मृत्युके समय अधिक होता है काहेते कि विषेपदायक पदार्थ सब दूर होजाने हैं, बहुरि जितनी कुञ्ज इस मनुष्यके हृदय की विशेषता कही है सो इस ग्रन्थ विषे इतनाही बहुत है पर यह सबही बखान इस जीव के स्वभावों का वर्णन किया है बहुरि इस मनुष्य का जो शरीर है सो इस विषेभी भगवन्तने बड़े आश्चर्य्य गुण उत्पन्न किये हैं और सर्व अङ्गों विषे अनन्त गुण उपजाये हैं और इसी शरीर विषे कितनी नाडी और अस्थिहैं सो समोंके आकार और गुण भिन्नभिन्न बनाये हैं और कर्मभी उनके भिन्नभिन्न सिद्धहोते हैं परन्तु इन सर्व अङ्गोंते अचेतहै और यों तू जानताहै कि द्वाय ग्रहण करने के निमित्त हैं और चरण चलने के निमित्त और रसता चलने के निमित्त है पर यह जो तेरे नेत्रहैं तिनको सात परदेकर बनायाहै बहुरि जब एक परदा दूर होजावे तब नेत्रोंकी दृष्टि मन्द होजाती है सो तुम्हको यह परिचान कुञ्जनाहीं कि यह सातपरदे किस निमित्त बनाये हैं और समोंविषे देखने की क्रिया किसप्रकार राखी है बहुरि नेत्रोंका जो आकारहै सोतो प्रकटही अल्प मात्रहै पर इनकी दृष्टि कितनी फैलती है और इनकी दृष्टि और विधिका वर्णन करिये तबतो कितने और ग्रन्थ चाहिये ताते तुम्हको इतना परिचानना योग्य है कि इस शरीरविषे मूलचक्र से आदि लेकर जो स्थान बनाये हैं तिनके बनाने का प्रयोजन क्याहै सो प्रथम इस शरीर विषे कलेजा इस निमित्त बनाया है कि भिन्नभिन्न आहारों को परिपक्व करके रुधिर बनाताहै बहुरि वह रुधिर सर्व नाड़ियों में प्रवेश करताहै और उसका आहार सब अङ्गों को पहुँचताहै बहुरि एक ऐसा स्थानहै कि जब वह रुधिर परिपक्व होताहै तब उसका जो मूल शेष रहता है तिसको गिराय देता है बहुरि उसी रुधिर विषे क्लृप्त भाग उत्पत्ति होते हैं तब उसको पिच्छा दूरकरदेता है और प्रथमहीं जो रुधिर कलेजे से बाहर निकसता है तब पतला और जलसहित होता है सो उस जलको गुरदा रुधिर से खींचलेताहै बहुरि उस जलके अंशको कुलिया भिन्न करके लहईके स्थानमें

दारदेती है तब वह रुधिर मेल और आग और जल के अगम से ही कर ना-  
 दिगो अं-प्रवेश करती है फिर जवम्ब अर्थात् विषे किमी एका अर्क को धि हो जाय  
 तब शरीर विषे रोग उत्पत्ति होती है तब निमित्त सिद्धि हुआ कि मूला धि से स्त  
 शरीर को जी अङ्ग है सो भव ही अपने कार्य कि निमित्त बनाने हुए और शरीर को  
 रखा इन ही आकर के होती है वृद्धि रिये हो जी जी का पिण्ड है सो बचाप देखने में  
 इस का ह्या कर मरुप सी ग्रासनी हो तभी प्रहाण्ड की नाई है और जिनने पिदाये  
 ब्रह्माण्ड विषे बनाये है तिनके अर्ण पिण्ड विषे भी प्रवेश है तसे अस्त्र पथने  
 की नाई है और रोमावली बनस्पति है और पमानो भव कानाई है शरीर आ-  
 काश और इन्दिया सागमण्डल है सो इन के गो बलान करनी बड़े विस्तर करके  
 होता है पर तात्पर्य यह है कि ब्रह्माण्ड विषे यावत् पदार्थ और जीव है सो गित्तिकी  
 अणु पिण्ड विषे सब ही पाया जाती है जिसे शुक्र कूकर पशु प्रेत देवता और पति  
 आदि कहे सो तिन के स्वभाव भी इस मनुष्य के शरीर विषे पाये जाते हैं बहुत  
 प्रमाण विषे यावत् पदार्थ है तिनका अंश भी शरीर विषे प्रसिद्ध है जसे जट-  
 राग्नि जो आहार को पचाती है सो मानो रस ई करने वाली है और अमो शक्ति  
 करके आहार का रस तिरुसवा है और मेल को मित्र करके पहे सो गन्धी की नाई  
 है और जिम अङ्ग करके रुधिर का दृप और खीर्य बनना है सो घोषी को जाई है  
 और जो अन्न जल के अशको लोहीरुयान विषे डालना है सो मनिदास है और  
 जिसे करके आहार का गेल जाहर निकलता है सो मोहनी की मागी है और  
 जिम करके माई मित्त कर शरीर विषे फोपे है और (१) देह को बू चहोता है कि  
 उपार और चिर की नाई है वृद्धि रिये को के बड़े पित्त करके की को मनि विषे  
 होता है सो धर्म तामाराजा की नाई है पर इस का बचाव करने को अर्क विस्तर  
 होता है और तात्पर्य यह है कि तुमको ऐसी माई चान धारिपे है कि तेरे शरीर  
 विषे मित्र भिन्न स्वभाव और जाग उत्पत्ति किये है और सब ही तेरी इह सं विषे  
 सावधान है वृद्धि जमात् अविन्न होकर नाई रहना है तो गो अङ्ग विषे माई की  
 लोम नही कम्ने और तू तेन को जनि वादी लेश और जिसे माई जनि की कृष्ण  
 उद्गुनो बनाये है सो नित की तू उर को जी मने जात शरीर जव को मनुष्य  
 पक्ष बाह तेरी इह लके निमित्त अगने उद्गुन को गेज तब सागि कायुप मनिने  
 वे प्रसका विषे कार चान बनता है और म भगवत ने कही मरुत उद्गुनो गो

शरीरकी इच्छा विषे जगामो है और धेपेमें सावधान है कि एक प्रलीला तेरी  
 सेनाखे आलीम तिहरे करके सेनाखे सेनाखे सेनाखे तू जेदा तित भी संरण नहीं  
 करुताई हरे हिंसे रीति की तिहरे अथ सईस के अमीं ध्रुवपे जो गुरु प्रती है  
 तिसकी विद्यामी प्रीप्रार है और सवही को गडिस विद्या से आवेत है पर जवकी कोई  
 ईस शरीरकी नितियों को तद्वदमी है तो भी ये अज्ञाने के निमित्त पढ़ता रहे ताते  
 शरीरकी विद्याको भी हरे तिमिन्न मदन है प्रभापी है कि मप्रियाको पृढकर मग  
 प्रव की कीरीसरीको प्रहिं जने तत्र रसी गुरुपकी प्रिस्मन्दे है गुगवत्की महिचत  
 प्रसिद्धी है सीर्भगवत्का पदिना तत्र प्रहरे कि प्रेम शरीर और जीवके उत्प  
 न्नकरनेवाले महीराजको ऐसा समझने कि जेकी सामिध्रिये हीवती और  
 पराधीनताका प्रशास्त्रकी मीजही मीमिना तातावे जो सुख व कया चिहती है सो  
 करसका है जे सोषीय कि घृदसे उंसने प्रह शरीरात्पनी किया है सो जेमी मंगवत्  
 प्रीपे सीसा मर्या है प्रीतसकी समर्थविषे शरीरके नाश दृये परत्वात् न जवो मलेना  
 कुक्काईनतात ही ही इसी कारणसे परती काकाइ र्क ओ सुखापि हिंजान किया  
 नासका है चहुं गिपे सेनामें किन्नरु म्भाषत्रमेमा ज्ञानस्वरूपे है निसका ज्ञानसर्व  
 जपवगिपे मगपु है और श्रीवत् ताना प्रकाउके आइ प्रथम ही उजके निपे गुण है  
 सीसवही मउसकी विद्या करके सिद्धि से है महरि तीसरा गुण मीदारा जका ये ही  
 प्रविना तना चिहमे मकि नरुपम मरपलु है परे और सर्व जीवों पर उसकी अमित  
 करुणा है जने जिस जिस जीवको जो कुछ चाहिये वो सो सबही दिया है और  
 रूपणता करके दुराय कुछ नहीं श्रांता जेसे शीरा ओ हृदयस्थान से लेकर जो  
 कुछ अवश्यही चाहिये था सो सबही दिया और जिन अगों करके इमजीव का  
 प्रमोजन और कर्म सिद्ध होता है जेपे हाय प्रावारसना आदिक सो सबही दिये  
 बहुरिपि निसर्पिपे इम नीवका प्रमोजन भी न माओ उमा पदार्थ ता होना अत्र  
 श्यही चाहिये तो भी न या नर उमकके सुन्दरता और उद्धार प्रिय होना था  
 सो वह अज्ञानी दिये है जेमे नेत्रों की मर्मता अधरोंकी ललाई तालोंकी स्याही  
 घृनी कुटिनता पल्लकोंकी समानता और हृमकी नाई केने अद् और भी सुन्दर  
 ताके निमित्त दिये है तहे मगवत् ते गेमी रूपा मनुष्यों पर ही नहीं करी तावे  
 सर्वजनों पर उसकी दया उसातते इसी कारणसे मच्छर और मानी पर्यन्त जीवों  
 को जो कुछ चाहिये सो सबही दिया है उनका वदन और आहार और ताना



प्रकारके चिह्नों करके सुन्दर बनाये हैं सो इनजीवोंके शरीरोंकी उत्पत्तिका पहिचानना भी इसप्रकारकरके भगवत्के पहिचाननेकी कुञ्जी है और विद्याके पढ़ने की विशेषता यही है कि इसकरके भगवत्की बड़ाईको पहिचानने जैसे कोई पुरुष किसी कवीश्वरकी कविता और किमीकी कारीगरीको मलीप्रकार समझता है तब निस्मन्देह उसकवीश्वर और कारीगर की बड़ाई को पहिचानलेता है तैसेही यह जेती कुञ्ज भगवत् की कारीगरी है सो महाराज के पहिचानने की कुञ्जी है और उसके सर्वगुणोंको लखानेवाली है पर तौभी शरीरकी उत्पत्ति का जो पहिचानना है सो हृदयकी पहिचाननेके निकट तुञ्जमात्र है काहेते कि यह शरीर घोड़ेकी नाई है और चित्त सवार है तौने उत्पत्तिका जो तात्पर्य है सो हृदयरूपी सवारही है इसकरके कि घोड़ा सवारके निमित्त होना है और सवारकी उत्पत्ति घोड़ेके निमित्त नहीं बहुरे इतना कुञ्ज जो बर्णन हुआ है सो इस करके प्रसिद्ध हुआ कि तू अपने शरीरके अङ्गों को मलीप्रकार नहीं पहिचानता और यह वार्त्ता प्रकट है कि तुम्हको तेरे स्वरूपमे निकट और कोई पदार्थ नहीं सो जब तू अपने आपकोही न पहिचाने तब और किसी पदार्थ के पहिचानने को अभिमानि किमप्रकार होता है सो इसका दृष्टान्त यह है कि जेमे कोई पुरुष ऐतानिर्द्धन होवे कि अपने शरीरके आहारको समर्थ न होवे और इसप्रकार अभिमान करके कहै कि सारे नगर के अभ्यागत भरेही गृहसे भोजन पावते हैं सो यह वार्त्ता असम्भव है और ऐमा अभिमान करनेद्वारा पुरुष मूर्ख और भूत्र कहाजाता है ॥

### दसवासर्ग ॥

भीयती परापीनका के कर्त्तन मे ॥

ताते जान तू कि बड़ाई और शोभा और विभेपना इस मनुष्यके हृदयरूपी रत्नकी तैने मलीप्रकार समझी तब भागे यो भी जानना चाहिये कि यद्यपि भगवत्ने ऐमात्र तुम्हको दिया है पर तौभी तुम्हमे गृह्यकारणादे सो जबलग तू इस रत्नको न खोजे और उससे अचेनहोने और व्यर्थ गँवावे तब इम करके तेरी परमहानि होती है ताते तू पुरुषार्थ करके अपने चित्तको खोज और माया के जजालोंसे विरक्त हो तब वह तेरा चित्तरूपी रत्न पूर्णताको पहुँचे सो उमकी पूर्णता और बड़ाई चैतन्यतारूपी मूक्षप्रदेश विषे प्रकटहोती है काहेते कि चैतन्यदेश विषे शोकने रहित आनन्दको पाता है और अविनाशी सत्यस्वरूप को

हेसुता है और पराधीनता से रहित सामर्थ्यता को प्राप्त होता है और अविद्याते रहित ज्ञानको प्राप्ति होती है। भगवत्का निर्मल स्वरूप यही है और यह जीव भी मूढमदेशमें इसी स्वरूप विप्रे लीन होता है वद्विर। इस स्थूलदेश विप्रे जो जीवकी विशेषता कही है सो इस निमित्त कही है कि उस परमपदके पानेका अधिकारी है और जबलगापिसे परमपदको न प्राप्त होवे तबलगा यह जीव ऐसा पराधीन और महानीचैपके इसकी नीचता वर्णनविप्रे नहीं आती मूलपासु गीते उष्ण रोगशोक दुःखाभीह क्लेश तृष्णा आदिके सर्व स्वभावों के अनीन है वद्विरिहस जीवके शरीरका जो मुख है सो भी कटु वे औषधोंविप्रे राखा है और जो भोग इसकी प्रियतमालगते है सो गतिनकरके रोगको प्राप्त होता है वद्विरिहस मनुष्यकी विशेषता जो ह्येसो विद्या और बल अथवा धैर्य और श्रद्धा और सुन्दरता कहती है सो जब तू इस मनुष्यकी ओर देखे तब जाने कि ऐसा मूल और कौन है कहेसो कि जब एक नाई इसके शीशविप्रे विपर्यय होजावे तब वाचला होजाती है और नाशताके भयको पाता है और यद्यपि इसका औषध इसके निकट ही पड़ाहोवे तो भी जीव नही संकट कि मेरा औषध यही है और मुझे रोग किमोह वद्विरि जव तू इसके बलकी ओर देखे तब जाने कि इसके समान बलहीन और पराधीन भी कोई नहीं काहेते कि यह मनुष्य एक माखी भेभी आपको उचाय नहीसकता और जब मच्छरही इसके ऊपर प्रबल होवे तो भी उसके काटने में महा दुःखी होता है और जब इसके पुरुषार्थ और धैर्यकी ओर देखिये तब ऐसा अधीर प्रकटहोता है कि एक पैमे के गिरनेकरके शोक और दुःखको पाना है और जब भूखके समय पर भ्रासभी कमपिने तब मूर्च्छाको प्राप्तहोता है ताने इस मनुष्यमान नीच और ही नहीं वद्विरि जव इस मनुष्यकी सुन्दरताका विचार करिये तब इसका शरीर ऐसा मलिन है कि मानों मलमूत्रके गवन पर त्वन्ना लपेटा है और जब एकदिनविप्रे दो वारान घेवे तब ऐसी दुर्गंध उत्पन्न होती है कि अपने आपही ग्लानि करनेलगता है और और पुरुष भी उममे ग्लानि करनेलगते है सो जिम शरीरकी सुदृग्ताका अभिमान करता है और जो शरीरका डमको आजा है सो निसके मेलको अपने हाथोंकाके नित्यपति आपही पोना है, उमीपर एक वार्ता है कि एक गद्दा पुरुष मार्गविप्रे चला जानाया और उमगार्गविप्रे मद्रु चला विप्रेको हावने से सो विप्रेकी दुर्गंधकरके लोग नासिकाको मून्नेने तब

लोगोंसे उस महापुरुष ने कहा कि हे भाई ! तुमको भी कुछ सुनाईदेत, हे यह विप्रा मुझमे यह कहती हैं कि कलहके दिन में बाजारविषे धी हुई थी और सबलोगों ने मुझको दाम देकर मोललियाथा परन्तु मैंने एकरात्रिपर्यन्त तुम्हारी सङ्गति करी है तिमकरके ऐसी मलिनताको प्राप्तहुई हों इसी हेतुसे जब विचारकरके देखिये तौ मुझको तुममे भागना उचितहै कि तुमको मुझमे, सो इसका तात्पर्य यह है कि यह जीव इस शरीरविषे महादीन और पराधीन है और इसकी अवस्था भी महानीच है ताते परलोकविषे इसकी हीनता और विशेषता प्रकट होगी अर्थात् जब यह पुरुष भले स्वभावोंके पारम साथ निर्मल करलेवे तबही पशु और सिंहों के स्वभावों से मुक्तहोकर देवतों के पदको पाय सकेगा काहे ते कि पशुओं की क्रिया और कर्मों का दोष नहींलगना और यह मनुष्य अशुभकर्मोंकरके नरकोंको भोगताहै ताते इस पुरुष को चाहिये कि जिमप्रकार अपनी विशेषता को पहिचानताहै तैसेही अपनी नीचता और पराधीनताके भी पहिचानराखे काहेसे कि इसप्रकारका पहिचानना भी भगवत्के पहिचानने की कुञ्जी है ताते अपने आपके पहिचाननेका वर्णन करना इतनाही बहूत है ॥

### दूसरा अध्याय ॥

भगवत्के पहिचानने के पर्वण में ॥

ताने जानतू कि भतजनोके वचनोविषे यहवचन प्रसिद्धहै और उन्होंने यही उपदेश कियाहै कि हे भाई ! जबतू अपने आपको पहिचाने तब निस्सन्देह भगवत्को पहिचानेगा इसीपर महागजरा वचनहै कि जिमने अपने आत्मा और मनको पहिचानाहै निमने भगवत् को पहिचानाहै और इसकी युक्ति यहहै कि मनुष्य का दृश्य दर्पण की नाई है ताने जो पुरुष उस विषे बुद्धिकी दृष्टि करके देखनाहै तब उसको भगवत् का दर्शन प्रत्यक्ष भामनाहै बहुमि मयहीनोग जो आपकी देखनेहै और भगवत् को नहीं देखसके सो निगरा कारण यह है कि जिमप्रकार आपको देखना सन्तानो के कहाहै तिस विधिसेतुक्त आपको नहीं देखने ताने जिस दृष्टिकरके हृदयस्थी दर्पण विषे भगवत्को देख सकाहै तिसरा सोतना अवश्यही प्रमाण है पर यहन लोगोंकी बुद्धि इस गेदको समझ नहींसकती ताने जिसप्रकार सबोंको समझना सुगमहै सो निमी प्रकारमे वर्णन करताहू कि प्रथम यह मनुष्य अपने स्वरूपके होनेकरके भगवत् के स्वरूप को

पहिंचाने और अपने गुणों करके भगवत् के गुणों को पहिंचाने वहुँर अपने शरीर और इन्द्रियोंविषे जिसप्रकार इसजीवकी आज्ञावर्त्तती है तैसेही सर्वजगत् विषे भगवत् की आज्ञाको पहिंचाने सो निमका वधान यह है कि जैसे मनुष्य अपने होनेको जानताहै कि केनेकाल आगे मेरा नाम रूप कुद्धभी न था वहुँरि जब यह पुरुष अपनी आदि को समझे तब आदि उत्पत्तिका मार्ग वीर्य्य है सो मलिन जलकी वृद्धी सो उम वृद्धिविषे बुद्धि श्रवण नेत्र शीश हाथ पाव रसना आस्थि नाडी त्वचा कुद्ध न थी और वह केवल श्वेत जलही था ताते यही विचार करे कि शरीरविषे नानाप्रकार के आश्चर्य्य उत्पत्ति हुयेहैं सो इस ने आपही बनाये हैं कि किसीने उसको उत्पन्न किया है और योंभी जानना योग्य है कि अब तो यह मनुष्य बुद्धि और इन्द्रियों करके सयुक्त और पूर्ण है तोभी एक बाल को बनाय नहींसकता और जब इसका आकार वीर्य्यरूप या तब तो महानीच था तब आपको क्योंकर बनायसकता सो जब इस प्रकार यह मनुष्य अपनी उत्पत्तिको पहिंचाने तब अपने उत्पत्ति करनेवाले महाराज को सुगमही पहिंचान लेवे वहुँरि जब अपने आश्चर्य्यरूप अगोंको देखे तब भगवत्की समझको प्रकटही समझनेवें और योंभी जाने कि वह ईश्वर ऐमा समर्थ है कि जिस प्रकार किसी पदार्थको उत्पन्न कियाचाहे सो करसकता है वहुँरि इससे विषेप और क्या वर्णन करिये उसका बल जो ऐमे मलिनजलकी वृद्धमे यह शरीर सुन्दर बनाया है और आश्चर्य्यरूप इन्द्रियोंके साथ शरीरको बनायाहै और जब यह मनुष्य अपने स्वभावों की ओर देखे और इन्द्रियोंके कर्मोंको पहिंचाने तब इस रात्ती को जानलेवे कि एक एकअङ्ग कैसे गुणोंके निमित्त बनाये हैं जैसे हाथ पाव जिह्वा नेत्र दात और इस शरीरके अन्तर के अङ्ग जैसे हृदय नाभि प्राण इत्यादिक और भी जो अमरुप अङ्गहैं सो इनकी उत्पत्ति के गुणों करके अपने उत्पत्ति करनेवाले ईश्वरकी विद्याको समझे कि उनकी विद्या अगार है और सर्व पदार्थों विषे भापूरहै और योंभी जाने कि उमकी ऐसी विद्याने कोई पदार्थ गुप्त नहींहोसकता ताते जब सर्व बुद्धिमान् एतन्नशेकर दीर्घकाल पर्यन्त विचार करके किसी एक अगको और भातिने बनाया चाहें तब जिसप्रकार आगे भगवत् ने बनाया है निमही को मनाजाने और उममे अन्यथा किसी प्रकार न कर्मके जैसे यह दात हैं सो अगले दातोंका जीग तीक्ष्णहै और उम तीक्ष्णना करके

लोगोंसे उस महापुरुष ने कहा कि हे भाई ! तुमको भी कुछ सुनाइ देता है यह विष्णु मुझमें यह कहती है कि कलहके दिन मैं बाजारविषे धरी हुई थी और सबलोगों ने मुझको दाम देकर मोललियाथा परन्तु मैंने एकरात्रिपर्यन्त तुम्हारी सङ्गति करी है तिमकरके ऐसी मलिनताको प्राप्त हुई हों इसी हेतुसे जब विचारकरके देखिये तौ मुझको तुमसे भागना उचित है कि तुमको मुझमें, सो इसका तात्पर्य यह है कि यह जीव इस शरीरविषे महादीन और पराधीन है और इसकी अवस्था भी महानीच है ताते परलोकविषे इसकी हीनता और विषेपता प्रकट होवेगी अर्थात् जब यह पुरुष भले स्वभावोंके पारम साथ निर्मल करलेवे तभी पशु और सिंहों के स्वभावों से मुक्तहोकर देवतों के पदको पाय सकेगा, काहे ते कि पशुओं की क्रिया और कर्मों का दोष नहीं लगता और यह मनुष्य अशुभकर्मोंकरके नरकोंको भोगता है ताते इस पुरुषको चाहिये कि जिसप्रकार अपनी विशेषता को पहिचानता है तैसेही अपनी नीचता और पराधीनताको भी पहिचानराखे काहेसे कि इसप्रकारका पहिचानना भी भगवत्के पहिचानने की कुर्जी है ताते अपने आपके पहिचाननेका वर्णन करना इतनाही बहुत है ॥

### दूसरा अध्याय ॥

भगवत्के पहिचानने के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि भतजनोंके वचनोंविषे यहवचन प्रसिद्ध है और उन्होंने यही उपदेश किया है कि हे भाई ! जब तू अपने आपको पहिचाने तब निस्सन्देह भगवत्को पहिचानेगा इसीप्रकार महाराजका वचन है कि जिसने अपने आत्मा और मनको पहिचाना है तिसने भगवत्को पहिचाना है और इसकी युक्ति यह है कि मनुष्य का हृदय दर्पण की नाई है ताते जो पुरुष इस विषे बुद्धिकी दृष्टि करके देखता है तब उसको भगवत्का दर्शन प्रत्यक्ष भासता है बहुरिःसंघीलोग जो आपको देखते हैं और भगवत्को नहीं देखसके सो तिमका कारण यह है कि जिसप्रकार आपको देखना सन्तजनोंने कहा है तिस विधिसंयुक्त आपको नहीं देखते ताते जिस दृष्टिकरके हृदयरूपी दर्पण विषे भगवत्को देख सका है तिसका सोचनता अवश्यही प्रमाण है परन्तु बहुत लोगोंकी बुद्धि इस गेदको समझ नहींसकती ताते जिसप्रकार सबोंको समझना सुगम है सो तिसी प्रकारसे वर्णन करता हू कि प्रथम यह मनुष्य अपने स्वरूपके होनेकरके भगवत्के स्वरूपको

पहिंचाने और अपने गुणों करके भगवत् के गुणों को पहिंचाने वट्टरि अपने शरीर और इन्द्रियोंविषे जिसप्रकार इसजीवकी आज्ञावर्त्तती है तैसेही सर्वजगत् विषे भगवत् की आज्ञाको पहिंचाने सो निम्नका ब्रह्मण यह है कि जैसे मनुष्य अपने होनेको जानताहै कि केनेकाल आगे मेरा नाम रूप कुछभी न था वट्टरि जन्मे यह पुरुष अपनी आदिको समझे तब आदि उत्पत्तिका मार्ग वीर्य्य है सो मलिन जलकी वृद्धी सो उम वृत्तिविषे बुद्धि श्रवण नेत्र शीश हाथ पांव रमना आस्थि नाडी त्वचा कुछ न थी और वह केवल श्वेत जलही था ताते यही विचार करे कि शरीरविषे नानाप्रकार के आश्चर्य्य उत्पत्ति हुयेहैं सो इस ने आपही बनाये हैं कि किसीने उसको उत्पन्न किया है और योंभी जानना योग्य है कि भव तो यह मनुष्य बुद्धि और इन्द्रियों करके सयुक्त और पूर्ण है तोभी एक बाल को बनाय नहींसकता और जब इसका आकार वीर्य्यरूप या तब तो महानीच था तब आपको क्योंकर बनायसकता सो जब इस प्रकार यह मनुष्य अपनी उत्पत्तिको पहिंचाने तब अपने उत्पत्ति करनेवाले महाराज को सुगमही पहिंचाने लेवे वट्टरि जब अपने आश्चर्य्यरूप भगोंको देखे तब भगवत्की समझको प्रकटही समझलेवे और योंभी जाने कि वह ईश्वर ऐमा समर्थ है कि जिस प्रकार किसी पदार्थको उत्पन्न कियाचाहे सो करसकता है वट्टरि इसमें विशेष और क्या वर्णन करिये उसका बल जो ऐमे मलिन जलकी वृद्धमे यह शरीर सुन्दर बनाया है और आश्चर्य्यरूप इन्द्रियोंके साथ शरीरको बनायाहै और जब यह मनुष्य अपने स्वभावों की ओर देखे और इन्द्रियोंके कर्मोंको पहिंचाने तब इस गार्त्तकी जानलेवे कि एर एरुभ्रह्म कैसे गुणोंके निमित्त बनाये हैं जैसे हाथ पांव जिह्वा नेत्र दाँत और इस शरीरके अन्तर के अङ्ग जैसे हृदय नाभि प्राण इत्यादिक और गीजो अमरुप अङ्गहैं सो इनकी उत्पत्ति के गुणों करके अपने उत्पत्ति करनेवाले ईश्वरकी विद्याको समझे कि उनकी विद्या अगार है और सर्व पदार्थों विषे भरपूरहै और योंभी जाने कि उमकी ऐमी विद्याने कोई पदार्थ गुप्त नहींहोसकता ताने जब सर्व बुद्धिमात् एतन्नशेकर दीर्घकाल पर्यन्त विचार करके किसी एक जगत्को और भातिने बनाया चाहें तब जिसप्रकार आगे भगवत् ने बनाया है निमही को भनाजाने और उनमें अन्वया किसी प्रकार न करके जैसे यह दात हैं सो अगले दातोंका जीज तीक्ष्णहै और उम तीक्ष्णता करके

आहार को खरब खरब करदेता है वह वृद्धि हमरे जो दात हैं उनिके शीघ्र होते हैं उनकरके आहार पीसा जाता है जैसे अती जको चक्की पीसती है और जैसे जम विपे नलीकरके अनाज इकट्ठा होआता है तैमेही रसना प्रासको इकट्ठा करके दातोंके तले करदेती है वह वृद्धि रसनाके चीन्ने एक सरेविर गता है मो उसा करके रसना प्रासको भिगो लेती तब आहारको भिगोवत्ते करके क्रीमलता प्राप्त होती है और उसका भिगोवनाभी मर्यादा अनुसार होता है वने यह ग्रामि मूले नहीं कठ पिरो उतरजाता है सो जब सब सुद्धिमान इकट्ठा ही कर मगवत्त की कारीगरी आशुचर्यरूपी से कुछ और प्रकार बनाना सो तत्र इससे विशेष विज्ञानाये न सकत वते जो कुछ मगवत्ते कियो है उसही विषे मर्याद और सुन्दरताई हो जैसे हाथकी पाच अंगुली हैं सो चार अंगुलियों का स्वभाव शुकुदे और पाचवा जो अंगुठा है तिसका स्वभाव सिद्ध है और इसकी उताई थोड़ी है वह वृद्धि तैसा है कि सप्त अंगुलियों के ऊपर फिस्ता है और सप्तोंके साप्त कार्योंको करता है और अंगुलिओंके हीनेती नन्द है अंगुठेके दोही नन्द है तो अंगुठेको ऐसा हृद जनाया है कि जब चाहता है तब अंगुलियों को समेदकर मूठ कर लेता है और फिर उसमूठको उचारसी देती है और कभी हाथको तलपात्र कर लेता है कभी मोड़ा कर लेता है और नातागका कि ली घासी है सो अंगुठे फरके ही सिद्ध होते हैं और कभी हाथोंको प्रासनकी नई बनाय लेता है तात्पर्याय ही कि हाथोंकी क्रिया सब अंगुठेकरके सिद्ध होती है और जब सभी सयाने मिलकर कितनी और प्रकार विचार करे कि पांचों अंगुलिया समाने होवें अथवा तीव एक और होवें और दो भिन्न होवें अथवा पण्ड अथवा चार होवें अथवा इनतीने नन्दोंसे और माति किया चाहें सो यह जितना विचार करेगे तब सब नीच और कुरूप होनेगा तावे जो मगवत्ते बनाया है सोई पूर्ण है और इस करके प्रसिद्ध हुआ कि उत्पत्ति करेनेवाले महाराजको विद्या इस जीवके शरीर और सर्व पिदीओं विषे भरपूर है और सब जेगतका जाननेवाला है वह वृद्धि जितने इस शरीरके अंग हैं सो सबों विषे ऐसी ही गुण और भेद हैं पर जो कोई इन भेदोंको अधिक समझता है सो मगवत्तकी विद्याको देखकर अधिक ही आश्चर्यवान् होता है ताते यह पुरुष अपने अंगोंकी और देखे वह वृद्धि आहार और वस्त्र और पृथ्वी आदिक जो स्थान हैं सो वितका विचार करे तब वृद्धि आहार की उत्पत्ति का जो सम्बन्ध मेघ और पवन और शीत, उष्ण आदिक के साथ है सो

तिमको पहिचाने और आश्चर्यरूपको जानि है तिन विषे लोहा और तांबा आदिका धातु उपजती है बहुरि लोहा और काष्ठको अनेक भातिके शस्त्र बनाते है और दुना शस्त्रोंकी विद्या जो है और कारीगरी जो है सो यह भी अपार है और जषु कोई पुरुष न विचारकर देखे तब यह सर्वही प्रदोष जगत् विषे चाहिये थे सो भगवत् ने आगे ही अपनी दयाकरके उत्पन्न किये है और सपूर्ण विधिसंयुक्त वत्ता प्रारंभ है और एक एक पदार्थ विषे किन्ते गुण रहे है सो प्रथम ही जषु भगवत् इतको उत्पन्न करता तब यह भी कोई न जानता कि अमुक पदार्थ मुझको चाहिये है और अगिलू ताते भगवत् ने अपनी दया करके पहिचानते और मांगने के पहिले ही सभी पदार्थ दिये है और जीवोंको सर्वेकायोंकी विद्या दी है सो इस करके भगवत् की परमदया पहिचानी जाती है सो वह महाराज सर्व सृष्टि पर महाकृपालु है और इसकी ऐसी दयाको देखकर सर्वसन्त आश्चर्यवन्त हो रहे है इसी परमही पुरुषने भी कहा है कि जैसे माँलकके ऊपर माता पिता की दया होती है तैसे ही सर्वजीवों पर भगवत् इससे भी अधिक दयालु है तब इस जीवको उत्पन्न होने करके उस भगवत्की सत्ता पहिचानी जानी है और नाना प्रकारके अंगोंकी उत्पत्तिकरके उस और अस्तीकी पूर्ण सामर्थ्य पहिचाने सके है बहुरि सर्पे, अंगों विषे जो अनेक भातिके गुण और कार्य रहे है सो इस करके भगवत्की परमदया भास आवती है और जेते पदार्थ अवश्यमेव कार्यमात्र और सुन्दरताईके निमित्त चाहते थे सो सभी इस मनुष्यको दिये है और किसीसे कुछ दुःख नहीं राखा सो ऐसे विचारोंकरके भगवत्की परमदया पहिचानी जाती है ताते अपनी पहिचानना भगवत् के पहिचाननेकी कुञ्जी जो कहा है सो यही है सो

दूसरा सर्ग ॥

भगवत्की निर्लेपता और परमशुद्धताकी पहिचान के बखाने ॥  
 जानते जान तू कि जब तूने अपने स्वरूपकी सत्ता करके भगवत् के स्वरूपको पहिचाना और अपने गुणोंकरके भगवत् के गुणोंको पहिचाना तब भगवत्की शुद्धता और निर्लेपता का अर्थभी पहिचानना चाहिये सो शुद्धताका अर्थ यह है कि जेती स्थूलता मनके सख्य विषे आवती है तिसमे भगवत् निर्लेप है अर्थ यह कि उसका स्वरूप मख्य विषे नहीं आवता बहुरि देशकालमें भी निर्लेप है सो यद्यपि कोई स्थान उसकी सत्तामें भिन्न नहीं परंतो भी उसको



ऐसे तर्ही कहसके कि भगवत् अमुक स्थान विषे रहताहै और इम निर्लेपताका लक्षणभी अपने विषेही पहिचान सकेहै जैसे भेने आगेभी वर्णन कियाहै कि इस जीवका चैतन्य स्वरूप है सो मनके मकल्प विषे उसका स्वरूप कुछ नहीं भासता, तद्वृत्ति मर्यादते रहितहै और अखण्डहै और अरूपहै ताते जो वस्तु मर्याद और स्वरूपते रहित होतीहै उसका स्वरूप संकल्प विषे कदाचित् नहीं आवता काहेते कि जिम प्रदार्थको नेत्रोंकरके देखाहोवे अथवा छसकी नाई और वस्तु देखीहोवे तब उसका स्वरूप सकल करके जानना चाहताहै इमका अर्थ यही है कि अमुकी वस्तु कैसी है और अमुक का स्वरूप क्याहै और अमुकी मर्याद कैसी है और लघु वा दार्ध है सो उस चैतन्य स्वरूप विषे ऐमे सकल्योंका मार्गही नहीं और जब कोई यह प्रश्न करे कि वह कैसाहै सो यह प्रश्नही व्यर्थ है और जब तू इम प्रश्नको हूँ किमांचाहै कि जिम प्रदार्थका स्वरूप कुछ नाहोवे तब उस प्रदार्थको क्योकर सत्य जानिये सो तिमका उत्तर यहहै कि इस वार्ताकी भी तू अपनेही अन्तर विषे देख कि तेरा चैतन्य स्वरूपहै सो मर्याद और प्रमाणते रहितहै और उमकारूप वर्णन विषे तर्ही आवता पर जब तूने आपकोभी इमे प्रकरण निर्लेप जाना तब ऐसे जाना कि भावत ही निर्लेपतातेरी निर्लेपतासे अधिक विशेषहै पर यह लोग इसवार्ताको सुनकर आश्चर्य मानते हैं कि जिन सकलरूप कुछन होवे तब उसको सत्य स्वरूप क्योकर जानिये पान्तु जब विचार करके देखे तब वह आपभी स्वरूपते रहितहै और सत्य स्वरूप है और आपको पहिचान नहींसके तद्वृत्ति जब यह मनुष्य अपने शरीरविषे विचार कर देखे तब सहस्रों पदार्थको स्वरूपते रहित पहिचाने जेमे क्रोध और प्रेम और पीडा और सुख दुःख आदि सो यह सबही अरूपहै ताते जो कोई यह प्रश्न करे कि अरूप वस्तु क्योकर सत्य दोसकी है सो यह प्रश्नही व्यर्थहै काहेते कि जब यह पुरुष राग और सुगन्ध और स्वादके चिह्नको देखा चाहे तब इनके आकार देखने विषे भी असमर्थ होताहै सो इमेना कारण यहहै कि स्वरूपकी दृढ़भी मनके सकल्योंकर होतीहै तौभी प्रथम जिम प्रदार्थको नेत्रों करके देखाहोवे तब उसकी मूर्ति संकल्प विषे दृढ़ होजाती है तो सकल नेत्रों के देखेहुये को दृढ़ताहै पर धवणों विषे जो शब्दहै तिस विषे नेत्रों का देखना पहुँच नहींसका और शब्दका रूप चिह्नभी कुछ नहीं पाइसका ताते जिस प्रकार शब्दका स्वरूप दृष्टिने विलक्षण

है तैसेही रूपरग का देखना श्रवणों ने भी, विवक्षण है बहुरि इमी प्रकार सर्व इन्द्रियोंके विषय भिन्न भिन्न हैं पर जिम पदार्थ का ज्ञान बुद्धि करवेही होता है तिसको इन्द्रिय अगोचर कहते हैं उसमें किसी इन्द्रियका गम्य और विषय नहीं और रूपरगकी प्राप्ति इन्द्रियोंके देश विषय विषे पाई जाती है पर इस भेदको पुरुषार्थ और युक्ति करके समझे सके हैं इसका विस्तार अपर ग्रन्थों में है इम ग्रन्थमें त्रि तना वर्णन हुआ सो यही बहूत है सो इसका तात्पर्य यह है कि यह मनुष्य ज्ञानी अरूपता और निराकारता करके भगवत्की अरूपता और निराकारता को पहिचाने और इम प्रकार ज्ञाने कि इम जीवका स्वरूप जिस प्रकार रारंग ते रहित है और शरीर जो रूपरग सहित है तिमका राजा है और शरीर इसका देश है तैसेही सर्वदृष्टि का ईश्वर जो भगवत् है सो अरूप और निराकार है और जेता कुर्ब जगत्स्थान और आकाशान् है सो महाराजकी आज्ञा विषे वर्तता है बहुरि भगवत्को जो स्थानसे निर्लेप कहा है सो तैसेही इस जीवको भी हाथ पाय शीरा और किसी और अङ्ग विषे पाइ नहीं सका काहेने कि यह इन्द्रिय और मव अग खण्डाकार है और चैतन्यरूप जो जीव है सो अखण्ड है सो खण्डाकार विषे अखण्ड वस्तुका स्थित होना अमभव है इस करके कि जब खण्डाकार रूप पदार्थ विषे अखण्ड वस्तु स्थित होवे तब वह भी खण्ड खण्ड होजाये ताने यह बड़ा आश्चर्य है कि यद्यपि जीवकी सत्ता से कोई अग भिन्न नहीं सो सर्व अग जीवकी सत्ता और आज्ञा में है सत्ताविना कोई अग नहीं पर तौ भी उमको किसी एक स्थान विषे कह नहीं सके और शरीर के सर्व अग जीवकी आज्ञाके अधीन है इसी प्रकार वह महाराज सर्व सृष्टि का ईश्वर है और निर्लेप है और सर्व जगत् उसकी सत्ता में है और उसके अधीन है सो भगवत् को धनी और आकाश और पाताल विषे किसी एक स्थानमें कहा नहीं जाना बहुरि भगवत्की जो निर्लेपता और शुद्धता है तिमका सम्पूर्ण भेद नहीं समझा जासका है जब जीवके यथार्थ रूपका वर्णन करिये और धर्मशास्त्र विषे इम वचन को प्रामिद्ध कहने से वर्जित किया है जेमे महाराजने भी कहा है कि इम मनुष्यको मैंने अपने रूपके अनुसार उत्पन्न किया है ॥

-
   
 - शीघ्र तिस मन्त्रादि गीहृष्ट ईष्टीसरोसर्गोत्त । तिसस्य तिसस्य तिसस्य तिसस्य
   
 तिसस्य तिसस्य तिसस्य तिसस्य तिसस्य तिसस्य तिसस्य तिसस्य तिसस्य तिसस्य
   
 गोधततिजान्ति तू कि मगयत्का स्वरूपिओर उंसके गुण और मरुपरुपताको तैते
   
 समप्ता औरदेशकालसे निलेपवतिर्गकारतैते जाना सों इनसन्तोभेदोंका पहि
   
 चनिता अपनेपहिचाननेकरके सिद्ध हुआ तब भगवत्की वादशाहीको पहि
   
 चाननेका प्रसगभी तुम्हको श्रवण किमात्राहिये कि वहमदारज अपनी वाद
   
 शाही विषीक्या क्रमवर्तताहै जो प्रसवदेवताको किसप्रकार आज्ञा विषे प्रलातीहै
   
 और देवता उसकी आज्ञा क्योंकर मानने और चालतेहैं वहु शिजगत्कारके कार्य
   
 को क्योंकर सिद्ध कराता है औरी आकाशलोक से उसकी आज्ञा समिलोक
   
 विषे किसप्रकार अती है औरताम्रमयहस्तको क्योंकर फिरोता है और भूमि
   
 लीकके जीवोंको क्रमिय किसप्रकार देवताके अधीन राखेहैं और सर्वजीवोंकी
   
 प्रतिपाले आकाशादो कर्षों कर होती है सो इम विद्याको मगवत्के करवृत्तीका
   
 पहिचानता कहतेहैं और इसके बखान करना वहु विस्तार से होता है पर इस
   
 विद्याके पहिचाननेकी कुजी अपने अपने पहिचानने करके प्राप्त होती है तते
   
 जवत्क त इम भेदोंकी मगपहिचानस केनेके में अपने शरीरविषे क्योंकर वाद
   
 शाही करताहू तब कर्षवर्जगत्कारा जा जो महीराज भगवत्के तिसकी वाद
   
 शाहीके भेदको क्योंकर पहिचानेगाइसी कार्यसे प्रथम ही अपने एककर्मको
   
 पहिचाना कि जैसे तैरे चित्तविषे भगवत्का नाम लिखनेकी इच्छा होये तब प्रथम
   
 तब तस रूप हृदय विषे ध्यान फुरताहै वहु रिस उसको प्रवेशशी गतिषे जया महुं
   
 प्रता है पर जिसको हृदयस्थान कहा है सो प्राणकी स्थिति होनेका ठोर है और
   
 सर्वइन्द्रियोंका अवधार इसही कर्षो सिद्ध होता है तब वैद्यक विद्या विषे प्रा
   
 णोंके स्थानको चेतनकहेतेहैं पर मेरे मतविषे प्राणोंका ठौरा जो हृदयस्थानहै
   
 सो ज्ञान और स्थान और ताशयन्तहै वहु रिस वहु हृदय जो चेतन्यरूप है और
   
 ज्ञानका स्थानहै सो इसी प्राणवायुतै भिन्न है और अविनाशी है पर वहु महुं
   
 हृदय स्थानमे शीशविषे पहुँचता है तब उमताप्रकी मूर्च्छि महुं पचिये हृदयोजान
   
 ती है तिससे पीछे उसकी प्रेरणा कायों और सर्वतद्दिग्दर्श्यात्पुष्टोविषे ज्ञान
   
 पसरती है तिसकरके पुष्टे और उनकी प्रेरणासे अगुली हलती है और अगुली
   
 लेसनीको हिलाती है तब कायज पर अक्षर प्रकट होतेहैं और नामकी मूर्च्छि

वनजाती है पर जैमी मूर्ति सङ्कल विपे फुरीयी सो नेत्रादिक इन्द्रियों के सम्बन्ध से पत्रके ऊपर प्रकट होती है सो जैसे तुम्हको भी प्रथम महाराजके नाम लिखने की इच्छा प्रकट हुईयी तैसेही सर्वजगत्की उत्पत्ति का कारण भगवत्की इच्छा है और जैमे उस इच्छाकी प्रेरणा तरे हृदय स्थान विपे फुरीयी तैसेही प्रथम भगवत्की इच्छा भी ईश्वरविपे आन फुरती है और जैसे तेरी इच्छा हृदय स्थानमे गीर्ण विपे पहुँचती थी तैसेही भगवत्की इच्छा ईश्वर से और देवतोंको पहुँचती है और जैसे तेरी इच्छाकी मूर्ति प्रथमे सङ्कल्प विपे दृढ़ हुईयी और उसके अनुसार अक्षर प्रकट हुयेथे तैसेही जो कुछ इम जगत् विपे प्रकट हुआ है सो प्रथम तिनकी मूर्ति महत्त्वं विपे प्रकट होती है और जैसे शीश के बल करके काधे और भुजा और अंगुलियाँ हलती हैं तैसेही देवतों की सत्ता नक्षत्र और तारा गण्डलको हलवाती है और जैसे भुजा और अंगुलियों के बलकरके कलमका हिलना होता है तैसेही नक्षत्रों करके पाँच भूतके स्वभाव भिन्न भिन्न प्रकट होते हैं और जैमे कलम करके स्याहीका पसना और अक्षर प्रकट होते हैं तैसेही वाई पित्त और कफ आदिक जो भूतों के स्वभाव हैं सो निन्दों करके नानाप्रकार के शरीर उत्पन्न होते हैं और जैमे कलम का कार्य येही था कि उस करके आदि सङ्कल्प अनुसार नागकी मूर्ति कागजपर प्रकट हुई तैसेही पचतरों की कर्तृति येही है कि देवतोंकी सहायता करके इनके विपे नानाप्रकारके शरीर और वनस्पति उत्पन्न होती हैं सो जैसे शीश में सङ्कल्प विपे प्रथम नामकी मूर्ति दृढ़ हो कर फिर तिसके अनुसार माँड़ी और अंगुली आदिक कोरे कागजपर प्रकट होती हैं तैसेही भगवत् के आदि सकेन विपे सत्त्व रचना प्रथमही हो चुकी है और तिमहीके अनुसार सर्व जगत् की उत्पत्ति और उममें सर्व जीवोंके समस्त व्यवहार समय पायकर होत रहने हैं वदुरि जैमे तेरे सर्व कार्योंकी इच्छा हृदय स्थान विपे फुरती है और पीछे उसका प्रवेश सर्व अहों विपे होना है तैसेही सर्व जगत् का कारण ईश्वर है और पीछे देवतों को वन ईश्वरसे पहुँचना है और जैमे तेरे चैतन्यताका स्थान हृदय कहा जाना है और उम करके सर्व किया मिद्ध होना है तैसेही भगवत्की इच्छाका स्थान ईश्वर है और ईश्वरकी मत्ताकरके सर्व जगत् का व्यवहार मिद्ध होना है सो इस वात्ता विपे कुछ भेद नहीं पर जिन्दोंके बुद्धि रूपी नेत्र सुनेह तिनको प्रकट भामती है और तिस वचन के अर्थको भी बही

समुक्तता है जैसे भगवत् ने कहा है कि मैंने मनुष्य को अपनी सूरत के अनुसार उत्पन्न किया है ताते निस्सदेह जानू कि राजाओं के भेदको कोई राजाही जानता है और अन्यथा कोई नहीं जानसका इसी कारण से भगवत् ने तुम्हको भी राज्य दिया है कि अपने शरीररूपी देशके राज्यकरके तू भगवत् के राज्यको पहिचाने ताते तू महाराज का परमउपकार विचार कि जो तुम्हको प्रथम उत्पन्न किया है वहूरि अपने राज्यकी नाई तुम्हको भी कुछकुछ राज्य दिया है और हृदय स्थान को तेरा वैकुण्ठ बनाया है और शीशको देवलोको बनाया है और तेरे चित्तको महत्त्व बनाया है वहूरि नेत्र और श्रवणादिक जो सर्व इन्द्रिया हैं सो तिनको देवतारूप स्थित किया है और तेरे शीशको आकाशकी नाई इन्द्रियों का स्थान बनाया है वहूरि तुम्हको रूप रङ्गसे रहित उत्पन्न किया है और जेता कुछ रूप रङ्गसाहित शरीर है सो तिसपर तुम्हको राजा बनाया है वहूरि इसप्रकार तुम्हको आज्ञा करी है कि तू अपने राज्यसे एक पलभी अचेत न हो कहेते कि जब तू अपने आपसे अचेत होवेगा तब मुम्हको भी न पहिचानेगा ताते तू प्रथम आपको पहिचान और यह जो कुछ वर्णनविषे आया है सो जीव और भगवत् के राज्यको सूचनमात्र करके कहा है वहूरि जब जीवके सर्व अङ्गों और सर्व स्त्रभावोंका वर्णन किया है सो वह भी बहुत त्रिस्तार होता है तैसेही इस ब्रह्माण्ड और देवतोंका जो परम्परासम्बन्ध है और उनके जो स्थान और पुरिया हैं सो यह विद्यामी अपार है और तात्पर्य यह है कि जो कोई बुद्धिमान होवे सो इस भेदको समझकर प्रतीतिकरे कि सर्वमृष्टिका ईश्वर भगवत् पर जिसका हृदय मलिन होता है सो इतनाभी नहीं समझसका और ऐसा अचेत होता है कि भगवत् के स्वरूपकी सुन्दरता और सामर्थ्यके ऊपर प्रतीति नहीं करता ताते इन जीवोंकी बुद्धि तो ऐसी मलिन है कि जेता कुछ वर्णन मैंने किया है सो तिसको भी नहीं समझने ताते भगवत् स्वरूपको त्रयोकर पहिचाने ॥

चौथा सर्ग ॥

वैष्णव और ज्योतिषके मतके स्पष्टनके वर्णन में ॥

ताते जानू कि ये वैद्य और ज्योतिषी ऐसे मतिहीन हैं कि सर्वाजगत्के कार्योंको वाई पिछ कफ और नक्षत्रोंके अधीन कहते हैं सो इनका दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी लिखेजाते हुये कागजको कोई मकोड़ा देवे कि फालाहुँ आ

जाना है और उसपर अक्षर बर्नना है तब जाने कि क्योंकर काग्र ज्ञ स्याह होता  
 जाता है फिर कलमको देखे तब अपने विचविषे प्रसन्नहोवे कि मैंने इस भेदको  
 भलीप्रकार समझा है कि इन अक्षरोंको कलमही आप बनाता है सो यह दृष्टान्त  
 वैद्यक मतपर प्रसिद्ध है कि उन्होंने सवमे नीचे पदको अंगीकार किया है काहेने  
 कि वह सर्वकोष्यों को वाई पित्त कफके अग्नि समझने हैं वहरि कोई दूमरा  
 मकोडा अर्थात् चींटी उसके पास आवे और उम पूर्वकी चिउँटी से इमकी दृष्टि  
 अधिक विशालहोवे तब यह चिउँटी उसको कहै कि तू सूची है काहेते कि इस  
 कलमको चलावनेवाली अंगुलियां हैं वहरि इस अपनी समझपर प्रसन्नहोकर  
 कहे कि मैंने तो इस चार्त्ता को मनीप्रकार जाना है सो यह दृष्टान्त ज्योतिषियों  
 का है कि वैद्यों से उनको दृष्टि अधिक है काहेते कि वे तत्त्वों के स्वभावों को  
 नक्षत्रों के अग्नि जानते हैं परं यह नहीं जानते कि नक्षत्र भी और देवतों के  
 अग्नि हैं ताते इससे परे जो पदवीथी सो तिसको यहगी नहीं जानतेभये वहरि  
 जैसे ज्योतिषी और वैद्यों की समझ विषे भेद है परस्पर उनका विवाद होता है  
 तैभेही आत्मा और अनात्माके समझनेवालों विषे भी भेद बढाहोता है सो बहुत  
 पुरुष तो ऐसे हैं कि वे शरीर और प्राणादिकोंको चैनन्य मानने हैं ताते यह तो  
 बहुत नीचीपदवी विषे गिरे हैं और ऊँचीपदवी जो चेतन्यताका मार्ग है सो ति-  
 समे उनको आवरण हुआ है ताते उनकी बुद्धि शरीर देशविषेही दृढ़ हुई है वहरि  
 एक ऐसे पुरुष हैं कि उन्होंने शरीरसे जीवको भिन्न जाना है और वे चैनन्यता के  
 प्रकाश विषे स्थित हुये हैं इमीप्रकार और भी केने पद हैं जो परे से परे चले जाते  
 हैं परं किसीका प्रकाश तारावत् है किनने चन्द्रमाके समान है किनने सूर्य की  
 कोई प्रकाशमान है सो इन पदों को वही पुरुष प्राप्तहोते हैं जिनकी बुद्धि चिदा-  
 काण विषे गमन करती है इसीपर खलिलनामी सनेने भी कहा है कि जिम महा-  
 राजने पृथ्वी और आकाशको उत्पन्न किया है सो मैं तिमकी और अपना मुन  
 लाया हूँ और महापुरुषने भी कहा है कि भगवत् और जीव विषे सत्तरहजार पादे  
 हैं सो दूर जो होवे तो प्रकाशरूप होवे अर्थात् महाराजके सत्तरहजार पादे अ-  
 भवा केना प्रकाशरूप है सो जो महाराज उन पादोंको समस्त उदादेवे तो नि-  
 श्चय करके उनका प्रकाण ऐसा है कि जिनकी दृष्टि उन रापड़े निनके मुनकी  
 अवश्यमेव गीब्रही भ्रम करदेवे सो इनवचनोंका तात्पर्य यह है कि वैद्य हविषा

वाले ने भी सत्य कहा है, काहेते कि जो वाई पिच कफ विषे भगवत्की सत्ता न  
 हाती तो वैद्य विद्या झूठही जाती सो नहीं, परन्तु सत्तना उनका इस प्रकार है कि  
 वे महानीचे पदको उत्तमपद मानते हैं ताते इतकी दृष्टि महामन्द है अर्थ यह कि  
 जैसे कोई मूल किसी टहलुवेको राजाकरके जाने और सो न जाने कि यह टह  
 लुवा तो पनहीं एकड़नेवाला है बहुरि एकताकी दृष्टिकरके देखिये तो ज्योतिषि  
 योंने जो जगत्को नक्षत्रोंके अधीन कहा है सो सद्भी सत्य कहा है काहेसे कि  
 जब नक्षत्रोंविषे भगवत्की सत्ता कुछ न होती तो मात्रि त्र दिन पूरक समान होते  
 क्योंकि सूर्यभी एक दीधतारा है जो सूर्यकरके ही जगत्विषे प्रकाश और उष्ण  
 तादाती है जब सो न होता तब भीष्म और शरद्वृत्त समाप्त होती काहेते कि जब  
 सूर्य आकाशविषे पृथ्वीके निकट आवते है तब भीष्मवृत्त होती है अर्थात् पृथ्वी से  
 दूरजाते है तब शरद्वृत्त होती है ताते जिस भगवत्ने सूर्यको प्रकाशमान और  
 उष्णतामहित बनाया है तिसही ने शुक्रको भी शीतल और सोखनेवाला बना  
 या है बहुरि एकतारको उष्ण और सज्जता सहित बनाया है सो इस प्रकार समं-  
 भते करके धर्म विषे खण्डता कुल नहीं होती परन्तु ज्योतिषियोंको इस कारण  
 भूलेहुये कहा है कि उन्होंने जगत्को नक्षत्रोंहीके अधीन जाना है और नक्षत्रों  
 की पराधीनता नहीं जानते कि सूर्य तन्द्र और सब तारे भगवत्की श्याङ्गाके  
 अधीन हैं ताते इतको चलावनेवाली भगवत्की शक्ति है और यह सब आप  
 समर्थ नहीं जैसे हाथ और भुजाके विषे कातोंकी शक्ति होती है पर कातों विषे  
 भी शीशका बल होता है तैमे यद्यपि तारामण्डल और नक्षत्र भी क्षरणादासी  
 एकड़नेहारे टहलुवेकी नाई नहीं पड़ती भी तब किंकर हैं पर तत्त्वोंको स्वभाव  
 जो वाई पिच कफ है सो महाअधमते अधम है और महाराजके हाथ विषे कलम  
 की नाई है और अधीन है पर बहुरिलोगों विषे इस करके विवाद होता है क्योंकि  
 एक एक मात्रकरके वैद्यक और ज्योतिषनाले भी सत्य कहते हैं पर भली प्रकार  
 यथार्थ भेदको नहीं समझते और जानते हैं कि हमने ज्योतिषोंके भेदपाया है सो  
 इनका दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी जगड़करके एक अन्ने रहते थे सो उन्होंने  
 सुना कि हमारे नगर विषे हाथी आया है तब हाथीके देखनेको सब बहुरे होकर  
 गये पर उन्होंने इस प्रकार न जाना कि हाथीका देवता नेत्रोंसे होता है और  
 हाथी करके नहीं पहिचाना जाता बहुरि तदा जायकर हाथी पर हाथ फेरने लगे

तब किसीका हाथ पावोंपर पड़ा और किसीका दातोंपर किसीका कानपर किसीका सूँड़पर हाथ पहुँचा इसी प्रकार हाथी को देखकर लौटआये और परस्पर पूछनेलगे कि हे भाई, वह हाथी कैसा था, सो जिसने पावको पकड़ाया वह कहने लगा कि हाथी बड़े खभाकी नाई है और जिसने कानको पकड़ाया उसने हाथीको पखेकी नाई बताया और जिसका हाथ दातोंपर पहुँचाया वह सूँड़की नाई बर्णन करने लगा और जिसके हाथ सूँड़ आई थी वह अंगरखाकी आस्तीन की नाई कहने लगा ऐसे कहकर परस्पर भगइने खरो पर विचार करके देखिये तो एक भावकरके उत्तरका कहता सत्य है और एक भावसे मिथ्या है काहेते कि उन्होंने एक एक भगको पहिँचानाथा हाथीको सपूर्ण नहीं देखा तैसेही वैद्यके और ज्योतिषवालों की दृष्टिभी भगवत्के एक दहलुवेपर पड़ी और उस दहलुवे के पेशवर्षको देखकर आश्चर्यवान् हुये ताते उसीको राजाजाना पर जिसको भगवत्ने सीधामार्ग दिखाया वह सबकी नीचता और पराश्रीतताको पहिँचानता है और योंभी जानता है कि जो कोई पराधीन होता है वह राजा नहीं कहलाता ताते इनके ऊपर ईश्वर और है ॥

पाचवाँ सर्ग ॥

ताते जान तू कि यह ब्रह्माण्ड राजाके मन्दिरकी नाई है सो तिसधिपे वैकुण्ठपुरी एक घर है कि वहाँ प्रधानके रहनेका स्थान है अर्थात् विष्णुका भवन है बहुरि उस भवनके चारों ओर एक बारहदरी है सो तिसको बारहदरारि कहते है और उसके एकएक दरवाजोंपर उसप्रधानके कामदार बैठेहैं सो मीनों द्वादश राशिधिपे द्वादश देवताहैं बहुरि उस बारहदरीके बाहर नवनकीव फिँगते है सो नैय गहहें और प्रधानकी आज्ञाजो कामदारों को पहुँचती है तिमकी यह सुननेसे बहुरि नकीव सवारों के नीचे पाच प्यादे है सो वे पाच तत्त्व है सो इनकी दृष्टि सर्वदा सवारकी ओर रहती है कि देबिये उम दरवार मे कैमी आज्ञा आती है बहुरि उन प्यादोंके हाथमें पाच जेवड़ी है सो वे भाई पित्त कफादि रु स्वभाव है तब उसके केते गनुषों को भगवत्की आज्ञाकरके ऊर्ध्वगति को खंचते है और केतोंको नीचे गिरायदेते है बहुरि किसी को सुवस्त्री गिरोपाव देते है और किसीको दरइदेते है और वैकुण्ठरूपी भवनधिपे जो प्रधान कहे है सो विष्णुदेव है



और परब्रह्मरूपी महाराज के अति निकटवर्ती हैं और सबही उनके अधीन हैं सो जगत्त्रिपे जो किसी मनुष्यकी अवस्था उलटजाती है तब संसारसे उसकी रुचि दूर होजाती है तब उसके ऊपर शोक ऐसा प्रबल होजाता है कि संसारके भोगोंको विरस जानता है और परलोकके भयंकरके चिन्तित रहता है सो उसको जब कोई वैद्य देखता है तब कहता है कि इसको वाईका रोग है और इसका कारण शीतऋतु की सोखता है जबलग वसन्तऋतु में आवे तबलग इसका उपचार नहीं होसका और जब उसको कोई ज्योतिषी देखता है तब वह इस प्रकार कहता है कि इस पुरुषको वाईका रोग बृहस्पतिके कोप करके हुआ है किहसे कि बृहस्पति और मंगलका विरुद्ध हुआ है सो जबलग इनका विरुद्ध दूर न होवे तबलग इस पुरुषका रोग दूर न होवेगा सो एक भाविकरके जो देखिये तो इन्हीं ने भी सत्य कहा है पर तारपर्य्य यह है कि भगवत् जिस जीवकी मेलोई प्राप्त किया चाहती है तब बृहस्पति और मंगल जो दो न होवे हैं निनको शीघ्र ही उसकी ओर भेजता है और उनकी आज्ञा करके पुनरूपी प्रादा सोखनीरूपी जेवही उसपर डालता है तिसकरिके उसका चित्त भायिके भोगोंसे विरस होजाता है और शोकरूपी चावुक लगाकर श्रद्धरूपी बाग उसकी खेंचते हैं और भगवत्के दरवारकी ओर उसका मुख लो आवते हैं पर इस भेदकी वृष् वैद्यक और ज्योति-रशास्त्रविषे नहीं पाईजाती ताते यह विद्या सन्तजनों के अस्तुप्रवरूपी समुद्रविषे होती है सो सन्तजनों की त्रिया सत्ते दिशा और सबकायों विषे भरपूर है इसी कारणसे जे सन्तजन ग्रही और जज्ञेत्नों के फिरनेको भी जानते हैं और यो भी जानते हैं कि भगवत्की आज्ञा पायकर किसीको ऊपरको खेंचते हैं और किसीको नीचे गिरायदेते हैं सो यद्यपि वैद्य और ज्योतिषीका कहना भी सत्य है परंतो भी महाराज और उसके श्रेष्ठ प्रधान और सेनापतियोंको नहीं जानते काहेते कि ब्रह्म महाराज दुःख और रोग और आपदा और दिहकरके जीवोंको अपनी ओर खेंचता है और महाराजका वचन है कि जब सांत्त्रिकी मनुष्योंको कुछ रोग होता है तब मैं उनको पीड़ा नहीं देता परन्तु उसका खकरके मैं अपने प्रियतमीको अपनी ओर खेंचता हूँ ताते यह दुःखमी मेरी जिवही है पर जेता कुछ प्रथम खलान किता है सो इस जीवके स्वरूपका ग्रहचिन्ता कहा है और इस क्रिके रोगवत्के स्वरूपकी पहिचान भी समिद्ध करके कही है और तत्र यह जो अर्पण किया है सो

भगवत् के राज्य और उसकी कर्तव्योंकी पहिचान कही है सो यह पहिचानभी अपने राज्य और कर्तव्योंकी पहिचानने करके प्राप्त होती है इसी कारणसे मैंने अपने पहिचानने का आशय प्रथम कहा है ॥

**छठा सर्ग ॥**

राजानना चाहिये कि भगवत्की स्तुति चार चरणों विषे कही है सो चार चरण ये हैं प्रथम भगवत् सबसे निर्लेप है और शुद्ध है १ और दूसरा यह कि महाराज का सर्व प्रकार धन्यवाद है और वह सर्व जगत्का ईश्वर है २ तीसरे भगवत् एक है और उसकी नाई दूसरा कोई नहीं ३ चौथा यह कि वह महाराज सबसे बड़ा है और परेते परे है ४ सो यद्यपि ये चार चरण कहने विषे संक्षेपकरके कहे हैं पर तो भी भगवत् की सम्पूर्णताई को लम्बावनेवाले हैं ताते जब तैने अपनी निर्लेपता करके महाराज की निर्लेपता को समझा तब निर्लेपता के अर्थकी पहिचान तुम्हको प्राप्त हुई १ बहुरि जब अपने राज्य करके ईश्वरके राज्यको तैने पहिचाना कि जेते कुछ देवता और काल कर्म स्वभावमहित सम्बन्ध हैं सो ईश्वर के अधीन हैं तब ऐसे जानने करके धन्यवादका अर्थ तैने समझा काहेसे कि जब कोई और सुख देनेहारा नहीं और आप करके कोई सगर्थ भी नहीं तब सर्व प्रकार के जितने सुख हैं तितने केवल भगवत्की के उपकार हैं और उस ही का धन्यवाद किया जाहते हैं २ बहुरि जब तैने इसप्रकार जाना कि भगवत् विना और कोई समर्थ नहीं और सबही उसके अधीन है तब तीसरे चरणका अर्थ तुम्हको प्रकट हुआ ३ बहुरि चौथे चरणका भाव यह है कि भगवत् सबसे बड़ा है सो तिसका अर्थ इसप्रकार जानना चाहिये कि जैसे तू मी जानता है कि तैने भगवत्को पहिचाना है सो तिसको तैने पहिचानाही कुछ नहीं काहेसे कि भगवत्की बड़ाईका अर्थ यह है कि यह जीव सर्व अनुमान करके उम महाराज को पहिचान नहीं सके ताने बड़ाईका अर्थ यह नहीं कि भगवत् अमुक पदार्थ से बड़ा है काहेसे कि उसके निकट तो और कोई पदार्थ ही नहीं कि जिन पदार्थसे भगवत्की बड़ा कहिये इस करके कि जेती कुछ सृष्टि भासती है सो भगवत्के प्रकारका प्रतिविम्ब है और उसकी मत्ता करके स्थिर है तो बड़ा किससे होवे जैसे सूर्यकी जो धूप है सो जब धूप सूर्यसे कुछ भिन्न होवे तब उससे सूर्य को

बड़ा कहिये इस कारणसे भगवत् की बड़ाई का अर्थ यही है कि यह मनुष्य अपनी बुद्धि और अनुमान करके महाराज की नहीं जानि मक्का और उसकी ज्वा मिले पता और शुद्धता है सो तिसको मनुष्य की मिले पता की नाई जानिना मही अयोग्य है काहेसे कि जितनी यह सृष्टि भासती है सो सब से भगवत् का स्वरूप विलक्षण है और उसको किसी की नाई नहीं कहा जाता तब यह मनुष्य क्या है कि जो इसको दृष्टान्त भगवत् के ऊपर सहमवहि के बहुरिपैसी बुद्धिसे भगवान् स्थापित जो उस महाराज महापुत्रा और राज्यको इस मनुष्य के ऐश्वर्य राज्य के समाने जानि अथवा विद्या और शक्ति आदिक जो महाराज के स्वभाव हैं तिनको मनुष्यकी विद्या और सामर्थ्य की नाई विचारि सो यह महाअयोग्य है यद्यपि इस प्रकार आगे बर्णन किया गया है तो भी महाराज का स्वरूप खलावने के निमित्त दृष्टान्त मात्रा कहा है कि उस करके इस मनुष्यको भी कुछ ब्रह्म प्राप्त होके जैसे कोई बालक कीसी बुद्धि मार्ग से पूछे कि राज्य करने में कैसा स्वाड होता है तब उस बालकको कहा जायगा कि जैसे तुम्हको गेदा दण्डा खेलने में स्वाड आवता है तैसे ही राजाओं को राज्य में स्वाड मिलती है सो उस बालकको इस निमित्त पिये कहा है कि वह गेदा दण्डा से इतर सुखको नहीं जानती और जिस सुखको उसने देखा ही न होवे तिसको अनुमान करके क्योकि महिचाने ताते उसको गेदा दण्डाके दृष्टान्त करके समझ में आवेगा पर यह बात प्रसिद्ध है कि गेदा दण्डाका सुख राज्य के सुखसे परस्पर कुछ सम्बन्ध ही नहीं रखता पर सुख शब्दा दोनो पर समाप्ति आवना है ताते नामसद्धाकी एकता करके बालक को समझावना सुगम होता है तैसे ही मनुष्यकी शुद्धता और मिले पता का जो वीचन किया है सो इस जीवकी मुख्य बुद्धि समझावने के निमित्त कही है ताते यह वार्ता निस्सन्देह है कि भगवत् की पूर्णताको भगवत् विना और कोई नहीं जान सका इसी कारणसे भगवत् की पहिचान का विस्तार अमित है जो इस ग्रन्थ में कहा नहीं जाता ताते इस जीवको श्रद्धा और प्रीति उत्पन्न होने के निमित्त इतना ही धुतुत है और यह मनुष्य भी इतने ही समझने का अधिकारी है कि इस जीवकी मिलाई भगवत् की पहिचान और उसकी सेवा और भजन विषे होती है इस करके कि जब इस मनुष्यकी शरीर मृत्युको प्राप्त होवे तब त्वादिभ्यो कि इसका ध्यान महाराजकी ओर होवे काहेसे कि इस जीवके स्थित होने का स्थान बोदी

हैं और इसको अवश्यमें तद्दोही पहुँचाना है तब जब आगेही इसकी प्रीति उग  
 के साथ होवे तब जीवकी भूलोई जानिये ईमकरके कि जितनी प्रीति किसीकी  
 अधिक होती है तितनाही उसे प्रियतम के दर्शन विषे उसको आनन्द भी अ-  
 धिक होता है और जबलग इस मनुष्यको भगवत्की पहिचान और भजनकी  
 अपिकृता न होवे तबलग इसके हृदयविषे भगवत्की प्रीति दृढ नहीं होती सो  
 यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि जिस पुरुषके साथ किसीकी प्रीति अधिक होती है उस  
 का स्मरणभी बहुतकरता है और जिसका स्मरण करता है उसके साथ प्रीति भी  
 दृढ होजाती है इसीपर एकसन्तदाऊँदको आकाशवाणी हुई थी कि हे दाऊँद !  
 तेरे सर्वकारोंकी मिद्ध करनेवाला मैंही हूँ और तेरा प्रयोजनभी मेरेही साथ है  
 ताते एक क्षणभी मेरे भजनसे अचेत न हो पर ईम मनुष्यके हृदयविषे भजन  
 तबही दृढ होता है जब प्रथम सत्कर्मोविषे वर्तता है और सत्कर्मों का अवकाश  
 उपभावना है जब सर्वभोगवामनाका त्याग करता है तब पापकर्मोंका त्याग कर-  
 ना हृदयकी मुक्ति का कारण है और सत्कर्मोंका ग्रहण करना भजनकी दृढता  
 का कारण है और ये दोनों भगवत्की प्रीति के उपजावनेवाले हैं और उत्तम  
 भागोंकी प्रीति भगवत्की प्रीति करके मिद्ध होना है सो यद्यपि यह जीव शरीरधा-  
 री जो है सो सर्व भोगोंसे रहित नहीं होसकता और खानपान वस्त्र आदिक शरीर  
 के कार्य निमित्त प्रमाण भी करके हैं तबे चाहिये कि विचारकी मर्यादविषे स्थित  
 होवे तब कारणीय कर्मों और भोगवामनाओं भिन्नकर्म पर विचारकी मर्यादभी दो  
 प्रकार करके होती है सो एक यह है कि यह मनुष्य अपनी बुद्धि और अनुभव  
 की दृष्टिके साथ विचारकी मर्यादको देखकर शरीरकारके अथवा किसी महा-  
 पुरुषकी सगति करके विचारकी मर्याद विषे वर्त्त पर अपनी बुद्धि और पुरुषार्थ  
 के आश्रित मर्याद विषे रहना कठिन है तबसे कि इसजीवके ऊपर भोगवामना  
 ऐसी प्रबल है कि इसकी बुद्धिको अन्वकरके सर्वदा चमार्थ मार्गको दुगय रखती  
 है और अपने मनोग्यों के अनुसार भोगोंको पुण्यरूप करके देखावती है तबे  
 चाहिये कि यह मनुष्य स्वामीन होकर कभी न वर्त्त और अपना गगिर किसी  
 महापुरुषको समर्पण करे पर मन्त्री मनुष्यभी इन योग्य नहीं होते कि उनको  
 अपनी अर्थ दीजिये तब जो ज्ञानवाय मन्त्रविषे उसकी आज्ञाविषे वर्त्त और  
 आज्ञाकी मर्याद मे उल्लंघित न होवे तब स्वागपिकही भनाइको प्राप्तदाना है

सो सेवक होनेका अर्थ यही है और जो मनुष्य अपनी वासना करके सतजनों की मर्यादसे उल्लिखित होता है तब उसकी बुद्धि तत्कालही नष्ट होजाती है इसी पर महाराजने भी कहा है कि जिसपुरुष ने विचारकी मर्यादका त्याग किया है तिसने अपने आपपर अन्याय किया है ॥

### सातवांसर्ग ॥

मूल मनुष्य सतमार्ग विपरीतगामियों के बर्णन में ॥

ताते जान तू कि जिन पुरुषों ने अपनी वासना के अनुसार सतजनों की आज्ञा और मर्यादको त्यागकिया है सो तिनकी अवस्था सात प्रकारकी है सो प्रथम ऐसे मूल हैं कि उनकी प्रतीति भगवत् पर भी नहीं होती और इस प्रकार कहते हैं कि भगवत्मी कल्पनामात्र है काहेसे कि जब कोई इस जगत्का ईश्वर होता तब उसका भी कुछ रूप रग होता ताने जिसका रूपरग स्थान दिशा न पाईजावे तब इससे जानाजाता है कि भगवान् कल्पाहुआ है और इस जगत्के कार्य तत्त्वों के स्वभाव और नक्षत्रों के आश्रित होते हैं सो वह मूल ऐसे ही जानते हैं कि यह मनुष्य और और जीव और नानाप्रकारकी रचना अनेकगुणों संयुक्त जो दीखते हैं सो ईश्वर विना आपही उत्पन्न हुये हैं और इसी भाँति स्थित रहेंगे अथवा इनका उत्पन्नहोना तत्त्वोंका स्वभाव है सो यह उनका कहना व्यर्थ है काहेसे कि वह मूल अपने आपसे भी अचेत है तब और किसी पदार्थको क्या जानै सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष लिखेहुये अक्षरोंको देखे और कहे कि यह अक्षर विद्यावान् और समर्थ लिखारी विना आपही करके लिखेहुये हैं अथवा अक्षरोंकी मूर्त्ति अनादिकालकी लिखी चली आवती है सो जिनकी बुद्धिके नेत्र ऐसे अधहोवें तब उनका इसप्रकार देखनाही भागोंकी हीनता का मार्ग है बहुरि वैद्य और ज्योतिषियोंका भूलना तो पहिलेही बर्णनहुआ है १ और दूसरे मनुष्य इसप्रकारके मूल हैं कि वह परलोकको नहीं मानते और यों कहते हैं कि यह मनुष्यभी घास और खेतीकी नाई है ताते जब यह जीव मृत्युहोता है तब मूलहीमे नष्ट होजाना है इसी कारण से पाप पुण्य सुख दुःख दयद ताडना सनही व्यर्थ है सो यह ऐसे मूल हैं कि आपको भी घास और बेलों और गधोंकी नाई जानते हैं और आत्मा जो चैतन्य और अविनाशी है तिसको नहीं पहिचानते और मृत्युहोना जो शरीरकी नाशताका नाम है तिससे अचेत है पर इस

का निर्णय परलोकअध्याय विषे कहेंगे २ बहुरि तीसरे मूर्ख ऐसे हैं कि वह भगवत् और परलोकको मानते हैं पर उनकी प्रतीति निर्वल होती है ताते सतजनों के वचनोंको नहीं पहिचानते और कहते हैं कि भगवत्को हमारे भजनकी अपेक्षा क्या है और हमारे पाप करने करके उसको दुःख क्या है काहेसे कि वह भगवान् ऐसा महाराजा है कि उसको जगत्के भजन करनेकी कुछ परवाहही नहीं ताते उसके निकट पाप और भजन सब समान हैं पर यह मूर्ख भगवत्के वचनों में प्रत्यक्ष नहीं देखते हैं कि महाराज ने कहा है कि जिज्ञासुजन पुरुषार्थ और शुभकर्म अपने मनकी पवित्रताके निमित्त करते हैं सो यह मूर्ख मदभागी इस वचनको नहीं जानते और इस प्रकार समझ स्वता है कि शुभकर्म भगवत्के निमित्त कियेजाते हैं अपने कल्याणके निमित्त नहीं सो तिसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष रोगी होवे और पथ्यका त्यागन करे और कहे कि मेरे पथ्य और कुपथ्यकरके वैद्यकी क्या हानि होती है सो यह वचन तो सत्य है कि वैद्यकी हानि कुछ नहीं होती पर इमकुपथ्य करके रोगीहीका नाश होता है सो रोगीका नाश वैद्यकी अपमन्नता करके नहीं होता पर वह कुपथ्यही रोगीकी नाशताका मार्ग है और वैद्यतो उसको शुभमार्ग दिखानेवाला है ताते वैद्यकी हानि क्योंकर होवे सो जैसे शरीरका रोग शरीरकी नाशताका कारण है और रोगोंका उपचार करना सुखों का कारण है तैसेही मलिन स्वभाव बुद्धिकी नाशताका कारण है और भगवत्का भजन और पहिचान बुद्धिकी अरोग्यताका कारण है ३ बहुरि चौथे मूर्ख इसप्रकार कहते हैं कि सन्नजनों ने जो भोग और क्रोध से हृदयको शुद्धकरना कहा है सो यह अमभव है काहे से कि यह स्वभाव गनुप्यकी आदि उत्पत्ति विषे मिलेहुये उपजे हैं ताते यह यत्न करना ऐसा है जैसे कोई कालेकम्बलको सफेद कियाचाहे तब वह कदाचित् सफेद नहीं होता सो यह मूर्ख यों नहीं जानते कि सतजनों ने भोगोंको और क्रोधको बशीकारकरना कहा है जिसमे संतजनोंकी आज्ञा और मर्यादसे उल्लिखित न होवे और प्रवल न होजावे बहुरि तामसी राजसी कर्मोंका त्यागना जो कहा है सो यहवार्त्ता होनेके योग्य है और बहुतपुरुष इस अवस्थाको प्राप्तहुये हैं इमीपर महापुरुषने भी कहा है कि मैं भी और मनुष्यों की नाई क्रोध करताहू पर मेराहृदय तपायमान नहीं होता और महाराजने भी ऐसे पुरुषोंकी प्रशंसा करी है जिन्होंने क्रोधको जीता है मो

जीतना तबही कहा ज्यता है जब प्रथम क्रोध है कि और जब क्रोध है तब ही नहीं तब उसका जीतना क्यों कर कहिये, वृद्धि-पात्रों में मूर्ख इस प्रकार कहते हैं कि वृद्धि-मगवत् परमदयालु और कृपालु स्वरूप है तब हमारे व्यवहारों, क्रीडों, कृत्यों, खेला पर-यों तब ही जानते कि यद्यपि वह महाराज परमदयालु है परन्तु भी पापी मनुष्यों को दण्ड देनेवाला-भी बोधी है और इस जरायु प्रियाजोतानामर्कारके रोग और कष्ट और निर्द्धनता आदिक इ, स जो जीतोंको प्राप्त होती है सो तब ही देखने और मगवत् की दया और कृपायें तो कुछ सदेहानही परन्तु वह अपनी जीविका के निमित्त यत् करते हैं तब उनकी मतीति, भावना, कृपा, लु-जानने, कदा-इसकी है और व्यवहार और जीविका के निमित्त कर्मों-व्यक्त करते हैं, काहेसे कि वह महाराज उद्यम विनीती प्रतिपाल करनेवाला है और महाराज ने प्रसिद्ध कहा है-धरती और आकाश विषे सर्व जीवोंको प्रतिपाल करनेवाला एक भेदी है-सो इस-वचनसे महाराज तब व्यवहारसे प्रसिद्ध वर्गी है पर-परलोक के मार्गों-यत् करनेसे तो इस प्रकार नही-वर्जा कि तुम-भजेत और पुरुषार्थ-प्र-तकरो, वृद्धि-इसी प्रकार जब मूर्ख मगवत्को कृपालु स्वरूप-जानते हैं और माता की वृष्णा का त्याग नही करसके तो परलोककी वार्ता सुखसे-व्यर्थ ही कहते हैं कि हमको-मगवत् दया करलेवेगा सो यह लोग-आपने-मनके सिखाये हुये हैं और वासनाके दास हैं और मगवत् की कृपा पर-उतको-प्रतीति ही कुछ नहीं-प्र-वृद्धि-छटे मूर्ख अपने ऊपर अभिमानी हैं और इस प्रकार कहते हैं कि हम-ऐसी-अर्थ-स्थाको प्राप्त हुये हैं कि हमको पापोंका-स्पर्श ही नहीं-होता और हमारा धर्म ऐसी दृढ़ हुआ है कि-उमको कदाचित् मेल नहीं लगता सो ऐसे मूर्खोंकी अधिक तो ऐसी अवस्था होती है कि-जब कोई-उनका एक-वचन खण्डन-करके निरादरकरे तब सर्व अग्र-अपत्नी, उस के त्रिषे-विषे-खेले-वने हैं अथवा-जीव-एक-प्रस-भी भोजन-क्या-किसी से-मार्गों-और-खव-न-दने-तब-क्रोध-रके-उतके-हृदय-विषे-महा-अंधकार-आय-जाना है सो-यह-मूर्ख-परम-मूर्खार्थ-विषे-ऐसे-तो-हृद-नहीं-हुये-कि-जो-इनको-पापोंका-प्रवेश-न-होवे-कि-ऐसा-अभिमान-करना-क्योंकर-प्रमाण-होवे-और-जब-कोई-मूर्ख-ऐसे-पदको-पठ-चभी-जावे-कि-वै-भाव-और-भोगोंकी-अभिलाष-दम्भ-और-क्रोध-रके-उपने-दूर-किया-होवे-पर-जब-इस-प्रकार-जाने-कि-म-परम-पद-को-प्राप्त-हु-आहू-तो-भी-अभिमान-ही-कहला-वे-ग-सा-हो-सो-कि-सन्त-जनों-

की अवस्थानोपेसी हुई है कि जब उनसे कुछ अथवा दोजातीभी तब भ्रम करके  
संदन करते थे और महाराज के आगे प्रार्थना का क्रोधी भाव करवाने से तब जो उ-  
चम पुरुष सबे द्येयें हैं तब किंचित् पापसे भी डरते थे और प्रसन्न भान्त्र के सिंशय  
करके शुद्ध भान्त्र को भी तब गदते थे तब इम सुर्वने महा रूपों का जाना कि जोगी  
और भोगी की भ्रम सी, मुझे हुआ ही सो इस विधि ही की अवस्था जो संत जनों  
से, उत्तम नहीं हुई बहुरि जब इस प्रकार कहें कि संत जनों भी क्रमों से निर्णय हुये  
हैं परन्तु होने जीवों के कल्याण के निमित्त अशुभात्मियों का त्याग किया है सो  
निसका उत्तर यह है कि जन्म विहासत जन्म जीवों के कल्याण के निमित्त पापकर्मों  
का त्याग करते थे तब यह सुर्व जीवों के कल्याण निमित्त कर्मों नहीं कर्मों और  
भोगी जानते हैं कि जन्म कोई और भी हमारे अशुभ कर्मों को देखता है तब वेह  
भी धर्म के मार्ग में गिर पड़ता है और उस की बुद्धि ताशा दोजाती है तब जब  
प्रकार कहें कि लोगों की बुद्धि के ताशा होने से हमारी कथा हानि होती है तब ये  
मूर्ख यों तर्ही जानते कि जोगी लोगों के अशुभ कर्मों के इन की कुब हानि न होती तो  
आगे जो संत जनों ने अपने शरीर पर तप और वैराग्य रक्खा है सो लोगों के  
अकाज विषय उन की हानि कर्मों को ही जैसे महा पुरुषों के पास एक बुद्धि द्वारा  
सकामता का आयाथा तब उन्होंने मुख से उसको डाला देखा सो जब उम छुहारें  
को भोजन करने तब इममें उनको कथा पाप होना और लोगों का क्या अक्-  
गुणथा और जब उस छुहारे के खाने के विषे दोषथा तब इन सुर्वों को मासे मदिरा  
के खाने पान करने से, क्योंकि दोष नहीं होगा और फिर जो विचारका देखें कि  
जिन्होंने एक छुहारे का त्याग कियाथा तब उनकी अवस्था से इन सुर्वों की अवस्था  
तो उचम नहीं और एक छुहारे के पापमे मदिरा का पाप भी थोड़ा नहीं ताते  
क्योंकि जानिये कि उनको एक छुहारे का भी पाप लगनाथा और इनको मदिरा  
करके भी दोष नहीं ताते निस्मटेइ जाना जाता है कि इन की क्रिया देव कर माया  
प्रसन्न होती है और इन सुर्वों को हास्य का स्थान और विज्ञाना धनायाह और  
जब बुद्धिमान पुरुष इनके कर्मों को देखे हैं तब इनके दम्भ करके आश्चर्य मान  
होते हैं ताते अर्थात् गी। पुरुष मेही है कि जिन्होंने मनको अलक्ष्य जाना है इमी  
कारणसे गत और चामताको जिसने वर्णों नहीं किया सो मनुष्य महा नीच है  
अथवा पशु है काहेसे कि जिसको अपने मनके लक्ष्य की परिचाय नहीं तब को



अभिमान करना व्यर्थ है इस करके कि वह मूर्ख बुद्धि की हीनता करके कहता है कि मैंने मनको बशीकार किया है और मनके बशीकार करनेका कोई लक्षण ही इस विषे पाया नहीं जाता सो मनके जीतने का लक्षण यह है कि जब इस जीव की करतूति अपनी वासनाके अनुसार न होवे और सतजनोंकी आज्ञाविषे बनें और सर्वदा आपको उनकी आज्ञाविषे श्री तब जानिये कि सच्चा है और जब अपनी सयानप और चतुराई करके निर्दोष हुआ चाहे तब जानिये कि मनका दास है और झूठा अभिमान करता है ताते अपने मनकी परीक्षाका त्याग करना फदाचित् प्रमाण नहीं और जब निढर होता है तब निस्सन्देह छला जाता है और अपने नाश होनेको भी नहीं जानता बहुरि सन्तजनों के बचन अनुसार करतूति करना भी जिज्ञासु की आदि है अवस्था इसके बिना धर्म की दृढ़ता नहीं होसकती तब परमपदका पावना तो महाकठिन है और परेसे परे है सो तिस पदका अभिमानी होना व्यर्थ है और सातवमूर्ख अपनी वासनाकी प्रवर्तता करके मूढ़ हुये हैं अज्ञान नहीं है इस करके कि आपको निर्दोष नहीं जानते पर जब मनमती लोगों की ओर देखते हैं कि कुमार्ग विषे चले जाते हैं और नाना प्रकारके भोग भोगते हैं और मूखम बचनोंका उच्चारण करते हैं और आपको सन्तकरके दिखावते हैं और वेपभी सतजनोंका करते हैं सो इनकी क्रियाको देखकर वह देखनेवालेभी लम्पट होजाते हैं ताते वह भोगोंको बुरा नहीं कहते और योंभी नहीं जानते कि भोगों करके कुछ प्राप्त होता है और कहते हैं कि भोग तो निन्द्य नहीं और भोगोंविषे कुछ खड़ी कहां है कुछमी यह कहते मात्र है और ये ऐसे मूर्ख हैं कि कहनेमात्रका अर्थ भी नहीं जानते और पासगिहियों के संग करके और मनकी वासना करके महाअचेत और अधे हुये हैं और इनको मायाने जीत लिया है सो यह बचन और चर्चा करके सीधे नहीं होते काहेसे कि अज्ञानता करके नहीं मूले जान बूझकर बावले हुये हैं ताते उनका उपाय राजदण्ड है और बचन करके उनका उपाय नहीं होता बहुरि ऐसे जे मूर्ख हैं तिनकी अवस्थाका बखाने इतना ही बहूत है और इस अध्याय विषे इस कारणसे इनकी अवस्था का वर्णन किया है कि ऐसे मूर्खोंकी अवस्था और मूर्खता अपने मनकरके होती है अथवा भगवत् की ओर पहुँचने का जो मार्ग है सो तिस सतजनोंके मार्गसे अचेत होते हैं पर मूर्खके हृदयमें मूर्खताका स्वभाव ऐसा दृढ़ होजाता है कि इसका दूर करना कठिन

हो जाता है इसी कारणसे एक ऐमे मूर्ख होते हैं कि अज्ञानता और सशय विषेही मनमतिके मार्गमें चलेजाते हैं और उसपर वड़ाई करते हैं वहुदि जब उनसे कोई प्रश्नकरे तब त्रावलेमे होजातेहैं और वचनका निर्णय बनाय नहींसकते और किसी से पूँखने भी नहीं काहेसे कि उनके हृदयविषे प्रीति भी कुछ नहींहोती और किसी वचनकी शङ्काभी नहींकरते क्योंकि शङ्काभी उसीको उपजती है जिसके हृदयविषे कुछ दृढ़ होती है सो ऐमे पुरुषोंका उपचार करना कठिन है जैसे कोई रोगीपुरुष वैद्यके पासजावे और अपने रोगको प्रसिद्ध वर्णन करे तब उसका उपचारकरना कठिन रहताहै और ऐमे मूर्खों को यह उपदेश करना भलाहै कि और जिसवार्त्ता को तुम नहींसमझने तिमसे अज्ञानहीरहो पर इतनी प्रतीति तुमको अवश्यही चाहिये है कि तुम सब भगवत्के उत्पन्न कियेहुये हो और तुम्हारा उत्पन्न करनेवाला भी ईश्वर समर्थ है और जो कुछ किया चाहे सो करसक्ता है सो वार्त्ताविषे सशयकरना अयोग्य है वहुदि जब उसविषे कुछ श्रद्धा देखिये तब सतजनों के वचन उसको युक्तिअनुसार समझाइये जिसप्रकार मैंनेभी इस ग्रन्थ विषे वर्णन कियाहै ॥

## तीसरा अध्याय ॥

मायाकी परिधानके वर्णन में ॥

तातेजान तू कि यह ससार भी धर्म के मार्गकी मंजिलहै और जो जिज्ञासु जन भगवत्की और गमनकरते हैं सो तिनके पथविषे यह ससार भी ऐसा स्थान है कि जैसे किमी महावनके किनारेपर कोई बड़ा नगर अथवा बाजारहोवे इस करके कि उस नगरसे पग्देशी मनुष्य अपना तोशा कालेवें तेसेही यह ससार भी परलोक मार्गका तोना बनावने के निमित्त रचाहै वहुदि लोक और परलोक का अर्थ यह है कि शरीर के नाग होने से पहले जो ससार दीवता है तिमका नाम लोक है और शरीर के मृत्युहुये से पीछे जो जीवकी अस्थिति होनी है सो परलोक कहाताहै और इमलोक विषे जीवका उत्तम प्रयोजन यहहै कि परलोकका तोशा बनावे और यद्यपि आदि उदात्त विषे इस मनुष्यकी अवस्था सागान्य और नीच होती है पर तौभी पूर्णपट का अधिकारी बनाया है कि देवतों के निर्माल स्वभावको जब अपने हृदयविषे स्थितकरे तब भगवत्के दग्वार का

अधिकारीद्वेषे सो जनाइत मनुष्यको उस भोगको बूझ प्राप्त होवे तब निस्सन्देह  
 गहाराजका दर्शन होवे भोग और जीवकी परमात्मता ही है और इसकी वेद  
 भी प्रतीति और इस जीवको भगवत्त्वे इसी कार्यके प्रतिमिच्छा उत्पन्न किया है।  
 तब लरी महाराजका दर्शन निर्दिष्टिवसक्त जन्मलीगर्मियम इसके हृदयकी स्था  
 नं धुलीजावो और सप्त सूर्यरूपको सप्तम और अहिंसा ज्ञानी प्रकार न ले  
 सो भगवत्त्वे महिचानने की कुजी प्रतीति के संसर्ग और चर्य कारीगरी के  
 प्रथम परिज्ञाने बहुरि महाराजकी कारीगरी के परिचानने की कुंजी इन्द्रिया  
 और इन्द्रियोंके स्थित होषेण स्थान शरीर है और प्रद शरीर पचतत्त्वोंके सप्त  
 न्यकरके रती हुं ही है इसी कारणमे तदाजीवस्थित तत्त्वोंके प्रेषिपे आया है  
 इस जगत्त्रिपे तोशा ज्ञानोयलेवे और अपने मनकी परिचान करके भगवत्के  
 परिज्ञाने और सप्त पदार्थों का परिचानना इन्द्रियों करके होता है ताते जबल  
 इस मनुष्यको इन्द्रिया जगत्की स्मरण देती है तत्र जगत्प्रकपुर्य भसार विपे जी  
 वता रहता है और जगत् इन्द्रिया इससे दूर हो जाती है और महजित अपने स्व  
 भाव विपे स्थित होता है तब इसी को परलोक कहते हैं सो इस जगत्त्रिपे इस  
 मनुष्य का आवना इसी निमित्त है कि अपने कार्यको सिद्ध करे ॥

दमरा संग ॥

है ताते जीव और शरीर का सम्बन्ध ऐसा है जैसे तीर्थयात्रा में यात्री और ऊट का सम्बन्ध होता है-अर्थात् यात्री के निमित्त ऊट चाहिये है पर ऊट के निमित्त तो यात्री नहीं होता और यद्यपि वह यात्री भी घास और पानी कके ऊटकी रक्षा करता है पर तौ भी उसका प्रयोजन तीर्थयात्रा है वहुँरि जब तीर्थयात्रा सिद्ध होती है तब यात्री को ऊटकी अपेक्षा नहीं रहती ताते चाहिये कि मार्गविषे ऊट की स्वतंत्र कार्यमात्रिही लेवे पर जब सारादिन ऊटकी टहलविषे और सभारविषे बीतजावे तब वह यात्री मगियोंसे दूर पड़जाता है और तीर्थ को नहीं पहुँचता तैसेही जन यह मनुष्य सर्व आयुष आहारकी उत्पत्तिविषे लगाने और विन्नोंसे शरीरकी रक्षा करता है तब यह पुरुष भी अपनी भलाई को नहीं पहुँचता ताते इस ससार विषे शरीरकी रक्षा के निमित्त अवश्यही चाहिये है सो तीन पदार्थ हैं एक आहार है दूसरा वस्त्र तीसरा शीत उष्णकी रक्षाके निमित्त स्नानके होने की भी अपेक्षा होती है सो भाणों की रक्षाके निमित्त इस जीवको इन तीन पदार्थों से अधिक कुछ नहीं चाहिये वहुँरि मायाके सर्व पदार्थों के मूल भी येही हैं वहुँरि हृदयका आहार जो भगवत्की पहिचान है सो जिननीही अधिकहोवे तितनीही सुखदायक है और शरीर का आहार जो भनाज है मो जब मर्याद से अधिक आगीकार करता है तब इस कारके शरीर का नारा होजाता है पर इस जीव विषे जो भगवत् ने भोगों की अभिलाषा रची है तिसका प्रयोजन यह है कि वह अभिलाषा आहार वस्त्र स्नानकी चाह करनेवाली होवे और इसकारके शरीररूपी घोड़ेकी रक्षाके पर यह अभिलाषा ऐसी प्रबल रची है कि अपनी मर्याद विषे नहीं उठरती और सदैव अधिकना को चाहती है ताते भगवत्ने बुद्धि को उत्पन्न किया है कि उस अभिलाषाको मर्याद विषे रखे और सत्तजनोंकी रसना विषे धर्मशास्त्रके बचन उत्पन्न किये हैं कि बचनों करके विचारणी मर्याद प्रकट होवे और भोगोंकी अभिलाषा बालक अवस्थासेही इसके ऊपर प्रबलहुई काहे से कि शरीरकी प्रतिपालना तानपान आदिक भोगोंकरके होती है और बुद्धिका प्रवेश पीछे हुआ है ताते भोगोंने आगेही से हृदयस्नानको घेरलिया है इसीकारण से बुद्धिकी आज्ञा को नहीं मानते और विचारकी मर्याद तो पीछे प्रकटहुई है सो तिससे उल्लवित्त बर्तते हैं ताते उम मनुष्यका अपना आय आहार और वस्त्र और स्नान आदिक भोगों विषे आसक्त हुआ है और इसीमे जीव ने

भोगोंकी अभिलाषा करके आपको विस्मृत किया है वृद्धि योंभी नहीं जानता कि आहार और स्थान आदिक का प्रयोजन क्या है और इस जगत्त्रिपे में किस निमित्त आया है इसी अज्ञानता करके हृदय के आहार से अचेत हुआ है और परलोकमार्ग त्रिपेका तोशा इसको भूल गया है पर जब तैने ईस बचन करके माया का स्वरूप और उसके विघ्न और प्रयोजनको भली प्रकार समझा तब इससे आगे मायाका विस्तार और इसकी जो शाखा है तिसकोभी पहिचानना चाहिये ॥

### तीसरा सर्ग ॥

मायाके विस्तार के बर्णन में ॥

ताते जानू कि जर विचार करके देखिये तो तीनही पदार्थोंका नाम संसार है सो एक तो प्रकटही देखने में बनस्पति है १ दूसरे पर्वतों में खानि है २ तीसरे अनेक भाति के जीव हैं ३ पर धरती के उत्पन्न होनेका जो कारण और प्रयोजन है सो यह है कि यह सर्व पदार्थोंकी स्थिति और बनस्पति उपजने के निमित्त बनाई है वृद्धि तावे और लोहे आदिक की जो खानि है सो बासनों और बसों के निमित्त बनाई है और नाना प्रकार के जो जीव हैं सो अपने अपने निमित्त उत्पन्न किये हैं पर इन मनुष्यों ने अपने हृदय और शरीरको इन जंजालों विषे बध्यमान किया है और हृदयका बन्धन स्थूल संसार की प्रीति है और शरीरका बन्धन संसार के कार्य है पर मायाकी प्रीति करके चित्त त्रिपे ऐसे बुरे स्वभाव उपजते हैं कि वह सबही बुद्धिकी नाशताके कारण होते हैं जैसे वृष्णा और कृपणता और ईर्ष्या और भयभाव आदिक जो बुरे स्वभाव हैं सो निस्सन्देह बुद्धिके नाश करनेवाले हैं वृद्धि शरीरका बन्धन जो मायाके कार्य है सो तिन त्रिपे हृदय भी ऐसा आसक्त होजाता है कि आपको और परलोक को विसार देता है पर तौभी मायाके पदार्थों का जो मूल और प्रयोजन है सो केवल आहार और घर और स्थान है ताते तीनों व्यवहार इस जीव को अवरयही चाहिये हैं जैसे खेती और बसों और स्थानोंका बनावना वृद्धि और जेत व्यवहार है सो इनहीकी शाखा है जैसे धुनियां मृत बनावनेवाला कोरी धोबी दरजी सो यह सबही बसके कार्य सिद्ध करते हैं पर इनसभोंको जो अपने अपने शस्त्र चाहिये हैं ताते काष्ठ और लोहा आदिक जो शस्त्रों को बनावते हैं सो तिनका व्यवहार पसरता है सो जब इतने व्यवहारी आपसविषे इकट्ठे हुये तब यह सबही एक दूसरे की सहायता करते हैं

काहेसे कि सबकोई सर्वकार्य अपने आप नहीं करमके जैसे दरजी कोरी और लोहारका कार्य करताहै वहुँर लोहारभी इनदोनों के कार्यो विषे सावधान है इसीप्रकारे सबही एक दूसरेकी सहायताकरते हैं और परस्पर कार्य सिद्ध करते हैं ताते सभोंकापरस्पर व्यवहार चलताहै वहुँर लेने देने विषे विरुद्ध जागवावताहै काहे से कि सबकोई नीति विषे नहीं वर्तता और तृष्णाकरके एक दूसरे को दुखाया चाहताहै इसकारण और भी तीनपदार्थोंकी अपेक्षाहुई सो प्रथम तो धर्मशास्त्र का ज्ञाता चाहिये जो वर्म की मर्यादको प्रकट करे वहुँर कोई ऐसा श्रेष्ठमनुष्य विचारवान् चाहिये जो झगड़ा करनेवालोंको समझावे वहुँर तीसरा कोई बलवन्त राजाभी चाहिये जो मूठे मनुष्य को दण्डदेवे सो इसीप्रकार यह सबही व्यवहार ऐसे है कि सभों का परस्पर सम्बन्ध है अधिकसे अधिक पसरते जाते हैं काहेसे कि ससार ससरनेहीका नामहै पर लोगों ने इनही कार्यो विषे अपना आप भुलायदियाहै और आहार वस्त्र स्थान जो प्राणोंकी रक्षाके कारण हैं और मायाके भी सर्व पदार्थों का मूलहै सो तिसके प्रयोजन को नहीं जाना अर्थात् सर्वव्यवहारोंका प्रयोजन आहार आदिक तीनपदार्थ हैं और इनतीनों पदार्थ आहार वस्त्र स्थानसे प्रयोजन शरीरकी रक्षाहै वहुँर शरीरकी रक्षा जीवके निमित्त है कि यह शरीर जीवका घोड़ाहै और जीवके उत्पन्नहोने का प्रयोजन भगवत्की पहिचानहै पर इनमनुष्यों ने मायाके कार्योविषे आपको और भगवत्को विस्मरण करदियाहै जैसे यात्री कोई तीर्थ के मार्ग और सगियों को सुल्लायेदेवे और अपने सगयको घोड़ेके सँभार और सेवाविषे विनावे तब उसकी यात्रा नष्ट होतीहै तैसेही जो मनुष्य परलोकके मार्गपर अपनी दृष्टि नहीं रखता और आपको परदेशी नहीं जानता और मायाके जंजालों विषे मर्यादमे अधिक आसक्तहोताहै तब निस्सदेह जाना जाताहै कि उमने मायाके भेदको नहीं जाना और मायाको जो पहिचान नहींकरता तिसका कारण यहहै कि यहमाया महाबलरूपहै इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि यहमाया जीवों को मन्त्र मन्त्र करके मोहनेवाली है ताते इसके छनोंसे भयङ्गना प्रमाणहै मो जब यहमाया ऐसीहुई तब इसके छनोंका पहिचानना अवश्यही चाहिये ताने में इममायाके छलोंको दृष्टान्त्रसहिब वर्णन करताहू ॥

चौथासर्गः।

तुम्हको स्थिर दिखानेकी है परन्तु इसको ऐसे जानता है कि सदैव मेरे पास रहेगी पर यह मार्या ऐसी है कि सर्वदा तुम्हसे दूर चली जाती है और क्षणक्षण विषे इस का जीवना ऐसा सुक्ष्म है कि ज्ञाता नहीं जानता जैसे वृद्धकी छायाको जब कोई देखे तब वह स्थिर ही पड़ी भासती है पर जितनी प्रकाश देखिये तब प्रकाश ही नहीं उठती तैसे ही तेरी आयुष्य फलफूल विषे प्रती जाती है और तू इसको स्थिर ही जानता है सो गिस्सन्देह यह शरीर और आयुष्य माया रूप है और ऐसी छल रूप है कि तू इसके दूरदोनिसे अज्ञेय है और यह सर्वदा तुम्हसे विछुडती जाती है शिवदुखितूसरोमार्गके छलका दृष्टान्त यह है कि यह मार्या तेरे साथ अपनी अधिक प्रीति दिखानेकी है ताते अपने ऊपर तुम्हको उरफाय लेती है और तेरे हृदय विषे उसकी प्रीति और प्रतीति ऐसी दृढ़ हो जाती है कि यह हमारी अम प्यारी है और कदाचित और किसी के पास न जावेगी पर तब यह मार्या अज्ञातक ही तुम्हको छोड़कर तेरे शत्रुके पास जाती रहती है जैसे अग्निचरिणी स्त्री पर पुरुषोंको अपने ऊपर उरफावे और उसकी अधिक प्रीति दिखाकर अपने गेह विषे लावे वदुरि अद्रया करके उनका धात करे इसी पर प्रकृति है कि महात्मा ईसाने स्वप्न विषे मार्याको स्त्रीके स्वरूपवत् देवा धर्म तत्र उससे सूझने लगे कि तूने कितने भर्त्ता किये हैं तब भी याने कहा कि मेरे भर्त्ता अग्रणीत हैं तब उनहों ने पूछा कि वह सब सृत्कहुये अथवा उनहों ने तेरा त्याग किये है तत्र मार्याने कहा कि मैंने ही सभको मारा है तब महात्मा ईसा कहने लगे कि तुम्हको लोगों की मूर्खता पर आश्चर्य आती है काहेसे कि जितकी प्रीति तेरे साथ दृढ़ हुई है तिनका नाश और हखी होना भी देखते हैं और फिर तेरे ऊपर उरफाकर आसक्त होते हैं और भय नहीं करते शिवदुरितीमरा दृष्टान्त यह है कि यह मार्या आप को कपटी मनुष्यकी नाई बाहरसे सुदर बनाकर दिखासती है और इसके अंतर जो दुख और विघ्न हैं तिनको दुराय रखती है तनि जब इसको मूर्खमनुष्य देखते हैं तब अचानकही लिपटजाते हैं वदुरि जब इसका भेद पावते हैं तब गहोड़ सी होते हैं जैसे कोई महाकुरूप स्त्री नाना प्रकारके भूषण और सुदर वस्त्र पहरे और

अपने मुखको घूँघुटा विपे दुगयलेवे सो जव कोई उसको देखता है तब अत्रशयही मोहजाता है फिर जव घूँघुटा उतारकर उसकी कुरूपताको देखता है तब पश्चात्ताप करने लगता है इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि परलोक विपे, माया की सूरत महाकुरूप वृद्धास्त्रीवत् दिखानेगे कि उमके नेत्र भयानक और दांत मुल्लसे बाहर निकमे दूये होवेंगे तब महाराजसे प्रार्थना करेंगे कि हे महाराज ! इससे हमारी रक्षा कर और कहेंगे कि यह महाराज्ञसी कौन है तब आकाशवाणी होगी कि जिस मायाके निमित्त तुम ईर्ष्या और परस्पर विरोध करते थे और जीवोंका प्राण करते थे वृद्धिभाव और हयासे रहित होते थे और जिसके ऊपर तुम जामिन करने के सो यह चोही माया है वृद्धिआज्ञा होवेगी कि इस मायाको महानरक विपे जाओ तब माया कहेगी कि मेरे मियतम कहा है तब आज्ञा होवेगी कि हमके मियतमोंको भी नरक विपे जाओ वृद्धि चोयादशांत यह है कि जव कोई मायाकी आदि अन्तका विचार करे तब निस्तदेह जानै कि यह माया आदिमें भी न थी और अन्तमें भी न रहेगी तब मध्यकाल विपे कुछदिन इसकी स्थिति है जैसे कोई पुरुष परदेगी द्वेषे तिसको मार्गविपे ठहरना अल्पकाल ही होता है तैसेही समारकी आदि प्रालंता है और अन्त श्मशान है और इसके मध्यमार्ग विपे केती मन्दिमें ही सी वर्षतो प्रज्वलकी नाई है और गद्दीना सो जत है और कोसकी नाई दिन है और स्वास पैड है इसी प्रकार सर्व जीव सर्वदा मृत्युके मार्ग विपे चले जाते हैं सो किसीको योजनपर्यंत मार्ग रहता है और किन्मीको इससे भी अल्प रहता है और किसीको कुछ आधिक रहता है पर महामनुष्य आपको स्थिर जानता है कि मैं इसी ससार विपे सदैव स्थित रहूंगा और कितने वर्षोंकी आशाधारकर कार्यों की चिन्ता करता है और यों नहीं जानता कि मेरी आयुष दोदिन अथवा चारदिन ही है अथवा कुछ भी नहीं रही ४ वृद्धि पाचमा दृशांत यह है कि विपयी जीव, माया के भोगों विपे प्रसन्न होते हैं पर परलोक विपे गेमे दु ख और निर्नजनाको प्राप्त होवेगे कि ईम कष्टका वर्षांत क्रिया नहीं जाता जैसे कोई मीठा और विकन आहार होवे और उम की कोई मनुष्य ऐसा कष्टको खावे कि उसरके उदरपीड़ाको प्राप्त होवे वृद्धि भ्रष्टचिका रोग करके येन और अनीमारको प्राप्त होते और अतिमूर्च्छाको प्राप्त होवे तिसकी अतिवृष्य करके तब बहुत पश्चात्ताप और लाजको पाता है, काहे से कि सुलका सगय घीत गया और कष्ट उम न शेष रहा सो चल करके भी इर, तई



चौथा सर्ग ॥ १ ॥

ताते जानू कि मायाके छलों का प्रथम दृष्टान्त यह है कि यह माया सर्वदा तुम्हको स्थिर दिखावती है परन्तु इसको ऐसा जानता है कि सदैव मेरे पास रहेगी पर यह माया ऐसी है कि सर्वदा तुम्हसे दूर तली जाती है और क्षणक्षण विषे इस का जीवना ऐसा सुख है कि ज्ञाना नहीं जाता और वृक्षकी छायाको जब कोई देखे तब वह स्थिर ही पड़ी भासती है पर जितनी मन्त्री प्रकार देखिये तब एक क्षण भी नहीं ठहरती तैसे ही तैरी आयुष्मत्पलपल विषे झड़ती जाती है और तू इसको स्थिर ही जानता है सो निस्सन्देह यह शरीर और आयुष्मत्माया रूप है और ऐसी छलरूप है कि तू इसके दूर होनेसे अज्ञेय है और अज्ञेय सर्वदा तुम्हसे विच्छिन्न जाती है वद्विरद्विसरा मायाके छलका दृष्टान्त यह है कि यह माया तेरे साथ अपनी अधिक प्रीति दिखावती है ताते अपने ऊपर तुम्हको उरफायलेती है और तेरे हृदय विषे उसकी प्रीति और प्रतीति ऐसी दृढ़ हो जाती है कि यह हमारी परम प्यारी है और कदाचित और किसी के पास न जावेगी सर वह माया अज्ञानक ही तुम्हको छोड़कर तेरे शत्रुके पास जाती रहती है जैसे चण्डिभारिणी स्त्री पर पुरुषोंको अपने ऊपर उरफावे और तबको अधिक प्रीति दिखाकर अपने गृह विषे लगे बहुरि अदर्या करके उनका ध्यान करे इसी पर सूक्तवाचा है कि महात्मा ईसाने स्वयं विषे मायाको स्त्रीके स्वरूपवत् देवा था तब उससे पूछने लगे कि तूने कितने भर्त्सा किये हैं तब मायाने कहा कि मेरे भर्त्सा अगणित हैं तब उन्होंने पूछा कि वह सब घृतफहुये अर्थात् उन्होंने ने तेरा त्याग किया है तब मायाने कहा कि मैंने ही सर्वको मारा है तब महात्मा ईसा कहने लगे कि तुम्हको लोगों की मूर्खता पर आश्चर्य आता है काहेसे कि जिनकी प्रीति तेरे साथ दृढ़ हुई है तिनका नाश और दृष्टी होना भी देखने हैं और फिर तेरे ऊपर उरफकर आसक्त होते हैं और भय नहीं करते अब बहुरि तिमिर दृष्टात यह है कि यह माया आप को कपटी मनुष्यकी नाई बाहरसे सुंदर बनाकर दिखावती है और इसकी अंतर जो दुःख और विघ्न हैं तिनको दुराय रखती है ताने जब इसको मूर्खमनुष्य देखते हैं तब अचानक ही लिपटजाते हैं बहुरि जब इसका भेद पावते हैं तब महादुःखी होते हैं जैसे कोई महाकुरूप स्त्री नाना प्रकारके भूषण और सुंदर वस्त्र पहरे और

अपने सुलको घृष्ट विपे डार मिलेको सो जव कोई उसको देखत है तब अवश्यही सोहजाता है फिर जव घृष्ट उतारकर उसकी कुरूपताको देखत है तब पश्चात्ताप करने लगता है इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि परलोक विपे, माया की, सृष्टि महाकुरूप वृद्धास्त्रीवत् दिखानेगे, कि उसके नेत्र भयानक और दात सुलसे बाहर निकसे दृश्ये होंगे तब महाराजसे-भार्थना करेंगे कि हे महाराज ! इससे दृगारी रक्षा कर और कहेंगे कि महाराजसमी कौन है तब, आकाशवाणी होगी कि जिस मायाके निमित्त तुम ईर्ष्या और परस्पर विरोध करते थे और जीवोंका घान करते थे वृद्धिभाव और दयासे रहित होते थे, और जिसके ऊपर तुम अभिमान करते थे सो यह बोधी माया है वृद्धि शान्ता होवेगी कि इस मायाको महानरक विपे दारी तब माया कहैगी कि मेरे प्रियतम कहा है तब, आज्ञा होवेगी कि इसके प्रियतमोंको भी तुरफ विपे दार दोर वृद्धि चौथा दृष्टात यह है कि जव कोई मायाकी आदि अन्नका विचार करे तब निस्तद्देह जानै कि यह माया आदिमें भी नहीं और अन्नमें भी न रहेगी तब मध्यकाल विपे कुछ दिन इसकी स्थिति है जैसे कोई पुरुष परदेगी होवे तिसको मार्ग विपे दृष्टना अल्पकाल ही होता है तैसे ही ससारकी आदि पालता है और अन्न रमशान है और इसके मध्यमार्ग विपे केती मच्चि नई सो वर्षतो गजिलकी नाई है और महीना योजन है और क्रोसकी नाई दिन है और स्वास यह है इसी प्रकार सर्व जीव सर्वदा मृत्युके मार्ग विपे चले जाते हैं सो किसीको योजन पर्यंत मार्ग रहता है और किसीको इससे भी अल्प रहता है और किसीको कुछ अधिक रहता है पर मह मनुष्य आपको सिग जानना है कि मैं इसी समार विपे सदैव स्थिता हूंगा और कितने वर्षोंकी आशाधारकर कार्यों की चिन्ता करता है और यों नहीं जानता कि मेरी आयु ७० दिन अथवा चायदिन ही है अथवा कुछ भी नहीं रही ४ वृद्धि पात्रवां दृष्टात यह है कि विपयी जीव माया के भोगों विपे मसन होते हैं पर परलोक विपे ऐमे दुःख और निर्लज्जताको प्राप्त होवेगे कि इस मृष्टका वर्णन क्रिया नहीं जाना जेमे कोई मीठा और भिकव आहार देवे दोर उमकी कोई मनुष्य ऐसा तृप्त होकर छावे कि उसरके उदरपीडाको प्राप्त होवे वृद्धि विस्चिका रोग करके वसन और अतीसारको प्राप्त होवे और अतिमूर्च्छाको प्राप्त होवे तिसकी अतिदुर्गंधकाके तब वृद्ध पश्चात्ताप और लाजको पाता है चाहे से कि मृष्टका समप्रवीतगया और फट उमका शोषहा सो यत्र रहेगी इर तहीं

चौथासर्गा।

ताते जानू कि मायाके बलों का प्रथम दृष्टान्त यह है कि यह माया सर्वदा तुम्हको स्थिर दिखानती है परन्तु इसको ऐसे जानना है कि सदैव मेरे पास रहेगी पर यह माया ऐसी है कि सर्वदा तुम्हसे दूर तल्ली जाती है और सणसण विपे इसका जीवन प्रसासूक्ष्म है कि जाना नहीं जाता जैसे वृक्षकी छायाको जब कोई देखे तब वह स्थिर ही पड़ी भासती है परन्तु जब प्रकाश देखिये तब एक क्षण भी नहीं ठहरती तैसेही तेरी आयुष्मत्पलपल विपे घटती जाती है और तू इसको स्थिर ही जानता है सो तिसमन्देह यह शरीर और आयुष्मायारूप है और ऐसी छलरूप है कि तू इसके घूरहोनेसे अत्रेत है औ सहा सर्वदा तुम्हसे निछुहती जाती है वद्वरिदूसरा मायाके छलका दृष्टान्त यह है कि यह माया तेरे साथ अपनी अधिक प्रीति दिखावती है ताते अपने ऊपर तुम्हको उरफायलेवी है और तेरे हृदय विपे उसकी प्रीति और प्रीति ऐसी दृढ़ हो जाती है कि यह हमारी प्रमप्यारी है और कदाचित और किसी के पास न जावेगी पर यह माया अचानक ही तुम्हको छोड़कर तेरे शत्रुके पास जाती रहती है जैसे न्यामिचारिणी स्त्री प्रपुरुषोंको अपने ऊपर उरफावे और वचको अधिक प्रीति दिखाकर अपने गृह विपे लावे वद्वरि अदया करके उनका धान करे इसी पर प्रकृवाचा है कि महात्मा ईसाने स्वयं विपे मायाको स्त्रीके स्वरूपवत् देखा था तब उससे पूछने लगे कि तूने कितने भर्त्सा किये हैं तब भीयाने कहा कि मेरे भर्त्सा अगणित हैं तब उन्होंने पूंछा कि वह सब सृत्कह्यो अथवा उन्हें ने तेरा त्याग किये हैं तब मायात्ने कहा कि मैंने ही सत्रको मारा है तब महात्मा ईसा कहने लगे कि तुम्हको लोगोंकी मूर्खता पर आश्चर्य आता है काहेसे कि जितनी प्रीति तेरे साथ दृढ़ हुई है तिनका नाश और घृही होना भी देखते हैं और फिर तेरे ऊपर उरफकाया सक्र होते हैं और भय नहीं करते वद्वरि तीमरा दृष्टान्त यह है कि यह माया आपको कपटी मनुष्यकी नाई बाहरसे सुदर बनाकर दिखावती है और इसके अतर जो दुःख और विघ्न हैं तिनको दुराय रखती है ताते जब हमको मूर्खमनुष्य देखने हैं तब अचानक ही लिपट जाते हैं वद्वरि जब इसका मेद पावते हैं तब गहाड़ खी होते हैं जैसे कोई महाकुरूप स्त्री नाना प्रकारके भूषण और सुदर वस्त्र पहरे और

अपने सुखको घूघुटाविषे दुःखभलेके सो जब कोई उमको देखता है तब अत्रशयही सोहजाता है फिर जब घूघुटा उतारकर उमकी कुरूपताको देखता है तब पश्चात्ताप करने लगता है इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि परलोक विषे गामा की मूर्ते महाकुरूप-वृद्धास्त्रीवत् दिखानेगे कि उमके नेत्र भयानक और दान्त सुवसे बाहर निकसेहये होंगे तब महाराजसे मार्धानाकरेंगे कि हे महाराज ! इससे हमारी रक्षा कर और कहेंगे कि मद्यमहाराक्ष्मी कौन है तत्र आकाशवाणी होगी कि जिस गामाके निमित्त तुम ईर्ष्या और परस्पर निरोधकरते थे और जीवोंका घातकरते थे बहुविधभाव और दयासे रहित होतये और जिसके ऊपर तुम अभिमान करते थे सो यह जोड़ी गामा है बहुविध आज्ञाहोवेगी कि इस गामाको महानरक-विषे डारो तब गामा कहेंगी कि मेरे भिन्नतम कदा है तत्र आज्ञा होवेगी कि हमके भियतमोंकोभी नरकविषे डारदो बहुविध चौथा दृष्टात यह है कि जब कोई गामाकी आदि अन्तका विचारकरे तब निस्तद्रेह जानै कि यह गामा आदिमें भी न थी और अन्तमें भी न रहेगी ताते मध्यकाल विषे कुछदिन इसकी स्थिति है जैसे कोई पुरुष परदेशी होवे तिसको मार्गविषे ठहरना अल्पकालही होता है तैसेही ससारकी आदि प्रा-  
 लोता है और अन्त श्मशान है और इसके मध्यमार्गविषे केती मज्जिलें हैं सो सर्पतो मज्जिलकी नाई है और महीना सो जग है और कोसकी नाई दिन है और स्वास पैंड है इसी प्रकार सर्व जीव सर्वदा मृत्युके मार्गविषे चलेजाते हैं सो किसीको यो-  
 जतपर्यंत मार्ग गहना है और किसीको इसमें भी अल्प रहता है और किसीको कुछ अघिक रहता है पर यह मनुष्य आपको स्थिर जानना है कि मैं इसी समार विषे सर्व स्थित रहूंगा और कितने वर्षोंकी आशाधारकर कार्योंकी चिन्ता करता है और यों नहीं जानता कि मेरी आयुष दोदिन अथवा चारदिनही है अथवा कुछ भी नही रही ४ बहुविध पाचवा दृष्टात यह है कि निरपीजीव गामाके भोगोंविषे प्राप्त होते हैं पर परलोकविषे ऐसे दृष्ट और निर्नज्जनाको प्राप्त होवेगे कि तम कष्टका वर्णन किया नहीं जाना जैसे कोई मीठा और भिकन आहारहोवे और उम की कोई मनुष्य ऐसा वृद्ध होकर खाये कि उसकके उदरपीड़ाको प्राप्त होवे बहुविध विमूचिका रोग करके वमन और अत्रीघारको प्राप्त होवे और अतिमूर्च्छाको प्राप्त होये तिसकी अतिवृंथकुरके तब बहुते पञ्चात्ताप और लाजको पाता है ताहे से कि सुप्तका समय बीत गया और कष्ट उमका शोषरहा सो यत्रकरकेभी इतना ही

होता और जितनाही भोजन स्वादिष्टहोताहै तितनीही उपमें परिणामविषे दुर्गंध अधिक होती है तैसेही इस संसारविषे 'मायाके भोग' जितना अधिक भोगताहै तितनाही परलोक विषे अधिक दुःखी और लज्जित होताहै और इस दुःख को शरीरके नाशहोनेके समय में प्रकट देखाहै काहेसे कि जिसमनुष्यके पास भोग और वारीचे और टहलुव और दासी और सोना चांदी अधिक होताहै तिसको शरीर छूटने के समय उनके वियोग का दुःखभी उतनाही अधिक होताहै और जिसकेपास मायाकी सामग्री थोड़ी होती है तिसको दुःखभी थोड़ा होताहै ताते भोगोंके वियोगका जो दुःखहै सो शरीरके मरनेपरभी दूर नहींहोता और अधिक वृद्ध होताहै काहेसे कि मायाकी प्रीति मनुष्यके हृदयका स्वभाव है और शरीर के दूरहुयेसे मनुष्यका हृदय अपनेआप विषे स्थिर रहताहै इसी कारणसे माया के भोगोंकी प्रीतिको खेंचकरके अधिक दुःखी होताहै ५ बहुरि छठवा दृष्टत यहहै कि जिसमायाके कार्योंको यह मनुष्य करनेलगताहै तब प्रथम वह कार्य अल्प दिखाई देताहै और यह मनुष्य जानताहै कि मैं शीघ्रही इस कार्यको करलगा और आसकन हूंगा बहुरि इस कार्यकी आशा और तृष्णा बढ़ती है तब एकही कार्यविषे अनेक सहस्रों और मनोरथ उपाजि आवते हैं और वह कदाचित् तर्कों सम्पूर्ण होते इसीपर महात्मा ईसानेभी कहाहै कि मायाकी तृष्णा करके मनुष्य महाभ्रष्ट होताहै जैसे कोई तृपावन्त पुरुष कालर पृथ्वी के जलको पीवे तब उसकी तृपा अधिकसे अधिक बढ़ती जाती है और उसही जलपान करके नाश को पावताहै बहुरि महापुरुषनेभी कहाहै कि जैसे कोई मनुष्य जलविषे प्रवेशकरे तब वह किसी प्रकार सूखा नहीं रहता तैसेही मायाके व्यंजहारों विषे भी निक्षेप रहना अतिकठिन है ताते ऐसा कोई विरला महापुरुष होताहै जो मायाके व्यंजहारों विषे आसकन होंबै बहुरि सानवा दृष्टत यहहै कि जैसे किसीके गृहविषे कोई परदेशी पुरुष आवे और वह घरवाला पुरुष परदेशियों की टहल करनेलगे और उनके निमित्त स्थान पवित्र करक्ले और उनको रूप के वासनों में भोजन और सुगंधआदिक देवे सो इसीप्रकार परदेशी लोग उसके आवने जाते रंहाकरे और वह पुरुष सबकीसेवा इसीप्रकार करतारहै सो उनपरदेशियोंमें जो कोई बुद्धिमान् होताहै और घरवालों के भेदको जानताहै वह पुरुष भोजन और सुगंधको अगीकार करके फिर प्रसन्नता सहित उसकेवासन सब उसकेपास पहुंचाय देताहै

और उसका उपकार मानता है वहुरि जो परदेशी मूर्ख होता है वह उन सुगन्ध और भोजनवाले रूपके वासनोंको जानता है कि उसने मुझको देडाले हैं और ऐसा विचारकर चलनेके समय उन वासनोंको अपनेमाथ उठाने लगता है वहुरि जब उससे फेरलेते हैं तब शोकवान् और दुःखी होता है और पुकार करता है तैसेही यह संसार भी परदेशियोंका स्थान है और इस निमित्त भगवत्ने बनाया है कि इसविषे परदेशीजीव अपना तोषा बनायनेके और किसी पदार्थके लोभ करके बध्यमान न होवे ताते जो बुद्धिमान् पुरुष होता है वह अपने कार्यमात्र व्यवहारको सिद्ध करलेता है और जो मूर्ख होता है वह पदार्थोंके लोभविषे और भोग विषे बध्यमान होजाता है और फिर वियोग समय दुःखी होता है ७ वहुरि आठवा दृष्टान्त ससारी जीवोंपर यह है कि यह ससारीजीव मायाके व्यवहारों विषे ऐसे आसक्त होते हैं कि उनको परलोककी चार्चाही भूलजानी है सो इसीपर एक चार्चा है कि किसी जहाजविषे कितनेक पुरुष चलेजाते थे जब वह जहाज किसी टापूपर आया तब शरीरकी नित्यक्रियाके निमित्त सब कोई उतरे तब केवटने पुकारकर कहा कि हे भाई ! अपनी अपनी क्रियाकरके शीघ्रही चले आईयो, काहेसे कि यह जहाज वेगही आगेचलेगा वहुरि वह लोग उस टापूपर अपनी क्रिया कर्नेलगे परउनमें जो बुद्धिमान् थे सो उन्होंने तो शीघ्र अपनी क्रिया करके जहाज विषे आयकर सावकाश समेत अपनी रुचिके अनुसार ठौर लेलिया और उसमें स्थितहुये और थोड़े पुरुष उसटापूमें जो नानाप्रकारके फून और पक्षी शब्द कररहेथे और रक्षीन पत्यर पड़े हुयेथे सो उनकी आश्चर्य रचनाको देखनेलगे पर कुछेरु ढीलकरके वह भी जहाजपर आपपहुँचे तब उनको सावकाश समेत ठौर न मिला ताते सकुचकर बैठे वहुरि कितने लोग उस आश्चर्यताको देखकर भी तृप्त न हुये और रक्षीन पत्यरोंकी पोटे वाचकर लेआये और कङ्कड़ोंके रखनेका ठौर भी उस जहाजविषे उन्होंने न पाया ताते वह पोटे शीशपर रखकर बैठे वहुरि जब एक दो दिन व्यतीतहुये तब उन कङ्कड़ पत्यरोंका रङ्गभी होगया और उनमेंमे दुर्गंध आवनेलगी और उनको फेंकदेनेका मार्ग दूर प्राप्त न हुआ ताते वड़े दुःखको प्राप्त हुये और पश्चात्ताप करनेलगे वहुरि कितने पुरुष उस टापूकी आश्चर्यताको देखकर विस्मयको प्राप्त हुये और सुदूर रचनाको देखनेमें जहाजसे दूरगये और वह जहाजभी आगेको चलदिया और



साधकत्व है पर; तौसी, निचय नहीं, काहेसे कि विद्या और शुभ करतति भी इसी से सिद्ध हीती है चाते इसको भी परलोकका समी कहते हैं ३ ताते जो कोई पुरुष इस शरीरके सुखको सतोप सहित अङ्गीकारकरे और उसका मनोरथ यही होवे कि मैं अचिन्त्य होकर भगवत्का भजतकरू तब उसको मायासे रहित कहते हैं इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि जिन मायाके पदार्थों के भगवत् की भाँति होवे सो पदार्थ निचय नहीं और ग्रहण करने के योग्य हैं ताते मायाके ब्रह्मों और इसके विस्तारका जो वर्णन किया सो इसप्रत्य विषे इतनाही बहुत है ॥

ब्रह्म जितोऽपि तत्र पञ्चतुर्थ अध्याय ॥

परलोक की पहिचान के मुख्यतम ॥

तावे जानतू कि जबलग प्रथम मृत्युहोने को न पहिचानिये तबलग परलोक भी नहीं जाना जाता और ससारका जीवता है जबलग इस जीवनेको न जानेगा तबलग मृत्युको नहीं पहिचानसक्ता बहुरि जब जीवके यथार्थ स्वरूप को न पहिचानेगा सो जीवका पहिचानना यह कि अपने आपको पहिचानिये सो कल्पक इसवचन का बखान भेने पहले भी वर्णन किया है और सन्तजनों के वर्जन विषे भी आया है कि सह मनुष्य दो पदार्थों के सम्बन्धसे उत्पन्न हुआ है सो एक जीव है और दूसरा शरीर बहुरि शरीररूपी घोड़ा है और जीवरूपी उस के ऊपर सवार है और परलोक विषे सुख दुःख इस जीवको शरीरके सम्बन्धकरके भी होता है और शरीर बिनाही अपने आप करके यह जीव दुःखी सुखी होता है ताते प्रसिद्ध हुआ कि परलोक विषे जीवकी अवस्थाके बल जीवकी भी होती है पर शरीरके साथ जो जीवकी अवस्था है सो तिसको स्थूल स्वर्ग नरक कहते हैं और दुर्गति सुगति भी कहते हैं बहुरि शरीरके बिना जो जीवको सुख और आनन्द प्राप्त होता है तिसको आत्मस्वर्ग कहते हैं और शरीरमे रहित जो जीवको कष्ट और दुःख होता है तिसकानाम मानसी नरक है पर वह जो स्थूलनरक स्वर्ग है तिसको सब कोई प्रकटही सांगसने हैं जैसे स्वर्ग विषे करपट्ट और उमत्त फल और अम्परा और अनेक प्रकारके सुन्दर स्नानपान आदिक भोग प्राप्ति जति है बहुरि नरक विषे सर्प और किन्ह और आगिके कुण्ड आदिक और



उत्तमूर्खोंने केन्द्रकी पुकारभी न सुनी ताते तैस-टापुत्रिपे भूला प्यासके गारे मृतक  
 हुये और कितनोंको सिंहादिकोंने फाड़ डाला पर वह मनुष्य जो प्रथमही शीघ्र  
 नहाज विपे आय वैठे सो वैरागि पुरुषकी नाई है और जो पुरुष टापुत्रिपे ही रहे  
 वह तामसी मनुष्य है कि, उन्होंने आपको और भगवत् को और परलोक को  
 भुलाप दिया और अपने आप मायाके त्रिपे बध्यमान हुये हैं वही जो पुरुष कुक  
 एक ढील करके जहाज विपे आये थे और रङ्गीन ककड़ उठाये लिये थे सो वह  
 दोतों विपभी सन्नही है कि यद्यपि भगवत् और परलोक को मानते हैं पर तो भी  
 मायाका त्राम नदी करने और जगत् के पदार्थोंके सन्नेकरके भार उठाते हैं ॥

पंचवां सर्ग ॥

माया और निर्माणपदार्थोंके बलकेसे ॥

ताते जित्तू कि जैसी कुछ मायक पदार्थोंकी भायाकी नाई निपेवता कहीं  
 हो सो इस करके यों नहीं जानना चाहिये कि मायाविपे सबही पदार्थ निन्द्य हैं  
 काहे से कि इस ससार विपे कितने मद्दार्थ ऐसे मायाये जाते हैं कि वह मायासे  
 रहित हैं जैसे विद्या और शुभकरवृत्ति भी ससारही विपे प्राप्त होती हैं पर माया  
 से रहित हैं और परलोक विपे जीवोंकी संगी और सहायता करनेवाली हैं  
 सो यद्यपि परलोक विपे विद्याके अक्षर और वचन नहीं पहुँचते पर तो भी विद्या  
 का जोगुण है सो जीवोंके साथ रहता है सो विद्या का गुण भी दो प्रकार का  
 होता है प्रथम तो हृदयरूपी रत्नकी पवित्रता और शुद्धता पापोंके त्याग करके  
 प्राप्त होती है और दूसरा गुण रहस्य और आनन्द है सो भगवत्के भजन और  
 भित्तकी प्रकारनाकरके प्राप्त होता है सो यह शुभगुण सत्यस्वरूप है ताते भगव  
 वत्की आर्षना और भजनका जो रहस्य है सो सर्वके यों से विधिपै पर यह  
 रहस्य भी इसी जगत् विपे प्राप्त होता है और माया से रहित है इमकरके प्रसिद्ध  
 हुआ कि सन्नही रस भी निन्द्य नहीं पर जो रस परिणामको शीघ्रही पावता  
 है सो निन्द्य है और जब विचारकरके देखिये परिणाम पावनेका रस वही स्वाद  
 निन्द्य नहीं अहमे कि परिणाम पावनेवाले स्वाद भी दो प्रकारके हैं सो एकतो  
 यह कि जित्तू स्वादोंकरके शरीरकी गुणता होती है सो यह निन्द्य है काहे से कि  
 ऐसे स्वादोंकरके अचेतना और प्रमाद और ससारकी मचाई बढ़ती है शीघ्रही  
 दूसरा सुखी जो आहार और ब्रह्म और स्थानकरके प्राप्त होता है सो यद्यपि यह भी

साश्वतहै पर, त्रौसी-निन्द्य-नहीं, काहेसे कि विद्या और शुभ-करतृति भी इसी से-प्रसिद्ध-ही-ती-है, ताते इसको, भी परलोकका सगी कहते हैं, २ ताते जो कोई पुरुष इस-शरीरके सुखको-सतोप-साहित अङ्गीकारकरे, और उसका मनोरथ यही होवे कि मैं अचिन्त्य-होकर-भगवत्का भजनकरू, तब-उसको मायासे-रहित कहते हैं, इसीपर, महापुरुषते भी-कहा-है कि, जिन-मायाके-पदार्थों-करके भगवत् की प्रतिबोवे-सो-पदार्थ-निन्द्य-नहीं और ग्रहण करने के योग्य-हैं ताते मायाके-कुलों-और-इसके-विस्तारका, जो वर्णन-किया-सो-इस-ग्रन्थ-विषे-इतनाही-बहुतहै ॥

अथ जगत्स्य चतुर्थ अध्याय ॥

पहिला सर्ग ॥

परलोक की पहिचान के अर्थ ॥  
 ताते जानू, कि जबलग-प्रथम मृत्युहोने-को न पहिचानिये, तबलग-पर-लोक-भी-नहीं-जाना-जाता और ससारका-जीवन-है-जबलग-इस-जीवनको-न-जानेगा-तबलग-मृत्युको-नहीं-पहिचान-सका, बहुरि-जब-जीवके-यथार्थ-स्वरूप-को-न-पहिचानेगा-सो-जीवका-पहिचानना-यह-कि-अपने-आपको-पहिचानिये-सो-कुछ-एक-इस-वचन-का-बलान-मैने-पहले-भी-वर्णन-किया-है-और-सन्तजनों-के-वचन-विषे-भी-आया-है-कि-यह-अनुप्य-दो-पदार्थों-के-सम्बन्धसे-उत्पन्न-हुआ-है-सो-एक-जीव-है-और-दूसरा-शरीर-बहुरि-शरीररूपी-घोटा-है-और-जीवरूपी-उस-के-ऊपर-सवार-है-और-परलोक-विषे-सुख-दुःख-इस-जीवको-शरीरके-सम्बन्धकरके-भी-होता-है-और-शरीर-विनाही-अपने-आप-करके-यह-जीव-दुःखी-सुखी-होता-है-ताते-प्रसिद्ध-हुआ-कि-परलोक-विषे-जीवकी-अवस्थाके-बल-जीवकी-भी-होती-है-पर-शरीरके-साथ-जो-जीवकी-अवस्था-है-सो-तिसको-स्थूल-स्वर्ग-नरक-कहते-हैं-और-दुर्गति-सुगति-भी-कहते-हैं-बहुरि-शरीरके-विना-जो-जीवको-सुख-और-आनन्द-प्राप्त-होता-है-तिसको-आत्मस्वर्ग-कहते-हैं-और-शरीरसे-रहित-जो-जीवको-कष्ट-और-दुःख-होता-है-तिसका-नाम-मानसी-नरक-है-पर-वह-जो-स्थूल-नरक-स्वर्ग-है-तिसको-सब-कोई-प्रकट-ही-सांग-सन्ते-हैं-जैसे-स्वर्ग-विषे-करपवृक्ष-और-उमत्त-फल-और-अम्तरा-और-सनेका-प्रकारके-सुन्दर-ज्ञानपान-आदिक-भोग-प्राप्ति-जाते-हैं-बहुरि-नरक-विषे-सर्प-और-विन्दु-और-आग्निके-कुण्ड-आदिक-और

बहुत दुःख पायेजाते हैं सो इमत्रिपे स्थूलस्वर्ग और नरककी बातों मेंने संक्षेप करके कही है कीहसे कि यह वार्ता धर्मशास्त्रमें प्रसिद्ध है ताते सब कोई पहिचानता है ताते अब इससे आगे मृत्युहोनेका अर्थ प्रकटकरके कहताहू फिरीमानसी नरक और स्वर्ग का वर्णन करूगा काहे से कि इस सूक्ष्म नरक और स्वर्ग को सब कोई नहीं पहिचानता पर इस भेदके पहिचानने का उत्तम मार्ग यह है कि इस मनुष्यके चित्तत्रिपे एक खिड़की है और वह देवलोकको और खुलीहुई है पर जो कोई इस अनुभवरूपी सूक्ष्म खिड़की विषे देखताहै उसको परलोक की दुर्गति और सुगति प्रकट भास आवती है और संशय रहित होताहै काहे से कि प्रत्यक्ष देखने में संशय कुछ नहीं रहता और युक्ति और वचन श्रवण से संशय रहजाताहै जैसे वैद्यको शरीरको रोग और आरोग्यता भास आवती है और वह योंभी जानता है कि जब यह रोगीपुरुष कुपथ्य को अङ्गीकार करेगा तब नाशको प्राप्त होवेगा और जब अपने रोगको उपचार करेगा और समय विषे धत्तेगा तब रोगके दुःखसे मुक्तहोवेगा तैसेही सन्तानोंको जीवोंकी सुगति और दुर्गति प्रकटभासती है और इसवार्ताको भी प्रकटदेखते हैं कि भगवद्भजन और उसकी पहिचान जीवकी उत्तमगति का कारण है और पूरता और पापों करके यहजीव नीचगतिको पाताहै सो यहविद्या एमी दुर्लभहै कि बहुत परिश्रम में इसभेदको नहीं समझने अथवा इसपर प्रतीति नहीं करते और स्थूल नरक और स्वर्गभित्त और कुछ नहीं जानते और परलोककोभी श्रवणमात्रही मानते हैं ताते में शास्त्रोंकी युक्ति और वचन करके कुछ परलोकको अर्थ वर्णन करूगा पर जिसमनुष्यकी बुद्धि उज्ज्वलहोवे और जिसकाहृदय पंथके विवादसे रहित होवे और देसादेसी के विरुद्धसे शुद्ध और निष्प्रागहोवे तब उसको इसमार्गकी बुझ भास आवेगी और उसके चित्तत्रिपे परलोकका दृढ़होवेगा काहेसे कि बहुत लोगोंकी प्रतीति परलोकके जाननेविषे निर्मल और संशययुक्त होती है ॥

दूसरासर्ग ॥

स्थूलके वर्णनमें ॥

ताते जानू कि जब तुम्हको मरनेका अर्थ जानने की इच्छाहुई तब इस प्रकार श्रवणकर कि इसमनुष्ये विषे दो प्रकारकी चैतन्यता है सो एक प्राणचेतना कहती है जिस करके हृदय स्थान और प्राणवायु के संयोगसाथ शरीर

ओर इन्द्रिया चैतन्य रहती हैं सो प्राणचेतना पशुओं और मनुष्यों विषे एक समान है, बहुरि दूसरी, चैतन्यता-बुद्धि करके होती है वह केवल मनुष्यही का अधिकार है पर वह प्राणचेतना जो शरीरको सुचेत करती है सो प्राणोका फुटना हृदय स्थानसे होता है बहुरि हृदयस्थान जो तत्त्वों के सूक्ष्म अशों करके रचा हुआ है सो तत्त्वों का अंश वायु पित्त कफ आदिक है पर जब लगानकी शक्ति समान होती है तब लगान वह हृदयस्थान सुखेन रहता है और उसी हृदयस्थान की नाड़ी शीश और सर्व अगों विषे पसरती है ताते प्राणवायुके सम्बन्ध करके सब इन्द्रिया चैतन्य होजाती है और शरीरकी सर्वाक्रिया सिद्ध होती है और जब वह तत्त्वों की समानबृत्ति शीश विषे पहुँचती है तब नेत्र और श्रवण आदि इन्द्रियों को अपने अपने विषे ग्रहण करने का बर्नहोता है सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे दीपकके प्रकाशकरके मन्दिर विषे त्रमत्कार होता है और सर्वप्रदार्थ मासने लगते हैं तैसे ही भगवत्की सत्ता पायकर तत्त्वोंकी समान अशा और प्राण वायुके मार्गसे सब इन्द्रियोंको अपनी क्रियाका बन् पहुँचना है और वह अपनी अपनी क्रियाविषे सावधान होती है और जब क्रिया नाड़ी में प्राणवायुके मार्ग और तत्त्वोंके समान अशासे पटल पड़जाता है तब वह अग क्रियासे रहित होजाता है जो उस पटल और ग्रन्थीके आगे है और वह अग शून्यभी होजाता है बहुरि वैद्यकी विद्या का प्रयोजन यह है कि उमका उगचार करके पटल को दूर करदेवे तब उम अगविषे चैतन्यता फुल आवती है और अपनी क्रिया विषे सावधान होता है तब वह हृदयस्थान शरीर विषे दीपककी नाड़ी है और प्राणवायु उसकी वाती है और आहार तेल हे तबने यह चार्त्त प्रसिद्ध है कि तेल विना दीपक बुझजाता है तैसे ही प्राणरूपी दीपक आहार विना बुझजाता है और जैसे अधिक तेल करके भी वाती तेलको नहीं खींचती तबभी दीपक शून्य होजाता है तैसे यह हृदयस्थान भी अधिक व्यतीतहुये वृद्ध अवस्था विषे आहार को नहीं खींचसका ताते मृत्यु होजाती है बहुरि जैसे तेल और वाती होते भी अकस्मात् किसी विघ्नकरके दीपक बुझजाता है तैसे ही शब्दादिक विघ्न करके भी शरीरका नाग होजाना है और प्राणवायु की जो समानता है तिम करके शरीर और इन्द्रियोंकी क्रिया सिद्ध होती है और जब वायु पित्त कफके कोपकरके वह समान शक्ति नष्टहोजाती है तब अवश्य में इन्द्रियों की क्रिया शून्यहोजाती है जैसे

जैसे यह हाथ भी जब अपनी क्रियासे शून्य होता है तब उसको मृतक कहते हैं अर्थात् हाथकी क्रिया बलकरके होती है और बल प्राणचेतना के प्रकाश करके नाड़ियों के मार्गसे सर्व अङ्गोंमें पहुंचता है और जब किसी नाड़ीका मार्ग रुक जाता है तब उस अङ्गको प्राणोंका प्रकाश नहीं पहुंचता और बलकी हीनता करके क्रियासे रहित हो जाता है तैसेही यह शरीर भी प्राणोंके सम्बन्ध करके मेरी आज्ञाविषे शक्ति है पर जब प्राणों की समान वृत्ति दूर हो जाती है तब शरीरके स्वभाव अङ्ग शून्य होजाते हैं और तेरी आज्ञासे रहित होते हैं सो इसीको मृत्यु कहते हैं पर तौ भी तेरा चैतन्यस्वरूप अपने प्राणविषे स्थिर रहता है काहेसे कि जब कोई टहलुवा तेरी टहलुसे दूर होजावे तब इस करके तेरा तो नाश नहीं होता अर्थ यह कि शरीर तेरा टहलुवा है और तेरा निजस्वरूप हमसे विनक्षण है और जब तू विचार करके देखे कि यह तेरे अङ्ग जैसे बालक भवस्यामें मे सो अथ तो बोधी अङ्ग नहीं काहेसे कि वह अंग सबही परिणाम करके विपर्यय हुये हैं और ओं हारों करके वृद्ध हो गये हैं ताते प्रसिद्ध हुआ कि तेरा शरीर वह नहीं और तू आ भी वही है इस करके कि तेरा स्वरूप शरीर ही नहीं ताने तू शरीरके नाश होने की चिन्ता न कर काहेसे जब तेरा शरीर दूर हो जावेगा तब भी तेरा स्वरूप अविनाशी है और तेरे स्वभाव दो प्रकारके हैं सो एक तो शरीरके सम्बन्धके साथ मिले हुये हैं जैसे मूल प्यास और निद्रा जो है सो यह शरीरके सम्बन्धके साथ मिले हुये हैं और शरीरके सम्बन्धविना सिद्ध नहीं होते ताते शरीर के मृत्यु हुये यह सबही स्वभाव दूर होजाते हैं और दूसरे स्वभाव तेरे ऐसे हैं कि उनविषे शरीरका सम्बन्ध कुछ नहीं होता जैसे भगवत् का पहिचानना और उसके प्रेषण का देखना और उसबूझकी जो प्रसन्नता है सो केवल तेरा अपनाही स्वभाव है इसी कारण से यह पदार्थ सर्वदा तेरे साथही रहते हैं और कदाचित् दूर नहीं होते और भले गुणोंको जो अविनाशी कहा है तिसका अर्थ यह है कि भले स्वभाव जीवके सर्वदा सङ्गी हैं और ऐसेही मूर्खता और अविद्या जो है सो यह भी तेरा अपनाही स्वभाव है ताते यह मूर्खताभी परलोकविषे तेरे साथही रहती है इस करके कि यह अज्ञानता तेरी बुद्धिके नेत्रों की हीनता है और मन्दमार्गों का बीज है इसीपर महाराजने भी कहा है कि मनुष्य ससार विषे अज्ञान करके अन्धा है वह परलोकविषे महादुःखी और अन्धा रहता है पर जब लगतू मलीभांति इस

प्रकारकी चैतन्यताको न पहिचाने। तत्रलगा किसीप्रकार मृत्युके अर्थको न पहि-  
चानसकेगा। काहेसे कि। परिणामतः औ चैतन्यता विषे जो भेदहै तिसके पहि-  
चानने करके मृत्युका अर्थ भी जानाजाताहै ॥

चौथासर्ग ॥  
प्रतिषेधनी और चैतन्य कलाके भेदके वर्णनमें ॥

साते जानतु कि यह प्राण चैतन्यता तत्त्वोंको विकारहै और वायु पित्तऔर  
दिक जो तत्त्वोंका सूक्ष्म अंशहै सो तिन करके रचीहुई है। बहुरि जब कुछ वायु  
पित्त कफका कोप आपसमें होताहै तब प्राणोंकी वृत्तिभी विपर्ययहोतीहै और  
जब इनका स्वभाव समानहोताहै तब प्राणचेतनाभी समानता स्वभावविषे उदर-  
जातीहै ताते वैद्यक विद्याको तात्पर्य यहहै कि वायु पित्त कफ रुरिके कोपको  
उपचारकरके समान रखते हैं तब इम करके प्राणचेतनासावधान होतीहै और  
चैतन्यकलाकी आज्ञाको मानतीहै। बहुरि चैतन्यकलाजो कहीहै वह तत्त्वोंके  
देशसे नहीं उपजी और सूक्ष्म देशसे आईहै। और देवताकी नाई निर्मलस्व-  
रूपहै और तत्त्वोंके देशविषे उसका ध्याना परदेशीकी नाईहै और उसका  
स्वरूप आधिभौतिक नहीं पर इस शरीरविषे उसके आनेको प्रयोजन यहहै कि  
परलोक मार्गका तोशा धनालेवे इसीपर साईने भी कहाहै कि मैंने अपनी  
रुपा करके सर्व जीवोंको मार्ग दिखाया है पर जो शुभमार्ग की रूफ पायकर  
उस पन्थविषे चलते हैं वह मय और शोकसे रहित हुये है और इसमनुष्य का  
शरीर जोहै सो मैंने पृथ्वी आदिक तत्त्वोंसे रचाहै बहुरि मेराअश जो चैतन्य  
कलाहै तिसको शरीर विषे प्रवेश कियाहै तिसका तात्पर्य यहहै कि प्रथम  
प्राणचेतनाको स्थितकियाहै और चेतनाको चैतन्यकलाके स्थित होने का  
अधिकारी बनायाहै। बहुरि उसविषे चैतन्यकला प्रवेशकी है सो इसका दृष्टान्त  
यहहै जैसे प्रथम रुईकी अथवा कपड़ेकी मशाल घनाईजावे जो अग्निके खच-  
नेके लोभक होजावे बहुरि उस विषे अग्नि प्रवेशकीजानी है तब प्रकाशमान  
होतीहै नैमेही प्राणोंकी समानवृत्ति मशालकी नाईहै और चैतन्यकला अग्नि  
की नाईहै पर जैसे वैद्यक विद्याके जाननेवाले प्राणोंकी समान वृत्तिको पहि-  
चानते हैं तब उसकरके गेग और फटसे शरीरकी रक्षा करतेहैं तैमेही चैतन्यरूप  
जो धाविहै तिसके स्वभावकी भी समानताहै पर निमको सन्तजन पहिचानते

हैं और जब इसी जीवके स्वरूप और भौराग्य और पुरुषार्थ करके सन्तजनोंकी मर्याद विषे समाप्त होते हैं तब इस मनुष्यका चित्त आरंभ होता है ताते त- सिद्ध हुआ कि जैसे आपको पहिचाने बिना भगवत् मौ नही पहिचाने सक्ता तैसे ही यथार्थरूप चैतन्यकी पहिचान बिना पाल्लोकेको भी मलीप्रकार नहीं पहिचान सका ताते अपने मनुका पहिचानना भगवत्के पहिचाननेकी कुजी है और पाल्लोकेके पहिचाननेकी भी कुजी है पर धर्मकी प्रतीतिकार मलीप्रकार अपना पहिचानना है इसी कारणसे मैंने अपने आपका पहिचानना भगवत्के चरण किया है पर तभी इस जीवका जो यथार्थ रूप है सो तिसको मैंने मसिद्ध नहीं कहा और सन्तो ते भी उस स्वरूपके कहतेको राजादेका है सो कि इस जीवकी बुद्धि उस गुणभेदको समझ नहीं सकी और भगवत्की सम्पूर्ण पहिचान और मलीप्रकारका मलीप्रकार देखता उसी यथार्थ स्वरूपके ज्ञात करके होता है ताते तबही पुरुषार्थकर कि जिसमें अभ्यास और यत्नकरके उस यथार्थरूपको अपने अन्दर देखे काहेसे कि उस स्वरूपका देखना अपतेहीं विषे होता है और जब उस स्वरूपकी वाता सुनकर हृदयमें नाजा है तब तेरी प्रतीतिही नहीं होजावेगी इसकरके कि बहुत पुरुषों ने भगवत्के यथार्थरूपके लक्षण श्रवण किये हैं तब इनकी प्रतीति नष्टहो गई है और बुद्धिकी हीनता करके संशयको प्राप्त होये है और ईश्वरका नतकार करके महादीठ हुये हैं सो तिसका तात्पर्य यह है कि जब तैरे विषे भगवत्के यथार्थस्वरूप श्रवण करनेका शक्ति नहीं जव तू उस स्वरूपकी वाता श्रवण करके आप विषे कर्णकर प्रमाण करसकोगा इसी प्रकार से परमस्वरूपका वातान धर्मशास्त्रविषे भी नहीं कहा काहे से कि जब सिसारी जीव इस भेदको श्रवण करेगे तब प्रतीति मोहीन होजावेगे ताते सर्वजनों को इसप्रकार आज्ञा करी है कि जीवोंकी बुद्धि अनुसार उपदेश करो और इनको भेद गुणभेद और सहज स्वरूपकी वाता प्रकट करके न कहो काहे से जो इन जीवोंविषे ऐसे सूक्ष्म वचन सुनकर इनकी प्रतीति दूर होजावेगी ताते सब धर्महीनता को प्राप्त होवेगे इसीकरके जीवोंकी बुद्धि अनुसार वचन कहना विशेष है पर तैने जव मलीप्रकार समझा कि इस मनुष्यका चैतन्यस्वरूप अपने आप करके द्रियत है और जीवका होना शरीरके अधीन नहीं ताते मते का अर्थ यह नहीं कि चैतन्यस्वरूपका नाश होवे पर मृत्युहोनेका अर्थ यह है कि जब इस जीवकी आत्मा इस यथार्थविषे

वर्तमान नहीं होती तब इसको मृत्युहुआ कहते हैं वहुतर परलोकविषे जीव के जीनेका भी अर्थ यहनहीं कि प्रथम इस जीवका नाशहोताहै फिर परलोकविषे उपजाआताहै ताते परलोकविषे सुरजीत होनेका अर्थ भी यही है कि यह जीव हमरे शरीरको अङ्गीकारकरताहै पर जिसप्रकार भगवत् इस जीवको और शरीर को उत्पन्नकरताहै सो किसी भ्रानुषकी बुद्धिविषे नहीं आता काहेसे कि भगवत् की कर्तृति विषे कठिनता और सुगमता नहीं कही जाती पर बहुत पुरुष यो भी कहते हैं कि परलोकविषे इस जीवको यही शरीर मिलताहै सो यह वाचा अयोग्य है काहेसे कि यह शरीर बोड़े की नाई है सो जब घोड़ा बदलजावे तब सवार तो नहीं बदलता और यह शरीर सो बाल्याविस्था से बृद्धविस्थापर्यंत परिणामको पाताजाताहै और आहारके सम्बन्ध करके सर्वांगोंका स्वरूप और से औरही होताजाताहै पर जीव तो कदाचित् अन्यथा नहीं होता सो जिन पुरुषोंने एमाही निश्चयकियाहै कि परलोकविषे वहुतर यही शरीर सावधान होताहै सो तिनके वचनपर और भी अनेक प्रश्नों और संशय उपजते हैं और उनका उत्तर ऐसा निर्बलहोताहै कि संशय को दूर नहीं करसक्ता जैसे कोई प्रश्न करे कि एक मनुष्य को कोई दूसरा मनुष्य भक्षणकरजावे तब वह तो दोनों शरीरके अंग इकट्ठे हो जावे हैं वहुतर परलोकविषे एंरही शरीर दोनों जीवोंको क्योंकर मिलताहै अथवा जब कोई अगहीन पुरुषहोवे और वह भोजनकरे तब परलोक विषे भजन करनेवालेको अगहीनकरके भजनका फल भोगनापड़ेगा कि अंगों के संयुक्त पर जब कहिये कि वह पुरुष पुण्य के फलको अगहीनही भोगता है तब उत्तर यह कि स्वर्गविषे तो अगहीनही कोई नहीं होता वहुतर जब कहिये कि अंगोंसंयुक्त भोगताहै तब उत्तर यह कि भजनके समयविषे और कर्तृति म तो वह अगथेही नहीं फलभोगने के समय क्योंकर संगीहृये सो एमे प्रश्ना करके उनका उत्तर मद और निर्बलहोताहै और संशयको दूर नहीं करसके ताते प्रसिद्धहुआ कि परलोकविषे अवश्यही इस जीवकी पूर्व शरीरकी अपेक्षा नहीं रहती और जिन्होंने इसप्रकार समझाहै कि परलोकविषे जीवको वंही शरीर कि मिलताहै सो निम का कारण यह है कि उन्होंने अपने आपको शरीरही जानाहै ताते यह एमेही समझने हैं कि शरीरके और होने करके जीवभी ओग होजाताहै सो इस वचन का मूलही मिथ्या है काहे से कि शरीर भिन्नहै और जीव भिन्न है ॥



## पांचवां सर्ग ॥

वहृरि जव तू इस प्रकार मशुकरे तर्क केते शास्त्रके प्रतिविषे यह वार्ता प्रमाण करते हैं कि जव हम जीवका शरीर छूटता है तब प्रथम जीवही नाश होजाता है फिर परलोकविषे जीवको सुखीतकरके शरीर पहरावते हैं और जिस प्रकार तुमने आगे कहा है सो उस वचनके साथ इस का विरुद्ध होता है ताते दोनों वचनों में से किसविषे प्रतीति करिये सो तिसका उत्तर यह है कि जो कोई पुरुष किसी दूसरे पुरुष के कहनेपर भटकता है सो अधाकहाता है और जिन्हों ने यही निश्चय किया है कि मृत्यु होने करके प्रथम जीवभी नाशताको पावता है सो तिनकी प्रतीति अपने वृक्ष करके भी नहीं और शास्त्रों की विद्या करके भी नहीं झाड़े से कि जव उगको अपनी वृक्ष होती तब इस वार्ताको प्रत्यक्ष देखने कि शरीरके मरने करके जीवका नाश नहीं होता और जव शास्त्रोंकी विद्यापर प्रतीतिकरते तो भगवत् और सन्तों जनों के वचनोंको पढ़कर समझलेते कि यह जीव अविनाशी है और शरीरके नाश हुये से जीव अपने आपविषे स्थित रहता है ताते यह वार्ता भी सतजनोंके वचनोंविषे प्रसिद्ध है कि परलोकविषे दो प्रकारके जीव होते हैं सो एक तो भाग्यहीन है और दूसरे भाग्यवान् है पर जो भाग्यवान् जीव है सो बड़ाई को पावते है और अविनाशीरूप है इसीपर महाराजने भी कहा है कि जिन्हों ने मेरे मार्गविषे अपने शरीर का त्याग किया है तिनको मृत्यु हुआ न जानो और वह उत्तमपुरुष मेरी वरुशीश पायकर सर्वदा आनन्दविषे रहते है वहृरि जीव भाग्यहीन है तिनका भी नाश नहीं होता इसी पर एकवार्ता है कि जव लड़ाईविषे एकवार बहुत मनुष्य मृत्यु हुये और महापुरुषकी जीत हुई तब मृत्यु हुये पुरुषों से महापुरुष कहने लगे कि हे भाई ! जिस प्रकार मुझको भगवत् की आज्ञा हुई थी कि तेरी जीत होवेगी सो तिसको तो मैंने प्रत्यक्ष देखा है पर जिस प्रकार भगवत् ने कहाया कि मैं तामसीमनुष्योंको परलोकविषे दण्ड और कष्ट देऊंगा सो उसदृष्टकों तुमने भी पाया है कि नहीं पाया तब महापुरुषके साथ वालों ने पूछा कि यह मृतक मांश की नाई है तुम इनके साथ वचन क्योंकर कहते हो तब महापुरुषने कहा कि जिस महाराजकी सामर्थ्यविषे मैं पराधीन हूँ तिसकी इहाईकरके कहता हूँ कि यह मृतक पुरुष मेरे वचनोंको तुमसे अधिक सुनते है पर इनको उचर देनेकी आज्ञा नहीं

नति प्रसिद्ध हुआ कि जीव का मरना तो धर्मशास्त्र विषे भी नहीं कहा कहिये कि पितृपूजाके निमित्त श्राद्ध और दानआदिक कर्म जो करणीय कहे हैं तब इस करके जाना जाता है कि जीवका नाश नहीं होता पर इस प्रकार धर्मशास्त्र विषे भी कहा है कि मृत्यु होने करके जीवका शरीर और स्थान परिणामको पाता है अर्थ यह कि शरीर भी दूसरी पहरता है और स्थित भी और स्थान विषे होता है पर जो पुण्यवान् जीव है वे स्वर्गविषे सुख पाते हैं और पापी नरकों के दुःखोंको भोगते हैं ताने तू इसवार्त्ताको निस्सन्देह जान कि शरीरके नाश करके तेरे स्वरूप और स्वभावो का नाश नहीं होता और इन्द्रियों और शारीरिक व्यवहार सब दूर हो जाता है जैसे घोड़ेके मरनेसे सवार नहीं मरता पर तो भी पियादा रहजाता है और उसका जो अपना स्वभाव और क्रिया है सो ज्योंका त्यों बना रहता है तैसेही शरीररूपी घोड़े के नाश होने से तेरा नाश नहीं होता कहिये कि तेरा स्वरूप सवारकी नाई शरीररूपी घोड़े से भिन्न है इसी कारण से जिन पुरुषों ने शरीर और इन्द्रियों का विस्मरण किया है और अपने चैतन्य स्वरूपविषे स्थित हुये हैं और भजनकी एकत्रता करके चित्तविषे लीन हुये हैं तिनको पग्लोक की भवस्था प्रत्यक्ष भास आती है इसका कारण यह है कि यद्यपि उनसे प्राणोंकी समान वृत्ति विपर्यय नहीं हुई पर चित्तके स्थिर होने से प्राण चेतना भी उठर जाती है ताने भगवत्के दर्शन को भी वे प्रत्यक्ष देखते हैं और उनके चित्तकी वृत्ति किमी पदार्थ विषे आसक्त नहीं होती इसी कारणसे उनको जीवन्मुक्त कहते हैं अर्थात् जो भेद लोगोंको मरनेके पीछे प्रकट होता है वह उनको चित्तकी एकत्र अवस्था में जीवितेही सुन जाता है और प्रत्यक्ष देखते हैं फिर जब उस अवस्था से उत्थान होकर इन्द्रियों के देश में आते हैं तब तिनको जाग्रत विषे भी उस अवस्था का स्मरण रहता है सो जब एकत्रता विषे सूक्ष्म स्वरूप करके स्वर्गको देखने हैं तब जाग्रत में प्रसन्नता और आनन्द उनके हृदयविषे रहता है और जब अकस्मान् करके नरक की देखते हैं तब जाग्रत विषे उनको भय मत्तुव प्रकट होती है ताने जो कुछ परलोककी वार्त्ता उनको जाग्रत में स्मरणविषे गड़जाती है सो जगत्विषे उमका वर्णन करके बताय देते हैं और उम एकत्रता विषे जैसा सुख्य उनके चित्त विषे फुरता है सो सत्पस्वरूप होता है और दृष्टान्तमात्र उमका वर्णन भी करते हैं कि एकसमय महापुरुष समाधि विषे बैठे थे तब उन्होंने अपने हाथको

ऊपरको करके फिर खैचलिया तब लोगोंने पूछा कि जी तुमने हाथ किमतिमत्त पसाराया तब महापुरुषने कहा कि स्वर्गके अमृतफलको भेने देखाया और उसको जगत्त्रिपे लावनेकी भेने मनुसाकी थी पर शीघ्रही वह फल छिप गया ताते तू इस बातसे ऐसा अनुमात्त तू करना कि वह फल जगत्त्रिपे आने योग्य है और महापुरुष उसके लानेमें समर्थ न हुये सो ऐसे जानना अयोग्य है काहेसे कि सूक्ष्मदेशका फल इस जगत्त्रिपे किसी प्रकार आता ही नहीं इसकरके कि यह आधिभौतिक जगत्स्थल और जड़स्वरूप है और इसवचनका खोलनाभी बहुत विस्तार करके होता है और तेरा प्रयाजन भी इस विषे कुछ नहीं पर केते विद्वान् भी इसी संशयविषे डब गये हैं कि तब अमृतफल कसाया और महापुरुषने क्याकर देखाया सो ऐसीही प्रश्न उत्तर करके इस विषे पूछे विवाद करते हैं और अपने कल्याण की बातों को अगीकार नहीं करते बहुरि अपनी विद्यापर अभिमानी होते हैं सो वे महामूढ़ हैं सो इसका तारार्थ यह है मनुजान परलोकको अपने हृदय की दृष्टि करके देखने हैं और उनका देखना किसी के वचनों और युक्ति करके नहीं होता ताते वे इस जगत्त्रिपे की स्थिति को स्थाग कर चेतन्य देश विषे जाते हैं और परलोकको प्रत्यक्ष देखते हैं सो परलोकका देखना भी मनुजनों के बलका एक अंग है ताते प्रसिद्ध हुआ कि परलोककी अवस्था द्वापकार करके देखसकते हैं सो एकतो यह है कि जब प्राण चेतना के नाश होने से शरीर मृत्यु होजाता है तो भी यह जीव परलोकको प्रत्यक्ष देखता है और दूसरे तब भजनकी एकत्रता करके प्राणोंकी वृत्ति ठहर जाती है तब समझके बल करके परलोकको प्रत्यक्ष देखता है और इन्द्रियादिक देश विषे परलोकका प्रत्यक्ष देखना असंभव है जैसे चोदइलो रुद्रशाण्ड पाऊ सईविषे नहीं समाते तैसेही आत्मस्वर्गकी एक राई सर्वव्यापक विषे नहीं समापसकती और जैसे अत्रणइन्द्रिय किसी प्रकार पदार्थके रूपको नहीं देखसकती तैसेही सर्वइन्द्रियां चेतन्यदेश की वार्ताको नहीं देख सकती ताते सूक्ष्मदेशको देखनेदारी इन्द्रियां चेतन्यदेश की वार्ताको नहीं देख सकती ताते सूक्ष्मदेशको देखनेदारी इन्द्रियां भी सूक्ष्म हैं ॥

छठा सर्ग ॥

यमपार्थके लक्षके वर्णनमें ॥ इसका फल है कि मनुजोंने जानने जात तू कि अगमागरीका कष्टभी तुमको पहिंचानता उचिन देपर वदत

कण्ठभी दो प्रकार का है सो एक दु खितो शरीरके साथ जीवको होता है और दूसरी शरीरी कण्ठ है सो शरीरी दु खको तो सबकोई जानता है पर जीवके दु खको कोई नहीं पहिचानता पर जिसने अपने आपको पहिचाना है और हृदयका स्वामी उसको प्रत्यक्ष हुआ है सो जीवके दु खको वही पहिचानता है काहे मे कि वेह अप्रता होना शरीरके आश्रित नहीं जानता और ऐसे भी जानता है कि शरीरके नाश हुये से मेरा नाश नहीं होता और मृत्युके समय शरीर और इन्द्रियों का वियोग हो जावेगा और ऐसे ही धन पुत्रादिक सम्बन्धी सुन्दर दृष्टि पशु इष्ट मित्र धरती आकाशादिक जो पदार्थ इन्द्रियों करके जाने जाते हैं सो सबही दूर हो जावेंगे और जिस मनुष्यकी प्रतीति इन पदार्थों विषे दृढ़ हुई है और जिसने अपना आप स्थूलता विषे व्यथमान किया है सो वह इनके वियोग करके निस्मन्देह दु खी होता है और जिस पुरुषका हृदय सर्वपदार्थों से विरक्त है और भगवत्के बिना और किसी पदार्थके साथ उसकी प्रीति नहीं उसको मृत्युके समय दु ख कुछ नहीं होता और अधिक आनन्दको प्राप्ता है काहे मे कि जिसके हृदयविषे भगवत्की प्रीति दृढ़ हुई है और जिसके चित्तविषे अज्ञानका रवस्य प्रकट हुआ है और सर्वदा अपना आप जिसने भगवत्की शोर लगाया है और मायाके सर्वपदार्थोंको जिस जानकर आसक्त नहीं हुआ है तब मृत्युके समय वह पुरुष निस्मन्देह अपने प्रियतमको पहुँचता है और जिन पदार्थोंकरके चित्तको विक्षेपता होती थी सो सबही दूर हो जाते हैं ताते परमशान्ति को प्राप्त है पर अब तु इस वार्ता को विचार कर देख कि जिस पुरुषने शरीरके नाश हुये से भी आपको अनिनाशी जाना और यों भी जाना कि सर्व मायिक पदार्थ ससार में ही रह जावेंगे इनमें भी अधिक प्रीति है तो उसको अवश्य ही यह निश्चय हो जावेगा कि जब मैं अन्नसमय अपने प्रियतम पदार्थोंसे अलग होऊंगा तब निस्मन्देह मुझको इनके वियोग करके इ च प्राप्त होवेगा इसी पर महापुरुषने भी कहा है कि जिन पदार्थके साथ किसी की प्रीति है सो विसके वियोग करके अवश्य ही दु खी होता है और जब इस प्रकार जाने कि मेरी प्रीति केवल भगवत्के माय है और मायाके पदार्थों में से प्राणों की रक्षामात्र त्वान पानादिक व्यवहार समयके साथ प्रदण करके और समस्त पदार्थोंको अपना शत्रु माने तब वह भी निस्मन्देह जातेगा कि जब मेरा शरीर नाश होगा और मायाके पदार्थ दूर होवेंगे तब मैं अपने

प्रियतम महाराज को आमंत्रण भुली हूँ। ताते जिस पुरुषने इस बचन के भेदको समझा है वह यममार्ग के कष्टोंको निस्संशय जानता है कि वैरागी पुरुष मायाके वियोगकरके सुखको प्राप्त होवेंगे और विपरीत जीव विपरीतके वियोगकरके अधिक दुःखी होवेंगे तब इस करके हम बचनका अर्थ प्राप्त करते हैं कि यह माया मिन सुखोंको स्वर्गरूपा है और जिज्ञासु जन मायाको भी नरक जानते हैं ताते मायाका वियोग मनुष्योंको नरकरूप होता है और वैरागी पुरुष सुखको यावते हैं।

सातवां सर्ग ॥

जानते जानते कि जब तने यममार्गके कष्टोंको पहिचाना कि इस दुःखका कारण मायाकी प्रीति है तब ऐमे भी जान कि यह दुःख सर्व जीवोंको एक समान नहीं होते किसीको अधिक होता है किसीको अल्प होता है अर्थात् जितनी प्रीति इस मनुष्यकी मायाके पदार्थों और भोगके साथ होती है तैताही दुःखकी पावता है ताते जिस पुरुषके पास एकही पदार्थ होवे और किसी पुरुषके पास बहुत सामग्री रहलुवे पशु मनुष्यादिके सर्व पदार्थ होवे तब ऐमे सम्पदा रखने वाले पुरुषसे एक सम्पदावाली पुरुषको निस्सन्देह दुःख अलग होता है जैसे किसी पुरुषका एक घोड़ा चोरी जावे और किसी दूसरे पुरुषके दस घोड़े चोरी जावें सो जिस पुरुषका एक घोड़ा चोरी गया है तिसको दस घोड़े चोरी जानेवाले से दुःख अल्प होता है और जब किसी पुरुषका आश्रयन देण्ड करके राजा हरलुवे और किसीका सारा धन हरा जावे सो सर्व धनवाला अधिक दुःखको पावता है और जिसका सर्व धन भी हरा जावे और स्त्री पुत्रादिक भी गरी जावे और अपने देशसे भी निकाला जावे तब वह सर्व धन जानेवाले से भी अधिक कष्टको पावता है तैसही मृत्युका अर्थ है कि जब इस जीवको गरीब शूद्र जाता है तब स्त्री पुत्रादिक सम्बन्धी मायाके सर्व पदार्थ दूर होने हैं और यह जीव अकेला रहजाता है ताते जो पुरुष मायाकी सामग्री विषे अधिक आसक्त होता है सो दुःखी भी अधिक होता है और जिस पुरुषको प्रीति पदार्थों में अल्प है वह पदार्थोंके वियोग करके दुःखी भी अल्पही होता है इसीपर महाराजने भी कहा है कि जिस मनुष्यको सर्व सुख और संपदा प्राप्त हुई है और वह पुरुष सर्व मायाके पदार्थों विषे अधिक आसक्त है सो दुःखी भी अधिक होता है और इन पदार्थों विषे

जिसकी प्रीति अल्प है सो, पदार्थोंके वियोगसे भी अल्प दुःखी होता है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि मनमुक्तापुरुषको यममार्गविषे ऐसा कष्ट होता है कि उसको अजगदीकाटते हैं और उन अजगदोंके सो-सो-शीश होते हैं ऐसे महा-अजगद विषयीजीवोंको सर्वदा डसते रहते हैं और जिसके बुद्धिरूपी नेत्र खुले हुये हैं सोइनअजगदोंको प्रत्यक्ष देखता है और बुद्धिहीन पुरुष इसप्रकार कहते हैं कि हमने तो बहुत मृतक पुरुष देखे हैं और हमारे नेत्रोंकी दृष्टिभी क्षीण है पर हमको तो कोई भी सर्प दृष्टि नहीं आता जो प्राणीको डसता होवे ताते ऐसे पुरुषको इसप्रकार जानना चाहिये कि यह महाअजगद जीवके हृदयविषे होते हैं और उसी जीवको डसते हैं और अज्ञानशरीरको डसने होते तब और कोई भी देवसर्पकी फिर वह एमे सर्प है कि उस मनमुक्ताके हृदयविषे इसही समारमें डसते थे पर यह मूर्खो अचेतताफरके जातता तथा ताने इसका तात्पर्य यह है कि यह सर्प मनके मलिन स्वभाव है और एक ते स्वभाव से जो अवगुणों की शाला उपजती है सो सर्पोंके शीश घर्षणकिये है पर इतकी उत्पत्तिका कारण प्राया कीभीति है जैसे ईर्ष्या क्रोधरता कुटिलता कपटमान चपनता वैराभाव मानकी प्रीति ईत्यादिक जो बुरे स्वभावहैं सो येही सर्प हैं और इन अजगदोंका अर्थ स्वरूप और अरुया और इतके शीशोंका विस्तार जो है सो केवल भगवत्की कृपासे अनुभव के द्वारे अनुप्य देखसके हैं काहे से कि जितनी बुरी प्रकृति की शाला है तिनकी भगवत्की दया और अनुभव करके पहिचाना जाता है और मुक्तकी सर्व मलिन स्वभावों की जानसी नहीं पर यह मलिन स्वभाव मनमुक्ताके हृदयविषे आगे भी थे इसीकरके जो मनमुक्तापुरुष भगवत् और सतजनों की प्रीति से शून्य होता है और सर्वदामायाके पदार्थोंविषे आसक्त रहता है तिमको मलिन स्वभावरूपी सर्प जो उसके हृदयविषे थे सो यममार्गमें डसते हैं और इन सर्पों का डमना महादुःखरूपे है काहेंसे कि जब उसको स्थूल सर्प डमने तब किसी समय क्षणमात्र उमरो विद्याम भी देने पर यह मनके स्वभावरूपी सर्प जो उसके हृदय विषे डमने हैं सो इनसे फुदाहित मुक्त नहीं होता जैसे किसी पुरुषकी प्रीति अपनी दासीके मायहोवे और वह उस प्रीतिको आगे न जानता होवे और किसीकाण करके उस दासीका वियोग होजावे तब उस पुरुषको प्रीतिरूपी सर्प डसने है यद्यपि उसमे आगे अचेतभीहोता है तोभी वियोगकेमग

उसको उस प्रीति की छोटे महादंड वदती है सो वह प्रीतिरूपी अजर भी उसके  
 हृदय विषे आगे ही स्थित था और इसनाथा पर मुखना करके पहिचानता स भा  
 बहुरि वियोग विषे उसका इसना प्रेमसु देखता है अर्थ यह है कि जैसे वह उस  
 को प्रीति करके उसकी प्रीति विषे सुख पावता था वैसे ही वियोग करके वह ही प्रीति  
 उसको सुख देती है काहे से कि जो इस दासी के माय इसकी प्रीति ना होती तो  
 उसके वियोग करके दुःख भी भवता इसी प्रकार मनमुख की जो प्रीति मायोके  
 साथ ही तो है तेसकरके गीयोके योग विषे आनंदित होता है बहुरि उसी प्रीति  
 करके वियोग विषे दुःखी होता है तति मान और ऐश्वर्यकी प्रीति जो है सो विस  
 की दर्पना अजरकी नाई है और धनकी प्रीति सर्पकी नाई है और सुन्दरों की  
 प्रीति बिच्छूकी नाई है वैसे ही जिस जिसकी प्रीति इस मनमुखके हृदय विषे बढ़  
 होती है तब उसकरके निरसन्देह स्वको पविता है जैसे वह पुरुष दासीके वियोग  
 विषे पसदु भी होता है कि आपको अग्नि और जलमें डाला जाता है इस करके  
 कि प्रीतिरूपी सर्पके हमने में किसी प्रकार छूटे वैसे ही जिस जीवकी यसमार्ग  
 विषे योगके वियोगका दुःख होता है तब वह भी चाहता है कि जेव मुझको स्थित  
 सर्प और बिच्छू डसते तो भी मलाया काहे से कि उनके हमने करके शरीरको  
 दुःख होता और यह दुःख भी हृदयको डमता है और कोई इसको देखता भी नहीं  
 जी मेरी छप करके तोने प्रसिद्ध हुआ कि यह जीव अपने दुःखके बीज को इसी  
 संसारसे अपने साथ ही लेजाता है हमीपर महापुरुषने भी कहा है कि यह तुम्हारे  
 अशुभकर्म ही तुमको दुःख देते हैं और कोई तुमको दुःख देनेवाला नहीं हमीपर  
 महाराजका भवने है कि अत्र तुम्हारी प्रीति और निश्चय दृढ़ होवे तब तुम तरको  
 को इसी संसार विषे दिखनेगो काहे मे कि मनसुबोंका हृदय यहा भी त्राक के  
 दुःखोंकरके पूर्ण है सो महाराजने भी इस प्रकार तो नहीं कहा कि मनसुब पर  
 लोक विषे ही नरको पावेग पर यह कहा कि यहाही नरके उनके साथ है और  
 उसमे वे पूर्ण है अर्थात् हमी और मे उनका हृदय नरके रूप है ॥ १ ॥  
 कि जो कि जा, कि ज्य आठवां सर्ग ॥  
 कि जो कि जा, कि ज्य अश्विनके कर्तव्य ॥  
 कि जो कि जा, कि ज्य अश्विनके कर्तव्य ॥  
 बहुरि जेवत् प्रेमके कि धर्मगति विषे तो स्थितिसे उनसर्गका दे  
 लना कहा है और जैसे सर्प तुमने हृदयविषे धरुन किये है सो स्थितिनेत्राकरके

नहीं दीखसके जाते इसका उच्चार यह है कि यह सर्प भी दीखते हैं पर जिस मृतक प्राणीको डसते हैं वह ही देखता है और इसा ससारके लोग उनको नहीं देखसके काहेसे कि सूक्ष्मदृशको पदार्थ स्थूल नेत्रोंसे नहीं देखे जाते तब यह सर्प प्राणी को स्थूल सर्पोंकी नाई नहीं डसते जो सबकोई प्रकट देखलेवे और उस मृतकजीव को स्थूल सर्पोंकी नाई मृत्युस डसते हुये दीखते हैं जैसे कोई स्वप्न विषे देखे कि सर्प मुझको काटता है और जो पुरुष और कोई उसके निकट बैठे होवे तिसको कोई सर्प नष्टि नहीं आती तब उस स्वप्न देखनेवालेको वह सर्प अत्यदी दीखता है और उसके डसनेका दुःखको भी प्रत्यक्ष भावता है और जाग्रत पुरुषके ज्ञानमें सर्प नहीं भासता और उस जाग्रत पुरुषको जो सर्प नहीं भासता तिसके उस स्वप्न देखनेवाले पुरुषको सर्प के डसनेका दुःख कुर्बा खरिडन नहीं होता काहेसे कि स्वप्न देखते पुरुषको सर्प डसनेका दुःख ऐसे प्रत्यक्ष है जैसे किसी मनुष्यको जाग्रत विषे फट्टे होवे और योंभी है कि जब कोई स्वप्न विषे देखे कि मुझको सर्पने डसा तब इसका फल यह होगा कि जाग्रत विषे उसको शत्रु जीनलेवेगा सो इस वृष्टको मानसी दुःख कहते हैं और यह विशेष फट्टे काहेसे कि वह पुरुष इस प्रकार चाहता है कि जो मुझको जाग्रत विषे मर्पडमता वों भलाथा पर किसी प्रकार मेरी शत्रुसे रक्षा होवे क्योंकि सर्पके डसनेसे शत्रुका दुःख अविक होता है इसकारके कि शत्रुका दुःख हृदयको महुँ चता है और सर्प तो शरीरको डमता है वदरि जेव तू इस प्रकार प्रश्न करे कि जब प्राणीको डसते गले सर्पसी स्वप्नकी नाई हुये तब प्रसिद्ध हुआ कि वह सर्प भी सकल्पमात्र है अर्थात् उस पुरुषको वास्तवमें कोई सर्प नहीं डसता पर अपने सकल्प करके दुःख मानता है सो तिसका उत्तर यह है कि ऐसा जानना भी बड़ी मूर्खता है काहेसे कि जब विचारकी दृष्टिमें देखिये तब वे सर्प निस्सन्देह प्रत्यक्ष इसकारके जिम पदार्थका सुख और दुःख प्रकट प्रोस होवे तिसको प्रत्यक्ष कहते हैं और संकल्पमात्रका दुःख यह है कि उस पदार्थका सुख दुःख प्रत्यक्ष न भासे तब जब तुम्हको स्वप्न विषे कोई पदार्थ दृष्टि लावे और तबने उसका सुख अवका दुःख पाया तब वहा पदार्थ तुम्हको तो प्रत्यक्ष दृष्टा सो यद्यपि और कोई उसको नहीं देखता पर तौ भी तुम्हको प्रत्यक्ष है और जिम पदार्थ को सबही लोग देखे और तुम्हको वह पदार्थ न भासे तब तेरी जान विषे वह पदार्थ भिष्या दोता है इसी प्रकार स्वप्न देखनेवाले और मृतक पुरुषको जो दुःख भाधे होना



भोगको इस जीवको मनचाहे और सतजनोंके बचनोंविषे वह भोगनिश्चय है सो जो यह मनुष्य उस समय विषे अपनी रुचि सतजनोंके बचनोंविषे अधिक देखे और मत्की वासनाका त्यागकरे तब जानिये कि उस पुरुषकी प्रीति श्रीभागवतके साथ अधिक है सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे दोपुरुषोंके साथ किसीकी प्रीतिहोवे और अक्रस्मात् उनी दोनों पुरुषोंमें आपसविषे विरुद्ध होजावे तब जिस पुरुषके साथ वह मनुष्य अपनी खैर प्रबल देखे तब जानिये कि उसकी प्रीति उसी पुरुषके साथ अधिक है तैसेही जबलगा इस जीवकी अवस्था सत जनोंकी आज्ञानुसार होवे तबलगा मुखके कहने क्रिके कुछ लाग नहीं होता और प्रेसा कहनाही अर्थ है इसीपरमहापुरुषतें भी कहा है कि जो पुरुष सर्वदा सुखतें ऐसेही कहते हैं कि एक भगवत्तदी सत्य स्वरूप है और सबही नाशवन्त हैं परमायाके पदार्थोंविषे उनकी प्रीति अधिक है और इस बचनके कहनेपरही आपको सुकें किमात्वाहते हैं तब भगवत् उनको इस प्रकार कहते हैं कि तुम मूर्ख हो किहिमे कि तुम्हारी तो मायाही के साथ अधिक प्रीतिहो और सुखतें भगवत् हीको सत्य स्वरूप कहते हो ताते तुम अपने बचनहीविषे स्थि हो सो इसाकके प्रसिद्ध श्रुती कि जितके बुद्धिरूपी नेत्र खुले हैं सो भूखमदृष्टि केसाथ जिस प्रकार प्रीत्यक्ष देखते हैं कि मगसार्गके कष्टसे कोई विरलहीं मुक्त है होवेगा और बहुत मनुष्यातो उस दुखसे नाखूँगे पर अधिक और अल्प दुखका भेद रहेगा जैसे मायाके पदार्थोंकी आसक्तिविषे जीवोंकी अवस्थाका भेद है जैसेही मगसार्गविषेभी दुखका भेद हीवेगा अर्थ यह कि कोई पुरुषात्रिकालपर्यन्त उसही दुखविषे रहेगा और कोई पुरुषात्रिकाल दुखको भोगकर मुक्त होवेगा ॥ १ ॥

**नवांसर्ग ॥**

नवांसर्ग की प्रीति है तब भगवत् प्रीतिविषे मनुष्यकी प्रीतिके वर्णन किया है ॥ १ ॥

चिहुरि जर्मन्नुहिर्मर्कार प्रभकरे कि किंजने पुरुषे सो इस प्रकार कहते हो कि यमसार्गके सुखको कारण मायाहीकी प्रीतिहै तब हमको तो हमें दुःखका कुछ भयही नहीं कोहसे कि हिमसाचित्त मायाके पदार्थोंमें आसक्तिही नहीं पदार्थोंका होना अथवा न होना हमको एक समान हीं सो इसका उत्तर यह कि ऐसा अभिमान करना कठिन है और ऐसे अभिमान करनेवाले भी महाभूद है काहेते कि जबलगा अपने मनकी परीक्षा न करिये तबलगा ऐसी अवस्थाका अभिमान

करना व्यर्थ है सो परीक्षा यह है कि जब उस पुरुष का धन तंस्कृत से जावे अथवा उसका पेशवर्ष नष्ट होवे और उसके भिलाप्रीलोग विमुक्त होकर निंदा करने लगे तिसपर भी उस पुरुषकी स्वस्वभानं बदले और तिसकी चित्तको खेदान्त प्रहृष्ट और ऐसे जाने कि किमी और का भित्त हंसगाया है और किमी और का मान दूर होता है और मेरा कुब्र नहीं गया तब जानिये कि उसका कहना सत्य है और उत्तम अवस्था को प्राप्त हुआ है पर जब जरा हंसका भित्त धोर माना दूर नहीं हुआ होवे तब चादिये कि अपनी परीक्षा के निमित्त आप ही धिन का त्याग करे और जिसे नगर विप्रे संका ज्ञान होवे तिस नगरको छोड़ जवे और फिर ऐसी परीक्षा करके आपको निर्मल और भिले प्रदेखे तब जाते कि मुक्तको परमपदकी प्राप्ति हुई है और जब लग आपको इस परीक्षा विपे परिपक्व न देवे तब लगे उत्तम अवस्था का अभिमान करना व्यर्थ है का हे से कि केते पुरुष सप्तन्धियों के समो गविषे इम प्रकार जातके हैं कि स्त्री पुत्रादिकोंके साथ हमारी प्रीति कुब्राने ही पर जब उनका श्रियोपार होता है तब उनके हृदय विषे जो प्रीतिरूपी अग्नि क्षिपी हुई प्रीति सो अहं होइ आवती है और उसकी तपन करके त्रावरे हो जाते हैं तति जो कोई पुरुष स्त्रीको समसार्ग के कष्टसे मुक्त किया जावे तब उसको कि सी स्थितादा विषे आसक्त होना प्रमाणा नहीं और मायाका अवधार अवश्यसे वा कथ्यमाव मितना भला है सो जैसे इस सनुष्यको मेलके त्यागने की अपेक्षा अवश्यसे माहोती है और अवश्यसे मलमूत्र के स्थान विषे जाय तैवता है तैसे ही जीवको चाहिये कि आहु हारकी विभिलापा भी इसी प्रकार का दर्पसात्र होवे और ऐमे जाना कि जैसे मेल त्याग विषे विना गरीको सुख होता है तैसे ही आहारके विना भी गरीकी किया सिद्ध नहीं होती और ऐसे ही सब कार्यों विषे भय और समं संयुक्त भवे तद्विपरि जब मायाके भोगोंसे यह मनुष्य अपना भित्त विपिक केरमके तब चादिये कि जो पुरुषार्थ और प्रेमरके भजन विषे सार्धना होके भजत के और रहस्यको माया के महस्यसे पूर्व लक्ष्मी नहरि सर्भिदा आर्ते चित्तकी परीक्षा कपार है कि भय चित्त अपनी वाग्जाकी और अधिक खीचता है अथवा जगवत और सुखजनकी आजा विषे अधिक प्रीति करता है सो जब इस प्रकार देखे कि गेरा चित्त अपनी वासनाका त्याग करके सुगम ही मन्नेजनोंकी आज्ञा सुधार व्रता है तब नित्य नदेह जाने कि मीनिस्मन्देह मगमार्गके चष्टसे मुक्त होजाओ और जिन अपने

मनको इस प्रकार न देखे तब जाने कि उस परमदुःखसे मुक्त होता कठिन है असा भगवत्की दर्या होवे तब मुक्त होसका है सो वह इन सब कृत्योंसे न्यारी है सो जब वह महाराज अपनी रूपाकरे तब दुःखसे मुक्त होता क्या आश्चर्य है ॥

### दशवां सर्ग ॥

आगिनी नरकों के मेलान में ताते जान तू कि मानसी नरकोंका अर्थ यह है कि वह दुःख केवल जीवको होता है और उस दुःखविषे शरीर का सम्बन्ध कुछ नहीं होता ताते जिस अग्नि करके शरीर को जलन होती है तिसको स्थूल नरक कहते हैं और जो अग्नि केवल मनहीको जलावती है तिसको मानसी नरक कहते हैं बहुरि मानसी नरककी जो अग्नि है सो तीन प्रकारकी होती है प्रथम तो स्थूल भोगोंके विषय की अग्नि जीव को जलावती है और दूसरी अग्नि अपमान और निराश और लज्जावानी की है बहुरि तीसरी अग्नि यह है कि भगवत्के दर्शनसे अप्राप्त रहनेका पश्चात्ताप इस जीवको जलावता है सो यह तीन प्रकारकी अग्नि केवल हृदयकोही तेषायमान करती है और इम दुःखका पूर्वेण शरीरपर कुछ नहीं होता ताते इसका वर्तान करना प्रमाण हुआ पर इन तीनों अग्नि का बीज यह जीव इमी ससारसे अपने साथ लेजाता है जैसे स्थूल दृष्टान्तों करके गर्णन करेगा पर प्रथम अग्नि जो भोगोंके वियोगकी कही है सो इसका वर्तान कुछ आगे भी किया है सो इस दुःख का कारण मायाकी प्रीति है अर्थ यह कि उसही प्रीति करके सुखी होता है और वियोगकरके उसी प्रीतिकरके दुःखी होता है ताते इस पुरुषकी प्रीति जो मायाके साथ है सो भोगोंको इस ससारविषे स्वर्ग की नाई भोगता है फिर नरकको प्राप्त होता है काहेसे कि यह मायाही इसकी प्रियतमथी सो जब उसका वियोग होता है तब महादुःखी होता है इस करके प्रसिद्ध हुआ कि एकही पदार्थ सुखका कारण भी होता है बहुरि दुःखका कारण भी वहही है पर उस पदार्थ का सुख और दुःख संयोग और वियोग करके होता है सो इस अग्निका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई महाराजा होवे और सर्व पृथ्वीमण्डल पर उसकी आज्ञा वर्तमान होवे और मर्बटा सुन्दर स्वरूपों का देवना उसको प्राप्त होवे और नानाप्रकारके दास और दासी और स्त्रिया सुन्दर और ताळ पायीये रमणीक स्थान और इसकी नाई और भी बड़े सुखको भोगता होवे बहुरि

अज्ञानकही कोई और गजा उसका विरोधी आनेकर प्राप्त होवे और उसको जी-  
तकर अपने अधीन करलेवे और उसके भ्रान के देखनेही उस महाराजा को  
कूकरो की टहल विपे लगवे धृति उसके देखतेही उसकी स्त्रियोंको अपनी दासी  
करावे और उसके दाम दासियों से अपनी टहल करावे और उसके भण्डार  
विपे जो रत्न और माणिक्य होवे सो सबही उमके राज्यों को देवे सो जब विचार  
कर देखिये तब उस राजाके शरीरपर दु ख कुछ प्राप्त नहीं हुआ पर राज्य और  
स्त्री पुत्र दास दासी भण्डार और और जो सर्व सुखोंके वियोगकी अग्नि है सो  
उसके हृदयको जलावती है और वह महाराजा अपने हृदय विपे धोपको ऐसा  
दु खी जानता है कि मैं किसी प्रकार मर जाऊ तो भला है जो इस दु ख से छूट सो  
यह दृष्टान्त स्थूल भोगों की अग्नि का है तत्ति प्रमिद्ध हुआ कि जितने माया  
के सुख अधिक होवे और वह पुरुष निष्कण्ठक उनको भोगता होवे सो तितना  
ही उनके वियोगकी अग्नि भी उसके हृदय को अधिक जलावती है और जिस  
के पास मायाकी सामग्री अधिक होवे और इन्द्रियादिक भोगभी उसको निर्यत्न  
प्राप्त होवे तब उनको वियोग भी उसके हृदय को अतिशय तपायमान करता  
है धृति यों भी है कि जिस वियोगकी अग्नि करके इस जीवका हृदय जलने  
लगता है तिसके समान स्थूल अग्नि का दृष्टान्त नहीं सम्भवता काहे से कि  
जब इस मनुष्य के शरीर को इस जगत् विपे कुछ दुःखभी होता है तब भी हृदय  
को सम्पूर्ण नहीं पहुँचता इस करके कि नेत्र और श्रवणदिक इन्द्रियोंकी कि-  
या विपे चित्तकी वृत्ति पसर जाती है तब दु खका भास निर्वृत्त हो जाता है और  
इन्द्रियों का व्यवहार भी हृदय को ऐसा पटल हो जाता है कि दु खका प्रवेश स-  
म्पूर्ण चित्त विपे पहुँचने नहीं देता जैसे जब कोई दु खी पुरुष अचानक निद्रा  
से जागता है तब उसको दु खकी पीड़ा अधिक भासने लगती है काहेसे कि  
उससमय विपे उस पुरुषका चित्त पमरा हुआ नहीं होता और जैसे जब कोई  
पुरुष निद्रा से अचानक जागे और इन्द्रियोंविपे चित्तकी वृत्ति पसरनेसे आगेही  
सुन्दर शब्द उमके श्रवण विपे पड़े तोगी उस शब्दविपे चित्तकी वृत्ति पकड़  
होती है पर जगन्मर्ग यह मनुष्य इस समागविपे जीवता है तबनग इन्द्रिय व्यव-  
हारके मूलसे कदाचित् निर्मल नहीं होता और जब इस जीवका शरीर छूटना है  
तब परलोकविपे जकेलादी रह जाना है और इन्द्रियोंकी विमेषना मचही घूर हो-

मनको इसप्रकार न देखे तब जाने कि उम-परमदुःखसे मुक्तहोना कठिन है असा भगवत्की दर्यादेवे तब मुक्त होसका है सो वह इन सब कर्तव्योंसे न्यारी है सो जब वह महाराज अपनी कृपाकरे तब दुःखसे मुक्तहोना क्या आश्चर्य है ॥

### दशवां सर्ग ॥

ताते जान तू कि मानसी नरकोंका अर्थ यह है कि वह दुःख केवल जीवों होता है और उम-दुःखविपे शरीर का सम्बन्ध कुछे नहीं होता ताते जिस अग्नि करके शरीर को जलन होती है तिसको स्थूल नरक कहते हैं और जो अग्नि केवल मनहीको जलावती है तिसको मानसी नरक कहते हैं बहुरि मानसी नरककी जो अग्नि है सो तीन प्रकारकी होती है प्रथम तो स्थूल भोगोंके वियोगकी अग्नि जीवको जलावती है १ और दूसरी अग्नि अपमान और निरासे और लज्जावानी की है २ बहुरि तीसरी अग्नि यह है कि भगवत्के दर्शनसे अप्राप्त रहनेका पश्चात्ताप इस जीवको जलावता है ३ सो यह तीन प्रकारकी अग्नि केवल हृदयको ही तपायमान करती है और इस दुःखका प्रवेश शरीरपर कुछ नहीं होता ताते इसको बखान करना प्रमाण हुआ पर इन तीनों अग्निका बीज यह जीव इसी संसारसे अपने साथ ले जाता है जैसे स्थूल दृष्टान्तों करके वर्णन करूंगापर प्रथम अग्नि जो भोगोंके वियोगकी कही है सो इसका बखान कुछ आगे मी किया है सो इस दुःखका कारण मायाकी प्रीति है अर्थ यह कि उसही प्रीति करके सुखी होता है और वियोगकरके उसी प्रीतिकरके दुःखी होता है ताते इस पुरुषकी प्रीति जो मायाके साथ है सो भोगोंको इस संसारविषे स्वर्ग की नाई भोगता है फिर नरकको प्राप्त होता है काहेसे कि यह मायाही इसकी प्रियतमथी सो जब उसका वियोग होता है तब महादुःखी होता है इस करके प्रसिद्ध हुआ कि एकही पदार्थ सुखका कारण मी होता है बहुरि दुःखका कारण मी वहही है पर उस पदार्थ का सुख और दुःख संयोग और वियोग करके होता है सो इस अग्निका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई महागजा होवे और सर्व प्रथीमयंदल पर उसकी आज्ञा चर्चमान होवे और सर्वदा सुन्दर स्वरूपों का देखना उसको प्राप्त होवे और नानाप्रकारके दास और दासी और स्त्रिया सुन्दर और ताल का चीने रमणीक स्थान और इसकी नाई और मी घड़े सुखको भोगता होवे बहुरि

उस पुरुष अपने भाई के मणि खानेवाले को लुई पर निंदा करता फाती त्पदर्थ जैसा  
 मलिन है तैसा अब तुम्हको नहीं भासता और परलोक विप्रेतसको प्रत्यक्ष देखेगा  
 इसी कारण से कहा है कि जब कोई मनुष्य स्वयं विप्रे आपको धृतराज की आहार  
 करती देखे तब इसकी व्यक्तियह है कि वह मनुष्य किसी पुरुषको निंदा करता होवे  
 बहुरि दृष्टान्त यह कि जैसे तू स्वामयिक ही किसी मीत के पीछे से पत्थर डारने  
 लगे और वह पत्थर तेरे घरमें जायकर पड़ते होवें और कोई पुरुष तुम्हसे कहे कि  
 तुम्हारे दागने का त्याग कर काहेसे कि यह पत्थर तेरे ही गृहमें पड़ते हैं और इन  
 पत्थरों के तेरे सुत्रोंके नेत्राभेदीते जाते हैं फिर जब तू अपने गृहविप्रे जाकर  
 प्रत्यक्षदेवे कि प्रत्यक्ष करके मेरे पुत्रों के नेत्र अन्धे हुये हैं तब उससमय विप्रे तेरे  
 चित्तको कैसी अग्नि लगती है और किस प्रकार तू लज्जावानी विप्रे जलता है  
 वाते जब कोई पुरुष किसी मनुष्यकी ईर्ष्या करता है तब परलोक विप्रे आपको  
 ऐमाही लज्जित देखेगा काहेसे कि ईर्ष्याभी येही होता है कि ईर्ष्या करनेवाला  
 पुरुष अपने शत्रुकी हानि चाहता है पर वास्तवमें अपनी ही हानि करता है और  
 अपना ही धर्म नष्ट करता है और अपने शुभ कर्तव्योंका नाश किया चाहता है  
 वात्पदर्थ यह कि परलोक विप्रे सर्व कर्तव्योंका स्वरूप अर्थ के अनुमार भीसेगा  
 और यह मनुष्य पदार्थों के अनुसार वीजको प्रत्यक्ष देखेगा इसी कारण से अप-  
 मानकी लज्जाको प्राप्त होवेगा बहुरि स्वयंकी अवस्था भी परलोक की अवस्था  
 की नाई होती है वाते जैसा इस पुरुषका हृदय होता है तिसको स्वयं विप्रे आका-  
 खन्त देखता है इसीपर एक वार्त्ता है कि कोई प्रवृत्तापि हुन एक सन्त्रके पास  
 आया था और कहने लगा कि मैंने स्वयं विप्रे अपने आपको लोगोंके मुखपर  
 मोहर लगावते देला है सो इसका अर्थ क्या है तब उसमन्त्र ने कहा कि तू जायव  
 विप्रे दण्डकरके लोगोंको जन रखावता होगा बहुरि उमने कहा कि निस्मन्देह  
 भेरी ऐसाही स्वभाव है ताने अर्थ तू विचारकरके देख कि इस कर्तव्यका आकार  
 कैसा है और अर्थ कैसा है सो मधुलव्यपदा विप्रे तो ब्रत रखावना भना कर्म दृष्टि  
 आवती है पर उसका अर्थ अशुभ प्रकट हुआ कि मानों लोगोंके मुनोंपर मोहर  
 लागेगी है और उनको आहारिसे रोक ग्यता है सो यह भी बड़ा आप्त्वर्य है  
 कि भगवन्तने मुम्हको यह मंत्र परलोककी अवस्थाका ज्ञानिवादा वताप दि-  
 साया है पर तू इसमें भी अधिने है इसी कारण से सन्त्रजनोंके वननोंदिये आया है

जाती है इसी कारणसे पारसो क विने सुखः शोभः इ लक्षा मपेशे जीवकी साति  
होता है ताने तू ऐसा भिनुमान चित्तत्रिपे न करो के बह सुखी आगि जीवको  
जलाने वाली श्री स्थूल अग्नि की साई होवेगी काहे सो कि यह जगिने सवा  
मागः ससुखम आगिने श्री तल है तदुरि दूसरी अग्नि जो अपमान की कही  
सो तिसका स्थान जगि है कि जो से कोई गदा राजा तीनी प्रचुप्रको दया करे  
अपजा अन्न करती करे और सार्वभूमि गृहके विसकी सो पदे वै तदुरि जिसे  
रतिनी सपे लाते ती भी जग कृत होवे और धन के भय डारमी सप उ सके कथीत  
होने सो जग ये से पुरुष जो ऐसे सुखी श्री आशि हो जावे तत्रे विमुसत कर के उसका  
वह पुरु मजिना हो जावे और तिस कर के भय डारो त्रिपे चोरी करने लगे और भीस  
राजम बले में ही भिषा रादिके अप कर्मी कर लेगे और धा रहसे आपको मु  
दक श्री भूलई सयुक्त दिखो बहुदि अचल कही कि सीसंगस सहलो विषे अ  
पकमी करे तदु से उ स म दारी जा की प्रे से और इमीकारी जाने कि राजा मु कही  
करो से मे से अप कर्मा महली में कर ता हुं आ देखता है श्री रापे से ही स दे काल  
आगे भी न सवा रहना है और मु क को इस निमित्त दह नही दिया कि ज ब इसका  
पाप सूर्य और नृ दे होना वेगा तत्र गौ इसको इकट्टी ही दीड और हुं त दे डी रा सो  
अपि हू विदार कर देख कि उ स म य विपे उ स ती त्र म नु प्य के लज्जा की अत्रि  
कि स म का उ ल ली त्री है कि यद्यपि उ स के शरीर और कष्ट से रहित है तो भी उ स  
लज्जा वाती के सव सत्माप को विखी विपे ली ना कि या गृह ता है इस कर के कि  
किं ही प्रकार लई जावा कि कष्ट से में हू ता भला है हे भार । ते से ही नृ इमे जग  
विषे अपले स्वमात्र सो स क लयी कर ता हो और त्व कर्ण प्री ह म से छे छिं अति  
है और उ मा कि या का त्रि प र्पे मलिन होता है सो जे व प ग्लो क विपे नी त्र कि या  
का त्र प र्पे सिद्ध होवे गा तत्र तु क की अति जज्जा प्राप्त होवेगी और तू उ म ला ज  
की अति विपे दे ग दे वे गा जे से कोई पुरुष की निन्दा अत्र कोई फेतो प्रे लो क विषे  
पे भी लज्जा को प्राप्त होवे गा कि जे से कोई पुरुष इ म संसार विपे अपने माई की मास  
गोज व करो और जगो कि मों पत्नी का सांस मरण करती हू तदुरि जय अजी प्रकार  
देखे तत्र जनि कि यद नो मे से स व न्नी का मास छे ताते तू भनी प्रकार देख कि उ स  
स म विपे उ स पुरुष का हृदय केश लज्जा पुरु र्द्ध ता है और के सी ता प कर के अपने  
लान है सो निन्दा कर ले वाले को प ग्लो क विपे ऐसी ही लज्जा प्राप्त होवेगी जे ही

उस पुरुष को अपने भाई की मणि खनिवाले को हुई परनिदा करते का। तत्पर्यं जैसा  
 मलिन है वैसे ही अवातुम्हारी नहीं भासता और परलोकाविषे उसको। प्रत्यक्ष देखेगा  
 इसी कारण से कहा है कि जब कोई मनुष्य स्वप्न विषे आपको भ्रूतकका आहार  
 करे। देखे तब इसकी युक्ति यह है कि वह मनुष्य किसी पुरुषको निद्रा करता होवे  
 वह हरिद्वन्त यह कि जैसे तू स्वामाविक्रही किसी भीत के पीछे से पत्थर डारने  
 लगे और वह पत्थर तेरे घरमें जायकर पड़ते होवे और कोई पुरुष तुमसे कहै कि  
 तू पत्थर डारने का त्याग कर काहेसे कि यह पत्थर तेरे ही गृहमें पड़ते हैं और इन  
 पत्थरों करके तेरे पुत्रोंके नेत्र अभे होते जाते हैं फिर जब तू अपने गृहविषे जाकर  
 प्रत्यक्ष देखे कि आपत्करके मेरे पुत्रों के नेत्र अन्धे हुये हैं तब उस समय विषे तेरे  
 चित्तको कैसी अभिन्न लगती है और किस प्रकार तू लज्जावानी विषे जलता है  
 तब जब कोई पुरुष किसी मनुष्य की ईर्ष्या करता है तब परलोक विषे आपको  
 ऐसा ही लज्जित देखेगा काहेसे कि ईर्ष्या भी येही होता है कि ईर्ष्या करनेवाला  
 पुरुष अपने शत्रु की हानि चाहता है पर वास्तवमें अपनी ही हानि करता है और  
 अपना ही भ्रमानष्ट करता है और अपने शुभ करतूतोंका नाश किया चाहता है  
 तत्पर्यं यह कि परलोकाविषे सर्व करतूतोंका स्वरूप अर्थ के अनुसार भासेगा  
 और यह मनुष्य पदार्थों के अनुसार ही जगत्को प्रत्यक्ष देखेगा इसी कारण से अप-  
 मानकी लज्जा को प्राप्त होवेगा बहुरि स्वप्नकी अवस्था में परलोक की अवस्था  
 की त्राई होती है तब जैसा इस पुरुषका हृदय होता है तिसको स्वप्नविषे आका-  
 खन्त देखता है इसीपर एक वार्त्ता है कि कोई प्रवृत्तापगिह्वन एरुसन्तके पास  
 आया था और कहने लगा कि मैंने स्वप्नविषे अपने आपको लोगोंके मुखपर  
 मोहर लगावते देखा है सो डमक्य अर्थ क्या है तब उसमन्त्र ने कहा कि तू जाग्रत  
 विषे देखकरके लोगोंको जन रखावता होगा बहुरि उमने कहा कि निस्सन्देह  
 मेरी ऐसा ही संभाव है तब अब तू विचारकरके देख कि इस करतूतका आकार  
 कैसा है और अर्थ कैसा है सो स्थूलव्यवहार विषे तो ब्रत रखावना मला कर्म दृष्टि  
 आता है पर उसका अर्थ अशुभ प्रकट हुआ कि मानों लोगोंके मुखोंपर मोहर  
 लगावता है और उनको आदरिसे रोक रखा है मोहि पहली बड़ी आश्चर्य है  
 कि गतिवत्ने सुभको यह स्वप्न परलोककी धर्मन्याया का यत्निवाला प्रताप दि-  
 लोपा है पर तू हममेंगी अधे है इसी कारण से सन्त्रजनोंके वनतोंविषे आया है



कि परलोकविषे मायाका आकार बृद्धा कुरुपात्री की नाई होवेगा और सबही जीव उसे देखकर भयवत् होवेंगे और प्रार्थना करेंगे कि हे महाराज ! हम महाराक्षसी से तू हमारी रक्षाकर तब आजा होवेगी कि जिस मायाकी प्राप्तिके निमित्त, तू अपने धर्मको नाश करतेये सो यह बही माया है, तब वह जीव प्रेसी अपमानता और लज्जाको अतिहोवेंगे कि आपको अग्निविषे जलाया चाहेंगे इस करके कि किसी प्रकार हम इस लज्जापे छूटें सो हम लज्जावानी का दृष्टान्त यह है कि एक समयविषे किसी राजाने अपने पुत्र का विवाह किर्पाया बहुरि वह राजपुत्र मदिरा अधिक पान करके अपने गृहकी चला सो मदकी उन्मत्तता कारके अन्याय प्रोत्त हो गया और अपने गृहको युवायकुर किमी और स्थाने विषे जाय निकसा और वहां एक मन्दिरमें दीपक जलतादेखा तब उसने जाना कि मैं अपने घरमें आय प्राप्त हुआ हूँ बहुरि जब उमस्यातके अन्दर गया तब उसमें उसको बहुत पुरुष पड़े सो बतेहुये दृष्टिआये सो उनको पुंकाय तो कोई न बोला तब उसने जाना कि सब निद्राविषे हैं बहुरि एक स्त्रीको उमने उज्ज्वलवस्त्र पहिरेहुये सो वती देखा तिसको अपनी स्त्री जान कर उसे कोषासही शयन करवा और उमस्त्री के शरीरमें उसको सुगन्ध आनेलगी, तब वह राजपुत्र उसके साथ की दो करने लगा बहुरि जब सूर्य उदयहुये तब उम गजपुत्रका मद उतरा और जाग उठा और गली प्रकार देखा तो जाना कि जिनको मैं सोया हुआ जाननाया सो वह सबही मृत्तकी है और जिनको मैं अपनी स्त्री जाननाया सो महाकुरुष बृद्ध स्त्री है और मुझको जो सुगन्ध आसती थी सो उसके शरीरकी दुर्गन्ध और मलिनता है बहुरि जब अपने अर्गों को देखा तो सब विपत्ता साथ लपटेहुये दृष्टिआये तब बड़ा मलिनचित्त होकर चालते लगा कि डमसे गो भेरी मृत्यु आजाये तो भला है बहुरि यह भी भय करने लगा कि कहीं गेरापिता और उसकी सेना इस विपत्तादिक में लपटा हुआ मुझको न देखलेवे सो वह ऐमेही मनमें विचार करवा था कि इतने में बहराजा अपने प्रधानोंसयुक्त उमको दृढ़ता हुआ चढ़ाई आय पहुँचा तब पुत्रको महामलिन भवस्या विषे देखा और वह राजपुत्र लज्जा कारके ऐसे विचारने लगा कि जो किमी प्रकार में धत्रीविषे लीन हो जाऊ वो मला है पर किसी भाँति इस लज्जावानी से छूटेंगे वही विपरीत जीव परलोक विषे माया के सुमगोग और इन्द्रियोंके रसोंको ऐसाही मलिन देवेगा पर उसके हृदयविषे जो सृज्य भोगों

की प्रीति शेषरहेगी तिस करके महादुर्गन्धनाकों प्राप्त होवेगा बहुरि जब विचार करके देखिये तब भोगीमनुष्य इमी समारम्भिये अतिनिर्लज्जताको और दुखको पावते हैं परं तौगी परलोकविषये इमप्रकार यह जीव दुख और लज्जावानी को प्राप्तहोते हैं कि तिमके निकट इमसमारके दुख और लज्जावानी अल्पमात्र है और मैंने जिज्ञासुओंको लक्ष्य करावेने के निमित्त कुछ सक्षेपकरके वर्णनकियाहै सो इसका तात्पर्य यहहै कि यह लज्जावानीरूपी अग्नि भी ऐसी तीक्ष्णहै कि केवल हृदयको तपायमान करती है और इम दुखका प्रवेश शरीरको कुछ नहीं होता श्वहुरि तीसरी अग्नि यहहै कि भगवत्के दर्शन से अप्राप्त रहना और उत्तम भोगोंकी प्राप्तिसे निराशहोना सो यह मूर्खतामी इसीमसार से जीवकेसाथ जाती है कोहेसे कि इमलोकविषये जिस पुरुषने सन्तजनों के उपदेश और पौरुषप्रयत्न करके ज्ञानको नहीं पाया और अपने हृदयको शुद्धकरके भगवत्के दर्शनका दर्पण नहीं बनाया और भोग और पापरूपी जगारको हृदयरूपी दर्पणसे नहीं छुड़ाया सो परलोकविषयेभी उनका हृदयरूपीदर्पण अधोही रहताहै और सर्वदा पश्चात्ताप को पावना है सो इम पश्चात्तापरूपी अग्निका दृष्टान्त यहहै कि जैसे तू अंधेरीरात्रि विषे बहुतलोगों के साथ किमी वनमेंजाय निकसे और उसवनमें पर्यरों के टुकड़े बहुत पड़ेहोवें पर अन्यकार विषे उनका स्वरूप कुछ न गामे बहुरि तेरे संगी इसप्रकार कहें कि हमने इन पर्यरों की बहुत विशेषता सुनी है ताते यथाशक्ति इनको उठायलेवो बहुरि वह सबहीलोग यथाशक्ति ककड उठा-यलेवें और तू कुछ भी न उठावे और उनसे कहनेलगे कि यह तो बर्डीमृर्षनाहै कि अपने शरीर को प्रयत्न दुखतीजिये और ककडों का बोझ उठायलेवें और यह नार्तागी प्रसिद्ध नहीं जानीजाती कि यह ककड हमारे किमी कामआवेंगे या नहीं आवेंगे पर तेरे संगी सबही उन ककडोंको उठावेवें और तू बिना ककडोंके उनके साथ खाली चलाजावे और उन सबको मूर्ख जानकर हाम्पे करने लगे और ऐसे कहें कि जो पुरुष मुष्टिमान् होताहै सो मेगी नाई सुखेनही चला जानाहै और जो मूर्ख होताहै सो गर्दमकी नाई बोझ उठावताहै और जिमरत्न-धकी दानि लाग कुछ प्रसिद्ध न भागे उमरिये यत्न कर्नाहै बहुरि जब अज्ञानकटी सूर्य उदयहोये तब वह ककड सबग्न और लाल प्रत्यक्ष दृष्टि आवें और वह रत्न ऐमेहोवें कि उनकागोल वर्णनविषे न जाये सो तेरेसंगी देखकर प्रसन्न

होयें और इस प्रकार पश्चात्ताप भी करें कि हम इससे भी अधिक उठा प्रलिते तो भला होता और तुम्हको तो इनके अपास रहनेका अत्यन्त ही पश्चात्ताप होवेगा और उसकी अग्नि विषे जलेगा वहुरि तेरे सगी रत्नोंको पापकराधनी होयें और गज अथव ऐश्वर्यादि उत्तम सुखोंको भोगने लगे और तू निर्द्धनेनाई करके सुखा और नग्न रहे और वह तुम्हको नीच टहल विषे लगावें और जो तू इनसे फुल सांगने भी लगे तो भी तुम्हको न देयें और इस प्रकार तुम्हसे कहें कि तू यह हमको हँसतायाँ सो तुम्हको उस हँसनेका फल प्राप्त हुआ है निमकरके तू पश्चात्ताप और दुःख विषे जलता है और हमको परम सुख प्राप्त हुआ है तैसे ही जो पुरुष भगवत् के दर्शनमे अपास रहे हैं सो परलोक विषे तिनकी अवस्था ऐसे ही होवेगी इस करके कि यह ससार अंधेरी रात्रि की नाई है और जय तपः सजन आदिक साधनरूपी रत्न हैं सो इस ससार विषे इन रत्नोंका स्वरूप और मोल नहीं मानता ताते संसारी जीव शुभकर्मोंको अस्वीकार नहीं करते और कहते हैं कि हिंस माया के प्रत्यक्ष सुखोंको छोड़कर परलोक के सुख प्रोक्षका काहेको यत्न करें सो ऐसे पुरुष निस्सन्देह परलोक विषे हू खी होवेंगे और पुकार करेंगे और कहेंगे कि साधन कलेवाले परम सुखके अधिकारी हैं और उनको देखकर जलेंगे सो सत्यदे काहे से कि जिन पुरुषोंने साधन करके इस ससार विषे भगवत् की प्रीति और पहिचानको प्राप्त किया है सो तिनको परलोक विषे भगवत् ऐसा उत्तम सुख देवेगा कि गायके सर्वभोग अमितकालके उस सुखके क्षणसमान भी न लगेंगे काहे से कि वह आत्मसुख ऐसा अपार है कि उसके साथ कोई सुखका दृष्टान्त समवित्त नहीं होता इसकरके कि वह आत्मसुख सर्वसुखोंका सार है जेमे कोई जोड़रीकहे कि रत्नका मोल सो गोहर है तब उस रत्नकी तोल और आकार तो सो मोहरके समान नहीं होता पर उसके कहनेका अर्थ यह है कि वह रत्न मोहरके स्वर्ण चादीका सार है तैसे ही इन्द्रियादिक सुखोंसे आत्मसुखकी जो अधिकता कही है सो मर्याद और आकार करके नहीं कही पर वह आत्मसुख कैसा है कि सर्व सुखोंका माग है ताते उसको अधिक वर्णन किया है ॥

### ग्यारहवां सर्ग ॥

सून द गते मानती दुःखोंकी मोक्षदाके वर्णन में ॥

ताने जय तूने तीन प्रकार की सूक्ष्म अग्नि को समझा तब ऐसे भी जान

कि इस सूक्ष्म अग्नि की तपते स्थूल अग्नि से महातीक्ष्ण है काहेसे कि शरीरको भीष्मोपकरणके दुःखका ज्ञान नहीं होता ताते शरीर का दुःखभी तन्नहीं भासता है जब जीवकी वृत्ति शरीरविषे आय फुलती है और जो दुःख केवल जीवके अन्दरमें ही स्थित होते तब वह दुःख तो निस्मन्देह ही अधिक होता है ताते यह तीव्र प्रकारकी अग्नि जो कहीं है सो इसकी अग्निजीवके अन्तर ही उत्पन्न होती है और शरीरके दुःखकी ताई बाहर से वायुके नहीं प्रवेश करती इसी कारणसे सूक्ष्म अग्निकी जलन, महाप्रसन्न है और तन्म दुःखोंका कारण यह है कि जो पदार्थ शरीरके स्वभावको इष्ट होते हैं सो जब उन पदार्थोंका विरोधी प्राप्त होता है तब यह जीव अधिक दुःखको पाता है सो शरीरका इष्ट पदार्थ यह है कि तन्मकी वृत्ति समान होवे सर्व अज्ञोंका सम्बन्ध परस्पर बना रहे वद्वरि जब एकस्मात् किसी विघ्न अथवा शस्त्रकी चोटकरके अज्ञोंकी ही ज्ञानता होजावे तब अवश्यही दुःखी होता है और शस्त्रादिकों फरके तो किसी एक अगका त्रियोग होता है पर अग्नि फरके सर्वज्ञ जलने लगने हैं इसी कारणसे अग्निकी पीड़ा शस्त्रादिकों से अधिक है तैसे ही जो पदार्थ कैवल्य इमको इष्ट होता है जब उसका विरोधी पदार्थ प्राप्त होवे तब उसका दुःखमी जीवको अधिक पीड़ा देता है सो इस जीवका स्वतः स्वभाव भगवत्की पहिचान और उसकी दर्शन है जब अज्ञान करके भगवत्की पहिचान और दर्शनासे दूर रहता है तब निस्मन्देह ऐसे दुःखको पाता है कि उस दुःखका अन्त कदाचित् नहीं होता पर जब इस सारविषे इम जीवकी सुचेता होती है तब इम दुःखको कुछ जानता है पर यह जीव भायिके भीगोंविषे ऐसा ह्यन्वयित्त रहता है कि सूक्ष्म कुछ नहीं भावती वद्वरि जब परलोकविषे भोगोंकी शून्यता दूर होती है तब यह दुःख इसको प्रत्यक्ष भास आता है जैसे किमी पुरुषका शरीर अर्द्धाङ्ग योगिकरके शून्य होजावे तब उसकी अग्नि की उष्णता नहीं भासनी पर जब अर्द्धाङ्गकी शून्यता दूर होजाती है तब अग्नि की ताप उसको तीक्ष्ण लगती है और उम तपन करके महादुःखी होता है तैसे ही इस मनुष्यका हृदय गायिकरके शून्य हो रहा है इस कारण से अनेक दुःखोंभी नहीं जानता पर परलोकविषे जब इमकी शून्यता दूर होती है तब अपने हृदयकी अग्निके दुःखविषे तपयमाने होता है और जलने लगता है सो तब अग्नि जीवको मंदसे नहीं वायु त बावनी है

होवें और इस प्रकार पश्चात्ताप भी करें कि हम इससे भी अधिक उठाएँ लेंगे तो भला होता और तुम्हको तो इनके अप्राप्त रहनेका अत्यन्त ही पश्चात्ताप होवेगा और उसकी अग्निविषे जलेगा वह इतने सगी रत्नोंको प्राप्त कर धनी होवें और राज अश्व पेरुवर्यादि उत्तम सुखोंको भोगने लगे और तू निर्धनताई करके सुख और नग्न रहे और वह तुम्हको नीबट्टहल विषे लगावे और जो तू इनसे कुछ भोगने भी लगे तो भी तुम्हको न देवें और इस प्रकार तुम्हसे कहें कि तू कहो हमको हँसताथा सो तुम्हको उस हँसनेका फल प्राप्त हुआ है तिसकेरके तू पश्चात्ताप और दुःखविषे जलता है और हमको परम सुख प्राप्त हुआ है तैसेही जो पुरुष भगवत् के दर्शनसे अप्राप्त रहे हैं सो परलोकाविषे तिनकी अत्रस्थियाँ ऐसे ही होवेगी इस करके कि वह ससार अंधी रात्रिकी नाई है और जपि तपा भजन आदिक साधनरूपी रत्न हैं सो इस ससारविषे इन रत्नोंका स्वरूप और मोल नहीं मासता ताते प्रसारी जीव शुभकर्मोंको अङ्गीकार नहीं करते और कहते हैं कि हम माया के प्रत्यक्ष सुखोंको छोड़कर परलोक के सुख प्रोक्षकाँ कहेंगे यत्र करें सो प्रेसे पुरुष निस्सन्देह परलोकविषे ही ही होवेंगे और पुकार करेंगे और कहेंगे कि साधन करनेवाले परम सुखके अधिकारी हैं और इनको देखकर जिलेंगे सो सत्य है काहे से कि जिन पुरुषों ने साधना करके इस ससार विषे भगवत् की प्रीति और पहिचानकी प्राप्ति किया है सो तिनको परलोकविषे भगवत् ऐसा उत्तम सुख देवेगा कि मायाके सर्वभोग अमिर्तकालके उत्तम सुखके क्षणसमान भी न लगेगे काहे से कि वह आत्मसुख ऐसा अपार है कि उसके साथ कोई सुखका दृष्टान्त सम वित नहीं होता इसकरके कि वह आत्मसुख सर्वसुखोंका सार है जेमे कोई नोई रीकहे कि रत्नका मोल सो मोहर है तब उसरत्नकी तोल और आकार तो सो मोहर के समान नहीं होता पर उसके कहनेका अर्थ यह है कि वह रत्न मोहरके स्वर्ण चादीका सार है तैसेही इन्द्रियादिक सुखोंसे आत्मसुखकी जो अधिकता कही है सो मर्याद और आकार करके नहीं कही पर वह आत्मसुख कैसा है कि सर्व सुखोंका सार है ताते उसको अधिक वर्णन किया है ॥

ग्यारहवा सर्ग ॥

शूल दुःखसे मानसी दुःखोंकी सीधणवाँके बंधन में ॥

ताते जल होने तीन प्रकार की सूक्ष्म अग्नि को समझा तब ऐसे भी जान

कि इस सूक्ष्म अग्नि की तपते स्थूल अग्नि में गहाती दीप है काहेसे कि शरीरको भी अग्नि प्रकरके दुःखका ज्ञान नहीं होता तांते शरीर का दुःखभी तबही भासता है जब जीव की वृत्ति शरीर विषे आय फुर्ती है और जो दुःख केवल जीव के अन्दरमें ही स्थित होवे तब वह दुःख तो निस्सन्देह ही अधिक होता है तातो यह तीन प्रकारकी अग्नि जो कही है सो इसकी अग्नि जीव के अन्तर ही उत्पन्न होती है और शरीर के दुःखकी ताई बाहर से आय के नहीं प्रवेश करती इसी कारणसे सूक्ष्म अग्नि की जलना महाप्रबल है और सर्व दुःखोंका कारण यह है कि जो पदार्थ शरीरके स्वभावको इष्ट होते हैं सो जवाउन पदार्थों का विरोधी भास होता है तब यह जीव अधिक दुःखको पाता है सो शरीर का इष्ट पदार्थ यह है कि तन्त्रोंकी वृत्ति समान होने सर्व अक्षों का सम्बन्ध परस्पर बना रहे वद्वरि जब अक्षमात् किसी विघ्न अथवा शस्त्रकी चोटके अक्षोंकी हीनता होजावे तब अवश्यही दुःखी होता है और राजादिकों धरके तो किलीएक आगका वियोग होता है पर अरिसे फरके सर्वअन्न जिलने लगने हैं इसी कारणसे अग्नि की पीड़ा शस्त्रादिकों से अधिक है तैमेही जो पदार्थ केवल इमको इष्ट होता है जब उसका विरोधी पदार्थ भास होवे तब उसकी दुःखभी जीवको अधिक पीड़ा देता है सो इस जीवका स्वतः स्वभाव भगवत् की पहिचान और उसकी दर्शन है जब अज्ञान करके भगवत्की पहिचान और दर्शनामे दूर रहता है तब निस्सन्देह ऐसे दुःखको पाता है कि उस दुःखका अन्त कदाचित् नहीं होता पर जब इस समाविषे इम जीवको सुवेतता होती है तब इस दुःखको कुछ जानता है पर यह जीव मायाके भीगों विषे पेटा ह्यन्यचित् रहता है कि सूक्ष्म कुछ नहीं आवती वद्वरि जब परलोकविषे भोगोंकी शून्यता ही है तब यह दुःख इसको प्रत्यक्ष भास आवता है जैसे किमी पुरुष का शरीर अर्द्धाङ्ग हो गिके शून्य होजावे तब उसको अग्नि की उष्णता नहीं भासती पर जब अर्द्धाङ्गकी शून्यता दूर होजाती है तब अग्नि की ताप उसको तीक्ष्ण लगती है और उस तपन करके गहाइ ली होता है तैमेही इम मनुष्यका हृदय गायीकरके शून्य हो रहा है इम कारण से अनेक दुःखों भी नहीं जानता पर परलोक विषे जब इमकी शून्यता दूर होनी है तब अपने हृदयकी अग्निके दुःखविलोप पायमाने होता है और जखने लगता है सो यह अग्नि जीवको बाहरसे नहीं आय ज्ञानाती है

इम करके कि इस अग्निका बीज यहाँही इस जीवके अन्तर स्थितया और प्रतीतिकी हीनता करके इसको जानता न था और जब वह बीज विस्तार काके वृक्ष हुआ तब प्रत्यक्ष भासनेलगा और उसके फलको पावता भेया इसीपर महाराजनेभी कहाहै कि जब तुम्हारी प्रीति दृढ़होती तब तुम नरकको यहाँही प्रत्यक्ष देखते पर धर्मशास्त्र विषे स्थूल नरकों और स्वर्गका अधिक वर्णन जो किया है सो इसका कारण यह है कि ससारी जीव इसही को समझसक्ते हैं और जेव मानसी नरकोंकी वार्त्ताको श्रवण करते हैं तब बुद्धिकी हीनता करके इस दुःखको तुम्हें जानते हैं जैसे किमीबालकसे कहिये कि तू विद्यापद और जो विद्या न पढेगा तो पिताके ऐश्वर्य को नहीं प्राप्तदेवेगा और महामूर्ख रहेगा तब वह बालक इस वचन को समझताही नहीं और पिताके ऐश्वर्यसे अप्राप्त रहनेके दुःखको जानताही नहीं पर जब बालक को ऐसे कहिये कि जब तू विद्याको न पढेगा तबे पाधा तेरे कानोंको मरोड़ेगा तब इसकरके वह बालक भयवान् होता है और इस दुःखको सुगमही समझ लेताहै सो जैसे विद्याके न पढनेकरके पाधाकी ताड़नाभी सत्य है पर पिताके ऐश्वर्यसे अप्राप्त रहना भी सत्य है वैसेही स्थूल नरकभी नरक सत्यहै और मूर्खताकरके भगवत्के दर्शनसे अप्राप्त रहनेकी अग्निभी सत्यहै पर महाराजके दर्शनसे अप्राप्त रहनेका दुःख ऐसाही जैसा पाधा बालकके कान मरोड़नाहै।

### बारहवां सर्ग ॥

पूर्वपक्षोत्तरके वर्णन में ॥  
 चहुँरि जब तू इमप्रकार प्रश्नकरे कि तुमने ऐसे वर्णन कियाहै कि मानसीनरकको अनुभवकी दृष्टिकरके देखसक्ते हैं और विद्यावान् परिदृष्ट इसप्रकार कहते हैं कि शास्त्रोंविषे ऐसे वर्णन कियाहै कि परलोककी वार्त्ताको प्रतीतिही करके समझ सक्ते हैं और अपनी दृष्टिकरके देखना असम्भवहै सो इन्नेदोनों वचनोंका परस्पर विरोध होताहै तब इसका उत्तर यहहै कि कुछ इस वचनका बलान में आगेभी वर्णन कियाहै और भलीप्रकार देखिये तो इस वचनको विरोधभी कुछ नहीं और जिसप्रकार शास्त्रोंविषे परलोकका वर्णन कियाहै सो ऐसेही प्रमाणहै पर इसविषे इतना भेद है कि कितने परिदृष्ट तो ऐसे हुये हैं कि उनकी बुद्धि इन्द्रिबादिक देशसे बाहर नहीं निकलती और चैतन्य देशको उन्होंने जानाही

नहीं और केते बुद्धिमान् ऐसे ही हुये हैं कि उन्होंने परलोक की अवस्था और मानसी नरककी प्रत्यक्ष देखा है और उन्होंने इसनिमित्त प्रसिद्ध नहीं कहा कि बहुत लोग इसमानसी दु लको समझ नहीं सके और सब किसीकी बुद्धि विषे ऐसा बलीभी नहीं होता कि अल्पबुद्धि जीवोंको चैतन्यदेशका भेद चचन करके हस्तामलकवत् कर दिखाने अथवा जिसको भगवत् अपनी कृपाकरे वह आप ही इस भेदको देखलेता है और अपर जीवोंको भी युक्ति करके समझाय सका है पर ऐसे पुरुषभी इसजगत्विषे दुर्लभ पाये जाते है ताते स्थूल नरकोंका भेद शास्त्रोंके श्रवणकरके ही समझसकें हैं और मानसी नरकों का अर्थ अपने आपकी पहिचानकरके जानाजाता है सो अपने आपका पहिचानना और बुद्धिके नेत्रों करके चैतन्यरूपको देखना इस अवस्था को भी पुरुषार्थ और यत्के मार्गकर पहुँचसका है ताते इम परम भेदको सोई पावता है जो अपने देशसे अटन करके किसी और देश को गमनकरे और जिम स्थान विषे इस जीवकी उत्पत्ति और स्थिति हुई है तिसको त्यागकर आगे चलनेका उद्यमकरे पर यह जो मैंने अपने देश और गृहका त्यागना कहा है सो इमका अर्थ यह नहीं कि स्थूलदेश और मन्दिरोंको त्यागआये काहे मे कि स्थूल मन्दिर और नगर तो शरीर का देश है ताते स्थूलदेशके त्यागने करके कुछ फल नहीं प्राप्तहोता पर मैंने जीवके देशका त्यागना विशेष कहा है अर्थ यह कि वास्तव जीवका देश और है और इस शरीर देशविषे कार्यमात्र आया है पर इस जीवने अपना देश यही जान लिया है पर तो भी अवश्यही इस गनुष्य को स्थूलदेश से गमनकरना है और सूक्ष्मदेशविषे पहुँचना है वहुते मार्गविषे कई मजिलें हैं सो सब मजिलों का भिन्न भिन्न व्यवहार है पर प्रथम जो जीवकी स्थितिका स्थान है सो इन्द्रियादिक देश है १ और दूसरी मजिल सकल्पदेशकी है २ और तीसरादेश सकल्पका कारण जगत्की प्रतीति है सो इसको स्थूलबुद्धि भी कहते हैं ३ वहुते चौथा सूक्ष्म बुद्धिका देश है ४ पर जब यह जीव सूक्ष्मदेशविषे पहुँचता है तब इमको अपने स्वरूप की धृष्ट प्राप्त होती है और प्रथम तीनों देशविषे अज्ञान करके आवरण कियाहुआ रहता है पर यह जो चार मजिलें मैंने कही हैं सो दृष्टान्त करके म गममें आसक्ती हैं सो प्रथम इन्द्रियादिक देशका दृष्टान्त यह है कि इन्द्रियादिक देशविषे इसजीवकी अवस्था पतंगकी नाई है जमे पतंग नेत्रोंके विषयकर दी



पक्षियों का रक्षात्मक पंखता है मरुत उस विषे मरुत रक्षात्मक और मित्रता कुतूब नहीं होते  
 ततो अधकारसे आगिकर दरिद्रि खिडकीके भागसे निरकलना चदिता है और व  
 दीपकही उसको खिडकी भासती है इस कारण से आपको दीपकके ऊपर आन  
 दास्तता है वह हरि धुपेकी प्रवृत्तता करके पीछे गिरण इतहि और उसके विषयि  
 इतनीभी समझ नहीं कि धुपेके लु लकी स्मरण विषे रक्ते और एते जाने कि इस  
 दीपक की तपन करके मने आगे की लु लु खपाया है सो भी नहीं समझता तते  
 वह हरि दीपककी ओर जाता है और इसी प्रकार मरुतु को प्रावता है सो तयह भाता  
 प्रसिद्ध है कि जत्र उसको स्मरण अथवा अत्रितवर्ना होती कुतूभी तो एकरा दुस  
 प्रत्यकर फी दीपककी ओर न जाता है दूसरादिग संकल्पका मशुओं की भाई है  
 इस करके कि पशुओं को जब कोई पुरुष लाठी मारता है तब दूसरी वार लाठी को  
 देखकर भयवान् होते हैं और उस पहली लाठीका लु ल उनके स्मरण विषे रहता  
 है तते लाठीको जब फिर देखते हैं तब भगजते हैं तात्पर्य यह कि प्रथम दिशि  
 यादिक देशकी भाजिल है और दूसरी भाजिल संकल्पके देशकी है सो जत्र मई  
 मनुष्य संकल्पके देश विषे होता है तो भी पशुओं के समान है इस करके कि जब  
 लग किसी पदार्थ में दुःखी नहीं होता तब लग उस पदार्थका त्याग नहीं करता  
 पराजब एकरा किसीसे दुःख पोवता है तब दूसरी वार उसको देखकर भागा चारु  
 ता है वह हरि तीसरी भाजिल संकल्पकी कारण स्थल बुद्धि है सो जय यह मनुष्य  
 इस देश विषे पहुँचता है तब घोड़ा और बकरीकी अवस्थाको प्राप्त होता है अर्ध यह  
 कि दुःख पाये बिना ही दुःखदायक पदार्थों से भयवर्त्त होता है और भिंजता है  
 कि इस करके मुक्तको दुःख प्राप्त होवेगा जैसे आगे कुज निभे द्वियेको दिखाने ही  
 और घोड़ेने सिंहको भी आगे नहीं दिखाने पर जब अचानक ही सिंह और भेड़ियों  
 को देखते हैं तब घोड़ा और बकरी भागजते हैं और अपनी शत्रुको पहिचान लेते  
 हैं सो यद्यपि अष्ट और हाथियोंको देखते हैं तब नहीं हलते और नहीं भागते इस  
 करके कि उनको आपसो शत्रु नहीं जानते सो यह अपने शत्रुका पहिचानना भी  
 सुक्ष्म दृष्टिसे है कि भगवत्त ने यहाँ दृष्टि उनके हृदय विषे भ्रंखी है ताते शत्रु और  
 मित्रको सुगम ही पहिचान लेते हैं पर तो भी यह मोड़ा और अजा इसमेदको नहीं  
 जानते कि कवई क्या होवेगा जाने आगे के दुःखको पहिचानना और उससे भय  
 करना यह अवस्था चौथी भाजिल विषे प्राप्त होती है और वह मजिल सुदृग्ही कि

जब वह मनुष्य इम अवस्थाको प्राप्त होताहै तब पशुओंके पदसे उल्लिखित होता है और जब प्रथम तीन मज्जिनों विषे होताहै तब लग पशुओंके समान होताहै और जब सूक्ष्मबुद्धिके देशको प्राप्तहोताहै तोभी सम्पूर्ण मनुष्यके पदको प्रथम अवस्थाकी पावताहै और ऐसे पदार्थोंको देखताहै कि जिस विषे इन्द्रिये और सकल्ये और स्थूलबुद्धिका प्रवेश न होये और जिसकरके आगे दुःख होवेगा तिससे भयकरताहै और करतूतोंके सारेभेदको समझताहै वहरि भेदको समझ कर करतूतके आँकारको भिन्न करताहै और उसके तात्पर्यको भिन्न करताहै और सब पदार्थोंकी मर्यादकी परिचानताहै और इसप्रकार जानताहै कि जेने पदार्थ इस जगत्विषे दृश्यमान भासते हैं सो सबही अन्तवन्तहैं इम करके कि जो कुछे इन्द्रियोंके विषयहैं सो स्थूलहैं और इन्द्रियादिक व्यवहारकी क्रियाऐसे है जैसे पृथ्वीपर चलना फिरना सुगम होताहै और सकल्यके देशकी क्रिया ऐमे है जैसे नदीविषे नौकापर चढ़कर चलना होताहै अर्थ यह कि नौकापर चढ़नेसे बालक डरताहै और बड़े पुरुषोंको कुछभय नहीं होता वहरि स्थूलबुद्धि जो मकल्पोंका कारणहै तिसकीक्रिया तेरनेकी नाईहै अर्थ यह कि जलविषे वहीपुरुष तेरसक्ताहै कि जिमको तेरनेकी विद्या परिपक्व होतीहै और सूक्ष्मबुद्धि जो चौथी मज्जिलहै उममा नमन ऐमे है जैसे मेघमण्डलविषे उड़नाहोवे सो तिसविषे कोई विरला गतिमान्ही उडमक्ताहै तैसेही सूक्ष्मबुद्धिची चिदाकाशविषे गतिहोती है और यद्यपि इस अवस्थाका प्राप्त होना महीकठिन है तोभी ज्ञानवान् पुरुषोंका जो पदहै और सत्तजनोंकापद है सो इममेभी परे है सो इम परमपदकी गति ऐसीहै जैसे कोई महाकाशविषे उड़नाहै इनीकाण मे महापुरुष से किमीने कहाथा कि महात्मा ईमा जलविषे चलने है तब महापुरुषने कहा कि यह पार्श्व भी सत्यहै परजब उनकी प्रतीति अत्यन्त दृढ़होती तब वह आकाश विषे भी उड़नेको समर्थहोने पर यह मनुष्य सब मज्जिनांविषे जो चलताहै सो मूर्खोंके देशविषे इसकी गति चलीजातीहै वद्वि पशुओंकी आत्मा से लेकर देवतांके स्वर्गार को जाय पहुँचना है इनीकाणमे कहाहै कि अयोगनि और उर्द्धगनि विषे जानाइसीमनुष्यका अधिकाहै ताने यहमनुष्य सर्वदा इमीभय विषे म्विन है कि देविषे मन अयोगनि रमानन विषे जाऊ अथवा उर्द्धगनि देवतांके को प्राप्तहोऊ और भयका अर्थ यह है कि जेने जड़पदार्थहै तिनकी अवस्था दृश

चित्त नहीं बदलती, इसकारके कि उनविषे चैतन्यता नहीं हाली गई जाते निर्मवर्द्ध  
 और ईश्वर को ही जो देवते हैं सो अपने शुद्धपदसे कदाचित्त नहीं गिरते ताते  
 जे निर्मय हैं ताते शुभकर्मोंकरके ऊर्ध्वगति को प्राप्त होता है और अपकर्मोंकरके  
 अधोगतिविषे जाता है इसी कारण से मनुष्यको भयविषे स्थित रहना कदा है  
 और ऐसे जो कहा है कि भगवत्की प्रीति और प्रेमकी अमानता मनुष्यविषे ही  
 राखी है सो इसका भी अर्थ येही है पर मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि परदेशी  
 और नगस्त्रासियोंकी अवस्था भिन्न भिन्न होती है ताते बहुत मनुष्य तो नगर  
 वासियोंकी नाई अपने स्वभावविषे ही स्थित होते हैं और परदेशी जो निष्ठा  
 जन हैं सो बिरले हैं और जिस पुरुषकी स्थिति इन्द्रिय और सकल्पोंके देशविषे ही  
 है तिसको यथार्थ भेदकी भूमि प्राप्ति नहीं होती और निश्शरीर पद को नहीं  
 प्रावता और शरीरते रहित अवस्था को भी नहीं जानता इसी कारण से चैतन्य  
 सत्ताका अधिक बखान शास्त्रों विषे नहीं किया ताते मैं भी इस वचनको यहाँ ही  
 पूर्ण करता हूँ कि स्थूलबुद्धि जीव इतने वचनको भी नहीं समझसके तब इससे  
 अधिक भेद उनकी बुद्धि क्योंकर प्रायसकी है ॥

तेरहवाँसर्ग ॥  
 नास्तिकों के मतके स्पष्टनके विषयमें ॥

बहुतेरे केते पुरुष तो ऐसे मूर्ख होते हैं कि वह परलोककी गतिको अपनी बुद्धि  
 करके नहीं देखसके और मंतजनोंके वचनपर श्रुतिभी नहीं करते ताते परलोक  
 के निश्चयविषे भग्यवान् होते हैं बहुतेरे भोगोंकी प्रवृत्तता करके परलोकका प्र-  
 सिद्ध नतकार करते हैं सो उनको उनका मनही ऐसी दीठता दिखावे है तब वह  
 जानते हैं कि सन्तजनोंने जो तरकोंका वर्णन किया है सो जीवोंको भय देनेके  
 निमित्त कहा है और ऐसे ही स्वर्गों का वचनभी लालच देनेके निमित्त कहा है  
 पर वास्तवमें नरक और स्वर्ग कुछ नहीं सो ऐसे जानकर भोगोंविषे आसकर रहते  
 हैं और सन्तजनोंकी आज्ञासे विमुख होते हैं इसी कारणसे जो पुरुष शास्त्रकी  
 मर्याद विषे वर्तते हैं तिनको मूर्ख जानकर हँसते हैं और इसप्रकार कहते हैं कि  
 यह मूर्ख मर्यादकी रस्तीविषे वैप्रेह्ये हैं सो ऐसे बुद्धिहीन नास्ति कवादियोंको  
 परलोककी गतिको किमी प्रकार समझाय नहीं सके पर जब कुछ श्रद्धा किंसी  
 पुरुषविषे देखने तब इसप्रकार उनगे कहना प्रमाण है कि सन्तजन अमर्य और

पहिले आचार्य तो ऐसे हुये हैं कि तुम्हारे निश्चयके अनुसार उनके वचन संवेदी  
 भूटे होने हैं और बले हुये सिद्ध होने हैं तब तुमने मूर्खताकर्मके गुणभेदको क्यों  
 कर यथार्थ समझा है ताते जाना जाता है कि वह महापुरुष नहीं भूले और भूटे भी  
 नहीं पर तुम मूर्खों कि तुमने यथार्थ भेदको नहीं समझा और नरकोंके दु खों  
 को भी नहीं जाना वेहुगि आत्मा अनात्मा की भिन्नताको भी तुमने नहीं पहि-  
 चाना पर जब वह मूर्ख अपनी भून को न माने और हठकरके इसप्रकार कहने  
 लगे कि हमतो इस वार्त्ताको प्रत्यक्ष हस्तागलकवत् जानते हैं कि थव भी इस  
 शरीरविषे चैतन्यता का निश्चय करना मिय्या है ताते मरने के पीछे भी जीवको  
 अविनाशी जानना व्यर्थ है काहे से कि शरीर का व्यवहार प्राणवायु कर सिद्ध  
 होना होता है और जो परलोकका दु ख सुख कहते हैं सो यह भी रूपेनाषात्र  
 है। सो जब इनकानिश्चय ऐसा है तब तिनकी बुद्धि मूलही से नष्ट है और उनको  
 समझाने से निराग हुआ चाहिये काहे से कि यह महामूर्ख है इसी पर किंसी  
 सन्तको आकाशवाणी हुईथी कि तुम नास्तिकों को उपदेश मत करो इमकारके  
 कि यह मूर्ख वचनों करके समझने के अधिकारी नहीं पर जब वह इसप्रकार प्रश्न  
 करे कि यद्यपि परलोक की गति निस्मन्देह सत्यहोवेगी तौभी हमसे बहुतदूर है  
 काहेसे कि प्रथमतो हस्तागलकवत् नहीं भामती ताते ऐसे संगयके वचनकरके  
 प्रकटभोगोंका त्याग काहेको करिये और अपनीसर्व आयुपूर्वाग्यके दु खविषे  
 क्योंलगावे तब तिमको इमप्रकार कहिये कि जब तूने परलोककी वार्त्ताको कुछ  
 माना तब तुम्हको बुद्धिकी आन्नाकरके प्रमाणहुआ कि सन्तजनोंकी मर्ष्याद  
 विषे स्थितहोयो काहेमे कि जिम मर्षविषे अत्यन्त भयहोता है तब उसकार्य  
 को सशयकरभी त्यागना भला है जैमे तू भोजन करने की इच्छा करे और कोई  
 पुरुष तुम्हको अन्नानरही सगयडाले कि इस भोजन विषे सर्पने मुकडाला है  
 तबतू अवश्यमेव उस भोजनका त्याग करेता है यद्यपि तुम्हको यहनिश्चयही  
 होवे कि यह मनुष्यभूत कहना है अथवा अपने लोभके निमित्त तुम्हको डग  
 घता है पर तौभी तू उस भोजन को आगीकार नहीं करता इमी कारके कि यह  
 पुरुष सत्य भी कहता होवे तब मरने के दु ख मे भूषका दु ख तो जल्य है अरु  
 जब तुम्हको कुष्ठरोग होता है तब यन्त्र लिखनेवाला पुरुष य  
 यन्त्र लिख देउगा तब तेरा दु ख दूर होजावेगा सो

होती है कि-यन्त्र-और रोगका सम्बन्धही नहीं, तौभी तू चित्तविषे ऐसा अनुमान करता है कि यद्यपि मैं यत्रवाले को कुछ धनभी सन्त्रके बदले देऊगा तौभी मेरा क्या हानि है पर जब मेगरोग दूरहोजावे तब यहतो बड़ाला मंहोगा ऐसेही ज्योतिषियोंके वचनभी प्रमाण करके तू देवपूजा करने लगता है इम करके कि जब इसका वचन सत्यभी होवे तब तुझको बड़ासुख प्राप्त होवेगा और जब यह झूठी कदवा है तो मुझको देवपूजा विषे कितना कष्ट है तैसेही असत्य जो सन्त्रजन हैं और अवतार महापुरुषहैं और आचार्य्य अवधूतहैं सो तिनके वचन बुद्धिमानोंके निकट ज्योतिषी और यन्त्र लिखनेवालेके वचनसे तुच्छ तो नहीं होते ताते जिज्ञासूजन सन्त्रोंके वचनों पर प्रतीतिकरके चलकरके स्थितहोत है और तिससन्देह परलोकके दुखोंसे बूझतेहैं बहुरि, परलोकके दुखके निकट वैराग्यादिके दुख किञ्चिन्मात्र होजातेहैं काहेसे कि जब विचारकर देखिये तो प्रथम इस जगत् विषे जीवताही तुच्छभात्रहै और परलोककी अवस्था का कदाचित् अन्त नहीं आता ताते परलोकके दुखोंसे मुक्त होनेके निमित्त जो इस जगत् विषे यत्न कियाजाता है सो उस दुखकी मर्याद क्या है अर्थात् किञ्चिन्मात्रहै इसीकारण से इस जीवको चाहिये कि सन्त्रोंके वचनोंपर प्रतीतिकरे और यों जाने कि जब मैं इनके वचनसे विमुखहोजूंगा तब विरकाल पर्यंत दुखको भोगता रहूंगा और मेरी मुक्ति कदाचित् न होवेगी और इन्द्रियादिक भोग जो अल्पकालविषे विरस होजातेहैं इनकरके मुझको क्यालाम होवेगा काहे से कि परलोकका दुख अनन्तहै और शास्त्रों विषे इसप्रकार कहाहै कि जब सर्वब्रह्माण्डको राईके दानोंसे भरपूरकरिये और कोई ऐसीपक्षी होवे कि सहस्रवर्षपर्यन्त एकदाना भक्षणकरे तब उस अनजका भी अन्न आयजाताहै पर परलोकके दुखका कदाचित् अन्त नहीं आवता सो ऐसा विरकाल पर्यंत यद्यपि मानसी दुखहोवे अथवा स्थूलदुखहोवे पर उसका सहना महाकठिन है और उस दुखके निकट इस ससारकी आयुष् क्याहै ताते जो बुद्धिमान् पुरुषहै सो विचारकरके समझता है कि विचारकी मर्यादविषे चलना और दोष दृष्टिकरके अपकर्मोंका त्यागकरना प्रमाण है इसकरके कि जिम कार्य विषे अत्यन्त कष्टहोवे सो अनुमानकरके भी उससे अपनीरक्षा करनी भली है और यद्यपि इसके चलविषे कुछ दुखभी होवे तौभी विशेषहै काहेमे कि सबलोग अपने व्यवहारके

निमित्त जहाजोंविषे वैश्वर देशान्तर को जाते हैं सो उन की सर्वकिया अनुमान करके सिद्ध होती है ताते परलोक की गतिपर जिम पुरुष की एक प्रतीति नहीं और अनुमानगात्रही परलोक को मानता होवे सो वह भी जत्र दुष से अपनी रक्षाचोहे तत्र धैर्य करके वैराग्यादिक दुषोंको अगीकारकरे इमीपर एक मार्ताहे कि किमी नास्तिकवादी के साथ में एक महात्मा सतकी चर्चा हुई थी तत्र वह नास्तिक कहताया कि परलोक का सुख दुष सब कोई अनुमान करके मानता है और प्रत्यक्ष किसी ने देखा नहीं तत्र अली कहने लगे कि जो तैराही कहना सत्यहै तो हम और तू दोनोंमुक्तहुये और जो भेरावचन सत्यहै कि परलोकसत्य है तो परलोक विषे तू चिरकाल पर्यन्त दुखी होवेगा और हम मुक्त होवेंगे सो यह जो वचन सशय संयुक्त अली सतने कहा जो उस नास्तिकवादी की बुद्धि अनुसार कहाहै कि वह पुरुष अनुमानमात्र परलोक को प्रमाण करताया नहीं तो परलोकके सुख दुषविषे अलीसतको कुछ सशय न था पर वह यह जानता था कि जिम प्रकार परलोक को भलीमानि देख सके हैं तिसप्रकार यह मूर्ख न समझसकेगा ताते ऐसे जान तू कि जो इससमारीविषे तोशा नहीं बनावने परलोकका और और काय्योंविषे मग्न रहते हैं सो निस्तन्देह महामूर्ख हैं और इस मूर्खता का कारण विषयों की प्रीति है ताते भोगों की प्रीति विषे ऐसे लीनरहते हैं कि कदाचित् परलोक का विचारही नहीं करते पर जो परलोककी दृढ़प्रतीति करके मानते हैं तिन सबको परलोक के दुषसे भयमान होना प्रमाण है बहुरि सयम और भयके मार्ग विषे चलना विशेष है सो अब अपनी पहिचान और परलोक की पहिचानका वचन पूराहुआ ॥

इति पशुपत अथ्याय समाप्तम्

## सूचना

स्वरूप को इन चारों अध्याय करके प्रदिशाना और योंभी जाना कि इस जीवकी भलाई सम्पूर्ण भगवत्के भजन और उसकी पहिचानविषे है तो अब इससे आगे भगवत्को भजन और जिसप्रकार भगवत्की आज्ञा माननी योग्य है तिसकी श्रवण करना चाहिये, सो यह युक्ति चार प्रकरणकरके प्राप्तहोती है सो प्रथमप्रकरण यह है कि आपकी भगवत्के भजन और सत्कर्मो विषे स्थितकरे १ वहीरे दूसरा प्रकरण यह है कि अपने सर्वशरीर की क्रिया विचार की, मर्यादा, अनुशास करे २ और तीसरा प्रकरण यह है कि अपने चित्तको मलिन स्वभावा से शुद्ध करे ३ और चौथा प्रकरण यह है कि अपने हृदयको मले स्वभावोंके साथ सुन्दर बनावे सो चारों प्रकरण विस्तारपूर्वक भिन्नाभिन्न बर्णन होवगे और इन चारोप्रकरणोंके बखानमें यह पुस्तक पूर्णहोगी अब आगे समस्त शेष ग्रन्थ विषे इन चार प्रकरणोंकी बखान है ॥

## प्रथम प्रकरण

## पहिलासर्ग

ताते जानतू कि सर्व जीवोंको इतनाही अधिकारहै किजैमें सबकी ई कहते ताहै कि भगवत् एकहै सो इसके अर्थकोभी चित्तविषे समझे और इसपर ऐसी प्रतीतिकरे कि जिसमें भ्रम और संशयका किंचित् प्रवेशभी न होनेपावे और जब इसप्रकार चित्तमें निश्चय करलिया और बालके उरावर भी सशय न रहा तो सद्धर्म के मूलको इतनाही प्रतीति-रखना विशेष है पर विद्या पढ़ना और प्रश्नोत्तरका व्यवहार करना सब किसीका अधिकार नहींहै इसीकारणसे सत्ता और महापुरुषने हृदयकी सचाई और प्रतीतिकी हृदयताका उपदेश कियाहै कि संसारीजीवोंका इतनाही अधिकारहै वहुते ऐसे पंडितभी वहुतेहोते हैं कि सब नों के भेदको समझते हैं और युक्ति करके इतरजीवोंको समझाय सके हैं और

मन्त्रोच्चारण के लोकोके, सशयुको भी दूर करते हैं सो तिनको तपडिन कहाने जा-  
 ता है और ऐसे जो विद्यावान् हैं सो ससारी जीवों की प्रतीति की रक्षा करनेवाले  
 हैं वह हरि, परिचाननेका जो भेद है और परिचाननेका जो त्वास्त्वस्वरूप है सो तब  
 केवल परिदत्त ब्रह्माद्योत्पत्ते से और ससारी जीवों केवल प्रतीतिवालों की अवस्था से  
 भिन्न है पर उसको सार्गिको, पुरुषार्थके द्वारा प्राप्त होसकता है और ज्वलनग-  
 मनुष्य परमार्थके सार्गविषे दृढ़-पुरुषार्थ और मूल न करे तब ज्वलनग वह परिचान  
 की पूर्ण अवस्था को नहीं पढ़वसकता और इसका अभिगानी होना भी उसको  
 असोभ्य है और ऐसे, पुरुषको विद्या और शास्त्रोंके व्यवहारों का पढ़ना फलदा-  
 यक नहीं होता और उसको अधिक अवगुण ही होता है जैसे कोई रोगी पुरुष होने  
 जो ओषधि खायका कुपथ्यका त्याग न करे तब वह रोगी अधिक तो मृत्युको  
 प्राप्तता है अथवा उसका रोग बढ़ जाता है काहेसे कि पथ्य विना ओषधिभी रोग  
 को बढ़ावता है ताते, मने परिचाननेके त्वाओं अध्याय, प्रथमही वर्णन किये हैं  
 और इस वचनके सार्थ भेदको वह पुरुष प्राप्त होता है जिसका चित्त ज्ञायाके  
 किसी पदार्थविषे आसक्त नहीं होता और अपनी सर्व आयुष्य भगवत्की प्रीति  
 विषे वितावता है सो ऐसे परमपदका प्राप्ति, मदादत्त भेद और कठिन यत्न करके  
 प्राप्त होता है ताते में सर्व जीवों के अधिकार का उपदेश, वर्णन करता हूँ सो सब  
 जीव इस प्रतीति को अपने हृदय विषे दृढ़करे तब यह प्रतीति ही उनके उत्सग  
 भागों का बीज होवे ॥ अथ मन्दकरता भगवत्की प्रतीति का ॥ ताते ज्ञान, तू कि  
 तू उत्पन्न किया हुआ है और तेरा उत्पन्न करनेवाला भगवत् है और सर्व विश्व का  
 उत्पन्नकर्ता भी वही है वहृरि, वह एक है और उमकीनाई और मर्म्य कोई नहीं  
 और वह किसी जैसा भी नहीं वहृरि वह अनादि है और अविनाशी है कि उमका  
 अन्त, कदाचित् नहीं आवता और सर्व कालविषे सत्यस्वरूप है और कदाचित्  
 असत्य भावको प्राप्त नहीं होता वहृरि अपने आपकरके स्थित है और सर्व पदार्थों  
 की स्थिति उसके आश्रित है अर्थ यह कि उमको किसी पदार्थकी आधीनता नहीं  
 और सर्व पदार्थ उमकी के आधीन हैं वहृरि उमका स्वरूप सर्वसे निर्लेप है ताते  
 उसको कारण और कार्य नहीं कहा जानकता और जरीगसे रहित है और उमके  
 स्वरूपके मगान कोई आहार और द्रव्य नहीं सम्भवता कि वह रूप और रंगमे  
 विनाशण है इसी कारणसे जो कुछ इसगनुष्यके सञ्चलविषे आवता है सो भगवत्



उमसे परहे कहिमे कि सकल्ये और बुद्धिविषे आविनेवाले पदार्थ सबही उसके उत्पन्नकिये हुये है और उत्पन्नहुई वस्तुमे उमकी स्वरूप भिन्नहै ताते सकल्ये और बुद्धिविषे जिसका स्वरूप और चिह्न दृढ़होता है सो वह भगवत् उमसबों का उत्पन्न करनेवाला है बहुरि मर्त्याद और बढ़ना घटना उसविषे नहीं पीयाजाता कहिमे कि यह सबही शरीरके स्वभावहै और वह शरीरमे पहितहै इसीकारण से उसमहाराजको किमी स्थानविषे नहीं कहाजाता और किसी स्थानके ऊपरभी नहीं कहसके और उसकी स्वरूप स्थानकी कुछ अपसाही नहीं रखता और स्थानका ग्रहण करनेवाला ही नहीं इसकरके कि देहादिकोंके साथ उसका सम्बन्ध कुछ नहीं ताते यह सर्व सृष्टि ईश्वरके आश्रितहै और ईश्वर सब उस महाराज के आधीनहै और महाराज को जो वैकुण्ठके ऊपर कहाहै सो ऐसानहीं कि जैसा कोई स्थान किमी स्थानपर होवे कहिसे कि वह स्थान नहीं ताते वैकुण्ठ उसको उठियेहुये नहीं है पर वैकुण्ठ व वैकुण्ठासी सबदेवते पार्षद उसकीशक्तिके आश्रित है बहुरि यह भगवत् जिसप्रकार सृष्टिकी उत्पत्तिके आगेया तेसेही अबहै और अंतमेंभी एकरस बनारहेगा कहिमे कि उसके स्वरूपविषे तो परिणामकरके घटना बढ़ना कुछ प्रवेशनही करसके और जो घटतावे तब भगवत् कहना उसके अयोग्यहै व जो वृद्धताको प्राप्तहोवे तब एमे कहिये कि मानो आगे न्यूनया अपूर्णहै आहै सो यहवातभी अयोग्य है बहुरि उम महाराजका स्वरूप सब सृष्टिरे निर्लपहै परतोंभी इमकोचमें बुद्धिकरके पहिचानने योग्यहै और परलोक विदेहादिक अभिमान दृग्गुये दर्शन उमका होता है पर जिसप्रकार बुद्धिकरके रंगभेरेहित उम महाराजको समझा जाना है तेसेही उमको रूविषे उसका दर्शन भीरूपरगमे विलक्षणहै इमकरके कि उसका दर्शन स्थान दर्शनकीनाईनहीं । अथ शक्तिप्रामर्थ्य ॥ बहुरि वह ऐसा सम्पूर्ण सगर्थ है कि उमविषे दीनता और परार्थीनता प्रवेश नहीं करसके ताते जो कुछ उमने चाहाहै सो क्रियाहै और जो कुछ चाहेगा सो करेगा बहुरि चौदहलोक और वैकुण्ठादिक पुगियां उमकी सा मर्थ्यविषे स्थितहै उमकी आज्ञाके आधीनहै ताते और किसीके हाथ कुछ नई जो कुछ आपकरके समर्थहोने कीई भी इसीकारणने और कोई भगवत्के समी और उमकी नाई और उमका विरोगी नहीं ॥ अथ ज्ञान ॥ बहुरि वह भगवत् अपने ज्ञानकरके सर्व पदार्थोंका ज्ञानहै और जो कुछ जानने योग्यहै तिसव

आगेही जानता है वहूरि उसीके ज्ञानका अंग सर्वपदार्थों विषे भरपूर है ताते  
 आकाश और पाता न विषे कोई पदार्थ उसके ज्ञानमें बाहर नहीं इसकारके कि सबही  
 उसके उत्पन्न किये हुए हैं और उमही कर स्थित हैं इसी कारण से पृथ्वी के अणु  
 और वृक्षाकी पाती और जीवों के श्वास और हृदयों के सकल्प इत्यादिक और  
 सबही पदार्थ भगवत् के ज्ञानविषे हस्तामलकवत् प्रसिद्ध हैं जैसे हमारी दृष्टिविषे  
 आकाश और धरती प्रसिद्ध भामती हैं ॥ अथ इच्छा ॥ वहूरि सब कुछ उसकी  
 इच्छा और आज्ञाके अधीन है जैसे सूक्ष्म स्थूल लघु दीर्घ विधि विषे पुण्य पाप  
 सम्मुखता विमुखता लाभ और हानि सुख और दुःख रोग और आगम्यता धन  
 और निधनता सो यह सबही पदार्थ महाराजकी आज्ञा और इच्छाविना कदाचित्  
 वर्त्तमान नहीं होते ताते जेव सर्वमृष्टि अर्थात् मृत प्रेम मनुष्य देवता आदिक मृत  
 ही जीव एकत्र होकर भगवत् की रचनाकी कुछ विचार्यय किया चाहें तब यह  
 महाराजकी आज्ञा विना कोई कुछ कर नहीं सके और अममय है ताते जो कुछ  
 भगवत् कियो चाहता है सोई होता है और जो कुछ नहीं चाहता वह नहीं होता  
 और उसकी आज्ञा ऐसी प्रबल है कि उसकी कोई अन्यथा नहीं कर सका इसी  
 कारण से मृत भविष्यत् वर्त्तमान विषे जितने पदार्थ स्थित हैं सो सबही स्वभाव  
 भगवत्की सत्ता और विद्याके साथ रचे हुए हैं ॥ अथ श्रवण और दृष्टि ॥ वहूरि  
 वह सबकुछ सुनता और देखता और जानता है पर उसके सुनने विषे निरुत्पत्ता  
 और दूरता नहीं जैसे ही उमकी दृष्टि विषे तम और प्रकाश समान है अर्थ यह  
 कि तमकरके उसकी दृष्टि विषे आवरण नहीं होता ताते जेव अंधेरी रात्रि अ  
 थवा दिन विषे पृथ्वीमें घाटी चले तब वह महाराज उमके चञ्चल के शब्दको भी  
 सुनता है पर उसका सुनना और देखना भी चिन्तन और चित्रण करके नहीं  
 होता वहूरि उसका उत्पन्न होना आरम्भ और समाप्ती का नहीं होता ॥ अथ भ-  
 गवत्द्वचन ॥ वहूरि उसकी आज्ञा माननी मयै जीवों का प्रमाण है ताते कि  
 जो कुछ उमने वचन कियो है सो निश्चय सत्य है पर उमका वचन रगता और  
 अघर और दोनो ओर कण्ठकरके नहीं होता जेभे जीवने मनविषे किसी वचन  
 वार्ता को जो मस्तरा फुला है तब उन फुलाके वचन विषे शब्द और अक्षर  
 नहीं होता और वह शब्द अक्षर रहता है जेमेही उस महाराजका वचन हममें भी  
 सूक्ष्म अधिक है ताते मन्त्रजनों के हृदयविषे जो आज्ञावाणी हुई है सो सबही

भगवत् के वचन हैं और परावाणी से उत्पन्न हुये हैं-वहुरि वही वचन-सन्तानों के मुखसे जगत्-विषे पकटे हैं और वह वचन महाराज के निर्मल स्वभाव हैं और उसके स्वभाव सबही अनादि हैं और अविनाशी हैं जैसे भगवत् के स्वरूप की जानताका प्रतिविम्ब जीवों की बुद्धिविषे भासता है और सर्वजीवों की रसनाविषे उसकी स्तुति होती है पर जाननेवाली जो बुद्धि है सो उत्पन्न की हुई है और भगवत् का स्वरूप उत्पन्न किया हुआ नहीं-वहुरि जीव जो उसका रसनासे स्मरण करते हैं सो यह स्मरण उत्पन्न किया हुआ है और जिसको स्मरण करता है सो वह महाराज अनादि और अविनाशी है तैसेही उस महाराज के वचन जो उस ही के स्वत स्वभाव हैं सो यह भी अनादि हैं पर जीवों के हृदयविषे गुप्त कर रखे हैं और रसनाविषे उन वचनों का उच्चारण होता है और कागज की पोथियोंविषे लिखे जाते हैं सो वह हृदय की गुप्तता उत्पन्न की हुई है और लिखना पोथी का और उच्चारण करना रसनासे सो यह सब उत्पन्न किये हुये हैं पर हृदयमें जो गुप्त उन वचनों का स्वरूप है और पोथी में जो वस्तु लिखित है और रसनासे उच्चारण हुये उन वचनों का जो अर्थ है सो उत्पत्ति से रहित है ऐसेही वेदों के अक्षर और कागज और शब्द उत्पन्न किये हुये हैं और उनविषे जो भेद हैं सो उत्पत्ति से रहित हैं वह भगवत् के स्वभावसे हैं ॥ अथ कारीगरी के वर्णन में ॥ वहुरि जो कुछ यह रचना मन और इन्द्रियों करके भासनी है सो सब भगवत् की कारीगरी है और इस कारीगरी को उसने सर्व अंगों करके पूर्ण ऐसा बनाया है कि उस विषे कुछ ऊनता नहीं और जब किसी के चित्त विषे ऐसा सकल अङ्गों के अमुक पदार्थ ऐसे नहीं बनावना योग्य था ऐसा सकल उस मनुष्यकी सुखता है इस करके कि जिस भेद के निमित्त भगवत् ने उसको बताया है सो यह मनुष्य उस के भेद और गुण को नहीं समझता सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई अन्धा पुरुष किसी के गृह विषे जावे और उस गृह विषे सब सामग्री अपनी अपनी ठौरपर रखली हुई होवे पर वह अन्धा पुरुष यों न जानते कि यह वस्तु अपने उचित स्थानविषे धरी है ताने अजानता करके ओकर खाकर गिरपड़े तब कहनेलगे कि यह वस्तु तुमने मार्ग विषे काहे को रखदी है पर ऐसे नहीं समझता कि मैं आपही मार्ग से भूलाहू तैसेही भगवत् ने जो कुछ बनाया है सो यथार्थ विधि-सयुक्त उत्पन्न किया है और जिस प्रकार चाहिये था तैसाही रचा है

काहेसे कि जब इससे कुछ विशेषकरना होसकता है और महाराजने नहीं किया  
 नव ऐसे जानाजबिगे कि भगवत् ने वह विशेषता अपनी कृपणता अथवा अ-  
 समर्थता काके उत्पन्न नहीं की सो भगवत् विषे ऐसा अनुमान करना महाअ-  
 योग्य है तब प्रसिद्ध हुआ कि दु एव रोग निर्द्धनता मूर्खता पराधीनता आदिक  
 जो कुछ भगवत् ने रचा है सो यथार्थ भेदही के निमित्त बनाया है काहेसे कि उस  
 महाराज से अन्याय कदाचित् नहीं होना इमकरके कि अधिकार बिना दंड देने  
 का नाम अन्याय है सो वह महाराज किसी को अधिकार बिना दंड नहीं देता  
 काहेसे कि अन्याय तो वह करता है जो दूसरे की पूजा और राज्य को प्रथम  
 अपने अधीन करता है सो महाराज में यहवार्ता समझी ही नहीं अर्थात् महा-  
 राजके संगे किसी दूसरेका ईश्वर होना असभव है इस करके कि जो कुछ सृष्टि  
 आदि में थी और वर्तमानविषे है और भविष्यत्काल में होनेवाली है तिस सब  
 का उत्पन्नकर्ता और सबका परमेश्वर एक महाराज ही है और वह किसी के अ-  
 धीन नहीं और अवरके समानभी नहीं न कोई उसके समान है ॥ अथ परलोक  
 निरूपण ॥ बहुरि दो प्रकारकी सृष्टि उसने मची है सो एक स्थूल है और दूसरी  
 सूक्ष्म है और यह स्थूल सृष्टि जो देहादिक है सो जीवकी मज्जिल बनाई है कि  
 इस मज्जिलविषे आयकर कार्यको सिद्ध करे बहुरि शरीर के आयुष्की मर्याद  
 रखी है तिस उपरान शरीर का मृत होना बनाया है सो वह आयुर्बल मर्याद  
 से अधिक अथवा अल्प नहीं होनी ताने काल गायकर शरीर और जीवकी भि-  
 नना होजाती है बहुरि परलोकविषे जीवको शरीर पहिराने है और जैसी जैसी  
 किसीकी कर्तुनि होती है सो प्रकट दिखाने है तब यह मनुष्य अती भलाई  
 और सुखईको पहिचानना है बहुरि परलोकका जो कठिन मार्ग है तिमके ऊपर  
 चलावने है और वह एक पुल है सो वह सेतु बालसे विगेष सूक्ष्म और तन्वा  
 सो अधिक तीक्ष्ण है सर जो पुरुष इम ससारविषे विचारकी मर्याद विषे दृढ़ होना  
 है सो उस मार्ग को मुगमही लाया जाता है और जिनने विचारकी मर्याद का  
 त्याग किया है सो नरकों विषे गिगपड़ना है ताने परलोक विषे उस सेतु पर चढ़ा  
 होकर मर्षों के सत्यकी परीक्षा लेंगे और विमुखों को लज्जापमान कोंगे बहुरि  
 केते महापुरुषाकट बिनाही परममुखको प्राप्तहोंगे और किननों को अरादंड  
 हेविगा केने अरि दग्ध और ताड़नाको पावेंगे पर तिन पुरुषोंको आवां ।



स्वभावोंकी, सुदृताकेसाथ अपने हृदयको सुदृग्बनाये, जैसे नर्मता संग्राम त्याग धैर्य, भगवत्कामसे भगवत्की आशा, भगवत्की प्रीति इत्यादिके जो उत्तम स्वभाव हैं, सो यह जिज्ञासुजनों की अपवित्रता है, तद्वृत्ति, तीसरी अपवित्रता यह है कि सब इन्द्रियोंको प्राप्तिसे शुद्धकरता, जैसे निन्दा, क्रुद्ध अशुद्ध जीविका तोष परनासि, प्रिय दृष्टिकरना, सो ऐसे अपकर्मोंकी त्यागकरता और सर्व इन्द्रियोंको सुख और सन्तजनोंकी, अज्ञा विप्रेरखता, सो वहसाधिकी मनुष्योंकी सन्निवृत्ता है, तद्वृत्ति, तौषी, अपवित्रता यह है कि अपने धर्मों और शरीरको मिलनता से शुद्धकरनी और अपवित्रहो कर, अपने इष्टकी, पूजा और ज्ञान विप्रेसावधाने न होना, तद्वृत्ति, प्रसिद्ध दुष्क्रिया अपवित्रताकी चार, अत्रेस्यार्थ पर सर्वोक्तिमीने जो अपना मुख शरीर और वस्त्रोंकी अपवित्रताकी और क्रिया है और सर्वदा इसी शुचिताकी यत्न विप्रेलगत है सो यह अपवित्रता महानीच है इसकरके कि प्रथमतो सुगम है और हमरे इस विप्रेमनको भी मसन्नता होती है, इसी कारण से सब कोई इसीको अपवित्रता जानते हैं वृत्ति हृदयकी अपवित्रता, जो मलिन स्वभावों से कहीथी और पापकर्मोंके त्याग, विप्रे जो इन्द्रियोंकी अपवित्रता है सो इस अपवित्रता विप्रे, मनको कुछ स्थानसुख नहीं प्राप्त होता और इस सूक्ष्म अपवित्रताको और लोग देखतेभी नहीं, फाहे से कि यह हृदयकी अपवित्रताको भगवत्की देखता है और इतरजीव नहीं जानसके इसी कारण से, इस अपवित्रताकी और मनुष्योंकी प्रीति कुछ नहीं होती और इसको महाकठिन जानते हैं पर यह जो स्थूल शरीरकी अपवित्रता है, सो यद्यपि यह महानीच है सो भी चो इस अपवित्रताको, युक्ति के साथ करिये तब यह भी मली होती है और जब इसही संशय के ममुद्ध विप्रे, वहजावे तब उलटापापी और अगिमांनी हो जाता है, जैसे इन आचारी धेणुओंका स्वभाव होजाता है कि सर्वदा विमानों और वस्त्रोंको धोते रदने हैं और अपवित्रजल को हृदा करते हैं और तौसनों को भिन्न रखते हैं जिसमें किसीका हाथ न लगनेपावे सो यद्यपि इस अपवित्रताके विप्रे भी और दोष कुछ नहीं पर यह भी तवर्हा मली होनी है जब यह शुचिता पट्टयुक्ति के साथ होवे सो प्रथम युक्ति यह है कि जेते शुभ कर्तृति करने योग्य व्यग्रपही हैं तिनमे दूरे न रहे जेमे विद्याका पढ़ना और मत्तजनाके वचनोंको धारना, अथवा अपने शरीर और मवधिपोंके निमित्त शुद्ध जीविकाका उद्यम करना कि किसी मे कुछ मागनेकी इच्छा

न रहे और किसी की आशा न होवे तब यह सबही करतूति लाभदायक है इसी कारण से चाहिये कि ऐसे कार्यों को त्यागकर प्रवित्रता की अधिकता को अपना समय वाचित्वि काहे से कि विद्या और विचार और शुभजीविका का उद्यम करना प्रवित्रतासे अधिक उत्तम है ताते प्रीतिमान् और जिज्ञासु जो आगोहुर्ये हैं सो शरीरकी प्रवित्रता विषे आसक्त और लीन नहीं हुये हैं और शुद्ध जीविका और विद्या और विचार और भजन आदिक शुभ करतूतों विषे सावधान रहते हैं और हृदय की शुद्धता को निमित्त अधिक पुरुषार्थ करते हैं पर जिस पुरुष की ऐसी अवस्था होवे तिसके ऊपर वैष्णव को दोषदाष्ट रत्नों पूर्ण नहीं और जो कोई आलस और मोर्छों के निमित्त प्रवित्रताका त्यागके तिसको वैष्णवों के ऊपर दोष रखेना अयोग्य है और जहूरि दूसरी युक्ति यह है कि कपट और अभिमान से अपने चित्तको बचाय सकें इमकारके कि जिसे पुरुष की वृत्ति स्थूता प्रवित्रता विषे अधिक है वह स्वाभाविक ही अपनी शुभिता और बड़ाई को गढ़ा दिखाता है इसी कारण से अभिमानी होजाता है जहूरि जब अकस्मात् उसका चरण पृथ्वी परा छूजाता है अथवा किसी और के नासन से जल लेता है तब लोगोंकी चिन्शमे भयान्न होता है ताते ऐसे पुरुष को चाहिये कि लोगोंके देखेते हुये अयोग्य बले अथवा किमी और के ज्ञानोंका पानीमी पी लिया करे इम प्रकार अपनी परीक्षाके निमित्त तब तो नमला है तात्पर्य यह कि अपनी बड़ाईको प्रकट न करे और जब उसका मन ऐसी करतूति विषे चर्चमातोते होसके तब जानै कि मुक्तको कपट और दमने घेरलिया है तब उसको अवश्य ही उचित है कि उस प्रवित्रताका त्याग करे और लोगोंकी नाई सहज बर्न काहे से कि स्थूत प्रवित्रतामी जगतकी कीर्ति है और दम्भकारके इमकी बुद्धिका नाश होजाता है ताते दम्भ और कपटको दूर करने के निमित्त स्थूत प्रवित्रताका त्याग करना ही विशेष है जहूरि तीसरी युक्ति यह है कि सर्वदा अधिक संशय विषे अपनी सङ्गमी न होजावे ताते चाहिये कि जिस प्रकारका सयोग आय बने तिसीमाति बर्तलेवे कोहेसे कि अपनी वृत्ति को संशय विषे हृदकरना अयोग्य है और आगे जाते सन्तजन हुये हैं तिनहोंने भी संशय और ग्लानि विषे आप को वृत्तमात नहीं किया और लोगोंकी नाई समात आचार विषे भिचरे हैं ताते जो महापुरुषोंके आचारका त्याग करे और उनको अष्टजाने तब जानिये कि वह पुरुष है

पवित्रता अपने, मंत्रकी, प्रसन्नताके निमित्त करता है ताने निस्सन्देह ऐसी पवि-  
 त्रताका त्याग करना प्रमाण है ३ वृद्धि चोथी युक्ति यह है कि जिस पवित्रताविषे  
 किसी मनुष्यको इच्छा पहुँचे तब उस कर्मको अवश्यमेव त्याग देवे इस फलके  
 कि, जीवोंका इलाजता महापाप है और स्थूल पवित्रताके त्यागते में कुछ पाप नहीं  
 होता जैसे कोई मित्र इसको मित्रने नये और यह पुरुष उसके शरीर, और भ्रमों  
 के, पसीने, करके सक्तु वायर है तब यह भी अयोग्य है काहेसे कि उस मित्रको मंत्रि  
 ससक्त मिलना, और उसका आदर करना सहस्र पवित्रतासे विशेष है ऐसे ही जिवे  
 कोई पुरुष इसके आसन के ऊपर त्राण राखे अथवा इसके वासनसे जल लेवे तब  
 जाहिये कि उसको मरजे नहीं और ग्लानि भी न लावे पर बहुत पुरुष तो शरीर  
 की पवित्रता करनेवाले ऐसे सूक्ष्म-बोधको नहीं समझते, ताने जब कोई मनुष्य  
 अज्ञान कदी, उनके आसन, अथवा वासनको छोड़े तब उसको निरादर करती है  
 और सूडोर बचन कहकर उसका हृदय दुखावने है सो ऐसी क्रिया और पवित्रता  
 सत्रही अयोग्य है काहे से कि ऐसी क्रियासे अभिमान प्रकट होता है और अभि-  
 मान करके ऐसे उन्मत्त हो जाते हैं कि मानों इन्होंने लोगोंपर बड़ा उपकार किया  
 है और जब किसीका निगदर करते हैं अथवा किसीसे सक्तु चरहते हैं तब इसको  
 भला कर्म जानते हैं और अपनी पवित्रताको प्रकट दिखावते हैं और बड़ाई करते  
 हैं और औरोंको अज्ञान कर ग्लानि करते हैं सो मानों महामूढ़ हैं और उतका  
 हृदय, क्रोध और अभिमान करके महा अपवित्र है सो ऐसे कर्मोंका उतके हृ-  
 दयकी अपवित्रता प्रकट होती है और इस अपवित्रतासे अपने हृदयको शुद्ध  
 करना अवश्य ही प्रमाण है काहेसे कि अपलक्षणकी अपवित्रताकरके बुद्धिकाही  
 नाश होजाता है ४ वृद्धि पाचवीं युक्ति यह है कि जैसे शरीर को शुद्ध रखता है  
 तैसे ही आहार और व्यवहारको भी शुद्ध करे और बचन भी शुद्ध होने इस फलके  
 कि बचन और आहारकी शुद्धता ब्रह्मों और वासनोंकी शुद्धता से अधिक वि-  
 शेष है और जो पुरुष आहारादिककी पवित्रताका तो त्याग करे और शरीरहीकी  
 पवित्रता विषे ह्वजावे तब जानिये कि वह पुरुष शरीरकी पवित्रताभी दंग और  
 कपटके निमित्त करता है जैसे कोई पुरुष मंत्रविना अधिक आदर करे और हाथ  
 पाय धोयेविना स्थित भोजनविषे होये नहीं सो वह इतना भी नहीं समझता कि  
 जब वह आदर अपवित्र है तो विशेष मंत्र विना क्यों खानाह और जो पवित्र



सामर्थ्य भी नहीं ताते धनका संग्रह रखते हैं पर तो भी अर्थी जीवोंको उदात्त  
 सहित देते हैं जैसे अपने सम्बन्धियोंको प्रतिपालन करते हैं तैसेही अभ्यागतोंके  
 भी प्रति संयुक्त देते हैं बहुरि तीमरे मुख्य ऐसे हैं कि उनमें ऐसी उदारताकी भी  
 सागर्य नहीं ताते भगवत्के निमित्त दर्शाण देते हैं पर भगवत्की आज्ञा मान  
 नकर दर्शाणके देने विषे प्रसन्न होते हैं और जिनको देते हैं तिनके ऊपर कस्तो  
 उपकार नहीं जानते काहेसे कि उस दान देने विषे अपनेही भनाई समझते  
 सो यह के निष्प्रवस्थादे पर जिस मनुष्यको दर्शाण देना भी कठिन होवे भगवत्के  
 के निमित्त सब जानिये कि उसको भगवत्की प्रतिही कुछ नहीं समझके कि  
 यद्यपि प्रसन्नता सहित दर्शाण भी देवे और उससे अधिक देने विषे समर्थ  
 होवे तो भी प्रतिमानोंकी समा विषे उसको कृपण कहै जैसाह र बहुरि दान  
 देनेका दूसरा तात्पर्य यह है कि दान करके कृपणतरूपी मलिनता ही जाती है  
 और जीवका हृदय शुद्ध होता है काहेसे कि भगवत्के निकट उपविष्ट भवने पर  
 कृपणताही बड़ा पेटल है अथवा बहिलमलिनता जैसे शरीरको अपवित्र करता है  
 तैसेही कृपणतरूपी अपवित्रता से हृदय मलिन और अपवित्र होजाता है और  
 जैसे बहिलमलिनता से भजन पूजाकी योग्यता नहीं रहती तैसेही कृपणता से  
 हृदय में भगवत्की निकटता की योग्यता नहीं रहती बहुरि भक्तिप्रकार अलक्ष  
 योये विना शरीर मलिनतासे पवित्र नहीं होसकता तैसेही कृपणतरूपी अपवि  
 त्रतासे दामि दिये विना हृदय शुद्ध नहीं होता पर सन्त महत्त्वाओंका कष्टीर  
 आदिके दान अंगीकार अयोग्य है काहेसे कि दर्शाण धनकी दक्षिण निमित्त  
 होता है तासे महामलिनह र बहुरि तीसरा तात्पर्य यह है कि दान देने करके  
 भगवत्के उपकार का शुक होता है इस कारणसे कि यह धनभी दानों लोकमें शुक  
 का हेतु है ताते जैसे व्रत और भजन करना शरीरके सुमका शुकह तैसेही दान  
 देना धर्मका शुकह इसी कारणसे प्रतिमानोंपुत्र्य जव आपका सुधी विपना  
 और किसी मनुष्यको निन्दनता करके बुद्धि दम्बता ह तब इसप्रकार विचरिये  
 विचार फलता है कि यह भी महाराज की जीव है और मैं भी उसी महाराज की  
 जीवह ताते सबप्रकार महाराज का शुकह कि सुमको ता वनामिके करके सु  
 स्तन किया है और उसको दीन और अर्थी वर्मायाही ताने मन्विकार तथा फल  
 इसके साथ विगैह काहेसे कि गत यह भी गरी परीक्षा होवे और महिम परीक्षा

सिद्धि के लिये हो। तब तब महाराज उसको मेरीनाई सुखेन करे और मुझको उसके  
 लालन करवने तब मेरा क्या बल नजे लाते, सब किसी को उचित है कि दान के  
 श्रेयोंको समझे तब उसका दान देना व्यर्थ न होवे ३ वहरि जब किसीको दान  
 देने तब उसविषे हतनी सुझिया है प्रथम यह कि दशाश देने में विलम्ब न करे  
 तब इस करके तीन लाभ होते हैं प्रथम यह कि उदारता की रुचि प्रकट होती है  
 और स्त्रोत्र सम्पूर्ण वर्ष पर्यन्त व्यतीत होजावे तब उसको दशाश देना श्रवण-  
 भेदासागण है और जब न देत तब पापी होता है सो पापके भय काके दान देने  
 विषे श्रीतिका लक्षण कुछ नहीं भासता और जो टहलुवा पीति करके स्वामीको  
 पहलु न करे और सपकाके कुछ सेवा करे तब वह टहलुवा बुरा कहा जाता है १  
 वहरि दूसरा लाभ यह है कि शीघ्र दशाश देने में अथिया के चित्त विषे पमत्र  
 तप प्राप्त होती है और दानीका अशीष देते हैं तब अचान कही इसके चित्तका  
 श्रीप्रसन्नता पहुँचती है २ वहरि तीसरा लाभ यह कि विद्वाने वेशोच होजावेगा  
 और जब दशाश देने में हील करता है तब आश्रय व्याघ्र आदिक विद्वाने आन  
 विपजते हैं और जब शीघ्र देता है तब सर्वदुःखोंसे निमेष होता है अथवा जब कोई  
 मन्वान रुही सकट आन उपजे और यह पुरुष सकट विषे दान देनेको समर्थही  
 नु होतके तो श्री सुप्रयुक्त से अप्राप्त रहजाता है ताते सर्वप्रकार शीघ्रही दान  
 देना आता है काहेसे कि जब इम मनुष्यके हृदय विषे दान देनेकी रुचि उपजे  
 तब उसको सगर्वत की दया जाने और अपने चित्तविषे इसप्रकार भयवान् होवे  
 कि सत इम सुमकी रुचिको बुरा सकल गिरापदेवे ताने इम धर्म की रुचिको  
 शीघ्रही प्रसन्न किया जाहिये १ वहरि दूसरी युक्ति यह है कि दानको गुह्यही देने  
 और प्रसिद्धता करे तब दम और कपटसे दूरहोने और इमका दान देना निष्का  
 मदेहि सोइ सतजनों के वन्नता विषे भी आयोह कि गुह्यदान करके भयवत्की  
 सिद्धिया को प्राप्तता है और जब परलोक विषे अधिक तपन होवेगी तब गुह्यता  
 करके माले पुरुष भगवत्की छाया तले रहगे और जब कोई दान देकर श्रापही  
 विषय करके लगता है तब वह दानही व्यर्थ होजाता है इमी कारण से जिज्ञासु  
 ज्ञाते ते गुह्यदान देने निषिक्त बहूत चम किये हताने जब किसी नेत्रहीन का  
 सिद्धि थे तब मुझसे ज्ञातवेही न थे जिममें वह पहिचानेही नहीं अथवा जब नि  
 शब्दस पुरुष की निदा विषे सोयाहुजा देवने येने जो कुछ देना होनाया उके

वस्त्र में बांधे जाते थे अथवा जब किसी अर्थी को आयता देखते थे तब दानकी वस्तु को मार्ग विपे डालदेते थे अथवा किसी और के हाथ से देते थे सो इसका तात्पर्य यह है कि ऐसा गुह्यदान दीजिये जो देनेवालेको अर्थीभी न पहिचाने और गुह्यदान देनेका प्रयोजन यह है कि प्रकट देने विपे दम्भ होता है तो श्रमणता और दम्भ दोनोंको इकट्ठाही तोड़तेथे काहे से कि यह दोनों स्वभाव दुष्प्रदायक है पर कृपणता विष्णुकी नाई है और दम्भ महाअज्ञात है ताते दोनों को दूर करना विशेष है कि मलिनस्वभावा का दुःख परलोक विपे प्रकट होवेगा । वद्वार तीसरी युक्ति यह है कि जिस पुरुषने दम्भ को अपने चित्तसे दूर किया है तब उसको प्रत्यक्ष देनाही भला है काहे से कि उसको उदारता को देखकर इस जीवोंको भी रुचि उपजती है पर यह अवस्था उस पुरुषकी होती है जिसको निन्दा और स्तुति समान होवे और भगवत् को अन्तर्यामी जानने ताते लोगों की ओर दृष्टि न करे वद्वार चौथी युक्ति यह है कि जब यह पुरुष दान देने के समय अर्थी को कठोर वचन बोलता है अथवा क्रुद्ध हो देखे तब इस करके भी दान देना निष्फल होता है और ऐसी मूर्खता दो कारण करके उपजती है सो प्रथम यह है कि जिसको धनका देना कठिन होता है तब वह दान देने के समय को धनवान् और अप्रसन्न होता है ताते दुर्बचन कहने लगता है सो यह भी बड़ी मूर्खता है काहे से कि जिसको एक दाम देकर सदस्र दाम लेने की आशा होवे और देती वारं सकुच जावे तब भी मूर्खता कहावती है तैसही दान देने करके नरकों मे इस जीवकी रक्षा होती है और बड़े सुखों को प्राप्त होता है सो जिसकी प्रतीति इस वचन पर दृढ़ होवे तब उसको दान देना कर्षण कठिन होगा और दूसरा कारण यह है कि मूर्खता करके आपको अर्थी से विशेष मानता है कि वह निर्द्वन्द्व और मैं धनवान् हूँ और ऐसे नहीं जानता कि परलोक विपे निर्द्वन्द्व पुरुष सुखको प्राप्त होंगे और धनवान् दुःखको पावेंगे काहेसे कि इसलोक विपे निर्द्वन्द्व पुरुष दुःखको भोगते हैं और धनवान् सुखोंको भोगते हैं वद्वार धनवान् अभिमानी होते हैं और निर्द्वन्द्वों को हृदय दीन होता है ताते भगवत् को दीन मनुष्यही प्रियतम लगते हैं और जब विचार करके देखिये तब इस लोक विपे भी धनवान् बद्धत हुंसी है कि नाना प्रकार के व्यवहारों की विषयता विपे विद्वान् रहते हैं और खानपान इतनाही करते हैं जिसनी कुछ शरीर की म-

यदि होती है बहुरि धनवानों पर यह भी दर्श स्वला है कि अर्थी जीवोंको यथा-  
 शक्ति दान देवें और जो न देवें तो पापी होंगे चाते प्रसिद्धे हूँ कि धनवानों  
 को इसलोक विषे भगवत्ने निर्द्धनों का दहलु भा बनाया है और परलोक विषे  
 तो धनवानों से निर्द्धन पुरुष निस्सन्देह अधिक सुखी होंगे चाते चाहिये कि  
 दान देने विषे सकुच और कठोरता न करे और आपको अर्थियों से विशेष भी  
 न जाने ४ बहुरि पौर्चवी युक्ति यह है कि जिसको कुंठ दान देवे तब उसके ऊपर  
 अपना उपकार न राखे काहेसे कि उसके ऊपर तबहीं उपकार रसिता है जब ऐसे  
 जानता है कि मैंने उसको बड़ा पदार्थ दिया है और यह मेरे अधीन है सो ऐसी  
 जानना भी बड़ी भूलता है इस करके कि जब इस पुरुष के चित्त विषे ऐसा अ-  
 भिमान दृढ़ होता है तब इस प्रकार चाहता है कि यह अर्थी पुरुष मेरी दहले विषे  
 सावधान होवे अथवा मेरी सन्मान करके प्रथम ही नमस्कार करे बहुरि जब वह  
 अर्थी पुरुष ऐसे नहीं करता तब दान देनेवाला चित्त विषे रोप करता है और  
 इस प्रकार कहने लगता है कि मैंने इसके साथ ऐसा उपकार किया पर इसने  
 मेरा सन्मान ही न किया सो यह सब सुखता के लक्षण हैं काहेसे कि जब प्रीती  
 प्रकार विचार करके देखिये तो जाना जाता है कि अर्थी पुरुष ने इसके ऊपर उ-  
 पकार किया है कि दान को अगीकार करके इसको नरकों की आग्नि से बचा-  
 या है और दान देनेवाले पुरुष के हृदयमे कृपणता के मेल को छुड़ाया है जैसे  
 कोई नाऊ किसी पुरुषका विकारी रुधिर निकाले और लेवे कुंठ नहीं तब तब  
 पुरुष निस्सन्देह उस नाऊका उपकार मानता है काहेसे कि इसके दत्त दायक  
 रुधिर को उसने दूर किया है तैसेही कृपणतारूपी मेल भी मनुष्य के हृदयको  
 दूर करनेवाला है सो जिस अर्थी के सम्बन्ध करके दूर होवे तिसका उपकारी जा-  
 नना चाहिये बहुरि सन्तजनों के वचनों विषे भी आया है कि जब कोई पुरुष  
 किसी को दान देता है तब वह दान प्रथम भगवत् के हाथमें जाय पहुँचता है  
 पीछे अर्थीको प्राप्त होता है अर्थ यह कि उस दानका फल भावत ही देता है सो  
 जब ऐसे है तब चाहिये कि अर्थी पर उपकार न राखे और अपने ऊपर उसका  
 उपकार जाने और जब मली प्रकार दानके भेदका विचार करे तब जानिये कि  
 अर्थी के ऊपर उपकार रचना सुखता है चाते जो आगे जिब्रामुनन हुये है सो  
 तिन्होंने अर्थियों और सम्पागतों या सन्मान किया है और अधीनता सहित

उसके आंगोपि दैनहो कर कहनेप्लानेये कि तुमाइसंदाचको अक्कीकिवित्रि  
 धनकिसीचि पेमेभीविप्याहै किंप्रपने ताभो विपेचुक सौवाविदीनकी  
 उनकेआपेकिरा है इसत्करकेकिअहा आपकीउद्ययुक्तैवेओतोहमाकेहायमे  
 उनकहाय अतारिहाईसीफुग्यसि अर्थमेंसेअशीपकीभी ताहनाभी  
 करवेमें इसत्करकेकि अशीपकीविाहँ सस्केभीहदमकी उपकारमेंसेद्वैतमे  
 औरकिवासकरके देखियेस्तो उमकारि करनैजाततम्पुयावैजिसिनुइस तीदात  
 की अगीक्षाएकियापखवहैरिचडीएकियहहै किंदानका मदापेउदातनके  
 तिराईहैवैन्कीहेसेकि प्रापमहिताउपयुक्तैकेपेपुनधिकोअगवितके  
 निरासनिईइसत्करके किप्रापत्रामीशुद्धस्वरुइहेतातोशुद्धपदकेमापी  
 देता विपेपहिंओरअशुद्धकोमिभित्तप्रमथानुर्वीकरतअपीपरमुहायमे  
 श्री कहाहैकि विसामदार्थकोतुमप्रथमही अलित विषयसाध उतप्रककावेमे  
 तिन उसमानिर्वाकरुकोजमेअकेक्याँनिगात्रेहोओरजेसेकेई प्रीयतम् किसी  
 केरुइविषेआये तब उसकोनीचउसुदेवीइसी होतीहेतोवेइनीप्र  
 मिलितामस्ती एणितकेसर्भदेनई औरैउचन प्रस्तुमिपनेभीध लीयावतीअभी  
 महापदवीअरु हैंअहेसेकिहली विपेप्रद्वयकारिइक संहीआसगा म्भोंये अति  
 सहितदिनायायी ज्ञानाहेसोभिसदानविपेभंविंरुअद्यदेपरंभीति प्राकेये  
 तिनईदानज्यायि हेतैहै इसीप्रदृगदप्रस लोभी कहौहेकितामविदोएक  
 ह्यातअद्वैत सहितादेताविशेपकेमोरुइकीफरी महददत्त वेनेअभीनि  
 त्येपक्षेवाहैइ॥ अथ प्रकृद करनकाव्यक्त के अशिकासिमांकात तातेपेननु  
 कि दानदेनाभी अधिकारी प्रानामताहे सोउत्तमअधि कारि वेअसकोगदिते  
 हेकिविअस के मखिककेमार्गकी धिनवनीहेवि भौध तायाँकेतपनिईमोका  
 असनेरियमकियाहिलेघन पेमे हरीपनोदेनअत्यन्तअनदुप्रकृद्धैतावति  
 औरगुणुरोवीआहासओमल काके सेवाकृष्ण मुदाविशोरेहिसत्करके  
 किंअउत्तकेयासीएकेकुआयन होकरिजपामजनापेहृदयहेतेहैसवकेवा  
 अकारवेवास्त एहप्रभेउजकेमजनक यागीहोताहै इसीपरिअरु वाज्रकिंतिअरु  
 त्पुरुंडितप्रधनवाच मास्थितमूर्खंसादिअरीमातृभोंहो अयोविपे सावधान  
 रिहतावा औरइतप्रकारकेहताबाकि यहांनिज्ञागुजन सर्वदाअभाउत्केभजन  
 त्रिदेलीनहैओमईव इनतां किसीवस्तुकोआशाहोतीहेअनेउत्तनीन



धनके अधीन बनाया है इसी कारण से बहुते मनुष्यों को भर्त्सना दीया है पर तो भी जिनके ऊपर भगवत् की दया है तिनको मायाके व्यवहारकी विशेषता से बचाय लिया है और धनके संग्रहका बोझा और उसकी रक्षाका क्लेश धनवानों के ऊपर डाला है वहुते उनको आज्ञा करी है कि मेरे प्रियतम धनसे जो रहित हैं तिनकी सेवा करो तब वह मायाके व्यवहारों से भी मुक्त होवें और सर्वदा मेरी भजन विषे स्थित होवें ताते चाहिये कि जब यह पुरुष किसी से कुछ दान लेवे तब हृदय विषे यही मंत्रा रखे कि मैं शरीरिके आहारमात्र कुछ अधिकार करके भजन विषे सावधान होऊँ और इस उपकारको भी जानते कि भगवत् ने धनवानों को मेरी दहलुवा बनाया है सो इस निमित्त जो मुझको भजनके विशेषता न होवे और इसका दृष्टान्त यह है कि जिसके ऊपर किसी राजा की प्रशासनी है तब उसको अपनी दहल के निमित्त अपने निकट रखता है और वरसभी प्रजा राजा की सेवाके अधिकारी नहीं ताते उनको अपने निकटवर्तियोंके अधीन करदेता है तब वह प्रजा उनके आगे ही दण्ड मरती है ताते वह निकटवर्ती आरामके साथ सुखको भोगता है और राजाकी सेवा विषे सावधान रहता है तब ही भगवत् ने भी सर्व मनुष्योंको अपने भजनके निमित्त उत्पन्न किया है ताते चाहिये कि जब असमही पुरुष किसी से कुछ लेवे तब इसी मंत्रा साथ लेवे तो मला है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि दान देनेवाले से लेनेवाला विशेष तो नहीं होता पर जब वह समय से मुक्त लेकर भजन विषे स्थित होवे तो मला है और धनवानोंको उनकी सेवाकरनी प्रमाण है ताते प्रसिद्ध हुआ कि धनवान् और निकटन पुरुष सबही भगवत् के भजन और उसकी आज्ञा माननेके निमित्त उत्पन्न हुये हैं वहुते दूसरी युक्ति यह है कि जब किसी से कुछ लेवे तब उस दानकी भगवत् ही का उपकार जाने और देनेवाले को महाराजकी प्रेरणाके अधीन समझ करे से कि जब भगवत् ने प्रथमही उसके हृदय विषे प्रेरणा करी है तब उसने मुझको दान दिया है सो भगवत् की प्रेरणा श्रेष्ठ है इस करके कि जब उस विषे श्रद्धा और निश्चयकी दृढ़ता न होती तब वह एकदाम भी न देता ताते सर्व प्रकार भगवत् ही का शुक्र है कि हृदयोंका प्रेरक बही है वहुते जब ऐसे जाना कि देनेवाला भगवत् है पर तो भी दान देनेवालेका संबंध धीवर्ग रक्खा है कि उसके हाथों करके पहुँचता है ताते उसकी मलाईको भी

जानना चाहिये इसकरके कि उमको भी दयाका स्थान देनायाहै इसहेतुमे वहभी भगवत्का प्रियतमहै और उसका भला चितवना प्रमाणहै और यहभी चाहिये है कि जत्र वह इसको थोड़ी वस्तु देवे तब उसको अल्प न जाने सो यहभी शुक्र होताहै जैसे देनेवाले को इस प्रकार चाहिये है जितना कुछ किसीको देवे उमको किञ्चिन्मात्रही जाने तैसेही लेनेवालेकोभी उचितहै कि किञ्चिन्मात्रहीको अधिक करके देवे २ बहुरि तीसरी युक्ति यहहै कि अशुद्ध वत्तको अङ्गीकार न करे अर्थात् पापकर्मियोंका दात न लेवे ३ बहुरि चौथी युक्ति यहहै कि अपने कर्ममात्रमें अधिक न लेवे रुहेमे कि कार्यसाधनमें अधिक लेना असोभ्यहै और जत्र कोई पदार्थ गृह विषे रखताहोवे तब दात दशाण का अङ्गीकार करना प्रमाण नहीं ४ बहुरि पाँचवीं युक्ति यहहै कि प्रथमही दात देनेवाले से पूर्वलेवे किंतु यह दात रोगियोंके निमित्त का देनाहै अथवा निर्दैनियोंके निमित्त का देताहै अथवा हगको मातु-जान कर किसी कामनाके निमित्त देना दे सो वह जत्र कुछ उत्तर देवे तब चाहिये कि कामनाके निमित्त का अङ्गीकार न करे और जत्र वह कहै कि यह निर्दैनियोंके निमित्तका है सो जब उमको अत्यन्तही चाहना होवे तब लेलेवे अन्यथा नहीं ५ ॥

चौथा सर्ग ॥

॥ ताते जान तू कि भगवत् ने इसप्रकार आज्ञा करी है कि जो पुरुष मेरे निमित्त व्रत और तप करके भोगों का त्याग करते हैं तिनको फल देनेवाला मैंही हूँ बहुरि जत्र भी तीन प्रकारका होताहै सो प्रथम यह कि अपने वित्तको मरुत्तोंसे रोकखाना और वित्तकी वृत्तिको भगवत्के स्वरूप विषे स्थित करना सो यह व्रत ऐसा कठिनहै कि जब भगवत् विना कुछ सकल्प भी इसके हृदये विषे फुरे तब वह व्रत खडित होजाताहै जो दिन विषे रात्रिके आहारका सकल्प लखे तो भी प्रमाण नहीं इस करके कि प्रतिपाल करनेवाला भगवत्दे ताते चाहिये कि यह मूर्ख अपनी जीविकाकी चिन्ता न करे और महाराजका भरोसा करके अचिन्त्य होरहे सो यह अवस्था मन्तजनों को प्राप्त होतीहै और उन्नत बनभी यही है और दूसरा व्रत यहहै कि मर्ष इन्द्रियोंको पापसम्पत्तियोंसे रोक राने सो प्रथम अपनी दृष्टि नेत्रोंकी बुझी भावना से बचाय रखवे काहे मे कि उम काक



काम उत्पन्न होता है इसी कारण से सन्तजनों ने कहा है कि नेत्रों की दृष्टि पाप का विष भरा तीर है वहुरि यह उसही के ऊपर विष लपेटा हुआ है ताते जो पुत्र भगवत्के भय करके इसका त्याग करता है तब उसको धर्मका शिरोधार्य प्राप्त होता है और अपने चित्त विषे प्रसन्नता को पावता है १ इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि पांच कर्मों करके व्रत खण्डित होजाता है निन्दा और भूँट बोलना और भूँटी दुहाई कठोर वचन काम की दृष्टिकर देखना सो यह पांच पाप व्रत को तोड़ डालते हैं ताते काम दृष्टिका रोकना यह नेत्रों का व्रत है १ दूसरा धर्म वचनों से रसना को रोक राखे अर्थात् जिस वचन विषे प्रयोजन कुछ सिद्ध न होवे उस वचनसे मौन होरहे अथवा भगवत्के वचन और सन्तोंके वचनों विं मन को लगावे और वाद विवाद विषे आसक्त न होवे परनिन्दा और भूँट तो ऐसे महापाप हैं कि इन करके ससारी जीवों का स्थूल व्रत भी खण्डित होजाता है इसीपर एक वार्त्ता है कि दो स्त्रियाँ ने निगहार व्रत किया था तब भूँटकी अधिकता करके व्याकुल होनेलगीं और व्रत खोलने के निमित्त महापुरुषसे पूछ नेलगीं तब महापुरुष ने उनको जलका कटोरा भरदिया सो जब उन्होंने जल पान किया तब उनको वमन हुआ और उस वमनमें सब रुधिरही गिरा सो यह देखकर भवलोग विस्मय को प्राप्तहुये तब महापुरुष ने कहा कि इन स्त्रियों का ऐसा स्वभाव और अवस्था है कि जिस स्नान-पानको भगवत्ने शरीरका आहार बनाया है तिससे तो इन्होंने व्रत राखा और जिमने महाराज ने महापाप कहा है तिसको अङ्गीकार करती है अर्थात् निन्दा विषे आसक्त हैं और इनके मुखसे जो रुधिर निकला है सो निन्दा कर्मके मानों इन्होंने गास लाया है २ वहुरि तीसरे श्रवणोंको भी मर्यादा विषे रक्ते तात्पर्य यह कि जो वचन बोलने विषे निन्दे व्रत का श्रवण करना भी निन्दे जैसे निन्दा और भूँट वचन विषे निन्दे तिसका सुतनेवाला भी कहनेवाले की नाई पापका भागी होता है १ वहुरि ऐसेही अशुभ कर्मोंमें हाय और पापोंको रोककरके काठेमें कि व्रत रसनेवाला पुरुष गेगी की नाई होता है सो जब व्रत गेगी फल मूल आदिका को कुपय जानकर तो त्याग करे और विषको पान करे तब शीघ्र ही मृत्यु हाता है तैमेही पापकर्म विष ही नाई है और स्नान पान फल मूल ही नाई है इम करके कि इमकी अर्थात् आहारकी अधिकता में पापें वास्त्व में कुछ आहार पा

रूप नहीं ताते खान पान का त्याग करना और इन्द्रियों करके अशुभ कर्मों में आसक्त रहना सो ऐसे व्रत करके लाम कुछ नहीं होता इसीपर सन्नजनोंने भी कहा है कि केने पुरुषों को व्रत विषे केवल भूख प्यास का कष्ट ही प्राप्त होता है ४ पात्रों योंभी चाहिये कि अशुद्ध आहार का अङ्गीकार न करे और शुद्ध आहार को भी मद्यार्द्र के अनुसार अल्पही अङ्गीकार करे और भोजन बहुत न करे और इस प्रकार भी न करे कि दिनको व्रत रखकर रात्रिको दूना आहार करनेवे काहेने कि व्रत रखने का प्रयोजन यह है कि भोगों को निबलकर ताते जब व्रतको रखकर पारण समय नाना प्रकार के व्यजनों को अङ्गीकार किया तब इस करके तो भोग और अधिक होते हैं और हृदयभी उज्ज्वल नहीं होता ५ पर जिन प्रकार मेंने इन्द्रियों का व्रत वर्णन किया है सो जिज्ञासुजनों का मत है इसको मध्यम कहने है २ बहुरि तीमरी प्रकार का व्रत समारी जीयोंका स्थूल है कि यह केवल खान पान का त्याग करने है और इन्द्रियों को पापों से नहीं रोक सकने सो यह व्रत महाकनिष्ठ है और इस विषे इतनाही गुण है कि उस समय विषे इन्द्रिया कुछ निबल होजाती हैं पर जिज्ञासुजन जो सर्व्व इन्द्रियों का व्रत रखने है और अशुभ कर्मोंमें अपनी वृत्तिको रोक रखते है तब उनको भी इस प्रकार चाहिये है कि सर्व्वदा भगवत् के भय विषे स्थित रहै काहेसे कि न जाने भगवत् इस व्रतको प्रमाणकरे अथवा न करे ताते भय विषे स्थित रहना ही विशेष है परे निराश होकर शुभकर्मोंको त्यागना प्रमाण नहीं काहेसे कि भगवत् किमी के किञ्चिन्मात्रभी फगत को व्यर्थ नहीं करता है ३ ॥

### पांचवां सर्ग ॥

पोथी पाठ करने के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि मन्तजन ने इसप्रकार कहा है कि पोथी का पढ़ना भी उत्तम भजन है और महापुरुषने भी कहा है कि मनुष्यों के हृदय मलिन हो गे है जैसे जर्गर करके तर्पण मलिन हो जाना है बहुरि लोगोंने पूछा कि ऐसे हृदय क्योंकर निर्मल होवे तब उठाने कहा कि भगवत् वचनोंके पाठ और मृत्यु के स्मरण करके हृदय निर्मल होता है बहुरि महापुरुषने योगी कहा है कि मेरे पीछे तुमको उपदेश करनेवाले दो बहुत हैं पर तौ पाँगी और दूसरा बोलनेवाला सो बोलनेवाले तो भगवत् और सन्तों के वचन हैं और गानरागी मृत्यु है सो इन

काम उत्पन्न होता है इसी कारण से सन्तजनों ने कहा है कि नेत्रोंकी दृष्टि राम  
 का विष भरा तीर है वरुण यह उसही के ऊपर विष लपेटा हुआ है ताते जो पूरु  
 भगवत्के भय करके इमका त्याग करना है तब उसको धर्मका गिरोपाव प्राप्त  
 होता है और अपने चित्त विषे प्रमत्तता को पावता है २ इसीपर महापुरुष ने क  
 कहा है कि पात्र कर्मों करके व्रत खरिडत होजाता है निन्दा और भूट बोलना  
 और भूटी दुहाई कठोर वचन काम की दृष्टिकर देखना सो यह पांच पाप व्रत  
 को तोड़ डालते हैं ताते काम दृष्टिका रोकना यह नेत्रों का व्रत है २ दूसरा व्यं  
 वचनों से स्मना को रोक राखे अर्थात् जिस वचन विषे प्रयोजन कुछ सिद्ध न  
 होवे उस वचनमे गौन होगहे अथवा भगवत्के वचन और सन्तोंके वचनों कि  
 मन को लगावे और वाद विवाद विषे आमरून होवे परनिन्दा और भूटता  
 ऐसे महापाप हैं कि इन करके ससारी जीवों का स्थूच व्रतभी खरिडत होजाता  
 है इसीपर एक वार्ता है कि दो स्त्रियां ने निगहार व्रतकिया था तब स्वकी अ  
 धिकता करके व्याकुल होनेलगीं और व्रत खोलने के निमित्त महापुरुषसे पूं  
 नेलगीं तब महापुरुष ने उनको जलका कटोरा भरदिया सो जब उन्होंने जल  
 पान किया तब उनको वगनहुआ और उम वगनमें सब रुधिरही गिरा सो यह  
 देखकर सबलोग विस्मय को प्राप्तहुये तब महापुरुष ने कहा कि इन स्त्रियों का  
 ऐसा स्वभाव और अवस्था है कि जिस स्नान-पानको भगवत्ने शरीरका आ  
 हार बनाया है गिससे तो इन्होंने व्रत राखा और जिमको महाराज ने महापाप  
 कहा है गिसको अङ्गीकार करती है अर्थात् निन्दा विषे आसक्त है और इनके  
 मुखसे जो रुधिर निकला है सो निन्दा कर्मके मानों इन्होंने मास त्वाया है तब  
 वरुण तीमेरे श्रवणोंको भी मर्ष्याद विषे रक्ते तात्पर्य यह कि जो वचन बोलने  
 विषे निन्दे निन्दा श्रवण करना भी निन्दे जैसे निन्दा और भूट वचन वि  
 निन्दे निम ह्य सुननेवाला भी कहनेवाले की नाई पापकी भागी होता है २  
 वरुण ऐसेही अशुभ कर्मोंसे दाय और पापोंको रोककरके चाहेसे कि व्रत रन  
 नेचाना पुरुष रोगी की नाई होता है मो जय बह रोगी फल मूल आदिकों की  
 कुपय जानकर तो त्याग करे और विषको पान कर तब गीब्रही मृत्यु होना  
 तेसेही पापकर्म विषकी नाई है और पात्र पान फल मूल की नाई है इस करके  
 कि इमरी अर्थात् जाहारकी अधिकता में पाप है वास्वत में सुख आदा पा

रूप नहीं ताते, खान पान का त्याग करना और इन्द्रियों करके अशुभ कर्मों में आम्र रहना सो ऐसे व्रत करके लाभ कुछ नहीं होता इसीपर मन्त्रजनोंने भी कहा है कि जेने पुरुषों को व्रत विषे केवल भूत प्यासका कष्टही प्राप्त होताहै ४ पात्रवें योंभी चाहिये कि अशुद्ध आहार का अङ्गीकार न करे और शुद्ध आहार को भी मर्यादा के अनुसार अल्पही अङ्गीकार करे और भोजन बहुत न करे और इस प्रकार भी न करे कि दिनको व्रत रखकर रात्रिको व्रता आहार करनेवे कहिये कि व्रत रखने का प्रयोजन यहहै कि भोगों को निबल करे ताते जब व्रतको रखकर पारणसमय नाना प्रकार के व्यक्तियों को अङ्गीकार किया तब इस करके तो भोग और अधिक होते हैं और हृदयभी उज्ज्वल नहीं होता ५ ॥ १ ॥ जिन प्रकार मैंने इन्द्रियों का व्रत वर्णन कियाहै सो जिज्ञासुजनों का व्रतहै। इसको मध्यम कहने हैं। २ ॥ गृह, तीमरी प्रकार का व्रत ससारी जीवोंका स्थूलहै कि यह केवल खान पान का त्याग करने है और इन्द्रियों को पापों से नहीं रोक सकते सो यह व्रत महाकनिष्ठ है और इस विषे इतनाही गुणहै कि उस समय विषे इन्द्रिया कुछ निबल होजाती हैं पर जिज्ञासुजन जो सर्व इन्द्रियों का व्रत रखने हैं और अशुभ कर्मोंसे अपनी वृत्तिको रोक रखते हैं तब उनको भी इस प्रकार चाहिये है कि सर्वदा भगवत्के भय विषे स्थित रहे काहेसे कि न जाने भगवत् इस व्रतको प्रमाणकरे अथवा न करे ताते भय विषे स्थित रहनाही विशेषहै पर निराश होकर शुभकर्मोंको त्यागना प्रमाण नहीं काहेमे कि भगवत् किमी के किञ्चिन्मात्रभी कर्तव्य को व्यर्थ नहीं करताहै ३ ॥

### पांचवा सर्ग ॥

पोषी पाठ करने के पण्डित च ॥

ताते जान तू कि मन्त्रजना ने इसप्रकार कहाहै कि पोषी का पढ़ना भी उत्तम भजनहै और महापुरुषने भी कहाहै कि मनुष्यों के हृदय मलिन होगे हैं जेमे जंगल काके तर्पण मलिन होजाताहै वृहृरि लोगोंने पूछा कि ऐसे हृदय क्योंकर निर्मल होवें तब उन्होंने कहा कि भगवत्के वचनोंके पाठ और मृत्यु के स्मरण करके हृदय निर्मल होताहै वृहृरि महापुरुषने यामी कहाहै कि मेरे पीछे तुमको उपदेश करनेवाले दो बहुतहैं पर तों प्राणी और दूसरा बोलनेवाला सो बोलनेवाले नो भगवत् और मन्त्रों के वचन हैं और गौतमीय मृत्यु है सो इन

दोनों के उपदेश करके जीवों को भलाई प्राप्त होवेगी ॥ अथ प्रकृत कीना अ-  
 चित गनुष्यों के पाठके स्वरूपका ॥ ताते जान तू कि जो कोई वचनोंका पाठ रु-  
 म्ना है उसकी निस्सन्देह उत्तम अवस्था होती है पर तौभी उसको चीरिये कि  
 वचनों की विशेषता समझकर आपको नीच कर्मोंसे बचाये रहे और सर्वज्ञान  
 विषे भयसंयुक्त रहे और जो इन प्रकार से करे तौ उसमें यह भय होती है कि  
 यह वचनही उसको भ्रष्ट करते हैं उस पर गद्योपुरुष ने कहा है कि बहुत कष्टी  
 तो विद्या पढ़नेवालेही होवेंगे इसीपर महाराज काशी वचन है कि हे गनुष्यो !  
 तुमको लाज नहीं आवती कि जब किसी सम्प्रदायीकी पत्री तुमको संभुचती है  
 तब एकाम्र चित्त होकर पढ़ने हो और बोलकर उसको विचारकर वही कार्य क-  
 रते हो और यह जो मेरे वचन हैं सो मानो तुम्हारी ओर पत्री मेरी आई है कि  
 इसको विचार कर इसके अनुसार करतून कगे सो तुम इममे विपर्यय वर्तते हो  
 और यद्यपि कुछ पाठ भी करते हो तौभी उसका विचार नहीं करते कि इस पत्री  
 विषे क्या लिखा है बहुरि और एक सन्ने कहा है कि हमसे आगे के जिज्ञासु  
 जन ऐसे हुये हैं कि सन्तोंके वचनों को पत्री जानतेथे ताते रात्रि विषे उनका  
 पाठ और विचार करतेथे और दिनको उसके अनुसार करतून करतेथे और अब  
 तुर्मलोग इस कालमें केवल पाठकोही करतून जानते हो बहुरि अक्षर और सा-  
 त्राही को सुधारते रहते हो और जो कुछ इन विषे लिखा है तिसके वात्पर्य की  
 ओर तुम चित्त नहीं देते ताने इसप्रकार समझना चाहिये कि पढ़नेका फल प-  
 ढनाही नहीं इमका फल यह है कि वचन के श्रेष्ठ को समझकर उसके अनुसार  
 करतून करे और जो पुरुष वचनों को पढ़कर उनकी आज्ञा न माने तब इमका  
 दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी दाम्पत्री और उमका स्वामी कोई पत्री पठावे और  
 उम पत्री विषे किसी कार्य की शिक्षा देवे कि यह काम तुम करना और वह  
 वास उम पत्रीको उत्तम स्थान विषे बैठकर तौ पढ़े और भली प्रकार अधरोंको  
 सुधारे पर जों कुछ उम विषे लिखा होवे तिस कार्य को न करे तब निस्सन्देह  
 दुःखता अविनागी होता है ॥ अथ प्रकृत फरनी युक्ति पाठकी ॥ ताते जान तू कि  
 जब वचनोंको पढ़ युक्ति साथ पढ़ता है तब वह पढ़ना अधिक फलदायक होता है  
 सो प्रथम युक्ति यह है कि जैसे टहलुरा स्वामीके आगे स्थित होता है तैमेही न-  
 अनासदिन बैठकर वचनोंको पाठकरे और पवित्र होकर स्थित होवे १ बहुरि दूसरी

युक्ति यह है कि धीरे-पाठ करे। ही प्रता न करे और उमके श्रियों को विचारता जवे  
 ऐसे न जावे कि किसी प्रकार की प्रतीति पाठ पूर्ण कर लू। वदुरि तीसरी युक्ति यह है  
 कि पाठ करने के समय मया और प्रीति युक्त रुचन करे और जो नेत्रों में आंशु न  
 आते तो चित्त को कोमल करे हमी पर महापुरुष ने भी कहा है कि यह भगवत् ध-  
 चन के अन्य मया प्रकटावने के निमित्त है ताते भयसयुक्त पाठ करो और जो कोई  
 इनको विचारता है तो निस्सन्देह उसको भय उत्पन्न होता है और अपने को दीन  
 पराधीन जान लेता है तब शोक वान् भी होता है परन्तु यह अस्थिति धीम और  
 शोक की क्षमता प्राप्त होती है जब असाविधानता और अचेतता को दूर करके पाठ  
 करे वदुरि चौथी युक्ति यह है कि वचनों के तात्पर्य को भिन्न भिन्न करके विचार  
 अर्थ अह कि प्रजाता इना का प्रसंग आवे तब भगवत् से अपनी रक्षा चाहे और  
 जब भाववर्तकी कृपा की तब चन आवे तब जायावन्त होवे ४ वदुरि पाचवी युक्ति  
 यह है कि कंठ और वक्षोपता को दूर करे अर्थात् जब दम्भ का आभास जान पड़े  
 अथवा किसी दूसरे के भजन में वक्षोप होता देखे तब ऊचे स्वरसे न पढ़े काहे में  
 कि गुण पाठ करने का ऐसा माहात्म्य है जैसे गुणदान देने का विभेप फल है परन्तु  
 जो दम्भ न करे और किसी के भजन में वक्षोप भी न होता होवे तब प्रत्यक्ष और  
 ऊचे स्वरसे ही प्रदत्ता मिला है काहे से कि इमरीति से पढ़ने में निद्रा और आलस  
 दूर होता है और सुनेने वालों को भी गुण होता है और सोनेवाले जाग पढ़ते हैं  
 वदुरि देखकर पोथी को पढ़े तो अति विशेष है कि नेत्र भी इसी काम में लग जावे  
 तो नेत्रों का भी भजन हुआ और अपर दृष्टि से नेत्र बचे रहेंगे हमी पर एक वा-  
 र्ता है कि एक रात्रि विषे महापुरुष चले जाते थे तब एक जिज्ञासु को गुण पाठ  
 करते देखकर पूछने लगे कि तुम गुण क्यों पढ़ते हो तब उसने कहा कि मैं जिस  
 को सुनावता हू वह गुण पाठ भी सुनेता है वदुरि महापुरुष आगे को चले तब  
 एक दूसरे प्रेमी सन्त को देखा कि वह ऊचे स्वरसे पढ़ते हैं तब उनमें पूछा कि  
 ऊचे स्वरसे क्यों पढ़ते हो तब उसने कहा कि अपनी और मोवते हुये पुरुषों की  
 निद्रा और वक्षोपता को दूर करता हू तब महापुरुष ने कहा कि दोनों की भावना  
 निर्मल है काहे में कि रूत की भलाई और बुद्धि गनसा करके होती है ताते  
 जिसकी गनसा शुद्ध होती है तिमकी करतूनी शुद्ध ही होती है ५ वदुरि छठी  
 युक्ति यह है कि कोमल ध्वनि सहित पाठ करे काहे से कि नितना कोमल ध्वनि

मडिन) पाठ करता है निवनादी वित्त विपे ववन अधिक प्रवेग करते हैं मोने  
 जी पर्युक्ति में कही है मो स्थू न है और इमी प्रकार पर्युक्ति सूहा भी चा  
 द्विये है मो प्रथम यह है कि वचनों की बड़ाई को समझे और ऐसे जाने कि यह  
 ववन, अप भगवत्ने कहे है और भगवत् के महज स्वभाव रूप अविनारी है  
 और इनका तात्पर्य भगवत् के ज्ञान विपे स्थिर है और रसना पर जो स्फुति  
 होते हैं सो, ये अक्षर हैं और जिस प्रकार अग्नि का नामलेना सुत्रसे सुगम है  
 और अग्नि की तपन का सहना कठिन है सोसेही अक्षरों को अर्थ ऐसा प्रकृत है  
 कि जब वह अर्थ प्रकट साक्षात्कार होये तब उसके प्रोक्तानामिपे जोदहो लोह  
 लीज, होजावे और उस तेज को सह न सकें पर उन वचनोंके अर्थ की सुन्दर  
 ताई को और उनकी बड़ाईको शब्द और अक्षरों के परदेमें गुप्त करकेवा है कि  
 जिस करके उस परदेकरके मन और रसनाकोसी वचनोंकी प्राप्ति होवे और इस  
 परदे के विना वचनोंका तात्पर्य मनुष्यों को मर्मप्राप्त नहीं करके ताते जिह्वासे  
 अपने विच विपे इस प्रकार विचार करे कि वचनोंको तात्पर्य अक्षरोंसे परे है सो  
 जैसे धूल आदिक पशुओं को मनुष्यों के शब्दोंका अर्थ नहीं भास होता और  
 मनुष्य अपनी सहनाषोलीका को उनसे काग नहीं लेसके ताते उन को परम  
 और हल में चलावने के निमित्त पशुओं की नाई शब्द किया जाता है तब वह  
 श्रवण करके सुनेत होते हैं और कार्यको सिद्ध करेते हैं परन्तु भी तात्पर्य को  
 नहीं समझ सके कि हलको किस निमित्त पृथ्वी विपे चलावने है और धरतीको  
 क्यों खोदने है सो धरतीके खोदनेका प्रयोजन यह है कि वह को गान होवे और  
 उमा विपे पवन प्रवेश करे फिर जल संचने करके उस विपे धीज की वृद्धता  
 होती है पर जैनोंके हृदय विपे यह ज्ञान कुछ नहीं होता तसेही बहुत पुरुष पाठ  
 कर्मवाले भी ऐसे होते हैं कि वह भगवत् और सन्तोंके वचनों को गह्रमात्र  
 और अक्षरमात्र ही जानते हैं सो अत्यन्त बुद्धिकी हीनता है और उर्मका दृष्टान्त  
 यह है कि जैसे कोई पुरुष ऐसे जाने कि अग्नि का अर्थ अगन ही है और या न  
 जाने कि अग्नि तो कागज को जलातेवाली है पर यह तीनों अक्षर तो सर्वदा  
 कागज पर लिखे रहते हैं और कागज तो कुछ मान नहीं पड़ेगी ताते जिस  
 प्रकार मव शरीरके पुरु जीव होता है और उस जीव कबेही शरीर स्थिर रहता  
 है और जीवदा के प्रभाव से शरीर की बड़ाई है तैसेही अगर शरीरवत् है और

अर्थ इनका जीव है और अर्थों करकेही शब्द और अक्षरोंकी बड़ाई है तोने इस प्रकार प्रथम वचनोंकी बड़ाई को जानने चाहिये है । वदुरि दूसरीयुक्ति यह है कि जिस महाराजके ये वचन हैं तिसको पाठके समय विषे अपने सामने विद्यमान देखे और ऐसे जाने कि ये वचन मुझसे महाराजकी कहते हैं ताते मय सयुक्त स्थितहोवे और जैसे पोथीको पवित्र हाथसे स्पर्श करता है तैसेही वचनोंको हृदयकी पवित्रताई के माथ ग्रहण करे और हृदय की पवित्रता यह है कि वरे स्वभावों में शुद्धहोवे और भगवत् वचनके आदर और बड़ाई के प्रमाण करके सुन्दर प्रकाशितहोवे जैसे अकमानामा एक बाईथी सो जब वह भगवत् वचनों के पाठकरने को बैठकर पोथी खोलती तब कहती कि यह महाराज सर्वेश्वर का वचन है और ऐसा कहकर मूर्च्छित भय और प्रीतिके सम्बन्ध से होजाती तति जबलग भगवत् की बड़ाईको नहीं पहिचानता तबचग उसके वचनोंकी महिमाको भी नहीं जानसक्ता और भगवत् की बड़ाईभी उसकी कारीगरी और गुणके जाने बिना जानी नहीं जासक्ती सो कारीगरी यह है कि आकारण पारान घाती देवतां मनुष्य पशु कीट वृक्ष पर्वत आदिक जो मर्ध सृष्टि है सो सर्व महाराजके उत्पन्न किये हुये हैं और उसीके अधीन हैं और जिव । यह इन सबको नाश करडाले तोभी उसको कुछभय नहीं और उसकी पूर्णताई में कुछ ऊनता नहीं आती वदुरि सर्व जीवोंका उत्पन्न और पालन और रक्षा करनेवाला भी यही है इस प्रकार विचार करने से किंचित बड़ाई महाराजकी हृदयमें मोम आवनी है सो विचारे कि ऐसा जो ईश्वरोंका ईश्वर महाराज है तिसकी वचनों का में पाठ करताहू तब ऐसे जानने करके भय उत्पन्न हो आवनी है । वदुरि तीसरी युक्ति यह है कि पाठ विषे चित्तको एकाग्र रखे और विज्ञेपताको दृग्धरे और जेप कुछ अचेतता सहित पढ़ जावे तब उसकी जो फेर पाठकरे जाटे मे कि अचेतता सहित पाठ करना ऐसा होता है जैसे कोई पुरा फूलों के देखने के निमित्त वाग विषे जानेकी मनसा करे और जब वहाँ जावे तब विज्ञेपता फाके ऐसा अचेत होवे कि नाताप्रकार के फूलों की रचनाको कुछ न देखे और थोड़ी फिरकर बाहर चला आवे तब उसका वहाँ जाना व्यर्थ होता है तैसेही भगवत् वचन विज्ञेपताओं का वाग है और इन में नाताप्रकार के जो भय रहस्य हैं सो मानों परमविचित्र सुषुप्त मनगोहन कल पून है जो जब कोई इनका कि



चारकरे और एकाम त्रिच होवे तब निस्तन्देहसे परमानन्द को प्राप्त होते हैं कि फिर किसी प्रकार की और कठिन्न ही होती, इसी कारणसे कहा है कि जब पाठ करनेवाला पुरुष, वचनों के अर्थ को न जानें तब उसको पाठका गुण लक्ष्य ही होना है ताते चाहिये कि वचनों की बड़ाई और सुन्दरतादि को अपने हृदय में विद्यमान रखे तब ज्ञानमें कल्पोंसे रहित होते स्वहृदय चौथी युक्ति यह है कि सर्व वचनों को विचार और चो-समझ न मके तो त्रासार उतका। अज्ञानसे तब इस करके रहस्य उपजता है बहुदि; उसही इस विषे भगवत्तरे से ऐसे रससहित पदुत्तरे अधिक लाभ को प्राप्त होना है इमीपर एक सन्तने कदा है कि जब कोई पुरुष रसना, विषे किसी वचन को उच्चारण करता है और त्रिच विषे किसी और वस्तु का विचार करता है तब उस प्रथम वचनके अर्थों से दूर पड़ जाता है बहुदि एक और सन्तने कदा है कि जब राजन अथवा पाद विषे मुक्त हो कोई उपवहार का सकल्प कृता होवे तब इस सकल्प में ही ज्ञाना विषे पज्ञाना है ताते इस पुरुष को चाहिये कि जब किसी वचन का पाठ करने लगे तब त्रिच विषे और सकल्प का चिन्तन न करे सद्यपि तब सकल्प सात्त्विकी शेष तो भी उसको विस्मरण करता विषे है बहुदि जब भगवत् की स्तुति का पाठ करने लगे तब इस प्रकार विचार करे कि तब महा राज गुणों तिलैप दे सकल्प से परे है; सबों के ऊपर समर्थ है तबहुदि जगत्गहार जग की कारिणी का वचन होवे तब इस प्रकार विचार करे कि भगवती आत्मिकाश को उसहीने उत्पन्न किया है ऐसे नाना प्रकार की जगत् का तेनका महा राज की विया और सागर्य और बड़ाई को पहिचाने और त्रिच पदुत्तरे भी और दृष्टिकरे तब उस विषे भगवत्तरी की सचाको देने बहुदि जब उत्त वचन को पढ़े कि मुदा गजने इस जीवको एक पानी की बूझ उत्पन्न किया है तब ऐसे जाने कि यह शीर्ष की बूद तो एक ही रङ्ग की थी पर भगवत् ने उससे नाना रंग के चिह्न बनाये हैं जैसे त्वचा और मांस नाड़ी, हाथ पांव नेत्र रसना कर्ण इत्यादिक लो अनेक अंग दे सो सबही आश्चर्य रूप है बहुदि यह गरि मासके पुतले की नाई है सो इस विषे देखना मुनता रोन ता और वेनदयता किम प्रकाश प्रकट हुई है पर इस प्रकार सर्व वचनों का म्यान करना कठिन दे नाते इसका तात्पर्य यह है कि विषे वचनका पाठके इसही वचनके अर्थ विषे विचार और अभ्यास को सार रात करे

और जिस पुरुषकी वृत्ति किसी महापाप विषे आसक्त होती है अथवा जो पुरुष मनमत कर्मके किसी क्रियाको भङ्गीकार करता है अथवा किसी मत्त और पथके त्तिश्चय विषे ऐसा दृढ़ होजाता है कि उस पथकी प्रतीति विना यथार्थ वचनको श्रवणही न करे तब ऐसे पुरुषको महाराज के वचनों का अर्थ कदाचित् प्रकट नहीं होता ४ बहुरि पावर्ती युक्ति यह है कि जिसप्रकार वचनोंका अर्थ भिन्न २ भावको प्राप्तहोता है तैमेही चित्तकी वृत्तिको भी उसके अनुसार उल्टापता जावे जैसे मय और ताडना के वचन का जब पाठकरे तब भयवान् और अधीन हो जावे और जब महाराज की क्रिया का वचन पढ़े तब आशावन्त और प्रसन्न चित्त होवे और जब महाराज की अपारता का वचन आवे तब महादीनभावको ग्रहणकरे और ऐसे जाने कि महाराजकी स्तुति और बड़ाई के वर्णन करनेकी मेरी बुद्धिही नहीं ताते लज्जित होकर स्तुति करनेलगे इसप्रकार सर्व वचनों के अनुसार चित्तकी अवस्था बनावे ५ बहुरि छठी युक्ति यह है कि वचनों विषे इस प्रकार प्रतीति करे कि यह वचन मैं भगवत्के मुखमे सुनताहू इसीपर एक सत जन ने कहाहै कि आगे मुझको भजनका कुछ रहस्य न आवताथा तब मैंने इस प्रकार प्रतीति करी कि मैं यह वचन महापुरुषके मुख मे सुनता हू तब मुझको रस आवनेलगा बहुरि मैंने इस प्रकार अनुमान किया कि यह वचन मुझको आकाशवाणी होती है तब मैंने उसमेमी अधिक स्वाद को पाया फिर मैंने यह अनुमान करलिया कि यह वचन मुझको आप भगवत् विद्यमान मुनाते हैं तब मैंने ऐसा रम और आनन्द पाया कि जिसका वर्णन नहीं करमक्का ६ ॥

### छठवां सर्ग ॥

स्मरणके वर्णन में ॥

ताते जान तू कि सर्व साधनों का फल भगवत्का स्मरणहै जैसे पाठ वचनोंका भी उत्तम कहाहै पर इसका तात्पर्य भी यही है कि भोगों मे विष्णुनेकर स्मरण विषे स्थित हूजिये काहेसे कि भोगोंकी प्रवृत्तता विषे भजनका कुछ रहस्य नहीं उपजता ताने प्रसिद्धहुआ कि सर्व कर्मोंका सार भगवत्का भजन है और सर्व साधन भजनकी दृढ़ताके निमित्त कहे हैं इसी पर महागजन भी कटा है कि सुग मेग स्मरणको तब मैं तुम्हारा स्मरण करू पर जब स्मरणकी मेरी अवस्था को न पहुँचसके तब अधिकज्ञान विषे तो भजनही का अभ्यास ना

द्विजे को देसे कि ईश्वर जीवनी सुकृष्णकारण भजन की है ताने जो पुरुष वैश्वदेव  
 उक्त जागति सोवर्षे चलते किमी अवस्था विषे भगवत्के भजन से अचेत नदी  
 होने सो निनकी महिमा गहाराजने भी कही है और योंगी कहा है कि गय और  
 दीनतासहित गुहादी स्मरण करो बहुरि, मय्या और प्रमान पर्यन्त किसी फल  
 विषे अचेत न देवों और किमीने महापुरुषसे गोपूजा धा क्रि सर्य फलनों से  
 कौनसी फलत विणेपहै तत्र उन्होंने कही कि मृत्यु के समय विषे जिमकी सुक्ति  
 प्रवल श्रम्यास करके भगवत्की ओर होवे सो यह स्मरण सब भजनोसे विणे  
 पहै और महापुरुष ने योंगी कहा है कि अचेत मनुष्यों विषे मज्जत करनेवाले  
 पुरुष ऐसे विणेपहै जैसे मृतकों विषे सजीव पुरुष होवे अथवा जैसे मूले पृथ्वी से  
 संफल बृस होता है और जैसे कापरो विषे कोई शूरा, शत्रुओंके सम्मुख होकर  
 युद्धकरे बहुरि एक और सन्तने भी कहा है कि परलोक विषे सर्व मनुष्योंको  
 पञ्चाचाप होवेगा कि हगने भगवत्के भजत सर्वकाल क्यों न किया और  
 ससारविषे अपने भगवत्के व्यर्थ क्यों विताया और जिन्होंने भजन किया होगा  
 वेगी कहेंगे कि हमने अधिक भजन क्यों न किया और एक क्षण भी अचेत  
 क्यों हुये ॥ अथ प्रकट कर्मी श्रमस्या भजनकी ॥ तासे जानें तु कि भजनकी  
 भी चार अवस्था हैं नो प्रवगा अवस्था यह है कि मन से भगवत्का नाम  
 उच्चारण करना और हृदय में वर्णित रहना मो यह कनिष्ठ अवस्था है ताने इम  
 का गुण भी अत है परतो भी श्रुण से रहित नदी फलमे कि जय यद्द रसना  
 विधाद मिथ्या विषे आनन्द होवे तत्र इमने नो भगवत्का नामनेना निस्मरेह  
 उक्तगरे बहुरि दूसरी अवस्था यह है कि चित्त से भजन करना और जब भजन  
 विषे चित्त ही गहापना न होवे तब भी हृदयके मकर को दूरकरना और मन  
 को भजन विषे स्थिर करना सो यह मध्य अवस्था है ३ बहुरि तीसरी अव  
 स्था यह है कि इस पुरुषकी हृदय भजन विषे स्थिर होजावे और भजन का रस  
 विषे विषे ऐसा प्रवृत्त होवे कि जब कोई कार्य अवश्यही करना होवे तो भी  
 यत्र कन्हे उमी ओगताये मो यह उच्च अवस्था है ४ बहुरि चौथी अवस्था यह  
 है कि जिस मनुष्यो स्मरण कर्मादि विषे स्वस्थ विषे चित्तकी वृत्ति का लीन  
 जीवनो मो वह पस्तु परमात्मा स्वस्थ है और उच्च विषे लीनता का प्रथम यह है  
 कि परमात्मा के स्वरूप की भगवत्के विषे भजन की सुक्तिने देवों और सत्तास्य

मजनही। दोपारहजारों कहेंसे कि भोजन जीप और आशा कर होता है सो निस्म-  
 न्देह स्थान है और सकारण रूप है और परम अस्थान है। कि सकल और अ-  
 क्षरों का अभाव हो जावे और केवल अक्षय सत्ता विषे स्थित होये मो यह अस्थान  
 पूर्ण प्रेम कर होती है जैसे किसी पुरुष का प्रेम किसी पुरुष के माथ पेसा प्रवल  
 होवे कि अपने प्रियतम के स्वरूप की मग्नता विषे आया और सर्व पदार्थों को  
 विस्मरण करे और प्रियतम का नाम ही उसको भूल जावे तैगै ही यह पुरुष महाराज  
 के दर्शन विषे आप और सर्व पदार्थों को विस्मरण करे तब सन्तों की आदि अ-  
 स्था को प्राप्त होवेगा। सो सन्त लोग इस अवस्था का नाम जीवन्मृतक कहते है  
 अर्थ यह कि सर्व पदार्थों की जानसे मृतक होजाता है जैसे और जो अनेक  
 ब्रह्माण्ड भगवत्तने उत्पन्न किये हैं पर उनका भान हमको कुछ नहीं होता और  
 हमको वही पदार्थ सत्य स्वरूप मानते हैं जिनको हम प्रत्यक्ष इन्द्रियों कर देखने  
 हैं। सो जिस पुरुष को यह इन्द्रियादिक पदार्थ सबही विस्मरण होजावे तब उसके  
 निकट नहीं ही है। अर्थात् असत्य स्वरूप होजाते हैं प्रहुरि, जब आपको भी  
 विस्मरण करे तब इस भाव करके आप भी अपने जान में नेस्त होगया इसी को  
 जीवन्मृतक कहते हैं और जब सर्व पदार्थों की सत्ता इसके निकट दूर हुई तब  
 केवल महाराज ही उसके निकट सत्य स्वरूप और विद्यमान हैं जैसे तू धरती और  
 आकाशको देख कर कहता है कि सर्व जगत् इतना ही है और तुम्हको और कुछ  
 नहीं भासता तैसै ही उस जीवन्मृतक स्वरूप को किसी और पदार्थ की जान  
 नहीं रहनी केवल महाराज ही को देखना है और कहना है कि तैम ही, सर्व ही, तम  
 विना और कुछ नहीं तब ऐसी अवस्था विषे यह पुरुष महाराज के अमेक होता  
 है। अर्थ यह कि एकता विषे लीन होजाता है और भेद भावता नष्ट होना ही है  
 सो यह ज्ञानवानों की आदि अवस्था है पर जब मही अवस्था जीवको प्राप्त होती  
 है तब निकटता और दूरी की और द्वैत की कुछ सुधि ही नहीं रहती वादेमे कि  
 निकटता और दूरी और भेदभाव की उसको सुधि होती है जिसको दो दृष्टिआँ  
 कि यह भेद और वह महाराज है सो ऐसे पुरुष को तो सर्वथा अपना जापा वि-  
 स्मरण होगया तब निकटता और दूरी को स्मरण करे और टेन बुद्धि करे तब  
 इस अवस्था विषे जिज्ञासु जन को चैतन्य स्वरूप की प्रत्यक्षता प्रकट होनी है  
 और जिज्ञासा की गति विषे नानामयों के आश्चर्यों को देखना है और आदि

गण्य अन्नका ज्ञान उमको प्राप्त होता है महुँरि सन्नजनों और अवतारों के पद  
 को प्रत्यक्ष देखता है और हस्तामलकत्त्व पहिचानता है और इसप्रकारके आश्च  
 र्योंको देखता है कि बचन करके उनका बन्धान नहीं होसकता महुँरि यद्यपि ऐसी  
 समाधिमे जब उसको उत्थान होना है तौभी एकत्रताका रम उमके हृदयसे दूर  
 नहीं होता और सर्वदा उसके चित्तकी वृत्ति उमही रसकी ओर स्थिरी रहती है  
 और गायकके सर्व पदार्थों को विरस जानता है और यद्यपि मंसारी जीवों विषे  
 स्थित दृष्टि आवता है तौभी हृदय कम्के निर्लेप रहता है और यह मनुष्य जो  
 गायकके व्यवहारों विषे आसक्त रहते हैं सो तिनकी अवस्थाको देखकर आश्चर्य  
 मानता है और दयादृष्टिमे देखकर कहता है कि यह अल्पवृद्धि जीव कैसे सुसंसे  
 अप्राप्त है और जगत्के जीव उमकी अवस्थाको देखकर इसप्रकार कहते हैं कि  
 यह पुरुष मायाके व्यवहार को भली प्रकार क्यों नहीं करता ताते उसको वावरा  
 और उन्मत्त जानते हैं पर जब जिज्ञासुजन ऐमे परमपदको पहुँच न सके और  
 मूढमभेद उमको प्रकट न होये तौ भी निराश न होवे काहेसे कि केवल भजनही  
 की प्रबलतागी जीवको उत्तम भोगोंका चीज है इसकरके कि भजन की दृढ़ता  
 विषे प्रेमकी अधिकता होती है और प्रेमकरके सर्व पदार्थोंसे विक्रचित्त होता है  
 ताते महागजही को अपना अधिक प्रियतम खना है सो उत्तम भोगोंका भोज  
 यही है काहेमे कि इस जीवको अवश्यमेव भगवत्के निकटही पहुँचना है और  
 सर्व ससारको त्याग जाना है ताते चाहिये कि इस मनुष्यकी प्रीति सर्वथा भग  
 वत्कीके साथ होवे इसकरके कि जितनी किसीकी प्रीति अधिक होती है उतना  
 ही उसको अपने प्रियतमके दर्शन विषे आनन्द अधिक होता है तैसेही जिसका  
 भगवत्के साथ पूर्ण प्रेम है तिसको महाराजके स्वरूप विषे पूर्णही आनन्द प्राप्त  
 होता है और तिनके हृदय विषे माया की प्रीति दृढ़ होनी है तब वह माया के  
 पदार्थोंके वियोग करके सदा दुःखी रहता है तात्पर्य यह कि जब जिज्ञासुजन  
 भगवद्भजन विषे दृढ़ होवे और सिद्धता आदियका पर्यवर्ष्य इसके हृदय विषे  
 कुञ्ज न हो तबगी भजनका त्याग न करे काहेमे कि परमपदकी प्राप्ति सिद्धता  
 और पर्यवर्ष्यके आश्रित नहीं ताते जब इस पुरुषका चित्त शुभ गुणों सहित  
 निर्मल दुःखना तब साभाविकही परमपदका अधिकारी होता है इसी कारण मे  
 इस जीवको चाहिये कि सर्वदा अपने चित्त विषे अग्र्याम करे कि किसी प्रकार

मेरा तित्त भगवत् के भजन से, पूरु क्षणभी अवैत न होवे काहे से कि भजनही महाराज के दर्शन और सूक्ष्म, भेदोंकी कुजी है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जब कोई पुरुष वैकुण्ठ आदिक सुख को भोगना चाहे तब भगवद्भजन विषे ही लीन होवे, काहे से कि भजनही परमवैकुण्ठ है ताते प्रमिद्ध हुआ कि सर्व गुणों का साग यह है कि निन्दकर्मों से इम जीव की रक्षा देवे और जो कुछ भगवत् ने करणीय कर्म कहे हैं तित्तको श्रद्धा सहित करे और जब निन्दकर्मों विषे आसक्त रहे और शुभ कर्मों विषे सावधान न होवे तब ऐसे जानिये कि उम पुरुष का भजन करता भी भन का सकल्प है और उस विषे यथार्थ कुछ नहीं ताते यथार्थ भजन वही है जो पाप कर्म के समय जीव की सहायता करे और भगवत् के स्मरण करके भयवान् होवे ॥

॥ ११ ॥ तित्त नियमपूर्ण भ्राम भयं प्रकरणे समाप्त ॥

## दूसरा प्रकरण ॥

### पहिला सर्ग ॥

जगत्के मिलापकी युक्ति के वर्णनमें ॥

ताते जानें तू कि यह मसार परलोक के मार्ग की मंजिल है और सर्व मनुष्य इस मंजिल विषे परदेशी हैं और सबको एकही और जाना है जैसे सबही परदेशी आपम में सम्बन्धी की नाई होने हैं जैसे ही इम जीवको सब मनुष्यों के साथे प्यार और शुभ भावना चाहिये है पर जिस जिस प्रकार भाव और भगति करने का अधिकार है तिसका तीन सर्ग विषे वर्णन किया जायगा प्रथम सर्ग विषे जो जिज्ञासुजन भगवत् मार्ग के मगी हैं तिनके सगकी विरोधना प्रकट करेंगे और दूसरे सर्ग में सबों के मिलाप का अधिकार और युक्ति वर्णन होगी षड्विंतीसरे सर्ग विषे सम्बन्धी और सेवक और मन्त्रियों के भावकी युक्ति का वर्णन किया जायगा ताते जानतू कि भगवत् के निमित्त जिज्ञासुजनों के साथ मित्रता करने उचम भजन है और सर्व्य कर्मोंसे विशेष है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जिस पुरुष को भगवत् मार्ग की प्रीति होवे तिसको भगवद्भक्तों का मिलाप बड़े भागों से प्राप्त होता है काहे से कि जब किसी ममय

मध्य 'अन्तका ज्ञान उमको प्राप्त होता है वहुँरि सन्नजनों और अवतारों के पद को प्रत्यक्ष देखता है और हस्तामलकवत् पहिचानता है और इसप्रकारके आरव्य्योंको देखता है कि वचन करके उनका बचान नहीं होसका वहुँरि, यद्यपि ऐमी समाधिमे जब उसको उत्थान होता है तोभी एकत्रताका रस उसके हृदयसे दूर नहीं होता और सर्वदा उसके चित्तकी वृत्ति उसही रसकी ओरि खिंची रहनी है और मायाके सर्व पदार्थों को विरस जानता है और यद्यपि संसारी जीवों विषे स्थित दृष्टि आवता है तोभी हृदय करके निर्लेप रहता है औस्यह मनुष्य जो मायाके व्यवहारों विषे आसक्त रहते हैं सो तिनकी अवस्थाको दिखकर आश्चर्य मानता है और दयादृष्टिमे देखकर कहता है कि यह अल्पवृद्धि जीव कैसे सुखमे अप्राप्त है और जगत्के जीव उसकी अवस्थाको देखकर इसप्रकार कहते हैं कि यह पुरुष मायाके व्यवहार को भली प्रकार क्यों नहीं करता ताते उसको बाँवरा और उन्मत्त जानतेहैं पर जब जिज्ञासुजन ऐमे परमपदको पहुँच न सके और सूक्ष्मभेद उसको प्रकट न होवे तो भी निराश न होवे काहेसे कि केवल भजनही की प्रवृत्तताभी जीवको उत्तम भोगोंका बीज है इसकरके कि भजन की दृढ़ता विषे प्रेमकी अधिकता होती है और प्रेमकरके सर्व पदार्थोंसे विरक्तचित्त होता है ताते महाराजही को अपना अधिक प्रियतम रखता है सो उत्तम भोगोंका बीज यही है काहेसे कि इस जीवको अवश्यमेव भगवत्के निकटही पहुँचना है और सर्व संसारको त्याग जाना है ताते चाहिये कि इस मनुष्यकी प्रीति सर्वथा भगवत्की साथ होवे इसकरके कि जितनी किसीकी प्रीति अधिक होती है उतना ही उसको अपने प्रियतमके दर्शन विषे आनन्द अधिक होता है तैसेही जिनका भगवत्के साथ पूर्ण प्रेम है तिसको महाराजके स्वरूप विषे पूर्णही आनन्द प्राप्त होता है और जिसके हृदय विषे माया की प्रीति दृढ़ होती है तब वह माया के पदार्थों के वियोग करके सदा दुःखी रहता है तात्पर्य यह कि जब जिज्ञासुजन भगवद्भजन विषे दृढ़ होवे और सिद्धता आदिकका ऐश्वर्य इसके हृदय विषे कुछ न पुरे तबभी भजनका त्याग न करे काहेसे कि परमपदकी प्राप्ति सिद्धता और ऐश्वर्य के आश्रित नहीं ताते जब इस पुरुषका चित्त शुभ गुणों सहित निर्मल हुआ तब स्वाभाविकही परमपद का अधिकारी होता है इसी कारण से हम जीवको चाहिये कि सर्वदा अपने चित्त विषे अभ्यास करे कि किसी प्रकार

मेरा चित्त भगवत् के भजन से, पूरु क्षण भी अत्रेत् न होवे काहे से कि भजनही महाराज के दर्शन और सूक्ष्म-भेदोंकी कुजी है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जब कोई पुरुष वैकुण्ठ आदिक सुख को भोगना चाहे तब भगवद्भजन विषे ही लीन होवे काहे से कि भजनही परमवैकुण्ठ है ताते प्रसिद्ध हुआ कि सर्व गुणों का सार यह है कि निन्दकर्मों से इस जीव की रक्षा होवे और जो कुछ भगवत् ने करणीय कर्म कहे हैं तिनको श्रद्धा सहित करे और जब निन्दकर्मों विषे आसक्त रहे और शुभ कर्मों विषे सावधान न होवे तब ऐसे जानिये कि उस पुरुष का भजन करना भी शून्य का सफल्य है और उम विषे यथार्थ कुछ नहीं वाते यथार्थ भजन वही है जो पाप कर्म के समय जीव की सहायता करे और भगवत् के स्मरण करके सपन्न होवे ॥

शक्ति नियमवर्णननाम प्रथम प्रकरण सप्तमः ॥

## दूसरा प्रकरण ॥

### पहिलासर्ग ॥

जगत्के मिलापकी युक्ति के वर्णनमें ॥

ताते जानू कि यह ससार परलोक के मार्ग की मजिल है और सर्व मनुष्य इस मजिल विषे परदेशी हैं और सबको एकही और जाना है जैसे सबही परदेशी आपस में सम्बन्धी की नाई होने हैं तैसेही इस जीव को सब मनुष्यों के साथे प्यार और शुभ भावना चाहिये है परं जिस जिस प्रकार भाव और सगति करने का अधिकार है तिसका तीन सर्ग विषे वर्णन किया जायगा प्रथमसर्ग विषे जो जिज्ञासुजन भगवत् मार्ग के सगी हैं तिनके सगकी विशेषता प्रकट करेंगे और दूसरे सर्ग में सबों के मिलाप का अधिकार और युक्ति वर्णन होगी पहुरि तीसरे सर्ग विषे सम्बन्धी और सेवक और सखावों के भावकी युक्ति का वर्णन किया जायगा ताते जानू कि भगवत् के निमित्त जिज्ञासुजनों के साथ मिथता करनी उच्च भजन है और सर्व कर्मोंसे विशेष है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जिस पुरुष को भगवत् मार्ग की प्रीति होवे तिमको भगवद्भक्तों का मिलाप बड़े भागों से प्राप्त होता है काहे से कि जब किसी समय



विषे वह पुरुष भगवद् जन्मसे अर्धतमी होता है तब उसको वह दूसरी भक्तिसे करती है धृष्टरि जब दोनों संवेत होते हैं तब एक भाग के संगी होने हैं और यो कहते हैं कि जिन्ना सुजनों की संगति करके ऐसा सुख उत्तम प्राप्त होता है कि अज्ञानों करके नहीं पाया जाता और यो भी कहते हैं कि जब कोई भक्तों के साथ भी करता है तब वह भी भगवत् का प्रियतम होता है और भगवत् ने भी कहा है मेरी प्रीति उन पुरुषों को प्राप्त हीमि है जो मेरे निमित्त मेरे प्रियतमों के साथ भी करते है और नन धनादिक करके उनको सेवा करते है और उनके सर्व कारकी सहायता विषे सावधान रहते है और महापुरुषने धो भी कहा है कि परलोक विषे भगवत् इस प्रकार कहेंगे कि जिन्हीने किवल मेरे निमित्त प्रीति और ताई परस्पर करी है सो पुरुष कहा है कि उनको अर्ध हम अपनी द्वायति लैर और यो भी कहा है कि ७ प्रकारके पुरुषों को परलोक विषे भगवत् की छायात और मिलेगा और परमसुखी होवेंगे-सो प्रथम नीति और विचारकी मर्याद विवर्तनेवाला राजा है १ दूसरा वह पुरुष है जो बाल अवस्था से लेकर अपनी युष् भगवद् जन विषे लगावे २ और तीसरा वह है जो यद्यपि शुभस्थान वाहर भी निकसे तौ भी व्यवहारकी विशेषता विषे आसक्त न होजावे और उस विचकी वृत्ति सर्वदा शांतिकी और रहे ३ चौथा वह है जो एकात विषे वैष् भगवद् जन विषे सावधान रहे और प्रीति सहित रुद्रनु करे ४ पांचवा वह कि जब उसको एकान्त और विषे श्री का गिलाफ होवे और वह भगवत् के फरके उसका त्याग करे ५ छठवा वह है कि निष्काम गुणदान देवे ६ सातवा वह जो भगवत् की के निमित्त भगवद् को के साथ भेत्री कर और जो किसी पुत्री प्रीतिके त्याग करे तौ भी उसी भगवत् सम्बन्धी कारण होवे अर्थात् गिलाफ और हर्षादि दोनों भगवत् निमित्त होवें और अपने स्वार्थका सम्बन्ध में कुछ न विचारे ७ इसीपर एक वार्ता है कि कोई पुरुष किमी प्रियतमके दर्श को ज्ञाताया उमको मार्ग विषे एक देवता भिला और कहने लगा कि तू कर्तावा है तब उस पुरुषने कहा कि अपने निमित्तके दर्शन को जाताह बहुरि उ देवताजे कहा कि उस के साथ तया कुछ अर्थ है अथवा उसने तरे जगत् उपकारि कियो है तब उस पुरुषने कहा कि मैं केवल भगवत् की के निमित्त उस दर्शन की इच्छा रखताह तब उस देवताने कहा कि मुझको भगवत् ने दोषा

भेजा है सो मैं तुम्हको प्रसन्ननाका सदेश्याग हूँ त्रावताहूँ कि इम-शब्दाहीं करके भगवत्तने तुम्हको अपना प्रियतम प्रिया है और गहापुरुषने भोंभी कहां है कि धर्मका हृदयविद्ग यही है कि धर्मात्मा पुरुषोंने मिलाप और भगवत्त विमुक्तोंके संगको त्याग, क्लृप्ता और परक सतको त्याग का शवाणी हुई थी कि यद्यपि तू सर्व मनुष्यों और सर्व देवतोंके तुल्य अकेला भजत भी कहे तो भी ज्ञानलाभेरे निमित्त मेरे सकलके साथ मित्राई और मनमुक्तोंका त्याग जन्मके ग्राह्यलगातू परमपदको प्राप्त न होवेगा और प्रकासन्त मे जिज्ञासुजनों ने पूछा था कि स-गति किसकी करे तब उन्होंने कहा कि जिसको दर्शन करके तुमको भगवत्त का भजन हृदयते और जिसकी करतूत देवकर तुमको शुभ करतूतकी हृदय उपजे तब उसकी सगति करे और एक और सन्तको भी श्याका शवाणी हुई थी कि तैते किम निमित्त प्रकान्त यदणकिया है तब उसने कहा कि हे महाराज न जरातूके मित्राप करके तेरी प्रीति विषे पटल होता है तिम निमित्त प्रकान्तको विशेष प्रिय मानता हूँ नहुरि आत्मा हूँ कि इस प्रकान्त करके तो अपना सुख स्वार्थ अर्थात् व्यावहारिक क्लेशनिवृत्ति और भजन से प्रतिप्राप्ती ज्ञाना प्रसिद्ध होता है मेरे भक्तोंके साथ प्रीतिकर और विमुक्तोंके संग का त्याग कर नहुरि एक और सन्तने भी कहा है कि भगवत्तक जन्तू परस्पर सिलकर प्रसन्न होने हैं तब जैसे शरदः ऋतु में वृक्षोंके पान भर पड़ते हैं तैसे ही जन्तूके सर्व पाप जप्ट होजाते हैं ॥ अथ प्रकट करता इसका कि भगवत्त के निमित्त मित्राई किस प्रकार होती है ॥ ताते जानतू कि जो मित्रता किसी सम्बन्ध करके होती है तब भगवत्त निमित्त नहीं कदाती है जैसे ज्यशाला विषे अथवा पड़ोस करके जो स्वाभाविक ही मित्रभाव होजाता है सो यह सत् स्थल प्रीति है अथवा जिस का रूप सुन्दर होवे और जिसकी बाणी मधुर होवे अथवा जिमके साथ भन और मान का अर्थ कुछ होवे सो यह भी ज्ञानही प्रीति कदाती है ताते भगवत्त के निमित्त मित्रताका अर्थ यह है कि जिम प्रीति विषे कोई प्रयोजन और स्थ-लता कुछ न होवे और केवल धर्महीके निमित्त होवे सो यह प्रीति भी दो प्रकार की है प्रथम यह है कि वह प्रीति प्रयोजन करके होती है पर उस विषे सात्त्विकी प्रयोजन होवे जैसे विद्यार्थी की प्रीति पढ़ानेवालेके साथ होती है जो ज्ञानद पढ़ना परमार्थके मार्ग निमित्त होवे तब यह भी भगवत्त के निमित्त गिना

जाता है और जब उममें धन और मान का प्रयोजन होवे तब वह जान प्रीति होजाती है और पेमही पढ़ानेवाले की प्रीति पढ़ानेवाले के साथ जब निष्ठा होवे और भगवत् की प्रसन्नता के निमित्त उसको पढ़ावे तब यह भी भगवत्के निमित्त प्रीति होती है और जब पढ़ानेवाले को मान का प्रयोजन होवे तब अशुभ कामना होजाती है तबमें ही जब कोई दान देनेवाला पुरुष अपने टहलुके को इस निमित्त प्रियतमराखे कि यह टहलुका भली प्रकार अधियोंको दान पढ़ाता है अथवा उत्तम भोजन कर अभ्यागतोंको खराबता है तब यह भी धर्म की सम्बन्धी प्रीति है १ वहदुरि दूसरी प्रकार की प्रीति यह है कि जिसके साथ इसका प्रयोजन कुछभी न होवे केवल ईश्वरहीके सम्बन्धकी प्रीति होवे और उसको भगवत् प्रियतम जानकर उसके साथ मित्रता करे सो यह उत्तम प्रीति है और जब हम प्रकार किसी के साथ प्रीतिके कि वह भगवत्का जीव है और यद्यपि उस विषे गुणकी कुछ भावना न होवे तो भी उसकी प्रेमही पढ़कर देवे सो यह पूर्ण प्रेमकी अवस्था है जैसे किमी पुरुषके साथ किमी मनुष्यकी अधिक प्रीति होवे तब वह अपने प्रियतम के मन्दिर और गतीको भी प्रियतम रखता है उसे के सम्बन्धियों और दासोंको देखकर प्रमन्न होना है तात्पर्य यह कि उसके कूकर को भी और कूकरो से विशेष जानता है और प्रियतमके मित्रों को तो अधिक प्रियतम रखताही है तबमें ही भगवत् के साथ जिनका पूर्ण प्रेम होता है तब मनु जीव उसको प्रियतम लगाने है और वैष्णवों और जिज्ञासुजनों के साथ तो निस्सदेह उमकी अधिक प्रीति होती है और सर्वपदाथोंको भी इस प्रकारके प्रियतम रखना है कि यह सब गये प्रियतमके रहे हुये है इमी पर एक वाची है कि जब वसंत ऋतु विषे महापुरुष के आगे कोई नवीन फूल आन रखनाया तब उस फूलको नेत्रोंपर मर्दन करतेथे और इस प्रकार कहतेथे कि यह मेरे प्रियतमने बनाये है और थोड़ाही काल बीता है कि प्रियतमसे विछुड़े है अर्थात् नवीन रचना है २ पर भगवत्के साथ जो प्रीति होती है सो भी दो प्रकारकी होती है एक प्रीति इस लोक और परलोक के सुखोंकी कामना करके होती है १ और दूसरी प्रीति प्रकाम होती है सो पूर्ण प्रीति इमही का नाम है २ तबने जितना जितम मनुष्यका निश्चय हृद होता है सो उतनाही भगवत्के साथ इमको प्रीति अधिक होती है वहदुरि उसी प्रीति करके गहारातके प्रियतमोंको भी प्रियतम रखना है और प्रीतिकी

मर्यादें उन और मानके अर्पण कर प्रकट होनी है अर्थ यह कि जितना धन और मीन उनके ऊपर वास्तव में तितना ही प्रीतिकी चिह्न प्रकट होता है सो एक पुरुष प्रेमे होते हैं कि ब्रह्म अपने मन और मानको अर्पण करते हैं सो पूर्ण प्रेमी हैं और जो कुछ अथ अर्पण करते हैं सो अर्पण प्रेमी हैं ॥ अथ प्रकट करना इसका कि भगवत् के निमित्त किम प्रकार विरुद्ध करना चाहिये ताते जान तू किं किम प्रकार साखिकी मनुष्यों के साथ भगवत् के निमित्त प्रीतिमानों की मिनाई होती है तैमेही राजमी और ताममी मनुष्यों के साथ जिज्ञासुजनों का स्वाभाविकही विरुद्ध होता है कि हे भगवत् से विमुख हैं और उनकी संगति काके यह भी अवेन होजाता है सो यद्यपि विरुद्ध का अर्थ यह नहीं कि उनकी क्रिया को देखकर अपने चित्त को तपायमान को पर तौ भी मनमुल्लो की संगति में जिज्ञासुजन्म भ्रुकुचित रहते हैं सो इसही का नाम विरुद्ध है और इस विषे एक और भी भेद है कि जिन कोई पुरुष साखिकी होने और उस विषे कुछ राजसी गुणकी प्रवृत्तता भी होवे तो चाहिये कि उस पुरुषके साथ साखिक गुण साथ मिनाई रावे और जो गुण की प्रवृत्तता के अनुसार उसमें विरुद्ध रहे सो इन प्रकार करके प्रकट मनुष्योंके साथ मित्रता और विरुद्ध इच्छा होता है जैसे किसी पुरुषके तीस पुत्र होवे, वो एक आज्ञाकारी और बुद्धिमान भी होवे और दूसरा पुत्र मूर्ख और आज्ञामे विमुख होवे और तीसरा मूर्ख भी होवे और आज्ञाकारी भी होवे तब आज्ञाकारी और बुद्धिमान पुत्रके साथ पिताकी प्रीति स्वाभाविकही अरिफ होती है और दूसरा पुत्र जो मूर्ख और आज्ञामे विमुख होना है सो स्वाभाविक ही दण्ड का अधिकारी होता है और तीसरा पुत्र जो मूर्ख और आज्ञाकारी होता है सो निमके साथ आज्ञा मानने के भावकरके पिताकी प्रीति होती है और मूर्खता के निमित्त उसको ताड़ना करना है तैमेही जो पुरुष भगवत्की आज्ञामे विमुख होवे या निम विमुखताके अनुसार निमका त्याग करना सोरूप है और जितना कुछ भगवत्की आज्ञा विषे भाववानेने निमनीही प्रीति उसके साथ रावे सो इस मिनाई और विराय का सिद्ध वस्तुति विषे प्रकट होता है कि जब किसी पुण्याविषे तुम्हको कुछ अरगुण भावना है तब उस पुरुष से तेरा चित्त विरुद्ध करना मन्ना है और तब अनिष्ट अरगुण भावना है तब उसमें चित्तकी वृत्ति न उठनी है और यवन गर्ना या मिनाय भी नाइ।

होजाता है धड़ुरि जब लम्पटतां करके सन्तजनों की मर्याद को त्याग देना है और दीर्घ होकर विचरता है तब उसके साथ प्रीति और वचन और कर्तृति का सम्बन्ध कुछ नहीं होता पर तौभी मोगी मनुष्यों से तामसी की गति मद्दानीव होती है ताते तामसी मनुष्य के साथ प्रीतिकरना सर्वथा अयोग्य है काहेसे कि वह सर्व जीवोंका धानक होता है पर जब कोई तामसी मनुष्य ऐसा होवे जो केवल तुम्हरी को दुखाने तब उसके ऊपर दयाकरनी प्रमाण है पर यह जो तामसी मनुष्यों से विरुद्ध करना प्रमाण कहा है सो इस विषे भी जिज्ञासुजनोंकी अवस्था दो प्रकारकी हुई है सो एक तो ऐसे हुये हैं कि उन्होंने विचार और धर्मकी मर्याद के निमित्त पापीजीवोंको दण्ड दिया है और एकाएसे हुये हैं कि उन्होंने सर्वजीवोंके ऊपर दयादृष्टि राखी है जगत से सम्बन्धही उन्होंने तोड़ा है पर इसका तात्पर्य यह है कि जिस पुरुषकी मनसा शुद्ध है और अपनी वासना से रहित है सो गति सका सबही कर्तृति शुभ और नीक होता है ताते जिस पुरुष ने ऐसे जाना है कि सर्वजीवोंका प्रेरक भगवत् है और आपसे यह जीव सबही पराधीन है तिस कारण से वह पुरुष सबोंके ऊपर दयादृष्टि से देखता है सो यह उत्तम अवस्था है और पापीजीवोंको पापसे बर्जना यह भी भला है पर कते मनुष्य ऐसे भी मूर्ख होते हैं कि वह पापिकर्मोंका त्याग नहीं करसके और पापी जीवोंकी संगतिकी अवगुण पहिचान भी नहीं सके और मुगसे इस प्रकार कहते हैं कि हम किसीको बुरा नहीं जानने काहेसे कि सर्व जीवोंका प्रेरक भगवत् है और हृदय विषे राग डेप कर जलते रहते हैं सो जवन भगवत् की एकना जानने का विह पुरुष न होवे तबलग ऐसा अभिमान करना व्यर्थ होना है सो एकनाका विह यह है कि जब कोई इसका धन हरने जाये अथवा दुर्वचन बालि अथवा कुछ दण्डदेवे तौभी क्रोधवान् न होवे और उसके ऊपर दयादृष्टि ही देखना रहे तब जानिये कि इसके हृदय विषे एकना दृढ़ हुई है जैसे एक समय विषे मर्ममुखेनि मदापुरुष के दात तोड़ेथे और रुधिर चलने लगा तब महापुरुष कहने लगे कि हे महाराज ! यह लोग मुझसे जानने नहीं ताते तूही इनके ऊपर दयाकर पर जो पुरुष अपने प्रोजत कर्के राग देव विषे दृढ़ होवे और धर्मकी मर्याद के निमित्त मोन होरहे अर्थात् पापियोंको पाप से न बर्जे और उनके अपना सम्बन्धगी न सोड़े तब यहभी बड़ी मूर्खता है ताते जबलग इस मनुष्यके

हृदयविषे एकताकी अवस्था दृढ़ न होये और कुसंगी पुरुषों को लुग जातकर  
 उतकी मित्रता का त्याग न करे तब जानिये कि इसका धर्मही दृढ़ नहीं जैसे  
 किसी पुरुष का कोई मित्र होये और कोई पुरुष उसके मित्रको दुर्वचन कहे और  
 वह उसेको ताड़ना न करे तब जानिये कि उस पुरुषके साथ इसकी गिताई ही  
 नहीं बहुरि पापी मनुष्य जो रुहे हैं सो तिनके विषे भी भिन्नभिन्न भेद होता है  
 और उनके ऊपर दृढ़करता भी अधिकार प्रति चाहिये सो प्रथम तौ एक ऐसे  
 मनुष्य होते हैं कि ब्रह्म मावत् को नहीं मानते और परलोकपर भी प्रतीति नहीं  
 करते और सर्वदा तमोगुण विषे स्थित हैं सो ऐसे मनुष्यों के साथ जिज्ञासुजन  
 को मिलाप करना नहीं चाहिये काहे से कि जब बड़े ईश्वरों और अवतारों ने  
 शास्त्रोंकरकेभी उनका प्रहार किया है ताते उनके साथ किंचित् व्यवहार रखना भी  
 अयोग्य है बहुरि जो पुरुष लोगोंको सत्कर्मों से भ्रष्टकरे और मनमत्तकरके ना-  
 स्तिकवादिर्मोंका मत दृढ़ करवे सो ऐसे मनुष्यके साथ सम्बन्ध रखना भला नहीं  
 और उसके निरादर करनाही विशेष है काहेसे कि निरादरको देखकर लोगोंकी  
 प्रतीति उनमे दूराहोवे बहुरि जो पुरुष और लोगों को भ्रष्ट करे और आपही  
 सत्कर्मों में हीनहोवे तब प्रकट निरादर उसका करना भला नहीं और गिताई  
 फरना भी अयोग्य है बहुरि जो पुरुष निंदा और झूठ और कपट और दुर्वचन  
 और अनीतिकरके लोगोंको दुष्प्राप्ताहोवे तब उसके साथ कठोरता और निर-  
 क्तता करनाही भला है और उसके साथ प्रीतिकरना अयोग्य है बहुरि जो मनुष्य  
 भोगी होये अपना मद्यपान करनेहाग होवे पर और किसीको दुष्प्रावे नहीं तब  
 उसको उपदेश करना विशेष है पर जब कुछ श्रद्धावान् होये और जब कुछ श्रद्धा  
 न देविषे तब लज्जा करके उसके क्रियामे नेत्र मूटने भजे हैं ॥

### दूमरा सर्ग ॥

संगति और अधिकार से वर्णन में ॥

॥ ताते जानू कि सबही मनुष्य गिताई करनेके अधिकारी नहीं इसी कारण  
 से जिज्ञासु जन को चाहिये कि जिस पुरुष विषेभीन लक्षण पाये जावे उसके  
 साथ गिताई करे सो प्रथम लक्षण यह है कि बुद्धिमान् पुरुष होये काहे से कि  
 मूर्खकी भगति निष्फल होती है और उसके गिताई का निशान नहीं होता और  
 मूर्ख मनुष्य जब तेरे साथ उपकर किना चाहता है तब भी मूर्खता करके पगा

प्रस्तुत करता है जो तेरे कार्य को विगाड़ देवे और यों भी नहीं जानता कि  
 मैंने इस कार्य को विगाड़ा है ताते मूर्ख की सगति भेद प्रकृति ही भगवत् सं-  
 निकटता है और मूर्ख को देखना ही पाप का कारण है पर मूर्ख पति को कहते हैं  
 कि जो कार्य के भेद को न जाने और यद्यपि उसको समझाय कर कहिये तो  
 भी न समझ मर्के १ बहुरि दूसरा लक्षण यह है कि जिसका स्वभाव कोमल होने  
 से तिसही के साथ मिताई करती विशेष है, काहे से कि जिमका स्वभाव क्रो-  
 होता है सो कटोस्ता करके मित्रता को दूर कर देता है और निडर होकर प्रीति की  
 रीतिको विगाड़ देता है २ बहुरि तीसरा लक्षण यह है कि जिसकी हृत्ति मत्कर्मों  
 विषे हृद होवे तब उच्चम अधिकारी मिताई का बंदी है काहे से कि पाप कर्मों  
 हृत्प्यके हृदय विषे भगवत् का भय कुञ्ज नहीं होता ताते जो पुरुष भगवत् के भ-  
 से रहित होवे तिसके साथ प्रीति और प्रतीति करनी महा अयोग्य है इसी से  
 महाराजने भी कहा है कि जो पुरुष मेरे गर्जनसे अचेत हैं और अपनी वासना  
 विषे वर्तते हैं तिनके साथ प्रीति और प्रतीति न करो ३ और जो कोई नास्ति-  
 कवादी होवे तिसकी सगति न करना ही विशेष है काहे से कि उसकी रह निरीति  
 का प्रवेर इसके हृदय विषे भी हृद हो जाता है ताते यह भी अपकर्म ही हो जाता है  
 और यह भी नास्तिकवादियों का लक्षण है कि वह इस प्रकार कहते हैं कि किसी  
 को धर्म का उद्देश्य करना प्रमाण नहीं प्राणों और भोगों में भी किसी को क-  
 र्जना योग्य नहीं काहे से कि लोगों के माय हृद को क्या प्रयोजन है सो यह  
 धन भी मन्द मागों और दुखों का बीज है और गन गतियों का चिह्न है ताते  
 इनकी सगति का त्याग करना भला है इस करके कि यह धन मनकी धामना  
 का हितकारी है और जब यही निरन्तर हृद होता है तब प्रकट ही हीर होकर अ-  
 पकर्म करने लगता है इसी पर एक सन्तने कहा है कि पात्र प्रकार के मनुष्यों की  
 सगति न करिये सो प्रथम तो सूते मनुष्य की सगति बुरी है काहे से कि सू-  
 कहने हीना पुरुष कपट करके मूर्खदा कृत ही देता है १ और दूसरा वह पुरुष जो  
 सूदवा करके तेरे नाम को गँवाय देता है २ बहुरि तीसरा वह जो कृपण सन्तु-  
 है सो वह भी तेरी शुभ अवस्था का व्यर्थ कर डालता है ३ और चौथा पुरुष वह  
 है जो पुरुषार्थ में हीन होवे सो वह भी तेरे किसी कार्य का निर्वाह नहीं कर-  
 का ४ बहुरि पांचवा पुरुष जो लभ्य है सो वह भी तेरी मिताई को एक प्राण

अल्प वचन है और लोगों से पूछा कि प्रीति से अल्प वचन क्या है तब उन्होंने कहा कि जो मकर को मासों को अङ्गीकार करता है और तेरी पिनाई को त्याग देना है ताते पिताई को आमके समान ही नहीं जानता ५ वेदुरी एक और सत ने किंदादि कि भो कठोर मनुष्या शिवावासे भोगी पुरुष को मर्ल त्रिचकी सगतिको विशेष मानता हू पर ऐसे जानातू कि सर्व्व मनुष्यों विषे शुभ गुण दुर्लभ पाये जाते हैं ताते प्रथम सगति के प्रसोजन को पहिचानेना चाहिये कि जब तुमको केवल शुभ गुणका प्रयोजन होवे तब को मने प्रनुष्ण और धीर मनुष्यों की सगति कर और जब कुल श्राया का प्रयो जत होवे तब उदार पुरुष के निकट जावे ऐसे ही सब मनुष्यों का स्वभाव भिन्न भिन्न है सो भाग्य पुरुष की सगति आहार की नाई है अर्थ यह कि उनका मिलाना सदा चाहिये और शक्ति पुरुष की सगति ओषधी नाई है अर्थ यह कि उनका मिलाना किसी ज्ञानस्थी विषे चाहिये है और एक पुरुषों की सगति योग की नाई है अर्थ कि किसी समय भी उनका मिलाना नहीं चाहिये और जब अकस्मात् उनका मयोग भी हो जावे तो भी धैर्य और पुरुषार्थ करके उनसे मुक्त हुआ चाहिये पर सदा उग्रही की सगति करनी योग्य है जिसकी सगति विषे परस्पर शुभ गुणों का लाभ होवे ॥ अथ प्रकृत करती युक्ति मिताई के सम्बन्धकी ॥ ताते जानातू कि मिताई और प्रीति का जो ज्ञाता है सो सम्बन्धकी नाई है इसी कारणसे सम्बन्धकी युक्तिये भी चाहिये इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि प्रीतिगानों का मिलाना इस प्रकार सुखदायक होता है कि जैसे दोनों हाथ परस्पर एक दूसरे का भोजन करते रहते हैं ताते उन की सगति करनी युक्ति के साथ विशेष होती है सो प्रथम युक्ति यह है कि अपने से ज्ञान पात वत् मित्रको अधिक देवे और जो यहार्थ इसको भी चाहता होवे तब अपनी अभिजापा का त्याग करके उसके कार्यको पूर्ण करे वही अपने धन और सामग्री को अपने से गिन गिन नहीं जाने ताते कहे विना ही इसके कार्य विषे सावधान होवे और जब मित्रको इससे कुछ मागना पड़े और आप करके उसकी सुरति तब तब इस करके प्रीति मन्द दो जाती है ताते से कि इसका हृदय उसकी सुरत और सहायता से अचेत रहा तब यह देना देवी की प्रीति हो जाती है इसी पर एक वार्त्ता है कि दो प्रीतिगान परस्पर मित्र थे तब एक मित्रन कहा मुक्त को चारमदुख रुपया चाहिये तब दूसरे मित्रने कहा कि दो स-



हैं। रूपया लेलेव तब उस मित्रने कहा कि मुझको लाभ नहीं आवती कि मित्ताई को अमिमान करता है और मुझसे गार्गीको अधिक प्रियतम रखता है वही एक और बात है कि किमी नमर विपे केने प्रीतिमान रहते थे कि सी इटने राजा से जोकर कहा कि ये सब शास्त्रा की मर्याद से उल्लिखित रहते हैं और लोगों को स्पष्ट करते हैं तब राजाने उनको पचड़ाकर मार डालने की आज्ञा करी वही जब सोने लगे तब एक प्रीतिमान सबसे आगे गया और कहने लगा कि मुझको प्रथम मारो तब राजाने पूछा कि तू शीघ्र ही आगे क्रांति को आया है तब उस प्रीतिमानने कहा कि ये सब मेरे प्रियतम हैं ज्ञाते इस प्रकार चाहता हूँ कि कोई क्षणा अपनी आयुर्वल इन परिवारों तब राजाने कहा कि जो इनके हृदय कि ऐसी प्रीति और प्रीति है तिनको मारना प्रमाण नहीं तब सबको लुट्टी दिया वही एक और बात है कि एक प्रीतिमान अपने मित्रके गृह विपे आया और वह मित्र अपने गृह विपे नया तब उस प्रीतिमानने मित्रकी दासी को बुलाकर धनकी संदूक मंगाया और उसको आप ही खोल कर जो कुछ लीदिये था सो ललिया वही जब वह मित्र अपने गृह विपे आया तब यह बात सुनकर वड़ा प्रसन्न हुआ और प्रसन्न होकर उसी दासी की भी संदूक कर दिया वही एक और बात है कि एक संतके पास एक पुरुष आकर कहने लगा कि मैं तुम्हारे साथ मित्ताई किया चाहता हूँ तब उन्होंने कहा कि तू मित्ताई की युक्ति को जानता है तब उस पुरुषने कहा कि मैं तो नहीं जानता वही संत जनने कहा कि जब धन और सर्व सामग्रीको मुझसे अधिक प्रियतम रखे तब प्रीति की युक्ति पूर्ण होती है तब उस पुरुषने कहा कि मुझको यह अवस्था तो प्राप्ति नहीं है तब उस संतने कहा कि तू प्रीतिको अधिकारी नहीं ताते अपने गृहको जाओ वही एक बात है कि एक पुरुष महोपुरुष वन विपे गये थे और एक और संगी भी उनके साथ था तब महोपुरुषने एक वृक्षमें से दो दन्त गेवन लीं सो सीधी धीर कीमल दतीन तो उस संगी को दी और कठोर दतीन अपने ली तब उस संगीने कहा कि हे महाराज आपने मीधी दतीन क्यों ली तब महोपुरुष कहने लगे कि हे भई ! जब एक संख भी किमी की संगति करिये तबगी उस की मित्ताई को निबीह करना प्रमाण है और मित्ताई को निबीह चहदे कि अपने आप से मित्रकी अधिक मुझ दोजिये वही दूसरी युक्ति यह है कि मित्र

के संवर्धनार्थों विषे सहायता करे और मित्र के कहे विना ही उसके कार्य विषे सावधान होवे और विवेकी प्रसन्नता सहित निर्वाह करे काहे से कि भागे-पैसे प्रीतिमान दुष्टों हैं कि, अपने मित्र के कार्य को सम्वन्धियों में भी अधिक जानते थे इसी पर एक सन्तने कहा है कि सगत्त मार्ग के मित्र मुझ को श्री पुत्रादिकां से भी अधिक प्रियतमों हैं काहे से नित्य धर्मकी दृढ़ता विषे सुनेव करिवाले हैं वहरि एक और सन्तने भी कहा है कि जब मेरे साथ मेरे शत्रुको कुछ प्रयोजन होता है तब मैं उसके भी प्रीतिजन को शीघ्र ही किया चाहता हू, फिर भी अपने प्रियतमों के अर्थ विषे क्योंकि सावधान होऊगा वहरि तीसरी युक्ति यह है कि रसना करके मित्रकी गुण ही विवर्ण करे और अवगुणों को प्रमिद्ध न करे और जवा कोई इसके मित्रकी निन्दा करे तब उसको भी मर्जे और ऐसे जाने कि मेरा मित्र अब भी मेरे निकट है ताते जिस प्रकार मित्रको समुख विचन करता है तैसे ही पीछे भी मित्रकी भेलाई चिन्तित करे वहरि मित्रकी वचन सुनकर खड्ग न करे और उसकी गुप्त वार्ता को प्रकट न करे और जगत्-मित्र इमके कार्य विषे कुछ अवज्ञा करे तो भी उसको कुछ न करे और रोमान करे और ऐसे फर के जनि कि यह मनुष्योसदेव ही मूला हुआ है और मुझसे भी तो कितनी अवज्ञा भगवद्जन विषे होजाती है ताते इस प्रकार ममका करके शेष को मित्रावे और जब सर्वथा पैसे ही मनुष्य को हूँ कि जिस विषे अचेतता और अवगुणों कुछ भी नहीं पायाजावे तब यह वार्ता भी महा दुर्नम है और इन करके किसी के साथ प्रीति न करेगा ताते मित्राई से अप्रसन्न रहना है इमीपर महापुरुष ने भी कहा है कि प्रीतिमान लोग गुण की ओर दृष्टि रखने हैं और यद्यपि किसी के कुछ अवगुण भी देखते हैं तो भी जानते हैं कि अकस्मात् किमी कारण के इसमें भी यह संवज्ञा हुई होवेगी और जो अपटी मनुष्य होना है सो सर्वदा अवगुणकी ओर ही देखता है ताते चाहिये कि जिस विषे एक गुण भी देखे तब उसके दृष्ट अवगुणों का विचार न करे इसी पर महापुरुषने भी कहा है कि कुसंगी मनुष्यों से भगवत्-रक्षा करे ॥ सो कुसंगी मित्र वह है जो अवगुण देख कर प्रसिद्ध करे और शुभगुणोंको इरायरावे ताते चाहिये कि मित्रके अवगुणों को विचारे नहीं और मित्र के ऊपर मना अनुमान करे ताते कि चुग अनुमान करना महानिन्द्य है इसीपर एक सन्तने भी कहा है कि मित्रके अवगुणोंको

प्रसिद्ध करने का दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष अपने मित्र को सेवना देना  
 कर उसका बंधन उतासलिते और उमको भग्न करे सो जिसे प्रकार करतुं महान्  
 निन्द्य है तैसेही मित्रका अंगुण प्रकट करना हमसे भी अधिक निन्द्य है ताने  
 बुद्धिमानों ने कहा है कि जिस प्रकार भगवत ने गुणों और अंगुणों को ज्ञा  
 नता है और अंगुणों को प्रकट नहीं करता तैसेही मित्रगो वही है जो अंगुणों  
 को जानकर प्रकट न करे तब उसको सगति भी लाभदायक हो ही है इसी वि  
 षयपर एकावर्ती होके किसी मित्रके अपने मित्रके आगे गुणमें ही प्रकट कर्ना  
 या और कि प्रकटनेतगो कि तुमने मद्भावात् हृदय भिषेनासी है तब उस मित्र  
 ने कदाकि भेने नो जिसारा दी है इसकरके कि खोमी को प्र और प्रती वासना  
 करके खिया और किसी अंगुण विषे अकस्मात् जो मित्रकी त्याग करता है  
 सो मित्राई का अधिकारी नहीं होता ताने मित्राईकी युक्ति यह है कि मित्रके  
 भेदको प्रकट न करे और मित्रके आगे भी किसी की निंदा न करे बहुरि मूर्ख  
 वचन भी न कहे और मित्रके वचन का अर्थ भी न करे बहुरि कोई कर्ण अपना  
 मित्रमें डराने नहीं तातोपेमे ज्ञातात् कि मित्रको वचन ही विपरीत वचन कृति  
 खडन करनेगो मित्राई शोचनी नहीं होला तैहै कि हेमकि मत्तनको अतिउपे का  
 अर्थ यह है कि मित्रको सूर्य करना और आपकी बुद्धिमान् जिनानना सो मद्  
 मित्राईके निह नही इसी पर महापुरुषने भी कहा है कि जिनोरा मित्र तुम्हको  
 ऐमे किटो कि उउ स्वदा हो तब सोमी प्रकृत प्रमाण तही भिक कहा तेलोगे फाहे  
 में कि प्रीनिकी उत्तम रीति प्रती है कि मफका सप्रो कर्तु ता मित्रकी ओझा और  
 प्रमथना अनुमार होये ब बहुरि चोथी सुकियह है कि सर्वदा अपने मित्रकी  
 स्तुति करे और मधुवचन कर के अपने गुण भेदको प्रकट न करे प्रमथना और  
 शोक विषे उत्सका सगी होवे अपि यह कि मित्रकी प्रमथना और शोक अपने  
 संग मित्रने जाने और मित्रकी शुभा वचन करके बुनावे और जब मित्रके कुत्र  
 मलाई देवे तब प्रसन्न होवे और महापुरुषका उपाय जाने थ बहुरि पानवी  
 युक्ति यह है कि मित्रको परसे अधु की विद्या मित्राई का हैसे कि सपारके  
 दुखी सिनरके देखीकी प्रशाकनी विरापे ततोवाटिये कि बहुरि करतु  
 विषे जो कुत्र अर्था कर तो भी मता उपदेश काके उनको परने होये है  
 करवे और भावतके भावका निर्भयगददावे पर मित्रको उपदेशकरता एका

और विषे प्रमाण है इस करके कि प्रसिद्धि लाइना करने विषे मित्रता अपना  
 होना है ताते मित्र को कोमलता और दया संयुक्त सिवाये इसी पर महापुरुष ने  
 भी कहा है कि प्रीतिमान् का दर्पण प्रीतिमान् होता है अर्थ यह कि उम करके  
 अपने अवगुण को देखता है ताते यों चाहिये है कि जब वह मित्र एकान्त और  
 विषे दया करके समझावे तब मित्र का उपकार जाने और कोमान् न होवे फाड़े  
 में कि अवगुण जनावने का दर्शन यह है कि जैसे किसीके वस्त्र विषे सर्प होवे  
 और उसने देखा न होवे और कोई मित्र उमको लम्बा देवे कि तरे वस्त्र विषे सर्प  
 है तब इस करके कोधवान् होना प्रमाण नहीं और उसको उपकार जानना प्र-  
 माण है तेसेही सबी मिलन स्वभाव संपर्क है और जीव को डमनेवाला है और  
 इनके विषयका प्रवेश परलोक विषे प्रत्यक्ष होवेगा ताते जो पुरुष इसके अवगुण  
 लम्बावे सो इसको परम मित्र है इसीपर एक चार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् मन्नके  
 निकट एक और सन्त आया और उमसे पूछनेलगा कि हे मित्र तैने मेरा दुःख  
 रोगाव कौना सुना है तब उमने कहा कि मुझमे मन पृथ्व बहुरि उसने अतिदी-  
 नता सहित कहा कि तुम सक्रोच त्यागकर मेरा अवगुण मुझको लम्बावे तब  
 वह सन्त कहने लगा कि मैंने तुम्हारे आहार और वस्त्रों अथिकता सुनी है  
 सो यह सुनकर उसने कहा कि अंधा फिर भौंयों भी न करूंगा पर जो और कुछ  
 भी सुना होवे सो भी कहो तब उसने कहा कि और तो कोई अवगुण तुम्हारा  
 मैंने नहीं सुना है इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि जो पुरुष उमदेग कंगेयले  
 को प्रियतम नहीं रखे तब जानिये कि उसकी बुद्धिपर अभिमान की प्रकलना है  
 ताते चाहिये कि मित्र को प्रीतिमहित धर्म उपदेश करिये और पाप से धर्म  
 रखिये पर जब वह मित्र तेरेही किसी कार्य विषे अवज्ञा को तब उमको जमाही  
 करना योग्य है बहुरि जब ऐसी अवज्ञा होजावे कि उम करके मित्रताकी नष्टना  
 होती होवे तब एकान्त में समझा देना प्रमाण है मित्रता का त्यागना प्रमाण  
 नहीं पर जब वह कोमल बाणी करके नम्रमके और दृश्य भी नपायमानी  
 करके कठोर बचन कहना पड़े तब इसमे तो मित्रता का त्याग देना विशेष है  
 फाड़े से कि मित्रता और संगति का प्रयोजन यही है कि गुणगुणा की शूटियावे  
 और सहनशीलता प्राप्त होवे सो जब संगति विषे स्वकार की उदाहना होने  
 लगी तब उमको त्यागना ही भना है बहुरि छठी युक्ति यह कि माने मित्र

के निमित्त भगवत् के आगे प्रार्थना किया करे और उसकी गना चित्रे इसी पर महापुरुषने भी कहा है कि जब कोई अपने मित्र के निमित्त प्रार्थना करता है तब इसको भी मलाई प्राप्त होता है ६, बहुरि सातवीं युक्ति यह है कि मित्र की मित्रता का निर्वाह करे सो निर्वाह का अर्थ यह है कि जब कोई इसके मित्र की निन्दा करे तब निन्दकको शत्रु जाने और निन्दा सुनकर मित्र की मित्रता का रक्षण न करे ७ बहुरि आठवीं युक्ति यह है कि मित्राई में दर्शन न करे अर्थात् बहुत स्तुति करनी और अपना प्यार प्रकट दिखायता सो यह सब निन्द और दर्शन होता है ताते चाहिये कि जिस प्रकार अपने आपसे बड़ाई कोई नहीं चाह ११ ऐसे ही मित्र में भी समानता होवे और केवल हृदय ही की प्रीति होवे इसी प्रकार एक सन्तने कहा है कि जिम मित्र की गनमा के निमित्त कुछ उद्यम और सेवा करता रहे तब वह मित्र ही मला नहीं होना = बहुरि नवें युक्ति यह है कि अपने मित्र को मित्र से नीच जाने अर्थात् मित्र से उपकार और सेवा की भावना करे इसीपर एक चार्ता है कि कोई पुरुषने एक सन्त के तिष्ठत कई बार कहा कि इस समय में धर्म मार्ग का भियनग महा दुर्लभ है तब सन्तने कहा है कि जब तू ऐसे मित्र को चाहे कि जो सब प्रकार वेदा सेत्रक होने और तू उमका सेवक तं होवे तब ऐसे मित्र तो तिससे देह दुर्लभ हैं और जब तू सेत्रक हुआ तब देव स्वामी होनेवाले तो मेरी सभा में बहुत हैं ताते बुद्धिमानों ने इस प्रकार कहा है कि जो जाने आपको मित्र से विणेष जानता है सो प्राणी होता है और जब आपको उससे समान देखता है तब भी वही रहता है और जब सब से नीचे जानता है तब उत्तम लागको पावता है ६॥

तीसरी सर्गणी

ससारे, मित्रों और सम्भारियों, पौट पकोसियों और दासोंके गिलाप के प्रयत्न में

ताते जानू कि जितना किसी का सम्पन्न व्यग्रद्वार में आश्रित होता है तितना ही उसका निर्वाह करना प्रमाण है पर मन्त्रियों से जो उत्तम सम्पन्न है सो भगवत् मार्ग की मित्रता है और उस मित्रता की युक्ति मेंने पूर्व वर्णन करी है बहुरि जिम मनुष्य के साथ अधिक प्रीति त होने और कुछ एक साक्षि कर्म का सम्बन्ध पाया जावे तो उसके गिलाप रिपे भी कई युक्तियां चाहिये है प्री प्रमाण युक्ति यह है कि जो गदार्थ इसको अनिष्ट होने तब उस पदार्थ की प्राप्ति

इसरीकोभी ज्ञाताहै इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि सर्वजीवोंका सम्बन्ध एक शरीरके अंगोंकी भाँतिहै सो जब एक अंगको कुञ्ज डूबे होताहै तब सर्वशरीर को दुःख पहुँचना है तैसेही चाहिये कि किसी जीवका दुःख न चितवे १ बहुरि दूसरी व्यक्तिप्रदहै कि मन वचन कर्म करके किसीको दुःखावे नहीं पर महापुरुष ने भी कहाहै कि जिस पुरुषकी रसना और हाथों करके कोई दुःख न पावे वह धर्मवान् कहाती है ताते अपने रसना और कर्म को ऐसी मर्याद विषे रखिये कि किसी प्रकारकिसी मनुष्य को दुःख न पहुँचे २ बहुरि तीसरी युक्ति यह है कि अभिमान करके जीवोंको किसी से बड़ा न जाने काहे से कि अभिमानी मनुष्याभिगवतकी ओर से विषुल होताहै इसीपर महापुरुष को आकाशवाणी हुई थी कि दीनता और नम्रताको अंगीकार करे और अभिमानी न होवे ताते चाहिये कि किसीको नीच न देखे काहे से कि जिसको नीच देखता है सो ज्ञान वह सन्त होवे और यह उमको जानता न होवे तब क्या आश्चर्य है क्योंकि मृतसन्नापेमे गुप्त रहते हैं कि उनको मगवत् विना और कोई नहीं जानता ३ बहुरि चौथी युक्ति यहहै कि जब कोई इमको किसीकी निन्दा सुनावेतब उसको श्रवण न करे काहे से कि यथार्थीपुरुषके वचन पर प्रतीति करनी प्रमाण है और निन्दकपुरुष यथार्थी नहीं होता इमी पर एक सन्तने कहा है कि पिशुन और निन्दक अवश्यही नरकगामी होते हैं और योंभी जानेना चाहिये कि जो पुरुष प्रयोजन विना किसीका छिद्र तुफको सुनावताहै वहतेरा छिद्रभी लोगोंके आगे अग्रयही वर्णन करेगा ४ बहुरि पाचवी युक्ति यह है कि सबको जागेही प्रणामकरे और किसीके साथ विरोध न राखे और कोषी गाउकरके किसीमे मौनगी न करलेवे ताते जब किसीमे कुञ्ज अवज्ञा होजावे तबभी क्षमाही करे ५ बहुरि छठी युक्ति यहहै कि सब किसीके माय यथार्थी अभिमान और उपकार करे और उसकी मनाई बुगई की ओर न देखे काहेमे कि जो वह उपकारका अधिकारी नहीं तो तू तौ उपकार करनेका अधिकारी न तति तूही उपकारकर और धर्मकी दृढ़ता यही है कि सबके ऊपर दया करनी ६ बहुरि सातवी युक्ति यहहै कि जो आपसे बड़ा होवे तिसकी बड़ाई राखे और जो आपसे लघुशेवे तिसके ऊपर दयाकरे इमीपर महापुरुष ने कहाहै कि जब कोई अपने से बड़ोंकी बड़ाई रखताहै तब उसकी बड़ाई महागज अंगोंमे गवा

इसीपर सदापुरुषनेमी कहा है कि जब कोई तुम्हारे विरोधी होवे तो मैं उसके साथ मलाईही करे और जब तुमको कुछ देवे नहीं तब तुमही उसको कुछ देवो।

चौथा सर्ग ॥

इति ज्ञान तू कि इस आर्चाविषे बुद्धिमानों ने परस्पर चर्चा किया है सो कितनी नेती आचार्योंकी सिद्धतिको विशेष कहहि और कितनी नेपकान्त रहने की प्रमाण किया है पर जो जिज्ञासु अन्तर्मुख हुए हैं तिनहोंने एकांकी अङ्गीकार किया है इसीपर एक सन्तने कहा है कि जिसने भोगोंसे संयम किया है तिसकी जगत्की कर्मना कुछनिही रही और जिनने ईर्ष्या का त्याग किया है सो दयावान् होता है और जिसने कुछ देन पुरुषार्थ किया है सो अनिहारी सुखकी प्राप्ति हुआ है और जिसने एकांकी अङ्गीकार किया है सो जगत्के जङ्गलोसे छूटा है और एक और सन्तने कहा है कि भजनके अभ्यासका पूर्व मोना और एकांतता और एक और सन्तने कहा है कि जो पुरुषभुक्तकी प्रमाणा न करे और जब में रोगी होऊ तब मुझकी आयकरने पूछे तब में उसको उपकार जानता हूँ और किसी जिज्ञासु ने एक सन्तसे कहा था कि मैं तुम्हारी सगति किया चाहता हूँ तब उसने कहा कि जब मेरी मृत्यु देवेगी तब तू कितने सङ्ग रहगा तब उसने कहा कि तब मैं भगवत्के अश्रित रहूंगा तब उसने कहा कि तू अर्थात् भगवत्का सङ्गीहो भी एकांकी और सङ्गति की महिमा विषये ऐसी ही बचन बहुत आये हैं पर जबका इनके श्रुते और अवगुणको प्रकटना किया जावे तब तब संगमना इस भेदकी कठिनाई होती है कि एकांकी परदगुण वर्णन करता है फिर संगमतिके परदगुण वर्णन करेगा सो एकांकी का प्रथम गुण यह है कि भजन और विचारकी सिद्धता एकांकीविषे ही है और सङ्ग भजनका मूल यह है कि भगवत्की करीबकी विचारकरना और इससे भी उत्तम बातकी स्वीय यह है कि अपने भित्तिका वृत्तिको भावतके स्वरूप विषे लीनकरना और आप सब पदार्थोंको विस्मरण करनी सो मेरी परुषता एकांकी विना सिद्ध नहीं होती कोइसे कि भाषा के सर्व पदार्थ इस जीविको वर्धमान प्रवेनाते हैं और जिज्ञासुकी बुद्धिमें ऐसा बल दुर्लभ होता है जो सतारविषे निर्वपये ताकी अभ्यासके निमित्त एकांकीमें रहना ही विशेष है काइसे कि महाप्रसीदी आदि

अवस्था में पहाड़ की कदरों में जिन रूढ़ि जिन पूर्ण अंतरात्मा को प्राप्त करने  
 के लिये करके तब ऐसे अनिर्लेप हृद्ये किंशरीरों के लोको में रहे और त्रिष-उत्त  
 क्रिया मृगवत्के वरिणों में रहा और मुहापुरुषते यों कि हासी है कि मुक्तो मृगवत्  
 प्रीतिने और सबकी प्रीतिसे विक्रम किया है सो इस अर्थस्याका प्रसा होना  
 -आए तब ही नहीं इम करके कि यह जीतु परमपद का अधिकारी है इसी पर एक  
 सितने कहा है कि मैं तीमवर्षों में मृगवत्की के साथ चरते कहता हूँ और यह लोग  
 ऐसे जानते हैं कि हमारे साथ बोलता है ताते प्रभिद्ध हूँ आ कि इस अवस्था की  
 प्राप्ति असम्भन्न नहीं काहे से कि जब किसी मनुष्य को किसी स्थान पर दार्प की  
 ली धिक्क प्रीति होती है तो सी ऐसा जीना हो जान है कि लोगों में बैठा हुआ भी  
 उत्तरे चरतों को नहीं सुनना और तब को देखना भी नहीं परा प्रेमी अवस्था तब  
 अभिमान करना असोय है काहे से कि बहुत पुरुष तो ऐसे होते हैं कि लोगों के  
 मिलान विषे उत्तकी हृद्धि संसरता ही है इमी पर एतवार्ता है कि जैसे प्रकृतप-  
 स्त्री से किसीने पूछा था कि तू अकेला ही रहतो है तब तपस्वी ने कहा कि मेरा  
 सिंगी भी वत्त है ताते मैं अकेला नहीं हूँ। वदुरि एक और सितने किसी एकती  
 में पूछा था कि तू अकेला क्यों रहता है और सितने सग का किम निमित्त त्याग  
 किया है तब उसने कहा कि मैं अपने कार्य में ऐसा मग्न हूँ कि किसी के मिलान  
 की इच्छा मुझको नहीं। फुरती वदुरि उस सत्तने पूछा कि वदुरि का रण्य है तब  
 उसने कहा कि क्षण क्षण में सर्वदा मृगवत् की उपकार होते रहते हैं और मुक्त  
 से प्राप्त होते रहते हैं ताते मैं अपने पारों को क्षमा कराना हूँ और महीराज के  
 प्रकाशों की धन्यवाद करता रहता हूँ। इसी कारण से मुझको किसी के मिलान की  
 आवश्यकता नहीं रहना और त अभिनोपकार का हूँ वदुरि तब मनने कहा कि  
 वीर्य है वदुरि एक मित्रात्तु किसी सबके निकट गया तब उन्होंने पूछा  
 कि तू किस निमित्त त्याग हो तब उसने कहा कि आपके समय में विश्राम के नि-  
 मित्त आता हूँ तब उन्हें ले कहा कि जिनने मृगवत्को पहिचाना है वह और  
 किसी के मिलान में क्यों करी विश्राम चाहना है वदुरि एक और मनने केश है  
 कि जिन रात्रि आने की देतब में प्रसन्न होतों हूँ कि प्रमानपणीत एकान्त होकर  
 मृगवत् के मनतमें स्थित रहूँगा वदुरि जत सूर्य उदा होने है तब मुझको शोक  
 होता है कि दिनग आने की लोलाका विना होवेगा वदुरि एक और मन



र्ण कहते कि लोगोंके त्वाद, विचारोंसे जिसकी प्रीति महाराजके मंत्रमें अ-  
 धिक नहीं होती वह पुरुष बुद्धिहीन है और उसका हृदयभी मलिन है अपनी  
 आयुष्य वर्ष वितोवता है बहुरि एक और बुद्धिमत्ते कहते कि जिस पुरुषको  
 किसी मनुष्यके मिलने और देखनेकी अभिलाष उपजती है तब जाना जाना  
 है कि इसके हृदयमें आत्मभुव का रम सुख नहीं तोते स्वयं उपायोंकी महा-  
 यत्ता ब्राह्मण है और योंभी कहा है कि लोगोंके मिलोपभोगिम सुखकी प्रीति  
 है मङ्गलत्पन्त निर्द्वेष है ताने प्रसिद्ध हुआ कि उच्चम मज्जत हृदयका अभ्यास  
 है और अभ्यासही करके मज्जतकी रहस्य उपजते हैं मङ्गल विचार और ज्ञान  
 की प्राप्ति अभ्यासही करके होती है अथवा सर्व साधनोंकी फल है, काहेसे कि  
 इस जीवको प्रज्ञाको भोग अवशया जाना है सो जब यह पुरुष महाराजके भजन  
 की एकत्रताके साथ बद्धा जाता है तब उत्तम भाग्यवान् कदाता है पर मज्जत  
 रहस्य और विचारका अभ्यास एकांत विनी हो नहीं सक्ता है बहुरि हिमरागुण  
 यह है कि एकन्त करके भित्तोंही पापोंसे छूटना है काहेसे कि लोगोंके मि-  
 लोप में त्वारोप तो अवश्यमेव उपजते हैं और इन पापोंसे कोई भिरलाही  
 छूटना है सो प्रियम पाप निन्दित है कि निन्दा करके धर्म नष्ट होता है और दुमरा  
 प्राप्त है कि जिमो किसी मनुष्यका अपकर्म देखकर उसको उपदेश न करे  
 तब शास्त्रोंकी मर्यादा में विमुख होता है और जब उपदेश करके उसको पाप  
 से बर्जना होवे और उसकी रुचि न रहे तब उस पुरुषके साथ विरोध होता है  
 बहुरि तीसरा पाप दम्भ और क्रपट है सो दम्भमे खूटना भी महाकठिन है काहे से  
 कि जब किसी प्रिय मनुष्यको और उसकी प्रीति में चढ़े तब विशेषतः को  
 प्रीति है और जब ऐसे न करे तब तनके विरोधमे नहीं छूटसक्ता बहुरि चोथा पाप  
 पाप तो यह है कि ज्ञान प्रज्ञानके ही किसीको मिलता है तब ऐसे कहता है कि  
 मुझे तो तुम्हारे दर्शनकी मङ्गल अभिलाषी सो जब इसके हृदयमें उसकी प्री-  
 ति ही सुखाने होवे तब जाना कहना सुटती है और जब इस प्रकार नाकहे तब  
 उसकी मतोहार नहीं होती बहुरि मानोहारके निमित्त उसमें पृथक्ता है कि तैरी  
 क्या दान है और तैरी सम्बन्धी कितने हैं पर हृदयमें उसकी प्रीति कुछ नहीं रहता  
 तब यत्र फल प्राप्त होता है इसी पर एक मन्त्रने कहा है कि जब किसीके  
 साथ इसका प्रयोजन होता है तब अनेक मनोप्यके निमित्त इनकी स्तुति का

तोही किंअपनोअर्भदिसि भ्रष्टहोजाताहै औरपुत्रप्रयोगमें भी मिद्ध नहीं होता  
 तेहरि कण्टाकरके भगवत्ती औरसे विमुक्त होताहै ईसापर एक और बातों हे  
 कि एक पुरुष किसी सन्नके नाम आयाथा तब सन्न ने पूछा कि तू किस नि-  
 मिर्ष आया है तब उमने कहा कि तुम्हारे दर्शन की प्राप्ति करके आयाहू तब  
 उन्होंने कहा कि तू तो प्राप्ति के बुरा करके आया है कोही कि तू मेरी होती  
 औरीजन होती स्तुति करेगी जोशमें तेमि बड़ाईको प्रकट करूंगा सो यह सर्वही  
 कुरु और पाप उद्वेग तातो जो पुरुष आपकी भक्तिके गिलापमें भी वृत्तिय रख-  
 ताहै उसको गिलाप करके सुद्ध विधेन नहीं होता पर यह अवस्था गहाइलुगेहै  
 इसी कारणसे जो आगे प्राप्ति मात्र हुयेहै वह परस्पर एक दुसरेके व्यवहार की  
 याचों जही प्रथते भे इसीपर एक वाच्य है कि एक प्राप्तिमान् ने एक प्राप्तिमान्  
 से पूछा कि तनेरी क्या अवस्था है तब उमने कहा कि सुख और आनन्द है  
 वनाइयेसिद्धि कहारके सुख आनन्द जो तवही होवेगी निव आत्मसंतु की  
 प्रतिशेगे तहरि एक और सन्नमे भी कि सीने पूछा था कि तुम्हारी क्या अव-  
 स्था है तब उन्होंने कहा कि निमपद करके सुख प्राप्त होताहै तिसका प्रसहानों  
 मेरे हाथ नहीं औरीजन कर्मों करके तु व प्राप्त होमाहै तिनका नियुक्त करना  
 भी सुकपे तही दोसका बहुरि और सर्वदा अपनी चिन्तनी में व्ययमानि रहनी हू  
 और आर्ष्य भेरा महीराजके दासहै तते मुक्तमा हु री और अतोय जोई नहीपि  
 बहुरि एक और सन्न से किसी ने पूछा था तब उन्होंने कहा कि गी महिपिपों  
 और निरर्थक वृत्ति अपनी आरब्धकी प्रदा भोगतहै और कीलकी और किडा  
 निहास्ता हू ॥ बहुरि इसी प्रकार किसी ने एक और सन्नमें पूछा था कि तेरी  
 क्या अवस्था है तो उन्होंने कहा कि सुखहै तब उमने कहा कि सुख तो तब होवे  
 जव नरकोंके हृत्तमे निर्भयहूजिये बहुरि एक और सन्नमे किसीने पूछा था कि  
 तुम्हारी क्या अवस्था है तब उन्होंने कहा कि जो पुत्र्य प्रमान मगग उत्रे और  
 इतना भी न जानगके कि मे रात्रिपर्यन्त जिउगा अथवा न जिऊंगा तब उम  
 की क्या अवस्था वर्णना करिये बहुरि एक सन्नमे किसी ने पूछा कि तुम्हारी  
 क्या अवस्था है तब उन्होंने कहा कि निम पुरुष ही आयुर्जन तो घन्ती जावे  
 और पाप बढ़ने जाव उमकी क्या अवस्था वर्णन करिये बहुरि एक और वृत्ति  
 मारमे किसीने पूछा था कि क्या अवस्था है तब उन्होंने कहा कि दिया ता ग

द्वाराजका खाताहू और आज्ञा मनभी गानताहूँ बहुरि एक और सन्तसे किसी  
 ने अवस्था को पूछा तब उन्होंने कहा कि जिसकी आयुर्वल क्षण क्षण घर्ना  
 जावे और वह जाने कि मैं बढ़ा होता जाताहू तब उमकी क्या अवस्था वर्णन  
 करिये बहुरि एक और सन्त से किसी ने पूछा था कि तुम्हारा क्या हाल है तब  
 उन्होंने कहा कि जिस पुरुषको अवश्यही मरनाहोवे और पालोक में दरदका  
 अधिकारी होनाहोवे तब उसकी कौन अवस्था कहिये बहुरि एक सन्तसे किसी  
 ने पूछा कि तुम्हारी क्या अवस्थाहै तब उन्होंने कहा कि जोंगेरा एक दिनभी  
 सुखसे बीते तौभी गला है तब उसने कहा कि क्या अब तुमको सुख नहीं तब  
 उन्होंने कहा कि जिस दिन मुझसे कोई पाप न होवे तब मैं सुखका दिन बही  
 जानताहू बहुरि एक प्रीतिमान्से श्रुत्युममय किसीने पूछाथा कि तुम्हारी क्या  
 क्या अवस्था है तब उन्होंने कहा कि जिसको दूरदेश जानां होवे और उसके  
 पास तोशा कुछ न होवे और महाघोर अंधेरे में जिसका मार्ग होवे तिससमय  
 मार्ग में जावना जिसको होवे और सगी भी कोई न होवे बहुरि न्याय करने  
 वाले महाराजके सम्मुख पहुँचना होवे और वहा आरफो बचनेका आश्रय भी  
 कुछ न होवे तब उमकी क्या अवस्था वर्णन करिये ॥ बहुरि एक और सन्तने  
 किसी पुरुषसे पूछाथा कि तेरा क्या हालहै तब उसने कहा कि मुझको पाचसौ  
 रुपये देने हैं तिमके शोच में रहताहू तब उन्होंने सहस्र रुपये उमको देकर कि  
 पाचसौ तौ देना देवो और पाचसौ रुपयेसे अपनी जीविका करो और फिर इस  
 प्रकार कहनेलगे कि जब प्रीति करके किसीकी अवस्था पूछिये और उसका  
 कुछ सुनकर सहायता न करिये तब वह पूछनाही कपट होतोंहै ताने इम मरना  
 चाहिये कि जब किसीसे कुछ पूछिये तब उमका प्रतिपाल करिभे अथवा पूछेती  
 नहीं ताने जागे जो प्रीतिमान् सन्त हुये हैं तिनकी ऐनी अवस्थाभी कि पंचरि  
 व्यवहार में परस्पर अपनी प्रीति प्रकट करतेये तौभी हृदय करके एक दूसरेको  
 ऐमा मियतम रवते ये कि जब किसीको कुछ अर्थ होनाथा तब अपनी कृष्णा  
 गभी दुगय नहीं रवतेये और इगममय भिये अब ऐसे लोग प्रकटहुये हैं कि एक  
 दूसरेकी मनोहारके निमित्त उनके सम्बन्धियों और पशुयाकी भी बात पूछतेहै  
 और जब उमको एक पैसेकाभा अर्थ होनाहै तौ विमुख होजाते हैं मो यह सारी  
 प्रीति नहीं कदाती इसीका नाम कपटकी प्रीतिहै ताने इम जगत्के मित्तापका

ऐसाही स्वभाव है कि जब हृदयपूर्वक इनके साथ मिलाप करिये तब कपट और पाप्मणके समुद्रमें डूबना होता है और जब उनको मिलकर ऐसे मनोहार न करिये तब यह लोग विरोधी होजाते हैं और इमका छिद्र दूढ़ने लगते हैं और इस करके अपना धर्मभी खोवते हैं और इसके धर्मको भी नष्ट कियाचाहते हैं वहुरि जगत्के मिलापमें चौथा पाप यह है कि यह मनुष्य जिमकी सगति करता है तब अवश्यही उसका स्वभाव इमके हृदय में दृढ़ होजाता है और यद्यपि इसको उस स्वभावका ज्ञानही कुछनहीं होता तोभी निस्मन्देह वह स्वभाव बढ़जाता है और उसकरके किमनेही पाप उपजने हैं और अचेत पुरुषोंकी संगतिमें यहभी अचेत होजाता है वहुरि जब मायाधारियोंकी सगति करता है तब इस कोभी माया की दृष्ट्या उपज आती है और यद्यपि किसी भोगको निन्द्यही जानना है पर भोगी मनुष्यों की सगति करके उस कर्मकी दोषदृष्टि नष्ट होजाती है वहुरि जब किसी अपकर्मकी वार्त्ता सुनता है तब इमके हृदय में भी उसकी मलिनता प्रवेश करजाती है जैसे महापुरुषोंकी वार्त्ता सुनकर इसका हृदय कोमल होजाता है ते-सेही भोगियों और पापियोंकी वार्त्ता सुनकर इसकोभी रुचि उपजआती है ताते मसिद्ध हुआ कि जिसकी वार्त्ता सुनने से इसका हृदय मलिन होवे तब उसकी सगतिमें क्यों न मलिनता उत्पन्न होवेगी इमीपर महापुरुष ने भी कहा है कि कुसङ्गी मनुष्यों की सगति ऐसीही है जैसे कोई लुहार के निकट जायवेउं अर्थ यह कि यद्यपि अपने वस्त्रको जलने से बचायराखे तोभी उष्णता और धुवा तो अवश्यही पहुँचगा वहुरि सात्त्विकी मनुष्योंकी सङ्गति जो है सो गन्धीके हाट की नाई है कि यद्यपि उससे मोल करके सुगन्ध न लेवे तोभी उसकी सुगन्धता तो निस्मन्देह नासिका में पहुँचती है तात्पर्य यह है कि मनसुखोंकी सङ्गति से अकेलाही रहना भला है और अकेला रहनेसे सात्त्विकी मनुष्यकी सङ्गति विशेष है इमीपर सतजनों ने कहा है कि जिम पुरुषकी संगतिमें मायाकी प्रीति दूर होवे और भगवत्की प्रीति उत्पन्नहोवे तब उसकी सङ्गति को उत्तमजानो और कदाचित् उसका त्याग न करो वहुरि जिमकी सङ्गति से तुमको विषयोंमें प्रीति होवे निसका त्यागनाही भला है पर वह विद्यावान् जो मायाका लोभीहोवे और उसकी कर्तृति वचनके अनुमार न होवे तब उसकी सङ्गति का त्यागना अवश्यही प्रमाण है काहेसे कि उसकी सङ्गति करके जित्नागुनी प्रीतिही घटजाता है

स्वयं किंचिन्नियुक्ती बुद्धिः श्रीदिवावस्थामे प्रसिद्धा तर्ही ज्योतिः सोऽत्रियवित्तु  
 देवकर, चित्रसु, श्री प्रेमा ज्ञानुमान इत्यादि किं ज्ञान गायत्रा ह्युगना अभिप्रे  
 द्युतानि व, युकु विद्यायुक्त्या नर्ही त्वागतं ता सो इत्युक्ता दृष्टान्त यद्वेकि निवे  
 कीर्ति पुंसु भीतिस्तु, विद्युर्हि नो विगतजिद्ये और सुसमे, इत्युपकारा कहे किं यद  
 गिटाई हस्ताहल ज्ञानात् विपदे ताते इय के जाहारी आगिनापे लाकरो तेषाज्ज  
 के वचन पर किंसीको गतीति नही आती काहेसे कि उमकी प्रीतिकरके साक  
 नही, वृष्णाको उपजावता हे और इसमें यही सिद्ध हीताहे कि यह पुरुष अपने  
 स्वोभके निगिजा गिटाई के विष ज्ञतावता हे तैसेही प्रेसे, मनुष्यभी बहुत ही कि  
 ज्ञनकी श्री विद्योत्सुच्छ आही और पापों विषे दोषदृष्टि होती हे पर विद्यावा  
 नों को नि शङ्क देखा कर चतुर्ही क्षेपदृष्टि भी नष्ट हो जाती हे और निहरा दोष  
 वर्तने लगते हैं इसी कारण से विद्याज्ञानों का छिद्र पूर्ययना गीहा ज्ञयोपदेरस  
 त्ररके कि प्रथम तो निन्दु होती हे ईसरे उमकी धार्मिकतत्त्व और लोग भी अडि  
 होजाते हैं ताते इतर जीयों का स्थिति कारण हे कि ज्ञान वृक्षिणी विद्यावाकके विधि  
 को देखे तब दो प्रकार कीके रत्नानि को तिवारण करे सो प्रथम तो प्रेमे जाने कि  
 येद्यपि इस विद्यावर्तसे यह अज्ञात है तौ भी विसकी विद्याही पापों को क्षमा  
 करानेवाली दोष पर जो मनुष्य विद्या से भी ही न होके ता उमकी अज्ञाना कर्षोकर  
 क्षमा हीविगी और धुमरे प्रेसे जानना प्रमाण हे कि विद्याकारके जो मापकर्म  
 को पूरा जाता हे और उम विषे ज्ञान भी होना हे तो उसका धर्मनी अ  
 सायी जीवों की जाई तर्ही होता काहेसे कि विद्यावाना विद्याकी भंगारी जीवों  
 की बुद्धि पावतही गैती ताते इतर जीवों को चाडिये कि विद्यावानों को अपी  
 दोषदृष्टि न राभे ज्ञान उतके धर्मवष्ट न होतै तात्पर्य यह है कि ज्ञानसे मनुष्य  
 को सुगति भी इसको धर्म तो नाग, कृष्णवर्णा ही हे ताते प्रियदासका चाडिये कि  
 जगत् के मित्राप से एकान्त ही तर्ही जो विषे हे R प्रहृति विमता गुण लब्ध है कि  
 स्व भसा में वे आत्र और ईपा, और मन्यो के विषे अश्रीादिक विषय वे उपजते  
 हे सो प्वास्त रहनेवाला मनुष्य चतु मव विषोमे मुक्त रहना दोषो रजिसत जगत्  
 के मित्रापको अगीकार फिषा के विदिके धर्मके नाग्य होनेका गया होना हे  
 र्ही पणमदासुम ने भी कहे है कि योगी श्री संगति त्याग करी अपने कि में  
 यद्वेरो जो रसनाको अधिक होलने से धर्मवासो और जिसको चतु भनई

संभक्त हो तिसकी अंगीकारी करो और जिमें कारुणिक भावकी तुम संगतिमें  
 सको उमको रियायत करो आरंभ में विवेक स्थित होवो और सत्कारके कार्योंको  
 विस्मरण करो व बहुरिचो वागुण यहहीके एकान्त रहनेके यह पुस्य लोगो  
 फी उपाधिसंयुक्त रहताहै काहेमें कि जब लोगोके साथ मिलीप करीताहै तब  
 निर्दा और दोषदृष्टि और लोभसे रहित नहीं होमकी और जब संसार कीवो  
 को मुक्त हूत का संगी होता है तब इसकी सर्व आयुर्वला उग्रध होता है और जब  
 ऐसे न करे तब वह लोग इसको तुम जान करे दुर्वचन कहने व बहुरि जष फिसी  
 के साथ तो मिलीप करे और किसीसे एकान्त रहताभी विषमना होता है और  
 यह भी एक दूसरे की देखकर क्रोधो होते है तीने जन संकयाग करके एकान्त  
 में स्थित होता है तब सब विषय से मुक्त रहतीहै और कोई मनुष्य भी अप्रसन्न  
 नहीं होता इसी पर एक वाक्ती है कि एक प्राणिगति सर्वदा भगवत् वाक्यकी  
 पोथी की लेकर भ्रमशानि में रहताका तब किसी ने पूछी कि तुम अकलेश्यो  
 रहनेके तब उसने कहा कि एकान्तके समीप मुक्त्वा न आरंभिके योगमें ही रहो  
 और भ्रमशानि समान उपदेश भी और कोई नहीं और पोथीके समीप मुक्त्वा  
 यक गति में और कोइ नही देखा कि बहुरि पवित्र गुण यह है कि एकान्तो मु  
 रूप से सबलोग भी निराण ही जाते है और यह भी सब से निराण होजाता है  
 और यह आशाही सर्व दुष्को मुक्त करे कि जब जननीको साथ में  
 लीप करेताहै तब अवश्यही इमेकी भी दृष्टा उपजती है बहुरि जष दृष्टा उ  
 त्पन्न हुई तब निराण और अपमान को मानाह इसी पर महापुरुष ने भी कहाहै  
 कि गीपधिसी जीवोकी मुन्दरतीको न देखो इमे करके कि यह गीपधिसी उ  
 नको छत्रनेवाली है बहुरि योभी कहाहै कि जब तुम जननीके मुक्ती और  
 देखोगे तब भगवत्के उपकारसे विमुक्त होवोगे और अधि मुक्तीकी अशिलीप  
 विवेक से पारोगे व बहुरि उद्योगुण यह है कि एकान्त करके मुक्ती और पापियोकी  
 संगति से छत्रजाताहै सो मुक्तीकी संगति कसी है कि उनको देखनाही धितकी  
 मालिने कताहै इसी पर एक बुद्धिमानने कहाहै कि अम जखरके गौरु दु भी  
 होताहै तबही मुक्तीकी संगति करके हृदय नारायण होनाहै तब एकान्त विष  
 एमें परमई स्वयं मुक्त रहताहै और स्वाभाविक ही इपके गुण भी अद्योगी की  
 और दृष्टि नहीं पडती है जब प्रकृतकी संगतिके गुणोकी नाने जान मुक्ति

जितने अर्थ और परमार्थ के लाभ हैं सो परस्पर मिनाप करके प्राप्त होते हैं और एकान्त करके उनको पा नहीं सके सो प्रथम लाग यह है कि विद्याभी समझ करके प्राप्त होती है और जबलग यथार्थविद्याका वेत्ता न होवे तबलेग एकान्त रहना भी फलदायक नहीं होता काहेमे कि जो पुरुष विद्या पढ़े बिना एकान्तस्थित रहता है तब निद्रा और व्यर्थ सकल्पों में उमका समय बीतजाता है और यद्यपि यत्न करके भजनमें सर्वदा लगा रहे तो भी यथार्थविद्याके समझे बिना अभ्यास नहीं होता और बलोंसे रहित नहीं होसका बहुरि, जब अभिमानसे भी रहित होवे तब जिस प्रकार भगवत् को जानना चाहिये सो यथार्थविद्या बिना किसी प्रकार जान नहींसका और किसी ऐसे निपरीत निश्चयको अङ्गीकार करता है कि उम करके भगवत्की मे प्रियुक्त होजाता है अथवा मन्मथ काके किसी कुमार्गी को अङ्गीकार करलेता है और उस कुमार्गी के अत्रगुण को जान नहींसका तात्पर्य यह कि एकान्तमें रहना भी किसी विद्यावादी को फलदायक होना है इसी कारण से इतरजीवों को एकान्त-प्रमाण नहीं कहा काहेसे कि इतरजीवों की बुद्धि रोगी की नाई है अर्थ यह कि रोगी को वैद्यकी सगति का त्यागकरना प्रमाण नहीं और जब वह रोगी आगही अपना उपचार करनेलगे तब शीघ्र ही मृत्युको पावता है इसी कारण से शुभ उपदेश और विद्या का फल भी अधिक है इसीपर महापुरु ने भी कहा है कि जो पुरुष यथार्थविद्याको समझा होवे और उसके अनुसार उसकी कर्तृति भी होवे बहुरि और लोगों को भी उपदेश करे तब उसकी अवस्था महाउत्तम कही जाती है सो किसी को उपदेश करना भी एकान्तमें नहीं होसका ताने प्रसिद्ध हुआ कि किसी को उपदेश करना और किसीमे कुछ उपदेशलेना यह दोनों एकान्तमें नहीं सिद्ध होसके पर उपदेश करनेका अधिकारी वह है जिमकी मत्तसा निष्काम होवे और मनवान् के प्रयोजन रहित होवे बहुरि विद्याभी बड़ी सिखावे जिग करके धर्मकी प्राप्ति होवे और जित्नासुके अधिकार अनुसार उपदेश करे पर तब वह विद्याभी प्रमार्थ की युक्तिसे अङ्गीकार न करे तब जानिये कि वह भी मानके निमित्त ही पढ़ता है तावे जित्नासु को यही उपदेश करना योग्य है कि उत्तम पवित्र नाई हरष की शुद्धता है सो हृदय तबही शुद्ध होता है जब गायिक पदायोसे विकृत होता है ताने सर्व मन्त्रोंका बीजमन्त्र यही है कि स्थूल पदार्थ सब नाशकम्ब है श्री भार

सर्वदा सत्यस्वरूप है ताते सर्वप्रकार में हारा जहाँ का काम हुआ चाहिये और और किसी पदार्थ में सक्त न होवे काहेसे कि जो पुरुष अपनी वामनभिः बध्यमान है वह अपने वासनाही का दास है और उसने यथार्थभेदको समझा नहीं ताते यथार्थभेद यह है कि मलिन स्वभावों से मुक्त होना और उत्तम स्वभावको ग्रहण करना और उत्तम विद्या विषे जिसकी प्रीति न होवे और नानामकारके प्रवृत्ति मार्गोंकी विद्या पढ़ना चाहै तब जानिये कि यह विद्यार्थी धन और मानके निमित्त विद्या को पढ़ता है ताते उसको पढ़ावना प्रमाण नहीं काहेसे कि उसकी विद्या विघ्नोको कारण है तात्पर्य यह कि मनही इस पुरुषका परममित्र है और मन सर्वदा इसको दुःखोंमें डालना है पर जो पुरुष मनको विरुद्ध और विपरीत करके जीतनेको यत्न नहीं करता और और पन्थों के बाद विवाद और विरुद्ध विषे आसक्त होता है तब ऐसे जानिये कि उसका मनही उसको नेचावता है वही इसके हृदय में जो मलिन स्वभाव है जैसे ईर्ष्या अभिमान दम्भ धनकी प्रीति आदिके जितने अवगुण हैं सो इस जीवकी बुद्धिको नाश करनेवाले हैं और हृदयको भ्रष्ट करदेते हैं पर जो पुरुष ऐसे स्वभावोंके दूर करनेको यत्न न करे और प्रवृत्तिमार्गकी क्रिया को सावधान होकर वास्वारे विचार करे तब किस प्रकार निर्मल नहीं होता ताते जिम पुरुषकी मनसा निष्काम न होवे तब उसको विद्या पढ़ावनी ऐसी है जैसे कोई पुरुष किसी चोरको तलवारदेवे चहुरे जब इस प्रकार कोई पुरुष करे कि तलवार तो चोरको शुभमार्ग में नहीं लगावती पर विद्या को पढ़ना ऐसा है कि यद्यपि इसकी मनसा सकाम होवे तो भी विद्या के बल करके अकस्मात् निष्काम होजाता है तब इमका उत्तर यह है कि नाना प्रकारके मतों और पन्थोंकी जो विद्या है सो इस विद्याकरके रुदाचित् निष्कामता नहीं उपजती कहिसे कि जिस विद्याकरके निष्कामता उपजती है और भोगोंसे मुक्त होता है सो विद्या सन्नजनों के वर्तन है और यह विद्या ऐसी है कि सर्व मनुष्योंको अधिकार है और सब किमीको लाभदायक है और जब कोई पुरुष फेरोचित होवे और उसकी मनसा मलिन होवे तब वह पुरुष अरुसात् लाभ से अपास भी रहता है पर जो पुरुष इम उत्तमविद्या का ज्ञाना है और वह अपने हृदयमें कुछ अभिमानकी आभिलाषा देवे तब उसको चादिये कि किसी को उपदेश न करे काहेसे कि यद्यपि उपदेशकाके और मनुष्योंको गुण होना



दोस्र साजकी जामिकता कुरके उसको अगवत की ओरसे वचगुण होजाता है  
 तब इसका दशन सवसे कि जैसे दीपक के रिके गदि। ओतो प्रकार होता है पर  
 वह दीपक क्षणक्षण विप्रेषण जाता है जैसे ही सानी के उपदेश को के ओरों  
 को गृण दोषो पर उपकी साजहाति म्। कुछ जवाप उस कि को नही ओर बिदि  
 देनी जामिके इसीसा एरु सतने कह है कि नोने सति सवके पोषियों के सव  
 में सव सदिसे ओर उपदेशो गो। को नदी कि या जत्र कि सीने सुखा कि साप  
 उपदेश क्यो नदी कसे जव उन्को कहे कि मेरे इदममें जव मोन क्। सने की  
 अशिजाप दोती तव सुरु दो उपदेश करुता प्रमाणसा पर मो अरतो इदममें  
 पदेश करने की असिताप अधिक देववाहुता जे उपदेश करने को सतापिक के  
 मने मोनकी अकी।। कि सा है इसी पर एक सतने एक निजाम से कदापि  
 कि तेरी सस्ता जे उरस है पर जव उरसको सत्याभी श्री निज दोषी तव सतो  
 पूजा कि सम्रा के सा ससेरी प्रीति सवो सव है इरि सत सतने कदा कि जगत् के  
 मिलाप ओर उपदेश करने की तिते तो अधिक उचि है तव सता निजामने कहे  
 कि मने सव इममे जामो को उपदेश करने का त्याग किया तात्पर्य सव है कि  
 विद्या का पढते ओर सादते दास इति का मी, कोई खिरवा होता है ताने अधिकारी  
 विना विद्या के। पदावना ही साप है ओर पदावना भी सती के प्रमाण है जिमको  
 अपने का उरस प्रोजनाना है के तव से सव उपदेश करुते वतो को स कान्त रखने  
 से उपदेशना काना निशे सव उपदेश सुनने ताने को इम प्रकार चाहिये है  
 कि उपदेश करुते वल्लेपर दोपदकित जामे ओर ऐसा जाने कि यह सुकरी  
 मेरे कथापके निमित्त उपदेश करुता है अपने माने के निमित्त तदी करना से  
 अपने कथापके निमित्त सप्रार्थ उपदेश को सही करु करे ओर सवके ऊपर  
 भावता सुखको पर निमक इदम सलित होता है वह ओरों पर भी भावता  
 गनि र सता है ओर उपको भी सती नारी जलना है । वृद्धि इम सा सता म  
 है कि जीवों को प्रपत्तना पडना वनी भी संगति कके प्राप्त होती है काइसे पि  
 जिम सुसने स कान्त को प्रदण किया है वद कि प्री की सता नही कापसा ओर  
 जो प्रस कि प्री को सता कके प्रपत्तना व इमको प्रपत्तना पडती है  
 वदुरि नीपरा लाभ यद है कि सदन शक्तिता नादिक निवने गुय है तो यदगी  
 सगति विने प्राप्त होवे न काइसे कि निम सुकसा मि वारही कि सीके साथ न

होवे वह सहनशीलता किस प्रकारके पर जिज्ञासुको सहनशीलता और धैर्य आदिक गुणगुण अपश्यर्मही चाहिये हैं और अधिक लाभदायक हैं इम करके कि इम पुरुष की स्वभाव तबही मना होता है जिन दुष्टों के वचनों को सहता है इमी कारणमे जिज्ञासु जनोंने भिक्षा आदिक कर्मोंको अगीकार किया है और ऐसी क्रिया करके प्रथम तो अभिमान दूर होता है दूसरे जोगों के ताड़ना और दुर्वचनों को सुनकर क्षमा और सहनशीलता की वृद्धि होती है सो यद्यपि इम समय में लोगों की कामना धन और मानके निमित्त होती है पर पहिले जिज्ञासु जन इमी मनोरथ से सग करते थे कि जिम से अभिमान दूरे और मन्तों की सेवा करके कृपणा भी दूरहोवे और उनकी अशीपको प्राप्त हों और आदि अवस्था में महापुरुषों ने भिक्षा आदिक कर्म इमी कारण करके प्रमाण किये हैं काहे से कि जिगका स्वभाव सहनशील नहीं होता वह लोगों के वाद विवाद में आसक्त हो जाना है तात्पर्य यह कि क्षमा और सहनशीलता जो जिज्ञासु के धर्म को दृढ करनेवाली है निमको एकान्त विषे पाय नहीं सका पर जो पुरुष किसीका वचन सह त मके उसको एकान्त में रहनाही मना है और जो पुरुष नितिक्षा भिक्षा आदिक और मन्न सेवा करके भनी प्रकार कचु हावे और तिम करके निरभिमानता और सहनवादिक गुण पायचुकाहे निमको भी एकान्तही रहना योग्य है काहेमे कि नितिक्षा आदिक मायनों मे यह प्रयोजन नहीं है कि सदा दुःख और कष्टही उठावे जैसे औपय मे केवन कटुता प्रयोजन नहीं और रोगकी निवृत्ति होना उसमे प्रयोजन है जब रोग सर्वप्रकार दूर हुआ तब औपयों की कटुताका कष्टमहना व्यर्थ है इमी प्रकार सब माधनों से श्रीगणवत् पदारविन्द में प्रेमसक्ति की प्राप्ति प्रयोजन है और जो पदार्थ सक्तिके वापर से तिनका दूर होना जिस करके निर्विघ्न और निश्चिन्त महागजके स्मरणमें परायण रहे वृत्ति जो पुरुष उपदेश करनेवाला है निमको भी एकान्त रहना प्रमाण नहीं सो जैसे जिप्पको श्रीगुरुकी भगविका त्याग जाति म जयोग्यहै नेमेही गुरुकी भी जिज्ञासु आ के नियोग करके एकान्त रहना प्रमाण नहीं पर भिन्नाय में भी जब धर्म और मानका आवरण न हावे तबही गरी भगविका स्मरणमे निजेष है व वृत्ति योग्य लाभ यह है कि जाना प्रमाण मगर और मरुत्त भी भगविका करके दूर होने हैं काहे से कि जब यह पुरुष एकान्त में भियन दाना है तब

है। पर मांज की प्रतिकृता करके उसको आगवत् की ओर ले, अथवा जो जातो है  
 तब नई प्रकार बंधन तब के कि जो से दी प्रक करके मदि रोगी को प्रकाश होता है। पर  
 वह ही प्रक क्षण क्षण विषे विदना जंत है। ते मे ही सार्वी के उपदेश करके और  
 को सुपदेशे पर उचकी सी अवाति कर कुर्वा प्रपास उस करके नदी और ही  
 दोती। जती के इसी पर प्रक संतने नई वि कि जो ने सति। सडके पोषियों के सन्ने  
 में प्रक प्रदिने जो स उपदेशे को गो को नदी कि यत्न वि कि सी ने प्रक कि साप  
 उपदेशे क्यो। प्रदी कले जत तत्रो के महा कि गो से इतय में तत्र मोन कर इने की  
 अथि ला प दोती। तत्र स क के उपदेशे कर ना प्रमाण सा अर मी अपने। इतय में वी  
 पदेशे कर के की अमि ताप हा कि क है स मह ही के उपदेशे अने को इतय का के  
 में ने मोन के अही न। इ कि सा है इसी पर प्रक जत न के एक निवा स से क हा प्रा  
 कि तेरी अस्त्या तबे उल्लभ है पर जत इतको साया की सीने न ही नी तप उषने  
 प्रक कि सम्रा के साय से री प्रिति अ पें क्य है उड वि वि त संतने क हा न स जगत् के  
 मिल म जो अदेशे कि ले की तिरे में अथि क री नै इत त संसा ति वा सा ते क हा  
 कि में ने अत्र इ म ने अगो को उपदेशे कर के का द्या गु किय वा अ पें म डे कि  
 विद्य की पद के जो अ पदा ते इतर इति क र्म कि को र्द विर ला जो ता है ता ते अथि का री  
 विना विद्य क का अ द वा न ही साप है जो उप द वा न ही अ ही को प्र सा प है नि स को  
 अपने स ड क प्र सो ज त न हो तो तत्र प्र से उप देश इ क ने वा ले को र क द न इ ने  
 से उप देशे क्य क र्ना न त्रि य म वे स म उप देशे स न ते वा ले को इ स प्रकार वा दिये है  
 कि उप देशे क्य ते वा ले पर दो प द कि न स्वा ये और पे स ज न के कि यह स क को  
 मे न क र्वा प के नि मि स उप देशे क र ता है अपने मान के नि मि स त ही क र ता सो  
 अ म ले क र्वा प के नि मि स त्र या य उप देशे क को अ ही क र करे और त्र स के ऊ र  
 भा व ता अ ज को प नि स क इ द म अ लि त होता है यह ओ री पर सी भा व ता  
 ग लि न र्वा त ही और उ म को भी स ती न र्द न ज ता है इ व ड दि द म रा ल म स र्द  
 है कि जी वों को म प ड वा प ड ता त नी सी स ग ति क के प्रा स हो ती है का हे से न हि  
 जि स ए क प ले ए क न्त को म ड प किया है त ह कि सी की से म त ही का म का और  
 जो पुरुष कि सी के से त्रा क र के प्र स न क र ता है उ म को प्र स व ता प ड त ती है  
 व ह रि ती स रा भा य इ है कि स ह त शी त ता आ दि क जि व ने गु य व ह तो य द मी  
 स ग ति विषे प्रा स हो वे ल है का हे से कि जि स पुरुष का मि वा प ही कि नी के सा प न

होवे वह सहनशीलता किस प्रकारके पर जिज्ञासुको सहनशीलता और धैर्य आदिका गुणगुण अर्थमें ही चाहिये हैं और अधिक लाभदायक हैं डम करके कि इस पुरुष की स्वभाव नहीं भला होता है जिव दुष्टों के वचनों को सहता है इसी कारणमे जिज्ञासु जनोभे भिक्षा आदिक कर्मोंको अगीकार किये है और ऐसी क्रिया करके प्रथम तो अभिमान दूर होता है दूसरे लोगों के नाइना और दुर्वचनों को सुनकर क्षमा और सहनशीलता की वृद्धि होती है सो येद्यपि इस समय में लोगों की कागना धन और मानके निमित्त होती है पर पहिले जिज्ञासु जन इसी मनोरथ से सग करते थे कि जिम से अभिमान दूरे और मन्तों की सेवा करके कृपणता भी दूर होवे और उनकी अर्शापको प्राप्त करें और आदि अवस्था में महापुरुषों ने भिक्षा आदिक कर्म इसी कारण किये प्रमाण किये है काहे से कि जिमका स्वभाव सहनशील नहीं होता वह लोगों के बाद विवाद में आमका होजाता है तात्पर्य यह कि क्षमा और सहनशीलता जो जिज्ञासु के धर्म को दृढ़ करनेवाली है निमको एकान्त विषे पाय नहीं सका पर जो पुरुष किसीका उचन सद्र त मके उसको एकान्तमें रहनाही भना है और जो पुरुष नितिक्षा भिक्षा आदिक और मन्न सेवा करके भनी प्रकार कर्तु है और निम कर्के निरभिमानता और सहनतादिक गुण पायचुकाहे निमको भी एकान्तही रहना योग्य है काहेमे कि नितिक्षा आदिक मायनों से यह प्रयोजन नहीं है कि सदा दुःख और कष्टही उठावे जैसे औपम्य में केवल कटुता प्रयोजन नहीं और रोगकी निवृत्ति होना उभमे प्रयोजन है जब रोग मर्त्ररूप दृष्ट हुआ तब औपम्यो की कटुताका कष्टमहना व्यर्थ है इसी प्रकार मत्र माधनों से श्रीगणपत् पदारविन्द में प्रेमभक्ति की प्राप्ति प्रयोजन है और जो मन्त्र भक्तिके वाचक है निमका दूर होना जिस करके निर्विघ्न और निश्चिन्त महागजके स्पर्णमें परायण रहे वरि जो पुरुष उपदेश कर्मेवाला है निमको भी एकान्त रहना प्रमाण नहीं सो जैसे गिष्पकी श्रीगुरुकी मगनिका त्याग आदि म अयोग्य है नमेही गुरुको भी जिज्ञासु जो न नियोग कर्के एकान्त रहना प्रमाण नहीं पर मिताय में भी जब दम और मानका आवरण न हावे नहीं पर भी भगवि एतानमे नि शेष है ३ वरी चौथा भाग यह है कि नाना प्रकार क मगर और मरुत भी सगति करके दूर होने हैं काहेमे कि जब यत्र पुरुष एकान्त में स्थित होता है

अर्थात् एते संकेत उत्पन्न होते हैं कि उनके करके भगवद्भजन में पद गढ़ना है मो वे सशय आप करके दूर नहीं होते ताते उनके दूर करने का उपाय सात्त्विकी मनुष्यों की संगति है इसी पर एक सन्तने कहा है कि विचित्र सुखना सात्त्विकी संगति करके होता है काहे से कि इमो मनका प्रेमादी स्वभाव है कि जब इसको एकही क्रिया में स्थिर करिये तब शून्यता करके अन्व होजाती है वद्वरि सात्त्विकी संगति में जब पहुँचता है तब वद्व शून्यता दूर होजाती है इसी कारण से चाहिये कि तित्यप्रति किसी सात्त्विकी मनुष्या की संगति किये नवृत्ति उससे अपना अवगुण प्रकट करके रहे और जीविका आदिक क्रियापृच्छये तों भला है पर अचेत मुरूप की संगति एक नहीं भी वृत्ति है काहे से कि सारे दिन मर में अभ्यास करके जितना हृदय निर्मल होता है वद्व निर्मलता सुखोरी संगतिसे दूर होजाती है इमी पर महापुरुषने भी कहा है कि जत्र यही पुरुष प्रीति मनुष्यके साथ प्रीति करता होवे तत्र चाहिये कि प्रथम ही इस प्रकार विचार करे कि मैं इसके साथ किस गुणके निमित्त प्रीति करता हूँ, ४. तद्वृत्ति पाँचवाँ लाम यह है कि परस्पर भावाभ्योः प्रीति की रीति भी संगति में प्राप्त होती है और जो पुरुष एकान्तमें स्थित रहना है वद्व सात्त्विकी मनुष्यों की प्रीति और भावस्वी लामको नहीं पात्रता ५ वद्वरि, छठवा लाम यह है कि लोगों के मिलापे और जन की नाई वर्तने करके दीनता और नम्रता प्रकट होती है और एका नाकके वि चमें अभिमानकी वृत्ति फुाती है अथवा सोगी होता है कि कियने पुरुष स्वामी होने के निमित्त ए कान्त को अङ्गीकार करने दे ताते किमी महापुरुषके दर्शन को भी नहीं जाने और ऐसे ही चाहते हैं कि लोग हमारे दर्शनको आत्रे सो ऐसा अभिमान महाभ्योग्य है इमी पर एक वार्ता है एक नगरमें कोई एा बुद्धिमान् हुआ था कि उस ने तीनसौ साठ ग्रन्थ पताये थे और ऐसे ज्ञाननेत गा कि मैं गगन्नतके निकट प्राण हुआ हू तब उसको आकाशवाणी हुई कि तैने आपको जगत्में प्रकट किया है सो मैं इम वडाई को प्रमाण नहीं करेना तब वद्व बुद्धिमान् इम वचन को सुनकर सब त्यागकर एकान्त में रहने लगा और ऐसे जाना कि अज मेरे ऊपर भगवत् प्रसन्न हुआ है वद्वरि आकाशवाणी हुई कि मैं तेरे ऊपर अब भी प्रसन्न नहीं हुआ काहे मे कि अब भी तैने आपको स्वामी बनाया है तब वद्व बुद्धिमान् एकान्त को त्यागकर बाहर जाया और सान्निध्य

आदिक लोगोंकी नाई र्त्तनेलगा ओर अभिमान से रहित होकर समान भवे  
 विवे स्थित हुआ तब आकाशवाणी हुई कि अब तू मेरी प्रसन्नताको प्राप्त हुआ  
 है तात्पर्य यह कि जिस पुरुषकी मनमा मन्नाम है और एफान्तको इस कारण  
 आगीमास किया है कि लोगोके मिलाप करके मेरा मान घट जावेगा अब वा मेरी  
 विद्या ओर करतूतके छिद्रको कोई देखलेगा तब ऐसे जीना जाता है कि उसने  
 अपने छिद्र द्वारावने के निमित्त एकान्तरूपी परदा डाला है काहेसे कि उसको  
 निस्प्रति गही अगिलापा दृष्ट होती है कि लोग मेरा आयकर दर्शन करें और  
 मुझको दग्धवत् करें सो ऐसा एकान्त रहना केवल दम्भ है ताते चाहिये कि  
 जब यह पुरुष एकान्त विषे रहे तब मंजनी और विचारमे किसी समय भी  
 अर्धत न होवे अथवा विद्या और पाठमें चित्तको लगावे बहुरि जिस पुरुषकी  
 संगति में कुछ धर्मका लाभ होवे उसको संगतिके और प्रीतिरहित मनुष्य जो  
 मृतकी नाई है तिनकी संगति को न लाई इसी पर एक वार्त्ता है कि कोई  
 पुरुष बुद्धिमान् एक सन्धके निकट आकर कइनेलगा कि मैं तुम्हारे दर्शन  
 को शीघ्र नहीं पहुँच सका हू ताते मैं अपनी अवज्ञा क्षमा करावता हू तब उस  
 सन्धने कहा कि तू इस वार्त्ताको अवज्ञा न जान काहे से कि जैसे और पुरुष  
 लोगोके मिलने को उपकार जानते है तैसे मैं न मिलनेवाले का उपकार मा-  
 ननाइइमकरके कि मुझको सर्वदा काल के आवनेकी चितवनी रहती है ताते  
 मैं और किमी के आवने और मिलने की चाह नहीं करता इस करके प्रसिद्ध  
 हुआ कि मान और दम्भ के निमित्त एकान्त रहना बड़ी मूर्खता है काहे से कि  
 जिज्ञामुको ऐसे चाहिये कि यह अपने मनमें विचारे कि मेरा कार्य किमी  
 मनुष्य के हाथ नहीं और सबलोग पराधीन है बहुरि या भी है कि जब यह  
 पुरुष महाइकी कन्दरामें जायेगा तौ भी दुष्ट मनुष्य याही अनुमान करेंगे कि  
 यह दग्धकी के निमित्त कन्दरामें स्थित हुआ है और जो कोई पुरुष महाअशुभ  
 स्थान विषे जावे तौ भी सुहृद मनुष्य ऐसे जानते है कि यह भ्रमतिना पुरुष  
 था जो लोगोके द्वारावने के निमित्त येमी टों म गया प्रेमा तात्पर्य यह कि  
 सब लोग दो प्रकारके होते है एक मित्र दूसरे शत्रु से जो इनको मित्रके गो  
 सर्व कार्यो य इमके ऊपर मन्ता अनुमान रन्ता है और जो शत्रु होना है वह  
 सर्वदा दोषदृष्टि रखता है ताते जिज्ञामुको जिसप्रकार चाहिय है कि अपने चित्त

की वृत्तिको परमधर्म की दृष्टि में सावधान करे और लोगोंके अशुभ वचनों की शोर सुरति न राखे इसी पर एक वार्त्ता है कि एक सन्तने अपने जित्नासु मे किमी कार्य के करने को कहाथा तब उमने कहा कि लोगोंके भय करके इस कार्य को नहीं कर सकाहू वह सन्त कहनेलगे कि जबलग जित्नासुको दो अवस्था न प्राप्त होवे तबलग यथार्थ भेदको नहीं पहुँचसका सो प्रथम अवस्था यहहै कि इस पुरुषकी दृष्टि से सब जगत् नष्ट होजावे और भगवत् विना कुछ और न देखे और दूसरी अवस्था यहहै कि जब इसका मनीस्रजावे ताते जिस प्रकार जगत् इसको कुछ कहे तब इसके त्रिचमें ग्लानि कुछ न आवे और मान अपमानका भय कुछ न रहे बहुरि एक और सन्तसे किसी ने कहाथा कि कितने मनुष्य जो तुम्हारे वचन सुनकर बाहर जाते हैं तब निन्दा करने लगते हैं तब उस सन्त ने कहा कि मेरे त्रिच की वृत्ति तो परमपद के पावनेकी और लगीहुई है ताते मुझको लोगोंकी निन्दा का भय कुछ नहीं है और जिम पुरुष ने लोगों की निन्दा और स्तुतिकी अभिलाषा का त्याग कियाहै वह मुक्तरूप है ताते जित्नासुको निन्दा और स्तुतिकी ओर सुरति देनाही अयोग्यहै काहेसे कि जगत् की निन्दा से रहित नहीं होसका अब इस वचन के निर्णय में मैंने एकान्त और मिलाप के गुण और दोष वर्णन कियेहैं ताते जित्नासु इस वचन को सुनकर प्रथम अपने अधिकारको विचारे बहुरि जैसा इसका अधिकार होते तैसीही वृत्तिको अंगीकार करे ॥ अथ प्रकटकरती युक्ति एकान्त रहनेकी ॥ ताते जान तू कि जन यह पुरुष एकान्त में स्थितहुआ चाहे तब प्रथम ऐसी मनसा करे कि मैं एकान्त को इस निमित्त अंगीकार करताहू कि मेरे वचन और कर्म करके किसी को खेद न पहुँचे और जगत्की उपाधिसे मैं भी दुःखी न होऊ बहुरि सर्वानजालोंसे मुक्तशुकर भगवद्भजन में सावधान होऊ तातेपर्य यह कि एकान्ती पुरुषको भजन और विचार विना रहना किमीसमय प्रमाण नहीं जयथा विद्या और शुभ करतूतोंमें दृढहोवे बहुरि लोगोंके मिलापकी अभिलाषा करनीभी उमको अयोग्यहै और प्रयोजन विना किमीमे नगरकी वार्त्ता भी न पूछे काहेमे कि यह मनुष्य जैसी बात सुनताहै तैमाही मस्काग उसके हृदय में दृढहोवाहै फिर भजनकी एकत्रता में वही मन्कल्प फुलने लगनाहै और एकान्त रहनेका प्रयोजन यहीहै कि सब सकल्पोंका निरोध होवे ताते एकान्तीको चा

दिये कि आहार और वस्त्र का समय रात्रि का है, मे कि जन्तुगण्यहा पुरुष संयम  
 को अगीकार नहीं करता। तब वंग लोगों की पगधीनता मे नहीं छूटना बहुरि  
 जब कोई इसको धर्मेन अथवा कर्म काके दृ व देवे तो भी सद्गुणशिलना करके  
 उसको क्षमा करे और अपनी स्तुति और निन्दाकी श्राणान करे और धर्मकार्य  
 में सावधान रहे। काहे से कि जब अपनी स्तुति और निन्दाकी ओर सुगति देना  
 है तो भी उसका समग्र व्यर्थ होता है और एकाग्र रहते का प्रयोजन यह है कि  
 इस समय में यह पुरुष अपने उत्तम कार्य की सिद्ध करनेवे ॥ ॥

पाचवां सर्ग ॥

॥ तर्तु जीर्णतु कि राजनीति करनी भी महा उत्तम है और जो पुरुष विचार  
 संयुक्त राज्य विषे वर्तता है वह भगवत्की निकटवर्ती हीना है पर जो पुरुष राज्य  
 में धर्मकी मर्याद को त्याग देता है वह अपने मनकी वामना को दास है उमे  
 को महाराजकी ओर से थिंकार होती है काहे से कि मर्ष उपायोका मून धर्मही  
 राजा है और धर्मरिमा बही होता है जिसको विचारकी बुद्धि होती है और उमे  
 का स्वभाव सारिचकी होता है सो राजनीतिकी विद्या भी धिया है और इस  
 विद्याकी तात्पर्य यह है कि प्रथम वह राजा इस भेदको जाने कि मैं इर्ष जंगत्  
 में किस कार्य मे निगित आया हू और किस अवस्था विषे जाऊंगा और यों  
 भी जाने कि यहा में परदेशी हू और यह ससार एक भजिल है ओ ॥ इस भजिल  
 की आदि तो पारना है और अन्न गमगान है बहुरि तिन माम वर्ष मार्ग के यो-  
 जन और क्रोमद सो इस प्रकार काल धीतने करके सर्वदा में परलोकके निकट  
 पहुँचता जाता हू बहुरि जिस स्थानमें मुके जाना है वह स्थान इस मसारकी जा-  
 प्रत्से भिन्न है तति जैसे किमी पुरुषका मार्ग पुलों के ऊपर होवे और यह पुरुष  
 सारादिन पुलके घनावने में लगारहे और अरने मार्गकी मजिन को विमारदेवे  
 तब वह महामूर्ख कहा जाता है तैमेही यह संमाररूपी पुल है सो जो मनुष्य मूर्ख  
 होता है वह इस मसारके कार्यको सम्पूर्ण किया चाहता है और जो पुरुष बुद्धि-  
 गान है वह और निसी कार्य की ओर सुरनिही नहीं देना और मर्ष परलोक  
 मार्गके तोगे को बनाया चाहता है और मायाके पदायोको कार्यमात्र अगीकार  
 करता है और कार्यमात्र से अधिक जो गोग विनाम है तिसरी विपकी नाई



जानता है और यों समझता है कि जितना सोना चांदी फोड़े इत्यादि कामों में  
 मृत्युके समय सेव खजाने भस्म हो जायेंगे अथवा यह कि किसी कापाने आवेने  
 जीम अस्तकील में विचि की उनके विधोपकार दु स प्राप्त होवेगा तबाने सोपाकी  
 सर्व मातामी का भार यह है कि जिमके रोजगी रक्षा वीनपाने आदि क कार्य विद  
 होयें और इमसे अधिक रमव सांगयी एपर जे सापा और छे वों को बीज है परापदाओं  
 के वियोग का और परवाचाप का जो हु वडे तिसके शुभ शेरहितभी शुद्ध और  
 पापसे रहित गायो का सर्वने करके हीना है और जो पुरुष पापसहित मायाकी जो  
 इता है उसको परलोक में भी ताड़ना होय है और तमोगुण करके जिसके धन  
 को हरा है उसका श्रणी रहता है और यह जानता निरुमदेह है कि इठ और पुरुष  
 श्रेष्ठिता किसी प्रकार ओ तों से रहित नहीं हो सका जिस पुरुषकी सूती नि और  
 बुद्धि दृढ़ होती है वह ऐसे प्रसक्त है कि सहज न्द्रियादि कभी गच्छकाल पीछे  
 सकृद्विरस होजायेंगे और अथ भी ह्यारूप है तद्विराजो के क सुख जो भारग  
 रुद्रस्य है तद्वसर्जना सुरा नन्दस्वरूप है और सुखी भादगा श्री है और सत्र विमो  
 रहित है तो जिस पुरुषकी प्रतीति दृढ़ होती है उसको ओगों का स्वार्गना संगम  
 होना है और इसका दृष्टान्त यह है कि जिसे किसी पुरुषका कोई प्रियतम दोने और  
 उस पुरुषसे इस प्रकार कहिये कि जो तू अब एक रात्रि मरी च्यंतो प्रियतमके मिलाप  
 का त्याग करे तो सर्वदा तू प्रियतमने स्या सुदी रहेगा और तेरा मिरोधी भी कहीं  
 न होवेगा सो प्रत्यपि उस प्रियतमके माथ उस पुरुषकी प्रीति ध्वजि कदोनी है तो ही  
 एक रात्रिके मिलने के त्यागते में कुछ लेखन ही आता और निरुप मिलानकी  
 आशुकरके उसको सुखसहित भोगता है तैमदी बुद्धिमान पुरुषको ऐसे समझना  
 चाहिये कि प्रथमतो इसलोकमें आयुष तुच्छ मात्र है दूसरे जितने मोक्षपापदाय  
 हैं बुद्धि क्षण क्षणमें परिणामी होते जाते हैं और आत्माका आनन्द प्रसाद है कि  
 उस सुखका कदाचित् अन्त नहीं आता और जिम सुखका अन्त ही ज्ञानी होने  
 विप्रकाशमाण रूपों के स्वर्णन करिये और इसमें तेषकी आयुष का समाप्य हो  
 मोक्ष का है और कदापि इससे अधिक होये और उदय स्वस्व पर्यंत निष्करोक  
 यज्ञको भी पाजिये तो भी आती सुख जो अन्न न है तिमकी अपेक्षा करके सह  
 आयुष और सुख सब तुच्छ मात्र है बहुवि जप किमी को इमासत्रके सुख और  
 लक्ष्मी मोक्ष सर्वदा भी प्राप्त होये तो भी तमहागलिन और विरम है कहिये कि

यह सब सुख हितों के साथ मिले हुए हैं। तब तो ऐसे ही साक्षात् रूप में प्रकट हो जाते हैं।  
 तब सुख को त्याग कर इन्द्रियादिक सुखों में जो मद्रामलित हो आसक्त होना बड़ी  
 मूर्खता है। ताते, धर्मात्मा राजाओं सुख के भोगियों को इस वृत्ति को सर्वदा संग-  
 र्भना चाहिये। सो जव ऐसी सभकी करके भोगों में ही रहित हो प्रोत्सव उन को म-  
 र्जनीति और पूजा को सुखी रखना और जीवों पर दया करनी सुखमहीने और  
 रज्या करनी सबी को गुणार्ण है। जिसको सन्तो के बचनों की सुसंस्क होवे और  
 माया के पदाओं की वृष्णा न होने का है। कि प्रमम और नीति संहितारूप  
 करने की मंत्र जप और सुख में जीवित मगवत् प्रियत मारखते हैं। इसी प्रमदा पुरुष  
 ने भी कहा है कि एक दिन विचार की मर्मदा संहित न्यायों करिता सति वर्ष के  
 तप के विशेष है और यो भी कहा है कि धर्मात्मा राजा पर लोक सन्तपति विपे-  
 गमवत् की स्यात्तले शीतल बहैगी और धर्मात्मा राजा भीमवत् का भिमवत् है।  
 और धर्म हीत। मगवत् से निर्मुक्त है। वह हरि महापुरुष त मगवत् की तुहई देखी  
 कहो है कि धर्मात्मा राजा को सब पूजा के भेजत का कल्प द्योता है। और जो यह  
 प्रकार मगवत् की नाम लेता है तो उसको सहस्रतमका फल होता है। सो जव  
 सजनीति मगवत् मालाम दृ आस्तव चाहिये कि बह राजे मगवत् में उपकार को  
 जाने और धर्मा से निर्मुक्त होवे और जव हम उप कल्प का जन्म ही होकर भ-  
 नीति भिने वर्त और अपने मन की वासना का दोष द्विपे वव दुर्गों का अधि-  
 करों होता है तब तो राजनीतिके धर्म की कुञ्ज युक्ति प्रावर्णन कल्पनाह मो भ्रम  
 युक्ति है कि भेसे दुःख और अपमान आपको भला नहीं लगना नैमे ही मव  
 विद्वानों से राजा की रक्षा करनी प्रमाण है और जव ऐमे न करे तब राजा धर्म से  
 भ्रष्ट होता है इसी पर एक वाच्य है कि एक वरि महापुरुष ध्यायन ले वेडे थे और  
 और लोग धर्म में वेडे थे। तब महापुरुष को लोका काशवर्षी दुई कि तुमको ऐसी  
 वेडना प्रमाण नहीं तात्पर्य यह कि इस विचिन्माय धर्म की भी ताड़ना दुई ताने  
 चाहिये कि मना जिम वान गं आपा प्रमन्न न होवे उंसको प्रजा के करमी प्र-  
 माण न करे और निम राजा की मनमा ऐसी निष्काम न होवे बह राजा धर्म-  
 हीन हो। उह गि हमरी युक्ति यह कि धर्मा की नीच दृष्टि न देवे और उस के  
 दु पी दाने मगवत् होवे और यद्यपि उत्तममस फलानिगम अथवा जाप करना  
 होवे तो भा उस नियमको छोड़ कर अधी के मनोरथको पूर्ण करे कहे थे कि प्रथी।

को अर्थको पूर्ण करना सब नियमों से विशेष है इसीपर एक वार्ता है कि एक महा धर्मात्मा राजा था सो एकवार सारे दिन पूजाके कार्योंको करके विधाम करनेके अर्थ जब चारवई दिन रहा तब गृहमें जाकर शयन कर रहा तब उस राजा का पुत्र आकर कहने लगा कि हे पिता ! तुम अत्रिन्न होकर क्यों सोय रहे हो मैं तो इस वार्तासे अधिक भय मानता हू कि मत अत्रिनी कल आकर तुमको मारनेवे और कोई अर्थ तुम्हारे दरबारपर अपाप्त रह जावे और तुम उससे अप्रेतर हो तब राजाने कहा कि हे पुत्र ! तू सत्य कहता है बहुरि तब राजा उसी समय उठ खड़ा हुआ और प्रजाके कार्योंमें सावधान हुआ । तब द्वारि तीसरी युक्ति यह है कि अपने ऊपर अधिक भोगों का स्वभाव प्रचलान करे और खानपानी आदिक विषे समयमहित बने कहिये कि जब राजा समयरहित होकर अधिक भोगों विषे वर्तता है तब उससे धर्मकी मर्याद नष्ट होजाती है इसीपर एक स्वर्गात्मा राजाने किसी अपने मन्त्रीसे पूछाया कि तुमने मेरा कोई अविगुण सुना होवे सो कहो तब उसने कहा कि तुम रात्रि और दिनका पोशाक भिन्न भिन्न रखने हो और भोजनार्थों तरफारीके साथ खाते हो तब उन्होंने कहा कि मैं फिरा अब यह भी न करूंगा तब द्वारि चौथी युक्ति यह है कि यथाशक्ति सब काम्योंको दयाभयुक्त निर्वह करे और कोय तबको जब कोई ऐमाही कठिन कार्य होवे जो बिना कोष किये उसमें निर्वाहान हीवे इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि प्रजाके ऊपर निम राजाकी सर्वदा दया होती है जिसके ऊपर सगवर्गों दया करता है और योंभी कहा है कि तबही राज्य करना भला होना है जब धर्म की मर्याद के अनुसार होवे और जो राजा धर्ममर्याद से भ्रष्ट होता है तब वह राज्यही उसको नरक गार्सी करता है इसीपर एकवार्ता है कि एक राजाने किसी विद्यावान् से पूछाया कि राजनीति में मुक्तिदायक धर्म कौन है तब उसने कहा कि पापरहित धनको उत्पन्न करना और यथार्थीके मार्ग में उसको लगावे तब वह राजा कहने लगा कि यह बात किसमें होसकी है तब उन्होंने कहा कि निमको नरकके दुर्गों में भय होवेगा और परमसुखोंको प्राप्त हुआ चाहेगा उसको यह कर्तुनि करना भी सुगम होगा तब द्वारि पाचवी युक्ति यह है कि हृदय से सर्वदा यही पत्र ले कि शान्तकी मर्यादके अनुसार सब प्रजा सुखी होवे और यह वार्ता प्रसिद्ध है कि राजाके निकट जो स्तुति लोग करते हैं सो प्रबन्ध हारके करने हैं और वह

जानता है कि मेरे ऊपर प्रमत्त अतिशय करके हैं ताने बुद्धिमान् राजाको इस प्रकार चाहिये कि भत्री और दूतोंके द्वारा प्रजाकी सुगति लेवे और अपनी भलाई बुगईको जाने और लोगों में सुनि सुन फर अभिमान न करे ५ बहुरि छठी युक्ति यह है कि जब कोई पुरुष दुष्ट और धर्महीन होवे तब उसकी प्रमत्तता को न चाहे कहेमे कि उनकी प्रमत्तता फाके और जीवों को दुःख होता है और यथार्थ नीति अनुनाम जब यह दुष्ट अपना होवेगा तब उसकी अप्रमत्तताका पाप राजाको स्वर्ण नहीं फगा ताने दुष्ट मनुष्यों की प्रमत्तता चाहनी और भगवत्की प्रमत्तता में विमुक्तोत्तमवड़ी मूर्खता है इसीपर एक मन्त्रने कहा है कि जो पुरुष सब प्रकार भगवत्की प्रमत्तता चाहता है तब महाराज उसके ऊपर लोगों का भी प्रमत्त कर देता है और जो पुरुष लोगों की प्रमत्तताके निमित्त भगवत्में विमुक्त होता है तो भगवत् भी उसमें प्रमत्त नहीं होना और लोगभी अप्रमत्त रहते हैं ६ बहुरि सातवीं युक्ति यह है कि राजाको सर्वदा राजनीतिका भय चाहिये पाठे मे कि राजनीति विषे यथार्थ विचरना बड़ा कठिन है ताने जो पुरुष सब प्रकार प्रजाको धर्म विषे वर्तये और सुधीरावे और आपकी र्मा में मावधान रहे तब निस्सन्देह वह राजा परमाभ्यस्त होता है और जब इसमें भिगीत होवे तब ऐसा अमागी होता है कि उसमें अधिक भाग्यहीन और कोई नहीं होना इसीपर महापुरुषने कहा है कि जब कोई भगवत्की दया चाहे तब सब जीवोंपर आपही दयाकरे और जो सना अपने तेजको चाहे वह धर्मनीति में दृढ़ होवे और जैसा धन आपकोडै तैसी करतुति करे और जब ऐसे न करे तब देवता भी उसको धिक्कार करते हैं और महाराज की ओर में विमुक्त होता है और जिस राजामे प्रजाका पालन न होवे और वह यद्यपि पूजा पाठ करनेमें मावधान रहे नौभी उसको लाभदायक कुछ नहीं होना ताने तू विचारकरके देख कि धर्म की मर्यादा से रहित होकर राजनीति का र्त्तना केनाह निड करके कोई शुभ करतुति लाभदायक नहीं होती इसीपर बहुरि महापुरुषने कहा है कि जब कोई पुरुष दोपुरुषों विषे सुधियाहोवे और विचारकी नीति माय न विचरे नौभी विचारका अधिकागी होता है और योंभी कहा है कि अधिक फाके नौ राजाही नरकको प्राप्त होवेंगे और उसमें से कोई बड़ी मुक्त होवेगा जो मया भगवत्के भय करके डगना रहेगा और विचार की युक्तिसे अज्ञात फगेगा और योंभी कहा है

कि जब कोई इस लोकमें किसी के ऊपर क्रोध करता है तब भगवत्मी उसके ऊपर क्रोध करेगा वहुरि योंमी कहा है कि जो इसे लोकेमें किसीको सुख देगा व आपभी सुख की प्राप्ति देवेगा वहुरि कहा है कि जब इस लोकमें राजा अपनी प्रजापर दण्ड करलेवे और उनकी रक्षा न करे और जो चौधरी नगर में समान भाव न धरें अर्थात् किसी का पक्षकरे किसी की सुरत न लेवे वहुरि जो पुरुष अपने सम्बन्धियों को धर्ममार्ग न सिखावे और अशुद्धजीविका काके उनकी उदरपूर्णाता करे वहुरि जो पुरुष किसी से अपना कार्य कराकर उमकी गलती न देवे सो ऐसे पुरुष सबही नरकगामी होते हैं ताते राजाको चाहिये कि सन्त जनों के वचनोंको अपना दर्पण बनावे और जो वचनोंमें अनीतिकी निंदा वर्णन हुई है तिसको समझकर सर्वदा भयवान् रहे ७ वहुरि आठवीं युक्ति यह है कि राजा सदा विद्यावान् पुरुषोंकी संगति करे और उनसे धर्मकी मर्याद पूछता है और जो विद्यावान् धनके अर्थी होवें उनकी संगति न करे काहेसे कि सकामी पण्डित राजा को प्रसन्नकरके अपने प्रयोजन को सिद्ध किया चाहते हैं और यथार्थ उपदेश को नहीं सुनासकते ताते उनकी संगतिही बुधि है और राजाका उसी विद्यावान्की संगति उम्नी प्रमाण है जो अपने प्रयोजन और राजा के मान के निमित्त यथार्थको दुरावते नहीं इसी पर एकवाच्य है कि किमी राजा ने किमी सन्त से पूछाया कि अमुक तपस्वी तुमहींही तब उन्हीं ने कहा कि अमुक तो मैं हू पर तपस्वी तूही है काहेसे कि जो अधिक वस्तु को त्यागकर अल्प वस्तु को अङ्गीकार करे उसको तपस्वी कहते हैं सो तने आत्मसुख की त्यागकर माया के सुख को अङ्गीकार किया है ताते तपस्वी भी तूही है वहुरि राजा ने कहा कि तुम्हको कुछ उपदेश करो तब सन्त ने कहा कि तुम्हको भगवत् ने धर्मके सिंहासन पर बैठाया है ताते महाराज तुम्हसे परलोक में धर्म की मर्याद पूछेंगे वहुरि भगवत् ने तुम्हको नरकों के द्वारका पँवरियाँ बताया है अर्थात् यह कि तु नरकों से प्रजाकी रक्षा करने का अधिकारी बनाया गया है ताते जो पुरुष जीविकाके निमित्त पाप करताहोवे तो तू उसको जीविका मात्र धन दे और जो कोई धर्ममर्याद से मनगत करके रहित होवे तब उसको ताड़ना करके पाप से चर्जना कर और जब कोई अपनी मजलना करके जीविका सहार करता होवे तब उसको सड्ग करके दण्ड दे और जब तू ऐसे न करेगा तब

प्रथम तूही नरकगामी होगा वहुदि राजा ने कहा कुछ और उपदेश करिये तब सन्न बोला कि हे राजन् । तू नदीकी नाई है और प्रान तेरे प्रान है अर्थ यह कि जो तू निर्मल होगा तो वह भी निर्मल होयेंगे और जब तेराही हृदय मलिन होगा तब प्रान भी मलिन क्रिया विपे बर्तेंगे वहुदि एक और राजा किसी सतके दर्शन को गयाया सो वह सन्न यह वचन पढ़रहाथा कि यथाशक्ति शुभ करतुतिही को अगीकार करो। काहेमे कि उत्तम और नीचकी गति समान नहीं होती सो जब राजाने यह वचन सुना तब अपने चित्तमें विचार करतेलगा कि सन्तोंका एक वचन सर्व उपदेशका मूल है पर दर्शन की अभिज्ञापाके निमित्त राजाके प्रधान ने किवाड़ी को खड़काया और कहनेलगा कि हे महाराज । किवाड़ को खोलो तब सन्तने पूछा कि तुम कौनहो वहुदि प्रधान ने कहा कि अमुके राजा तुम्हारे दर्शन को आया है तब सन्त ने कहा कि हमारे साथ राजा का क्या प्रयोजन है वहुदि राजा के प्रधानने कहा कि राजाका निरादर करना प्रमाण नहीं है तब सन्तने किवाड़को खोला और गृहमें जो तीपक जलताथा तिसको बुझाय दिया तब उस राजा ने भीतर जाकर सन्तके चरणोंपर मस्तक धरा और हाथों करके चरणों को पकड़ा तब सन्न ने कहा कि यह तेरे हाथ तो बहुत कोमल हैं पर जब नरकों की अग्निमे इनकी रक्षाहोवे वहुदि राजासे इम प्रकार कहनेलगे कि हे राजन् । जो तू अर्थात् यथार्थविपे विचरे तो भवाँडे रुई से कि। परलोक में तुझमे एक एक जनकी बात पूछेंगे तब यह वचन सुनकर राजा रुदन करनेलगा और मुर्झित होगया तब प्रधानने कहा कि हे महाराज । जब इम वचनसे मौन करिये क्योंकि राजा तुम्हारे वचनकरके मृतकृत्वा जाता है तब सन्तने कहा हे कुण्डी । राजा तो तुम लोगोंकी सगति करके मृतकृत्वा है और तू इम से कहता है कि राजा को तुमने मारा है वहुदि यह राजा सचेत होकर सन्तके आगे तीन सहस्र रुपया रखनागया और कहनेलगा कि हे महाराज । यह धन पाप रहित उत्पन्न किया हुआ है तब सन्नने कहा कि मैं तुम्हको माराने धिक्क किया चाहताहू और तू मुझकोही माया विपे डाला चाहताहै ऐसे कहकर यह सन्न उठखड़ेदृष्टे और गृहमे बाहर निकल थाये और धनको अगीकार न किया वहुदि और एक राजाने किसी मन्त्र म कहाथा कि तुम मुझको धर्मान्ति का उपदेश सुनाओ तब सन्तने कहा कि जो तुम्ह से लघु मनुष्य है

उनको पुत्र की नाई जान और जो तुझमें बडे हैं तिनको पिनात्र जान जा  
 जा मगहें तिनके सग वान्धवोंकी नाई वर्धावक और जो किसीको कुछ दण्ड  
 देवे तोभी जितना उमका अपराधहोवे तितनाही उमका दण्ड ताड़नाकर-और  
 चित्तमें यही भावना रख कि मैं ताड़ना भी उमको भलाईहीके निमित्त करना  
 बहुरि जब किसीको क्रोधकरके एक छड़ीभी मारेगा तब नरकगामी होवेगा इसी  
 पर एक बुद्धिमान् राजा ने कहाहै कि एक बार मेरे दृष्टलुवे से कोई काम बिग  
 ढाया ताते मैं क्रोधकरके उमको मारनेलगा तब दृष्टलुवेने कहा कि तुण परलाक  
 की ताड़नाका स्मरण करे अर्थ यह कि क्रोधमेरहित होवो सो जब यह धन  
 मने सुना तब तुझको भगवत् का मय उत्पन्न हुआ तात्पर्य यह कि राजाको  
 चाहिये कि सदा ऐसेही वचन सुनतारहे = बहुरि नवीयुक्ति यहहै कि राजाको  
 ऐसा अभिमान न चाहिये कि मैं तो किसी को दण्ड नहीं करत हू फाइस कि  
 मन्त्रियों और प्रधानों और सेनापनियों के पापकर्म करके भी राजाही को ता  
 ढना होवेगी ताते उनको पापसे वर्जित करे इसी पर एक-धर्मज्ञ गजाने अपने  
 प्रधानकी ओर पाती लिखी थी कि भाग्यवान् प्रधान बही होताहै जिमके राज्य  
 करके प्रजा सुखी रहती है और जिम राजाकी प्रजा धर्महीन होजावे और हु  
 को प्राप्तहोवे वह राजाभी मन्दभागी होताहै ताते तुझको सचेत होना उचितहै  
 जवत् अचेत होकर भोगोंमें लम्पट होवेगा तब तेरी सेना भी प्रजाको दु  
 यक और लम्पट होजावेगी और अधिक भोगी पुरुष पशुकी नाई होताहै कि  
 वह पशु हरेदण को खाकर बड़ा स्थू न होताहै बहुरि उमके शरीरकी स्थूजताही  
 उमके दुख और नाश का कारण होती है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि  
 जिम राजाका कोई प्रधान पापकर्मी होवे और राजा उसका ताड़ना न करे तब  
 उस पापका फल गजाको लगताहै ताते राजाको इसप्रकार जानना चाहिय कि  
 गाया में आसक्तहोकर परमार्थ मे विमुक्तहोना बड़ी सूखता है और यह जितन  
 भोगे मन्त्री और प्रधानहैं सो सब अपने प्रयोजनाके धर्या हैं और आपने मनो  
 र्यों के निमित्त मेराधर्मो नष्ट किया चाहते हैं सो जब मैं इनके वशीभूत होकर  
 धर्म मे विमुक्त शूगा तब मैं निस्मन्देह नरकगामी होऊंगा सो जब इस प्रकार  
 विचारकर देखिये तो यह सब मेरे शत्रु हैं ताते जो राजा अपने मन्त्रियों की  
 सेनाको पापमे वर्जित न करे तब इसका दृष्टान्त यहहै कि जैसे कोई अपने श्री

पुत्रादिकों को पापकर्मों में लगाने और उनके पाप का नाश करने पर यह जो धर्मकी मर्याद मन्तों ने कही है सो हमका पालन वही पुष्प कर्मता है जिमने अपने शरीर को विचार के समुक्त दृढ किया है और शरीर को धर्मनीति निपे रखना यह है कि बुद्धि के ऊपर क्रोध और भोगों को प्रबल न होने देने पर बहुत लोग तो ऐसे होते हैं कि अपने मनोरथ पूर्ण करने के निमित्त यत्न करते हैं और बुद्धि को भी इन्हीं कामों में लगाये रहते हैं सो जिमने बुद्धिरूपी देवता को क्रोध रूपी राक्षस के हाथ बाध दिया है, ऐसे पुरुष, मे किमी प्रकार मम्म, की नीति नहीं हो सकती, प्रजाके ऊपर तात्पर्य यह कि प्रथम विचाररूपी सूर्य हृदय में उत्पन्न होता है फिर उसका प्रकाश इन्द्रियादिकों में वर्तमान होता है और इसमें पीछे वही प्रकाश सब प्रजाके ऊपर उजियारा करता है ताने जो पुरुष ऐसे सूर्य बिना प्रकाशकी, आशा रखते हैं सो अयोग्य हैं इसी कारण कहा है कि धर्मकी बुद्धिमें विचार, उपजता है और परमबुद्धि उसका नाग है जो सब क्रान्तियों के भेदको, समझे और इसवानको विचारकरके देखे कि मैं धर्म और विचार मर्याद का त्याग किम निमित्त करता हूँ सो जब नाना प्रकार के भोजनों के निमित्त विचार की मर्यादको त्याग करे तब ऐसे जाने कि खानपानकी अभिलाषा तो पशुओं, का स्वभाव है चाहे मे कि जिसको खान पान की अधिक लृप्णा है वह यद्यपि देखने गात्रमें, मनुष्य भासता है तौ भी आहारविषे पशुओं के समान है चहुरि जो सुन्दर बखों के निमित्त धर्म का त्याग करे तो शृंगार बनावना स्त्रियों का काम है और जो अपने क्रोधके निमित्त धर्म को त्यागा है तो मिर्हों और भेदियों की नाई होता है, और जब लोगों की मान्यता के निमित्त विचार की मर्याद को त्याग दिया तौगी बड़ी मूर्खता है चाहे मे कि जब विचार करके देखिये तौ सबलोग अपने प्रयोजन के अर्थी हैं और अपने भोगों के निमित्त इसही मेवा करते हैं सो हमकी परीक्षा यह है कि तब उनका स्वार्थ भग होता है तब सब इसके शत्रु होजाते हैं और इसके शत्रुओं की मेवा में सावधान होने हैं, ताने प्रसिद्ध कहा कि इसके सम्बन्धी लोग मित्र और शत्रुवे और सबही लोग अपने स्वार्थ के होते हैं और बुद्धिमान् पुरुष वही है जो ऐसे भेद को भली प्रकार समझे और पदार्थोंकी स्थिति को देखकर अभिमानि न होने पर निम पुरुष का ऐसा मम उत्पन्न नहीं हुई यह बुद्धिहीन कहाता है और जिस पुरुष के बुद्धिही नहीं



वह विचार की मर्याद में सावधान भी नहीं होमका और जो विचार से रहित है वह निस्सन्देह नरक का अधिकारी होता है इसी कारण मतजनों ने कहा है कि सर्व शुभगुणों का मूल बुद्धि है & वह हरि दर्शनी युक्ति यह है कि राजाओं में वा वश्य ही अभिमान अधिक होता है और अभिमान करके क्रोध उत्पन्न होता है सो क्रोध ही इसकी बुद्धि का परमशत्रु है तात राजा को इस प्रकार चाहिये कि प्रथम क्रोध के विघ्नों को पहिंचाने वह हरि जव अस्मात् किसी अवसर में क्रोध उपजने लगे तब यत्र क्रोध अपने स्वभाव को देया और सहनशीलता विषे दृढ़ करे और यों भी जाने कि सहनशीलता सन्नों का धर्म है और क्रोध करना असुरों का स्वभाव है ताने जव कोई पुरुष बचन के राजा की अवज्ञा करता है तब ऐसे समय उसके ऊपर अश्य क्रोध ही किया चाहता है सो राजा को ऐसे अवसर में ईम प्रकार संभक्तना चाहिये कि जव दुर्वचन कहनेवाला पुरुष सत्य कहता है तो उसके उपकार मानना प्रमाण है और जो झूठ कहता है तो अधिक उपकार जानना प्रमाण है काहेमे कि जव उसके बचन को सुनकर सहनशीलता होवेगी तब उसके शुभ कर्मों का फल इसको प्राप्त होवेगा इसीपर एक धार्त्ता है कि किसीने महापुरुष मे कहा था कि अमुक पुरुष ऐसा बलवान् है कि जिसके साथ युद्ध करता है तिसको गिरा देना है तब उन्होंने कहा कि जिसने अपने क्रोध को जीता है उसीको धनवान् कहा जाता है और मनुष्यों के पकड़ने और गिरानेवाले को बली कहना अपयोग्य है और यों भी कहा है कि धर्मवान् पुरुष का लक्षण यह है कि यद्यपि क्रोध के योग्य कोई पुरुष होवे तो भी विचार की मर्याद को त्याग न करे और अनुचित विचन न करे और जव किसीपर प्रसन्न होवे तो भी यद्यपि को मुचाय न देवे यद्यपि ममत्ता होवे तो भी अपनी मर्याद से उल्लंघित न होवे इसीपर एक संतने कहा है कि जब नग किमी पुरा के धर्म और क्रोध की परीक्षा करके भली प्रकार न देखिषे तब नग उसके ऊपर प्रतीति करनी अयोग्य है इसीपर एक धार्त्ता है कि एक राजपुत्र पढ़ने के अर्थ पाठशाला को जाता था सो एक दुष्ट आकर उसको दुर्वचन कहने लगा तब राजपुत्र को दहलवा क्रोधवान् होकर उम दुष्ट के मारने को उद्यत भयो तब गर्ज पुत्रने अपने दहलवे की वजिह किया और उम दुष्टमे कहने लगा कि हे भाई हम में तो ऐसे अशुभ गुण है कि तु उनको जानता ही नहीं पर तुम्हको कुछ अर्थ

हावे। तो प्रसिद्ध ऋषि बहुरि यह वचन सुन कर वह दुष्ट लज्जित हुआ। तब राज-  
 पुत्रने अपने गले का त्रस और सहस्र रूपया उमको दिया तब वह पुरुषलेख  
 इस प्रकार कहने लगा कि निस्सन्देह तू महापुरुषकी सन्तान है बहुरि उसी राज-  
 पुत्रकी एक और वार्ता है कि एक समय दोवार अपने दहलुवेको पुकारा और  
 वह दहलुवा चुप साध रहा बहुरि उमके निम्न जाकर कहने लगा कि गेने तुम  
 को दोवार बुनाया और तैने सुना भी नहीं तब दहलुवेने कटा कि मैने सुना तो  
 या पर तुम्हारी सहनशीलता विचार कर निर्भय हो रहा था कि डम अवज्ञा करके  
 ताड़ना करेगे तब वह राजपुत्र कहने लगा कि हमारे ऊपर यह भी महागज  
 का बड़ा उपकार है कि मेरा दहलुवा तब मेरे क्रोध से निर्भय हुआ है। बहुरि  
 किमी और सन्तके दहलुवेने गृहके पशुका प्राँव तोड़ डाला था तब सन्तने कही  
 कि तैने इस बेचारे को क्यों हुआ दिया है बहुरि दहलुवा कहने लगा कि तुम्हारे  
 धैर्य और क्रोधकी परीक्षा के निमित्त यह अवज्ञा मैने करी है तब सन्तने कटा  
 कि मैं सहनशीलता करके क्रोधी को लज्जितवान करूंगा इतना कहकर उम  
 मोल लिये दहलुवे को मुक्त कर दिया बहुरि उमी मन्त हो मोई दुष्ट दुर्वचन  
 कहने लगा या तब सन्तने कहा कि मेरे और भगवत् के मध्यमे कितनी ही क  
 टिन घाटी हैं सौ जवमें उनमे उल्लिखित हुआ तो मेरे दुर्वचनोंका भयानक  
 नहीं और जवमें उनको न लाव सका तब जैसा तू कहता है निम्नमे भी मैं ती-  
 चहू इमीपर महापुरुषने कहा है कि बहूते पुरुष क्षमा और सहनशीलता करके  
 महागम्भीर पदको पावने हैं और यद्यपि गृहस्थार्थ विषे वर्नने हैं तौभी महाशू-  
 रमा विरक्ताचित्त कहारने हैं बहुरि यों भी कहा है कि जो विचार के मर््या  
 रहित होकर क्रोधके बगीभूत होते हैं सो निस्सन्देह नरकगामी होते हैं और जो  
 कोई समर्थ होकर अपने को रको दमन करलेने हैं उनके हृदय को महागज प  
 रगानन्द करके पूर कर देता है नात्पर्य यह कि जिन राजा की बुद्धि र्थ विषे  
 स्थित होती है निसको जिनने मैने वचन और युक्तिया वर्णन की हैं इनकी ही  
 बहुत हैं और जिनका हृदय ऐमे उपदेश करके कोमल न होवे तब ज्ञानिये कि  
 भगवत् पर उसकी प्रतीति ही कुछ नहीं अर्थात् यह कि वचन करके भगवत् को  
 सत्य कहना और हे और हृदयमें भगवत् को सत्य जानना और हे फाँडे में फि  
 जा पुरुष लल और दंड करके वनको उत्पन्न करे और पापोंविषे निश्चय होकर

वर्ते तत्र क्योकर जानिये कि उसने भगवत्को प्रकट सत्य जाना है ताते धर्मात्मा पुरुष वही है जो सर्वदा विचारकी मर्याद विषे स्थित रहे ॥

३ वि, व्यवहारवर्णनसाय द्वितीयप्रकरण समाप्त ॥

## तीसरा प्रकरण ॥

### प्रथमसर्ग ॥

मनके घम और कठोर स्वभावों के विचार के वर्णन में ॥

प्रथम विभाग भलेस्वभावों की स्तुति में ॥ ताते जान तू कि महाराजने भी भले स्वभावों करकेही महापुरुष की प्रशंसा की है और महापुरुषने भी कहा है कि भगवत्ने मुझको भले स्वभावों के पूर्ण करने के अर्थ इस जगत् विषे भेजा है और योंभी कहा है कि परलोकमें महाउत्तम पदार्थ भला स्वभावही होवेगा वद्वरि एक पुरुषने महापुरुष से पूछा कि धर्म क्या है महापुरुषने कहा कि भला स्वभावही धर्म है ऐसीही एक और पुरुषने भी पूछा कि उत्तम कर्तव्य क्या है तब उन्होंने कहा कि भलास्वभाव सा कर्तव्यों से उत्तम है ॥ वद्वरि एक और पुरुषने महापुरुषसे कहा कि मुझको कुछ उपदेश करिये तब उन्होंने कहा कि जिसस्थान विषे तू होवे तहादी भगवत् के गय समुक्त रहो वद्वरि जब कोई तेरे साथ बुगई करे तब तू उसके साथ भलाईही कर और सब जीवों के साथ भला स्वभावों सहित मिलापकर और महापुरुषने योंभी कहा है कि जिसको भगवत् ने भला स्वभाव दिया है और जिसका मस्तक प्रसन्नता महिन सुशोभता है वह नरकों की अग्नि में नहीं जलता और महापुरुषने किरीने कहा था कि अमुकी स्त्रीदिनको व्रत रखती है और रात्रि को जागरण करती है और सर्वथा भजन में सावधान है पर उमका स्वभाव बुगई कि पड़ोमियोंको दुर्वचन करके दुखावती है तब महापुरुषने कहा कि निस्मत्त वह स्त्री नरकको प्राप्तहोवेगी ॥ और योंभी कहा है कि बुगस्वभाव भजनको इम प्रकार नाशकरता है जैसे गधु हो खटाई बिगाड़ देती है वद्वरि महापुरुषमहाराजके आगे यों प्रार्थना करते थे कि हे महाराज ! अपनी दयाकरके जैसे तैने भोग शरीर मुन्दरवनाया है तैमेही भला स्वभाव भी गत्वाकर और योंभी कहते थे कि मुझको भलास्वभाव और नीचे गता देवो वद्वरि किरीने महापुरुषसे पूछा कि भगवत् जो कुछ इम जीवको

देता है सो तिनमें भला पदार्थ क्या है तब उन्होंने ने कहा कि भला स्वभाव साथ पदार्थों से विशेष है ॥ वहुरि एक और सन्तने भी कहा है कि मैं एकवार महा पुरुष के सङ्गिया तब उन्होंने कहा कि मैंने एक बड़ा आश्चर्य देखा है कि एक पुरुष मुझको गिरा हुआ दृष्टि आया था और भगवत् और उसके बीच में बड़ा परलया पर भला स्वभाव जो उसके हृदय में आया तिसने उस सब पटल को टूटकर दिया और उस पुरुषको भगवत् के साथ मिलाय दिया और योंगी कहा है कि यह पुरुष भले स्वभावों करके बिना कष्टही ऐसी अवस्था को प्राप्त होते हैं जो बड़े तप और जोग्रत् करके कोई उस अवस्थाको प्राप्त होवे सो गले स्वभाव करके यत्न बिनाही मनुष्य पावता है पर इम भले स्वभावकी पूर्णता महापुरुषही में पाई जाती है इसी पर एक वार्त्ता है कि एक ठौर में महापुरुष बैठे थे तब बड़ा स्त्रियाँ निडर होकर ऊँचे स्वर से शब्द करने लगीं वहुरि जब बड़ा उमर उनके सङ्गी आये तब वे स्त्रियाँ चपलता की छोड़कर मौन हो बैठीं तब उगर कहने लगे कि हे पुरुषाओ! तुमने महापुरुष का भय न किया और मुझको देव स्वर मौन हो बैठीं तब उन्होंने कहा कि महापुरुष का स्वभाव अति कोमल है और तुम्हारा स्वभाव उनसे कठोर है ताने हम तुममें डरती हैं वहुरि महापुरुष उगरे से कहने लगे कि हे उमर! तुमको जब गाया न देखकर भी तेरे तेजके आगे भाग जावे और डर न सके तब औरोंकी क्या चली इस प्रकार कहकर उनकी मनोहार कर; तेमये और प्रमत्त किया वहुरि एक और सन्तने सो सयोग करके किसी पुरुष के साथ योग में सङ्गी हुये वहुरि जब उमसे बिछुडे तब गेवने लगे तब लोगोंने पूछा कि तुम किस निमित्त रोवबेहो तब उन्होंने ने कहा कि यह पुरुष जो मुझमे बिछुड़ा है सो इसका बुरा स्वभाव इमके साथही रहा और दूर न हुआ ताने में रुदन करता हूँ ॥ और अब्बक स्त्रियाँ ने भी कहा है कि फारसी भजे स्वभावका नागिहे तोमे तिसका स्वभाव भला है सो उत्तम कर्त्ता है और एक और सन्तने भी कहा है कि कठोर स्वभाव पेमा पाप है कि इमके होवे दृष्टे कोई शुभ गुण भी लाभदायक नहीं होता और कोमल स्वभाव पेमा भजन है कि इम करके मर्ब पापों का नाश होजाता है और कोई अवगुण भिन्न नहीं करनका १ ॥ इमरा विभाग भजे स्वभावों के वर्णनमें ॥ ताने ज्ञान तू कि इनके स्वभावके निर्णय में घट्ट प्रकारके चर्चन आये हैं पर भजे स्वभावोंकी पूर्णता किसी ने नहीं की जेमे

किसी ने कहा है कि मस्त्रक प्रसन्न रहना ही भला स्वभाव है, और किसीने कहा है कि सहनशीलता ही भला स्वभाव है सो इसकी नाई और भी बहुत मतन हैं, यह सब भले स्वभावके अङ्ग हैं पूर्ण स्वभाव भला इसी का नाम नहीं लाते में भले स्वभावकी पूर्णता को प्रकट करके कहता हूँ सो ऐसे जानू कि इस मनुष्यको दो पदार्थों के सम्बन्ध से उत्पन्न किया है सो एक शरीर है जो स्थूल नेत्रों करके देख जाता है और दूसरा जीव है सो उसको बुद्धि करके पहिचान मक्के है सो शरीर और जीवकी सुंदरताई भी है और कुरूपता भी है पर शरीरकी सुंदरताको स्थूल रूपसु कहते हैं और जीवकी सुंदरताई भले स्वभाव कम्के होती है पर स्थूल रूपवाद् भी उमीको कहते हैं जिसके नेत्र और मस्त्रक और नाक कान मुख और अत्र सब अङ्ग और उदर समान होते हैं तेसेही जीवकी पूर्ण सुंदरताई सी त्वई कही जाती है जब इसी पुरुषमें चार गुण समान पाये जावें सो एक विद्या है दूसरा भोगों का जीतना तीसरा क्रोध का जीतना चौथा विचार सो विचार इन तीनों में तृप्तता पर प्रथम जो विद्या कही थी तिसका अर्थ बूक है और विशेषता इसकी यह है कि वृक्ष करके सत्य और असत्य को सुगमही पहिचान लेवे वृद्धि वचन और कर्तृत्व की भलाई और घुगई के भेदको समझे और योंभी जाने कि यह प्रतीति भूई है और यह सत्य है सो जब वचन और कर्तृत्व और निश्चयको भली प्रकार जानता है तब हमके हृदयमें अनुभव उत्पन्न होना है सो अनुभव सर्वगुणों का मूल है जैसे महाराज ने भी कहा है कि जिस पुरुषको अनुभव प्राप्त हुआ है तिमको सब गुण प्राप्त होते हैं और दूसरा भोगोंका जीतना यह है कि भोग में हमके ऊपर प्रबल न होवें और बुद्धिकी आज्ञानुसार वतें और विचारकी प्रबल मानगी इसको सुगम होवे वृद्धि तीसरा क्रोध का जीतना यह है कि क्रोध और विचारकी आज्ञानुसार होकर उमकी आज्ञामें वतें और विचारकी आज्ञाको वतें घन करके किसीको दुखावे नहीं ३ वृद्धि चौथा जो विचार है सो यह है कि विद्या का चल इन तीनों में वतें अर्थ यह है कि भोग और क्रोधको बगीकार करे और विद्या जो समान रावे और इनको धर्मशास्त्रकी आज्ञा विवेचनसे कोड़े से कि क्रोध शिखरी कुरुरकी नाई है और भोग घोड़ेकी नाई है और बुद्धिरूपी मत्त है सो तभी ऐसा होता है कि घोड़ा मत्त में प्रबल होजाता है और कभी आज्ञा विवेचनता है तेसेही कुरुरगी कभी आज्ञा विवेचनता है और कभी आज्ञा

विपर्यय होता है पर ज्वलन घोंडा और कृकुर सवारकी आज्ञा में न होवे तब लग सवार को गिकार हाथ नहीं लगता और सवार यह भय रहता है कि कहीं घोड़ा प्रवल होकर मुझको गिराय न देवे अथवा कृकुरी पाड़गले ताते विचारका काम यह है कि इनको बगभेकरे और इनकी बुद्धि और बर्षकी आज्ञा में बनेवे। सो क्रोधके ऊपर कभी भोगोंको प्रवल करके क्रोधके वेगको अपमान के द्वारे हटावे और कभी क्रोधको भोगोंपर प्रवण करके गानका लालच देकर भोगोंकी अभिलाषाओं के वेगको मिटावे इसप्रकार इन दोनोंको अपने आधीन रखे सो जिस मनुष्य में ये चारों लक्षण सगान होते हैं तिसको सम्पूर्ण भलो स्वभाववाले कहते हैं और जब कोई लक्षणहोवे और कोई न होवे तब उसकी सम्पूर्ण भला स्वभाव नहीं कहा जाता जैसे कोई पुरुष सुन्दर होवे पर उसके नेत्रा अथवा नाक अथवा और कोई अंग कुरूपहोवे तो उसको पूर्ण रूपवान् नहीं कहते ताते जानतू कि इन लक्षणोंकी सुन्दरताईभी है और कुरूपताभी है सो सुन्दरता सगानता में होती है और कुरूपता दो प्रकार करके होती है एक मर्याद से अधिक होने में और दूसरे मर्याद से अल्प होने में और योंभी है कि जिस मनुष्यमें एक स्वभाव बुरा होता है तब उस करके और भी अनेक बुरे स्वभाव उत्पन्न होते हैं पर इन लक्षणोंकी मर्याद जो कही थी सो इसप्रकार है कि प्रयाग जब विद्याही मर्याद से अधिक होती है तबानाना प्रकारकी गलीनता विषे भी पसर जाती है तब चपलताई और चतुराई उत्पन्न होती है फिर अभिमानी हो जाती है और जब विद्या मर्यादसे थोड़ी होती है तब मूर्खता और जड़ता को भीसे होती है विद्वान् जब विद्याही मर्याद अनुमार होती है तब उससे विचार और सुगति और शुद्धगुरुत्व और उत्तम वृक्ष उपजती है तैसेही जब क्रोधका बल अधिक होता है तब अभिमान और अहङ्कार और दुर्वचन और बदभावना और अपनी स्तुति करनी और निष्णङ्क होकर आपको भयानक स्थान में डालना इत्यादिक अशुभ उत्पन्न होते हैं और जब यह क्रोधही मर्यादसे अल्प होता है तब निगमना और परधीनता और कपट इत्यादिक बुरे स्वभाव उपजते हैं विद्वान् जब क्रोधका बल मर्यादके अनुसार होता है तब इसका विषय हृद होता है और पुरुषार्थ और वन और महत्तनीयता और नयन और इमनीनाई अनेक शुभगुणोंको प्राप्त है इमीप्रकार जब भोगोंको बल अधिक होता है तब तृष्णा

और अशुद्धता और कृपणता और ईर्ष्या उपनती है और लोभकरके घनवानों  
 के अपमान को सहता है और निर्दनों का निगदर करना है इत्यादिक अनेक  
 अपलक्षण उत्पन्न होते हैं वहुरि जब सर्वथा भोगोंसे रहित होता है तब वात्सल्य  
 कादरता अस्थिरता उपजती है और भोगोंका बल मर्यादा अनुसार होता है  
 तब संयम धैर्य सतोष भाव यह सब उत्पन्न होते हैं ताते विद्या और क्रोध और  
 काम जो वर्णन किये हैं सो इनके दोदो किनारे हैं एक अधिकता दूसरा अल्पता  
 सो यहदोनों निच्ये हैं ताते इनकी मर्यादही विशेष कही है पर इनकी मर्याद  
 बालसे भी सूक्ष्म और कठिन है और उत्तम मार्ग भी यही है जैसे परलोकमें पुत्र  
 सगत अर्थात् पेत्रणीका उत्तरना कठिन कहा है तैसे ही इनकी मर्याद में वर्तना  
 भी कठिन है ताते जो पुरुष इसलोक में इनकी मर्याद अर्थात् समानता सिं  
 वर्तता है वह पुलमरात से परलोक में निर्भय रहता है इसी कारणसे श्रीमहाशयने  
 भी सब स्वभावों में समानताही प्रमाण कही है और उन पुरुषोंकी प्रशंसा कही  
 है जो कृपणता और कृजली से रहित है और महापुरुषने भी कहा है कि न तो  
 ऐसी कृपणता करिये जो किसीको कुछ न दीजे और न ऐसी कृजली करिये  
 जो सबकुछ एकही तारमें लुटादीजे और आपा निर्द्वन्द्वताई को प्राप्त हजिये ताते  
 जानव कि हृदयकी सुन्दरताई सम्पूर्ण तबही होती है जब यह सबगुण मर्याद  
 के अनुसार होते हैं जैसे शरीर करके सुन्दर भी तबही होता है जब सब अंग सुदा  
 और समान होते हैं पर इसहृदय की सुन्दरता और कुरूपता त्रिपे भी मनुष्य का  
 प्रकारके होते हैं सो एक ऐसे मनुष्य है कि उनमें सम्पूर्ण शुभगुण पाये जाते हैं  
 तब उनको सम्पूर्ण सुन्दर कहा जाता है और मय जीवोंको ऐसे महापुरुष भी  
 आहा विपे वर्तना उचित है पर ऐसा पूर्ण सुन्दर कोई महापुरुष और संतही होता  
 है जैसे शरीर के पूर्ण सुन्दरभी एकसुकही हुये हैं तैसे हृदयका पूर्ण सुन्दर भी  
 कोई विरला होता है १ और दूसरे पुरुष ऐसे होते हैं कि उनमें सब स्वभाव भोगों  
 पाये जाते हैं और हृदय उनका महारूप और कठोर होता है पर ऐसे पुरुष न  
 गुतमें न होयें तो भलाई काहेसे कि वह मनमय असुरोंकी नाई है और अमुपों  
 को जो कुरूप कहा है सो शरीर करके कुरूप नहीं कदा केवल सेवकही के स्वभा  
 वोंकी वुर्गई करके कुरूप कहा है २ और तीसरे मनुष्य ऐसे हैं कि हृदय उनदोनों  
 प्रकारके मनुष्यों के मध्य पर उत्तम सुन्दरताई के अधिक है २ और चौथे प्र

कारके मनुष्यगी यद्यपि उनदोनोंके मध्यमें पर ते कुरूपताके बहुत निकटहैं सो जैसे शरीरकरके भी सम्पूर्ण सुन्दर और कुरूपकोई बिरलाही होताहै पर गभ्यग भावविषे बहुत होते हैं हृदयकी सुन्दरता और कुरूपताभी इसीप्रकारहै ४ ताते सबको सही पुरुषार्थ करना चाहिये कि जो हृदयकी पूर्ण सुन्दरताको न पहुँचसके सम्पूर्ण सुन्दरताके निकट जो पदहै तिसको पहुँचे अर्थात् जब सब शुभगुणोंको प्राप्त होसके तो भी कुछ शुभगुणोंको तो प्राप्तहोवे सो जैसे शरीरकी सुन्दरता और कुरूपता अपारहै तैसेही हृदयकी सुन्दरता और कुरूपताभी अपारहै कोहे से कि शुभगुणोंकी सुन्दरता एक वस्तुका नाम नहीं तो भी मूल इनका विद्या और भोगोंका जीतना और श्लोथका जीतना और विचारहै और अत्रर शुभगुण इन की शाखाहैं ३॥ अथ तीसरे विभागमें यह वर्णन होगा कि पुरुषार्थ करके निस्सन्देह भले स्वभावोंको प्राप्त होसकेहैं ॥ ताते जानू कि कोई पुरुष ऐसे कहतेहैं कि जैसे शरीरका स्वरूप नहीं उलटपक्का जैसे आदिमें उत्पन्न हुआहै तैसेही रहताहै अर्थात् लम्बा पुरुष छोटा नहीं होसका और छोटा यत्र करके लम्बा नहीं होता तैसेही हृदयका स्वरूप भी नहीं उलटता ताते जिसका स्वभाव बुराहै वह यत्र करके भला नहीं होता सो यह कहना इनका प्रमाण नहीं काहेसे कि वह मूल करके कहतेहैं क्योंकि जो उनका कहना प्रमाण होता तो उपदेश और समभावना सिखावना सतजनोंका मव मिथ्या होताहै जैसे महापुरुषने भी कहाहै कि अपने स्वभावोंको भला करो ताते जानाजाताहै कि स्वभावोंका उलटावना असम्भव नहीं इसकारणसे कि महाकठोर पशुभी यत्र करके कोमल होजातेहैं और वह पशु जो मनुष्योंको देखकर गयवान् होकर भागजातेहैं सो भी प्यार करके मनुष्योंके साथ बिना पकड़े चलेजातेहैं ताते स्वभाव का उलटावना शरीरके उलटावने की नाई नहीं ताते सर्वकार्य दो प्रकारके होतेहैं सो एक कार्य ऐसेहैं कि मनुष्योंके यत्र करके सिद्ध नहीं होते जैसे सज्ज के बीजसे मेलका वृक्ष मनुष्यके यत्रमें नहीं होता पर इतना कार्य मनुष्यके आधीनहै कि सज्ज के बीजको यत्र करके सज्ज का वृक्ष करसकाहै तैमे यह भी मनुष्यके आधीन नहीं कि खाना पीना आदिक जो शरीरके भोगहैं सो सर्वथा इनमें मुक्त होसके पर इतना कार्य मनुष्यमें होसकाहै कि यत्र करके श्लोथ और भोगोंको मर्यादके अनुसार करलेवे सो यह बात निस्सन्देहहै पर इममें इनना भेदहै कि कोई पुरुष



ऐसे होते हैं जिनका स्वभाव उलटना कठिन होता है और एक ऐसे होते हैं कि उनको सुगम होता है पर कठिनता भी उनकी दो कारण से होती है सो एक यह है कि जिस मनुष्य का स्वभाव आदि उत्पन्न भिषे यही प्रबल होता है वह भी कठिनता करके उलटता है और दूसरा यह है कि जिस स्वभाव में चिरकाल पर्यन्त वर्तित्व होता है वह भी सुगम नहीं उलटता और प्रबल हो जाता है बहुरि सर्व मनुष्य स्वभावके उलटने में चार प्रकारके होते हैं एक ऐसे हैं कि भयगति तथा विप्रेही कोरा का राजकी नाई है और उन्होंने सत्य और वासत्यको अभी पहिचाना ही नहीं और किसी भले और बुरे स्वभाव में वर्तमान भी नहीं हुये सो ऐसे मनुष्य उपदेशके उत्तम अधिकारी हैं कि वह सुगम ही भले स्वभावको अंगीकार करलेते हैं सो ऐसे पुरुषको कोई उपदेश भग्नवाला सिखावे और उनके बुरे स्वभावके विघ्नोको समझावे तब वह सीधे मार्ग भिषे चले सो भावि जन्म अवस्था में समी बालके ऐसे होते हैं पर माता पिता उनके बुरे मार्ग में डालते हैं और गायत्री तृष्णामें उनको लगाते हैं और कुंक्ष भली बुद्धि नहीं सिखाते तब वह खेवलेते और खानेकी धासनामें निश्चय होकर बर्तते हैं सो उनके धर्मके नाश होनेका पाप माता और पिताको होता है सो इसी कारण करके महाराजने भी कहा है कि जो पुरुष अपने मन और सम्बन्धियोंको पाप फर्मसे बर्जते हैं और नरककी अग्निसे बर्तते हैं वह पुरुष धन्य है और दूसरे मनुष्य ऐसे हैं कि उन्होंने यद्यपि अभी भले बुरेका निश्चय कुछ नहीं किया पर गोग और क्रोधमें कुछ काल वर्तमान हुये हैं तो भी इतना जानने कि ये स्वभाव भले नहीं सो ऐसे पुरुषोंका कार्य कठिनता से होता है कहे से कि उनकी दो यत्ना चाहिये हैं एक बुरे स्वभावों का दूर करना दूसरे भले स्वभावों का बीज उनके हृदयमें धोवना पर जब वह पुरुष थका और पुरुषार्थ संपुक्त होवे तब तुरत ही भलीइको प्राप्त होमके है और उनका बुरा स्वभाव जागही जाता है २ और तीसरे मनुष्य इन प्रकारके हैं कि उनके स्वभाव पापों में दृढ़ हुआ है और यों भी नहीं जानते कि यह बुरे स्वभाव है और उनकी दृष्टि में पाप कर्म सुन्दर होकर भासते हैं सो ऐसे पुरुषोंका स्वभाव उलटना गदा कठिन होता है तबने प्रेमा कोई विरता होता है जो अपने पाप स्वभाव का त्याग करे ॥ और चौथे मनुष्य ऐसे हैं कि पापकर्म करके बढ़ाई करते हैं और भला जानते हैं और बुरे

हैं कि हम इतनी मंदिरा पान करजाते हैं और कामादिक भोगों विषे हम को इतना बल है सो ऐमे पुरुष भलाई के उपदेश को अगीकार नहीं करते पर जिस किसी घर अरुस्मात् भगवत्की की दया होजावे तिस की दूरी जात है और उसका स्वभाव बुरा दूर होजाता है सो इम अगत्र दयामें मनुष्य का बल और यत्न कुछ नहीं चलता ४॥ और चौथे विभाग में भले स्वभावके प्राप्त होनेका उपाय वर्णन करते हैं ॥ ताते जानतू कि जो कोई पुरुष यों चाहे कि भेरा बुरा स्वभाव दूर होवे तब इसका उपाय यह है कि अपने स्वभावके अनुसार तब चर्चे काहे से कि भोगोंका नाश करना विपर्यय हुये विना सिद्ध नहीं होता क्योंकि विरोधी पदार्थ अपने विरोधीही से दूर होता है जैसे कोधरूपी रोग की औषध सहनशीलता है और अभिमानरूपी रोगकी औषध तम्रता है और कृपणता की उदास्ता औषध है और इसीकी नाई सर्व रोगोंकी औषध उसकी विरोधी वस्तु है ताते जो कोई पुरुष शुभ करतूतिकी साधनामें आपको लगावे तब उसका स्वभाव सहज ही भला होजाता है और धर्मशास्त्र में जो शुभकर्म करनेकी आज्ञा है इसका कारण यह है कि शुभकर्मकरके हृदयका स्वभाव शुभ होता है सो जो कुछ यह पुरुष प्रथम यत्नकरके करता है तिसके हृदयका स्वभावगी उसीके अनुसरद्व होजाता है जैसे आदि में बालक पदावनेवाले और तंत्रशाला से गय करके भागता है पर जब उसको दण्ड करके पढ़ने में लगावते हैं तब तिसका वृद्धि स्वभाव बनजाता है वद्वरि जब बड़ा होता है तब सम्पूर्ण रहस्य विद्याही को समझता है और विद्या के रस को छोड़ नहीं सका इसी प्रकार जब कवृत्तर शर्त रंज जुवा खेलनेका स्वभाव पकड़ता है तब ऐसा स्वभाव होजाता है कि सब सुख मायाके और अवर जो कुछ समझ रखता है सो उसी में लक्ष करता है और उसका त्याग नहीं करसका ताते उसके स्वभाव के विपर्यय भी बहुत स्वभाव हैं पर जब उन स्वभावों में वर्तमान होता है तब ऐसा दृढ़ होजाता है कि उन करके बृत्त और दण्ड को सहना भला जानता है जैसे बहुत मनुष्य जिनका चोरी करना दृढ़ स्वभाव होगया है वह जानाप्रकार के दण्ड और हाथ कटवाने पर भी धैर्य धरते हैं पर चोरी नहीं छोड़सके और उम दण्डके सहनेमें अपनी विशेषता मानते हैं इसीप्रकार हिजड़े अपनी निर्लज्जता करके ही परस्पर प्रपन्न होकर उसकी जाधिकना पर बढ़ाई करते हैं ताते जो विचारकरके देखिये तब

नाऊ और श्वपच भी आपस में ऐसी बढ़ाई करते हैं जैसे विद्यावान और जो गुणी लोग बढ़ाई करते हैं सो यह सब स्वभाव के वर्तने का फल है कि वह ऐसा ही दृढ़ हो जाता है जैसे किसी का स्वभाव मिठी खाने का होता है और उसमें रोग और मृत्यु होने का भय भी उसको होता है तो भी उसका त्याग नहीं कर सका ताते यही प्रसिद्ध है कि जो कुछ स्वभाव के विपर्यय है वह भी बहुत काल के वर्तमान होने करके दृढ़ हो जाता है फिर जो कुछ इस मनुष्य के हृदय के स्वभाव अनुसार है वह तो इसका जीवन रूप है जैसे आहार और जल शरीर का जीवन रूप है पर जब यह पुरुष अपने शुद्ध स्वभाव को ग्रहण करे तब वह स्वभाव तो सुगम ही दृढ़ हो जाता है सो तैसे ही भगवत् का पहिचानना और भजन और काम को बंधा आधीन करना सो यह मनुष्य के हृदय के स्वत स्वभाव है इस कारण करके कि यह मनुष्य भी देवता की नाई उत्पन्न हुआ है जैसे देवता का आहार भगवत् का पहिचानना और धूम है तैसे मनुष्य के हृदय का आहार भी और जीवन रूप यही है पर इस मनुष्य का स्वभाव जो भोगों में अधिक दृढ़ हुआ है इस कारण करके उसमें नहीं रुचि करता सो उन भोगों करके इनका हृदय रोगी होगया है जैसे रोगी पुरुष अपने दुःखदायक आहार में प्रीति करता है और सुख दायक आहार को बुग जानकर त्याग करता है तो प्रसिद्ध हुआ कि जो पुरुष भगवत् की पहिचान और भजन के विना अन्यथापदार्थों को भिन्नतम जानता है वह रोगी है सो महाराजने भी इसी प्रकार कहा है कि मनमुखी का हृदय रोगी है और जो पुरुष भगवत् की ओर धार्य है वही अरोग है और जैसे शरीर के रोग करके मृत्यु का भय होता है तैसे हृदय के रोगी होने करके भी परलोक में बुद्धि के माश होने का भय होता है सो जैसे शरीर के रोग से भी तब छूटता है जब अपने स्वभाव से विपर्यय कटु औषधि खावे और चिकी आह्ला विषे चर्ते तब हृदय के रोग का उपाय भी यही है कि अपनी धारणा और भजन के स्वभाव से विपर्यय होवे जैसे मन्त्रजनों और शास्त्रों ने कहा है फदिमे कि मन्त्रजन हृदय के लेश है सो प्रयोजन यह है कि जैसे शरीर के रोगों का चिक है तैसे हृदय के रोगों का भी चिक है और दोनों का एक ही स्वभाव है जैसे शरीर के चिक में गरमा की औषध शरदी कही है तैसे जिस पुरुष को अभिमान का रोग प्रभव होने विसकी चिक करके दीन स्वभाव करना चाहिये कि उसकी आरोग्यता यही

है और जिस पुरुषका अत्यन्त दीन स्वभाव होने उसको यत्न करके गम्भीर स्वभाव करलेना उचित है ताते, जान लू कि सब शुभगुण तीनप्रकार करके प्राप्त होने हैं सो एक यह है कि वह पुरुष आदि उत्पत्तिमें ही गुणवान् होता है सो यह बात भगवत् कृपा करके होती है जैसे किमी पुरुषको आदि उत्पत्ति से ही उदार अथवा नम्र भगवत् उत्पन्नकरे सो ऐसे पुरुषभी बहुत होते हैं ? और दूसरे मनुष्य इसप्रकारके हैं कि वह यत्नकरके शुभ कर्तव्यों के साधन में दृढ़ होते हैं तब, उनका स्वभावमी सहज स्वाभाविकही शुभ होजाता है २ और तीसरे मनुष्य ऐसे होते हैं कि वह जब भले स्वभाव और शुभ कर्तव्यियों को देखते हैं और उनका सग करते हैं तब उनका स्वभाव सहज ही शुभ होजाता है और यद्यपि उनको ऐसी वृत्ति भी नहीं होती तभी मलाई को प्राप्त होते हैं ३ पर जिस पुरुषको यह तीनों पदार्थ डकड़े मिलें कि आदि उत्पत्ति से भी शुभ गुणोंवाला होवे और उसकी कर्तव्यिमी मनी होवे और सगनिमी उसको मनी प्राप्त होवे तब वह पुरुष पूरा भाग्यवान् होता है और जिस मनुष्यमें यह तीनों पदार्थ न होवें कि आदि उत्पत्तिमें भी उसके स्वभाव नीच होयें और कर्तव्यि भी चुगी करे और सगनि भी कुसंगियों की होवे वह पूरा भाग्यहीन होता है सो इन भाग्यवान् और भाग्यहीन दोनों में बड़ा भेद है कि किसीको कोई पदार्थ प्राप्त होता है और कोई नहीं होता सो जितना किमी में शुभगुण पायाजाता है तितनाही भाग्यवान् कहाता है और जितना अवगुण होता है उतना मन्दाभागी है ताते भगवत् ने भी कहा है कि जो पुरुष अरुणात्र भी सृष्ट करता है तिसको अवश्यही उसका फल प्राप्त होता है और जो किंचित भी सुराई करता है वह उतनाही दुःख भोगता है ताते जान लू कि सब कर्तव्यि इन्द्रियोंके साथ होती है और उन में प्रयोजन यही है कि हृदय का स्वभाव सुराई में उलटकर मीठाहोवे कोहे से कि परलोक में जीवही जाता है और शरीर यहांही रहजाता है ताते चाहिये कि जब जीव परलोक में जावे तब निर्मल और सुन्दर होकर जावे तो भगवत् के दर्शन का अधिकारी होवे और शुद्ध दर्पण की नाई निरावृण होकर अपने हृदय में भगवत् की सुन्दरता को देखे सो वह सुन्दरनाई कैसी है कि उसको देखकर मरगके सुवभी कृपा और तुच्छ भासते हैं और यद्यपि परलोक में शरीरके साथभी मन्दा होना है नो भी कर्त्ता और मोक्ष यह जीवही है और शरीर उसके अर्थात् है ताते जान लू कि

शरीर और जीव भिन्न रहें कहे में कि जीवकी उत्पत्ति सूक्ष्म और अस्माह और शरीर आधिभौतिक है सो यद्यपि शरीर और जीव भिन्न हैं तो भी उनका परस्पर सम्बन्ध है सो जो भली करतूति शरीर से होती है तिमको प्रकाश हृदयमें जोष पहुँचता है और वही प्रकाश उत्तम भागों का बीज होता है और जो करतूति वही शरीरके साथ होती है तिमका अधिकार हृदयको पहुँचता है और वही अस्माह मन्दभागों का बीज होता है सो इसी सम्बन्धके निमित्त जीवको आधिभौतिक लोफ में उत्पन्न किया है कि यह जीव शरीर को फोफासीकी नाई बनावे और इस करके सम्पूर्ण भले स्वभावों को शिकार करे जैसे लिखना जो है सो कशिमी बुद्धिही है पर तौभी करतूति लिखनेकी हाथों करकेही सिद्ध होती है ताने जप कोई चाहे कि मेरे अक्षर लिखने में सुन्दर होवें तब हमका उपाय यह है कि यत्र करके अक्षर सुन्दर लिखे और हाथोंकी हथेलीको बनावे तत्र उसके हृदयमें सुन्दर अक्षरोंकी मूर्ति दृढ़ होवे सो जप मूर्ति हृदयमें दृढ़ होती है तब उसीके अनुसार अंगुली अक्षर को लिखती है तैमेही प्रयोग इस गन्तुप्यकी करतूति भनी होती है तब इसके हृदय में भला स्वभाव दृढ़ होता है फिर उम भने सागर के अनुसार करतूति सहजही भने होते हैं ताने निस्सन्देह यही प्रसिद्ध हुआ कि बीज सब भलाई का यह है कि प्रथम यत्र परके शुभकर्म करे और शुभकर्मों का फल यह है कि हृदय में भला स्वभाव दृढ़ होवे और फिर भने हृदय के स्वभाव का प्रकाश शरीर में पवाता है तिमकरके स्वाभाविकही मीनि भयुक्त भने करतूति होने लगने हैं सो जीव और शरीर के सम्बन्ध का भेद यही है कि शरीरके करतूति का गुण हृदय में प्रवेश करता है और हृदयके स्वभाव को प्रवेश शरीर में पहुँचता है सो इसी कारण करके जो करतूति अचिन्ता और अज्ञानता के माध होनी है वह निष्कल और व्यर्थ होना है चाहे ये कि उस का गुण अर्थात् अवगुण हृदयमें प्रवेश नहीं करता ताने ऐसे जानतू कि तिम गन्तुप्यहा शरीर का रोग गम्भीर और चाने लगे भिटे तिमको या भी न चाहिये कि गम्भीर ओषध मायेगी जावे जो गम्भीरी अश्विह दोहर रोगसे दोजाये नाने रोगकी ओषध की जो गम्भीर है तिमके अनुपात रहना ही फलदायक होना है इन प्रकाश नापाना चाहिये कि ओषध केने का प्रयोजन पर है कि गम्भीर स्वभाव समान होवे और गम्भीर ज्ञान गम्भीर अश्विह न होने सो जब यह पृष्ठा

जाने कि, मेरे शरीर का स्वभाव समान हुआ है तब आगे औषध का त्याग करे और स्वभाव के निमित्त, आहार, पथ्य भी समान ही खाये और समानता ही को अरोगता जाने तैमे ही हृदय के स्वभावों के भी दो दो किनारे हैं एक अधिक होना दूसरा न्यून होना सो यह दोनों निन्द्य हैं ताते इच्छा प्रयोजन समानता है जैसे कृपण को लजित है कि इनको परमार्थ में खर्च और जवलग उम के हृदय में उसकी सुगमता न होवे तबलग यत्र करके खर्च करे, और जब उस को अरिणागी प्रति दिना सुगम नुमा तो ऐमे भी न चाहिये कि वधार्थ ही खर्चगा, रहे सो यह भी निन्द्य है सो जैसे शरीर के स्वभाव की मर्त्याद विपर्यय विषममिच्छ है, जैसे हृदयके स्वभावों की भी मन्तजनों के वचनों करके समझी जाती है ताते चाहिये कि मन्तजनोंकी आज्ञानुसार वर्तने और जिस पदार्थका संग्रह करना कहा है निभका अग्रह करे और जिसका देना प्रमाण कहा है उसे देवे तब जानिये कि यह पुरुष समानताको प्राप्त हुआ है पर जवलग इस मनुष्य की शुभकर्मोंमें स्वाभाविक रुचि नहीं और यत्र रुके करता है तबलग जानिये कि आभी रोगी है पर भला है कि यत्र रुके औषध का अगी हार करता है इस का रोग दूर हो रहेगा इसी कारण करके महापुरुषने भी कहा है कि महाराज की आज्ञाको प्रीति संयुक्त अंगीकार करो और महाराज की आज्ञा पालन करने में दृढ़ और वैर्यभी करजा मला होता है ताते ज्ञान तू कि जो पुरुष विचार रुके धनका संग्रह करता है वह कृपण नहीं कहा जाता काहेसे कि कृपण वह होता है जिसकी प्रीति धनके संग्रह में स्वाभाविक अधिक होवे तैमे ही जो पुरुष यत्र रुके धनको खर्च करता है वह मपूर्ण उदार नहीं कहा जाता ताते सपूर्ण उदार यही है जिसको धनका देना सुगम होवे सो इस पुरुषको ऐमे चाहिये कि सत्र स्वभाव इसके स्वाभाविक ही भजे होवे यत्र और दृढ़ दूर होजावे और मपूर्णता इस मनुष्यकी यही है कि सत्र कर्तृति और स्वभाव इसके मन्तजनों के वचनों के अनुसार होवे और इसको अपनी अभिवापा कुछ न रहे और मन्तजनोंकी आज्ञा माननी इसको सुगम होये तब जानिये कि इसका रोग दूर हुआ है सो मगजवने भी महापुरुष से इसी प्रकार कहा है कि इन पुरुषका र्थ तबही मपूर्ण होवगा जब तेरी आज्ञामें स्वाभाविक पालनता मदिन चलै सो यह जो आगे क्यान विद्या है सो विद्या भी एक गुण गेहै पर यह गेहै हम प्राणों मपूर्ण

कदा नहीं जाता सौंभी कुछ मृत्युनामात्र कहते हैं सो ऐसे जनि नृ नि  
 नुप्य माग्ययान् तव होता है जब इसका स्वभागा देवतों की नाई-नि  
 कादेरी कि मनुष्य की उत्पत्ति भी देवतोंकी नाई शुद्धरूपहै और इस  
 परशेभी है और मान इसकी देवलोक है ताते जो स्वभाव स्पृह इस  
 यष्ट पुरुष अपने साथ परलोक में लेजाना है तब उस करके देवतों के  
 मूर होता है ताते चाहिये कि जब यह पुरुष देवलोक में जावे तब देवतों  
 भावों के समुक्त जावे और कोई स्वभाव इस विषे जगत कान होतें जो  
 जगत्का इस प्रकार होता है कि जिस पुरुषको धन सचनेकी लम्पत  
 के साथ परचा हुआ है और जिसको धन खर्चने में प्रीति है वही लम्पत  
 परचा हुआ है तैगदी जिस को मान की इच्छा है वह भी लम्पत  
 हुआ है और जिसको दीनता और नम्रता विषे अधिक लम्पत  
 लोर्गके साथ परचा हुआ है और देवता जो हैं वह किन्ती लम्पत  
 के साथ आसक्त नहीं हैं और केवल भगवत्के प्रेममें ऐसे लम्पत  
 तिगी और नहीं देखने ताते चाहिये कि मनुष्य के हृदय में  
 और लोगोंसे दृग्गुमा होवे और इन सबसे शुद्ध और जिते  
 मनुष्य जो यह शरीरभारी है तो शरीरके सब स्वभावों  
 तौभी चाहिये कि इनकी मर्त्या और समानता विषे  
 पुरुष समानता विषे हृद हुआ तब इस प्रकार जातिदे  
 मुक्त हुआ अर्थात् कोई स्वभाव भी इन पर प्रबल नहीं  
 और उच्छ्रयता से रहिन कदाचित् नहीं रहनका प  
 और शीत उष्य की अपन अचिन्ता नहीं है  
 तब शुभादे पादेसे कि जस गग्नी और शुक्ली  
 भीमभ और उष्य कुछ नहीं कदाचित् ताते  
 मर्त्या और समानता कही है जो इन कारण  
 मनुष्यकी दृष्टि सदैव नम्रता विषे रहे और  
 तब शुभादे विषे सर्वका उच्छ्रयता कही  
 कर्मात् कि एक मुक्त हो लम्पत कही जात अर्थात्

१  
 २  
 ३  
 ४  
 ५  
 ६  
 ७  
 ८  
 ९  
 १०  
 ११  
 १२  
 १३  
 १४  
 १५  
 १६  
 १७  
 १८  
 १९  
 २०

तदापि सत्र जप तप। और भर्जनके अभ्यासका प्रयोजन यही है कि श्रीरामजी को एक पहिचाने और सर्व विषे उन्हीं का देखे और उन्हीं को चाहे उन्हींका दाम होवे और कोई इच्छा हृदयमें न फुरे सी जव इम मनुष्यकी ऐसी अवस्था होवे तब जानिये कि सम्पूर्ण मला स्वभाव इम को प्राप्त हुआ और मानुषी स्वभाव दूर होकर स्वस्वरूपको प्राप्त हुआ और गदागजको पहँचा अब ऐसे जान तू कि यद्यपि यत्न और पुरुषार्थ इसके साधनका बडा कठिन है तो भी जो सद्गुरु इमका वैद्य होवे और इसका औषध भली प्रकार करे तब यत्न और पुरुषार्थ करना मजनविषे इसको सुगम होजाता है सो मली प्रकार औषध करना यह है कि जिज्ञासु को प्रथमही तत्त्वज्ञान का उपदेश न करे कहे से कि जिज्ञासु को भ्रान्ति अवस्थामें ऐसा बल नहीं होता जैसे प्रथम बालकको जब पाठशालामें भोजिये और उससे कहिये कि तुम्हको विद्या के पढ़ने करके बड़ाई और मान प्राप्त होवेगा सो वह बालक बड़ाई और मान के सुखको समझताही नहीं कि बड़ाई और मानकोसे होते हैं ताते चाहिये कि प्रथम बालकसे ऐसे कहे कि अब तू चटशाल विषे जा और जब पढ़कर आवेगा तब तुम्हको गेंद दण्डा देवेंगे अथवा बलबल चिड़िया देवेंगे तब तू प्रसन्न होकर खेलियो तब वह बालक इस लोभिकरके चटशालमें जाता है बहुरि जब उससे कुछ बडा होवे तब कहिये कि जब तू खेलनेका त्याग करे और विद्यापढ़े तब तुम्हको सुन्दर वस्त्र देवेंगे बहुरि जब उमसे भी बडा होवे तब कहिये कि विद्या पढ़ने करके बड़ाई और मान प्राप्त होवेगा और सुन्दर रेशमी वस्त्रका पहरना स्त्रियोंका स्वभाव है बहुरि जब सम्पूर्ण विद्या पढ़लेवे और बुद्धि उसकी उज्ज्वल होवे तब उमसे कहिये कि इम जगत् की बड़ाई और मान निर्भूल है अर्थात् मृत्युके समय नष्ट हो जाती है बहुरि उमसे पीछे जो अविनाशी पद सदा वादशाही और अमर है तिसका उपदेश करे तैसेही प्रथम जिज्ञासुको शुद्ध निष्कायना का बन् नहीं होना ताते चाहिये कि सद्गुरु प्रथम उमसे इम प्रकार कहे कि अब तू शुद्ध करतूति विषे पुरुषार्थ कर क्योकि शुद्ध करतूति करके जगत्में तेरी बड़ाई होवेगी और लोग तुम्हको मजनवान् जानेंगे तब इस बड़ाईकी अभिलाष करके धन और भोगोंसे निवृत्त करे बहुरि जब जिज्ञासु धन और भोगोंकी अभिलाषमें गहिन होवे और इसी वैराग्य का अभिमान इमके हृदय में फुरे तब चाहिये कि सद्गुरु उमके अभिमान को



कहा नहीं जाना तौ भी कुछ सूचनामात्र कहते हैं सो ऐसे जानू कि यह मनुष्य भाग्यवान् तन होता है जब इमकी स्वभाव देवतों की नाई निर्मल होत काहेसे कि मनुष्य की उत्पत्ति भी देवतों की नाई शुद्धरूप है और इम जगत में परदेशी है और खान इसकी देवलोक है ताते जो स्वभाव स्थान इम जगत्का यह पुरुष अपने साथ परलोक में लेजाता है तब उस करके देवतों के सम्बन्ध से दूर होता है ताते चाहिये कि जब यह पुरुष देवलोक में जावे तब देवतों के स्वभावों के संयुक्त जावे और कोई स्वभाव इस विषे जगत्का न होवे सो स्वभाव जगत्का इस प्रकार होता है कि जिस पुरुषको धन सचनेकी तृष्णा है वह भी धन के साथ परचा हुआ है और जिसको धन खर्चने में प्रीति है वह भी धनके साथ परचा हुआ है तैमेही जिमको मान की इच्छा है वह भी लोगों के साथ परचा हुआ है और जिसको दीनता और नम्रता विषे अधिक अभिलाषा है वह भी लोगोंके साथ परचा हुआ है और देवता जो हैं वह किसी प्रकार धन और लोगोंके साथ आसक्त नहीं हैं और केवल भगवत्के प्रेममें ऐसे मग्न हैं कि अन्यथा किमी और नहीं देखने ताते चाहिये कि मनुष्यके हृदयका सम्बन्ध भी धन और लोगोंसे टूटा हुआ होवे और इन सबमें शुद्ध और निर्लेपहोने पर यद्यपि मनुष्य जो यह शरीरधारी है सो शरीरके सब स्वभावों से रहित नहीं रहसक्ता तौभी चाहिये कि इनकी गर्व्याद और समानता विषे स्थित होवे सो जब यह पुरुष समानता विषे दृढ़ हुआ तब इस प्रकार जानिये कि अब सब स्वभावों से मुक्त हुआ अर्थात् कोई स्वभाव भी इम पर प्रबल नहीं है जैसे प्राणी जो शीत और उष्णता से रहित कदाचित् नहीं रहसक्ता पर जब समान भावमें रहता है और शीत उष्णकी अथवा अधिकता नहीं होती तब मानों दोनों स्वभावोंसे वह मुक्त है काहेसे कि जल गरमी और शरदी दोनोंसे रहितभी नहीं पर उसको शीतल और उष्ण कुछ नहीं कहाजाता नागे सन्तजनों ने जो सब स्वभावोंमें गर्व्याद और समानता कही है सो इसी कारण कही है ताते चाहिये कि इम मनुष्यकी दृष्टि मदेव समानता विषे रहे और सब स्वभावोंके बन्धनोंमें मुक्तहोवे तब इमका चित्त सर्वकाल भगवत्विषे नीनहोवे सो महाराजने भी इसीप्रकार कहा है कि एक मुक्तको स्मरण करो और अगर सब विचारों से सपका चीज मन्त्र यहाँ है पर यद्यपि इम मनुष्यको शुद्ध परमपद विषे स्थित होना कठिन है

तदपि स्व जप तप और भजनके अभ्यासका प्रयोजन। यही है कि श्रीरामजी को एक पहिचान और सर्व विषे उन्हीं को देखे और उन्हीं को चाहे उन्हींका दाम होवे और कोई डच्चा हृदयमें न फुरे सो जब इम मनुष्यकी ऐसी अवस्था होवे तब जानिये कि सम्पूर्ण भला स्वभाव इस को प्राप्त हुआ और मानुषी स्वभाव दूर होकर स्वस्वरूप को प्राप्त हुआ और महाराजको पहुँचा अब ऐसे जान तू कि यद्यपि यत्न और पुरुषार्थ इसके साधनका बड़ा कठिन है तो भी जो सद्गुरु इसका वैद्य होवे और इसका औषध भली प्रकार करे तब यत्न और पुरुषार्थ करना भजनविषे इसको सुगम होजाता है सो भली प्रकार औषध करना यह है कि जिज्ञासु को प्रथम ही तत्त्वज्ञान का उपदेशान करे फोहे से कि जिज्ञासु को आदि अवस्थामें ऐसा बल नहीं होता जैसे प्रथम बालकको जब पाठशालामें भेजिये और उससे कहिये कि तुम्हको विद्या के पढ़ने करके बड़ाई और मान प्राप्त होवेगा सो यह बालक बड़ाई और मान के सुखको समझनाही नहीं कि बड़ाई और मान कैसे होते हैं ताते चाहिये कि प्रथम बालकसे ऐमे फोहे कि अब तू चटशाला विषे जा और जब पढ़कर आवेगा तब तुम्हको गेंद दयदा देवेगे अथवा तुलबुल चिड़िया देवेगे तब तू प्रसन्न होकर खेलियो तब वह बालक इस लोके फरके चटशालामें जाता है बहुरि जब उससे कुछ बड़ा होवे तब कहिये कि जब तू खेलने का त्याग करे और विद्या पढ़े तब तुम्हको सुन्दर वस्त्र देवेगे बहुरि जब उमसे भी बड़ा होवे तब कहिये कि विद्या पढ़ने फरके बड़ाई और मान प्राप्त होवेगा और सुन्दर रेशमी वस्त्रका पहरना स्त्रियोंका स्वभाव है बहुरि जब सम्पूर्ण विद्या पढ़लेवे और बुद्धि उसकी उज्ज्वल होवे तब उमसे कहिये कि इम जगत् की बड़ाई और मान निर्मूल है अर्थात् मृत्युके समय नष्ट होजाती है बहुरि उम से पीछे जो अविनाशी पद सच्ची वादशाही और अमर है तिमका उपदेशकरे तैसेही प्रथम जिज्ञासुको शुद्ध निष्कामता का बल नहीं होना ताते चाहिये कि सद्गुरु प्रथम उमसे इम प्रकार कहे कि अब तू शुद्ध फरतुति विषे पुरुषार्थ कर फयोकि शुद्ध फरतुति फरके जगत्में तेरी बड़ाई होवेगी और लोग तुम्हका भजनवान जानेंगे तब इस बड़ाई की अभिलाष करके धन और भोगोंसे निवृत्तकरे बहुरि जब जिज्ञासु धन और भोगोंकी अगिलापने रहित होवे और इसी वैगम्य का अभिमान इसके हृदय में फुरे तब चाहिये कि सद्गुरु उमके अभिमान को

इस युक्ति परके दूर से कित्तिज्ञासुको सिखा मांगने की आज्ञा को चढ़ी जा-  
 श्यर्ग भी जगत् उसका आश्रय को तब जित्तिज्ञासु का नीच दृष्टानमें लगाव यथा  
 मल मूत्रके स्थानको शुचि करावे उद्योगका जित्तिज्ञासुको जैसा गोगहोवे तैनाई  
 उपचारको आश्रयने गर्ने करके सब रोगोंको दूर से काहेसे कि जबजग जि-  
 ह्नासुमें प्रभूपूर्ण बल नूई होता तबजग आत और आदर के आश्रय कर्के तब  
 और अचन को अङ्गीको करतीहोसो और सब बुग्मवगाव को विन्दू ही नई  
 और मानरूपी अतयार सर्प है ताने मानरूपी अतयार और सर्प समाजोंको  
 गधण करतीहै और मानका साभाव सब स्वभावनि पीहे दूर होताहै ॥ और  
 पावन विभक्तिमें मान की गेग और अचगुणों का वर्णन होयेगा ॥ ताने ऐसे जा  
 तू कित्तन और इन्द्रियों की अरोगता इमकरके जानी जाती है कि जिस चार्प  
 के विमित्त जो जो इन्द्रिय उत्तन हुई है निमी कार्पको सावधान होकर प्ररु  
 कर जैसा तेज भलीप्रकारसे चरण आती प्ररु, तने तब जानिये कि नेत्र और  
 चरण अगेम्यदें तैमे हृदयकी अरोगता तबे गहिनी जाती तब इन हृदयका  
 जो स्वत स्वभाव है और तिस प्रीति, जीवको उत्तन किया है निमी कार्पमें  
 तिर्यत्र सावधान होये ॥ और अपने स्वतसाभाव में दृढ़ होवे सो यह सावधानता  
 दो कारणों करके प्रकट होमी है एक भ्रष्टा हेवे तब ताने भ्रष्टा ऐसी चादिने  
 कि मगवत् बिना और किसी प्रदार्थ में प्रीति न होरे काहे में कि जैने गरीरका  
 आहार अनाजदें तैमे मगवत्की प्रीति और गहिचान हृदय का आहार होवे सो  
 जिस प्रकारकी सुखा सुन्द हो ॥ है, उद्योगी हो ताहे तने जिन मनुष्य के हृदयमें  
 मगवत्की प्रीति न होने विवका हृदय भोगी और निर्वन होताहै ताने मदासमें  
 ने भी इस प्रकार का है कि तब लग पुन और पिता और धन रूपरहार और  
 मन्त्रियों अधरा और किसी के साथ तृष्णा प्रीति दे तब लग तुम यह जानो  
 कि तब मेरी आता, जान गहुँचे ॥ और गरीर कृष्णेका समय आयेगा तब तुम  
 अधिस्तु भी हो भोगे ॥ च दूरिचनकी अरोगता यह है कि तनेने शुभभावनी  
 भावनेने इस मनुष्यको के योग्य फेड़े, पिताको सुगम ही करे और उस कामनि  
 कले में इसको यथ कुञ्चन करतागड़े और शुभकारुतिमें ही इसको म्याद विमल  
 उपज तबे सो ऐसी गदागुरुने भी कहेहै कि गदागत ता मनन मेरे नेत्रोंकी  
 पुननी के अर्थात् मदापिपत्तम है ॥ ताने जो पुरुष भ्रष्टा और वन अपने में न

देखे तब जाने कि मेरा हृदय रोगी है और जितने अपने रोगको पहिचाना उम को चाहिये कि उस रोगके उपचारमें सावधान होवे और ऐसी वहुन पुरुष होते हैं कि उनका हृदय तो रोगी है और उचित आरामको आरोप्ये जानते हैं सो इसका कारण यह है कि यह मनुष्य अपने अवगुणों को देखनेमें अनाई अर्थात् अपने अवगुणको आप नहीं देख सका पर जो काई आने अगुणको देखा चाहे तिसके चार उपाय हैं सो प्रथम यह कि जिज्ञासु एम सदगुरु के निकट बैठे जो सर्व धर्मोंका ज्ञाता होवे और वह अपनी दयाकरके जिज्ञासुके अवगुणको लखावे सो एम सदगुरु उस समयमें दुर्लभ प्राये जाते हैं १ तब दूसरा उपाय यह है कि काई मित्र अपनी रक्षा निमित्त करे और वह मित्र ऐसा होवे जो इसमें अवगुणको बुरावे नहीं और ईर्ष्या करके अधिक भी न करे सो पत्नी मित्र भी काई होता है जैसे दाऊतनाई नागी सन्त में लोगों ने कहा कि तुम हमारे निकट बैठने क्यों नहीं हो तब उन्होंने कहा कि मैं ऐमे पुरुषोंकी सगति कैसे करू जो मेरे अवगुणको प्रकट करके न रहें और दुःख सभै २ और तीसरा उपाय यह है कि जो कोई इस पुरुषका बैरी होवे सो वचनको मुने फाड़े कि बैरी की दृष्टिभी सर्वदा इसके अवगुणों पर ही होती है सो यद्यपि यह बैराग्य करके अहित भी कटना है तौगी उमके वचन में कुछ मत्थभी होता है ३ और चौथा उपाय यह है कि जब किसी मनुष्यमें कोई अवगुण लखे और वह अवगुण इस फि बुगलगे तब आप भी उस अवगुणको त्याग करे और यों जाने कि जैसे इस आत्मलक्षण करने यह पुरुष बुरा भामता है सो ऐमे में भी ऐमे स्वभाव करके बुरा होऊगा जाने उसका त्याग कर जैसे एनामी सन्त में लोगों ने पूछा कि ऐसा भना स्वभाव तुमने किससे सीखा है तब उन्होंने कहा कि यह भना स्वभाव मैंन उमप्रकार सीखा है कि जब किसी पुरुषमें मेने अवगुण देखा और मुझको बुरा भासा तब मैंने उन अवगुण का त्याग किया ४ तबने जान तृति जो मनुष्य मडासूद होता है उट अपनेको विगेष जानता है और जो पुरुष विगेष बुद्धिमान् होता है सो आपकी घुग जानता है नैम उमने पर सन्तमें पूछा ॥ कि मडापुरुष तब तुममें कपटियों के लक्षण यह ॥ सो तूग भलीप्रकार जानते होता है मुझमें सोनकर रहा कि मुझमें कपटियों का सोन लक्षण दे तब मैंने अपने अवगुणको पहिचाना ॥ तबने सब किसी को चाहिये कि अपने अवगुण के पहिचानने का उपाय तरे यह मे

कि जतलग अपने रोगको न पहिचानिये तजलग उपचार भी उमका नहीं है।  
 सक्रम और मर्य ओषधियों का मूल यह है कि अपनी वासनासे विपर्यय होना  
 मो महाराजने भी योही आज्ञा की है कि अपने मनको वासनासे विपर्ययको  
 तब उत्तम सुख स्थान में तुम्हारा निवास होगा और महापुरुषने भी जिसमध्य  
 मनमुषोंको युद्ध करके जीता तब अपने संगियों ने कहा कि अब हम छोड़  
 लड़ाई तो जीत आये अब बड़ी लड़ाई में भाग प्राप्त हुये हैं तब संगियों ने पूछा  
 कि बड़ी लड़ाई क्या है तब उन्होंने कहा कि मनके साथ युद्ध करना यह बड़ी  
 लड़ाई है और योभी कहा है कि अपने मनको वृत्तसे बचावो अर्थात् महाराज  
 की आज्ञा का उल्लंघन करके मनको उमकी वासना अनुकूल आहार मन दा  
 काहेमे कि पत्नीरुमें यह मनही तुम्हारा शत्रु होयेगा और सब इन्द्रियां तुमको  
 भ्रिकार कहेंगी ॥ और हसनवमरी सन्तने भी कहा है कि कोई पशु कठोर और  
 अजीत मत्तके समान नहीं और सिर्गिसक्त सतने भी कहा है कि ज्ञानीस वीरे  
 मन मेरा मधुके साथ रोटी खानेकी इच्छा करता है पर भैंते अथनग अगीकृत  
 नहीं किया ॥ और इमाहीग खवामने भी कहा है कि मैं एक पहाड़पर चनाजा  
 ताथा तब मुझको अनार खाने की इच्छा हुई तब मैं एक अनार तोड़कर खाने  
 लगा सो वह खटा निकला तब मैं उमको छोड़कर आगे की चना तड़ा यह  
 पुरुष पहाड़ आया तिसको मैंने देखा कि उमको बहुत मासी डम रही है तब मैं  
 उमको बहुत नमस्कार किया तब उमने भोग ताम लेकर मुझको बुलाया तब  
 मैंने कहा कि तुमने मुझको क्योंकर पहिचाना बहुरि उन्होंने कहा कि निरुत्त  
 भगवत् को पहिचाना है उसमे कुत्र गुण नहीं रहता तब मैंने उनमे प्रश्न किने  
 देखना हू कि महाराज के साथ तुम्हारा गिलाप है तबने तुम महाराज के जाये  
 प्रार्थना क्यों नहीं करते कि जो माखियों को दूर करें और तुमको यह माखी  
 इ मत्त दें तब उन्होंने कहा कि वेरा भी तो महाराज के साथ गिलाप है तबने  
 तु प्रार्थना क्यों नहीं करता जो मेरी अनार की अभिजापा दूर करे ताहे मे  
 अनार की वासना करके हृदयको इ म पट्टचना है और माखियों के डमरे म  
 इ म शरीर को होता है ताते जानू कि यद्यपि अनार का खाना पाप नहीं है  
 भी बुद्धिमान् यों जानते हैं कि वासना के योग पवित्र अथवा अपवित्र न  
 दोनों समान है और निन्द्य है फादे से कि जब पारसद्वित्र भागों से मा जान

ब्रजजानावे और कार्य निर्वाहमात्र पर न उधाराया जावे तो यह मन गोगवा-  
 सना करके पीपों विषे वर्तने लगता है इसी कारण से बुद्धिमानों ने पापरहित  
 भोगों का त्याग किया है तब इस यत्र करके वासना से मुक्त हुये हैं। सो ऐसे ही  
 उमर ने भी कहा है कि सचरवार मेंने पापरहित भोगों का त्याग किया है इन  
 भय करके कि मन मत्ता मेरा पीप भोगों में प्रवेश करे और योंभी है कि जब मन  
 रजिस्ती भोगों में प्रीति सयुक्त वर्तता है तब इसी समार को स्वर्ग जानता है  
 और मरने को दुःख जानता है और इसी करके बुद्धि अचेत होती है और  
 यद्यपि कुछ भजन और प्रार्थना करता है तो भी उसके मुख स्वादुकी तर्ही पाता  
 ताते। जंत्र इस मनको पापरहित भोगों से भी बंरज रखिये तब निर्बल और अ-  
 धीन होता है और इस लोकके सुखों से गागा चाहता है और परलोक के सुख  
 की प्रच्छा करने लगता है सो जब यह मन दुःख और अधीनता सयुक्त भगवत्  
 की जाम लेवे तब इतना स्वादु और फलदायक होता है जो सुखों से बंर  
 नाम लेवे। तो भी उसके समान नहीं होता ताते मन का दृशान्त वाज की नाई  
 है अर्थात् जब वाज पक्षी को पकड़ते हैं तब प्रथम नेत्र उसके मूंद कर घर में  
 रखते हैं और यत्र करके उसको उड़ने के स्वभावसे बन्द करते हैं। बहुरि तिसके  
 पीछे उसको थोड़ा र आहार देते हैं तब वाज उस पालनेवालेसे गिलाप प्यार  
 करने लगता है और आवाजागीरी होता है बहुरि जब उसको उड़ावते हैं तब प्यार  
 फरके फिर आती है तैमेही जब लग इस मनको सर्व वासनाओं को स्वभावों से  
 भिन्न न करिये तब लग इसको भगवत् में प्रतीति नहीं उपजती और जब लग  
 नेत्र काती रसना और सब इन्द्रियों को रोकें नहीं और मूष और एकान्त और  
 जाग्रत और मोनकरके इमामनको दण्ड न देवे तब लग मनका प्यार भगवत्  
 विषे नहीं होता सो यह यत्र करना मनको प्रथम कठिन होता है जैसे बालकको  
 माँतीको दूध त्यागना कठिन होता है पर जब माता उसको यत्र करके दूध पीनेसे  
 छुड़ाती है तब वह बालक ऐसा हो जाता है कि जो उसकी यत्र करके वह दूध पी-  
 जिमें तो भी नहीं पीना ताते। जानू कि तप करना यद्यपि कि जिस पदार्थ में  
 इस पुरुषको अधिक प्रीति होवे और उसकी प्राप्ति में बहुत प्रयत्नवा होवे तब  
 उसी पदार्थको त्यागदेवे और जो स्वभाव इमपर प्रबल होवे तिसको विपर्यय  
 करे यही उपाय नपड़े ताते जिम पुरुषको मान बढ़ाई में अधिक प्रीति होवे वह

मानका त्यागकरे और जिसकी प्रीति धनके संग्रहमें होवे वह धनका त्यागकरे और इसकी नाई जिस पदार्थको अपने सुखका स्थान भगवत् बिना जानकर होवे तब चाहिये कि यत्र करके उस पदार्थका त्यागकरे और उस पदार्थके साथ सम्बन्धकरे जो कदाचित् इससे दूर न होवे और जो सामग्री मर्गके समकक्ष से दूर होनेवाली है तिसको पुरुषार्थ करके आगेही त्यागकरे तो शीघ्र इसका सङ्गी एक महाराजही है और कोई नहीं जैसे महात्मा दाऊदको आकरसिपाही दुईथी कि हे दाऊद! सङ्गी तेरा एक मेरी ही होता तू भेरेही साथ मिलाप कर और महापुरुषने भी कहा है कि मुझमें भगवत्के मुख्य पार्षदने इसप्रकार कहा है कि गायकके जिस पदार्थके साथ तू प्रीति करता है वह निस्सन्देह तुझमें दूरहोवेगा । अब छोटे विभागमें भले स्वभावोंके लक्षण बयान होवेगे ॥ ज्ञाते जानते कि भगवत्ने भले स्वभावोंके लक्षण इसप्रकार कहे हैं कि निस्सन्देह ऐसे जिनसे संसारसे मुक्त हुये हैं जो त्याग और भजन और शुकु सयुक्त हैं और जो भी कहा है कि मेरी प्रीतिगले मनुष्य में है जो मर्त्य व्यवहारोंमें धर्मके साथ वर्तते हैं और जो कपटियोंके लक्षण हैं तो सच ही वे स्वभाव हैं जैसे महापुरुषने कहा है कि प्रीतिवानोंकी श्रद्धा भजन और तपमें होती है और मनमुक्तोंकी श्रद्धा आहार और भोगोंमें रहती है ॥ और ज्ञानिमनायी सन्तने कहा है कि गुरुमुख का हृदय विचार और आध्वर्यमें रहता है और मनगुल आशा और लक्षणा विषे आमक्त रहता है चहुरे गुरुमुख सब समारसे निराश रहता है और एक महाराजही की आश रखता है और मनमुक्त सब लोगोंकी आशा र्म्भता है एक महाराजसे निराश रहता है और गुरुमुख धनको धर्मपर नियंत्रण करता है और विमुख अपना धर्मही धनपर नियंत्रण करता है चहुरे गुरुमुख भजन करता है और भयमयुक्त रहता है और मनगुल पाप करता है और निरु होकर संसारा है गुरुमुखकी प्रीति एवान्त विषे होती है और मनमुलकी प्रीति जगत्के मिलापमें होती है गुरुमुख यद्यपि सुकृतबीज बोधता है तोभी दया रहता है कि मेरी सेनी किनके नष्ट न होजावे और मनगुल शुभ बीज बोधता ही नहीं और फलकी आश करता है ॥ और सन्तजनोंने इसप्रकारसे कहा है कि भले स्वभावके लक्षण यह है कि मनुष्य लज्जावन्त और निर्भीक और शुभनिष्ठ होते और सत्य बोलने वचन थोड़ा करे और भजन

निष्पाप होवे संयमी होवे सब किसीका भला चोहे और सर्क सुखदायक होवे  
 दियावान, गभीर, धीर, मन्तोपी, धन्धवाद करनेवाला, सहनशील, निर्होम होवे  
 हिन्दुवचन और धिक्कार किसीको न करे निन्दा रहिन होवे किसी के वचनका  
 छिद्र न दूदे वचन शुभ बोले किसीकार्य में उतावली न करे हृदय में क्रोधकी  
 अग्नि न राखे ईर्ष्या न करे मस्तक प्रसन्न राखे मित्रता और वैर प्रसन्नता और  
 क्रोध सब जिसका केवल धर्मही के निमित्त होवे पर ऐसे जानू कि स्वभाव  
 की भलाई सहनशीलतामेंही विशेष दोनी है जैसे महापुरुष को जब मनमुत्तों  
 ने दुःखदिया और दाततोड़े तब उन्होंने महाराजमें प्रार्थनाकी कि हे महाराज !  
 तू इनके ऊपर दयाकर काहेसे कि यह मुझको जानतेही नहीं और इवराहीम  
 अदहमनामी सत एक वनमें चलेजाते थे तब एक सिपाही उनको मिला और  
 उसने पूछा कि तू कौन है। तब इन्होंने कहा कि मैं गुलामहू वदुरि-सिपाही ने  
 पूछा कि वस्ती कहा है तब इन्होंने शमशानकी ओर सयनकरी तब सिपाही ने  
 कहा कि मैं वस्ती को पूंछनाहू तब फिर इवराहीम ने कहा कि वस्ती तो यही है  
 तब सिपाही ने उनके शिरमें लाठीमारी और रुधिरहनेलगा और उनको खूब  
 कर जोगमें लेआया तब लोगोंने देखकर सिपाहीसे कहा कि हे मूर्ख ! तू जानता  
 नहीं कि यह इवराहीम अदहम है तब वह सिपाही घोड़ेपरसे उतरकर इवराहीम  
 जी के चरणोंपर गिरपड़ा और कहनेलगा कि मैंने भूलकर यह अपराध किया  
 तुम क्षमाकरो तब लोगोंने सिपाही से पूछा कि तूने किम निमित्त इनको मारा  
 तब उसने कहा कि मैंने इनसे पूछाथा कि तू कौन है तो इन्होंने कहा कि मैं गु-  
 लामहू तब इवराहीमजी बोले कि मैंने तो सत्य कहा है क्योंकि मैं भगवत् का  
 गुलामहू यह बात निस्मदेह है वदुरि सिपाहीने इवराहीमसे कहा कि भला जब  
 मैंने तुमसे पूछाथा कि वस्ती किधर है तब तुमने शमशान को क्यों बनाया तब  
 इवराहीमजी बोले कि यहमो हगने सत्यकहा काहेमे कि लोग नित्यप्रतिष्म-  
 शानही विषे आपने हैं वदुरि नगर उतड़ते जाते हैं और शमशान बसनाजाता  
 है ताते वस्ती यही है फिर सिपाहीने कहा कि जब मैंने तुमको मागया तब तुम  
 ने मेरे ऊपर क्रोध दृष्टयमें कियाहोगा तब इवराहीमजी बोले कि मैं महागजके  
 आगे प्रार्थनाकरके तेरा मजा और कृपाप पाहा क्रोध नहीं किया वदुरि सिपाही  
 ने पूछा कि तुमने मेरा भला किम निमित्त चाहा तब इन्होंने कहा कि मुझकी



मानका त्यागकरे और जिसकी प्रीति धनके संप्रदमें होवे वह धनका त्यागकरे और इसकी नाई जिस पदार्थको अपने सुखका स्थान भगवत् बिना जानके होवे तब चाहिये कि यत्र करके उस पदार्थका त्यागकरे और उम पदार्थ के साथ सम्बन्धकरे जो कदाचित् इसमें दूर न होवे और जो आमयी मरने के समय इस से दूर होनेवाली है तिसको पुरुषार्थ करके आगेही त्यागकरे सो सदैव इस सङ्गी एक महाराजही है और कोई नहीं जैसे महात्मा दाऊदको आकाशवाणी हुईथी कि हे दाऊद ! सङ्गी तेरा एक मेंही हूताते तू मेरेही साथ मिलापकर और महापुरुषने भी कहा है कि मुझमें भगवत्के मुख्य पार्षदने इसप्रकार कहा है कि गायाके जिस पदार्थके साथ तू प्रीति करता है वह निस्सन्देह तुझमें दूर होवेगा । अब छठे विभाग में भले स्वभावों के लक्षण वर्णन होवेंगे ॥ ताते जाना मुक्ति भगवत्ने भले स्वभावों के लक्षण इसप्रकार कहे हैं कि निस्सन्देह ऐसे जिह्वा ससार से मुक्त हुये हैं जो त्याग और गजन और शुकुर सयुक्त हैं और जो भी कहा है कि मेरी प्रीतिवाले मनुष्य ऐसे हैं जो सर्व व्यवहारों में धैर्यके साथ वर्तते हैं और जो कपटियोंके लक्षण हैं सो स्वही बुरे स्वभाव हैं जैसे महापुरुषने कहा है कि प्रीतिवानोंकी श्रद्धा भजन और तपमें होती है और मनमुखोंकी श्रद्धा आहार और भोगोंमें रहती है ॥ और हातिमनामी सन्तति कहा है कि गुरुमुख का हृदय विचार और आश्चर्यमें रहता है और मनमुख आशा और तृष्णा विषे आसक्त रहता है बहुरि गुरुमुख सब ससार से निराश रहता है और एक महाराजही की आश रखता है और मनमुख सब लोगोंकी आशा रखता है एक महाराज से निराश रहता है और गुरुमुख धनको धर्मपर निबध्ना करता है और विमुख अपना धर्मही धनपर निबध्ना करता है बहुरि गुरुमुख गजन करता है और भयसयुक्त रहता है और मनमुख पाप करता है और निद्रा होकर हैसता है गुरुमुख की प्रीति एकान्त विषे होती है और मनमुखकी प्रीति जगतके मिलापमें होती है गुरुमुख यद्यपि सुकृतवीज बोधता है तो भी डाँडा रहता है कि मेरी ग्वेती विनकरके नष्ट न होजावे और मनमुख शुभ बीज बोधता ही नहीं और फलकी आश करता है ॥ और सन्तजनोंने इसप्रकार से भी कहा है कि भले स्वभाव के लक्षण यह हैं कि मनुष्य लज्जावन्त और निर्दोष और शुभचिन्त होवे और सत्य बोले वचन थोड़ा कहे और गजन प्रवृत्त करे

निष्पाप होवे सयमीहोवे सब किसीका भलाचढ़े और सर्वका सुखदायक होवे  
 दयावान्, गभीर, धीर, मन्तोषी, धन्यवाद करनेवाला, सहनशील, निर्दोष होवे  
 दुर्वचन और धिक्कार किसीको न करे निन्दा रहित होवे किसी के वचनका  
 छिद्र न दूढ़े वचन शुभ बोले किसीकार्य में उतावली न करे हृदय में क्रोधकी  
 अग्नि न राखे ईर्ष्या न करे मस्नक प्रसन्न राखे मित्रता और वैर प्रसन्नता और  
 क्रोध सब जिसका केवल धर्मही के निमित्त होवे पर ऐसे जान तू कि स्वभाव  
 की भलाई सहनशीलतामें ही विशेष होनी है जैसे महापुरुष को जब मनमुल्लो  
 ने दुःखदिया और दाततोडे तब उन्होंने महाराजसे प्रार्थनाकी कि हे महाराज !  
 तू इनके ऊपर दयाकर काहेसे कि यह मुझको जानतेही नहीं और इवराहीम  
 अदहमनामी सत एक वनमें चलेजाते थे तब एक सिपाही उनको मिला और  
 उसने पूछा कि तू कौन है तब इन्होंने कहा कि मैं गुलामहू बहुरि-सिपाही ने  
 पूछा कि वस्ती कहा है तब इन्होंने श्मशानकी ओर सयनकरी तब सिपाही ने  
 कहा कि मैं वस्ती को पूछनाहू तब फिर इवराहीम ने कहा कि वस्ती तो यही है  
 तब सिपाही ने उनके गिरमें लाठीमारी और रुधिरहनेलगा और उनको भँव  
 कर नगरमें लेआया तब लोगोंने देखकर सिपाहीसे कहा कि हे मूर्ख ! तू जानता  
 नहीं कि यह इवराहीम अदहम है तब वह सिपाही घोड़ेपरसे उतरकर इवराहीम  
 जी के चरणोंपर गिरपड़ा और कहनेलगा कि मैंने सूत्रकर यह अपराध किया  
 तुम क्षमाकरो तब लोगोंने सिपाही से पूछा कि तूने किम निमित्त इनको मारा  
 तब उसने कहा कि मैंने इनसे पूछाथा कि तू कौन है सो इन्होंने कहा कि मैं गु-  
 लामहू तब इवराहीमजी बोले कि मैंने तो सत्य कहा है क्योंकि मैं भगवत् का  
 गुलामहू यह बात निस्मदेह है बहुरि मिराहीने इवराहीमसे कहा कि भला जब  
 मैंने तुमसे पूछाथा कि वस्ती किधर है तब तुमने श्मशान को क्यों बनाया तब  
 इवराहीमजी बोले कि यहमोहगने सत्यकहा काहेमे कि लोग नित्यप्रति श्म-  
 शानही विषे आरते हैं बहुरि नगर उन्नतते जाने हैं और श्मशान बसताजाता  
 है ताते वस्ती यही है फिर सिपाहीने कहा कि जब मैंने तुमको माराथा तब तुम  
 ने मेरे ऊपर क्रोध हृदयमें कियातोगा तब इवराहीमजी बोले कि मैं महाराजके  
 आगे प्रार्थनाकरके तेराभत्ता और कन्याणुनाहा क्रोध नहीं किया बहुरि सिपाही  
 ने पूछा कि तुमने मेरा भला किस निमित्त चाहा तब इन्होंने कहा कि मुझको

यह निश्चय दृढ़ है कि सहने में बड़ा फल होता है सो जब मैंने ज्ञाता क्रिया  
 दयाहा सहने करके मुझको तो फल होगा परन्तु मुझको भरे करके इसका फल  
 लगेगा ताते मैंने तेरा भी भला चाहा ॥ और एक उसमान हैरीनामी सन्तये को  
 वह एक समय किसी गलीमें चलेजाते थे तब किसीने अचानक छतपरसे उनके  
 ऊपर राख प्याल भरके डाल दी तब वह सन्त वस्त्र अपने भाँड़कर महाराज का  
 शुकुर करने लगे बहुरि लोगोंने कहा कि यह शुकुरका कौन स्थान था तब उन्हो  
 ने कहा कि मैं अग्निमें जलावते योग्य था पर महाराजने राखपरही दयाकरके  
 निवेद्य कर दिया है ताते मैं शुकुर करता हूँ बहुरि इन्हीं उसमान हैरी की एक और  
 वार्ता है कि किसी पुरुषने प्रसाद पावनेके निमित्त इनका निगत्रण किया था सो  
 जब अपने घर ले गया तब भीतर घरमें परीक्षाके कारण करके पैठने न दिया तब  
 यह फिर चले बहुरि इनको उस पुरुषने पुकार लिया तब फिर आये बहुरि उसने  
 भीतर पैठने हुये वरजा तब फिर निकसचले इसी प्रकार उस पुरुषने बहुतवार इन  
 का निरादर किया और फिर फिर बुलाया सो जब वह पुरुषबुलाये तब चले आये  
 और जत्र वरजै तब निकसचले तब उस पुरुषने कहा कि हे महात्माजी ! मैं आ  
 फी परीक्षा लेता था सो निस्सन्देह आप उचमजन हैं तब उन्होने कहा कि यह  
 जो स्वभाव मैंने मेरे विषे देखा है सो यह तो कूकुरोंका भी स्वभाव है कि जो  
 कूकुरको बुलाइये तब आवता है और जत्र वरजिये तब फिर जाता है ताते इस  
 स्वभाव की क्या विरोधता है ॥ बहुरि एक और सन्तये उनका ज्यागरगथा जो  
 सबलोगोंमें जनकी बड़ाई प्रसिद्ध थी सो जब वह हम्माम अर्थात् स्नानके स्थान  
 में स्नान करने को जानेशे तब हम्मामका दहलुवा हम्मामको गवाली कहेता था  
 अर्थात् लोगोंको दूर करके तिनको स्नान करवनाया बहुरि एकदिन वह स्ना  
 नको गये थे और दहलुवा लोगोंको दूर करके किसी कार्यको गया था और वह  
 हम्मामों अकेलेही रहे थे तब एक पुरुष जंगली बर्दा आया और उसने इनको  
 देख कर जाना कि हम्मामका दहलुवा यही है तब उस जंगली पुरुषने इनको  
 अपनी दहलमें लगाया और आप स्नान करने लगा और जैसी दहल बंद है  
 सो करवाता रहा नेतीही यह करते रहे बहुरि जब वह दहलुवा आया और जंगली  
 पुरुषकी बोलना उसने सुना तब दहलुवा भयान् होकर निकस गया बहुरि जब  
 जंगली पुरुष गया और यह सततभी स्नान करके बाहर आये तब लोगोंने कहा

जिसे दृढ़लुवा मंत्रवाच दौकर भागगय है तब उस सन्तने कहा कि दृढ़लुवा क्यों  
 उड़ता है यह अथवा दृढ़लुवे की नक्षी मेरे गरीबी की प्रतीति काहेसे कि मेरे  
 शरीरको भ्राश्याम दृढ़लुवों की जाई है वह हरि एक और सन्तने सो सीवने की  
 क्रिया करके अपना त्रिर्वादि करने से सो एक मनमुष उन्से अपने वल सिलवा  
 कर जब मजदूरी दे देता था तब खोटाही रूपया देता था और वह लेखनेथे वृद्धि  
 एक दिन ध्याप किसी कार्यको रायेथे और दृढ़लुवा वहा तैय्य था तब वह मन-  
 मुष उस दृढ़लुवेको खोटा रूपया देने लगा दृढ़लुवे ने उर्ही लिया जब वह सन्त  
 अपने घर आये तब दृढ़लुवेने वह बात कही तब उन्हेने दृढ़लुवेसे कहा कि तूने  
 क्या क्यों नहीं ले लिया और कोई वर्ष से वह पुरुष मुंभको खोटाही रूपया दे-  
 ता रहा है पर मेने उससे प्रसिद्ध कके नहीं कहा कि तू खोटा रूपया क्यों देता  
 है तारे में उससे लेकर धरती विषे भाइ देता हूँ म विषे मे कि कोई और पुरुष  
 जाठगा जाते और एक आवेस करनी नाम करके एक सन्तने सो वह जब नगर  
 में जाने तब बालक उन्को पत्थर मारतेथे तब वह बालकों से कहतेथे कि मेरे  
 छोटे पत्थर मारे काहेसे कि जो भेरी रागी में से रुधिर निकलेगा तो मैं मजन  
 विषे खड़ा न हो सकूँगा और एक कोई मूर्ख किसी मन्तको दुर्बचन कहने लगा  
 था और वह मार्ग में चले जाते थे सो वह मूर्ख ली उर्तके सिर में दुर्बचन कहता  
 जाता था और यह मन्त गौन धीकर सुनते चले जातेथे सो जब सम्बन्धियों कि  
 स्थानिके निकट पहुँचे तब खडे हो गये और उन्से कहने लगे कि तुमको जो कुछ  
 और भी कहता हो सो सब हमको यदा ही कह दो काहेसे कि तेरे दुर्बचन जब  
 मेरे सम्बन्धी सुनेगे तब तुम्हको दुःख देवेगे और मालिकदीनार नागी मन्त से  
 किसी स्त्रिने कहा था कि तू कण्ठी है तब उन्हेने र्हा कि मेरा नाम यशो था  
 पर इस नगरके लोग जानने न थे यो मेने अप प्रसिद्ध किया है ताने जान तू  
 कि सम्पूर्ण मले स्वभावे के लक्षण यही हैं जो इन सन्तजनोंके लक्षण दर्शन  
 विषे मे सो यह स्वभावे उन्को प्राप्त हुये हैं जिन्होंने पुरुषार्थ करके मनके स्व-  
 भावोंकी पूर्ण विधाई और हृदयको गुच्छ किया है तबे गगत्र चिता और बुद्ध  
 नहीं देखते और जो कुछ देखते हैं निस का भेक भगवद्दी की जानते हैं ताते  
 चाहिये कि जो पुरुष वापने में यह लक्षण न देखे वह अभिमानि हो नये न  
 जाने कि मुंभको भर्ना स्वभाव प्राप्त है वह सप्त विगारा में चर्चयेन

होवेगा कि माता-पिता बालकों को इसप्रकार सिखावे ॥ ताते जानू कि  
 बालकभी माता-पिता के पास महाराजकी धाती है और बालकका हृदय प्रथम  
 माणिकी नाई शुद्ध होता है और कोमल होता है और जो कुछ उसको सिखावे  
 तिसका अधिकारी है और हृदय उसको शुद्ध भूमिकी नाई है जो कुछ भी  
 उसमें बोड़ये वह उग आवता है सो जब शुभवीज बोड़ये तब इमलोक और पा  
 लोकी भलाई को प्राप्त होता है और तब माता-पिता भी और गुरुभी उसके  
 पुण्यमें साक्षी है और जब बालकके हृदयमें अशुभवीज बोड़ये तब भाग्यहीन  
 होता है और फिर जो कुछ पापकर्म वह करता है तिस विषे भी माता-पिता और  
 सिखावनेवाले परलोकमें साथी हैं सो महाराजने भी कहा है कि अपने मन और  
 सम्बन्धियों को नरककी अग्निसे बचावो ताते बालकों को इस नरककी अग्नि  
 से बचावना स्थूल अग्निकी रक्षासे अधिक प्रमाण है सो नरककी अग्निसे बचा  
 वना इम प्रकार होता है कि बालक को भयसयुक्त रखे और उसको गले गुह  
 सिखावे और कुर्मंग से रक्षाकरे कि कुसंग करके सर्व विघ्न उत्पन्न होते हैं ताते  
 प्रथमही बालकको राजसी भोजन और वस्त्रका स्वभाव न डाले काहेसे कि ये  
 राजसी स्वभाव हैं सो जब इनका अभ्यास होनायगा तब पीछे भोगों विना रह  
 न सकेगा ताते चाहिये कि बालकके प्रतिपाल करनेवाली दाई भी भली होवे  
 और आहारभी शुद्ध पावनेवाली होवे काहे से कि बालक जैसा दूध पीवता है  
 तैसाही गुण अथवा अवगुण उसमें प्रवेश करता है और जब बालककी जिह्वा  
 खुले तब प्रथम भगवत्का नामही सिखावे वहरि जब पेमा होवे कि बुरे कार्य  
 से लज्जाकरे तब जानिये कि भलाहोगा और इसके ऊपर बुद्धिका प्रकाश व  
 मकाहे तब चाहिये कि वही लज्जा उमके विषे बढ़ावे और जब कुछ बुरा कार्य  
 करे तब उमको ताडना करे और वरजे सो प्रथमही बालक को खानेकी दृष्ट्या  
 उत्पन्न होती है ताते चाहिये कि उसकी खानेकी युक्ति सिखावे सो युक्ति यह है  
 कि जब भोजन खाने लगे तब प्रथम महाराज का नाम लेवे और धैर्य सयुक्त  
 खावे और अपनी दृष्टि किसी ओर के भोजनकी ओर न करे वहरि कभी कभी  
 बालक को रूखी रोटी भी खिलावे जिसमें बालकका स्वभाव रसों में अधिक न  
 होवे और बहुत खानेकी उमको निषेधता सुनावे कि आहार बहुत खाना पशु  
 ओं और मूलों का काम है और जो बालक भय सयुक्त होवे तिसकी प्रशंसा की

तब उसकी विशेषता सुनकर यह बालकभी उस स्वभाव को ग्रहण करेगा और वस्त्र श्वेत पहिरनेकी स्तुतिकर समझावे और रंगीन और रेशमी वस्त्रकी निंदा करे और कहे कि ऐसे वस्त्र सुन्दर पहिरना स्त्रियों का काम है अथवा अभिमानीयों का पहरावा है और शरीर का शृङ्गार बनावना नाचनेवालों और हिजरोका काम है भले पुरुषोंका स्वभाव ऐसा नहीं होता और जो बालक रेशमीवस्त्र और राजसी स्वभाववाला होवे तिसकी सङ्गति से अपने बालक की रक्षा करे काहेसे कि ऐसी संगति करके बालककी बुद्धि का नाश होता है और भोगोंकी घासना उत्पन्न होती है तबते निज बालककी रक्षा बुरी संगति से नहीं करते तब वह बालक क्रोधी और निर्लज्ज और चोर और भूखा और निडर हो जाता है सो वह स्वभाव उसका चिरकालपर्यन्त भी दूर नहीं होता बहुरि जब बालक चतुर्शाला पिपे जावे तब भगवत्के वचन उमको पढ़वावे और सन्तोंकी रहनि और वर्णवनेका इतिहास पढ़ावे और जिस विद्यामें स्त्रियों का शृङ्गार और उनकी प्रीति वर्णन होवे तिससे बरजे और पाठक ऐसे की संगति बालक को न करावे जो इस प्रकार कहे कि ऐसी विद्याके पढ़ने से बुद्धि त्वरु होनी है सो वह पढ़ाने वाला असुरकी नाई है कि बालकके हृदयमें प्राणोंका बीज बोयना चाहता है बहुरि जब वह बालक कोई सुकृतकरे अथवा कोई भलास्वभाव उममें प्रकटहोवे तब उसकी प्रशंसाकरे और कुछ बालककोदेवे कि उसकरके बालक प्रसन्नहोवे और जो कुछ बुराई करे तो प्रथम एक दोष देखकर चुपहोजवे काहेसे कि बालक दीठ न होजावे और जब दीठ होता है तब प्रकटही बुराई करने लगता है बहुरि जब बालकका स्वभाव बुराई विषे अधिकहोवे तब एकान्तमें उसको ताडनाकरे और कहे कि यह बुराई फिर मतकरना काहेसे कि जब तू फिर करेगा तो लोग देखेंगे और तू अपमानताको प्राप्तहोवेगा और पिताको चाहिये कि अपना मय उससे दूर न करे अर्थ यह कि पिता के होतेहुये बालक निर्लज्ज होकर न वर्णव बालकको दिनमें बहुत न सुलावे जिसमें बालसी न होनावे व रात्रिको भी कोमल शय्यामें सोने न देवे जो गरम बालकका हृदहोवे ओर दिनमें दोबड़ी पर्यन्त रोजनेकी भी छुटी देवे जिसमें बालकका चित्त अत्यन्त महुवा न रहे काहेसे कि मारे दिनके पारश्रममें चित्त को मून्की प्राप्तहोती है और बालक को ऐसा स्वभाव मिलावे कि सब किसी को नम्रता सहित और दीनता सहित म-

एताकरे और प्रवर किसी बालक पर बड़ाई करके बड़ावे नहीं और किसी बालक में कुछ लेवी नहीं और योंभी सिखावे कि ताकत और मुसकामें लें किसी के सम्मुख न डालो और किसी पुरुषकी ओर प्रीठ न करे ममसंयुक्त वेते और डाँट तले हीयधर्के न वेते कि ज्यहभी खक्षण आलसियोंका होता है और त्वहुत भी नहीं और किसी कार्यमें भगवत्की हुदाईमान् करे और बुझाये विना भोजे नहीं और जो कोई उससे बड़ा होवे उसका घनादरे न करे और उमके आगे होकर न चले और हुवे चला और अधिकार से अपनी जिहाकियो रोकै और जब बालक को पढ़ावने बालादर उदेवे तब प्रहर्षके पुकार न करे काहेसे कि सहना पुरुषोंका काम है और पुकार करता स्त्रियोंका काम है और जब बालक सात वर्ष का होवे तब उसको स्नान और मजने प्यार करके सिखावे और जब दशवर्षके होवे और नियम में कुछ अत्रना करे तब उसको ताडना देवे और शोरी और भूते और अशुद्ध आहारकी बुराई उसको लीवावे सो जब बालक को इस प्रकार सिखावे तब कि शोरा बुराई में सेव करे तब उसे भेद सो अप्रनी बुद्धि मरके सुगम समझता है तब चाँहिये कि उससे कहे कि भोजन करने की प्रयोजन यह है कि इस पुरुषको भजन करने का पल होवे और इस जगत में जीवने का प्रयोजन यह है कि परलोक मार्गका तोशा बनावे काहेसे कि जीवन थोडा है और मृत्यु इमको अचानक ही मसलेती है ताते बुद्धिमान् पुरुष बड़ी है जो इसलोक में परलोकका तोशा बना लेवे कि इमकरके उत्तम सुख और भगवत् की प्रसन्नता को पावे ताते पुण्य और पाप करके जो नरक और स्वर्ग और सुख दुःखकी प्राप्ति होती है सो भली प्रकार बालक को समझावे सो जब प्रथम बालक को मजनी प्रकार सिखाया जाता है तब प्रहर्षके उमके हृदय में मूर्च्छिका नाई बढही जाता है और जो प्रथम ही न सिखाये तो फिर पीछे उमके संह वगदेशादिक नहीं होता जैसे लवनी जियात् ऊसरकी मटीकी भीतिपण्योम नहीं उहरना सो इसीपर सुहिलस्त्री नामी एक सस्त्रीकी कथा है कि उन्होंने इस प्रकार कहा है कि जब मैं तीनों वर्ष का था तब रात्रि में पिता को भजन करते देनना या सो एक वाम उन्होंने मुझसे कहा कि हे पुत्रा जिस भगवत्ने तुमको उत्पन्न किया है तिमका तु भजन का नही कर्ता तब मैंने कहा कि भजन किसे कहते हैं तब पिताने कहा कि रात्रिकी सोयने के समय या कहलिया का तीनवार कि गदागजो मेरे साथ है

और महाराज मुक्तको देखता है और महाराज मेरा अनर्घ्यापी है सो कई रात्रि में नित्यप्रति इसी प्रकार कहता रहा फिर पिताने कहा कि अब यह वचन सात घोर रात्रिको कहाकर तत्र में सातवार कहने लगा फिर ग्यारहवार कहने को कहा सो खुद्वं विना भे ग्यारहवार कहता रहा तत्र इस कएके मेरे हृदय में कुछ स्वाद सुख आने लगा तब हुरि जंत्र एक वर्ष बीता तत्र पिताने कहा कि जो मैंने तुम्हको यह विसावायो है सो इसी को हृदय कालो और गंगे पर्यंत न विपागना कि यही अजत हमलो क और परतो क में तैरा सहाय रहेवेगा सो अफितन ही वर्ष पर्यंत मैं इसी प्रकार कहता रहा तत्र मेरे हृदय में और अधिक रक्ष्य प्रकट हुआ फिर पिताने कहा कि हे पुत्र महाराज जिम के साथ होवे और मदेव जिम के साथ होकर उसको देखतार है और जिम का हृदय का अनर्घ्यापी शीवे सो वह पुरुष प्राप क्यों कर करे ताते तुम्हको भी चाहिये कि तू पाप कर्म कदाचित् न करे चहुरिउसमे पीछे मुक्तको चटशाली में भेजा तत्र मैंने अपने चित्त में विचार किया कि पढ़ने में लगने का क्रे कहीं गेरा चित्त पर न जावे तो मैंने पाठक के माथ वचन कर लिया कि मैं तीन घड़ी पर्यंत पढ़ना और पीछे उधी गेजेन भविष्यत होऊगा इमी प्रकार मैं उस पाठक के पाम पढ़ने लगा और गंगत धाकर सम्पूर्ण मैंने पढ़े चहुरिउस सात वर्ष का हुआ तत्र मदेव दिन को त्रप करने लगा और रात्रिको आहार करता रहा तत्र हुरि जंत्र बारह वर्ष का हुआ तत्र मेरे हृदय में एक प्रथम आया और उम प्रथका उत्तर नगर में हिमीमे न टिया गयो चहुरि पिन फी अज्ञालेकर वसरेनामी नगर में आया पर वहा भी उम प्रथका उत्तर किसी ने न टिया चहुरि में एक और नगर में हवीव नागी बड़े भजमी संपके पाम गयो तत्र उन्होंने उत्तर देकर मेरे सहाय को निवृत्त किया तत्र कई वर्षों में उनके नि पट रहा और मुक्त को उनकी सगति भोचहुन काम प्राप्त हुआ चहुरि में अपने नगर वसने गयो आया और एकान्त रहकर भोजन इमा को करने लगा कि एक दिन के जब मोटा लेशर उमी में एक वर्ष पर्यंत भोजन कर्ता था और रात्रिके समय एकवार क्वित्त भोजन करने ना था चहुरि नी के दिन पाम लगा उममे पीछे सातवें दिन फिर पसीमें दिन खाने जगो सो तीन वर्ष में इनी अवस्था में रहा और सम्पूर्ण रात्रि बिने जागण काना रहा सो उप धार्ता का प्रयोजन यह है कि जोसा अर्घ्याप वाचे अरम्या में होना है वह निम्पदे हृदय हो जाता है ७



अब अष्टम विभाग विप्रे युक्तियों जिज्ञासु के अभ्यास और चलनी कथन होने  
 गी कि जिस प्रकार जिज्ञासु आदि धर्म के मार्गी विप्रे चलता है ॥ ताते जान  
 कि जो पुरुष भगवत् के दर्शन को प्राप्त नहीं हुआ सो तब इस कारण ओत नहीं  
 हुआ कि प्रथम ही उम मार्गी विप्रे जला नहीं और जो कोई उस मार्गी में नहीं  
 चला उसका कारण यह है कि उसने मार्गी को नहीं खोजा और न खोजने का  
 हेतु यह कि उसको बुझ ही नहीं थी और प्रतीति भी उनकी दृष्टानों की काहे से कि  
 जिस पुरुष ने यह जाना है कि इस लोक के सुख दुःखदायक और तारावार हैं  
 और परलोकका सुख निर्मल और नित्य है उस पुरुषको परलोकमार्गी की भक्ति  
 प्रकट होती है क्योंकि नीच पदार्थ को त्यागकर उच्च पदार्थ की प्रवृत्ति करने  
 कठिन नहीं होता जैसे कोई पुरुष माटीका वासन देवे और उसकी सोनेका वा-  
 सन उसके बदले में प्राप्त होवे तब उस पुरुषको माटीका वासन देना कठिन नहीं  
 होता ताते प्रसिद्ध हुआ कि परलोक मार्गी विप्रे विमुक्त होना मूर्खानियों की हीनता  
 करके होती है और प्रतीति की हीनता इस कारण करके होती है कि विचारवान्  
 और वैराग्यवान् पुरुष इस कालमें दुर्लभ है कि जिनकी संगति और उपदेश  
 इतर जीव धर्म मार्गी को प्राप्त होयें इसी से इतर ससारी जीव अपनी भलाई में  
 विमूक्त रहते हैं और जो कोई विद्यावान् पुरुष पाया भी जाना है उसके उपदेशों  
 की प्रीति प्रबल होती है और वैराग्य से हीन होता है सो जिस पुरुषकी प्रति  
 मायाकी तृष्णा विप्रे होवे वह और जीवोंको मायाका त्याग क्योंकर कराता  
 है और उसका उपदेश लोगों के हृदय में क्योंकर रहूँगा कि जिसको सुख  
 परलोक मार्गी विप्रे चलें काहे से कि परलोकमार्गी और इसलोकमें परस्पर  
 बड़ा विरोध है जैसे पूर्व दिशा और पश्चिम दिशामें अंतराय है कि जितना पूर्व  
 दिशा को जावे उतना ही पश्चिम दिशासे दूर होता है ताते जिस पुरुषको अग्र  
 स्त्री श्रद्धा प्रकट होवे तिसकी ऐसी अवस्था होती है कि जैसी ऊपर बर्णन हुई  
 सो महाराजने यों कहा है कि जिस पुरुषको परलोककी श्रद्धा उत्पन्न हुई है और  
 उसके मार्गी विप्रे बन और कर्तव्य करता है सो धर्मात्मा पुरुष बही है और धर्म  
 करना जो महाराज ने कहा है सो तिस यत्न को भी जानना चाहिये कि वह धर्म  
 क्या है ताते त्रमको जागे नये विभागों कहे हैं ॥ नवविभाग धर्ममार्गी के धर्म  
 की युक्ति वर्णनमें ॥ ताते जान कि यत्न करना यह है कि धर्मके मार्गी विप्रे

लने का उद्यम करना और कितनी युक्ति ऐसी है कि जब जिज्ञासु प्रथम उनको जीनलेवे और वर्नावकर तब पीछे धर्ममार्गमें चलने का अधिकारी होता है वहुरि उससे पीछे अपने ही रखा करनेवाले गुरुदेवका भरोसा करे और दृढ़ होकर उसका अर्चन करे वहुरि एक कोट है तिसकी ओटमें जिज्ञासु स्थित होवे सो प्रथम जो कहो है कि कई युक्तिका निर्वाह करे तब जिज्ञासु धर्ममार्ग का अधिकारी होता है सो उनमें प्रथम युक्ति यह है कि भगवत् और इस जीवके विषय जो परदे और आँड़ पड़ी है तिसको दूर करे जिससे मनमुखों के सग में उसकी गिनती न होवे जैसे महासंज ने कहा है कि मैंने मनमुखों के आगे और पीछे परदे टाँल दिये हैं अर्थ यह कि आपसे उनको दूर किया है सो वह चार परदे हैं जिन करके जीवकों परदे लुआ है एक १ धन दूसरा २ मान तीसरा ३ वेप चौथा ४ पाप सो धनको इस प्रकार परदा कहा है कि धन विपे चित्त लम्पट रहता है और जब लग चित्त निस्संकल्प न होवे तब लग धर्ममार्ग विपे चल नहीं सकाताते चाहिये कि धनके संग्रह का त्याग करे और किंचित् निर्वाह मात्र राखे पर उसमें चित्तको आसक्त न करे और जो यह पुरुष भ्रमग्रही होवे और आकाशी वृत्ति करके उसको धारण होवे सब वह तो सुखेनही धर्ममार्ग विपे चलता है वहुरि मानके परदे को इस प्रकार दूर करे कि जहापर इसका आदर और मान होवे निस स्थान को त्याग जीवे और ऐसे स्थान विपे जाय रहे कि जहां इसको कोई पहिचाने नहीं कहिये कि जब इम पुरुषको जगत् विपे मान प्राप्त होता है तब यह पुरुष इस जगत्के मिलाप विपे सुख जानकर आसक्त होता है और जो कोई जगत्के मिलापको सुख जानता है भगवत्को नहीं पहिचता २ और वेपको जो परदा कहा है सो इस कारण करके है कि जब यह पुरुष देखा देखी करके किसी मन और पण्यको ग्रहण करता है तब औरोंके मनको खण्डन करता है और अपने मतेको स्तुति करता है ताते उस पुरुषके हृदयविपे साचा वचन प्रवेग नहीं करना ताते चाहिये कि जितने मत और पंथ हैं समोंको बिसारे और भगवत्की एकता पर प्रतीति करे और चित्तको एकता विपे ही दृढ़ करे और एकता की दृढ़ता का लक्षण यह है कि भगवत् बिना और किसी का भोगमान करे और किसी के अर्चन न होये सो जो पुरुष अपने मनकी वागना के अनुसार चलना है वह धर्मनाही का दास है और वासनाही उसका भगवत् सो जिन पुरुषने यो नाम

हैं कि भगवत् एकद्वै और भगवत्की आत्मा विप्रेही ज्ञानना विघेप है तब ३३  
 पुरुष अपनी सुक्तिके निमित्त प्रवृत्त होते हैं और ज्ञानके बाद विवाद विप्रे नहीं  
 पंचता ३ और चौथा पदा जो पाप कदाहै सो जीवको गदाकमिन सद्वत्ता  
 ताहै काहेसे कि जिसे पुरुषकी स्वभाव प्रापकसों विप्रे दृढ़ होता है उसका इतर  
 अन्धकार काके मलीन हो जाताहै सो जिसका हृदय गलीन हुआ तिसको  
 गवत् प्रत्यक्ष नहीं भासना ताते अशुद्ध जीविका गी महापापहै और शुद्ध जी-  
 विका करके हृदय ऐसा अज्वल होताहै कि जेसा किसी कर्म करके नहीं हो  
 इसी कारण करके तपका मूर्त यही है कि अशुद्ध आहार का त्याग करे और  
 जीविका अपनी शुद्ध करे और जो पुरुष सो चाहे कि जैसे शुभ कर्तव्य संतनों  
 के वर्णन किये हैं तैसे कर्तव्य किये बिनाही भेद शून्य भेद सुखों तब इसका प्रकाश  
 यह है कि जैसे कोई पुरुष प्रहः चाहे कि मैं विद्यो के पदे बिनाही सास के  
 का ज्ञान हो जाऊसों यह बात किसी प्रकार हो नहीं सकी ज्ञाने जिमने यह ज्ञान  
 परदे दूर किये हैं वह भजत का अधिकारी होताहै बहु गितिससे पीके जिज्ञासुके  
 गुरुकी अपेक्षा होतीहै काहेसे कि गुरु बिना इस जीवको धर्मका मार्ग तभी सु-  
 लता क्योंकि भगवत्का मार्ग अतिगुह्य है और ससारी वासनाका मार्ग प्रकृत  
 है बहुरिसखा मार्ग एकहै और भूतेगर्भ अनेकहै ताते निस्सन्देह प्रसिद्ध है कि  
 ऐसा मार्ग सदगुरु बिना प्राप्त नहीं होता सो जिज्ञासुको ऐसा चाहिये कि जस  
 सदगुरु साथगिले तब अपने कार्य सदगुरुको अर्प और अपनी बुद्धि और बुद्ध  
 का त्यागको ताते जब इसको सदगुरु सुख आज्ञा करे और इसको कुछ सारा  
 आवे तो भी योजने कि यह भेरीही बुद्धि की गलीनताहै और मेरा कल्याण स-  
 दगुरुकी आज्ञा विपेहै और जब इसको फिर साराय आये तब जैसे जिज्ञासुओंने  
 आगे सदगुरुओंकी आज्ञामानी है और अपनी बुद्धिके सशय दूर किये हैं तब  
 के चस्त्रोंकी स्मरण करे काहेसे कि सन्नजनेने परे भेदको ब्रह्माहै कि जिज्ञासु  
 अपनी बुद्धिके उस भेदको गाय नहीं सका जैसे ज्ञानी नृसत्तामी एक बर-  
 वेंध हुआहै सो तिस समय में कियी सुर्य की दाहिने हाथकी अगुली में पीड़ा  
 हुई और तब जितने धेध धातियों ने उस अगुली पर ओषध लगाई पर बर-  
 पीड़ा दूर न हुई बहुरि ज्ञानी नृमने चारों का मेरा ओषध लगाई तब और वेधों  
 ने कहा कि अंगुलिया में पीड़ा होये और तबपर ओषध लगाई जले सो पर

कैसा सपनाप है और जालीनुस के औप लगाने करके भंगुलीकी सीड़ा हूँ  
 होगई सो जालीनुसने यों जानाथा कि इस अगुली में नाडीके मूलमे रोगउठा  
 है और सब नाडिया पीद और श्मिग से निकल का श्मिग विप्रेत्यसरती है प्रो  
 दाहिने ओरकी नाडी बायें ओर जाती है और बायें ओरकी नाडी दाहिने ओर  
 को जाती है पर इस रोदको और वैद्य समझने न थे औ जालीनुसकी जातता  
 था सो इस दृष्टान्तका तात्पर्य यह है कि किसी प्रकार जिज्ञासु सदगुरुकी आज्ञा  
 विषे चले और अपनी उक्ति और सशय न लावे और एक संनतने कहा है कि  
 मैं अपने सदगुरु के पास था सो मुकास्वप्न में देखा और उसको सदगुरुके  
 आगे कहा तब उन्होंने स्वप्नको सुनकर हृदयमें मेरेसार्थ रोपकिया और एकमास  
 पर्यंत मुझमे न बोले सो मैं इसका कारण समझना न थी बहुरि उन्होंने ही कहा  
 कि वह स्वप्न जो तेने कहा था सो सहाया कि मैंने तुझको कोई कार्य करना कहा  
 था और तूने कहा कि यह कार्य कि सुनिमित्त करावने है तब मैंने जाना कि  
 जाग्रतमें जब मेरी आज्ञामें तुझको सशय न होता तब तू स्वप्न विषे भी सशय न  
 लाता ताते मैंने तुझको शिवाके निमित्त और मेरे तबनमें सशयान लावने के  
 अर्थ रोप किया था सो जब इस प्रकार जिज्ञासु सदगुरुकी आज्ञा माननेमें दृढ़  
 होता है तब प्रथमही सदगुरु उसको कोटमें स्थित करने हैं फ्राहेंसो कि जिज्ञासुको  
 कोई विघ्न न लागे सो तब कोटकी चार भीति हैं एक मोन दूमरी छुया तीसरी  
 एकान्त चौथी जाग्रत फ्राहे से कि छुयाकरके भोगों का वलि सीण होता है और  
 जाग्रत करके हृदय उज्वल होता है और मोन करके बाद विवाद की विशेषता  
 दूर होती है और एकान्त करके जगत्के मिलापका कुमग और अपेग दूर होता  
 है और नेत्र और श्रवणभी रोके जाते हैं इसीपर सुहेलेनार्णिसतने भी कहा है कि  
 जो आगे सतहृये हैं वह इन चारों लक्षणों परकेही हृये हैं सो जब जिज्ञासु स्वज्ञ  
 पदार्थ विषे पसरनेसे सकुचा तब आगे सुखमार्गकी आदि यह है कि उम मार्ग  
 में कठिन श्रितियां हैं सो प्रथम निजको काटना है और चित्त में जितने मलिनी  
 स्वभाव हैं सोई कठिनवादी हैं जेध धन और मनकी चिष्ट्या और भोगोंकी वासना  
 और दम्भ और अभिमान और अज्ञ इनकी नाई जो मलिन स्वभाव हैं सो मर्ष  
 अशुभ कर्तव्यों के धन हैं ताते इनको दूर करना चाहिये कशे कि स्वज्ञ प्रार्यों  
 में इनही करके पसरना होना है सो प्रथम जब इनको दूर किया तब हृदय गुदा

होवेगा ताते सम्पूर्ण अणुम वासना को नोश करे और जिस प्रकार सदगुरुकी  
 आज्ञा आवे उसी प्रकार पुरुषार्थ करे काहे से कि सब जीवों का अधिकार भिन्न  
 भिन्न है और अपने अधिकार को यह पुरुष अपने आप करके नहीं पहिचान  
 सकत ताते सदगुरुकी आज्ञा करके हृदय शुद्ध होता है बहुरि जब हृदय शुद्ध  
 धरती शुद्ध हुई तब उसमें महाराजका भजनरूपी बीजवावे सो प्रथम जब आम  
 संकल्पोंसे रहित हुआ तब एकान्त और विषे भेदे और सदेव श्रीराम राम मन  
 और प्रीति से कहे बहुरि निसके पीछे निदाका बोलना उठर जाना है और वा  
 नाम मनही विषे फुलने लगता है बहुरि मनभी उठर जाता है और भीनाम को  
 अर्थाहृदय में प्रवल होता है सो अर्थकारूप यह कि जिस विषे बचन और बाणी  
 नहीं पहुँचती काहे से कि मन विषे स्मरण भी बाणी और अक्षरों करके होता  
 होसो बाणी और अक्षरभी अर्थरूपी फलकी त्वंवा है ताते चाहिये कि नामको  
 अर्थही हृदय में स्थित होवे सो ऐसा हृदयों कि उसमें मनको यत्न न भोगे  
 और अर्थरूपी कमल पर मनरूपी भँवरहोवे अर्थात् यत्न करकेभी उससे दूर न  
 होवे जैसे शिवलीनामी एक सन्त ने अग्नि जिज्ञामु से कहाया कि जब मूँ  
 पास आवे और तेरे हृदय में भगवत् विना और सकल्प फुर तब तेरा आत्मना  
 व्यर्थ होवेगा ताते जब जिज्ञामु ने संकल्परूपी कंटको से हृदयरूपी धरती शुद्ध  
 करी श्रीरामारूपी बीज को उममें बोया तब आगे इसके कारवृत्तका बचन नहीं  
 चलता ताते भगवत् की दयाका आश्रय करे और यों जाने कि देखिये इस बीज  
 का फल क्या होता है और अधिक करके तो यह है कि यह बीज निष्कल नहीं  
 होता इसीपर महाराजने भी कहा है कि जो गुरु परलोकसम्बन्धी बीज बोवता  
 है उसको में निस्तन्देह अधिक फल देता है और जब जिज्ञामु इस अर्थरूपी को  
 पहुँचता है तब एकस्मात् कभी ऐसा भी होता है कि भगवत् की माया करके  
 इसको हृदय में मूँदे सकल धान फुलते है और किसी को नहीं भी फुलने का  
 जिसका हृदय शुद्ध होना है तिस पुरुषके देवता और ईश्वरों का रूप प्रत्यक्ष भास  
 ने लगता है बहुरि यह भी है कि उनका मुन्दर स्वस्व स्वभावसे देने अथवा प्र  
 कृत मर्मय देसे बहुरि ऐसी ऐसी अवस्था प्रकट होमा है कि उनका चनात नहीं  
 किया जाता और उनके धर्षन करने में कुछ लाभ भी सिद्ध नहीं होना काहे  
 कि धर्म के मार्ग विषे चलने काके कष्टाण होता है और मार्गकी शर्ता करके

स्थानको पहुँच नदीसम्प्रा ताते जिज्ञासु की भक्ति है । इममें दोती है कि इस अ-  
 त्तस्या के ऐश्वर्यों को आगे ही श्रवण न करे काहेंसे कि ऐश्वर्यों को आश्री  
 करके भी विशेषता की प्राप्ति होना है ताते मेरे कहनेका प्रयोजन यह है कि जिज्ञासु  
 ऐसी अन्नस्था विषे संशयवान न होवोकाहे से कि बहुते पापिडन भी ऐसे होते हैं  
 कि उनको अवस्था के प्राप्त होनेमें प्रतीति नहीं होती ताते जिज्ञासु अवस्थाका  
 ज्ञान मेने किया है सो जिज्ञासु तिस विषे संशय न लवे और दृढ़ प्रतीति करे ।।

दूसरा सर्ग ।।

जाने कि यह उदर की नदी है अर्थ यह कि जैसे सरोवर  
 से प्रवाह निकसते हैं वैसे ही उदर की पुष्टता करके सत्र इन्द्रियों को चतुर्पहुँतता  
 है तिससे अपने अपने विषयको ग्रहण करती है इस करके प्रसिद्ध हुआ कि  
 सब जीवों पर आहार का विषय अतिप्रबल है और प्रवृत्ता इसकी प्रवृत्ति कि  
 जन्म उदर पुष्ट होता है तब कामकी अभिलाषा उत्पन्न होती है और काम की  
 अभिलाषा तब पूर्ण होती है जब भुक्तका समग्र होना है चहुरि धनकी उत्पत्ति  
 के निमित्त ईर्ष्या और वैरभाव और क्रोध और कपट और अभिमान आदि  
 अवगुण उपजते हैं ताते आहारकी आधिक्यता विषे आसक्ति होना सत्रपापों  
 की मूल है और आहार का समग्र करनसिब शुभगुणों का बीज है सो में भिन्न  
 भिन्न करके तिसका ज्ञान करूंगा ।। अथ प्रकट करनी स्तुति आहार के स-  
 मग्र की ।। इसीपर महापुरुष ने कही है कि क्षत्र और तृपाको अङ्गीकार करके  
 अपने मन के संग युद्ध करो तब उत्तमकृत्तको प्राप्त होवोगे और भगवत्के निकट  
 समग्र के समान और कर्तन विशेष कोई नहीं ताते जो पुरुष अपने उदर को  
 अतिपुष्ट करता है तिसको सूक्ष्मदेग की ओर मार्ग नहीं सुनता और किसी ने  
 महापुरुष से पूछा कि उत्तम पुरुष कौन है तब उन्होंने कहा कि जिस पुरुषकी  
 आहार समग्रसहित होवे और ज्वन भी समग्रसहित होवे और नग्नताके दृ-  
 त्तमात्र वस्त्रकोपड़े और इसीपर सन्तुष्ट रहे सो चंद्र मनुष्य महाउत्तम कहावता  
 है चहुरि योंभी कहा कि आहार और वस्त्रोंको समग्रसहित अङ्गीकार करना भी  
 महापुरुषोंका लक्षण है और योंभी कहा है कि जिस पुरुषका आहार समग्रसहित  
 है और उदर भी विचार के अन्तर्गत में दृढ़ रहे वह भगवत्का भिषतम है और जिस

पुरुषता आहार और निद्रा मर्यादा से अधिक है तब मात्राने विषम रहता है और योगी कदाहै कि अपने हृदय को मृत करने करे तो आहार की अधिकता के हृदय मृत हो जाता है जिसे अधिक जल करके खेती मृत हो जाती है तब आहार कि निर्वाण मित्र अल्प मात्रा ही आहार सुन्दर है होता है और अधिक आहार की विशेषता करके नासाय हाँकी गलितता व्यक्त होती है ताते कि हिये कि हवन ही आहार को जिसमें जल और प्रणाम और राजनका अंशक से रोका न जावे इसी पर डमानामी महापुरुषो श्री कदाहै कि जब तुम अपने शरीर को भूना और नग्न राखो तब निस्पन्दे इ भगवत् के दर्शन को प्राप्त होवोगे और महापुरुषों ने भी कहा है कि जैसे शरीर के सब अंगों में रुधिर भरे हुए है तैसे ही सब शरीर विद्यो गर्भ की चर्चितता भी व्यापार ही है ताते भूव करके चर्चितता के मांगी की शीको तब स्वाभाविक ही मन का निग्रह होवे और जेतना भी भर्त्सने कहा है कि तुम किदाचित्तेना भय गत करो कि हम सुवे रहेगे तो यह भय कलना अपोष है कोहो से कि महाराज भूव और अपनात तो आने भिन्नगों को देते है अपोष में दुर्बल जिज्ञासुजनों पर भेजने है जाने तुम ये मे ममागी जीवों को हम की प्राप्ति स्व हीनी है तातरथ्य यहाकि सबस राने विचार करके देखे और य निग्रह विद्या है कि हमने कि और मेलोके विषे सुख देने को मयम के ममान कोई पदार्थ नहीं और आहार की अधिकता के समान दुःखदायक भी कोई म ही ॥ अथापर ही कलने जाभि मयम के ॥ ताते जानू कि जैसे ओषध की कर्तुता ही ओषध का लाभ नहीं तैसे ही तयम विषे जो शरीर को कष्ट होता है सोय केवल कष्ट ही लाभ नहीं दे ताते आहार के भयम विषे १० लाभ प्राप्ति है तयम लाभ यहा है कि मयम करके हृदय शुद्ध और उज्ज्वल होता है और आहार की प्रुष्टता करके हृदय अन्ध होता है और जब कुछ विचार कमि लगता है तब खेती विषयना को प्राप्ति होता है कि उनही सुद्धि प्रणम जाना है और अरि विचारने लगती है उधीपर महापुरुषाने कहा है कि अपने हृदय की पीति और मोन म जीव अर्थात् यत्न करके और मयम करके शुद्धि और योगी कदा है कि मयमी शुद्ध हृदय उज्ज्वल होता है और विचार की प्रुष्टता होती है इसी शिवायी नामी मन्त्र ने कहा है कि जिसदिन आहारका संयम में करना है उन्दिने भो हृदय में यथीन विचार और अनुभवकी सुक्ति जय यहा सुन्दरी है ।

बहुरिहृष्यत्वाभीयहोकि सुप्रमः कसके भजनवत्तोर भार्गनाके ह्येइपयो परता  
 हे श्योर आदायुनि पुष्टता तत्रके अदयः कनेरहो ज्ञानादे त्रववे चद्यपि कुत्र भजन  
 भी कजादे तो भी ह्यदुमे असका सुखस्यसद तर्ही मरुट होवा इमीपर जनेद मनने  
 भीकहोहे कि तिसका सदर आहारमे न्यप्राने विमको भजन दो। प्राणना का  
 श्याणनद्वानही प्रीसाहोवादे न नद्विमी मसात्मभयहोके कि सुप्रमः तसके दोनवा  
 श्योर तप्रता उपनीती वे शी प्रसादकी सुप्रतालके अनेकता शी प्रसाद तद्वता  
 हे सो अर्माद ही नरकके व्यासके अकस्मे कि ज्ञानप्रम तद सुप्र आरको सुधीन  
 श्योर दीनानि हेसे तेषजानाभाववा की सुप्रमर्तना और सुप्रता की तर्ही सहि-  
 ज्ञानता ही प्री पर एक वाणि कि ज्ञान सुप्रमको समवत् की भोमसे सुप्र प्रयी  
 के सच्चिदेमर्मपणह्ये श्योर इसमका सुप्रताद्वे कि त्वम इनको अगीकार द्ये  
 तेष उदोने तिनती ककि कि सुप्रको इन सुप्रमर्तकी अपिसासा सुप्रतर्ही श्योर  
 मीयदी तद्विहि कि कमी आदायुनी मासि होने और कमी सुप्रदी रद्वता भना  
 वे साहेसे कि सुप्र विषे अर्थ और सुप्रदी लवा कसगा और आदायु कर के ते  
 उपकारको सहिज्ञानगा शतद्वि त्रीशा लभ्य यद्वे कि सुप्रको सुप्र गवती  
 विमको सुप्रि सुप्रो सुप्रया सुप्रती हे श्योर जव अतिपुष्ट होना तत्र अर्थ  
 तिनोके विमारहेतवे और सुप्रकोका सुप्रो विमरण द्वा ज्ञानाद रद्वि जव  
 सुप्रारद्वता हे तत्र गिलोकेके सुप्रो भी सुप्रण सुप्रते सा सुप्रकोके सुप्रका  
 साणं कना श्यो सुप्रो जीतोपरद पाकु होना परम सुलोसा सुप्रो सुप्र सु-  
 फनायी महा सुप्र से किसीने सुप्रया कि सुप्र सुप्रोके सुप्र सुप्र तो सुप्र सुप्र  
 राजमें प्रासह्ये हे कि सुप्र सुप्रे काहेको रद्वते हो तत्र सुप्रने सुप्र कि जा जनि  
 उरर सुप्र होने मे सुप्रको सुवे याचको सु विमरण होजावे ता उमम सुप्र जनि  
 अफाज दोवेगा नावे सुप्र श्योर सुप्रको सुने अगीकार कियोहे सु बहुरि पांचता  
 लाग येहो कि सुप्रका निप्रह कना मप्र सुप्रगुणोका सुप्र ओ गन केव्यवर्ती  
 होना गन्धगो का चीज वे सो जेमे कनेरह्यु सुप्र विज्ञा काप न तर्ही होना  
 तेमेही मनमो मयम विना चरी नही होना सो गनको योगा से तर्हि कनाही  
 परमलाभ हे काहेसे कि पापोंका सुप्र भोगदे और भोगों का सुप्र आदायुकी पुष्ट-  
 ताहे इमीपर सुचनुननागी मनने कडाहे कि मन जिन दिन अघायक भोगन  
 पिया हे उम दिन तिमन्देह मरने सुप्र पाप ह्यो सुप्र अघाय पाप की मत्ता



हुई है ताते यह धार्त्ता प्रसिद्ध है कि आहारके संयम करके व्यर्थ वचन और व्यर्थ  
 की भयलता दूर होजाती है और जो पुरुष आहार का संयम नहीं करता वे  
 उग्र वाद्, विवाद निन्दा स्तुति और काम की प्रवृत्तता होती है वहुरि जब  
 करके इन्द्रियांको विकारों से रोक राखे तब नेत्रोंको नहीं रोकसका और जब नेत्रों  
 को भी रोक राखे तब चित्तके सरूपका निग्रह नहीं करसका और संयम करके  
 स्वाभाविकही मन और सब इन्द्रियां निर्वल होजाती है ४ वहुरि आत्मां लाभ  
 है कि आहार के समय करके निद्रा भी क्षीण होजाती है सो गजन और मत्स्य  
 और विचारका बीज रात्रिका जागरण है और जो पुरुष अपने उदरको पुष्ट कर  
 है तब निद्राकी मूर्च्छा करके मृतककी नाई होजाता है और स्वप्नी मालिन रेश  
 ताते ताते सतजनोंने यों कहा है कि मनुष्यकी उत्तम पूजा आयुर्वेद है और रक्त  
 सरूपी रत्न है काहे से कि आयुर्वेद करकेही परलोकके लाभकी प्राप्तिसका है  
 अधिक निद्रा करके आयुर्वेद क्षीण होजाती है और संयम करके निद्रा का  
 दूरहोना है ताते समयही उत्तमपदार्थ है इसकरके कि आहारकी पुष्टता करके  
 मादिक स्वप्नी घनजाता है तब मन और शरीर गलिन होजाता है ताते भ्रम  
 विषे सायधान नहीं होसका ६ वहुरि मातवा लाभ यह है कि संयमी पुरुष की  
 संयम भी व्यर्थ नहीं वीतता और उसको व्यवहार की विवेचनाभी अल्प होती  
 है वहुरि जिम पुरुषको आहारकी अधिक अभिनाप है तिसकी आयुर्वेद मोक्ष  
 की सामग्री विषेही वीतजाती है और सर्पदा शरीरके प्रनिधान विषे रहता है और  
 आयुर्वेद समान पदार्थको व्यर्थ खोजनादी बड़ी मूर्खना है इसी कारणसे मित्रा  
 जनोंने यवके सतुवा खाकर मतोप किया है और सर्वजंतुओं से मुक्तपुत्रे है इसी  
 पर एक संतने कहा है कि अतिरु आहार करके पेटगुणों का नाश होता है सो  
 प्रथम तो गजनका रस्य नहीं आवना १ दूसरे वननोंका स्पर्ण नहीं रहना ३  
 तीसरे दया क्षीण होना ४ चौथे आलस उपहना ५ पाँचवें भोगों की प्रस  
 लता होनी ६ छठे मर्षदासाने और मनस्यागने की इच्छाविषे रहना ७ ८  
 वहुरि आत्मां लाभ यह है कि संयमकरके शरीर आगेन्य रहता है ना तो श्रेणी  
 अधीनता और औपधियों की कष्टता से मुक्त जाता है इसी पर बड़े जापानों  
 और श्रेणोंने यही गिद्धान दृष्टकिया है कि सर्वभोगों का वीज आहारकी अपि  
 यना है जो किम कानून किने सबही लाभदोते और किंचिन्मात्र दोष नही

सो आहारका समयही और एक बुद्धिमान् ने कहाहै कि सर्व आहारों विषे अनरिका भोजन, महापण्य है और कठोर अन्न अत्यत कुपण्यहै पर जब अनारही अधिक भोजनकरे तो भी खेद को पावता है और जब कठोर अन्नको अल्पअंगीकार करे तब नि खेद रहता है = बहुरि नवां लाभ यह है कि समयी पुरुष को जीविकाभी, अल्प चाहती है और धनकी अधिक तृष्णामे मुक्त रहताहै-सो सब विघ्न और, पोष और विषेप, तृष्णाही, से उपजते हैं काहे से कि जिसको नाना प्रकारके रसों और अधिक भोजनों की अभिलाष होवे तिसकी सर्व आयुर्वल घनेकी उत्तरति विषेही धीत जाती है और धनका उपजावना पापों बिना कठिन है। इसीपर एक बुद्धिमान् ने कहाहै कि मैं तो अपने मनोरथ को इस प्रकार पूर्ण करताहूँ कि प्रथमही मनोरथोंकी चामनाको त्याग देताहूँ ताने निश्चिन्त और सुखेनारहताहूँ = बहुरि दशवालाभ यह है कि समयी पुरुषका हृदय उदार होता है इसकरके कि समयी पुरुष को ऐसही समझ रहती है कि जिस पदार्थ करके उदर-पुष्ट करते हैं सो पदार्थ मलिनता को प्राप्त होजाता है और जो पदार्थ भगवत्के निमित्त दान करते हैं वह निस्सदेह महाराज के हाथों विषे पङ्कतता है इसीपर एक वार्त्ता है कि एकवार महापुरुष ने किसी धनवान् को देखा था मो तिसका शरीर बहुत स्थूलथा तब उस को देखकर कहने लगे कि जितना कुत्र तैने उदर विषे डाला है तितना जो तू भगवत् अर्थ देना तो भलाथा १० ॥ अथ प्रकट करनी युक्ति आहार के समय की ॥ ताते जान तू कि प्रथम जिज्ञासु को पापसे रहित आहार किया चाहिये बहुरि जैसे आहारकी अधिकता निन्द्य है तैसेही एकवारही अल्प करदेना भी निन्द्य है ताते चाहिये कि शनै शनै करके आहारको घटावे सो जब इसप्रकार करके क्रमसे आहार को घटावे तो शरीरभी सुखी रहता है पर उत्तम पुरुषों की अवस्था तो यह है कि प्राणों के निर्वाहमात्र भोजन करते हैं पर आहारकी अधिकता और अवरताका भी शरीरों और समय और क्रिया के अनुसार भिन्न भिन्नही अधिकार होताहै ताते सबों का तात्पर्य यह है कि अत्यन्त पुष्ट होकर भोजन न करे शुभा शेष बनीरहने देवे और शुभाको लक्षण यह है कि भोजन करने के पीछेभी इतनी रहजावे शुभा किरूवे भोजन को भी अगीकार किया चाहे इसीपर मुद्देनानी सनने भी कहा है कि यद्यपि सर्वे सप्तार पापरूप होजावे तौ भी प्रीनमान को शुद्ध जीविकाही प्राप्त

होती है अर्थात् कि प्रीतिमान् शरीर कि सिवाइये। अथिक्कं क्रीणता मस  
 कर्मामिनं तं पुंसोक्तिं परमवन्द्यी प्रीतिं उ त्रिदुःखे किमर्थेनैवमिच्छते  
 स्तोत्रोत्थगिरीकयोः शोभो जी नमकी धामनोइ भोनिता प्रे वि तर्पण हो  
 वनेह कीदृमेषि जेष यद गनं जयनो गीयना अतुक्तं भोमंति प्रयत्नरे को  
 प्रेमास् किके आग्र्य होजोनाइ बहुरिइगी वंसारकेजीगीअं प्रियतना ज्ञानो  
 तन्नि चोदिय किडेन गन को मंसार केभीगीभोअजिअं प्रेको निप्रइ करिरे  
 ओभवेगप कोकेमेना ह्युमिवाकिये किडम भंसारको वन्द्यास्नाज्ञाने को  
 शरीर केभनेक होने की बुक्ति लपमी जनि डमीपर मडीपुरुषाने भी श्रद्धादि कि  
 सरी यो शुभ मनुष्य वडी ह्युके रसनकी। चित्ते भोगो विमोअसिक्कमनुष्योअं  
 नानिप्रकोस्के रसां ओरवत्ता कं आभितोय कस्ति हे। इवीपरि म्यानगीएसा  
 लोको अकिभयणी ह्युवीकिहेम्वं मा अंममेतेरी स्थितिका म्यान म्ममने  
 होगी तने विा। कि नु धेवने कंगीकी गो गोमि गिविअं मको इमी फाखने  
 जिन पुको की अपनो क्षमना अनुभार मोम प्रीति हे हे। नित्रको म्महामुडकी  
 सन्दर्भागी जनिहे भुगीपर मुक्त सन्तमे श्रद्धे कि गनेको देवना अि कथंन  
 उमने उद्विओ तत्र तप देवना धोनी कि अमुक्त गममुवेने म्मकी कोषाने क  
 निगिर जनीवणे जीनिडोत्त हे लोमी। उसके मिगित ज्ञानो म्म शरीरकेताको  
 जोगा ओरिभूमे देवना कि कदा विक्रमोक्त प्रीतिमानि काप्यन प्रीति की इक्क  
 एहू लोमी उमके हाथसे धूमके धामनको गिगने जातहू आर देवामोमी म्म  
 को कितीने गिभी ओर अन्त च वेना शरिषधीमानिगी। या तप उन्दिने ल  
 गीदारनिह। मिया ओर केहेनना कि इपकी मुम्को म्मजीकादेसे कि पात्रो  
 विरे इम कामो वन्द्योवेगी इवीपर एत मम ही धार्ता हे कि म्मज्ञाना गिगं म्म  
 गोषन म्मनेवे शीर जने के धुके की धु गिरे उडा म्म साशा विनेन रक्मने जे की  
 तंफं धीर प्रीतिमानिकी। मिया वस्तुपी इमो ह्युडेवी सो लव लो म्म म्म  
 चह कंनु श्रोत ह्यु तंयनेहेनो जगो विडंकी म्मवता एत उडा म्म तत्रो तप र्भी  
 गितने कदा कि इव र्भु की। गो मुक्त म्म म्म वे सो म्म म्म म्म म्म म्म म्म म्म म्म  
 कपो गेडी कग वद्वि धे होनि कदा कि गेकेगाह। प्रुमके मुने गो म्मगादे प्रीक्क  
 एव म्मनुष्य की किती। भोगीकी धोवना अि म्मो गिगि उम म्महू को पापना म्म  
 धन म्मप उजाच हेरे म्म म्मके हाते भवई इवी म्मना हे धेव ही प्रेक निह म्म



में ज्ञानकरके ग्रहण त्यागके बन्धनसे मुक्त हुआ है ताते मेरी समझ यह है कि मैं  
 महाराज के गृह विषे अभ्यागत हूँ और सब दिग्ग महाराजके गृह है और जो  
 कोई वस्तु कोई देता है वह महाराजही की ओरसे और महाराजहीकी प्रेरणा से  
 है ताते जो कुछ मुझको महाराज देता है वही अङ्गीकार करलेता है और जब  
 कुछ नहींदिता तबभी प्रमत्त रहता है इसी कारणसे मैं किसी पदार्थको चाहतीकी  
 नहीं और किसीका निषेधभी नहीं करता पर यह अवस्था जो महाउत्तम और  
 इत्थिभेद सो मूर्खोंके गिरनेका स्थानगी यही है अर्थ यह कि मूर्खलोग इसबन्धन  
 को सुनकर आपको झानी मान लेते हैं और कहते हैं कि हमको ग्रहण त्यागका  
 बन्धन कुछ नहीं रहा पर अवस्था उनकी ऐसी नीच होती है कि उनमें सबके  
 मात्रभी वैराग्यका बन्धन नहीं होता और सर्वदा विषयो विषे आसक्त रहते हैं ताते  
 प्रसिद्ध हुआ कि जिनका मन सर्व्व बन्धनोंसे मुक्त हुआ है सो ऐसे ज्ञानवानों  
 से भी सहजही साधना रहजाती है और जो महा अज्ञानी हैं सो वह भी आप  
 को ज्ञानवान् जानकर साधन और यत्न का त्याग पर देते हैं पर मूर्खकरणी  
 की जो वार्ता भेने कही है सो उनकी ऐसी परमउत्तम अवस्थाकी कि जब कभी  
 उनको हाथीकरके दुःखावताधा लीभी वह उसको महाराजही की ओरसे सबक  
 करके शीतलचित्त और निर्लेद रहने से तात्पर्य्य यह कि जिनके चित्त गम्भीर  
 ऐसे हैं तिनही को ऐसे बन्धन गोभिनदें और यशस्वती आदिक जो सन्नहते  
 हैं तिनहोंने अपने मनको यत्न से दूर नहीं किया काहेसे कि मनके स्वभावों से  
 कदाचित् निर्भय न होनेसे पर यह वार्ता महाकठिन है कि मनके यत्नीकार हो  
 कर आपको ज्ञानवान् जानना बहुत वैराग्य है और अध्यास का त्याग जाना  
 सो यह बड़ी मूर्खताई है ॥ अथ प्रकट करना स्थूल भोगोंके त्याग विषे किशोरों  
 और उपाय विधियोंके निवृत्त करनेका ॥ ताते जानू कि अल्प बुद्धि लीरोंको  
 भोगोंके त्याग विषे दोबिन्न आन उपजते हैं सो प्रथम यह है कि जब यह मनुष्य  
 भोगोंका कुछ त्याग करता है और उसके त्यागमें समर्थ नहीं होसता तब वह  
 विषे उसकी भोग लेता है और इसप्रकार पाटता है कि लोग मुझको भोगका  
 न देते तो मर जाते सो अज्ञान विषे सम्पन्न होना है और दूसरा यह कि यह मनु  
 श्य आपकी ऐसी विचारता है सो यह भी करन सम्पन्न है और यह दोनों  
 प्रकार के पुरुष अपने मिल विषे ऐसा अनुमान करते हैं कि जब हम लौनों में

द्वारायकर भोगोंको अङ्गीकार करेंगे तब इमली क विपे लोगों की मनाई होगी इसकरके कि प्रथम तो निन्दा से बचेंगे और दूसरे भोगों विपे दीड, होकर न बनेंगे। सो यद्यपि उनको मन ऐसे सिखावता है तौ भी विचार करके देखिये तो केवल दम्भ है काहेमे कि जिन पुरुषों का हृदय वैराग्य और सन्तोष करके शुद्ध हुआ है तिनके ऐसे लक्षण वर्णन विपे आये हैं कि वह लोगोंके देखते में खान पान आदिक पदात्तों को अपने गृह विपे ले आतेथे और फिर उन पदात्तों को गुप्त भगवत् अर्थ दे डालतेथे सो यह परममाचे हृदयवालों की अवस्था है और यद्यपि ऐसा करनूत करना मनको महीकठिन होता है पर निष्कामताकी परीक्षाभी यही है कि ऐसे करतूत विपे संकोच न आवे और जतनग ऐसी भवस्था प्राप्त न होवे अर्थात् मनको इन्द्रप्रकार चर्चता सुगम और निर्यत्र सहजस्वभाव न होजवे तबलग जानिये कि मान और कपटमे मुक्त नहीं हुआ बहुरि जिस पुरुष के हृदय विपे मानकी कामना है उसका सब करतूत और भजन मानहीके निमित्त होता है और वह मानही का दाम है पर जो पुरुष आहारदिक भोगों का समय करके मानकी अभिनापा विपे आसक्त होजावे तब उस का दृष्टान्त यह कि जैसे कोई पुरुष मेधकी बूटोमे भागाकर पनालेके नीचे जाय भेदे सो ऐसा पुरुष मूर्खही कहाता है ताते जषु जिज्ञासु अपने विपे मानकी अभिलाष देखे तब चाहिये कि लोगोंके देखतेहुये अन्नमात्र समादिक के भोजन को अङ्गीकार करलेवे पर वृषणा करके अधिक न खावे तब इम विपे मान की क्षीणता होती है और भोगों से भी मुक्त रहेगा ॥ अर्थ प्रकट करना कामादिक विघ्नोंका ॥ ताते जानतू कि कामादिक अभिलाष को जगत् की उत्पत्तिके निमित्त मनुष्यों पराप्रबल क्रिया है पर जितनी इमकी अभिनाप अति प्रबल होने तितनेही इसविपे शिन् भी उत्पजने हैं और वह चित्त को अत्यन्त आवरण करते हैं इमीपर एक वार्त्ता है कि महात्मा समानापी महापुरुषने कलियुग से पूंछा कि वे! अधिक निवाम किस जगदमें होता है तब उमने कहा कि जहां पर स्त्री और पुरुष एकान्त विपे मिल के बैठते हैं वहाही मेरा अधिक निवाम है ताते तुम्हको चाहिये कि एकान्त विपे स्त्रियोंमे मिलाप मनकरे काहेमे कि ऐसे स्थान विपे में निश्चक होकर उत्पात और विघ्न डालता है पर केने मनुष्य ऐसे मूर्ख होने हैं कि कामादिक भोगों के निमित्त वनदापक शोषणों का सेवन करते हैं सो नि



विराहरे तिसको भी कोई दोष नहीं लगता सो यह किसी विरले पुरुषमे होस-  
 काहै इसीपर एक सन्त ने कहाहै कि, जिह्वासुजन जिम, प्रकार रूपवान् लड़कों  
 से, भयकरते हैं तैसे गरजते सिंहसे भी भयवान् नहीं होते ॥ अथ कामके बलको  
 तोड़ने की महिमाका प्रकट करना ॥ ताते, जान तू कि जितनी जिस भोगकी  
 प्रबलता अधिक, होती है उतनीही उसके बलको तोड़नेकी विशेषताभी अधिक  
 होती है, सो यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि कामकी अभिलाषा महाप्रबलहै और इस  
 विषे विचरना मलिनहै और केते पुरुष जो इस भोगसे रहित होते हैं सो अधिक  
 तो ऐमे होते हैं कि वह कामके वेगको लज्जावानी और दण्ड अथवा असम-  
 र्थता करके, रोके रहते हैं, ताते उनको कुछ अधिक फल नहीं होता काहेमे कि  
 लोगों से भयकरके सज्जुवे रहते हैं और भगवत् के भय करके उससे रहित नहीं  
 हुये और जब असमर्थता अथवा लज्जा करके, पापसे रहित होवे तो भी मला  
 है काहेमे कि, दु ल भोगनेका परलोक में अधिकारी तो नहीं होता पर जिमको  
 पापमे रक्षा करनेवाला और कोई हेतु न होवे और केवल भगवत् के गयरुके  
 पापकर्मों को त्यागदेवे तब उनको, अधिक फलही प्राप्त होताहै इमीपर एक  
 वार्त्ता है कि युमुक्तनामी, एक सत्र अतिमुन्दर हुये हैं सो उनको जनेखा नाभी  
 स्त्रीने मिलाप करके मोहित करना चाहा पर वह कामके रक्तको भनी प्रहार तो-  
 डकर, उससे मिलाप न करतेभये तब उत्तम पदवी को प्राप्तहुये बहुरि एक और  
 वार्त्ता है कि दो प्रीतिमान् किसी देशको चलेजाते थे तब मार्ग विषे एक भाई  
 किमी कार्य के निमित्त नगरमें गया और दूसरा आमन पर बैठाहा बहुरि देव  
 सयोग करके एक स्त्री सुन्दर आयकर उसको चपलता दिवावने लगी तब वह  
 प्रीतिमान् नीचे को शीग करके रोनेलगा ताते वह स्त्री लज्जावनी होकर चली  
 गई बहुरि जब दूसरा प्रीतिमान् आया तब पूछनेलगा कि हे भाई तू क्यों रोताहे  
 तब प्रथम तो उसने अपने वृत्तान्त को प्रकट न किया पर जब अतिरिक्त होकर  
 उसने पूछा तब उमने वार्त्ता को खोलकर कहा बहुरि यह वार्त्ता सुनकर यह प्री-  
 तिमान् भी रोनेलगा तब पहले भाई ने पूछा कि तू क्यों रोने लगा तब उसने  
 फटा कि मेरे रोनेका प्रयोजन यह है कि जैसे तुमने आपको स्त्री के बलमे व  
 चायाहै तैसे मैं आपको बचा नहीं सका बहुरि जर रात्रि विषे नयन कम्ने गये  
 तब स्वप्न विषे उनको वाराशवाणी हुई कि तुमने उमुक्तनी नाई आपको व





विरकरहे तिसको भी कोई दोष नहीं लगता सो यह किसी बिरले पुरुषमे होस-  
 काहै इसीपर एक सन्त ने कहाहै कि जिन्नासुजन जिस प्रकार रूपवान् लड़कों  
 से भयकरते हैं तैसे गरजते सिंहसे भी भयवान् नहीं होते ॥ अथ कामके बलको  
 तोड़ने की महिमाका प्रकट करता ॥ ताते जान तू कि जितनी जिस भोगकी  
 प्रबलता अधिक होती है उतनीही उमके बलको तोड़नेकी विशेषताभी अधिक  
 होती है सो यह वार्त्ता प्रमिद्ध है कि कामकी अभिलाषा महाप्रबलहै और इम  
 विषे विचरना मलिनहै और केते पुरुष जो इस भोगमे रहित होने हैं सो अधिक  
 तो ऐमे होते हैं कि यह कामके वेगको लज्जागानी और दण्ड अथवा असम-  
 र्थता करके रोके रहते हैं ताते उनको कुछ अधिक फल नहीं होता काहेमे कि  
 लोगों से भयकरके सकुचे रहते हैं और भगवत् के भय करके उससे रहित नहीं  
 हुये और जब असमर्थता अथवा लज्जा करके पापमे रहित होवे तो भी भला  
 है काहेसे कि इ ल गोदानका परलोक में अधिकारी तो नहीं होता पर जिसको  
 पापमे रक्षा करनेवाला और कोई हेतु न होवे और केवल भगवत् के भयकरके  
 पापवर्मों को त्यागदेवे तब उनको अधिक फलही प्राप्त होताहै इसीपर एक  
 वार्त्ता है कि यमुफनामी एक सन अतिसुन्दर हुये है सो उनको जनेखा नामी  
 स्त्रीने मिलाप करके मोहित करना चाहा पर यह कामके बलको भनीप्रकार तो-  
 डकर उससे मिलाप न करलेभये तब उत्तम पदवी को प्राप्तहुये बहुरि एक और  
 वार्त्ता है कि दो प्रीतिमान् किसी देशको चलेजाते ये तब मार्ग विषे एक भाई  
 किमी कार्य के निमित्त नगरमें गया और दूसरा आसन पर बैठा बहुरि देव  
 सयोग करके एक स्त्री सुन्दर आयकर उमको चपलता दिवावने लगी तब वह  
 प्रीतिमान् नीचे को नींग करके रोनेलगा ताते वह स्त्री लज्जावती हो कर चली  
 गई बहुरि जब दूसरा प्रीतिमान् आया तब पूछनेलगा कि हे भाई तू क्यों रोताहै  
 तब प्रथम तो उसने अपने वृत्तान्त को प्रकट न किया पर जत अनिदीन होकर  
 उसने पूछा तब उमने वार्त्ता को खोलकर कहा बहुरि वह वार्त्ता सुनकर यह प्री-  
 तिमान् भी रोनेलगा तब पहले भाई ने पूछा कि तू क्यों रोने लगा तब उमने  
 फटा कि मेरे रोनेका प्रयोजन यह है कि जैसे तुमने आपकी स्त्री क दनगे व  
 चायाहै तैसे मेे आपको बचा नहीं सक्ता बहुरि जब रात्रि विषे नयन फरने भय  
 तब स्वप्न विषे उनको आकाशवाणी हुई कि तुमने यमुफनाई नामका व

चाया है तोने तुम अन्यही बहुरि एक और वार्त्ता है कि तीन मनुष्य एकमार्ग विषे चले जातेथे सो जब गत्रिहुई तब मेघकी रक्षाके निमित्त एक पहाड़की कन्दग विष जांय रहे दैययोग कर्के पहाड के शृङ्गमें एक बड़ा पत्थर आय गिग और पहाड़की कन्दग के द्वारको रोकलिया तब तीनों मनुष्य व्याकुल हुये बहुरि यही विचार किया कि अपने २ पुत्रोंको स्मरण करके भगवत् म प्रार्थना करें तब एक पुरुषने कहा कि हे महाराजो मैं तेरी आज्ञा जानकर माता पिताकी अधिक सेवा करताया सो एकदिन माता के निमित्त दूधका कटोरा भरलायाथा तब उस समय विषे मेरी माता सोय गई थी ताने मैं हाथमें कटोरा लिये खड़ा रहा और आहार भी न किया सो हे अन्तर्यामी तू तो इस वार्त्ताको जानता है ताने हमको निकसनेका मार्ग करदे तब कुछ कन्दरा के द्वारसे वह पत्थर सरका पर बाहर आने योग्य मार्ग न चुना बहुरि दूसरे ने कहा कि हे महाराज तू इस वार्त्ताको जानता है कि एक मज्जूदूरी मज्जूदूरीमें पास रह गई थी सो मैंने उसी मज्जूदूरी की बरुनी मोलनी बहुरि उस अजाऊ इतना परिवार बढा कि मैंने उसही के मौल से बहुत पशु लिये सो जब बिरकाल के पीजे यह मज्जूदूरी आया तब मैंने वह सब धन उसको दे दिया सो जो यह वार्त्ता सत्य है तो हमको मार्ग देहु तब यह पत्थर हिलकर कुछ और भी द्वारसे हटा बहुरि तीसरे पुरुषने कहा कि हे महाराजो अमुकी स्त्रीके साथ मेरी शक्ति प्रीति थी और यह मुझको प्राप्त न होती थी सो जब दुर्गिकाल करके उसके सम्बन्धी जीत हुये तब मैंने उसको धनका लोभ देकर आने अनुकूल किया बहुरि जब मैं उसके निकट गया तब उसने कहा कि तू भगवत् मे नहीं डरता तब हे महाराजो मुझको तेरा वाग आया और तुझको व्यापक और सर्वदर्शी जानकर उमे का त्याग किया सो जो यह वार्त्ता सत्य है तो हमको मार्ग देहु तब यह पत्थर कन्दरा के द्वारसे हटा हुआ और यह तीनों बात निरुप करहु लोभे मुक्त हुये ।। जय प्रकृतिनामिने धता स्त्रियों और लड़कों की कृष्टि देवने की ।। ताने जानते तू कि प्रबल होने हुये कामको तोड़ना महाकठिन है इस कारण मे चाहिये कि प्रथमही नेत्रोंकी परदृष्टि मे गंके डमी पर एक मन्त्रने कहा है कि गिया के चन्द्र देवने करे भी वाग उपनता है ताने इनके ब्रह्माका देवता भी जिज्ञासु को प्रणय नहीं बहुरि स्त्रियों के माय बोलना और उनके बचनको सुनना और जहाँ उनका निवास

दोत्रे तद्वा ज्ञाना और उनसे हास्यादिक करना सो यह सब व्यवहार निन्द्य है तात्पर्य यह कि कामका कारण रूप है ताते स्त्री अभिलाष करके दृष्टि करनी अयोग्य है और जब अभिलाष बिनाही मार्ग विषे अथवा किसी और ठौर विषे अचानकही किसी र दृष्टि जापडे तब वह देखना पाप नहीं पर कि दूसरीवार उसको प्रीति करके देखना निस्मन्देह पाप है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि प्रथम स्वामयिक दृष्टि पढ़नी है और दूसरीवार देखना दण्डका कारण प्रयोजन यह कि स्त्री पुरुष का मिलाप सर्वथा विघ्नो का बीज है वदुरि ने तो ऐसे स्थान हैं कि वहा अवश्यही स्त्रियों का मिलाप होता है सो वह स्थान ही निन्द्य है जैसे राग जाचके ठौर अथवा विवाहादिक अथवा तमागे और मेलेकी ठौर जित्त सुको जाना प्रमाण नहीं वदुरि योंमी चाहिये कि स्त्रियोंके वस्त्र अथवा हारमालाको धारण न करे और न सूधे और उनकी किसी वस्तुको अगीकार न करे और प्रीति करके कुछ देवे भी नहीं इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि स्त्रियोंके साथ गंधुर नचन न बोलो काटे से कि जन मार्गविषे भी किसी स्त्री अथवा लडकोंका मिलाप होता है तब मनविषे यही सकल्प फुला है कि इसको अवश्यही देखना चाहिये पर जित्त सुको यही पुरुषार्थ चाहिये कि मनके माय युद्ध करे और यों कहे कि इस देखने करके सुम्नको पापदोगा और भगवत् मे विमुक्त होऊगा ऐसेही विचार करके मनको वर्ज गले तौ मला है ॥

### तीमरा सर्ग ॥

प्रथम घोलन के विघ्न के वर्णन में ॥

ताते जान त्वा कि यह रसना भी भगवत् ने महा आश्चर्यका बनाई है काहेमे कि देखने में तो एक गामका टुकड़ा है पर जो कुछ धरती और आकाश विषे मृष्टि है तिन सब पर रमनाका प्रवेश होता है और जिनने पदार्थ अहरे तिन का भी वर्णन करती हैं ताते यह रमनाही जुटिकी मन्त्री कही दे अर्थ यह कि जैसे कोई पदार्थ बुद्धिकी पहिचान से बाहर नहीं तैमही रमना भी सर्व पदार्थों को वर्णन करती है और अरु इन्द्रियों का धर्म पेम नहीं कि जो सर्व पदार्थों विषे वर्णमान होय जैसे नेत्र केवल जानाही की देगमकने और श्रमण के वत गडदरी के सुनने को समर्थ है फेनेही और दृष्टिवा भी गुरु गुरु कार्यको गण करती है पर यह रसना ऐसी है कि नेत्रों और प्रवणों और जाग मने

अगो के भेदको वर्णन करती है जैसे जीवकी चैनन्यता सर्वे भ्रमों विषे पसर रही है तैसेही रसना भी जीवोंके सर्वे सकल्पों की प्रकट करती है बहुत्र जैसे वचन का उच्चारण रसना करती है तैसाही प्रवेग हृदय को भी पहुँचता है जब अधीनता और वियोगका वचन उच्चारती है तब हृदय कोमल होजाताहै और नयनों के मार्ग से आंसू चलने लगते है और जब प्रसन्नता और किसी की स्तुति वर्णन करती है तब स्वामाविकही उसकी अभिलाष उपज आती है तात्पर्य यह कि जब रमना विषे झूठ और मलिन अक्षरोंका उच्चारण होताहै तब हृदय भी मलिन होजाताहै और जब शुभ वचनका उच्चारण करनेलगती है तब हृदय सात्विकी भावको प्राप्त होताहै इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि जबलग मनुष्य का हृदय शुद्ध नहीं होता तबलग इसका धर्मभी दृढ़ नहीं होता और जबलग रमना सूधी और सधी नहीं होती तब लग हृदय भी शुद्ध नहीं होता ताते रसनाके पापों और विघ्नोमे भय करना धर्मकी दृढता का कारण है इसी कारण से हम प्रथम तो गौनकी विशेषता कहेंगे बहुत्र रमना के विघ्न जो भूत और निन्दा और विवाद और कुर्वचन आदिक पाप हैं सो तिनका वर्णन करेगे और इनके उपायभी भिन्नभिन्नकरके कहेंगे ॥ अथ प्रकट करना परस्व मोनका ॥ ताते जान तू कि इस बोलने में डनने पापहै कि उनसे अपनी रक्षा करनी महा कठिनहै ताते सर्वो विषे गौनही विशेष उपाय है सो मनुष्यको चाहिये कि कार्य विना वचन न करे इसीपर सतोंने कहाहै कि जिनका आहार और निन्दा और वचन समय सहित होताहै वह निस्मन्देह सिद्ध पदवी को पातेहै इसीपर महा राजने भी कहाहै कि अधिक बोलने विषे रुदाचित् भलाई नहीं होनी ताते के बले किसीके उपकार अथवा दानदेने अथवा विरुद्धनिवृत्त करनेके निमित्तही वचन कहना भला है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि जिसको रमना और उदर और काम इन्द्रियकी उपायि से भागतने घचाप्रा है सो मुक्तरूप है बहुत्र एक श्रीनिगान् ने महापुरुष से पूछा कि विशेषकरतून कौन है तब उन्होंने संन करके कहा कि मोनही विशेष करतून है बहुत्र योगी कहाहै कि मोन ओग को मलस्वभाव सुवेन भजन है और योगी रुदाहै कि जब कोई अधिक बोलना है तब उसका हृदय कठोर होताहै सो पापोंका रूपहै और जो पापरूप हुआ सो अग्नि विषे जलने का अधिकारी है इसी पर एक यात्ता है कि एक समा विषे

कुछ वचनविनाम होताया और एक प्रीतिमान् मौनकरके बैठ रहाथा तब सनों ने उससे पूछा कि तुम क्यों नहीं बोलते तब उन्होंने कहा कि जब झुंठ रूह तब भगवत से इगताहू और जब सत्य रूह तब तुममें भेयवान् होनाहू ताते जान तू कि मौन की विषेपना इस कारण करके कही है। कि बोलने करके अनेक पाप उपजतेहैं और रसना सर्वदा व्यर्थ वचनों विषे आसकू रहती हैं बहुरि न बोलने विषे कुछ यत्नगी नहीं होता और मनमी प्रसन्नता को पाताहैं बहुरि गुण और दोष वचनके विचारने महाकटिन है इमीकारण मे कहाहै कि मौन करके सर्व क्लेशोंसे मुक्त रहताहै और पुरुषार्थ और एकाग्रता भी बढ़ती है और भजनविषे सुगम स्थित होता है ताते जाततू कि वचन चार प्रकार का है सो एक तो विघ्न रूपहै जैसे निन्दा और झूठ १ और दूसरा ऐसाहै कि उसविषे गुण दोष मिला हुआहै जैसे प्रयोजन विना किमीकी व्यथा पूछनी २ अहुरि तीमरा वचन गुण और दोषसे रहितहै सो यह व्यर्थ घादहै पर इसविषे यह बड़ी हानि है कि संगय व्यर्थ घीत जाना है ३ और चौथा वचन यह है कि जो सर्वथा गुणरूप है जैसे किसीके सुत्तके निमित्त वचन कहना ४ ताते इन चारप्रकारके वचनोंविषे तीन निन्द्यहैं और जित्नासु को चौथाही अगीकार करना योग्यहै पर जो पुरुष मौन विषे स्थितहै सो सर्व विघ्नोमें मुक्त होताहै स्वाभाविकही पर जितने रसनाके विघ्न हैं सो मन कोई परिचान नहींसकू इमीकारणसे में सर्व विघ्नोको भिन्न २ करके कहताहू सो पन्द्रह विघ्न प्रसिद्धहैं प्रथम विघ्न यहहै कि जिन वचन विषे तेरा कार्य कुछ न होवे सो यह बोलना भी महानिन्द्य है अर्थ यह कि जिस विषे व्यवहार और परमार्थकी सिद्धता कुछ न होवे तब बोलने करके सतोगुणकी शोभा नष्ट होजाती है जैसे किसी सभाविषे जायकर ऐसे वर्णनकरे कि मैं अमुक देग विषे इसप्रकार गप्पाथा बहुरि उन नगरों और पदाइों और खान पान और बागोंकी वार्ता करनेलगे सो यद्यपि वह कहना सत्यही होवे तौमी इसको व्यर्थवचन कहतेहैं ताते इसका भी त्याग कियाचाहिये काहेसे कि ऐसे वचनों विषे तेरा कार्य कुछ नहीं सिद्धहोता अथवा जब किमी मे प्रयोजन विना पृथ तौमी व्यर्थहै पर व्यर्थ उसको कहते है जिस विषे अवगुण कुछ न होवे और कार्य कुछ न होवे पर जब किसीसे ऐसे पूछे कि तैने मन राधाहै अथवा नहीं तो जब यह फटै कि मैं नहींहू तब अभिमानी होताहै और जो कहे कि मैं नहीं नहींहू तो भ्रष्ट होता

है अथवा लज्जा करके प्रशिक्षित पिताही आपकी धनी कहे तो भी पापी होता है सो यह अभिमान और पाप उसको नेत्रे पृथने करके ही लगता है ताते ऐसे पतनाही अयोग्य है अथवा जब किसी ने इस प्रकार पूछे कि तू कदा से आता है और कहा जाता है और क्या करता है सो जब उसको प्रसिद्ध कहना न होवे और भूट कहदेवें तो भी तेरे सम्बन्ध करके पापी होता है इसीपर एक वार्ता है कि एक वारं लुकमान नामी इकीम महात्मा दाऊदनामी महापुरुषके पास गया था वह आगे लोहेकी कुबच बनाते थे वहुरि लुकमान के चित्तविषे पूंखने की मन साहूई कि तुम यह क्या बनाते हो पर भया और धैर्य करके नहीं पूंखा सो जब वह कुबच को बना चुके तब गले विषे डालकर कहने लगे कि यह युद्धके मर्म भला पहरावा है तब लुकमान ने ऐसे जाना कि यह गौन उत्तम पदार्थ है परस विषे कोई प्रीति नहीं करता वहुरि जब यह मनुष्य किसीसे कार्य विना कुछ पूंछता है कि मैं लोगों के भेदको मरुत जानू और उनमें वचन करके भिन्नता का सम्बन्ध करूँ सो यह सबही बुद्धि की हीनता है ताते इसका उपाय यह है कि कान की निरुद्ध देखे और ऐसे ज्ञाने कि एकवार भी श्रीगमनाम लेना बड़ा धन है सो जब मैं ऐसे खजानेको बाद विवाद विषे देख्ये स्वोकेगा तब मेरी बड़ी हानि होवेगी सो यह उपाय बूझकरके होता है और करतून करके इस प्रकार उपाय होता है कि एकान्त विषे जायदे सो इस करके भी बाद विवाद में मुक्त होता है तात्पर्य यह कि जब एक वचन करके निर्वाह होसके तब दो वचन कहे इमी एक प्रीतिमान्ने कहा है कि नो मेरे हृदयविषे महामधुर वचन भी सुना है तो भी मैं उच्चारण नहीं करुता फाहेसे कि कभी मैं अधिक बोलनेवाला न हो जाऊँ वहुरि महापुरुष ने भी कहा है कि शैलापुरुष तिसको कहते हैं जो धनकी धेडी की गाड़ तो खोलि और मनस का प्रधान विषे रामेश्वर वहुरि दृमश विघ्न विघ्ना और पाप मयुक्त वचन बोलना है जिसे सुद्धेकी धने और दुगचारी मनुष्यों के व्यवहार को पूरुत करना सो ऐसे वचन तबही पापरूप है इस करके कि प्रधान व्यर्थ विवादका जो निर्णय कियाथा सो यह बोलना उमकी नाई नहीं अर्थात् उसमें भी अधिक नीच है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि जब यह पुरुष विषयक होकर बोलता है और उम वचन की सुगई को नहीं जानता तब उमकी बोलने करके नरकगामी होता है और जब भय मयुक्त बोलना है और विचार

करके इस भेद को समझना है तब निरुपद्रव परमानन्द को आपोना है शब्दरि तीमरा  
 विन यह है कि जब कोई पुरुष वचन करे तब उसके वचन को विपर्यय कर देना  
 सो यह भी महानिन्द है और बहुतने पुरुषा का ऐमाही स्वभाव होता है कि जब  
 कोई कुछ बोलता है तब शीघ्रही इमपरकार कहने लगते हैं कि यहवार्ता ऐसी नहीं  
 है सो विचार कर के देखिये तो इसका यह अर्थ होता है कि तू मूर्ख और भूटा है  
 और मैं बुद्धिमान् और साक्षात्ताने प्रसिद्ध हुआ कि ऐसे वचन करके कोप  
 और अहंकार जो महामलिन स्वभाव हैं तिनकी वृद्धता होती है इसीपर महा-  
 पुरुष ने भी कहा है कि जो पुरुष किसीके वचनको विपर्यय न करे और व्यर्थवाद  
 से भी रहित होवे तब वह परमसुखको प्राप्त है और इसकी विशेषता इस निमित्त  
 कही है कि भले बुरे वचनको महना धैर्य करके महाकठिन है और योंभी कडा है  
 कि इस पुरुषका धर्म तबही दृढ़ होता है कि यद्यपि आप साक्षात्त हो तौगी  
 किसीके वचनको उलटावे नहीं और वचन उलटाना इसको कहते हैं कि जब  
 कोई कहे कि यह अनार लडा है और तू कहे कि गीटा है अथवा जब कोई कहे  
 कि अमुक नगर गदा से पाचकोम है और तू कहे कि पाच नहीं पट्टोम है तो  
 यह महापाप है काहेसे कि उसके वचनको एखंडन करना होता है और उसके  
 दोषको प्रकट करना होता है और वचन करके दुखावना इसीका नागहै ताते मर्ब  
 प्रकार जिज्ञासुको गौनही चाहिये है पर जब परस्पर एक दूसरेके मनको निपेय  
 करते हैं तब यह तो भगडा होता है पर जब किसीपुरुषविषे श्रद्धा देखिये तब एका  
 तविषे उसके उपदेश करना भला है और जब श्रद्धाहीन होवे तब गौनही विशेष  
 है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जब यह पुरुषमतां और पन्थोंके भगदों विषे  
 आरूढ़ होता है तब शीघ्रही आत्मधर्मे भ्रष्ट हो जाता तत्पर्य यह कि योग्य  
 अयोग्य वचनको सुनकर गौनकर रहना बड़ा पुरुषा रहे इसीपर एक शक्ति है कि  
 एर जिज्ञासु जगत् को त्यागकर परान्व विषे स्थित हुआया तब किसी बुद्धि-  
 गान्ने उममे पूछा कि तू लोगोविषे क्या नहीं जाना तब उमने कडा कि मैं ज-  
 गदके भगदें स आपको बराया चाहना हू रूग्ण इस बुद्धिगान्ने कडा कि जब  
 तू लोगो विषे घोर और उतके भवे बुधे वचन सुनकर वैपर्यय और वचननेमे  
 रहित रहे तब यह पुरुषार्थ बडा है वहुते कने पुरुष ऐसे होमे है कि वह अपने मान  
 के निमित्त दूसरेके पयवा निपेय करते हैं और कहते हैं कि यहभी धर्मकी दृढ-



ताहे सो यह घड़ी मूर्खताहै ३ यहूरी चौथा विघ्न यहहै कि धनके निमित्त किं  
 के साथ मगड़ा किरना और राजाओं के दरवार में जाकर पुरार करनी इसी  
 मन्तजनोंने कहा है कि जब यह मनुष्य धनके लोभाकरके किसी के साथ  
 गडा करताहै तब ऐसी विशेषताको पाताहै कि जैसी विशेषता और किसी  
 वगुण उसके नहीं होती कहेमे कि ऐसे मगड़ेका निर्वाह कठोर वचन और  
 मात्र विना नहीं होता ताते जिज्ञासु जन पुरुपार्थ करके मूर्खी से ऐसे व्यवहार  
 को त्याग करते हैं ४ यहूरी पांचवा विघ्न सुख से दुर्बचने घोलनाहै इसीपर मग  
 पुरुपते कहा है कि कुञ्जलोग तारक विघे महादुखी होयेंगे और पुकार करगे  
 और नरकी पूछेंगे कि मे महापापी कौन हूँ तब देना कहेंगे कि ये मनुष्य  
 र्वेदा दुर्बचनही बोलते थे और दुराचारके वचनों सिपेही इनकी प्रीतिथी और  
 महापुरुपने योंभी कहाहै कि अपने माता पिताको गोली मतदो तब किमीन  
 पूछा कि अपने माता पिता को कौन गोली देता है तब महापुरुप ने कहा कि  
 जब कोई मनुष्य किसी दूसरेके माता पिताको दुर्बचन बोलताहै तब वेह भी  
 के माना पिताको दुर्बचन कहने लगता है जब विचार करके देखिये तब अपने  
 अपने माता पिताको आपही दुर्बचन बोलाहै ताते चाहिये कि जब अग्रयण  
 किमी मलिन कियाका नागलेना हेमि तोभी सैतसे कहे और प्रसिद्ध वर्णन  
 करे ५ यहूरी छठवा विघ्न यहहै कि किमीको धिक्कार करना सो यहभी महानिघ  
 है यद्यपि किमी पशु और जड पदार्थ को धिक्कार करिये तोभी बुराहै इसीपर  
 महापुरुप ने कहाहै कि प्रीतिगान् किमी को धिक्कार नहीं करते यहूरी एक और  
 प्रीतिगान् ने भी कहाहै कि जब यह मनुष्य धरती अथवा और किसी पदार्थके  
 धिक्कार करताहै तब यह पदार्थ ऐसे कहताहै कि हम दोनों में जो विशेष सग  
 वत्से विमुल और पापी है उमीको धिक्कारहै और जब इसप्रकार कहे कि सग  
 अपकर्मियों और जीवों के दुखदायकों को धिक्कारहै और किसी जाति पापि  
 पंथका नाम लेकर न कहे तो ऐसे कहना प्रमाण है पर तोभी जो विचार करके  
 देखिये तो अपकर्मियों को धिक्कार करने से गगवत्का नाम लेनाही भिगेहै ६  
 यहूरी मानवा विघ्न यहहै कि रूप और शृङ्गा के व्यवहार की कविना कर्मी  
 और रूपवानों की स्तुति करनी सो यहभी अयोग्यहै कहेमे कि ऐसी कविता  
 विषे अधिक तो मूढ होताहै यहूरी कहने और सुननेवालेना हृदय बाल शोश

है पर जब मानसे रहित होकर भगवत् और सन्तजनों की स्तुतिबर्णन करे तो प्रमाण है वृद्धि खाँसी बिना हौंसी है मो हौंसी से महापुरुषने जिज्ञासुजनों को बजाई पर जब अकस्मात् किसी के प्रसन्न करनेके निमित्त हौंसी का मत जा कहे तो निन्द्या नहीं परियह भीतिव प्रमाण है जब हौंसी फलस्त्रमार आधिक्य होजावे और भूठभी नुक्कहै और किमीके हृदयको खेदमील्लाहिये काठे से किए जब हौंसीका स्वभाव अधिक होताहै तब डसी मनुष्यकी आयु रल रूपही जीती जाती है श्रोत्रहृदय अन्ध होजाताहै वृद्धि गिम्भीरता मी नष्ट होजाती है श्रोत्र हौंसीसे अकस्मात् तमोगुण मी उपजजाताहै इसी कारणसे सन्तजनों ने अधिक हौंसीसे बर्जाहै ऐमही महापुरुषने मी कहाहै कि जैसे मैं भगवत्की प्रवाहिन और वैपर्याहीको जाननाहूँ सो तब तुम मी जानो तब ही मीसे रहित होकर रहि नहीं करते रहो वृद्धि किसी भीतिमान् ने किसी और भीतिमान् से कटार्था कि नरको के दुग्धको श्रुति निस्सन्देह जानताहै तब उसने कहा कि जिनता हूँ वृद्धि उसने पूछा कि तू ऐसा भी जानताहै कि नरको मे चूटगा तब उमने कहा कि यह तो मैं नहीं जानता वृद्धि उन्हेने कहा कि ज्ञान मे दुर्गा तब प्रसन्नता और हौंसी तुमको श्रयीकर आती है इसी कारण मे एक जिज्ञानुजन चा तीस वर्षपर्यन्त है सने मे रहित रहै और परलोके के भयको स्मरण करनेहे है इसीपर एक सन्तने कहाहै कि जो पुरुष पापकरके इस लोके विपे है सनाहै मो निस्सन्देह स्वर्गके विपे अधिक रोता रहेगी वृद्धि एक सन्तने योंभी कहाहै कि जेमे स्वर्गविपे रोता आश्रय है तैसेही संसारविपे हँसना मी आश्रय है ताहेस कि यह मनुष्यको इतना भी नहीं जानता कि मैं परलोक विपे लगेको प्राप्त होऊगा अथवा स्वर्गको इमी पर एक सन्तने कहाहै कि भगवत्के भय करके हौंसी से रहित होना कोईमे कि हौंसी करके शोध उपजवा है और श्रोत्र करके सनेक अत्रगुण उपजवे है इसी कारणमे महापुरुषकी सर्व आयु मर मे जीवा की प्रसन्नताके निमित्त मात्र कुछ अल्पही हौंसीकी धार्ती वर्णनहई है जैसे एकबार परवृद्धा नीसे रहनेलगे कि कोई बुद्धामनुष्य स्वर्गको प्राप्त नाहोवेगा तब वहनी रोनेलगी वृद्धि उसमे कहा कि तू शोक गनकरे काहे मे कि जब कोई मनुष्य स्वर्ग गिये जानाहै तब प्रथम उमेकी सुवा करलेने है वृद्धि के श्री पराशुरमे आका कहनेलगी कि तुमको प्रसन्न पानेके निमित्त मेरे पतिने धुतायाहै तब उसमे कहा कि तैसा भयी बही

है जिसके नेत्रों विषे सफेदी है वहूरि वह स्त्री कहने लगी कि उसके नेत्रों विषे तो सफेदी नहीं है तब उससे हँसकर कहने लगे कि सफेदी से रहित तो किसीके भी नेत्र नहीं होते वहूरि एकवार मार्ग विषे चले जाते थे तब एक बृद्धास्त्री कहने लगी कि मुझ को ऊँटपर चढ़ा दो तब महापुरुष ने कहा कि तुम्हको ऊँटके पुत्र पर चढ़ा दू तब उसने कहा कि ऊँटके पुत्र पर तो मैं नहीं चढ़ूंगी कि वह मुझसे गिरा देवेगा तब हँसकर कहने लगे कि ऐसा ऊँट तो कोई नहीं होता जो ऊँट पर पुत्र न होवे तात्पर्य यह कि महापुरुषों का हँसना और धोखना सचही विचारके अनुसार होता है और गुणमे रहित नहीं होता पर जब कोई उनको देखकर ऐसा ही स्वभाव करलेवे और उनके भेद को समझ न सके तब निस्तन्देह पापी होता है वहूरि नवा विघ्न यह है कि किसीको उपहास काके डुखावना और उसके कर्मोंके खिदको प्रकट करके लोगोंको हँसाना है सो यहभी महानिन्द्य है इसीपर महाराजके कहा है कि किसीके खिदको देखकर न हँमो फाहेसे कि कदाचित् वह तुमसे मला होजावे और तुम उससे भी नीचगतिको प्राप्त होजावो वहूरि महापुरुषने कहा है कि जब कोई अभिमान सहित किसी का अवगुण देखकर हँसता है तब मरनेसे आगेही अवश्यमेव उस अवगुणको प्राप्त होता है वहरि दशवां विघ्न यह है कि अपने वचनका निर्वाह न करना सो यहभी महापाप है इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि जो पुरुष वचन भूँडा करे और वचनका निर्वाह न करे अर्थात् किसीकी वस्तु चुरायलेवे तब वह कपटी कहाता है और वह यद्यपि जपतप और व्रतभी करता होवे तौभी भगवत्से विमुख होता है इसीपर संतजनोंने कहा है कि किसीके साथ वचन करना भी श्रृणकी नाई है ताते उससे विपर्यय न हुजिये तौ मला है वहूरि धर्मशास्त्र विषे भी यों कहा है कि जेभ किसीको कुछ देकर फेरलेना अयोग्य है तेमेही वचन देकर निर्वाह न करना अयोग्य है १० वृत्ति ग्याग्रहा विघ्न यह है कि भूँड बोलना और भूँडइहाई करना सो यहभी महापाप है इसीपर महापुरुषने कहा है कि भूँडकरके इस मनुष्यकी प्रारब्ध घटजाती है और योंभी कहा है कि सोदागरी विषे भूँड बोलना और भूँडी राप्य करनी महा नीचना है और इमीपाप काके सोदागर अर्थात् पवित्र व्यवहारी भी नरकगामी होवेंगे वहूरि यों भी कहा है कि भूँडा मनुष्य व्यभिचारी से भी जुगड़े काहे है कि व्यभिचारी तो अकस्मात् छल करके होजाता है और भूँड बोलना मनमा

की भलिना करके होता है पर ऐसे जानू कि झूठी निषेध इसकरके कही है कि झूठ बोलने करके हृदय अन्य हो जाना है और जब झूठी मनसा न होवे और अकस्मात् किसी कार्य के निमित्त बोलना चाहिये तो झूठ बोलना भी प्रमाण है तात्पर्य यह कि जिन झूठ की मनसा न होवे और किसी भी मनाई अथवा रक्षा के निमित्त बोलता होवे तो हृदय अन्ना नहीं होना जैसे कोई अनाथ किसी तामसी मनुष्य के भय करके खिगाहोवे और इसने देखा होवे वद्वरि जब वह तामसी मनुष्य इम से पूछे कि अमुक कहा है तब सत्य बोलने से झूठ बोलना विशेष है अथवा जब दो मनुष्यों विषे परस्पर विरोध होवे और इसके झूठ बोलने करके उनका विरोध निवृत्त होवे तो भी झूठ कहना निन्द्य नहीं अथवा जब किसी का अवगुण देखिये और दूसरा कोई उसके अवगुण को पूछे तो भी उसको गुह्य रखना भला है अथवा जब कोई तामसी मनुष्य किसी का धन पूछे तो भी प्रसिद्ध कहना योग्य नहीं तात्पर्य यह कि यद्यपि झूठ कहना अयोग्य है तो भी विचार की मर्याद विषे देखे कि जब झूठ कहने करके किसीकी रक्षा होती है अथवा कोई बड़ा विघ्न दूर होता है तब झूठ कहने करके दोष कुछ नहीं होता पर जब अपने मान और धन के निमित्त झूठ बोले तो निन्द्य है वद्वरि ऐसे भी जानू कि जब जिज्ञासु जनोंने इस प्रकार देखा है कि अमुक कार्य झूठ बिना सिद्ध नहीं होता तब उन्होंने ऐसा यत्न किया है कि जिस वचनविषे झूठ का असर ना आवे और यह पुरुष कुछ औरका औरही समझनेवे तब ऐसी ही वचन उन्होंने बोला है जैसे एक प्रीतिमान् चिरकाल के पीछे राजा के निकट गया था तब राजा ने पूछा कि तुम चिरकाल करके क्यों आये हो तब उस प्रीतिमान्ने कहा कि जिम दिनसे मैं तुम्हारे पासमे गया हूं सो मैंने जिस दिनसे अपना भ्रम धरती से तवर्षी उठाया है जब भगवत् ने मुझ को नीरोगता दीनी है ताते राजा ने जाना कि इन को कुछ रोग हुआ होगा और उन्होंने इस प्रकार कहा था कि जब भगवत् ने मुझको नीरोगता का बल दिया तवर्षी मेरा शरीर चलने फिरनेको समर्थ हुआ है सो इमवार्ता विषे कुछ सन्देह नहीं वद्वरि एक श्रीरामानुरागी थे सो उन्होंने अपने शिष्यको समझा दिया था कि जब मैं एकान्त विषे भगवद् ध्यान करने लगूँ और कोई पुरुष मुझको आकर पूछे तब मैं परती पर लकीर खेचकर उससे कह देना कि यदा तो नहीं है

घृष्टि-जन्म ऐसे पूर्वे कि कहा गये हैं तब ऐसे कहना कि किसी दाकुदारे कि  
 होंगे सो उन्होंने गृष्टि-विषे ही दाकुदारा भी बनाय राखा था चहुँरि एक ओर  
 भी निभार एक धर्मज्ञ राजाके प्रवान होकर किमी देशकी पालिनाको गये थे सो  
 जब अपने गृष्टि-विषे थाये तब उतसे स्त्री कहने लगी कि तुम हमारे तिमिष क्या  
 साये हो तब उन्होंने कहा कि मेरे साथ एक रत्नक और भी यो जाता तो मैं कुब से  
 नदी आया सो उनके कहने का तात्पर्य यह है कि अन्तर्ध्यामी भगवत् मेरे साथ  
 या और स्त्रीने यो जाना कि राजाने कोई रत्नक भेजा होगा पर इस प्रकार जान  
 तभीने ऐसा बचन बोलना भी तब प्रमाण है जब किसी कार्यका निर्वाह ऐसे बन  
 प्रिया न होमके औदाजो सर्वथा। ऐसीही स्वभाव में कहले तो अपोष्य है को  
 से कि यद्यपि यह बचन तस्य है तो भी ओरों की भीक्षा हेतु प्रमाण नहीं ओर  
 एक महापुरुषने ऐसा कृपा दी कि भगवत् की सुडाई कौन्ती महापाप है अपरा  
 जय ऐसे कहे कि भगवत् राजानेता है कि यह बातों ऐसीही है पर जब वह मोक्ष  
 लेगी तब होवे तब हम प्रकार कहना ती त्रेडा पाप है ११ बहुगि वरिहवा विन निन्दा  
 है सो यह निन्दा ऐसी प्रमल है कि वात्सल्य ही सुव कि भीमे हो जाती है पर भित्त  
 की भगवत् रसाकरे सो विन्दा जत ही मुक्त होता है इसीपर महाराज ने कहा है  
 कि निन्दा करनी ऐसी बुरी है जैसे कोई बन्धुका नास भक्षण करे चहुँरि महा  
 पुत्रीने भी कहा है कि निन्दा अपमिचारसो भी घुरी है काहेसे कि जब अपमि  
 चारका त्याग करे तब शीघ्र भगवत् उसको मुक्त करता है और निन्दाके पाप  
 से तब ही सुझावे कि जिनपुरुषकी निन्दा किये होवे सो जब उसहीसे समाचार  
 चहुँरि एक भीतिमान ने कहा है कि मैंने महापुरुष मे उत्तम उपदेश सुनाया तब  
 उन्होंने कहा कि कि निन्दा सुननाको भी अपमिचार जानना यद्यपि किसी प्यासे  
 को एक कटोरामर जला देवे तो भी भावतकी उपकार जान और सर्व मनुष्य  
 के साथ प्रसन्न गस्त करवे चहुँरि किसीकी निन्दा भी त करना और निन्दा इत  
 का नास दे कि यद्यपि त सत्यही कहे पर जिन बचनको सुनकर किसीका हृदय  
 खदित होवे तब त्रेडा ही को निन्दा कहने है जैसे नू कहे कि ममुके पुरुष तन्त्र  
 है अपरा अपि क्या है अथवा मन्ददृष्टी है सो यह सभ निन्दा है अथवा तब  
 ऐसे कहे कि यह तीघ जाति अपरा दामी सुत है अपरा कटोर है अथवा तब  
 धोचनेवाला है अथवा धोरदे अपरा भजन में हीन है अथवा बासी अंगुळ



करे और सबालीयें भली प्रकार ग्रहण करें अथवा इस प्रकार कहना कि हे भ्राता! सर्व प्रकार भगवत् से भये करने चाहिये और अभिमान करना अयोग्य है जो कि किसी अमुक श्रेष्ठ पुरुष को कैसे खल प्राप्त हुआ है कि भगवत् ही उसकी रक्षा करे सो यद्यपि मुझसे ऐसा ही कहना है तो भी उसका प्रयोजन यह है कि उसके खल को लोग भी जानें सो ये सब ही निन्दा हैं और यह ऐसा महाकपट है कि पासण्ड करके आपको अनिन्द्य हो दिखाता है ताते इसको दोषाय लगते हैं पर तो निन्दा होती है और दूसरे कपटवद् होता है और वह भ्रूक्ष ऐसा जानता है कि मैंने निन्दा नहीं की और यह धार्ता असिद्ध है कि निन्दा के करने वाले और सुनने वाले दोनों समान पापी होते हैं पर जब निन्दा सुनने वाले के चित्त विषे रता निन्द्य रहते और निन्दक को वर्जने की सामर्थ्य न रखता होवे तो भी निन्दा सुनने के दोषसे मुक्त रहता है ताते जिज्ञामु को इस प्रकार उचित है कि निन्दक को असिद्ध ब्रजे बहुरि जिन प्रकार मुझसे निन्दा करनी परम पाप है तैसे ही हृदय करके भी निन्दा करनी पाप रूप है सो हृदय करके निन्दा इस प्रकार होती है कि किसी के दोष को चित्त विषे स्पर्ण करना सो यह भी बड़ा पाप है इमी पर महापुरुष भी कहा है कि परद्रव्य चुराना और किसीका घात करना और किसी के ऊपर भ्रूय अनुपान करना सो यह तीनों महापाप हैं पर जब अकस्मात् तरे चित्त विषे ऐसा संकल्प फुटा जावे और तू उसको मलिन जानकर निवृत्त करे तब इस करके तुम्हको पाप नहीं लगता पर इसकी परीक्षा यह है कि जब किसी के दोष का स्पर्ण तरे चित्त विषे फुरे अथवा किसी से श्रवण करे तब उम बोर्षाको टूट नही और उम फुलना को हृदय विषे ही लीन कर देवे बहुरि ऐसे जाने कि जैसे भरे मन विषे अनेक पाप उचरते रहते हैं तैसे ही और मनुष्य भी पापसे रहित नहीं होसके और जिस प्रकार मैं अपने अवगुणों को छिपाया चाहता हूँ तैसे ही औरों के अवगुण भी प्रसिद्ध करने प्रमाण नहीं और जब मैं किसी के छिद्र को मरुत जानूँगा तब मुझको क्या लाभ होगा पर जब किसी के अवगुण को निरस देहा जाने तब एतान्न विषे उसको नम्रता सहित उपदेगकर और किसी के आगे उसका विद्वर्णन न करे बहुरि ऐसे जानें तू कि निन्दा की अभिवाण भी इस मनुष्य के हृदय की षडा गेग है ताने इसका उपाय फाना अवश्य ही करना है और उपाय इसका दोषकार का है सो एक उपाय यह है अर्थात् इ-

इसी निन्दाको नारा करता है, सो यह उपाय भी दो प्रकार करके होता है, प्रथम तो जो बचन निन्दाकी निषेधता विषे, महापुरुषोंने कहे हैं, उक्तकर्मचारिणास्त्रिचारके और ऐसे जाने कि, निन्दा करनेवालेके सत्र सुभे करतोंका फल, उसकी जोर जाता है जिसकी निन्दा करता है और निन्दक मनुष्य सुकृतहीच रह जाता है इसीपर महापुरुषने कहा है कि जैसे मूखे वृषोंको अग्नि भस्म कर डालती है, तैसेही निन्दाकरके सब सुकृत शीघ्रहीनष्ट होनाते हैं १ और दूसरा प्रकार यह है कि अपने अवगुणोंका विचार करे, और ऐसे जाने कि जिस प्रकार भे, अवगुणोंके वशीभूत हूँ तैसेही और मनुष्य भी अवगुणोंसे रहित नहीं होसके काहेसे कि महाराजकी माया अति प्रबल है, बहुत जव अपने विषे कोई अवगुण न देखे तब ऐसे जाने कि अपने अवगुणोंका न देखनाही बड़ा अवगुण है सो जो यह पुरुष अवगुणसे रहित और गुणवन्तही होवे तो भगवत्का उपाकार जानकर सत्यवाद करे और निन्दासे रुहित होवे वहुरी ऐसे जाने कि जबमें किसीकी निन्दा करूंगा तब यह भी भगवत्की निन्दा होती है काहेसे कि सब किसीका उत्पन्न करनेवाला भगवत्देसो जैसे कारीगरकी निन्दा करनेसे कारीगरकी निन्दा होती है तैसेही मनुष्योंकी निन्दा करके भगवत्की निन्दा होती है २ सो यह दोनों प्रकार निन्दा के दूर करने के समास्त्र उपाय हैं वहुसे दूसरे निन्दाके दूर करने के भिन्न भिन्न उपाय ये हैं कि प्रया निज्ञासु अपने हृदयविषे विचारकरे कि मैं निन्दा किस कारण करता हूँ सो निन्दाके आठ कारण हैं और सबके भिन्न भिन्न उपाय हैं प्रथम कारण यह है कि जब यह मुरु किसीपर कोप करता है तब उसकी निन्दा किया जाता है सो जब ऐसा होवे तब निज्ञासु इस प्रकार विचारकरे कि विराने क्रोधके निमित्त आपको नरकगामी करवा लई मूलना है और जब गनीपकार देखिये तो उसके निमित्त अपने ऊपर क्षोभकृतना होता है इसीपर महापुरुषने कहा है कि जब यह पुरुष भगवत्के निमित्त अपने क्रोधको समा करलेवा है तब उसके ऊपर महाराज दयालु होते हैं ३ वहुरी दूसरा कारण यह है कि जब किसीको निन्दा कवा देसना है तब उसकी प्रयत्ननाके निमित्त यह भी निन्दा काने लागता है तब इसका उपाय यह है कि ऐसा जाने कि मैं लोगोंको प्रमत्तनाके निमित्त भगवत्को अपसन्न करता हूँ सो तब भी सद्वार्द वात्रे निज्ञासु को चाहिये कि निन्दक पुरुषोंको देव



करे को ध्यान देवे और उनको सिंगारिका त्यागकरे। भवद्वार तीसरे कारण कह  
 है कि जब इस पुरुषको कोई द्विद्वेषकृष्णहीमाहे तब अपने द्विद्वेषका दीप जोत  
 पर रखता है और आपको बचाया चाहता है मो यह भी अयोग्य है ताते ऐसा  
 जानना प्रमाण है कि भगवत् का प्रीति भरी चतुराई करके नष्ट न होवेगा और  
 जिम अपमानसिमे ठहरना है पतिम अपमान से भगवत् का क्रोध भी तीक्ष्ण है  
 और अपने दीपका दीप और मर देता है भगवत् के क्रोधका भी है पर जब  
 अपने अंगुष्ठाङ्गिने कि निमित्त औरों के अंगुष्ठाङ्गणनकर तब यह भी बू  
 खता है जैसे कोई कहे कि अमुक पुरुषगी अंगुष्ठ जोविका करता है और अमुक  
 राजधान्य लेता है तब भी इसको अंगीकार करता है मो ऐसा जाननेवाला  
 पुरुष गदाभूष है कहते कि जिस मनुष्य का कर्म मलिन होता है निमकी देव  
 कर भाषणो मलिनता विषे प्रविष्टता अयोग्य है जिम कोई अग्निविषे जायकर  
 जले तब उसके पीछे जलना तो इसको प्रमाण नहीं तैसे ही पापीको देवकर पाप  
 करता अयोग्य है। इवद्वार शेषा कारण यह है कि अपनी स्तुतिके निमित्त भोता  
 की निन्दा करता है जैसे कोई कहे कि अमुक पुरुष ध्वनिका नहीं समझना और  
 अमुकपुरुष पाखण्डका त्याग नहीं करता सो इसका अर्थ यह है जी कि में बुद्धि  
 मांस है और पाखण्ड से रहित है मो यह भी अयोग्य है ताते ऐसा जानना चाहिये  
 कि बुद्धिमान पुरुष तो इस भरे कण्टको भी प्रदी जान लेवेगा और मेरी निष्क  
 मता पर प्रतीति न करेगा और जो आपही मूर्ख है तिसकी प्रीति प्रतीति करके  
 मुझकी कृपा स्तगिहोवेगा ताते यह भी बुद्धिकी हीनता है कि भगवत् के निकट  
 आप को लज्जायमान कर्ता और परायण जीयो के निकट अपना मान बढ़ा  
 यना भवद्वार शेषा कारण यह है कि इसी करके भी निन्दा होना है मर्वात जब  
 किसी पुरुषका धन और मान अधिक होता है तब इसी कर्नेवाला पुरुष उसकी  
 यथाई बोदिये नहीं सका ताते उसके अङ्गुष्ठी की देदने लेगता है और बरमात  
 विषे हृद होता है पर जम नहीं जानता कि में अपने सापही प्रभाव करता है  
 काहेसे कि हमनो कपिरे इसकी अग्निविषे जलता रहता है और परतीकी भी भी  
 निन्दा धादिन पापीकरके बुगी बुद्धिमान जिन केना पुरुष दोनोकोके सुबोधि  
 अपमान रहता है पर इतनी भी नहीं समझना कि भगवत् की भाता करके निमको  
 धन और मान मोहद्वारा है सो मेरी इसी करके उसकी दानि क्या कर होवेगी ५

बहुते छत्राकारण यह है कि हमी के स्वभावकरके गी निन्दा होजाती है और  
 हौसी कानेयाला पुरुष ऐमा नहीं जानता कि जितना में किसी को हास्य करके  
 लज्जावात् करता है तितना में गी भगवत् के निन्द लज्जित होऊगा और जब  
 ऐमा जाने कि निन्दा और हास्यकरके परलोकविषे मेरी ऐमी गति होवेगी तब  
 कदाचित् ऐमे कर्मकी अगीकार न करे ६- बहुते सातवा कारण यह है कि जब  
 किसी से कुछ अवगुण होवे तब इसका हृदय सात्त्विकी स्वभाव करके सहजही  
 शोकवान् होजाता है और उसकी चर्चा करतेहुये उसका नाग किसी के आगे  
 मुखसे निकस जावे तब यह भी निन्दा होती है ताते ऐसा जानना प्रमाण है कि  
 यद्यपि दयाकरके जो हृदय कोमल हुआ है तिससे उमके विषे अवगुणकी नहीं  
 चाहता तौ भी प्रसिद्ध नाम लेने करके इमदया सम्बन्धी करवत के फलसे अ-  
 प्राप्त रहता है ७- बहुते आठवा कारण यह है कि यद्यपि धर्मदी के निमित्त किसी  
 का अगुण तर्ही देखसके पर जब आपको शुद्ध जानकर उसके बिक्रको देख  
 कर आश्चर्यवान् होवे और ऐसा जाने कि अमुक पुरुष ने यह अज्ञा क्योकर  
 करी ताने विस्माद होकर उमकी आश्चर्यता विषे उसका नाग लोकोके सामने  
 कहे तब यह भी अयोग्य है और निन्दा के निन्द जा पहुँचना है ताते चाहिये  
 कि किसी का अवगुण देखकर आश्चर्यवान् न होवे और नम्रता विषे स्थिर  
 रहे ८- अथ प्रकट करना इमका कि निन्दामी किने कारणों करके प्रमाण है ॥  
 ताने जानतु कि निन्दा भी भूत की नाई महापाप है इमीकारण से आवश्यकर  
 कार्य बिना निन्दा करना प्रमाण नहीं होना ताने में उन कार्योंको कुछ वर्णन  
 करनाहू जिन करके निन्दा भी प्रमाण होती है सो प्रथम कार्य यह है कि जब  
 किसी ने इमको दुस्राया होवे और अथवा कुछ उन हमलिया होवे और इसको  
 जिनके आगे पुकार करनी होवे तब यह भी निन्दा किये बिना निन्द नहीं होना  
 पर तौगी जिन पुरुषमे महायना कुछ न होपके तब दु बदेनेवानेकी चर्चा नि-  
 सगो कदनी अयोग्य है ९- बहुते दूसरा कारण यह है कि जब किसी मान विषे  
 कुछ पाप होना देखे और ऐमा जाने कि जो इम पाप को प्रसिद्ध न किये तो  
 अधिकही बढ़ना जावेगा तब किसी ठेमे ऐशचर्यवान् कदना प्रमाण है कि नि-  
 सके भय करके बढ़पाप नष्ट होजावे १०- बहुते तीसरा कारण यह है कि जब कोई  
 धर्मत विधी नास्त्रवादी जयना कि नी अपहर्षी गी भगवत् करना होवे तौ उनके

भ्रमगुण को प्रमिद्ध करना योग्य है काहेमे कि उसकी 'संगति' करके धर्म  
 का अकार्य्य होताहै इसीपर महापुरुष ने कहा है कि तीन प्रकारके मनुष्योंकी  
 निन्दा कानी पाप नहीं एक अन्यायी राजा दुमरा भंजनकी मद्यपानमे कि  
 रीत नाम्नसादी और तीसरा प्रसिद्ध बुराचारों क्योकि इनकी क्रिया कुंक्ष गुण  
 नहीं होती ताते इनकी वार्ता प्रसिद्ध करनी कुछ निंदा नहीं ३ बहुरिचोथी का  
 गण यह है कि जब किसीका नाम ऐमाही प्रसिद्ध लोगलेतेहोते कि मूर्खा  
 अथवा गन्ददृष्टी अथवा धधिर अथवा कुप्टी गोपेमे पुरुष का इसी प्रकार नाम  
 लेना निन्दा और पाप नहीं और वह भी अपना नाम सुनकर अपसन्न नहीं  
 होता पर जब उसको भी किसी और नाम करके पुनाइये तो गलाहै ५ बहुरि  
 पानवां कारण यहै कि फिनने लोग प्रमिद्धही निर्लेज्जहै जैसे रिजडे और  
 नरक और मद्यपानी जो लाज से रहितहै सो यहभी अपनी कर्णकी वार्ता  
 सुनकर घुरा नहीं मानते ताते जब किसी मयोग करके इनकी वार्ता चने तब  
 इसका नाम भी निन्दा नहीं और निन्दा का अर्थ यहै है कि जिम धान को मुंग  
 कर किमीका हृदय तपायेमान दोये ५ ताते प्रीतिमान्को बाधिये कि जब इसमे  
 कुछ ऐसी अवज्ञा होवे तब जीमद्री उमे क्षमाकरावे औरअपने पापोंका पुण्य  
 गण करलेव इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि इसीलोकमें अपने पाप क्षमाकराये  
 काहेमे कि परलोक विरे जब उन जीवको अधिक दण्ड दीयेगा तबइसके पास  
 पुत्रप्राण की कुछ सांगगी न होयेगी और एक वचन विरे गौभी आचार्ये कि  
 जिस पुरुषकी इमने निन्दाकी होवे तब उसके निमित्त भगवत्के आगे प्रार्थना  
 करके उसका क्षमाकरावे पर केते पुरुषोंने यही दृढ़ विपाहै कि जिमकी निन्दा  
 कीहावे उनमे क्षमा करानेकी कुछ अपेक्षा नहीं भगवत्कीके आगे प्रार्थना फ  
 रना विनापहै सो यहवार्ता अरे यहै काहेमे कि भगवत्के आगे प्रार्थना कानी  
 तब ही फरी है जब यह मनुष्य जीवना ७ होरे असा दुः होवे पर जब उसका  
 भिन्नाग होमके तब जनता और दीवता सहित उसकीमे क्षमाकराये तो माना है  
 और जब वह क्षमा नही तब उसकी पारहोनाहै ५ बहुरि नैरुर्वाविषय यह है  
 कि जिमका वचन साधितहैना तो सुग ही कानी ८ यहभी यथाभाव है इसी  
 पर महापुरुष ने कहाहै कि बुधनी क्षमाकरावा पुरुष न जानिये मुझी नहीं क्षमा  
 आ योग्य कहाहै कि सुग ही कानी ९ पुरुष न जानिये नाने इसीपर एक

वार्ता है कि एक समय एक देशमें दुर्भिक्ष हुआ था, तब महात्मा मूसा और उस देशके लोग मिलकर भगवत्तमे प्रार्थना करने लगे तब महात्मा मूसाको आकाश वाणी हुई कि तुम्हारे देशविषे एक चुग्रल है तिसके पापकरके मेघ नहीं वर्षता तब महात्मा मूसाने पूछा कि वह चुग्रल कौन है तब आकाशवाणी हुई कि हे मूसा । मैं तो चुग्रलको अपने शत्रु जानता हू ताते मैं ही उसकी चुग्रली क्योंकर करू कि अमुक चुग्रल है और इसका उपाय यह है कि तुम सब लोगोंको चुग्रलीसे विवर्जित करो तब शीघ्र ही वर्षा होवेगी वहुरि उन्होंने ऐमेही किया तब बड़ा मेघ वर्षा और दुर्भिक्ष दूर हुआ एक और भी वार्ता है कि एक मीतिमान् दो सहस्र कोण चलकर एक बुद्धिमान् के निकट गया और बड़ा जाकर यह वार्ता पूछी कि आकाशसे विशाल क्या है १ और धरती से भारी क्या है २ और पाथरसे कठोर क्या है ३ और अग्निसे अधिक तीक्ष्ण क्या है ४ और बर्फसे शीतल क्या है ५ और समुद्रसे उदार क्या है ६ और जिस बालकके माता पिता सुयेहोवें तिससे अधिक निर्माण और दुःखी कौन है ७ तब उस बुद्धिमान् ने कहा कि सत्य वचन आकाशसे भी विशाल है १ और निर्दोष मनुष्यको दोष लगाना यह पाप धरतीसे भी भारी है २ और मनमुसोका हृदय पाथरसे भी कठोर है ३ और ईर्ष्या अग्निसे भी तीक्ष्ण है ४ वहुरिभाव और सहन शीलता बर्फसे भी शीतल है ५ और सतोपवान् समुद्रसे भी अतिउदार है ६ और चुग्रली करनेवाला मनुष्य माता पिताहीन बालकसे भी अधिक निर्माण होवेगा ७ पर चुग्रली का अर्थ यह है कि वचन अथवा कर्म अथवा सैन करके किसीके छिद्रको किसी ओर के आगे प्रकट करना और उसका हृदय दुःखावना सो यह महापाप है ताते विज्ञानको चाहिये कि किसीका परदा उधारे नहीं अथवा जब कोई ऐमाही अवश्य कार्य होवे तब प्रकट करना भी प्रमाण होता है ताते जब कोई आपस तुम्हमे गेमे कहे कि अमुक पुरुष तेग बुग चेतना है अथवा दुर्बचन कहता है तब तुम्हको इसप्रकार मगनना चाहिये कि प्रथम तो चुग्रल और दुराचारी भूटे होते है ताते उसपर प्रतीति करनी अयोग्य है १ और दूसरा प्रकार यह कि जब अधिकार देखिये तब उसको चुग्रलीमे विवर्जित करिये २ और तीसरा यह कि चुग्रली करनेवाले पुरुष के साथ मित्रता न करिये ३ और चौथा यह कि जब किसीके अवगुणकी वार्ता सुनिये तब देवे बिना मनीन अनुमान करना

अतिनिन्द्ये ४ बहुरि पात्र्यां चारं यदहे किं किमीनां तिस्रसुनकरं उस ही रूढ़  
भी ने क्ये कि यह वार्ता मर्यादे अपेक्षा भूँड है ५ और छत्रोपिचार यह है कि  
चुंगली करनेवाले पुरुषकी वार्ता भी किमीसे न कहे कि यह चुंगली मान्योला  
है ताते उसके छिद्रको भी गम्भीरता करके खियाय लेवे ६ नातर्य्य यह कि यह  
पद युक्तिगा मन किमीको चाहिये है इमीपर एक वार्ता है कि एक बुद्धिमानसे  
किमीने अक्रि कहा कि अमरु पुरुष तुम्हारी निंदा करता है तब उस बुद्धिमान  
ने कहा कि यद्यपि तुम्हारे दर्शनको आया है तो भी तीन अवगुण तने अरही  
विये हैं सो एक तो मुझको उसके ऊपर कोषयान् किया दूसरे भरे विषको वि  
क्षेयताही सीमारे तू जाय भी चुंगली करनेवाला हुआ इसीपर इसनवसगी मन्त्र  
ने भी कहा है कि जब कोई मनुष्य भायकर तुम्हको किमीकी चुंगली मन्त्र  
तब निस्सन्देह ऐसा जान कि तेरी वार्ता भी औरों को जाय सुनविगा तति उस  
को अपना शत्रु और निन्दक जानकर उसकी संगति का त्यागकर प्रयोजन  
यह कि चुंगली करनेवालेसे केने जीवोंका घातहोता है इसीपर एक वार्ता है कि  
एक पुरुषने एकदास गोत्र लियाया तब दामके वेचनेवाले ने कह दिया कि इन  
विषे और अवगुण कोई नहींपर कुछ एक चुंगली और वाक्य संल करता है  
दाम लेनेवालेने कहा कि इनने अवगुणका संशय क्यों है बहुरि जब यह दास  
उसके गृह विषे रहनेलागा तब उमदी प्रीये कहार कि तुम्हारा धनि और विधात  
किया चाहता है और तुम्हारे साथ विपरीति विचट्टुआ है ताने इसका उपाय यह  
है कि जब तुम्हारा धनि जपनाने तब एक बाल उनके ऊपर काट कर  
वादेना तब भे मंत्र पढ़ागा जिसपरके मर्यादा तेरी ही साथ उसकी भीति अधिक  
होतीगी बहुरि उम दामने जपने स्वामीने कहा कि तुम्हारी स्त्री ही प्रीति किती  
ओर पुरुषके साथ बृद्धुई है माने तुम्हको मागना चाहनी है पर जब तुम रात्रिने  
ममय जपन करो तब एतेन गहना बहुरि जब रात्रिहुई तब यह गृह विषे जाते  
कर जपनकर गह और अन्तर से जागनाथा तब यह स्त्री उन्मुसा लेकर आपसे  
पनि के पात्रका बाल काटनेलागी और उनने पतिने ऐसा जाना कि यह भूभ  
को मारनी है ताते संभारन हो कर स्त्री ही मारनेलागा बहुरि जब स्त्रीके संभारि  
याने मुना तब ये आरु उम पुत्रको मागनेलागे बहुरि स्त्री और पुरुषके संभार  
निती विषे बड़ा घट्टुआ और ३ गी येने मनुष्यों का घातहुँआ १३ बहुरि

चौदहवाँ विघ्न यह है कि दो शत्रुओं विषे चाक्य छन करेना और अपने और दो-  
 नोंको मित्र हीय दिखावना सो यह जुग नी से भी बड़ा पाप है इमीपर महापुरुष  
 ने भी कहा है कि इस लोक विषे जिसका स्वभाव चाक्य छन का हीता है उसकी  
 परलोकविषे दो जिहा हीयगी तते महाइ लको भोगीगा इसी कारणसे बुद्धि  
 मानुको चाहिये कि जब दो शत्रुओंका मिलाप करे तब दोनों को भाँती सुनकर  
 गौन कर रहे अथवा अथार्थ बचन कह रहे तो मिला है पर एककी बातों दूसरेसे  
 कहना अयोग्य है और कपट करके एक दूसरे की मित्रहीय दिखावना भी पुसा  
 है १४ बहुरि पंद्रहवाँ विघ्न स्तुति है काहेसे कि एक स्तुति के कहने से पर पाप  
 और उँपजते हैं सो दो पाप श्रोताको लगते हैं और चार पाप ब्रह्मको होते हैं सो  
 ब्रह्मको प्रथम पाप यह होता कि जब अधिकार से अधिक किसीकी स्तुति करता  
 है तब निस्मद है १ और दूसरा पाप यह कि जब प्रीतिविना किसीकी  
 स्तुति करता है तब कपट होता है २ बहुरि तीसरा पाप यह कि जिसके गुणकी  
 ज्ञाता न होवे उसकी स्तुति करनी भी अयोग्य है जैसे कोई कहे कि अमुक पु-  
 रुष वैरागी है अथवा शुभकर्मी है पर जब उसके गुणोंको पहिचानताही न होवे  
 तब ऐसे कहना भी मिथ्यावाद होता है ३ बहुरि चौथा पाप यह कि जब किसी  
 तामसी मनुष्य की स्तुति करे और वह अपनी स्तुति सुनकर प्रसन्न होवे और  
 प्रमत्त होकर तमोगुण विषे दृढ़ होजावे तब यह भी प्रमाण नहीं इसीपर महापु-  
 रुषने कहा है कि जब कोई तामसी पुरुषकी स्तुति करता है तब उसके ऊपर भग-  
 वत् कोपवान् होता है ४ बहुरि अपनी स्तुति सुननेवालेको दोपाप प्रसिद्ध होने  
 है सो प्रथम यह है कि जब यह पुरुष अपनी स्तुति श्रवण करता है तब स्वभा-  
 विकही अभिमान होजाता है १ और दूसरा पाप यह है कि जब अपने गुणों  
 और विद्याकी बड़ाई सुनता है तब आगे गुम करतून से थकित होजाता है और  
 ऐसा जानता है कि मैं परमपदकी प्राप्त हुआ हूँ इमीपर महापुरुषने कहा है कि  
 तीक्ष्ण पांखर प्रहार करना भना है पर सम्मुख होकर किसीकी स्तुति करनी  
 गली नहीं काहेसे कि जब यह पुरुष अपनी महिमा सुनता है तब इसकी मन  
 इसकी अपने स्थानसे गिराप देता है पर जो बुद्धिमान है सो वापको पहिचा-  
 ननेवाला होता है तब जब यह अपनी स्तुति सुनता है तब अधिक आर्वाँन  
 चित्त होजाता है २ तात्पर्य यह कि जब कहने और सुननेवाला इन पदपापोंमें

रदिनहोने तब स्तुति करनी भी प्रगाण-होनी है और अपने मुखसे अपनी स्तुति करनी तो गढ़ानी चलावे और धर्मशास्त्र विषे भी नित्य कही है तबे निवासानो चाटिये कि जब कोई इसकी स्तुति को तब अपनी महिमा सुनकर अभिमानो न होवे और ऐसे जाने कि जतनसे भो परलोक के इलाके मुक्त होऊ तब लग गुरु और ज्ञान भी मुक्तसे मलेवे तबे चाटियो कि अपनी स्तुति सुनकर सज्जान होवे और अपनी नीचताको छुएनको इसीपर एक वाचा है कि कोई पुरुष एक सन्त ही स्तुति करनेलगा तब वह सन्त अधीतचित्त होकर गगरर के आगे प्रार्थना करके कहने लगा कि हे महायज्ञ महापुरुष तो मुक्तो नहीं जानता और तू मनी प्रकार सब कुछ जानता है ताते तूही मुक्तो दगाकर तू ही एक और सबकी किसीने स्तुति करी थी तब वह सन्त कहनेलगा कि हे महायज्ञ! यह जो मेरी बड़ाई करता है सो इसका दगड मुक्तो न देना और यह जो मेरे अवगुणोंको नहीं जानता सो अवगुणोंकी तूही दूकर और जेसा यह मुक्तो जानता है सो अपनी दया करके इससे विशेष मुक्तो कर बहुत एक पुरुष ऐसायो कि उसके हृदय विषे प्रीति मनीनि रुद्ध त थी पर सम्मुख आकर एक सतजनकी कपट सहित स्तुति करनेलगा तब उस मतने कहा कि जेमे मृत्यु से फटना है तिसमे इस अनि नीचे और जेसा तू दरय विषे जानता है तिस से इस निस्संदेह अधिक है ५ ॥

### चायामर्ग ॥

तासे जानतू कि यह को भी महा-मनीन स्वभाव और कोर का-धीन अग्निदे पर यहकोधरूपी गेरी अग्नि वे कि केवन रूप की जनानेवानी है और कोर करके पेरी विकेता उपजनी है कि विष कभी शानिको प्राप्त नहीं होता और सुवे कतनों का फल शानि है इसीपर एक प्रीतिमानने महापुरुषसे पूछाया कि महायज्ञ के कोषसे क्यों तू मुक्त होऊ तब उन्हाने कहा कि जब तू किसी पर कोषराव न होवे तब तू महायज्ञके कोषसे मुक्त होरगा यद्यपि उप प्रीतिमानने पूछा कि मुक्तो कोई पेरी कतना चलाओ निम्न विष निपायो थोड़ी होने और फल निस्का विषय होवे तब उन्हाने कहा कि कोर तो सदि होनाही अपि कलदागच है और किसी इस की घोरी है जो महायज्ञने

यों भी बंधा है कि जैसे गृहदकी सुई गैवाय देनी है तैसे ही क्रोध करके धर्म नष्ट होजाता है तात्पर्य यह कि यद्यपि अत्यन्त निन्दकोष होना कठिन है तो भी जिज्ञासुको यह तो अवश्य ही चाहिये कि यत्न करके क्रोध का सहारना करे और जिन पुरुषों ने क्रोध को धैर्य करके जीता है तिनकी संगत में भी प्रणमा करी है और यों भी कहो है कि विचारकी मर्यादा में रहने होकर क्रोध करना भी नरक का द्वार है ताते अपने क्रोध को निमेषण करना ही सर्व आहारों से विशेष है चहुरि कोई एक सेन्त जनों ने मिलकर यही सिद्धान्त दृढ़ किया है कि क्रोधके सम्भय धैर्यवान् होना और लोभके अंगमरविषे संतोष करना सर्व करतूतों से विभय है इमीपर एक चोर्त्ता है कि एक बड़े ऐश्वर्यवान् सतये सो कोई दुष्ट आकर खन को दुर्वचन कहने लगा पर वह अपना भीशानीवे करके मौन कर दे चहुरि उस दुष्टमें कहने लगे कि तू हमको क्रोधवान् किया चाहता है और मनके छलविषे डारना चाहता है सो मैं तो ऐसा न करूंगा पर ऐसा जानू कि मंगतने यह क्रोध भी इस निमित्त हुआ है कि मनुष्य का शत्रु होवेगा और हम शत्रु करके शत्रुओं का नाश करेगा और शरीरकी रक्षा विषे भाविवान होवेगा जैसे भुव और धाम इस निमित्त रची है कि जल और आहारको संवहर शरीर की पुष्टता होये ताते ममिद्ध हुआ कि घ्राह और क्रोध दोनों इस मनुष्यके भस्त्रोंपर जब मर्यादमे अधिक बढ़ने हैं तब यह दोनों ही दुःखदायक होते हैं ताते जब क्रोधरूपी अग्नि हृदयविषे प्रवृत्त होती है तब इसका धुमां सध शरीरविषे पसर जाता है चहुरि बुद्धि और विचारको अन्वकार करते ताते भनाई और बुराईको नहीं पहिचानता इमीकारण से कहा है कि क्रोध बुद्धि का शत्रु और महामलीन स्वभाव यही है पर जब यह क्रोध मूलही से नष्ट होजावे तब कुमग और अप्कर्मों की ग्लानि दूर होजाती है ताते चाहिये कि यह क्रोध मर्यादही पर रहे और न होवे और अत्यन्त शून्य भी न होजावे और मरुदा धर्मकी मर्यादविषे बने तो भना है तात्पर्य यह कि जैसे गाने पीछे वर्णन किया कि अत्यन्त निन्दकोष होना भी कठिन है पर तो भी कने ज्ञानमरोंविषे प्रेमा लीन होना है कि जानाही नहीं जाना सो इसका बचान यह है कि क्रोध का कारण मनोरथेना जब इसकी प्रियतम वस्तुको कोई लिया चाहता है तब भीवशी क्रोध उपज आता है और जिस पदार्थ विषे इसका मनोम्य कुछ नहीं होना निमित्त कहाने विषय क्रोध भी



नदी उपजना, घट्टरि, जेवनग यह जीव देहाभिमानि हे तबला आहार औ  
 विभ्र और स्थानभे, प्रयोजनमे गुरु नहीं होसकता इसी कारणसे जब कोई इन  
 प्रदायी को हारलेना चाहताहै तब निम्नन्देह इसको क्रोध उपजताहै तबे मपि  
 छद्मभा कि प्रयोजनही, क्यन रूपहै और प्रयोजनसे रहित हीनही संकहाहै  
 इसी कारण से जत जित्तु, पुरुषार्थ करके, प्रदायीकी तृप्याको चढ़ावे, और पुनः  
 मानादिककी अभिलाष से रहित होवे तब क्रोध भी, स्वभावित ही घटनताहै  
 जैसे कोई मति पुरुषका, सन्मान नहीं करना, तब उसको अवश्यही, क्रोध उप  
 जताहै और जब कोई, तिगानि पुरुष के आगेहोकर चले अथवा अधिक शोर  
 मकरे, सो भी बह तिनको ही रहताहै सो यद्यपि लोगोंकी अवस्था विभेद  
 हुत होताहै सो भी, धन और मानकी अधिकता विषे, क्रोध भी अधिक हीनहै  
 तद्विषय यह कि प्रदायके तौरपर और अन्न और, अस्पास काके क्रोध ही क्षीण  
 होजातीहै पर मूलही से नष्ट नहीं होता और जब क्रोध विचारकी मर्यादसे अ  
 धिक न होवे तब इसका दोष भी कुछ नहीं इसीपर महापुरुषने, कहाहै कि मैं भी  
 और मनुष्योंकी नाई क्रोध कहाहू अथवा कुछ ताड़ना देनाहू जो भी, मेरे हार  
 से दुया दूनही होती और बह क्रोध भी उसकी भलाई के, निमित्त कतारुं और  
 एक और सन्तोषी कहाहै कि जब मैं क्रोधवान् होता हू तबभी मेरी जिवी से  
 यथाय बचन निकलताहै पर ऐसे ज्ञान त् कि विज्ञाने पुरुषोंको ऐसी अवस्थाभी  
 होतीहै कि सब क्रान्तियोंका कर्ता भगवत् ही हो देगने हे तब इसका के भी क्षीण  
 होजाताहै जैसे कोई इन पुरुषके पायपर तब यह पायपर रमक मात्रही  
 क्रोधवान् नहीं होता और उस दुःखका कारण पायको नहीं जानता तबरा तब  
 राजा किमी पुरुषके मारनेके निमित्त पिट्टी भिनदेवे तब उस पुरुषको अन्नपर  
 क्रोध उप नहीं उतना कह्ये कि केलनको मजाके हाथमें पगधीन देवता दे  
 तेनेही निन-पुष्टीने भगवत् हे सागपंका निरय जाना हे तब ये मर्त्योंको  
 फाँ पसारीन देना हे और सबका ऐक भगवत्के जागदे ताँ तिसीमकोप  
 नहीं करते इस करके कि यद्यपि कर्मा कारण बने और सबका कारण भदा  
 हे पर इन मनुष्यकी अट्टा इसके आरीन नहीं बह अट्टा भगवत् ही भणक  
 परने उपजतीहै इसी कारणसे भगवत्को ने कहाहै कि यह मनुष्यभी पर ही  
 कसम ही नाई मर्त्याहै और यद्यपि कर्मकरना यह मनुष्यही दृष्टिआताहै

तोभी आपकरके समर्थ कुछ नहीं सो, जिन पुरुषों की, ऐसी समझ हृद हुई है  
 तब त्रे किसीपर शोष नहीं करने और क्रोधवान् भी नहीं होते और यद्यपि दुःख  
 फलके हृद भी होते हैं तोभी उनको क्रोध नहीं उगजना काहेसे, कि हृदु और है  
 और क्रोध और है, जैसे अज्ञानकही, किमीका, पशु मरजाये तब शोककरके वह  
 हृदुकीतो है तब पर किमीपर क्रोध नहीं करता परइसप्रकार सर्वजीवोंको, परा  
 धीन देखना और, सर्वदा ऐसीसमझ विवेकस्त्रिभूतना महादुर्लभहै काहेसे कि  
 यद्यपि क्रमी विजली, की नाई हम अज्ञानका चमत्कार होता है तोभी स्थूलता  
 की प्रबलताकरके बहुरि, विवेक होजाताहै पर जब ऐसी अज्ञानका, प्राप्त न होने  
 तोभी कितने जिज्ञासुओंका अग्र्यास, परसार्थ विषे, ऐसा हृद होताहै कि उनको  
 कदाचित् क्रोध नहीं फुरता जैसे एक सन्तको किसीने दुर्वचन, कहाया तब  
 उन्होंने इसप्रकार कहा कि, जो मैं परलोकके हृदु से निवृत्त हुआ, तब तो तेरे  
 कहनेका, भय, कुछ नहीं और जब मैं परलोकविषे हृदुको प्राप्त हुआ तो तेरे कं  
 धतेसे भी अधिक नीचहू तब तेरे कहनेका क्या सशयहै बहुरि एक और संतको  
 किसीने दुर्वचन, कहाया तब उसने कहा कि मेरे परम सुखविषे किननीही कठिन  
 घाटियां हैं और मैं उनसे उलझाविन हुआ ताहवाहू सो जब मैं उन घाटियों से  
 उलझित हुआ तो तेरे कहनेका मुझको भय कुछ नहीं और जब मैं उनसे उल  
 झित न हुआ, तब जैसा, तू मुझको कहताहै सो इससे भी मैं अधिक नीचहू बहुरि  
 एक और सन्तको कोई दुर्वचन, कहताभया तब उन्होंने कहा कि, हे भाई ! जितने  
 हमारे, अवगुण हैं सो तेरे जानने से अतिगुह्यहै और हमरेपद तात्पर्य, यह  
 कि जिज्ञासु, बेराग्य और अग्र्यास विषे ऐसे लीन दृष्ये हैं कि, उनको क्रोध की  
 चिन्तवनीही, कुछ नहीं रही, जैसे एक प्रीतिमान् से किसी स्त्रीने, कहाया कि तू  
 बड़ा कपटीहै, तब वह कहनेलगा कि तूने मुझको भलीप्रकार, पहिचानाहै बहुरि  
 एक और प्रीतिमान् को किसीने दुर्वचन, कहाया तब वह कहनेलगा कि जो तू  
 सत्य, कहताहै तो यह अवज्ञा भगवत् हमको, समाकरे और जब तू भूड कहना  
 है तब मुझको भगवत् प्रकृत्यनेवे, ताने प्रसिद्ध हुआ कि डरते उपाय करके क्रोध  
 जीतानाताहै और, जब किसी पुरुषको ऐसी हृदना होवे कि, क्रोधने रहिन देने  
 को भगवत् प्रियतम, रचना है तब वह भी भगवत्की प्रसन्नता के निमित्त क्रो  
 ध, रहिन दानाहै जैसे किमी, मनुष्यका कोई, पिपयनहोवे और उम पिपयना

पिता अथवा पुत्र उसकी देखभाल और प्रेम भी वह अनुपम पामां जन्मि किमिरा विवे-  
 नगदी मुक्त हो ताइना कगताहे तब उसको प्रीतिको अधिकता करके तोइनास  
 इ वही कुछ नहीं मासता और रवेकमात्र भी कोधवीरु नहीं होता। तबि जिज्ञासु  
 को चाहिये कि किमी ऐसे ही कार्यविषे जीनिहोकर के भवे रहिनहोवे और जर  
 ऐसा पुरुषार्थन होसके तोभी चाहिये कि क्रोधकी प्रवेवेता को क्षीणको अने  
 यह कि यद्यपि क्रोधको मूलही से नष्ट नि करसके तो गो धव करके बुद्धि और  
 सन्तजनों की मर्यादमे उल्लवितान होनेवेवे फाहेसेके यह कोधही निस्पन्देह  
 यदुत जीवोंकी नरकगाणी करता है और अनेको विवेको फासकेहोतावे इसका  
 जीतनेका उपाय करना अवश्यही प्रमाणिहै पर इमका उपायमी दीमकार कहा  
 है सो एक तो ऐसा उत्तमहै कि क्रोधको तंत्रागिन्व मर्यादना करके हृदयकी  
 शुद्धकरेना है और दूसरा उपाय मध्यमहै मो यत्र क्रोधको विवेन करना  
 है पर उत्तम उपाय यह है कि अयम क्रोधके कारण को विचार और उसकी  
 मूलहीसे उखाड़डाले सो क्रोधके कारण भाव है प्रथम कारण अभिमान है कि  
 अभिमानि पुरुष किमि वही धिन्न और निरावर करके क्रोधवान् होजाताहै तब  
 इसको उपाय दीनता है फाहेसे कि सर्वही जीव भगवत्के उत्पन्न किएहुवे है  
 और एक समान है और जो किसीको विगप कहाजाताहै तो शुभ गुणोंकरके  
 विशेषता होती है सो अभिमान करेना महागामिन स्वगोपु है और नीतताको  
 कारणहै २ वट्टी दूसरा कारण क्रोधको यहहै कि ह्यास्परम से भी क्रोध उपजता  
 है सो इसका उपाय यहहै कि जिज्ञासु सर्वदा पालोकेने कार्य विषे स्थिरहोने  
 और शुभगुणोंके पानेको विचार रावे और बीद विवाद हास्य से भिन्नहै और  
 भाषिको ऐसे समझावे कि तब कोई विस्मिको इसलोक विषे हमतीहै मर पर  
 लोक विषे उसकी भी लज्जिन करते हैं २ वट्टी तीसरा कारण यह है कि जब  
 कोई इमकी निन्दो करता है अथवा इमपर कुछ दोष मन्वाहै सो भी दीना और  
 से क्रोध उपजता है सो इमका उपाय यहहै कि आपसी निन्दे निज जाओ और  
 इमका मगक किमि सो जागुणोंकरके आपस तबि किवीय क्रोधवान् करी  
 होनाहै और यद्यपि मरे विषे जरगुण कोई नहीं मवे किमी की निन्दोकी मुक्त  
 को मनप र्थाहै २ वट्टी चौथा कारण क्रोधकी उत्पत्ता और उपाय फाहमे कि  
 कोणी अनुपम से जब कोई पदम टरनेताहै अथवा मोगाहाहै कोणी की भाव

होता है और जना कोई जोगी-पुरुष को एक कौड़ी न देवे तो भी दुःख को प्राप्त होता है सो यह सबही मलिन स्वभाव है और इसका उपाय यह है कि वृष्णा (के विघ्न को) पहिचाने कि वृष्णावान् पुरुष इसलोक विषे भी दुःखी रहना है और परलोक विषे भी न रहे जो को भोगता है ताते चाहिये कि वृष्णा को हृदय से दूर करे और ऐसे मलिन स्वभावों के साथ बिरुद्ध करके आत्मधर्म विषे सावधान होवे ४ सृष्टि पात्रता कारण यह है कि जो व्रतों की संगति से भी क्रोध उपजना है और यह मनुष्य ऐसे मूर्ख होते हैं कि क्रोध की अधिकता को अपना गुरुपार्थ समझने हैं और इस प्रकार कहते हैं कि हमने ताइता करके अमुक पुरुष को जौता लिया और अमुक सन्त जौ गृही सापकरके अमुक मनुष्य को भस्म कर डाला उमका धन और गृह सबही नष्ट कर दिया बहुरि ऐसे कहते हैं कि जवान् पुरुषों का लक्षण यही है कि जो जनुके सम्मुख खोलता है तिसका नाश होता है पर ऐसे कहनेवाले मनुष्य ऐसे मूर्ख हैं कि जिस क्रोध को सन्त जनों ने कुरुरों का स्वभाव कहा है सो तिसको गुरुपार्थ और स्वर्द्धाई ज्ञाने हैं और सहनशीलता जो महापुरुषों का लक्षण है तिसको बलहीनता कहते हैं सो यह मलिन मन की प्रकृति है कि बुद्धि को बलकरके सुन्दर कर दिखावा है और शुभ गुणों को कुरूप कर दिखाना है पर जो बुद्धिमान् पुरुष है सो तिसपुद्गेह इस प्रकार संग्रहना है कि जब क्रोधही कृनाम गुरुपार्थ होता तब क्रिया और रोगी और वृद्ध पुरुषों को तो अधिक क्रोध होता है ताते जगत् विषे इन्हीं की विशेषता होती तात्पर्य यह कि अपने क्रोध को जीतना ही पुरुषार्थ है और महापुरुषों का लक्षण भी यही है चहुरि को धवान् पुरुष जगली मनुष्यों की जाई है अर्थात् यद्यपि देवने में मनुष्य भामने हैं तो भी सिंह और व्याघ्रों का स्वरूप है ताते वृ विचार करके देव कि महापुरुषों के लक्षण का ज्ञान गुरुपार्थ है कि पशुओं और मृगों के स्वभाव का नाम गुरुपार्थ है ५ पर यह जो उपाय भेते प्रवृत्त कारण निवारणवाला वर्णन किया है सो यह उपाय यह है कि इस क्रोध को मूलही में नष्ट होता है और अन्त उपाय यह है कि इस क्रोध को गहिरा कुओग सुन्दर बनहीन हो जाना है पर मन हीमे दूर नहीं होता सो यह उपाय भी बुद्धि मितर्द्ध और हृत्स्वी कटुना के मिलोप करके उपाय जौ चिनारि ज्ञाने तिस फलके होता है फाह मे कि मारी भले स्वभाव वृद्ध और कालन की सूत्रता करके होने हैं पर बुद्धि यह है कि

पिता अथवा पुत्र उसको दरइकरे और प्रेमी वह अनुप्य गेसा जीने कि मेरा पिपे  
 तगदी मुझको ताड़ना करेताहै तब उसको प्रीति की अधिकता करके सीइनेका  
 दुःखही कुछ नहीं मासता और रिकमात्र भी क्रोधधार नहीं होता तिते जिहाम  
 को चाहिये कि किसी ऐसेही कार्यविषे जीने होकरके अपने रहिनेहेवि और जे  
 ऐसा पुरुषार्थ न होसके तोभी चाहिये कि क्रोधकी प्रवृत्ता को क्षीणकरे और  
 यह कि यद्यपि क्रोधको मूलही से निवृत्त करसकी तीमायव कारके बुद्धि और  
 सन्तजनों की मर्यादमे उल्लङ्घन होभेदेवे काहेसे कि यह क्रोधी निस्पन्दह  
 बहुत जीवोंको नरकगामी करता है और अनेक विजि कि कारणहोताते इसको  
 जीतनेका उपाय करना अवश्यही प्रमाणहै परइमका उपायमी दीपकी कहै  
 है सो एक तो ऐसा उत्तमहै कि क्रोधको नशाशय ग्यन्न और करके हृदय की  
 शुद्धकरेदता है और दूसरा उपाय अर्थमहै सो जब क्रोधको निवृत्त करता  
 है पर उत्तम उपाय यह है कि प्रियम क्रोधके कारण को विचार और उसकी  
 मूलहीसे उलाहडाले सो क्रोधके कारण पांच है प्रथम कारण अभिमान है कि  
 अभिमानी पुरुष किचितही विवचन और निरादरकरके क्रोधवन् होजाताहै तते  
 इसको उपाय दीनता है काहेसे कि सर्वही जीव भोगवत् के उत्पन्न कियेहुये हैं  
 और एक समान हैं और जो किसीको विशेष कहाजाताहै तो शुभ गुणोंकरके  
 विशेषता होती है सो अभिमान करेना महामानि स्वभाव है और नीचताकी  
 कारणहै तबहुँर दूसरा कारण क्रोधकी यहहै कि हसिरसेस भी क्रोध उपजता  
 है सो इसकी उपाय यहहै कि जिहामु सर्वदा परलोकके कीर्त्य त्रुप स्थितहोव  
 और शुभगुणोंके पानेकी विचार रामे और वीद विवाद हास्य से बिरकरहे और  
 आर्षको ऐसे समभावे कि जब कोई किसीको इसलोक विषे हर्मताहै तबपर  
 लोक विषे उसकी भी सज्जन करते हैं तबहुँर तीसरा कारण यहहै कि जब  
 कोई इसकी निन्दन करता है अथवा इमपर कुछ दोष रखताहै तोभी दोना और  
 मे क्रोध उपजता है सो इसका उपाय यहहै कि आपकी निन्दन अजाने और  
 इमप्रकार समके कि मे तो अवगुणोंकरके अपाहू ताने मकशीपर क्रोधवन् क्या  
 होनाहै और यद्यपि मेरे विषे अवगुण कोई नहीं तबे किमी की निन्दन कि मुक  
 को मजबूतगाहै तबहुँर चौथा कारण क्रोधकी उत्पणा और मुपाहै काहमे कि  
 कोभी अनुप्य से जब कोई एकदम हरलनाहै अथवा गोगमहै ततो क्रोधवन्

होता है और जन्म को ही जो भी पुरुष को एक कौड़ी न देवे तो भी दुःख को प्राप्त होता है सो तब ही मजिन स्वभाव है और इसका उपाय यह है कि दृष्टा के विषय को पहिचाने कि दृष्टावान् पुरुष इसलोक विषे भी दुःखी रहना है और परलोक विषे भी न रहे स्वो को भोगता है ताते ज्ञाहिये कि दृष्टा को हृदय से दूर करे और प्रेसे मलिन स्वभावा के साथ विरुद्ध करके आत्मधर्म विषे सावधान होवे; च चट्टि पाचवा कारण यह है कि क्रोधनातो की सगतिसे भी क्रोध उपजता है और वह मनुष्य प्रेसे मूर्ख होते हैं कि क्रोधकी अधिकता को अपना पुरुषार्थ समझते हैं और इस प्रकार कहते हैं कि हमने ताड़ता करके अमुक पुरुष को जीता लिया और अमुक सन्तने एक ही आपस के अमुक मनुष्य को भस्म करवाला उसका धन और गृह सखी नष्ट कर दिया बृहदि प्रेसे कहते हैं कि जवान् पुरुषों का लक्षण यही है कि जो उनके सम्मुख बोलता है तिसका नाश होता है पर ऐसे कहनेवाले मनुष्य ऐसे मूर्ख हैं कि जिस क्रोध को सन्तजनों ने कुरुरों का स्वभाव कहा है सो तिसको पुरुषार्थ और बड़ा ज्ञानाने है और सहनशीलता जो महापुरुषों का लक्षण है तिसको बलहीनता कहते हैं सो यह मलिन मनकी प्रकृति है कि बड़ा क्रोध बलका सुन्दर कर दिशावा है और शुभ गुणों को कुरूप कर दिवाना है पर जो बुद्धिमान् पुरुष है सो तिसमें देह इस प्रकार सगभावा है कि जब क्रोध की नाम पुरुषार्थ होता तब स्त्रिया और रोगी और वृद्ध पुरुषों को तो अधिक क्रोध होता है ताते जगत् विषे इन्हीं की विशेषता होती तात्पर्य यह कि अपने क्रोधको जीतना ही पुरुषार्थ है और महापुरुषों का लक्षण भी यही है चट्टि क्रोधवान् पुरुष जगली मनुष्यों की ताई है अर्थात् अथपि देवने में मनुष्य भानने हैं तो भी सिंहा और व्याघ्रों का स्वरूप है ताते च विचार करके देख कि महापुरुषों के लक्षण का नाम पुरुषार्थ है कि पशुओं और मृषों के स्वभावका नाम पुरुषार्थ है प्रग यह जो उपाय; भेते प्रवृत्तफाण निवारणवाला वर्णन किया है सो यह उपाय उपाय है काहे कि इस क्रोधको मूर्ख ही में नष्ट होता है और अपने उपाय यह है कि इस क्रोधको क्रोधरुी कुलग सुत्र धनहीन हो जाना है पर मूज हीमे दूर नहीं होता सो यह उपाय भी बूझनी मित्राई और दृष्टरुपी कृपा के मिलाप करके जो पर जो मनाई जाने पित्त फटेके होता है काहे से कि मर्ही भले स्वभावाम् और काल की प्रकृता करके होने हैं पर बुझाये है कि

जितने वन्न क्रोध की निन्दा और सहनशीलता की विशेषता विवेचित है, सो वास्वार् उक्तकी विचार करे और आपको इस प्रकार समझावे कि जैसे तुम प्रबल होकर अनाथ पर क्रोध करते हो सो इसमें अधिक भगवत् तरे ऊपर प्रबल है तावे जब तु किसी के ऊपर क्रोध करेगा तब तरे ऊपर भगवत् भी क्रोधित होवेगा इसपर एक वार्ता है कि महापुरुष के दृष्टानुवने कुछ अवज्ञा कि गयी तब महापुरुषने उम से कहा कि जो परलोक का भय न होता तो तुम को ताड़ना करता बहुरि इस प्रकार समझे कि मैं इस निमित्त क्रोधित होता हू कि जो भगवत् की इच्छानुसार कार्य्य हुआ है और मेरी इच्छानुसार नहीं हुआ सो यह तो महाराज के साथ विरुद्ध होता है पर जब ऐसी बुराई के भी क्रोध का बंध धीण न होवे तब इसी संसारके प्रयोजन को विचार और इस प्रकार क्रोधको स्मरण करे कि जब मैं किसी पर क्रोध करूंगा तब वह भी मेरे साथ विरुद्ध किसे चाहेगा और अपने शत्रुको अल्पजानना न चाहिये और क्रोधके समय जो मनुष्योंका स्वरूप कुरुर की नाई होजाता है सो तिस भयानक आकारको स्मरण करे ताते चाहिये कि ऐसे मलिन स्वभावको त्याग कर क्षमा और धैर्य जो सन्तजनोंके स्वभाव और लक्षण हैं तिनको ग्रहण करे और जगत के मन्त्रको त्यागकर महाराजकी प्रसन्नताकी वृत्ति सो इस प्रकार आप को समझावेना ही परगुरु है और क्रोधके जीतने का उपाय है परं किरतन करके इस प्रकार उपाय होता है कि जब क्रोधकी अधिकता देवे तब मुखसे ऐसा कहे कि हे भगवन् ! इस क्रोधरूप दुष्टसे मेरी रक्षा कर बहुरि जो क्रोधकी प्रवृत्तताके समय लड़ा होवे तो बैज्यावे और जब आगेही वैज्य होवे तब शयन कर रहे अथवा शीतल जल से स्नान करलेवे तब स्वाभाविकही क्रोधका बन्ध धीण होजाता है इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि जब इस मनुष्य पर क्रोध प्रवृत्त होवे तब चाहिये कि महाराज को दण्डवत् करे और अपने मस्तकको धरती पर रासे बहुरि इस प्रकार विचार करे कि माघासीही से उत्पन्न हुआ है ताते मुझ को क्रोध करना प्रमाण नहीं तात्पर्य्य यह कि जब कोई इसको दुनारे अथवा दुर्बचन कहे तब प्रवृत्तता क्षमा करनी विशेष है औ जब देवे कि बहुरिपही कुछ कहनेही का आशय है तब थोड़ाही उधर देवे और यद्यपि कठोर वन्न कहे तो भी मूर्खन बोलै पराजि ज्ञानु को इस प्रकार प्रमाण नहीं कि दुर्बचनके उत्तर आपसी दुर्बचन करे

और निंदा करनेवाले की आप भी निन्दाको सो यद्वा सहनशीलता नहीं होती। इसीपर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् को कोई दुष्ट दुर्वचन कहवाया और महापुरुष भी पास बैठे दृष्टे बहुरि जब वह प्रीतिमान् उसे दुष्टसे कुछ बोलने लगा तब महापुरुष उठ खड़े दृष्टे बहुरि उस प्रीतिमान् ने पूछा कि हे स्वामीजी ! जब वह दुष्ट मुझ को दुर्वचन कहता था तब तो आप बैठे रहे और जब मैं बोलने लगा तब किसी निमित्त उठ गये तब महापुरुषने कहा कि जबलगा तू भौनकर रहा था तब लगते तब निमित्त देवता उसको उत्तर देते थे और जब तू बोलने लगा तब क्रोधरूपी असुर आवता मया ताते असुरों की संगति का त्यागता प्रमाण है बहुरि महापुरुषने भी कहा है कि मनुष्यों की अवस्था भगवतने भिन्न भिन्न रत्नी है इसी कारण से केते मनुष्य विरकाल करके क्रोधवान् होते हैं और विरकाल करने केही प्रसन्न होते हैं और केते पुरुष शीघ्र ही क्रोधवान् होते हैं और शीघ्र ही प्रसन्न होजाते हैं सो महाउत्तम जन हैं पर ऐसे जानू तू कि जब क्रोधको विचार और धैर्य करके लीन करलेते तों यह तो महाविशेष है और जब यह पुरुष किसी सयोग भिषवा अपनी निर्बलता करके क्रोधने करे और हृदय विषे शोभवान् रहे तब इस करके चित्तविषे क्रोधकी गांठ पड़जाती है सो यह महानिन्य है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जिज्ञासु जन हृदयविषे क्रोधकी गांठ नहीं रखते ताते प्रसिद्ध हुआ कि यह गांठी क्रोधकी सन्तान है और इस शोम्की गांठके आठ पुत्र और हैं सो स्वधर्म के नाशक हैं सो प्रथम ईर्ष्या है जो अपने शत्रुका सुख देखकर तपाप्रमात् होता है १ और दूसरा वैरभाव है कि जब अपने शत्रु को कोई दुःख देवे तब प्रमत्त होकर उस दुःखका घबलान कांठा है २ बहुरि तीसरा यह है कि क्रोधकरके उसके साथ राम राम भी नहीं करता ३ और चौथा यह है कि अपने शत्रुको खानि सहित देखता है ४ और प्राप्तवा उसको दुर्वचन बोलता है ५ और छठवां उसके विद को लोगों में प्रसिद्ध करता है ६ और सातवां तमका घात चेतता है ७ और आठवां उसके किसी कार्य विषे सहायता नहीं करता और यद्यपि उसका शत्रु होने तो भी दीवशा करके विमुख रहता है पर जब कोई ऐसा ही दुद्रिगान् होवे कि स्थितिकारों से आपको क्याप यसे तो प्री शत्रु का वचन कारकना तो महाकठिन होता है बहुरि भार और मिलाप और मुहापता और उमेकी बुलाईका दर्शन नहीं करसका ८ सो यह सही स्वभाव विचको मन्त्रिक



करनेवाले हैं इसी पर एक माता है किनेक मनुष्य महापुरुष की तसेई कनेवाला  
 था। तो महापुरुष की स्त्री को दुर्वचन किह नाममा बहुरि महापुरुष की स्त्री के पिता  
 उसर सोइया के सावगान बन्नादिक की सुविनेनेये सो जीव जहेंते सुना कि मेरी  
 पुत्री को इसने दुर्वचन कहा है तब को बस युक्त मीहा राज की दुहाई देकर कहते लगे  
 कि फिर भैतेरी जीविका की सुविज लेऊगा सो जिव महापुरुष ते अहमात्मा सुनी तब  
 कहने लगे कि मुझको अगवतने इम प्रकार आज्ञा कुरी है कि जन्म कोई तुम्हारी  
 वधा करे तब तुम क्षमा करो और दुहाई करके इम प्रकार जन्म को कि बहुरि भैतेरे  
 सभि भवई तब कहेगा ताराई सहति निसके कार इम पुरुष का अति प्रसो भवति  
 हे विप्र प्रादिये के प्रथम सो हताशोर विप्र कस्को पकी नित्रोई अथवा उभके  
 साथ मात्र और मताई के बहवो सो अह उष मयुक्तों की प्रवृत्ता है और जन्म  
 के साथ मलाई त करके तब इन बातों अति मही जाहिये कि शिशु को किये  
 पूर्ण सुखावे नहीं सो मह मध्यम पुरुषों की प्रवृत्ता है और शिशु को साथ  
 करनी यह सो ससारी जीविका कर्म है और महानी त अत्र प्रा है ताके प्रमि  
 दुर्मा कि सुके साथ मलाई करनी विगम है और महा उचर्न करत रहे और जन्म  
 पे सानि हो सके तब क्षमा करनी विरोध है इसी पर तदा पुरुष जे मगवत की दुहाई  
 देकर कहा है के दान देने पर के प्रति की क्षीणता कदाचित् नहीं होती और तब  
 राई और किनेवाले पुरुष को अत्र मही सिद्धे नवा प्रोत्त प्रोती है और प्रसा करे  
 नेवाले पुरुष के अत्र मही मीनिस्त्र देह क्षमा करत है बहुरि मशपुरुष की  
 स्त्रीने भी कहा है कि मेने अही पुरुष को अमते उनिमित्त दण्डकते द्यो कदाचित्  
 नहीं देता पर जन्म केवल अर्म मही का प्रयो जन होनाथा तवा ताइजा मीकीने ये  
 बहुरि यो भी कहा है कि मेने लोक पर लोक विप्राउत्त न करत मदी देना दे कि  
 वेरी के साथ अत्र करनी और दुहाई देनेवाले को सुद्धेना और महापिप्पने किहा है  
 कि जो मेरे अर्थ करके अलके होने द्यो कि सीकी अत्रज्ञा को समी करने हेमो  
 सर्वथा मेरे निकटवर्ती है और मुझको अशितापिय लगावे हे इमी पर एक शर्षा  
 है कि एक संत की समी कि सीने सुवायनी भी सर्वत्र हसवी रदन करत लगा  
 बहुरि सो गोने प्रो कि तुम धनके निमित्त रोते हो तब उमने कहा कि मुझको  
 धनका शोक तो कुछ नहीं पिर अइम निमित्त रोता है कि जन्म ताले कर्म उष  
 अनोय चोरको पकड़क द्यो मरोगे तब वह विवाता कपा उचर देवेगा तब मे

दयाकरितीहं धरुंरिगमंदास्मिद्वज्जको आकार्गवाणीहृई थीं किन्तु मह पुं-  
 'रुं' अर्पने शत्रुकी अवनताको क्षमाकरताही और नभैरभावामे दूराहोताहै तत्र इस  
 के सवैविधनष्ट होजति है तनि बाहिये किं जत्रको राउप्रजनेसंगे तत्र र्शितल  
 विज्ञाहारे और 'रु' धादेनेवाले पुरुषनपुंभीउपकार करे तंत्रांकेधरी निर्विज्ञहो  
 जतिहैइसीपर महापुरुषने अपनी स्त्रीमे क्रोधायां किउजिसको अशक्त तेसाव  
 और दयाका स्वक्षणदिमाहैमो लोकजोः परलोकीके सुवकी भोनाहै 'भो'  
 लो पुरुषभाग्रहीनहैवहस्त्रोक्रोरांमलोकाके सुसुसं समापःइताहै ॥ अथ  
 प्रकृत कर्मी ईषांके विघ्नोका।। जनिजानतुकिंकोउसे गाउ उदात्रहोतीहै और  
 कीपही की आउमे ईषां उजनी हैसो ईषां गीजीवकेधर्मको ज्ञासु कनेवाती  
 हैइसीपर महापुरुषने कहाहै कि जैसे लूकाहियो को अग्नि नसुमकर धालतीहै  
 तैसेहीईषां श्रुं मं करतूतों को निलादेनीहै तद्वेकि योभीकइहै कि दोषदृष्टि और  
 ईषांसो मुकुहीनी इमं पुरुषको महाकृतिमाहै पर इसका उपाय यहहै किजवकिधी  
 पर दोषदृष्टिउपजे तिव उसकी धिइको हूईनी सीये औरीजिसके संयि कुंघ्र ईषां  
 उपजनेसंगे तवरसनां और ह्यर्थको अर्थकर्मों से त्रवायारसिगेवहुरि मुदा-  
 पुरुषने अपने प्रियतमोंसे ईषांनकारकही हैं कि अत्र में तुमहारे विषे ईषांकी  
 अभिक्ता देखनां हूसीं ईषां करके आगे भीजवहृतमिनुंषोका ज्ञासु हुआहै  
 ताते में भगवत् की इहाइदे करे कहती हू कि जवलगइस मनुंषु की अर्थादद  
 नहीहोता तिवलग आरंभमुखको नही पर्वता और जवनग सर्वमनुंषुको ज्ञासु  
 भाव और भीति नहीरसनां तवलगइमस्त धर्मही दद नहीहोता इसीपर महा-  
 राजने कहाहै कि ईषां करनेवाला पुरुषाणेंसां विमुंषुहै किं जिमरी में कुल देता  
 हू सोमिसका शत्रु होताहै और जिमअकार जीवोंकी श्रेयध मेने रची है सो  
 तिसको मिली नही जीमता और महापुरुषने भी कहा है कि प्रदुपकारके पुरुष  
 मृष्टि स्वभावके स्वभाविकही नरके विषे त्वरो जावेंगे सो राजा अर्धम को  
 कर और मिपीहालोगे फडोरती फरके अ और धनवान् जगिमान काके अ और  
 व्यवहारी लोग धनकरके अ और जगकी सीमं सुसना काके अ और विद्यावान्  
 ईषां करके नरके गोंगो होवेंगे इ धरुंरि एक मंत्रने कहा है किमो किसी की ईषां  
 नहीं करना कोहै कि जइमं पुंनोके विषे मुखको आताहुआ तव त्रहस्यत्र  
 मुन रिंमंनो है जो इमको ईषां करे और जव मुखको पारकामी होना

है तब संसारों के सुखोंको भोगकर कब लग सुखी होऊगा ॥ अन्तः प्रकृत कृ-  
 त्ना रूप ईर्ष्याका ॥ ऐसा जान तू कि जब किसी सुखको देखे तो प्राणहोवे जो  
 उसके सुखको देखकर तप्रायमान होवे और उसके सुखको नाश हुआ तब  
 इसही की नाम ईर्ष्या है सो यह महामखिन स्वभाव है काहे से कि अगवत् की  
 आर्त्ता के साथ विरुद्ध होता है और यह भी मूलता है कि सुखको कुत्र वा  
 न होवे और दूसरे की हानि आवे सो यह हृदयकी मखिनता का लक्षण है ॥  
 जब तू किसीका सुख देखकर अप्रमत्त होवे और उसी के समान हुआ चाहे  
 इसकी नाम अभिलाषा कहने हैं सो यह अभिलाषा जो धर्मकायों तिये होते तब  
 निस्सन्देह सुखका कारण है और जब लोगोंके तिमित्त होवे तब यह भी अपवि-  
 त्र है इसी पर महापुरुष ने कहा है कि जिह्वासु को ईर्ष्या करती अयोग्य है ॥ ३५ ॥  
 प्रकार प्रमाण है कि जब किसी सोचिकी अनुम्यको शुभ करवून भिये, मनीते देवे  
 अथवा किसीको उदारता सहित देखे तब ऐसे चाहे कि मैं भी किसी प्रकार इस  
 की नाई होऊ सो यद्यपि महापुरुष निर्द्वेष है तो भी सात्विकी श्रद्धा करके मन  
 चार की उदारताके फलको पाता है ऐसा ही जब कोई धनवान् अपने भक्तों  
 पापों भिये क्षमाताहोवे और कीर्ति निर्दान उसको देखकर इस प्रकार चाहे कि जो  
 मेरे पास धनहोता तो मैं भी ऐसा ही भोग भोगवा सो ऐसी मत्तसा करके दोनों  
 समान पापी होते हैं तात्पर्य यह है कि किसीकी सम्पदा और सुखको देखकर  
 भक्तानि करती प्रमाण नहीं परन्तु कोई अंधभी राजाहोवे अथवा कोई दुराचा-  
 री होवे और उसके सुखको देखकर दोषदृष्टि आवे तो प्रमाण है काहे से कि उस  
 की सामर्थ्य के नाशहोते करके पापों का नाश होता है सो इसका लक्षण यह  
 है कि जब वह अंधभी राजा अथवा बह दुराचारी उस प्राणिकी रयागको तब उ-  
 सकी सम्पदाको देखकर प्रसन्न होते और दोषदृष्टि न राखे तब जानिये कि वह  
 ईर्ष्या नहीं और यद्यपि यह ईर्ष्या ऐसी है कि स्वाभाविकी उस अनुम्य के हृदय  
 भिये आनन्दहोती है और अपने बल करके इससे दूर नहीं होसकी पर जब वह  
 पुरुषात्म ईर्ष्या के संकल्पको ग्राह्यमखिन जाने और भयवान् रहे तब दममून  
 संकेत करके ऐसा वाप नहीं लगता पर जब ऐसा साक्षी हुआ होवे कि जो इसके  
 शत्रुका सुख हुआ इसही के दायहोवे तो भी उसके सुखने अप्रमत्त न राखे ॥ ३६ ॥  
 प्रकृत कृत्ना तपास ईर्ष्या ॥ ताते जान तू कि ईर्ष्या भी एक दीर्घ रोग है और

इस रोगकरके केवल ईद ही को दुख होता है ताते इसका उपाय भी धूम और फरतूतिके सम्बन्ध करके होसकता है सो धूम यह है कि ईर्पाकरके लोक और परलोकविषे अपनी हानिको जाने पर ईमलोक विषे इस प्रकार हानि होती है कि ईर्पा करनेवाला पुरुष सर्वदा चिन्तावान् रहता है और दुखी रहता है और यद्यपि अपने मन विषे शत्रुका दुख चिन्तवता है तो भी प्रथम तो आपही चिन्ताकरके जलने लगता है ताते प्रसिद्ध हुआ कि चह ईर्पा महादुखरूप है और महामूर्खता है काहेमे तर्क अपनेही को प्रकारके आपकी जलाता है और शत्रुको होने कुछ नहीं करसकता इम करके कि सब किसीका सुख दुःख गहरीज की आत्मा के अधीन है और जिस प्रकार भगवतने उस सुखकी भित्ति रखी है सो ईमके संकल्प करके न बदली है ना घटती है ताते प्रसिद्ध हुआ कि ईर्पा करनेवाले मनुष्यको इसीलोक विषे ईर्पा दुःख देती है बहुरि परलोक विषे ईम प्रकारके उदायक है कि ईर्पा करनेवाला पुरुष भगवतकी आज्ञामे विरोध करता है और भगवतने जो पूर्णज्ञान के सिध जीवों की प्राण्य रची है तिममें विभुं व होता है ताते ईर्पा करके महाराज की प्रतीति मे हीन होता है बहुरि सर्व जीवोंका भी बुरा चिन्तवता है इमी कारण मे संतजनों मे कहा है कि ईर्पा करनी मनमुक्ता है और जब विचार करके देखिये तब जिनकी ईर्पा करता है सो तिमको यह लाग होता है कि उसकी ईर्पा करनेवाला शत्रु इमी लोक विषे पैदा जलता है और उसकी हानि कुछ नहीं होती बहुरि जिसकी ईर्पा करता है तिमकी धर्मको लाभ इम प्रकार होता है कि उमने तो तुम्हको नहीं दुखाया और तू उमका दुख चिन्तवता है ताते तेरे शुभकर्मों का फल उसीको देवेगा और उसके पापोंका फल तुम्हको भोगना पड़ेगा ताते जबतु विचार करके देखे तब तू इम प्रकार जाने कि तू जो उस के भौतिक सुखका नाश चाहता है सो तेरे विभवमे करके उमके भौतिक सुखभी दूर नहीं हाने और तेरी ईर्पाके सम्बन्ध करके उम हो परलोकविषे भी सुख अधिक होता है और तू उमको विषे भी दुःखी रहता है और परलोकके दुःखोंका बीजोत्पादने ताते तू अपने चिन्तविषे नाचना है ताते मैं अपने भित्तू जो उमको शत्रु पर जब भना प्रकार देखे तब उमको भित्तू और आना शत्रु होना तब अपने आगही हो पड़ा ही फगता है और पगलाकरके सुखमे भी अपाय रहता है और जो पुत्र पिता की मर्पण और सुखको देखकर ईर्पा नहीं करने जो प्रमत्त हाने है

सो यदा भी सुखी हैं और परलोकविषे भी सुखी, होवेंगे इसीपर महापुरुषने कहा है कि उत्तम पुरुष, वही है जो किसीको शुभ उपदेश, दृढ़ावे अपवा विद्यागानीसे उपदेश सुन कर अगीकारकरे अथवा उनको प्रियतम राखे सो ईर्ष्या करनेवाला, इत तीनों गुणों से स्वप्राप्त रहता है ताते, ईर्ष्या, करनेवाले का दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई अपने शत्रुको पत्थर मारे पर इसका शत्रु तो उस पत्थरकी चोटसे तब जावे और वह पत्थर उलटकर इसीके नेत्रमें लगे ताते इसका नेत्र अन्ध होजावे बहुत अधिक क्रोध करके, और पत्थर उसको, मारे तब उसके लौटकर लगनेसे इसका दूसरा नेत्र भी अन्ध होजावे बट्टरि, और पत्थरमारे तब इस प्रकारके भी इसी का शीश फूटे सो ऐसेही चारचार आपको घायल करतारहे और वह रज्जु इसको देखकर हँसतारहे तैसेही ईर्ष्या करनेवाला पुरुष अपने आपकी दुर्गति करता है और राष्ट्रकी हानि कुछ नहीं करसका बट्टरि जय होयों और अर्चना करके शत्रुको डबावे और उसकी निन्दाके तत्र तत्र दो अतिरु हानिकारी होतो हैं पर वृष्णका उपाय जो मैंने कहा सो यही है कि जिसने ईर्ष्याकी हलाहलें पिया की नाई जाना है वह ज्ञानयही, तिसका समाग करता है बट्टरि किरति फलके इस प्रकार उपाय होता है कि जिसमें स्व स्व करके ईर्ष्या उपजती है तिसको सब करके अपने हृदय से दूरकरे सो ईर्ष्या का बीज अभिगान और प्रेमावे और मानकी प्रीति है, जाने चाहिये कि जिज्ञानु ऐसे गालित स्वभावों को मूर्खहीसे हारकरे तब ईर्ष्याका बीज ही नष्ट होजावे बट्टरि पुरुष यदाभी उपाय है कि स्व ईर्ष्याकरके क्रिमी की, निन्दा किया चाहे तब उसकी स्तुतिके और जय उसकी हानि किया चाहे तब सहायना करे और जय अभिगान का, अकुर उमजने लगे तब दीनता को अगीकारस्ते सो यह भी उत्तम उपाय है कि जिसके साथ कुछ बेभाव होवे तब सब प्रकार उसकी भलाई वर्णनकरे नो स्वाभाविकही ईर्ष्या दूर होजाती है, पर यह मन पेना शत्रु है कि जब यह पुरुष सहनशील करता है तब मन इस प्रकार फहने लगता है कि तब तू सहनशील होवेगा तब तेगगत्तु फलको निर्वन जानेगा इसीकारण से कहा है कि यद्यपि मनके स्वभाव को विपर्यय स्थाना उत्तम उपाय है पर अति कठिन है अर्थात् इनविषे घेर्य जानना जति पट्टिन है पर तब जिज्ञानुकी बुद्धि विषे पेना बल दृढ़ होवे कि ईर्ष्या और क्रोध तो लोक और परलाकका दुःखजाने और इतको त्याग करके परमसुखकी प्राप्ति ऐसे तब यह यत्न

बिनाही इस ओपरी को अंगीकार करता है काहे कि यद्यपि सर्वे ओपधी कटु और कर्मली होती है तौ भी बुद्धिमान् पुरुष कटुताके निमित्त ओपधीका त्याग नहीं करते और जो रोगी मूर्खता करके कटुताके निमित्त ओपरीको त्याग देवे तब वही शीघ्रही मृत्युको प्राप्तहोता है वदुरि ऐसा जान तू कि यह मनुष्य अपने यत्नकरके शत्रु और मित्रकी समान नहीं करसका काहे कि यह जीव है और पराधीन है परतौ भी इसको इतना अवश्यही चाहिये कि जो मन से ईर्ष्या और क्रोधको बुर न करसके तो बचने और कर्मकरके तो वैश्राव न करे और बुद्धिबिषे भी इस स्वभावको मलिनजनि वदुरि इसप्रकार चाहे कि जो यह मलिनस्वभाव मेरे हृदयसे दूरहोवे तो मला है जब जिज्ञासुजन ऐसे पुरुषार्थको प्राप्त हवे तब जानिये कि भ्रमके संकलर करके इसको कटक पकड़ न होवेगी कहिये कि इसकी श्रद्धाबिषे मलिनता कुछनहीं और जीवत्व करके अकस्मात् कुछके संकल्प पुर आता है सो वहभी विचारकेवल करके दूर होजावेगा पर केने पुरुष इसप्रकार कहिये कि यद्यपि हृदयबिषे ईर्ष्याकी बुलाई न जाने पर जब बचन और कर्म करके वैश्राव न करे तब मनके संकल्पों करके इमकी परलोक में पकड़ कुछनहीं होती सो यह अपीग्य है काहे कि यह ईर्ष्या तो मनहीका कर्म है सो जब यह किर्मा को मुख देखकर तपायमान होवे और दु ख देखकर प्रमत्तहोवे तब इससे अधिक पाप क्या है ततो इम पापसे तबहीं छूटे जब इस स्वभावको मलिनजाने और सर्व प्रकार इससे मुक्तहुआ चाहे तब मनसा करके वह मलिन सकल्प दूर होजाता है पर शत्रु और मित्रकी सम्पूर्ण समानता तबहीं होती है जब इम पुरुषको एकता की अवस्था प्राप्तहोजावे अर्थ यह कि सर्व जीवोंको पराधीन देखे और सर्व कर्मोंको कर्त्ता भगवत्ही को जाने सो यह अवस्था महा दुर्लभ है और यद्यपि किसी समयबिषे विजलीवत् चमत्कार दिखती है तौभी सर्वदा स्थिर नहीं रहती और जिन्हीं ने ऐसे परमपद बिषे स्थिति पाई है वे भी विरानेही सन्नजन हैं ॥

### पांचवांसर्ग ॥

मायाकी प्रीति और दुष्णाकी निषेधा के धर्मेन ॥

॥ ज्ञाने जान तू कि यह माया सर्व विद्या का मूल है और इमकी प्रीति सर्व पापोंकी बीज है वदुरि यह माया कैमी है कि भगवत् के विरतनों की प्रीति और जो महाराज से विगुल है निनकी भी शत्रु है पर भगवत् के विरतनों की

इस प्रकार वैरि त्ति है कि उनको प्रति आपको सुन्दर कर दिखानी है और उसका प्रकारके छत्रों को पसारनी है इसी कारणमे वैरिजिहसु वैरिंय और इम के त्याग ने विषे यत् करते रहते हैं और आपको बचाया जाहते हैं बहुरि भागवत विष्णुके की शत्रु इस प्रकार है कि प्रथम तो उनको अप्रते ऊपर रिखावती है और जब अधिक प्रमाद करके मोहित होते हैं तब उनको भी त्याग जाती है और बुरा चारिणी स्त्रीकी नाई घाघा भटकती फिती है और अपने प्रियतमों को सर्वदा हार देती है बहुरि जब इसके साथ मीति कानेवाले मनुष्य परलोक विषे जाते हैं तब महाराज के कोप को देखते हैं ताते जिस बुद्धिमान ने इसके छत्रोंको सली प्रकार मगभ्रर इसका त्याग किया है वह इसके विषों से कूटना है इसीपर गद्य पुरुषने भी कहा है कि यह माया महाबलरूपा है और भगवत्ते जो सतजनों को संसारविषे भेजा है और नाना प्रकार के शास्त्र और वचन उत्पन्न किये हैं सो तिनका प्रयोजन यही है कि जीवोंको मायाकी प्रीतिसे विवर्जित करे और इस के छत्रों और विषोंको प्रसिद्ध करके दिखाने तब यह जीव मायासे विकृतिष होकर परलोकमार्ग के यत् विषे सावधान होवे इसीपर एक वार्ता है कि एक समय महापुरुष अपने प्रियतमों सहित जले जाने थे तब एक मृतकपशु तो देखा और कहने लगे कि मैं भगवत्की बुझाई करके कठताहू कि जैसे यह मृतकपशु ऐसा कुत्रील है कि इसकी ओर कोई देखताही नहीं ऐसे यह माया संतजनोंके आगे इससे भी अधिक कुत्रील है काहेसे कि जो भगवत्के दरवार विषे इसमायाको कुछभी विशेषवाहती तो मनुष्योंको रुचकगाम्भीन मिलती बहुरि महापुरुषने कहा है कि इस मायाको धिक्कार है और इसकी जो माभभी है विनकीभी धिक्कार है और एक बड़ी पदार्थ धिक्कारमे रहित है जो केवल भजनही कि निपिन्न भंगीकार करिये बहुरि यो भी कहा है कि जिसने मायाको अपना प्रियतम किया है वह परलोकसे विमुक्त हुआ है और जिसने परलोकके सुखोंको प्रियतम किया है वह माया के भोगों मे विरस होना है ताते आदिमें कि नाशवन पदार्थों का त्याग करो और सत्पुरुषरूप की प्रीतिविषे साधनान् देवो बहुरि एक प्रीतिमान ने कहा है कि एकवार एक मन्त्र ने जल सांगाया तब लोगों ने उनको फटेगा आनदिया सो जब पान करने लगे तब पेमा रुदन किया कि उनको देखकर सः वही लोग रुदन करने लगे और रोई एक न मुके कि नृमक्ष्यों सेनेहो बहुरि जब

मोत करी। तब प्रियवर्णों! तो पूछा कि तुम्हों! कश्मि का कारण कीजथा तब उन्होंने  
 कहा कि एक बार महापुरुष प्यात में बैठे थे और हाथों के फिरी को हटाते थे  
 पर मुक्तको कुछ हस्तिन आया तब मैंने पूछा कि तुम किसको हटाते थे तब ज-  
 न्होंने कहा कि यदा माया चारवार मेरे पास आती है और मैं उसको हटाता हूँ  
 तब यह माया इस प्रकार कहती है कि तुम तो गेरे जाओगे मैं बने हो फिर जो तु-  
 म्हारे पीछे होंगे वृद्धा आपको चंचल करेगा तब इसाण प्रति को देख कर ईरा हूँ  
 इस तिमिच कि मत मुक्तको खलते को निमित्त ब्रह्माया यही रूप धारकर प्रीप्ति  
 मिली हैवे तब मैं कामात्कृष्ण त्वही महापुरुष ने सीसी कहा है कि यह माया  
 निष्ठा धर है और निर्विज्ञान धर्म है तबने प्रीति करके मूर्ख ही इसको हर्षित सिद्ध  
 करते हैं और इसको भ्रम चही करते हैं जो विद्या हीत है और इमके प्रति भिन्न व्यक्त  
 वही करते हैं जो धर्म सार हीत है ताते जो पुरुष प्रभाति समस्त चिद्रूप माया ही के  
 कारणों विषे दृष्ट हीत है यह भावना से विमुक्त है और माया धारी जीवों विषे  
 लक्षण अवश्य ही होते हैं जो प्रथम तो संसारी चिन्ता करी चिन्ता ही नहीं होती  
 और हरे जिज्ञातों विषे प्रेस। आसक्त रहता है कि कदाचित्त मुक्त नहीं होता  
 और तीसरे सर्वदा अक्ष रहता है चौथे उसकी आशा कदाचित् पूर्ण होती  
 होती ४ इसी पर अत्रहरे सन्तने कहा है कि एक बार मुक्तने महापुरुषने कहा  
 कि तू मायाकी सम्पूर्णता को देखा जाहवा है इतना कहकर मुक्तको कृष्ण लवों  
 विषे लेगये सो तहां पशुओं और मनुष्यों के स्थिति पड़े थे और चिन्ता और सु-  
 रावन वल्लोके दुरुद्धे भी पड़े हुए थे तब उक्तको देखकर कहते लगे कि हे भई मह  
 जो मनुष्यों के शीश देसते हो सो तुम्हारी नाई यही त्वस्म और ईर्ष्या करके  
 पूर्ण थे सो अब इनके हाथों पर त्वना सी त्वही जो त्वणी घटी भ्रम ही ताते मे  
 और वह नाना प्रकार के अज्ञान जो मीठे लगते थे और तब मुक्तके प्राप्त होते थे  
 सो अब सबही विज्ञान का रूप लये है बहुरि अनेक भाति के ब्रह्म सबही प्राप्त  
 होकर भस्म होने जाते हैं बहुरि जिन घोड़ों और हाथियों पर सवार होकर किने  
 थे सो तिनके भी हाइ ही शेष रह गये हैं मो मायाका सम्पूर्ण आदि अन्त यही  
 है बहुरि योंनी कहा है कि परलोक विषे केने मुख्य जप तप करनेवाने भी नरक-  
 गामी होवेंगे काहेसे कि तब मायाके पदार्थों को देनेसे तब अधिक तपसा  
 करके अंगीकार करनेसे बहुरि एकत्रासदा पुण्य अपने प्रियवर्णों से कहने लगे कि



आपको अन्व करनेवाला पुरुष वीनहै ताने जो पुरुष मायाकी देखाकेसाहै  
 सो आपको अन्व किया जाहनाहै और जो पुरुष मायामे अन्विक होता है और  
 आशा तृष्णाको घृशनेहै तब उसके हृदयविषे गमवत् अनुभवकी किया बुझ  
 थावनाहै और पद्वे भिनाही तमकी बुद्धि उज्ज्वल होतीहै और यथाथके भाग  
 को एकटादेखताहै और महापुरुष ने सांसी कहेहै कि मायाके पदाभाका स्मर  
 णाभी न करो सो जिस मायाकी चार्ता करनीही। अयोभ्य बुद्धे तब उसके साथ  
 प्रीति करनी और उमकी उत्पत्ति के निर्मित चक्र तरनाफिसे प्रमाणा हविरे इसी  
 पर। महात्मा इसी महापुरुषने कहेहै कि मयिको अपनास्वामी न बनो तो तब  
 तुमको यह माया अपनेनादास न करे। अर्थ यह कि मायाके साथ अधिक प्रीति  
 न करो तब इसके जंजाल विषे ब्रह्मचयान न होवोगे बहुरि उक्त पदार्थको मंचो  
 कि जिसके सचनेविषे तुमको कंठीवित् भयान होवे और सोभी कहेहै कि यह  
 माया और परलोक ऐसे हैं जैसे एक पुरुषके दो क्री हेत अर्थ यह कि जब एक  
 प्रसन्न होती है तब दूसरी दुःखिन होतीहै तैसेही जब यह पुरुष मायाविषे सावधान  
 होताहै तब परलोक से निमुख होताहै और जब परलोक के भागविषे सावधान  
 हुआ जाहनाहै तब मायाके साथ विरोध करताहै बहुरि अपने प्रियतमों से योभी  
 कहेहै कि मैं तुम्हारे देखतेही इमे मायाको धरती पर डालताहूँ ताने तुमभी इस  
 को अर्गीकार न करो कहेभो कि प्रथम तो यह माया धरती है कि सभायाक इस  
 की प्रीति करके होते है बहुरि जबलग इसका रंवाग त करिये तब जग परलोक  
 के सुखको पाय नही सका ताने इम मायाकी प्रीतिमे धार निरुमो आर इस  
 के कारणों की सम्पूर्णता विषे दृढ़ न होवे बहुरि विषे जानो कि मध पायाका  
 मूल सांसाकी प्रीति है और सर्व भागों का फल जोफ जो सुखहै बहुरि जमे  
 जल और अग्निका मिलाप नही होता तमेही गमवत् मक्ति और मायाकी प्री-  
 ति किसी प्रकार इकट्ठी नही होती इसी कारण से सन्नमन मायासे विग्रहय है  
 बहुरि एकवासी है कि एकदिनेविषे बहूत मेष और विजुतीका चमरकर हीना  
 मेषों तब ईमाजी मेषों रक्षाके निमित्त स्थान को दृढ़नेतमो मी नही एक त  
 म्बकी देना पर जब तम्बविषे जोय प्राप्तहये तबवहाँ एक सुन्दर स्त्री देगी बहुरि  
 वहाँ से तुरन्तही निकल कर पहाड़ की कन्दर्ग विरो गये मन् जागे एक गिर  
 बेराहु आ देना तब गमवत् के आगे प्रार्थना करनेनगे कि हे महाशक्ति तने मन्

किसीको विश्राम का स्थान दिया है एक नेपथे मेरा ही स्थान कोई नहीं तब  
 आकाशवाणी हुई कि हे ईशान मैंने तुमको कुम्भसे बचाया है तब तो विश्राम  
 स्थान मेरी इस है इसी पर एक और शक्ति है कि जब सुलेमान जी महापुरुष का  
 ऐश्वर्य अधिक हुआ और मन्त्रोपशु मनुष्य देवता परीजन की आज्ञा मानने  
 लगे तब किसी तपस्वीने उनसे कहा कि तुम तो भगवत्से बड़ा ऐश्वर्य दिया  
 है तब उन्होंने कहा कि मेरे ऐश्वर्यमें ऐश्वर्यश्रीयमनाग लेना विशेष है काही  
 से कि मुवागज के नामका उचारण स्थिर रहेगा और मेरा ऐश्वर्य सदा ही नष्ट हो  
 जायेगा तब हरि एक और शक्ति है कि चन्द्रनामी महात्मा की आयुप्त सहस्र वर्ष की  
 हुई कि सो ज्ञानवरखोका विषे शूद्र तब देवों ने पूछा कि तुमने इतनी आयुर्वन  
 में ससारको किम प्रकार देखा है तब उन्होंने कश्चित् विषे सराय के एक दर  
 वाजे विषे होकर अन्दर चले जाते और वही द्वारसे निकल जाते सो भूते इतनी  
 आयुर्वन विषे जगत्का लीलना प्रतीति देखा है बड़ी ईसा महापुरुष ने लोगों  
 ने पूछा कि जिस प्रकार के हन भगवत्के प्रियतम देवि सो तब स्वयं को नहे तब  
 उन्होंने कहा कि जब तुम मायाके प्रियतम न हो तो तब स्वयं का विकही भगवत्के  
 प्रियतम होवोगे सो मायाके तपे विषे सुना जतो के ये मेही तब न तब तब जैसा  
 एक तामी स्तवने कह है कि जिन पुरुषों ने इत अफभेदों को जाना है तब स्वयं  
 मायिक ही तरकीसे मुक्त होंगे और परम सुखको पावेंगे सो प्रथमतो जिसने  
 भगवत्को पहिनाता है भली प्रकार तब निस्सन्देह उसके भजता विषे साक्षात्  
 होता है और जिसने गनकी जल रूप जाता है तब निस्सन्देह गनके साथ  
 विरुद्ध ही करता है और उसकी आज्ञा नहीं मानता तब हरि जिमने सदा को  
 इस प्रकार समझा है कि प्रथम चतु यही है वह साते ही गदार्थको अंगीकार करता  
 है ३ और जिसने मूठकी सुत्रही पहिनाता है तब सहज ही उमका त्याग करता  
 है ४ पहुरि जिमने मायाके जाद्विमतको भनीमानि देखा है तब स्वयं का विकही  
 इसके सुखको निम जानता है और विरक्त होता है ५ और जिमने परनोक के  
 मुखकी अभिक्ता विचार देखी है वह सर्वदा पल्लोरुमार्ग के यत्न विपेशि मिय  
 होता है ६ इसी पर एक बुद्धिमान ने कहा है कि जो मायाका पदार्थ तुमको प्राप्त  
 होता है सो तुममे आगे भी किसी को प्राप्त हुआ है और तुममे पीछ भी किसी  
 और के पास जावेगा ताने ऐसे पदार्थ को पाकर प्रमत्त क्यों होता है काहे से

किइस संसारी विषयानि पानादिकपे अधिक लेगे कापही कुत्र नहीं तति इय  
 लानपनिभो निर्मित कृष्णपती जाश कपो करमा हे कपोर। तुमको इस प्रकार का  
 हिये किइसायाके सभाभीसोमि वन गविरहे। तव पिलोक में जोकर अनन्त मुने  
 को प्रीति करके उमचनका पाना हेये काहेसे कि इस संसार के सुखोंकी पूजी  
 योसनी छोड़ दृष्टा हे। जोराला भीइसका कुभीयाके नरक हे बहुरि। एके मन्म  
 किसी जिज्ञासु ने कहा था कि मेरे हृदय से मायाकी अभिलाष दूर नही होती  
 तति भी कौन उपाय करूं तव इसा सन्ने कहा कि प्रयत्न तो मायाकी उखा  
 धर्म सहित पर बहुरि शुभ अर्थ उमको छुवी करेतव इसम कोर स्वीभीविकही  
 मायाकी प्रीति नष्ट हे जाकेगी सो यह उपाय उन्होने इस निमित्त कहा कि  
 धर्म सहित धनभी उलसि और शुभ अर्थ खरिना करके सहज ही विक्रयित  
 होजाता हे इसी पर एरु सन्नेने कहा हे कि जब मायाकी बामन- स्मि हे रेला  
 होवे और स्वर्णका धारन शी प्रही नष्ट होतवाला होवे तब बुद्धिमान को ज्ञा  
 हिये कि स्थिताके धि धोरसे मायाके धर्मनकोही अंगीकार करे और तत्र  
 स्वर्ण की स्वीगदेव पर यह माया जो मायाकी नाई हे और सब क्षण विषय परि  
 र्णामको पाती हे बहुरि यलोकका सुख स्वर्णकी नाई निमित्त और अविनाशी  
 हे तति जब पिलोकके अविनाशी सुखोंको त्याग करे मायाके क्षणभुरा भोगों  
 को अंगीकार करिये तब पही सुखसा हे इसी पर एरु और सन्नेने कहा हे कि  
 इमा मायाके धि तसे भय करे कहिये कि पिलोक विषे मायाके प्रीति कलेवातों  
 को इस प्रकार कहेंगे कि जिस मायाके भोगोंको निन्द्य कहा हे सो यह पुछ उम  
 हीके पिपनो हे धोरि मरु म ऊर जापी सन्ने कउहे कि इम मंवार विषे सबही  
 मनुष्य परेगी हे जोर जिमनी माया भी सामग्री हे सो सब परहे ताने परदे  
 जोको जिव गरी बचनी हेवगा और सभासामिगी यहाही रहजावगी बहुरि  
 लुकेपाननि जेमे पुत्रमे कहा हे कि जब तु मायाके सुखको त्याग कर मायाके  
 के सुखको अंगीकार करगा तब लोक और परलोकका सुख तुमको प्राप्तवेगा  
 और जब मायाके निमित्त परलोकको त्याग करेगा तब दीनों लोक विषे वेग  
 होनि होवगा उमोराणमे कुपिल नापी मन्नेने कहा हे कि जब मायाके म  
 सुख योपमे रहित मुक्तो प्राप्त हो और पानो विषे कुछ उमका हृदयना  
 पडे नोभी सुखले भोगों य लरती जाती हे जेमे मुय बचक फट

से अरुचि रखते हो इसीपर हमन वसरी सन्तने उमर अब्दुलअजीज को पाती लिखाथा कि कोलको आयादेशो काहेसे कि जिसके मस्तक पर मरना लिखाहै सो अवश्यही आवेगा तब उन्होंने उत्तरमें लिखा कि हमको तो अन्तकाल का दिनही सर्वदा दृष्टि आताहै और यह ससार अनट्टुआही भासताहै बहुरि इस प्रकार भी सन्तजनों ने कहाहै ये मनुष्य मरनेको भी सत्य जानते हैं और फिर प्रमत्त होते हैं सो यह बड़ा आश्चर्य है बहुरि जो पुरुष नरकको सत्य जानता है और संसारमें हँमता भी है सो यह भी बड़ा आश्चर्य है बहुरि यह भी बड़ा आश्चर्य है कि यह मनुष्य माया की सामग्री के परिणामको सदाही देखता है और हमीको विगेष जानकर वच्यमान भी होताहै बहुरि जो पुरुष भगवत्को सबका प्रतिपालक जानता है और फिर जीविका की चिन्ता विषे चिन्तित रहता है सो यह भी बड़ा आश्चर्य है ऐसेही एक और सन्तने भी कहाहै कि इस संसार विषे ऐसा निर्विघ्न पदार्थ कोई नहीं जिस करके प्रथम प्रमत्त हूजिये और पीछे शोक न आवे तात्पर्य यह कि इससे रहित निर्मल सुख इस संसार विषे नहीं उत्पन्न हुआ इसीपर हसन वसरी ने कहा है कि इस मनुष्यको अन्तकाल विषे तीन पश्चात्ताप अवश्यही होते हैं सो प्रथम यह कि जिस मायाको यत्र करके बधोराथा तिसको मलीप्रकार भोग न लिया १ बहुरि दूसरा यह कि मनके मनोरथ सबही पूर्ण न हुये २ और तीसरा यह कि परलोक मार्ग का तोशा न बनालिया ३ इसीपर इनाहीम अदहम नामी सन्त ने किमी से पूछा था कि तू स्वप्नके ऐसेको प्रियतम रखता है कि जाग्रत्की मोहर को विगेष जानता है तब उसने कहा कि मैं जाग्रत्की मोहर को अधिक प्रियतम रखताहू बहुरि इनाहीम कहनेलगे कि तू झूठ कहता है काहेमे कि यह गाया स्वप्नका ऐसाहै और परलोकका सुख जाग्रत्की मोहरहै सो मायाही के माय तेरी अधिक प्रीति है ताने तू झूठ बोलताहै बहुरि एक और सन्तने कहाहै कि बुद्धिमान् पुरुष वही है जो माया के त्यागने से आगेही मायाका त्याग करे और मृत्युके आगेही मृतक हो रहे बहुरि परलोक विषे जाने से आगेही परलोकका तोशा बनानेसे बहुरि योंभी कहाहै कि इस मायाकी अभिनापही भगवत् मे लचन पर टानती है तब इसके प्राप्ति होनेकी मन्दिता क्या वर्णन करिये बहुरि एक जो सन्तने कहाहै कि जो पुरुष मायाके भोगों को काट डल चुका चाहे तब इनका दृष्टान्त यह है कि जैसे

कि इससे सारी विषयों का नामाधिकार अधिकारों का प्रयोग नहीं करते। इस  
 खानपान के भी मत में अपनी भाषा कथो करता है। क्योंकि तुम्हें इस प्रकार का  
 दिखे कि माया के स्वभावों में वृत्तों से बंधे हुए हैं। परलोक में जाकर अन्तःसुखों  
 की प्राप्ति करके उमावनकी पारना होके कहिये कि इससे सारे के सुखों की पूर्ण  
 वासना और उच्छ्वास है। और लोभी इसका कुंभीपाके नरक है बहारी एक सन्निभ  
 क्रिमी जिज्ञासु में कदापि कि भिन्न हृदय से मायाकी अभिलाषा बुरी नहीं होती  
 ताते भी कौन उपाय करके तब इस सन्निभ कहो कि प्रथम तो माया की उत्पत्ति  
 धर्म साहित्य पर बहुरि शुभ अर्थ उसकी स्वकी करतक इस प्रकार स्थिति विकही  
 मायाकी भाति नष्ट है जि विभिन्नो विष्ट उपाय उन्हे नै इस न निर्गित कहा था कि  
 धर्म साहित्य धन भी उत्पत्ति और शुभा अर्थ स्वर्गनाकरके सहज ही प्रकृतित  
 होजाता है। इसी पर एक सन्निभ कहा है कि जब मायाकी वासना स्थिर होवे तब  
 होवे। और स्वर्ण का धर्म नशी प्रही नष्ट होजाता है। वे तब बुद्धिमान् को प्र  
 हिये कि स्थाना के धर्म धर्म प्रतीति के धर्म साको ही अंगीकार करे और प्रत्य  
 स्वर्ण की रस्यो गद्वै पर लक्ष्य मार्ग तो मायाकी नाई हो और लक्ष्य लगे। विषय परि  
 र्णमिको पाती है बहुरि परलोक का सुख स्वर्णकी नाई इनिर्मल और अविनाशी।  
 हेताने जक परलोक के अकिनाशी सुखों को त्याग करे मायाके लक्षण मंगुरा मोनों  
 की अंगीकार करके तब बड़ी सुखिता है इसी कारण और सन्निभ कहा है कि  
 इस मायाके धर्म से अग्र करे कहिये कि परलोक विषय मायाके धर्मिक लक्षणों  
 को इस प्रकार कर्तव्य कि जिस मायाके मोगों को निन्द्य कहावे सो यह पुरुष उम  
 हीके प्रिय नाई और प्रकृत संकट नाशित सतमे कही है कि इस संसार विषय सबी  
 मनुष्य परदेगी है। और अन्निभ माया भी सामग्री है सो सब पराई है ताते परदे  
 जतको अग्र परदे चर्चना हेतुमा और सब सामग्री यहाई रह जावगी बहुरि  
 लक्षणानि। अपने मुत्रमें कहा है कि जब तू माया के सुख का त्याग कर परलोक  
 के सुख को अंगीकार करेगा तब लोके और परलोक का सुख तुम्हको प्राप्त होवेगा  
 और जब मायाके निर्गित परलोक को त्याग करेगा तब दोनो लोकों विषय तेरे  
 हीनि होवेगा इसी कारण सा कि जे नोपी सन्निभ कहा है कि जब माया के सर्व  
 सुख सोपते रहिन मुक्तको प्राप्त होवे और पानो का विषय कुछ उत्त का दण देना  
 भी न पड़े तो भी मुक्तकी स्थान भोगों में लज्जा आती है जेमे तुम मृतक पण

से अरुचि रखते हो इमीपर हमन वसरी सन्तने उमर अद्दुलअजीज को पाती लिखाथा कि कालको आयादेखो काहेसे कि जिसके मस्तक पर मरना लिखाहै सो अवश्यही आवेगा तब उन्होंने उत्तर में लिखा कि हमको तो अन्तकाल का दिनही सर्वदा दृष्टि आताहै और यह ससार अनहुआही भासता है बहुरि इस प्रकार भी सन्तजनों ने कहा है ये मनुष्य मरनेको भी सत्य जानते हैं और फिर प्रमत्त होते हैं सो यह बड़ा आश्चर्य है बहुरि जो पुरुष नरकको सत्य जानता है और संसारमें हँसता भी है सो यह भी बड़ा आश्चर्य है बहुरि यह भी बड़ा आश्चर्य है कि यह मनुष्य माया की सामग्री के परिणामको सदाही देखता है और इसीको विशेष जानकर बंध्यमान भी होताहै बहुरि जो पुरुष भगवत्को सबका प्रतिपालक जानता है और फिर जीविका की चिन्ता विषे चिन्तित रहता है सो यह भी बड़ा आश्चर्य है ऐसेही एक और सन्तने भी कहाहै कि इस ससार त्रिषे ऐसा निर्विघ्न पदार्थ कोई नहीं जिस फरके प्रथम प्रमत्त हूजिये और पीछे शोकान आवे तात्पर्य यह कि दुःखसे रहित निर्मल सुख इस संसार विषे नहीं उत्पन्न हुआ इसीपर हमन वसरी ने कहा है कि इस मनुष्यको अन्तकाल विषे तीन पेशचात्ताप अवश्यही होते हैं सो प्रथम यह कि जिस मायाको यत्न करके छोड़ा था तिसको भलीप्रकार भोग न लिया १ बहुरि दूसरा यह कि मनके मनोरथ सबही पूर्ण न हुये २ और तीसरा यह कि परलोक मार्ग का तोगा न बनालिया ३ इमीपर इब्राहीम अदहम नामी सन्त ने किमी से पूछा था कि तू स्वमके पैसेको प्रियतम रखता है कि जाग्रत्की मोहर को विषेप जानता है तब उमने कहा कि मैं जाग्रत् की मोहर को अधिक प्रियतम रखताहू बहुरि इब्राहीम कहनेलगे कि तू झूठ कहना है फाहेमे कि यह गाया स्वमका पैसाहै और परलोकका सुख जाग्रत्की मोहरहै सो मायाही के साथ तेरी अधिक प्रीति है ताने तू झूठ बोलताहै बहुरि एक और सन्तने कहाहै कि बुद्धिमान पुरुष वही है जो माया के त्यागने से आगेही गायाका त्यागकरे और मृत्युके आगेही मृतक हो रहे बहुरि परलोक विषे जाने से आगेही परलोकका तोगा बनानेवे बहुरि योंभी कहाहै कि इस मायाकी अभिजापही भगवत् मे उचेत कर दानती है तब इसके प्राप्त होनेकी मन्दिना क्या वर्णन करिये बहुरि एक और सन्तने कहाहै कि जो पुरुष गायाके भोगों को कर नृष हुआ चाहे तब इनका दृष्टान्त यह है कि

निर्दिष्ट लोकादिग्राहक अग्नि को बुझाया चाहे तब निःसन्देह सूर्य के हावा है  
 जल ही माया के साथ सन्तुष्ट हानी असर्मत है इसी पर अलीनामो मन्तेने कहते  
 कि सर्व स्थूल भोगों का साक्षि यह पद भोग है खाना १ पीना २ पहनना ३ सुचना ४  
 सवारी ५ स्त्रियों का सङ्ग ६ सोन यह सब इस प्रकार मलिन है कि प्रथम सर्व्वरसों  
 में मधु श्रेष्ठ है सो वह माखी का बूरु है १ और सर्व्व प्राण करने के पदार्थों में जल  
 विशेष है सो सब किसी को समान प्राप्त होता है २ बहुरि पहनना ३ शर्मका अति  
 कोमल है सो वह मीठी डोली लारसे उपजता है ४ और सर्व्व सुगन्धियों में उत्तम  
 सुस्त्री है सो मृगों का रुधि है १० बहुरि स्त्रियादिक भोग तो प्रसिद्ध ही मलिन  
 है १५ और घोड़ों पर चढ़ना ऐसा है जैसे अङ्गों को चिर कर स्थित करिये १६ बहुरि  
 एक और मन्तेने कहा है कि हे मनुष्यों! तुमको भगवत् ने परमपदकी प्राप्ति के  
 निमित्त उत्पन्न किया है सो जब यह प्रतीति ही तुमको दृढा नहीं तथा निःसन्देह  
 मन्तमुत्तम और जब प्रतीति सी रखते हो और अचेतना करके निन्दे हो रहे हो तब  
 निःसन्देह मूर्ख होते हो ॥ अथ भेद करती अर्थ माया की मलिनता का ॥ ताते  
 जीन तू कि महापुरुष ने कहा है कि यह माया महानिन्द्य है और इसकी सर्व्व  
 सामग्री भी निन्द्य है पर वही पदार्थ निन्द्य नहीं जो केवल भगवत् ही के निमित्त  
 अङ्गीकार करिये ताते इम भेद को भ्रमर यही भेद भ्रान्ति वाहिये कि इस माया  
 विशेष निन्द्य क्या है और ग्राह्य क्या है ताली धरि यह कि सर्व्व पदार्थ ही मन्तेने  
 कहें सो एक तो केवल माया रूप है जो भे पाप और भोग अर्थ यह कि जन्तु  
 यह पुरुष इनका त्याग न करे तभी लगे निमित्त अदाचित्त नहीं होना काहे कि  
 अचेतता और अज्ञानता का कारण इन्द्रियादिक भोग और तमोगुणों कर्म हो ॥  
 बहुरि दूसरे ऐसे पदार्थ हैं जो देखने मात्र भगवत् के निमित्त भासते हैं पर सका  
 मता करके यह भी माया रूप कहाने हैं जैसे जीव भय भोगों का त्याग ये सीनों  
 प्रसन्नोक्ति विषे भी सुख देनेवाले हैं पर जब इस पुरुष ही मन्तेने निष्काम होवे और  
 जत्र हृदय विषे मान आदिकों का प्रयोजन होये तब यह प्रिया स्थूल भोगों से  
 भी निन्द्य है काहे कि कपट और पाषण्ड इमी का नाम है १७ बहुरि तीसरा प्र  
 त्याग यह कि देखते विषे मन्तका भोग भासती है और अन्तरि परमार्थ का प्रयो  
 जित्त होता है सो ऐसे पदार्थों को निन्द्य नहीं कहा जाता जैसे शरीर के निन्द्य  
 मात्र आहार काना लगवा गुद्ध जीविका उत्पन्न कर्मी सो मन्तेने मी निन्द्य

यती करके यह सबही कर्म निर्मल हो जाते हैं इसी पर महापुरुष ने कहा है कि  
 ज्ञानिन्सुष्य अपने भोगोंके निमित्त धनको सच्य करता है। वह परलोक विषे  
 अपने ऊपर भगवत्को को धनान् देवेगा। परजन इमानिमित्त वपुहार से भोगे कि  
 ईशने उद्यम करके भोगोंसे वे भी हता प्र होऊँगा और अचित्त होकर मजनविषे  
 सावधान होऊँगा। मय प्रिल्लोका विषे इसका मस्तक पौर्णमासीके चन्द्राके संगान  
 उज्ज्वल है। वेगा तात्पर्य यह कि चसिनाके भोगोंका नाम माया है जिस विषे  
 परलोक मार्गका सम्बन्ध कुछ न होवे। परिज्ञान कि प्रा विषे परमार्थकी मनसा  
 होवे तब उसको सांगामात्र नहीं कहते जैसे तीर्थयात्री। तीर्थोंके मार्ग विषे  
 घासी और जल करके अरवी। सत्रारी के घोड़े और ऊँकी। सत्रार लेना है तो भी  
 उसकी यह क्रिया तीर्थयात्रीके निमित्त होती है इसी पर महाराजने भी कहा  
 है कि गनकी व्यासना का नाम माया है ताते जो पुरुष अपनी ज्ञानसा से वि-  
 रक्त हुआ है वह मायासे विरक्त फंदाता है इस करके यह प्रसिद्ध हुआ कि सर्व  
 सामग्री तीत प्रकार की होती है सो एक तो आहार दूसरा वस्त्र तीसरा स्थान  
 है सो शरीर कार्यको निर्वाह करने योग्य है और जब हम पुरुषकी मनसा नि-  
 प्काम होवे तब इमती सामग्री काफे धरान् नहीं होना । और हमरे नाना प्रकार  
 के इन्द्रियादिक भोग हैं सो इनकरके कदाचिद्वृत्ति नहीं होती और परलोक  
 के मार्ग विषे भी इनका सम्बन्ध कुछ नहीं ताते जिस पुरुषने प्राणोंकी रक्षाके  
 निमित्त सामग्रीको अगीकार किया है वह निस्मद्रेह मुक्त रहै और जो मनुष्य  
 इन्द्रियादिक भोगों विषे पमराहे सो पग तरकोंको प्राप्त होवेगा । वदृरि तीमस  
 प्रकार यह है कि शरीरके निर्वाहमात्र और इन्द्रियादिक भोगके मध्य भावविषे  
 स्थित होना सो विनाशकी सूक्ष्म दृष्टिकर देख सकारै अन्यथा नहीं जाना जाता।  
 पर उसका देखना यह है कि जिस पदार्थ की इमको अत्यन्त अपेक्षा न होवे  
 और यह पुरुष अपने मन विषे ऐसा जाने कि यह पदार्थ मुझको अवश्यही  
 चाहिये है ताते अगीकार करलेवों तब निस्सदेह परलोकके दगदग अधिकारी  
 होता है इसी कारण स. मिडीसु जनेने ज्ञान शरीरको यत्र विषे गता है और  
 स्थान सामग्रीको अल्पही अगीकार किया है तब उनकी चामनाये मुक्त दृष्टे त  
 पर सर्व वेगियोंके मुक्तिवा अवेश कृष्णी नामी मन दृष्टे है उन्होंने सो अपने  
 आपको इमप्रकार से मार लेना कि ताते कि सबयोग उगके वास्य मान ।



थे और वह प्रमात समय नगसे बाहर निकर जाने थे और पूहर रात्रि न्यतीन  
हुयोवहुरि आते थे और वेर और खजूरोके फल जो स्वाभाविकही गिरपड़ते थे  
सो तिनको चुनकर आहार करते थे और कुछ भगवत् अर्थ देते थे वहुरि गलियों  
के बीचें चुनकर धोने थे और उसही की गुदड़ी बनाकर ऊपर ओढ़ते थे सो  
उनकी ऐसी अवस्था देखकर लोगोंको बावरे भासते थे और जब बालक उनकी  
पापर मारते थे तब वह कहने थे कि मेरे छोटे छोटे पापरमारो काहेसे कि पापल  
होकर भजनसे रहित होजाऊगा इसीकारणसे महापुरुषने यद्यपि उनको स्त  
नेत्रों करके देखा न था तौ भी सर्वदा उनकी प्रशंसा करते थे वहुरि उमर और  
अलीनामी अपने प्रियतमों को महापुरुष ने आज्ञादी कि तुम आवेशकरनी के  
दर्शनको जाना और मेरे गले का जामा उनको पहँचाना कि उनके अशीप  
और प्रार्थना करके मेरी संप्रदाय के अनन्त भक्तुष्यों को भगवत् मुक्तकरेगे वहुरि  
आवेशकरनी की अवस्था का चिह्न भी उनको बतादिगा सो जब महापुरुषका  
शरीर छूटा तब उमर और अली उनके दर्शनको गये और उपदेश के निकर  
जाकर पूछनेलगे कि करनदेश का कोई पुरुष यहाँ है तब एक पुरुष ने कहा कि  
मैं करन नगर का वासीहू वहुरि उससे पूछा कि तू आवेशकरनीको जानता है  
तब उसने कहा कि हाँ मैं जानताहूँ पर वह तुम्हारे पूछनेका अधिकारी तो नहीं  
काहेसे कि वह तो महा वागरासा है और किसीके साथ मिलाप भी नहीं रखता  
सो जब उमरने यह बात सुनी तब रोनेलगे और कहने लगे कि हम उसहीको  
देखते हैं इस करके हमने महापुरुष के मुखमे सुना है कि उनकी दया करके अ  
संरूप जीवोंका उद्धार होवेगा इसीपर हरमनामी सन्नने कहा है कि मैं भी आवे  
शकरनी की महिमा सुनकर एकवार उनके दर्शन को गया था तब वह कल  
नगर विषे नदीपर स्नान करते थे तब मैंने उनको अचानकही पहँचान कर द  
यहवत् किया और उनकी अवस्था देखकर मेरोचित्त बहुत कोमलहुआ तब वह  
मुखमे इसप्रकार पूछनेलगे कि हे हमनके पुत्र हरमो! तुम कुशल संहितही और  
यहा क्योंकर आयेहो तब मैंने कहा कि तुमने मिले बिनाही मुझको और मेरे  
पिताको क्योंकर पहँचाना तब उन्होंने कहा कि मुझको भगवत् ने लखाया है  
और प्रीतिमानों के हृदय शरीर के मिलाप बिनाही एक हमरेको पहँचान लेते  
हूँ वहुरि मैंने आधीन होकर कहा कि मुझको महापुरुषकी कुछ बाधा सुनाओ

तब इम प्रकार कहने लगे कि मैं तो उनका दास हूँ और इस शरीर करके मैंने उनको देखा ही नहीं, बहुरि मैं अपने चित्त के अभ्यास त्रिपे परचाहूँ ताते मुझको पण्डितों की नाई कहने सुनने की इच्छा भी नहीं बहुरि मैंने कहा कि तुमहीं मुझको सुख उपदेश करो तब मेरा हाथ पकड़ कर कहने लगे कि इस मनरूपी जलसुरसे भगवत्ही रक्षा करे इतना कहकर रोने लगे बहुरि ऐसा कहा कि बड़े बड़े आर्यवर्षरूप सन्त और महापुरुष सबही मृत्युको प्राप्त हुये हैं ताते हम और तुम भी मृतक रूपही हैं पर उत्तम मही है कि सन्तजनों के मार्गको अगीकार करो और एकक्षण भी मरनेके भयसे अश्रव न होवो और और लोगोंको भी सप्रार्थ वचन कहो बहुरि कदाचित् भी साधु सगति का त्याग ना करे कहते कि सन्तों के सगतिना अपने धर्मसे अष्ट होजावोगे और जान भी न सकोगे सो ऐमे मद्दकर चलदिये और मुझको अपने साथ रहने न दिया तीत्यर्थ यह कि जिन्होंने मायाके छलोंको पहिचाना है सो तिनके ऐसे लक्षण हुये हैं और जिह्नासु जनों का मार्ग यही है पर जब तू ऐसे पदको प्राप्त न होमे तब इतना तो अस्वस्व कर कि शरीरके निर्वाहमात्रसे अधिक भोगों के विषे लम्पट न हो ताते डालोंसे मुक्त रहे ॥

**छठवां सर्ग ॥**

जानते जानते कि इस मायारूपी धृसकी शाखा बहुत हैं सो एक शाखा इसकी धन और सम्पदा है बहुरि मान और बड़ाई भी इसीकी शाखा है ऐसी ही और भी अनेक शाखा हैं पर यह धन बहुत विघ्नोंका कारण है इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि इस धनरूपी घाटी से उतरना कठिन है काहे मे कि शरीरके व्यवहार साव भी इसका सम्बन्ध है और परलोक मार्गका तो राभी यही धन होता है अर्थ यह कि आहार और वस्त्र और स्थानकी प्राप्ति भी इसही फरके होती है ताने शरीरके निर्वाहमात्रे इसका उत्पन्न करना अवश्य ही चाहिये और जब धनकी उत्पत्ति न करिये तब केवल निर्द्धनता विषे धैर्य नहीं होसका बहुरि जब धनकी प्राप्ति होती है तब नामाप्रकारके भोगों विषे ग्रामक होजाता है गों यद भी अनेक पापोंका बीज है पर निर्द्धन पुरुषों की भी दो अवस्था होनी है गी एक कृष्णावाचरे और एक सन्तोषी होते हैं बहुरि कृष्णावान् पुरुषों की भी दो भ

वस्था है कि एक मनुष्य धन की उत्पत्तिके निमित्त व्यवहार करता है और एक और पुरुषों की आशा रखते हैं पर और पुरुषों की आशा करने से व्यवहार कोना विशेष है तैसही धनवानों की भी दो अवस्थाएँ ही एक रूपणता है और एक उदारता है पर उदारता भी दो प्रकारकी होती है। जो एक उदारता विचारके अनुसार है और एक उदारता ज्ञानसे रहित है ताते विचारके अनुसार उदारता विशेष है और दूसरी जिनके ज्ञानसे रहित है ताते विचारके अनुसार उदारता ना महाकठिन है ताते पर्यय यह कि धन करके जिनके विघ्न भी होते हैं और पुरुष कर्मों का धीम भी नहीं है ताते अवश्य ही चाहिये कि यह पुरुष धनके विघ्न और लाभों को पहिचाने और पहिचानकर शरीर प्रकारके विघ्नों का स्वार्थके और लाभ को अंगीकार करे। अथ प्रकट करनी निषेधता धनकी प्रति की। इसीपर महा राजने कहा है कि जिसको धन और संतान आदिकों को प्राप्ति होनी है वह निस्सन्देह मज्जनसे विमुक्त होता है। बहुरि महापुरुषने भी कहा है कि जैसे जलकरके वनस्युक्ति और लृणादिके क्षीणही उत्पन्न होते हैं तैसही धन करके भी शीघ्र ही हृदयत्रिफे कपट उर्षज आत्रता है। बहुरि महापुरुषों को किसीने पूछा था कि सर्व सृष्टि विषे नीच मनुष्य कौन है तब उन्होंने कहा कि धनके साथ भीति करने वाले अतिनीच है। काहेसे कि ना ना प्रकार के रसाको भोगते हैं और अनेक माति के सुन्दर वस्त्र पहिरते हैं और भिमादिकों के रूपके साथ बन्धवान् होते हैं और बड़े बड़े मोड़ों और हाँथियों पर त्वास्त्रुद्रुआ चारते हैं ताते उनको आशा कदाचित् पूर्ण नहीं होती और सर्वथा भाषों की सामग्री विषे आसक्त रहते हैं ताते मायाही की मगत्रकी नाई प्रजते हैं और जो कुछ किया करते हैं सो मायाही के निमित्त करते हैं इसी कारणसे मैं तुमको उपदेश कर रहा हूँ कि ये मनुष्योके साथ कदाचित् मिलाप मत करो। बहुरि महापुरुषने भी कहा है कि यह माया सबही मायाधारियों को अर्थात् जो काहेसे कि जो मुरुष माया के सब शरीर के निरीहसे अधिक अंगीकार करता है वह उसके नाशका हेतु है और यह जानना भी नहीं और योंभी कहा है कि यह ज्ञानी मनुष्य सर्वत्र योंही कहते हैं कि यह धन भेरा है और सम्पदा सेरी, वे पर इतना नहीं जानते कि शरीर के ज्ञाही और जगन्ना के दाकने से अधिक भेरा है ताते इसका अपना धन नहीं है जो किसी को भगवत् अर्थ देके तब वह तम परलोक विषे इसका संगी होता है

मर्चदा, इसीपर किसीने महापुरुष से पूछाया कि मेरे पास परलोक का ज्ञान  
 कुछ नहीं तब मैं बोला, सत्य कहूँ तब महापुरुषने कहा कि जब कब  
 सप्रह रत्ननाहोवे तब भगवत् शरीर काहे मे कि भगवत् अर्थ देता इसका सदा  
 संगी होता है और योंभी कि है कि इस मनुष्य के र मित्र हैं सो एक मित्रता  
 जीवने से चपराह्त कुछ नहीं रहती १. दूसरे मित्र श्मशान पर्यन्त संगी होवे  
 हैं २. और तीसरे मित्र परलोक पर्यन्त निर्विहा करते हैं ३. अत्ये यह कि जि  
 तनी धनकी सामग्री है तिसकी मित्रता जीवने पर्यन्त है धीमे जितने सम्बन्धी  
 लोग हैं सो शरीरको श्मशान तक पहुँचाते हैं तब यह श्मशान मृत्यु के लो कर्म हैं  
 सो परलोक पर्यन्त संगी होते हैं और जब यह मनुष्य मृत्यु हो जाता है तब और  
 लोग कहने लगते हैं कि इसकी सामग्री पीछे क्या रही है और देवता इस प्रकार  
 कहते हैं कि इसने आगे क्या कुछ भेजा है इसीपर ईसा महात्मा के भगियों ने  
 पूछा था कि तुम जल पर किस करके सलेही तब जे जाने हो और हमारे विषे ऐनी  
 सामग्री क्यों तर्ही है तब उन्होंने कहा कि मैं कपड़े और स्वर्ण को माटीकी नाई  
 जानता हूँ और तुम इसको उत्तम पदार्थ समझते हो तबने मेरी ओर तुम्हारी अ  
 त्तस्था विषे इतना ही भेदा है इसीपर एक ब्राह्मण है कि अक्षरदा ज्ञानी सन्नको  
 किसी भगवत् विमुख ने उखाड़ा था तब ब्रह्मने जगत् कि हे महाराज ! तू इसको  
 अरोगता और षडी आयुष् और चतुर्भुज इनहे तात्पर्य यह कि उन्हें ते मूढ सम  
 ही डालके कारण समझिये काहेने कि जिसको ऐसी समझा प्राप्त होती है  
 तब वह प्रमादाफरके परलोक से अवेत हो जाता है और चमकी बुद्धि नदताको  
 पानी है इमीपर हमनबमरी ने कहा है कि जिस मनुष्य ने रूपे और स्वर्णको  
 अधिक प्रियतम किया है उसको परलोक विषे भगवत् लज्जावान् करता है और  
 यहियानामी सन्न ने कहा है कि यह सोता और चादी विन्ड और सापोंकी नाई  
 है तबि जवनग इसका मन्त्र न जानो तब जग डनका स्पर्श न करो और जब  
 मग्नसीवे विना इनपर हाथ डालोगे तब निस्तदेह उनके विपत्तके मृत्युहोवोगे  
 सो मग्न इतका यह है कि पुण्य धनकी उत्पत्ति पापमे रहित होवे, आर्घ्य के  
 मार्ग विषे दिया जाने बट्टारे जब एक सन्नका शरीर श्मशानमा नव उनने एक  
 प्रीतिमान्ने कहा कि तुमते जागनी सन्नान के निमित्त कुछ धन नहीं गता सो  
 इस ब्राह्मणका कारण क्याते तब उन्होंने ने कहा कि मेरे पुत्रोंकी जो पारसों सो

भेने और किसीको नहीं देनी और जो और की प्रारब्ध है वह इनको किसी प्रकार प्राप्त नहीं होती और यह वार्त्ता भी प्रकट है कि जो भगवत् के अधिकारी होंगे तो भगवत् ही इनको प्रतिपाल भली प्रकार करेंगे और जो धर्म से हीन होंगे तो मुझको इनकी चिन्ता ही कुछ नहीं बहुरि। एक और संन बड़े धनवान् हुये हैं सो सर्वदा अपना सम्पदा भगवत् अर्पित देते थे तब किसीने उनसे कहा कि कुछ धन अपनी सन्तान के निमित्त भी राखो तब उन्होंने कहा कि मैं धनकी भगवत् के निकट अपने निमित्त रखता हूँ और पुत्रोंकी प्रारब्ध करने वाला भगवत् है बहुरि। यहियानामी संतने कहा है कि श्रुत्युक्त समय धनवान् पुरुषको दोहोख अवश्य ही लगते हैं सो एक तो उसकी सर्वसम्पदा दूँगोती है और दूसरे धर्मराय के दण्डका अधिकारी होता है पर ऐसे जानू कि यद्यपि यह धन महानिघ है तो भी कुछ इसविध विशेषता कहा है काहेसे कि यह धनरूपी पदार्थ उपाधि और भलाई दोनोंका बीज है इसीपर महापुरुषने कहा है कि यह धन भी उत्तमोपदार्थ है पर बुद्धिमान् और धर्मात्मा पुरुषोंको और योंभी कहा है जब यह मनुष्य अत्यन्त निर्द्धन होता है तब निस्सन्देह महाराज से विमुक्त हो जाता है काहेसे कि जब अपने सम्बन्धियों और आपिको भूखमयुक्त अधीन देखता है तब ऐसा जानता है कि भगवत् ने यह किसी अनीति से है कि पापी मनुष्योंकी धन दिया है और सार्विकी मनुष्य ऐसे दुःखित किये हैं कि उनको एकदम भी धारण नहीं आता जिस करके भूख का निवारण करे बहुरि ऐसा अनुमान करता है कि जब भगवत् मेरे दुःखको नहीं जानता तब अन्तर्मायी स्वयं कर लूँगा और जब दुःखी जानता हूँ और देने ही सका तब पूर्ण समर्थ क्योंकर हुआ और जब समर्थ होकर नहीं देता तब दया और उदारता से हीत जाना जाता है और जब इसनिमित्त नहीं देता कि पालोके विप्रे सुखी कहगो तब ऐसे जाना जाता है कि दुःख दिये भिना सुख देनेको समर्थ नहीं हो सका ताते प्रसिद्ध है कि निर्द्धन पुरुषको भवान् होकर ऐसा भी रहने लगता है कि समय विपरीत हुआ है और लोग अन्वहृये हैं जो अनधिकारियोंको पदार्थ और धन देते हैं तात्पर्य यह कि मनीष विना यह मनुष्य इसप्रकार भगवत् से विमुक्त होता है और अपने भने बुको पहिचान नहीं सका ताते ऐसा पुरुष कोई दुर्लभ होता है जो निर्द्धन होकर भी प्रीति परके उसही विधे अपनी मलाई जाते

पर ऐसे मनुष्य बहुत होते हैं जो निर्द्धनताई विषे, व्याकुल होजाते हैं इमीकोप-  
रण से भगवत् ने यह धन भी जीरके द्विद्रो को छिपानेवाला बनाया है और  
शरीर के निर्वाहमात्र सम्रह करना सन्नजनों ने भी प्रमाण कहा है ताते प्रसिद्ध  
हुआ कि इसप्रकार करके यह धन भी केवन निन्द्य नहीं बहुरि इसही धन विषे  
एक यह भी लाभ है कि सर्व जिज्ञासुओं की अभिलाष परलोक के सुखपाने की  
होती है सो परलोक का सुख तबहीं प्राप्त होता है जब प्रथम तीन पदार्थ प्राप्त होवें  
सो एतत् तो विद्या और कोमल स्वभाव और इसकी स्थिति मन विषे होती है \*  
और दूसरा पदार्थ शरीर के विषे पाया जाता है सो वह आरोग्यता और जीव-  
ना है ३ तृहुरि तीसरा पदार्थ शरीर से बाहर पाया जाता है सो वह प्राणों की  
रखाके निमित्त शुद्ध जीविका है ३ पर जब इस पुरुषकी श्रद्धा निष्ठाग होवे तब  
इन पदार्थों करके परलोक के सुखको पायसक्रा है सो जिस पुरुषने इसप्रकार  
निश्चय जाना है वह धनको कार्यमात्र अगीकार करता है और अधिक धन  
की सामग्री को हलाहल विषकी नाई जानता है सो इम वचनका अर्थ यही है  
जो कहा है कि उत्तम पुरुषों को धनभी लाभदायक होता है इमी पर महापुरुषने  
कहा है कि जो पुरुष धनको धर्मके निमित्त प्रियतम रखता है वह धर्मही को प्रिय-  
तम रखता है और जो पुरुष अपनी वासनाके अनुसार धनको प्रियतम जानता है  
वह अपनी वासनाही का दास है और उमने इम मनुष्य जन्मके तात्पर्य को  
नहीं समझता ताते महामूर्ख है इमी पर इनाहीम मतने कहा है कि हे महागज !  
गेरी और मेरे प्रियतमों की प्रेतपूजा मे रखाकर अर्थ यह कि सोना चाँदी प्रेतरूप  
हैं और सबही लोग सयुक्त इम को पूजते हैं ताते तू गेहे हृदयमे इमकी प्रीति  
को दूरकर ॥ अथ प्रकट करने लाग और विद्वान धनके ॥ एमे जान तू कि यह  
धन सर्की नाई है अर्थ यह कि जैसे विष और मणि दोनों सर्पही मे उपजते  
हैं तैसेही धन विषे भी गुण दोष पाये जाते हैं सो जबजग विष और मणि के  
स्वरूपको भिन्न भिन्न करके न कहिये तबजग वचनका तात्पर्य परमसिद्ध नहीं  
होना ताते गे धनके गुण और दोष भिन्न भिन्न करके कहना है पर धनके लाभ  
दोष प्रचारके प्रमिद्ध है सो एतत् तो समग्री लाभ है कि भनवान् पुरुष जगत् रिषे  
यड़ाई को पायना है और इत्यादिक अवसर जो स्थान लाभ मा आपही प्रमिद्ध है  
वष्टुमि दूसरे धर्म के मार्ग विषे उमने लाभ सो यहाँ तीनहु एक तो जगो

शरीर की जीविका होती है और जितने शुभकर्मों को वह शरीर के सम्भ्र-  
 णके सिद्ध होते हैं ताने सर्व शुभकर्मों को जीविका शुद्धजीविका है पर जब जी-  
 विका की जितनी रहती है तब उससे भजन और अभ्यास कुछ नहीं हो स-  
 ता तब जब इस पुरुषकी मनसा धर्मके मार्गकी होवे तब जीविका का संग्रह म-  
 नाभी उमही मार्गका तोशा होनी है इसीपर एक वार्त्ता है कि सतको धाम कुछ  
 अनाज निष्पाप व्यवहार का आयाथा सो यह सत उस अनाजकी मुष्टि मारके  
 कहने लगे कि इस शुद्ध जीविका को भी निरुद्यमियों के भरोसे से विशेष ज-  
 नताहू पर इस भोग को सोई पुरुष समझता है जिसे को अपने हृदय की शुद्धता  
 और अशुद्धता की बूझ होती है और तबही वह जानता है कि शुद्ध जीविका  
 करके इस प्रकार हृदयनिःखेद रहना है और और लोगोंकी आशा दूर ही जाती  
 है और भजन विषे एकाग्रता दृढ़ होती है १ वहुतर दूसरेलाभ धर्ममार्ग संबंधी  
 धनका यह है कि और जीवों को दान देना है तो भी इस पुरुष को आलाई प्रसि  
 होती है पर धनका देना भी चरप्रकारका है सो प्रथम यह है कि अर्थी और मा-  
 त्तिकी मनुष्योंकी पूजा करनी तब उनकी पूसना करके व्यवहार और परमार्थ  
 के सुख को प्राप्त होता है १ और दूसरा प्रकार देनाका यह है कि मित्रों और संबंधि-  
 योंके पावशाव करना और सर्व कायों विषे उदार विद्विर्हना सो यह भी धन  
 करके होता है २ वहुतर तीसरा यह कि जितनेही पुरुष इसकी जागरसेमें है और  
 जवो उनको कुछ न देवे तब निन्दा करने लगते हैं जैसे ब्राह्मणों व काट्ट व का-  
 धीशर होते हैं भी इनको देना भी बड़ा उपकार है काहेने कि यह सर्व निष्ठा करने  
 से छूटे है ३ वहुतर चौथा प्रकार यह है कि यह मनुष्य सर्व क्रिया अपनी आपही  
 फार नहीं सक्ता ताते केने पुरुषों के माय व्यवहार का संग्रह होत है तथा अपनी  
 सेवा करने वालों को देना भी विगेष है काहेमें कि जब यह पुरुष अपनी क्रियासे  
 निश्चिन्न होता है तब भजन विषे सावधान रहना है और यद्यपि अपनी शक्तिकी  
 क्रिया आपही करनी विगेष है भी जीविका जिज्ञासुके विपिन अनेक शिवाय वि-  
 दृष्ट होता है तब उसको श्व व क्रियाका अर्थी अधिकार महि रह ॥ ४ ॥ २ वहुतर  
 तीसरेलाभ धनका धर्ममार्ग संग्रहरी यह है कि धन करके और भी बड़ बड़े  
 पुण्यकार्य हाते हैं जैसे वृ और ताल और पुत्रोंका बनाना अथवा अभ्यागतोंके  
 निमित्त वर्षभाला और शयुद्धागे बनाने मा इत्यादिक पुण्यस्थान एमे उत्तम

हैं कि इन्हों करके चिरकाल पर्यन्त अमरस्यजीवोंको सुख होता है पर इनकी मि-  
 ल्लताभी धनकरके होती है ॥ अथ प्रकट करते विघ्न धनके ॥ ताते जानू कि इस  
 धन विपे केते विघ्न तो स्थित है और केते ऐसे हैं कि धर्मके मार्गसे विमुख करते  
 हैं। मो अह विघ्न भी तीन प्रकारके हैं प्रथम यह जो धन करके भोगोंकी प्राप्ति और  
 पापकिया सुखन होनी हैं सो इस जीवका मन तो आगेही से ऐसा लपलपे कि  
 सर्वदा विपयों और पापोंकी ओर दौड़ता रहता है और जब सन्मानादिक बड़ाई  
 को पायता है तब शीघ्र ही पापों विपे जाय गिरता है और बुद्धिभी शुद्धता नष्ट  
 होजाती है बहुरि जब भोगों और त्योंसे हठ करके आपकी धचाया चाहे तो भी  
 बड़ा पुरुषार्थ चाहिये। काहेसे कि सपदा विपे विरक्त रहना महाशक्ति है। बहुरि  
 दूसरा विघ्न यह है कि यद्यपि धनवान् पुरुष ऐसा विचारवान् होवे कि पाप कर्मोंसे  
 धचायेराखे तो भी खानपान और वस्त्रादिभोगोंसे मुक्त नहीं होसकता काहे से कि  
 ऐसा वैराग्यामहा दुर्लभ है जिमकरके ससंपदा विपेही आपकी संयम साय राखे  
 जैसे व्यञ्जन के होते दृश्ये भी सुखा अनाज भावे अथवा सुन्दर वस्त्रोंके होने दृश्ये  
 ही कमली आदिक सह्ये ताने जब ऐसे वैराग्यको प्राप्त नहीं होता तब शरीरका  
 स्वभाव अत्रिक भोगोंके साथ मिन जाता है और राजमी व्यवहार का त्याग नहीं  
 करसकता बहुरि अत्रिक भोगोंकी उत्पत्ति सापसे रहित होनी कठिन है इसीकार  
 ण से भोगी पुरुष अत्रानु कही पापोंके समुद्रविपे बहजाता है और इस ससार  
 के जीवने की स्वर्गवती जानता है ताते परलोक के मार्ग मे विमुख रहता है और  
 जिसको भोगोंकी वृष्णा होती है वह धनके निमित्त जानाप्रकारके पापगड क-  
 रता है और राजाओं का निकटवर्ती हुआ चाहता है तब अनेक गन्तु और ईर्ष्या  
 करनेवाले उपज आवते हैं और परस्पर वैराग्य विपे दृढ़ होजाता है सो ऐसे कर्म  
 सबही पाप रूप हैं तातरय यह कि रजोगुणी बीजमे अवश्यही तापसी च्छ उप-  
 जता है इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि गायत्री प्रीति सर्व पापों का पारण है  
 और ऐसा महानरक है कि इमका धन कन्त विघ्न नहीं आवता २ बहुरि तीसरा  
 विघ्न धनका यह है कि यद्यपि धनवान् पुरुष भोगों और पापोंसे रहिन भी होव  
 और सर्वपाप वैराग्य संयुक्त रहे और विचारकी मर्यादा के साथ स्वर्ध करे तो भी  
 धनकी एकाके संकल्प विपे ऐसा लीन होजाता है कि भजन और अभ्यास कर  
 नहीं सकता सो सर्व शुभकर्मों का केन भगवत् भजन और भीति और प्रीति ह



रूप यह है कि भगवत्से इतर सर्वपदार्थों से विक्रमहोवे पर ऐसी अवस्था तब प्राप्त होती है जब और सर्वात्मकत्वों से मुक्त होता है और धनदान की विशेषता इस प्रकार है कि जब अधिक सामग्री रखा है तब तो सहज ही व्यवहार परसना है या जब और सामग्री कुछ न राखे और केवल सोना चांदी ही धरती विषे दावाते तो भी उसको सर्वदा यही मकल्प रहता है कि ऐसा न होवे जो कोई गुरुपुत्र ब्रह्मन् देखलेवे और अचानक ही चुराया ले जाये तब मैं क्योकरू तात्पर्य यह कि धन धानका हृदय किसी प्रकार निस्सकल्प नहीं होता और अज्ञानका संमुद्र होता है इसीपर सतजनों ने कहा है कि जैसे जलविषे सूखा रहना असम्भव है-तैसे ही मायाविषे निर्लेप रहना कठिन है ताते मैंने धनके लाभ और विघ्न सबही पूरा किये हैं पर जब बुद्धिमानों ने मेली प्रकार विचार करके देखा है तब यही निरवयव किया है कि शरीर के निर्वाहमात्र शुद्धजीविका का संग्रह करना अमृत रूप है और इससे अधिक सपदानिस्संदेह विष रूप है ॥ अथ प्रकट करने विघ्न तृष्णा के ॥ ताने जानू कि यह तृष्णारूपी स्वभाव महानिघ्न है, काहे से कि लोभी मनुष्य व्यवहार विषे भी अनादर को पावता है और सदैव लज्जावान् रहता है बहुरि इस लोभसे और भी अनेक अवगुण उपजते हैं जैसे कपट और प्राणद और धनवानों की आधीनता विषे आमंत्र रहता है और उनके अपमान को सहता है और उनके झूठ को सत्य कहता है सो इसमनुष्य को भगवत् ने प्रथम ही तृष्णा सहित उत्पन्न किया है पर यह तृष्णा सतोप विना क्रदाचित् दूरी नहीं होती इसीपर महापुरुष ने कहा है कि यद्यपि इसमनुष्य को दो वैंगले स्वर्ण से पूर्ण करतेवे तब तीसरेको चाहता है ताते मृत्युही इसको तृप्तकरी है और और किमी पदार्थ करके तृप्त नहीं होता बहुरि योभी कहा है कि धनकी तृष्णा और जीवनेकी आशा क्रदाचित् पूर्ण नहीं होती ताते उत्तम पुरुष यही है जिसको धर्ममार्ग की रूक प्राप्त हुई है और शरीर के निर्वाहमात्र शुद्धजीविका पर सतोप करता है और योभी कहा है कि जबलग यह मनुष्य अपनी सर्भ प्राण्व नहीं भोगता तबलग निस्संदेह मृत्यु नहीं होना ताते तृष्णाका त्यागको और सतोप सहित जीविका को उत्पन्न करो, और अधिक भोगों से विक्रम होवे और जो चार्त्ता अपने अर्थ हिनलगती है वह औरों के अर्थ भी चाहे तब प्रतिमान होवोगे बहुरि पण्डित महापुरुषने कुछ जिज्ञासुजनों को यह उपदेश किया था

कि मगवत् मे इतर किसी को न पूजा और उसीकी आज्ञा-विषे सावधान होवो और और किसी से याचना भी न करो सो जिनको महापुरुष ने यह उपदेश किया था उनकी ऐसी अवस्था हुई है कि जब घोड़े पर सवार होने और चाबुक हाथ से गिरपड़ता तब किसी को इस प्रकार न कहने थे कि हमको चाबुक उठा दो ताते आपही घोड़े पर से उतरकर उठा लेते थे वद्वरि, मुसलामां भी महापुरुष ने कहा है औ मगवत्के आगे इम प्रकार प्रार्थना करी थी कि हे महाराज ! तेरी सृष्टि विषे अति धनवान् कौन है तब आकाशवाणी हुई कि जिस पुरुष को यथा प्राप्ति विषे सन्तोष है सोई अति धनवान् है वद्वरि विनती करी कि हे महाराज ! न्याय करनेवाला उत्तम कौन है तब आकाशवाणी हुई कि जिसने अपने ऊपर न्याय किया है सोई उत्तम न्याय करनेवाला है इसी पर एक जिज्ञासु जन रूपी रोटी को जख के साथ भिगोकर खालेते थे और इम प्रकार कहने थे कि जिस ने ऐसी जीविका पर सतोष किया है वह सब ससार से अच्छा रहना है और इव नमसऊद नामी सन्तने भी कहा है कि एक देवता सदैव जगत् विषे पुकारकर कहवा है कि हे मनुष्यो ! जो कुछ जीविका तुम्हारे शरीर के निर्वाह मात्र है सो तुमको वही विशेष है काहेसे कि इससे जितनी अधिक सामग्री होती है उससे प्रमाद और अचेतता उपजती है इसीपर एक और सन्तने कहा है कि यह उदर तेरा सर्व मलिनता का घर है ताते तू इस उदरकी दृष्टि के निमित्त नरहमाणी क्यों होता है इसीपर महाराजने भी कहा है कि हे मनुष्य ! जब मैं तुम्हको अधिक धन देऊ तौ भी आहारही करके तेरी दृष्टि होवेगी पर जब मैं तुम्हको आहारमात्र ही देता रहूँ और व्यवहार की विज्ञेयता और परलोक का दण्ड धनवानों के शीशपर डारू तब तेरे ऊपर इससे बड़ा उपकार कौन है और एक बुद्धिमान् ने कहा है कि दृष्ट्यावान् के समान दुःख सहनेवाला कोई नहीं और सतोषी के समान सुखी कोई नहीं और ईर्ष्या करनेवालेके समान विन्नावान् कोई नहीं और वैराग्यवान् के समान सुखेनचित्त कोई नहीं और जो विद्यावान् कर्तुनिसे रहित होवे तिसके समान परचाचाप करने योग्य और कोई नहीं इमी पर एक पार्श्व है कि एक अधिकने एक ममोना चिड़ियाको कैमापाथा तब मगोडे ते कहा कि जब तू मुम्हको मारकर भक्षण करेगा तौ भी तेरी दृष्टि न होवेगी ताने मैं तुम्हको तीन उपदेश करताहूँ सो तीनों करके तुम्हको अधिक लाभ होवेगा पर एक

वचन तरे हाय मरी जहंगा बहुरि जव मुर्क को छोड़ेगी और मैं वृषके ऊपर जा  
 बैठूंगी तब दू मरा वचन कहूंगा और ती मरा वचन गहाड़ पर बैठे करी कहूंगा तब  
 वधिकने किहा कि बहुत मल पर प्रथम वचन तो कह तब ममोली बोला कि जि  
 स फाये की समय जीत जीवे तब उसके ऊपर परवाचापे न काना तब वधिक ने  
 ममोली को छोड़े दिया और वृषके ऊपर ज बिठा तब वधिकने दू मरा वचन पूछा  
 तब ममोलीने कहा कि अस भव वार्त्ता पर प्रतीतिान करना इतना कह कर ममोली  
 गहाड़ पर जा भेठा और कहने लगा कि हे श्रमागी ज्यो तू मुर्क को मारता तो मेरे  
 उदरसे दो लाल निरसने और रूकण क लाल लीदो मेरे कें प्रमाण भोरीया तो  
 जव तू घने को पावेता तब पुण्या घना होता कि कहा चित निरसता को न देना  
 वधिकने जव यह वार्त्ता सुनी तब हाहाकार करके हाथ धलने लगा और भवे  
 र्ज वार्त्ता के प्राप्ति हुआ और इस प्रकार कहने लगा कि अब मी मरा वचन कह  
 तब ममोली ने कहा कि तूने तो यह दोनो उद्देश भी विसरिधे अथ ती सरी मु  
 न करके क्या करेगा काहे मे कि मेने तुम्हमे कहाया कि वीत गये की र्थ का प्रवा  
 स्ताप न करना और अथ भव वार्त्ता पर प्रतीति न करना सो यह वही श्राव्य र्थ  
 हे कि भेरी शरीर ही दो गे मे भर नहीयेगी तब चार पै मे मरके लाल पर उदर मे क्या  
 कर समाये इतना कह कर ममोली उड़ गया मी इस वार्त्ता का तात्पर्य यह हे कि  
 लो मोम मुष्य हीनी और अनहोनी वार्त्ता का विचार नही करता और नो गकर के  
 अर्च हे जो ता हे इसी पर एरु सन्तने कह हे कि इस मनुष्य के मले विषय ह लो म  
 अवड़ी रूप हे और लो गही पावी की भेड़ी हे पर जव तू जो म को धर करे तब ते  
 की जैसे जवड़ी और गाव मे वेड़ी हूँ गावे और तू मुक्त हूँ हो रे ॥ अथ प्रकट करना  
 तब ममोली ने कि मी हूँ कर के का ता जाने जान कृति तृष्णा की औप र हूँ रूपी  
 कृष्ण और मुक्त हूँ मी तई जगृति स्पी ती क्षता के मथ गिती हूँ ही ती हे मी  
 जव मोनरी रोगों के सर्व उपायों विषेण नही औप र मिलेनी है तब घर रोग कूर  
 हा जाते हे तने लृष्णा ही औप र पांच प्रकार करके होती हे प्रथम यह हे कि अपने  
 कार्य को घटोरे स्त्रे मोहा और भो देव स्त्र के तब इनने गात्र जीविका तृष्णा से  
 रहित उत्पन्न हो सकी हे मथ जव नाना प्रकार के रसी और सुन्दर फलों की चार  
 सब कदाचित् लृष नही हो तका इमी पर महापुरुष ने भी कहा हे कि जिस पुरुष  
 का व्ययदाय सयग के साथे यह निद्रन कदाचित् नही होता और योगी बरा

है कि यह तीव्र लक्षण सर्व जीवों को मृत्तकृतितोले है सो प्रथम यह कि मृत और अकृत विषे भावतुर्का भ्रम करना और तृप्ता यह कि विचारकी मर्यादा के अनुसार कीर्ति और समर्पना विषे विचरना और तीव्रता यह कि संपुदा और आपदा विषे समये सदित्त जीविका करनी इसी प्रकार के जाती है कि अचरदा नामी सन्त एकर और संजुओं के कृत्न गिरे हुये चुतये ये और इस प्रकार कहने थे कि यथा मांस जीविका विषे ममत्त रहना भी बड़ा गुरुभय है ५ वृद्धि इमस्य उपाय तं प्रणा के प्रदावते कः स है कि जब इस पुरुष को एक दिन की जीविका प्राप्त होवे तवा दूसरे दिन की चिन्ता न रहे पर यह सन्तुष्टी इस प्रकार प्रशस्त उपजायता है कि अभी तो तुम्हको बहुत जीवता है और सदा विप्र, कष्ट के दिन क्लेश नहीं प्राप्त होवे तातो अब ही उद्यम करके सत्तम कर विषे सो यह मन तेरा ऐसा गृह्य है कि अगली भित्ति को के आस ही है श्री धर्मिया साहता है और निर्द्वन्द्वता के मयसे अत्र ही तुम्हका निर्दन करनी है पर जब ये सत्तम को तत्र जिज्ञासुको इस प्रकार विचार करेगा तद्विषे कि यदा जीविका तृष्णा के द्वन्द्व नही होती काहेसे कि मारत्य तो महाराजकी रची हुई है सो इम जीवकों अवश्य ही ज्ञान पट्टवती है और योगी है कि जब अगले जित्त जीविका तत्र सट्टे तो भी इमकी उत्पत्तिके विषे जितन अत्र आज होता है सो उतना ही करे होंगे तासे अर्षदी कपो चिन्तावान् हूजिये इसी प्रकार महापुरुष इतन गस ऊर्ध्व के घणये थे तब इतन गस ऊर्ध्व को चिन्तावान् देवकर कहने लगे कि तुम शोक और चिन्ता मत करो काहेसे कि तुमदागे मारत्य तुमको अवश्य ही प्राप्त हो रहेगी इसी पर गहारा जने भी कहे है कि तुम्हको तृष्णासे जित दिन होना ही विशेष है काहे से कि सोई संतोपवान् अकरके दुःखी नहीं हुआ इमेर कि शगवत् सर्व नीचा को उम के ऊपर दयानु का देवा है ताके याचन विगामी उमकी परिपाल होना है इसी पर एक और मनेने कहा है कि जा मेरी प्राप्ति है सो मुम्हको पत्र बिना ही प्राप्त होवेगी और जो मरी मारत्य नहीं सो मेरी मनुष्यों और देवनों के मन्त्र करके भी प्राप्त न होवेगी ताके जीविका के निमित्त मेग पत्र और अचरदा कया राम आयेगे २ वृद्धि तीव्रता प्रथम यह कि जब इस पुरुष को गिरादा दोन विषे पत्र प्राप्त होवे तब ऐसे पानना प्रमाण है कि जब किसीकी जाना करेगा तब यत्र

और खेदभी होजविगा और मैं निर्लेजताको भी प्राप्त होऊगा और भगवत्प  
 भी विमुक्त रहूंगा पर जब मैं निराशवा विपेही धैर्य करूंगा तब निस्संदेहत्ताम  
 को प्राप्त होऊगा तात्पर्य यह कि निराशता विपे धैर्य करना लोमके अप्रमाण  
 दुर्वमे सर्व प्रकार विरोध है इमीपर महापुरुषने कहाहै कि प्रीतिमान्की सहाई  
 यही है जो सन्तोष करके सर्व ममारसे अचाह रहता है ऐमेही अली सन्त ने  
 कहा है कि जिसके साथ कुछ तेरा प्रयोजन है तबानु उसीका दास है और जि  
 सका प्रयोजन तेरे साथ है सो निस्संदेह वह तेराही दास है और जिस पदार्थ  
 से तू अचाह है तब तुम्हको उसकी आधीनता नहीं रहती ३ बहुरि चौथा उपाय  
 यह है कि जिज्ञामु प्रथम अपने हृदय विपे ऐमे विचार कर देवे कि मैं तृष्णा  
 और लोभ किस निमित्त करता हूं पर जब मैं अहकारके निमित्त करू तब यह  
 तो वृषभों और गर्दभों का काम है और जो कागादिकों के निमित्त तृष्णा कर  
 ताहू तो शूर और पक्षी चिड़िया मुझसे अधिक भोगी है अपना जब नाना  
 प्रकारके भस्त्रादिक के निमित्त यत्न करताहू तब केते ताममी मनुष्य भी मुझसे  
 अधिक धनवान् हैं तात्पर्य यह कि जब इसप्रकार विचार करके तृष्णा को दूर  
 करे तब सर्वसंसार मे उत्तम अवस्था को पावे और सन्तजनों के पदमो जाप  
 हूँने ४ बहुरि पांचवा उपाय तृष्णाके घटाने का यह है कि बारबार धनके विपे  
 को विचारे और इसप्रकार जाने कि धनवान् पूरुष इसलोक विपे भी डरता रहता  
 है और परलोक विपे भी दण्डका अधिकारी होता है ताते जिज्ञामुको चाहिये  
 कि सदैव आपसे अधिक निर्द्धनोंको देखतारहे और धनवानोंकी ओर न देखे  
 तब भगवत्के उपकारको प्रकट जाने पर यह मन ऐसा शत्रु है कि सर्वदा इस  
 मनुष्य को भटकाता रहता है और ऐमा कहता है कि अमुक तो ऐमा धनवान् है  
 और अमुक धियावान् तो किसी धनमें भयनही करना ताने नृक्यों त्यागकता  
 है सो इस भक्षरका उपाय यह है कि आपमे विशेष अवस्थावाने को परमार्थ  
 सम्बन्धमें देखे तब आनी नीचताको प्रकट जाने और अभिमान मे रहितहोवे  
 और व्यवहार विपे आपमे अधिक निर्द्धनोंकी ओर देखे तब भगवत्के उपकार  
 को ज्ञाताहोवे ॥ अथ प्रकट करनी गहिमा उदागताकी ॥ ताते जान तू कि जेमे  
 निर्द्धनताई विपे जिज्ञामुको सन्तोष चाहिये ऐमेही धन और सम्पदा विपे प्री  
 तिमान् को उदागता विशेष है और कृपणताको दूर कम्नाही गनाई का कारण है

इसी पर महापुरुषने कहा है कि उदात्तारूपी वृक्षकी मूल स्वर्ग विषे है और शाखा इसलोक विषे है तब उदार पुरुष उसही शाखाको पकड़कर अत्रस्थही स्वर्गको प्राप्त होता है परमेही तुरक विषे रूपणतारूपी वृक्षकी मूल है और शाखा इसलोक विषे है सो रूपण मनुष्य उसही शाखाको पकड़कर अत्रस्थही तुरकको प्राप्त होता है और साभी कहा है कि दो लक्षण भगवत्को अधिक प्रियतम है एक स्वाम स्वभाव और दूसरा रूपणता तब साभी कहा है कि उदार पुरुषके अवगुण को न देखो काहेस कि उदार पुरुष को जब कुछ अत्रसर स्वता है तब भगवतही उसकी सहाय करता है और साभी कहा है कि उदार पुरुष भगवत्का निकटवर्ती है और परमसुख भी उसको निकट है और लोगो के वित्तविषयी प्रियतम लगाता है और तुरको से दूर परमेही रूपण मनुष्य भगवत्के सुख से दूर है और लोगोके वित्तसे भी दूर है और तुरकासे निकट है इसी कारणसे रूपण मनुष्य यद्यपि भजनवान् इवेत भी उससे वियाहीन उदार पुरुष का भगवत् अधिक प्रियतम रखता है काहेस कि रूपणता महामलिन स्वभाव है और साभी कहा है कि जित पुरुषोंको परमपदकी प्राप्ति हुई है सो जप तप और व्रतकारक नहीं हुई वह हृदयकी शुद्धता और दया और उदारता करके उत्तमपद विषे स्थित हुआ है इसी पर जलीताभी सन्तने कहा है कि जब तुम्हका सम्पदा प्राप्तहोनेलगा तब उदात्ता सहित स्वतंकर काहेस कि दानकरके सम्पदा दूर न होवेगी और जब यह धन की सामग्री तुम्हसे दूर होतलगे तब भी निश्चकटकारके काहेस कि यह तो आपही जलीजाती है और जब तु सचने की सतसा करोगा तब दईका अधि कारी होगा इसीपर एक वाचा है कि कोई पुरुष अपने मनोरथकी प्राप्ति लक्ष पर हमननामी सचके निकट आया तब हमनजीने पाता के पद विनाही उससे कहा कि जिनना कुछ तुम्हको चाहिये सो मागले बहोर किसीने पूछा कि तुमने प्राप्ति क्या नहीं पदी तब वह कहने लगे कि जब मुम्हकी प्राप्ति पदने फुर दील-लगती और भगवत् मुम्हसे पूछना कि तने अर्थका अर्थ पृथ करके विष इतनी दे करी लगाई तब मैं क्या उत्तर कहता इसीपर एक प्रश्न पाना नदी पदी इसीपर एक और वाचा है कि कोई धनवानने पंचामहस्र टायण मद्यपुष्टा की स्त्रीको गेरुगियाया तब उन्होंने वह सुत्र धन वाचदिया उट्टी जब स्वधनने

की समय हुआ तब रूखाही भोजन खाने लगी तब दासीने कहा कि जो तुम अपने निमित्त भी एक दो पैसा रखलेती तो क्याहोता तब उन्होंने कहा कि जब तु आगे मुझको स्मरण करानी तो मुझको भी उसमसे देदेती इसीपर एक और बाँची है कि एक दिन अलीनामी सन्त रुदन करनेलगे तब किसीने पूछा कि तुम क्यों रोतेहो तब उन्होंने कहा कि सातदिन व्यतीतहुये हैं कि हमारे घर कोई अभ्यागत नहीं आयाहै ताँते इसी निमित्त मैं रोताहूँ बहुरि एक और बाँची है कि एक भीतिमानने अपने मित्रसे कहाथा कि मुझको दोस्रो रुपया देनाहै तब उस मित्रने दोस्रो रुपये उसको आनदिये और पीछे रुदन करनेलगा तब उसकी स्त्रीने कहा कि जब तुमको श्रद्धा देनेकी न थी तब प्रथमही न देते जो अब रुदन करतेहो तब उन्होंने कहा कि मैं धनके निमित्त नहीं रोता पर इसनिमित्त रोताहूँ कि मैं मित्रकी व्यथा से इतना अचेत क्योरहा जो उसको माँगना पडा सो मेने यह मित्रकी वही अवज्ञा करीहै ॥ अथ प्रकट करनी निषेधता रूपणता की ॥ ताँते जान तू कि महाराज ने भी इसप्रकार कहाहै कि जिनको धनरूपी पदार्थ प्राप्तहुआ है और वह रूपणता करते हैं तब वह धनही उनको भिन्नदायक होता है और अन्तसमय बिपे वही सम्पदा उनके गलेकी जंजीर होती है इसी पर महापुरुष ने भी यह कहा है कि रूपणता से सदैव दूर रहो फाइसे कि इस रूपणता ने आगे भी बहुत लोगोंका नाशकिया है और जिनके ऊपर रूपणता प्रबल हुई है तिन्होंने निश्चक होकर जीवोंका घातकिया है और अशुद्ध जीविकाको शुद्धकर जानाहै और योगी कहाहै कि तीनस्वभाव इस जीवकी बुद्धि को नाश करनेवाले हैं सो प्रथम तो रूपणता है और दूसरा अशुद्ध भासनाके अनुसार कर्त्तव्य करना और तीसरा आपकी विशेष जानकर अभिमान करना इसीपर एक बाँची है कि दो पुरुषाने कुछ धन महापुरुष से माँगाथा सो जब भिदापुरुषने उनको दिया तब वे अधिक प्रसन्नहुये बहुरि महापुरुषने उमर की ओर दृष्टिकरके कहा कि ये लोग अधिक विनयी फरके मुझसे मागते हैं ताँते मैं इनको कुछ देताहूँ पर जब भली प्रकार देबिपे तब यह सजागताका द्रव्य उनको अग्निकी नाई जलानेवाला है तब उमरने पूछा कि जब तुम इस द्रव्यको अग्निरूप जानतेहो तब उनको किस निमित्त देतेहो तब महापुरुषने कहा कि मैं उनकी अधिक दीनता देखकर भयवान् हाँताहूँ और इससे भी भयकरताहै

कि कहीं मेही कृपण न हो जाऊं और मेरी कृपणता कृके महाराज अपसन्न हो जावे बहुरि एक और वार्त्ता है कि कोई पुरुष भगवत्के आगे इसप्रकार प्रार्थना करताया कि हे महाराज ! मेरे पापको तू क्षमाकर तव महापुरुषने उसको देखकर कहा कि तेरा पाप क्या है तव उसने कहा कि मेरा पाप अतिदीर्घ है और मुलसे क्षमा नहीं जाता बहुरि महापुरुष ने कहा कि तेरा पाप दीर्घ है कि पृथ्वी दीर्घ है तव उसने कहा कि मेरा पाप दीर्घ है बहुरि महापुरुषने कहा कि तेरापाप अधिक है अथवा आकाश अधिक है तव उसने कहा कि मेरापाप अधिक है बहुरि महापुरुषने कहा कि तेरापाप बड़ा है अथवा महाराज की दया बड़ी है तव उसने कहा कि महाराजकी दया तो निस्सन्देह अमितहै तव महापुरुष ने कहा कि तू अपने पापको प्रासिद्ध करके कह तव उस पुरुषने कहा कि मैं अधिक धनवानहू पर जब किसी याचकको आया देखताहू तव कृपणताकी अग्नि कर्के जलने लगताहू यह वार्त्ता सुनकर महापुरुषने कहा कि मुझसे दूरहो काहेसे कि यद्यपि तू सर्व आयुषपर तीर्थोपर स्थित होवे और रात्रि दिन भजन करता रहे बहुरि इतना रुदनकरे कि तेरे नेत्रोंके जल करके बड़े प्रवाहचल पर जबलग कृपणता का त्याग न करेगा तबलग नरकोंके दुःखसे न छूटेगा काहेसे कि यह कृपणता मनमुखता है और अग्निरूप है और योभी कहा है कि सदैव दो देवता भगवत्के आगे पुकार करके कहते हैं कि हे महाराज ! धनको जोड़नेवालों की सम्पदा नष्टकर और उदार पुरुषोंको अधिक सम्पदादे बहुरि एकवार एक संतने गेतान से पृच्छाया कि तू प्रियतम किसको रखताहै और शत्रु किसको जानता है तव उसने कहा कि मैं कृषा तपस्वीको प्रियतम रखताहू काहेसे कि वह तप और कष्टकरके दुःख सींचता है और कृपणता कर्के फल उसका नष्ट होजाता है बहुरि राजसीपुरुष उदारकी अपना शत्रु जानताहू काहेसे कि वह शरीर कछे भी सुख भोगताहै और मैं करताहू कि उदारता करके उमके ऊपर भगवत्के लगा करे और अपनी दया करके उसको बेराग्य प्राप्त करदेवे ॥ अय निरूपण परम उदारता का ॥ ताते जान तू कि पुरु उदारता है और एक परमउदारता है सो उदारता यहहै कि जिस पदार्थ की इमको अपेक्षा न होवे उसको भगवत् अर्थ उठादेवे और परमउदारता यहहै कि जिस पदार्थकी इमको अति प्रपेक्षा होवे और वह पदार्थ विमो और अर्थो को उठावे और पेशेही परमकृपणता यहहै



किं यद्यपि उसका कुछ अपन शरीर की प्रयोजन है। इति तांशो स्वयंमही करता  
 क्रोम अपुने मनुष्य को भी और मनुष्य की आणु करके पण उच्योवा इति  
 और अपुने धन को जाति को खोज नहीं सकी और महापुरुष ने हमें प्रकृत कदा  
 हीन के जो पुरुष अपुने अर्थ को और इष्टि न करे और और के अर्थ को पण को  
 तब उसके ऊपर भगवत् अतिप्रमत्त होता है। इसीपर एकवाची है कि एक प्राति  
 मानिक घर कोइ अम्योगत आयिथा और उनके घरमें भोजन अल्पथा तब उन्ही  
 ने दीपक की धुंका दिया और मिलकर भोजन करनेको घटे पर आप कुछ नहीं  
 सतिथे और पीछे हीय भोजन विव डालते थे इसकरके कि यह अम्योगत  
 तब ही कर सति तब उमको यह धीसा सुनकर महापुरुषने कहा कि सुतरी पर  
 उदारता पर भगवत् अतिप्रमत्त होगा और मसा महत्या को भी साकारवाली  
 हुई थी कि जो पुरुष सन्ध सायुष विप एकवार भी अपने अर्थकी त्याग करके  
 और का अर्थ पूण करता है तब भ उसके साथ खोज नहीं करता इसीपर एक  
 वासी है कि एक घड़ा धनी और उदार भोगिमात्र अरुने करता हुआ खजुर के  
 वारमें जो निकसी तब उमके सामने बाग के खिचाले की दो रोटी आइ पहार  
 उसी समय विप एक कुर उसी बागमें आ निकजा तब उम खिचाले ने एक  
 रोटी उस को डालदी सो उस कुर ने वह जीवही खाली तब उस खिचाले ने  
 दूसरी भी डालदी तब यह आश्चर्य देखकर उम खिचाले से प्रतिगार ने पूछा  
 कि तुम को घस कितना भोजन आता है तब उसने कहा कि जितना तुमने  
 देखा है जितना ही आता है वही प्रतिमानने कहा कि तने सबही किस निमित्त  
 डाल दिया तब उसने कहा कि यहाँ आगे में कुर फाई न था और यह पूरे से  
 आया है ताने मन मही मनसा करी कि यह कुर भवान रहे तब उसे प्राणि-  
 मानने कहा कि लोग मुझकी व्यपही उदार कहने हैं यह खिचाला जो मुझमें  
 भी परम उदार है इतना कहकर उम पीपिमानने उस बाग और खिचाले को जोल  
 लेकर मुझ की दिया और वही बाग में उम खिचाले की दे दिया वही एक  
 और वासा है कि एकत्रापी मनके गृहविप कुछ अम्योगत आयिथे और उनके  
 घरमें भोजन अल्पथा ताने उन्हीने राटियों के दूक करडाल और दीपक बुका  
 यूर भोजन करने के निमित्त एकत्र होकर बैठे वही अत्र एक घड़ी के पीछे  
 दीपक उन्हीने जलाया तब भोजन भव ज्योंकी त्याग देवा और किसी ने

अग्नि कि रश्मि निका कया तारि यक यह क्र सवन परम उदारता करी और बोहा सवे  
 भिनसा फरते मय कि हमीरी मित्र हत हो कर वावे और हम को भुखा रहना भाता  
 हू इमी फु आक गित्त मी नि क हू हे कि एक वरि धि डी बुद्धि आ और उ म्भु व कृत  
 लोग वयिल म्भु य और मरा भाई भी उमा गव चयल पदा यी क्षि व अ इसके  
 जिनके जननी पात्रि भी कर लेगी यी सा जव भे उर्मको जल देने लगा तब ए रु  
 और घायल ने कहा कि मुक की जि जी पिना दो तब भेर भाई नि कडा कि प्रयोग  
 इसी को पिना दो बहुरि जब भे उसके निकटे गया तब एक और ने जल भगिा  
 तब उस घायल ने जो कहा कि प्रथम उसीको जल दे दो सो जव भे उसके नि  
 कट पड़े वा तब ने उर्मकी शरीर छुट गयी बहुरि जब भे उर्मके निकटे आया तब  
 उर्म बोयल और भेरे फाड़े के भी प्राण छुट गये प्रयोजन यह कि सभे ने अपने  
 जनि से कि जे गित्री को जनी विरि वा जनी और बगर दा को नी भी मन्व प्रमे  
 परम उदा र्ह्य है कि जब उर्मकी शरीर छुटने लगा तब एक जयने आका यो  
 चनी करी और उन के पास कुट्टु च था तब उन्हीने अपने भले को पत्र खतर  
 दिया और फिर और किये का बन्ना भाग कर गले भे उदा बहुरि एक मुद्र के  
 पीछे और के र्थ्या ग किये तब बुद्धि मामीने कहा कि विशु र्दी को जि म्भु करे इम  
 लोक विषे आये थे सै सही परलोक विषे गये अर्थ यह कि जिस नग्ना जन्मे थे  
 तै सही अस प्रह हो कर भमने करत मये । अर्थ उदारता कृपणता मर्यादि भिने  
 पण ।। जति जनि हू कि बहूत पुरुष आपकी उदार जनिने है और वह और  
 लोगो के मत विषे कृपण होते है ताने इम भेदकी अवश्य ही परिचानना चाहिये  
 काहेसे कि यह कृपणता र्थी दी घोरोग है और जंजलग से रोग हो परिचानिये  
 नही तब लग इमका उपाय क्या कर करिये और यह धात्ता भी प्रसिद्ध है कि अ  
 थियोंके अर्थको भव कृपण नही करमको सो जब इमीको नाम कृपण न्दिये  
 तब सभही काल हाते है पर ए मी नही काहेसे कि विचारकी दृष्टिये जिय वस्तु  
 को देना प्रमाणो भे उर्मको जो पुरुष न देवे तब वह कृपण कहा जाना है और  
 जो पुरुष विचारके साधि भुगगही न देवे तब वह भी कृपण ही कहा जाते और जो  
 पुरुष भोजनके निमित्त वस्तु लेता हू सो अथि क विवाद करे अथवा मन्वियोंको  
 आहार और वस्त्र सकुच करे देवे अथवा याचरुको देवहा अपने आहारको दि  
 पायलेव सो यह प्रसिद्ध कृपणता है काहेसे कि कृपणता का अर्थ यही है कि

जिस पदार्थका देना प्रमाण है और जब वह वस्तु देना सके तब जानिये कि यह रूपण है इसकरके कि भगवतने यह धन व्यवहारके निमित्त उत्पन्न किया है जो जबलगा इस भेदको न जाने और धनको इकट्ठा करता जावे तब यह रूपणता लक्षण है बहुरि धनका देना प्रमाण भी है कि जिस प्रकार धर्मशास्त्र विषे क्यारे अथवा जिस करके भाव और दया प्रकट होवे और धर्मशास्त्र विषे जो दशाश का देना अवश्य ही कहा है सो यह सप्तसी जीवोंका अधिकार है काहे से कि यह अल्पबुद्धि मनुष्य इससे अधिक कुछ नहीं देसके ताते विचारवानों के मत विषे यह भी रूपणता है पर भावके निमित्त जो धनका देना कहा है सो इसका भी अधिकार भिन्न भिन्न है जैसे एक वस्तु निर्दोषताको देनी योग्य है और वही वस्तु धनवानों को देनी मली नदी लगाती अथवा अथियों को देनी प्रमाण है और मित्रको देनी निन्द्य है अथवा सम्बन्धियों को देनी अपौरुष्य है और और लोगों को देनी अयोग्य नहीं अथवा कोई पदार्थ किसीको देना विशेष है और पुत्रों को देना निन्द्य है तात्पर्य यह कि यद्यपि धनका सचना भी व्यवहार विषे विशेष पर जब सचने से अधिक प्रयोजन आन प्राप्त होवे तब उस सचनेसे देना विशेष है और जबलगा देनेका अधिक प्रयोजन न होवे तबलगा धनका रखना प्रमाण है और जो रूपण मनुष्य है वह इस मर्यादाविषे स्थित नहीं होसका जैसे कोई किडी के गृह विषे अभ्यागत आवे तब भाव और प्रीतिकरके उसका प्रतिपाल करना धनके सचने से विशेष है पर जब मरने विषयविषे यह अनुमान करलेवे कि भेते तो आगेही दशाशा दिया है और उसके भावसे विमुख रहे सो यह प्रतिबद्ध रूपणता न नीचता है अथवा जब पड़ोसी इसका निर्दोषता है और इसके पास अन्न बहुत होवे सो जब उसे सूबादेसकर कुछ न देवे तब यह भी रूपणता है पर जबलगा यथाशक्ति और दयामात्र संयुक्त देता है और इस पुत्र के पास धन इससे भी अधिक होवे तो भी परलोककी भलाई के निमित्त ऐसे कार्य करने के योग्य है कि दूध और ताल और पुल और ठाकुरदार आदिक जो धर्मके स्थान हैं और जिन करके चिरकालपर्यन्त अर्धी जीवों को सुख प्राप्त होवा है सो तिनके मनाने बिना धनको लगावे पर जब ऐसे कार्य भी न करे तब सप्तसी जीवों के मत विषे रूपण नहीं कहा जाता और विचारवानों के मत विषे यह भी रूपणता है तात्पर्य यह कि जब शास्त्र के अनुसार और भाव के अनुसार देता है तब रूपणता से मुक्त

होता है पर उदार तबही कहा जाता है जब उसका देना बढ़ता जावे सो यह भी धनकी मर्यादके अनुसार भिन्नभिन्न अधिकार होता है पर जिसको देना सुगम होवे सो वह उदार कहता है और जो पुरुष कठिनता करके देवे सो कृपण है अथवा जो मनुष्य धरा और मानके निमित्त दानकरे अथवा प्रति उपकार की इच्छा राखे तो भी उदार नहीं कहिसे कि उदारता निष्काम देने का नाम है पर प्रयोजन से रहित होना इस जीव से कठिन है काहे से कि प्रयोजन बिना देना मंगवत्ही का काम है पर जब स्वर्ग अथवा मनकी कामनाके निमित्त देवे तब सेसारी जीवों के मत विषे वह भी उदार है और संतजनों के मत विषे उदारता यह है कि निष्काम होकर जीव और शरीर सर्वस्व मंगवत् अर्थ अर्प देवे और महाराज की प्रीति विषे ऐसा मग्न होवे कि अपने शरीर और जीवके देने को कुछ चस्तुही नैजनि और अपने आपके देनेही करके खानिन्दवान् होवे ॥ अयं उपाय कृपणता निवारण निरूपण ॥ तति जान तू कि कृपणता का उपाय ब्रूम और करतुति के सम्बन्ध करके होता है सो ब्रूम यह है कि प्रथमही कृपणता के कारण को पहिचाने काहेमे कि जिस रोगका कारण जाना नहीं जाता तब उसका उपाय भी नहीं करसकता सो कृपणताका कारण भोगोंकी प्रीति है सो धनबिना इन्द्रियोंके भोग सिद्ध नहीं होते १ और दूसरा कारण जीनेकी अधिक आशा है २ इस करके कि जब यह मनुष्य ऐसा जाने कि मुझको कुछ दिनमें अथवा स्वासके उपरान्त मरना है तब स्वामोषिकही धनकी प्रीति क्षीण होजावे पर जिसको कुछ संतान होती है तब उसका हृदय मरतेके समय भी नहीं खुलता काहेसे कि मोह करके पुत्रोंका जीनामी अपने जीने की नाई जानता है ताने कृपणताको मोडि दृढ़ होजाती है इसीपर महापुरुषने कहेहै कि यह संतानही कृपणता और मोहका कारण है पर जो पुरुष भोगों के निमित्त धनको प्रियतम राखे अथवा धनकी प्रीतिकरके जिसको अधिक भोगोंकी अभिलाष उपजजावे तब उसको तो अधिक जीनेकी आशाकरके धन और सम्पदाके सचनेकी वासना दृढ़ होजाती है पर एक ऐसे कृपण पुरुष होने हैं कि वह केवल चांदी सोने हीको प्रियतम रखते हैं और जब रोगी होते हैं तब अपने शरीरका उपचार भी नहीं करते और दर्शा भी नहीं देखते और उनके मनमें यही प्रियतमवाहै कि चांदी सोनाही हमारे निकट दयारे और यद्यपि ऐसाभी जानने हैं कि जब हम

गेरगे, तर दंगोरे ही ज्ञेय दान हसमे शत्रुही लोनावेगे, जोही कसप्रतु काके, तर  
 नही; कासके, ही अई पेस ही ज्ञेय, रोगदे की इसको लपपा, कसना, सदा कसने शोका  
 हे पण जव मने काणना को काणको ज्ञानी वत इसप्रकार सप्रकृता, चादिये कि  
 सो गो, ही ही ति मा लपपाय, सप्रस, हे ताते जव अइ अश्रु संतो प्रकृते सो गो, का  
 त्यागु करता हे तव स्वाभाविक ही भतकी भीति अण हो लाती हे, जोर ज्ञेय  
 जीने ही आशा का लपपा अइ हे, कि सदेव मृत्यु को, चेतता, हे, जोर अण  
 समन्वियों ही अश्रु विचार करके हे वे कि मेरी तार्द, तद, भी धनको सचने को  
 मरने से अत्रे तमे तदुरि विधान कही प्रश्नात्ताप, अयुक्त मृत्यु को, प्राप्त ह्ये, जो तद  
 धन सवेदी उनके शत्रु वादले गये वदुरि पुत्रों ही निर्द्धनताके मरकतके जो कस  
 णता ही ती हे सो, तिम, का लपपाय, अइ हे कि सर्व जीवों का उदात्त, जोर, मालन  
 कर्ता, भस्वुदी को ज्ञाने जोर इसप्रकार सगमे कि जिसके आगम पिपे, भगवत  
 ने निर्द्धनता लिली हे वेद-मे ही कृपणता करके किसी प्रकार धन नार, जो वेगा  
 जोर जव मेरी सप्रदा, अभिरुशेप, रहेगी, तो ही ल्यर्षधी नद, हो जावेगी, जो तद  
 इनकी प्रारुत्रिये, भगवत् जे धन सप्रदा, रही हे, तप, मेरी सप्रदा, विना ही, उन  
 को धन प्राप्त होवेगा, जोर तद वार्त्ता ही प्रतिद्ध हे, कि केवे मरुप पिता की सप्रदा  
 विना ही धन नार, दृष्टि आते हे, जोर विवे मरुपों को, पिता का धन भी, अधि  
 प्रोपट्टा, तो ही निर्द्धने हो गये, हे ताते अतप्रकार, विचार करे, कि जो मरे, प्रम  
 भगवत के आज्ञा ही ही हुये तो उनको भगवत की प्रमनना ही बहन, हे, जोर जव  
 भगवत ही प्रज्ञसे, विमुन ह्ये तव धनको, निर्द्धनता ही विशेष, हे, का हे मे, कि  
 निर्द्धनता कतके अतेरु पापों से वेचेंगे, अ, बहुरि जितने, धन कृपणता ही नि  
 मेयता, जोर उदारता ही विशेषता, विपे अत जनों के आगे हे, सो जिनको धारणा  
 विचार, जोर मेसा, ज्ञाने कि कृपण मनुष्य यद्यपि भगवत वार होवे, तो ही निरसं  
 हेद, नरकगामी, होवेगा, तवे जो धन, जोर सप्रदा, सदा राजकी सप्रसजना, जो  
 नार्त्ता का, कारण हे सो, तिम धन करके मरुपों का, काम होवेगा, यद्यपि, काव  
 मनुष्यों ही आस देले, कि कृपण मनुष्य, ही सप्रसिये, केवे, अगमान ही प्राप्त  
 होवे, हे, जोर सप्र जोर, जतक निगदर, काता हे ताते जव म ही, कृपणता, कृपण  
 तद, अत श्रुती, सतने, गों के प्रभाव, को प्राप्त होवेगा, जो अक, काके जो उदात्त  
 कृपणता ही बदाय हो, सदी हे, अ, जव मेने, वे, अ, क, क, काय ना, इने ही

तब करती करके इमप्रकार उपाय होता है कि जिसममय इस मनुष्य के हृदय विषे कुछ दया दान की श्रद्धाफुरे तब उसी समय श्रद्धाको पूर्णकरे और उस सार्थिकीसंकल्पको व्यर्थ न डाले इमीपर एक वार्त्ता है कि एक भत मल त्यागनेके स्थानाविषे गयेथे उमीसमय विषे एक याचकने आकर कहा कि मुझको कुछ देवो तब उन्होंने उमी स्वानसे अपने अगका बल उतारकर अपने मेवरु को डालिया और इमप्रकार कहा कि यह वस्त्र इस याचकको देवो घट्टरि जब उसस्थानसे बाहरनिकसे तब टहलुवेने कहा कि तुमने इतना धैर्य क्यों नहीं किया कि जब बाहर निकसते तब उठायदेते तब उन्होंने कहा कि मैं इम वार्त्तासे डरा था कि अब तो मेरे हृदय विषे देनेका सकल्प फुरा है पर जब और सकल्प उपलकर इम श्रद्धाको गिरायदेवे तब मेरा भ्रकाज होवेगा पर यह वार्त्ता भी निस्तन्देह है कि धनके दिये विना किसीकार कृपणता दूर नहीं होती जैसे प्रियतमके विछुरे विना प्रेमीका मोह नहीं छूटना तैमेही धनकी भीतिको दूर करने का उपाय यही है कि धनका त्यागकरे ताने जब निचारकरके देखिये तब इम धनको समुद्र विषे डालदेना भी कृपणतामे विशेष है और धनका समग्र महानिन्यह पर कृपणताको दूर करनेका एक उत्तम उपाय यह भी है कि अपने मनको योग और मानका लालच देवे और उदारता विषे सावधान होवे अर्त्य यह कि मनकी अभिलाषा करके धनकी कृपणा को घटावे घट्टरि जब धनकी कृपणासे मुक्तहोवे तब यत्र करके मानकी अभिलाषा को भी दूरकरे सो इमका दृष्टान्त यह है कि जैसे प्रथम बालक को माताके दूधमे वर्जित किया चाहते हैं तब उनकी किसी और खानपान का लालच देकर पुत्रकार रवते हैं घट्टरि जब यह दूध उसको विस्मरण होजाता है तब उसको उम खानपानका भी अधिक लालच नहीं रहता तैमेही एक यह भी भला उपाय है कि एक स्वभाव की अविफता कर्मके दृष्टरे स्वभाव को घटारे और पीछे उम स्वभावकी अविफताको भी दूर करदे तैमे किमी के धनमें रुधिर लगाहोवे तब चादिये कि प्रथम उमका गर्भमे जेयनेने घट्टरि जब रुधिरका दाग दूर होजाय तब गुठ जल करके लयीकी वापसख्या को भी दूर करदेवे तैमेही जब मानकी अभिलाषा विषे कन्धायमान न होजावे तब मानकरके कृपणता को दूर करना विशेष है पर जब और भावतरक देगिये तब यह वार्त्ता भी प्रसिद्ध है कि यद्यपि मान विपरी जाग्रत होकर कृपणताको

करें हैं तौगी-रूपणता के मन्त्रन सी गानना अन्धत को मन्त्र है काहेमे कि कृ-  
 णता और गान दोनों यद्यपि गन के स्वभाव हैं पर नौभी इस विषे इतना भेद  
 है कि जैसे एक स्वप्न का वोग होवे औं गुरु-स्वप्न विषे मन्त्र का स्थान गान  
 सो यद्यपि जाग्रत की अपेक्षा क्रक्रेवह हीनो और भिद्यता है पर स्वप्न विषे उक्त  
 गलिन स्थान से बाग विशेष है ताते प्रसिद्ध हुआ कि गानके लानत करके  
 उदारता निन्द्य नहीं इस कृके किमान और दिखलावा भजनविषे निस्तन्दे  
 निषिद्ध कहे है इयवहार विषे नहीं तादृश्य प्रह कि कृष्ण को गानवारी उदा-  
 म्म दोष रत्नना प्रमाण तर्को कोहेसे कि कृष्णता की गलिनता से मानसिद्धि  
 उदारता कर्तनी ही उचम है जाते जिस पुरुष को कृष्णता के पूर्व कर्तव्य की रक्षा  
 होवे तब चाहिये कि जगत्सर्ग उदारताका स्वभाव है, ती दोजाये तब लगत्यन  
 करके भी धनको देवे ताते केते सन्तगर्तने इम प्रकार भी क्रिया है कि जिज्ञा  
 को जय देखतेथे कि एक स्थान विषे ज्ञानक होगया है तब उस स्थानसे और  
 स्थानविषे स्थित करतेथे औं फिर उपा रमानकी साग्री भी अर्थियाको उगाने  
 थे और जय देखने थे कि इस भी निष्ठा की सुखनि किसी नये स्वप्नो आसक  
 हुई है तब बंधुषत्र भी किसी पाचक को दिनाव देतेथे इसीपर एक दाता है कि  
 एक प्रीतिगान गंगापुरुषके मात पाँचरा जता ले गया सो वन्देने पहगतिपा  
 पर जय भजन करलेनगे तब उसी सुतेकी और दृष्टिगई तब ऐसा कर्तनेनगे कि  
 भेरा पुपना जोड़ाही लेसाओ ताते प्रसिद्ध हुआ कि धनके त्याग बिना धनका  
 मोह नहीं दृष्टना सो जवलगा इसी पुरुष का हाथ सुता हुआ नहीं होना तबलेग  
 हृदय भी नहीं सुवता इस करके किनाव युद्ध मनुष्य निर्जन शत्रु है तब उदार  
 और सुखा हृदय रहता है औं जय उगरे पाप कुत्र धन दग्दा होजाता है तब  
 संघने के रस विषे बन्धाग्रान होजाता है और ऐसा कृष्णरोता है कि सन्त ही  
 कामहा और जो पदार्थ हमके प्राप्त नहीं होता तो त्यागवि तदी उससे निर्मोह  
 रहता है इसीपर एक वार्ता है कि एक उपाके जागे किमीपुत्रो रत्नोका जहा  
 हुआ पटोरा भेद मन्त्रया तबस मानि जा सटोरे को देनका एक वृष्टिमान मे  
 पूसा कि यदन्तमेग जेना अन्त्रार्थरूप है तब उक्त वृष्टिमान ने कहा कि यह  
 पटोरा जोके को निन्देनार्थ जानी हने कोनेको कि जब दृष्टतरेगा तब इसके  
 मगान और कटेग यागा न जायेगा सो हमही निन्देनार्थ करके तुम्हो भी

होवेगा और जब वह कठोरा तेरे मापे नया तब तू निर्द्वन्द्वनाई और भोक से मुक्तया सो देव मंत्रों पर वह कठोरा टूट गया और राजा को अधिक शोक प्राप्त हुआ तब वह नलगा कि उसे बुद्धिमानने सत्य कहाया ॥ अथ पूकटकरने मन्त्र धनके ॥ ताने जान तू कि यह धन सर्प की नाई है कि इस विषे विष और अमृत दोनों पाये जाते हैं तैते मेने पीछे भी वर्णन किया है कि मन्त्रके सोसे विना धन रूपी सर्पको हाथे लैगाना प्रमाण नहीं है पर जब कोई ऐसा कह कि धने सन्त जन आगे भी हुये हैं तो जब धनका रखना अयोग्य होता तो वे किस निमित्त रखते सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई घातक किमी सोपरेके हाथ में सर्प को देखे और इस प्रकार कहे कि यह पुरुष सर्प को कोमल जानकर पकड़ना है ताते वह बालक भी मर्पर हाथडाले तब शीघ्रही नष्टहोजावे सो धनरूपी सर्पके मन्त्र पांचहैं एक यह है कि प्रथम धनके कार्यको पहिचाने सो धनकी उत्पत्तिका कारण यह है कि हम करके शरीर के खानपान और वस्त्रा वाय्य सिद्धहोता है और शरीर इन्द्रियो सां स्यानहै और इन्द्रिया बुद्धि की पहल करनेवाली है और बुद्धिका काम यह है कि इन्द्रियो करके भगवत्की कारीगरी को देखकर महागज की सामर्थ्यता को पहिचाने सो भगवत्की पहिचान करके जीवात्मा शुद्ध होता है ताने जिम पुरुष ने इम गेद को नमस्का है वह कार्यमात्रही धनको रखता है और अधिक आसक्त नहीं होता २ बहुते दूसरा मन्त्र यह है कि प्रथम धन की उत्पत्ति चले और पाप से रहित करे और विचार की मर्यादा अनुसार खर्च ३ बहुते तीसरा मन्त्र यह है कि शरीर के कार्य मे अधिक मग्रह न करे और जब कोई अर्था देते तब कृपाणता करके उममे दुःख न राखे अथवा जब अधिक उदारता न करके तपमी मर्यादा के अनुसार दानदेवे ३ बहुते चौथा मन्त्र यह है कि अपने जीविका समग के साथ करे और अधिक गोर्गों के विषे धन को खर्च न करे काहेमे कि मंगल महिन जीविकाकारी निर्वोप व्यवहारमेगी विशेष है ५ बहुते पाचवां मन्त्र यह है कि धनके सत्रने और खर्च करनेविषे मनमा शुद्ध राखे और शुद्ध मनमा यह है कि जय तिमो पदार्थ को अतीत को नव उम करके अचिन्त भजनको दृढ़होने परी माना सो और जब किमी पदार्थ का त्याग करे तब भी मायाकी मालाभीमे निरन्तर होने के निमित्त त्याग वात्सर्व्य यह कि मर्षता अपने चित्तकी चित्तवर्ति रातीके मार्ग विषे नास्त्यान हो माना ॥



पुरुष इम भेत्को समग्रक धन को रखना है तब उमको धन के समग्र करके दोष नहीं होता और धनका विषय उमको सर्श नहीं करना इसीपर अतीसन्ध ने कहा है कि जब कोई पुरुष सर्वपृथी के धनको समग्रकरे और सर्वमनमा उमकी शुद्धदोषे तब निष्कषय निर्दोषही रहता है और वह वैरागीहै ओ जव कोई पुरुष केवल अमग्रही होने पर मनमा उमकी निष्काम न होवे तब वह वैराग्यवान् नहीं कहाजाता ताने चाहिये कि जिज्ञासुका हृदय सर्वथा गगवत्के मजनकी ओर सम्मुख रहे तब उमकी क्रिया सफल होती है और उसका गोजन करना और गल त्यागनाभी पुण्यरूप होता है काहे से कि यह सचही क्रिया शरीरको चाहियेहै और वर्मके मार्ग विषे शरीरका सम्बन्धहै ताने शुद्ध मनसाकरके सर्व कर्मा फलदायकहोते हैं पर बहुत मनुष्य अचेनता करके धनरूपी सर्पा के मर्मा को जान नहीं सके और मनकी शुद्धताकोभी नहीं पहिचानते अथवा जब जाननेभीहै तब कर्तृति विषे हृद नहीं होने ताने उनको यही विशेषहै कि उनकी अपिकृता का त्यागकरे काहे से कि यद्यपि यह पुरुष धनकी अधिकता करके गोगोकी अपिकृता विषे आमक न होवे तौभी संवने और मन्ने की विक्षेपता को पावता है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक भीतिमान् महापुरुषके भिगतपथे और उनके पास धाभी बहुत था सो एकवार उनके वनिन व्योपामकी सप्रदाय मा देगसे लेकर लोग आये और उंटोंके शब्दका नगर भं बड़ागोर हुआ तबवह शोर सुनकर आयशा महापुरुषकी स्त्रीने कहा कि महापुरुषने सत्य कहाथा सो यही वार्त्ता किसी ने उम भीतिमान् को सुनाई तब वह अतीन हाकर आयनाके निकट आये और पूछनेलगे कि महापुरुषने क्या कहाथा तब आयशा ने कहा कि एकवार महापुरुष ने इसप्रकार कहाथा कि जब हनने सूख दृष्टिकरके स्थान विषे स्वर्गको देखा तब केने वैराग्यवान् वडां दृष्टिआये पर हगने मार्गविषे धनवान् जाता हुआ कोई नहीं देखा पर सब वैराग्यवानों से पीछे एक अमुक भीतिमान् चला जातासो चनेने को मर्ष न होनाथाने यत्र करके गिरता गिरता स्वर्ग विषे जाय प्राप्तहुआ सो जब यह वार्त्ता उन भीतिमान् ने सुनी तब प्रसन्न होकर मध उं और जा कुच उनके ऊपर बन्धुपी सो अर्धियाको उदायती और जेने दाम संग थे सो सब गुरु क्यदिप और गेमा रहनेलगे कि तौभी सिंगी प्रकार वैराग्यवाना ने माय जाय पहुँच नो मनाहै इसीपर एक और भी

नानुमाने कहते कि जब मैं तीनसहस्र राया-पापसे रहित नित्यप्रति-उत्पन्नकरू-  
 और उसको धर्महीके अर्थ सर्व-करू और राजन स्वरण विषे भी साधन रहूँ  
 तोभी मैं धनकी विशेषता को नहीं चाहता तब किमी,ने पूछा कि तुम ऐसे नि-  
 दीप धनको क्यों नहीं चाहते तब,जिन्होंने कहा कि यद्यपि मैं अपनी बुद्धि के  
 अनुसार ऐसी शुद्धता करूँ तोभी मुझसे परलोक विषे पूछेंगे कि तेने यह धन  
 क्योंकर उत्पन्न किया था और किसप्रकार लगाया था, सो मैं अपने विषे,इतने  
 प्रश्नोंके उत्तरोंकी मागर्थ नहीं दूँगीपर महापुरुषने कहाहै कि निनपुरुषों  
 ने पापसहित धन उपजाकरके पापों विषे सर्वा हैसो के भी नरकगामी,होवेंगे,  
 और जिन्होंने पापसहित धन उत्पन्न करके भोगों विषे लगायाहै ते भी नरक को  
 प्राप्त होवेंगे और जिन्होंने पापकृत धन दान किया होवेगा ते भी नरक ते, त  
 छेंगे वृद्धि जिमने पाप से रहित धन उपजाया होवेगा और धर्मही के अर्थ  
 लगाया होवेगा तब उसको परलोक विषे स्थित,कारके विचार करेंगे,कि गत, भ-  
 जनसे विगत रहाहोने अथवा अधिक भोगोंविषे विचग होवे अथवा दानकरके  
 अभिमानी हुआ होने अथवा किसी मन्वन्त्री और निर्द्धन पड़ोसीकी सुरति न  
 लीहोवे अथवा विवि सयुक्त महाराज के उपकार का वन्यवादन किया होवे इभी  
 प्रकार धनवान् से एक एक वार्त्ता पूछेंगे सो जब कुछ ज्ञान हुआ होवेगी तब  
 निस्सन्देह ताडना होवेगी वदुरि महापुरुषने कहाहै कि मैंने इमी निमित्त निर्द्ध-  
 नताईको अङ्गीकार कियाहै कि और लोगभी निर्द्धनताई को भला जानें वदुरि  
 एस्वार महापुरुष अपनी पुत्री के द्वारपर एक भीनिमान के साथ जाय,खड़ेदृश्ये  
 और पूछनेलगे कि इग भीतर आते तब पुत्रीने कहा,वदुर अन्धा पर मेरे अ-  
 ड्डपर बस थोड़ाहै तब महापुरुषने, अपना बस उतारकर भीतर डालदिया वदुरि  
 जब भीतंगये तब कहनेलगे कि हे पुत्री ! तेरी क्या भ्रस्साहै तब,पुत्रीने कहा  
 कि मे रोग और मृत करके अति आतुरहूँ और आहारमात्र भी हाथ छूड नहीं  
 लगता ताने अब मेरे विषे मृत,सहनेकी मागर्थ नहीं तब महापुरुषने कहा कि  
 हे पुत्री ! तू अर्थ न कर मुझकी भी तीनदिन भूखेही व्यतीत हूये हैं सो य-  
 द्यपि मैं कुत्र महाराज से मागू तो,निम्पन्देह मुझकी प्राप्तहोवे पर मैंने मायारे  
 सुत्रों से शिक्र होकर परनो रही न मुनेंको अङ्गीकार किया है ताने मैं किसी  
 पदार्थकी याचना नहीं करता वदुरि पुत्री के जीव पर दापरसस्य कहनेलगे कि

तू इमही बेराग्ये करके मर्षि सिपों में उच्चम होवगी और परममुवहोपिबिगी ताने  
 धैर्य धरकर भगवत् का धन्यवाद कर डपीरर एरु और वार्त्ता हे कि ईसा मश-  
 त्माके माप एरु पुरुष मार्गविषे भगी हुआया और नान रोटी उन के पासपी सो  
 जव लोत्रेहूये नदीके तीरपर प्राप्त हूये तब दोनों पुरुषों ने दा रोटी भोजन करकी  
 बहुरि जव ईसाजी नदी ही ओर भये तब हूसेरे पुठवने तीसरी रोटीभी खाकी सो  
 ईसाजी ने आफर पूछा कि तीसरी रोटी किमने ली हे तब उमने कइ कि मैंने  
 नदी जानना बहुकि जव आगे चने तब एरु मृग गिला सो उसको मारकर दोनों  
 ने भोजन किया और फिर भगवत् का नामलेकर ईसाजी ने उसको मजीबक  
 दिया और संगी से कहनेलगे कि जिस महाराजकी तने इतनी सामर्थ्य देवीहे  
 सो निमकी दुहाईकरके कहा कि तीसरी रोटी कहा हे बहुरि उंसने कहा कि मुफ  
 फो कुछ खबर नहीं फिर वहां से आगे चने तब आगे एक नदी आई सो उस  
 पुरुषका हाथ पकड़कर मूखेही पार उतरागये बहुरि ईसाजीने कहा कि जिस म  
 हाराजकी सामर्थ्य करके तू सवाही उतर आयाहे सो तिसको अन्नयापी जान  
 कर कइ कि तीसरी रोटी कहा हे तब उने पुठामे कहा कि मैं तो नहीं जानती  
 बहुरि जव आगे भये तब वहां बहूतमा भरेत इकट्टा किया और भगवत् का नाम  
 लेकर उसको स्पर्ण करादिया तब उम स्वर्णके तीग भाग करके ईसाजी ने इन  
 प्रकार कहा कि एकभाग मेरा और एकभाग तेरा और एकभाग उमरा भिषने  
 तीसरी रोटी खाई हे तब वहे पुरुष लोभ करके कहनेलगा कि वह रोटी तो मैंने ही  
 खाईयी तब ईसाजीने कहा कि गोनेके सीनादेर तूहीले डगा कइतव चतेगये  
 और वह पुरुष वहां ही बैठा रहो बहुरि दो पुरुष जो वहां आग प्राप्त हूये और वह  
 मनमा करनेलगे कि हम पुरुषको मारकर मर मोना हमही खजाये तब आधि  
 आधा धाँसले सो यही वार्त्ता मानकर एरु पुरुष जग विषे गया कि मैं तुमको  
 निमित्त भोजन लेआऊँ बहुरि उमने विच विषे पूंग कि मैं उस हे सोने के दा  
 किम निमित्त हेनाए मागे रोटीयो के विषे विर गिला लाया और वह दोना पू  
 रण जो सोने के पेटपर पेटेहे धे जिन्हेने यः मनमा धारी भी थि जव उर पुरु  
 भोजननेकर आर नव उम हो गाउने और मध धन हमही गोटीओ बहुरि जव  
 वह पुरुष आया तब उन्हेने शीघ्र ही गाउडा ग और भिजे वह गिन कर भोजन  
 करनेलगे तब विपके प्रवेश करके वही मृग हूये जो सोने के दो तीनों पदाही

पढ़े रहे बहुत, जब ईसाजी फिर उसीमारा आये तो देवा कि मोने के देर योंही पढ़े द्युये हैं और तीन पुरुष मृत्यु को प्राप्त द्युये हैं तब अपने और भिपतों में कहा कि यह माया ऐसी ही, बल रूप है ताते भयमयुक्त इमका त्याग करे तात्पर्य यह कि यद्यपि पुरुष बुद्धि और बल समुक्त देवे तोंगी, अधिक बनका अगोचर ने करे तो भला है काहेसे कि बहुतसे सर्प पतङ्गने घाले पुरुष मर्पही के डमने करके मृतक होते हैं, जिसके ऊपर भगवत्, अपनी सहायता करे और उसकी सने विघ्नोसे बचाय लेवे तब उसकी वार्त्ता बनसे अगोचर है ॥

**साननासर्ग ॥**

॥ ताते जानू कि मान और बढ़ाई और अपनी स्तुतिकी प्रीतिकेके बहुत से लोगोंकी बुद्धिक्र नाश हुआ है और मानही की प्रीति करके वैरभाव और और अनेक पापों विषे आमकू होते हैं काहेसे कि जन मानकी अधिक प्रीति बढ़ती है तब धर्मके मार्ग में भ्रष्ट होजाता है और उस पुरुषका हृदय मूठ और कपट विषे यही बध्यमान होता है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि धन और मानकी प्रीति कपटको इस प्रकार बढ़ाती है कि जेने स्वनी को जन्म शीघ्र ही बुद्धि करलेता है इसीपर अलीसन्तने भी कहा है कि सर्वमसार को दो अवगुणों ने नाश किया है सो एक वामनाके अनुसार शीर्षो विषे विचरना और दूसरे मान की प्रीति विषे आसक्त होना ताते इन दो विघ्नोसे कोई विरलाही ब्रह्मा है जो मान और स्तुतिकी चाह न करे और मायाके भोगों से चिरकरहे इसीपर महाराज ने भी कहा है कि परतोक की गलाई उमदी को प्राप्त होती है जिसको मान और बढ़ाई की अभिजाप कुछ न होये और महापुरुष ने कहा है कि जिन पुरुषोंकी अवस्था बाहर से कुचीन भामनी है और लोग उनको यावरा जानकर उनका धन नहीं सुनते और धनवान् भी उनका आदर नहीं करते पर हृदय उनका भगवत्के प्रेम करके प्रेमा उज्ज्वल है कि उन ही द्वारा करके सब लोगों को श्रुतना प्राप्त होती है सो परासुव के वही अधिकारी है और योंही कहा है कि इस ससार विषे एक पेम पुरुष होने है कि जब निर्मापे कुछ पापों तब कोई पुरुष उनको एक ऐसा भी नहीं बना पर जब महाराज ने ये कुछको चाकरे तो भी उनकी सुगमही प्राप्त होता है इसीपर उपरनामी सन्तने कहा है कि गेने यह प्रीतिगा

को, एतान् चोः विप्रे रोने देवा नप र्नेने उसमे मूझा कि तू फ्यों गेवादे तव उपने कडा कि मेन महापुरुष के मुखसे इम प्रकार सुनाई कि थोड़ा कंबु भी मर्न बुझा है और भगवत् पेशे वैरागियों को प्रियनग रसता है जो आपकी प्य पाने ही नहीं और कोई उनको पहिचान भी नहीं करता पर हरय उमका महावेद्वन के जो सणय रही अरे मे मुक्त हुये है इसीपर इत्रादीम भद्रेदग सन्त ने कहा है कि जिमको इन्द्रियोदिक भोग और अपनी म्नुति प्रिय लगती है सो ऐसा मनुष्य धर्म क मार्ग विषे मया नहीं कहा जाता है इसीपर एक और संनने किशोरे कि सधे पुरुष का चिह्न यह है कि आपको किसी प्रकार लावावे नहीं डगी पर इस नयमरी सतने कडा है कि जिम पुरुषकी बुद्धि छिद नही होती और लोग उमका सन्मान करते हैं तव उमका हृदय स्थिर नहीं रहता बहुरि, अकवाग, अयुष्याभी सत मार्ग विषे चने जाते थे सो बहुरि पुरुष उनके लगचले तव फडनखे कि भगवत् इस वाचा को भली प्रकार जानता है कि मे भपते रहदा, विषे जगत के आदर को भला नहीं जानता और इम आदर को देखकर भगवत् के भय फाके सरुच जाता है इसीपर मिकयों गौरी सतने कहा है कि भतजनो ने धारुत वः खानेवाले को वस्त्र भी तिच रुटा है अर्थ यह कि जिम चम नुचीत अथवा पुाने कृके यह मनुष्य कुछ विशेष भाषे सो ऐसा चम रसता अथवा है और जिमको को इम प्रकार विचारना प्रमाण है कि कोई इमकी वाचा त ज्ञानावे इसीपर पशु रूपाकी सतने कहा है कि मानधारी पुरुष लोक और परलोक विषे अट, हाताता है ॥ अथ प्रकृकरता रूप मानको ॥ ताते, जान तू कि अमे धनधान्य का अर्थ यह है कि सभ्यदा नीर धनकी सामग्री उमके पास होनी है सो गेही ऐह स्थितन का अर्थ यह है कि लोगों कचित उमके बगीकार दावे है और उसकी शक्ति मर्न रहगों विषे प्रवेश फगी है सो जिमका हृदय इस क अर्थिन हुना सधे उत फा शरीर और वा भी इनही के ब विचार होतु है बहुरि अर हृदय विमदी क अधीन होता है कि जिमकी मनाई और पूर्णवा पर इनकी प्रतीति होनी है सो गनाई नीर पूर्णता विद्या और मोक्षागत रूप होना है अथादिपुत्र, पेशरय कृके भी इस निमित्त गदाई होनी है कि सचलोग, मान और पेशरय सो विशेष जानते है वेदार्थ यह कि जधे यही मनुष्य रहनी है सो इस अर्थकी म्नुत को निमित्त म्नुत नव म्नागानि फटी इमका हृदय इसक अर्थ है

ताते चित्तकी प्रसन्नतासहित उसकी आज्ञाको मानता है और रसना करके उसकी महिमा करता है और शरीर करके उसकी सेवा विषे सावधान होता है जैसे दहलुवा सर्वप्रकार अपने स्वामी के अधीन होता है तैसे यह भी उसके अधीन होजाता है पर जब विचारकरके देखिये तो और दहलुवे भय करके स्वामी की दहल करते हैं और गुणकी प्रतीतिवाला प्रीतिसंयुक्त उसके अधीन होता है ताते मानका अर्थ यह है कि लोगोंके चित्त हमके वशीकार होवें पर इस मनुष्यको तीनकारणों करके धनकी अभिलाष से मानकी प्रीति अधिक होती है सो प्रथम कारण यह है कि धन भी मनोरथों की पूर्णताई के निमित्त प्रिय लगना है और मानरूपी पदार्थ ऐसा है कि मानधारी मनुष्यों को स्वाभाविकही धन प्राप्त होता है और जब कोई नीच पुरुष धन करके मानको प्राप्त किया चाहे तब नहीं होता १ और दूसरा कारण यह है कि धनको चोर और राजदण्डआदि अनेक भय होते हैं और गानी को ऐमे विन्न नष्ट नहीं करसके २ वदुरि तीमरा कारण यह है कि धनकी उत्पत्ति वदे यत्नों करके होती है और मान यत्र विनाही बढ़ता जाता है काहे से कि जब एक पुरुष की प्रतीति दृढ़हुई होवे तब उसके गुण से महिमा सुनकर देश देशांतरों विषे यत्र और मान पसर जाता है अधिक और लोगों के चित्त वर्गीकार होजाते है ताते धन और मान एक तो इस निमित्त जीवको प्रिय लगते हैं कि इन करके सर्व मनोरथोंकी पूर्णता होती है और दुमरे मनुष्योंका यह भी स्वभाव है कि यद्यपि ऐसा जाने कि मैं अमृत देगवे पशु-चूगाही नहीं तो भी देगान्तरपर्यन्त अपना मान चाहता है सो इसका भेद यह है कि इस मनुष्यका हृदय देवतोंकी नाई उत्तम जानवे और ईश्वरका प्रति-विम्ब है जैसे महापुरुषने कहा है कि ये सर्वजीव महाराज की मत्तारूप हैं ताते प्रसिद्ध हुआ कि सर्व प्रकार इस जीवका सम्बन्ध भगवत्की से सापेक्ष ही कारणमे यह भी अपनी घटाई को चाहता है सो निम मनुष्य विषे कुछ सामर्थ्यना होती है तब स्वाभाविकही उसके हृदय विषे अपने ऐश्वर्यकी अभिलाष आन फुलती है जैसे फिर औनतामी एक राजा भगवत्किमुच ते कथा कि मैं नर जगत् की ईश्वर हूँ सो यह स्वभाव सर्व मनुष्योंका प्रयत्न है और ईश्वरका जर्भ यह है कि मेरे समान और कोई नहीं काहे से कि निमहा कोई विगेभी जयवा समान होता है तब उसका ऐश्वर्य स्थण्डिन हो जाना है जैसे मर्य की पूर्णताई

को प्रकृत और विपरीते देखा तब मैंने उसमें पूँजा कि तू क्यों रोता है तब मैंने कहा कि मैंने महापुरुष के मुखसे इस प्रकार सुना है कि थोड़ा कपट भी मनपुत्रता है और भगवत् ऐसे धैर्यागियों को प्रियतम रखता है जो आपकी लंबाई नहीं और कोई उनको पहिंचति भी नहीं मरता पर हृदय उमक्यामहा उज्ज्वल है और स्यामरुही अंगों में मुक्त हृदय है इसी पर इन्द्रादीम अदहर्मिन्ने न कदा है कि जिसको इन्द्रियादिक भोग और अपनी स्तुति प्रिय लगती है सो ऐसा गनुष्य वर्म के मार्ग विपरीत नहीं कहा जाता है इसी पर एक और मन्तेन कहा है कि सब पुरुष का चिह्न यह है कि आपको किसी प्रकार लखावे नहीं इसी पर हसनवमरी सतने कहा है कि जिस पुरुषकी बुद्धि अद्वैत नहीं होती और लोग उसका सम्मान करते हैं तब उसका हृदय स्थिर नहीं रहता बहुरि एकराजः स्यात्सामी संत मार्ग विपरीत ज्ञाते ये सो बहुत पुरुष उनके लगचले तत्रा कहुने लगे कि भगवत् इस आर्त्ता को भली प्रकार जानना है कि मैं अपने हृदय विपरीत गत के आदरको मला नहीं जानता और इस आदर को देखकर भगवत् के भयं केंके सकुच जाता हू इसी पर सिफ्यों सौरी सतने कहा है कि सतननों ने आपको खानेवाले को बलभी नियत कहा है अर्थ यह कि जिस बल त्वीत असती पुसने करके यह मनुष्य कुछ विरोध भासे सो ऐसा बल रखना अयोग्य है और प्रिजापु को इस प्रकार विचारना प्रमाण है कि कोई इसकी आर्त्ता तत्र ज्ञावे इसी पर प्रशरहाफी सतने कहा है कि मतिधारी पुरुष लोक और परलोक विपरीत हो जात है ॥ अथ प्रकृतकरना रूप मानको ॥ ताते जानात कि अमे धननाचक अर्थ यह है कि सस्पदा और घनकी भाषणी उमके पास होती है तैनेही प्रेश्वर्यवान का अर्थ यह है कि लोगों के चित्त उमके बगीकार होते हैं और उसकी शक्ति सर्व हृदयों विपरीत प्रवेश करती है सो जिनका हृदय इसके अधीन हुआ तब उनका शरीर और घन भी इन्हीं के बगीकार होता है बहुरि त्वद हृदय निमदी के अधीन होता है कि जिनकी मनोई और पूर्णता पर हमकी प्रतीति सौरी है सो भलाई और पूर्णता विद्या और मनोस्वभाव करके होती है अर्थ वास्य वा प्रेश्वर्य करके भी इसानिचित बड़ाई होती है कि सबलोग मान और प्रेश्वर्यको विशेष जानते हैं तात्पर्य यह कि जब यही गनुष्य प्रिजापुके मुद्रम अस्वोत्पन्न गुण को निरूपण देतव स्वाभाविक ही इसका हृदय उमके अधीन हो जाता है

ताते चित्तकी प्रसन्नतासाहित उसकी आज्ञाको मानताहै और सरसना करके उसकी महिमा करताहै और शरीर करके उसकी सेवा विषे सावधान होता है जैसे दहलुवा सर्वप्रकार अपने स्वामी के अधीन होताहै तैसे यह भी उसके अधीन होजाता है पर जब विचारकरके देखिये तो और दहलुवे भय करके स्वामी की टहल करते हैं और गुणकी प्रतीतिवाला प्रीतिसंयुक्त उसके अधीन होता है ताते मानका अर्थ यह है कि लोगोंके चित्त इसके वशीकार होवें पर इस मनुष्य को तीनकारणों करके धनकी अभिलाष से मानकी प्रीति अधिक होती है सो प्रथम कारण यह है कि धन भी मनोरथों की पूर्णताई के निमित्त प्रिय लगताहै और मानरूपी पदार्थ ऐसाहै कि मानवारी मनुष्यों को स्वाभाविकही धन प्राप्त होता है और जब कोई नीच पुरुष धन करके मानको प्राप्तकिया चाहे तब नहीं होता । और दूसरा कारण यह है कि धनको चोर और राजदण्डआदि अनेक भय होते हैं और मानी को ऐसे विघ्न नष्ट नहीं करसके २ वृत्ति तीसरा कारण यहहै कि धनकी उत्पत्ति बड़े बड़ों करके होती है और मान यत्न बिनाही बढ़ता जाता है फाहे से कि जब एक पुरुष की प्रतीति दृढ़दृई होवे तब उसके गुण से महिमा सुनकर देश देशांतरों विषे यण और मान पसर जाताहै अधिक और लोगों के चित्त वशीकार होजाते हैं ताते धन और मान एक तो इस निमित्त जीवको प्रिय लगते हैं कि इन करके सर्व मनोरथों की पूर्णता होती है और दूसरे मनुष्यों का यह भी स्वभाव है कि यद्यपि ऐसा जाने कि मैं अमृत देणमें पहुँचगाही नहीं तो भी देशान्तरपर्यन्त अपना मान चाहता है सो इसका भेद यहहै कि इस मनुष्यका हृदय देवतोंकी नाई उत्तम जानदे और ईश्वर का अनि-विष्य है जैसे महापुरुषने कहा है कि ये सर्व्वजीव महागज की मत्तारूप है ताते प्रसिद्ध हुआ कि सर्व्व प्रकार इस जीवका सम्बन्ध भगवत्की वे माने इसी कारणसे यह भी अपनी बड़ाई का चाहताहै सो निम मनुष्य विषे रुद्र सामर्थ्यता होती है तब स्वाभाविकही उसके हृदय विषे अपने ऐश्वर्यकी अभिलाष आन फुलती है जैसे फिर ओननामी एक राजा भगवद्विमुख ने कथा कि मैं सर्व्व जगत् का ईश्वर हूँ सो यह स्वभाव सर्व्व मनुष्योंपर प्रचलदे और ईश्वर का अर्थ यह है कि मेरे समान योग कोई नहीं फाहे से कि जिसका कोई विरोधी अपना समान होना है तब उमका ऐश्वर्य्य सुगिहन हो जाता है जैसे सूर्य की पूर्णताई



इसकारण करके प्रसिद्ध है कि उसकी जाई और कोई नहीं और सबही प्रकीर्ण  
उमके आश्रित है तैयैही सर्प अङ्गों करके तूष्ण एका भागवतही है और सभी विषे  
उसही की सत्ता भरपूर है और वह सर्वदा सत्यस्वरूप है ताते उसकी सत्ताजिना  
कोई प्रदार्थ सत्य नहीं मासता इसीकारणसिं कदाहेनके सर्व पदार्थ उसहीका प्र  
तिविम्बे है और उसहीके आश्रितहै जैसे घृष मूर्खके आश्रित होती है इस करके  
प्रसिद्ध हुआ कि सबका ईश्वर एक महाराजहै जो इस मनुष्यका भी मही है  
भावहै कि सर्वथा अपने ऐश्वर्य और पूर्णताई की चाहनाहै और सबही ईश्वर  
करताहै कि सब कोई मेरे अधीन होवे पर अविद्या और शरीर के समन्वयके  
ऐसी सामर्थ्यको प्राप्त नहीं होसका चेतन्यताके अंशके सेयोग करके इस विषे  
भी ईश्वरका स्वभाव फुलता है पर तो भी मलिन अवस्था और अविचारों करके  
अत्यन्त पराधीन होरहाहै ताते सर्व प्रदायों को अपने अधीन करानहीं सका  
और जीवकी पराधीनता इस प्रकारहै कि एक मृष्टि तो इसकी बुद्धि और बलसे  
अगोचर है जैसे आकाशकी पुरियां देव तारामंडल और भूत भेदादि की जीव  
और पाताल विषे जो मृष्टिहै बहुरि पर्वतों और समुद्रों विषे जो ज्ञानापूर्वकारकी  
रचनाहै सो महाराजहीने रची है सो इनपर मनुष्यकी सामर्थ्यता किसी प्रकार  
नहीं पहुँचती पर यद्यपि यह मनुष्य इस सामर्थ्यता से हीनहै तो भी अपने स्व  
भाव करके यह यत्न करता है कि मैं इन मृष्टियों के अंदरको पहिंचानूँ जैसे कोई  
शतरजका खेल न जाने तो भी इसप्रकार चाहता है कि मैं शतरजकी गोश्रीकी  
तो पहिंचानूँ और जीत हारका ज्ञाता होजाऊ सो यह जाननेकी अभिलाषा भी  
पुलता और ऐश्वर्यका अगहै बहुरि दुसरी मृष्टि ऐसी है कि उसपर इस मनुष्य  
की बल वर्तमान होता है जैसे वनस्पति और पशुआदिक जो जो धरती पर  
रचनाहै सो तिनको अपने वशीकार करनेता है और सर्व पदार्थों से उत्तम जो  
मनुष्यों के हृदयहै सो तिनको भी अपने अधीन किया चाहताहै और अपने  
सामर्थ्यताके वृद्ध होनेको प्रियतम रखताहै सो मानका अर्थ यही है कि यह मनुष्य  
परमेश्वरका अंशहै ताते यह भी अपना ऐश्वर्य चाहताहै पर इसविषे अविद्या  
यहहै कि वनकके अपनी अमर्षना जाननाहै नाने धन और मानको प्रियतम  
रखता है पर जब कोई इसप्रकार कहे कि जब मान और ऐश्वर्य की अभिलाषा  
का स्वभाव इसकरके फुलताहै कि यह जीव महाराज का अंशहै और परमेश्वर

के साथ ईश्वर का सम्बन्ध है तब इस करके प्रसिद्ध हुआ कि 'मान और बढ़ाई की चाह करनी भी अयोग्य नहीं काहेसे कि ईश्वरकी पूर्णताई विद्या और समर्थताई किस्केहोतीहै सो जेमे विद्याको ज्ञाना होमा विणेपहै तैसेही धन और मान जो समर्थताईकी कारणहै सो इनकी अभिलाष करनी भी विशेषहई तब इसका उत्तर यह है कि यद्यपि ब्रह्म और समर्थता इस मनुष्यकी पूर्णताई है और यही गुण महाराजकेभी हैं पर तौ भी इस मनुष्यको भगवत्ने उत्तम ब्रह्मकी ओर चलनेकी मार्ग दिया है और ऐश्वर्यकी ओर मार्ग नहीं दिया काहेमे कि जिन समर्थता करके भगवत् सर्व ब्रह्माण्डों को उत्पन्न और स्थित करताहै सो जिन समर्थताको यह जीव अपने यत्न करके पाय नहीं सका और ब्रह्मरूपी पदार्थ पेटाहै कि उसकी वृद्धि करके यथार्थ ज्ञानको पहुँचाताहै पर धन और मान की जो झुगा चलहै सो इसकी वृद्धिके साथ समर्थताईकी पूर्णताको नहीं पाता और यद्यपि धन और मानकी शक्ति करके आपको यह पुरा चलान् जानता है तौ भी यहा स्थूलचला स्थिर नहीं रहना काहेमे कि धन और मानका सम्बन्ध इन्द्रियादिक प्रदोषोंके साथहोताहै ताने मृत्युके समय इममे दूर होनाते हैं और जो पदार्थ मृत्युके समय दूरहोवे सो अस्तिमको सत्तास्वरूप नहीं कहने ताते उमकी प्राप्ति भिषेत्कीपता समयव्यतीत करना सर्वथाहै पर वह वच जो इसका सर्वदा प्रगी रहताहै सो यहैहै कि जिसी पदार्थकरके ब्रह्मकी प्राप्तिहोवे काहेमे कि ब्रह्मका सम्बन्ध केवल हृदयहीके साथहै और हृदय सत्यस्वरूप है ताने ब्रह्मचान् पुरुषा इन्द्रियादिक दिग्को त्याग जावाहै तब ब्रह्मका प्रकाश मदेव उमके साथ रहताहै और उमही प्रकाशकरके महाराजके दर्शनको देखताहै और आनन्दको प्रायताहै सो वह आनन्द केमाहै कि उमके निकट स्वर्गादिक सुखभी सुच्छ भासतिहै इसी कारण से कहाहै कि ब्रह्मका सम्बन्ध महाराजकी के स्वरूप और उमके गुणके साथहोताहै ताते पूर्ण ब्रह्मका परिणाम फदाचित् नहीं होता तात्पर्य यह कि नाशयत्न पदार्थका भाव कदाचित् नहीं होता और जो सत्यस्वरूप है सो निश्चय अमान नहीं होता पर यह विद्या कि जिनका सम्बन्ध म्थन पदार्थोंके साथहै सो निश्चय मोलही फुटनहीं जेमे चारुण्य ज्ञान ज्योतिपादि विद्या हैं सो पह नपही स्थूल हैं और व्याकरण आदिक की विनेपना भी इस करके होनी है कि उमको पद करनवतनों के धरनों की विनेपनाहै और पयनों का वेत्ता

होकर। भगवत्के स्वरूपको पहिंचाने और भगवत् मार्ग विषे जो कठिन प्राप्ति हैं सो तित्तको उल्लघन करनेके यत्नको समझे तात्पर्य यह कि जिस प्रदार्थ का परिणाम और नाशताहोवे सो तिसकी वृक्षभी नाशवत् होती है और अविनाशी वृक्ष भगवत्की पहिंचान है सो परिणाम और नाशतासे रहित है पर जिस पुरुषको जितनी वृक्ष प्राप्त होती है सो वह तितनाही भगवत्के निकट पहुँचता है तति यह वृक्ष भी यथार्थ रूप है और यथार्थ सामर्थ्य यह है कि जिसके वृक्षके भोगोंके धनसे सुक्रीहोवे, कोहसे कि जिस पुरुषका हृदय भोग वासना विषे बंधवाँ है वह वासनाही का दास है और वासनाही की प्रवर्तता इसकी हीनता है और वासनासे मुक्तहोना इस जीवकी पूर्णताई है और सम्पूर्णताई करके यह जीव देवताओंके निर्मल स्त्रभावको पहुँचता है और परिणामसे रहित होता है तति इस जीवकी पूर्णताई यथार्थ ज्ञान और भोगोंसे विरक्त होती है सो अविनाशी रूप है और धनवानकी पूर्णताई नाशवन्त है सो प्रसिद्ध हुआ कि सबही मनुष्य अपनी, पूर्णताईको जानतेही नहीं और अपनी हीनताको पूर्णता जानकर पड़े दुंदुने हैं और सर्वदा दुःखी रहते हैं और मूर्खता करके स्थूल पदार्थों की ओर सम्मुख हुये हैं और वास्तवमें जो इनकी पूर्णताई है सो तिससे सर्वदा विमुक्त हैं इसी कारणसे अपनी हानिकी ओर चलेजाते हैं पर ऐसे जान त् कि यह मान भी धनकी नाई सर्वदा निंद्य नहीं अर्थ यह कि जैसे जीविकामात्र धनका समूह भी प्रमाण है तैसेही कार्यमात्र मानभी लाभदायक होता है और जब धन और मानकी अधिकता विषे इस मनुष्यका हृदय व्यासक्त होवे तब निस्सन्देह परलोकके मार्ग मे दुःख रहजाता है सो मानका कार्म्य यह है कि मनुष्यको सेवक और मित्र सहायक और राजा रक्षा करनेवाला अवरुधही चाहिये सो यह सब तवही सिद्ध होते हैं जब उनके हृदय विषे इसकी कुछ मानता होवे और इसको भला जानें, ऐसेही जब पदानेवाले के हृदयमें विद्यार्थीका मान कुछ न होवे तब उसको पढ़ावेही नहीं और जब विद्यार्थी के हृदय में पदानेवालेका मान कुछ न होवे तब उससे विद्या पढ़ न सके तति प्रसिद्ध हुआ कि कार्यमात्र मानका समूह भी अयोग्य नहीं पर इस मानकी प्राप्ति भी चार प्रकार करके होती है सो दो प्रकार निंद्य हैं और दो प्रकार प्रमाण हैं पर वह दो प्रकार निंद्य यह हैं कि एक तो अपने हृदयके भजनका दिखलाना करके मानको दूटना और आपकी

भजनवान् दिखाना सो यह केवल दम्भ है काहेसे कि भजन भगवत् का नि-  
 प्कामा चाहिये सो जवा भजन के सम्बन्ध करके मानकी प्राप्ति चाहे तब अयोग्य  
 है १। और दूसरा प्रकार यह है कि जिस विद्याको यह पुरुष जानता न होवे और  
 मान के निमित्त आपको उसका वेत्ता होय दिखावे तब यह भी अयोग्य है जैसे  
 विदेश विप्र जापकर कहे कि मैं ब्राह्मण हू अथवा उत्तम जाति हू अथवा अमुक  
 व्यवहार की विद्या जानता हू पर जब वास्तव में न होवे और मान के निमित्त  
 झूठ कहदेवे तब यह ऐसे होता है कि जैसे कोई पाप और छल के साथ धनकी  
 उत्पत्तिके प बहुरि दो प्रकार जो मानके निमित्त प्रमाण कहेथे सो यह है कि  
 जिस क्रियाविषे छल भी न होवे और भजन का दिखलावा भी न होवे तब उस  
 क्रियाको प्रकट दिखावे और व्यवहार के कार्य विषे अपने मान को वृद्ध कर  
 लेवे तब यह बार्त्ता अयोग्य नहीं १ बहुरि दूसरा प्रकार यह है कि अपने पापको  
 हुंकारके अपना मान राखे और यह मनसा होवे कि जब मेरा अवगुण प्रसिद्ध  
 होवेगा तब लोग मेरी निन्दा करेंगे तब मैं डीठ होजाऊगा सो इसप्रकार अपना  
 मान रखना प्रमाण है पर इस निमित्त पापको न दुरावे कि मुझको लोग साधु  
 सन्त जानें २ ॥ अथ प्रकट करना उपाय मानकी प्रीतिका ॥ ताते जान तू कि  
 जब मानकी प्रीति अधिक बढ़ती है तब यह भी हृदय विषे दीर्घरोग उपजता है  
 बहुरि इस रोगके निवृत्तका उपाय क्रिया चाहिये काहेसे कि जब प्रथमही इसका  
 उपाय न करिये तब कपट दम्भ झूठ पाखंड वैरभाव ईर्ष्या इत्यादिक और भी अ-  
 नैक पाप उपजते हैं ताते चाहिये कि धन और मानका इतनाही सग्रह करे जिम  
 करके धर्मके मार्गका निर्वाह होवे और अधिक आसक्त न होवे तब ऐसा बुद्धि-  
 मान् पुरुष योगी नहीं होता काहेसे कि वह धन और मानको प्रियतम नहीं रखना  
 और उसकी मनसा यह होती है कि इन करके निश्चिन होकर भजन विषे सा-  
 वधान होऊ पर जिस पुरुष को मानही की अभिलाष बढ़ती है तब उसके चित्त  
 की चित्तवनि सर्वदा लोगों की ओर रहती है कि यह लोग मुझको किस प्रकार  
 जानते हैं और क्या कहने हैं और मुझपर केशी प्रीति रखने हैं ताते ऐसे रोग  
 का उपाय करना अवश्यही प्रमाण है पर इसका उपाय भी वृत्त और फलतृप्ति  
 फरके होता है सो वृत्त यह है कि मानके विषों का विचारकरे कि लोक और पर-  
 लोक विषे मानी पुरुष ह्यंसी रहना है सो इस लोक का इ त यह है कि मानकी

अभिलाषा करनेवाला पुरुष सर्वदा जगत्की मान-ज्योति-मनोहार विषे-सद्वार  
 रहता है सो जन्ममानि प्राप्त नहीं होता तब निर्लज्जताको पाता है और जब प्राप्त  
 होता है तबकेते शत्रु ईर्ष्या करनेवाले उपज-आते हैं और यह भी उनको मरने  
 के निमित्त तैरमानि विषे बद्ध होता है और शत्रुओंके झलसोहरता रहता है तब  
 उसकी मत्तसा शुद्ध क्रदान्वित नहीं होती बहुरिंजवे शत्रुओंपर पूर्ण होता है  
 सो भी बिह-बड़ाई स्थिर नहीं रहती और अणुविषे दूर होजाती है काहे सो कि  
 मान और बड़ाईका सम्बन्ध लोगों के मनके साथ होता है सो लोगोंका मत  
 समुद्रकी लहरवत् प्रकाश विषे परिणामको प्राप्त होता है तात्पर्य यह कि जिस  
 बड़ाईका मूल ससीरीजीवोंकी मनाहोवे वह बड़ाईही कुल मस्तु नहीं होती काहे  
 सो कि जन्मके चित्तभी अर्द्ध उनके चित्त-विषे फुलता है तब वह बड़ाई नष्ट हो-  
 जाती है पर यह तीन जो प्रकृति-देशको राजसमन्वय करके होता है सो यह ती  
 महीतुच्छरूप है काहेसे कि जो राजाके हृदय-विषे किंचित् भी चितवनि विप-  
 रीतफुरे तब अपने प्रधानको दूर करिता है और उसकी मानता नष्ट होजाती है  
 ताते प्रसिद्ध हुआ कि गानी मनुष्य इस लोक विषे सदैव इस प्रकार ही रहता है  
 और स्वात्मबुद्धि जीव इस विचारकी नहीं पहिचानते और जिनके बुद्धिरूपीनेत्र  
 खुले हैं सो आपही इस प्रकार देखलेते हैं कि जस इस मनुष्यको उदय अस्तमत्त  
 तिप्रकृतके राज्य होवे और सबही लोग उसको प्रणाम करें तो भी सहायसन्नता  
 कुछ प्रस्तुति नहीं कीसे कि जस महामृत्यु होता है तब सबही सामग्री दूर होजाती  
 है और स्वल्पकाल विषे वह आपही नहीं रहता और उसकी प्रजा भी नहीं रहती  
 सो जिस प्रकार बड़े बड़े तक्षशी राजा आगे भी अन्न होगा है और कोई उरनका  
 स्मरण भी नहीं करता सोमेही यह भी स्वप्न होजावेगा ताते कुलदिनकी प्रसन्नताके  
 निमित्त अमर-राज्यको अर्थ करना बड़ी मूर्खता है इस करके कि जिस पुरुषको  
 हृदय स्थूल बड़ाई विषे स्वप्नमान होता है सो तिसके हृदयमे अगवत् की प्रीति दूर  
 होजाती है और जो मनुष्य भगवत्की प्रीति विना आनकी प्रीतिके साथ बाधा  
 हुआ मरलोक्त विषे पहुँचता है तब अत्रयही दीर्घ है तब का अधिकारी होता है  
 सो मानको दूर करनेकी हृत्तकरके सही उपाय है और कर्तुति के साथ दोषकार  
 करके विपाय होता है सो प्रयत्नियदे कि जिस देश विषे इसकी मान प्रीति अशीवे  
 संसदेशको त्याग जावे जोगवहा जायगै जहा इसको कोई पहिचानेही नहीं

सोम्यह भी उत्तम उपाय है कहिसे कि जब अपने नगर विषे प्रकृत तौर प्रैता है तब लोग उसकी त्यागी जानकर अधिक मान करते हैं ताते मानके रम विषे आसक्त होजाता है। और जब कोई उसकी निन्दा करता है तब दुःखी होती है और अपने दूषणके उतारने के निमित्त मूँसे भी नहीं डरता । यह वृत्ति दूसरा उपाय यह है कि ऐसे आचारविषे वर्ते जिम करके लोगों की प्रीति दूर होजावे पर पापकर्म का अङ्गीकार न करे कहिसे कि केने मूर्ख पापों विषे वर्तने है और इस प्रकार कहने है कि हमने तो मानके दूर करने के निमित्त इम कर्मको अङ्गीकार किया है सो यह चार्चा अयोग्य है ताते जिज्ञासु को इस प्रकार वर्तना चाहिये कि जिमे करके पापकर्म भी दूर है और लोगों की प्रीति भी नष्ट होजावे जैसे एक मन्त्रके दर्शन से एक राजा आयाथा सो जब उन्होंने राजाको आने देखा तब रोटी और मूनी दाथमें लेकर उड़े २ ग्रस खाते लगे वट्टेरि। जब राजा ने इम प्रकार देखित्व कहने लगा कि यह तो तृष्णा धार है ताने वह राजा अपने गृहको खोटा गधा वट्टेरि एक और सन्तकी भी अधिक मानता हुई थी ताने जब वह सन्त स्नानके स्थान से स्नान करके निकसे तब क्रिमी और काबल पंढरकराटोपर ठडि हो रहे वट्टेरि जब लोगोंने देखा कि यह तो चोर है तब उनको अधिक ताड़ना करी। ऐसे ही एक और भी सन्तकी अधिक मानता थी तब उन्होंने एक शीशे में आखन डालकर अपने निकट रख लिया और थोड़ा र पीते रहे ताते लोगोंने जाना कि यह तो मंदिरापान करते हैं सो मानके दूर करनेके निमित्त जिज्ञामुजनेने जमेही उपाय किये हैं ॥ अथ प्रकट करना उपाय अपनी स्तुति की प्रीतिको ॥ ताने जानें तू कि वृत्त पुंषों की जगत् की स्तुति विषे अधिक प्रीति होनी है और मन्त्रों अपनी महिमाकी चाहने हैं सो यद्यपि शास्त्रोंकी मर््याद में विपरीत कर्म होते तो भी स्तुतिके निमित्त करलेंते हैं और जो शुभ कर्मों होवे पर उम विषे लोग निन्दा करने हीवें तो भी नहीं करेते सो यह भी दीर्घगं है और जब इम गंग के शरणोंको न पहिचानिये तब नगं डमका उपचार करना पडिन है ताते ताने स्तुति की अभिनापके कारण चार हैं सो प्रथम यह है कि मनुष्य अपनी बड़ाई को पाहता है और अभी होनतापर गचाने रचना है ताते जब कोई इसकी स्तुति परतारे तब निस्सन्देह अपनी बड़ाई को सगभता है और आनन्दित होता है काहेमे कि अपनी महिमा सुनकर अपना ऐश्वर्य निश्चय चानेता है और

ऐश्वर्य्य इसको अधिक प्रियतम लिंगताहै बहुरि जब निंदा सुनताहै तब अपनी  
 हीनता को प्रत्यक्ष देखताहै ताते डरती होताहै इसी कारणसे जब स्तुति अपना  
 निंदा किसी बुद्धिमान् पुरुष के मुख से श्रवण करताहै तब अधिक शोकवान्  
 और अपसन्न होताहै काहेसे कि उसके यथार्थ वचन पर इसको अधिक प्रतीति  
 होतीहै और जब मूर्ख के मुख से सुनता है तब उसके वचन पर प्रतीति ही नहीं  
 रखता ताते शोक और प्रसन्नता भी शून्य होतीहै १ बहुरि दूसरा कारण यह  
 कि स्तुति करनेवाले को अपना सेवक देखताहै और ऐसा जानताहै कि इसके  
 हृदय विषे मेरे गुणकी प्रतीतिहै ताते आपको स्वामी जानताहै इसी कारण से  
 जब अपनी महिमा किसी श्रेष्ठके मुखसे सुनताहै तब अधिक प्रसन्न होताहै और  
 जब नीच पुरुष के मुखसे श्रवण करताहै तब ऐसा आनन्दवान् नहीं होता २  
 बहुरि तीसरा कारण यहहै कि जब किसी को अपनी स्तुति करता देखताहै तब  
 योंभी जानताहै कि यह मेरी महिमा सुनकर और लोग भी मुझपर प्रतीति  
 करेंगे और मेरे वशीकार होंगे इसी कारणसे जब सभीविषे अपनी महिमा श्र-  
 वणकरे तब अधिक प्रसन्न होताहै और जब एकत और विषे सुनताहै तब ऐसा  
 हर्षवान् नहीं होता ३ बहुरि चौथा कारण यहहै कि स्तुति करनेवालेको अपने  
 वलके अधीन जानताहै और यद्यपि उसको अपना सेवक न जाने तो भी इस  
 प्रकार समझताहै कि यह पुरुष भय शयना प्रयोजन करके मेरी स्तुति करता है  
 सो यह तार्त्ता भी इसको अधिक प्रियतम है ताते आपको बड़ा जानकर प्रसन्न  
 होताहै इसी कारणसे जब उसका वचन सांचा भी न जाने और उसके वचनकी  
 कोई प्रमाण भी न करे बहुरि वह प्रतीति के साधुभी स्तुति न करे और प्रयोजन  
 और सुपकरके भी न कहना होवे केवल उपहास करके इसकी स्तुतिके प्रीतिके  
 कारण कोई न देखे तब प्रसन्न नहीं होता ४ पर जब तैने इस रोगके कारणोंको  
 पहिचाना तब इसका उपाय भी सुगमही समझेगा बहुरि जब पुरुषार्थ करेगा तब  
 इस रोगको दूर करडालेगा ताने प्रथम कारण जो कहा है कि स्तुति करनेवाले के  
 वचनकरके अपनी महिमाको निश्चयकरके प्रसन्न होताहै सो उसका उपाय यह  
 है कि इस प्रकार विचारकरे कि यद्यपि यह पुरुष बूढ़ और वैराग्य शयना और  
 किसी शुभ गुणकरके मेरी स्तुति करताहै और इसका वचन भी यथार्थ है तो भी  
 उसके सुगुणके उपकार पर प्रसन्न होना प्रमाण है काहेसे कि यह शुभ गुण

तुम्हको महाराजहीने दिय हैं सो किसीकी स्तुति निन्दाकरके घड़ते घंटने नहीं  
 बहुरि जब कोई मनुष्य इस प्रकार इनकी स्तुति करे कि तू धनवान् है अथवा  
 महाराज है अथवा किसी और स्थूलपदार्थ का वर्णन को तब इस वार्त्तापर तो  
 प्रसन्न होनाही अयोग्य है काहेसे कि यह सब सामग्री नाशवान् है और जो प्रसन्न  
 भी होवे तो जिस महाराजकी दात है तिमके उपकारको निश्चय जानकर हर्षित  
 होवे पर जब विचारकर देखिये तब अपनेगुणोंपर प्रमत्त होनाभी प्रमाण नहीं का-  
 हेसे कि इस वार्त्ताको कोई पुरुष नहीं जानता कि अन्नकाल विषे मेरा निर्वाह  
 क्योंकर होवेगा और जबलग इस वार्त्ताको न जाने कि परलोकविषे मेरी कैसी  
 गति होवेगी, तबलग जिज्ञासुको प्रमत्त होना कदाचित् प्रमाण नहीं बहुरि जब  
 कोई मनुष्य इसको गुणवान् कहे और यह पुरुष ऐसाजाने कि यह गुण मेरे विषे  
 ही कोई नहीं तब ऐसी स्तुति पर प्रमत्त होनाभी महामूर्खता है सो इमका दृष्टान्त  
 यह है कि जैसे कोई कहे कि अमुक पुरुष का शरीर और सर्व अङ्ग सुगन्धना  
 फरकें भापूर है और गल मूत्र की दुर्गन्धि कुछ नहीं पर वह पुरुष जब ऐसा जा-  
 नता होवे कि मेरे तो सर्वाङ्ग विषे विप्टा मूत्र शूक आदिक कुत्नीलता है और उस  
 की स्तुति सुनकर प्रमत्त होवे तब महामूर्ख कहाता है बहुरि गान और वहाँ के  
 तिगित्त जो इसको अपनी स्तुति प्रियलगतो है सो इमका उपाय होने आगेही  
 वर्णन किया है पर जब कोई तेरी निन्दाकरे तब उमके ऊपर क्रोध करना और  
 अपसन्न होनाही महामूर्खता है काहेसे कि जब वह सत्य कहता तब वह देवता  
 है और जब भ्रूट कहता है तब असुर है और जब वह निन्दक अपने भ्रूटको भी  
 न जाने तब पशु अथवा गर्दभ है तात्पर्य यह कि सत्य कहनेवाले को अपना  
 गुरुदेव जानि ताने उसका वचन सुनकर न जानि न करिये और अपने अवगुण  
 पर शोभान् हैंनिये बहुरि जो मनुष्य अन्तु गर्दभहोये तब उमके पानकी सुन  
 कर प्रतीति धरनाही अयोग्य है पर जब कोई तेरे स्थूल पदार्थकी निन्दाको कि  
 जहूहीन है अथवा तिष्ठन है तोभी अप्रमत्त होना प्रमाण नहीं काहेसे कि यह तो  
 मनजनों के निकट वहाँ है बहुरि इमप्रकार विचार करनाभी विगेरे है कि तिस  
 पुरुषने तेरा अवगुण तुम्हसे प्रकट करके कटावे मो यह कठनाभी तीन प्रकारमे  
 बाहर नहीं ताते जब उमन यथार्थ और दया मयूरक कहा है तब उमता उपकार  
 जानिये काहेसे कि जब कोई तुम्हसे कहे कि तेरे कर्म विषे सर्व है तब उम नर



लखानेवाले का निस्संदेह यह उपकार होता है तैसेही अवगुणोंका दुःख सर्वके  
 हसनेसे भी तीक्ष्ण है इस करके कि अवगुणों करके बुद्धिका नाश होता है ताते  
 दोषके लखानेवाले को मित्र जानिये जैसे तू किसी राजाके निकट जानकी म  
 नसाकरे और कोई पुरुष तुम्हको लखाय देवे कि तेरा वस्त्र मलिनता से भरा है  
 प्रथम इसको धोयले सो जब तू उसका वचन मानकर अपना वस्त्र धोलेवे तब  
 तुम्हको उसका उपकार जानना प्रमाण है काहेसे कि जब तू दुर्गन्धभरे वस्त्र  
 हित राजाके निकट जाता तब उमकी समाधिपे निस्संदेह लजायमान होगा ।  
 वहुँरि दूसरा प्रकार यह है कि जब निंदाकरनेवाले पुरुषने ईर्ष्या करके तेरा अव  
 गुण प्रसिद्ध किया है तौभी उसने अपने धर्मकी हानिकरी है पर तेरी हानि तो  
 कुछ नहीं काहेसे कि जब तू उसका वचन सुनकर सहनशील होवेगा तब तुम्ह  
 को धैर्यकी बढाई प्राप्तहोवेगी अथवा यद्यपि उसने झूठ कहा है और तेरे विषे  
 वह अवगुण नहीं तौभी और अवगुण तो तेरे विषे अधिकहैं ताते यहभी मंग  
 वत्का उपकार जानना चाहिये जो महाराजने तेरे वे अवगुण प्रकट नहीं किये  
 और निन्दक के शुभ गुणोंका पुण्यभी तुम्हको प्राप्तहोवेगा और जो पुरुष तेरी  
 स्तुति करता है सो विचार करके देखिये तो तेग दुःखदायक होता है काहेसे कि  
 वह स्तुति सुनकर तू अभिमानी होवेगा ताते तू मूर्खता करके अपने दुःखकी  
 वार्त्तापर प्रसन्न होता है और अपनी भलाई विषे शोकवान् होता है सो जिसकी  
 ऐसी अवस्था होवे तब जानिये कि वह पुरुष स्थूलताकोही देखता है और गुण  
 भेदको नहीं पहिचानता और जो पुरुष बुद्धिमान् होता है वह स्थूलता की ओर  
 नहीं देखता और उसके अन्तर के भेदको समझता है तात्पर्य यह कि जबलग  
 इसपुरुषकी आशा सर्व जगत्मे दूर नहीं होनी तबलग स्तुति और मानका रोग  
 नष्ट नहीं होता ॥ अथ प्रकटकरना भेद सर्व मनुष्योंकी अवस्थाका कि स्तुति और  
 निन्दा विषे सबही पुरुष एक समान नहीं होते ॥ नाते जान तू कि स्तुति और  
 निन्दा विषे भी जीवोंकी चारप्रकारकी अवस्था होती हैं जो अपनी स्तुति सुन  
 कर प्रसन्न होने हैं और स्तुति करनेवाले का उपकार जानने हैं ऐसेही निंदा सु  
 नकर क्रोधवान् होते हैं और निन्दकको दुःखाया चाहते हैं सो यह अवस्था महा  
 नीचहै । वहुँरि दूसरी सात्त्विकी मनुष्योंकी अवस्था है सो यहहै कि यद्यपि हृदय  
 विषे स्तुति निंदाको समान नहीं जानते तौभी वाह्य व्यवहार विषे निन्दकको

महिमा करनेवाले के साथ सम वर्तते हैं २ बहुरि तीसरी अवस्था विचारवानों की यह है कि स्तुति और निंदाको मन वचन कर्मा करके समान रखते हैं ताते निंदा सुनकर प्रसन्न भी नहीं होते और ईर्ष्या क्रोध भी नहीं करते बहुरि स्तुतिको भी विशेषात्तही जानते काहेसे कि उनका हृदय स्तुति और निन्दासे विरक्तही रहता है सो यह उत्तम अवस्था है पर केने अल्पबुद्धि जीव इसप्रकार जानते हैं कि हम इसही गदको प्राप्तहुये हैं सो जबलग अपने हृदयकी परीक्षा न कर देखिये तबलगाउनका कहना झूठ होता है सो परीक्षा यह है कि जब निन्दक उनके पास बैठे, तो भी ग्लानि न करे अथवा जत्र वह किसी कार्यकी सहायता चाहे तब स्तुति करनेवालेकी नाई उसकी सहायता करे और प्रियतमराखे बहुरि जैसे स्तुति करनेवाले का चित्त विषे स्मरण करते हैं तैसेही जब निन्दक के मिलाप विषे चिरकाल होजावे तब प्रीतिसहित उसको भी यादकरे अथवा जब कोई निन्दकको हस्तक्षेप तब मिसप्रकार स्तुति करनेवाले के दु स्वरके दु सी होता है तैसेही निन्दक के दु स्वरके शोरमानहुये सो यह अवस्था महाकठिन है कि जिसप्रकार स्तुति करनेवाले के अवगुण को नहीं विचारता तैसेही निन्दकका अवगुण देखकर भी क्रोधमान न होवे पर अभिमानी गनुष्य ऐसेही कहते हैं कि हम धर्मही के निमित्त क्रोध करते हैं और उस निन्दकके दोषको दूर किया चाहते हैं सो यह भी मनका छल है काहेसे कि और भी केतेपुरुष अपकर्मा करते हैं और अवरो की निन्दा करने लगते हैं सो जबलग उनको देखकर ऐसी ग्लानि न करे तबलग जानिये कि उनका क्रोध करना भी अपनी वासना के अनुमाहै पर ये तपस्वी लोग ऐसे सूक्ष्म बलोंको कब पहिचानसके हैं ताते विचारविना सचही जब उनके व्यर्थ होते हैं ३ बहुरि चौथी अवस्था उत्तम पुरुषों की है सो यह है कि स्तुति करनेवाले को अपना शत्रु मानते हैं और निन्दकको प्रियतम रखते हैं काहेसे कि निन्दक के पक्ष से अपने दोषको पहिचानते हैं बहुरि उस दोषके निरुत्त करने की श्रद्धा विषे सावधान होते हैं इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जो पुरुष दिन को वनराखे और रात्रि विषे जागता रहे और नान्यप्रकार के वेपरे पर जपनग सामाने विरक्त न होवे और अपनी महिमाको बुी न जाने और निन्दकको प्रियतम न राखे तबलग उमरी मर्ष किया व्यर्थ होती है सो जब उम वचन के अर्थ को विचार करके देखिये तब ऐसे मदको प्राप्त होना महारठिन है काहेसे कि

जीनोंको दूसरी-बायस्था भी कठिन होती है कि जो स्तुति करनेवाले और निन्दकको हृदय-विषे समान तजाने तो दोनों के साथ बाह्य करतूत-विषे तो भेद न रखे और मनुष्य तो सर्वदा अपनी-स्तुति करनेवालों को प्रियतम रखते हैं और उनके-कार्योंकी सहायता करते हैं और निन्दकको दुखाया चाहते हैं तब बाह्य क्रिया-विषे भी पापी होते हैं और हृदयकी समता तो दुर्लभ है पर शत्रु शत्रुओंकी अवस्था जी निन्दक को मित्र और प्रशंसकको शत्रु जाननेकी कड़ी है सो इस अवस्था को पहुँचना अतिही कठिन है पर इसको वही पावता है जो अपने मनका विरोधीहोके और सर्वदा अपनी वासनाके साथ युक्त करेतावे जब किसीके मुखसे अपना अवगुण सुने तब प्रसन्नहोवे और निन्दककी हृदिके ऐसे उज्ज्वलदर्से कि इसने मेरे दोषको किसप्रकार दूढ़लिया और ऐसेही प्रसन्न होवे जैसे अपने शत्रुका अवगुण सुनकर प्रसन्न होती है सो ऐसा जिज्ञासु जन भी कोई बिरला होता है इसीकारण से कहा है कि जो कोई सब आयुपर्यन्त शत्रु और पुरुषार्थ करता है तो भी स्तुति निंदाको समान करना कठिन है ताते जानें कि जब यह पुरुष अपनी महिमाको प्रियतम रखता है और निन्दापर ग्लानि रखता है तब यह अभिलाष ऐसी प्रबल होती है कि अपनी स्तुतिके निमित्त भजन विषे भी दम्भ क्रिया चाहता है और जब देखता है कि अमुक पाप करके मेरी स्तुति होवेगी तब पापकी शक्ता भी नहीं करता तातर्य यह कि जबलगे मान और स्तुति की वासना का बीज मूलही से नष्ट न होवे तबलगे शीघ्रही पापकर्मा विषे आसक्त होजाता है पर जब बाह्य क्रिया विषे मित्र और शत्रु के साथ समान बने और मनविचन कर्मकरके निन्दकको दुखावे नहीं और उसका गलाही धित वने करता रहे और हृदय विषे शत्रु मित्रकी समता न करसके तो भी पापी नहीं होता काहेसे कि इस जीवका ऐसाही स्वभाव है अपने स्वभाव से दूर होना महाकठिन है ताते सन्तजनों ने इसप्रकार कहा है कि जब स्यूज पापों से रहित होवेतोगी विशेष है इसकरके कि सबही लोग बहुतसे अपकर्म स्तुतिकी प्रीति और निन्दाकी ग्लानि के निमित्त करते हैं और सर्वदा उनके चित्तकी चिन्त वनि इसी अभिलाष विषे त्रधायमान रहती है कि किसी प्रकार हमारी स्तुति लोग करें ताते मनकी वासना करके अपकर्मों विषे चिन्तने लगते हैं इस करके प्रसिद्ध हुआ कि सर्वे मनुष्यों की लोगोंका सम्मान और मनोहर करना निय

नहीं पर प्रान्तके निमित्त कपट और दम्भकरना निन्द्य है और दु लोंका वीज है ॥  
 आठवां सर्ग ॥  
 तति जात है कि भगवत् भजन विषे दम्भ करनी महापाप है और महाराज  
 श्री औरसे विमुखता है ताते इसके समान और कोई रोग नहीं कहे से कि वेपे-  
 धारियोंकी मनसा सर्वदा यही रहती है कि किमी प्रकार लोग हमारा भजन देखें  
 और हमको भजनवाञ्छाने सो जिस भजन विषे ऐसी कामना होती है उसको  
 भगवत् भजन नहीं कहते और यह केवल जगत् हीकी पूजा होती है अथवा  
 जब कुछ भजनकी कामना भी होवे तो भी दम्भके साथ मिश्रित होजाती है सो  
 भगवत् भजन विषे दम्भका मिश्रित होना भी मनमुविता है इसीपर महाराजने  
 कहा है कि जिस पुरुषको मेरे दर्शनकी प्रीति है उसको चाहिये कि मेरे भजन  
 विषे और लोगोंकी पूजाको मिश्रित न करे अर्थ यह कि दम्भसे रहित होवे और  
 यों भी कहा है कि जो लोग अचेतना और दम्भसहित मेरा भजन करते हैं सो  
 परलोक विषे परचापि करेंगे इसीपर महापुरुष से किसीने पूछा था कि इस  
 जीवकी मुक्ति क्योकर होवे तब उन्होंने कहा कि जब यह पुरुष दम्भ से रहित  
 होकर भगवत् की आज्ञाविषे साधन होवे तब शीघ्र ही मुक्तिको पाता है और  
 यों भी कहा है कि परलोक विषे किसी मनुष्य से पूछेंगे कि तैने भगवत् भजन  
 किस प्रकार किया है तब वह कहेगा कि मेने धर्मके निमित्त शीशदियाथा बहुत  
 आकाशवाणी होवेगी कि यह पुरुष झूठ कहता है काहेसे कि इमने आपको श-  
 रमा जनानेके निमित्त शीश दियाथा तब वह भी नरकगामी होवेगा बहुत एक  
 और पुरुषसे पूछेंगे कि तैने महाराजकी आज्ञा क्योकर मानी है तब वह कहेगा  
 कि मेने भगवत् अर्थ अपनेअनको दान किया है बहुत आकाशवाणी होवेगी  
 कि यह भी झूठ कहता है काहेसे कि इमने अपनी उदारताके प्रमिट्ट करने को  
 दान दिया था ताते वह भी नरकगामी होवेगा बहुत एक और पुरुष से पूछेंगे  
 कि तैने किसेप्रकार भजन कियाथा तब वह कहेगा कि मेने बड़े यत्न करके म-  
 हाराजके चरणों को पदा है तब आकाशवाणी होवेगी कि यह भी झूठ कहता है  
 काहेसे कि इमने आपको पिदावाननातने के निमित्त पाठ किया था ताने  
 उसको भी नरक विषे दारेंगे बहुत एक और पुरुषसे कहेंगे कि मेने मुक्त

पृथ्वी का राज्य दिया था सो तैने प्रजाकी मालता कर्षोकर करी तब वह कहैगा  
 कि मैने शास्त्रोंकी मर्यादसाहित न्याय किया था वहुँर आकाशवाणी होवेगी  
 कि यह भी झूठ कहताहै। कोहसे कि इसने धर्मात्मा जनाने के निमित्त न्याय  
 कियाहै ताते वह भी नरक विषे पड़ेगा। और महापुरुष ने योंभी कहाहै कि प्री  
 तिमान् को और कोई विघ्न ऐसा मलिन नहीं करता जैसा दम्भ करके शीघ्रही  
 मलिन होजाताहै वहुँर परलोक विषे मनुष्योंको इस प्रकार आकाशवाणी हो  
 वेगी कि हे प्राखण्डियो ! तुमने जिनके दिलानेके निमित्त भेरा भजन कियाहै सो  
 अन्न भजन का फल भी उन्हीं सबसे मागे और महापुरुष ने योंभी कहाहै कि हे  
 प्रियतमी ! दम्भरूपी नरक से आपको बचाओ और महाराज के आगे विनती करो  
 कि हे भगवन् ! इस दम्भरूपी केशसे तुम्हारी रक्षाकर इसीपर महाराजने कहाहै  
 कि विन पुरुषोंने मेरे भजन विषे लोगों की पूजाको मिलाया है अर्थात् दम्भ  
 कियाहै सो मुझसे प्रतिदूरहै और मैं उनका भजन लोगोंको समर्पण करदेताहै  
 काहेसे कि मुझको किसीके साथ मिश्रित होनेकी अपेक्षा नहीं इसीपर महापु  
 रुषने कहाहै कि विस करतूत को भगवत् प्रमाण नहीं करता जिस विषे रचक  
 मात्रभी दम्भ होताहै इसीपर अमरताभी सन्तने एक पुरुषको देला था कि शीश  
 नीचे किसे बैठे है तब कहनेलगे कि हे भगवन् ! तु इसकी देदी श्रीवाको स्तीर्षा  
 काहेसे कि एकामता हृदय विषे होती है शीशकी कुदिलता किये तो एकामता  
 प्राप्त नहीं होती वहुँर प्रकृतने किसी पुरुषको सभाविषे रोते देला था तब  
 उससे कहा कि जब तू अपने गृहविषे ऐसाही रुदनकरता तब अधिक विशेषता  
 को पाता इसीपर अलीतामी सत्रने कहाहै कि दम्भी मनुष्यके दोलक्षण प्रसिद्धहै  
 प्रथम यह कि जब अकेला होताहै तब अलसाम् जाताहै और जब लोगों को  
 देखताहै तब प्रसन्नतासहित भजत करताहै वहुँर जब अपनी महिमा सुनताहै  
 तब सब किया विषे अधिक सावधान होताहै और जब निन्दा सुनताहै तब श  
 क्रित होजाताहै वहुँर एक जिज्ञासुने किसी सन्तसे पूछा था कि जो पुरुष दान  
 देने विषे कुछमनसा निष्कामीसाले और कुछ जगत्की स्तुति के लिये दानदेवे  
 तब उसकी क्या अवस्था होती है तब उन्हीं ने कहा कि वह मनुष्य भगवत् से  
 निमुस होताहै काहेसे कि सन्न करतूत केवल निष्कामेही चाहिये वहुँर उमर स  
 तने एक पुरुष की अवज्ञा क्रुद्ध करी थी तब उससे कहनेलगे कि तूमी मुझको

इस अवज्ञाका दण्डादे तब उसने कहा कि मैंने भगवत् के और तुम्हारे निमित्त तुमको क्षमाकिया वहुरि उमरने कहा कि तू भगवत्ही के निमित्त क्षमाकर भ्र-  
 यवा मेरे निमित्त क्षमाकर परदोनोंके सम्बन्ध करके क्षमाकरना काम नहीं आता  
 तब उसने कहा कि मैंने भगवत्ही के निमित्त तुमको क्षमाकिया इसीपर कुमैल  
 सतने कहा है कि आगे जिज्ञासुजन दम्भ विना शुभकर्म करते थे और इससमय  
 विषे लोग शुभकर्म किये विनाही दम्भ करते हैं वहुरि एक और सतने कहा है  
 कि जब यह पुरुष दम्भकरती है तब भगवत् इसप्रकार कहता है कि देखो यह मेरा  
 जीव मेरेही साथ किसप्रकार हास्य करता है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि सात  
 पुरियों के सात देवता रक्षकमी भगवत्ही ने बनाये हैं सो जब इम मनुष्य के शुभ  
 कर्मोंकी पत्री प्रथमपुरीपर पहुँचती है तब उसपुरीका देवता कहता है कि इसकी  
 सबही क्रिया निष्फलहै काहेमे कि यह पुरुष लोगों की निंदा करता था ताते में  
 निंदकके शुभकर्मको प्रमाण नहीं करता वहुरि और पुरुष जो निंदासे भी रहित  
 होता है सो तिसके कर्मोंकीपत्री दूसरीपुरी तक पहुँचती है तब उसका देवता  
 कहता है कि इसके करतून इसही के मुखपर ढालदो काहेसे कि इसने शुभकर्म  
 करके अपनी मर्गसा करी है ताते में इसके कर्म को प्रमाण नहीं करता वहुरि  
 किसी और पुरुषकी पत्री तीसरी पुरीपर पहुँचती है कि उस विषे दान जप तप  
 व्रत आदिक शुभकर्म होते हैं तब उमका देवता कहता है कि इसके सबही क-  
 रतंत अभिमान करके निष्फलहुये हैं वहुरि एक औरकी पत्री चौथी पुरीपरधन  
 पहुँचती है तब वह देवता कहता है कि इसने विद्या और शुभकर्मों विषे लोगों  
 की ईर्ष्याकरी है ताते में इस क्रियाको नहीं मानना वहुरि एक औरकी पत्री पा-  
 चवीपुरी पर पहुँचती है तब वह देवता कहता है कि इसने दुगियों और अनाथों  
 पर दया नहीं करी और मुझको भगवत्की आज्ञा इसप्रकारहै कि यद्यपि सुक-  
 र्मी मनुष्यहोवे तौमी तू दयाहीन पुरुषका करतून प्रमाण न करना वहुरि एक  
 औरकी पत्री छठी पुरीपर पहुँचती है तब वह देवता कहता है कि इसने स्मरण  
 गजन लोगोंकी स्तुति के निमित्त कियेदे भयवा परलोककी कामना इतनादे  
 ताते में इसके कर्मोंको भी नहीं मानना वहुरि एक औरकी पत्री सातवीं पुरी  
 पर पहुँचती है सो उमके कर्मोंका तेज सूर्यकीनाई प्रकाशित होता है तब उसका  
 देवता वह देवता कहता है कि इसके छदप विषे सदन जहदारादे और कर्मोंका

कर्ता आपको जानता है ताते में इसकी क्रिया को प्रमाण नहीं करता तात्पर्य यह कि जिसका कर्म केवल निष्काम और सर्वत्र मलिनता से रहित होता है तब उसका क्रमवृत्त सातोपुरी को उल्लंघन कर भगवत्के निकट पहुँचता है और गौहाण उसको प्रमाण करते हैं अन्यथा सिद्ध ही कर्म निष्कलित होते हैं ॥ अथ प्रकृतकान्ताः स्वदम्भका ॥ ताते ज्ञानं त् कि दम्भका अर्थ यह है कि आपको वेधगी और मज्जना वान् दिखाना और बेपकरके जगत का मिलपि तद्विना और अप्रती विशेषता प्रकृतकर्ता और अपने ऊपर लोगोंकी प्रतीति बढ़ती सो ऐसा दम्भ पाच प्रकार का होता है प्रथम तो शरीरकरके दम्भ करते हैं जैसे वदनकारंगी पीला करके अपनी जायत लखानी अथवा देहको दुर्बल करता और शृङ्खली बढ़ाकर आपकी भयावत दिखाना वदुरि अंचा शब्द न बोलना कि मैं ऐसा गम्भीर हूँ और तर्षर मूँसे रहने कि मैं तनीहूँ सो जब ऐसी क्रिया लोगोंके छलने के निमित्त करे तब जानिये कि केवल दम्भी हैं ३ वदुरि दूसरा प्रकार यह है कि जल रक्षित अथवा मलिन अथवा अल्प अथवा पुरातन पहिरने और आपकी शतपस्वी जनावना अथवा मृगछाला आदिक अस्त्र ओढ़ने सो इनकी वृष्टि ऐसी होती है कि जब कोई इनको किसी संयोग के साथ लय करके कहे कि अमुक वस्त्र पहिरो तब लज्जाके निमित्त पहिरने ही नहीं और एक ऐसे कपटी होते हैं कि महीन वस्त्रों को फाड़कर वदुरि सिलाय लेते हैं इसकरके कि धनवान् और राजालीग भी हमारा सम्मान करें और निरादर न करें और थंथरि उनके बलसे मोटा बलकाका हुआ होवे तो भी पहिर नहीं सके हमें फाँके कि हमारी कोई निदान के और इतना नहीं जानते कि ऐसी क्रियाकरके हम लोगोंकी पूजा करते हैं २ वदुरि तीसरा प्रकार दम्भका वाणी है सो सदैव अथर दिनाय कर आपको मज्जना वान् दिखाना और मोनकरके एकामहो दिखाना अथवा नाना प्रकार गान्त्रिका प्रदान करना और आपको बुद्धिमान् जनाना अथवा शीतनश्यामि निकल के आपके को प्रेमी लखाना अथवा पिछले सन्तोंकी वाचो प्रकृतकर्ता इसकाके कि मैंने बहुत संतजनोंका सत्सङ्ग किया है सो यह केवल पोषित होना है वदुरि मोवा प्रकारके दम्भ भजन विषे होता है कि लोगोंके देखने शीघ्र वदुरि टेकना अथवा शीघ्र जीव करके नेत्रों और किसीकी ओर दृष्टि न करनी अथवा जगत को दिनाय कर दानि देना और मार्ग विषे चर्य सहित चलना ४ वदुरि पाँचवा प्रकार

दम्भका यह है कि अपने निमित्त अथवा अधिक दिवाने और अपने ऐश्वर्य को आपसी सभी विषे प्रकट करना कि अमुक रात्ना हमारा सेवक है और अमुक धनवान् हमारा पुजारी है और जब किसीके साथ विरुद्ध करता है तब इस प्रकार कहने लगता है कि तेरा गुरुदेव कौन है और तेरे मितापी कौन है मने तो इतने वर्षपर्यंत बड़े बड़े महापुरुषोंकी सेवा करी है तात्पर्य यह कि दम्भीमनुष्य अपने मानके निमित्त बड़े कष्ट खंभता है और एकही छोलेंका आहार करता है अथवा निराहार भी रहता है सो यह सबही करतूति महापापों का रूप है काहेमे कि जप तर्प घृत भजन भगवत्तदी के निमित्त करना चाहिये पर जब ऐसे कर्मा विषे मान और बड़ाईकी कामनाहिये तब जानिये कि केवल पाषण्ड है ताने चाहिये कि जब अपनी मान बृद्ध करनेकी मनसा राखे तब व्यवहारके कार्य करके अपनी बड़ाई लखवे सो इसको पाप नहीं कहने जैसे व्योतिष् वैद्यक व्याकरण इत्यादिक और विद्याकी प्रकट करना पाषण्ड नहीं होता पर मानके निमित्त आपको बेसगी और भजनवान् दिवाना अयोग्य है अथवा जब स्नान और उज्ज्वल वस्त्र करके शरीरको शुद्ध करलेवे तभी दम्भ नहीं कहाता है काहेमे कि प्रीतिमानोंकी सभी विषे किसीकी ग्लानि न आवे तब यह भी शुद्ध मनमा होनी है और महापुरुष भी ऐसे आचरि विषे विचरे हैं और भजन विषे जो दिखलाया निश्च कहै सो यह भी दो कारणों से अयोग्य है प्रथम यह कि जब इस पुरुषकी मनसा मकामहोवे और आपकी निष्कामी करदियावे तब यह भी फट होता है काहेसे कि जब लोग इसकी मकामताको प्रकटजाने तब वह भी प्रमाण नहीं करते वहीरे दुमरा कारण यह है कि मनन स्मरण जो शुभकृति केवल भगवत्तदीके निमित्त करने चाहिये पर जब ऐसा किया जगतके दिवदाने के निमित्त करे तब यह भी भगवत्के साथ उपहार कम्ना होता है सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कीर्तिपुरुष किसी महर्षीके राजाके सम्मुख भिन्नहोवे सो आपको केवल उसको दहलुआ हो दिखाने पर मनमा इससी यड है कि मैं राजाके मुन्दरदामको देखेनारहूँ तबि डमके नेत्र और मुनि उम नरराज आपकी ओर अटकी रहे तब निस्सन्देह राजाके साथ दाम्यजना होना है मेनेही जो मनन स्मरण परमेश्वरके निमित्त करना चाहिये है और उट भनन गान मन जोयोरो दिवानेनगे तब इत्या नाम केवल फट है और डम करने जौना जानते । क



वह पुरुष दर्शवत्-पूर्ण। भगवत् को नहीं करता। जगत् ही की चिन्तना करता है। काहे में कि उसकी मनसा जगत् के दिवाने विषे ही दृढ़ होती है ताते जो मनुष्य शरीर कम्के तो भगवत् की वन्दना करे और मन उसका जगत् की वन्दना विषे स्थित होवे तब निस्तद्वेद विमुक्त होता है। अथ प्रकृत करना भेद दम्भी अरस्याका ॥ ताते जाने तू कि दम्भ विषे भी इस्पृकार भेद होता है कि एक दम्भ अति दीर्घ है और एक अल्प है सो दीर्घ दम्भ यह है कि जिसकी मनसा केवल दम्भी की होवे अर्थात् जब अकेला होवे तब भजन स्मरण कुछ न करे और लोगों विषे सावधान होकर भजन विषे स्थित रहे तब ऐसा पुरुष भगवत् के कोपका भागी होता है और यद्यपि उसकी कुछ अल्प मात्र पुण्य की मनसा भी होवे पर जब एकान्त विषे कुछ ही भजन न करे तो भी प्रथम दम्भी की नाई होता है तद्वि जिन पुरुष के हृदय विषे पुण्य की मनसा ऐसी प्रज्ज होवे कि एकान्त विषे भी मूल ही से अलसाय न जावे पर जब लोगों को देखे तब प्रमत्तता सहित भजन करे और भजन करना उसको सुगम हो जावे तब इनके दम्भ करके सब ही फल उसका व्यर्थ नहीं होता पर जितनी दम्भ की मनसा भजन विषे मिली है उतना ही दण्ड का अधिकारी होता है अथवा वस्तु का पुण्य की प्राप्ति हो जाना वै बहुरि जन्म दम्भ और पुण्य की गनमा मम होवे तो भी भजन का फल कुछ नहीं होता काहेसे कि पुण्य की थुलाको दम्भी मनसा व्यर्थ करवाती है १-बहुरि दूसरा भेद यह है कि भगवत् पर जिस पुरुष की प्रतीति कुछ न होवे और यद्यपि शरीर करके भजन स्मरण करता रहे तो भी वह महारूपी कदात है और अत्यन्त विमुक्त है काहेसे कि हृदय विषे प्रतीतिसे रहित है और ताम्र विषे प्रीति प्रतीति सुगुहो दिखाता है सो ऐसा पुरुष सर्वदा नरकों का चापी होवेगा अथवा जिस पुरुष की प्रतीति परलोक और मन जनों की सुखाद पर कुछ नहीं और यद्यपि शरीर करके दम्भके निमित्त शास्त्रों की गम्यादही विषे विचरता है तो भी नरकों का अधिकारी होता है २ बहुरि तीसरा भेद दम्भी मनुष्य के प्रयोजन विषे होता है जैसे कोई पुरुष भजन विषे मानका प्रयोजन राखे बहुरि मान करके लोगों और उदार इम निमित्त हो दिवावे कि लोग मुझको त्यागी जानकर अर्थियों भी सात्त्विकी मनुष्यों की सेवा के निमित्त पतदें और जब वह उस पतको

मांस होवे तब अपने शरीरके अर्थ लगायलेवे तब यह भी महापाप है अथवा जेना  
 कथाकीतिनी की समाधि जाय थडे कि किसी रूपवान् मनुष्य को जायदेखू  
 अथवा उर्मके साथे प्रीति बढ़ाऊँ तब इसकी नाई और भी अपकर्मोंका प्रयोजन  
 परमकुँलोंका बीज है और अपराधरूप है काहेसे कि उसने भगवद्भजन की  
 पापोंका मार्ग चनाया है अथवा जब किसीका कुछ दूषण जगत् विषे प्रसिद्ध  
 होजावे तब उस दूषणको दूर करनेके निमित्त भेरागी और उदाह्रणकर दिखाना  
 भी महानिन्द्य है और यह सबही प्रयोजन महातामसी हैं पर जिसको राजसी  
 प्रयोजन होवे जैसे दम करके अपने शरीर और कुटुम्बका प्रतिपाल कियाजावे  
 तो भी भगवत्के कोपका अधिकारी होना है अथवा जब ज्ञानके निमित्त मार्गविषे  
 धैर्य और सकुचमहित चले और शीतल श्वास निकाले और हास्य से रहित  
 होवे बहुरि ऐसा कहे कि इम जीवको अचेत होनेका ठौर इस संसार विषे कहाँ है  
 काहेसे कि सबही मनुष्य फाल के मुख विषे चले जाते हैं अथवा जब कोई पुरुष  
 किसीकी निन्दा करने लगे तब आपको निन्दासे रहित दिखाने के निमित्त इम  
 प्रकार कहे कि ओरोके अवगुण देखने से अपना अवगुण देखना प्राधिक वि  
 शेष है सो यद्यपि यह सब कर्तुनी सात्त्विकी हैं पर जिमकी मनमाँ सात्त्विकी न  
 होवे और राजसी और मानके निमित्त ऐसे कर्मकरे तब निस्मदेह अनर्थागी  
 महाराज की ओरसे त्रिमुख हाँता है काहेसे कि भगवत् इसके हृदय की जानने  
 वाला है ताने उसके साथ चनकरना बड़ी विमुलता है और अलखुष्टि जीव ऐसे  
 भेदोंको पहिचान नहीं सकते इमकरके कि दम तो गेमा महामुद्म है कि किनेने  
 बुद्धिमान् और गणितभी इमको पाय नहीं सकते ताने मूर्ख तपस्वियोंकी रूपों  
 याचता है ॥ अथ पूकृकरनी सूदनना दम्भकी भाँताते जानू कि यह तो प्रस  
 दम्भ है कि लोगों के देखने भजनकरे और जब अकेलाहीवे तब अनुमाय जावे  
 और इमसे सूक्ष्मदम यह है कि एकांत विषे भी भजनके नियमको सम्पूर्ण करे पर  
 जब लोगों को देखे तब प्रमत्ता करके यह नियम उसको सुगम होजावे सो यह  
 भी दमस्थल है और इससे सूक्ष्मदम्भ यह है कि लोगों को देखकर यद्यपि प्रसन्न  
 भी न होवे पर उसके अंतर ऐसा गुप्त दमहोता है ॥ भे चरमक पत्वर विषे अग्नि  
 गुप्तहोती है और यह दम नव पकटहोता है जब चमन विषे अग्नि गुप्तहोती है  
 जानी है और आपको ऐश्वर्यान् देवता है इम करके पमिद्धृत्रा वि दयवि

ऐसे पुरुषकी क्रियामें जागे-दमन भीसता था तो भी उसके अन्तर गुणरूप दंभ  
था ताते, जत्र इस मानके रसको, दोष, दधिकारके हेतु न जाने तब अचरुपदी दम  
प्रकट रूपज आता है- और यद्यपि भुवसे अपनी स्तुति नहीं करता तो भी लक्षणों  
विषे आपको मजतवार दिखानता है शठुरि इत्युक्तकी स्थिरता और गम्भीरता  
और जाग्रदकी लक्षाया जाहता है पर एकदम इससे भी अहासुष्य है कि यद्यपि  
लोगोंकी मानता करके हर्षवाते भी निहोते सी भी दममे रहित नहीं दोषकरा कहि से  
कि जत्र कोई प्रथम ही उसकी प्रणाम न करे अथवा अधिक आदर न करे अथवा  
प्रसन्नता सहित उसका आर्घ्य न करे अथवा व्यंगहार विषे और लोगोंसे प्रसन्न  
अधिक न देवे तब वह सुख आश्चर्यवान् होता है कि यह लोग सुखको जान-  
ते ही नहीं सो जत्र उससे अगमिद्वजत्र दममे रहित किमा होता तब इस प्रकार और  
श्चर्यवान् न होता तारुपर्ण यह कि जमलग करतुतिका होना और न होता इस  
को समान न हो जावे तब लक्षण दम नही होता अर्थ यह कि दम नही होनेसे जत्र  
वही नष्ट होता है जत्र अपने कृतितिकी विशेषता ज्ञाने भिसे कोई प्रसन्न कितीको  
एकरूपया देकर सहस्ररूपमें की तन्तु जेवे तब वह उस एक रूपके देनेको शुद्धाभि-  
रोप नहीं जानता और कितीपर उपकार भी नहीं भसता ऐसे ही जो पुरुष कुछदिग  
भगवद्म जनकरके अविनाशी राज्यको प्राप्त होवे तब वह भजराकी उपकार किती  
मनुष्यपर नहीं रचता और अपने हृदय विषे भी अगिमाती नहीं होता या जब  
शुभकर्म करके लोगोंसे सन्मानता है और निरादर विषे आश्चर्यवान् होवे तब  
यह दम चिटीके चलनेसे भी अधिक सुखमे अर्थात् ममूर्ण विचार-विगा, लक्षा  
नहीं जाता हमीपर अलीप्तन जे कहा है कि बेरागी लोगको भी (लोक) विषे  
इस प्रकार ताड़ना होवेगी कि तुमको लोगोंने व्यवहार विषे मोलसे अधिक वेस्तु  
दी है और हाथ जोड़कर तुम्हारे काव्यों विषे भावधान दृये हैं और सबों कितीने  
तुमको प्रथम ही हृदयत्रत किया है ताते तुम्हारी करतुति केवल निष्काम नहीं हुई  
और तुमने शुभकर्मों के फलको समार विषे ही, मोगनियान् पर ऐसा कोई खिन्ना  
ही पुरुष होवहि जो सत्य, जातृको त्यागकर सब विषे स्थित होवे और ससारके  
मिलापरुपी विन्तमे डरता है शठुरि तब कोई उसको आदर और ददवत् फेले तब  
सकुत्र जावे और पेमाही पुरुष दण्डसे दृष्टता है इमी कारण से जिहासुत्रनाने  
अपने शुभकर्म को इस प्रकार दुगया है जैसे और जीव चोरी और अगिवाको

डराय रखते हैं, और जन्मोंने इस चार्त्तको निरुद्धेह प्रहिंवाती है कि, पुरुषोक्ति विपे-  
 तिष्कागत विना कोई कल्पति अगाप, त करेगे जैसे किसीने सुनाहवे कि-  
 मुकन्देश विपे, खोना सोता वादी नहीं जलना, और तर्कोंके जोग सोहीको अग्नी-  
 कारुकारते हैं सो वह पुरुष जव चम तारा विपे जाते ही मतसा उल्लाहे, तब खेरीह  
 सोते वादीको अपने सक्तोवाहें और त्रोटको, चढाहीं जाल नीता है, तैसेही जो  
 पुरुषाधाने कसोंकी इगको (क) विपे तिष्कागता सहित शुद्धना करलेवे तब पर  
 लोक विपे अतिक्रु, वीहीवेगा और सत्र कीरुति उमके चमप्रजावगे लोर जपने  
 तिष्कागता कर्मके विना और कियीकी सहायता त्रमहुंचगी सो निष्कागता कम  
 अर्थ यह है कि जैसे यह पुरुषा पशुओं के प्रागे तिष्कागता कर्म भजन, आदिक  
 करता है और अतकी और इसकी प्राप्त कुछ नहीं (प) मती, तैसेही गनुष्यों विपे,  
 भी दम्भसे रहित होवे पर जलनगामशु और मनुष्य का त्देसना इसको समान  
 होवे तब लग यह क्षेत्रच निष्कागता नहीं कहा जाता वह रिजक इस लोकोई मतन  
 कतादेसे अथवा सोतादेसे और आहार कतादेसे तो भी इन कर्मों विपे-  
 का देवना, समानात्के प्रागे महा कि ले प्रे आदिना जो प्रतिदा कितीको, दिखानेकी  
 मनसों नहीं कारत और जोगी के ई देव भी जेवे तब प्रमच, भी नहीं होता नीमेही  
 भजन विपे भी समान सिधनरहे ईमी परमहा पुरुषने भी कहे है कि स्वकमात्र भी  
 दिखलावा विमुवताहो फाहामे कि कभी मनुष्य, भगवद्वजन, विपे लोको-  
 का भी किये प्राहती है और अन्तर्प्राणीके जातने पर संतुष्ट नहीं होता, ताने  
 परानी जीचे को दिखाया चाहताहो ईमी कारणसे महापुरुषने दमी मनुष्यको  
 विमुवत ही है तारपर्य यह कि जलनग लोकोके देवने विपे ईसके प्रसन्नताहोती  
 हे तब लग दीगसे फदा मित्र मुक्त नहीं होता पर जब भगवदृष्टा, उपहार ज्ञान कर  
 प्रमचहोवे तब इसको दमा नहीं कहने सो यह मनसा तीन प्रकारकी होती है प्रथम  
 यह कि जिमने स्वपने भजनको गुप्त किया था और उसकी मत्सा प्रिना भगवत्  
 ने प्रकट करदिना वहुरि उसके अनेके अरगुण जो थे सो गरागजने, प्रकटन  
 किये ताते जिनामू जानताहो कि मेरे ऊपर भगवत् ऐसा दयालु है कि, मेरे सिद्धा  
 को भी इगीय रानाहो और गलाईको प्रकट कनाहो ताने लक्षारजकी दया और  
 उपहारको जानकर प्रीतिगार प्रमच होताहो, वरुि इससे प्रहार प्रमचनाका  
 यह है कि नितामु गमे विचागताहो कि जिम भगवत्ने इस प्रकार विपे मेरे जव-

गुणोंको धियायाहै सो अपने कर्णोंके परलोकेविषे भी प्रसिद्ध न करेगा और शमा करलेवेगा र बहुरि तीसरा प्रकार यह है कि जब इसके शुभकर्मको देखकर और लोग भी शुभकियां विषे दृढ़होवें तब वह भी बड़मांगी होवेगे सो इस करके भी प्रमन्नहोना प्रमाण है परं अपने मानके निमित्त हर्षवान् न होवे और जो पुरुष इसके सुकर्मको देखकर सात्त्विकी आचार विशेष दृढ़होवाहै सो तिसकी जिज्ञासा और प्रतीति को पहिचानकर प्रसन्न न होवे सो इसकी पीडा यहै है कि जब वह जिज्ञासुजन और किसी उत्तम पुरुषकी अवस्थाको देखकर उसकी संगतिकरे और महाराजकी आज्ञाविषे सावधानहोवे तोभी इस पुरुषको ऐसीही प्रसन्नता आवे जैसी अपने संगकी जिज्ञासा समय देखकर प्रमन्नता होती है ॥ अर्थ प्रकटकरना इसका कि दम्भकरके किस प्रकार शुभकर्मोंको कब व्यर्थ होजाताहै ॥ ताते जानू कि दम्भ संजनके आदि विषे भी होताहै और मध्यमे होताहै और अन्तमे होताहै बहुरि जब भजनके आदि विषे दम्भकी मनसाहोवे तब उस दम्भकरके शीघ्रही भजन व्यर्थ होजाताहै काहेसे कि निष्कामताका स्थान इस जीवकी मनसाहै सो जब प्रथमही दम्भकरके मनमा अशुद्धहुई तब स्वाभाविकही निष्कामता नष्ट होजाती है परं भजनके आदि जिसकी मनसा शुद्धहोवे और भजनके करतेहुय लोगोको देखकर भजन अधिक करे तब अधिक भजन करनेका फल नष्ट होताहै परं मूलही मे सब फल व्यर्थ नहींजाता इसकरके कि प्रथम तो उसकी मनसा शुद्धथी बहुरि जब निष्कामता सहित भजनके नियमको पूराकरे और पीछे से कुछ दम्भकी मनसा फुरावे ताते उस भजतकी प्रसिद्ध करे बैठे तब इसकरके भजनका फल नष्ट नहीं होवा परं दम्भके सम्बन्धके कुछे दण्डका अधिकारी होताहै पर इस धचनके निर्णय विषे कितने बुद्धिगणों ने योगी कहाहै कि जब यह पुरुष अपने शुभकर्मको सम्पूर्ण करके पीछे प्रकट करे तब उमको फल कुछ नहीं होना जैसे इन्ममऊद नामी सन्तके निकट किसीने इमप्रकार कहाथा कि में नित्यप्रति इतना पाठ करताहू तब उन्होंने कहा कि तुमको उस पढ़नेका फल इतना नहीं होवेगा बहुरि महापुरुषके निकट भी किसीने ऐसे कहाया कि में बनीहू तब उन्होंने कहा कि तू बनी भी नहीं और अमती भी नहीं अर्थ यह कि ब्रह्मकरके भूवा रहना है और अपने मुखसे प्रसिद्ध करके ब्रह्मको फल नष्ट करडालताहै सो इन्ममऊद और महापुरुष

को भी धनार्थ है परे इसका प्रयोजन यह है कि उन्होंने इस प्रकार जाना था कि पाठक और ब्राह्मणों प्रथम ही दम्भसे रहित न थे। तब उनके फलको व्यर्थ कहा, काहेसे कि जब प्रथम इसका भजन दम्भकी मनसासे रहित होवे और पीछे अकस्मात् कुछ दम्भ होजावे तब इस करके भजन का सबही फल व्यर्थ होना फलित है। पर जब भजनके मध्यविषे दम्भकी मनसा ऐसी दृढ़ होजावे कि भजनकी मनसाको जीतलेवे तब भजनका फल सबही नष्ट होता है और जिसकी मनसा निष्काम होवे और लोगोंको देखकर कुछ प्रसन्नता फुर आवे तब वह भजन निष्फल नहीं होता पर दम्भके निमित्त कुछ पापी होता है ॥ अथ पूर्य करनी उपाय दम्भके दूर करने का ॥ ताते जानू कि यह दम्भरूपी रोग महाप्रबल है इसके निवृत्त करनेका उपाय भी अवश्य ही करना चाहिये और बड़े धैर्य और पुरुषार्थ बिना इसका उपाय हो नहीं सका काहेसे कि इस दम्भका स्वभाव मनकी वृत्तिके साथ मिश्रित होरहा है इस करके कि यह गनुष्य बाल अवस्थासे लेकर सब किसीको ऐसा ही देखता है कि सर्वसंसार आपको भनाही। दिखाया चाहता है और संव करतूति जीवोंके इसही निमित्त होते हैं ताते बाल अवस्थामें ही इस मनुष्य का यही स्वभाव दृढ़ होजाता है और शनैः शनैः करके ऐसा बढ जाता है कि इस रोगकी बुराई को भी नहीं जानसक्ता और इसी स्वभाव की अधिकता विषे लक्षित होजाता है इसी कारण से इस दम्भरूपी रोगका दूरकरना महादिन कहा है और इस रोगसे रहित भी कोई बिरला ही होता है ताते सभ किसीको इसका उपाय करना योग्य है पर इसका उपाय भी दो प्रकारका होता है सो एक ऐसा है कि दम्भको मूलही में नष्ट करडालता है सो यह भी ब्रह्म और कर्तविके स्वार्थ करके होता है पर ब्रह्म इसकी यह है कि दम्भके विषयको पहिचाने चतुरियों भी जाने कि यद्यपि दम्भके समय मुझको प्रसन्नता होती है तौ भी परलोक विषे इस दम्भके निमित्त ऐसी ताड़ना होवेगी कि मैं उसको सह न संझोगा सो जिसने इस बार्धाको निश्चय पहिचाना है निमको दम्भका त्याग करना सुगम होजाता है जैसे किसी शुकने पेमे जाना होवे कि इस मधुविषे हजाहल विष मिला हुआ है सो यद्यपि उसको मधुके भोजन करनेकी अधिक तृष्णा भी होवे तौ भी सुगम ही त्याग देता है तैमे ही निमको परलोक का सभ प्रबल होगा सो भी दम्भको जकी-कारन करेगा और यद्यपि सब किसीको दम्भ विषे धन और मानका प्रयोजन

होता है तो भी इसकी निमित्तता के तीन मूल हैं। प्रथम यह कि देव करके जगत् की स्तुतिको चाहता है और दूसरे निंदा के भय करके देव करता है। और तीसरे लार्मी की पूजा विषे आशा रखता है ताते जिज्ञासुको चाहिये कि प्रथम स्तुतिकी अभिलाषा को हृद्यमे दृग् करे और ऐसा जाने कि जन्म में भजन विषे दम्भ फर्या तब परलोक विषे आसिद्ध ही मेरा अपमान हेतु होगा और इस प्रकार कहेंगे कि हे दगी। हे कपटी। हे साहापायी। तूने भगवत् जन्मको जगत् की स्तुतिके निमित्त पैदा है और तू ऐसा अनिर्लज्ज है कि तुम्हारे इतने शक्ति से लज्जा भी नहीं आई। कि तूने जगत् को प्रसन्न किया और भगवत् ही अप्रसन्नता को भयान किया। चतुर्विजगत् की निरुद्रता को अंगीकार किया और महाराजा की दूरी को। सपन्न किया ताते प्रसिद्ध है कि तूने जगत् प्रभात को भगवत् के मानसे निरीप जाना है और महाराज के कोप को अत्यन्तकारके जगत् की स्तुतिको अंगीकार किया ताते तूने तेरे समान निर्लज्ज और क्रोधी नहीं। मोक्षवृद्धि मानि देम। अपमान की विचार करता है तब अलीप का खजाना है कि परलोक विषे प्रसारकी स्तुति मेरे किमी काम न आवेगी काहे कि चन्द्रपि। भगवत् जन्म, सर्व मलाई का बीज है तो भी। दम्भ करके पापों का बीज हो जाता है तद्दुर्गि जन्म में दयमे रहिन हो जगा तब तजनों का संगी हो उगा। और दम्भ करके तन्मत्रयही मित्तुग्यों का संगी हो उगा और जिमान जगत् की प्रसन्नता के निमित्त दम्भ करमाहू सो जगत् की प्रसन्नता भी मुझको फंदा चित्त प्राप्त नहीं होती काहे कि जब एक पुरुषकी प्रसन्नता होती है तब दूसरा अप्रसन्न ही रहता है और जवाप का मनुष्य स्तुति करता है तब दूसरा निंदा करने लगता है चतुर्विजन्म सब कोई इसकी स्तुतिके तोगी इसकी प्रार्थना और आग्रिप और लोक अपनी परलोककी भलाई किमीके हाथ विषे नहीं ताते ऐसे परधीन जीवोंकी स्तुतिके निमित्त अपने चित्तको विक्षिपता देनी बड़ी मूर्खता है और दुःखोंका कारण हे ताते चाहिये कि यह पुरुष बाग्धाय इसी प्रकार विचार करे तब स्तुतिकी अभिलाषाका मूल हेतुसे चट्टे हो जाये चतुर्विजगत् की आशाको दूर करनेके निमित्त ऐसा जनि तिम्रमिनी जगत् की आशा फल हीन है त्रा है अर्थों जेवकुछ प्राप्त भी होते हैं तो इसके ऊपर चढ़ी उपकार स्तुति है और महाराजकी प्रसन्नता भी दूर है। जनि त चतुर्विजगत् के हेतु यों भगवत् की आज्ञा विना कोर्मल जीवोंकी काम नहीं होते ताते जितने भगवत् की

प्रसन्नक्रिया है तब स्वाभाविकही सर्व जीवों के चित्त उसके अधीन होजाते हैं और जिसने भगवत्को मसन्न नहीं किया तब जगत् विषे उसके अवगुणही प्रसिद्ध होते हैं ताते सब कोई उसका त्याग करदेता है वहुनि जगत्की निंदाके मय को दूर करने का उपाय यह है कि आपको सर्व्वदा इसप्रकार मगभावे कि जब मुझको भगवत्ने पामाण किया तब लोगोंकी निन्दाकरके मेरी हानि कुछ नहीं होती और जब महाराजके निकट मेरा निरादर हुआ तब इनकी स्तुति भी लाभदायक न होवेगी और जो पुरुष निष्काण होकर जगत् की ओर हृदय न देवे तब सर्व मनुष्यों के हृदय विषे महाराजही उसकी प्रीति और प्रीतिको दृढ़ करता है और जब ऐसा न करे तब गीबही लोग इमके छलको पहिचान लेते हैं और जिस निन्दा से अपमान होता है सो अवश्यही निन्दाहीको प्राप्त होता है और भगवत् की प्रसन्नता से भी विमुख रहता है वहुनि जब भली प्रकार विचार करे और पुरुषार्थ करके निष्कामता विषे दृढ होवे तब जगत् की मनोहार से मुक्त रहे और चित्त उसका प्रकाशमान होवे और भगवत् की सहायता पाकर निष्कामता के आनन्द को पावे पर कर्तूनि करके इसप्रकार उपाय होता है कि भजन और दान आदिक गुणधर्मों को ऐसा गुमरावे जैसे अपने अपकर्मों को धराता है और अन्तर्स्थाभीही के जानने पर सन्तुष्ट रहे सो यद्यपि प्रथम यह कर्तूनि कठिन होता है परन्तु और पुरुषार्थ करके शीघ्रही सुगम भी होजाता है तब निष्कामता और भजन को रहस्य को पाकर परमानन्द को पावता है वहुनि ऐसी अवस्था उमको प्राप्त होती है कि यद्यपि लोगों के समूह उसको देखने रहें तौभी उसकी सुरत लोगों की ओर नहीं परमकी मो यह ऐसा उपाय है कि इस करके दम्भका बीज ही नष्ट होता है १ वहुनि दूसरा उपाय ऐसा है कि उस करके दम्भका बल क्षीण होता है और मूलही से दूर नहीं होता सो यह है कि जब यह पुरुष भजन विषे स्थित होता है तब इसके चित्त में यह सकल्प आन उपजता है कि मेरे भजन को लोगों ने जाना है अथवा जन जानेंगे २ वहुनि इसही सकल्प की अधिकनाकरके यह अभिन्नाप दृष्ट होजाती है कि जब लोग मुझको भजनवान् जानेंगे तब मेरे ऊपर विशेष प्रतीति बँधि ताँ इस दम्भके सकल्प और अगि तापा विषे मनम्न करते ऐसे भावना है कि लोग मेरे भजन को जानें तो भला है ३ पर निश्चिन्त को देने जाकर विषे प्रयत्नी यह सकल्प



यत्नकरके दूरकिया चाहिये सो आपको इसप्रकार समझावे और विचार करके विचारकरे कि जगत्का जानना मेरे किस कामका है और लोगों के नामने करके मेरा कौनकार्य सिद्धहोगा काहे से कि जगत्को उत्पन्न करनेवाला मन्वत् सर्वजीवों का अन्तर्यामी है ताते उमकाही जानना मुझको विशेष और लाभदायक है इसकरके मेरा कोई कार्य लोगों के हाथ नहीं पर जब लोगोंने विरोधही जाना और महाराजके निकट मुझको ताड़नाहुई तब इनकी मानता मेरीरक्षा क्योंकर करेगी सो जब यह विचार जिज्ञामुके हृदय विषे दृढ़होताहै तब दम्भके ऊपर शीघ्रही इसकी दोषदृष्टि उपज आती है अर्थात् दम्भको निरव्व करके बुराजानताहै और यह दोषदृष्टिही दम्भकी प्रीति के सम्मुख आन स्थित होतीहै वद्वरि जैसे दम्भकी प्रीति इस जीवको लोगोंकी ओर खींचती है तेसीही दोषदृष्टि उसको विवर्जित किया चाहती है सो जिस सकल्प का वन अधिक होता है वही सकल्प इसके मनको अधीन करलेता है पर दम्भके सकल्प और दम्भकी अभिलाष और लोगोंकी मानताकी मनसा जो ऊपर वर्णन हुई सो इन तीनों के सम्मुख तीनों शुभ गुण आते हैं सो प्रथम यह ब्रूम है कि जिसकरके दम्भकी बुराई को जानताहै १ और दूसरा गुण दोषदृष्टि है सो यह भी ब्रूमहीसे उपजती है जिसकरके उस दम्भ विषे इस जीवको ग्लानि दृढ़ होती है २ वद्वरि तीसरा गुण यहहै कि आपको दम्भकी मनसामे और सकल्पोंसे बजिराखना ३ पर जब दम्भरूपी रोग ऐसा प्रबल हुआहोवे कि उस समय विषे ब्रूमही दिखाई न देवे और ग्लानि भी प्रकट न होसके अर्थ यह कि यद्यपि आगे आपको इसने समझाकर बहुत बर्जा होवे तौमी उस समय विषे वह ब्रूम स्थित न रहे तब स्वाभाविकही मनकी वामनाके अधीन होजाताहै जैसे कोई आपको क्रोधसे आगे सहन शीलता विषे स्थित करता रहे और क्रोधके विषों को विचारताहै पर जब क्रोधका भ्रमपरआवे तब तमोगुणकी प्रबलता विषे सवही विचार मूल जावे तैमेही उम दम्भकी बुराई को जब विचार करके समझताहै तौभी वामनाके बलकरके दोषदृष्टि नहींउपजती और जो दोषदृष्टिभी स्थितहोवे तो पुरुषार्थकी हीनता करके अपने स्वभार को दूर नहीं करसका और दम्भकी प्रीति विषे आसक्त होजाताहै ताने जगत्को स्तुतिकी प्रीति मयुक्त सुना चाहताहै इसीकारणमे केने पण्डित योगी नानने है कि हम यह ध्वन दम्भके निमित्त बहने है

तौभी उसवचनकी त्याग नहीं करमके और दम्भ विपेही बद्धवान् रहते हैं तात्पर्य यह कि जेती इमपुरुषको दोषदृष्टि उपजती है तेताही दम्भके त्याग विपे समर्थ होताहै और दोषदृष्टि इसमनुष्य विपे बूझकी मर्यादके अनुसार उपजती है ब-  
 हुरि बूझका बल इसमनुष्य विपे इतनाही दृढ़होताहै जितनी प्रतीति भगवत्के ऊपर राखता है सो यह शुभ गुण भगवत्की सहाय आकरके प्राप्तहोतेहैं तैसेही दम्भकी अधिकता मायाके भोगोंकी प्रीतिकरके होतीहै और भोगोंकी प्रीतिका प्रेरक मन और वासनाहै बहुरि इस मनुष्य का चित्त इन दोनों विरोधी सेनाकी सँच विपे सर्वदा स्थितहै पर जैसी इस जीवकी वृत्ति और स्वभाव अधिक होता है और जिस पदार्थ की ओर इसकी प्रीति है तब उसही स्वभाव और वृत्तिको अगीकार करताहै अर्थ यह कि जिस मनुष्यकी वृत्ति भजन के समय आगेही निर्मल होतीहै तब वह पुरुष भजन विपे भी निर्दम्भ रहताहै और जिसके ऊपर आगेही रज तमका स्वभाव प्रबल होताहै सो भजनके समयविपे भी दम्भ और मानकी ओर बहजाताहै पर भगवत्की नेत और आज्ञा इन सर्व कार्योंसे परेहै अर्थ यह कि महाराजकी आज्ञाके भेद को अपनी बुद्धि करके कोई जान नहीं सका तावे जैसी भगवत्की आज्ञा होनीहै सो तिसही ओर सँच लेजाती है किसी को दिव्य स्वभावोंविपे स्थितकरती है और किसीको मलिन स्वभावोंविपे डाल देती है बहुरि ऐसे जान तू कि जब तैने दम्भकी सँचको विपर्ययकिया तब हृदय विपे दोषदृष्टि करके उमको बुराजाना पर जब इससे उपरान्त कुछ दम्भका सकल्प तेरे चित्तमें शेष रहजावे तब इस करके तुझको पाप नहींहोता काहेसे कि अ-  
 कस्मात् सकल्प इस जीवका स्वत स्वभावहै और यह मनुष्य स्वत स्वभाव को दूर नहीं करसका तावे सन्नजनों ने भी इमप्रकार कहाहै कि अपने मलिन स्वभावको प्रथम मलिन जानिये बहुरि पुरुषार्थके अनुसार उसको विपर्यय किया चाहिये तब नरकोंमें इम जीवकी खाद्येवे पर उन्होंने ऐसा नहीं कहा कि सर्वदा अपने स्वभावोंसे अपनी समर्पना करके मुक्तृजिये चाहिये कि यहवार्ता होनी ही फउिनहै तावे जब तैने सतजनों की आज्ञा गान पर यथागति अपना पुरुषार्थ किया तब निस्मदेह शनैःशनैः करके वह स्वभाव तेरे बगीचा होजावेगा सो तुझको इतनाही कर्तुनि कर्नीयहै कि तैने तुझको दम्भादिक अवगुणोंकी भीति है और उनके निमित्त उद्यग करतहै तैसेही इनको मलिन जानकर यथा

शक्ति इनके त्यागने का उपाय करे तब इसही करतूनि विवेकी भलाई है इसी पर महापुरुष के पियतर्पणने इसप्रकार चिन्तनी करी थी कि जय हगारे चित्तविषे कुछ मलिन सकल्प फुरता है तब हम ऐसे दुःखित होते हैं कि जो हमको कोई गिराव कर पाता ल विषे डाल देवे तौ भी हम उस सकल्पके दुःखसे इसको सुगम जान्ये है तब महापुरुष ने कहा कि जब तुमको ऐसी दोषदृष्टि आत हुई है तब तुम निश्चय जानो कि धर्म और प्रतीतिको विचिन्तन करण यही है और संकल्पोंका न करनेवाला भगवत्तु है ताते इसही की शरण लेवो इसकारके गसिद्ध हुआ कि धर्म का चिह्न दोषदृष्टि है और जिसको दोषदृष्टि प्राप्त हुई है तिसके मलिन संकल्प स्वाभाविकही नष्ट होजाते हैं काहेसे कि धर्म और प्रीति करके संकल्पकी अविश्वता होती है और दोषदृष्टि करके संकल्प क्षीण होजाता है पर इसविषे एक और भी भेद है कि जिसको मनके स्वभावों से विपर्यय होतको चल प्राप्त हुआ है तब ऐसी अवस्था करके भी माया इसको छल जानलेती है सो उस छलकारूप यह है कि इस पुरुष को मलिन सकल्पों के विपर्यय करने विषेही परचार्य रसती है और भजनकी एकत्रता को प्राप्त होने नहीं देती और संकल्पों के विरुद्ध विषेही बांध छोड़ती है सो यह भी अयोग्य है पर यह अस्थायी चारमकारकी होती है प्रथम यह कि अपना सबही समय संकल्पों के विरुद्ध विषेही सोना और भजन से विमुक्त रहना १ और दूसरी अवस्था यह है कि मलिन संकल्पों के निषेधविषे कुछ काल वितारना बहुत उसको मूत्र करके भजन में स्थिर होना २ और तीसरी अवस्था यह है कि भूते संकल्पकी और चित्तही न देना और उनके निषेध विषे भी अपनी आयुर्वल व्यर्थ न करनी और भजनके रहस्य विषेही स्थिर रहना ३ बहुत चौथी अवस्था यह है कि भूते संकल्प को देखते ही धीक्षण बेग ग्यसहित उससे दूर होना और भजनकी एकप्रता विषे चित्तकी वृत्तिको लीन करलेना सो यह उत्तम अवस्था है काहेसे कि यह अवस्था चलको भी छल देने वाली है इस करके कि ऐसा पुरुष आपनो छलसे मुक्त रहता है और छलको देख कर इस प्रकार तीक्ष्ण दौड़ना है कि छलको लब्धजावान करके शीघ्र ही अपने कार्य विषे जाय मावधान होता है ४ मो हमका दृष्टा यह है कि जैसे धारपुरा विद्यापढ़ने जाय और कोई और पुरुष ईर्ष्या करके उनको विवर्जित किया और सो जब ईर्ष्या करनेवाला पुरुष प्रथम विद्यार्थी को मिले और उसको पढ़नेके नि

मित्त जाने से मार्ग में रोके और वह विद्यार्थी ऐसा होवे कि उस शत्रु के विचन को न माने पर पढ़ने की समय बैरीसे विरुद्ध करने विपेही मित्तके तब वह तो पढ़ने से दूरही रहजाता है वहरि जब दूसरे पुरुषको वह बांधक गजुरोके तब वह उसको झूठा करके निमित्त कुछ दील लगावे पर वहांही अटक न रहे वहरि शत्रुको निषेध करके विद्याज्जाय प्रदे वहरि जब तब शत्रु तीसरे पुरुष को अटकाया चाहै तब वह शत्रुकी ओर हृदयही न देवे और उसको इत्सदायक जान कर अपने मार्ग विपे चलाजावे वहरि चौथा पुरुष ऐसा होवे कि शत्रुको मार्ग में देखकर तीक्ष्ण आराजवि और विद्या पढ़ने के काम विपे जाय स्थित होवे सो जब विचार करके देखिये तब दो पुरुषों से तो शत्रुने अपना मनोरथ पूर्ण किया और तीसरे पुरुषसे उसको प्राप्त कुछ न हुआ वहरि चौथे पुरुषसे शत्रुको प्राप्त भी कुछ न हुआ और लज्जावान् होकर उलटा परचात्ताप करने लगा कि जब मैं इसको विद्या पढ़ने से विवर्जित न करता तब यह शीघ्र ही दौबकर विद्या पढ़ने की ओर न जाता ताते वली पुरुष यही है तैसेही दृढ़ पुरुषार्थ उसही जिज्ञासुका कहाजाता है जो सकलमेंके विरुद्ध विपेभी आसक्त न रहे और शीघ्र ही भजनके रहस्यमें लीन होजावे ॥ अथ प्रकट करना इमका कि ऐसे कार्य करके भजनका दिखलाना भी प्रमाण है ॥ ताते जानू कि जैसे भजनकी गुह्यता विपे यहलाभ प्रसिद्ध है कि दम्भसे मुक्त रहना है तैसेही भजनकी प्रकटता विपे भी यह बडालाभ है कि भजनवान् को देखकर और लोग भी भजन विपे स्थित होने हैं और उन की श्रद्धा सात्विकी क्रियामें वृद्ध होती है इमीपर महाराजने कहा है कि जब शुद्ध मनसा सहित प्रकट दानदेवे तौ भी विशेष है और जो पुरुष गुह्य दानदेवे वह भी उत्तम है इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि जब यह पुरुष सात्विकी कर्मकी नीव दृढ़ रखता है और उस कर्मको देखके और गनुष्य भी शुभक्रिया विपे लगते हैं तब प्रथम पुरुषको अपने कर्तविका फलभी प्राप्त होता है और २ गनुष्योंके फलका भाग भी पावता है जैसे तीर्थयात्री को देखकर लोग भी तीर्थकी मनमा करते हैं और जो पुरुष रात्रि विपे अनेम्बसे भजन करता है तब उसकी धुनि सुनकर बहुत गनुष्योंकी निद्रा दूर होजाती है तो इसप्रकारके कर्मोंके इमोंको भी सुरुति का लाभ होना है और इसको जयनी सुरुति का फल और दूसरोंकी कर्तविका भाग प्राप्त होता है और इनकाके वर्ष विरोध जात्राते तारस्ये

कि जिसकी मनसा दम्भसे रहित होवे और और जीवों के निमित्त भजन और शुभकर्म को प्रकट करे तब यह भी उच्चम अवस्था है पर जिसके हृदय विषे दम्भ की वासना उपज आवे सो उसका भजन व्यर्थ होता है और शुद्ध वासना करके जो भजन करता है उसहीका भजन और कर्तृति सफल होता है और महापुरुष ने भी ऐसा कहा है कि भजन करो पर हृदय विषे दम्भकी वासना न करो शुद्ध मनसा करके भजन करो और ऐसा भी कहा है कि दम्भकी मनसा करनी सर्वोत्तम काम है और गुप्तभजन परदे साथ जो करते हैं सो सब फलदायक होता है जैसे धरतीमें बीज बोवते हैं सो जो धरतीमें दबा हुआ होता है वही उगता है और बाहर जो दाना होता है सो नहीं उपजता पर जिसके मन विषे लोटी वासना धन आदिक की होती है तब उसको और जीवोंके कल्याणके निमित्त भजनको प्रकट करना लाभदायक नहीं होता काहेसे कि प्रथम तो दम्भ करके इसकी मनसा मालिन होती है और इसी कारण से और जीवोंको भी इसके भजन और उपदेश का प्रवेश नहीं होता ताते ऐसे पुरुषको गुह्य भजन करना विशेष है पर प्रकट भजन करनेवाले को इस प्रकार चाहिये कि अपने हृदय को भली प्रकार देखवावे और दम्भकी वासनासे गहन होवे काहेसे कि केते पुरुषोंके हृदयमें दम्भकी भीति गुह्य होती है और अपने चित्तविषे इस प्रकार अनुमान करलेते हैं कि हम जगत् के कल्याणके निमित्त भजनको प्रकट करते हैं वद्वरि दम्भकी पीतिकरके अपने धर्मको नष्ट करते हैं सो ऐसे पुरुषार्थहीन पुरुषों का दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई मनुष्य नदीविषे तैरनेलगे और तैरनेकी विद्याको जानता न होवे तब अवश्य ही जलके प्रवाह विषे डूबजाता है भयशा और किसीको उस प्रबल प्रवाहमें निफासा चाहे तब उसको भी अपने सगही डूबावता है और बलवान् पुरुषों का दृष्टान्त ऐसा है कि जैसे कोई तैरनेकी विद्या विषे चतुर होवे तब वह आपभी तैर जाता है और और मनुष्यों को भी तैरापलेता है सो यह सन्तजनों की अवस्था है पर सब किसीको ऐसा नहीं चाहिये कि महापुरुषोंकी अवस्थाको देखकर यह भी अभिमानी होवे और दम्भसे रहित होकर अपने भजनको गुह्य न राखे तब निस्मदेह उसका अकाज होता है वद्वरि जो पुरुष जगत्के कल्याणके निमित्त भजनको प्रकट करता है सो तिमकी परीक्षा यह है कि जब कोई उसको ऐसा कहे कि तू अपने भजनको प्रसिद्ध न कर इसपरके कि लोगोंको कल्याण

षिका उपदेश करनेवाला अमुक वैराग्यवान् प्रकट है ताते उसकी सगति करके इनको अधिक लाभहोवेगा और तुम्हको भी गुह्य भजनकरने विषे अधिकलाभ है सो जत्र वह पुरुष यह वार्त्ता सुनकर भी भजनको प्रकटही कियाचाहे तब ऐमा जानिये कि अपने मान और ऐश्वर्यको चाहता है और अर्थके फलकी मनसा से हीनहै वहूरि एक ऐमे पुरुषहोते हैं कि भजनके नियमको पूर्ण करके लोगों विषे इसप्रकार कहनेलगतेहैं कि हमने क्या करतूति कियाहै सो इस वचनकरके भी मनको प्रसन्नता होती है ताते चाहिये कि अपनी स्तुतिकी रसनाको सकुच्रायराखे अर्थ यह कि जवलग मान अपमान और निन्दा स्तुति इसको समान न होवे तवलग किसी प्रकार अपनी वड़ाई को प्रकट न करें वहूरि जब मानकी अभिलाषा मूलही से इसके हृदयसे दूर होजावे तब उसको अपनी स्तुतिकरके मीदोष नहीं लगता और उसके वचन सुनकर केते जीवों की मनसा शुभकरतूति विषे दृढ़ होती है सो केते बलवान् पुरुषों ने इस प्रकार अपनी विशेषता को वर्णन कियाहै जैसे एक सन्तने कहा है कि मैंने भगवत्का भजन संकल्प सहित कदाचित् नहीं किया और जो वचन मैंने महापुरुषों के मुख से सुना है सो तिसको ययार्थही जानकर निश्चय किया है इसीपर उमरनामी सन्तने भी कहा है कि जब मैं प्रमात समय उठताहूँ तब मुझको किसी सुगम और अगम कार्य विषे भय नहीं होता इसकरके कि देखिये मेरी भलाई किस कार्य में होवेगी ऐसेही इवनमसऊद सतने कहाहै कि जब जैसा अवसर मेरे ऊपर आताहै तब उसको मैं अपनी वासनाके अनुसार कदाचित् विपर्यय नहीं किया चाहता और सिफयासौरी सन्त जब मृत्यु होने लगे थे तब उनके सम्बन्धी रुत्न करने लगे तब उन्होंने ऐसा कहा कि मेरे मृत्यु होनेपर रुदन न करो काहेमे कि जिस दिनसे मैंने महाराजके मार्ग विषे चरण राखाहै तब से मैंने पापकर्म नहीं किया इसीपर एक और सन्तने कहाहै कि जिसप्रकार भगवत्की आज्ञा हुई है उससे मैंने विपर्यय वासना नहीं करी पर निर्वन मनुष्यको इसप्रकार नहीं चाहिये कि उनको देखकर यह भी अभिमानि होजावे वहूरि महाराजके कर्तूतों विषे येमे भी गुह्यमेदहै कि उनको अपनी बुद्धिकरके पहिचान नहीं मक्रे और केते चित्रों विषे ऐमी गुह्य भनाई होनी है कि हम उसको जाननेही नहीं जैसे दम्भ करके दग्गी मनुष्यका अकान होनाताहै पर तौमी उनको देखकर केने जीवोंकी वृत्ति

सांजिकी आचरण विषे दृढ़ होजाती है और अपनी शुद्धमनसा करके वही पुरुषको भी निष्काम जानते हैं ताते वह भी निष्कामता विषे दृढ़ होते हैं । अपने ज्ञानादेनी अपने पापको छिपानेकी । ताते ज्ञान वृत्ति कि भजनके प्रकट करने में तो निस्सन्देह दम्भ होता है पर अपने अवगुणोंका छिपाना भी सन्तानोंमें प्रमाण सहा है और इसको दम्भ नहीं कहते काहेसे कि अपने पापको छानि विषे पांच प्रकार की विशेषता प्रसिद्ध है मध्य यह कि पापकर्म को देखकर लोग निन्दा करते हैं और जन्म इसपुरुष की वृत्ति निन्दास्तुति विषे आसक्त होती है तब भजन से विमुख रहता है १ बहुरि दूसरी विशेषता यह है कि निन्दा सुनकर इस मनुष्य का हृदय अप्रसन्न होता है और निन्दास्तुति को सम जातना महाइत्सर्गमह ताते ऐसी अवस्थाको प्राप्त होना भी महाकठिन है बहुरि निन्दा के भय करके भजन करता निष्कामही विशेष होता है और निन्दा के भय करके निवृत्त कर्मोंको इरादना अयोग्य नहीं इसकरके कि यद्यपि यह पुरुष लोगोंकी स्तुति से विरक्त होसक्ता है तो भी निन्दा विषे प्रेर्य करना महाकठिन है २ बहुरि तीसरी विशेषता यह है कि जब किसी का मलिन कर्म प्रसिद्ध होता है तब उसके देखकर और सम्पदा मनुष्य भी दीव होजाते हैं और साक्षात् रहित होकर निन्दा प्रान्तर विषे विचरने लगते हैं सो इस भतसा करके अपने पाप को इरादना भी विशेष है पर जब अपने पापको इस गनसा करके सुगर्व कि ये लोग मुझ को भेगागी और भजनवान् जानते तब यह भी अयोग्य है ३ बहुरि चौथी विशेषता यह है कि लज्जा करके अपने अवगुणों को छुपाने तीसरी अलाहे काहेसे कि सर्व मनुष्योंसे लज्जा करनी इस जीवको प्रमाण कही है पर जब कोई इस प्रकार कहे कि लज्जा और दम्भ एक है तब ऐसे नहीं काहेसे कि लज्जा और है और दम्भ और है पर जब कोई पुरुष ऐसा होवे कि उसका अन्तर बाह्य एक समान होवे तब यह अवस्था महाउत्तम है और यह अवस्था उमदीको प्राप्त होनी है तिसके हृदय विषे भी पापकी गनसा न पुगे और जब कोई पुरुष पापकर्म करके इस प्रकार कहे कि जब भगवत् मेरे पापको जानता है तब मे और जीवों से किन निमित्त दुःखों सो यह बड़ी मूर्खता है कहेसे कि महाराज तेजी शुभ्य मार्गको छिपाना ही विशेष कहा है ४ बहुरि पाचवी विशेषता यह है कि जब इसका अवगुण इसलोक विषे प्रसिद्ध न हुआ तब महाराजको दयालु जानकर इस प्रकार

समझे कि उसकी दयाकरके परलोक विषे भी मेरा अवगुण प्रसिद्ध न होवेगा ताते अपने पापको डरायका महाराज की दयाके ऊपर शुद्ध आशा रखे तब यही बड़ी विषेपता है ५ ॥ अथ प्रकट करना इसका कि दम्भके भयकरके शुभ कर्मोंका त्यागकरना प्रमाण है अथवा नहीं ॥ ताते जानतू कि सब शुभकर्मों तीन प्रकारके रहे हैं सो प्रथम यह कि एक कर्म का सम्बन्ध केवल भगवत् के साथ होता है जैसे भजन और व्रत और साधन जो जिज्ञासुजन करते हैं १ और दूसरा यह कि उन कर्मोंका सम्बन्ध लोगों के साथ अवश्यही होता है जैसे राजनीति, क्री, मर्याद विषे विचरना और देशों की पालना और रक्षा कानी २ धरि तीसरा कर्म इस प्रकार है कि उसका सम्बन्ध लोगों के साथ भी होता है और लोगों विषे उसका प्रवेश भी पहुँचता है और कर्म करनेवाले को भी उसका गुण प्राप्त होता है जैसे कथा कीर्तन और शुभकर्म जो व्रत भजन आदिकरहे ३ तब दम्भके भयकरके इनका त्यागकरना प्रमाण नहीं पर जब ऐसे कर्मों विषे किसी पुरुषको अचानकही दम्भका संकल्प फुरावे तब चाहिये कि उस मलीन फुरना को विचार करके निवृत्त करे और भजन की शुद्ध मनसाको हृदय विषे दृढ़ करे बरि लोगों के देखने के निमित्त भजनको बढ़ावे घटावे नहीं और जिस प्रकार आगेही भजन करता होवे तैसेही करता रहे तो मला है अथवा जब भजनकी मनसा कुछही न रहे और दम्भका संकल्प अल्पत्न दृढ़ होजावे तब यह तो भजनही नहीं कहाजाता पर जबलग इस पुरुषकी शुद्धमनसाको बीज स्थित होवे तबलग ऐसे कर्मोंका त्याग न करे इसीपर कुजैलनामी मन्वने कहा है कि लोगोंकी दृष्टिके भयकरके शुभकर्मों को त्यागदेनाही दम्भ है और जो पुरुष जगत्को दिसावनेके निमित्तही भजन करे तब वह तो निस्तन्देह मनसुव होना है पर यह मनरूपी दुष्ट ऐसा शत्रु है कि जब और छनकरके भजनका त्याग नहीं करायसकता तब ऐसा संकल्प जान उपजावना है कि जब तू भजन करना है तब और लोग तुम्हको देखते हैं तब यह केवल दम्भहोता है ताने तू भजनही का त्यागपर जब तू मनकी वाजा मानकर धरतीको छोड़े और उसविषे वैश्व भजन करे तोभी तुम्हको इस प्रकार कहेगा कि लोग तुम्हको भजनमान जानने दे ताते मेरा भजन करना प्रमाण नहीं मो इसका उपाय यह है कि मनको इन प्रकार विचारकर कहिये कि लोगोंकी जोर निचकी दृष्टिकी पनाहना और उस



सात्विकी, वात्सर्या विषे हृद होजाती है और अपनी शुद्धमनसा करके दम्भी पुरुषको भी निष्काम, जानते हैं ताते तब भी निष्कामता विषे हृदहोती है ॥ अब आत्मादेनी, अपने पापको छिपानेकी ॥ ताते ज्ञान तू, कि मजतुके प्रकट करने में तो निस्सन्देह, दम्भ होता है पर अपने अंगगुणोंका छिपाना भी सन्तर्जनोंके प्रमाण कहा है और इसको दम्भ नहीं कहते, काहेसे कि अपने पापकी हराने विषे मौज प्रकार की विशेषता प्रसिद्ध है, मयम ग्रह कि पापकर्मको देखकर लोग निन्दा करते हैं और जन्म इसपुरुषकी वृत्ति निन्दास्तुति विषे आसक्त होती है तब भजनसे प्रियुक्त रहता है शिवहुरि दूसरी विशेषता यह है कि निन्दा सुनकर इस मनुष्यका हृदय अपसन्न होता है और निन्दास्तुतिको ससिजातता महाद लभै ताते ऐसी अवस्थाको प्राप्तहोना भी महाकठिन है शिवहुरि निन्दाके भेष करके भजन करती निष्कामही विशेषता होता है और निन्दाके भय करके निव कर्मोंको ब्राह्मता अयोग्य नहीं है इसकरके प्रकियद्यपि यह पुरुष लोगोंकी स्तुतिसे निष्क्रा होसक्ता है तो भी निन्दा विषे प्रेरण करना महाकठिन है शिवहुरि तीसरी विशेषता यह है कि जन्म किसीका मलिन कर्म प्रसिद्ध होता है तब उसको देखकर और त्रासपद मनुष्य भी द्विद होजाते हैं और राकासे रहित होकर निन्द आचार विषे विचरने लरते हैं सो इस मतसा करके अपने पापको बुरावना भी विशेष है पर जब अपने पापको इसी मतसा करके बुरावे कि ये लोग मुर्क को भोगी और भजनवान् लाते तब यह तार्का अयोग्य है शिवहुरि चौथी विशेषता यह है कि लज्जा करके अपने अंगगुणोंको बुरावे तो भी सलाहे काहेसे कि सर्व मनुष्योंसे लज्जा करती इसजीवको प्रमाण कही है पर जन्म कोई इसप्रकार कहे कि लज्जा और दम्भ एकहैं तब ऐसे जन्मकाहेसे कि लज्जा और है और दम्भ और है पर जब कोई पुरुष ऐसा होवे कि उसको अन्तर बाह्य एक समान होवे तब यह अवस्था महाउच्चमहै और यह अवस्था उसहीको प्राप्तहोती है जिसके हृदय विषे भी पापकी मतसा न फुरे और जन्म कोई पुरुष पापकर्म करके इसप्रकार कहे कि जब भगवत् मेरे पापको जानता है तब गै और जीवोंसे किस निमित्त बुरावों सो यह बड़ी मूर्खता है काहेसे कि महाराज ने भी गुह्य बार्चाको छिपानाही विशेष कहा है शिवहुरि पाचवी विशेषता यह है कि जन्म इसका अवगुण इसलोक विषे प्रसिद्ध न हुआ तब महाराजको दयालु जानकर इसप्रकार

समझें कि उसकी दयाकरके परलोक विषे भी मेरा अवगुण प्रसिद्ध न होयेगा ताते अपने पापको दुरायकर महाराज की दयाके ऊपर शुद्धआशा राखे तब यही बड़ी विणेपता है ५ ॥ अथ प्रकृत करना इसका कि दम्भके भयकरके शुभ कर्मोंका त्यागकरना प्रमाणहै अथवा नहीं ॥ ताने जान तू कि मय शुभकर्म तीन प्रकारके कहे हैं सो प्रथम यह कि एक कर्म का सम्बन्ध केवल भगवत् के साथ होताहै जैसे भजन और व्रत और साधन जो जिज्ञासुजन करते हैं १ और दूसरा यह कि उन कर्मोंका सम्बन्ध लोगों के साथ अवश्यही होनाहै जैसे राजनीति की मर्याद विषे विचरना और देशों की पालना और रक्षा करनी २ चहुरि तीसरा कर्म इसप्रकार है कि उसका सम्बन्ध लोगों के साथभी होताहै और लोगों विषे उसका प्रवेश भी पहुँचता है और कर्म करनेवाले को भी उमका गुण प्राप्त होताहै जैसे कथा कीर्तन और शुभकर्म जो व्रत भजन आदिकहें ३ तब दम्भके भयकरके इनका त्यागकरना प्रमाण नहीं पर जब ऐसे कर्मों विषे किसी पुरुषको अचानकही दम्भका संकल्प फुरावे तब चाहिये कि उस मलीन फुरना को विचार करके निवृत्तकरे और भजन की शुद्ध मनसाको हृदय विषे दृढ़ करे चहुरि लोगों के देखने के निमित्त भजनको बढ़ावे घटावे नहीं और जिसप्रकार आगेही भजन करताहोवे तैसेही करतारहे तो भला है अथवा जब भजनकी मनसा कुछही न रहे और दम्भका संकल्प अल्पन दृढ़ होजावे तब यह तो भजनही नहीं कहाजाता पर जवनग इस पुरुषकी शुद्धमनसाको बीज स्थितहोवे तबनग ऐसे कर्मोंका त्याग न करे इसीपर फुजैलनाभी सन्नेने कहा है कि लोगोंकी दृष्टिके भयकरके शुभकर्मों को त्यागदेनाही दम्भहै और जो पुरुष जगत्को दिलावनेके निमित्तही भजन करे तब यह तो निस्मन्देह मनमुन होताहै पर यह मनरूपी बुष्ट ऐमा शत्रुहै कि जब और चलकरके भजनका त्याग नहीं परायमकरा तब ऐमा मरुत्य आन उपनायना है कि जब तू भजन करनाहै तब और लोग तुम्हको देखते हैं तब यह केवल दम्भहोता है ताने तू भजनही न त्यागकर पर जब तू मनकी आज्ञा मानकर धर्मीको सोदे और उमविषे वैश्वर भजनकरे तोभी तुम्हको इसप्रकार कहेगा कि लोग तुम्हको भजनवान जानने हे ताते मेरा भजन करना प्रमाण नहीं मो उमका उपाय यह है कि मनको दम्भ पर विचारकर फदिगे कि लोगोंकी जो विचरनी वृत्तिकी पनायना और दम्भ

ही भयकरके भजनका त्यागकरना सो यहभी केवल दम्भहै तबि लोगोका दे-  
 खना और न देखना मुझको एक समानहै काहेसे कि मुझको भजनके स्वभाव  
 विषेही स्थितहोना विशेष है और मैं इसप्रकार जानताहूँ कि मुझको कोई नहीं  
 देखता तातू दम्भके भयकरके भजनको त्याग करनेका दृष्टान्त यह है कि जैसे  
 कोई अपने टहलुवेसे कहै कि अमुक अनाजको अमनिया करले और वह द-  
 लुवा ऐसा जानकर अनाजको शुद्ध न करै कि जो इस अनाजविषे अकस्मत्  
 अमनिबा करने के पीछे भी कोई रोड़ी अथवा काकर रहजात्रै तब यह मती  
 प्रकार शुद्ध न होवेगा ताते मैं मूलही से अनाज शुद्ध करनेका उद्यम नहीं करता  
 तब उससे उसका स्वामी ऐमे कहता है कि हे मूर्ख ! जब तैंने मूलही से शुद्ध  
 करनेका उद्यम न किया तब क्या वह अनाज शुद्ध होजावेगा अर्थात् अत्यन्त  
 अशुद्ध रहेगा तैसेही इसजीवको भगवत् ने निष्कामा कर्मकी आज्ञा करी है पर  
 जब दम्भके भय करके शुभकर्मही न करै तब निष्कामा कर्षोकर होवेगा काहेसे  
 कि निष्कामता शुभकर्मों विषेही स्थितहोती है और इयाहीम सतकी वार्त्ता इस  
 प्रकार सुनीहै कि सर्वदा अपनी कुटी विषे पोथीका पाठकरते रहने से बहुरि जव  
 और किसीको द्वारपर आता देखते थे तत्र पोथीको उलटाय रखते थे सो इसका  
 तात्पर्य यहहै कि वे इसवार्त्ता को निश्चय जानते थे कि जव कोई पुरुष हमारे  
 मिलने को आया है तब उसके साथ अवश्यही कुछ वचन वार्त्ता करनीहोवेगी  
 ताते पोथीको उलटाय रखताही विशेषहै और हसनवसरी ने इस प्रकार कहाहै  
 कि जव जिज्ञासुजनोंको महाराज के प्रेमकरके रुदन आताथा तब निष्कामपुरुष  
 अपने मुखको डरायलेते थे इसकरके कि हमारे आसू चलने को और लोग न  
 देखे सो यह वार्त्ताही प्रमाण है काहेसे कि मुझा रुदनकरनेसे प्रकट रोगा कुछ  
 विशेष नहीं होता और उन्होंने भी लोगोके निमित्त रुदनका त्याग नहीं किया  
 पर अपनी प्रीतिके प्रवाहको गुप्त करलिमाहै और जव कोई पुरुष ऐसाहोवे कि  
 मार्ग विषे काटा और पत्थर देकर उठावे नहीं इसकरके कि लोग मुझसे  
 दयावान् जानेंगे सो यह अत्यन्त पुरुषार्थ की हीनता है काहेसे कि ऐमा पुरुष  
 लोगोके देखते से अपने चित्त विषेही गयान् होता रहादि और इमही मन्त्र  
 की अधिकता करके गनन नहीं करमन्त्र सो यह अवस्था कुछ विशेष नहीं होती  
 ताते चाहिये कि प्रीतिगान् अपने हृदय से दम्भ का निवारण को और मन्त्र

को त्याग न देवें तौ भला है बहुरि हमरा कर्म जो इम प्रकार वर्णन किया कि  
 अपर्येही उसका मन्त्र्य लोको के साथ होता है जैसे राजनीति और देशोंकी  
 पालना कर्त्नी सो जब यह पुरुष राजनीति विषे धर्म और विचार की मर्याद  
 समुक्त विचरे तत्र यह भी उत्तम भजन होता है और जब धर्म से हीन होजाये  
 तब इसही को महापाप कहा है ताते जिस पुरुष को ऐसी प्रतीति दृढ़ न होवे  
 कि गेरा मन राजनीति विषे विचारकी मर्याद सहित न विचरेगा तब उसको  
 राज्यादिक व्यवहार को अंगीकार करना प्रमाण नहीं काहे से कि जब राजधर्म  
 विषे अनीति सहित विचरे तब महाअपराध को प्राप्त होता है और यह राज्यव्य-  
 षहार नेम और व्रतोंकी नाई नहीं काहे मे कि राजन के नियम और व्रतों विषे  
 इतमनको मूलहीसे कुछ प्रमत्तना नहीं मामनी पर लोकोके देखनेकरके प्रसन्न  
 ताको पाता है और राजव्यवहार विषे सर्व भोग और मानादिकों की अधिकता  
 होती है ताते इस जीविका मन शीघ्रही वृद्धिस्यक्त न हो जाता है इमी कारण से  
 कहा है कि राजनीति विषे कोई विरलाही पुरुष विचार की मर्यादमें स्थित रहता  
 है और यह अवस्था उसही को प्राप्त होती है जिमने आगेही अपने मनकी  
 परीक्षा करली होवे पर यद्यपि यह मन राजधर्म से आगेही दिवावे कि में जगत्  
 की पालना विषे मलीप्रकार विचरूंगा और भोगों विषे आसक्त न होऊंगा तोभी  
 जिज्ञासुजन को भय ओ दोषदृष्टि करनी विषे यह कहे मे कि मन यहभी मन  
 का छेद न होये और जब सिंहासन पर जाय बैठे तब स्थित न रहे ताते सिंग  
 बुद्धि विना ऐसे व्यवहारको अंगीकार करना प्रमाण नहीं इमीपर अव्यक्त मन  
 ने एक अपने गिनापी से कहा कि जब तुम्हको दो पुरुषों विषे सुविधा करे  
 तोभी अंगीकार न करना बहुत जय महापुरुषने पीछे अव्यक्तको सर्व देनाका  
 राज्य प्राप्त हुआ तब उम प्रीतिमान ने कहा कि तुम मुझको तो वर्जित करे गे  
 फिर तुमने राज्यको क्यों अंगीकार किया तब उन्हे ने कहा कि में तुम्हको तो  
 अवर्जित करता हूँ काहे मे कि जो पुरुष सिंहासन पर बैठे न्याय न करे  
 तब यह महाप्राज्ञ के दरवासे त्रिभुवनेवाँ पर अज्ञान नीने जो उमको राज्यमे  
 वर्जित किया था और आप राज्यको अंगीकार किया तो उमका दृग्मन यह है  
 कि जैसे रोह पुरुष अपने पुत्रको उम प्रकार करे कि तु जनके प्रवर्तित प्रदेग  
 न कर काहे मे कि ननु नेलेकी विद्या विना नयी विषय प्रवृत्त होगा उत्तरी

ही हृवजोवेगा पर जब वह पुरुष आपा तैरनेकी विद्या जानताहोवे तब चसफे तो नदीका मय कुंछ नहीं होता और सुगमही उल्लविन होजाता है वहुदि नर वह बालकेमी उसको देखकर नदीके पूत्राह विपे प्रवेशकरे तब वह तो निस्संदेह हृवजाता है तैसेही जो पुरुष राजव्यवहार विपे विचारकी मर्यादा सहित न विचरे तब दण्डका अधिकारी होता है ताते ऐसे पुरुषको राजधर्म का अगीकार करना अयोग्य है पर जो कोई ऐसा विचारवानहोत्रे कि जब कोई और पुरुष भलीप्रकार न्याय करनेवाला आवे तब उसके साथ ईर्ष्या और वैरभाव न करे और उसको देखकर अधिक प्रसन्नहोवे और इस मयसे रहितहोवे कि इसके राज्यके मेरा राज्य नष्टहोवेगा तब जानिये कि इसने धर्मही के निमित्त राज्यको अगीकार किया है २ वहुदि तीसरा कर्म इसप्रकारका कहा है कि लोगोंको शुभमार्ग का उपदेश करना और वचन वार्त्ताकरके जीवोंका सशय निवारण करना सो यद्यपि यह कर्म भी अधिक विशेष है तो भी इस विपे मनको दीर्घ प्रसन्नता प्राप्त होती है और दम्बका प्रवेश अधिक होजाता है और यद्यपि गीतिके सम्बन्धकरके यह कर्म भी राजधर्मके निकटहोता है तो भी इस विपे इतना भेद प्रकट है कि शुभमार्ग विपे उपदेश सुननेवालेको भी लाभदायक है और कहनेवालेको भी गुणदायक होता है सो राजका व्यवहार इसप्रकार नहीं होता पर जब किसीको इस धर्म विपे दम्बकी मनसा उपजआवे तो भी विचारकरके इसका त्याग करना प्रमाण है पर केते जिज्ञासुजनोंकी ऐसी अवस्था हुई है कि जब उनसे कोई पुरुष प्रश्नोत्तर पूछताथा तब इसप्रकार कहते थे कि अमुक बुद्धिमानसे पूछलो काहेसे कि हम इस वार्त्ताको भलीप्रकार नहीं जानते इसीपर बशरहाकी सतने पोथियों का सङ्क धरती विपे गाढ़दियाथा और कहनेलगे कि मैं अपने हृदय विपे उपदेशरूपी भोगकी अभिलाषा देखताहू ताते मैंने वचन वार्त्ताको त्याग दिया है और जब मैं अपने हृदयको इस अभिलाष से रहित देखता तब मुझको उपदेश करना प्रमाणहोता ऐसेही और सन्तजनों ने भी कहा है कि उपदेश करना भी मनका भोग है फाहसे कि जिस पुरुष के हृदय विपे मान और बढ़ाई की प्रीति होवे तब उसको जगत का मुखिया होनाभी अयोग्य है इसीपर उमर सन्त से किमी प्रियतमने पूछाया कि जो तुम आज्ञादेवो तो मैं लोगोंको शुभमार्ग का उपदेश करू तब उन्हो ने कहा कि जो इम उपदेश करने करके तेरे हृदय विपे

मानकी अधिकता होजावे और वढ़ाई का पवन तुम्हको उड़ालेजावे तब तेरा अक्राज होवेगा ताते मेरे चित्त विषे यही भय आता है इसी पर इनाहीम सन्त ने भी कहाहै कि जब तू अपने हृदय विषे बोलने की अभिलाष देखे तब तुम्हको मौनकरना विशेषहै और, जब मौनको अधिक देखे तब वचन वार्त्ता करनी विशेषहै पर मेरे चित्त विषे इसप्रकार भासताहै कि उपदेश करनेवाला पुरुष अपने हृदय विषे विचार कर देखे और इस वार्त्ता को मलीप्रकार करे कि जब सात्त्विकी मनसा और दम्भका सकल्प दोनों मिलेहुये हों तब उपदेश का त्याग न करे और यत्रकरके सात्त्विकी मनसाको दृढ़करे और दम्भ के सकल्पका निवारणकरे काहेसे कि उपदेशका करना भी व्रत और भजनके नेमकीनाई कुछ दम्भके, सकल्प करके त्यागना प्रमाण नहीं पर शुद्ध मनसाके बीज को पृष्टकरे और दम्भही निवृत्त किया चाहिये वृद्धि जब राजधर्म विषे कुछ भी मनसा की मलिनता होवे तब राजव्यवहार को त्यागदेना प्रमाण है काहेसे कि राजनीति विषे मान और भोगों की अधिकताकरके शीघ्रही मलिनता बढ़जाती है और शुद्धमनसाका बीज तत्कालही नष्ट होजाता है इसीकारण से जब अवृहनीका सन्त को राजाका प्रधान करनेलगे थे तब उन्होंने कहा कि मैं प्रधानता का अधिकारी नहीं वृद्धि राजा ने कहा कि तुम तो सम्पूर्ण विश्वावाचहो और नीति अनीतिके विचारने योग्यहो ताते तुमही उत्तम अधिकारीहो तब उन्होंने कहा कि जब मैं सत्यकहताहू तब निस्सदेह अधिकारी न हुआ और जब झूठ कहताहू तब झूठा मनुष्य राजनीति का अधिकारी नहीं होता तात्पर्य यह कि यद्यपि ऐसे कहकर उन्होंने राजधर्मका अर्गीकार न किया पर सर्व आयुष्य पर्यंत लोगोंको धर्मका उपदेश करतेरहे और वचन वार्त्ताका त्याग नहीं किया वृद्धि जब उपदेश करनेवाले के हृदयविषे कुछ भी धर्मकी मनसा न रहे और सर्वथा दम्भकी अधिकता विषे आसक्त होजावे तब उसको उपदेशका त्याग करनाही विशेष कहा है पर जब वह पुरुष मुझसे पूछे कि मैं उपदेश करना हू अथवा त्यागहू तब मैं इस प्रकार विचार की दृष्टिकरके देहू कि जब उसके वचन विषे लोगोंको धर्मके मार्गका लाभ कुछ न होवे जैसे पत्नीवचनों की चतुराई अथवा मन और पन्नोंका विवाद वर्णन होने अथवा समाधि जीवोंको भगवत्की दया का वसानकरके सुनावे और पारोंविषे उनकी निन्दाकरे तब उपदेश न हो

वचन-वार्त्ताक्रांतिमाग क्रान्तिही प्रमाण कहाँ कहिये कि उमके मोती रहने विपे  
 लोगोको गुण होवियाँ और वह भी दम्भी और मानसे भुक्त रहेगा वदुष्टि जिसका  
 वचन धर्मकी मर्यादा अनुसार होवे और लोग उसको निष्काम जानकर धर्म  
 का अगीकार करें तब मैं ऐसे पुरुषको उपदेश करने के त्यागकी धावा न देऊंगा  
 काहेसे कि यद्यपि उपदेश करने विपे दम्भीकी मनसा करके उसको अवगुणही  
 होता है पर बहुत पुरुषों को उसके वचन सुनकर धर्मकी प्राप्ति होती है और जब  
 महापुरुष उपदेशको त्याग देवे तब उसको तो प्राप्ति ही गुण बला भवे पर और  
 बहुत मनुष्योंकी हानि होती है ताते ऐसे जान तू कि स हस पुरुषोंका लाभ एक  
 पुरुषको हानिसे विशेषे इमी कारणसे तो एक उपदेश करनेवाले दम्भीको सहस्र  
 जिज्ञासुओं पर निन्दावर क्रिया चाहता हू इसीपर महापुरुषने कहा है कि जिज्ञासु  
 जनोको सिकामी परिहरे तो भी धर्महीकी प्राप्ति होती है और वह पंडित अपने  
 धन और मिनादिके प्रयोजन ही को पाते हैं ताते ऐसे पुरुषोंकी इतनीही धावा  
 करू कि तुम भ्रम उपदेशकी त्याग न करो पर यथार्थक्रिदमहीको निवृत्त करने  
 में तुम्हारी भलाई है और पुस्पाथकरके निष्काम श्रद्धा विपे दृढ़ होवो प्रथम आ  
 प्रही उत्तम उपदेशको अगीकार करो और भगवत्के मय विपे स्थित होवो वदुष्टि  
 और लोगोको उपदेश करके भगवत्के मय दो पर जिव कोई इस प्रकार प्रश्न  
 करे कि उपदेश करते तालोकी मनसा शुद्ध और निष्काम क्योंकर जानिये तब  
 इसका उत्तर यह है कि शुद्ध मनसा तब ही जानी जासकी है जब इस पुस्तकी  
 श्रद्धा यही होवे कि किसी प्रकार ये मनुष्य भगवत् के मार्ग को अगीकार करें  
 और प्रायासे विकल होवे तो यह केवल दया होती है पर जब कोई ऐसा पुरुष  
 और भी आय प्रकटे कि उसके उपदेश करके जीवों को धर्म का अधिक लाभ  
 होवे और लोग उमपर विशेष प्रतीति सलें तब चाहिये कि इसकाके यह पुरुष  
 अधिक प्रमत्त होवे सो इसका दृष्टात यह है कि जैसे कोई मनुष्य अन्य रूप विपे  
 गिरावे और कोई पुरुष दया करके उसकी ब्राह्मणनिकासी चाहे पर जब इसग  
 पुरुषमी उसके निकासने विपे आय सहाय करे तब प्रथम पुरुषको निस्सदेह  
 प्रसन्नता प्राप्त होती है तैसेही जब उपदेश करनेवाला मनुष्य और किसी विपेकी  
 जनको देखकर प्रसन्न न होवे तब जानिये कि यह पुरुष उपदेश करके आपसे  
 पुजाया चाहता है और भगवत् के मार्ग विपे लगाया नहीं चाहता वदुष्टि शुद्ध

मनसोका द्रुमंग लक्षण यहै कि जब समा विषे पवन वाता करतहुये धनवाचा अथवा राजालींग आय प्राप्तहोवै तौमी यवार्थ चत्वन का त्याग न करै और उनका ऐश्वर्य देखकर मनुष्य न जाने और अपने स्वभावके अनुमा यवार्थ चत्वनही पर दृष्टिराखै तब जानिये कि इस पुरुषकी मनसा निष्कामहै तारथ्य यह कि उपदेश करनेवाला पुरुष प्रथमही ऐमे लक्षणोंको अपने चित्तविषे विचारकर देखै सो जब ऐसा चिह्न आप विषे कोई न जानै तब निश्चय इत्तप्रकार करै कि भौं शुद्ध मनसासे हीनहू और गुरे चित्त विषे प्रकटही दम्भ है और जब इत्तप्रकार देखै कि मुक्तको इस दम्भ विषे दोष दृष्टि आती है तब जानिये कि इसके हृदयमें शुद्ध मनसाका बीज भी प्रकटहै ताते पुरुषार्थ करके निष्काम श्रद्धाको बढ़ावै और दम्भसे रहितहोवै चहुरि ऐमे जान तू कि इसजीवको केते अपमरों विषे भजन करतेहुये और मनुष्यों के मिलाप करके पूसन्नता भी प्राप्त होती है परउसको दम्भ नहीं कहते सो पूसन्नता यह है जैसे जिज्ञासुजनके हृदय विषे अरुमात्र कुछ सगय उपजआये और उसही सशय करके भजन विषे भिक्षेपता आन प्राप्तहोवै चहुरि जब किमी और सात्त्विकी मनुष्यको देखै तब वह सशय निवृत्त होजावे और चित्तकी वृत्ति पूसन्नता सहित भजन विषे दृढ़होवै तब वह दम्भ नहीं कहा जाता जैसे कोई पुरुष अपने गृह विषे आलस्यनिद्रा को त्याग त सकै अपना सम्बन्धियों के वचन सुनताहुआ भिक्षेपता को प्राप्तहोवै चहुरि जब अपने गृह से निकलकर कथाकीर्त्तनकी और विषे जाय चेटे तब श्रीधरी भजनकी रुचि और पूसन्नता उपज आतीहै और वह सत्रही भिक्षेपता दूर होजाती है कहेमे कि विराने स्थान विषे निद्राकी अधिकता भी नहीं रहती और भजनवानों का देखकर यह भी जायत और भजन विषे दृढ़ होजाता है। ऐमे मनी जाय मयभी पुरुषों को देखकर इसको भी सगयकी रुचि उपजआती है तारथ्य यह कि ऐसी प्रसन्नता और भजनकी अधिकता सात्त्विकी भगति के प्रयोगकरके बृष्ट होजाती है और इम क्रियाको दग्धा कर्म नहीं कहन पर यह मन गूने अरुमात्र विषे भी इत्तप्रकार सशय वान डानता है कि यह करतुम दम्भके मन्त्र करके कर्मा दे ताते यह तेरा कर्म फलदायक न होगा मो इमहीका नाम मन का दम्भ कहन है काहमे कि इम मनुष्यके हृदय विषे सगय डानकर शुभकर्म मे बर्त्तन क्रिया चाहतहै ताते जिज्ञासुको चाहिये कि विनामकरके इत्तप्रकार जाने कि



निस्संदेह दंभ के आशय करके होता है और एक कर्म सात्त्विकी संगति के प्रवेशकरके होता है सो इन दोनों को अवश्यही भिन्न किया चाहिये पर इनकी भिन्नताका चिह्न यह है कि जब लोग इसको न देखें और यह पुरुष उनको देखता होवे तब ऐसे स्थानविषे प्रसन्नतासहित भजनकरना उनकी सगतिका गुण है और जब परस्पर एक दूसरे को देखतेहोवें तोसी विचारकरके दम्भ और सात्त्विकी संगति के प्रवेशको भिन्नकरे बहुरि शुद्धमनसा करके दम्भकी अभिलाषाको दूरकरे और संगय से रहित होकर भजन विषे स्थितहोवे काहे से कि इस मनुष्यका यह भी स्वभाव है कि जब किसी पुरुषको भय या प्रीति सयुक्त रुदन करता हुआ देखता है तब इसका चित्त भी कोमल हो आता है और वही मचन सुनकर रुदन करनेलगता है सो यद्यपि एकान्त ठौर विषे ऐसे नहीं होवे तोभी इस कर्मको दंभ नहीं कहते काहेसे कि रुदन करनेवाले को देखकर अवश्यही इसका चित्त द्रवीभूत होहीजाता है पर इस विषे भी इतना भेद है कि आंसू का चलना हृदयकी कोमलता करके होता है और ऊर्ची पुकार करनी अथवा धरती पर गिरपड़ना दम्भका कारण है ताते चाहिये कि जब अकस्मात् ऊर्ची पुकार मुखसे निकलजावे अथवा धरतीपर गिरपड़ाहोवे तब शीघ्रही सचेतहोकर प्रीति के प्रवाह को सकुचायलेवे और जिसके चित्त विषे यह सशय आन उपजे कि मत यह लोग मुझको इसप्रकार कहें कि इसके चित्त विषे वास्तव प्रीति कुछ नहीं ताते तुरन्तही सचेतता को प्राप्तहुआ है सो जब ऐसा जानकर ऊचेस्वर से पुकार करतारहे अथवा धरतीपर गिरारहे तब निस्सन्देह दम्भी होता है तात्पर्य यह कि सवही शुचि कर्म दम्भकरके भी होते हैं और सात्त्विकी संगति करके भी उनकी रुचि उपज आती है ताते जिज्ञासुजन सदैवकाल अपने मनकी ओर देखतारहे और दम्भ के भयसे रहित न होवे इसीपर महापुरुष ने कहा है कि शुभ कर्मों विषे नानाप्रकार करके दंभकी मनसा उपज आती है ताते जब अपने मन विषे दम्भकी अभिलाषाको देखे तब इसप्रकार विचार करकेजाने कि भगवत् भरे अन्तरकी मलिनताको प्रकटही जानता है ताते जब मैं अशुद्ध मनसा करूंगा तब निस्संदेह महाराज के दण्डका अधिकारी होऊंगा ऐसेही जानकर दम्भकी निवृत्तकरे और इस वचनको चित्त विषे स्मरणकरे जैसे महापुरुषने कहा है कि जिस एकाग्रता विषे दम्भकी अभिलाषा गिलीक्षिवे तब उस एकाग्रतामे भगवत्

ही रक्षकैरे सो इमका अर्थ यह है कि मन तो चपल होवे और बाहरके अंगों काफे आपको भजनवान् दिखाने तब वह कैवल देमी कंठाता है बहुरि ऐसे जान तू कि भजन और हृदयकी एकप्रभाविये तो अबश्येही निष्काम होना चाहिय और दम्भको दूरकाना प्रमाण है पर ऐनेही और भी केने सात्त्विकी कर्म है कि जब उनके उत्तम कर्तों को प्राप्त हुआ चाहे तो भी निष्काम होना विशेषतः जैसे किमी मित्र अथवा किसी अर्थीके मनोरथ को पूर्णको तब इमकेफार निष्काम होवे कि बहुरि उससे उपकार और आनी स्तुति की चाह न करे अथवा जब किसी को विद्यापढावे तब ऐमी अभिभाषा न करे कि यह विद्यार्थी मेरे काम आयेगा अथवा टहल करेगा अथवा मेरेपीछे चलेगा सो ऐमी मनसाभी सकाम होनी है और धर्मके लाभको निष्कलन करडालनी है पर जब इमकी मनसा सेवा करीने की न होवे और वह आपही टहल सेवा करना रहे तो भी उत्तम धार्ता यह है कि उसकी सेवा पूजाको अंगीकार न करे और जब इमकी गनेसा विनाही वह पुरुष भीति सयुक्त आपही सेवा करे बहुरि जब बर्धन करिये तो भी त्यागान देवे तब विद्या पढ़ानेवाले का लाभ निष्कलन नहीं होना पर जब अभिमानसे रहित होवे और आपकी स्वाभी न जाने तब दोनों पुरुषों को अपनी शुद्धभावना का फल प्राप्त होता है सो यद्यपि यह धार्ता निस्सन्देह है पर केने विद्यवानों ने अपने विद्यार्थी की पूजामे अधिक मय किया है जैसे एक विद्यावान् देव संयोगपाकर कूपविये गिराया तब केते पुरुष गिल करिस्मे देता हरसम को बाहर निकालने लगे तब उमके कूपमेंमेही भगवत् ही दुहाई देकर कहा कि हे भाई ! जिसने मुझमे कुछ विद्या पढ़ी होवे सो वह इम रस्मी में दाय न लगाये ताते उनका प्रयोजन यहथा कि किमी प्रकार मेरी निष्कामना का फल नष्ट न होवे ऐमेही एक और पुरुष भिक्षुयासौरी मन्वके पास कुछ भेट लेआयाथा जब उन्होंने ने अंगीकार न किया बहुरि उम पुरुषने कहा कि मेने सो तुम्हारे मुनमे धनवार्ता कुछ नहीं सुनी तुम इम पूजाको अंगीकार क्यों नहीं करने तब उन्होंने ने कहा कि तेरागई सर्वदा यहा आकर धनन रातो सुनराहे ओग मे इम कथ डरनाह कि मत मेरी पूजालेफा योगिन उमके साथ अधिक प्रीतिकरे तब यह धार्मी अयोग्य है बहुरि एक और पुरुषभी भिक्षुगोंगोरीजी के पास दो धान गोदर फे भेदुगे लायाथा ओग इमप्रकार दृष्टनेगगा कि भोग पिनातुशाम विपन्न

निस्संदेह दम के आशय करके होता है और एक कर्म सात्त्विका सगति के प्रवेशकरके होता है सो इन दोनों को अवश्यही भिन्न किया चाहिये पर इनकी भिन्नताका चिह्न यह है कि जब लोग इसको न देखें और यह पुरुष उनको देखता होवे तब ऐसे स्थानविषे प्रसन्नतासहित भजनकरना उनकी सगतिका गुण है और जब परस्पर एक दूसरे को देखतेहोवें तौसी विचारकरके दम्भ और सात्त्विकी सगति के प्रवेशको भिन्नकरे बहुरि शुद्धमनसा करके दम्भकी अभिलाषा को दूरकरे और संगय से रहित होकर भजन विषे स्थितहोवे काहे से कि इस मनुष्यका यह भी स्वभाव है कि जब किसी पुरुषको भय या प्रीति सयुक्त रुदन करताहुआ देखता है तब इसका चित्त भी कोमल होआता है और वही वचन सुनकर रुदन करनेलगत है सो यद्यपि एकान्त ठौर विषे ऐसे नहीं होवे तौगी इस कर्मको दम नहीं कहते काहेसे कि रुदन करनेवाले को देखकर अवश्यही इसकाचित्त द्रवीभूत होहीजाता है पर इस विषे भी इतना भेद है कि आंसू का चलना हृदयकी कोमलता करके होता है और ऊंची पुकार करनी अथवा धरती पर गिरपड़ती दम्भका कारण है ताते चाहिये कि जब अकस्मात् ऊंची पुकार मुखसे निकलजावे अथवा धरतीपर गिरपड़ाहोवे तबशीघ्रही सचेतहोकर प्रीति के प्रवाह को सकुचायलेवे और जिसके चित्त विषे यह सशय आन उपजे कि मत यह लोग मुझको इसप्रकार कहें कि इसके चित्त विषे वास्तव प्रीति कुछ नहीं ताते तुरन्तही सचेतता को प्राप्तहुआ है सो जब ऐसा जानकर ऊंचेस्वर से पुकार करतारहे अथवा धरतीपर गिरारहे तब निस्सन्देह दम्भी होता है तात्पर्य यह कि सबही शुचि कर्म दम्भकरके भी होते हैं और सात्त्विकी सगति करके भी उनकी रुचि उपजआती है ताते जिज्ञासुजन सदैवकाल अपने मनकी ओर देखतारहे और दम्भ के मयसे रहित न होवे इसीपर महापुरुष ने कहा है कि शुभ कर्मों विषे नानाप्रकार करके दम्भकी मनसा उपजआती है ताते जब अपने मन विषे दम्भकी अभिलाषाको देखे तब इसप्रकार विचार करकेजाने कि भगवत् भरे अन्तरकी मलिनताको प्रकटही जानना है ताते जब मैं अशुद्ध मनसा कर्मों तब निस्सन्देह महाराज के दण्डका अधिकारी होऊंगा ऐमेही जानकर दम्भको निवृत्तकरे और इस वचनको चित्त विषे स्मरण करे जैसे महापुरुषने कहा है कि जिस एकाग्रता विषे दम्भकी अभिलाषा मिलीहोवे तब उस एकाग्रतामें भगवत्

ही रक्षाकरै सो इमका अर्थ यहै है कि मन तौ चपल होवे और बाहरके अंगों  
 करके आपको भजनवाँ दिखौ तब वह केवल देवी कदाता है बहुरि ऐसे जान  
 तू कि भजन और हृदयकी एकत्रताविषे तो अवश्यही निष्काम होना चाहिये  
 और देवको दृग्गता प्रमाण है पर ऐसीही आ भी कहे माँखि की कर्म है कि  
 जब उनके उत्तम फलों को प्राप्त हुआ चाहौ तो भी निष्काम होना विषेप है जे  
 किमी मित्र अथवा किसी अर्थीके मनोरथ को पूर्ण करे तब इम प्रकार निष्काम  
 होवे कि बहुरि उमसे उपकार और आनी स्तुति की चाह न करे अथवा जब  
 किसी को विद्यापदार्थ तब ऐसी अभिजापा न करे कि यह विद्यार्थी मेरे काम  
 आंगी अथवा टहल करेगा अथवा मेरे पीछे चलेगा सो ऐसी मनसो भी सकाम  
 होनी है और धर्मके लाभको निष्कल कर डालनी है पर जब इमको मनसा सेवा  
 करौने की न होवे और वह आपकी दृहन सेवा करना रहे तो भी उत्तम वार्ता  
 यह है कि उसकी सेवा पूजाको अंगीकार न करे और जब इमकी मनसा वि  
 नाही वह पुरुष भीति सयुक्त आपकी सेवा करे बहुरि जब चर्चित करिगे तो भी  
 त्याग न देवे तब विद्या पदानेवाले का लाभ निष्कल नहीं होता पर जब अ  
 भिमानसे रहित होवे और आपको स्वामी न जानै तब दोनों पुरुषों को अपनी  
 शुद्ध भावना का फल प्राप्त होता है सो यद्यपि यह वार्ता निस्तन्देह है पर केने  
 विद्यार्थियों ने अपने विद्यार्थी की पूजामे अधिक मय किया है जेने एक विद्या  
 वान्द्वय संयोगपा कर रूपाविषे गिराया तब केने पुरुष मिल करे सिमे डलि पर धम  
 को बाहर निकालने लगे तब उमो कृपमें वेही भगवत् ही दुहाई देकर कहा कि  
 हे भाई ! जिमने मुझमे कुछ विद्या पढ़ी होवे सो वह इम रम्मी में दाय न लगावे  
 ताते उनका प्रयोजन यहथा कि किमी प्रकार मेरी निष्कामता का फल नष्ट न  
 होवे ऐसी एक और पुरुष भिक्षुओंसोरी सन्तके पास कुछ भेट ले जायाया जब  
 उन्हों ने अंगीकार न किया बहुरि उम पुरुषने कहा कि मैंने तो तुम्हारे मुखमे  
 बचनवाँता कुछ नहीं सुनी तुम इम पूजाको अंगीकार क्यों नहीं करते तब उन्हों  
 ने कहा कि नेगमाई सर्वदा यहाँ आकर बचन वार्ता सुनवाँते और मैं इम फल  
 डरना कि मन मेरी पूजालेकर मेराचित्त उमके साथ अधिक प्रीति है तब यह  
 वार्ता अयोग्य है बहुरि पर और पुरुष भी भिक्षुओंसोरी के पास दो धान पा  
 हर के भेट दिये लाराया और इमप्रकार कहनेलगा कि मेरा पिता तुम्हारा विपन्न

निस्संदेह दंभ के आशय करके होता है और एक कर्म सात्त्विकी संगति के प्रवेशकरके होता है सो इन दोनों को अवश्यही भिन्न किया चाहिये पर इनकी भिन्नताका चिह्न यह है कि जब लोग इसको न देखें और यह पुरुष उनको देखता होवे तब ऐसे स्थानविषे प्रसन्नतासहित भजनकरना उनकी संगतिका गुण है और जब परस्पर एक दूसरे को देखतेहोवें तोसी विचारकरके दम्भ और सात्त्विकी संगति के प्रवेशको भिन्नकरे वदुरि शुद्धमनसा करके दंभकी अभिलाष को दूरकरे और संशय से रहित होकर भजन विषे स्थितहोवे काहे से कि इस मनुष्यका यह भी स्वभाव है कि जब किसी पुरुषको भय या प्रीति संयुक्त रुदन करताहुआ देखता है तब दंभका चित्त भी कोमल होआता है और वही बचन सुनकर रुदन करनेलगतता है सो यद्यपि एकान्त ठौर विषे ऐसे नहीं होवेतोभी इस कर्मको दंभ नहीं कहते काहेसे कि रुदन करनेवाले को देखकर अवश्यही इसकाचित्त द्रवीभूत होहीजाता है पर इस विषे भी इतना भेद है कि आंसू का चलना हृदयकी कोमलता करके होता है और ऊंची पुकार करनी अथवा धर्ती पर गिरपड़ना दम्भका कारण है ताते चाहिये कि जब अकस्मात् ऊंची पुकार मुखसे निकलजावे अथवा धर्तीपर गिरपड़ाहोवे तबशीघ्रही सचेतहोकर प्रीति के प्रवाह को सकुचायलेवे और जिसके चित्त विषे यह सशय आन उपजे कि मत यह लोग मुझको इसप्रकार कहें कि इसके चित्त विषे वास्तव प्रीति कुछ नहीं ताते तुरन्तही सचेतता को प्राप्तहुआ है सो जब ऐसा जानकर ऊचेस्वर से पुकार करतारहै अथवा धर्तीपर गिरारहै तब निस्सन्देह दम्भही होता है तात्पर्य यह कि सवही शुचि कर्म दंभकरके भी होते हैं और सात्त्विकी संगति करके भी उनकी रुचि उपजआती है ताते जिज्ञासुजन सदैमकाल अपने मनकी ओर देखतारहै और दम्भ के भयसे रहित न होवे इसीपर महापुरुष ने कहा है कि शुभ कर्मों विषे नानाप्रकार करके दम्भकी मनमा उपजआती है ताते जब अपने मन विषे दम्भकी अभिलाषाको देखे तब इसप्रकार विचार करकेजाने कि भगवत्परे अन्तरकी मलिनताको प्रकटही जानता है ताते जब मैं अशुद्ध मनमा करूंगा तब निस्संदेह महाराज के दण्डका अधिकारी होऊंगा ऐमेही जानकर दंभको निवृत्तकरे और इस बचनको चित्त विषे स्मरण करे जैसे महापुरुषने कहा है कि जिस प्रकारना विषे दम्भकी अभिलाषा मिलीदेवे तब उसे एकामनामे भगवत्

ही रक्षा करे सो इमका अर्थ यह है कि मन तो चपल होवे और बाहरके अंगों  
 करके आपको भजनवान् दिखाने तब वह केवल देमी कंठाता है बहुरि ऐसे जानें  
 तू कि भजन और हृदयकी एकग्रताविषे तो अक्षयही निष्काम होना चाहिये  
 और देमको दृग्करना प्रमाण है पर ऐसीही ओ भी कहे सारिणी कर्म है कि  
 जब उनके उत्तम फलों को प्राप्त हुआ चाहै तो भी निष्काम होना विशेष है जेमे  
 किसी मित्र अथवा किसी अर्थके मनोरथ को पूर्णको तब इमकार निष्काम  
 होवे कि बहुरि उमसे उपकार और आनी स्तुति की चाह न करे अथवा जब  
 किसी को विद्यापदार्थ तब ऐसी अभिलाषा न करे कि यह विद्यार्थी मेरे काम  
 आया अथवा टहल करेगा अथवा मेरे पीछे चलेगा सो ऐसी मनसागी संकाम  
 होनी है और धर्मके लाभकी निष्कलन कण्डालनी है पर जब इमकी मनसा सेवा  
 करीने की न होवे और वह आपही टहल सेवा करनी रहे तो भी उत्तम वार्त्ता  
 यह है कि उसकी सेवा पूजाको अंगीकार न करे और जब इमकी मनसा वि-  
 नाही वह पुरुष भीति सयुक्त आपकी सेवा करे बहुरि जब बर्जित करे तो भी  
 त्यागने देवे तब विद्या पदानेवाले का लाभ निष्कलन नहीं होना पर जब अ-  
 गिमानसे रहित होवे और आपको स्वामी न जानै तब दोनों पुरुषों की अपनी  
 शुद्धभावना का फल प्राप्त होता है सो यद्यपि यह वार्त्ता निस्मन्देह है पर केते  
 विद्यार्थियों ने अपने विद्यार्थी की पूजामे अधिक मग किया है जेमे एक विद्या-  
 वान् देव संयोगपाकर कृपविषे गिराथा तब केने पुरुष मिल कर भग्ने डेलि कर सम  
 को बाहर निकालने लगे तब उमके कृपमें ही भगवत्की इहाई देकर कहा कि  
 हे भाई ! जिसने मुझमे कुछ विद्या पढ़ी होवे सो वह इम रम्मी में दाथ न गगारे  
 ताने उनका प्रयोजन यहथा कि किमी प्रकार मेरी निष्कामता का फल नष्ट न  
 होवे ऐसी एक और पुरुष सिफयागोरी मन्त्रके पान मुख्यमें ले आयाथा जब  
 उन्हों ने अंगीकार न किया बहुरि उम पुरुषने कहा कि मैंने तो तुम्हारे मुखमे  
 पवनवाचा कुछ नहीं सुनी तुम इम पूजाको अंगीकार करो नहीं करने तब उन्हों  
 ने कहा कि नेराभाई मर्दाना यहाँ आकर पवन वार्त्ता सुनवाहे और मे इम करक  
 डरताहि कि मत तेरी पूजानेकर गेगवित्त उमके माथ अरिक् प्रीतिके तब यह  
 वार्त्ता अयोग्य है बहुरि एक और पुरुषभी सिफयागोरी नी के पान तो थान गो-  
 दार के गोहृये लायाथा और इमप्रकार कहनेमगा कि मेग पिता तुम्हारा पिपनग

था, और वह शुद्ध ही व्यवहार, करता था सो यह धन भी शुद्ध वृत्ति करके उपजा  
या, हुआ है ताते तुम इसको अगीकार करो तब मित्रयामोगिनी ने उम धनकी  
लेराया, बहुरि जब वह पुरुष अपने गृहविषे गया तब इन्होंने अपने पुत्रके हाथ  
सबही धन उसकी ओर भेजा और इम प्रकार कहलाभेता कि मेरी और तेरे पिता  
की प्रीति भगवत्के निमित्त थी ताते अबतू धनरूपी पटल काहे को डालना  
है बहुरि जब उनका पुत्र अपने गृहविषे आया तब अधैर्य होकर पितासे कहने  
लगा कि तुम्हारा हृदय पाथर से भी अधिक कठोर है काहेमे कि हमारा कुटुम्ब  
भी बहुत है और अत्यन्त निर्द्धनताईको भी तुम सर्वदा देखते हो पर हमारे ऊपर  
तुमको दया नहीं उपजती तब उन्हें ने कहा कि तुमको खान पातादिक सुत्र  
चाहिये और मैं परलोक की ताडना से डरता हू ताते मेरे हृदय विषे ऐसी सा  
गर्भता नहीं कि तुमको सुखेन राखू और उस दडको अपने शीशपर धर इसी  
प्रकार विनेरी जनको चाहिये कि अपने सेवक से सेवापूजाकी आशा न राखे  
और भगवत्की प्रसन्नता को चाहे बहुरि अपना भजन साक्षण भी सेवकके  
आगे प्रकट न करे काहे से कि इसकी भगवत्के निकट सत्मात्त और आदर  
चाहिये है और और लोगोंका सत्मात्त इसके किसी काम न आवेगा बहुरि जब  
माता पिता की सेवा करे तौ भी भगवत्की प्रसन्नता चाहे और उनके निष्ठ  
अपनी विषेपनाको दिखाने नहीं तात्पर्य यह कि सर्व शुभकर्मों विषे इसजीव  
को ऐसी निष्कामता प्रमाण है कि भगवत्की प्रसन्नता विना और कुदप्रयोग  
जन न राखे ॥

### नवासर्ग ॥

अभिमान, अहंकार के उपायके पणत से ॥  
ताते जानू कि अभिमान और आपश्री विशेष ज्ञानतत्त्वा स्वभाव महा  
नित्य है काहेसे कि जब विचारकर देखिये नव अभिमानी मनुष्य भगवत्का श  
रीर हुआ चाहता है इमकरके कि ऐश्वर्य और बड़ाई भगवत्की शोभित है  
और अभिमानी अपना ऐश्वर्य बढ़ाता है इसी कारण से महाराजके बचते विषे  
अभिमानकी अधिक निषेयना वर्णन है और महापुरुषने भी कहा है कि जिसके  
हृदय विषे रज्जुमात्र भी अभिमान होता है सो आत्मसुख को नहीं पाता और  
योगी कहा है कि अपनी बड़ाई जनानेहारे मनुष्यको पापियोंकीनाई चाहता

होवेगी इमीपर एक बाची है कि एकवार सुलेमाननामी गहांपुरुषने अपनी सेना को इकट्ठा किया तब कई लाख मनुष्य और देव परी पक्षी मून आदिके जीव आन प्राप्तहुये बहुरि सँवों को पवनके वेगसाथे उड़ाकर आकाशमें लेगये और देवतांकी पुरियों के ऊपरजाय स्थितहुये बहुरि आनिही वन करके उनको घग्ती पर लेआये और समुद्रों के तलें पर्यंत प्रवेश करगये तब सुलेमानजी को आकाशवाणी हुई कि जय तुमको रंचकेमात्र भी अपने वनका अभिमान होता तो मैं तेरी सँव सेनाको तेरे साथही रसातल विषे लीन करडालना इमीपर महापुरुष नेमी कहा है कि परलोक विषे अभिमानी मनुष्यों का आकार चीटीके ममान होवेगा अर्थ यह कि निर्माण करके लोगों के चरणोंतलें मर्दन होजायेंगे और याभी कहा है कि नरकों विषे एक महाकुम्भीनरकहै और अत्यन्त भयानकरूप है सो महापापी और अभिमानी मनुष्य उसही नरक विषे पड़े जलेंगे ऐसेही सुलेमानसंतने भी कहा है कि जिम पापको कोई शुभकारतनि नष्ट नहीं करसकी सो अभिमानहै और महापुरुषने भी कहा है कि जो मनुष्य बड़ाई करके अपने वस्त्रको धरतीपर घमीटनाहै और लटक चलताहै तब उमकी ओर भगवत् कटाचित् दयादृष्टि करके नहीं देखता इमीपर एकवार्ता यहभी वचना विषे आई है कि कोई पुरुष महासुन्दर वस्त्र पहिन कर अपनी ओर देखाया और बड़ाई करके लटक लटक चलताया तब इमी पापकरके भगवत् के कोव मे गती विषे लीम होगया और याभी कहने हैं कि प्रलयकाल पर्यन्त ऐसेही गमलों के लीये चलाजावेगा इसीपर इवनवामामन्त्रने अपने पुत्र हो लटकलटक चलना देखा था तब उममे पुकारकर कहनेलगे कि हे पुत्र ! तू आगको जानना है कि मैं किम की सतानहूँ तसमाना तो गने कुत्र रुपयेके मान नीया और मैं जो तेरा पिता हूँ सो महाअधम और नीच हूँ ऐसेही एक और सन्त्रने किमी अभिमानो पुरुष को लटक चलने देखाया सो उम हो जब बर्जिन किया तब वह कटनेलगा कि तुम मुझकी नहीं जानें बहुरि उन्हां ने कहा कि मैं तो तुमको जानना हूँ कि आदि मेरी गतिनचलकी बूझै और जन्मको ग्याकुची ग मृतकथागा ऐसेही गभकाल विषेमी तु लंबी और विअकी पोटा उठानेवाला हूँ ॥ अथप्रकटप रती स्तुति गद्य राज्ञी ॥ महापुरुषनेगी इनप्रकर रुझहै कि जिम मनुष्यने नत्र ताको गंगीपार कियाहै सो विमहो अत्रयही भगवत्ने बड़ाई दीन्टी है ओ



योंभी कहा है कि सर्व-मनुष्यों के गले त्रिपे-महाराजने, रस्मी वाली हेराजो  
 पुरुष-दीन होता है तब देवदे उसकी, रस्मी को आकाशकी और ली चने हैं जो  
 कहते हैं कि हे महाराज । तुम हम को उत्तमगति देह और जो पुरुष अभिमान क  
 रता है तब देवदे उसकी, रस्मी को अयोगति की, आर-ली चने हैं और इस प्रकार  
 निनती करते हैं कि हे भगवत् । तुम हम मनुष्य को मरानीच गति को प्राप्त करत  
 उत्तम, पुरुष नहीं है कि सामर्थ्यता सहित दीनता और शरीरी को अगीकार को  
 और अपन धनको सात्त्विकी वृत्तिकरके उमजावे और शुभदी-अर्थ त्रिपे लगाने  
 और अनार्थों पर सर्वदा दयाराखे, बहुदि, त्रिपेकी जनो के साथ सर्वदा प्रीति और  
 मेलापराखे इसीपर, एक सन्तने कहा है कि एकवार महापुरुष हमारे गृहों आये  
 तब हमने उनके मत खोलनेके निमित्त दूध और मधुका शर्तत कगलिया धुँहरी  
 उन्होंने, जब शर्तत कारस चाखा, तब कुटोरा-वर्नीपर धरीदिया और शर्ततको पान  
 न किया और इस प्रकार कहने लगे कि अद्यपि मैं इस शर्ततके पान करनेको पा  
 नहीं कहता पर यह बातों तिसमन्देह है कि जब यह पुरुष गगत् के भयकरे  
 शरीरीको अगीकार करता है तब भगवत् उसको बढ़ाई देता है और प्रसन्न रवेता है  
 और जो पुरुष अभिमान करके वर्तता है तब महाराज उसको लज्जावात् और  
 नीचकरने हैं, ऐसे ही जो पुरुष खानपानका न्यग्रह सयमसाय करता है सो स  
 सारी जीवों के आधीन कदाचित् नहीं होता और जो पुरुष मर्यादमेरहित वर्तता  
 है सो सर्वदा निर्द्वन्द्वताई और अपमानको प्राप्त होता है बहुदि जो पुरुष भगवत्  
 का स्मरण अधिक करता है तब उसके साथ भगवत् भी अधिक प्रीति करता है  
 इसीपर एकवार्ता है कि एकवार किसी कुण्डीपुरुषने महापुरुषके द्वारेपर आयकर  
 याचना करी और महापुरुष आगेभे भोजन करदे थे तब उस याचकको भीतर  
 बुलाय लिया मो जब वह कुण्डी वहाँ आया तब सबही लोग उसकी कुनीलतासे  
 टकर अपने बचने, सुरुवातने लगे और महापुरुष उसको अपने आमन पर  
 वैभयकर भोजन कराने लगे तब एक महापुरुषके सम्बन्धी ने उसपर उच्चानि  
 दृष्टि देखी मो कुण्डी का नसे पीछे उसही-कुण्डीके रोगकरके मृत्युको प्राप्त हुये और  
 महापुरुषने योंभी कहा है कि एकवार मुझको महाराजने इस प्रकार आवाग  
 कित् दास हुआ चाहता है अथवा आचार्य और राजा होना चाहता है तब मैं  
 आधीन होकर कहा कि मुझको अपना दासकरिये इसीपर मूसानामी महापुरुष

को आकारात्मापी हुई थी कि मैं उसही पुरुषके भजनको प्रमाण करती हूँ- जो यद्यपि बड़ाई, सयुक्त होवे तो भी सर्वदा मेरे आधीन रहे और मेरे जीवों के साथ अभिमान न करे और अपने विचारोंको सदैव मेरे भयविपेक्षावे बहुरि एकक्षणभी मेरे भजनसे अत्रेन न होवे और मेरी प्रीति करके भोगों से आपत्तो प्रजायगसे इसीपर महापुरुषने कहा है कि उदारताका कारण धैर्यग्य है और इस महत्पुरुषके हृदयका निश्चय ही सर्व सम्पदाका कारण है ऐसे ही ईशा महापुरुषने कहा है कि दीनता और नम्रतावान् पुरुष इसलोक विपे भी सुखी रहते हैं बहुरि परलोक विपे भी ऊँची पदवीको प्राप्त होवेंगे और जिनका चित्त मायामे विकृत है सो महाउत्तम पुरुष है और भगवत् का दर्शन ही उन हीको प्राप्त होता है और जो पुरुष इसलोक विपे जीवोंके विरुद्धको दूर करते हैं सो जित्तिको परमसुखकी प्राप्ति होवेगी इसीपर महापुरुषने कहा है कि जिसको भगवत्ने साक्षि की भर्त्सकी और मार्ग दिखाया है और जिसका स्वभाव महाकोमल है बहुरि ऐसे गुणोंसयुक्त जिसका हृदय निग्दकार है सो निस्तन्देह भगवत्का भियतमा है बहुरि महापुरुषने प्रकृत अपने भियतमोंको इसप्रकार कहाया कि मुझको तुम्हारे हृदयविपे भोजनका रहस्य नहीं दृष्टि आवता सो उसका कारण कौन है तब भियतमोंने पूछा कि भजन का रहस्य क्या है तब महापुरुषने कहा कि भजनकारहस्य दीनता और यौषी है और यौषी कहा है कि जब दीनपुरुषको देखो तब दीनता करो और जब अभिमानी पुरुषको देखो तब तुमभी बड़ाई करो उनके साथ अर्थ यह कि उनके आगे आधीन न होवो तब वह भी अपनी नीचताको प्रसिद्ध जामें इसीपर महापुरुषकी स्त्रीने भी कहा है कि सर्व गुणक्रमोंमें विशेष गरीबी और नम्रता है और तुम ऐसे विशेष कर्मा से अत्रेन हृयेदो बहुरि कुत्रैल सन्तने कहा है कि यद्यपि कोई बालकही पथार्थ पचन करे तब उसकी अङ्गीकार कालेनाही गरीबीका चिह्न है और एक और मन्तने ऐसे कहा है कि जैव नृ निर्दनों को देखकर आपको उनसे भी नीच हो विश्वमे तब जानिये कि तु प्रनादिक पदार्थोंके अभिमानसे परित्यक्त हो और जब उमके आगे आधीन होवे तब प्रसिद्ध होवे कि प्रथम कुत्र तहीं और उमा महापुरुषको भी इसी अनन्त प्रसादके मुत्तदिये है और पारसोगा मय मे उनको सर्व

बदलनाही रहगा और तू संदेव मुझीहोवोगो इभीपर तुझे औंर सस्तने पर राजा  
 अपने इस प्रकार उपदेश प्रकियावा किहे राजर्जुन तू दीनता और अर्थात् विवे रिप  
 होतव यह श्रीवी तुमको राज्यकी जिम्दाईमें भीविभेवै बहुरि राजाने कहा कि  
 यह वचन तुमने बहुत उच्चम वर्णन किया है पराकुळा और भी उपदेशमुक्ता  
 मुनीवी तब वह सन्नाहनेलगा कि जिसपुरुषकी वित्तधनविषे प्रियकरहे और  
 वहाईविषे मन्त्रामहिम रहे और सुन्दरताई विषे कामादिके विकारसे निष्पार  
 रहे तब उसकी महाराज कीसगा विषे विरुद्ध अचरणवाला मानने हंसो जब  
 राजानेगेथे वचन सुने तब इमही उपदेशों कीकार्यजपर लिख लिखा बहुरि  
 सुवेमानासन्नावपती राजके सगय विषे इस प्रकार विव्ररते भोगिभयग धन  
 चानिअसोय कुछ अल्पही वचन वार्त्ता करनेवै और गीवोंकी संभावि जाप  
 वेउते थे और मुक्तमे यह वचन प्रणेन करते थे कि भौंभी अर्थात् और श्रीर  
 और यह जोगभी चारीवहै बहुरि इसनबमरीने डमप्रकार कहा है कि जब आ  
 यमे अर्थात् मनुष्यों की विषेपादेसे तब जानिगे कि इस विषे मन्त्रा का विह  
 ग्रकटा है और मौलिकदीनार मन्त्रनेपेमे कहा है कि जम कोडासभा विषे  
 आपरर डम अकार कहै कि जो सचसे नीच मनुष्य है सो जाहर आवे तब गी  
 सबमे अगि उउसड़ा होऊं कोहेमे किगो आपको महाभय और नीच जानता  
 हू पर जम यह वार्त्ता सुधारिक नागी सन्नने सुनी तब कहने लगे कि इमही  
 प्ररीवीकरके मौलिकदीनारकी विरोपना प्रमिदहै इमीपर एकवार्त्ता है कि किसी  
 पुरुषने गिबली सन्त के निकट जाकर इम प्रकार कहा था कि तुम आगे को  
 समा कुछ जानतेहो तब उन्होंने कहा किजिमे अवाग के ऊपर विदुहिसी है सो  
 गे उससे भी आपको लघु जानता हू बहुरि जब जुनेदगागी मन्त्रने यह वचन  
 सुना तब कहनेलगे कि महाराज उनके अहकार को दू कोर्ता भलाई कोहेमे  
 कि धन भी आपकी कुछ जानतेहै और केवल अहकार से रहिनहीं ह्ये व  
 हुरि पुरुषपुत्र जीनिगान्ने अतीमन्त्र से पूछाथा कि मुक्तको पुदा उपदेश करी  
 तब उन्होंने कहा कि जम कोई धनवाद् पुरुष होकर आधीन वित्त होवे तब यह  
 वही सुन्दरताई है पर जो पुरुष निर्जन होवे और भगवत् का आश्रय करके ध  
 नवानो का आधीन न होवे तब यह उममे गी अधिक सुन्दरताई है पर इमीपर  
 एक और सन्तने कहा है कि लभ कोई उच्चम मनुष्य वैराग्यवान् होना है नभ

दीनता और गरीबी को भी कोकरना है और जो नीच पुरुष कुछ भ्रमग्यवान्  
 होता है तब अमिनानी ही जति है इसी प्रकार बायनी का सन्तन कहते हैं कि जबलगा  
 यह मनुष्य किमीको आपमे नीच जानता है तब निस्सन्देह अहङ्करी जिनो  
 जाता है और जुनैद सन्तोए हवार अपनी समाविषे इस प्रकार कहाया कि जब  
 भने इम बदन को मुना नहोता कि कलियुग पिपे नीच मनुष्यही उपदेश कर  
 नेवाले और मुखिया होवेंगे तब भी सभा विषे उपदेश करचित्त नकोना और  
 जुनैद जी ने योगी कहे हैं कि ज्ञानवान् पुरुषों के निकट आप को दीन जानना  
 अहकार होता है अर्थ यह कि दीन जानना भी आका कुछ प्रमिद्ध करना होता  
 है और अहकार से रहित पुरुष आपको कुछ नहीं जानता चहुरे एक जिज्ञासु  
 जतकी ऐसी अस्या हुई है कि जब अंधेरी अथवा भिजनी का चिपत्कार अ  
 थवा कोई और विघ्न होने लगता था तब वह पुकार करके अपने शीपर हाथ  
 मारते थे और इस प्रकार कहने कि मेरे ही पापों करके जीवों को दुर्घम होसाटे  
 चहुरे मुलेमाना सन्त के निकट आकर कुछ पुरुष उनकी स्तुति करने लगे थे  
 तब मुलेमान ने कहा कि आदि हमारी वीर्य है और अन्न को सुंरु हेवेंगे व  
 हुरि उससे पीछे जाताइता जो गढको अमलोक विषे प्राप्त होवेंगे सो जब उमद  
 से हमारी मुक्ति हुई तब मुझा विरोपना प्राप्त होवेगी और जब उसही दु  
 लीन रहे तब हम परमनीचों से अती चरहेगी। अथ प्रकट करना रू। अभिमान का  
 ओर प्रमिद्ध करने विघ्न उसके तावे ज्ञान त् कि यद्यपि प्रयोग अभिमान का  
 स्वभाव हृदय विषे उपजना है पर इसका प्रवेश सर्वो जागों पर प्रकट भी चि  
 जाता है सो अभिमानका अर्थ यह है कि और मनुष्यों में आपकी विशेष ज्ञान  
 ना और अपनी बड़ाई प्रकट कर दिखाने की चहुरे इगी बड़ाई की वायु जब कि पी  
 पे हृदय विषे प्रलाने लगती है तब उमफरके अधिक प्रमन्न होता है और जमि  
 गान भी इमही का नाम है इमी पर महापुरुषने भी कहा है कि अगिमानरूपी व  
 के वेगमे भगवत्की ग्वाको कहेंगे कि जिस मनुष्य के मनोमे अभिमान का  
 प्रवेश होता है तब ओर लोगोको आपसे नीच जानता है और इस प्रकार मम  
 ता है कि यह मवती मनुष्य मेरे दासकी नाई है और मैं मरनेका म्शभीरु अथवा  
 जब अभिमान ही प्रवेशता तो ही है तब योगी जानते हैं कि यह लोग भेदि मेवा  
 के अधिकारी नहीं और लोगो मे रहता है कि मना त् मेरी सेवा और म्दवका

अधिकारी क्व हो सकता है जिसे यद्दो राजा लोग भी अपने मिहान के निष्ठ  
 किसी को दण्डवत् करने नहीं देना और पत्नी विषे किसी को अपना गुलाम भी  
 नहीं लिख सकते इस करके कि अमुका मुरुप हमारी सेवाका अधिकारी क्व हा  
 मस्त है अथवा जब कोई अधिकारी ऐश्वर्यवान् होवे तब उसको अपने निष्ठ  
 आपने देते हैं और कुछ वचन तार्त्ता करते हैं नहीं तो और सम्पूर्ण मनुष्यों पर  
 मस्तक सकुचित रखते हैं तो यह उनका अभिमान ऐसा बृद्ध हुआ है कि गदा  
 राजसे भी अपना ऐश्वर्य अधिक किया चाहते हैं काहे मे कि सर्व ईश्वरों का  
 ईश्वर जो भगवन्त है सो सर्व जीवों पर सर्वदा दयाकी दृष्टिसे देखता है और सब  
 किसीकी दीवताको सुनता और प्रमाण करता है और अभिमानी मनुष्य पर  
 नहीं करता पर जिसका ऐश्वर्य ऐसा प्रबु नहीं होना तो भी अभिमानी मनुष्य  
 सधोमे आगे जाता चाहता है अथवा ऊचे स्थान पर स्थित हुआ चाहता है और  
 सर्व मनुष्योंसे सन्माता और आदरकी अभिलाषी रखता है वद्विर जब कोई उस  
 को यथार्थ उपदेश सुनाता है तो भी अंगीकार नहीं सकता और उलग  
 क्रोधवान् होता है वद्विर जब आप किसीको उपदेश करने लगता है तब क्रोध  
 और ताड़ना समुक्त बचन कहता है और सर्व मनुष्यों को मशुवत् देखता है इसी  
 पर महापुरुष से किसीने इस प्रकार पूछा कि अभिमानी पुरुषका लक्षण क्या है  
 तब उन्होंने कहा कि जो पुरुष यथार्थ वचन के आगे अपने शीशको नमन  
 करे और सर्व जीवों पर गतानिदृष्टि देखे तब उसको अभिमानी कहते हैं सो यह  
 दो तो स्वभाव जीव और भगवन् विषे षडे पद नहें काहे मे कि इन करके सबी  
 अपलक्षण उपजते हैं और सर्व गुणोंसे अमातरहना है ताने जिम पुरुष पर बड़ई  
 और अभिमानकी प्रवृत्ति होती है तब वह किसीके अपने समान हुआ नहीं  
 चाहता और किसीके आगे मस्तक नहीं नवाचना सो यह चिह्न भी निमानोंका  
 नहीं होता इस करके कि ऐसा पुरुष ईर्ष्या करके अपने को सबको शांत नहीं कर  
 सकता वद्विर निंदा और कण्ठ आदिका स्वभावसे भी रहित नहीं हो सकता पर  
 कोई उसका आदर नहीं करना न वद्विर विषे क्रोधकी गांठ दृढ़ करनेतहै और  
 सदेवकाल अपनी घड़ई और ऊँचकाको दिखाना परतना देने भूँड और क  
 पट दम्भविषे आसक्त होजाता है और सर्व प्रकार प्यापको विशेष किया जाता  
 है और जब कोई उसके उर्जनको नहीं आवता तब मस्तक नहीं रक्षता उमी की

रण से इसलोक विपे भी हु ली रहता है और परलोक के सुखको भी नहीं पावता  
 काहेसे कि जबलग यह पुरुष अपने आपको विस्मरण नहीं करना तबलग इस  
 को धर्मकी गंध भी प्राप्त नहींहोती इसीपर एक सतने कहाहै कि जबतू आत्म  
 सुखकी सुगंधिको सूंघा चाहताहै तब सर्व मनुष्यों से दीनहो और दासभाव को  
 अंगीकारकर वहुरि जब कोई विचारकी दृष्टिकरके देखे तब इस वार्त्ताको प्रसिद्ध  
 जाने कि जब दो अभिमानी पुरुषोंका मिलाप आपस विपे होताहै तब दुर्गंधि  
 आन पसरती है और हृदय उनका फूकरोंकी नाई हु सदायक होजाता है वहुरि  
 स्त्रियोंकी नाई अपना शृङ्गार बनावने विपे मग्नहोते हैं और प्रीतिमानोंके मि-  
 लापे विपे जो रहस्य और प्रसन्नता परस्पर उपजती है सो अभिमानी मनुष्यों  
 को फदाचित् प्राप्त नहीं होती इस करके जब तू किसी प्रीतिमान् को देखे तब  
 उत्तम वार्त्ता यह है कि अपने आपको त्यागकर उसही विपे लीनहोजावै और  
 सर्वथा दासभावको प्राप्तहोवै तात्पर्य यह कि तू उसकी वड़ाई विपे समाप्त हो-  
 जावै अथवा वह तेरे विपे समायजावै तब दूसरा भाव कुछ न रहे और एकमेव  
 होकर दोनों भगवन्त विपे लीनहोवो और अपने आपकी चितवनी मिटावो  
 तबतू परमसुखको प्राप्तहोवै सो पूर्ण एकता इसहीका नामहै और परमसुख भी  
 यही है और जबलग अभिमानके सयोग करके द्वैत दूर नहीं होता तबलग यह  
 पुरुष एकता के सुख रहस्य को फदाचित् नहीं पावता अभिमान का रूप और  
 उसके विघ्न ऐमेही प्रकट वर्णन किये हैं ॥ अथ प्रकट करने भेद अभिमान की  
 अवस्था के ॥ ताते जान तू कि एक अभिमान अतिप्रकट और दीर्घ है और  
 एक अवस्था अभिमानकी उससे कुछ क्षीण होती है सो इनका भेद इस करके  
 प्रसिद्ध जाना जाताहै कि एक पुरुष ऐसे अभिमानी होतेहै कि आप से भिन्न  
 और ईश्वर नहीं मानते जैसे फ़रऊन और नमरूद ऐमे विमुख द्रुये ह कि उन्होंने  
 ने आपहीको भगवन् कहायाहै और उनका निश्चय इमप्रकार हुआहै कि जब  
 कोई और गगवत् होता तो प्रत्यगही दृष्टि आवता ताते हमहीं गगवत्के ईश्वरहैं  
 और इसी कारण से उन्होंने इसप्रकार जाना है कि तब हमहीं गगवत् द्रुये तब  
 हम भजन किमुका करे मो यह अभिमान महादीर्घ है काहेमे कि मबही देवता  
 और वाचार्य और सन्तजन तो आप को भगवन् नहीं मानने और आपको  
 दास जानकर महाराजकी सेवाविपे लीनद्रुये ह ताते ऐना अभिमान महानिय

है १ बहुरि-दूसरी अवस्था अभिमान की यह है कि एक पुरुष यद्यपि अपने नते है कि हम भगवत् के उत्पन्न किये हुए हैं पर तौ भी सत्तजनों पर शानि रखते हैं और इस प्रकार कहते हैं कि अमुक सत्तजनी जाति नीचे है, अपना क कुल जीव है ताते हम उसके आगे-मस्तक कर्षो कर, नवावे-अपना, ऐसे ज है कि मन्तजन भी हमारी नाई मरिधारी हैं और ज्ञान-पान-आदिक-द्वारों विषे बन्धनार् है ताते हमको-इनका दामहोना-अग्रोन्गरे पर ऐसे प्यभी दो-गकार के होते हैं मो एकतौ अभिमानके पदल करके सत्तजनों विशेषता को-ज्ञानतेही नहीं और विचार से रहित होते हैं जैसे महाराज ने कहा है कि अभिमानी मनुष्यों को यथार्थ की वृक्ष का मार्ग-मुदाचित-खरता ताते मन्तजनों के लक्षणों को देख नहीं सके बहुरि एक मनुष्य ऐसे-होते हैं कि यद्यपि अपने चित्त विषे सत्तजनों की बड़ाई को-मागमते हैं तौ भी दासभार को ग्रहण नहीं करसके सो यह भी उत्तरी बुद्धिकी हीनता बहुरि तीसरी अवस्था अभिमानकी-यह है कि यद्यपि सत्तजनों को तो-आ विशेष जानते हैं पर आँसु-जीवों पर अपनी बड़ाई-महत् दिव्यारते हैं और लोगोंपर शानि दृष्टि-देसो-रु ताते किसी के यथार्थ-पान को-अभीकार करसके और आगही को-स्वामी जानते हैं सो यद्यपि अभिमान-प्रथमयी दो अवस्थासे कुछ क्षीण है पर तौ भी दो-कारणों करके-यहा पटन है और मरम ड की शानि-हे-मो-प्रथम-काम्य-सहै कि ऐश्वर्य-और-बड़ाई का-अधिक एकही महाराज है जो-महा-मुष्-मो-महादीन-और परा-धीत है सो इसको क का-अभिकार-क्या कर प्राप्त होसके पर जब अभिमान करके मापको-कुछ मथेजाते तब यही प्रसिद्ध होनादेता-मनुष्य का शर्मिक-आ-सा-नाह सो का-दृष्टास्त यह है कि जैसे कोई-बकरवाँ-गजा-या-दरु-या-हान्त-राना-क-नीति सत्तपर जाप-नडे और अपने जी-या-द-य-च-र-द-ग-या-या-हे-न-व-व-विचार-के-देव-कि-ब-द-द-तु-या-के-मे-द-का-अधिकारी-होता-मे-इसी-पर-महाराज-ने-भी-कहा-कि-म-प-उ-उ-ओ-ब-द-ई-उ-क-री-को-आ-म-वी-दे-का-हे-मे-कि-मे-किसी-के-प-त-नी-नहीं-पर-जो-पुरुष-प-ग-दीन-हो-उ-उ-मे-उ-गी-क-ह-आ-उ-हि-म-व-में-शी-प-दी-उ-व-न-प्र-कर-ता-ह-ता-ते-म-मि-द-ह-आ-कि-उ-रा-व-उ-ने-हा-र-म-हा-रा-ज-के-पि-ना-किसी-म-प-न-की-पि-मी-जीव-पर-अभिमान-करना-मना-ए-नहीं-बहुरि-म-स-प-का-ए-या

कि अभिमान करके चयाय बचने की अगोकार काप्ता कठिन होजाता है इसी कारणसे जब दो पुरुष आपस विषे धर्मभागेका प्रनोत्तर करने लगते है और एक पुरुष सत्यही बचन कहता है तोभी अभिमानी गनुष्य उसको प्रमाण नहीं करसक्ता इभी करके कि मेरी मान बढानेमेगी सी यह चिह्न मनगुसी और कल्पित्याकाहे कोहये कि जब कोई इस प्रकार कहे कि तू भगवत्ने नहीं डरता और यथार्थ बचनका नतकार करता है तोभी अभिमान करके अपने कडे बचन को गिराय नहीं सक्ता और प्रमाणही मानता है ताते महापापी हाता है इसीपर इवनमसऊद सन्ननि कहा है कि जब कोई इस गनुष्यको ऐसे कहे कि तू महासजका आसकर और यह पुरुष इसप्रकार कहनेलगे कि तू मुझको क्यों डरावता है काहसे कि तुमको तो अपनीही कास्थिफला चाहिये है सो यह बचनही महापाप है ताते जानतू कि जिसप्रकार शताने को बिकारहुई है और उसका धृत्तात भगवत्ने अपने बचने विषे कहा है सो उसका तालुष्य यही है कि तुमको अभिमानका विघ्न पूरुट आनपडे अथवा गेतानको जेव आत्राहुई कि गुरु को शीश नरावो तब उराने कहे कि मैं तेनेमस्त्रे से उलग्न हुआ है और गेनु पूष्टीतस्वसे हुआ है ताते मैं इसके आगे शीश क्यों कर नवाऊ प्रयोजन यदाकि उमको अभिमानने पेना विमुख किया कि भगवत्की आज्ञाको न मानतामिया और मस्तक नीचा न किया ताते गद्दाराजने उसको बिकारि करी और सदेव फीनके वियोगको गार्सहुआगी अर्थ प्रकट करने कारणे अभिमानके ओ उगाय उनेके निवृत्त करनेका ॥ ताते जानतू कि जब यह गनुष्य अपने विषे कीडे गुण देखता है और वह गुण इसको और गनुष्यो विषे नहीं मानता तब उमही गुण के मन्व्व कहे अभिमान करने गता है सो अभिमान के उरानेने के सान कारणे प्रामिद है पर प्रथम तो अभिमानका कारणे विद्या है ताते कि विद्या याम् गनुष्य धोप को विद्यामुक्त होवता है तब विद्याने पुरुषो को पंगुवत् जानता है ताते उसके उपर अभिमान गपन होजाता है और अभिमानकी प्रवहासाकी तबव यएहे कि लोगों से सेवा पूना जोग्यारु नडाई की आज्ञाविन सहि गेनी जेव यह लोग हमफिर नहीं देखते तब अपने तिल विद्या जेदने पंगु वत्त होना है यथथा तब किसी के प्रोदये पूना प्रमोद को जागते है तब उनेके तप उराना रता है और ज्ये जानता है कि मैं गगनरुता निरुज्यो हूँ और



है- बहुत बुरी बुरी बातों का अविमान की यह है कि एक पुरुष यद्यपि ऐसे ज्ञान से है कि इस भगवत् के उत्पन्न किये हुए हैं पर तभी मत जनों पर आनिर्देश करते हैं और इस प्रकार कहते हैं कि अमुक मत की जाति नीच है अथवा उसमें कुल नीच है, ताते हम उसके आगे, मस्तक क्योंकर नवावे अथवा ऐसे जानते हैं कि सन्त जनों भी हमारी नाई शरीरधारी हैं और मात्र पान-आदिकु चर-होगों विषे-वस्त्रवाच हैं ताने हमको इनका वासुदेवना-अयोग्य है पर ऐसे अनुष्य भी दोषकार के होते हैं-मो एरुतों अभिमानके प्रदल करके सन्त जनों की विशेषता को जानते ही नहीं और-विचार से रहित होते हैं, जैसे महा राज ने भी कहा है कि अभिमानियों-मनुष्यों को अर्थार्थ की बूझ का मार्ग कदाचित् नहीं खुलता ताते सन्त जनों के लक्षण को देख नहीं सके वरि, एक मनुष्य को ऐसे होते हैं कि यद्यपि अपने चित्त विषे सन्त जनों की बड़ाई को समझते हैं पर तभी दासभाव को ग्रहण नहीं कर सकते सो, यह भी-उनकी बुद्धिकी हीनता है- बहुत तीसरी बात आभिमान की-यह है कि यद्यपि सन्त जनों को तो आपत् विशेष जानते हैं पर और जीवों पर अपनी बड़ाई-मकट्ट दिखावते हैं और सर लोकां पर अज्ञानि दृष्टि देखते हैं ताने किसी के पार्थार्थ चर्चन को-अभी का-तों कर सकें और जागही को स्वामी जानते हैं सो यद्यपि अभिमान प्रथम की दोषों अतथासे कुछ क्षीण है पर तभी दोषकारों के बड़ा प्रदल है और परम इच्छे की खाति है-मो प्रथम फलस्व मन्त्रे कि ऐगर्थ्य-ओ-बड़ाई का-अधिराधि एक ही महा राज है-ओ-यद्गुण्य जोगहादीन-ओ-पराधीन-ओ इसको उन्नी का-अभिमान-कर्मकर प्राप्त होयुक्त पर जन-अभिमान करके आपको कुछ समर्थ जनों तक-यही पसिद्ध होना है कि-भगवत् का शरीर कट्टा-बादता है सो इस का-दृष्टान्त यह कि-अपे कोई उद्धवर्षी गजा-सु-दृष्टु-सहो-रत्न राजाके-शिर-सनपर जाय-अरे और अपने अशिशा-सु-चै-ग-दृष्टु-वाहे-तप-सु-विचार-सु-देव कि-यद्दृष्टु-रा-के-से-दृष्ट-अधिकारी होना है-इसीपर-महा राजने भी कहा है कि समर्थ जों वरि सुभक्षी सो-मती-के-का-इसे कि-म-किसी के पार्थार्थ नहीं पर जो-पुन-परधीन हो-म-सो-शुभ-हुआ-चहै-त-म-मी-प्रदी-उद्ध-म-नष्ट-करता-ह-ताते-पसिद्ध-हुआ-कि-उरान-करने-दो-महा-राज-के-विना-विती-मनु-ष्य-को-किसी-जीव-पर-अभिमान-पाना-प्रमाण-नहीं-बहु-मि-दु-म-म-का-ए-ब-रे

कि अभिमान करके यथार्थ चर्चन को अमीकार काना फटिन होजाता है। इसी कारणसे जब दो पुरुष आपस विषे धर्मभाषाका प्रश्नोत्तर करने लगते हैं और एक पुरुष नतयही चर्चन कहता है तोभी अभिमानो मनुष्य उसको प्रमाण नहीं करसका इसी कर्मके कि मेरी गान घटभाषासी यह चिह्न मनगुसी और कर्तु टियोंकाह कहिये कि जब कोई इसकी इमप्रकाररुहे कि तु गगवर्चन नहीं करता और यथार्थ चर्चनका नतकार करता है तोभी अभिमान करके अपने फटे चर्चन को गिराय नहीं सका और प्रमाणही मानती है ताते महापीपी होती है इसीपर इवनमसऊह सन्तने कहा है कि जब कोई इस मनुष्यको ऐसे कहे कि तु महा राजका आमकर और वह पुरुष इमप्रकार कहने लगे कि तु मुझको क्यों धरिषता है कहिये कि तुझको नो अपनाही काय्यकरता चाहिये है सो यह चर्चनही महापाप है ताते जान तू कि जिसप्रकार शैतानको धिंकारहुई है और उसका मुचोते भोगवचने अपने चर्चनो विषे कहा है सो उसका तात्पर्य यह है कि तुझ को अभिमानका विघ्न प्रकट आनपड़े ज्योत शैतानको जब आज्ञाहुई कि गुरु को शीश नरोवी तब उसने कहा कि मैं तेमस्त्रसे उत्पन्न हुआ हूँ और गुरु पृथ्वीतत्त्वसे हुआ है तते मैं इमके आगे शीश क्या कर नवाऊं प्रयोजन यह कि उमको अभिमानिने ऐसा विमुव किया कि गगवर्चन की आज्ञाको न मानता मिया और मेस्त्रक नीचा न किया ताते महाराजने उसको भिकार करी और सदैव फालके वियोगको प्राप्त हुआ ता अर्थ प्रकट करने कारण अभिमानिके और उपाय उनके निवृत्त करनेका ताते जान तू कि जब यह मनुष्य अपने विषे कोई गुण देखता है और वह गुण इसको और मनुष्यो विषे नहीं गमता तब उमही गुण के सम्बन्ध करके अभिमान करने लगता है मो अभिमान के उत्पत्ति होने के लिये कारण प्रसिद्ध है पर प्रथम तो अभिमानिका कारण वित्री है काहिये कि विद्या प्राप्त होने पर धार का धियामयुक्त देवता है तब विद्योदीन प्रभो को पंगवत्व जानता है ताते उमके ऊपर अभिमान प्रथम होजाता है और अभिमानकी प्रवृत्त भाषा लक्षण यह है कि लोग से सेवा पूजा और मान करता है आशा रखता है और जब वह भाषा इमप्रकार नहीं करने लगे तब निच धिं और चर्चन पान् होतार अभिमान विनी के फलसे प्रती भवते को जाता है तब उनके उपर उपाय रखता है और पाने जानता है कि भोगवचनो निरूप्यता है और

विद्याकरके अपना मुक्तहोना समझना है और और लोगोंको ऐसे नहीं जानना भयवा इसप्रकार देखता है कि यह लोग मेरीभेवा और प्रसन्नना करके तरकों में बचेंगे इसीपर महापुरुषने कहा है कि यह विद्याभी निस्सदेह अभिमानका अणु है और विचारकी दृष्टि विषे ऐसे विद्यावान् को मूर्ख कहना विशेष है क्योंकि यथार्थ बुद्धिमानों के मत विषे विद्यावान् उसही को कहते हैं जो परलोकके मार्गकी कठिनताईको जाने और उसही के भयविषे स्थितहोवे काहेसे कि जिसने इस भेद को भलीप्रकार समझा है वह सर्व्वदा विचारों से दूर रहता है और अपने बलकी हीनताको देखकर भयवान् होता है और योंभी समझना है कि यह विद्याही मुक्तको परलोक विषे अधिक ताड़ना का कारण होवेगी इसकाहे कि जब जाननेवाले मनुष्यसे कोई कार्य्य विगड़ता है तब उसको अज्ञान पुत्र से भी अधिक दयड होता है ताते इसप्रकार समझनेवाला मनुष्य कदाचित् अभिमानविषे आसक्त नहींहोता पर जिस विद्यावान्को अभिमानकी अधिकता होजाती है तब इसके भी दो कारण प्रकट हैं प्रथम यह कि वह पुरुष निरुत्त मार्ग की विद्याको पढ़तेही नहीं सो निवृत्त विद्या यह है कि जिस फाके भगवत् को और आपको पहिचाने बहुरि जीव और भगवत् विषे जो पटल है सो जिसको भलीप्रकार समझे ताते यह विद्या ऐसी है कि भ्रान्ति और दीनता को बढ़ाने वाली है और अभिमान को नष्टकरडालनी है पर भेद्यक ज्योतिष और व्याकरण और कोषभाटिक विद्याको पढ़े अथवा परस्पर मतों के विवाद विषे स्थित होवे तब ऐसी ऐसी विद्याकरके अवश्यमेव अभिमान उपज आवता है बड़ी यह विद्या अत्राकाल विषेही नष्ट होजाती है काहेमे कि यह विद्या भी स्थूल है और स्थूलताकोही दृढ़ करनेवाली है ताते इसफाके जीवको भयनहीं उपजती और भयविना इस मनुष्यका हृदय अन्व होजाता है ऐसेही पुरातन कथा और कथिता आदिक जितनी विद्या हैं सो यद्यपि यह लोग इनही नीचना को नहीं जानते पर जब तू विचार करके देखे तब इस वार्त्ता को प्रसिद्धक जाने कि यह सबही विद्या अभिमान का बीज है और ईर्ष्या और बेरगाव को बढ़ानेवाली है ताते इसफाके प्रेम भौतिका अंकुर नहीं उपजता और गान बढ़ाईकी बाधुइप्रके मत विषे दृढ़होजाती है १ बहुरि दूसरा कारण विद्याके अभिमान का यह है कि यद्यपि निवृत्ति विद्याहीपढ़े और धर्ममार्गकी सूधमनाईकोभी समझे तोंभी जिन

पुरुषकी मनमा प्रथमही मलिन होती है तब वह ऐसी विद्याको पढ़करभी अभि-  
 मानी होताहै काहे से कि ऐसे पुरुषकी कामना विद्या पढ़ कर करतृति करने की  
 नहीं होती अपनी बड़ाई के निमित्तही विद्याको पढ़ताहै ताते वचन वात्ताहीको  
 अपना पुरुषार्थ जानताहै सो यद्यपि यह विद्या निर्मलहै पर उसकी मलिन म-  
 नसाविषे प्रवेशकरके विद्याभी मलिन होजाती है जैसे कोई पुरुष महारोगी होवे  
 पर जबलग प्रथम यत्र करके उसके मेल को दूर न करिये और आगेही रोगके  
 निवृत्त करने की औषध उसको दीजिये तब उसके शरीर विषे, वह औषध भी  
 रोगही का स्वभाव ग्रहण करती है अथवा जैसे आकाश से निर्गल जलही, मेघ  
 भरसते हैं पर जब जल कटुक औषधियों को पढ़ूँचताहै तब कटुताही बढ़ाताहै  
 और जब ऊँखआदिक मिष्ट खेती विषे प्रवेश करताहै तब मिष्टताकी वृद्धि होती  
 है और जब फटकों के वृक्षों को पढ़ूँचताहै तब काटेही बढ़तेजाते हैं और कमला-  
 दि फूलों विषे जायकर सुगन्धही बढ़ावताहै इसीपर महापुरुषने कहाहै कि कलि  
 युगविषे एक ऐसे मनुष्य होवेंगे जो रातिदिन निवृत्त शास्त्रों का पाठ करेगे और  
 कोई उनके निकट न जाय सकेगा इसकरके कि सर्वत्रा यही वचन कहते रहेंगे  
 कि हमारी नाई पाठ कौन करताहै और जैसे हम सर्व वचनोंका अर्थ समझने  
 हैं इसप्रकार कौन समझसकताहै पर ऐसे पुरुष निस्सन्देह नरका का ईधनहोवेंगे  
 और ऐसेही उमरसन्नने कहाहै कि धर्मसे रहित विद्यावान् न होयो काहे से कि  
 करतृति बिना विद्या का गुण कुछ नहीं होता और अभिमानही बढ़जाताहै इसी  
 कारणसे आगे जो महापुरुष के प्रियतमहुये हैं सो उन्होंने दीनताहीको अर्गी-  
 कार कियाहै और सदैव काल अभिमान से डरते रहे हैं जैसे एकवारहर्षी नापी  
 सन्नको सब लोग गिलकर विशेष स्थान विषे बैठाने लगे तब उन्होंने कहा कि  
 मुझ को इस स्थानपर बैठना प्रमाण नहीं काहे मे कि इननेही आदरकरके मेरे  
 वित्त विषे यह सकच्य कुर जायाहै कि मैं और मनुष्यों से विशेषहू तात्पर्य यह  
 कि जब ऐसे उत्तम पुरुषभी अभिमानके मक्करसे रहित नहींहुये तब अरुद्धि  
 जीव अभिमान से क्योंकर मुक्त होसके है और ऐसे समय विषे निरभिमान प-  
 पिडतों को कहां पायेसके हैं काहेमे कि ऐसा विद्यावान् भी कोई बिला होताहै  
 जो अभिमान की मलिनताको पहिचानकर इसका त्यागकरे पर बहुत पपिडत  
 तो ऐसे पायेजाने हैं कि वह अभिमानही को अपनी विवेचना जानने दें और

इस प्रकार कहने लगते हैं कि मैं अमुक पुरुष की बेटी जानता हूँ और उमकी और  
 कब देखना है तब नयेदा इमही अभिमान विषे मद्धवान् रहते है और जिन  
 विद्यावाणों ने ऐसे गलित स्वभावों की नीचता को श्लीषकार पहिचाना है सो  
 तिनका ध्यानही उत्तम यजन है और उनको प्रणवा करके जीवों की मलाई  
 प्राप्त होती है श्वेदुरि दुमरा कारण अभिमान का तप और वैराग्य है काहेसे कि  
 पैरागी और तपस्वी और अतीनजन भी अभिमानमे रहित नहीं हीसकत और  
 ऐसे जानते हैं कि सर्वजीवों को हमारी सेवा और दर्शन विषे मलाई प्राप्तहीयेगी  
 ताते अपने तपका उपकार और जीवों पर रखने हैं अथवा इस प्रकार जानते हैं  
 कि गृहस्थलोग और मायावारी जीव समझी हूये हूये हैं और इन विषे दगही  
 मुकहोवेंगे वदुरि जब कोई ऐसे तपस्वी जनको दुस्त्राव और देवमयोग करके उ  
 सको भी कुछ दुःख प्राप्त हो जाये तब ऐसे जानता है कि मेरीही शक्ति करके और  
 सिद्धता करके इसको दुःख प्राप्त हुआ है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जो पुरुष  
 अभिमानकरके इन जीवोंको नागदृशा जानता है सो निश्चय ही आपही नष्ट  
 होता है काहेसे कि किसीपर दोषदष्टि देवताही महापीपहे वदुरि जब कोई इस  
 की सेवा पूजा भगवत् अर्थकरे और इसको प्रसन्न कियावा है और यह पुरुष अ  
 भिमान करके उसका निरादर करे तब यह गय होता है कि गत महाराज इसकी  
 विघेपना उसही पुरुषको देवे और अभिमानो पुरुष शुभगुणोंके कर्तोसे अप्रसन्न  
 रहेजाये इसीपर एरुवासा है कि एक नगरके निरुद बड़ा तपस्वी रहताथा और  
 उसी नगरमें एक मढ़ा अपेकगी रहताथा पर वह तपस्वी ऐसाथा कि उसके जी  
 गेपर सर्वदा धादलों की छाया रहतीथी ऐमा शक्तिमान् था वदुरि वर अपेकगी  
 गनुष्य जो अधीन होके उमके निकटआया और उसको विघेप जानकर यह  
 मनसा कर्नागया कि इसकी संगति करके मे भी पावों से मुक्तहोऊंगा और वह  
 तपस्वी इस प्रकार विचार करनेलागा कि मेरे संगान तो तपस्वी कोई नहीं और  
 इसके संगान आदरणी भी कोई नहीं तबने यह पुरुष मेरी संगति का अधिकारी  
 पंथ हीनपंथीके ऐसे जानकर तपस्वी ने उसको देखन न दिया और और बचन  
 कहे हैं उनका निरादर कर्नागयो वदुरि जब वह पुरुष धीर और लीलाधीन  
 होकर उठेवैसा मय भेवकी हावांगी उमके गीगामे चली गई और गेह मढ़ा  
 पुर्वपरी जाकानाएरी हुई कि तपस्वी गनुष्यका तप तथा अभिमानवाके सब

ही च्यवर्षेहुआहे-ओर शुद्धभावनाकरके अपकर्मी के पाप मग्ही नष्टहुये हैं नाते  
 तुम मेरा यही मंदेशा दोतो पुरुषोंको पहुँचाओ जिमकरके तपस्वीका अभिमान  
 ओर अपकर्मी की निराशता दूरहोजावे, बहुरि एक ओर बार्त्ता है कि देवयोग  
 करके एक तपस्वी के शीश में किसी पुरुषका पाँव लगगयाया तब वह तपस्वी  
 क्रोधवान् होकर कहने लगा, कि भगवत् की इहाई है कि यह अवज्ञा महाराज  
 तुम्हको क्षमा न करेगा तब आकाशभाषी हुई कि हे तपस्वी ! तू जो मेरे क्षमा  
 करने और न करानेके विषे निश्चयहोकर इहाई करताहै ताते मेंभी अपनी इहाई  
 करके कहताहू कि तुम्हपर कदाचित् क्षमा न करूंगा और दयाकरके अवज्ञा क-  
 रनेवाले के मत्र पाप क्षमा करलूंगा तात्पर्य यह कि जब कोई मनुष्य तपस्वी  
 जनको दुःखावता है तब वह ऐसेही अनुमान करलेतेहैं कि महाराज इम अवज्ञा  
 को क्षमा न करेगा इसी कारणसे जब क्रोधवान् होते हैं तब शीघ्रही श्राप देने  
 लगते हैं सो यह बड़ी मूर्खनाहै-कहैसे कि आगे केने विमुखों ने सन्तजनों को  
 प्रकटही इस्त्रायोहै-ओर उन शत्रुओंको कुछभी इष प्राप्त नहींहुआ और उलटा  
 उनका हृदय शुभमार्ग की ओर जायाहै पर यह मूर्ख अभिमान करके आपको  
 विरोध जानताहै इमकरके जो ऐसा मनुष्य अपने शत्रुपर क्रोधवान् होताहै तब  
 प्रकटही कहतेलगताहै कि मेरी अग्रज्ञाकरके तेरा धर्म और धन और कुल मत्र  
 ही नष्ट होजावेगे अथवा जब अरुस्मात् उसको दुःखी देयना है तब एमे जान-  
 ताहै कि मेरेही कोप करके इमको कष्ट प्राप्त हुआहै सो मूर्ख तपस्वियोंकी ऐसी  
 अथम्या होती है और बुद्धिमान् बेगमीजनों का लक्षण यह है कि जब किसी  
 प्रजाको निदवान् देखते हैं तब वह इत्प्रकारसम्भक्ता है कि हमारेही पाप करके  
 इतको खेद प्राप्त हुआहै तात्पर्य यह कि जितासुजन चेतन्य विषे भी भयवत्  
 रहते हैं और जो बुद्धिहीन तपस्वी होते हैं सो यद्यपि उग्रिरक्त के कानूनि-सुभा  
 करते हैं तोभी उनका हृदय अभिमान करके अन्तरसे मज्जिन रहताहै और उम-  
 गलिनतासे इतही नहीं पर-जब यथार्थ दृष्टि करके देखिये तब जो सुकृत्र किमी  
 प्रकार आपको विरोध जानताहै सो निम्नदेह अपने तप औ मननके कनको  
 च्यर्त्ता फन्ना है कोहे से कि अभिमान के समान दोई और कष्टगारही नहीं  
 इमी पर एक बार्त्ता है कि एकवार महापुरुष के प्रियतम किमी पुरुष की पूजा  
 करते थे सो महापुरुष ने जब उसको देना तब कहनेलगे कि इमविषे तो मुक

को दग्ध का चिह्न दृष्टि आवता है यह सुनेकर स्तुति करनेवाले प्रीतिमान विस्मित होगये तब महापुरुष ने उस पुरुष को अपने निकट बुलायकर इसप्रकार पूछा कि तू इन लोगों में आपको विशेष जानता है कि नहीं तब उसने कहा कि मैं आप को विशेष तो जानता हूँ सो यह अभिमान का चिह्न महापुरुष ने हृदय के प्रकाश करके उम विषे प्रकटही देवलिखा था और लोगों ने उसको गली प्रहार नहीं जानाया ताते यह अभिमानरूपी विघ्न विद्यावानों और तपस्वियों के विषे निस्सन्देह अधिक होताहै और इस विषेभी मनुष्य की धारणा तीनप्रकारकी होती है सो एक पुरुष ऐसे हैं जो यद्यपि हृदयकरके अभिमानसे रहित नहीं होसके तौभी यत्नमहिन दीनता और गरीबी को अंगीकार करते हैं और कर्मों विषे भी दासभावको लिये रहते हैं ताते व्यवहार और ध्वन करके उन विषे किमोप्रकार अभिमान नहीं दृष्टि आवता सो इसका दृष्टांत यहहै जैसे कोई पुरुष मूलही से वृक्षको काट न सके पर उसकी शाखा सबही काटडाले तौ भी उसको बलवान् कहते हैं चहुरि दूसरे पुरुष ऐसे होने हैं कि ध्वनकरके अपनी बड़ाई नहीं वर्णन करते और सर्व प्रकार आपको नीच कहतेहैं पर उनके हृदय का अभिमान कर्मोविषे प्रकट भासताहै जैसे विशेष स्थानपर घेजना और सभसे आगे छे चलना अथवा किसीकी ओर दृष्टि न करनी वा भृकुटी चढ़ाये रखनी सो सबही अभिमानके लक्षणहैं पर यह पुरुष ऐसे नहीं जानते कि धिया और करतूति भृकुटी चढ़ाने विषे तो नहीं होनी फाइसे कि यह तो हृदयके अगहै और इनका प्रयाग जो सर्वइन्द्रियों पर वर्तमान होनाछे सो दामगाव और दीनता और सर्वजाओं पर दयाहै इसीकारणसे यद्यपि महापुरुष धिया और बेहाग्य करके सर्व मनुष्यों से विशेषये पर उनके समान नम्र और कोमलस्वभाव किसी विषे पाया नहीं जाता ताते मर्ष जीवों की ओर प्रमन्नता और दयाकी दृष्टि मे देमनेये और सदैव काल अपना गस्तक सुजा रखनेये इसही करके महाराजने भी उसरी स्तुति करीयी कि तेरा स्वभाव अनिकोमल और प्रमन्नवदन है ताते तुफमे कोई मनुष्य मयदान होररदूर नहीं दृजा चाहना २ और तीसरे मनुष्य ऐसे होने हैं कि अपने मुससे अपनीही स्तुति वर्णन करते हैं चहुरि अपनी धि दंतों और अवस्था वर्णन करते हैं और इसप्रकार कहने लगने हैं कि अमुकव पक्षी क्या है मेतो सर्वेश दिन विषे गन गनवाए और इनना पाठ फावाहै और

रात्रि विषे जागरण करता हू अथवा जब किसी को भजन करना देखता है तब उममे विशेषही नियम किया चाहता है ऐमेही विद्यावान् भी कहते हैं कि अमुक पुरुष क्या विद्या पढ़ा होवेगा इगनो इननी विद्या जानने हैं और प्रश्न उत्तरविषे दूमेरे को निर्वचही किया चाहते हैं अथवा आप भूठही कहते होवे तो भी अपने वचन को गिगय नहीं सके और सभा विषे नूतन वचन चतुराई सयुक्त उच्चारण करने हैं और अपनी बडाई को प्रसिद्ध किया चाहते हैं सो यह सबही तपस्वी और विद्यावान् अभिमानमे रहित कब होसके हैं पर जिन्हों ने अभिमानको अलीपकार निन्द्य जाना है तब वह प्रीति और नम्रता विषे ही स्थित होते हैं जैसे महागजने भी कहा है कि जब तू आपको नीच जानेगा तब मेरे निकट नेरी बडाई होवेगी और जबलग तू आपको विशेष जानता है तबलगतू मेरे निकट अतिनीच है पर जिमने इम भेदको नहीं समझा सो पित्रावान् भी महागुर्व है बहुरि तीसगकारण अभिमानका उत्तगकून है जैसे ब्राह्मण और उच्चगजनाकी सम्मान जो होती है सो यद्यपि पित्रावानों और वैरागीको देखे तो भी अभिमान करके उनको अपना गृहलुप जानते हैं अथवा तबभी वह अपने अभिमानका प्रकट नहीं करने पर को रके अवसर विषे आपही प्रसिद्ध है आरता है जैसे एक सन्नने किसीको भोयवान् होकर दासीमुन कथाया सो जब यह वार्ता महापुरुषने सुनी तब उनसे कहते भये कि भगवत्के निकट दासीमुन और गनीमुनकी विशेषता ऊनता कुछनहीं ताते तुम अभिमानी न होवो यह वचन सुनकर वह सत उमके घरागये और उमके चरण अपने गस्त्ररूपपर रखकर अपनी अथज्ञाको क्षमा कराया ताराय्य यह कि जब उन्होंने अभिमान के वचन को निन्द्य जाना तब ऐमी नम्रताको अगीकार करने भये ऐमेही दां गनुप महापुरुषके निकट विवाद करनेलगेथे कि मैं तो अमुक का पुत्र और अमुक का पौत्र हूँ और तु कौन नीच है जो मेरे सम्मुख वचन बोलता है ऐमेही नवपीढ़ी पिता पितागद पर्युत्र वर्णन करगया तब महापुरुषको आकाशवाणी हुई कि इमके नवो पितागद जागेही नरकविषे जलने हैं और यहभी उनके निकट जाइ जनेगा नाते इममे रगे कि तू इतना मान क्यों रग करना है फादेसे कि जो तू कुलका मान करेगा नर विष्टाके फीटरी नाई महानीच मनिको प्राप्त होवेगा बहुरि चौथा काण्य मानना रूपे पर यह रूप और शूद्रास्ता बनारना मिश विषे अधिक होना है नेमे ज-



यशानागी महापुरुषकी स्त्री ने कहाथा कियह स्त्री डिंगनी है ताने इमबनत नि  
 यही अभिमान सिद्ध होताहै कि मेरा शरीर इममे दीर्घ है बहुति पांचवा कारण  
 अभिमानका नतेहै इमकरके कि जब धनवान् पुरुष किसी निर्धन पर प्रेयवान्  
 होताहै तब इसप्रकार कहने लगताहै कि मैं इतनाधन और सागमी रखताहूँ तब  
 तू कौन नीच है जो मेरे समान बोलताहै जब मैं चहूँ तब तेरे समान केत दास  
 मोन लेआऊ बहुति छटा कारण अभिमानका बनहै ताने वचवान् पुरुषमी वि  
 र्वल मनुष्यको देखकर अश्यही अभिमानी होताहै और सतिवां कारण अहि  
 मानका यहहै कि सम्पन्नियों और विद्यार्थी और शहलुओं और अने सेवकों  
 अभिमान करताहै तात्पर्य यह कि जिस पदार्थ को यह मनुष्य विशेष जानता  
 है सो निम पदार्थ को पाकर अश्यही अभिमानी होताहै अर्थात् यद्यपि वह  
 पदार्थ नीचही होवे तौभी अपनी रूफ विषे उसको उच्चग जानकर बढ़ाई किया  
 चाहताहै जैसे सुसरेभी अपनी निर्लज्जनापर अभिमान करने है पर अभिमान  
 की उत्पत्ति के कारण श्रेष्ठ गृहीमात है बहुति अभिमान का प्रकट होना गौरी  
 और वेग्यावकरके होताहै अथवा दंभके निमित्तमी यह मनुष्य आपत्ते रोग  
 कर दिवावना है अथवा प्रश्नोत्तर के विवाद विषे भी अभिमानका निह मर  
 भास आवताहै पर जबतेने अभिमानके कारण को मलीप्रकार पहिचानना न  
 इमके निवृत्त करने के उपायमी अश्यही समझने चाहिये है और रोगके प्र  
 णको पहिचान कर उसका दूर करना ही रोगको नष्ट करेताहै ॥ अत्र प्रकट फल  
 उपाय अभिमान के निवृत्त करने का ॥ ताने जात है कि निम अभिमान का  
 अंगमी आत्मसुखमे अप्राप्त करनेवाला तावे सा जेमे अभिमानरुही रोगका उ  
 पाय करना आवश्यक प्रमाणहै और यह रोग पेना प्रबन्धे कि इमकी रचना ने  
 रहित कोई विनाही पुरुष होताहै पर इसके दूर करनेका उपायभी दो प्रकार का  
 सो प्र उपाय ऐसाहै कि यह मूलही से स्वप्नकारके अभिमानको दूर कराना  
 है और दूसरा उपाय यहहै कि उगमें अभिमानके कारणोंको पहिचानकर निम  
 भिन्न उनको निवृत्त करना होताहै सो यह दोनों उपाय रूफ और कानूनके मा  
 गिनकर मित्त रोग है सो प्राप्त उपाय यहहै कि भगवान् के पदार्थको पहिचानने  
 और जेनेताने कि बढ़ाई का अविचार प्रकट प्रमाणहै है प्रकृति वागही इत  
 प्रमाण समझे कि मेरे समान नीच और पृथीय और पगवान् और पूर्व का

नहीं है सो यह उपाय ऐसा विशेष है कि अभिमानके रोगको मूलही से काट डालता है ताते इसजीवकी नीचता के पहिचानने को एकही वचन बहुत है जैसे महाराज ने कहा है कि इस मनुष्यका आदि वीर्य है सो इस वचन का अर्थ इस प्रकार जानना चाहिये कि इस मनुष्य के समान और नीचवस्तु कोई नहीं काहे से कि प्रथम तो इसका नाम रूपही कुछ प्रकट न था वद्विर रज और वीर्य जो पृथ्वी और जलका विकार है सो इनके सम्बन्धमें शरीरकी उत्पत्ति रची है पर जब भलीभांति देखिये तो रज और वीर्य के समान और गलिनता क्या है वद्विर उस से पीछे गामका आकार प्रकट होता है सो तिस विषे नेत्र और श्रवण और बुद्धि आदिक चैतन्यताही कुछ नहीं होती ताने वह पायरकी नाई जड़रूप गामता है अर्थ यह कि जो अपने आपही से अचेतहोवे तब और किसी पदार्थको क्योंकर पहिचाने ताते भगवत् ने अपनी समर्थता करके उसही गाम को सर्व इन्द्रिय और बुद्धि दीनी है सो यहवार्त्ता प्रसिद्ध है कि इन्द्रिय और बुद्धि ही चैतन्यता जल और पृथ्वीका धर्म नहीं पर यह सबही आश्चर्य महाराजने उत्पन्न किये हैं इसकरके कि यह मनुष्य भगवत् ही वृक्ष और वल को पहिचाने और अभिमान के निमित्त तो इमको ऐसे जग और ऐमाचल भगवत् ने नहीं दिया सो इममनुष्यकी आदि तो यही है पर जब विचारकरके देखिये तब यह अवस्था इमजीवको लज्जावान् करनेवाली है ताने यहा अभिमानका ठौर नोन है वद्विर मध्य अवस्था मनुष्यकी यह है कि जब सर्वगुणा और सर्व इन्द्रियों मयुक्त होकर इसमसार विषे आया तौगी महादीन और पगधीन है सो जब इमजगत् विषे आइकर यहजीव स्वोच्छित होना तौगी इमको अभिमानका अधिकार होना काहे से कि मनकरके ऐसे ज्ञानता है कि मैं आपही करके उत्पन्न हुआ हू पर इममसार विषे भूत प्याम शीत उष्ण दुःख त्रिंता आदिक ने भने क विन्त है सो मवती इम जीवके ऊपर प्रणय किये है ताने एकमण भी इनके दु गमे रहिन नहीं होनका सो यह मवदी फल ऐसे है कि वर्षान विषे नहीं आते वद्विर इम जीव के गोंका उत्पन्न कट गोपीयोंविषे रावते और शरीरके भोगोंविषे रोगोंकी उत्पत्ति मनी है सो जब सातना अनुसार सुखोंको भोगता है तब अवश्यही दु मी होनाटे तातर्य यह कि इसजीवका कोई कार्य इमकी चाह अनुसार नहीं रवाटे ताने जब किसी पदार्थको जानना चाहता है तब नहीं जाननका और जब अपने महत्ता को

विस्मरण किया चाहते तब विमानको मर्मय नही होता इस करके प्रसिद्ध हुआ कि यह मनुष्य सर्व अर्थों और वनमयुक्त चन्द्रा यद्यपि है तौभी महादीन जो पन पीन जोर अत्यन्त नीच है उहुरि इस मनुष्यकी अत्र अवस्था यह है कि न गृधक होता है न च मन्त्र मन्त्रण वन रूप आदिक गुण कोई नहीं रहना और कभीत मृत्तु गरीर रहजाता है ताने सब कोई उन को देखकर ग्नानि करने है उहुरि इसही दृष्ट विषयी नहीं छूट सकता फाहेसे कि जब परलोक विषे पहुँचता है तब अनेक प्रकारके भयानक रूप देखता है तदुगि दण्डको अधिकारी होता है और अपनी सर्व आयुर्वलके अपकर्ण देखकर लज्जावान् होता है और तेज इम प्रकार पृथ्वी है कि अमक आहार और और फलतुनि और गड्डल्य तैने छिन्ति गित्त कियाथा ताने सबका उत्तर न दे मो जब भूटा होता है तब महा नारी विषे प्राप्त होता है और उससमय विषे इस प्रकार कहने लगता है कि जो मैं कृष्ण शूकर अथवा माटी होता तौ भनाथा फाहेमे कि पशुओं को परलोकका दर्शन तो नहीं होता तान जिम पुरुने इस प्रकार जड़पदार्थ और पशुओं मे भी आत्मा को नीच जाना है वह पहाई और अभिमान विषे क्योंकर आमक होगा इस करके कि जब मनी और आकाशके रेणु इस मनुष्यकी नीचता और पापों को पहिचान कर रदन करे तौभी इस जीवके दृष्टि और अन्त फदाचित नहीं जाता तो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी औरको कोई कौनचान पकड़कर बंधे खाने विषे डाले और उस योगको शूली चढ़ने का भय होवे तब वह अभिमान क्योंकर करता है तैमेही यह नव मनुष्य पापरूपी चोरीकरन रहने है और मंगल रूपी बन्दीनाने विषे बँधे हुये है उहुरि नारकोंका मग शूली चढ़नेकी ताई है तो तिम पुरुषने इस योगको मनीप्रकार ममका है तब यह जानताही अभिमानकी रोगकी मूला है न प्रकृत डालता है फाहेमे कि ऐसा मनुष्य आपसो मयमे नीच जानता है पर फलतुनि करके अभिमानका उपाय इस प्रकार होता है कि मन्त्र कानकरक दास भावको अन्तरीया को इस करके कि गगनद्रजनका वाहसर्ग मन्त्रा और दीनता है जो धरमद्वारे लोग अभिमानकरके मस्तक सिद्धी के अंग नीच न करनेये जाने गदाद्वयने उपाको धरनी पर गाया देना प्रभाव कदाथा मो जिज्ञानुननर। ऐनेही चाहेये कि जो अभिमानके सागरके अनुशा नोंई धर्मको जो उसमे विरथ्य होकर थिरे यह अभिमानरूपी रोग होता

प्रचलने किनेत्र और रमना और सख और शरीरके गर्व अङ्गों विषे प्रकट होता है ताने चाहिये कि जिह्वासुजन पुरुषार्थ करके सर्व अज्ञा विषे दामभायको ग्रहण करें जैसे यह भी अभिमानका चिह्न है कि मानी पुरुष अकेला नहीं चलसका ताने नम्रतावान् पुरुषको चाहिये कि ऐसे न बनें इपीकाके हमनवमरी मन सि-सीको अपने पीछे चलने नहीं दतेये और इसप्रकार कहनेये कि; लोकोके आगे चलने विषे इस जीवका मन स्थिर नहीं रहना ऐसेही अवृत्तरटा मन ने कहा है कि जितना इस मनुष्यको लोगो क साथ मिलाया अत्रिह होता है उननाही ग-गवत्के मिलापमे दूर रहता है इसीकारणमे जब महापुरुष मार्ग विषे चलतेये तब कभी प्रियतमोंके मध्य विषे चले जातेय और कभी व्याप रीति होकर प्रियतमोंको आगे करलेतेये बहुतरि जब उनके आगे लोग उठखड़े ओमेते तब उनको इस विषे ग्लानि उपज आती थी और वर्जित करते ये इसीपर अलीमन्तने कहा है कि जब कोई नररगागी मनुष्यको देखता चाहै तब उसको देखे जो आप तो बैठा होवे और लोग उसके आगे खड़े हो रहे बहुतरि यह भी अभिमानका लक्षण है कि आपसे विशेष पुरुषके दर्शन को न जायमके और दीन पुरुषको निकट बैठने न देये इसी कारणसे महापुरुष सब सिमीसे मायमयुक्त मिलते ये अथवा जब कोई रोगी मनुष्य अपवित्र होताथा तब इसको निकट बैठाकर भोजन कमाने ये बहुतरि जो अभिमानी मनुष्य होता है वह अपनी किया भी आप नहीं कर-सका और महापुरुष आपही अपने घर की सब किया करनेने ये इसी पर एक वार्त्ता है कि एक भगवद्रक्त राजाके घर विषे एक मित्र आया था सो रात्रि के समय विषे जब दीपक बुझनेलगा तब उस मित्रने दीपक विषे तेल डालनेकी मनमा करी तो राजान फटा कि महमान मे टडल रगनी भली नहीं ताने तुम बैठे रहो बहुतरि उस मित्रने कहा कि टडलुवे का जगाहू तब राजा ने कहा कि टडलुवाभी भवहीं सोया है इतना कहकर आपही उठकर दीपक विषे तेलडालना बहुतरि वह मित्र फटनेलगा कि तुम आपही उठे तब राजाने कहा कि जब मे बैठा था तबभी उदीया और अपनी उदीह तान गेसा गया तो फुटनरी इनीकारण मे अबूदोग भक्त जो राज्य करतेथे तो भी जीविकाके निमित्त लकीरियों का धामा पाजागविषे बैठनेतेये बहुतरि अभिमानी मनुष्योंका यह भी स्वभाव है कि सुन्दर पम् पादरे बिना चामे बाहर नहीं निकरने पर जली टमिक्त राजरगर्न विषेभी

छोटाही जामा पहिनेथे तब किमीने कहा कि तुम अपनी कृपाणा क्या करोगे  
 तब उन्होंने कहा कि इस तरह अपना चित्तगी प्रपन्न होना है और इस क्रियाका  
 देवता और जिज्ञासु जनभी मंत्रमंत्रिये रहेंगे और निर्द्वन्द्व पुरुषोत्तम मतोचभी  
 दूर रहना है ऐसीही एक और दृष्टिभक्त्याजा जब राजपुत्रये नर महत्त्व रूपयेका प  
 दराना पहिनेथे और उमको भी गोटा कहनेथे बहुरि जब आप राज्य करनेलगे  
 तब दो रूपये का एक पहाराना पहिरकर भी इस प्रकार रहने थे कि जो इसमें भी  
 अधिकगोटा पहिरिये तो मलाहै तब किमीने कहा कि जाग तो तुम सुदर वस्त्रों  
 भी इनकी अभिलाषा करतेथे और अब किमनिमित्त गोटा पहिरनेहो तब उन्हों  
 ने कहा कि भगवत्तने गोरामन गसप्राही बनायाहै ताने जिन वस्तुविये कुछ सुख  
 देखताहै तब उसीकी और दोइताहै अर्थ यह कि जागे स्थानमोगों को देखकर  
 और उनको विगेष जानकर भीति करना था-अब मने सुवस्त्री अभिनाप कर-  
 ताहै पर सर्वथा ऐसे नहीं कहाजाना कि सुन्दर वस्त्रों काही अभिमान होनाहै  
 काहे से कि केने पुरुष पुरातन वस्त्र पहिरकर अभिमान करते हैं और आप को  
 बेरागी-जानते हैं इसीतर ईसा महापुरुषने कहाहै कि पुरातन वस्त्र पहिरनेके ये  
 समय नहीं प्राप्तहोना ताने जब तुम्हाराहृदय भगवत् के मयत्तके कौमलदेये तब  
 उज्ज्वल वस्त्र के पहिरने करके भी दोष कुछ नहीं होता तारार्थ यह कि जिस  
 पुरुषको नम्रता और हीनताकी चाहदोत्रे तब महापुरुषों के आचरणों को मनी  
 प्रकार जाने और उनकी नम्रता पहिनेवानकर यह भी नम्रताही को अगीकारकरे  
 सो महापुरुष का ऐसाही स्वभावथा कि अपने वस्त्रों आपही भीनेने थे और  
 गृहविये भ्रातृभ्रादिक्र फिगा करने थे और जब उनका श्लुग शक्ति होताथा  
 तब उसके अंग चापदेनेथे बहुरि धनवान् और निर्द्वन्द्व और बालक वृद्धों देख-  
 कर मयगहै। मणाम करनेथे और ऊच नीच तथा सुन्दर कुरूपविये भेद न रखनेथे  
 और जब कोई उनसे भाव करके प्रसाद पावने को कहताथा तब उसकी थोड़ी  
 बहुत वस्तुको स्वानिविना प्रदण करने थे ऐसीही अनि लोम न और उदार और  
 प्रमत्तपदा चपलता न रहित थे बहुरि भगवत् के भग करके मरुषे दृष्ये थे पर  
 मरुषे करे न रखनेथे और प्रयोजन विना अधीनवित्त थे और मयमगद्वि  
 उदारथे और स्व-किरीण दया रखनेथे और सर्वथा अपने शक्ति ही मुक्त  
 रखनेथे ताने जो पुरुष अपनी मन्तारोंको प्राप्त हुआचोदे तब महापुरुषके आचार

अनुसार विचरे १ बहुरि दूसरा उपाय जो अभिमानका भिन्न भिन्न विचार करके कदाया सो यह है कि प्रथम अपने अभिमानके कारण को पहिचाने सो जब उत्तम कुल का अभिमान फुरे तब ऐसा जाने कि मेरा तो कुन रज और वीर्य है काहे मे यह शरीर इन्हीं से उत्पन्न है ताते माता इमकी रक्त है और पिता वीर्य है और माटी इमकी पिनामह है सो यह सबहीपदार्थ महाअपवित्र और तुच्छ है ताते विचारवान्को ऐसाही जानकर अभिमानका निवृत्त करना योग्य है काहे से कि जब कोई नाऊ वा कुम्हार का पुत्रहोवे तब वह उनकी नीच क्रियाको देख कर अभिमानी कदाचित् नहींहोता पर जब विचारकर देखिये तब यह मनुष्यभी रज और वीर्यकी सतानहोकर काहे को मान करताहै सो इसका दृष्टान्त यह है जैसे कोईपुरुष आपको ब्राह्मण कहावे और दो मात्मी आनकर कहें कि यह तो नाऊका पुत्र है तब यह बचन सुनकर केमा लज्जावान् होता है तैभेही जिम ने अपने शरीरकी उत्पत्तिको मलीमकार जानाहै वह कदाचित् मानी नहींहोता ॥

अथ रूपाभिमानोपाय ॥ बहुरि दूसरा कारण अभिमान का रूहै ताते जो मनुष्य अपने रूपका अभिमान करे तब उसको चाहिये कि अपने शरीरकी गलिनताको पहिचाने और शरीरके सर्वअंगोंविषे जो दुर्गन्ध भापूहै सो तिसका विचारकरे कि यह शरीर ऐसा गलिनहै जो यह मनुष्य निरपमति अपनी गलिनताको दोवार धोताहै और उस गलिनताके देखने व सूंनेका बन नहींरखना सो इमके शरीरका रूप उसही के आश्रितहै और इमकी उत्पत्तिभी रज और वीर्यकर हुईहै इमीपर नाऊमनने किमी पुरुषको मंडना देलाया तब उममे कहनेलगे कि जिमपुरुष ने अपने उदरकी गलिनताको पहिचानाहै वह इमपरफारफगी लटकाटकर नहींबलता काहेमे कि यह शरीर मल मूत्रके मानमेभी गलिनहै और मल मूत्रके स्थानों में भी इमहीभी गलिनताकरके गलिनता होता है बहुरि यह मनुष्य रूपका जो अभिमान करताहै सो इमने अपना रूप आरना नहीं बनाया और कोई पुरुष आपकरके कुरूपभी नहीं होसकता ताने स्थानि जो अभिमान करना व्यर्थ है बहुरि यह रूप ऐसा सप्रभापूहै कि एकही रंग अथवा फोड़े फरके कुरूप होजाताहै ताने इमका अभिमान करवा बड़ी मूर्खताहै ॥ अथ बलम् ॥ पर जब बलका अभिमान फुरे तब इमपरफार विचारै कि जब पकनाही विषे पीड़ा उपजती है तब मरानिषेन और दीन होजाता है बहुरि मात्मी और

मन्त्रद्वयों नीचे के कालों में भी आपको बचाव नहीं मिला—अबत जब यह  
 मनुष्य अधिक पत्नी होने लगे भी वृद्ध और गर्दम और दूसरी और उर इस में  
 अधिक फलित होने लगे नीचे पत्नी का अभिमान करना कष्ट है ॥ अथ  
 पेशवाय ॥ वृद्धि जयधन और दाम और दासी अथवा राज्य का अभिमान करने  
 तब यह तां गच्छे पदार्थ इसके शरीरमें बाहर होने लगे उनको योग आदि क विद्या  
 दूर करवाने है और राज्यभी क्षणभित्त नष्ट हो जाना है तब उमरमय धिये के नी  
 अशानता का प्राप्त होना है वृद्धि केने विमुख लोग भी इसमें अधिक धनी और  
 राजा होत है तब ऐसे धन और राज्यका अभिमान करना कष्ट है कहे कि  
 जितने पदार्थ कृष्णमें भिन्न हैं वे तरे कदाचित् नही होने तब जितने पदार्थों  
 का अभिमान करना है सो सुखही मिथ्या है ॥ अथ विद्या ॥ पर जब पूर्ण गारण्य  
 देखिये तब इममनुष्यको विद्या और तपके अभिमानका अधिकार होता है तब  
 से कि स्थूलदृष्टि विषे भलीप्रकार कहे यह दोनों तर्प इमही के पुरुषार्थ में ऐसे  
 उत्तम है जो भगवत् क निकट प्राप्त करनवाले हैं और भगवत् की कृपाप्राप्त होते  
 यद्यपि महाकृति है कि विद्यादान् हाकर अभिमानमें रहित रहे पर इममभि-  
 मानके दूर करने का उपाय भी तो प्रकाश होना है प्रथम तो इमप्रकार जानने कि  
 परलोक विषे विद्यादान् को एकद्वय और मय अधिक दोनदि कहिये कि जब ज  
 ज्ञान पुरुष में कोई कार्य विगड़ जाता है ना उमर का इनकी नाइता नही कही  
 और सुखान को अधिक होनी है तब कालमें हीन विद्यादानां के निषेध विषे  
 जो वचन आये हैं सो निश्चय विचारको जैसे पशुपतने कहे कि तपुर्विने  
 हीन विद्यादान नईम की नाई है जो गर्भमात्र पुत्रको का भाग उगाएँ और  
 उनही विरायता को नही जानता असा कृष्ण की नाई है कहे कि नान  
 मन्त्रिण स्वभार को द्याग नही सकत तब गर्दम और वृद्धमें अधिक नीचे को  
 नहे जो उमर ही मन्त्रादीजें इमप्रकारे कि तब यह पुत्र पालकोके इमम सुत्र  
 होने नर उद्भवदार्थभी इममें निषेध है इतीकण्णम विरतने ही भीतिमर्णा म कथा  
 है कि जो इम पक्षी पुत्र और मामुले और कर्तव्यके इ तब अपने नीचे भक्त  
 भा वागर्थ यह वि पालो फल मय विनये कथ्य विषे विद्या होना है तब मन्त्रा  
 वि ही उमको अभिमान नही उपजता तब तब विद्या ज्ञान ही देवता है  
 तब एने उपजता है कि यद्यपि मृच्छमे विद्ये है कथने कि इमने सो पालो है

सुराईको गलीप्रकार नहीं पहिंचाना ताने इमको अधिक ताडना न देवेगी व-  
 दुरि जब किमी अधिक विद्यावान् का देवनाहे तब ऐसे जानना है कि यहगी  
 मुझसे विशेषहे इमकरके कि जिनभेटको यह नमझताहै सा तिमको से नहीं  
 जानता ऐसेही जब वृद्धपुरुषको देवनाहे तब ऐसे जानता है कि इमने भगवद्ध-  
 जन मुझसे अधिक क्रिया होवेगा और चालक को देवनाह कहताहै कि इमने  
 पाप मुझसे अल्प किये होंगे ताने ऐसा पुरुष अपकर्मी को देवकर भी अभि-  
 मानी नहीं होता काहेसे कि जो यह अन्तकाल विषे शुभकर्मी होजावे और से  
 उसमगय विषे अपकर्मी होजाऊ तो क्या आश्चर्य है वदुरि दुमग उपाय यहहे  
 कि इसप्रकार विचारकरे कि यह वटाई महाराजहीको गोभती है और ऐसे समर्थ  
 महाराज का साक्षीहोना बड़ी मूर्खता है इसीकारण से भगवत् ने सर्व नीचा को  
 यही आज्ञा करी है कि जब तुम आप को नीच जानोगे तब मेरे निकट उत्तम  
 होवोगे ताने सर्व सन्न जो नन्नतावान् और दीन चित्तहूये हें सो ऐसेही समझ  
 कर उनका अभिमान दूहोगया है ॥ अथ तप ॥ वदुरि तपस्वीको भी इमप्रकार  
 चाहिये कि यद्यपि विद्यावानको योग्यसेरहित देवे तौभी उसके ऊपर गनाहि न  
 करे और ऐसेजाने कि जो यह उत्तम विद्याही इमको भगा कगलेवे तब इसविषे  
 क्या आश्चर्य है ऐसेही जब विद्याहीन को देवे तब इमप्रकार समझे कि मैं तो  
 इमकी अवस्था को नहीं जानता ताने जब यह मुझसे भी अधिक भजनवान्  
 होवे तब मुझको इमपर अभिमान करना क्योंकर प्रमाण है ऐसेही जब किमी  
 अपकर्मी को देवे तब इमप्रकार समझे कि यह तो प्रकटही पापकृता है और  
 भेगेचित्त विषे भी अनेक पापों के मङ्गल उपजनेहें ताने यह बातों निम्ननेहहे  
 कि जिनके अन्तर पापोंकी चिन्तनीहोवे और निपापदाड विचार तब यह प्र-  
 कट पाप करनेवाने से अधिक नीच होताहै वदुरि एक पाप सेनेवनी दावेहै कि  
 वह अनेक जप तपों का नष्टकर डानने है और एक गुण ऐसा बनवान् होताहै  
 जो अनेक पापों को दूर करेताहै तात्पर्य यह कि भवार्थनी इम विषे देविषे  
 तो अभिमान करना बड़ी मूर्खताहै इसीकारण से महापुरुष और जन्तान लोग  
 बुद्धिमान पुरुष अभिमानसे रहित हुएहैं ॥ अथ प्रकट कर्मी विवेचना अरुणा  
 की और प्रसिद्ध विचारने हमरे विष ॥ ताने जानत कि सत्य विषे और अ-  
 शुभ कर्मों का निज अरुणा है इ तीव्र मरुपुत्रों व दाते कि नान मरुताव इम



मच्छु और नीला के कटने से भी आपकी धारा नहीं मक्का अथवा जय यह  
 मनुष्य शक्ति होती है तो भी वृत्त और गर्भ और धर्म और अहम में  
 अधिक लीटने हैं नाने अपने तीन पदार्थ का अभिमान करना क्या है ॥ अथ  
 पेशर्षण ॥ मनुष्य जन्म और शरीर और तामी अथवा मनुष्य का अभिमान करे  
 तब यह तो मनुष्य पदार्थ इसके शरीर में बाहर है नाने पदार्थ और आदि विषय  
 दूर कटालने है और शरीर भी क्षणविये नष्ट होजाता है तब उस समय धिये कैसी  
 अधीनता ही प्राप्त होना है मनुष्य के विमुख लोग भी इससे अधिक धनी और  
 गना होने है नाने ऐसे धन और गज्य का अभिमान करना क्या है काहे से कि  
 जितने पदार्थ तुम्हारे भित्तों से तेरे कटा लिये नहीं दाने नाने तू जितने पदार्थों  
 का अभिमान करता है सो तबही मिया है ॥ अथ विद्या ॥ पर जन्म कर्मवत्त  
 देविये तब इस मनुष्यको विद्या और तपके अभिमान का शरीर होना है काहे  
 से कि इन्द्रदेविये मन्त्रिकार काके यह दोनों कर्म इन्द्रके पुरुषार्थ से ऐसे  
 उद्योगों जो भगवत् के निकट प्राप्त कालेयल है और भगवत् के लक्षण है नाने  
 वदवाणी महाकठिन है कि विद्यावान् होकर अभिमानमें रहिये भै पर इन्द्रअभि-  
 मानके दृक्कने का उपाय भी तो प्रकार का होना है मनुष्य तो इन प्रकार जाये कि  
 परलोक विषय विद्यावान् को पच्छु और भय अधिक होना है काहेसे कि जब तू  
 जान पुरुष में कोई कार्य भिगड़ना दे तब उसको इनकी नादना नो कर्म  
 और मुजान को अधिक होती है नाने कर्मनि हीन विद्यावानों के विषय विषय  
 जो तब आये हैं सो तिनका विद्याको जैसे मदागतने कटा है कि कर्मनिम  
 हीन विद्यावान् नर्म ही नाई है जो मनुष्य पुरुष का का गा उगना है और  
 उगना विद्येयता का नहीं जानना अथवा कर्म की नाई है काहेसे कि आगे  
 गा तन स्वभाव को त्याग नहीं करता ताने गर्भ और इन्द्रमें अधिक नीचे  
 नष्ट जो उनकी सत्ता हीने इस प्रकार कि जब यह पद परलोकके दान मुद्र न  
 लो तब जड़पदार्थों इतने विषयों ही कर्मवत्त में तिनकी शीतलता में कर्म  
 है कि जो हम पदार्थ मृग और प्राणेश और परलोकके दु तने मनुष्य तो भी मना  
 या मारत्य यह विद्यावान् का मय भिगो मर्य विरमिष्यन हाता है तब मया-  
 रिय ही मर्या अभिमान नहीं उद्योगता ताने तब तिमो अज्ञान को देगा है  
 तब मय मयभला है कि यद्यपि मनुष्य विद्येय से काहेसे कि इतने ना पदार्थों

बुराईको गलीप्रकार नहीं पहिंचाना ताने इनको अपिक नाइना न हंवेगी व  
 हुरि जब किमी अपिक विद्यावान् को देखताहै तब गमे जानता है कि यहभी  
 मुझसे विशेषहै उमकरके कि निमभेदको यह समझताहै ना निमको गे नहीं  
 जानता ऐमेही जब वृद्धपुरुष को देखताहै तब ऐमे जानता है कि इनने भगवद्ध-  
 जन मुझसे अधिक किया होवेगा और बालक को देखकर कहताहै कि इनने  
 पाप मुझसे अल्प किये होवेगे ताने ऐमा पुरुष अपकर्मी को देखकर भी अभि-  
 मानी नहीं होता काहेसे कि जो यह अन्तकाल विषे शुभकर्मी होजावे और गे  
 उममगय विषे अपकर्मी होजाऊ तो क्या आश्चर्य है बहुरि डूमरा उपाय यहहै  
 कि इसप्रकार विचारकरे कि यह बड़ाई महाराजहीको गोभती है और ऐमे समर्थ  
 महाराज का साभीहोना बड़ी मूर्खता है इमी कारण से भगवत् ने सर्वजीवों को  
 यही आज्ञा करी है कि जब तुम आप को नीच जानोगे तब गेरे निकट उत्तम  
 होवेगे ताने मर्ध सन्न जो नत्रनावान् और दीन चित्तहुये हें ना ऐमेही समन्द  
 फर उनका अभिमान दूहोगया है ॥ अथ तप ॥ बहुरि तपस्वीसोभी इसप्रकार  
 चाहिये कि यद्यपि विद्यावान्को योग्यसेरहित देने तौगी उसके ऊपर ग्लानि न  
 करे और ऐमेजाने कि जो यह उत्तम विद्याही इसको थगा करालेवे तब इसविषे  
 क्या आश्चर्य है ऐमेही जब विद्यादीन को देखे तब इसप्रकार समझे कि गे तो  
 इसकी अपस्था को नहीं जानता ताने जब यह मुझसे भी अपिक भजनवान्  
 होवे तब मुझको इसपर अभिमान करना क्योंकर प्रमाण न ऐमेही जब किमी  
 अपकर्मी को देखे तब इसप्रकार समझे कि यह तो प्रकट ही पापकर्मा है और  
 भेरेचित्त विषे भी अनेक पापों के महाद्वार उपजनेहें ताने यह वात्ता निस्मन्दहूँ  
 कि जिसके अन्तर पापों की चित्तवृत्तियाँ और निष्पापताड विचारें तब यह प्र-  
 कट पाप करनेवाले से अधिक नीच होनाहै बहुरि एरु पाप पसेवती होतहै कि  
 वह अनेक जप तर्पण नष्टकर डालने है और पर गुण ऐमा बनवान् होनाहै  
 जो अनेक पापों को दूर करतेहैं ॥ तात्पर्य यह कि यथावती रूप विषे देखिये  
 तो अभिमान काना बड़ी मूर्खताहै इमी कारण से महापुरुष और गन्तवत और  
 बुद्धिमान् पुरुष अभिमानमे रहित हुयेहैं ॥ अथ प्रकट ॥ निवेदना अट्टहार  
 की और प्रसिद्ध विचारने उसके विषे ॥ ताने जानत कि नये रिषों और ज-  
 शुभ कर्मों का शीघ्र प्राप्ताई इमी कारण से महापुरुषों को दूर किर्तन स्वभाव इस

जीवके महा बुद्धिपुरु हैं सो एक रूपणता इमग वाचना सो प्रपनता मोरस  
 अहङ्कारे बहुरि महापुन्यने अपने प्रियनमो से इमप्रकार कथाया नि यद्यपि तुम  
 पापरुर्ष नहीं कने तौगी से इमरुके डानाह कि तुम अहङ्कारि न होनावो मथ  
 महा नीचना को प्राप्त होरोगे करेये कि अहङ्कार सखी पापामे बुगहे इमीपर  
 इचनममउठ सतने कहाहै कि भगवत्की दयामे निगणना और आपको देख  
 कर अहङ्कारि होकरये यह गनुष्य विमुक्त हो जानाहै कहने कि अहङ्कारि और  
 निराण पुरुष के हृदय मे प्रीति और पुरुषार्थ दूरे होजाता है इमीपर एक और  
 सन्तने कहाहै कि जब मे मारीरात्रिपर जागण्य रुके भजन करताहूँ गो प्र-  
 भात समय उठकर अहङ्कारि होऊ तबइममे मे यह चार्त्ता विगेष जानताहूँ कि  
 यद्यपि मे सर्वभूत मोरहू पर प्रभाव समय जाधीनचित्त और लज्जापारु होकर  
 उठूँ तो मज्जाहै नामे जानतूँ कि इम अहङ्कार मे केनेविन्न उपजते हैं सो एकतो  
 अभिमानहै कि आपको मथमे विगेष जानताहै बहुरि अपने धरगुणोंको नहीं  
 जानता अथवा ऐमे जानता है कि मुझरूप हूँ बहुरि भगवद्भजन मे अज्ञमाय  
 जानाहै और यद्यपि कुछ जप तपभी करताहै तो भी उमके विषय को नहीं वि-  
 चारता ताते भगवत् के गयमे रहिन होनाहै बहुरि ऐमे जानताहै कि भगवत्के  
 निश्चय बुद्ध विगेषहूँ और भजन स्मरण जो भगवत्की जानते सो निश्चयो व-  
 पना पुन्यार्थ ममकताहै और अहङ्कारके मथ उत्तर किमीसे प्रक्ष नहीं सखा  
 बहुरि जब उमको कोई यथार्थ वचन सुनाते तौगी अहङ्कार नहीं करता मथे  
 मुझ ओर नापही रहताहै ॥ जब अहङ्कारके रूप प्रकट करना ॥ ताते जानतूँ  
 कि विद्या और शुभकर्मों के पदार्थोक्ति जेने गुणहै सो सखी महाराज की  
 दातहै पर जो पुरुष जेने गुणों को पायकर जानाओ ओर दृष्टि रखताहै ओर  
 अपने आक्को कुछ नहीं जानता तब पुरुष अहङ्कारमे रहिन रहजाताहै और  
 जो गनुष्य किमी गुणको मासदोकर अत्रा पुन्यार्थ जानताहै और उम करके  
 प्रपन होनाहै तब इमही जानाम अहङ्कारि और जब अपनी कर्तुनिका विगेष  
 जानकरके किमी पदको प्राप्त होनाहै और आपकी उमग अधिकासी जाते  
 तब इमही जानाग सखे जै यह हि अहङ्कार ओर वा जोर जानताहै और  
 यथार्थ को नहीं जानता इमी पर महापुन्य न कहाहै कि जब भुव प्रीति भुव  
 रुदनरूपे अहङ्कारि तौने तब इममे मह वचन विगेषीहि दसाहै जानी

भ्रवज्ञा देखनेरहो काहेसे कि अविद्याका मूल अहङ्कार है जिस करके आपको गरीर और वर्षाश्रम और कर्मोंका कर्ता जानता है सो भगवत् और इस जीव विषे यही अहङ्कार पटलहै ॥ अय प्रकट कर्मा उपाय भ्रदङ्कार का ॥ ताते अहङ्कार रूपी रोग का कारण केवल अज्ञान है ताते इसका उपाय भी केवल ज्ञान है और ब्रह्महो मो ब्रह्म यहहै कि जब कोई पुरुष रात्रि दिवस विद्या और वैराग्य विषे स्थिर रहै और इस कर्तृति करके कुछ अहङ्कार करै तब मैं उमसे इस प्रकार कहूँ कि यद्यपि तू आपको कर्ता जानकर अहङ्कारी होताहै तौगी तेरा कर्म तेरे पुरुषार्थ के आश्रित नहीं काहेमे कि तुम्हको महाराजने कर्तृति करने का शस्त्र बनायाहै जैसे लिखारी के हाथ विषे कलम होतीहै अथवा जैसे दरजी के हाथ विषे सुई होतीहै सो लिखना और मीचना कन्ध और सुई की कर्तृति नहीं काहेसे कि वह दोनों पराधीनहैं बहुरि जन्तु ऐसे कहें कि कर्मोंका कर्ता गेहूँ काहेमे कि मेरीही श्रद्धा और बलकरके कर्म सिद्ध होते हैं तब इसका उत्तर यहहै कि जिस श्रद्धा और बल करके कर्म सिद्ध होते हैं सो तू कदा मे लायाहै और कुछ इस वार्त्ताको भी जानताहै कि जिस चाह और उद्यमके आधीन होकर तू कर्मों विषे लगताहै सो तिम चाहको तेरे ऊपर किसने प्रेरारहै और श्रद्धारूपी रस्सी तेरेगले विषे डालकर तुम्हको कर्तृतिकी ओर किसने चलाया है ताते जान तू कि यह चाह और श्रद्धाही महाराजका दूनहै सो जिस पुरुषको जैसी आज्ञा होती है तब वह किसीप्रकार उलटाय नहीं सका ताते प्रसिद्धहुआ कि श्रद्धा और पुरुषार्थ और और जेने गुणहै सो सवही महाराजभी दातह पर तू जो किसी गुणका अहङ्कारी होता है सो यह बड़ी मूर्खता है काहेमे कि तेरे बलकरके कोई कार्य सिद्ध नहीं होता ताते तुम्हको किसी गुण का अहङ्कारी होना प्रमाण नहीं बहुरि जब तू प्रमत्तहोतौ तौगी भगवत्के उपकारको जानकर प्रमत्त और आश्चर्यगान् होना प्रमाणहै इसकरके कि बहुत गनुष्यों को धर्म के मार्गसे अनेन कियाहै और उनका पुरुषार्थ अरकर्मों विषे लगनाहै और तुम्हको महाराजने अपनी दयाकरके साक्षिकी श्रद्धारूपी द्रव्यसे प्रेरारहै ताते दग्ध करके तुम्हको अपनी ओर खींचनाहै सो यह भगवत्की ही उपकारहै जेमे कोई राजा किसी भ्रान्ते गुरु द्रव्यसे ही हेतु गहन अर्थात् कृपाकरके नियोजन और नाना पदार्थ देतै तब उमको अपने स्वामीका उपकार माननाही प्रमाण होना

है और अपने उस अहङ्गामी होना असाध्य है जहाँसे कि उसको अविचार से  
 बिना ही बना हीन मान लेंगे है पर जब यह दृष्टान्तवाक्य है कि गजाने मुक्त हो अपि  
 किसी जानकर बसगीगकी है तब उमगे पृथिवी कि मुक्त हो अविचार किमने  
 दिया है ताते अविचार और अज्ञान दोनों पाना ही ही दान है जेमे प्रथम ही  
 मुक्त हो गजा घाड़ा दे और पीने उस घाड़ा टटलुर देवे और इस करके तू  
 अहङ्गामी होवे कि मुक्त हो अहङ्गामी इम निमित्त प्रायः मुक्त है कि गे घाड़ा खना  
 ना सो यह अहङ्कार रचना मुर्खाता है काहमे कि यह घाड़ा भी उमीने दिया है  
 और अहङ्गामी उमही ही बसगीग है ताते तू वर्ध अहङ्गामी दान है तैमे ही जब  
 यह मनुष्य इन करके अहङ्गामी जानते कि मुक्त हो गजानन गजानना वच इस  
 निमित्त दिया है कि गे उम हो भियतम खना ता तब उममे कहिये कि तेरे हृदय  
 विषे भी किमने उपजाई है तदुमि जब यह येमे रहे कि तेरे हृदयविषे भी कि  
 उम करके दृष्ट हुई है कि गेने उमके स्वभावो भर्त्सना पारिचाना या तब  
 उममे कहिये कि यह परिचान आरंभ किमने दीया तात्पर्य यह कि जगत्  
 गुणोपा दाना मदागत ही हुआ तब ही प्रचार उगरी का उपचार जानना  
 विशेष है काहमे कि मुक्त हो भी उमहीने उराव किना है तदुमि अन्ना और पुण्यार्थ  
 आदिक गुण भी तेरे विषे उमदाने उपाये है ताते तू जा करके कुदही नहीं  
 और तेरे आश्रय भी काई कार्य नहीं मदागत ही मयर्षना के प्राय विषे तू भी प  
 रार्थाने पदुमि जब तू इमपत्तय बभूते कि जब गे किमी उमकेता कर्त्ता नहीं  
 तब हणमे कर्मोत्तर पुण्य दया विनाजागरे ताते तू ना पवित्र जाना जा  
 नाते कि कर्म दया पुण्यार्थ उपाये है तब ही उपायत पुण्यत गभिरागिभी  
 हमही होवे ए तब हमका उपाय चढे कि निम्नरत्न तू ताप तबने तू नही  
 और मदागत ही मर्दाना गिने है ना पतनीमते कि तु कर्मके कोई कार्य निश्च  
 नही होना पर तब तदुमि कि मुक्त और अहङ्कार ना जातुम तब तू इस  
 पत्ता जाना है कि यह तूने मत कि ताते मा इमका तबनाम एना मृत्यु है कि तू  
 इम अहङ्कारके मयर्षना उपाये है तब ही उपायत पुण्यत गभिरागिभी  
 दूरे तब तूना कर्मोत्तर ही तू ही तू ही तू ही मदागत वचने इमकरके कि इकर  
 दिया मृत्यु निश्च नही होवे ताते मयर्षना गजाने ताते इमका हठान  
 चढे तैमे अहङ्कारके उपायार्थ मदागत ही तू उम ही तू ही ता ताप

न होवे वद्वरि जब दयाकरके, खजानची तुम्हको कुजी देवे तत्र तू उमके नाले  
 को खोलकर अधिक सम्पदा को प्राप्त होवे सो यद्यपि यह सम्पदा देने अपने  
 हाथोंकरके लीन्दी है तौ भी, अधिक उपकार कुजी देनेवाले का होता है और तेरे  
 कर्मकी वड़ाई कुछ नहीं होती तैमेही तेरे सर्वकर्मों की कुजी महागज की बख  
 शीण है तो चाहिये कि तू सर्वप्रकार उमही का उपकार जानकर प्रसन्न होवे जो  
 उसही महागजने अपनी दयाकरके तेरे अपिकार बिना तुम्हने शुभकर्म कराया  
 है और पापीजीवों को बलाई रूपी खजानेमे अप्राप्त राखा है सो उनकी अज्ञा  
 बिनाही अपनी आज्ञानुसार उनको अशुभमार्गी विषे डाला है तत्पर्य यह कि  
 जिसने सबका प्रेरक महाराजहीको पहिचाना है तत्र वह कदाचित् अहंकारी नहीं  
 होता पर यह बड़ा आश्चर्य है कि जब सुजान मनुष्य निर्द्धन होता है तत्र इस  
 प्रकार आश्चर्य करने लगता है कि अमुक मूर्ख को इतनी सम्पदा प्राप्त हुई है  
 और मुझ ऐसे बुद्धिमानको कुछ प्राप्त नहीं होना सो वह ऐसे नहीं जानता कि  
 यह विद्यारूपी पदार्थ जो मेरेपाम है सो यह भी तो भगवत् की वड़ी दात है पर  
 जब महाराज विद्या की मूर्ख धनी को देता तत्र भगवत् का ऐश्वर्य और नीति  
 कुछ खण्डित तो नहीं होता पीताते यह विद्यावान् ऐसेही आश्चर्यकर्म है जेमे  
 रूपहीन स्त्रीको देवकर रूखती स्त्री आश्चर्यकरे कि इम कुह्याको इतने भूषण  
 मिने है और मुझ रूपवतीको कोई भूषण नहीं प्राप्त हुआ पर मूर्खता का हे इतना  
 नहीं जानती कि जब रूप और भूषण दोनों उनही को मिलने तत्र भगवत् की  
 समर्थता विषे क्या विषयता होनी वद्वरि जेमे राजा किनी चाकरको घोड़ा दवे  
 और एकको एक गुनाम देवे पर जब घोड़ेवाला चाकर आश्चर्यमान होवे कि  
 घोड़ा तो मेरे रबना हू और राजा ने टूमे चाकर को गुनाम किम निमित्त दिया  
 है सो यह वड़ी मूर्खता है इमी पर एक वार्त्ता है कि दाऊद महात्माने इम प्रकार  
 अटझार कियाया कि हे महाराज ! मे तेरा मनन नागीगान्त्रि करता हू और सर्व  
 दिनों विषे मनी रहता हू तत्र उनको आज्ञा पायी हुई कि हे दाऊद ! तेने पना  
 पुत्रार्थ फलामे भेरे बिना पाचते ताने अत्र मे पक्षण तुम्हको जरनी महापना  
 से दूर रबना हू तत्र उमीयल विषे उनमे एक ऐसा पार उजा कि उम ही जाना  
 काके और उम ही लज्जामानी करके मरे जाय प रिन रुदन कर्मे हे वद्वरि  
 अय्य महात्माने भी एमेही बहदा मियाता कि हे महाराज ! निवना कटने

मेरे ऊपर गेजा है सो मैं कितनेही पत्तो मे उमदी बिने धैर्यकर रहा है तब उनके भी बड़े भयानक शब्द के साथ आकाशवाणी हुई कि तू मेरी दया बिना केसा धैर्य रहा मे ले आया यह बचन सुनकर अय्य जी भयवान् द्रुपे और जगने गीजपा घृनि दानकर रहनेलगे कि हे महागज ! सब कुछ तेरीही दयाकरने प्राप्त होता है ताने मैंने अपने शठकारका त्यागकिया हमीपर महाराज ने कहा है कि जो मेरी दया न होनी तो कोई मनुष्य गुह्यतकोन पट्टपता बहुरि महापुरुषों भी कहा है कि कोई पुरुष आनी करुनि करके मुत्रि को नहीं पाना नर किमीने पूछा कि क्या तुमभी अपन पुरुषार्थ काके मुक्त नहीं द्रुपे तब उन्होंने कहा कि मैं भी महाराज की दयाका भरोसा रखता हूँ ताते प्रसिद्ध हुआ कि जिन्होंने उम शेरको मनीप्रकार समझा है सो वह कदाचित् अहंकारी नहीं होने बहुरि ऐसे जान तू कि केने मनुष्य मूर्खता काके उम पदार्थ पर अहंकारी होने है कि जिन पदार्थ का सम्बन्ध उनके साथही कुछ नहीं जैसे वन और रूप और उत्तमपुत्र सो इस पर अहंकारी होता महामूर्खता है ताते केने मनुष्य जो धनवान् और राजाओं के कुलका अभिमान काने है सो उनके पिता पितामह को पत्नियों विषे ऐसी नीचगति होनी है कि जब यह शरकारी प्रसिद्ध केने तब अधिकत जनामान् देखें और केनमूर्ख तो उत्तम पुत्र के आश्रय ऐसे करने लगने है कि द्रुपको पावही स्पर्श नहीं काने पर वे बुद्धिहीन इनता नहीं जानते कि यद्यपि हमार पिता पितामह निष्ठाप हूँवे पर तब हमने पाप किये तब दयाग और उनका क्या सम्बन्ध रहा फोहे मे कि यह मन्त्रजन तो पैराग्य और नम्रताकाके विनेप द्रुपेके कुछ फूलकी बड़ाई करके तो विशेष नहीं रूपे नामे जिन्होंने निय कर्मों को अमीकार किया है सो यह यद्यपि महापुरुषों की गता होतें तो भी नरकों के पीठ हावेगे इसीकारणसे महापुरुष ने भी कुल के अभिमान मे शक्ति किया है और ऐसे कहा है कि हन सरदी मनुष्य ताते है और मनुष्यता मृत माथी है पट्टरि महापुरुष ने अपनी पत्नीसे कहाथा कि हे बेगी ! जब तू मृगमार्ग विषे सायापटो काहेगे कि पत्नोक बिने मेरे आश्रय करके मृत न होगी सो यद्यपि श्रीगिवाव और महापुरुषों के सम्बन्धी भी उनकी दयाका आश्रय समरे है पर जब पापकर्मा अतिक्र शोभाते तब मृत सम्भार का आवग स्थिति क्यता है सो पर महापुरुष ने कहा है कि मैं और मन्त्रजनों के आश्रय लीर

पापों विषे निश्चक विचरना ऐसेहै जैसे किमी वड़े वैद्यका पुत्र रोगीहोवे और पिता के वैद्यक की वड़ाई जानकर कुपथ्य का त्याग न करे सो वही मूर्खता है काहेमे कि जब कुपथ्यकी अधिकता करके अमाध्य रोग होजावे तब पिताकी वैद्यकी उसके किसकाम आवेगी अथवा जो धर्मज्ञ राजाहोवे तब उसके निकट कोई गत्री और प्रधानभी अवज्ञावान् के दोषको क्षमाकराय नहीं सका काहे से कि वह तो आपही यथायोग्य न्याय करताहै तैसेही यह पापही भगवत्के कोप का वचनहै और इसपाप को तू अल्प जानताहै ताने जो पुरुष निश्चक होकर पापों विषे आसक्त होताहै तब किसी सवध और कुनके आश्रय करके हु तबे नहीं लूटना तात्पर्य यह कि यद्यपि जिज्ञासु जनको सन्तजनोंका भरोसाहै तो भी भगवत् की वेपस्वाही से दस्तेरहते हैं और जो पुरुष उदास हुआ तब उसके चित्त विषे अहङ्कार कदाचित् फुलता नहीं ॥

### दशवासर्ग ॥

अज्ञानता और भ्रम और दलके उपायके वर्णन में ॥

ताने जानतू कि जो पुरुष आत्मसुख से अपास रहताहै सो तिमका कारण यहहै कि वह मार्ग विषेही नहींचला और शुभमार्ग विषे न चलने का कारण यहहै कि उमने शुभमार्ग को जानाही नहीं अथवा चलदी न सका पर चलने की अममर्थता भोगोंकी वंशगानी कर होनी है काहेमे कि भोगों विषे वैशाहुआ पुरुष विषय चामना को विषयर्थय नहीं करसका और अज्ञानताका कारण यहहै कि जिस गनुषको मन्त्रजनोंके वचन की परिचान और श्रवण नहींहोतीतब वह स्वामाधिकही अज्ञान रहताहै अथवा भ्रम करके कुमार्ग विषे चलने लगताहै अथवा कोई ऐसा छन आन प्राप्त होताहै जो इसको शुभमार्गमे गिगय देताहै पर भोगोंकी वंशगानी जो इसजीवको शुभमार्ग विषे चलने नहीं देनी सो तिमका उपाय भेने पीछे वर्णन कियाहै जैसे गान वन की प्रीति और काम क्रोध आदिक जितने गनिन स्वभाव है सो यह सबदी धर्ममार्ग विषे कटिन घाटियां हैं ताने यह गनुष्य इनमे उल्लिखित नहीं होसका अथवा जवणक प्राथीमे उतरता है तब दूमरी अथवा तीसरी विषे अटक जाताहै पर येमेही जवनग सब घाटियां मे उल्लिखित न होवे तबनग परमपत्को नहीं प्राप्तहोना चदुरि अज्ञानता जो इस जीवके भ्रममार्ग का कारणहै सो यह भी तीन प्रकारकी दानाहै प्रथम



तो केवल अज्ञानता को अनेकता है और सर्वार्थ भी इन्हीं का नाम है कि  
 संवत्सरोके पत्रके अन्वयन रहन होकर भवे पुण्य न जाने कि इतना प्रत्यक्ष  
 करते भोगे कोई पुण्य मार्गविधि माना ही रहता है जो वह मार्ग प्रगट्ट है कि जब  
 लग उपरोक्त ईश्वर का मार्ग नहीं तब तब यह ईश्वरियोंका साथी नहीं होता  
 और अज्ञानता प्रकृत है वृत्ति दुर्भाग्यकार अज्ञानताका अर्थ यह कि  
 जैसे कोई पुण्य प्रयत्निका को जाना चाहे और भूलकर प्रयत्निका प्रियाकी ओर  
 चला जाये तब यह मार्ग निरस्यन्देह है कि जिनका ही नीक्षण प्रेयका दोड़ता है  
 उतनाही अने मार्ग में दृग्गता है सो इनको बोर भन कटो है पर जब अपने  
 मार्गमें बाँधे दाहिने होनाये तब उपरानाम श्रीण अर्थ है वृत्ति नीचरी अज्ञा-  
 नताजानाग रहते मा उमका दृग्गता यह है कि जो कोई कोई मार्ग प्रयत्निका को जाने  
 और मार्ग का स्विकर निमित्त बुद्ध मोना का धर्म उदात्तके वृत्ति मार्गभिये तब  
 किसी नगरमें उम बनता प्रिये तब वह मंत्र सोटाही निरस्य पर यह पुण्य आगे  
 उपरोक्त स्वग जानकर प्रयत्नहोताया और जब उपरोक्त मोटे हो प्रगट्ट जानता है  
 तब प्रयत्नकार करने लगता है और मार्गप्रयत्न में अप्राम रहते मा उगीपा मर-  
 राज ने कहा है तिन पुरुषों ने इसलोक विषे जप तप आदिक या रा वृद्ध  
 किये हैं पर हृत्त उनका मुट्ट और निष्ठाप नहीं हुआ सो तब परलोक विषे  
 जायत अपनी करुणा कृतमेरुदिन देमों तब अर्थ है परनात्तप वरों और  
 परमहानि को प्राप्त करेगे सो इनकी हानि का कारण यह है कि जिन मुक्त ने  
 प्रयागीकी विद्या भी नहीं सीखी और किसी मगरों विद्या भी सोता हुआ  
 न लेवे वृत्ति जब उपरान कर्मों परमा लभाप न लेवे तब प्रेयही पुण्य सोटाही  
 नेत्र को पानते और मोरे प्रयत्न रहता है तब ही मगरों की विद्या का मोरना  
 विवेक और वैशेष्य सो जप पैन विवेक को न प्राप्त दासो तब विवेकी जानोही  
 योगनि विधि विचारन भाई मार्ग तब प्रेय ही पानते वृत्ति तब प्रेय ही मगरों  
 भी दृष्टो वे वा कर्मों ही नार्थ इतना बताया तब प्रेय कि प्रेय प्रयत्निये इस  
 मनको विचारन प्रेय कर उपरोक्त मुक्त भी सोटाही तब प्रयत्न पूर्ण विवेक  
 और विवेकिका ही प्रयत्निये विद्या वेगमरुति तब ही विद्या प्रयत्नकारण हाता है  
 पर अर्थ नो यह है कि प्रेय ही जानता है विवेकिये तब प्रेय ही मार्ग ही  
 पानते मोरे पर प्रेय ही प्रेय ही जानता है प्रेय ही विवेकिये तब प्रेय ही प्रेय ही

उपायभी जिज्ञासुको जानना चाहिये काहेसे कि प्रथम सीधे मार्गको जानना प्रमाणहै बहुविध पुरुषार्थसे उसी मार्गमें चलना चाहिये सो जिम पुरुषको पहिचान और पुरुषार्थ प्राप्तहुआहै तब उसको परमपद पहुँचने में सगय कुछ नहीं रहना इसीपर एक महात्मा महाराजके आगे प्रार्थना करतेये कि हे महाराज! प्रथम तो मुझको यथार्थके मार्गकी पहिचानदे बहुविध व्याकरणके उमही स्मृतिका पुरुषार्थ दे ३ ताते अब मैं इस सर्गविषे अजानताका उपाय खोजकरनाहूँ ॥ अथ प्रकट करना उपाय प्रथम अजानता और मूर्खताका ॥ ताते जानतू कि बहुत मनुष्य अजानता करकेही भगवत्से दूररहे हैं पर अजान उमको कहते हैं कि जिसको परलोकके सुख दुःखकी सुधि कुछ न होवे काहेमें कि जिमको परलोककी वृक्ष प्राप्त होती है तब वह ऐसे मार्ग विषे आलस्य नहीं करता डमकरके कि जब यह मनुष्य किसी वार्ता विषे हानि देखताहै तब दुःखको अगीकार करके भी उसमें दूर रहताहै पर परलोकके सुख दुःखकी जो वृक्षहै सो तिमको सन्तजनकी समझके प्रकाश करके देखताहै अथवा उनके वचनों करके जानसक्ताहै अथवा विद्याधानोंके वचन सुनकर भी इस जीवको भले बुरेकी पहिचानहोती है जेमें कोई पुरुष मार्गविषे सोताहोवे तब उसका उपाय यही है कि कोई जाग्रत पुरुष उमको जगायदेवे तब अपने देशकोजाय पहुँचें सो जाग्रत पुरुष सन्तजनहैं अथवा उनके वचनों के जाननेवाले विद्यावान हैं इसीकारण से महाराज ने सन्तजनोंको जगत्विषे भेजाहै कि जीवोंको अजानताकी निद्रामें सचन करावें और इस प्रकार जीवोंको सुनावें कि महाराजने सर्व जीवोंको नरक के किनारे परहित कियाहै ताते जो पुरुष मनकी वामनाके अनुमा स्वन योगोंकी ओर मग्न होवेगा तब वह निस्मदेह नरकों विषे गिरपड़ेगा और जो पुरुष मनकी वामना से विपर्यय विचारोगे तब वह परम सुखको प्राप्त करेगा ताते प्रसिद्धहुआ कि यह स्थान भोग नरकों विषे डाननेकी जमीनहै और परम सुखके मार्ग विषे कठिन घाटी है इसीपर महाराजने भी कहाहै कि मैंने स्वर्गको दुःखके मास लपेट रखाहै और नरकोंकी अग्निको मैंने इन्द्रियादिक भागोंके मास लपेटा है जेते मनुष्य वनों और जंगलों और पर्वतों विषे रहनेवाले हैं सो सबही अज्ञानताकी निद्रा विषे सोपेष्टये हैं काहेमें कि उन्विषे ऐसा विद्यावानही कोई नहीं होता जो उनको यथार्थ वचन करके मथेन करे इसीपर उमभरके मार्गविषे

चन्नेही अत्ताही नही खने तामे मन्नेजनों क्कट्टि वि विद्याधानों ही म्मवि  
 से हू म्नेवानि पुरा एमेह जेसे ज्ञानान्नाविम भुन होवे वट्टि नगों विने व  
 शवि वचन वाना सुनानेदो पठिन रहने हें तोही वे पठिन मरामी और सोही  
 होन हें मो तिनके वचन सुनहरनी अचेतना दूनही दोही क्कट्टिने वि जो पुरा  
 आपही घोगनिद्रा विने मोनाहोवे वट्टि और किमीको क्वों म् जगावन्के वट्टि  
 धंने विद्यावान् तो ऐसे होने हें कि यद्यपि वचन वानाओ क्कट्टिने हें तोही जीवों  
 के क्क्याणका उपदेश नही करेने नानाप्रकाररी चतुराई और अर्थ रहिन इति  
 हामोंको उधारण करते हें वचन एमे वचन क्कट्टिने हें कि इम मनुष्यको म्म  
 म्मही विनेप हें अथवा भगवत्की दयाहा म्मर्षन करके जीवों का भय दूर कर  
 देने हें मो एमे वचन सुननेहारे मनुष्योंकी अक्स्वा वज्जान पुरासे भी नी रहो  
 जाती हें ताने इत्तकाट्ठ्ठान्ना रहते कि जेमे पोंई मनुष्य मोत दूये पुराको जगा  
 वक्क मेसा मदपान वमवे कि जो उमरो म्माम्मच क्कट्टिने ताने उसकी निद्रा  
 म्माम्म होजाती हें क्कट्टिने वि जब मदपान विनेविना मोनाहूआथा तव थोपे  
 ही वचनर सनेतदोता और मदपान करके पेसा अचेत होजाते कि पयाम्मना  
 टिगों क्कट्टिने भी उमरीविद्रा नही सुनती मेमेही जब अजान पुरा एमी म्मवि  
 धिो वेरनाह तव उमका यही निश्चय ह्दुहोजाताहें वि हमारे पापों क्कट्टिने म्म  
 म्मको क्या म्मर्षहोवेगा और उसको सुन्दरेकी क्क्याणका वच होही हें क्कट्टिने  
 कि तद तो परम दयानु हें एव जानत पानाच क्कट्टिने निद्राहो जाने हें तां  
 उम क्कट्टिने उपदेश क्कट्टिने भी जीवोंके भग्मको म्मट्टिने हें क्कट्टिने वि तद  
 एमेमर्ष हें जेमे पोंई अजान वेत म्मविपासीका म्मट्टिने ओणपिदेवे तव तद म्म  
 जीवोंको म्मट्टिने होजाते मेमेही भगवत्की क्क्याणका और दयाका जो उपदेशहें मा यद  
 भी एमेमर्षके मनुष्यको क्क्याणका म्मट्टिने प्रथम चद जो अधिक पापों परहें  
 निद्रा हूआहो और म्माम्मनाहें म्मट्टिने पापोंका हाम न चरे तव तद भी  
 भगवत्की दयाके वान सुख विमम्मनाम म्मट्टिने होता हें और पापों के एव  
 म्मनेकी म्मट्टिने म्माम्मनाहें और इम मनुष्य इमवचन क्क्याणका क्कट्टिने म्मट्टिने  
 इम म्मट्टिने अधिक म्माम्मनाहें और म्मट्टिने म्मट्टिने म्मट्टिने म्मट्टिने म्मट्टिने  
 जो म्मट्टिने म्माम्मनाहें म्मट्टिने म्मट्टिने म्मट्टिने म्मट्टिने म्मट्टिने म्मट्टिने  
 ह्दुहो म्माम्मनाहें म्मट्टिने म्मट्टिने म्मट्टिने म्मट्टिने म्मट्टिने म्मट्टिने

ऐसे हे जैसे कोई पुरुषके कटेहुये षड्भ्रमर लोन लगावे तब अच्युतही पीड़ा अधि-  
 क्र होती है इसीकारणमे कहाहै कि आत्मज्ञान के उपदेश करनेहारे परिडन  
 और महाराजकी दया सुनानेहारे विद्यावान् विषयी जीवोंको अधिक लम्पटकर  
 डालते हैं और जीवोंका धर्म नष्ट करते हैं पर जिस उपदेश करनेहारेका वचन  
 धर्मकी मर्यादके अनुसार होवे और उसकी कर्तृति वचनों से विपर्यय होवे  
 तिमक उपदेश करके भी जीवोंकी अचेतता दूर नहीं होती सो इसका दृष्टांत यह  
 है जैसे कोई पुरुष मिठाईका थाल आगे रखकर भोजन करताजावे और मुखसे  
 इसप्रकाररुहे कि इस मिठाई विषे हलाहल विषदे ताते इस भोजनकी अभिलाष  
 न करो तब उसका वचन सुनकर लोगोंकी दृष्टि दूर नहीं होती काहेसे कि प्र-  
 थम तो उसको रुचि सहित भोजन करते देखते हैं बहुति ऐसे जानते हैं कि यह  
 पुरुष अपनेही आनेके निमित्त हमको विषकरके मुनाताहै तैसेही दृष्टावान् प-  
 रिडनके वचन सुनकर जीवों के हृदयमे गायत्री प्रीति दूर नहीं होनी पर जिस  
 विद्यावान्का वचन और कर्तृति एक समानहोवे तिमके उपदेश करके निस्स-  
 न्देह अचेतताकी नीदमे जीव मचेन होने हैं ताने जब ऐसे मनुष्यका ऐश्वर्य  
 जगत् विषे प्रसिद्ध होवे तब सब किमी को लाभदायक होताहै तात्पर्य यह कि  
 यह सबही मनुष्य मूढताकी निद्रा विषे सोतेहुये हैं और महत्तों पुरुषों विषे कोई  
 एरुदी जागताहै जो परलोककी मलाई बुराईको भली प्रकार पहिचाने पर यह  
 अज्ञानतारूपी रोग ऐसा कठिनहै कि जो आपकरके इसका उपाय नहीं होसका  
 पाहेमे कि अचेत पुरुष तो अपनी अनानताही को नहीं जानना ताते उमका  
 उपाय कैसे करमेके इसी कारण मे कहाहै कि अनानी जीवोंका उपाय त्रानी  
 पुरुषों की दयाकरके होता है जैसे बालकको प्रथम माना पिता और पापा मनेन  
 करते हैं तैसेही अचेत मनुष्य विद्यावान्के उपदेश करके अचेत होने हे पर इस  
 समय विषे जो वैराग्यवान् विद्यावान् दुर्गम पाये जाते हैं ताने अज्ञानतारूपी  
 रोगने सर्व जगत्को घेरलियाहै और यद्यपि कोई मनुष्य परलोककी वार्त्ता मुख  
 से कहताहै तौभी उसके हृदयविषे भय और त्राम कुद नहीं ऐनी सो गयस  
 रहिन कहनिस्तरके कुद विगेषना नहीं प्राप्त होनी ॥ अथ प्रसूतवत्सा रूप भ्राता  
 और उपाय भ्रमके दूर करनेका ॥ ताने जान त्ति ने व मनुष्यों ने भ्रम करने  
 औरका जोरही निश्चय दृढ़हियाहै इनीकारणसे तथापिके तार्गम दृग्ददें और

विधीन निश्चयही उनको गज्जत हुआ है जो यद्यपि ऐसे मां जो पद भी अ-  
 नक है पर भी पापकर्म से अस्मा वचन माना है तब उनह अनुमां जो भी  
 समझे तब भी प्रथम अस्मा निश्चय यद्वे कि कने पुत्र परतीठकीही मही  
 मानने जो इमप्रकार कहते है जब यद मनुष्य मृत्यु होना है तब मूलही से नर  
 होजाता है जेने पृथ्वी पर घाम मूलजानी है अथवा जेने दीपक बुझनाता है ऐसे  
 जानकर वन्दोने धर्म और योग्यको हालदिया है और मनेन जीवने कोही प्रिय-  
 नगरवने है वद्वि यह एम जानन है कि आचार्यो ग लोगों की मर््यादि अंगने  
 वे निमित्त पालोक का मय वर्णन किया है अथवा उठोने अपनेमानके निमित्त  
 जीवो रों त्रान दिया है ताने प्रसिद्ध इमप्रकार कहते है कि नरकोका मय मनुष्यां  
 से ऐसे कहा है जेने माता पिता बालकको दरेवे कि जब नृ पिता न पढ़ेगा तब  
 तुम्हको ममाके भिलमें डाजदवेगे पर जब भाग्यहीन इगही दृष्टां को पिताके  
 टेम तोगी विगेष है कि जब यह बालक विद्या में गहन हास मर्न ऐवेगा तब  
 यह मर्धता मुसके विलमेभी बुगि है तेमेही बुद्धिमाना न इमप्रकार समझा है कि  
 भगवतके वियोगका पनम्कोम भी अचित्त दु पल्पट मो मगपरा विगेष  
 बानना के अस्व करण होता है ताने यह सूत्र भाग जा बद्ध मनुष्यों के चित्त  
 विषे एद होमये है इम कारण कहे यद्यपि पमित्तमें पलाकता ननकार नहीं  
 करने नोभी सनभी कन्तुना विषे परनाकता न मानना पूरुद दृष्टजाता है पर  
 से कि असाधार के कारणों विषे जागेही उद्यम उठाने है और वद्विन्को की सी  
 चो है पर जब उनक दृश्य विषे परलोक की प्रतीति एद होनी तब त्रामना के  
 आधीन होकर पाया विषे न चित्तने सो पालोक के गमानेहारे मार्ग भी तीन  
 फटे है प्रथम तो उद्यम मार्ग यह है कि जो महापुरुष अपने अनुमा की दृष्टि  
 जाने नरक मर्ग और धर्म पापीही अस्मयाप प्रत्यक्ष देखे हैं और यद्यपि  
 वह मन्त्रजन इन्द्रियादि कर्णधार विषे विचरने है तौनी उनका दृश्य ही कर्ण  
 अथवा कर्ण इन्द्रिय समोता यथा यथा दृष्ट आने है तातेम कि वह कर्णजन  
 विषयों की विषये मन्त्रण मूर्च्छ्य है और इतम अतिथको इन्द्रियादि मोगोनि  
 पन्नार की धारणा देखने वि। एत उच्यते सो इन्द्रियां च भागोंसे नरवरा  
 मूर्च्छया च दृश्यते १० । उनका का नरको की मर्गया प्रतीति नहीं है  
 यहाँ उक्तम अस्मयाप प्रतीति और इति यथाय १० १ वद्वि दृश्य मार्ग

परलोकके जानने का यह है कि युक्ति सहित मनुष्यका यथार्थ स्वरूप पहिचाने और एमे जाने कि यह जीवात्मा क्या बन्तु है तब इम प्रकार ममभावै कि यह चैतन्यरूप अविनाशी है और शरीर इमका घोड़ा है ताने शरीरके नाश होने करके जीवका नाश नहीं होता सो यह मार्ग भी अनि दुर्लभ है और कठिन है पर यह मार्ग भी यथार्थ विद्याकी प्रतीति करके प्राप्त होता है २ बहुरि तीमरा मार्ग यह है कि सन्तजनों और विद्यावानों की सगति करके भी इम ब्रह्मका प्रकाश प्राप्त होता है सो यह सर्व जीवों का अधिकार है पर जो पुत्र्य पूर्ण सदगुरु और वैराग्य सयुक्त विद्यावानों की सगतिसे दूर हुआ है तब वह भी निस्सन्देह मन्द-भागी रहता है और सन्त सगति करके जो परलोक की ब्रह्म प्राप्त होती है सो इमका दृष्टान्त यह है जैसे बालक अपने माता पिताको प्रकट देखे कि जब अ-धान नहीं सर्पको देखने है तब भयवान् होकर भागजाते हैं सो केतेवाग ऐसे देखने करके वह बालक भी मर्षमे डरने लगता है और यद्यपि ब्रह्म करके सर्प के विष को नहीं जानता तौ भी स्वाभाविकही सर्प को देखकर भाग जाता है ताते सन्तजनों का देखना ऐसा है जैसे कोई पुरुष देखे कि अमुक पुरुषको सर्पने ड-साया ताते वह जीवही मृतक होगया सो यह परम निश्चय है बहुरि विद्यावानों का देखना एमे है जैसे कोई पुरुष वैद्यक की युक्ति करके मर्ष के विषका स्वभाव पहिचाने और मनुष्य के शरीरकी कोमलताई को भी भनी प्रकार समझे कि इमके शरीर विषे इम प्रकार सर्पका विष प्रवेग करजाता है तब इस करके भी सर्प के डमनेका दुःख प्रत्यक्ष जाना जाता है सो यह मध्यम निश्चय कहाना है बहुरि सन्तजनों की सगति विषे जो परलोकका भयउत्पन्न होता है सो यह माना पिता की सगति के समान है जो देखने करके बालक को सर्प मे ड उपजना है और यह सर्प जीवोंका उच्चम अधिकार है पर यह कनिष्ठ निश्चय है ३ । १ बहुरि हमरे आत्मिक बुद्धि एमे होने है कि यद्यपि परलोक की प्रतीति से केवल रहित नहीं होने और प्रसिद्ध ननुकार भी नहीं करते पर इस प्रकार कहने है कि परलोककी वास्ता को भनी प्रकार समझा नहीं जाता ताते इम सगार के मुख प्रकट और परलोक का शुभ सुख सशय विषे है सो प्रकट मुख को सगार के शुभ निगिषा त्यागा नहीं जाता पर यह उनका बचन केवल मनदीका मत है और अन्य दो कूट है काहेमे कि प्रतीतिमानों की दृष्टि विषे परलोक अनि प्रकट है और इम

समाज के सुख दुःख बन्धुही नहीं ताते उनसे इतपकार समझना समाज है कि  
 केने कारणों विषे भगव करके भी सुखका त्यागना विगेय होना है और दुःखको  
 अंगीकार करने है जैसे भोगना का नृत्य मगय विने होता है या उन मगय  
 आगा तके प्रकृती कृत् ओपपिया को माने है जयया जैसे पनका गाम म  
 शय विने होना है पर केने पुरुष लाभकी जाना के निर्मित समुद्रों और परदे  
 विने लिने है और दीपवृ मों को खाने है अपना जब तुम्ह का पवित्र स्वा  
 होवे और कोई पुरुष पेमे कहे कि इस नन विने सर्वने सुख डालदिना है नर ज  
 का म्याइ तो प्रपभे और मर्षकापिप मगय विप हाना है ताते नू उम जनने  
 किस निर्गिष त्याग देना है सो इमका मगोजन यहहे कि यद्यपि पनका स्वा  
 प्रकृते पर उसका त्यागना तुनगात्रदे और यद्यपि मर्षरा विप मंशय विने  
 वीभी उसका बु व अनि दीने है इमी कारणमे भगव करके भी प्रकृ पदार्थ  
 त्यागना सुगम होता है तेसही इम समाजके सुख सुद दिनके है और जब की  
 जाने है तप मप्रव न मानने है और पालोकका सुख दुःख भविनाशी है ताते  
 देके इ लमे इका स्थनमुने का त्यागना विनेपे गदुमि जो तेगी सुद्वयनुमा  
 पालोक का सुख इ व भूट भागना है तीभी तुम्ह का इमप्रकार समझना चारिपे  
 जैसे नू चादि जन्म इमममार विने न था और न होवेगा तेमे मभयवा द विनेभी  
 आप को न हुआ जान और परनोकका इ न जर नू यथार्थ जानना है तब तो  
 योगवकरके पेते पागइ लमे निम्नन्देह सुददेवेगा रकृमि तीमे भाषि रकृदि  
 पेमे है कि यह यद्यपि पालोक को मर्य जानते है तोभी इमप्रकार कहे है कि  
 समाज का सुख नकदहे अवही और पालोक का सुख हुए उपरकी नाई है ताते  
 मर्य पदार्थ उगामे विगेय होना है पर यह मर्ष इतना नहीं जानने है उपाधि  
 नकदरी विगेयता नही होना है नर दोषों की मर्षाद पू ममान होवे और  
 जब समान न होवे तब यह उपाधी मना होना है काहेमे है उपरका का देव  
 लेना इगरी मगम कृमि मिष्ट होना है पर जो सुदर इमकारों को भी न मर्य  
 मके तब यह केवल भाषि र कृदि कडना है व कृमि भीमे भाषि र सु उ केने  
 होवे है जो पालोकके सुख इ गरी यथार्थ माते है तन्मू ल सुनोरी मर्यक  
 पापका अधिरु ममज्ञ होते है ताते उगामे इलविने इमप्रकार अनमान काहे  
 है कि जैसे मगवने हयकी मर्षा मानी इ उकार उपम सुख इगामे तो कि

लोक विषे भी ताडना न करेगा काहेमे कि वह महाराज परम दयालु है और उसने हमको अधिक धारा जाना है ऐसे जानकर दीड और निडर होजाते हैं ताते उनको इमप्रकार समझाया चाहिये है कि जैसे किसी पुरुषको पुत्र अति मियतम होय और एक उसका दाम होवे और वह पुरुष अपने पुत्रको सर्वदा पायाकी ताडना विषे रखता होवे और दहलुनेको कुछ कहेही नहीं बहुरि वह दहलुवा ऐसे अनुमानकरे कि मुझको स्वामी पुत्रसेभी अधिक धारा जानता है इसकरके कि मुझको कुछ कहताही नहीं और पुत्र को सर्वदा ताडना विषे रखता है सो ऐसे उसका जानना मूर्खता है काहेमे कि पुत्रको भीतिमयुक्त शुभगुण सिन्हाया चाहता है और दहलुनेकी ओर चित्तही नहीं देता तैसेही भगवत्भी अपने प्रियतमोंको मायाके भोगोंमे विरक्त रखता है और मनमुत्तोंको अधिक भोग भोगाता है ताते आमिषबुद्धि जो धैर्यादिक साधनोंसे आलसी होता है सो ऐमा है जैसे कोई पुरुष बीजही न बोये तब उसकी खेती क्योंकर सफल होवेगी तैसे ही जो पुरुष इन्द्रियादिक भोगोंका त्याग न करे तब परमानन्दको कैसे प्राप्त होवेगा ४ बहुरि पाचवें आमिषबुद्धि ऐसे कहते हैं कि भगवत् सर्वजीवोंपर परम दयालु है और उस विषे कृपणता का अणही पाया नहीं जाता ताते अपने सुखको कब दुरायणता है और हमारे कर्मोंकी ओर कब देखता है पर यह मूर्ख ऐसे नहीं जानते कि यहगतुष्य पृथ्वी विषे एकदाना बोवता है और उसमे महामदाने उत्पन्न होते हैं सो जिन महागजने परम सयोग तुझको बनादिये हैं तब इमसे अधिक कृपा क्या है तैसेही कुछदिन मायन करके इमजीवनको अविनाशी पदकी प्राप्ति होनी है सो यही भगवत् की परम कृपा है और जब कृपाका अर्थ यह है कि बोये बिनाही ये ही बुद्धि होजावे तब नाना प्रकारके उग्रम और व्यवहार किमनिमित्त करता है ताते चाहिये कि तू केवल निरुद्यगही बैठे काहेमे कि महाराज तो परम कृपालु है तेरे उग्रम बिनाही तुझको लाभ देवेगा और महाराज ने तो ऐसे भी कहा है कि सर्वजीवोंका प्रतिपालन मे है सो जब यह पनीति तेरे हृदयविषे उद्ग नहीं तब शुभकर्मों विषे क्यों जानस्य कगता है काहेमे कि मायन बिना सिद्धि की चाहना ऐसे है जैसे कोई गृहस्थ बिना मनानहीं उत्पानि चाहे सो यह बड़ी मूर्खता है और भगवत्को कृपालु जानने का अर्थ यह है कि परम विधि संयुक्त उग्रम परे बहुरि विघ्नार्थी रक्षाके निमित्त भगवत्का भोगा करे तब उग्रम हो



बुद्धिमान् करने दे और जो कुछ भगवत्त्व पर प्रवृत्ति ही न करे तादा गुणान्तरों  
 विषे रहने दोषे न रह निरस्त-द्वे प्राणिकबुद्धि द्वे पर कर्म मनुष्य मायाके प  
 दापोंको देखकर प्राणिकविषय हूये दे न करने पुरुषोत्तम भगवत्की कृपाके अर्थात्  
 अम करके उत्तरा पहिनाते में। यथागतन दोनो प्रकारके अममे वित्तविषय  
 दे जो इयप्रकार नावाक्य है कि जब कोई शुभ कर्मादि करेगा तो उग्रमत्त्व  
 को प्राप्त होवगा और जो कुछ अनुभवं करेगा मो सुखी बनके पावेगा ताके  
 सुखेन होकर इगवात्की अणुको और किसीद्वय को देखकर प्राणिकबुद्धि  
 न होवो और गैरविषयके आश्रय अनुभवं न करे ॥ जब मत्त्व कर्मा ल  
 यनों पर और उपाय यनों मे रहिन होने का ॥ ताके जानू कि बहुत कुछ  
 कर्मोंकी शुद्धता और अनुद्धता का मनी प्रकार नहीं पहिनाते इसी कारण  
 से अपने कर्मोंको निर्विन जानकर हर्षभाव होने दे और विष्णोमे निर्भय रहनेदे  
 सो तिमकी अज्ञातज्ञा कर्माजानोदे ताके कि उनको विवेकपूर्ण मरती दार  
 नहीं हुई ताके कर्मोंकी स्थितता पर लनेगये के बहुति यह सब गी एते अस्मि  
 है कि कोई एक पुत्र मरयो विषे विधिभन रहता है मो ऐसे कर्मों और मनीकी  
 भिति भी गिननी विषे नहीं आती पर मोभी मरही लोग वापकार के शोने दे  
 विद्यावान् १ नपर्वी २ अनीतजन ३ धनवान् ४ तो प्रथम तो विद्यावान् इम  
 प्रकार बनेहूये दे कि यह अपनी सब आसुषु विद्याके पढ़ने विवेकी विचारने दे  
 और सब इन्द्रियों को पापोंमे रोक नहीं मरे और अपने निमन्त्रि पंथा अनु  
 मान करने दे कि हम इन विद्याकी करके पानो र के दुर्मोमे मरु होवेने और  
 हमारी प्रवृत्ता पापदर और लोग भी इन्वम सुखे मो इनका दशन संद है  
 जैसे कोई पुत्र सोभी मन्त्रिद्वि र बेरु न आर्मान को योग और जो मरिषी  
 को मनी प्रकाश विचार करके निमन्त्रो वा औपनिषों को पढ़ी जानकर अ  
 गीकार न करे और औपनिषोंके विषयेने और विचार करके करके उग्रम। गेप  
 सब दू होवते इनाम मरामज ने कहा है कि भवा मनको साधनामे विधि  
 कये ताके दारदुषको मोर पावते जो मन और मन्त्रोंको विचारने सुदृष्टी  
 पर फेने नो नहीं कहा कि विचारों २ सुदृष्टाके ही विद्या पढ़नेमाने सुभी ह  
 देग मो जब सब पुत्र विद्यावान् ही विचारना सुमकर सुमद नेताके सब कर्मा  
 ही विद्यावान् ही और वा हो हो ताके विचारना जेव न मत्त्वने देगा

रहित पण्डितों को गर्दम की भाँति रुदा है इस कम्के कि यद्यपि पुस्तकों का भार अपनी पीठपर लिये फिरता है पर उनके तात्पर्य से अचेत है और चोंगी कहा है कि कर्तृनिहीन विद्यावान् निस्सदेह नरकोंकी अग्नि विषे जलेंगे षट्ठुरि इस प्रकार कहेंगे कि हमने लोगोंको धर्मका उपदेश किया है और आप उन कर्मों मे विपुल रहें ताते इसी नीचगति को प्राप्त हुये हैं इमीपर एक सन्न ने कहा है कि अजान पुरुषको परलोक विषे एकगुणा पञ्चात्ताप होगा और कर्तृनिहीन विद्यावानों को उनसे दशगुणा पञ्चात्ताप होवेगा काहे मे कि यह तो जानबूझकर विपुल हुये हैं षट्ठुरि एक और विद्यावान् ऐसे होते हैं कि यद्यपि स्थूल नियम धर्म विधिसयुक्त करते हैं पर अपने हृदयसे मलिन स्वभावों को दूर नहीं करते और सर्वदा दम्भ ईर्ष्या मानकी अभिलाष विषे आसक्त हो एमे बचनोंको नहीं विचारते कि जैसे कहा है कि जिनके अंतर रचक्रमात्र दम्भ और अभिमान होता है वह परगंमुखको कदाचित् नहीं प्राप्त होता और ईर्ष्यारूपी अग्नि इस जीवके धर्मको घासकी नाई जलादेती है और महाराजने इसप्रकार भी कहा है कि मैं सदैव तुम्हारे हृदय की ओर देखता हूँ और स्थूल कर्तृत्वा की ओर नहीं देखता ताते एमे विद्यावानों का दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष काटों के धूलको मूलही से नष्ट न करे और उसके पत्रों को तोड़ता है तब वह रुटि कभी दूर नहीं होते तैसेही मलिन कर्मोंका बीज बुरे स्वभावहै ताते इनको हृदय से निर्मूल किया चाहिये और जिनका अन्तर अशुद्ध होवे और बाहरमे आप को शुद्ध कर दिखाने तब वह एमे होता है जैसे कोई पुरुष मन्दिरेके ऊपर दीपक जगापराते और भीतर उस घरके अधिराहै षट्ठुरि एक और विद्यावान् ऐसे होते हैं कि यद्यपि उन्होंने हृदय की शुद्धताकी भली प्रकार ममकाहे पर अभिमानके छलपरके आपकी पापों से रहित जानते हैं अथवा इसप्रकार अनुमान कर लेते हैं कि हमारा मान यहधर्म की दृढ़ता का कारण है काहेमे कि हमारी गटाई नेपर धर्महीन मनुष्य लज्जाराज् होने हैं और नीतिमानोंकी अधिधर्म विषे होती है ताते अपने रजोगुणी स्वभावको गजभी नहीं जानने पर यह मूढ एमे प्रियगीत सुट्टि है कि इन्होंने मन्वन्तना मे धैर्य और भयम का विस्मरण किया है नो इतना नहीं समझते कि उनके वैराग्य काके धर्म की छट्टिहोती थी एमेही ईर्ष्या और दम्भको भी इसप्रकार समझते हैं कि हमारे धर्म करके मा

बुद्धिमान् कहते हैं और जो पुरुष भगवत् पर प्रतीतिही न करे अथवा शुभकर्मों विषे दृढ़ न होवे तब वह निस्तन्त्रेह भ्रामिकबुद्धि है पर कृते मनुष्य सायाके पदार्थोंको देखकर भ्रामिकचित्त हुये हैं य कने पुरुषोंने भगवत्की कृपाके अर्थको भ्रम करके उलटा परिचानाहै मो महाशक्तने दोती प्रकारके भ्रमसे चर्चित्तिकिया है और इसप्रकार आत्माही है कि जब कोई शुभ कस्तृति करेगा सो उच्चकर्तव्य को प्राप्तहोवेगा और जो पुरुष अशुभकर्म करेगा सो बुरी फलको पावेगा ताने सुचेत होकर इसवर्त्ताको श्रवणकरे और किसीपदार्थ को देखकर भ्रामिकबुद्धि न होये और मेरीदृष्ट्याके आश्रय अशुभ कर्म न करे ॥ अब प्रकट करना रूप छलों का और उपाय छलों से रहित होने का ॥ तीते जानि न कि बहुत पुरुष कर्मों की शुद्धता और अशुद्धता को भली प्रकार नहीं परिचानते इसी कारण से अपने कर्मको निर्विघ्न जानकर हर्षवान् होते हैं और विघ्नों में निर्भय रहने हैं सो तिसकी छलाहृत्वा कहा जाताहै कोहमे कि उतको विषेस्वपी सराकी प्राप्त नहीं हुई ताने कर्मोंकी स्थानता पर चलेगये हैं बहुरि सह झल गी ऐमे जागिन हैं कि कोई एक पुरुष सदृश विषे निर्विघ्न रहता है सो ऐमे पर्यो और मनोंकी मिनि भी गिनती विषे नहीं आती पर तोभी सबही लोग चारप्रकार के होते हैं विद्यावान् १ नपस्वी २ अनीतजन ३ धनवान् ४ सो प्रथम तो विद्यावान् इस प्रकार चलेहुये हैं कि वह अपनी सर्व आयुष् विद्याके पढ़ने विषेही वितावते हैं और सब इन्द्रियों को पापोंसे रोक नहीं सके और अपने चित्तविषे ऐसा अनुमान करते हैं कि हम इस विद्याही करके परलोक के दुःखोंसे मुक्त होयेंगे और हमारी प्रमत्तता पायकर और लोग भी दुःखम छूटगे सो इनका दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष रोगी रात्रि दिन वैद्यक का अर्घ्याम करे रोगों और औषधियों को मनी प्रकार विचार करके निम्नेने पर औषधियों को बढ़ी जानकर यगीकार न करे तब औषधियों के निम्नेने और विचार करने करके उमका रोग क्य दूर होनाहै इसीप्रकार महाशक्तने कहा है कि अपन मनको वापनामे धरिा करे ताते परममुखको सोई पानाहै जो मन और इन्द्रियों को विचार मे गुरुकरे पर ऐमे तो नहीं कहा कि चिकारों मे गुरुदान की विद्या पढ़नेवाले सुखी होवेंगे सो जब यह पुरुष विद्यावानोंकी विचारना सुनकर प्रमत्तहोनाहै तब कस्तृति हीन विद्यावानों की नीकता को कर्ता नहीं विचाना जेमे महाराजने वेगुण

रहित परिदृश्यों को गर्दम की भाँति कहा है इस करके कि यद्यपि पुस्तकों का भार अपनी पीठपर लिये फिगता है पर उनके तात्पर्य से अचेत है और योगी कहा है कि कर्तृनिहीन विद्यावान् निस्मदेह नरकोंकी अग्नि विषे जलेंगे वदुरि इस प्रकार कहेंगे कि हमने लोगोंको धर्मका उपदेश किया है और आप उन कर्मों से विमुख रहे हैं ताते इसी नीचगति को प्राप्त हुये हैं इमीपर एक सन्न ने कहा है कि अजान पुरुषको परलोक विषे एकगुणा पश्चात्ताप होगा और कर्तृनिहीन विद्यावानों को उनमे दणगुणा पश्चात्ताप होवेगा काहे से कि यह तो जानबूझकर विमुख हुये हैं वदुरि एक और विद्यावान् ऐसे होते हैं कि यद्यपि स्थूल नियम धर्म विधिसयुक्त करते हैं पर अपने हृदयमे मलिन स्वभावों को दूर नहीं करते और सर्वदा दम्भ ईर्ष्या मानकी अभिलाष विषे आसक्त हो ऐमे बचनोंको नहीं विचारते कि जैसे कहा है कि जिनके अंतर रचरुगात्र दम्भ और अभिमान होता है वह परमसुखको कदाचित् नहीं प्राप्तहोता और ईर्ष्यारूपी अग्नि इस जीवके धर्मको घासकी नाई जलादेती है और महाराजने इसप्रकार भी कहा है कि मैं सदैव तुम्हारे हृदय की ओर देखता हूँ और स्थूल कर्तव्यों की ओर नहीं देखता ताते ऐमे विद्यावानों का दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुष्प काटे के वृक्षको मूलटी से नष्ट न करे और उसके पत्रों को तोड़ता है तब वह काटे कभी दूर नहीं होते तैसेही मलिन कर्मोंका बीज बुरे स्वभाव है ताते इनको हृत्प से निर्मूल किया चाहिये और जिसका अन्तः अशुद्ध होवे और बाहरमे आप को शुद्ध कर दिखाने तब वह ऐमे होता है जैसे कोई पुरुष मन्दिरके ऊपर दीपक जगायसकै और भीतर उस घरके अंधेरा है वदुरि एक और विद्यावान् ऐसे होते हैं कि यद्यपि उन्होंने हृदय की शुद्धताकी भली प्रकार समझा है पर अभिमानके छलभ्रमके आपको पापों से रहित जानने हैं अथवा उमप्रकार अनुमान कर लेते हैं कि हमारा गान महद्वर्ग की दृढ़ता का कारण है ताहेमे कि हमारी गदाई श्रेष्ठर धर्महीन मनुष्य लज्जावान् होते हैं और प्रतिमानोंकी अधि धर्म विषे लगी है ताते अपने रजोगुणी स्वभावको राजमी नहीं जानने पर यह मनी ऐमे विषयीन वृष्टि है कि इन्होंने गन्नचना के वेगव्य और भयम को निस्कारण किया और इतना नहीं समझते कि उनके वेगव्य काके गर्भ की वृष्टिदेगी थी ऐमेशा ईर्ष्या और दम्भको भी इसप्रकार समझते हैं कि हमारे दम्भ करके मा

त्विन्ही कमोविषे जीवोंकी रुचि अधिक होती है बहुरि जब रात्रसभाविषे जाने हैं तब ऐसे जानते हैं कि हमारी सगति करके इनका भला होना है पर जब यथार्थ विचारकरके देखें तब ऐसे जानें कि मायामे विष्कृत होना ही धर्मकी वृद्धिता है सो जिसके राजसीस्वभावको देखकर और जीवोंका विषय चपल होवे तब जानिये कि ऐसे पुरुषका न होना ही धर्मका वृद्धिता है और इनकी सगति करके उलटी धर्म की दानि होती है इमी कारणसे ऐसे जानतेहोरे विद्यावान् मत्री छलेहुये होते हैं बहुरि एक ऐसे विद्यावान् जो निवृत्ति विद्याहीसे व्यप्राप्त रहे हैं जिस विद्याविषे वैराग्य और निष्कामताका और भगवत्प्रका परिचानना और अपना परिचानना और धर्ममार्ग के विघ्नोका परिचानना वर्णन होता है सो तिसको पढ़तेही नहीं और अपनी सभ आमुष् पथोंके विवाद और चतुर्गईकी विद्या विषे व्यर्थ खोते हैं और इतना नहीं जानते कि विद्याका तात्पर्य यह है कि मायासे विष्कृत होता और लक्षणाको त्यागकर गतोप करना और द्रग्ग की खोदकर निष्काम होता बहुरि भवेनता को दूर करके भय और वैराग्य विषे स्थित होना पर जो पुरुष ऐसे बचनोंको नहीं विचारते और चतुर्गईके सम्मुख हुये हैं सो सबही गहा-मूर्ख है बहुरि केने विद्यावान् धर्मशास्त्र और राजनीतिके व्यवहारको पढ़ते रहते हैं और इनना नहीं समझते कि यह विद्या तो जगत् की मर्घ्याद उद्वारनेवाणी है और परलोक मार्गकी विद्याही भिन्न है काहेमे कि जितने कर्मशास्त्रकी मर्घ्याद अनुसार जगत् विषे निर्दापके सो सतजनों के गत विषे पाप हैं बहुरि यह प्रवृत्ति पण्डित जो पाप पुण्यका बधान करतेहोरे हैं सो यह धर्मों की स्थानता को देखते हैं और संतजन हृदयकी और देखते हैं जैसे कोई पुरुष किसीमे कुछ मागलेवे तब जगत्विषे इसको पाप नहीं कहते पर जब विचारकरके देखिये तब यह मागलेनाभी ऐसे होता है जैसे कोई अनानि करके किसीको लाठीमार और धत हरनेवे नैमेही मागना भी लज्जादायी लाठीके मारनेकी नाई है इमी प्रकार स्थूल विद्या पढ़नेदोरे पुरुष ऐसे गृहमोक्षको कब समझकरके हैं ताते इनका सम्पूर्ण कहना अधिक विस्तार होना है बहुरि तपस्वी इसप्रकार छलेहुये हैं कि वर शरीरकी शुद्धताक निमित्त भजनसे विमुक्त करने हैं और जब किसीको स्थूल शुद्धतामे धीन देखते हैं तब म्लानिकर्मके फटोर बचन कहते हैं और अनुद्धनी-निकाको नहीं त्यागकरके मा यद्गो गरापूर्वता है और यद्यपि आपको पवित्र

पर दिखावते हैं तौ भी संतजनोंके मत विषे महाभ्रष्टहै इसीपर उमगसन्त ने कहाहै कि मैंने केतिकार अशुद्ध आहारके भय करके शुद्ध जीविका को भी त्याग कियाहै तात्पर्य यह कि संतजनोंने जीविकाकी शुद्धता विषे अधिक बलकिया है और स्नानादिक क्रिया विषे आसक्त नहीं हुये सो इनमूर्खों ने उनके आचार को बिस्मरण कियाहै और शरीरही की शुचिता विषे बधवान् हुये हैं ताने जो पुरुष अपनी जीविका शुद्ध न करे और स्थूल पवित्रता विषे दूबाहै तब निस्सन्देह उसको भ्रूटा जानिये बहुरि एक और तपस्वी ऐमे पाठक होते हैं कि उनके चित्तकी वृत्ति सर्वथा अक्षरों के विषे आसक्त रहती है और लगमातोंकोही सुधारते रहते हैं पर इम बाँची को नहीं जानते कि बच्चों के पाठ विषे और उनके अर्थोंमें चित्तको एकत्र किया चाहिये है बहुरि एक ऐमे पाठक होते हैं कि उनकी मनमा अधिक पाठकरने की होती है और अर्थसे अचेत रहते हैं सो ऐसे नहीं समझने कि पढ़ने का तात्पर्य भले बुरे की पहिचान है ताते चाहिये कि मयके बच्चों विषे भयवान् होजाँवें और महाराज की दयाके बच्चों विषे आरावन्तहोवें और उसकी मझाई के बखान विषे अभीन चित्त होजाँवें तब इम का पाठकरना सफल होताहै पर यह मूर्ख रमनाके हलावनेही को पुरुषार्थ जानते हैं सो अर्थकी पहिचान बिना ऐमे पाठ विषे लाग कुत्र नहीं होना जैसे कोई पुरुष अपने स्वामीकी पत्नीको बाराबर पढ़ताहै और उम विषे जो कार्य लिये होवे सो कुत्र न करे तब निस्सन्देह दण्डका अधिकारी होना है बहुरि केते मनुष्य व्रत और तीर्थों के भ्रष्टन विषे अधिक पुरुषार्थ करते हैं और इन्द्रियों को पापकर्मों से वर्जित नहीं करते और वह सर्व्वदा आप को पुजावने की मत्तसा रखते हैं बहुरि एक ऐसे तपस्वी होते हैं जो गान पान और बन्नादिकों का समय करते हैं पर गानके रसका त्याग नहीं करसके और लोगों के मिलाप विषे प्रमत्तहोते हैं सो इम गेट को नहीं पहिचानते कि मनका विन मर्बभोगों से अधिक दुःखदायक होताहै पर गाना मनुष्य तो अपनी बड़ाई के निमित्त सर्व्वदा अधिक यत्न करते हैं और चक्षुषि स्थूल निषम धर्मा विषे अधिक साधन है पर हृद्य की शुद्धता को पहिचानवेदी नहीं ताने अभिमान और ईर्ष्या और दग्ग विषे आसक्त रहते हैं और महाराजके जीवरो तत्रो वचन कहते हैं और मोक्षमे शुभ सुखदी चर्चा रखते हैं सो इन्ना नहीं गगनने कि ब्रह्म न्यगार

के गौमर्दी शुभकर्मों का नाश होजाता है और सर्व तपों का फल, कौमलताई है पर यह भाग्यहीन तो अपने जप तपका उपकार लोगोंपर रखते हैं और ग्वानि वगैरे आपको लोगोंसे सकुचाय रखते हैं पर जब यह पुरुष महापुरुषके योग्य और कौमलताई को भलीप्रकार पहिचाने तब इनका अभिमान निवृत्त होजावे सो वह तो कुचील पुरुष मे भी ग्वानि नहीं करते थे और सर्व जीवोंपर दयाकी दृष्टिसे देखते थे सो उनके स्वभावसे विपर्यय होनाही भाग्यकी हीनता है और सर्व छत्रों का रूप है बहुरि अतीतजनों को इस प्रकार बलाहृथा कहा है कि सब लोगों से इनमें अधिक अभिमान होता है काहे से कि जितनीही किसी पदार्थकी विशेषता होती है तब उसका पहिचाननाभी उतनाही कठिन होता है और जो पुरुष उसकी पहिचानमे अचेतते वह निस्तदेह छ नाजाता है ताते य-यार्थ के मार्गविषे उत्तम अतीत उसीको कहते हैं जिसमें तीन लक्षण पायेजायें सो प्रथम लक्षण यह है कि जिसने अपने मनको जीता है बहुरि मन और भोगों के रुमसे विरमहुथा है और विचारकी मर्त्या विना किसी स्वभावकी प्रवृत्तता नहीं फुली जैसे कोई राजा अपने शत्रुको जीतकर बनीफार करनेवे तब उस गढ़की प्रजा और मेनाभी उनी राजाके अधीन होजाती है बहुरि दूसरा लक्षण यह है कि जिनके मनमे लोक परलोक की चित्रवनी दूर होजावे अर्थ यह कि इन्द्रिय और मन्त्रके दृष्टसे उत्पन्न होकर परमपदविषे स्थितहोवे ताहे कि जितने पदार्थ इन्द्रिय और सत्त्व करके मिष्ट होते हैं सो तिनमें पशुभी इनके समान हैं और यह स्थूलपदार्थ इन्द्रियोंके भोगका नागै सो स्वर्गविषे भी यही स्थूल भोग पाये जान है इसका कि स्वर्गभी इन्द्रिया और सत्त्वका देग है ताते उत्तम अतीत वही है जिसके चित्तविषे इन्द्रियों और सत्त्वके प्राण पदा-र्थोंकी सत्ता न रहे जैसे अपृतपान करनेहारों का घामका स्वाद फुल नहीं भा सता पर जैसे घामके अधिकारी पशु है तैसेही स्वर्गके भी अधिकारी मूर्ख हैं ३ बहुरि तीसरा लक्षण यह है कि जिसका चित्त मत्ताराजकी के शृष्टस्वरूप विषे लीनहोवे अर्थ यह कि दिग्मा और स्थान और अहंकार की फुला फुल न गे जैसे नेत्र राग और मन्त्रके अधीन होवे हैं तैसेही उसकी सर्व पदार्थ विस्मरण होजावे ३ सो जिस विषे यह तीनलक्षण सम्पूर्ण पायेजायें तब जानिये कि उन की अतीतजनोंका पद प्राप्त हुआ है और उसकी वाचस्था बननगे अगोचर है

ती है पर निज्ञामु के सगभावने के निमित्त सन्तजनों ने इस अवस्था को जीव  
 और वृद्धकी एकता कहा है वृद्धि जिसे मनुष्यकी वृद्धि दृढ नहीं होती वह इस  
 भेदको समझ नहीं सका काहेसे कि जब ऐसे बढको वचन करके सिद्ध किया  
 चाहे तब शास्त्रों और लोककी मर्याद नहीं रहती ताते इस आनन्दको अनुभव  
 करके पायसका है सो उत्तम अतीतजनोंकी अवस्था यही है पर अब तूषेपवा-  
 रियों के छत्रोंको पहिचानकरके देख कि केते पुरुष गुदड़ी और आसनोंको घेप  
 बनायलेते हैं और वचनभी सन्तजनोंकी नाई सूक्ष्मही कहने हैं वृद्धि आपको  
 स्थिर चित्तकर दिवावते हैं जैसे दृढ़ आसत करके शीशको नीचाकर बैठने हैं  
 और किसी सकल्पके घेप विषे शीशको हलावने लगते हैं और अपने चित्त  
 विषे ऐसा अनुमान करलेते हैं कि हमने पावने योग्य पदार्थ को पाय लिया है  
 सो इनका दृष्टान्त यह है जैसे वृद्ध स्त्री सिंघाहीकी नाई निम्न पहरेखेवे और धीर  
 निद्याको जानतीही नहीं कि शूम्मा किसप्रकार परस्पर पुकारकर, शस्त्र प्रहार  
 करते हैं तब वह स्त्री सग्रामके समय अवश्यही लज्जावान् होती है और राजा  
 उसके कपटको पहिचानकर अधिक ताड़ना करता है काहेसे कि इसकी नाई और  
 कोई कपट न करे तैमेही भगवत् भी घेपधारियों के कपटको उचार देता है और  
 अधिक ताड़ना करता है वृद्धि केते मनुष्य ऐसे नीच होते हैं जो स्थूत्राघेप और  
 समय भी नहीं करसक ताते महीन वस्त्र फाड़कर गुदड़ी बनावते हैं और ऐसे  
 जानते हैं कि रगीन वस्त्रोंको पहरनाही बैराग्ये पर इतना भेद नहीं मंगळ  
 सेकने कि प्रथम अतीतजनोंने रगीन वस्त्रों की मर्याद इस निमित्त गयी है कि  
 जो वास्वार धोवनेका खेद न होवे अथवा उन्होंने भगवत्के विरह करके श्याम  
 वस्त्र पहर लिये हैं और शोचनानोंके आचरको ग्रहण किया है पर वह मूर्ख तो  
 महाराजके विरह और शोकमे अप्राप्त होते ताते इनको रगीन वस्त्रोंकरके क्या लाभ  
 देवेगा इसकरके कि ऐसे आसप्रही भी तो नहीं जो पुरातन वस्त्रोंको सीपते सीवते  
 गुदड़ी होजावे इसी कारण से रगीन वस्त्र फाड़ते हैं और उसकी गुदड़ी बना  
 कर पहरने हैं वृद्धि एक और पुरुष ऐसे गढ़वृद्धि है कि उनके विषे पापों के  
 त्यागनेकी मंगर्षका भी नहीं और भजन स्मरण विषेभी जोलागी है वैश्रुगि ल-  
 भिमान दग्गे जाप हो दीन भी नहीं मानते ताते भोगों की वृद्धता करके इस  
 प्रकार कहते हैं कि उद्यम करतृति हृदय की एकामता है और स्थूत्र मर्मा भी



विशेषता कुछ नहीं तो हमारा चित्त सर्वदा भजनविषे लीन रहना ही इमी कारण से हमको स्थूलरूपों की अपेक्षा कुछ नहीं और मनननों जों स्थूलरूपों की विशेषता कही है सो विषयी जीवों का अधिकार है और हमारा मन तो विश्व यासना से मृतकहुआ है ताने हमको पापका प्रवेश कुछ नहीं होता बहुरि जब तपस्वीजनो को देखने हैं तब इसप्रकार कहते हैं कि यह तो व्यर्थ कष्ट भीचने हारे और विद्यावानों को देखकर कहते हैं कि यह भी परमोत्तम विषे बंधेहुये हैं और यथार्थ ब्रह्मके अप्राप्त पर इसप्रकार कहनेहारे पुरुष निम्नन्देह राजदण्डके अधिकारी हैं काहेमे कि ऐसे मूर्ख उपदेश करके कदाचित् नहीं समझते बहुरि एक और पुरुष ऐसे होतेहैं जो विषयों से विक्र होकर विधिसयुक्त साधन करते हैं और चित्तकी वृत्तिको सकुचामकर भजन विषे स्थित होतेहैं तब अन्तर्मुखके अभ्याससे उनकी ऐसी अवस्था होनी है कि भविष्य वार्ताको प्रत्यक्ष देखने हैं और उनको देवतों और ईश्वरों के आकार प्रकट भामते हैं सो यद्यपि यह अवस्था सांचहोती है पर स्वप्नकी नाई अकस्मात् दूरभी होजाती है और वह पुरुष इतनी शक्ति पायकर ऐसे अभिमानी होनेहें कि हमको त्राटका लोककी शक्ति प्राप्तहुई और इसप्रकार जानते हैं कि उत्तम अवस्था मनजनों ही यही है पर जब यथार्थ दृष्टिकर देखिये तब उन्हेंने गगनवृत्के आश्चर्य भेदोंका एक माल भी नहीं देखा और अभिमान करके तुच्छ पेश्वर्यको पायकर अधिक प्रमत्त होते हैं और अपनी बड़ाईको प्रसिद्ध कियाचारने हैं बहुरि मान और बड़ाई के सम्बन्ध करके उनके मनकी वृत्ति पमरने लगती है और वह जाननेही नहीं सो यह छल अतिदीर्घ है और इसका पहिचानना भी कठिन है ताये जित्तामु को चाहिये कि किमी शक्ति और सिद्धतापर मनीषिन को और अपने मनकी वासना के विपर्यय करने विने सावधान होवे बहुरि जब मनके स्वभाव उनदर विचारके अधीन होजावे किसी स्वभावकी वृद्धिगाती न रहे तब हमको उचम अवस्था जाने इमीपर एक सन्तते कहा है कि जत्तोपर चलना और आकाश विषे उड़ना और आगम की सखारनेनी भी सिद्धता कुछ नहीं और उत्तम सिद्धता यह है कि इस जीवका मन सजजनोंकी भाझानुसार होजावे अर्थ यह कि जब विचारकी मर्याद बिना किसी स्वभावविषे आसक्त न होये तब हम जदम्बा पर प्रसीति करनी योग्यहै और और सपही अश्वर्य्य छलरूपके काहेमे कि ये

अशुओं को भी तप करके आगमकी खबर हुई है और उन्होंने नाना प्रकार की शक्तियों पाया है पर उनके मनकी मलिनता दूर नहीं हुई। ताते प्रतीति योग्य अवस्था यह है कि इस जीवके मनकी वासना सर्वथा दूर होजावे और विचार की मर्यादा आनि स्थित होवे इसीकारण से कहा है कि जब तू सिंहोंपर सवार न हो-सके तौभी सशय बुद्ध नहीं पर क्रोधरूपी कूकुरको जो अधीन करै तौ विशेष है और जब तेने अपने श्रवणगुणोंको पहिंचाना, तब इसको आगमकी खबर से भी विशेषज्ञान ऐसे ही जब तू इन्द्रियों और सकल्पके देशसे उल्लखित होवे तब जलों पर चलने और आकाश विषे उड़ने से भी इस अवस्था को विशेष जान बहुरि जब तू सिद्धि करके एक रात्रिविषे सहस्र योजनोंका पथ न काटसके, तौ भी सशय नाकर काहेसे कि जब तू सप्ताह के भोगों और जजालों से उल्लखित हुआ तब तेने सहस्रयोजनों के पथको पीछे डाला है, और जब तू एक चरण साथ पर्वत पर चढ़ने सके तौ भी शोकवान् न होतु इस करके कि जब तेने पापमे उत्पन्न हुये पैमेका त्याग किया तब पहाड़के लघने से विशेष है पर इस प्रकारके छलों का बखान सम्पूर्ण करना अधिक विस्तारकर होता है ताते धनवान् भी अनेकप्रकार बलेहुये, हे नाहेसे कि केते पुरुष धनको प्रथम पापोंकरके उपजावते हैं बहुरि, उस ही धनकरके कूप और ताल और पुल बनाते हैं और इसी कर्मको अपना पुरुषार्थ जानते हैं तौ उचमवार्त्ता यह है कि जिस मनुष्यका धन पाप अपना धन साथ लीजिये तब वह धन तिमहीको फेर देना विशेष है पर यह अभिमानी पुरुष अपने गानके निमित्त ऐसे नहीं करते ताते जलेहुये कहेजाते हैं बहुरि एक और धनवान्, पैमे होते हैं जो शुद्ध व्यवहार करके धनको उपजावते हैं और उस करके नानाप्रकारके धर्मस्थान बनवाते हैं पर उनके चित्त विषे गान और दम्भकाही प्रयोजन होता है ताते स्थानोंके द्वारपर अपना नाम लिखते हैं और जब कोई उन से कहे कि भगवत्त अन्तर्यामी है तूम अपना नाम काहेको लिखावनेहो तब इस का त्याग नहीं करते, तौ यह प्रसिद्धही लक्षण दम्भका है क्योंकि अर्थों को एक पैसाभी नहीं देसके और मानके निमित्त भिन्ने सहस्ररुपया पर्वते हैं इसकरके कि अर्थोंका माथा पृथ्वीके घाकीनाई नहींतना उसके उपर अपना नाम लिख राखे बहुरि एक और धनवान् पैमे दोते हैं जो दम्भ और मानके प्रयोजन बिना ही धर्मस्थापनवाते हैं पर उनमें नानाप्रकारकी चित्रकारी राखे हैं तौ गटमी बड़ी

मूर्खनाहें काटेसं कि नव भजनके स्थानविषे अधिक चित्रकारी होनी हे तब प्रथम  
 तो उसको देखकर लोगोंक चित्त बहून भिक्षेपताको प्राप्त होने हैं बहुरि और लोग  
 भी देखकर चाहते हैं कि ऐसे गृह दम भी बनायें सो इस करके वह दोनों पाप  
 प्रसिद्ध जगत् में होते हैं और चित्रकारी करावतेहारे पुरुष इस भेदको नहीं जा  
 नते इसीपर महापुरुषने कहा है कि भजन के स्थानों विषे चित्रकारी करना और  
 पौथियां पर स्तूर्ण लगावना बड़ी अज्ञानहैं काहेसे कि इस करके भजनकी एका  
 ग्रंथा और बचनां के अर्थ से शून्य रहजाते हैं सो भजन का मूल यद् हे जो इस  
 को मन मायासे विक्रम होकर स्थिर होजावे पर जिम स्थानको देखकर चित्तकी  
 चपलता अधिक होवे तब जानिये कि उसने भजन के स्थानको उजाड़ किया  
 है और गदबुद्धि जीव ऐसे भेदको पहिचान नहीं मक्रे बहुरि एक और धनवान्  
 ऐसे होते हैं जो आपकी उदार जनावने के निमित्त यज्ञ और क्षेत्र सदावन करके  
 अंत्योको अपने टांगपर इकट्ठा करते हैं इस करके किनगरो विषे हगारी उदा  
 रता की बढाई होवेगी सो ऐसे पुरुष सर्वथा गान और दम्भकके छलेहुये होते  
 हैं काहेसे कि गुप्त तो भूषेकी एक रोटीभी नहीं देखक्रे और प्रसिद्ध स्थानों वि  
 नाना प्रकार के यज्ञ और दान करते हैं इसीपर एक वार्त्ता है कि किसीने बशरहा  
 की संतने कहाथा कि महस रूपया मेरे पास हैं पर मैं इसको भीषों के मार्ग विषे  
 सर्वना चाहता हू तब उन्होंने पूछा कि तू तीर्थों पर भगवत् की प्रमन्नता क नि  
 मिष जानाहै अथवा तगागा देमने कि निमित्त चला है तब उस पुरुषने कहा कि  
 मुझको भगवत्की प्रमन्नताही की प्रीतिहै यह सुनकर उन्होंने कहा कि तू वह  
 धन किसी श्रृणी अथवा धनहीन दुष्टुम्भी को देवान तब उसके हृदयकी प्रस  
 न्ना महस तीर्थोंके फलमे विषेप है बहुरि उग पुन्यने कहा कि मुझको तीर्थ  
 यात्राकी शक्ति अधिक है तब उन्होंने कहा कि तेरा धन पापोंकरके उपजाहुआ  
 जानाजाना है नाने जवनग तू अशुभ मार्ग विषे न सर्वंगा तपनग तो मनकी  
 शान्ति न आवेगी बहुरि एक और धनवान् ऐसे रूपण होने हे कि यद्यपि दूध  
 वां अन्नदेकभी अरनी मृत्ति और टहन कमा लेने हे और टहर अर्थों  
 नहीं देखक्रे सो ऐसा मन निष्कान हानाहे काहेसे कि समके वनतं अन्न और  
 मृत्तिकी कामता नष्ट कडावनी हे और दान देनाजाना पुरुष मूर्खना करके पने  
 जानाहै कि मैं गोमर्वा मर्भार बनूभार उगवा जमटिया हे पर दानकी

युक्ति समझे बिना धनको व्यर्थही खोते हैं और झूठाही अभिमान करते हैं बहुरि एक और धनवान् ऐसे कृपण होते हैं जो दशवा'अशमी नहीं देसके ताने धन को इकट्ठा करके अपने पास रखते हैं और भजन स्मरण विषे रात्रिदिन सावधान रहते हैं पर उनको पैसा खर्चना रुठिन होता है और वह आपकी भजनी जानते हैं सो तिसको दृष्टान्त यह है जैसे किसी के गीणविषे पीड़ाहोवै और चरणों पर औषधका लेपकरे तब ऐसी औषधकर उसकी पीड़ा कम दूरहोती है तैसेही कृपण तपस्वी जो विपरीत बुद्धि हैं सो इतना भेद नहीं समझ सकते कि हमारे हृदयविषे कृपणता का रोग प्रबल है अथवा अधिक आहार का रोग प्रबल है ताते व्रत और संयम करके आहार को घटावते जाते हैं और दयादान रूपी जो कृपणताकी औषध है तिमको अगीकार नहीं करते पर यह जेते छल भेने वर्णन किये हैं और और भी जो नानाप्रकार के छल हैं सो धनवान् पुरुष इन से रहिन नहीं देसके अथवा जिसको कुछ धर्म की बूझ प्राप्त हुई होवे तब ऐसाही पुरुष इन छलोंसे मुक्तहोता है और मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि जिज्ञासुजन मन के छलों और भजनके विनोंको मलीप्रकार पहिचाने तब हृदय विषे उसके निष्काम प्रीति भगवत्की प्रबलहोवै और छलों से आपको बचाय राखे और शरीर के फार्थगात्रसे अधिकगायात्री प्रीतिसे विरक्तहोवै और सर्वथा अपनी मृत्युको निरुद्धे और परलोक मार्गके तोगे बिना किमी पदार्थ विषे आसक्त न होवै और जिम पुरुषके ऊपर भगवत्की सहायता होती है तब उसको यह वार्धा सुगम होती है अन्यथा नहीं होसकी ॥

इति निषेधप्रकरण नाम तृतीयप्रकरणममाप्तम् ॥

## चौथा प्रकरण ॥

### प्रथम सर्ग ॥

त्यागके वर्णनवें ॥

ताते जानें तू कि जिज्ञानु की जादि अवस्था पापोंका त्यागदे और धर्मके मार्ग विषे सर्व मनुष्यों को अज्ञानही त्यागकी अपेक्षा होती है चाहेसे कि यह मनुष्य प्रथमही निष्ठाप नहीं होना सो केवल निष्ठाप और निर्मल देने बदे

६ श्रीर सध्वया पापस्य अनुर हेताने प्रगिद्ध दृशा कि भगवत् के भयत्नाके  
 पापों का त्याग करना मनुष्यही का अधिकार है और सर्व आशुस्पर्षन पापों  
 विषे आसक्त रहना अशुओं का लक्षण है सो जिस पुरुषने पापों की मनसा का  
 त्याग किया है और व्यतीवहृये पापों के पुनश्चरण विषे मात्रधान हुआ है सो  
 उच्चम मनुष्य वही कदावनाहै पर प्रथम हम जीव की उत्पत्ति नीच और गनिम  
 है शक्तके कि आदि उत्पत्ति विषे भगवत् ने इसके उत्तम भोगोंको प्रेराहै और  
 भोगोंकी शृष्ट जो बुद्धिहै सो वह पीछे किशोर अवस्था विषे प्रकट होतीहै तब  
 भोगोंने, बालक अवस्था विषेही हृदयरूपी गढ़की प्रेरणियाहै और मनका हस्त-  
 भाव इतही के साथ गिना हुआ है चहुरि जव निर्मल बुद्धि प्रकट होतीहै तब  
 इस जीवको अवश्यही भोगों के त्याग और पुरुषार्थ की अपेक्षा होती है इसी  
 कारणसे कहाहै कि प्रथम सर्व मनुष्योंका अधिकार पापोंका त्यागहै और जि-  
 ह्नासकी आदि अवस्था यही है सो त्याग का अर्थ यह है कि अशुभ मार्गकी  
 ओर से अपने मुँहको फेरना और शुभ मार्ग विषे संसुप्त होना ॥ अथ प्रकट  
 करती महिमा त्यागकी ॥ तबते जान तू कि भगवत्ने सर्व मनुष्योंको त्यागही  
 विशेष कहा है और इसप्रकार आज्ञा की है कि जिस पुरुष को मुक्त होने की  
 इच्छा होवे तब चाहिये कि गयन पापों का त्याग करे और महापुरुषने कहाहै कि  
 भगवत् इस जीव के त्यागको अन्तकालपर्यन्त प्रमाण करना है और जब इस  
 गुरुस्से कुछ पाप होजाये तब उसका पश्चात्ताप करनाही त्यागहै और योंभी  
 कहाहै कि जिस स्थानविषे विषयी जीव इच्छे हों और नानाप्रकारके अल-  
 वचन रहें सो जिस स्थानविषे कदाचित् स्थित न होवो चाहेंसे कि ऐसे ठौरविषे  
 अवश्यही इस जीव का धर्म नष्ट होजाताहै तबने नाकों का अधिकारी होनाहै  
 और जो पुरुष उस स्थान से त्याग देताहै सो विमला रम्यदृग् गहनाहै और जो  
 पुरुष पापस्य करके आपकी मुक्ता मानताहै तब चित्रगुप्तको भी बह पाप भूत  
 जाताहै और योंभी कहा है कि जिससे इतनीसमं दिन विषे कुछ पाप होतारे  
 और सत्रिये आपकी मुक्ताजान उस त्यागे तब भगवत् तब त्याग प्रमाण पर्य-  
 नाहै और दयाके द्वारेहो इसके अर्थ कन्ट नहीं गयना कर्मही जवनग इवजीवने  
 प्रत्य नहो तबे वस्तेग तब त्याग पुताहै गहनाहै और योंभी कहाहै कि जो पुरुष  
 पारदर्शके आशुको मुक्ताजाने और उसका त्याग करे तब निर्मलहै उसकी महि-

उत्तमहोती है काहेमे कि पापकर्म करके उसको त्यागदेना ऐसे है जैसे किसीने पाप कियाही न होवे पर पापों का त्यागकरना यही है कि फिर उस पापकी सन्मनाही न करे और योंभी कहा है कि त्यागी पुरुष भगवत् का अतिभियतम है और त्यागी जनको देखकर भगवत् अधिक प्रसन्न होता है और जो पुरुष पाप कर्म करके आपको क्षमाकराया चाहता है सो भगवत् निस्मदेह तिसपर क्षमा करता है पर जो पुरुष मन्मथ के विषे सर्वदा दृढ़ होता है और मन्मथके त्यागने की श्रद्धाही नहीं रखता सो ऐसा पुरुष सर्वदा सनजनों की सहायता से दूर रहता है इमीपर एक वार्त्ता है कि इगह्रीम सन्नने किमी पापीको देखकर ग्लानि करीथी तब उनको आकाशवाणी हुई कि तू इसके ऊपर ग्लानि ना कर काहेसे कि जब यह मेरे भयकरके पापकर्मों का त्याग करेगा तबहीं मैं इसके त्यागको प्रमाण करूंगा और जब आपको भूला जानकर मेरे आगे दीनचित्त होवेगी तौ भी मैं उसको क्षमा करूंगा इस करके कि मेरा नाम दीनदयालु है। अब प्रकट करना अर्थ त्यागका ॥ ताने ज्ञान तू कि त्यागसे आगेही जिज्ञासु के चित्तविषे धर्मका प्रकाश प्रकट होता है तब उस प्रकार करके पापको हनाहल विषयत्व जानता है वद्वरि ऐसे जानता है कि मैंने इस विष को बहुत अङ्गीकार किया है और करने के निरुक्त प्राप्त हुआ हू ऐमे जानकर अपने चित्तविषे अधिक भयवान् होता है और पश्चात्ताप करने लगता है जैसे किमी मनुष्यने गृहिता करके गवुके सग विष ग्वायलियाहोवे वद्वरि जब विषका निश्चय करे तब अधिक ज्ञासको पावता है और यत्न करके वगन किया चाहता है और समहीके उपचारविषे सावधान होता है वैसेही जिज्ञासु जनको यह वृत्त प्राप्त होती है कि मैंने जितने भोगों को भीते जानकर भीतिभयरु भोगाहे सो सबों विषे पापगुणी विरगिला छुड़ाया ताने भय और पश्चात्ताप की अग्नि विषे जलने लगता है और उन्नी धारिने करके भोगवामना जलजती है वद्वरि जेते प्रापकर्म आगे फिरसे सोतितनके पुनश्चरणकी मानसा करना है ताते रजोगुण तमोगुणी पहारसे हूर पगता है ओ मास्त्रिकी धर्मका पहारा पदनाते निमये पीछे जो आगे विषयी जीवोंकी मगति फग्याया गो अब ज्ञानयानोंकी भागति को ग्रहण करता है वद्वरि यह कि त्यागपा रूप भय और द्रामते और मूल इमहा धर्मका प्रफाउ है वद्वरि पापोंका पुनश्चरण फगता इसकी म्तावाते पद्वि चर्च दन्तियों को पास में र्गकी

रसना और भगवत् भजनविषे सावधान होना इनका फल है ॥ अथ प्रकट कर-  
ना इसका कि त्यागकरना सर्व मनुष्योंका अधिकार है और सबको सब समय  
विषे, त्याग करना प्रमाण है ॥ ताते जान तू कि प्रथम तो इस मनुष्यको प्रतीति  
की हीनताका त्याग करना कदाहै और यद्यपि लोगोंके मुसुसे सुनकर यह भी  
भगवत्के ऊपर प्रतीति करताहै पर हृदयभरके उससे अचेतहै ताते चाहिये कि  
उस अचेतता का त्यागकरे और धर्मके अर्थको भलीप्रकार पहिचाने सो धर्म  
का पहिचानना विद्याकी अधिकता धरके नहीं कदा ताते धर्मकी दृढ़ता का  
लक्षण यह है कि सर्वकर्मोंविषे धर्म और विचारकी मर्याद अनुसार विचार  
और सतजनों की आज्ञाको प्रीतिमयुक्त प्रमाण करे और अपने मनुषी वासना  
का आन्नाकारी न होवे ताते जानिये कि जिस पुरुषकी फलतृति मलिन होवे  
विसकी प्रतीतिही दृढ़ नहीं काहेसे कि जिस पुरुषने पापोंको विपक्ष जाना है  
वह ऐसी दुःखदायक वस्तुको क्योंकर अगीकार करताहै पर इस मनुष्यसे पाप  
कर्म तबहीं होताहै जब भोगोंकी प्रीति विषे प्रथमही इसकी प्रतीति स्पष्ट हो  
जावे अथवा शुद्ध बुद्धिका प्रकाश वामनाके अधकारविषे छिपनावे तत्पर्य यह  
कि प्रथम इसमनुष्यको प्रतीतिकी हीनताका त्यागकरना प्रमाण कदाहै वही  
इन्द्रियोंके पापकर्म का त्यागकरना चाहिये है और जब इन्द्रियोंकरके पापोंसे  
रहित हुआ तब गान्धर्व और दम्भ और ईर्ष्या और अभिमान आदिक जो हृदयके  
मलिन स्वभाव हैं सो तिनका त्याग करना भी अवश्यही प्रमाणहै काहे से कि  
यह बुरे स्वभाव बुद्धिके आवरण कारणहोते हैं और सर्व पापकर्मोंके बीजहै ताते  
चाहिये कि सम्पूर्ण स्वभावोंको अपने परीकार करे सो यह साधना भी बड़े पु-  
रुषार्थ करके सिद्ध होती है वद्वारि इससे पीछे जिज्ञासुको व्यर्थ रितवनी और  
मनके संकर्यों का त्याग करना प्रमाण फटा है और महाराजके भजन से जो  
किसीसमय विषे अचेत होताहै सो तिस अचेतताको दूरकिया चाहिये है इस  
करके कि एक क्षणभी भगवत् का विमाना सर्व विज्ञा का बीजहै वद्वारि यह  
मनुष्य सर्वदा भगवत् भजनही करे और भगवत् भजनकी अरस्या विषे बड़े  
भेदहै अर्थ यह कि एक भजन स्थानहै और एक स्थान है और एक उग्रसे भी  
अतिमूर्ख होताहै एमहीं सूक्ष्मता से अतिरु सूक्ष्मता चली जातीहै ताते चा-  
हिये कि स्थानता को त्यागकर सूक्ष्मदीकी ओरटोवे किमा स्थान और अरस्या

पर अटक न रहे काहेसे कि उत्तम पदको त्यागकरे नीचपदविषे अटकरहना भी हानिका कारणहै ताते पूर्ण पदके मार्गाविषे जितने और स्थानहैं सो सर्वोका त्याग करनाही प्रेमकी दृढ़ताहै इसीपर महापुरुषने कहाहै कि मैं एकदिन विषे सत्तवार,आपको भूला जानताहूँ और उस अवस्थाका त्याग फरके;महाराजके आगे दीन,होताहूँ सो इसका अर्थ यहहै कि-उनकी-अवस्था क्षण,क्षणविषे बद-तीजातीयी और और पदाविषे स्थित,होतेथे,सो जब एक पदको त्यागकर दूसरे पदाविषे पहुँचतेथे तब प्रथमपदको अपनी अवज्ञा जानतेथे और आपको भूला जानकर क्षमा करावने लगतेथे सो इस अवस्थाका दृष्टान्त यहहै कि जैसे कोई पुरुष प्रथम पाँचपैसेकी मजदूरी करताहोवे तब उसी विषे प्रसन्नहोताहै,बहुदिनजब ऐसे जानताहै कि अमुकव्यवहारकरके इतनेही कालमें पांचरुपये प्राप्तहोते हैं तब शोकवान् होकर प्रथम मजदूरीको त्यागदेताहै और दूसरे व्यवहारको ग्रहणकर-ताहै तब पाँचरुपये पायकर प्रसन्नहोता है महुरि जब इसप्रकार जानताहै कि रत्नों का व्यवहार करके एकदिन विषेही सहस्रों रुपये का लाभहोताहै तब दूसरे व्यव-हारको भी त्यागदेता है और रत्नों के व्यवहारही को अस्वीकार करता है सो उसी पर सन्तजनोंने कहा है कि जिज्ञासु की आदि अवस्था के जेते शुभकर्म हैं सो ज्ञानवानों के निकट वही पारपरूप हैं पर जब कोई इसप्रकार प्रश्नकरे कि यद्यपि प्रतीतिकी हीनता और पाप और अचेतता तो अवश्य त्यागकरने के योग्यहै काहेसे कि जबलगा इनका त्याग न करे तब निस्तन्देह पापी होताहै और ऊन पदको त्यागकर ऊचपद विषे स्थितहोने को विशेष कहनाभी प्रमाणहै पर उत्तम पुरुषोंने जो ऊचपद विषे ठहरने को अवज्ञा कहाहै सो तिसका कारण क्याहै ताते इसका उत्तर यहहै कि योग्य और अयोग्य कर्म भी दोप्रकारके कहे हैं सो प्रथम तो ससारीजीवों को स्थूल पापों का त्यागकरना प्रमाण कहा है इसकरके कि अल्पबुद्धि भी नरकों से मुक्तहोवें महुरि दूसरी भलाई और बुराई जिज्ञासुओं का आधार है और संसारीजीव उस अवस्था विषे स्थित हो नहींसके मो यह है कि यद्यपि ज्ञानीजनोंको नरकों का दुःख तो कदाचित् नहीं शैना पर जब अपने से उत्तम अवस्थावालों को देखते हैं तब अपनी न्यून अवस्थापर शोकवान् होते हैं और इसप्रकार कहते हैं कि हमने ऐसा पुरुषार्थ क्यों न किया इसी कारण से कहा है कि उत्तम अवस्था से अपमानहना और न्यूनपद विषे स्थितहना भी



कायेन्द दे ताने लोडिये कि जिब्रासुजर्न पुरुषार्थ करके किमी फिदनेके अन्त  
 न रहे और उत्तममे उत्तम पदवीकी ओर चनाजावे तब ऐसे हुंय मे सुखहोवे  
 इमीपर मन्तजनोंने कहाहे कि परलोक विषे सब किमीकी परचात्ताप होवेना  
 पापीमनुष्य तो अपने पापोंको देखकर परचात्ताप करेगे और भजनधर्मइस  
 प्रकार कहेंगे कि हमने अधिक भजन क्यों न किया ऐसे जानकर बुद्धिमान  
 पुरुष परमार्थके मार्गविषे आलस नहीं करते और व्यवहारि भागेहीको। बल  
 जावे है और पापहित गोगोंको भगीकार नहीं करते इसीपर अविशाने महा  
 पुरुषमे पूछाया किन्तुग तो निष्पापहो ताने तुम निद्रा और आहार का इतना  
 समय क्यों करतेहो तब उन्होंने कहा कि मेरे माई महापुरुष गुणमे आगे गये  
 हैं और उन्होंने पुरुषार्थ करके उत्तम पदको पाया है तबते में भी इसीप्रकार ज्ञा  
 होताहू कि तमारके सुखोंमें आसक्त होकर उनसे पीछे न रहूं तो भलाहै और कुछ  
 दिन जो जगत् प्राप्तिवना होसो सुखको त्याग विषेही व्यतीत करूं इमीपर  
 एक मार्गीहै कि एकवार एक महापुरुष परतपको शीघ्र तलेरकर मोपराहो तब  
 गोया मनुष्यरूप धारका, उनसे कहनेजमी कि हे मन्त्रजी 'तुम आया मे त्पारा  
 करके बहुत पदपापको प्राप्तहुयेहो इस करके कि परीको शीघ्र तलेरकर  
 सुखमे नोदेलिया चाहनेहो तब यह मुनकर उन्होंने मन्त्र को उदाहरण और  
 कहनेलगे कि माताके सुखोंके साथ तप्यामी तू को तानाई यह कि जिसके  
 जिब्रासुजर्न परलोकके भय करके परमपेराम्ये के विषे : स्थितहुये हैं सोीगर्मि  
 जीव जस अवस्थाको कर पागये है ताने तू अपने त्रिन दिनेपसा जन्माने न  
 कर कि उन्होंने महत्त्व व्यभिकी किया है और दृढ़गुडीनिकाके सर्गीमार्गको  
 अंगीकार कर और संशयिनीवों के पुषयका पीछा नालेकारेमे कि इतका मा  
 गेही गिजहे इम इके प्रसिद्धहूना कि यह सत्पुत्र तपमगय और शीघ्र तलेर  
 विषे त्यागर्क। अपेक्षामे शक्ति नहीं होयता इसीसे एक सन्तने बहीदि कि जत्र  
 परा मनुष्य कि ही पदार्थको और शीघ्रतहित देखा है तब गिस्मंदेह इतना  
 समय व्यर्थे सोरता है और यह भीकि अन्तकाल विषे इसको अन्तम सुखा  
 चार देवी दे पर यह बड़ा आश्चर्य है कि यह पुरुष स्वर्गातद्वेषे सन्तकरील  
 जागेभी अपनी आत्माको छोडताहै और मरीचकके ज्ञानताजरी और अ  
 विचार करके दोसरे नर जिमसरा इम मनुष्यके नचासपी रख व्यर्थे दिने

जातो है ताते। सर्वकाल इसको रुदनही करना प्रमाण है और यद्यपि इस समय विषे सुचेतता करके रुदन नहीं करता तब परलोका विषे हृदयिन होकर अभिरुंदी सेतता है गार क्रिदेसे क्रि यह आयुषरूपी पदार्थ जगोल है और इमी करके परम पदको प्रदुर्भ्र संका है सो भोगोंकी प्रीति विषे व्यर्थही नैली जाती है और यह मूर्ख मर्दों जससे। ज्ञानेव है मर यह मनुष्य तबही सुचेत दोर्ता है जत्र इमकी सुचेतता ही लोभ छुट्टिन होवेगा इसी पर महाराजने कहा है कि जब यह मनुष्य अतकाल विषे समगणोंको देखता है तब ऐसे जानता है कि मेरे चलनेका समय आया है और शिषिके परचात्ताप करके रुदन करने लगता है पर उसे परचात्ताप करके फल सुल्लानहीं होता बहुरि समगणों से इसप्रकार कहता है कि एकदिन आभवा एक घड़ी मुझको अत्रिकाश देवो तब मैं कुछ भजन करलेवों तब वह पमगण येमे कहने लगते हैं कि आगे महागजने तुम्हको दिन और पहर बहुत दिये थे पर आता तो वेरी आयुष पूर्ण हो चुकी और कोई पल पड़ी शेष नहीं रेही बहुरि शिवा महं शीपी निराश होता है तब तिराशवा करके वर्महीना हो जाना है और उ लोका अधिकारी होता है और जिसके ऊपर श्रीगुस्तायजी सहायता करे है जस इसका धर्म नष्ट नहीं होना ताते परमसुखोंको पावना है इसीपर सत जनोंने कहा है कि भावव दोवार इम मनुष्य के साथ बचन करता है सो प्रथम तो गर्म विषे इम प्रकार आज्ञा करता है कि हे मनुष्यो मैंने तुम्हको भजन स्मरण की आजिकारी बनाया है और आयुषरूपी पदार्थ तुम्हको दिरा है ताते तुम्हको चाहि मे कि भलीप्रकार मेरे भजन विषे लावधान रहे और मेरी वचनोंको पापों विषे न लागीवो बहुरि इसधवार सुत्यहुमे प्रीति इस प्रकार पूषता है कि हे मनुष्यो जव तुने मेरे दिये पंशनोंको शुभकणों विषे लगाया है तब तमके कनेको प्राप्त हो और जसने वह पदार्थ पापों विषे लगाये है तब नरकोंके दुष्णोंको भोग तावार परुद रुतना इसका कि जव यह मनुष्य युक्तिपूर्वक रपाग रगना है तब तमको मसयव मोचनम प्रमाण करना है ताते जान ताकि जव मैंने युक्ति अनुनी साध पापों का रपाग किया तब उसके प्रमाण हेनि विषे मसयव कर और इस वार्ताको भलीप्रकार विचार करके देन वि मेग त्याग युक्ति मनुगा है जयगा युक्ति से रहित हो सो जिनम परुष ने इन मोचक मेदको गलीपचार पहिनाना है बहुरि शीपु धर्म देहके मसयव सोमी जिनने संगना है और मगवरे चार जो

इस जीवका सम्बन्ध है सो तिसको भी भलीप्रकार पहिचानाहै तब उसको इस वाधा विषे सशय कुछ नहीं होता कि भोग और पाप आवरण करनेहारे है और इनका त्यागकरता महाराज की निवृत्ताका कारण है इस करके कि इस जीव की उत्पत्तिका कारण निर्मल स्वरूप है ताते जमे इसका हृदय दर्पणकी नाई जंगाल से रहित होये तब इस विषे महाराज के शुद्धस्वरूप का प्रतिबिम्ब भासे सो जम यह पापकर्म करताहै तब हृदयरूपी दर्पण मलिन होजाताहै और जब शुभकर्म विषे स्थितहोताहै तब वह प्रकाश पापों के अन्यकारको दूर करदाता है सो इस जीव के हृदयपर रज तमरूपी अन्यकार और मात्त्वकी प्रकाश सदा ही वर्चमान रहते हैं पर जब पापों का अन्यकार अधिक होजावे और यह पुरुष भगवत् का भयकरके पापोंको त्यागदेवे तब निस्सन्देह इस अन्यकारको उसका प्रकाश नष्ट करदाता है और हृदयरूपी दर्पण निर्मलहोता है पर जिस का चिन्त पापों के अन्यकार करके ऐसा मलिन होजावे कि इसकी बुझई को समझ न सके तब ऐसे पुरुषसे त्यागरूपी उपाय कदाचित् नहीं होता और ब-  
 यपि मुखसे इस प्रकार कहता है कि मैंने भोगों का त्याग किपादे तोभी उसका कहना न्यर्थ होता है पाहेसे कि जैसे मल्लको जल और साबुन साथ घोदलीजै तब वह नीमही उज्ज्वल होइ जावताहै पर जब यमके धोवने की बाधाही करता रहे तब कदाचित् निर्मल नहीं होता इसी पर महापुरुषने कहाहै कि जब तुम्हसे कुछ पापहोजावे तब उसमे पीछे नीमही मलाफर्मकर जो वह बुझई नष्टहोजावे और जब तेरे पाप इतनेहोवें कि जरिकना करके आकाशको दिगालेख पर जब तू श्रीराववजी का भयकरके उनका त्यागकरे तोभी उस त्यागको धीजानकी-  
 नाय अपनी दया करके प्रमाण फालेवें हैं और योंभी कहाहै कि केते मनुष्य पापही के सम्बन्ध करके स्वर्गको पावेहैं तब किमीने पूछा कि हे महापुरुष ! यह मनुष्य पाप करके परमसुखका अधिकारी क्योंकर होसकता है तब उन्होंने कहा कि प्रथम जिसमे कुछ अरुणा होजावे और फिर वह आममान होकर उसका त्यागकरे और भय करके जरनी अरुणाको भिस्मरण करे और सर्वदा अर्थात् चित्तादे तब वह निस्सन्देह परमसुख का अधिकारी होनाहै और योंभी कहाहै कि जैसे जलकाके मेल दूर जानाहै तैमेही शुभकर्म करके अशुभ कर्मों का नाश होनाहै इसीपर एक वाचा है कि जिससमय शैतानको भिखारई थी तब

क्रोध करके कहने लगा कि हे महाराज! तेरी बुद्धि कैरे कहताह कि जबलोग यह मनुष्य मृत्यु न होवेगा तबलगा इसके हृदयमें बाहर न निकसूंगा बहुरि महाराजने कहा कि मैं भी अपनी बुद्धि की बुद्धि करके कहताह कि जबलोग इस मनुष्य का शरीर न चूटेगा तबलगे भोगी स्वर्ग के द्वारको चन्द न करूंगा इमीपर एकसंतने भी कहाहै कि सर्व महापुरुषोंको श्रीरामजीने इसप्रकार आज्ञा करी है कि तुम पापी मनुष्यों से हमारी ओरसे कहो कि जब तुम ग्लानि और भयमान कर पापोंका त्यागकोगे तब मैं सबपाप तुम्हारे क्षमाकरके तुमको क्षमा पनीयलगा और धर्मात्मा पुरुषों को इसप्रकार भयदेवो कि जब मैं यथार्थन्याय करूँ तब वह भी दण्डके अधिकारी होवेंगे और एक और संतने भी कहाहै कि रसना करके भगवत् के उपकार को कोई गिन नहीं सक्रग ताने चाहिये कि जिम ज्ञानुजन रात्रिदिन अपने श्रवणुणों को क्षमा कराता रहै तो महाराज अपनी दयाकरके इम जीमके पापोंको क्षमा करताहै इसीपर एक वार्त्ता है कि एक तागसी मनुष्यने एक तपस्वी से पूछाया कि मैंने पाप बहुत किये हैं और निन्यान्वे मनुष्योंका घात कियाहै सो जब इसमे आगे पापोंका त्यागकरू तब भगवत् क्षमाकरेगा कि नहीं तपस्वी ने कहा कि तू क्षमाका अधिकारी नहीं काहेभे कि तू महापापी है यहवन सुनकर वह निराश हुआ और उस तपस्वीको मारि डाला बहुरि एक विद्यावान् से पूछताभया कि मैंने सो मनुष्यों का घात किया है पर जब मैं आगे को पापों से रहित होयों तब महाराज मेरी अबज्ञाको क्षमा करेगा कि नहीं करेगा तब उस बुद्धिमान्ने कहा कि जिम नगर बिषे न रहता है सो सखी तागसी मनुष्य तहा रहने हैं ताते जब तू इनकी सगति को त्याग कर धमुक नगरमें साँखकी सगति बिषे जायरेतब तेरा त्याग प्रमाण होवेगा बहुरि बिह पुरुष पाप कर्मों को त्यागकर अपने नगरको छोड़ चला और प्रद्वाराजकी इच्छा करके मार्ग बिषेही शरीर उसका छूटगया तब यमगण और श्रीरामपार्षद उमका जीव लेने को आये और अपनी अपनी ओर खेचनेलगे तब उनको वाकाशवाणी हुई कि यह पुरुष पशुप प्रमाण अपने नगरकी भूमि से श्रीराम आज्ञाके नगरकी पृथ्वीपर अरिक्त भापादे ताते यह मुक्ति का अधिकारी है तात्पर्य यह कि यद्यपि शरीरवारी मनुष्य सर्वदा पापोंसे रहित नहीं होसके पर जब अल्पमात्र भी शुभस्मों भिने इषवी रोगे अधिक देवे ओर पापों की

अग्निनाया हीन होते तोभी मुक्तिका अधिकागी होताहै ॥ अथ प्रकट करनामेद  
लघु दीर्घ पापोंका ॥ ताते जाननु कि एक लघु पापदे और एक दीर्घ पाप कहे  
हैं पर जब इस मनुष्य से अकस्मात् लघु पाप होजावे और उम पाप विषे अ-  
धिक न विचरे तब त्यागकरके वह पाप सुगमही क्षमा होजाताहै इसी पर महा-  
पुरुष ने कहा है कि जब तुम दीर्घ पापों से रहित होतो तब लघु पाप तुम्हारे में  
क्षमापन्नहोगा तबने दीर्घ पापों का परिहानना अवश्यही प्रमाणहूआ सो इस  
निर्णय विषे भी विद्यावानों ने बहुत वचन कहेहैं पर मेरे विच विषे इसप्रकार  
गासताहै कि चार दीर्घ पाप तो सन विषे होने से प्रथम यह कि भगवत् और  
परलोकपर प्रतीतिकी हीनता कानी १ और दूसरा यह कि पापों विषे दोषदृष्टि  
न करनी २ चतुर्थ तीसरा यह है कि भगवत् की दया से निराश होना ३ और  
चौथा दीर्घ पाप यह है कि महाप्राज्ञकी आज्ञाही का गप न करना और आप  
को निष्पाप जानकर निन्दहोना ४ चतुर्थि चार दीर्घ पाप समना विषे कहेहैं सो  
एक तो सूत्री सीलदेनी १ और दूसरा लोभके निमित्त सूत्री बुद्धई देनी जपना  
केवल सूत्र बोलना २ चतुर्थि तीसरा यह कि भ्रम यत्र पद न किमी मनुष्य को  
छुछ देना ३ और चौथा महापाप निन्दे ४ औरदो दीर्घपाप उदर विषे होनेहैं-  
सो एक तो निषिद्ध और कठोर आहार करना १ और दूसरा महापाप यहहै कि  
अनाथोंको दृष्टापकर क्षमा, मनकरके अपती नीविका करनी २ चतुर्थि काम  
इष्टि विषे अगिनवाही महापापहै और दो दीर्घ पाप दार्पणकर देनेहैं-सो एक  
तो मनुष्यका घात करना १ और दूसरा किसीकी वस्तु उपाग रनी २ चतुर्थि चौथो  
विषे दीर्घ पाप यहहै कि दानुभ करोंकी और गगन करना और सर्वगिर विषे  
महापाप यहहै कि मात्रा विनाही मेराभेदहिन होना सो मेरे कर्मकेका तारार्थ  
यहहै कि इत्यादिकदीर्घ पापों विषे जितासु नतको अहित भूष करनाबाहिरे  
और सोभी जानना प्रमाणाहै कि अगि भजनके निषम विषे इसमनुष्यके सुख  
अज्ञता होजावे तब महाप्राज्ञ उमको क्षमा करेताहै पर जबइसको किसी दुका  
का प्रकृतिसा देनाहोवे तब वह ऐसा विषे पिना कठोरिबुल सुनेगा इसीपर संक-  
ननों ने कहते कि सब पापकर्म तीव्रकरके हें सो एक तो मनुष्यमना और  
मर्माहरी शिवाहै तापे जसम तब मनुष्य इस पापका त्याग न पूरे तबतम  
क्षमाया अधिकाही अनाहित नहीं होता १ और दूसरे पाप पूरे होवे है कि लेवे

भगवत्के भजन वा पाठके नियमविषये कुछ अवज्ञा होने सो हम अवज्ञाको दीनता करके भगवत् समाकर लेता है २ और तीमरा पाप यह है कि लोगोंको किसी प्रकार इत्ताना सो इस पापको भगवत् क्षमा कमी नहीं करता ताने इसका पुरस्चरण यही है कि उम दुखी पुरुषसे क्षमा करावे वा जिमको धन हरलिया होवे तब उसही को फेरदेवे और किसी पुरुषको धर्मसे विभ्रान न करे काहे से कि अभयताके भजन सुनाकर लोगोंको निष्ठाक करतागी महापाप है ३ ॥ अय प्रकृत करना इसका कि केते कांरणों करके लघुपाप भी दीर्घ होजाते हैं ॥ ताते जानू कि यद्यपि लघुपापोंके क्षमा होनेकी जिज्ञासुजन हो बोशा देती है पर केते ही कारण करके लघुपापभी दीर्घ होजाते हैं सो इनका क्षमा कराना कठिन होता है सो प्रथम यह कि जिस पापकेम का स्वर्गाय चिरकांत पर्थन हृद होजावे तब वह भी वृद्धताको पाता है जैसे सुन्दर धस्र पहरेने अथवा रूपवानोंके मुखसे राग सुनने का स्वभाव हृद होजावे तो रजोगुणकी प्रबलता करके इसका चित्त मलिम ही जाता है और शीघ्रही तमोगुण उपज आता है जैसे सदेवकाल के भजन करने विषे निस्सन्देह हृदय उज्ज्वल होजाता है तैसेही नित्य प्रतिके पाप करके अवश्यही हृदय अन्ध होजाता है इसीपर महापुरुषने कहा है कि यद्यपि किंचित् मात्रही शुभ कर्म होवे पर जब उसको सदेव करता है तब वह भी अधिक विशेष ही जाता है जैसे पाथरपर शने शने जल की वृद पड़ती रहे तब पाथर विषे भी क्षिद्र होजाता है पर जब उसके ऊपर इकट्टाही जल एकवार बह जावे तब पाथर में रक्त कामात्र भी क्षिद्र नहीं होता ताते चाहिये कि जब जिज्ञासुजन से कोई लघुपाप होजावे तब आपकी भूला जानकर पश्चात्ताप करे और आगेको उसकी मनसासे रहित होवे तब निस्सन्देह वह पाप क्षमा होजाता है इसीपर सनजनेने कहा है कि भय और पश्चात्ताप करके दीर्घ पापभी लघु होजाता है और स्वर्गावकी दृढ़ता करके लघुपाप भी दीर्घनाको पावता है १ वदुरे दूमरा कारण यह है कि जब यह पुरुष अपने पापको छोड़ा जानता है तब वह पाप भी उद्भूतता है और अपने पापको दीर्घ जानता है तब वह पाप घटनाता है काहे से कि अन्य पापको दीर्घ जानना भय और प्रतीति करके होता है ताने हम पुरुषको हृदय प्रकाशकी पावता है जो पापके प्रवेश का अन्तर नहीं होता पेनेही अपने पापको अपर जानना अचेतना जो लोगों की प्रीति काके होता है तात्पर्य यह

अभिलाषा हीन होवे तौसी मुक्तिका अधिकारी होते हैं ॥ वाय प्रकट करना भेद लघु दीर्घ पापों का ॥ ताते जानतू कि एक लघु पाप है और एक दीर्घ पाप कहे है पर जब इस मनुष्य से शकस्मात् लघु पाप हो जावे और उस पाप विषे अधिक न विचरे तब त्याग करके वह पाप सुगम ही क्षमा होजाता है इसी पर महापुरुष ने कहा है कि जब तुम दीर्घ पापों से रहित होवो तब लघु पाप तुम्हारे भेद क्षमा करेगा ताते दीर्घ पापों का पहिचानना अवश्य ही प्रमाण हुआ सो इस निर्णय विषे भी विद्यावानों ने बहुत वचन कहे हैं पर मेरे त्रिच विषे इस प्रकार मासता है कि चार दीर्घ पाप तो मन विषे होते हैं सो प्रथम यह कि भगवत् और परलोक पर प्रतीतिकी हीनता करनी १ और दूसरा यह कि पापों विषे दोषदृष्टि न करनी २ वृद्धि तीसरा यह है कि भगवत् की दया से निराश होना ३ और चौथा दीर्घ पाप यह है कि महाप्राणकी वेपस्त्राही का भय न करना और आप को निष्पाप जानकर निडर होना ४ वृद्धि चार दीर्घ पाप रसना विषे कहे हैं सो एक तो झूठी सीखे देनी १ और दूसरा लोभके निमित्त झूठी बुवाई देनी अपना केवल झूठ बोलना २ वृद्धि तीसरा यह कि मंत्र यत्र पढ़कर किसी मनुष्य को दुःख देना ३ और चौथा महापाप निन्दो है ४ और दो दीर्घ पाप उदर विषे होते हैं सो एक तो निषिद्ध और कठोर आहार करना १ और दूसरा महापाप यह है कि अनार्योंको दुष्वासफर अथवा बलकरके अपती जीविका करनी २ वृद्धि काम इन्द्रिय विषे व्यभिचारही महापाप है और दो दीर्घ पाप हाथों कर होते हैं सो एक तो मनुष्यका घातकरता १ और दूसरा किसीकी वस्तु चुरास लेनी २ वृद्धि त्तारों विषे दीर्घ पाप यह है कि अशुभ कर्मोंकी ओर गगन करना और सर्वशरीर विषे महापाप यह है कि माता पिताकी सेवासे रहित होना सो मेरे कहनेका तारपर्य्य यह है कि इत्यादिक दीर्घ पापों विषे जिज्ञासु ज्ञातको अधिक सुप करना चाहिये और योंभी जानना प्रमाण है कि रघुपति भजनके निमित्त विषे इस मनुष्यसे कुछ अवज्ञा होजावे तब महाराज उसको क्षमा करलेता है पर जब इसको किसी पुरुष का एकपैसा देना होवो तब वह ऐसा दिये बिना कदाचित न छोड़ेगा इसी पर सत् जनों ने कहा है कि सब पापकर्म तीन प्रकारके हैं सो एक तो मनमुल्लव और प्रतीतिकी हीनता है ताते जबला यह मनुष्य इस पापका त्याग न करे तबला क्षमाका अधिकारी कदाचित नहीं होता १ और दूसरे पाप ऐसे होते हैं कि जैसे

भगवत्के भजन वा पाठके नियमविषये कुछ अवज्ञा होवे सो इस अवज्ञाको दीनता करके भगवत् क्षमाकर लेता है २ और तीसरा पाप यह है कि लोगोंको किसी प्रकार दुखाना सो इस पापको भगवत् क्षमा करगी नहीं करता ताते इसका पुरस्चरण यही है कि उस दुखी पुरुषसे क्षमा करावे वा जिसको धन हरलिया होवे तब उसे ही को फेरदेवे और किसी पुरुषको धर्मसे विमुख न करे काहेसे कि भगवत्की बचन सुनाकर लोगोंको निश्चय करेतांगी महापाप है ३ ॥ अर्थ प्रकृत करनी इसका कि केते कारणों करके लघुपाप भी दीर्घ होजाते हैं ॥ ताते जानं सू कि यद्यपि लघुपापोंके क्षमा होनेकी जिज्ञासुजन होओशा देती है पर केते ही कारण करके लघुपापभी दीर्घ होजाते हैं सो इनका क्षमा कराना कठिन होता है सो प्रथम यह कि जिस पापकर्म का स्वभाव चिरकालपर्यन्त बढ़ होजावे तब वह भी बृद्धताको पाता है जैसे सुन्दर वस्त्र पहने अथवा रूपवानोंके मुखसे राग सुनने का स्वभाव बढ़ होजावे तो रजोगुणकी प्रबलता करके इसका चित्त मलिन हीजाता है और शीघ्रही तमोगुण उपज आता है जैसे सदैवकाल के भजन करने विषे निस्सन्देह हृदय उज्वल होजाता है तैमही नित्य प्राणिके पाप करके अथवा यही हृदय अन्ध होजाता है इमीपर महापुरुषने कहा है कि यद्यपि किंचित् मार्गही शुभ कर्म होवे पर जब उसको सदैव करता रहे तब वह भी अधिक विषे हीजाता है जैसे पाथरपर शने-गने जल की बूद पड़ती रहे तब पाथर विषे भी क्षिद्र होजाता है पर जब उसके ऊपर इकट्टाही जल एकवार बहजावे तब पाथर में रचकमात्र भी क्षिद्र नहीं होता ताते चाहिये कि जब जिज्ञासुजन से कोई लघुपाप होजावे तब आपको भूला जानकर पश्चात्ताप करे और आगेको उम्मीक मनसासे रहित होवे तब निस्सन्देह वह पाप क्षमा होजाता है इसीपर संनजनोंमें कहा है कि भव और पश्चात्ताप करके दीर्घ पापभी लघु होजाता है और स्वगावकी घटना करके लघुपाप भी दीर्घताको पावता है ४ वृद्धि दूसरा कारण यह है कि जब यह पुरुष अपने पापको छोड़ा जानता है तब वह पाप भी बृद्धता है और अपने पापको दीर्घ जानता है तब वह पाप घटना है काहेसे कि अपने पापको दीर्घ जानना भय और प्रतीति करके होता है तब इस गुणको हर्ष प्रकाशकी पावता है और पापके प्रवेश का अन्धकार नहीं होता पेवही अपने पापको अपर जानना अचेतना और भोगी की प्रीति करते होता है नारथ यह



कि, सर्ष कर्मों का प्रेरक इसका भन है सो जिस कर्म विषे, इम मन क्री जति वध्य मात् होती है तव उसही पर आवेग अधिक होजाता है इसीपर सत्तजनो जे कहता है कि मीतिमान् पुरुष किंचित् पापको भी पर्वतकी नाई जानता है सोरसेसा जानता है कि जब यह पाप मुझसे हुआ तव मैं इसके नीचे तब जाऊगा और मनमुख अपने पापोंको माखीकी समान तुच्छ जानता है ताते वही पाप उससे कदाचित् नहीं छूटवा, इसी पर एक महापुरुषको आकाशवाणी हुई थी कि तू अपने पापोंको थोड़ा न देखो और ऐमे जानो कि हम इस प्राण करके कैसे महा राज से विमुख हुये हैं ताते जो पुरुष महाराज की समर्थता और नेपथ्याही को अधिक समझता है तव वह थोड़े पापको भी अधिक जानता है सोरसे कि सर्ष पापों विषे महाराजका क्रोध द्विपाहुआ है २ बहुरि जीसरा कारण यह है कि जो पुरुष पापकर्म करके प्रसन्न होवे और उसको, बड़ा पदार्थ जानकर बड़ाई को तब वह पाप भी बढ़ता जाता है जैसे कोई मूर्ख मनुष्य इस प्रकार कहता है कि हमने कैसा बल करके उसका धन हरलिया बहुरि समा विषे दुर्वर्तता और हास्य करके उसको कैसा लज्जावान् किया ताते जो मनुष्य अपनी बड़ाई ऐसे पाप करके फस्ते है तव इस करके जाना जाता है कि उनका हृदय मलिन होगा है और उसही पाप करके मृत्युको पावेंगे ३ बहुरि चौथा कारण यह है कि जिस पुरुषका पाप जगत विषे प्रसिद्ध होवे और वह ऐसे जानै कि मेरे ऊपर उभगवत् दयालु है ताते उसकर्मका त्याग न करे तो भी उम पापसे कदाचित् नहीं छूटता, ४ बहुरि पाचवां कारण यह है कि जब यह पुरुष किसी विद्यावान् अथवा श्रेष्ठ पुरुषको पाप कर्म करता देखता है तो भी डीठ और निरशक होजाता है और इस प्रकार कहता है कि अमुक विद्यावान् सुदूर वन पहरता है और राजसभा विषे जाता है और उनका भ्रत अङ्गीकार करता है सो जब यह कर्म बुरा होना तब वह काहे को करता ऐसे जानकर यह भी पापों विषे वर्तता है निरशक और ऐमे थोरकेने लोग भी अपने धर्मसे अष्ट होजाते हैं ताते सबका पाप उसी विद्यावान् को लागे वाहे काहेसे कि प्रथम प्रापकी नींव उसही ने राखी है इसीपर एक वार्ता है कि एक विद्यावान् प्रथम पापकर्म विषे आर्मकथा बहुरि उसने पापोंका त्याग किया तब उसको आकाशवाणी हुई कि मैंने तेरे पाप तुझको समीकिये पर तेरे कर्तव्य और कृचन करके और केते मनुष्य जो पाप विषे आसक्त हुए हैं सो तिन

को, क्योंकि धर्माः कर्मयोगाः इमीकारणसे सतजनों ने कहा है कि विद्यावान् को ओर लोगों से शक्ति भय होता है काहेसे कि उनका पाप सहस्रगुणा बढ़ जाता है और सत्ताकार्म भी सहस्रगुणा होता है तावे, विद्यावान् को चाहिये कि, प्रथम तो पापकर्मदीप्त करे और जब अकस्मात् होजावे तब तबको प्रकट न करे और शरीर के तप्यवहार विषे भी समयसहित विचरे तो भला है काहेसे कि उसको देखकर और लोग भी भवेत न हों इसीपर एक सतने, कहा है, कि आगे में हंसने खेलेनेकी शक्ति न करता था पर जब मेरा पेशवर्य जगत् विषे प्रकट हुआ है तब में देखता हूँ कि मुझको, कार्य, विज्ञान सुसंख्यान भी प्रमाण नहीं चात्पर्य यह कि और मनुष्यों का छिद्र प्रकट करना तो भला नहीं पर विद्यावान् के छिद्र को बुरावना अधिक ही विषे पड़े, और सतजनों ने यों भी कहा है कि जिस पुरुषके मृत्यु होनेसे प्रीति उसका प्राप्त होय न रहजावे तब तब मनुष्य भी उत्तम कहावता है और जिसका पाप सहस्रों वर्षपर्यन्त पीछे चलाजावे सो तिसकी गति महानीच होती है अर्थ यह कि, तिसके पापको देखकर और लोग भी पापों विषे निश्चक हों सो तिसका पाप दीर्घकालपर्यन्त चलाजाता है ॥ अथ प्रकट करनी सुक्ति त्यागकी ॥ ताते ज्ञान व कि त्यागका मूल यह है कि पापोंसे त्रासमान होना और फल इसका सात्त्विकी अद्भुत है और त्रासका लक्षण यह है कि अपने पापों को देखकर सर्वदा दीनचित्त और शोकवान् और भजन करतार है फ्राहे से कि जिस पुरुषको अपना करना, निरुद-भासता है सो पदचात्पा, और येवनेमे रहित फव होसका है अथवा जिसको कोई लोगी वैय इसप्रकार कहे कि इसरोग, फरके वेद्युत्र अर्थात् मृत्यु होता है तब उसको कैसी चिन्ताकी अग्नि जलाने लागी है तैसे ही यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि बुद्धिका नाश होना पुत्रके मरने से अधिक उपद्रवक है और सतजनोंके वचन लोभी वैद्यके वचनोंसे अधिक सरागुहित हैं और शरीरके नाश का कारण जो रोगके सो पापकी रोग इसकी वृद्धि हो स्थल रोगसे भी प्रीप्रदी न्याश करता है तावे जो पुरुष ऐसे वचनों से सुतक्र त्रासमान न होवे तब जानिये कि उसकी प्रतीतिही दृढ नहीं भयवा उनने पापोंके विषोंको भलीप्रकार समझाई नहीं और जिस पुरुषकी बुद्धि तीक्ष्ण होती है सो तिसके हृदयविषे भी प्रदी विचार उपजजाता है और गपरुषो जग्नि अधिक होती जाती है पुरी इती अग्नि फरके पापोंका अन्यकार नहीं रहना

और हृदय उसको उज्ज्वल होई आता है इसीपर संतजनोंने कहा है कि त्यागी पुरुषोंकी सगति करनी विशेष है काहे से कि उनका हृदय निर्मल और स्थिर होता है और जितनाही इस मनुष्यका हृदय उज्ज्वल होता है उतनाही पापोंसे रक्षित करने लगता है और भोगोंकी प्रसन्नताको भय और पश्चात्ताप नष्ट कर डारता है तब उसको त्याग प्रमाण होता है इसीपर एक पुरुषने महाराज के आगे प्रार्थना करी थी कि हे अन्तर्यामी ! मेरे त्यागको अंगीकार कर तब उसकी आज्ञा का शवाणी हुई कि यद्यपि तेरे निमित्त सर्व मृष्टि प्रार्थना करें पर जबलंगिते चित्तसे भोगोंकी अभिलाषा दूर न होवे तबलंगिते त्यागकी कदाचित् प्रमाण न करूंगा ताते जानतू कि यद्यपि इस मनुष्यको भोग और पाप मालीकी नाई लगते हैं पर त्यागीपुरुष उनको ऐसे जानता है जैसे मधुषिपे हलाहलविष मिला हुआ होवे अर्थ यह कि जब कोई उसको अस्पर्शमात्र खाकर डुल्लो होता है तब स्वामाविकही उसको देखकर रक्षित करता है और उसके रोम त्रास करके लड़े होइआते हैं ताते उसे मिठाईकी अभिलाषा नष्ट होजाती है ऐसेही जिज्ञासुजनों को आहिये कि सब पापों विषे भगवत् के कोपरूपी विषको प्रसिद्ध देखे बहुरि सात्त्विकी श्रद्धा जो फल त्यागकी कही थी सो इसको सम्बन्ध भी तीसरे लक्षणों के साथ होता है प्रथम तो जिस समय विष सर्के पापोंसे विक्रि होत है और कर्णिय फलों विषे सावधान रहता है १ बहुरि दूसरी लक्षण इसका यह है कि आगे भी यही श्रद्धा करता है कि मैं यह पापकर्म कदाचित् न करूंगा और भगवत्की अन्तर्यामी जानकर त्यागके निर्वाहकी मनसा रखता है बहुरि एकांत और श्रुत जीविकाको अंगीकार करता है तात्पर्य यह कि जबलंग सर्वपापों और भोगोंकी अभिलाषासे विक्रि न होवे तबलंग सम्पूर्ण त्यागी नहीं कहाजाता इसीपर संतजनों ने कहा है कि जिसके ऊपर किसी भोगकी प्रवृत्ता होये तब चाहिये कि सातवार धन और इठकरके उसका त्याग करे तब वह फाटनताई दूर होनाती है २ बहुरि सात्त्विकी श्रद्धाका लक्षण तीसरा यह है कि व्यतीत हुये पापोंके पुरश्चरण विषे सावधान होवे और इस वार्त्ता को भनी प्रकार पहिचाने कि मुझमें भगवत्की अवज्ञा क्या क्या हुई है सो भगवत्की अवज्ञा दो प्रकारकी होती है प्रथमतो कर्णिय फलों से विमुख होना दूसरे पापकर्मों विषे आसक्त रहना ताते आहिये कि बालक धीवस्थाने लेकर जिस जिस निमित्त

अत्रेत्तद्वा हेवे अथवा दशवन्ध न दिया हेवे अपर्वा/अधिकारी विना दशवन्ध  
 दिया हेवे तब सर्वोका पुरश्चरण ऐसे करे कि मजन और दानकी अधिकता  
 बढ़ावे बहुरि पापोंका पुरश्चरण इसप्रकार करे कि नीलरुम्बस्यापिर्पन्त्र जो जो  
 दीर्घपाप किया हेवे तब उसको स्मरण करके नयमयुक्त मगवाचसे ब्रह्माकषते  
 बहुरि अपने शरीरपर तप और यज्ञ अधिक रात्रि ऐसेही लघुपापोंकी पुरश्च-  
 रण इसप्रकार करे कि जब अधिक बोला हेवे तब मौनविषे स्थिर रहे और जब  
 अशुभ और दृष्टिकरी हेवे तब खब्जा करके जत्रोंको मूदरावे ऐमेही सर्वोषि-  
 त्तिपर्यय भावको अंगीकार करे तब विकारोंकी स्मृष्टता दूर होजावे इसी पर  
 महापुरुषते कहा हे कि इच्छुक्तके पीछे सुकृतको तब वह सुकृतेही संदजावेगी  
 ताते विपरीतग सुनने का पुरश्चरण यह है कि सतजनों के वचन सुनता रहे  
 और जब किसीके सम्मुख निश्चक बोला हेवे तब सपकाभय और सम्मानकरे  
 तात्पर्य यह कि पापकर्म करके जितनाही इसका हृदय मलिन होजाता है उत-  
 नाही पुरश्चरण करने से मलिनता दूर होजाती है ताने चाहिये कि जब इसने  
 मायाके पदार्थोंकी ओर प्रसन्नता की दृष्टिकरी हेवे तब यज्ञ और कष्टोंको अ-  
 गीकार करे काहेसे कि भोगोंकी अभिलाष करके इसका हृदय बधमानी होजा-  
 ता है बहुरि ग्लानि और यज्ञ को अंगीकार करने करके वह बधमान दूरहोती है  
 इसीपर सतजनोंने कहा है कि जब सात्त्विकी मनुष्यों के चरणों विषे फाटा चुभ  
 जाता है तब भी उसके पापोंको क्षीण करना है और महापुरुषते भी कहा है कि  
 शोक और विन्ता करके भी केते पापोंका पुरश्चरण होजाता है पर जब उ-  
 मकार कहे कि शोक और विन्ता तो इसके पुरुषार्थ करके नहीं होनी ताने इस  
 के पापोंका पुरश्चरण क्योकर कहिये तब इसका उत्तर यह हे कि जिस सयोग  
 करके इसपुरुषका हृदय मायाके पदार्थोंसे विकृत हेवे तब उसको निरमदेह भक्त  
 जात्रिये सो यद्यपि इसके पुरुषार्थकाके प्राप्त होये अथवा महाराजकी आज्ञा प्राप्त  
 कर अकस्मात् होजावे पर वह सयोग अवश्यमेव हम जीवके कल्पवृक्ष का  
 रण पद्विजे जब इसने किसीको इलाया होये अथवा किसीका धन शत्रुया हेवे  
 अथवा किसीकी निन्दाकरी हेवे तब चाहिये कि स्मरण करके मगसे ब्रह्माकषते  
 और जिसका धन देता हेवे तब उसको धनही देवे और जिसका धन किया  
 हेवे तब उसके सवधियोंको अपना शरीर अर्पण करे पर यह पार्वी गजापति और

बजारियों को फटिन होती है। कहें से कि इनके व्यवहारों का सम्बन्ध बहुत  
 पुरुषों के साथ होता है ताते जब इनका पुरस्चरण होसके तब वे राम्य ओरी  
 भगवत् भजनविषयही अधिक दृढ़होये और जिस पुरुषसे कोई पाप प्रित्यक्ति  
 होतहो तब शीघ्रही उसका पुरस्चरण करता रहे तो भला है इसीपर सन्तजनों  
 ने कहा है कि जब यह मनुष्य पापकर्म करके उसको त्यागदेवे अथवा श्यगिनि  
 की मनसाकरे और उसके दुःखसे भयवान् होवे और भगवत्की दयाका आ-  
 शावेन्तहोवे वहुते ययाशक्ति दानदेवे और साधुसंगति विषे आपकी स्थिति  
 तब इतने कर्मों करके पापोंकी क्षीणता होजाती है पर जब भय और पीति विभी  
 मुसेसे त्राहि त्राहि करतारहे तब इस कहनेका लाभ कुछ नहीं होता कहें से कि  
 लाभ का कारण भय और परचात्तप और हृदय की कोमलताई है पर तब  
 कुछ भयसयुक्ती श्रीराघवजी का नाम लेवे और प्रार्थना करके क्षमी कावर्त  
 रहे तो भी निन्दा और वाद विवाद से मुक्त रहता है ताते यह भला कर्म है  
 इसीपर एक जिज्ञासुजन ने अपने सद्गुरु से पूछा था कि जब मैं मुखसे श्री  
 रामराम कहताहूँ तब मेरा मन एकत्र नहीं होता तब उन्होंने कहा कि तू यह भी  
 श्रीरामजी का उपकारजान कोहसे कि एकहीन्द्रिय तो तेरी शुभमार्गविषे स्थिति  
 हुई है ताते रघुनाथजी की सहायता करके अनेकानेक कर्मों पर कर्म हो  
 जायेगा पर यह मन ऐसा कपटी है कि जब जिज्ञासुजनको भोजनविषे स्थिति  
 हुआ देखता है तब इसप्रकार कहता है कि हृदयकी एकत्रता विना श्रीराम नाम  
 लेना व्यर्थ होना है ताते तू भजनही को त्यागदे पर एक तो ऐसे उचित मनुष्य  
 होते हैं जो मनको इसप्रकार करके उत्तर देते हैं कि हे मेरी प्रियार्थ कहा माते  
 मैं अब हृदयको भी एकत्र करलेताहूँ तब यह भजन सकल देवताओं यह उत्तर  
 ऐसा है कि मनके छलको नष्ट कर डालता है वहुते एक मध्यम मुख्य उत्तर  
 मनको कहते हैं कि यद्यपि मैं हृदय को एकत्र नहीं कर सका तभी वाद विवाद  
 और आलस निद्रासे श्रीराम नाम लेना ही विशेष है ताते मैं इसका त्याग क्यो  
 कर करूँ जैसे शराकीके व्यवहारसे राज्य करना विगमेहै मरे जबलग राज्यप्राप्ति  
 न होवे तबलग शराकीको त्यागकर चोडालाका व्यवहार करना सी भला नहीं  
 वहुते एक ऐसे मनुष्यानीय होने हैं कि वह मनका कर्मों जानकर भजन की  
 त्याग देते हैं और ऐसे जानते हैं कि जिसकी एकत्रता विनी भजन विषयका

लाम होता है ताने हमने जो भजनका त्याग किया है सो यह भी बुद्धिमानोंका कर्म है पर जब विचारकरके देखिये तब वह मनके अधीन होकर भजन से विमुक्त हुये हैं ताने परमभाग्यहीन है ॥ अथ प्रकट करना उपाय त्याग के प्राप्त होने का ॥ ताते जान तू कि जो पुरुष पापों का त्याग नहीं करते और सर्वदा भोगों विषे आसक्त हैं सो प्रथम इसके कारणको पहिंचानना चाहिये कि उनके हृदय विषे त्यागकी श्रद्धा क्यों नहीं उपजती सो त्यागकी मनमासे वर्जित करनेहारे पांच कारण हैं और सबके भिन्नभिन्न उपाय हैं ताने प्रथम कारण यह है कि जिनके हृदय विषे परलोक की प्रतीति नहीं होती अथवा सरायवान् होते हैं तब वह भी पापों का त्याग नहीं करते सो तिनका उपाय मैंने द्वितीय प्रकरणके अंत प्रागिक बुद्धियोंके सर्ग विषे प्रसिद्ध करके कहा है, १ और दूसरा कारण यह है कि जिनके हृदय करके भोगों की अधिक प्रवृत्तता होती है तब वह भी त्याग नहीं कर सकते इसी कारणसे परलोकके दुःखका स्मरण नहीं करते सो बहुत मनुष्योंको तो भोगोंकी प्रीतिने घेर लिया है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जब भगवत् ने नरकोंको उत्पन्न किया था तब देवतों से पूछा कि यह कैसा दुःखरूप है तब देवता ने कहा कि हे महाराज ! जो पुरुष इनके दुःखोंको श्रवण करेगा तब भयकरके सर्वप्रकार इससे भापको बचाया जाहेगा बहुरि महाराज ने नरकों के चारों ओर भोग उत्पन्न किये तब देवतोंने कहा कि हे महाराज ! कोई पुरुष इनकी अभिजापा से दृष्ट न सकेगा ताते हम इतने हैं कि भोगोंकी प्रीति करके बहुत ही मनुष्य नरकगामी होवेंगे बहुरि भगवत् ने स्वर्गको उत्पन्न किया तब उसको देखकर देवता कहने लगे कि हे महाराज ! जो इसकी महिमा सुनेगा तब वह अवश्य ही उसहीको प्राप्त हुआ जाहेगा बहुरि महाराजने स्वर्ग के मार्ग विषे बड़े यत्न और दुःख उत्पन्न किये तब देवतोंने कहा कि हे महाराज ! कोई विरचानी पुरुष ऐसे दुःखोंको भेचकर स्वर्ग की ओर आवेगा और अधिक मनुष्य तो भयकरके विमुक्त हो जावेंगे ताते प्रसिद्ध हुआ कि भोगोंकी प्रीति नरक का मार्ग है और स्वर्ग का मार्ग दुःखों का खिंचना है २ बहुरि तीसरा कारण यह है कि यह मनुष्य जग में आयकर भोगोंको प्रसिद्ध देता है और परलोकको उचार जानना है ताने भोगोंके साथ अधिक प्रीति करता है और परलोक का दुःख स्मरण नहीं करना सो यह भी बुद्धिहीनता है ३ बहुरि चौथा कारण यह है कि यह मनुष्य

कलक त्यागधी मनसा रखता है तो भी अचेतता करके दीलाही ग्हाता है और जब कोई भोग इसको प्राप्त होता है तब इस प्रकार कहता है कि अब तो इस भोग को भोगलेयों फिर इसका त्याग करलेऊगा ४ और पात्रवां काण्य यह है कि जिस मनुष्यने भगवत्की दयाको श्रवण किया होता है तब अपने चित्तविषे ऐसा अनुमान करलेता है कि मुझको भगवत् क्षमाकरलेवेगा पर जो मनुष्य भोगोंको नकद जानता है और परलोकको उधार देखना है सो तिसका उपाय यह है कि जिस ममयमें अवश्य आवना है सो तिस को निस्मन्देह भ्राया जाने काहे से कि जो अभी इसकी मृत्यु जानवै तो परलोक नकद होजावे और स्थूलभोग स्वप्न होजावैं वहुरि भोगों की प्रीति का उपाय इसप्रकार जानना प्रमाण है कि जब मेरे चित्त विषे भोगोंके त्यागने की सामर्थ्यही नहीं तब मैं नरकों के दुःख सहने को क्योंकर समर्थ होऊगा तबने जिसप्रकार रोगी मनुष्यकी रुचि यद्यपि किमी भोगविषे अधिक होती है तौभी वैद्यकी आज्ञानुसार उसको त्याग देता है तैसेही जिज्ञासुजनको चाहिये कि भगवत् और सतजनोंकी आज्ञानुसार यत्न महित भोगोंको त्यागदेवे तो गला है वहुरि जो पुरुष पापोंके त्यागविषे दीलकर ता है तिसको पेमे समझना योग्य है कि जब कालहही मेरी मृत्यु आवै तब मैं क्या करूगा काहेसे कि जीवना तो मेरेहाय नहीं इसीपर सन्तजनों ने कहा है कि जिनपुरुषोंने त्यागविषे दीलकरी है सो परलोकविषे दुःखित अधिकहोकर पुकार करेंगे ताते चाहिये कि यह मनुष्य पुरुषार्थकरके भीप्रही भोगों का त्याग करे और जब इस निमित्त दीलाहोवे कि अब भोगोंका त्यागना कठिन है तब सोजाने कि कालभी आजकी नाई कठिन होवेगा ताते दीलकरनेहारे पुरुष का दृष्टान यह है जैसे कोई बुद्धिमान् किमी पुरुषको कहे कि तू जब इस वृद्धके मृत्युको ओवहीं उलाड़डाले तौ भला है वहुरि वह पुरुष पेमे कहे कि अबनो मैं निबनरूं थोर इम वृद्धका मूल दृढ़ है ताते मैं इमको एक वर्ष पीछे उलाड़गा तब उमको समझाना चाहिये कि हे मूर्ख ! वर्षसे पीछे तू तो अधिक निबनहोवेगा और यह वृद्ध अधिक दृढ़ होता जावेगा तैमेही सर्वदाकाल भोगों के स्वभाव प्रबलहोते जाते हैं और तेरी बुद्धिकावन क्षीण होता जाता है इसीकारण से जो तू भीप्रही त्यागका उद्यम करे तो भला है वहुरि जो पुरुष भगवत् को दयालु जान कर पापों का त्याग न करे सो तिसको पेसे समझना विषेप है कि भगवत्की दया तो तेरे अर्थिन नहीं और

जय तेरा धर्मही पापोंकी प्रबलता करके नष्टहोजावै तब निस्सदेह अतकाल प-  
 रचात्तापको प्राप्तहोवैगा इमीपर संतजनोंने कहाहै कि धर्मरूपी वृक्ष तबही वृद्ध  
 होताहै जब उसको मजनरूपी जलसे सींचिये और जब मजनरूपी जल इमको  
 न पहुँचे तब निस्सदेह धर्मरूपी वृक्षही नष्टहोजाता है ताते संतजनों के आपने  
 का प्रयोजनभी जगत्में येही है कि जीवोंको पापोंकाफल जो हु वहै सो प्रसिद्ध  
 करके दिग्वाँ तात्पर्य यह कि भगवत्की दयाके आश्रित होकर पापोंविषे वि-  
 चरना बड़ी मूर्खताहै और इसका दृष्टान्त यहहै जैसे कोई पुरुष अपना मर्चस्व  
 लुटायेदेवै और चित्तविषे यह आशाराखे कि मुझको स्वाभाविकही धनविषे धन  
 का खजाना मिलजावैगा अथवा कोई धनवान् मेरे गृह विषे आकर मरजावैगा  
 तब उसका धन मेरेही पामरहैगा सो यद्यपि अकस्मात् ऐमा संयोगभी होजाता  
 है पर अपना धनलुटाकर ऐमी आगाकरके निश्चिन्नहोना बड़ीमूर्खताहै बहुरि  
 ऐसे जानू कि केते मनुष्य इमप्रकार कहते हैं कि जबलग सम्पूर्ण पापों का  
 त्याग न करे और किञ्चित्ही पापों का त्याग करे तबनग उसको त्यागी नहीं  
 कहते जैसे कोई दुराचार का त्यागकरे और मदपान का त्याग न करके तब  
 उसको त्यागी क्योंकर कहिये काहेसे कि पापकर्म तो सही निन्द्ये और त्या-  
 गने योग्य हैं पर मेरे चित्त विषे इसका उत्तर इसप्रकार मामता है कि जितने  
 दुराचारको मदके पीवनेसे अधिक बुरा जाना है अथवा ऐसे समझा है कि मद  
 पानकरने से दुराचारभी होताहै ताते मदका पीवनाही अधिक निन्द्ये सो जि-  
 सने अधिक बुराई का त्याग किया तब उमका त्याग प्रमाण होताहै जैसे कोई  
 पुरुष इसप्रकार जाने कि निंदाकरके जीवों का हृदय दुषता है और मद करके  
 आपने चित्तकी चपलता होतीहै ताते निन्दाको त्यागदेवै और मदभेगहित न  
 होसके तौभी इसका त्याग प्रमाण है काहे से कि जितनेही अधिक पापकर्म  
 फलताहै उतनाही उसको दण्ड भी अधिक होनाहै और यह भी प्रमाणनहीं कि  
 जब एक पापकर्म का त्याग न करसके तब जिस पापका त्याग करमहा होये  
 तिमकागी न करे तात्पर्य यह कि जितनाही पापकर्म से गहिन होये तितनाही  
 भलाई को पावता है पर सम्पूर्ण पाप त्यागी उमी को कहने है ना सर्वपापोंने  
 रहितहोवै और सम्पूर्ण त्यागी होने का अर्थ यह है कि नो सुने करके प्रत्य  
 हीन पापका त्याग करनाचाये बहुरिमर्षा निन्दापदे इमकरके कि इम मनु



धर्म में सर्व पापों का त्याग एतद्द्वारा नहीं होसकता ताते चाहिये कि वृत्तकारके त्यागही के मार्ग विषे चलाजावे तब शीघ्रही सम्पूर्ण त्यागको पावेताहे ॥

## दूसरा सर्ग ॥

संतोष और पन्धवादके पर्यन्त में ॥

ऐसे जानू कि यद्यपि मूलार्थ का त्याग है परं त्याग भी सन्तोषके बिना सिद्ध नहीं होता और कोई शुभ कर्तृत्ति करनी और किसी पापका त्याग कर्नागी सिद्ध नहीं होता ताते इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि संतोष जाधा धर्म है और किसी पुरुष ने महापुरुषने पूछा था कि धर्मकारूप क्या है तब उन्होंने कहा कि सन्तोषही धर्म है सो विशेषतः संतोषकी इसकारणहै कि महाराज ने अपने वरनों विषे सन्तोषकी बहुत प्रशंसा करी है और जो जो उच्चमपदहैं सो सबही संतोषकरके सिद्धहोने रुहे हैं और धर्मके मार्ग विषे अगवानी भी संतोषहीको कहा है और योंभी कहा है कि संतोषत्रालोंके अभिनिरुद्ध हू और मेरी सहायता और दया और उच्चम वृत्तमी संतोषवालोंको प्राप्त होती है यह तीनों पदार्थ इकट्ठे किसी को प्राप्त नहीं होते और योंभी कहा है कि उनकी के पाप क्षमा होते हैं और परलोक विषे पापियोंके पाप भी बड़ी क्षमा करावते हैं और भगवत्का मार्गभी उनकी को प्राप्त हुआहै जिनके हृदय में संतोष है और इस कारण कर्त्तकेभी संतोषकी विशेषताहै कि भगवत्ने संतोषको आप प्यारा किया है अर्थ यह कि किसी विरले मनु को प्राप्त किया है इतर जीवोंको नहीं दिया और ऐसेही महापुरुष ने भी कहाहै कि जिसपुरुषको शुभ अंगों विषे विश्वास और सन्तोष प्राप्त हुआ है उस से कहदो कि निर्भय होवे यद्यपि मृत और तप बहुत नहीं करना तो भी सन्तोषवाला पुरुष निर्भय है और महापुरुष ने अपने प्रियतमोंसे इसप्रकार कहाहै कि जैसा तुम्हारा निश्चयहै सो जव उमीविषे संतोष करो और दृढ़ होवो तब इस धानको मैं बहुत प्रियतम राखू सो यद्यपि जिनना भजन तुम सबही करतेहो तितना भजन और तप एक एन्ही करो तो भी जब तुम्हारे विषे संतोष की दृढ़ता देखू तब अधिकही प्रियतम राखू परं मैं डरताहूँ कि मेरे पीछे तुम्हारे ऊपर गाया वन पावेगी तब तुम परस्पर रुद्ध करोगे और जो देवता तुम्हारी सहायता करते हैं सोभी विरुद्ध करेगे काहेमे कि तुम्हारे विषे संतोषकी दृढ़ता नहीं भासती और यामी कहाहै कि जो कोई सन्तोष करना है

और पुण्यकी आशा रखना है सो निस्मन्देह पूर्ण पुण्यको प्राप्त होता है ताते तुम सतोप करो काहे से कि पदार्थ जो तुम्हारे निकट हैं सो नागों को पावेंगे अर्थ यह कि मायाकी सामग्री नाश होवैगी और जो कुछ महाराज के निकट है सो स्थिर है और सत्य पदार्थ है और योंभी कहा है कि संतोप परलोक का स्रज्जाना है और योंभी कहते थे कि सतोप का जो पुरुष स्वरूप होता तो उदार होता और योंभी कहते थे कि सतोपवाले पुरुष महाराजके प्रियतम हैं और एक महात्मा को आकाशवाणी हुई थी कि मेरे स्वभावकी नाईं तूभी अपना स्वभावपर सो मेरा स्वभाव एक यह है कि मैं संतोप करनेवाला हूँ और एक महापुरुष ने कहा है कि जवन्तु अपनी वासनासे संतोप न करेगा तबन्तु जिन पदको तू चाहता है तिस पदको प्राप्त न होवैगा और एक जमातको देखकर महापुरुषने उनमें पूछा कि तुम वैष्णवहो तब उन्होंने कहा कि हम वैष्णवहो बहुरि महापुरुषने कहा कि तुम्हारी वैष्णवता का चिह्न क्या है तब उन्होंने कहा कि हम सब विषे वन्यवाद करते हैं और हम सब विषे संतोप करते हैं और श्रीरामराज्य विषे प्रसन्न रहते हैं तब महापुरुषने उनसे कहा कि तुम निस्मन्देह वैष्णवहो और योंभी कहा है कि जैसे शरीरके अंगोंविषे शिर उत्तम है तैसेही सर्व शुभगुणोंविषे संतोप उत्तम है ताते जिनपुरुष विषे संतोप नहीं जिनका धर्मभी हृदय नहीं ॥ अथ प्रकृत करना रूप मतोपना ॥ ऐसे जान तू कि मनोप करना मनुष्यका स्वभाव है काहेसे कि पशुओं विषे मनोप ही मागर्थ नहीं सो पशु अभिनीच हैं और देवों को मनोप की अपेक्षा ही नहीं क्योंकि वह आगेही से शुद्ध हैं और भोगों से मुक्त हैं और पशु भोगों के वन्य विषे पराधीन हैं कि उनके हृदयमें और कुछ नहीं भासना ताते पशु भोगरूप है और देवता गगन के प्रेम विषे लीन है और कोई पदार्थ उनको विज्ञेय देनेहारा नहीं जिनके दूर करने विषे संतोप करने मतोप करना मनुष्यकी का अधिकार है काहेसे कि आदि उत्पत्ति विषे मनुष्यकी पशुकी नाईं होता है सो इस कारण करके होता है कि प्रथम ज्ञान पान और तेजना और मन्द्बुद्धि का वनावना मनुष्यपर प्रबल होता है बहुरि किन्तु अज्ञानविज्ञानि देवता का प्रकाश आर प्रकृत होता है सो उमरके मनाईं युगों के फल को पहिचानना है सो प्रथम तब यह है कि महाराज दो देवता मनुष्यकी रक्षा के निमित्त भेजेते हैं सो एक देवता मनुष्यकी रक्षा देता है अर्थ यह कि उम देवता का प्रकृत

जब मनुष्य विषे प्रकट होता है तब उसी प्रकाश करके कर्म के फल को पहिचानता है और कानूनिकी विशेषता विधिसयुक्त देमता है चतुरि उसी प्रकाश करके आपको और महाराजकी पहिचानता है और योभी जानता है कि प्रथम भोग सय अन्तमें नाशको पावेंगे यद्यपि इमकाल विषे रमणीक भामने हैं तोभी मिनान रूप है और सुख इनका वेगही बिरस होजाता है और परिणाम इतका परमदुःख है सो बिरकाल पर्यन्त रहता है पर यह ब्रूम पशुओं को प्राप्त नहीं होती इस ब्रूम का अधिकारी केवल मनुष्य ही है सो केवल इमब्रूम करकेभी कार्म्य सिद्धि नहीं होती काहेसे कि यद्यपि ऐसेभी जानै कि यह पदार्थ मेरी होनि करनेद्वारा है पर जेबलग इसके त्यागनेका धन न होवे तबलग इसजानने करके लाभ रुद्ध नहीं होता जैसे रोगी जानता है कि यह रोग मुझको दुःख देता है पर जेबलग उमरोगके दूर करने की समर्थता न होवे तबलग रोगी को सुख नहीं प्राप्त होता ताते श्री जानकीनाथजी की दयाकरके दूमरा देवता मनुष्य को बल देता है और सहायता करता है जैसे प्रथम देवताके प्रकाश करके इस पुरुषने जानाया कि यह पदार्थ मुझको दुःखदायक है तैसेही दूसरे देवताके बलकरके उमपदार्थ का त्याग करता है और जैसे मनुष्यको प्रथम भोग भोगनेकी इच्छायी तैसेही उन भोगोंको त्यागनेकी इच्छा जान फुर्ती है और ऐसे चाहता है कि भोगोंके दुःखसे मुक्त होकर सुखी होवे ताते भोग भोगने की जो इच्छायी सो आसुरीसेनाथी और भोगोंकी निवृत्ति करनेद्वारा जो इच्छा है सो देवताकी सेना है सो भोगोंके भोगनेकी इच्छाका नाम वासनासना है और भोगोंके दूर करनेकी इच्छाका नाम धर्मसंज्ञा है सो इनदोनों सेनाविषे सदा विरोध और लड़ाई रहती है काहेसे कि अमुगेंकी सेना कहती है कि इन भोगोंको भोगिये और देवताकी सेना कहती है कि इनका त्याग करिये सो यह मनुष्य इनदोनों सेनाकी खेवविषे रहता है पर जब यह पुरुष धर्मकी दृढ़ताविषे अपने चरण ठहरावे और भोगवासना से लड़ाई विना भावधान होवे सो इसी भावधानताका नाम मनोप्रदे और जब भोगोंको बरी कारकरे और उनपर समर्थता पावे तब इमी का नाम परम जीत है और जेबलग इतकी लड़ाई विषे रहता है तिसीकानाग मनकायुद्ध कहने हैं ताते मन्तोप इसी का नाम है कि धर्मकी दृढ़ताविषे अपने चरण ठहरावे और भोगोंकी वासनाके सम्पुन होकर स्थिर होवे सो जहा यह दोनों मेना नहीं होनी तदा सन्तोष भी नहीं

होता इमीकारण करके कहते हैं कि देवतों को भी सतोपका अधिकार नहीं और पशुओं और बालकोंविषे सतोपकी ममर्थना नहीं ताते जानतू वह दोनों देवता गनुष्य की रक्षार्थ निमित्त महाराजने किये हैं मो निनफा नाम चित्र और गुप्त है ताते जिसको श्रीरामजीकी दयाकरके ब्रह्मका अर्थ बुनताहै और युक्ति करके तात्पर्य को समझताहै वह ऐमे जानताहै कि कारण बिना कोई पदार्थ उत्पन्न नहीं होता ताते ब्रह्मवान् देखताहै कि प्रथम बालकको ब्रह्म और पहिचान कुछ नहीं होती जो कर्म के फलको विचारै और मन्तोप की श्रद्धा और वचनगी नहीं होता बहुरि किशोर अवस्था विषे ब्रह्म और बलके कारण यह दोनों देवताहै मो ब्रह्म और उत्पन्न करते हैं पर ब्रह्म सबका मूलहै काहेमे कि प्रथम यही होतो है बहुरि श्रद्धा और वचन और करतूति उसके फूलफलहै ताते वह देवता जो इस गनुष्य को मार्ग लिखताहै सो विशेष और उत्तम है इसी कारण करके उमका स्थान दाहिने ओर फडा है कि तेरी रक्षाकरता है सो रक्षा इम प्रकार करताहै कि तुम्हको शुभमार्ग दिखता है सो जब तू उसके वचन की ओर श्रवण राखे तब उससे ब्रह्म और पहिचान तुम्हको प्राप्त होती है और जब तू उमकी ओर सावधान होवे तब यही सावधानता उस देवता पर तैय उपकार होता है काहे से कि उसके वचनों को तैने व्यर्थ न किया और इमी सावधानता को वह देवता तेरी भलाई लिखताहै और जब तू उम देवता के वचन से विमुख होवे जो उमकी ओर सावधान न होवे तब तू भी पशुओं के समान होवेगा क्योंकि ब्रह्म और करतूति के फलकी पहिचानसे निष्कल रहेगा सो यह तेरी विमुक्तताको वह देवता बुझाई लिखताहै तैमेही वह दूसरा देवता जो तुम्हको भोगों के दूर करनेका वचन देताहै मो जब तू उसके अनुमार परुषार्थ कर तब इसी तेरे परुषार्थको वह देवता भलाई लिखताहै और जब उसमे विपर्यय करतूति को तब यही बुझाई होती है सो यह दोनों अवस्था तेरे ऊपर वह देवने लिखने हैं मो यह लिखना तेरे हृदय विषे ही है पर तेरे जनावने से गुहाहै काहेमे कि वह देवने और उनका लिखना इम जगत्की नाई प्राधिगोत्रिक नहीं सो इनको नेत्रों करके देखनहोमत्रा पर जब मृत्युका समय आताहै तब यह म्यून नेत्र मूट जाते हैं और पर ओंके देखने वाले नेत्र पुनजाते हैं तब उनका निम्ना पूर्यही पाया जाताहै और परन्तक विषे अपने वपोंको भिन्नार भयुर देवताहै अर्थ यह कि विद्वान् पर्यन्त न

रक स्वर्गविषे इ त्रगुण भोगनाहै सो हमने, और ग्रन्थोंविषे निसका निर्णय बहुत  
 कहा है और यहा मेरे बहने का प्रयोजन यहहै कि सन्तोष वडा होनाहै जहां  
 परस्पर दोनों सेनाओं का विरोध होताहै सो एक देवतोंकी सेनाहै और एक अ-  
 सुगोंकी सेनाहै सो यह दोनोंविगेरी सेना इम मनुष्यके हृदयविषे उकट्टी रहती  
 हैं ताने प्रथम चरण धर्म विषे रचना यही है कि इनकी लड़ाई विषे सावधान  
 होवे फाहेसे कि आदिही बालक अवस्थाविषे आसुरीमेनाने हृदयरूपी गदको  
 बशीकार करलियाहै और देवनोंकी सेना पीछे किशोरअवस्था विषे प्रकटहोती  
 है सो तबलग यह पुरुष दैत्यों की सेनाको बशीकार न करे तबलग उत्तम भौ-  
 गोंको प्राप्त नहीं होवा और जबलग पुरुषार्थ करके युद्ध न करे और इसी युद्ध  
 विषे सतोष न करे तबलग भोगोंकी सेना बशीकार नहीं होती और हृदयरूपी  
 गद दुष्टोंसे नहीं छूटना ताने जो पुरुष इम लड़ाई विषे सावधान नहींहुआ वह  
 पुरुष ऐमेहैं जैसे अचेत राजा होवे जो अपना देशःगत्रुओं को जर्पिदेवे और  
 लुटवावे पर जब यह भोग इसपुरुष के बशीकारहोवें और विचारकी आज्ञाविषे  
 नहीं तब जानिये कि इसकी सम्पूर्ण जीतहुई है सो ऐना कोई विरलाही होताहै  
 और बहुत पुरुषों की अवस्था ऐसी होतीहै कि कमी उनकी जीत होतीहै और  
 कमी हारहोती है अर्थ यह कि कमी भोग प्रबल होते हैं कभी धर्मकी प्रबलता  
 होती है पर सतोषकी दृढ़ता बिना इमगदकी रुदाचिउ जीत नहीं होती ॥ अप  
 प्रकट करना इसका कि सन्तोष को जो अपारधर्म कहा है सो किम प्रकारहै और  
 जतकरना आधाधर्म किस प्रकारहै ॥ ताने जान लू कि धर्म एकपदार्थका नाम  
 नहीं सो धर्मके लक्षण और शाला बहुत है जैसे महापुरुषनेगी कहाहै कि धर्म  
 के अनेक द्वारहैं पर सर्वोंसे विशेष यहहै कि श्रीरागजीको एक पहिं जानना और  
 एकनाही विषे चित्तको स्थिरकरना और नीउद्वारा सर्गका यहहै कि पापोंका  
 त्याग करना सो येयपि धर्मके लक्षण बहुतहैं पर मूल सबके यह तीन पदार्थहैं  
 एकवृत्त १ दृमग चित्तकी अवस्था २ तीसरा कर्तृति ३ सो इनतीनों बिना कोई  
 लक्षण धर्मका सिद्ध नहीं होता जैसे त्यागका सूत्र यहहै कि पापोंको विषय  
 जानना सो यह बुझहै और अवस्था यहहै कि आगे को पाप कियाहोवे तिस  
 का परवाचाप करना सो यह शान्ताहै और फल यहहै कि पापोंका त्यागकरना  
 और भजन विषे सावधान होना सो यह त्यागरी कर्तृति है ताने बुझ और ज

प्रस्था और करतूति यहोतीनों धर्मके रूपहो, पर इन तीनों विषे ब्रह्म विनेपहै  
 कोहैसे कि यह ब्रह्मसवकी मूलहै सो चित्तकी अवस्था भी ब्रह्मही ब्रह्मके रहती  
 है और अवस्थाके अनुसार करतूति प्रगट होतीहै ताने ब्रह्मत्वकी नाईहै और  
 चित्तकी अवस्था उसकी शाखाहै और अवस्थाके अनुमारजी करतूति होतीहै  
 सो सब फलहै ताते निस्संदेह धर्म दो पदार्थोंका नागद्वया सो एक ब्रह्म दूसरा  
 करतूति सो सन्तोष विना सिद्ध नहीं होती इस प्रकार सन्तोष की आधा धर्म  
 कहाहै और सन्तोषके भी दो भेदहै सो जब विषयीके त्यागविषे सन्तोष कहिये तब  
 इसका नाम सन्तोषहै और जब क्रोधको सन्तोषकर सहिये तब इसे क्रानाम धैर्यहै  
 और ब्रह्मकरने विषे भोगोंका भयमा होताहै ताते अतः फरना आधा सन्तोष कहाहै  
 और जब संपूर्ण दृष्टिकरतूति की ओर करिये कि करतूति के कारणे विषे फटि  
 नाई अधिकहै और सन्तोष विना करतूति सिद्ध नहीं होती तब संपूर्ण धर्म स  
 तोपही से सिद्ध होताहै पर जबलगा यह पुरुष वासना के विरुद्ध विषे तबलगे  
 मोगों के त्याग आदि इ तके सहने विषे सन्तोपही चाहिये है और योंही कहाहै  
 कि धर्मवान् पुरुषकी करतूति इयमकार होतीहै कि हु तविषे सन्तोष करना और  
 सुखे विषे धन्यवाद करना सो इसप्रकारकर देखिये तो आधाधर्म धन्यवाद हुआ  
 और आधाधर्म सन्तोष हुआ ऐमेही महापुरुषने भी कहाहै कि धर्म का दो  
 भागहै सो एक भाग सन्तोषहै और एक धन्यवाद है और जो कठिनाईकी और  
 देखिये कि सन्तोष करना बहुत कठिनहै तब संपूर्ण धर्म सन्तोपही से सिद्धहोता  
 है। अर्थ प्रगट करना इसका कि सर्व अवस्था और सर्वकाल विषे सन्तोपही  
 चाहिये। ताते जानतू कि यह गनुष्य दो अवस्थामे रहित कदाचित् नहींहोती  
 सो फेरि इष्टे और दूसरी धनिष्टे है सो इन दोनोंविषे सन्तोष चाहिये है पर इष्ट  
 विषे सन्तोष करना यहहै कि संपदा भोग मान जासोयता सी पुत्र और और  
 इसकी नाई जो पदार्थ है सो इत विषे सन्तोष करना बहुत कठिनहै काहेतोकि  
 जब यहपुरुष धनरमुनहोवे और भोगोंकी सत्यजाने और इनविषे प्रमत्तहोकर  
 तब तब इसजीवकी विगुलना और जनेतना प्राप्त होती है उभीकारण पर मुन्त  
 जनोंने कहाहै कि निजैतना विनेपहै काहेने कि निजैतना विने मनोर कर्महो  
 है और पुन ओर संपदा विने सन्तोष करना कठिनहै ताने केसा पृथक् पृथक्  
 जो सर्व संपदा विषे सन्तोष की जय महापुरुष ने उत्तर दियाहै

जब हमारे पास सम्पदा कुछ न थी तब भोगोंसे सन्तोषकिया जाताया और अब बहुत मायाकरके सन्तोष नहीं किया जाना मो ऐसेही महाराजनेभी कहाहै कि धन और मान और सन्तान तुम्हारे धर्मको विघ्न करनेहारे हैं और इनहीसे तुमको पटलहालाहै सो मेरे कहनेका तात्पर्य यहीहै कि जो सध भोगहोवें तो उन विषे सन्तोषकरता कठिनहै काहेसे कि भोगोंकी प्राप्ति विषे सन्तोष तब होताहै जब हृदयकी निर्लेपताका बल अधिकहोवे और सुखों विषे सन्तोष फरना पड़े कि मायाके पदार्थों विषे हृदय बधमान न होवे और इनको देखकर प्रसन्न न होवे और योजाने कि ये पदार्थ कुछ दिन भोगेपासहै फिर दूर होजावेंगे ताते सुखोंको सुख न जानै काहेसे कि ये भोग श्रीरामजी से विमुख करनेहारेहैं ताते जब इस प्रकारजानै तब जो जो सुख इसको महाराजने दियेहैं सो तिनके धन्यवाद विषे दृढ़होवे तब महाराजकी और सम्मुख होताहै सो इसका धन्यवाद करना पड़ेहै कि धन और तन और सब सुख श्रीरामहेतु, लगावे सो यह धन्यवादभी सन्तोष के साथ सिद्धहोताहै और दूसरी अवस्था जो अनिष्ट कही थी सो, बढ़तीन प्रकारकी होतीहै सो एक यह कि यह पुरुष अपने पुरुषार्थ करमक्राहै और अपने आधीन है जैसे भजन करना और पापोंका त्याग करना १ और दूसरी अवस्था इसके पुरुषार्थ करके नहीं होती, भगवत् की आज्ञाकरके होतीहै जैसे रोग और विपत्ति सो यह इसके घटकरके नहीं होती २ और तीसरी अवस्था यह है कि प्रथम तो उस विषे इसको बलनहीं चलता पर पीछे इसके आधीन होताहै जैसे कोई पुरुष इसको दुवावे सो उसका दुवावना इसके आधीन नहीं पर उस के साथ बदला न लेना इसके आधीन होताहै ३ सो प्रथम अवस्था जो इसके आधीन कही थी कि भजन करना और पापोंका त्यागना सो इस विषे निश्चय है, ह सन्तोष चाहिये, काहे से कि भजन तप, व्रत, दान, यह सब सन्तोष बिना सिद्ध नहीं होते और इनके आदि मध्य अन्त विषे सन्तोषही चाहिये, सो भजन के आदि में योजाहिये कि भजन विधि मयूक्त और गलिनता से रहित करे और दृष्टिको समेटयाने और मनको सकल्यों से शुद्ध करे बहुरि भजनके अन्त सन्तोष इस प्रकार किया चाहिये कि किसी के आगे अपना गजन प्रकट न करे और अभिमानसे रहित रहे और यह तो निश्चयदेह प्रामिद्धहै कि सन्तोष बिना पापों का त्याग नहीं होता काहेसे कि जिस भोगकी जितनी वृष्णा बढ़ती है उतनी

पाप विषे सुगमही वर्त्तमान होनाहै और उसविषे सन्तोष करना कठिन होताहै जैसे जिद्दाकरके जो पाप होताहै सो उस विषे सन्तोष नहीं किया जाता काहे से कि जिद्दाका बोलना बहुत सुगमहै और यत्से रहितहै सो जब अधिक बोलनेका स्वभाव दृढ़ होजाताहै तब ऐसा कठिन होताहै कि जो यत्नकरके भी नहीं छूटता और बहुत बोलनाभी अविद्याकी सेनाका भट्टहै और बहुत बोलनेवाला पुरुष जानताहै कि मेरे वचन सुनकर लोग प्रसन्न होते हैं ताते बहुत बोलनेका त्याग नहीं करसकता और मौन करना उसको कठिन होताहै इसकारण करके बहुत बोलनेवाले पुरुषोंका उपाय मही है कि प्रथम जगत्के मिलापका त्याग करे और एकांत विषे रहे तब अधिक बोलने के पापमे मुक्तहोता है अन्यथा नहीं १ और दूसरी अवस्था यहहै कि वह प्रथम महाराजकी आज्ञा करके होती है और पीछे उस विषे इस पुरुषका भी बलहोताहै जैसे कोई पुरुष इसको शरीर अथवा वचन माय दयहदेवे तब उसका बदला करना इसीके बलकरके होगा ताते इस विषे भी सन्तोष चाहिये जिमकरके उसमे बदला न लेवे और जो बदलाकरेमी ती मर्यादसे अधिक न लेवे सो यह वार्त्ता इसके आधीनहै इसीपर एक सतने कहाहै कि जन्मलग हमने लोगोंके दुखावने विषे सन्तोष न किया तब लग हमको सम्पूर्णधर्म प्राप्त नहीं हुआ और महाराजनेभी महापुरुषमे कहाथा कि जो कोई तुमको दुखावे तब तुम उसका बदला न करो और मेरा भरोमाकरो बहुरि योंभी कहाहै कि जो कोई पुरुष तुमको दुखवत कहे तब तुम इस विषे सन्तोष करे और उसकी सगाति का त्याग करे और योंभी कहाहै कि मैं जानताहू कि दुर्जनोंके वचनोंकरके तेरा हृदय अप्रसन्न होवेगा पर तू मेरे भजन विषे प्रसन्न हो और उनकी ओर चिचही न दे सो इसीपर महापुरुषकी वार्त्ता है कि एकममय कुछ धन लोगोंको बांटकर देतेथे तब किसी बुद्धने कहा कि यह धनको भगवत् अर्थ और विचार साय नहीं बांटने सो जब यह वचन महापुरुष ने सुना तब उनका माया कुछ लाल होजाभया और बहुरि कहनेलगे कि अगले महापुरुष बदेधन्यथे काहेसे कि उनको हमनेभी अधिक लोग दुखावनेथे और वह सब सहलेवे थे और महाराजने कहाहै कि जब कोईपुरुष तुमको दुखावे तब तुम सहनशील होतो सो भलाहै और जो बदनामी करो तो मर्याद अनुसारकरके अधिक न करो और ईश्वर महापुरुषने अपने शिष्यगोमे कहाथा कि वद्यपि आगे किमी नोविद्यास्यं योंभी



कहते कि जो कोई किसीका हाथ काटे तब उमकेभी हाथ काटिये और जो किसी  
 के नेत्रों वा कानोंकी दुखावे तब उमकेभी नेत्रोंको और कानोंको दुखा दीजिये  
 सो इसवर्तनकोभी मैं भ्रष्टा नहीं कहता पर मैं तुमको इसप्रकार उपदेशा करता हूँ  
 कि बुराईके बदले बुराई न करो और जो तुमको दाहिने ओर मारे तो प्रावांजंग  
 भी उसकी ओर सखो और जो कोई तुम्हारी प्राण उतार लेवे तब तुम उसको  
 जामा भी देदो और जो कोई तुमको बेगार पकड़कर एककोय निजाकेसब तुम  
 आपही ठोकोय चले जाओ और महापुरुषने कहा है कि जोकोई तुमको क्रुद्ध  
 भाव करके न देखे तब तुम उसको भावमंयुक्त देखो और जो कोई तुम्हारे साथ  
 बुराई करे तब तुम उमके साथ भलाईही करो सो साथे पुरुषोंका सतोप यही है  
 और तीसरी अवस्था यह है कि उमके विषे गनुष्यका बल दुखानही चलता जैसे  
 किसीको पुत्रभी जावे अथवा धन नष्ट होअथवा कोई शरीरका अंग  
 काटाजिबे सो इसको आकाशीइ त कहते हैं सो इसविषेमी सतोप कजा बहुत  
 कीठिन है और जो इनविषे सतोप करे तब उसको उत्तम फली प्राप्त होता है मेसेही  
 एक मन्तने भी कहा है कि सन्तोप तीन प्रकारका है सो प्रथम यह कि सतजनो  
 की आज्ञानुसार भोजन विषे हृद होवे तब इस पुरुष को अधिक फल होता है  
 और दूसरो सतोप यह है कि जो पदार्थ सतजनोने नियम है सो मोतिन विषे न  
 वर्त और सतोप करके उनका त्याग करे तब पूर्व फलसेभी दिगुण फलको प्राप्त  
 होवे और तीसरा सतोप यह है कि जो महायज की इच्छा करके कोई दुःख  
 अथवा संकट आइ प्राप्त होवे तब निसको सतोप करके और जो दिगुण फलको प्राप्त  
 होता है फहिसे कि इ सेविषे सतोप करना साधेही गुरुओंका आदेश है इसीकारण  
 करके महापुरुष भी महागजके आगे प्रार्थना करते थे कि हे महाराज ! मुझको  
 ऐसी निष्कम्प दो कि जिस करके जगत्के दुःखोंको मैं प्रसन्न होऊ सही और  
 महापुरुषने योभी कहा है कि यह महागज का वचन है कि जिसगुरुषको मेरी  
 आज्ञाकरके कोई कष्ट होवे और वह पुरुष धैर्य करे और किसीके आगे अज्ञ  
 दुःखको प्रमित्त करके न कहें तब उमकेमें सदैव कोनही अनेगवादेनाह और  
 जो उमका शरीर मृत्मी होजिबे तोमी में उसके ऊपर दया करता हूँ सो दा  
 र्द सन्तने महागज के आगे प्रार्थना कीथी कि हे महाराज ! जिसको तु  
 मु स भजता है और वह पुरुष प्रसन्न होकर सदैव तब नू उसको वेग फल देता है

तब महाराजने कहा कि तसको मैं घनकासिरोपांवादेता हूँ जो किमी विघ्न करके उसका प्रभू खण्डित नहीं होता और महाराजने, यों भी कहा है कि जिसमनुष्य को मैं हूँ सभेजता हूँ और वह पुरुष उस विषे प्रसन्न होकर सन्तोष करती है जब मैं उसके अपकर्षों का लेखी नहीं करता और यों भी कहा है कि जिसके नेत्रकी ज्योति में हरेलेख और चंद्र पुरुष प्रमन्न रहे तब जो उसको अपना दर्शन प्राप्त करता हूँ और एक सन्तसे किमी जिज्ञासुने यह बचने लिंग लिया था कि अपने स्वामीकी आज्ञा विषे सतोष करना विशेष है सो जब उस जिज्ञासुको कोई संकट प्राप्त होता था तब उसी कायज को शत्रुकर सतोष विषे दृढ होता था और इसी पर एक और भी बार्ता है एक माई भार्गी विषे गिरपड़ी थी और उसके पात्रके अंगूठे का नख उतरगया और रुधिर जलने लगा तिसी समय वह माई प्रसन्न होकर मैंने लगी तब लोगोंने पूछा कि दुखके समय तू क्यों कर हँसी तब उस माईने कहा कि सतोषके फलकी प्रसन्नतासे मेरा इ लभी मुलादिया ताते मुझको सेद कुछ नहीं भांसा ऐसेही महापुरुष ने भी कहा है कि महाराज की बड़ाई जाननी यह है कि जो कुछ हूँ ल और फल इसको आय प्राप्त होवे तब उसपुरुषको चाहिये कि लोगोंके आगे प्रसिद्धी करे और प्रसन्न रहे और एक सन्तने यों भी कहा है कि दुःख करके रुदन करने अथवा मुलका रंग पीत होने विषे सतोष दूर नहीं होता काहे से कि दुःख विषे रुदन और मुलका फिरना अवश्यही होता है पर सतोष तबही दूर होता है जब ऊँचे पुकार करके रोवे अथवा मुलसे भगवत की निन्दा करे कि महाराजने मुझको ऐसा हूँ ली किया है सो इसीपर महापुरुष की भार्ता है कि जब महापुरुष का पुत्र मृत हुआ था तब उनके नेत्रों में कुछ आँसू भरआये तब भियतमोंने तनसे कहा कि रुदन करना सब किसी ने धर्जित किया है सो तूमा किम निमित्त रोवेहो तब महापुरुषने कहा कि यह रोना तूदा यह दया है सो दया करके मेरा हृदय कोमल हुआ है और दया करनेदार पर महाराज भी दया करते हैं और एक सन्तने यों भी कहा है कि जो किसीका कोई संकष्टी भरे तब शोक के वन न पहिँ और किमी प्रकार अपने शोक को ललावे नहीं तब सम्पूर्ण सन्तोष होता है और जब अपना मुख पीटे और शोकका पद रावाफो और ऊँचे पुकारके रोवे तब इस करके सन्तोष दूर होजाता है तब यों जानना चाहिये कि यह सखी जीव श्रीरामजुके हैं और श्रीरामदी के वरुम

किये हैं और सृष्टी श्रीरामदीकी आज्ञाकर होते हैं ताते शोककरना व्यर्थ है  
 इसी पर एतन्माईका मृत्तान्त है कि उसमाईका एकपुत्रमा सो मृत्युको प्राप्त हुआ  
 और पति उसमाई का कहीं गयार्था सो जब बरझाया तब पूँवनेलगा कि तेष  
 पुत्र जो रोगीया सो अब उसका क्या हाल है तब स्त्री ने कहा कि आज बहुत  
 विश्राममें है ऐसे कहकर पतिको भोजन करवाया और भ्रांप भी भोजन किया  
 बहुरि पतिसे कहनेलगी कि मेरी अमुकवस्तु प्रदोमी ने गाली थी पर जब में  
 मांगती हूँ तब आगेसो वह शोर करती है और देतीतहीं तब पतिने कहा कि वह  
 मद्दामूर्ख है जो भिरानीवस्तु मांगलेंवे और देनेकेसमय पुकारकरती है बहुरि स्त्री  
 ने कहा कि तुम्हारा पुत्रभी महाराजकी धाती थी सो अब अपनी वस्तु महाराज  
 ने संगास्तीनी हेताते शोककरना प्रमाण नहीं तब पतिने कहा कि इसी प्रकार  
 निस्मदेहा है जब हमारे पास मातवभी महाराजकी धाती थी और अब सो उसीमें  
 संभार गेलिया है बहुरि इनके सन्तोषकी वार्धा जेब महारूपुरुषते सुनी है उनदोनों  
 को बसाईदानी और कहा कि भगवत् की इच्छा तुमको भी दीलगी है और इही  
 करके महाराज ने तुमको भी मियत मरिया है और भैते प्यानबिये देसहे कि  
 उत्तम सुखबिये तुम्हारा निवासहुआ है ताते निस्संदेह यही मोसिद्ध हुआ कि सर्व  
 अर्थस्वा और सर्वकालबिये जिज्ञासुको सन्तोषही चाहिये काहेमे कि यद्यपि सर्व  
 त्यागकरके एकान्त बिये जायहे और सर्व योगीसे मुक्तहोवे परवशा भी संतोष  
 ब्राहिये इसकरके कि जब एकान्त ठौरबिये बैठताहे तबभी नानाप्रकार के संस्कार  
 फुरतेलगतें हैं तब उनसंस्कारों करके भजनबिये विशेषताहोती है और समय व्यर्थ  
 होवा है और आपुरुषी जो इस मनुष्य की पूंजी है सो जब यह पूंजी इसकी  
 व्यर्थगई तब इसकरके मनुष्यकी परमहानि होनी है ताते इसका उपाय यहहै कि  
 आपकी भजनबिये प्रसाध और सतोषबिये दृढ़होवे तबसंस्कारों से मुक्तहोये पर  
 जबलगे इमपुरुषका हृदय भजनबिये एकत्र न होवे तब नग जान संयत्नों में  
 नहीं छूटता सो इसी कारण से महारूपुरुषने कहाहै कि जो पुरुष गुवा ओ ज  
 रोमहोवे और शुभाशुभ क्रियासे ररितहोकर बैठहे तब वह भगवत् की ओर से  
 भिमुलहोना काहेमे कि यद्यपि इन्द्रियों कर निष्कर्ष हुआ है पर मनकरके संक  
 र्वासे रहिन नहीं होतताताते जानिये कि निष्कर्ष नहीं हुआहोकि मन  
 उमका संस्कारबिये प्राप्त रहना है और अधिथा उसक निकरहे और बुद्धिजम

की संकल्पों का घर होती है सी जो भजन की दृढ़ता करके सकलों को दूर न कर-  
 सके, तब चाहिये कि सेवा अथवा किसी शुभकिया विषे इन्द्रियों को लगावे और  
 ऐसे पुरुषको प्रकान्त विषे बैठना प्रमाण नहीं सो जिसके हृदय विषे भजन का बल  
 न होवे, तब चाहिये कि शरीर करके शुभकिया विषे स्थिर रहेवे तो भला है। अर्थ  
 प्रकट करना उपाय सन्तोष के प्राप्त होने का।। ताते जानत कि सन्तोष के दोरे  
 बहूत हैं और सबदारों विषे कठिनता करके ही सन्तोष होता है ताते सन्तोष के प्राप्त  
 होने के उपाय सी, अनेक हैं परमत्र उपायों का मूल ये दो हैं एक विद्या दूसरे कर-  
 त्त सो, बुरे स्वभावों का जो हिरकरता कहा है सो भव संतोष करके मिट्ट हेते हैं  
 पर, यहाँ भी मैं एक ह्यन्त करके प्रकट करना है ताते जानत कि संतोष का अर्थ  
 आगे प्रही कहा है कि भोगों की वासनासे विरुद्ध करना और शुभ वासना विषे  
 सावधान रहना और इन्द्रियों की प्रवृत्ति विषे सतोष करना सो इनको ह्यन्त  
 यह है जैसे किसी पुरुषके दो पहनवान होतें और यह पुरुषों में ही कि एक पह-  
 लवात प्रबल होवे और दूसरे को निर्वलकिया चाहे तब इसको उपाय यह है कि  
 जिसको निर्वल किया जाता है तिसकी सहायता नहीं करता और बलदायक  
 आहार भी उसको नहीं देता ताते वह निर्वल होजाता है तेसे ही जो पुरुषों का मके  
 बलको तोड़ न सके तब तिमका उपाय यह है कि प्रथम काग उपाय जाने हरे आहार  
 रोंका त्याग करे और दिनको व्रतगले और जब रात्रिको भोजन करे तब धार्मि-  
 स्तावे और आधा खला रहे और आहार भी खला करे बहुरि धूसरा उपाय यह है कि  
 सुन्दर रूप देखने करके भी काम उत्पन्न होत है ताते चाहिये कि एक तीर विषे  
 बैठे और जहा सुन्दर स्त्री और लड़का होवे तदान जावे और नेत्रोंकी सुन्दर रूप  
 देखतेसे रोकाले और तीमसा उपाय यह है कि मनके मन्त्रोंको विचार करे छह-  
 सुसे ओम यो जामे कि मन्त्र शरीर रुधिर गाम विष्णु सत्र और और मन्त्रोंको रा-  
 घ्रादे ताते, कागना सुख गद्यमलिन है सो ऐसे वचनों कर मनको लगकावे फादे  
 से कि यह मन फडोर पशुकी ताई है, तानोदमको फष्टेना प्रमाण है जमे फडोर  
 पशुको इस प्रकार घास और पानी देवे छे कि वह पशु मग्गी न जावे और अं-  
 धिरुवनी भी न होवे तब वह पशु दडकरके कागन होजावे नैमिही आहार और  
 तेज और संकल्पों के रोकने करके कामफल बन धीण हो जाते है बहुरि इनपुत्र  
 को चाहिये कि धर्मकी वासनाको दो प्रकृतका बन देवे तो पर धरहे कि र्वाग

के फलकालाम मनकी समझवि और जिन पुरुषोंने भोगोंका त्याग किया है उन  
 के वचनोंको पढ़ें सो जब इस प्रकारके भनीवि दृढ़ होती है तब यह पुरुष जान  
 ता है कि भोगोंकी मुख क्षणमात्र है और इनके त्यागनेका सुख अनिनाशी है जो  
 ऐसे ज्ञानपरके वर्मकी वासना प्रबल होजाती है बहुरि इसरागह है कि शने  
 शने करके भोगोंकी श्रुतिको विपरम्य करे सो इसका दृष्टान यह है कि जैसे कोई  
 पहलवान चाहें कि मेरा मल अधिक होवे तब प्रथम शरीरको आहारकरके पुष्ट  
 करता है बहुरि बलवान् कार्य करता है तब क्रमकरके बल उसका बढ़जाता है और  
 जो आपसे निर्बल होवें प्रथम उसके साथ वीरभियागी करता है तब इसपरके भी बल  
 अधिक होता है और मलवान् कार्य करने करके भी मल अधिक होता है तैसेही  
 संतोपके प्राप्त होनेका उपाय भी इसी प्रकार है कि जब शने शने करके भोगोंका  
 त्यागको विपरम्य करे तब पीछे सब वासनाओं के दूर करनेको समर्थ होजाता है  
 और संतोपकी विद्या जो कही थी सो मूलदायक आहारकी नाई है सो इसकरके  
 भी संतोप दृढ़ होता है ॥ अथ प्रकटाकरनी मेहिमा धन्यवादकी ॥ नाते ज्ञान वृ  
 कि धन्यवाद उच्च पदार्थ है और अतिमिथतग है तात्रे धन्यवादके सम्पूर्ण रूपको  
 प्राप्तहोना कठिन है इसीपर महा राजने भी कहा है कि मेरे मृष्टिविषे धन्यवादकरने  
 हारे दुर्लभ है और योंभी कहा है कि मुक्तिदायक लक्षण दो प्रकारके होते हैं सो  
 एक लक्षण भगवत् मार्गका साधन है जैसे त्याग और संतोप और बेराग्य और  
 सप्रह और अपने मासके साथ विरुद्ध करना सो यह सर्वही परमपदके साधन हैं  
 और परमपद इनमें प्रेहि पर इनलक्षणों करके प्राप्त होता है बहुरि हमारे लक्षण  
 ऐसे हैं कि वह लक्षण आपही सुस्वरूप है और इस पुरुषके सदैव काल संगी है  
 और वह किसी पदके साधन नहीं जैसे प्रेम और एकता और मोक्ष और धन्यवादभी  
 इनही विषे है सो यह पदार्थ परमपद रूप है तात्रे धन्यवादका धर्तान  
 पोधीके अन्त में रहता था पर इसकारण करके यहा कहा है कि संतोपके साथ  
 धन्यवादका सम्बन्ध है और धन्यवादकी बढ़ाई बहुत विगेप है और धन्यवाद  
 दही मजन है इसीपर महा राजने भी कहा है कि धन्यवाद का करना ही मजन है  
 और यों भी कहा है कि तुम मेरा मजन क्रोनध में तुम्हारा स्मरण करू बहुरि  
 योंभी कहा है कि मेरा धन्यवाद करो मनसुखना मत करो इसीपर महापुरुषों भी  
 कहा है कि जो पुरुष भोजन साकर धन्यवाद करे तब उसे फल की प्राप्ति होता है

जैसा फल सतोपके व्रत करनेहारे को होवे और योमी कहहि कि परलोक विषे महाराज कहेंगे कि धन्यवाद करनेहारे जीव कहा है और जिन्हों ने धन्यवाद किया हेवे वे उठ खड़े होयें तब धन्यवाद करनेहारे उठेंगे और उनके ऊपर महाराज अतिप्यार और दयाकरेंगे वहुनि महाराजकी महापुरुषकीभी आज्ञाहुई थी कि अपने प्रियतमों से कहो कि बहुत धन इकट्ठान करो तब यही चर्चनमुनकर एक प्रियतमने महापुरुषसे पूछाया कि फिर इकट्ठा क्या करें तब महापुरुषनेकहा कि जिह्वा श्रीमीनाराम जपनेहारी और हृदय धन्यवादकरनेहारा और मित्र सत्सगी जो भजनकीयुक्ति सिखावे और मायाके जजालोंसे काढ़कर भजनविषे दृढ़ करावे और भगवत्मार्ग विषे लगावे सो यह तीनों इकट्ठे करो वहुनि एक और सन्तनेभी कहा है कि धन्यवादकरके मोसा प्राप्त होताहै और एकसंतने कहाहै कि मैंने एकदिन महापुरुषकी धर्मपत्नी से पूछा कि कोई आश्रयवाचा महापुरुष की मुझको सुनायो तब उन्हीं ने कहा कि महापुरुष की वाचा सबही आश्रय रूपह पर एक दिन उन्हीं ने सध्याकालका भजनकिया और मारीरान्निगर खड़े रोतेरहे तब मैंने कहा कि तुम्हारे पाप तो भगवत्तने सबही क्षमाकिये हैं अब तुम किस निमित्त रोतेहो तब महापुरुषने कहा कि मैं महाराजका धन्यवाद फरकेठी रोताहूँ और महाराज ने मुझको इसप्रकार आज्ञा करी है कि सोते जागते बैठने उठने भजन विषेही दृढ़हो और जो कुछ धरती आकाश विषे मैंने रचना बनाई है तिसको देखकर आश्चर्यवान् मतहोवो वहुनि यह जो अवस्था तुमको दीनी है तिसका धन्यवादकरो और धन्यवादकी प्रेरणकरके रुदनकरो भयकरके नरोवो इसीपर एक वाचा है कि एक नगय में कोई एक महापुरुष हुये थे सो किमी पहाड़में जाय निकसे तब एक पत्थरको उन्हे ने गेतेदेखा तब उस पत्थर से पूछा कि तू क्यों रोताहै तब वह पत्थर महाराजकी आज्ञाकरके घोलताभया कि जबसे मैंने सुनाहै कि महाराजने यों कहाहै कि पत्थर और गनमुत्तोंकी मैं नरक विषे डालकर जलाऊगा तब मैंने रोनाहूँ वहुनि उन महापुरुष ने महाराज से प्रार्थनाकरी कि हे महाराज ! इस पत्थरको भयभरगे सो यह प्रार्थना महाराज ने मानकर उसको अग्निकिया वहुनि दृष्टगोचर वह महापुरुष तदां जाये तब फिरभी उसको रुदन परते देगा नर पादा किन्तु पत्थर जला रोता है नरक में तो अनप होयुका तब उस पत्थर ने कहा कि जागे तो मैं भय परते रोनाथा और

अथ धन्यवाद करके रोताहूँ ताते जानूँ कि गनुष्योंका हृदय पत्थरसे भी कठोर है पर जब उम पत्थर की नाई कभी भय फरके रोने और कभी प्रेम करके रुदन करें तब क्रोमल हृदय होताहै अन्यथा नहीं होता ॥ अथ प्रकटकरना रूप धन्यवादका ॥ ताते जानूँ कि धर्मकामूल तीनपदार्थ भागे कहेंथे एक ब्रूम वृसो अरुस्था तीसरा करतूति सो यह तीनों धर्म के मूलहैं पर प्रथम ब्रूम है और वृस से अवस्था उत्पन्न होती है और अवस्था से करतूति प्रकट होतीहै सो धन्यवाद की वृस यह है कि जितने सुख और पदार्थ श्रीराघवजी ने हमको दिये हैं सो उनकी दयाकरके जाने और अवस्था धन्यवाद की यह है कि महाराज के उपकारकी प्रसन्नता हमके हृदय भिरे हंथे और करतूति यह है कि वह पदार्थ उठी की ओर लगावे जिम करके महाराज प्रसन्नहैं सो धन्यवादकर्त्ताका सम्पूर्ण बुद्धि और जिद्धा और इन्द्रियों के साथ होताहै सो बनलग भतीप्रकार इस धन्यवाद को पहिँचाने नहीं तबजग सम्पूर्ण धन्यवाद नहीं कहसकत और जबजग सम्पूर्ण सुख महाराज की ओर मे न जाने तबजग सम्पूर्ण हम धन्यवाद की नहीं प्राप्तहोती जैसे राजा किसी को शिरोपावदेवे और वह पुरुष यों जाने कि प्रधानकी प्रसन्नतासे मुझको शिरोपाव भिनाहै तब ऐसे जाननेकरके पूर्ण धन्यवाद राजाका नहीं हुआ अर्थ यह कि उमकी प्रसन्नता राजाके शिरोपाव देतेपर न हुई पर जब हमप्रकार जाने कि मुझको राजा के आज्ञापत्र कएके शिरोपाव भिलाहै और पत्र कलग और ममीकरके लिखाहोताहै सो पत्र और कलम और स्याहीको वसीला जानने करके धन्यवाद पढिन नहींहोता काहेसे कि कागज और कलग और स्याही आपकरके सिद्ध नहीं होने केवल पराधीन होतेहैं जैसे स्वज्ञानची विभी को गनाकी आज्ञाकरके कुच्छदे तब स्वज्ञानची का उपकार नहीं होता स्वज्ञानची राजाकी आज्ञा के बनीकार होता है आप करके देतेहो समर्थ नहीं होता ताते कलग और स्वज्ञानची पराधीनता भिरे ममानहै तैसेही सर्वमुख जो श्रीज्ञानकीनाथ महाराज ने हम गनुष्य को दियेहैं और अन्न वादिक जो अनन्त पदार्थ जीवों के मुख और जीभनेके हेतु पृथ्वीपर प्रकट किये हैं सो जब उनकी उत्पत्ति र्पाकरके जाने और बर्ग भेजामे जाने और जहानोंका निर्धिन्न चलना पवनकरके जाने तब हम करके महाराज का केवल धन्यवाद नहीं होता पर जब यों जाने कि इन्द्र मेघ पवन सूर्य चन्द्रमा गणेश और श्री

इनकी नाई जो सर्व देवताहैं सो सब श्रीरामहीकी शक्तिकरके चलते हैं और यह सब उसके हाथकी कलमेंही आप करके समर्थ कुछ नहीं तब ऐसे जानने करके धन्यवाद पूराहोता है ताते जब कोई मनुष्य तुम्हको कुछदेवे और तू उसी मनुष्यसे जाने तब यह मूर्खता होती है और इस करके धन्यवाद खरिडत होताहै पर जब यों जाने कि इस मनुष्य ने यह पदार्थ तुम्हको तब दियाहै जब महाराजने उसकी ओर अपना प्यादा भेजाहै और तिस प्यादे ने घरम दिजारा है सो वह प्यादा श्रद्धाहै जो उस मनुष्यके अन्तर विषे प्रेरी है और उस पुरुषने जिस करके यों जानाहै कि लोक परलो कविषे गेरागला तब होवेगा जबमें इस पुरुषको अपना पदार्थ देऊगा ताते उसने अपने प्रयोजन करके दियाहै और लोक न था परलोक विषे अपना गला चाहाहै ताते उसने आपही को दियाहै और किसी को नहीं दिया सो जब इसप्रकार देविये तब महाराजही ने दियाहै और महाराजने किसी प्रयोजने करके नहीं दिया केवल अपनी दया करके दियाहै सो जयतुमने ऐसा जाना कि सबही मनुष्य महाराजके स्वत्वानत्री हैं और महाराजही की आज्ञा करके देते हैं तब ऐसे जानने करके धन्यवाद पूर्ण होताहै और महाराज की ओर तू सम्मुख होताहै इसीपर महाराजमे मूसा महापुरुष ने पूजाथा कि हे महाराज ! तुमने आदिमें गनु महाराज को उत्पन्न कियाथा और नानाप्रकारके सुख उनको दिये तब उन्होंने आपका धन्यवाद किसप्रकार किया तब महाराजने कहा कि उसने सबसुखों को भेरी ओरमे जाना ओर ओर किमी की ओर अपना हृदय न दिया सो इसकरके उमका धन्यवाद पूर्ण हुआ ताते जान तू कि धर्मकेदारे बहुत कहे हैं सो प्रथम यहहै कि श्रीरामको निर्लप और अकर्त्ता जानना और सर्व स्वभावोंसे रहित और सरूपसे परे जानना १ और दूसरा दारा यहहै कि महाराजको पूरा जानना और जेना जानना कि श्रीराम जीकी नाई और कोई नहीं २ और तीसरा दारा यहहै कि सर्व पदार्थोंके उत्पन्न करनेदारे श्रीरामहैं और प्रतिगन्तु भी वहीहैं ताते सर्वप्रकार महाराजना धन्यवादहै सो ऐसे जानना विशेष है ३ इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि महाराज की निर्लप और अकर्त्ता जानने करके दशभाग भनाई होती है और जब यों जाने कि महाराज गरुहें और उमकी नाई और कोई नहीं तब बीसभाग भनाई होती है और महापुरुषको सब पदार्थों का कर्त्ता जानकर धन्यवाद करने विषे



तीसरा भाग भलाई होती है तो यह जो तीन वचन है उनके फल पढ़ने से फल प्राप्त नहीं होता पर जब इनका अर्थ चित्तविवेक दृढ़ होवे तब निस्सन्देह फल प्राप्त होता है सो धन्यवाद की विद्या यही है और इस जानने परके जो प्रसन्नता उत्पन्न होती है सो धन्यवाद की व्यवस्था भी यही है जैसे कोई पुरुष किसी मनुष्य से कोई पदार्थ अथवा सहायता पावे तब उसके ऊपर प्रसन्न होता है सो प्रसन्नता तीन प्रकारकी है जैसे कोई गजा किसी दास को घोड़ा देवे और वह दास इस करके प्रसन्न होवे कि मुझको भला पदार्थ प्राप्त हुआ है काहेसे कि मुझको घोड़ा अपरपही चाहिये था और मैं घोड़े बिना दुःखी था सो अब घोड़ा पाकर मुसी होऊगा तब यह प्रसन्नता राजाके उपकारकी नहीं होती काहेसे कि जब उम दास को चतुर्विध देवयोग करके प्राप्त होजाता तबभी ऐसाही प्रसन्न होता है वद्विदिह सरी प्रसन्नता यह है कि राजा जिसको घोड़ा देवे वह पुरुष इस करके प्रसन्न होवे कि मेरे ऊपर राजा दयालु हुआ है तबने मुझको अपनी दया करके और भी अनेक पदार्थ देवेगा सो यह प्रसन्नता पदार्थ देनेवालेके ऊपर होती है उस पदार्थके प्रयोजनकी प्रसन्नता नहीं तबने जब उस पुरुषको चतुर्विध घोड़ा प्राप्त होता तब ऐसा प्रसन्न ना होता काहेसे कि राजासे एक घोड़ा पाकर नाना प्रकारका आनन्द प्राप्त होता है और प्रसन्न होता है तो यहभी धन्यवाद है पर सकामी है तबि सम्पूर्ण धन्यवाद नहीं है और तीसरी प्रसन्नता यह है कि जिस दासको राजा घोड़ा देवे वह इस करके प्रसन्न होवे कि मैं इस घोड़ेपर सवार होकर राजाको प्राप्त होऊंगा और उसके साथ रहूंगा और दृष्ट करूंगा सो यह प्रसन्नता सम्पूर्ण धन्यवादकरके होती है ३ तैमिही श्रीजानकीश महागजने जो इस मनुष्यको सुख दिये है सो उन सुखकरके आपको सुखी मानकर प्रसन्न होवे तब गदाराज का धन्यवाद नहीं होता और जब इस करके प्रसन्न होवे कि जिन महागजने दयाकरके इसने सुख मुझको दिये है तो और भी सुख देवेगा और सुखकी प्राप्ति को महा-राजकी दया जाने और और सुखोंकी आशाको तब यहभी सकामी धन्यवाद होता है वद्विदिह जो पुरुष इस करके प्रसन्न होवे कि यह सर्वसुख महागजरी दास है और मेरे धर्म का वसीला है काहेसे कि सुखको पाकर मैं विद्या और भक्त विवेक दृढ़ होऊंगा और सर्व परमियोंको गदाराजके जय लगाऊंगा और इस करके महागजने दर्शनको प्राप्त होऊंगा तो इस करके प्रसन्न होना सम्पूर्ण धन्यवाद है

और सम्पूर्ण धन्यवादका लक्षण यह है कि जिस पदार्थ को देखकर इसको मोह उत्पन्न न होवे तिम पदार्थ को विपत्ति जाने और जब वह पदार्थ दूर होवे तब सुख और मलाई जाते और उसके दूर होने विषे धन्यवाद करे और जो पदार्थ भगवत् के मार्ग विषे सहायता न करे तिमको देखकर शोकवान् होवे प्रसन्न न होवे इसीपर शिवली मतने कहा है कि महाराजके उपकारका धन्यवाद यह है कि सुखदानी महाराजको देखे सुखकी और दृष्टि न रखे और जिसके नेत्र सुन्दररूप देखते और जिह्वा स्वादोंको और इन्द्रिया अपने २ भोगोंको चाहनीहोवें सो ऐसे विप्रयी पुरुषको विचार नहीं होता और विचार विना सतोप मिद्ध नहींहोता और सन्तोप विना धन्यवाद नहीं होसकता बहुरि धन्यवाद का करतूत इसप्रकार है कि वह मन और जिह्वा और शरीर के साथ सम्बन्ध रखनाहै सो मनकरके धन्यवाद का करतूतासह होताहै कि सर्व सृष्टिका भला चाहै और किसीके धन और मान को देखकर ईर्ष्या न करे और जिह्वाका करतूत यों होताहै कि सर्वअवस्था और सर्वसमये विषे धन्यवाद का उच्चारणकरे और सुखदेनेहारे महाराज पर विचकी प्रसन्नता मकटकरे इसीपर एकवार्त्ता है कि किसी पुरुष से महापुरुष न पूछे कि तुम्हारा क्या हालहै तब उसने कहा कि कुशलहै बहुरि महापुरुषने कहा कि तेरा क्या हालहै फिर भी उसने कहा कि बहुत सुख है और महाराज का धन्यवाद है तब महापुरुष ने कहा कि मेरा फिर फिर पूछने का प्रयोजन यही है कि महाराज का धन्यवाद मकटहोवे ताते मनुष्यों को ऐसे चाहिये कि जब कोई इससे पूछे कि तेरा क्या हालहै तब धन्यवादही का उत्तर देवे तो दोनों पुरुष उत्तम फलको प्राप्त होते हैं और जब कोई किसीमे पूछ पूछे और कहनेहारा अपना दुःख और ग्लानि विणतकरे तब दोनों पापीहोते है ताते यद्यपि यह पुरुष दुःखी भी होवे तो भी महाराज का धन्यवादही वर्णन करे काहेमे कि यह सबही लोग पराधीन हैं और इनकेदाय कुत्र नहीं सो तिनके आगे महाराज की निंदा करनी है ते दगाण होवे ताते सर्वप्रकार मकट और दुःखमे भी धन्यवाद करना निषेध है काहेमे कि यद्यपि यह जीव नहीं जासकता पर महाराज की दृष्टिबिषे उगरी दुःखमे इपरी मलाई होवे तो आन्धर्म नहीं ताते धन्यवाद करना भन्दाहै और जो धन्यवाद न करतमे सो सन्तोपकरे बहुरि धन्यवाद ही करतूति गरीर रखे इसप्रकार होनी है कि सर्व इन्द्रियां निग निमित्त इत्रको महाराजने दीनी है तिनका उमी अर्थ

विषे लगावे तब स्वामी की प्रसन्नता को प्राप्त होता है सो यद्यपि इसकी मलाई  
 चुगई भे महाराज निर्लेप हैं पर जीवकी मलाई को देखकर महाराज भी प्रसन्न  
 होते हैं जैसे गजा अपने दासपर दयालु हो और वह दास राजा से दूर देशमें रह-  
 ताहोवे सो राजा उसके पास घोडा और स्तंभ भेजे जिसकरके वह दाम इसारे पास  
 आवे तब में उसकी बड़ी पट्टीकरु सो राजा को उस दाम का दूर और निकट  
 होना समान है पर केवल उसही का सुख पाइता है और राजाकी अपना प्रयो-  
 जन कुछ नहीं पर जब वह दास उस घोड़े पर सवारी करके राजाकी ओर आवे  
 तब जानिये कि उसने राजाका सम्पूर्ण धन्यवाद किया है और जब घोड़ेपर सवारी  
 होकर राजाकी ओर से पीठकरके चले तब निस्तन्देह राजासे दूर होता है और  
 उसी घोड़े करके दूसरी दिशाको जावे तब राजा से विमुख होता है बहुरि जब यो  
 करे कि घोड़े पर चढ़े नहीं और व्यर्थही छोड़देवे तो भी मनमुख होता है पर  
 यद्यपि उस दूसरी दिशा जानेहो करे की नाई नहीं तो भी राजाको प्राप्त नहीं होता  
 तेसेही इस मनुष्य को इन्द्रिय और नामाकार के सुख जो महाराज ने दिये हैं  
 सो जब यह पुरुष उनको धर्म के मार्ग विषे लगावे तब इसकरके भगवत्के नि-  
 वृत्त पहुँचता है और सम्पूर्ण धन्यवाद को प्राप्त होता है और जब इन्द्रियों को पाप  
 कर्मों विषे लगावे तब महाराजसे दूर होता है और मनमुखता को प्राप्त होता है  
 और जब इन्द्रियों को पाप और धर्मविषे न लगावे और शरीरके सुखोंविषे आ-  
 सक्त होवे तो भी मनमुख होता है तावे सम्पूर्ण सुखों का धन्यवाद तब होता है जब  
 प्रथम महाराजकी आज्ञाको पहिचाने और उमी आज्ञा विषे इन्द्रियों को लगावे  
 सो ऐसी अवस्था महाकठिन है और सूक्ष्म है पाहेमे कि सब कोई इनको पहिचा-  
 न भी नहींसक्ता कि महाराज इस करके प्रसन्न होता है और इन्द्रियाँ और सर्व  
 पदार्थ इसको किम निमित्त दिये हैं तावे प्रथमही यो जानना चाहिये कि सर्व  
 सृष्टि और सत्त्व पदार्थ महाराज ने कार्य विना नहीं उत्पन्न किये सो जब इन  
 सबके प्रयोजन को समझे तब धन्यवाद का अधिकारी होता है ॥ अथ प्रकृत क-  
 रना रूप मनमुखता का ॥ तावे जान तू कि माणुष्यता यह है कि पदार्थ के प्रयो-  
 जन को न समझना और निम कार्म के निमित्त यह पदार्थ उत्पन्न दिये हैं तब  
 से विषयविषयमें लगाना और जिस प्रकार महाराजकी आज्ञा हुई है सो जब उमी  
 आज्ञा विषे हटवावे तब धन्यवाद होता है और अन्यथा कार्म विषे लगानो

करके मनमुखहोताहै और भगवत्की आज्ञाका समझनाभी सम्पूर्ण विद्या बिना नहीं होता सो विद्या यहै कि भगवत्ने जो पदार्थ दियेहैं सो भगवत्के भजन विषे लगावने और भजन विषे दृढ तव होताहै जब बुद्धिके नेत्र सुजतेहैं तब तै यथार्थ के मार्ग विषे चलताहै और अनुभव करके सर्व पदार्थों के तात्पर्य को समझता है तब धन्यवाद का अधिकारी होताहै और जिस जिम कार्यके निमित्त भगवत्ने पदार्थ उत्पन्न किये हैं सो इनका समझना भी कठिन है यद्यपि अपनी बुद्धिके अनुसार सब कोई कष्टक समझताहै पर सब भेदोंको समझना कठिनहै जैसे सब कोई जानता है कि वर्षा खेती के निमित्त होतीहै और खेती आहारके निमित्तहै और सूर्य करके रात्रि और दिन मचट होताहै सो रात्रि विश्रामके निमित्त बनाईहै और दिन व्यवहार के निमित्त बनायाहै ऐसेही इसकी ज्ञाई जो बृहत् पदार्थ और भी प्रकटहैं सो तिनका ज्ञान सर्व मनुष्यों को प्रसिद्धि है पर सूर्य विषे रात्रि दिवस विना और भी केंद्रकारणहैं कि उनका ज्ञान किसी को नहीं और आकाश विषे जो तांगमण्डलहैं सो तिनकी वान भी कोई नहीं जानना और योंभी नहीं जानता कि उनकी उत्पत्तिकामेद क्या है जैसे सब कोई जानता है कि हाथ ग्रहण करने को उत्पन्न कियेहैं और नेत्र देखनेके निमित्त कियेहैं पर यों नहीं जानसक्ता कि नेत्रोंके साथ पटे तिम कारणको बनायेहैं और योंभी नहीं जानता कि जिगर और तिल्लीको किस निमित्त उत्पन्न कियाहै काहेसे कि यह भेद सूक्ष्म है और एक ऐसे भेदहै कि वह सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म हैं तबने उनको कोई बिरला बुद्धिमान् समझता है और इसके प्रखान करना भी बृहत् विस्तार है तबने तात्पर्य को प्रकट करके कहनाहै कि मनुष्य को भगवत्ने अपनी ब्रह्म और परिचानके निमित्त उत्पन्न कियाहै ताते चाहिये कि परलोक को जाने और शरीर और इन्द्रियां को भगवत् मार्ग विषे लगावे और परलोकही का चिन्तन निमित्त विषे दृढ़ करे और दृश्य विषे यों न जाने कि भगवत्ने सब पदार्थ मेरेही निमित्त उत्पन्न कियेहैं काहेसे कि जब यों जानता है तब जिस पदार्थ विषे अपना लाग नहीं देगताहै तो कहता है कि यह पदार्थ किस कार्यको उत्पन्न कियाहै और इसके उत्पन्न होनेका भेद क्याहै और कहताहै कि मात्सी और चींटीके उत्पन्न होनेका कारण क्याहै सो यह चढ़ी स्वैज्ञता है काहेसे कि ऐसेही मात्सी और चींटी भी कहे हैं कि मनुष्य पादको

उत्पन्न हुआ है और इसके उत्पन्न होने विषे क्या लासया जो हमको लताइ भरता है और व्यर्थ ही गटकता फिरता है तावे जैसा अनुमान गकोदा करना है वैसा ही मनुष्य भी करता है पर जब भली प्रकार विचार करके देखिये तो श्रीराघवजी की दया सर्व विषे गरूप रहे और सगान है तावे महाराजकी लक्ष्मी है ऐसी है कि जो पदार्थ जिस प्रकार चाहिये या उसी प्रकार उत्पन्न किया है जैसे पशु और वृक्ष और सानि और और जो स्वावर जगम सर्व मृष्टि है सो अपनी दया के साथ भली प्रकार बनाये हैं और जो कुछ इनको चाहिये था सो सब ही दिया है जैसे गिर और हाथ पाव और सुन्दरताई सो सब ही को दिया है काहेमे कि महाराजके निकट कोई पदार्थ ऐसा नहीं जो न होवे और रूपणना भी नहीं जो न दिखे तावे सब किसीको सुन्दर और सम्पूर्ण करके बनाया है और जो पदार्थ उत्पन्न नोकेवा सो उत्पत्तिका अधिकारी न था जैसे अग्नि विषे शीतलता उत्पन्न नहीं हुई सो अग्नि विषे उष्णता ही चाहिये थी और जल विषे शीतलता ही चाहिये थी तावे जलको अग्नि पर विरोधी करके बनाया है सो इनके विरुद्ध विषे ही प्रयोजन है जैसे अग्नि विषे उष्णताका प्रयोजन है तैमे जल विषे शीतलता भी प्रयोजन है और दोनों ही चाहिये हैं सो जब अग्निकी उष्णता धूर हो जावे तब आपने काँसे को समर्थ नहीं होसकता तावे जानू कि जो पदार्थ उत्पत्तिका अधिकारी था सो उत्पन्न किया है और जो उत्पत्तिका अधिकारी न था सो नहीं किया जैसे मापीकी तरीमे बनाया है सो मापीको तरीहीका अधिकार था तावे उसका अधिकार उमे को भी दिया है काहेमे कि श्रीजानकी जीवनरुकी दया विषे रूपणवाँल ही अपने अपनी परम उदारता करके मापीको भी जीव और चल और उन्डिय और सर्व अङ्ग सुन्दर दिये हैं बहुत और हाथ पाव नेत्र नाकधर और आदरके

है वहुरि हाथों को भी झाड़लेती है सो मेरे कहने का प्रयोजन यह है कि भगवत्की दया केवल मनुष्यपर नहीं सर्व विषे भाएगै ताते कीट पतंग और अन्न जीवोंको जो कुछ चाहियेया सो सबको दिपाई और जो कुछ हस्ती को दिया सो और कोभी दियाहै और इनको मनुष्यके निमित्त नहीं किया जैसे मनुष्यको इनके निमित्त नहीं किया तैसे सब किमी को अपने अपनेही निमित्त किया है काहेमे कि उत्पत्तिके आदिमें महाराजके साथ मनुष्यका सम्बन्ध न था, जो उस करके मनुष्यही उत्पन्न होनेका अधिकारी होना और न होते सो यों नहीं काहे से कि श्रीराघवेंद्रजू की दया समुद्रकीनाई भरपूरहै और सर्वपदार्थ उसही विषे हैं ताते मनुष्य भी उसी विषे हैं और अन्नभी अनेक पदार्थ उसही विषे हैं परइस विषे इतना भेदहै कि उत्तम पदार्थपर नीचपदार्थ निझावर किया चाहिये है और जो कुछ धरतीपर मृष्टिहै सो तिसविषे मनुष्य उत्तमहै इसी कारणसे और जीव मनुष्यके टहलुवे बनाये हैं सो यद्यपि ऐसेभी हैं परतोभी समुद्रों विषे ऐसे जीव उत्पन्न किये हैं कि उनको परम दयाकरके सर्वपकार सुन्दर बनाया है और उन से मनुष्यका कुछ प्रयोजन मिद्ध नहीं होता और सब मनुष्य उनकी सुन्दरनाई को पहिचानभी नहीं सके वहुरि वही पहिचाननाहै जो समुद्रोंकी विद्या का वेदां होवे सो मेरे कहनेका प्रयोजन यह है कि तू सर्वथा यों न जाने कि भगवत् ने सबकुछ मेरे निमित्त बनायाहै और जिन विषे अपने कार्यकी मिद्धता न देखे तब यों न कहे कि यहपदार्थ काहेको उत्पन्न कियाहै सो जब तैने यों जाना कि मकोदा मेरे वास्ते उत्पन्न नहीं हुआ तैमेही चन्द्र सूर्य तारे और देवता भी से अर्थ नहीं बनाये यद्यपि इनकरके तुम्हारे कार्यकी मिद्धता है पर केवल तुम्हारे निमित्त उत्पन्न नहीं किये जैसे मात्सी यद्यपि तेरे शरीरती तुम्हारे चून के पी दे और दुर्गन्ध का को घगनी है पर मात्सी को को न पी करण नहीं बनाया और जब तू यों जाने कि मरकुछ भेदेही निमित्त भिराजाइ नव हस्त का दृशय यहहै तैने मात्सी अपने विषयविषे जाने कि शरीरभिठाई हवनाई लोग भेदेही अपने करने हैं सो यद्यपि उनकी भिठाई करके मात्सीको भी आहार प्राप्तहोनाहै परवह हवनाई अपने व्यवहार विषे ऐसा मग्न है कि मात्सी उनके स्मरण विषे भी नहीं होवी तैसेही तूगी जाननाहै कि सूर्य भेदेही अर्थ नित्यरति उदय होने हैं और सूर्य भगवत् की आज्ञा विषे ऐसे मग्नहोने दे कि तुम्हो स्मरण विषेभी नहीं जाने

उत्पन्न हुआ है और इसके उपजने विषे क्या लाभया जो हमको जलवायु वायु  
 है और व्यर्थही भंडकता फिरता है नाने जैसा अनुमान एकोड़ा करता है सेवारी  
 मनुष्य भी फलाना है पर जब मर्ना प्रकार विचार करके देखिये तो श्रीगणेशजी  
 दया सर्व विषे मरपुरहे और सगानहे ताने महोगजकी मगर्धवा पंथी है कि जो  
 पदार्थ निमप्रकार चाहियेया उर्षाप्रकार उत्पन्न किया है जैसे पशु और पक्ष और  
 सानि और और जो स्यावर जगम सर्व सृष्टिहे तो अपनी दयाकेसाप भलीभि-  
 प्रकार बनाये है और जो कुछ इनको चाहिये था सो सबही दिया है जैसे गिर और  
 हाथ पाव और सुन्दरताई सो सबही को दिया है काहेमे कि महाराजके निकट  
 कोई पदार्थ ऐसा नहीं जो न होवे और कृपणता भी नहीं जो न देवे सो ते सर  
 किसीको सुन्दर और सम्पूर्ण करके बनाया है और जो पदार्थ उत्पन्न ते किया  
 सो उत्पत्तिका अधिकारी न था जैसे अग्नि विषे शीलत्वता उत्पन्न नहीं हुई सो  
 अग्नि विषे उष्णताही चाहियेभी और जल विषे शीतलताही चाहिये थी तावे  
 जलको अग्नि पर विरोधी करके बनाया है सो इनके विरुद्ध विषेही प्रयोजन है  
 जैसे अग्नि विषे उष्णताका प्रयोजनहे तैसे जल विषे शीतलता भी प्रयोजनहे  
 और दोनोंही चाहिये हैं सो जब अग्निकी उष्णता बूर होजावे सब प्रयोजन सब  
 को मगर्ध नहीं होसकता तवे जानू कि जो पदार्थ उत्पत्तिका अधिकारीया सो  
 उत्पन्न किया है और जो उत्पत्तिका अधिकारी न था सो नहीं किया जैसे माषीकी  
 तरीसे बनाया है सो माषीकी तरीहीका अधिकार था ताने उमका अधिकार उम  
 को भी दिया है वाहेके कि श्रीजानकी जीवनजुही दया विषे कृपणता नहीं सोने  
 अपनी परम उदारता करके माषीको भी जीव और चल और इन्द्रिय और सर्व  
 अङ्ग सुन्दर दिये है बहुरि पल और हाथ पाव नेत्र मुख नाक गिर और आहारके  
 पंचमे का स्थान और मल त्यागने का स्थान और और भी जो कुछ उसको  
 चाहियेथा सो सबही दिया है दुगय कुछ नहीं राखा बहुरि उसको नेत्रभी चाहतेथे  
 और गिर उमका सोयाथा ताने पलकों के उठाने का अधिकारी न था इन्हीके  
 रण से माषी के नेत्र पलकोंबिना बनाये है और पलकोंकी उत्पत्तिका प्रयोजन  
 यह है कि यह धूमि नेत्रों की म्सा करने दे जैसे दर्पणको कि कालीगे शूद्र  
 ताहे तेषेही पलक नेत्रों को शुद्ध करने है सो माषीके नेत्र पलकों से रक्षित  
 ताने उसको दो हाथ अचिरु दिये हैं जो उनसे नेत्रोंके मर्दनपलके शूद्रपलकों

हैं वहुरि हाथों को भी भाङ्गलेती है सो मेरे कहने का प्रयोजन यह है कि भगवत्की दया केवल मनुष्यपर नहीं सर्व विषे भरण्हे ताने कीट पतंग और अवर जीवोंको जो कुछ चाहियेया सो मवको दिपाहै और जो कुछ हस्ती को दिया सो और कोभी दियाहै और इनको मनुष्यके निमित्त नहीं किया जैसे मनुष्यको इनके निमित्त नहीं किया तैसे सब किमी को अपने अपनेही निमित्त किया है काहेसे कि उत्पत्तिके आदिमें महाराजके साथ मनुष्यका सम्बन्ध न था, जो उस करके मनुष्यही उत्पन्न होनेका अधिकारी होता और न होने सो यों नहीं काहे से कि श्रीराघवेंद्रजू ही दया समुद्रकीनाई भरपूरहै और सर्वपदार्थ उमडी विषे हैं ताते मनुष्य भी उसी विषे हैं और अवरभी अनेक पदार्थ उमडी विषे हैं परइस विषे इयना भेदहै कि उत्तम पदार्थपर नीचपदार्थ निझावर किया चाहिये है और जो कुछ धरतीपर सृष्टिहै सो तिमविषे मनुष्य उत्तमहै इसी कारणमे और जीव मनुष्यके टहलुवे बनाये हैं सो यद्यपि ऐमेभी हैं परतोभी समुद्रों विषे ऐसे जीव उत्पन्न किये हैं कि उनको परम दयाकरके सर्वपकार सुन्दर बनाया है और उत से मनुष्यका कुछ प्रयोजन भिद्ध नहीं होता और सब मनुष्य उनकी सुन्दरनाई को पहिचानभी नहीं सक्ते वहुरि वही पहिचाननाहै जो समुद्रोंकी घियाका वेधां होवे सो मेरे कहनेका प्रयोजन यह है कि तू सर्वथा यों न जाने कि भगवत् ने सबकुछ मेरे निमित्त बनायाहै और जिम विषे अपने कार्यकी सिद्धता न देखे तत्र यों न कहे कि यहपदार्थ काहेको उत्पन्न कियाहै सो जबनेने यों जाना, कि मकोदा मेरे वास्ते उत्पन्न नहीं हुआ तैसेही चन्द्र सूर्य तारे और देवता भी मेरे अर्थ नहीं बनाये यद्यपि इनकरके तुम्हारे कार्यकी भिद्ध होते हैं पर केवल तुम्हारे निमित्त उत्पन्न नहीं किये जैसे गाभी यद्यपि तेरे गरिही कृपापि को च्च जे ही दे और दुर्गन्वताको घगती है पर गाभी को केव , ही कारण नहीं बनता औ- ज नू यों जाने कि सबकुछ मेरेही निमित्त भिराजाहै अब इस का इशारा यहहै नेने गाभी अपने विषयविषे जाने कि यीरिभिठाई हनवाई लोग मेरेही अर्थ किये है सो यद्यपि उनकी भिठाई करके गाभीको भी आहार प्राप्तहोनाहै परवहहनवाई अपने व्यवहार विषे ऐना मग्न है कि गाभी उनके स्मरण विषे भी नहीं होवी तैसेही तूभी जाननाहै कि सूर्य मेरेही अर्थ नित्यरति उदय होते हैं और सूर्य भगवत् की आज्ञा विषे ऐने मग्नहोते हैं कि तुकछी स्मरण विषेभी नहीं जाने



नाते जानतू कि सूर्यको तारे निमित्त नहीं बनाया नहीं। सूर्यके प्रकाशसे तारे  
 नेत्रभी प्रकाशित होने से पर धीमी तमिनी निमित्त नहीं बनाया नहीं। सूर्य की  
 छप्पना कम्बे धरतीकी स्तम्भान समान होना है नव जलको धरती है और तम  
 विषे नाना प्रकारके वाहारा उरग्य हाते हैं। मोक्षार्थ प्रदायों के उत्पन्न होने का  
 गेद धरान किरी मिठी नाना गम्ये कि उरु दृष्टात्पदार्थ शरीरके कटनाह किसे तो  
 नेत्रहै। मोक्षी कामोंको बनाये है प्रकृतकारणोंके विनेत्रों ररके दोरे शरीरका  
 र्थवहारनिष्ठ हीना है और धरतीपरिचर्य है कि नानाप्रकारकी ज्यमाको र्थ  
 कर गेदरीनकी बड़ाई और संमर्षकी शोभित्वाको परिचर्य पा लने की र्थ  
 नेत्रों करके परमीको होने नव पक्ष तेरादेवनही संगवर्तके पार्यापकी गनमु-  
 सती होती है। पदरिनेत्रों का देवना सूर्यके मित्त होना है और सूर्य धरती  
 और आकाश पिपे होता है पर जब नू नेत्रों करके सुदृष्टि देमे तब धरती और  
 आकाश और सूर्य और नेत्र इन सभप्रदायों की मनमुसी खोर्न दे दमी प्र-  
 हापुछने भी कहा है कि जब यह गनुष्य पाप करने लगता है तब उमकी धरती  
 और आकाशगी विहार कम्बे है वदरि राग और पाव तुमको मदाराने इम  
 निमित्त दिये है कि इनकरके शानापीना म्नानारिक किया मिटके सौ तब  
 नू इनकरके पोपकर्म करे तब गभी पनेमुगी हाती है फाहे मे कि गदागत की  
 प्रसन्नता विचार करके होती है मो विचार यद है कि उरु प्रदायोंको उत्पन्न  
 विषे लगाना और नीचपदार्थको नीच विषे लगाना अभिग्रह जो दोनों का र्थ  
 सौ एक इनमें से अवस और उरुमदे सो देहिनु। हाय है और तारा है। निरक्ष  
 और नीचठे ताने वाहिये कि उरुम हाय से उरुम सार्थ फीये और भीम हाय  
 से भीम कार्य फीये नव विचार पूर्ण होना है और जब ये मे लगे ता पशुकी  
 नाई सूर्य होता है जेमे सूर्यका र्थके गुरुस्थान विषे है। भव नू नू र्थकी र्थ  
 मनमुषकी हीरी है अर्थात् किमी हीरी जाया धरते का र्थकी मनोत्रन  
 मिनाते ही र्थकी मनमुषका होना है फाहे कि मेटेगमने नीचाविषे नीच  
 बनाई है सो विमर्षके मरी म्बन र्थ पुत्रों। निदेनले फल वरुन हमे है फी  
 र्थकी फनीविषे मने र्थगण उरुमते है पर लक्ष है न इमकी यथोजन निनायादा य  
 मदे की मनमुषी होती है और जब तुमकी विमर्ष सार्थ का योजन हाये तब  
 उरुका पादनी प्रदाय है नादे कि तेमे पदात्पर उमकी यदाई विचार है

प्रकृतिये इस विषे एक और भी भेद है कि जब वह वृत्त कि सी दूसरे पुरुष का होवे तब भी  
 मुँहको क्लेशनाशगण तर्ही यद्यपि इस विषे तोरा प्रयोजन भी होके काहेसे कि  
 जिसकी बहाव है तिमर्ही कार्य तेरे प्रयोजनसे विशेष है एवं भक्ति प्रकार विचार  
 करके देखिये तब ही किसी मनुष्य का तमिलेक कुछ नहीं काहेसे कि महाराजने यह  
 भाया था की तर्ही बनाई है और इस विषे सर्वपदार्थ भोजनकी तर्ही है और सर्व  
 जीवोंके रूपरूपम्यागत है पर वह भोजन किसी एक पुरुषके दास्ये विषे नहीं हो-  
 ता और यद्यपि प्रास भिन्न र सवही लेते हैं तौ भी वह भोजन सबहीका सासा है  
 पर जब कोई पुरुष यासको अपने हाथ विषे लेवे तब दूसरे पुरुषको या भी नहीं  
 जाहिसे कि उसके हाथसे प्रासको छीनलेवे तैमेही सर्वजीवों की मिवरु प्रासकी  
 तर्ही है अधिक कुछ नहीं जाते किमीकी वस्तुको हरकोनाभी मयाण नहीं और  
 यौभी प्रमाण नहीं कि उसथासे भोजन लेके गृहस्थान विषे रखताजावे सो  
 इस वेनमितालो किसे और के हाथमें त त्वावे तैमेही इस मनुष्यकी भी प्रमाण  
 तर्ही कि प्रयोजनके अधिक धनका सचयकरे और तत्त्वज्ञाना इकट्टा करके धर  
 तासे और जिनको चाहे देवे तितको ना देवौ तौ यद्यपि अयोग्य है पर यह  
 तत्रवभी जगत्प्रिये समिद्ध तर्ही कदाज्ञाना काहेसे कि तत्र प्रियेकी प्रयोजन  
 भी मूल्य है तर्ही जानाजाता पर तत्रवभी किछिये त्रि कार्य से अधिक सचयक-  
 रना अयोग्य है और जिनको उसका विशेष प्रयोजन है तिनसे तत्राहं रखना  
 प्रमाण नहीं तत्रासब कोई निडर होकर मरुतकी मस्तुछलेवे और कहे कि  
 तेरे पास अधिक है और मुँहको चाहिये है ताने इस सचयनों भ्रमणास्ये भी  
 प्रमिद्ध नहीं कहा क्योंकि इसका समस्तता अतिन है पर अधिक धन सचयना  
 महाराजने भी बजित विचादे और विचार विषे भी अयोग्य है तैमेही अनाजका  
 सचयनाभी अयोग्य है तैमे कि अनाज जीवोंका जीवन है और जो पुरा चद  
 मर्गसा करके अनाजको इकट्टा करे नि तत्र गर्दगा होनेगा तत्र त्रैगे तत्र उम  
 को महाराजभी विचार करके त काहेसे कि जिनको चाहे तिनको नहीं देना  
 और अपने लोभके सिद्धि इकट्टा करे रखना नो यह भी महानिचय है तैसे ही  
 और सचयका इकट्टा करना भी अयोग्य है तैमे कि इनको महाराजने  
 दो क प्रिये निमित्त करुणा किना है सो भक्त पूरे कि सर्वपदार्थ का तोन  
 नहीं करके प्रकृत्या तैमे तौ इनके बिना जाना तर्ही तना कि चोदे का भाव

क्याहै और दामका मोत क्याहै और कपड़ेका मोल क्याहै सो इन पदार्थोंको  
 एक दूसरे के हाथ बेच नहीं मन्ना सो जब किसी पुरुष को किसी वस्तुका प्रयो-  
 जनहावे तब मोलकिये बिना लेनादेना सिद्ध नहींहोता ताते महाराजने चाँदी  
 सोना धातु है सो इसको इकट्ठा करके दावरखना ऐमाहै जैसे कोई धर्मवान  
 राजा को केंद्रकरगले ताते निम्नन्देह पापी होता है और जब कोई पुरुष सोने  
 चाँदी के चानन बनावे तब ऐसे होताहै जैसे कोई श्रेष्ठ पुरुष को नीचदहल बिने  
 लगावे अथवा राजासे मजूरी कराये काहे से कि धामन माटी और काष्ठ और  
 और धातुके भी होते हैं ताते चाँदी सोने अयोग्यहै और दूमरा कार्य्य यह है  
 कि रूपा सोना दुर्लभ पदार्थ बनाये हैं काहेसे कि इन करके सर्व पदार्थ प्राप्तहोते  
 हैं इसी कारण से इनको सब कोई प्यासा खना है और सबका व्यवहार इनकी  
 करके सिद्ध होताहै और जब विचार करके देखिये तब बस्त्र और अन्नआदि प-  
 दार्थ खाने पीने शीत उष्णके कार्य्य करते हैं पर एक दूसरे का कार्य्य नहीं कर  
 सकें जैसे बस्त्रसे धुआँप्यास और अन्नसे शीत उष्ण दूर नहीं होसकें और सोना  
 चाँदी करके सब कुछ प्राप्त होताहै ताते जगत् बिने इनकी बड़ाई और इन्तमना  
 है ताते जान लू कि जो कुछ प्रभुने बनाया है सो प्रयोजन बिना नहीं बनाका  
 पर इसबिने ऐसे गुलामेदहें कि उनको कोई नहीं पहिचानसका कोई बिस्ते सेन  
 ही पहिचानते है और एक ऐसेभेदहै कि उनको बुद्धिमान् पहिचानी समझते हैं  
 और जीव नहीं समझते पर जब अज्ञानी पुरुष किसी वृक्षकी शाखा कार्य्य बिना  
 तोड़े अथवा कोई और कार्य्य विचार से विपर्यय करे तब में उसपर ऐसा दोष  
 नहीं खना काहेसे कि वह मूर्ख है और पशुकी नाई नौनहै पर बुद्धिमान् जि-  
 हानु करे यही चाहिये कि अज्ञानियाँ की नाई न बयें और सर्वकिया विचारके  
 साथही और परलोक के मार्ग बिने मानवान होयें और सर्व कार्य्यो के भेदको  
 पहिचाने तब देवता के स्वभाव को पावेगा जो जब यों न करे तब पशुओंके  
 स्वभावको प्राप्तहोनाहै ॥ अथ प्रकट करना रूप सुमना ॥ जाने जान लू कि स-  
 गवतो जो कुछ हम मनुष्यके निमित्त उराम कियाहै सो सर्व पदार्थ प्राप्तकर  
 के हैं सो एक पदार्थ ऐनेहै कि वह इमलोक और परलोक बिने सुचदेनेहो है  
 सो वृक्ष और मत्त स्वभाव है सो सावा सुनही है १ बहुरि रूपो पदार्थ ऐनेहै  
 कि इमलोक और परलोक बिने उपद्रवक है सो मूर्खता और बुद्धि स्वभाव है

सो परमदुःख यही है १ और तीसरे पदार्थ ऐसे हैं जो इसलोक विषे सुखरूप मां-  
सते हैं और परलोक विषे दुःख देने होते हैं सो यदा माया के भोगों हैं कि मूर्ख इन  
को सुख जानते हैं और बुद्धिमान् इनको दुःख जानकर त्याग देते हैं भोगों को  
सुखावन पुरुष होने और विष भिन्ना हुआ शरीर उसको प्राप्त होने सो जब वह  
सुखता करके विष का मधुमिष नहीं जानता तब उसको सुख जानकर भोग दे  
और जब विषको मधुमिषे पहिँ जानता है तब दुःख जानकर उसका त्याग कर दे  
है तब वे ही माया के सुखों को मूर्ख सुख जानते हैं और बुद्धिमानों ने दुःख जानकर  
त्याग दिया है २ और तौ पदार्थों के पदार्थ ऐसे हैं कि इसलोक विषे दुःख मां-  
सते हैं और परलोक विषे सुख रूप हैं सो तब और वैराग्य और भोगों में विपर्यय  
होता है सो मूर्ख इनको दुःख जानते हैं और बुद्धिमानों के निकट मदी परम सुख  
है जैसे कहीं भोगों को बुद्धिमान् योगी प्रसन्न होकर अंगीकार करता है और  
मूर्ख कहीं जानकर त्याग देता है पर इम जगत् विषे सर्व पदार्थ आपस विषे  
मिले हुये हैं अर्थात् उन विषे कुछ मलाई दोनों का सम्बन्ध होता है पर जिस  
पदार्थ विषे स्वाम अधिक हावे और हानि अल्प होवे तिसको भला जानिये सो  
यह भी अधिकार प्रति होता है पर शरीर के कार्य मात्र जो धन है सो तिसविषे  
स्वाम बहुत है और हानि थोड़ी है और प्रयोजन से अधिक जो धन है सो तिस  
विषे स्वाम अल्प है और हानि अधिक है सो बहुत मनुष्यों का अधिकार ऐसा ही  
होता है परों कोई पुरुष ऐसे भी होते हैं कि उनको थोड़ा धन भी दुःख देता है काहे  
से कि जिन धन के धन कुछ नहीं होता तब च्छण्यासे रहिन होने हैं और जब  
थोड़ा धन भी उनको प्राप्त होता है तब बहुत धनकी च्छण्या करने लगते हैं और  
एक ऐसे भी ज्ञानवान् पुरुष होते हैं जिनको बहुत धन भी दुःख नहीं देना काहे  
से कि वह धनके प्रयोजनों को देनेकी समर्थ होते हैं और विचारके बिना  
धनको नहीं लगाने तब प्रसिद्ध हुआ कि एकही पदार्थ किसीको सुखदायक  
होता है ओर किसीको दुःख देता है सो अपने अधिकार प्रति होता है बहुत  
जिन पदार्थको सुखदायक जानिये सो भी तीन प्रकार के होते हैं सो प्रथम वह जो  
अति विषे सुखदायक होते हैं १ दूसरे अन्त जानिये सुख देने वाले हैं २ और  
तीसरे आधी सुखरूप होते हैं और सुन्दर होते हैं ३ और जिन पदार्थों को बुजान-  
निये सो भी तीन प्रकार के होते हैं अथवा आदिमें सुखदायक होते हैं १ अथवा

क्या है और दासका मोन क्या है और कपड़ेका मोल क्या है सो इन पदार्थोंको  
 एक दूसरे के हाथ बेच नहीं सका सो जब किमी पुरुष को किसी बस्तुका प्रयो-  
 जनहोवे तब मोलफिये बिना लेनादेना मिद्ध नहींहोता ताने महाराजने चाँदी  
 तोना बनाया हे सो इसको इकट्ठा करके दावरमना ऐमाहै जेमे कोई धर्मवार  
 राजा को क्रैदकरासे ताने निम्नन्देह पायी होता है और जब कोई पुरुष मोने  
 चादी के बानन बनावे तब ऐमे होताहै जेमे कोई धेष्ठ पुरुष को नीचटहन बिरे  
 लगावे जषवा राजामे मजूरी कराये फाहे से कि वातान माटी और काष्ठ और  
 और धातुके भी होते हैं ताते चादी सोने अयोग्येह १ और दूमरा फार्य यह है  
 कि रूपा सोना दुर्लभ पदार्थ बनाये हैं काहेसे कि इन फरके सर्व पदार्थ प्राप्तहोने  
 हैं इसी कारण से इनको सब कोई प्यास रचना हे और सबका व्यवहार इनहीं  
 फरके सिद्ध होनाहै और जब विचार करके देखिये तब बस्त्र और अन्नआदि प-  
 दार्थ ताने पीने शीन उष्णके कार्य करते हैं पर एक दूसरे का कार्य नहीं कर  
 सके जैसे धूम्रमे धुआँ प्यास और अन्नसे शीन उष्ण दूर नहीं होसके और सोना  
 चाँदी करके सब कुछ प्राप्त होताहै ताते जगत बिरे इनहीं बड़ाई और दुर्लभता  
 है ताते जानू कि जो कुछ प्रभु ने बनाया हे सो प्रयोजन बिना नहीं बनाया  
 पर इसबिरे ऐमे गुणभेदहै कि उनको कोई नहीं पहिचानसका कोई बित्ते संन  
 ही पहिचानते हे और एक ऐमेभेदहै कि उनको बुद्धिमान् पहिचानी समझते हैं  
 और जीव नहीं समझते पर जब अज्ञानी पुरुष इसी वृक्षकी शाखा फार्ये बिना  
 तोड़े फयदा कोई और फार्ये विचार से विपर्यय करे तब गे उमपर ऐता होत  
 नहीं रचना काहेमे कि यह मूर्ख है और पशुकी नाई नीचे पर बुद्धिमान् जि-  
 ज्ञानु करे गही चाहिये कि अज्ञानियों की नाई न भये और सर्वकिया विचारके  
 मानकी ओर पालोक के मार्ग बिरे मानवान् हावे और सर्व कार्यों के मोद को  
 पहिचाने तब देवनों के स्वभाव को पायेगा और जब यो न करे तब पशुओं के  
 स्वभावको प्राप्त होताहै ॥ अथ प्रकट करना रूप सुनय ॥ माने जानू कि म-  
 गवत्ने जो कुछ इस मनुष्यके निमित्त उत्पन्न कियाहै सो सर्व पदार्थ चाणक्या  
 के हैं सो एक पदार्थ ऐमेहै कि बट इमलोक और पालोक बिरे सुनदेभेताहै  
 सो बुद्ध और भजा स्वभाव है सो माँचा सुनही हे १ बुद्धि हुनो पदार्थ ऐमेहै  
 कि इसलोक और पालोक बिरे रूपनयक है सो मूर्खता और हता स्वभाव हे

सो परमेश्वर यही है और तीसरे पदार्थ ऐसे हैं जो इसलोक विषे सुखरूप मो-  
सते हैं और परलोक विषे दुःख देनेवाले हैं सो यही माया के भोग हैं कि मूर्ख इन  
की सुख जानते हैं और बुद्धिमान इनको दुःख जानकर त्याग देते हैं अर्थात् कोई  
सुधावन्न पुरुष दोष और विष भिलाडुभा राहेंद उसको प्राप्त होवे सो जब तब  
मूर्खता करके विष का मधुमिषे नहीं जानता तब उसको सुख जानकर भोगती है  
और जब विषको मधुमिषे पहिचानता है तब दुःख जानकर उसका त्याग करता  
है तबेही मायाके सुखोंको मूर्ख सुख जानते हैं और बुद्धिमानोंने दुःख जानकर  
त्याग दिया है और मोक्षेपकारके पदार्थ ऐसे हैं कि इसलोक विषे दुःख प्राप्त  
सते हैं और परलोक विषे सुख रूप हैं सो तब और वैराग्य और भोगोंसे विपर्यय  
होता है सो मूर्ख इनको सुख जानते हैं और बुद्धिमानोंके निकट यही परम सुख  
है जैसे कोई औषधको बुद्धिमान् रोगी मसक्त होकर अगीकार करता है और  
मूर्ख फिर आ जानकर त्याग देता है पर इस जगत विषे सब पदार्थ आपस विषे  
मिले हुये हैं अर्थात् उन विषे बुलाई भलाई दोनों का सम्बन्ध होता है पर जिस  
पदार्थ विषे लाभ अधिक हावे और हानि अल्प होवे तिसको भला जानिये सो  
पह भी अधिकार प्रति होता है पर शरीरके कार्यमात्र जो धन है सो तिसविषे  
लाभ बहुत है और हानि थोड़ी है और प्रयोजन से अधिक जो धन है सो तिस  
विषे लाभ अल्प है और हानि अधिक है सो बहुत मनुष्योंका अधिकार ऐसा ही  
होता है पर कोई पुरुष ऐसे भी होते हैं कि उनको थोड़ा धन भी दुःख देता है फादे  
से कि जब उनके धन कुछ नहीं होता तब च्छण्यासे रहिने होते हैं और जब  
थोड़ा धन भी उनको प्राप्त होता है तब बहुत धनकी च्छण्या करने लगते हैं और  
एक ऐसी भी ज्ञानवान् पुरुष होते हैं जिनको बहुत धन भी दुःख नहीं देता फादे  
से कि वह प्राके प्रयोजनवालोंको देनेको समर्थ होने हैं और विचारके बिना  
धनको नहीं लगाते तबे मसिद्ध हुआ कि एरुही पदार्थ किसीको सुखदायक  
होता है और किसीको दुःख देता है सो अपने २ अधिकार प्रति होता है पहिले  
तिस पदार्थको सुखदायक जानिये सो भी तीन प्रकारके होते हैं सो प्रथम वह जो  
आदि विषे सुखदायक होते हैं १ दूधो अन्य ज्ञानरिषे सुख देनेवाले हैं २ और  
तीसरे आरुही सुखरूप होने हैं और सुन्दर होने हैं और जिन पदार्थोंको सुखदा-  
निये सो भी तीन प्रकारके होते हैं अथवा आदिमें सुखदायक होते हैं १ अथवा

यस्मिन्तुल्यवृत्ते तेषु ज्ञेयसाक्षात्कारकेष्वहं पदार्थज्ञानं चिन्मयं मिलितं होतव्यं परं  
 नो प्रदार्थं यथाभी-सुखं देवे त्रीं पीषि सां सुखं मरु हंति चोत्तरं कान्ति वि  
 भी सुन्दरं ओं विगेष होने सो सुखि चोत्तरं अनुभवते चोत्तरं परंपरुक्त रूपभी परी है  
 इसके मर्गान्तिओग्योई सत्यं नदी वदरिः स्याद्विअन्ने मंसपरिपे जो तुल्यवृत्ते को  
 स्र्वित्ताई करदेमेति मूर्धवाकरके आदिगी दुःखो नावे चोत्तरं अत्रभी सुखपाताई  
 चोत्तरं सुखता वापरी है माहाकल्पदे मो सुखता विप्रे आदिमो यह दु ख प्रसिद्ध है कि  
 जब मूल मूल पर्याप्तता है किसे इमं पदार्थं कांत्तानु और ज्ञानने हो संपर्क तदी  
 हो सहा जव तिसमन्देह दुःख को प्राप्त होता है और मूर्धता पर जो सुख्य कराई  
 सो कृष्णता मरुटा स्पृह नदी मांमती पर मूर्धता का के निच विप्रे अत्रेण होमा  
 ताहो सो अन्तरकी कुरुपता वायुकी कुरुपता सेमी व्यथित लुती है और सुखा  
 के साथ जो फलार्थ किया जाता है सो तिस कण्ठे अन्न भी सामदु ख प्राप्त होता  
 है चोत्तरि कोई मर्दार्थ ऐसा भी होता है जो मर्दार्थ मूर्धन विप्रे इमं प्राप्त होता है भी  
 पीषो वही सुखदायक होना है अत्रे कोई सुख्य इमं मर्निगिव अर्गुगी को मूर्धे कि  
 दुःख कण्ठे मरे दाय को प्रदान होवे सो अर्धे चोत्तरि किये अत्रे का के सर्प कि तिस  
 दार्थकी विवाहोके वदरि एक प्रदार्थ अर्धे गि होने है कि तिस वनकी एक का  
 करके हो विप्रे तो सुखरहित है चोत्तरि चोत्तरं हृष्टि कण्ठे दे विप्रे तो वही सुख  
 होवे अत्रे किमी पुरुषं क जटा जट्ट मि त्तो तत्र वही पुरुष इनिहंशक होकर अत्रे  
 चोत्तरं मांगी हो अत्रे विप्रे इतने अत्रे गतां है ओं मी प्राण्यां है कि किमी अत्रे  
 मरी गतां हो सो जब पन जोग्यप्रदा की चोत्तरि हृष्टि मरिपे तो जब विप्रे चाले  
 को के धनकन मारा होना है और जमः गीर की लथा अत्रे और दे विप्रे तो पुन  
 का रपा गरी सुखरुपे जाने इमं जगत् विप्रे जितने सुख है सो अन्न परकां है  
 तो प्रपन्न यह है अत्रे भोजन चोत्तरं कांमादिक मोग है सो यह सुख मरानी वी  
 और मरुत्त मनुष्य इतरो को मूत्र जानने है चोत्तरं जरे कृत्त फि पा करने है सो इमं  
 सुनके मीमिगित फने है और भोजन जो दुःख सुख को जीव मरुते सो अत्रे की सुखि  
 धी है कि अत्रे मीमिगित मोग तो मनुषो अत्रे भी प्राप्त होते है चोत्तरं यह मोग मनुषो  
 विप्रे मनुष्यो से अत्रि क पार्थे हाते ठ चोत्तरं मरुती ओं मरुतो का सो अत्रे विप्रे  
 भी इमं सुख विप्रे मनुष्यो मरुती ने हाते हृष्टि मरुते पुत्र मने जगत् मरुती मरुती  
 सुख विप्रे अत्रे है सो वरु मनुष्यो मरुती र हृष्टि है सो अत्रे विप्रे अत्रे मरुती

नहीं शान्दुरि दूमरा सुख मान और बढ़ाई हे जो क्रोध और ब्रह्मकारकी प्रबलता  
 फलके होती हे औरायद्यपि कामादिकामोगसे यह सुखाविशेष होतो भी नीचे  
 काहेसे कि इस विषे भी केते पशु शरीरका हे जैसे सिंहा और चीते भी बढ़ाई की  
 टपणा रखते हैं और अप्रती प्रबलता को जाने हैं शान्दुरि तीव्रपशुसुख विद्या  
 और अर्जुनवी और भगवत्की कारीगरीका महिमानना है सो परगसुख स्पष्टी है  
 और प्रवृत्तदोनों सुखसे विशेषे तौते यह सुख किसी पशु विषे पाया नहीं जोता  
 काहेसे कि विद्या और ब्रह्म देवता का लक्षण है अथवा भगवत् का गुण हे ताते  
 जिस मनुष्य विषे ब्रह्म और ज्ञानका रहस्य ऐसा होवे कि किसी और सुख को  
 सुख माने तथा संपूर्ण मनुष्य बढ़ाई कहा जाता है और जिस मनुष्यकी विद्या  
 और ज्ञानका रहस्य कृष्ण होवे वह मनुष्य पशुकी भाई नीचे है और रोगी है  
 अर्थ यह कि जैसे रोगी को मरना निकट होता है तैसे लस पुरुषको बुद्धिका नारा  
 निकट है पर बहुत पुरुष ऐसे भी होते हैं कि उन में कुछ स्वादे विद्या और अ-  
 तुभवका होता है और कुछ स्वाद मान और भोगोंका भी होता है पर जिनको  
 ब्रह्म और ज्ञानका रहस्य प्रबल होता है तिनको सर्व विषय स्वर्गमर्त्यत महाविरस  
 होजाते हैं और जिसको विषयों का रस प्रबल होता है तिनको विद्या और ब्रह्म  
 का रस कुर्ब नहीं आता और महातीव्र अवस्थाको प्राप्त होता है ताते इस पुरुष  
 को मही पुरुषार्थ करना प्रमाण है कि भोगों का रससे विद्या के रसको मदाप्यसो  
 सतजनोने भी यही कहा है कि परम शास्त्रान् वही पुरुष होता है जिसकी भती  
 करती अभिका होवे और वही परलोक विषे सुखी होता है सो इयवर्षनका अर्थ  
 मही कि मोगोंके रसमे ब्रह्मका रस अपिक होवे तब सुखको प्राप्त होना है ॥ प्रम  
 मन्त्र करना इसका कि जिसकी सुख चाहिये सो सुखों विषे भी बढ़ाये देता  
 तब जाना कि पूर्ण सुख परलोक ही मनाई है और ब्रह्म परलोककी मनाई  
 इयवर्षको प्राप्त है सुखदीयके जो कि मोगोंके अर्थयको निदीय-  
 इती है काहेसे कि यही आपही मोगसुखरूपहेतु और यह परलोककी मनाई मार  
 लयणों करके सिद्ध होनी है सो प्रथम यह है कि ज्ञान चंचाप्पनी है कि जो  
 सं मदानित् न पाया जावे और महा जानन्त वेमाद्येवे कि उमदिरे जोरका  
 प्रवेश यदावित् न होवे बहुरि नैतन्यता मेनी रोवे कि सुखास्त्री मेनसे मदिन  
 होवे और मोगों पसी होवे कि जिउ विवे दानना और पयर्थ यज्ञ न होवे सो



यह सम्पूर्ण मुच श्री मीनाराम जू के दर्शन करके प्राप्त होते हैं जोई इममुचका  
 परिणाम फदानित नशो होता जाने-सांनामुचयदी है और मदा एकसहै बहुरी  
 और जो पदार्थ है सो तिनको इम निमित्त मुच कहै कि तहै इम पामसुचके  
 साधन है पर परम मुच यही है जो अपने आप फ्रके प्रियनम होवे और उसको  
 किसी और मुचके निमित्त अपेक्षा न होवे और जिसमुचको किसी और पदार्थ  
 के निमित्त चाहा जाताहै तिसको पूर्णमुच नहीं कहाजाता इसीपर महापुरुषने  
 भी कहाहै कि पूर्णमुच पल्लोककी मलाई है सो यह बचन महापुरुषने तब कहा  
 था जब लड़ाई विपेनास्त्रिकों से संकट को प्राप्त हुये थे और जब रामुजोंकी  
 जीतआये और प्रतापप्रदा और बहुरीलोग धर्म रीति के निताम हुये और धर्म  
 पूजतेलगे और आप सवारहुये नलेजाते थे तबभी कहनेलगे कि सांभामुचका  
 सोकरकहै सो उनके कहने का मर्पोत्तन यहथा कि हमारामन मायाके पदार्थकी  
 देखकर प्रसन्न नहीं और दुःख को देखकर दुःखी नहीं होता बहुरी इसीपर मुच  
 और श्री शर्माहै कि एक पुरुष महाराजके आगे प्रार्थना करके कहनाथा कि  
 हे गदाराज मुझको सपूर्ण मुचदेओ तब महापुरुषने मुनकर पूछा कि तू संपूर्ण  
 मुचको जाननाहै कि क्याहै तब उसने कहा कि मैं तो मनीप्रकार नहीं जागता  
 ताते मुमही फटो तब महापुरुषने कहा कि सम्पूर्ण मुच पल्लोक की मलाई का  
 नामहै ताते जानतू कि जो पदार्थ पल्लोककी मलाईका द्वारा न होतविवर  
 विपे उसको सुसतही कहने है और यह मुच परमदुःखहै सोहै और जो पदार्थ  
 पल्लोककी मलाई के सहायक है और इसको विपे पाये जात है सो सोसह  
 पदार्थ है चार मनके बीचहै और चार परीर विपे है और चार शरीरसे बाहर है  
 और चार इन सबके विपे हैं सो प्रथम जो मनके बीचहै तिनको गुमो एक वर्षके  
 निरबध करि दियाहै १ और दूसरी वर्षांतही दियाहै २ तीसरा मेषम दे ३ और  
 चौथा निवार है ४ पर प्रथम निम्नपक्षी दिया यहहै कि श्रीपुनन्दन स्वामी के  
 स्वरूप को पहिचानना और उनके मुशोंको समझना जो भवतनों के लक्षण  
 पहिचानते १ बहुरी वर्तने की विद्या यह है कि अक्षिवा विपे जिने पंग है  
 दो दिनको पहिचाने और जो पंगको मार्गका तोमा अंतानगतन है विपको  
 अंगोका को और जिनम मुचपुत्र दे सो उन मार्ग ही गोचरे है सो निमि  
 पहिचाने और उषा मार्गविपे चहै २ बहुरी मेषम पटो कि सोम और कोपई

सुखता को दूसरे ३ और विचार यह है कि जब सर्व गोगोर्का त्याग करता है, तब शरीर नाश को प्राप्त होजावेगा और जब गोगोर्कासना और कोष की सुखता होगी तब मनसुखता होती है तावे चाहिये कि इनको नाश भी न करे और अ-  
 विकृत सुखता भी न होने देवे तावे इनको विचार की तराजू सिपे तोल रखे ॥ ४ ॥  
 यह चारों विद्या तब प्राप्त होती है जब प्रथम शरीर सिपे जो चार सुख है सो तिन  
 को प्राप्त होवे सो शरीरके सुख यह है एक आरोग्यमात्र दुःखस बल २ तीसरा सु-  
 न्दरताई ३ चौथा आसुर्वल है २ सो परलोककी गताई के साहायक आरोग्यता  
 और बल आयुर्वत तो तिसुन्दरताई है और प्रत्यक्ष है काहेमें कि विद्या और कर्-  
 तृति और और जो अष्टमगुण है सो इनके बिना प्राप्त नही होने पर सुन्दरताई सिपे  
 प्रयोजन कुछ अल्पमात्र है जैसे धन और गान भी कार्ययोग्य प्रमाण कहे है  
 जैसे ही सुन्दरताई भी है सो गगवत्पार्श्व सिपे इनकी अधिकता विशेष नहीं पर  
 कार्यमात्र बहुत चाहते है और इमलोक के कार्यको मित्र करनेहारे हैं और  
 योगी है कि जो पदार्थ इम लोक सिपे सुखदायक होता है सो जन इम पुरुष की  
 मनसा भली होती है तब उमरके परलोक सिपे भी सुखतोता है काहेमें कि इम  
 लोककी कर्तृति परलोककी लेनी है अर्थ यह कि जो महा योगी है सो परलोक  
 सिपे गोगता है और यह सुन्दरताई इम साध्य नहीं कही है कि यह भी हृदयकी  
 सुन्दरताई का ललावनेहारी है तावे उममनुष्य सो चाहिये कि जिसकारण श-  
 रीर को सुन्दर बनाना है नैसही हृदयकी भी सुमगुणा करके सुन्दरको हसीपर  
 महापुरुषने भी कहा है कि दृशुना रूप न सभे तावे जानू कि मने पैभी सु-  
 दरताई प्रमाण नहीं कही कि जिसको देवकर काम उत्पन्न होवे और हृदय न  
 लिनहोवे काहेमें कि यह सुन्दरताई सिपे सिपे न्यिक छोड़ते तावे इम नन्दन  
 का तात्पर्य यह है कि सुन्दर पुरुष वही है जिसका देवपरमात्मनि न आवे और  
 जिसका मस्तक प्रमननासदिन सुनाहुजाएवे और मगान दीनहोवे और श-  
 रीरको दुर्बल और मलिनता से शुद्ध सभे तो यह भी शरीर की उत्तमताई है  
 और शरीर से बाहर जो चार पदार्थ विशेष कहे हैं सो पर है एक धन २ दुःख  
 मान ३ तीसरा दुःख ३ चौथा उमर दुःख ४ गो धनानामा तो इनताई प्र-  
 माण है जिस करके परलोक मार्गो शुद्धतावे पावे कि जब इमके धन धन  
 सुख नहीं होता तब सागीन जाहागी उत्पत्ति सिपे ही विचारता तावे विद्या

और कानूति की मित्रता की नहीं पहुँच सका इसी कारण करघनकी विशेषता  
 कही है कि इस करके शुभ कार्याधिपे निस्मकल्प होकर लगता है और तब धन  
 भी इसका मित्ररूप होता है १ चतुर्दि मानगी इस निमित्त ही प्रमाण कहा है कि  
 जिस पुरुष का मान कुछ नहीं होता तो वह भी निरादर करके दुःखी रहता है  
 और अपने शत्रुओं से निर्भय नहीं होसकता ताते उसका हृदय विशेषता बिना  
 होता है और शुभ कार्य उमसे कोई नहीं होसकता ताते धन और मान को जो  
 निन्द्य कहा है सो इनकी अधिमाई ही निन्द्य है और विघ्नरूप है और कार्यमात्र  
 सुखदायक और निर्दिष्ट है इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि जो पुरुष बात-स-  
 मय उठे और उमको किमीका भय न होवे चतुर्दि एक दिनका आहार भी उमके  
 पास होवे तब जानिये कि पूर्ण पदार्थ उमके पास है ताते जान लू कि निर्भय  
 होना और आहारमात्र समग्र रखना धन और मानके बिना गिद्ध नहीं होता  
 ऐमेही महापुरुषने कहा है कि जिस पुरुषकी मनसा गुडहोती है उसका धनभी  
 मित्र होता है २ चतुर्दि तीसरा जो टहलुवा कडा है सो टहलुवा इस कारण करके  
 चाहिये है कि टहलुवे करके भी शरीरकी बहुतसी क्रिया से छूटना है और मन्त्र  
 धिये सावधान होता है और जब सब क्रिया अपनी बापकी काने लगता है तब  
 इसका समय इसी क्रियाधिपे घीनता है ३ चतुर्दि कुलको जो गजा कहा है सो नि-  
 सकामयोजन यह है कि किसी राजा अथवा किमी महत्कामुल गैनेनहीतदा पा  
 जिसका कुल शिवाचार और साज्जिकी होता है तब उम पुरुष धिये भी सार्गिकी  
 गृहका प्रवेश होता है ताते इस प्रकार उचमकुल भी धनरूपे मार्गकी सहायता  
 काना है पर वह चा पदार्थ जो इन पारदपदार्थ को सिद्ध करने देंगे यहाँ हि  
 प्रथम भगवत्की मार्ग जानना १ प्रो० दुमय सर्ग ० और तीसरा धन २ प्रो० यैव  
 भगवत्की मोक्ष यह चांगें इच्छे दोवे है तब उमीका महापता कहते हैं फाँटे से  
 कि सहायता का अर्थ यह है जो भगवत्की नेम और शिवाकी शब्दाका साक्षात्  
 और गिनार होरे तब सहायता ईर्ष्याका नाम है पर प्रथम उ० भगवत्के मर्त्य  
 की पहिचान कही है सो यह पहिचान मर किमीकी अवश्य चाहिये फाँटे से कि  
 जो पुरुष परलोककी मन्तर्षकी शब्दाभी रचने और उमके सुमार्ग पर अथवा मार्गकी  
 पहिचान न मके तब उनको नाम कुछ नहीं होता ताते प्रसिद्ध हुआ कि इस  
 तबके मर्ये कार्य एक और पहिचान करके गिद्ध होवे है इस बिना गिद्ध नहीं

होते इसीपर संतजनों ने कहाहै कि भगवत् ने सर्व जीवोंपर दो उपकार कियेहैं सो प्रथम यहहै कि सर्व जीवोंको उत्पन्न कियाहै १ और दूसरा यह कि सब को अपनी अपनी क्रियाकी वृक्ष दीनी है २ सो वृक्ष भी तीन प्रकारकीहै प्रथम यह कि भले और बुरेको पहिचानना सो भगवत् ने यह बुद्धि सर्व मनुष्यों को दीनी है पर कोई तो भले बुरेको अपनी बुद्धिके अनुमार समझता है और कोई सत जनोंके वचनों, करके समझताहै ऐसे महाराजने भी कहाहै कि सम्पूर्ण मनुष्यों को उनके, गोगोंकी भलाई और बुराई की पहिचान देने दीनी है पर जो इससे विमुख हैं सो जानबूझकर अन्धे दृष्टे हैं १ पर जिम पुरुषको वृक्ष प्राप्त नहीं भई तिसका कारण यहहै कि यह ईर्ष्या और अभिमान और व्यवहार के जजाल विषे षषायमान हुआहै और इस करके सन्तजनोंके वचनों को श्रवण भी नहीं करता ताते इस वृक्षमे गून्थ रहताहै परतों भी भले और बुरेकी पहिचानका बीज सर्व मनुष्यों विषे पाया जाताहै १ बहुरि दूसरी वृक्ष यहहै कि वह वृक्ष शनै शनै करके धर्मके मार्ग विषे यत्नकरके प्राप्तहोती है और उसको अनुभवका मार्ग खुल जाताहै इसीपर महाराज ने भी कहाहै कि जो पुरुष दृढ़ होकर पुरुषार्थ करता है, तिसको मैं अपना मार्ग दिखावनाहू सो इस वचन विषे यही भेदहै कि महाराज ने अपना मार्ग, दिखावना कहा है पर अपने आप प्रयत्न बिना मार्ग दिखावना नहीं कहा ताते तीसरी वृक्ष इससे भी विरोध है सो उनका प्रकाश सतजनों के हृदय और अवतारों विषे प्रकट होता है और इम वृक्षकरके महाराज का दर्शन होताहै पर इम वृक्षको अपनी बुद्धि और चलकरके पहुँच नहीं सकना और यह वृक्षही जीवनरूप है बहुरि दूसरी जो थडा कही थी सो यहहै कि जो कुछ वृक्ष फरके जानाया सो तिसके मार्गविषे चलनेकी मनमा प्रकट होतीहै जैसे बालक जब किशोर अवस्था को प्राप्त होताहै तब धनके सप्रद और व्यवहार को भली प्रकार समझताहै पर जब बुद्धिके अनुसार को तब उसको थडावान् कहने हैं और व्यवहार की विद्या समझकर भलीप्रकार से न करने तब उसको थडाहीन फरतेहैं बहुरि तब यहहै कि जिस पदार्थको जाना और उसकी थडाभी उत्पन्न हुई तब उसके प्राप्त होनेके यत्न विषे बनकरके सर्व इन्द्रियोंको प्रवेश फगवे और तत्काल अपने प्रयोजन को प्राप्तहोवे बहुरि भगवत् की भेंट नो कहीथी सो यह है कि उस मनुष्य के हृदय विषे यत्न करके मरायता पहुँचती है और बुद्धि उ

उन्नत होती है और मन्त्र उन्निर्गमको शुभ मार्ग विषे चानेका मन प्रकट होता  
 है और यह महायत्ना प्रती है कि जने कोई पुत्र विसीरो प्रत्यग मार्ग वि-  
 न्तों की कुशांगी ने इन्ने वैतेवी सगज ही महायत्ना प्रकट मनुष्य के हाथ  
 विषे पापमोका भय उपजता है और शुभमार्ग प्रकट हो कर भावता है माने  
 जान वृ कि यह तो मोल्लह पत्नी गेने कोई मो मन्त्री इगनाक विषे पातलोमे  
 है जो परलोक के महापुरुषों और इनका पाहरर सम्बन्ध भी है वृत्ति इन विषे  
 केने और पदाथोंका सम्बन्ध भी मिनता है वर फल्लो रुही भजाईको पद्वैपवादे  
 और यह पुत्रा चानेमुगको पद्वैपता है और श्रीमोतानाथके दर्शनको देवता है  
 तो श्रीरघुनन्दन स्वामी केनेहें जो मन्त्र जीवोंको मार्ग दिवावनेहार है और  
 मन्त्र प्रसाद सहायता भी वही फल्ले है ॥ अथ इसका पूरक करना कि भगवत्  
 का धन्यवाद किस कारण नहीं किया जाता है ॥ ताते जान वृ कि दो कारण  
 फल्ले यह मनुष्य भगवत् का धन्यवाद नहीं फल्लेता तो प्रथम यहदे कि महा-  
 राजके उपचार जगपित्त है और इस जीवको महागजने उगमे सुख दिवेहें कि  
 यह मनुष्य उनको अर्हिदानभी नहीं मरता इनी पर महाशुभने भी भेदा है कि  
 नितने उपचार और सुग श्रीरघुनन्दन स्वामी ने दिवेहें तो मन्त्री प्रकट मने  
 नहीं जागकेतो और यह जीव उनका जाननेही नहीं ताते यह यातो प्रकट है कि  
 जब कोई पुत्रा किन्नी के उपचारको न जाने तर उसका धन्यवा भी नहीं बढ-  
 गकता जैसे यह प्राणभी सुख हा है और निन परन फें यह मनुष्य उपाग कि  
 नाथ संप्रदा है तो यह भी परगसुमन्त्र है काहेम कि इमी पाल फल्ले इन्ने  
 स्पलको सुग प्राणोंवादे और उद्यमिन यी उद्यत्ता मेदहोती है और याभी है  
 कि जब इस महायत्ना पर काम यहदेजारे तब निम्नन्टेइ माणकीगार इगना  
 पावता है पर यह मनुष्य एने सुगको सुगरी नहीं जानता और ऐसे महायत्ना  
 के उपचार जगन्त है पर मिनको नहीं जानता वृत्ति इन न्यामके उपचार को  
 भी तब जानता है जब किसी मनिन स्वान जगता इन्ने सगवा उपज सम्बन्ध  
 विषे जापद्वैपवादे और रहा इन का स्वान इन्ने तावादे तब परगकी मोमने-  
 वादे और स्वामके सुगको पहिदानवादे तैमेतीगव नेप्रोही वृत्ति मनुष्य कोही  
 है तब इगका भी कृप उपहा और सुग नहीं जानता पर जब मन्त्री विषे सु-  
 धीदा स्वया वृत्ति मन्त्र हो कि वे तब जानता है कि यह नेत्र मेने सुपन्त्र है और

जिसकी क्षोपश्रियोकर नेत्रोंको दु ख दूर होता है तब उमेका बडा उपकार जान  
तोहिसो ऐसे मनुष्यका दृष्टान्त यहहै कि जैसे किनी पुष्पका दहलेवा बुझा होताहै  
तब यह दग्धकारके अपने स्वामीकी दृष्टिलिपे सावधान रहताहै और जब उम  
को दग्धहन् करियेतब पूर्वता करके अचेत होरहताहै और दहलभी कुछ नहीं  
करता तैसे यह मनुष्यभी जबलग दु खको प्राप्त नहीं होता तबलग महागन के  
उपकार को नहीं जानता ताते इसका उपाय यहहै कि अपने चित्त विषे श्रीजा-  
नकीनाथ के उपकारों का स्मरण करतारहे और विसरे नहीं परे यह उपाय भी  
किसी बुद्धिमोक्षमे होमकताहै और इतरजीवों को यों चाहिये है कि जहारोगी  
होवे अध्याधन्दीखाने अथवा मृतकोंके स्थानविषे जावे और उनके दु खको देखे  
और चित्तविषे ऐसे जाने कि यह सब मृतकों योंही चाहनेहैं कि जो हफको एक  
दिनभी मनुष्यननु फिर मिलजावे तो हम अपने पापोंका पुश्चरण करलेपर  
इनको एकदिन भी जीवना नहीं प्राप्तहोता और मुझको केने दिन श्रायुधनको  
प्राप्त हूये पर मैं इम उपकारकी जानताही नहीं सो यह मेरी बड़ी मूर्खता है ३  
बुद्धिरे हूंसरो कारण मंगमुलता को यहहै कि यह मनुष्य उन उपकारों की भी  
नहीं जानता जो पदार्थ महाराजने सर्व जीवों को दियेहैं और सर्व किमीको  
सुगमशी प्राप्त होतेहैं जैसे प्राण और नेत्र और सूर्य और पैसे औरभी उन की  
नाई अनेक पदार्थहैं सो इनके सुखको सुख नहीं जानता और केवल पनहीको  
सुखरूप जानता है अथवा उम पदार्थको सुख नहीं जानता है जो क्षो किमी के  
पास न होवे और इसीको प्राप्तहोवे सो यहभी बड़ी मूर्खता है अहिमे कि जो पदार्थ  
सुखरूपहोवे और भागवतने अपनी परगउदारता करके सर्व जीवोंको प्राप्त किया  
होवे तब इमकरके उम पदार्थका सुख तो दूर नहींहोना पर जब यह पुरुष विचार  
करदेमे तब इसको भागवतने मेरे मुखभी बहुत दियेहैं जा और किमी के पास  
नहीं और केवल इसीको दियेहैं जैसे सब कोई योंही जानता है कि मेरी नाई  
और किसीकी बुद्धि नहीं और मेरे स्वभाव की नाई और किमीका स्वभाव ग  
लनहीं इसीकरके क्षो मनुष्योंको मूर्ख और अपलसणी कहना है ताते प्रमि-  
च्छहृजा कि अपनी बुद्धि और स्वभाव को मना जानना है सो जब ऐसे हुवा  
तब चाहिये कि अपने स्वामी के उपकार राभ्यवाहरे ओर और किमी के  
अनुग्रहों को न देखे पाहेमे कि जगत्त्रविषे ऐसा मनुष्य कोई नहीं कि जगत्त्रि

ज्ञान ज्ञानों है और नर इन्द्रियों को गुण मार्ग विषे न करने का वन प्रकट होता  
 है और यह महात्मा पेशी है कि जेने कोई पुत्र किसी प्रत्यक्ष मार्ग दि-  
 गारि और कुण्ड मार्ग ने जाने नेगीही मगर यह ही महात्मा चारके मनुष्य के हस्त  
 विषे पापहोका मय उपजता है जो शूभमार्ग प्रसिद्ध हो कर भावता है तासे  
 जान वृ कि यह जो नो नड क्यार्थ भेने फेहें सो नपही इनलो क विषे पापहोने  
 हैं और परलोक के महापद हैं और इनका पत्न्य नमन्व भी हे वही इन विषे  
 फेने और पदायोना नमन्व भी फिनता है वर पाला करी भनाइको पद्विषयो  
 और यह पुत्र्य चानेमुगको पद्विषयो है और श्रीमीनानाथके दर्शनको देमती है  
 सो श्रीगुरुद्वय स्वामी केनेह जो सर्व जीवाको मार्ग दिगावनेहारे हैं और  
 सर्व प्रसार महात्मा भी यही कने हैं। अगइमका प्रकट करना कि भावत  
 का बनायाद विम संरण नहीं किया जाता है ॥ तासे जान वृ कि दो फाय  
 करके यह मनुष्य मगन्व का धन्यवाद नहीं कन्मता तो प्रथम यह है कि महा  
 गजके उपकार नगपिनरें और डात जीव तो महात्मा जे इनमे गुण दिखे है कि  
 यह मनुष्य उनको वर्धितानभी नहीं सक्ता इभी पर महात्मा करने भी फेहाते कि  
 जितने उपकार और गुण श्रीगुरुद्वय स्वामी ने दिखे हैं सो किसी पूजा भी  
 नहीं जागको और यह जीव उनको जाननेही नहीं तासे यह चानों प्रसिद्ध है कि  
 जब कोई पुत्र किसी उपकारको न जागे वर उसका धन्यवाद भी नहीं यह  
 मफता जेमे यह प्राणभी लुप्त है और जिम पान को यह मनुष्य दयास के  
 नाथ सेमता है सो यह भी परगुणकर है फदिमे कि इसी पान का के धरम  
 स्थाको मुस प्राणेशोहै और नमगिन ही उष्ण ता मरहीनी है और मारी है  
 कि जन इम पुत्रका पद न्याय यंही गो नम निरमन्देह मार्ग ही नाई इमको  
 पावेना है ए यह मनुष्य गले गुमशो गुमशे नहीं जानना जो मेमे महात्मा  
 के उपाय बनता है वर विनको नहीं जानना वही इम ग्यामके उपकार को  
 भी नव जानता है जब किसी मजिन स्थान अथवा इगन्व अथवा ठप्प स्था  
 विषे ब्याहृ रता है और वहां इमका न्याय क दहीजाता है नव पानपी शीव  
 ताई और दयानेह गुणको दर्शिताना है मेमेही नव मेमोंही दृष्टि मगुम होकी  
 है नव इमका भी गुण उपहा जो गुण नहीं जानना पर पत्र मेमों विषे पुत्र  
 पीदा अथवा दृष्टि मन्व होनी है वर जानना है कि यह मेम के गुणपद भी

जिसकी ओपश्रियाकर नेत्रोंका दुःख दूर होता है तब उमका बढ़ा उपकार जान-  
तोहै सो ऐसे मनुष्यका दृष्टाने यहहै कि जैसे किमी पुष्पका दहलुवाबुल होताहै  
तब यह दहलुवाकफ अपने स्त्रीमीकी दहलुविये सायवान रहताहै और जब उम  
को दहलुवने करिये तब मूर्खता करके अचेत होरहताहै और दहलुभी कुछे नहीं  
करतातैसे यह मनुष्यभी जबलग दुःखको प्राप्त नहीं होता तबलग महागज के  
उपकार को नहीं जानता ताते इसका उपाय यहहै कि अपने चित्त विषे श्रीजा-  
नकीनाथ के उपकारों का स्मरण करता रहे और विसारे नहीं पर यह उपायभी  
किसी बुद्धिमोक्षमे होमकताहै और इतरजीवों को यों चाहिये है कि जहारोगी  
होयै अथवा घन्डीखाने अथवा मृतकोंके स्थानविषे जाये और उनके दुःखकोदेने  
और चित्तविषे ऐसे जानै कि यह सब मृतक योंही चाहते हैं कि जो हमको एक  
दिनभी मनुष्यतन्नाफिर मिलजाये तो हम अपने पापोंका पुरश्चरण करलेपर  
इन्को एकदिन भी जीवना नहीं प्राप्तहोता और मुझको केते दिन आयुर्वर्षको  
प्राप्त हुयेहै पर मैं इस उपकारको जानताही नहीं सो यह मेरी बड़ी मूर्खता है  
बहुते दूसरोंकारणमिनमुष्यताका यह है कि यह मनुष्य उन उपकारों को भी  
नहीं जानता जो पदार्थ महाराजने सर्व जीवों को दिये हैं और सब किमीको  
सुगमही प्राप्त होमेहै जैसे प्राण और नेत्र और सूर्य और ऐसे औरभी इन की  
नाई अनेक पदार्थहैं सो इनके सुखको सुख नहीं जानता और केवल घनहीको  
सुखरूप जानता है अथवा उम पदार्थको सुख नहीं जानता है जो और किमी के  
पास न होवे और इसीकी प्राप्तहोवे सो यहभी बड़ी मूर्खताहै किहिमे कि जो पदार्थ  
सुखरूपही है और भगवत्ने अपनी परमउदारता करके सब जीवोंकी प्राप्त किया  
होवे तब इसकरके उम पदार्थका सुख नो दूरे नहींहोना पर जब यह पुरुष विचार  
करदेमे तब इसको भगवत्ने मेधे सुखगी बहुत दियेहै जो और किमी के पास  
नहीं और केवल इसीको दियेहै जैसे सब कोई योंही जानता है कि मेरी नाई  
और किमीकी बुद्धि नहीं और मेरे स्वभाव की नाई और किमीकर स्वभाव ग  
लानहीं उमीकरके और मनुष्यों को मूर्ख और अपलखणी करना हेताने प्रमि-  
उद्वृत्ता कि अपनी बुद्धि और स्वभाव को मला जानता है जो जब ऐसे दृष्टा  
तब पाहिये कि अपने न्यामी के उपकारका धन्यवादो जो और किमी के  
भद्रगुणोंको नदेवे प्राहिमे कि भगवत्विषे ऐसा मनुष्य कोई नहीं कि चित्तविषे



अवगुण न होये वृद्धि जितनी यत्नितना और अवगुण इस जीवविषे पायेजाने  
 है सो यह आपही जानता है और कोई नहीं जानसक्ता सो भगवत् ने अपनी  
 दयाकरके गुण फलमेदे और प्रकृत नहीं किये वृद्धि जैसे कोई भ्रुमेप्रत्य इसके  
 दृश्य विषे पुरातहँ सो ऐसे मलिन होतहँ कि जब कोई और भी उनको जाने जब  
 अधिक निगदर और अयमान को प्राप्तहोये सो पदार्थ धीरुनन्दन स्वीकीका  
 यद्वा उपकारदे जो जो कोई नहीं जानता और यह उपकार मदायजने सब किन्ही  
 पर कियाहै ताने इसका भी धन्यवाद करना प्रगाणदे जो जो पदार्थ इसकेवास्त  
 न होये तब उसकी अभिज्ञापा करनी अयोग्य है ताहेमे कि यह महत्प्रजनना प्र-  
 न्यवाद नहीं होता और निरुमन्देह मनमूर्खी होती है ताते ऐसे जानना योग्य है  
 कि मेरेसाथ मदायजने ऐसे उपकार कियेहँ जिनका मैं अकिरागिहीं तथा और  
 मदायजने मेरेउपर सबप्रकार दयाकरके है सो इसीपर एवचार्त्ता है कि एक पुरुष  
 किन्ही मंत्रजन के पास आया था और अपनी निर्दलनता को प्रकृत रखलेहगा  
 तब उस मन्त्रने कदा कि जब नू विनाकार देखे तब नू निर्दलन तो नहीं काहे से  
 कि जब कोई पुरुष तुम्हको दृशयहस न्ययादेवे और तेरे नेत्रोंको निराकार कर  
 नू देखेगा तब उस पुरुषने कदा कि मैंतो यह नहीं चाहता वृद्धि सन्तु ने कहा  
 कि भना जब तेगीबुद्धि जगना गवस जगना हाय पांच दूरकीये तब नू पानीसा  
 महस करालेवेगा तब उमन कहा कि मैं योंभी नहीं करसक्ता तब सन्त्रने उस  
 को कदा कि पराण सहसकी मागमी तो तेरे पास है नू आणका निर्दलन क्यों  
 जानना है और पन ही बिना क्यों करता है और योंभीदि कि जब किन्हीके क-  
 दिये कि नू अपनी अवस्था को अमुक पदारी अवस्था के साथ फलवतरो सब  
 कोई नहीं करना और इस करके प्रविष्ट होनादे कि अपनी अवस्थाको रिश्या  
 जाननादे सो जब इस ही अवस्था मिशेवर्द्ध तर चाहिये कि इसकरके भी पन  
 पादको और अपने भागो के सम्मुख होवे ॥

नते हैं ताते पात्रमकार करके दुःख विषे धन्यवाद करना प्रमाण है सो प्रथम यह है कि दुःख इसको शरीर विषे होता है अथवा धन विषे होता है पर जबलग इसका धर्म अरोग है तबलग इसको धन्यवाद करना ही विशेष है जैसे एक पुरुष सुदेलनामी सन्त के पास आकर कहने लगा कि मेरे घर एक चौर आयकर सब सपदा चुराय ले गया तब सन्तने कहा कि दुर्वासनारूपी चौर जब तेरे हृदय विषे आय पड़ता और तेरे धर्म को चुराय लेता तब नू क्या करता ताने नू धन्यवाद करे वृद्धिरे दूसरा कारण यह है कि जो कोई पुरुष सहस्र लकड़ी मारनेका अधिकारी होवे और उसको बीस लकड़िया मारकर छोड़ दीजिये तब उसको भी धन्यवाद करना प्रमाण होता है तैसे ही ऐसा दुःख कोई नहीं कि जिससे अधिक दुःख न होवे ताते चाहिये कि जब कोई दुःख इसको प्राप्त होवे तब प्री जाने कि जब मुझको इससे भी अधिक दुःख होता तब मैं क्या उपाय करता ताते धन्यवाद ही करना विशेष है जैसे एक सन्त पंडित सत्संगी भ्रमियों के संग नगरको गली विषे चले जाते थे तब किसीने उनके ऊपर कोठापरसे राखकाधार डाल दिया तब वह सन्त अपने चमत्कार धन्यवाद करने लगे वृद्धिरे किसीने पूछा कि तुम धन्यवाद क्यों करने हो तब उन्होंने कहा कि मैं तो अग्नि विषे जलावनेका अधिकारीया पर श्रीजानकीनाथने अपनी दयाकरके राखपरही निवेश कर दिया है ताते मैं धन्यवाद करता हूँ २ वृद्धिरे तीसरा कारण यह है कि इस गनुष्यको जो दुःख होता है सो इसी के पापकरके होता है और जब वह दुःख इमलोक विषे न होवे तब परलोक विषे इम जीवको अधिक दुःख प्राप्त होता है इसीपर महाराजने भी कहा है कि इमलोकके दुःखसे परलोकका दुःख अतिकठिन है ताने इमप्रकार भी धन्यवाद करना प्रमाण है जो इमलोक विषे अल्प दुःख भोगनेकरके परलोक के बड़े दुःखमें लूटना है इमीपर महापुरुषने भी कहा है कि जिस पुरुषको इमलोक में कुछ दुःख भोगवने है तब वह परलोक के दुःखमें सुख होता है काहे से कि दुःख ही करके इम जीवके सम्पूर्ण पापोंका पुश्चरण होता है और जब यह पुरुष दुःख भोगनेकरके निष्पाप होजाता है तब परलोक विषे फिर दुःखों नहीं प्राप्त होता है जेमे कोई भोग किसी रोगीको पड़ती औषध पिनावे अथवा उपचाररुधि निष्ठासे सो यद्यपि प्रथम इन कष्टके दुःखभी होता है तौही उम गेगी को धन्यवाद करना प्रमाण है यादेंमे कि अत्रगाय दुःख भागन करे पटे कष्ट मे

सुखदं नद्वेदे वदुरी चोभा काण्य यद्वे कि पट द प जी भोगना के मो-इसके  
 पाण्य विने जिवावुआयां और यह इन अमर्यादी ज्ञानायामी जय उम वु  
 या अमार तेर ऊपर जाया और नू द पुतो भोगक इमसे उरविपन पुका  
 लोभा निरमन्दे भन्यवाद लना प्रमाण है जैसे एक मन्त मकारहते भवेजने  
 धे जेव अचम्याव सगामे गिरपटे पट्टी उरवर पन्यवाद काने लगे, तब लोभा  
 ने पूछा कि यहा धन्यवाद कानेका समय कौनथा तब इन्दने कथा कि मदापुत्र  
 की आता अम्यदी हानी है सो क्रियाप्रकार अन्वया नहीं होनी तान इस  
 मारहीयर से गिरपटना गेरे तब विने निष्ठा वृथाथा जोर लगे उमकी सो  
 मकर उल्लिखित वृथाए नो धन्यवाद चरनाई थ और पाचवा काण्य यद्वे कि  
 हसिनाइ कि दु-स्र जी कष्ट भोगने वरके पाचो क विने पुण्य हो प्राप्त होना है  
 सो मो दोषकार है पूषय यहदे कि जैसे मन्तजनों के वगनों विने जाया है कि  
 दु य भोगने वरके इम जीरके पाप धीण छेने है और पुण्यको प्राप्त होना है वरु  
 दुगपकार यहदे कि मूल सर्वथाया का माया की प्रीति है काहेसे कि माया की  
 प्रीति वरके भोगोंकी सुखरूप ज्ञानना है और इस मयाके जीवने को रसके  
 मानाते और पाचवा क विने जाने को वन्दे ज्ञाना नामकना है पर जब इसपुत्रको  
 इम जगत् विने इन प्राप्त होना है तबह तबके मयाका, प्रीति नष्ट होजाती है  
 और इममयाया वरीमाना ज्ञानव निराना यहवा है और उसको गमरका  
 कृत्य होना सुखरूप मानना है तबे जानव कि यह मय इ ल मय ए अम माया  
 और विना ज्ञानको इवद देत वृद्धि वि जवने है, या जव यह ज्ञानक वृद्धि  
 मात्र ज्ञान है तब उक्त विधानका मया ज्ञानना है और अन्वयाद काय है यह  
 से कि उमी दण्ड करक धानरुतो मन्तक गुण प्राप्त होने हैं तबेही इम-वैतये  
 विधाने क निमित्त मदापन भी इ ज्ञानके दण्ड भजता है लो इमी जीवने  
 वृद्धि मिजाय है तबे वृद्धि मात्र पुण्य दान विने भी धन्यवाद करी है । मया  
 जने न बटा है कि मदापन जव जने प्रीतिमाना का कृद पुत्र भजते है वर  
 माने उनके माय वरा कये है कि ये इम वीमे तुमकी आभक तुम देखा  
 जेते थे : इमवरेय गेगीरे मय वरना है कि वर म वरुका जायाका मया  
 को जोर कर मेर मेर पूर होयेगा वरतुमदय के वरु वीरतन प्राप्त होया मी इ  
 तर मरणाई है कि कई पुण्य मदापुत्रक पास जाकर इन्दनेना कि देखा

और मर्मप्रीति चौर लेगये तब महापुरुषने कहा कि निमका धन चौर लेजावे  
 अथवा जिसका तन रोगी होवे तब उसेको अधिक बनाई प्राप्त होती है वहुरि  
 महापुरुषने योंभी कहाहै कि भगवत् जिनको अपना भियतमेकियाचोहनाहै तब  
 प्रथम उमके ऊपर दुःख भेजताहै और योंभी कहाहै कि बहुतम्यानि सुखके ऐसैभी  
 है कि यह पुरुष अपने बक करके उनको नहीं पहुँचसका और महाराज दुःखको  
 भोगने करके तहाँ पहुँचाते हैं वहुरि एकेपार महापुरुष आकाशकी ओम् देव-  
 कर कहनेलगे कि मैं भगवत् की नेतको देखकर आश्चर्यवान् हुआहू कि जब  
 महाराज इमजीवको सुख देने हैं और यह पुरुष उमकरके भी प्रसन्न होनाहै तब  
 इमको भलाई प्राप्तहोती है और जब महाराज की आज्ञाकरके कुछ दुःखदोषे और  
 यह पुरुष धैर्य उममें करे तौभी भलाईको प्राप्त होनाहै अर्थात् मम्पत्ति में अन्य-  
 वाद और विपत्ति में धैर्य दोनों करके जीवकी मर्जाई है और महापुरुषने योंभी  
 कहाहै कि सुख भोगनेहारे पुरुष परलोक विषे यों कहेंगे कि जो मृत्युलोक विषे  
 हमार गरीर नखों करके कटना तो मलाया काहमे कि जिन्होंने मृत्युलोक में  
 दुःख सटाहै उनका परलोक विषे उत्तम सुख प्राप्त होने हैं और जब इसलोकके  
 सुख भोगनेहारे उन स्थानोंको देखने तब कहेंगे कि हम भी वहा दुःखी भोगने  
 तो यहा सुखके स्थानोंको प्राप्तहोने इमीपर एक सतने महाराजमे विनयकरे कि  
 हे महाराज! तुम मर्नमूर्खोंको नाशकरके सुख देनेहो और मास्त्रिकी मनुष्यों  
 को दुःख भोगातेहो सो यह दुःख कारणहै तब महाराजनेकहा कि यह मधवी जीव  
 मेरे हैं और दुःख सुखभी मेरे अियेदुयेहै परं जब मास्त्रिकी मनुष्योंविषे कुछ पाप  
 देवनाहू तब चाहनाहू कि मृत्युके समय यहपुरुष विगुड निर्लेप होकर मेरे नि-  
 कट प्राप्तहोवे ताते उमकी मृत्यु लोकमेंही दुःख भोगायकर उनके पापोंका पुष्क-  
 रणवलेनाहू और जो नासमी मनुष्यहै सो उम विषे जब कोई गुणदोषाहै तौभी  
 उमको गरीरके सुखोंकी मंगता होती है ताने में उसको शरीरके सुख भोगाहू  
 और उमकी परिपात पूर्ण अस्ताहू वहुरि जब यहपुरुष परलोक विषे जागाहै तब  
 गहाहू अरु भीगी होमाहै कोट ने कि कि पिमात्र जो उम विषे गुणदोषा मो उम  
 पुण्यरा वदना उमन मनुष्यको कि १ मास्त्रिकी मनुष्य उमके अरुणुमकी अक्ष-  
 रदेये ताते महाराजकी भोगनाहै और जब महाराजने यह राज महाराज को  
 पदाया कि जो कोई पुरुष धैर्य अथवाहै सो निमता पदवी सुदर्य देवनाहै

मुझकोनाहै व बहुरी चौधा कारण यह है कि यह दुःख जो भोगना है सो इसके  
 प्राग्भविष्ये लिखा हुआ था और यह दुःख अवश्य ही ज्ञानायासो ज्ञान उभय से  
 का अन्तर तो ऊपर आया और तू दुःख को भोगकर उससे सर्वधिन-पुत्रा  
 तोगी निरसन्देह धन्यवाद करना प्रमाण है जैसे एक सन्त सेवाद्वये चले जाने  
 थे तब अकस्मात् सवारीने गिरपड़े बहुरी उठकर धन्यवाद करने लगे तब लोगों  
 ने पूछा कि यहा धन्यवाद करने का समय कौन था तब उन्होंने कहा कि महात्मन  
 की आत्मा अवश्य ही होती है सो किसी प्रकार अन्यथा नदी दोनों ताने इस  
 सवारीपर से गिरपड़ना मेरे लेख विषे लिखा हुआ था और अन्तर्मे तुमको भो  
 गकर उल्लेखित हुआ है ताने धन्यवाद करना १ और पातवां कारण यह है कि  
 इसलोक विषे दुःख और कष्ट भोगने करके परलोक विषे पुण्य को प्राप्त होता है  
 सो भी दोषकार है प्रथम यह है कि जैसे सन्तजनों के वचनों विषे आगा है कि  
 दुःख भोगने करके इस जीवके पाप क्षीण होने हैं और पुण्यको प्राप्त होता है पर  
 दूसरा प्रकार यह है कि मूल सर्वपापों का माया भी प्रीतिसे काटे है कि मानकी  
 प्रीति करके भोगोंको सुखरूप जानता है और इस ससारके जीवनेको स्वीकार  
 मानता है और परलोकविषे जाने को इन्दीक्षता समझता है पर जब इसपुरुषको  
 इस जगत् विषे दुःख प्रसू होता है तब तब करके ससारकी प्रीति नष्ट हो जाती है  
 और इसससारको बन्दीखाना जान कर निकलना चाहता है और उसको ससारका  
 मृत्यु होना सुखरूप मानता है तब जानतू कि यह सब दुःख मेरे वैसे माना  
 और पिता बालकको दण्ड वेत्त बुद्धि सिखावते है पर जब वह बालक बुद्धि  
 मान् जानता है तब उस सिसातेको भला जानता है और धन्यवाद करता है कहे  
 से कि उमी दण्ड करके बालकको अपने क गुण प्राप्त होने हैं तब ही इस जीवको  
 सिखाने के निमित्त महाराज भी दुःख ही दण्ड भजता है और इस जीवको  
 बुद्धि भिजाता है तब बुद्धिमान् पुरुष दुःख विषे भी धन्यवाद करने के लिये सन्त  
 जनों ने कहा है कि महाराज जब अपने प्रतिगानों को सुनकर भजते हैं तब  
 मानों उनके साथ वचन किये हैं कि मैं इसमे पावे तुमको प्रतिक्रम देखा  
 जेने कोई उन्नमयेय गेगीके साथ वचनकी कि जब तू प्रभुके आटागा तथा  
 करे और जब तेरा रोग दूर होया तब तुमके मंत्र में बहूत शोकन हुआईगा सो तू  
 पर पश्चात्ता है कि कोई पुन्य गदापुरुषके पास जाकर कहनेजाता कि मेरे

और मर्मिणी चोर लगे थे तब महापुरुषने कहा कि जिसका धन घोर लज्जा के अथवा जिसका मन रोगी होवे तब उनको अधिक भलाई प्राप्त होती है बहुविध महापुरुषने योंभी कहा है कि भगवत् जिसको अपना भिद्यतमकिया चाहता है तब प्रथम उसके ऊपर दुःख भेजता है और योंभी कहा है कि महानस्थान सुखके ऐसे भी हैं कि यह पुरुष अपने एक करके उनको नहीं पहुँच सकता और महाराज दुःखको गोगाने करके तदा पहुँचाने है बहुविध प्रकार महापुरुष आकाशकी ओर देखकर कहने लगे कि मैं भगवत् की नेत्रको देखकर आश्चर्यवान् हुआ हूँ कि जब महाराज हमजीवकी सुख देने हैं और यह पुरुष उमकरके भी प्रमत्त होता है तब इसको भलाई प्राप्त होती है और जब महाराज की आज्ञा करके कुछ दुःख होते हैं और यह पुरुष धैर्य उममें करे तो भी भलाईको प्राप्त होता है अर्थात् सम्पत्ति में अन्यथा जो विपत्ति में धैर्य दोनों करके जीवकी भलाई है और महापुरुषने योंभी कहा है कि सुख भोगनेहारे पुरुष परलोक विषे यों कहो कि जो मृत्युलोक विषे उगारा गरीर नखों करके कटना तो मलाया कोहमे कि जिन्होंने मृत्युलोकमें दुःख मटा है उसको परलोक विषे उत्तम सुख प्राप्त होते हैं और जब इसलोकके सुख भोगनेहारे उन स्थानों की देखने तब कहो कि इस भोगी महा दुःखी भोगने तो यदा सुखके स्थानोंको प्राप्त होते डभीपर पर सतने महाराजमें विनयकरे कि दे महाराज! तुम मनमुखोंको नाशप्रकारके सुख देने हो और मानिकी मनुष्योंको दुःख भोगाने हो सो यह क्षमा मागण है तब महाराजने कहा कि यह मन्दी जीव मेरे हैं और इस सुखभी मेरे किये दृष्टे हैं पर जब मानिकी मनुष्योंविषे कुछ पाप देखता हूँ तब चाहता हूँ कि मृत्युने समय यह पुरुष विगुह निर्णय होकर मेरे निवृत्त प्राप्त होवे तबने उसकी मृत्युने कर्मोंकी सुख भोगा पर उमके पापोंकी पुग्धरणकरना है और जो नर्मिणी मनुष्यो सी उस विषे जब कोई गुणहोमा है तो भी उसको मरीचके सुखोंकी कामना होती है तबने मैं उसको मरीचके सुख भोगा है और उमकी कामना पूर्ण करना है अर्थात् जब यह पुरुष परलोक विषे जाता है तब महाराज यहाँ मोगी होता है कोट में एक क्षणमात्र तब उम विषे मृत्युना भो उम पुण्यकी बदला उमने मृत्युको विषे भोगना है और उमके अंगुष्ठोंकी मरण रदेये तबने महाराजकी भोगना है और जब महाराजने यह वचन महाराजकी कटाया कि जो कोई पुण्य प्राप्त करता है सो निवृत्त करनी सुगरीर उमना है

तब एक महापुरुषके भियनमने भयवान्ढोका पूजा कि हे महागज के प्यो ! ऐसे दण्डसे कैसे छुटोगे तब महापुरुषने कहा कि सात्विकी मनुष्योंको जो रोग होता है सो इसही दण्डकरके उमके पाप समाहोते हैं और परलोकके दु खों में छुट्वा दे जैसे एक महापुरुषके पुत्र का शरीर लूटा था तब उनके हृदय में कुछ भोक आया तब महागजकी आज्ञा करके दो देवना मनुष्यका रूपधरकर आय लड़े हुये और उनकी सगामें भगड़ा करनेलगे तब एकने कहा कि मैंने धरतीविषे बीज बोयाथा सो इमने मेरी खेती खुदहारी है बहुरि इमरे पुरुषने कहा कि इमने बीज मार्ग विषे बोया था और बाये दाहिने ओर उसके वही मार्ग न था ताते बट खेती अवश्य लखाडीगई है तब उन महापुरुषने प्रथम पुरुषमे कहा कि तू जानता न था कि मार्ग विषे खेती नहीं बोनी चाहिये काहमे कि पथी जनोंसे मार्ग खाली नहीं रहता बहुरि उसपुरुषने कहा कि क्या तू नहीं जानताहे कि मर्नमनुष्य कालके मार्ग विषे है और मृत्युको प्राप्तहोते है ताते पुत्रके मरनेकरके शोककर क्यों होताहै तब उन महापुरुषने जाना कि मैं भूलाहू और श्रीरघुनन्दन स्वामी की ओर प्रार्थना करके उम भून को क्षमा करावनेलगे और पेनेदी एक और सतथेसो जब उन्होंने अपने पुत्रको गतदेखा तब कहनेलगे कि हेपुत्र ! तू जागे चलता है परमे इम वानको प्रिय ग्वनाहू काहमे कि मैं इसजगके तेरे तगनुविरे तोला जाऊगा अर्थात् मेरे धैर्यकी परीक्षा होवेगी तब पुत्रने कहा कि हेपिता जी ! मैं भी योही चाहताहू जेमे तुम चाहने हो बहुरि एक और सन्तसे किर्माने कहा कि तुम्हारी पुत्री मृतहुई है तब उन्होंने कहा कि जब हमारे गाम थी तब भी रघुनन्दन स्वामी की थी और अबगी उन्हीकी ओरगई है बहुरि गदकदकर भजनकरनेलगे और कहनेलगे कि स्वामीकी यही आज्ञाहै कि तुम सर्वजगम्मा विषे भजन और धैर्यविषे दृढ़होवो और मेरी महायत्ना चाहो और एक सन्तने कहाहै कि महागज चाग्रकारके पुरुषोमे चाग मारतमाजोका स्वघनेकर परलोक विषे पहुँगे प्रथम धनमानोमे पहुँगे कि तुम मुनेमानकी नार्ध धन और गतविषे क्यों नहीं बर्से १ और दुमरे सुसुहृदी साध देकर रुयवानोंकी परीक्षा करेगे २ बहुरि तीसरे बेरागियोंसे पहुँगे कि ईमाकीनार्ध तुम र्यागी और निःस्पृष्टो जयोन हुये ३ और चौथे गेगी और ४ विषोंकी अस्पृष्टी साध देकर पहुँगे और उनमे धैर्यकी परीक्षा चाहगे ५ नामे धन्यशास्त्री विद्याका गोपना इननाहो बहुरि ॥

## तीसरासर्ग ॥

भय और आशाका सर्ग ।

ताते जान तू कि भय और आशा दोनों जिज्ञासुके पल्लव अर्थ यह कि सर्व शुभ गुणोंको और उत्तम गतियों को इन्हीं करके पहुँचताहै काहेमे कि गति मार्ग विषे जितने उपाय और साधनहैं सो शुद्ध आशा विना कदाचित् मिट्ट नहीं होते और जेते इन्द्रियादिक भोगहै सो सर्व्वदा इस जीवको छलनेहारे हैं ताते श्रीजानकीनाथ के भय विना इनका त्यागना महाकठिनहै इमी कारणसे सर्व सन्तोंने भय और आशाकी विषेपना कही है सो आशारूपी वाग जिज्ञासुको महाराजकी ओर खेंचती है और भयरूपी कोडा किसी स्थानविषे अटकने नहीं देता ताने में शुद्ध आशाका बलान रहूगा । बहुरि भयका स्वरूप वर्णन करूंगा ताते जान तू कि भगवत्की आशा सहित भजनकरना अधिक विशेष है काहेमे कि इस करके भगवत् की प्रीति उत्पन्न होती है और महाराजकी प्रीतिही उत्तम अवस्था है और भय करके भजन करना इसके समान नहीं होता काहेसे कि भयका कारण दुःखहै ताते भयकरके प्रीतिनहीं उपजती इमीपर महापुरुषने कहाहै कि मनुष्यको मरने के समय भगवत् की आशाही लाभदायकहै और महाराजने भी कहाहै कि जैसा कोई मुझको जानताहै मैं भी उसके साथ तैसाही बर्त्तनाहूँ और महापुरुष ने एक प्रीतिमान् को मृत्युके समय कहाथा कि अब तेरे निश्च विषे क्या अवस्था है तब यह कहताभया कि मैं अपने पापोंको देखकर गयवान् हाताहूँ और महाराज की दयाका आभार रखताहूँ यह बचन सुनकर महापुरुष ने कहा कि जिसको श्रीमीनारायणजी भय किया चाहते हैं तिमको ऐसे अवसरविषे अपना भय और आशातेने हूँ इमी पर एक गदात्मको आकाशवाणीबुई थी कि मैंने तेरे और तेरे परमप्यारे पुत्रविषे इमनिगिघ वियोग हागोहै जो तौ कहाथा कि इमको कहीं भेदिया न मारजावे और भाई इमके अनेतहोजाये तौ तेंने निश्चविषे उनकाभयकिया और मेरी रक्षाका आभारानुभू को न आया इमी कारण मे मैंने तुझको मजा दीन्हीं है इमी पर एक गदात्मने एरुपुरुषको देलाथा कि अपने पापोंकी अधिकता करके श्रीजानकीनाथ की दयामे निगगहूँआ था तब उमको महानाने कइ कि तू निगग गमहाहूँ काहेमे कि तेरे पापोंमे स्वाधीनी दया चनि पडैहै और गदापुत्रको अपने गिरनो



मे एकवार पेमे कहाया कि जेमे मेने महाराजकी बेगमारी को जानाते सो नन  
 लुगभी जानो तब गर्वना सेवतेरहो और अधिक बधवान् हेयो यह बचन सुन  
 कर सबही प्रियतम रुदन करनेलगे तब महापुरुष को आकाशवाणी हुई कि तुम  
 मेरे जहाँको हतना क्यों डग्याते हो इनको मेरी हृदयके वचन सुनोवो सो  
 ताकद महात्माको भी आकाशवाणी हुई थी किन्तु जेमेमाग भीनिर जोर सो  
 गनुपयो, के हृदयमें भी मेरी प्रकृति हृदयक इसी कहतेकि जब तू इनका मेरी श्या  
 के वचन सुनावेगा तब निस्तपे, मेरे आशयी प्रीति करेगे उमीपर पर पार्त्ता है  
 कि एक तपस्त्री अपनी ममाविषे लोगोको अधिक ताड़ना के मगन मनावता  
 या और भगवान् करताया तब उसको आकाशवाणी हुई कि जेसे तू मेरे नीति  
 को मेरी श्यामे निराश करवाहे तैमेही मैं भी तुम्हरो परलोक विषे निगम  
 करूंगा ॥ अथ प्रकृत प्रस्ताव्य आशुक्रा ॥ तानु जान तु कि एक शुद्ध जागार  
 और एक आशा अनुद्ध है सो केवत, मूर्खता और अनहे पर अल्पबुद्धि जीव  
 इस भेदको नहीं समझसके ताने, जो पुरुष धर्ती को क्रोमल करके शुद्ध बीज  
 बोवे और समय अनुमार अग मीचनवा रहे बहुरि मष्टको को दुरागे और सधे  
 विमो की रक्षाके निमित्त भगवन् का आसरा कहेतब इसरानाग शुद्ध आशये  
 और जब धर्ती प्रीमलहीन करे अथवा बीजही भला न बोवे अथवा समय अ-  
 नुमार जब जाही न देवे और विवेके बुद्धिसेनेकी आशाएवे तब इसका नाम  
 मूर्खता और अजहे तैमेही जा पुरुष हृदयविषे हृद प्रतीति राधे और मीचन रा-  
 भावसे निजका शुद्धके सोम मजनरु ॥ जज्ञमे प्रीतिरुपी भेरी को भोवता  
 रहे और नानाप्रकार के सापाके जनों मे भगवत्की खा चाडे तब इस घे सत  
 तानों ने शुद्ध आशा फला के तादर्य यह कि महाराज का जासगगी के ओ  
 कार्षीय स्वर्गसे रहित भी नहावे जइये कि कर्मवीर कर्मों मे रहित होनाई  
 निराशता का लक्षण है और जिस पुरुषकी मनीतिही हृद न होय अथवा भी  
 गमभजन विषे साधन न होय और विचारे मरिती आशाएवे तब इसका  
 नाम केवल मूर्खताहै उमीपर महापुरुषने कहा है कि जो मूर्ख अपने मनकरके  
 मनाके अनुमार वृत्ताहै और महापुरुषकी दयाकी आशा रखतेहो मूर्ख  
 है जो कर्म इस मनुष्य का कर्म योगत मा जबतब कर्म मनोरुपा तब म  
 दारी दयाका आगय सपा प्रमाण है उमीपर महापुरुषने कहा है कि मन

चितवनी के साथ बर्मकी दृढ़ता नहीं प्राप्तहोनी तातेजो पुरुष पापों का त्याग  
 करे तब उस त्यागके प्रमाण होनेका आशान्न है अथवा जो पुरुष पापों का  
 त्याग न करसक पर अपने लगणुओं को देखकर गोकवान् होवे और चित्तविषे  
 यह आशारासे कि मुझने भगवत् पापोंका त्यागक्यावे तब यहभी शुद्ध भागा  
 कहाती है पर जब पापोंको देखकर गोकवान् ही न, हावे, और त्याग किये बिना  
 आपको बरुगायाचाहे तत्र इसकानाम मनही का छे नहे यद्यपिःसुप्त मनुष्य इस  
 को शुद्ध भागा कहते हैं पर विज्ञानवानोंके मतजिसे इसकानाम व्यर्थ चित्तवनी  
 है इसीपर एकसन्तने कहा है कि जो पुरुष नरकोंकी बीजबोवे और स्वर्ग की  
 आशारासे सो महासुखे और एक प्रीतिवान् ने महापुरुषमे पुढ्याथा कि मन्-  
 भागियों का लक्षण क्याहै और भाग्यवानोंका लक्षण क्याहै तब उन्होंने कहा  
 कि जब तू प्रमान ममय उठनाहै तब तेरे चित्तकी अवस्था क्याहोती है तब उस  
 पुरुषनेकहा कि मैं भद्रकर्म और मलेगनुषोंको अभियुक्त रखताहूँ चतुरि शुद्धकर्म  
 को प्रीति, सयुक्त फल मर्हित दण्डनाहूँ और शीघ्रही अगीकार करलेनाहूँ और  
 जब मुझमे शुभकर्मका अयमर छकीजतिहै तब शोकवानहोनाहूँ तब महापुरुष  
 ने कहा कि भाग्यवानोंके लक्षणभी यहीहै और जिनकी अवस्था इनमे विपर-  
 र्थयहै सो मन्दभागी कहते हैं ॥ अथ प्रकट करना उपाय शुद्ध आशाके प्राप्त  
 होने का ॥ ज्ञाने जान तू कि यह आशास्त्री और प्र के अधिकारी दो मनुष्य  
 होते हैं प्रथम तो जिनने अधिक पाप कियेहैं और निराशता करके ऐसे जाने  
 कि भेरात्याग प्रमाण न होवेगा सो तिसकोभी भगवत्की दयाका आसरा ना-  
 हिमे १ और दूसरा अधिकारी वहहै जो प्रतिन सपविषे आपकी नाशकरना, हावे  
 तब उसको भी भगवत्की भागा मुण्डावरु होती है २ पर आशास्त्री ओष-  
 लप्रद मनुष्योंका अधिकार नहीं और उनको दण्डनाहूँ विपकी नाहूँ चतुरि यह  
 आशाभी दो प्रकार करते प्राप्त होती है सा प्रथम दो दृश्यही प्रीतिहै सो वि-  
 चार करके भगवत्की दयाको पहिचाने, और जिन जिन प्रकार महाराजने सर्व  
 जीवको आरक्ष्यरूप बनाया है सो तिसको भी भनीप्रकार मुझके और ऐसे  
 जाने कि महापुरुषके बिना कोई मनुष्य सुद नही, स्वयम्हा जाने भगवत्के उपा-  
 योंका पेशाहोवे तब भवराही इसको भगवत् की कृपाके उपर श्रुतिनि उपज  
 आसरीदे वारिने कि भगवत्ने इसको चाहो यदापे भी दिनेहै और फलन दया

मे परमा एते कदाचि कि नेमे,ने-महासज्जी वेपवाही को जानाहे मो ज्ञ  
 तुमभी जाना तव सर्वे रोवनेरहो ओ अधिक गववान् होयो यह वचन सुन  
 कर सबही भियतग रुदन कुतिलो, तव महापुत्र का आकारवाणी हुई कि तुम  
 मेरे तीर्थो को इतना क्यों दुखाने हो इनको मरी, दयाके वचन सुनारो भी  
 वाञ्छ सहारगाको भी आकारवाणी हुई भी कि नू मेरेमाग भीनि ए ओ, ओ  
 गनुष्यां के हृदयमें भी भेगी भक्ति हृदय कर रही करू, कि जब नू इनको मेरी दया  
 के वचन सुनवेगा तब निस्तदेह भे सायही प्रीति करेगी इमीपर एक शक्ति है  
 कि एक तपस्वी अपनी मभाविये लोगो को अविक्ततादाता के वचन सुनभता  
 या और गववान् कताथा तब वगहो आकारवाणी हुई कि जमे तू मेरे जास  
 को, मेरी, दयामे निराग करताहे तैयेही में भी तुमको परलोक विषे नियम  
 कल्पगा ॥ अथ मकर, करनो रूप आशाका ॥ ताते जान तू कि एक गृद्ध आसाहे  
 और एक जागा गगुद्ध हे सो केवल मूर्खता और अज्ञते पर अल्पबुद्धि और  
 इस भेदको नहीं समझके नाते जो पुरु मती को कोमल करके गृद्ध हीत  
 वेवे, और समय अनुमार गज मीरना रहे पुरि, कण्डको को, दूको औरसभ  
 विषो की रक्षा के निमित्त, भगवत का, आसग को तत्र इमकानाम गृद्ध जागाहे  
 और जब भुंती कोमलही न करे अथवा धीजही भला न येवे आसग समय ही  
 नुसार जब गृद्धो न देवे और खेतोने बुद्धिरोनेकी गाथासासे तब इमकानाम  
 मूर्खता और दगहो तैयेही गो पुरु, हृदयविषे हृद प्रतीति राखे और गोनन  
 गाव, गे, निचको गृद्धके, और भजगहो गजमे प्रतीतिको विनीता भीवस  
 रहे और नानापूजा के गावाके दलाम नानतरी रक्षा चाहे तब इमको मन्त्र  
 जनों न गृद्धमाशा करके वाहये यह कि गदागज का जासयोगी को के  
 कापीम कर्मो मे गति, भी न छाने, काटि कि करणीय ग-गो मे गति शोचक  
 नियमता का पमपु, और जिन पुत्रा ही प्रतीतिही, हृद न दारे अथवा भी  
 गवगवन विषे सायवान नू, और, विचविषे गुक्तिही भागसासे सबइम  
 नाव केव ग मूर्खताहे इमीपर महापुत्रने कहा हे कि जा मर्न अवन मन्स्य  
 मनाके भगुमा गृजनाहे, ओ, महासाती दयसी आया। उपजाहेगो गवमर्  
 हे जो गम इस गनुष्य का गमन यार कि मो, जब वह काय इमनाकिसा तव  
 ता ही दयादा आसग खना प्रपाण के इमीपर महापुत्रने कहा हे कि मर्को

नहीं करता तब महापुरुष ने कहा कि ऐमेही यथार्थ है फाहेमे कि श्रीजानकी जीवनके समान उदार और दयालु और कोई नहीं और महाराजने भी कहा है कि मैंने जीवोंको सुख और लाभ देनेके निमित्त उत्पन्न किया है और इनको इस निमित्त तो नहीं उपजाया कि मैं इनकरके किसी सुख और लाभको प्राप्त होऊँ और योंभी कहा है कि मेरे कोपमे मेरी दया अति बड़ी है ताने त्रिमपुरुष की प्रतीति मुझ बिना और किसी पदार्थपर नहीं होती मो नरकों के दुःखको नहीं देखता इसीपर महापुरुषने कहा है कि भगवत् अपने जीवों पर पिता और मातामे भी अधिक दयालु है कहे से कि मर्च मनुष्यों और पशुओंविषे जेती दया वर्धमान है सो महाराज के दयारूपी समुद्र की एक बुन्द है और योंभी कहा है कि श्रीराग पतितपावन है इम करके कि पुण्यवान् तो स्वाभाविकही सुखके अधिकारी होते हैं और योंभी कहा है कि परलोक विषे दो पापी मनुष्य महाराज के सम्मुख आवेंगे तब उनको आज्ञादेवेकी कि मैं किसीके ऊपर अन्याय नहीं करता ताने तुम अपने अशुभ कर्मोंके अनुसार नरकों विषे जावो तब वह दोनों पापी बंधेइये नरककी ओर चलेंते पर एकदोड़ता जावेगा और एक दीलाहोकर चलेगा तब उनको फिर आज्ञा देवेगी कि तू दीला क्यों चलता है और तू क्यों दोड़ता है तब एक पुरुष कहेगा कि हे महाराज ! तेरी आज्ञामे विमुख होने करके मैं नरकगामी हुआ हूँ तब दोड़नाहूँ कि अब तो आज्ञा से विमुख न होऊँ और दूसरा पुरुष इमप्रकार कहेगा कि मैं तेरी दयाका आभार रखनाहूँ सो इमी कारण से दीला चलताहूँ कि अतही हम पर क्षमा करता है यह वचन उनके सुन कर महाराज प्रसन्नहोवेंगे और इमप्रकार कहेगे कि तुम्हारी भावना निर्मल है नाते मैंने तुम दोनोंको मुक्तकिया वृत्ति पर प्रचार एक मनने महाराजने आगे बिनती करी थी कि हे महाराज ! मुझको पापोंमे क्षमाकरे तब आकाशवाणी हुई कि तेरी गई मर्चही पुरुष निष्पाप हुआ चाहने हैं पर तब मर्च ही निष्पाप हवें तब मेरी दया और क्षमा क्योंकर प्रगट होने तानर्थ यह कि भगवत्की दया और कृपाके वचन और भी अंतर हैं पर त्रिमपुरुषके दृश्यविषे मयही प्रवृत्तताहोवे मो निमका प्रवृत्तियोंका विचार तामत्प्रकार होनाहै और जो पुण्य जागेहो भोगोंविषे प्राप्त और अवेन होवे मो निमको भगवत् का भय और भेगयरा मार्ग अमीकार करना प्रपाय है इमपर एक मनने कहा है

कहे सुन्दरनाई के निमित्तभी देने पदार्थ टियेहें मो ऐसी उमकी दया मन्त्र  
 मृष्टिबिषे भरपूरहै मन्त्र और मकोहोंको भी उमने आश्वर्षरूप बनायेहै और  
 मवको अपने व्यवहार की बुद्धि दीनीहै ताने जो पुरुष एमे महाराजके उपा  
 काराको परिचानताहै सो कदापित् उममे निराश नहीं होता और ऐस जा  
 ताहै कि मगवत्की कृपा अपारहै १ बहुरि दूसरा उपाय यहहै कि जब अपनी  
 बुद्धि करके महाराजके उपकारोंको जान न सके तब भगवत् और सन्नजनों के  
 वचनोंका विचारकरे जेमे महाराजनेभी कहाहै कि मैं अत्यन्त दयालु कृपालु  
 और महापुरुषनेभी कहाहै कि जब इसलोक बिषे मात्स्यी मनुष्योंको कुछ गोग  
 आवनाहै तब उनके पापोंका पुण्यवण होताहै ताने नरकों के दुःखमे बह गुरु  
 रहते हैं और योंभी कहाहै कि जब इस मनुष्यमे कुछ अवज्ञा होतीहै और भाव  
 को मृता जानकर क्षमा कराया जाताहै तब महाराज प्रमत्त होकर देवतों मे  
 इसप्रकार कहतेहैं कि यह मनुष्य धनपदे इसकरके कि मुझको अतर्पणी जा  
 नकर भयान् दृष्टाहै ताने इसको क्षमा कर्लगा और योंभी कहाहै कि जब इस  
 मनुष्यमे कुछ पापकर्म हाताहै और दीननिष्ठ होकर उसको क्षमा कराया जा  
 ताहै तब देवता उम पापको निम्ननेही नहीं अथवा उम बुद्धनका पुण्यवण  
 होजाताहै और योंभी कहाहै कि जबनग यह पुरुष अपने पापको क्षमा करने  
 से चक्रिनन दोत्रे नरनग महाराज भी क्षमा करते रहतेहैं और यकिन कदापित्  
 नहीं होते इसीपर एक प्रीतिमान् ने महापुरुषमे पूछावा कि मैं क्याशक्ति मन्त्र  
 स्मरण सो करताहू पर मेरे पास धन कुछ नहीं ताके दया दातक पुण्यमे अपास  
 रहताहू सो हेस्वामीजी ! पल्लोक बिषे भोगिनि केमे होगी तब महापुरुष दंग  
 फरके कहनेलागे कि तू मन्त्र जनोंकी सभा बिषे प्राप्त होयेगा पर जब भित्तको  
 ईर्ष्या और अहिमान से शुद्ध राबे बहुरि रमनाको मूड और निन्दामे विषमिक्त  
 फरे और नेत्रों को कागादिक दृष्टिमे रोके और किमीकी ओर गानि फरके न  
 देगे तब तू निम्नदेह परममुनको पायेगा बहुरि उम भीतिमान् ने पूवा कि पर  
 लोचबिषे जीतों के पाप पुण्यका न्याय कौन करेगा तब महापुरुष न कहा कि  
 सबका न्याय आप भगवत्की करेगा यह बचन सुनकर बह पुरुष अधिक प्रसन्न  
 हुआ और दमकरके कहनेलागा कि तब न्याय करेताहू पुरुष उदार और द  
 गाराज होनहि तब अधिक तो क्षमा और दयाली करायेहै और न्याय करेताहू

नहीं करता तब महापुरुष ने कहा कि ऐमेही यथार्थ हैं काहेमे कि थी ज्ञानकी  
 जीवनके समान उदार और दयालु और कोई नहीं और महाराजने भी कहा है  
 कि मैंने जीवोंको सुख और लाभ देनेके निमित्त उत्पन्न किया है और इनको  
 इस निमित्त तो नहीं उपजाया कि मैं इनकरके किसी सुख और लाभको प्राप्त  
 होऊँ और योंभी कहा है कि मेरे कोपमे मेरी दया अति बड़ा है ताने जिमपुरुष  
 की प्रतीति मुझ बिना और किसी पदार्थपर नहीं होती सो नरकों के दुःखको  
 नहीं देखता इसीपर महापुरुषने कहा है कि भगवत् अपने जीवों पर पिता और  
 मातामे भी अधिक दयालु है काहे से कि सर्व मनुष्यों और पशुवोंविषे जेती  
 दया वर्तमान है सो महाराज के दयारूपी समुद्र की एक बुन्द है और योंभी  
 कहा है कि श्रीराम पतितपावन हैं इस करके कि पुण्यवान् तो स्वाभाविकरी  
 सुखके अधिकारी होनेहैं और योंभी कहा है कि परलोक विषे दो पापी मनुष्य  
 महाराज के सम्मुख आवेंगे तब उनको आज्ञाहोयेगी कि मैं किसीके उपर अ-  
 न्याय नहीं करता ताने तुम अपने अशुभ कर्मोंके अनुसार नरकों विषे जावो  
 तब वह दोनों पापी बांधेहुये नरककी ओर चलेंते पर एकदौड़ता जावेगा और  
 एक दीलाहोकर चलेगा तब उनको फिर आज्ञा होवेगी कि तू दीला क्यों चल-  
 ता है और तू क्यों दौड़ता है तब एक पुरुष कहेगा कि हे महाराज ! तेरी आज्ञामे  
 विमुख होने करके मैं नरकगामी हुआ हूँ ताते दौड़नाहूँ कि भय तो आज्ञा से  
 विमुख न होऊँ और दूसरा पुरुष इसप्रकार कहेगा कि मैं तेरी दयाका आभार  
 रखता हूँ सो इसी कारण से दीला चलताहूँ कि अचरों हम पर भगा करता है यह  
 वचन उनके सुनकर महाराज प्रसन्नहोवेंगे और इसप्रकार कहेंगे कि तुम्हारी भा-  
 वना निर्मल है ताते मैंने तुम दोनोंको मुक्तकिया चहुँपि एकचाम एक मन्वने  
 महाराजके आगे बिनती क्यों थी कि हे महाराज ! मुझको पापोंमे क्षमाकरो तब  
 आज्ञागवाणी हुई कि तेरीनाई मवटी पुरुष निष्पाप हुआ चाहते हैं पर जय मुख  
 ही निष्पाप होयें तब मेरी दया और क्षमा क्योंकर प्रकट होने तात्पर्य यह कि  
 भगवत्की दया और कृपाके वचन और भी बनेहैं पर जिमपुरुषके इत्यविषे  
 मयरी प्रवृत्ताहोवें सो विमर्शमेन वचनोंका विचार ताभ्यायक होनाहै और  
 जो पुरुष जागेहा गोर्गो विषे भावक और अचेन होवें सो निमको भगवत् का  
 भय और भेगपर। मार्ग अंगीकार पाना प्रमाउ है इत्यर्थ पर मन्वे रक्षा

करके मन्दरतारु के निमित्तभी जेने पदार्थ दिगेहे सो गेतेही उनही दया मन्त्रे  
 मृष्टिविषे मगपूहे गच्छर ओग मकोड़ाको भी उसने आरनगरकर बनायाहे और  
 मषको अपने २ व्यवहार की बुद्धि दीनीहै ताने जो पुरुष पेमे मडागजके उप-  
 कागोंको परिचानताहे सो फटाघित् उममे निराश नदीं हाता और पेमे जात  
 ताहे कि मगवत्की कृपा अपारहे १ वट्टी इमरा उपाय यहहे कि जब अपनी  
 बुद्धि फरके मडाराजके उपकागोंको जान न मके तब मगवत् और सन्नजनों के  
 बचनोंफा विचारकरे जैसे मडागजनेभी कहाहे कि में अत्यन्त दयालु हूणालु  
 और महापुरुषनेभी कहाहे कि जब इमलोरु विषे मात्स्यकी मनुष्योंको कुछशेम  
 आवताहे तब उनके पापोंफा पुण्यरण होनाहे ताने नरकों के दुषमे यह मृक  
 रहने हे और योंभी फहाहे कि जब इस मनुष्यमे कुछ अवज्ञा होनीहे और भाव  
 को भूना जानकर क्षमा कराया चाहेतहाहे तब मडाराज प्रसन्न होकर देवनों से  
 इमप्रकार कहनेहे कि यह मनुष्य कन्पद इस करके कि मुझको अतर्पीमी जा  
 नकर भयवान हूआहै ताने इसको क्षमाकरलगा और योंभी कहाहे कि जब इस  
 मनुष्यमे कुछ पापकर्म हाताहे और दीनविष होकर उसको क्षमाकराया चाहे  
 ताहे तब देवता उस पापको लिखतही नहीं अथवा उस बुच्छनका पुण्यरण  
 होजाताहे ओग योंभी कहाहे कि जबतब यह पुरुष अपने पापको क्षमाकराने  
 से चकित्तन होवे तबतब मडागज भी क्षमाकरने रहनेहे और भक्ति फदानित्त  
 नहीं होवे इमीपर एरु प्रीतिमान ने महापुरुषमे पूछावा कि में मधानकि भजन  
 सागण तो करताहू पर भेरे पात भन कुछ नहीं नाते दया दाने पुण्यसे अपात  
 रहताहू सो हे म्वाभीजी! परलोक विषे भेगीगानिकेमे हावेगी तब महापूजा हेतु  
 फरके कहनेनगे कि तू सन्त जनोकी मभा विषे प्राप्त होवेगा पर जब भित्तको  
 ईर्ष्या और अभिमान से गुच्छ रावे बहुरि मनुष्यको झूठ और निन्दामे चिबजित  
 करे और नेत्रोंको कागातिक दृष्टिमे रोके और किमीकी ओग रतानि करके न  
 देसे तब तू निस्मंदेह परमसुखको पावेगा बहुरि उम प्रीतिमान ने पूरा कि फ  
 लोकीविषे जीवों के पाप पुण्यका न्याय कोन करेगा तब महापुरुष न कहा कि  
 सबका न्याय नाप मगवत्की करेगा यह बचन सुनकर यह पुरुष अधिक प्रसन्न  
 हुआ और ईश्वरके कहनेनगा कि तब न्याय करनेहाग पूरा उदाओ और द-  
 पावान होनाहे तब अधिक तो क्षमा और दयाही कामाहे और अधिक नाइना

नहीं करता तब महापुरुष ने कहा कि गेमेही यवार्थ है काहेमे कि धीजानकी  
 जीवनके मगान उदार और दयालु और कोई नहीं और महाराजने भी कहा  
 कि मैंने जीवों को सुख और लाभ देनेके निमित्त उत्पन्न किया है और इनको  
 इस निमित्त तो नहीं उपजाया कि मैं इनकरके किसी सुख और लाभको प्राप्त  
 होऊँ और योगी कहाहै कि मेरे कोपमे मेरी दया अति बड़ीहै ताने जिमपुरुष  
 की प्रतीति मुझ बिना और किसी पदार्थपर नहीं होती सो नरकोंके दुःखको  
 नहीं देखता इसीपर महापुरुषने कहाहै कि भगवत् अपने जीवों पर पिता और  
 गातामे भी अधिक दयालुहै काहे से कि सर्व मनुष्यों और पशुवैविधे जेती  
 दया वर्धमान है सो महाराज के दयारूपी समुद्र की एक बुन्दहै और योगी  
 कहा है कि श्रीराग पतिनपावन है इस करके कि पुण्यवान् तो स्वामाधिकही  
 सुखके अधिकारी होनेहैं और योगी कहाहै कि परलोक विषे दो पापी मनुष्य  
 महाराज के सम्मुख आवेंगे तब उनको आज्ञाहोवेकी कि मैं किसीके ऊपर अ-  
 न्याय नहीं करता ताने तुम अपने अशुभ कर्मोंके अनुसार नरकों विषे जावो  
 तब वह दोनों पापी बांधेद्वये नरककी ओर चनेते पर एकदौड़ता जावेगा और  
 एक दीलाहोकर चनेगा तब उनको फिर आज्ञा होवेगी कि तू दीला क्यों चल-  
 ताहै और तू क्यों दौड़ताहै तब एक पुरुष रहेगा कि हे महाराज ! तेरी आज्ञामे  
 विमुख होने करके मैं नरकगामी हुआ हूँ ताने दौड़नाहूँ कि भय तो आज्ञा से  
 विमुख न होऊँ और दूसरा पुरुष इसप्रकार कहेगा कि मेरी दया से भयानक  
 रहनाहूँ सो इसी कारण से दीला चलताहूँ कि अगहीं हम पर भया करताहै यह  
 वचन उनके मृनकर महाराज प्रसन्नहोवेंगे और इसप्रकार कहेंगे कि तुम्हारी भा-  
 वना निर्मल है ताने मैंने तुम दोनोंको मुक्तकिया बहूँ एक बार पर मनने  
 महाराजके आगे विनती कयी थी कि हे महाराज ! मुझको पापोंमे भगाकरो तब  
 आज्ञागवाणी हुई कि तूनीनाई भवही पुरुष निष्पाप हुआ चाहने हें पर तब सुख  
 ही निष्पाप हवें तब मेरी दया और धरमा क्योंकर प्रगट होने नानर्थ यह कि  
 भगवत्की दया और कृपाके वचन और भी अगेर पर निमपुरुषके हृदयविषे  
 गहरी प्रसन्नताहोवे सो निमित्तसे धर्मवानोंका विचार लाभदायक होनाहै और  
 जो पुण्य भाग्यी भोगोंविषे पानत्र और अचेन होवे सो निमित्तसे भगवत् का  
 भय और भयानक पापों अमीकार कर्मा प्रभाव है इसीपर पर मनने कहाहै



कि जब छोड़ें हम प्रतीक कि पालोके विषे एक ही पुनो नरुणीणी होरे ता  
 तब मुक्तो गय करके येने भोगनाहे कि यह पुन मँहो न होके जोर जब छोड़  
 डम प्रकार रहे कि पालोके विषे एक ही मनुष्य उत्तमपत्त की अतिरामी होयगा  
 तब भगवत्की त्याका आनसाकरे एभे जाननाहू कि जो मटागत मुक्तकोही  
 पयपद ता अभिजाती करे तो क्या आश्वर्य है ताने छुट्टिमानों के हृत्प दिने  
 आना ओं मय ममान दोतेहैं । अथ वृत्त करनी पार्वी मयका ॥ ताने जान  
 तू कि श्रीः घनन्दन स्वामीका भया उत्तम अवेर । अहे वृद्धि इसकी विभेपना और  
 फलभी अधिकहे और वाण्ड इमका वृत्तहे इसीपर महापुरुष ने कहाहे कि सर्व  
 शुभगुणोंकी कृती भगवत्का भयहे वृद्धि संयम और वेगमय इमका गताहे इन  
 परके कि भय विना भोगोंका त्याग नहीं होता और भोगोंके त्याग विना सं  
 मार्थ के मार्गविषे चलनहीं सका और योगी कहाहे कि पालोके विषे सर्वजीवों  
 को इमप्रकार भगवत की ध्याना दवेभी कि येने जबमे नृपको उरत्र विचदि  
 तबमेही मैं तुम्हो सब धन नूनना ग्राह्य पर अब गृह वरन मेगामी सुनो कि ये  
 तुम्हारी चरन्ति तुमको प्रसिद्ध कर दिया गे रहे मु कि तुमने मन्वन्विरोधे  
 विभेप करके पूजाहे और येरे मन्वन् से विमुख हृपेहो गे भो मन्वन्ी नेगी  
 वेष्पयहे ताते में अब भयानों और वेष्पयों की विशेषता प्रकट करनाहूँ हे नो  
 संदर सब भोगी और मयमान पुरुषों की मुक्तिके माध रोगे और नृत्तम जेन  
 सांगी कहाहे कि ही निर्भयना और तो भय किमी मनुष्यके हृत्पविषे में दार  
 नहीं केना अर्थ यह कि जो इम ममान विषे मुक्तवे दनाहे तब में उमका पा  
 तोर विषे अभय चरनाहू और जो ममान विषे अभय रहनाहूँ सा पालोके वि  
 दीर्घ गय हा मानहे और वेदोपुत्रने भी कहाहे कि निमपुत्रता ममान का  
 मयके गा विचके साकरे मयगुणि दानी हे और जिनसे ममानवरी भय भुं  
 नहीं गये सर्व पदार्थों में दाना रचना ताने उत्तम बलिमान रह हे जिनसे  
 ममानवत्त भय अभिरहे और जो पुरुष भगवत्के भय करके प्रह रुदन करनर  
 मो निरगन्धेष्ट नृत्तक इ मने च्युता हे और निमक जयन पाताके मयदु वे  
 और भगवत क मय करके मयवद होनाहूँ हे मो विमय पाय मेगे मयताहे  
 उन आशुपुत्र विषे पूजा के पत्र निमपुत्रे और मा भी रहा हे कि मयवत्तों  
 धीनि नरे मय वे प्र दनाहे मय और मयवेदानी मयाना तनी और ही

पुरुष एकान्त विषे भगवत् का भजन करके भयमयुक्त होवे सो परलोक की तपनि विषे भगवत्की छाया तले रहैगा उसीपर एक सतने कहाहै कि जिसदिने मुझको भगवत्का भय अधिक हुआ है तिसदिने मेने अग्रयणी उत्तम वृक्षको पायाहै और एक और सतने कहाहै कि जैसे दो मिठोकी कपटविषे आग्राह्य आ किसी प्रकार नहीं छूटना तैसेही भगवत् की आशा और भयकरके निजामु के पाप शीघ्रही नष्ट होजाते हैं और एक और मन्त ने भी कहाहै कि जैसे यह मनुष्य निन्दनता से डरता है पर जब ऐसेही नरकों का भयकरता तब निस्तंदेह परगमुक्त को प्राप्तहोता काहेमे कि जो पुरुष इसलोक विषे महाराजका भयकरता है सो परलोक विषे अभय हेवेगा और इसनवसरी सन्नेने कहाहै कि जिस संगति विषे तुमको भगवत् भय उपजे सोई संगति करो तब परलोक विषे निर्भय होवोगे और जिनके बचन सुनकरके तुम्हारा भय दूरहोजाये तिनही संगतिकी बुखदायक जानो इसी पर आयजाने महापुरुष से पूछाथा कि महागज ने जो भट बचन कहाहै कि जो करतेहैं और डरते हैं सो इमका क्या अर्थहै तब महा पुरुषने कहा कि जिहामुजन भजन और दानादिक शुभकर्म करतेहैं और चित्त विषे मयवान् रहते हैं कि मत यह हमारा कर्म प्रमाण न होये और एक सन्नेने भी कहाहै कि भगवत् के भय मयुक्त रुदनकरो और जो स्वामाविकही तुमकी रीता न आवे तब यत्रकरके भी चित्तको कोमलकरो ॥ तब प्रकटरुना त्वभय था ॥ नाते जानतू कि भयरूपी अग्नि इस मनुष्य के हृदय विषेही प्रकट होनीहै पर इसका कारण पिढा और बूझहै जब इस मनुष्यकी परलोकके दुखकी वृक्ष प्राप्त होती है और स्थूल भोगोंको अपनी हानिका कारण जानताहै तब स्वामाविकही भयरूपी अग्नि उपज आनीहै पर बट वृक्षभी दोप्रकार होतीहै प्रथम तो जिसको अपनी पगरीनता और अग्रगुण प्रत्यक्ष मानते हैं और भगवत्के उपकारों को जानता है तब स्वामाविकही भयवान् होताहै जैम निर्मा पुरुष ने राजासे बहुत बखशीन पाई होवे बटुहि जब उसमे चोगी और स्वभिनागादिक अवता होजावे और ऐसे जाने कि मेरा यह धन तुम्हारा मताने वेसा है और मेरी अवतारो घनाकगनेहास भी और कोई नहीं और राजा का स्वभाव महा तेजस्वी है तब ऐसे जानकर जबभयही उमका दीये भय उपजता है १ बटुहि दूसरी वृक्ष यहहै कि जिसने शीघ्रगुणमार्गके ऐश्वर्य और धैर्यवर्तीकी गनी

प्रकार पहिनाता है तो निमको भी अधिक भय होता है जैसे कोई मुक्त अध्यात्मक  
 ही सिद्धक निरुत्त जाय वदुंथे तब स्वाभारि रहती भय एतक शक्ति के अंगों से तो  
 यद्यपि उसका डरना अवसा निमित्त नहीं होता पर उसकी प्रकृति और अ-  
 पनी निर्बलताको देखकर चम्पावमान होता है तेनेही निमने महाराजके ऐस  
 र्वको ऐसे समझा है कि जो सर्व वक्षयोंको नाश करे और तीभी उसका कुछ  
 यत्रा नहीं और जब सबको नरको विषे डारवे तो भी उनको कुछ दोष नहीं  
 लगना और यद्यपि उसको कृपालु दयालु कहते हैं तीभी उनका शुद्धस्वभाव  
 कृपा और कोपने पोछे और सर्व स्वभावों से निरूपे है ताके ऐसे जानने इच्छे  
 वह पुरुष सर्वदा भयविषे स्थित होता है और यद्यपि सतजन सर्व पापोंमे निर्दोष  
 हैं पर महाराज के ऐश्वर्य का भय उनको भी होता है इसी पर महापुरुष ने भी  
 कहा है कि जिसको भगवत् की पहिनात अधिक है सो निमको अधिक ही भय  
 होता है और महाराज ने भी कहा है कि निमने मुझको नहीं मिताना सो मुझसे  
 निम होता है और दाऊद महात्मा को भी आर्कानबाणों द्वारा भी कि हे दाऊद  
 मुझसे ऐसा भयवान् हो जैसे और मनुष्य भेषकी और गर्ज और सिद्धमे भय  
 वान् होते हैं ताके भयका कारण यही मुझसे बहुत इच्छा फल रूप विषे त्वि  
 जानते और सर्व इन्द्रियों विषे भी अदृष्टा है पर हृदा विष भयका लक्षण यह है  
 कि उसको सर्वभोग विरक्त होजाते हैं जैसे भिदके निकट गजामे अस्ति पदीना  
 ने विषे भोगोंकी चपलता नहीं रहती और अन्यन्त भयवान् होकर हीन निम  
 और एकत्र होजाता है अथवा उसको यही भय होता है कि देखिये मुझको ऐसी  
 ताड़ना होगी इनी कारण से अगिमान ईशं हृष्या जातना कुछ नहीं रहती  
 बहुत भयका लक्षण शुभ और इन्द्रियोंविषे द्रव्यपूजा होना है कि प्रथमतो श-  
 रीर शीघ्र और दुर्बल होजाता है और इन्द्रिया भी पापों विषे मवेदाने ही होती  
 और शुभदम्नो विषे मानवान् होती है पर भयकी आरम्भ दिने भी पर अदृष्टे  
 कि जब पापकृत भोगोंसे जाय तो यत्न भय तत्र उसको त्यागी रहते हैं और  
 जब राजसी भोगों से रहितदावे तब बेसारी बहाना है और तब गालिष्टा मीमां  
 विषे आचरुन हेवि तब उपरको सारा पुरुष कहा जाता है पर जो पुरुष विषे  
 अरुण नो रुदन क्लेशोंके और मुक्त भी प्राद्विनाहि करमाते बहुत भोगोंके  
 प्राद्विषे अनेक दोषसे तब उसका सगम शुद्धि कश्चे है और अथवा मा-

नहीं कहते काहे मे कि जो पुरुष किसी पदार्थ से भयवान् होता है तब कि उम की अङ्गीकार नहीं करता जैसे किसीको अपने वस्त्रविषे सर्प दृष्टि आवे तब शीघ्र उसको डारदेता है और मुनसे चादिचाहि करने नहीं लगता इसी पर एक सन्तमे किमीने सूझाया कि भयवान् का लक्षण क्या है तब उन्होंने कहा कि जैसे रोगी मरने के भयकरके सर्व भोगों को त्याग देता है तैसेही भयवान् पुरुष वह है जो परलोक के भयकरके सर्व सुखोंको विस्म जाने ॥ अथ प्रकट करना भेद भयकी अवस्थाका ॥ ताते जानू कि भयकी तीन अवस्था है सो एक अतितीक्ष्ण है १ और दूसरी समान है २ और तीसरी अतिनिर्मल है ३ पर सर्व विषे समान अवस्था विशेष है काहेसे कि निर्बल करके इम जीवका कार्य कुछ नहीं होता और यद्यपि कोई मल घड़ी असंकरके सचेत होता है पर तौ भी शीघ्रही अचेत होजाता है और तीक्ष्ण भय इमका नाम है कि भयकी प्रवृत्तता कर्के निराग और वरापर होजाये और शरीर की मृत्युकी जाय पहुँचे इमी कारण से यह दोनो अवस्था निवृत्ते कि इनकरके पापोंका त्याग और शुभकर्मों की दृढ़ता नहीं होनी और इस निमित्तभी भयकी अधिकता नहीं चाहिये कि भयका सुख ज्ञान और भरोमे और प्रेमकी नाई नहीं काहेमे कि भरोमा आदिक लक्षण सचही सुखरूप है और भय इनकी प्राप्ति के निमित्त चाहिये हे इमी कारण मे कहाँ कि भयका कारण पराधीनता और अजानता है इमकरके कि अमर्षता और अजानता के अण विनाशिये नहीं उपजता ताने महाराज को निर्भय स्वरूप कहा है कि उम विषे अजानता और अमर्षता का अन्त नहीं पायाजाता पर भगवत् मार्ग की साधनाके निमित्त इमजीवको अवश्यही भय चाहिये और अवेम पुरुषको भय ही सुषेते फल है जैसे चालक और पशु किसी प्रकार भयविना सुचेत नहीं होते ताने निर्बल भयका दृष्टान्त यह है कि जैसे पाशा चालक को बन्धकरके मारे बंधन पशुको अगुली करके मार्गविषे चलाया चाहे तब चालक और पशुकी अचेतता एक भी दूर नहीं होनी और तीक्ष्ण भयका दृष्टान्त यह है जैसे चालक और पशुको ऐसा शम्भचनाये कि उमका अगर्ह, फलनाये बंधन मृत्युकी प्राप्त होजाये सो जैसे यह दोनों प्रकार की तादना निष्पन्न राती है तैसेही तीक्ष्ण और निर्बल भयकरके इम तीव्रता कार्य मृत नहीं होना और तब यह पुरुष भयकी समान अवस्थाको पावाँदे तब पापोंमे दृष्ट लगता है और शुभकर्मोंकी

प्रकार पहिचाना है सो तिसको भी अधिक भय होता है जैसे कोई मुख्य अघानक ही सिंहके निकट जायपहुँचे तब स्वाभाविकही भय समुद्र रूपने उत्पन्न होतो है सो यद्यपि उमका डरना अवज्ञा निगिप्त नहीं होता, परो सिंहकी प्रवृत्ताता और खुपनी निर्बलताको देखकर कम्पावमान होता है वैसेही जिसने महाराजके ऐश्वर्यको ऐसे समझा है कि जो सर्व ब्रह्मण्डोंको नाश करदारे तोभी उसका कुछ घटता नहीं और जब सबको नरको विपे-द्वारदेवे तोभी उमको कुछ दोष नहीं लगता और यद्यपि उसको कृपालु दयालु कहते है तोभी उसका शब्देस्वरूप कृपा और कोपसे परे है और सर्व स्वभावों से निर्लेप है ताते ऐसे जानने वरके वह पुरुष सर्वदा भयविपे-स्थित होता है और यद्यपि सतजन, सर्व पापोंसे निर्दोष हैं पर महाराज के ऐश्वर्य का भय उनको भी होता है इसी पर, महापुरुष ने भी कहा है कि जिसको भगवत्की पहिचान अधिक है सो तिसको अधिकही भय होता है और महाराज ने भी कहा है कि जिसने मुझको नहीं जाना सो मुझसे निडर होता है और दाऊद महात्मा को भी आकांग्शाणी हुई थी कि हे दाऊद मुझमे ऐसा भयवान् हो-जैसे और मनुष्य भेघकी चोर गर्ज और सिंहसे भयवान् होते हैं ताते भयका कारण यही वृक्ष है बहुरि-इसका फल हृदय विपे-स्थित होता है और सर्व इन्द्रियों विपे भी प्रकटता है पर हृदय विपे-भयका लक्षण यह है कि उसको सर्वभोग विरस होजाते हैं जैसे सिंहके निकट राजाके कहिन बदीत्याने विपे भोगोंकी चपलता नहीं रहती और अत्यन्त-भयवीन् होकर डीना-चित्त और एकत्र होजाता है अथवा उसको यही भय होना है कि देखिये मुझको कैसी ताड़ना हेवेगी इसी कारण से अभिमान ईर्ष्या वृष्णा अनेतता सुख तर्ही रहती बहुरि भयका लक्षण शरीर और इन्द्रियों विपे इस प्रकार होते हैं कि प्रथम तो शरीर क्षीण और दुर्बल होजाता है और इन्द्रियां भी पापों-विपे-मवेशा-निर्दि-कैरली और युगकर्मों विपे सावधान होती है पर भयकी-अवस्था विपे भी बड़ा भेद है कि जब पापकृत भोगों से आपको बचाय रावे तब उसको दयागी कहते हैं और जब राजसी भोगों से रहित होवे तब वैरागी कहाता है और जब सात्विकी भोगों विपे आसक्त न होवे तब उसको सावा-एख्य कहा जाता है पर जो पुरुष किसी अवसर तो रुदन करने लगे, और मुझने भी प्रादिनाहि करता है बहुरि भोगोंकी प्राप्ति विपे अनेत होजावे तब उसको सगय बुद्धि कहते है और उसका नाक-बन्ध

नहीं कहने काहे मे कि जो पुरुष किसी पदार्थ से भयवान् होनाहै तब कि उम को अस्वीकार नहीं करता जैसे किसी को अपने वस्त्रविषे सर्प दृष्टिजावे तब जीव उसको डारदेताहै और मुन्ममे त्राहित्राहि करने नहीं लगता इसीपर एक सन्तमे किसीने पूछा कि भयवान् का लक्षण क्याहै तब उन्होंने कहा कि जैसे रोगी मरने के भयकरके सर्व भोगोंको त्याग देताहै तैमेही भयवान् पुरुष वहहै जो परलोक के भयकरके सर्व सुखोंको तिरम जाने ॥ अथ प्रकट करना भेद भयकी अवस्था का ॥ ताते जानू कि भयकी तीन अवस्थाहैं सो एक अतितीक्ष्ण है १ और दूसरी समानहै २ और तीसरी अनिनिर्बलहै ३ पर सर्व विषे समान अवस्था विषेमे कोहेसे कि निर्बल करके इस जीवको कार्य कुछ नहींहोता और रक्षीप कोई मल घड़ी उसकरके सचेतहोताहै पर तौमी शीघही अचेत होजाता है और तीक्ष्ण भय इसका नामहै कि भयकी प्रबलता करके निराग और वराध होजावे और शरीर की मृत्युकी जाय पहुँचे इसीकारण मे यह तीनों अवस्था निघट्टे कि इनकरके पापोंका त्याग और शुभकर्मों की दृढ़ता नहीं होती और इस निमित्तभी भयकी शक्ति नहीं चाहिये कि भयका सुल ज्ञान और भरोमे और भेगकी नाई नहीं काहेमे कि भरोसा आदिक लक्षण मवही सुखरूपहै और भय इनकी प्राप्ति के निमित्त चाहिये है इसी कारण मे कहाहै कि भयका कारण पराधीनता और अजानताहै इसकरके कि अमर्षना और अजानता के अण धिना भयनहीं उपजता ताते महाराज को निर्भय स्वरूप कहा है कि उम विषे अजानता और अमर्षना का अन्तरी नहीं पायाजाता पर भगवत् मार्ग की साधनाके निमित्त इसजीवको अन्तरपही भयचाहिये और अचेत पुरुषोंको भय ही सुचेत करेताहै जैसे बालक और पशु किसीप्रकार भयविना सुचेत नहीं होते ताते निर्भय भयका दृष्टान्त यह है कि जैसे पाना बालक को बन्सकरके गारे बाधरा पशुको अगुली करके मार्गविषे चलाया जात तब बालक और पशुकी अचेतता रचक भी दूर नहीं होती और तीक्ष्ण भयका दृष्टान्त यह है जैसे बालक और पशुको ऐसा अन्वचनमे कि उमका अगही कटजावे अपवा मृत्युकी प्राप्ति होजावे तो जैसे यह दोनों प्रकार की ताड़ना निष्फल होती है तैमेही तीक्ष्ण और निर्भय भयकाके इग जीवता कार्य कुछ नहीं होना और तब यह पुरुष भयवि समान अवस्थातो पाताहै तब पापोंमे दृगे लगताहै और शुभकर्मोंकी

श्रद्धा उपजती है ताते बुद्धिमान् पुरुष समान भयविषेही स्थित होते हैं और जब भयकी अधिकता होने लगती है तब भगवत्का आमरा चितवते हैं और जब भयकी निर्बलता होती है तब भगवत् की वेपरवाही को स्मरण करते हैं परं जो पुरुष भयसे रहित होते और आपको बुद्धिमान् कहावे तब जानिये कि उसकी बुद्धिही मन्द है और झूठाही अभिमान करता है जैसे कोई मनुष्य बेबकपदे विना आपको बैद्य कहावे तब वह केवल झूठाही कहाता है तैसेही भयविना और विद्या सबही झूठी है काहेसे कि सर्वविद्या का मूल अपना और भगवत् का पहिचानना है अर्थात् अपने अवगुणोंको भलीप्रकार देखना और भगवत्को सर्व गुणनिधान, समर्थ और वेपरवाही जानना ताते जिस पुरुष ने अपनी अधीनता और भगवत् की समर्थता को भलीप्रकार समझा है सो, तिसके हृदय विषे अवश्य भयही उपजता है इमीपर महापुरुष ने कहा है कि प्रथम इस जीवको भगवत्की वड़ाई और वेपरवाही को पहिचानना प्रमाण है वदुरि उसी महागजका दासहुआ चाहिये कि सर्वदा आपको दीन पराधीन देखता है सो जिस पुरुषने इस भेदको भलीप्रकार समझा है तब वह भयसे रहित क्योंकर होवेगा। अप मृकट करने भेद भयके ॥ ताते जान तू कि यद्यपि भयका उपजना किसी त्रास करके होता है पर वह त्रासभी भिन्न भिन्न भावकरके उपजती है जैसे पुरुषान्तरोंके त्रासकरके भयवान् होने हैं और जैसे पुरुषोंको अपने अवगुणोंका भय होता है और ऐसे जानता है कि मन पापों के त्यागकिये विना शरीर छूटजावे तो ही मारा अकाज होवेगा और किसीको यह भय होता है कि भगवत् मेरे सकस्योंका अन्तर्पामी है ताते जब मुझसे कुछ अवज्ञा होजावे और उसकी अपसन्नताको प्राप्त होऊ तब अविनाशी दुःखविषे दुःखितरहूंगा तात्पर्य यह कि इस मनुष्यको जिस जिस प्रकार भय उत्पत्ति होवे तब चाहिये कि उसीके उपाय विषे सावधान होवे जिसको अपने मलिनस्वभावका भय होवे कि मत में अपने मनके अधीन होकर पापों विषे आमल्ल होजाऊ सो तिमको चाहिये कि मलिन स्वभावसे विपर्यय होकर मलेस्वभाव विषे विचरै और जो पुरुष महागजको अन्तर्पामी जानकर भयवान् होवे तब चाहिये कि मलिन मन्त्रों से अपने हृदयको शुद्ध राक्षे पर जिन्नामुजनोंको अधिक भय यही होता है अन्तकालपर्यन्त मेरे धर्मका निर्वाह होवे अथवा न होवेगा और इससे भी विशेष गम यह है कि देखिये

महाराज ने मेरे भाग्य-विषे क्या लिखा है-काहे से कि जैसा जैसा महाराज ने जिस-जिस के भागों विषे लिखा है सो कदाचित् उलटना नहीं इसी कारण से फिनने पुरुष प्रथम पाप, कर्मों विषे आसक्त होते हैं और भगवत्की आज्ञा करके पीछे-उर्नकी अवस्था निर्मल होजाती है और केवे मनुष्य प्रथम चिरकाल पर्यन्त सात्त्विकी कर्म करते रहते हैं और पीछे उनकी बुद्धि विपरीत होजाती है और कुमार्ग को अंगीकार करते हैं ताते भाग्यवान् बही है जिसको महाराज ने आदिही सफेत विषे भाग्यवान् किया है और अति मन्दभागी बही है जिसको श्रीदि तेन विषे भाग्यहीन रचा है इमकारणसे बुद्धिमानोंको आदिनेत की भयहोता है सो यह भी महा विरोध है काहे से कि निमको अपने पापोंका भयहोता है सो वह पापों के त्यागने करके निडर और अभिमानी होजाता है और महाराजकी विपरवाहीका जो भयहै सो कदाचित् दूर नहीं होता इसकारके कि यद्यपि भगवत्ने सतजनों को उत्तम अवस्था विषे स्थित किया है और दुई बुद्धिओंको अशोभनि विषे डारा है पर जत्र विचार करके देखिये तो जगत् की उत्पत्तिके आदि में किसी ने भगवत्की अवज्ञामी नहीं करी थी और किसी ने सेवाकरके उसको रिहायाभी न था ताने कारण बिना निमपर वह दयालु हुआ है तिमको भला मार्ग दिखाया है और कारण बिनाही किसीको पापोंकी अभिलाषा विषे आसक्त किया है सो जैसा जैसा किसीको महाराजने लखाया है तैसा ही उसने लखा है जिसको स्थूल भोग सुखरूप दिवाये हैं सो ब्रह्म उनका त्याग नहीं करसका और जिसको विषयरूप लखाये हैं सो तिसने उन को अगीकार नहीं किया जिसके नेत्रोंको उसने मूदा है सो दुखको भी दुख नहीं जानसका और जिसके नेत्रोंको मधुने खोला है सो यह दुखके मार्ग विषे चलने नहीं सक्रताते धर्म और पापी दोनों पराधीन हैं और भगवत्की आज्ञानुसार पुण्य पारको अदण करते हैं महाराजने जिसको मन्दभागी किया है सो अशोभनिको इष्ट होता है और जिसको भाग्यवान् किया है सो परमसुखको प्राप्त है तात्पर्य यह कि जिस महाराज को किसी का भय नहीं और निमप्रकार चाहता है तैनेही कर लेता है और जिसके दुखको कोई नहीं फेरसका सो ऐसे महाराज से इच्छा भयान् होना मयास है इसी पर दाऊत जीपो आकाशवाही दृष्टों कि जेमे गरुडो मिहको देगहर प्रसन्न उपजवाँ नैगुरी मुकमे भयान्त दावो दारिने कि



जब किमीको सिंह मारना है तब सिंहको भये कुछ नहीं, आवता और किसी अवज्ञाके सम्मुख करकेगी महीं भारत और जब छोड़देवे तो भी किसीगुण व-  
 वगुणकारके नहीं छोड़ता ताते उमेका मारना और छोड़ना कारण विनाही कहा  
 है तैसेही जिसने महाराजकी वड़ाई और तेजकी इममकार समझाहे सो कदा-  
 चित् निर्भय नहीं होना ॥ अथ प्रकट करना भेर अन्तकालका ॥ ताते जानते  
 कि बहुते भयवान् पुरुष अन्तकालके भयकरके डरते हैं सो इसका कारण यह  
 है कि अन्तका समय महाकठिन होताहे और इसमनुष्यका मन क्षण क्षण विष  
 चलायमान है ताते जाना नहीं जाता कि उस समय विषे इसीका चित्त किस  
 स्वभाव विषे स्थितहोवेगा इसीपर एकबुद्धिमन्त्रिने कहाहे कि जब मैं पचास वर्ष  
 पर्यन्त किसी के संघट्टोऊ और उसकी अवस्थाको देखतारहू वृद्धि जबवह पुरुष  
 एकवड़ी मुझसे दूर होजावे तबभी मैं उसकी अवस्थाकी साखी न देख काहेमे  
 कि इसमनुष्यके गतकी वृत्ति महाचपल है ताते जाना नहीं जाता कि एकवड़ी  
 के अन्तकालविषे कैसे स्वभावको प्राप्तहोवेगा इसीपर एकसन्तने महाराजकी  
 दुहाई करके कहाहे कि किमी पुरुषको अन्तकालके भयमे निहर होना प्रमथ  
 नहीं इमकारके कि देखिये उसममय धर्मका निर्वाह होवेगा अथवा न होवेगा  
 और सुहेलसतने कहा है कि जिज्ञासुजन अन्तकाल के भय से एकास एकास  
 विषे डरतेपडते हैं वृद्धि एक सन्त मृत्युके समय रोनेलगे थे तब खोमाने उनसे  
 कहा कि तुम्हारे पापोंसे भगवत्की वड़ाई और दयालुता अति बड़ी है ताते तुम  
 रुदनमतकरो तब उन्होंने ने कहा कि यद्यपि मैं जानता हू कि जिस समय विषे  
 मेरी प्रतीति मलीप्रकार स्थितहैगी तब मैं पापोंको देखकरे गयवान् न होऊँ पर  
 मैंतो इतना भी नहीं जानता कि अन्तपर्यन्त मेरे धर्मका निर्वाह क्योंकर हो-  
 वेगा और सुहेलसन्तने कहाहे कि भीतिमान् को मनमुलनाका भय रहताहे अथ  
 यह कि ज्ञानवान् आर्हकारके फुल्लेको भी मनमुलना जाननेहे और ऐसे मनमुली  
 से डरते रहते हैं काहेसे कि अहंकार और कपट अन्तकाल विषे इमकी प्रतीति  
 को नष्ट करडानते हैं इसीपर इसनेवसरी सन्तने कहाहे कि मनके सकल और  
 शरीरकी क्रियाको भिन्नमार्गका दिखानाही कपटहे ताते अन्तकाल विषे ऐसे पु-  
 ष्टकी अवस्था स्थिर नहीं रहती पर मृत्युके समय जो इम जीवक सम्बन्ध व-  
 चायताहे सो इसके भी बहुत कारणहैं और इतका विस्तार प्रकटकरना प्रमाथ

नहीं ताते में दो कारणोंको प्रसिद्ध कहता हू प्रथम तो जिसने सन्तजनोंकी मर्यादासे विपर्यय क्रिया ग्रहण की नहै और अपनी सर्व आयुष्मन्मतके भारों विषे विताई है और उस मार्गको सूझा भी नहीं जानता होवे सो जन्मलेसकी मृत्युको समय आता है तब उसको कर्पाट खूब जाते हैं और प्रयमी क्रियाको सूझा जानने लगता है ताते उस अवस्थाके विपर्ययभाव विषे यद्यपि कुछ अल्प मात्र आरोग्यवत्की प्रतीति होती है पर उस समय वह भी निस्संदेह निवृत्त जानी है काहेसे कि वह प्रतीति आगे ही निर्बलेयी और जो पुरुष अनेक शास्त्रों के मंत्रोंको पढ़ता सुनता है सो तिसका निश्चय अवश्य ही स्थिर नहीं रहता और जिन पुरुषोंकी बुद्धि यद्यपि थोड़ी है पर सन्तजनोंके तन्त्रोंकी सीमायें जानकर हृदय प्रतीतिकर लेता है तब उसका निश्चय अन्नकाल विषे भी नहीं लेता इसी कारणसे महापुरुषोंके अधिक शास्त्र पढ़नेसे चर्जित क्रिया है और भोले मात्रकी प्रतीति को उन्होंने विशेष कहा है बहुरि दूसरा कारण यह है कि जिस मनुष्यकी प्रीति भोगोंविषे अधिक होती है तिसके हृदयविषे भी मगवत्की प्रतीति हृदय ही होती ताते जब अन्तकाल विषे स्थूल पदार्थोंका वियोग होता देखता है और इसकी इच्छा विनाही इसको परलोककी और लिजाने है तब ऐसी इच्छा तृडिना और भोगोंके वियोग करके वह निर्बल प्रतीति भी दूर हो जाती है जैसे किसी पुरुषकी प्रीति पुत्रके साथ अल्प होवे और वह पुत्र पिताको अधिक प्यारी मस्तुको तलिया चाहे तब उस पुत्रके साथ पिताकी अल्प प्रीति भी नहीं रहती और पुत्रि रुद्ध मगव आता है और जो पुरुष मगवत्की अधिक प्रीति करके आगे ही सन्त जन्मोंसे विक्रम हुआ है सो तिसका अन्तकालका भ्रय नहीं होता काहेसे कि उसको भोगोंका वियोग सुखरूप भासता है और उसकी प्रीति सूक्ष्मपद विषे अधिक होती है ताते उसको शरीर के नष्ट होनेविषे ग्लानि नहीं होती और अन्तकालकी भलाई का लक्षण यही है पर जो पुरुष ऐसे जाहे कि अन्तके अवसर विषे भिरे चित्तकी वृत्ति अडोल रहे तब चाहिये कि प्रथम तो सन्तजनोंकी मर्यादासे विपरीत निश्चयको अङ्गीकार न करे और उनके यथार्थ चर्चों पर हृदय प्रतीति राखे बहुरि और सन्त पदार्थोंसे विक्रम होकर मगवत्की प्रीति विषे स्थित होवे पर मायाके पदार्थोंसे विक्रम तब ही होता है जब प्रथम धर्मकी मर्यादको ग्रहण करे और पापोंसे रहित होवे और मगवत्की प्रीति इस करके अधिक होती है कि

जब किसी को मिह मांगना है तब मिहको भय कुछ नहीं आता और किसी अवज्ञाके सम्मुख करकेगी नहीं मारता और जब छोड़देवे तो भी किसीगुणअवगुणकारके नहीं छोड़ता तात्रे उसका मारना और छोड़ना कारण विनाही कहा है तैसेही जिसने महा राजकी वड़ाई और तेजकी इसप्रकार समझाहे मो कदाचित् निर्भय नहीं होता ॥ अत्र प्रकट करना भेद अन्तकालका ॥ ताते ज्ञान तू कि बहुते भयवान् पुरुष अन्तकाल के भयकरके डरते हैं सी इसका कारण यह है कि अन्तका समय महाकठिन होताहै और इसगनुष्यका मनक्षण क्षण विषे चलायमान है ताते जाना नहीं जाता कि उस समय विषे इसीका चित्त किस स्वभाव विषे स्थितहोवेगा इसीपर एकबुद्धिमानने कहाहै कि जब मैं पचास वर्ष पर्यन्त किसी के संघटोऊं और उमकी अवस्थाको देखनारहू बहुरि जबबहुपुरुष एकवडी मुझसे दूर होजावे तबभी मैं उसकी अवस्थाकी साक्षी न देख काहेमे कि इसगनुष्यके मनकी वृत्ति महाचपलहै ताते जाना नहीं जाता कि एकवडी के अन्तकालविषे कैसे स्वभावको प्राप्तहोवेगा इसीपर एकसन्तने महाराज की वड़ाई करके कहाहै कि किसी पुरुषको अन्तकालके भयसे निडर होना प्रमाण नहीं इसकरके कि देविषे उससमय धर्मका निर्वाहहोवेगा भयवा नहोवेगा और सुहेल सतने कहा है कि जिज्ञासुजन अन्तकाल के भय मे व्यास स्वाम विषे डरनेभरते हैं बहुरि एक सन्त मृत्युके समय रानेलगे थे तब लोगोंने उनसे कहा कि तुम्हारे पापोंसे भगवत्की वड़ाई और दयालुता अभि वदी है ताते तुम रुदनमतकरो तब उन्होने कहा कि यद्यपि मैं जानता हू कि जिस समय विषे मेरी प्रतीति भलीप्रकार स्थितहोगी तब मैं पापोंको देवभर भयवान् न होऊं परं मेतो इतना भी नहीं जानता कि अन्तपर्यन्त मेरे धर्मका निर्वाह क्योंकर होवेगा और सुहेलसन्तने कहाहै कि प्रीतिमान् को गनमुपनाका भय रहताहै अर्थ यह है कि ज्ञानवान् अहंकारके फुटनेको भी मनमुत्तवा जानसे है और ऐसे मनमुत्ती से डरते रहते हैं काहेसे कि अहंकार और कपट अन्तकाल विषे इसकी प्रतीति को नष्ट करवाने दे इसीपर उसनेधरती सन्तने कहाहै कि गनके सकर्यों और शरीरकी क्रियाको भिन्नभावकर दिमानाही कपटहै ताते अन्तकाल विषे येपुस्यकी अवस्था स्थिर नहीं रहती पर मृत्युके समय जो इस जीवका सम्बन्ध बलाजानाहै सो इसके भी बहुत कारणहैं और इसका विस्तार प्रकट करना प्रमाण

नहीं ताते मैं दो कारणोंको प्रसिद्ध कहता हू प्रथमतो जिसने सन्तजनोंकी मर्यादासे विपर्यय क्रिया ग्रहण कीनहै और अपनी सर्व आरुप्य मर्ममत्तके मार्ग विषे विताई है और उस मार्गको भूझा मी नहीं जानता होवे सो जान उसकी मृत्यु का समय आता है तब उसके कर्माट सुत्त जाते हैं और अपनी क्रियाको भूझ जानने लगता है तब उस अत्रस्थके विपर्ययभाव विषे यद्यपि क्रुद्ध अर्ली मात्र आगे भगवत्की प्रतीति होती है पर इस समय वह भी निस्संदेह विचल जाती है काहेसे कि वह प्रतीति आगे ही निर्बलेयी और जो पुरुष अनेक शास्त्रों के मतों को पढ़ता सुनता है सो तिसका निश्चय अवश्य ही स्थिर नहीं रहता और जित पुरुषोंकी बुद्धि यद्यपि थोड़ी है पर सन्तजनोंके वर्णोंकी समर्थ जानकर हृदय प्रतीतिकर लेता है तब उसका निश्चय अन्तकाल विषे भी नहीं लेता इसी कारण से महापुरुषे अधिक शास्त्र पढ़नेसे चर्जित किमो है और भोले भावकी प्रतीति को उन्होंने विशेष कहो है बहुरि दूसरा कारण यह है कि जिस मनुष्यकी प्रीति भोगोंविषे अधिक होती है तिसके हृदयविषे भी भगवत्की प्रतीति हृदय ही होती साते जब अन्तकाल विषे स्थूल पदार्थोंका विभोग होता देखता है और इसकी ईर्ष्या विनाही इसको परलोककी और लिजाने है तब ऐसी दीर्घ तिदिना और भोगोंके वियोग करके वह निर्बल प्रतीति भी दूर हो जाती है जैसे किंसी पुरुषकी प्रीति पुत्रके साथ अल्प होवे और वह पुत्र पिता की अधिक प्यारी मस्तुकोतनिया चाहे तब उस पुत्रके साथ पिताकी अल्प प्रीति भी नहीं रहती और पुत्रिच्छ व्रज आता है और जो पुरुष भगवत्की अधिक प्रीति करके आगे ही सर्व मदाओंसे विरक्त हुआ है सो तिसकी अन्तकालका भ्रय नहीं होता काहेसे कि उसकी भोगोंका वियोग सुखरूप भासता है और उसकी प्रीति सूक्ष्मपद विषे अभिक्त होती है ताते उसको शरीर के नष्ट होने विषे ग्लानि नहीं होती और अन्तकालकी भलाई का लक्षण यही है पर जो पुरुष ऐसे जाहे कि अन्तके अवसर विषे और चिन्तकी वृत्ति अडोल रहे तब चाहिये कि प्रथम तो सन्तजनोंकी मर्यादासे विपरीत निश्चयको अङ्गीकार न करे और उनके यथार्थ चर्चनों पर हृदय प्रतीति वाले बहुरि और सर्व पदार्थोंसे विरक्त होकर भगवत्की प्रीतिविषे स्थित होवे पर मायाके पदार्थोंसे विरक्त तब ही होता है जब प्रथम धर्मकी मर्यादको ग्रहण करे और पापोंसे रहित होवे और भगवत्की प्रीति इस करके अभिक्त होती है कि

जो जिन जनो की संगति और भावत्व भजनविषे सावधान होने और कुपयोगियों  
 का त्यागकरे पर जिसके हृदय से गायत्री की भीति दूर न होवे सो अन्तिकाल के  
 समयमे किनीप्रकारसुख नहीं होता ॥ अथ प्रकटकरना उपाय भयकी प्राप्तिका ॥  
 ताते जानतू कि प्रथम जिज्ञासुजन को धर्मके मार्गकी बूझ प्राप्त होती है और  
 उसही बूझ करके भगवत्का मय प्राप्तहोनाहै वही भयकरके त्यागभोग्याओं  
 संतोष उत्पन्न होते हैं और संतोष करके निष्कामता और भगवत्को भजनेका  
 रहस्य बढ़ता जाताहै ताते प्रसिद्ध हुआ कि सर्व शुभगुणोंका कारण भगवत्  
 का भयहै और भयकी प्राप्तिके मार्ग तीनहैं प्रथम तो उच्चम मार्ग विद्या और  
 वृद्धहे इसा करके कि जिसने महाराज के प्रेश्वर्य और तेज और वैभवासाईके  
 गतीप्रकार समझा है और जीवोंकी पराधीनता को भी जानाहै विषयवद्वेषके  
 और भास्यवान् सब वित्तोंकीसी कारणके केवल श्रीमहाराजकी आँउ के प्रकट  
 हैं तब उसको अग्रशयही भय उपज आताहै जैसे सिद्धके निकट प्रकट हो  
 भयरूप होजाताहै इसी पर सन्तजनोंने कहाहै कि जिस मनुष्यकी हाराजके  
 धिक बूझहोती है तेताही उसको अधिकमय उपजताहै और परकीना प्रकट  
 कर्तन करतेये तब उतको आकाशवाणी हुई कि तुम काहेको रोते न हो  
 मने अमये कियाहै तब महापुरुषने विनतीकी कि हे महाराज ! मेरा  
 समझ नहीं सका ताते इसीनिमित्त येताहू कि मत यहभी परीक्षाहोने  
 काशानार्थहुई कि ऐसेही त्वयार्थ है ताते मेरे भयकरके रोतेरहो ताते  
 अत्रे न होतो बहुरि एकवार मीतमूलों की लड़ाई विषे महापुरुषकी मय  
 गारीर्गधी तब महापुरुष नयमयुक्त होकरा प्रार्थना करनेलगे कि हे  
 साखिकी सन्मुखीकी सहायता करनेहारे तुमहीहो उससमय विषे प्रकट  
 मियतमनोकरा कि तुम वैश्य करो इसकाकी कि प्रहरीज मे तो रह  
 होनीकीहीहै सो संगवत् सर्वेश्वर अपने वचनों का निर्वाड, करनेहो  
 मुखम दृष्टिकरके दिविषे तो उससमय विषे उसकी अवस्था महाराजकी  
 हित महापुरुषके ऊपर ईदगी और महापुरुषने महाराजकी सेवावादी  
 कर समझाया कि जब यहदुर्गमी जीते न करे तब उसका क्या प्रयोजन  
 यद्यपि उसने आपही कटाये प्रजा वंद्यवनमी परीक्षाही के निमित्त  
 तथा आश्वयं हे कहैमेकि उसके परेव और कर्तविके भेदको कोई पुरा जान

नहीं सका । बहुरि दूसरा मार्ग । भयकी प्राप्ति का यह है कि भयवानोंकी सगति करके भी अर्जयही भय उपजता है जैसे माता पिताको सर्प से डरता देखकर बालक भी सर्पसे डरने लगता है पर यह जो भयवानोंकी संगति विषे भय उपजता है सो अथवा बुझके भयसे न्यून है, काहे से कि जैसे बालक देखादेखी करके सर्पसे डरने लगता है तैसेही जब किसी मन्त्रवाले सपेरे के हाथ विषे सर्पदेखता है तब वह भी सर्पको पकड़ा जाइता है ताते चाहिये कि जबलग इस मनुष्यकी बुद्धि हृदय जेहि विषे तबलग ज्ञेय पुरुषोंकी संगति न करे और निहद विद्यावातोंकी अगती, क्रदाचित्की न करे, बहुरि तीसरा मार्ग यह है कि जब भयवान् पुरुषोंकी संगतिको पाय न सके तब भयवानोंकी अवस्था और उनके जचनोंको श्रवणकरे और अपने चित्त विषे ऐसे जाने कि जब ऐसे बुद्धिमान और वैराग्यवान् पुरुष दरते रहे तब हमको अवश्यही भय चाहिये इसीपर महापुरुषने कहा है कि ज्ञान मुक्तको आकाशवाणी होने लगती है तब ममत्करणे मेरा शरीर क्लृप्ता है कि देखिये महाराजकी मुक्तको कैसी । आज्ञा होवेगी और जब दाऊद रोने लग्यो तब स्त्रियोंके अशु मवाह से श्वशुर परचासा उपजा आई थी और दाऊदजीने महाराजके शिरोधार्यो प्रार्थना करी थी कि हे महाराज मेरे पापोंको मेरे हाथों पर लिख दो तब मैं अपनी अवज्ञाको सर्वदा देखतारहू सो भगवतने ऐसे ही किया तब वह अपने हाथोंको देखकर सर्भकिया विषे रोते रहे और जब जलपान करने लगते तब झीम् के जलसे षटोरा भरजाता था बहुरि एकवार दाऊद ने योंभी कहा कि हे भगवन् ! तुम मेरे रोनेकी ओर नहीं देखते तब आकाशवाणी हुई कि तू अपने रोनेकी आर्त्ता करता है और अपना स्वरूप तुम्हको विस्मरण होगया है इसकरके किमेंतो प्रेसा बेपरवाह कि जब मैंने आदि मनुको उत्पन्न किया था तब तबही देवता उसके दास करदिये थे और औरभी नाना प्रकारकी वस्त्र शोष उसको दीन्दी थी और उसको अग्रजा प्रधान वताया था पर जब उममे एक ही अवज्ञा हुई तब उसको शीघ्र ही अपने द्वारसे गिरा दिया ताते जो कोई मेरी आज्ञा मानना है तब मैं ही उसको ज्ञानी करत हूँ और जो पुरुष मुझसे विमुख होना है तब अवश्य ही वोको भयको देखता है ताते जब तू मेरे ही सम्मुख होवे तब मैं तुम्हको मुक्त कर दूंगा बहुरि दाऊदजीका रुदन सुनकर सहस्र मनुष्यों के शरीर छूड़े जाते थे और केते मूर्खोंको प्राप्त होते थे और यहिया सन्तकी कथा है कि जब जिनकी बाल

अवस्था थी तब बालक उनको लेलने के निमित्त चुलाते और वह बातों से इस प्रकार कहते थे कि मुझको भगवत् ने लेलने के निमित्त तो नहीं उरप किया बहुरि महाराज के भयकरके इतना रुदन करने थे कि उनके कपोलों का मास आसुर्भोकरके गल गया था और एक महापुरुषके प्रियतम ऐसे थे कि जब पक्षीको देवते तब भयकरके कहते थे कि जो मैं भी पक्षी होना तो गया था और एक सन्त ऐसे कहने कि जो मैं वृक्ष होता तो भी केते पापों से मुक्त रहना और एक सन्त जब गयके वचन सुनते थे तब भवानके ही गिरपड़ने थे और मूर्खता होजाते थे और आयशा इस प्रकार कहती थी कि मैं मूर्खही से उत्पन्न होती तो भी इस अचेतता के जीवने से विशेष था और एक और सन्त जब भजन करने को बैठते थे तब उनके मुख का रङ पीत होजाता था तब किसीने पूछा कि भजनके समय तुम्हारी ऐसी अवस्था किस निमित्त होजाती है तब उन्होंने कहा कि श्रीरामनाम स्मरण के समय महातेजवान् अखिल ज्ञानाढनायक श्री रामलूके सम्मुख होना होता है ताते मेरा चित्त भयवान् होजाता है इसीपर एक सन्तने कहा है कि शुभस्थान पायकर अभिमान न होवो काहे से कि किंचित् अवज्ञाकरके बड़े बड़े महारामों को उत्तम पदसे गिराय दिया है और भजनकी अधिकता का भी अभिमान न करो काहेसे कि केने पुरुषों ने केने लाव बर्षा र्यत जब तप किया और अभिमान करके धिक्कारके अधिकारी हुये बहुरि विद्या करके भी अभिमानी न होवो काहेसे कि एक विद्यावान् सर्व विद्या अभिठही पढ़ीधी पर एक विमुख राजाके सह रहने कम्के महाराजने उमकी कूँरकी नाँ कहा है और अपने दारेसे विमुख किया बहुरि सन्नजनों के दर्शन करके भी अभिमान न करो इस करके कि केने गनमुख महापुरुष के सम्बन्धी महापुरुष को देखने रहे हैं पर उनको भगवत् की प्रीति प्राप्त नहीं हुई और एकमन्तन कहा है कि मैं सर्वदा उठकर अपने मुख को देवता ए इस भयकरके कि पापों करके मेरा मुख श्याम न होगया होवे और एक सन्त चालीस वर्षपर्यन्त हैंने ने थे और संसार विषे जब दुर्भिक्ष काल अथवा कोई और विघ्न प्रकटना था तब बर पेमे कहने थे कि मेरीही पापों करके जीवों को दुःख होना है और इमनबमने सन्तने किसी ने पूछाया कि तुम्हारी क्या अवस्था है तब उन्होंने कहा कि बड़ समुद्र विषे जिसकी नौका टूटजावे तब उसकी क्या अवस्था कहिये अर्थ था

कि मेरी भी ऐसेही अवस्था है इसीकारण से हसनवमरी सर्वदा ऐसे शोकवान् रहतेथे जैसे कोई राजाके नदीखाने विषे बाधाहुआ पुरुष दु खित होवे पर अब विचार करके देखना चाहिये कि ऐसा उत्तमपुरुषता तो इसप्रकार इतररहते हैं और तुम्हको किञ्चित् भयभीत नहीं। उपजता सो इसका यह कारण नहीं। किन्तु निष्पाप है और वह मापीये ताते ऐसे जानाजाता है कि तू अतिमलिनता और सुभेता और पापीकी अधिकता करके निडर है और वे सब बूझकी अधिकता करके सर्वगुणों सयुक्त होकर भी भयवान् रहे हैं वहुनि जब कोई इसप्रकार प्रश्न करे कि सन्तानों के विचनों विषे भय और आशाकी स्तुति तो अधिक है पर इन दोनों विषे विशेष क्या है जिसकी प्रबलता रहनी चाहिये तब इसका उत्तर यह है कि भय और आशा दोनों औपध हैं और औपध की एक दूसरेसे विशेष नहीं कहाजाता काहेसे कि जैसा किसीको रोगहोता है तब उसीके अनुसार उ सका उपाय कियाजाता है और जिस उपाय करके रोगका नाश होवे तब उसे को तही औपध विशेष होता है और भेने आगे वर्णन किया है कि भय और आशा जिह्वासुजन के मार्गके साधन हैं और इन दोनोंसे उत्तम अवस्था यह है कि यह मनुष्य सर्वदा श्रीजानकीवल्लभजु के प्रेमविषे लीनरहै और मूत, मविष्य वर्तमान के प्रेककी और दृष्टिरासे कालकी स्मृति भी न रहे सो जिसको ऐसी अवस्था प्राप्तहुई है। तिसको भय और आशा पटल होते हैं पर यह अवस्था महा-बुद्धि मही और सब जीवों का अधिकार इसप्रकार है कि जिसको मरनेका समय निकट होवे तब चाहिये कि महाराजकी दयाकी आशा अधिक राखे इसकरके कि शुद्ध आशा करके प्रीति उपजती है और जो पुरुष भोगों विषे आसक्त होवे तिसको भय की प्रबलता चाहिये है और जो पुरुष शुद्धबुद्धि और वैराग्य स-युक्त होवे तब उसको भय और आशा दोनों समान चाहिये हैं वहुनि मज्जना और शुभ क्लृप्ति के समय विषे आशाकी अधिकता विशेष है काहेसे कि शुद्ध आ-शा प्रीति का कारण है और प्रीति करके मजनका रहस्य अधिक होता है और पापकर्मके समय विषे भयकी अधिकता सुखदायक है वहुनि त्वान पान आदिक जेते शरीर के व्यवहार हैं सो तिनविषे भी भयसयुक्त विचरना प्रमाण है तात्पर्य यह कि भय और आशाका गुण मनुष्योंकी वृत्तिके अनुसार प्रकट होता है और। ऐसा नहीं कहसके कि सर्वथा भयही विशेष है अथवा आशाही विशेष है ॥



चौथा सर्ग ॥

निर्द्वन्द्वता और वैराग्य का फल ॥

ताते जान तू कि धर्म के मार्गका मूल अपना और भगवत्का पहिचानना है, बहुरि माया और परलोक का पहिचानना है, सो आपको पहिचानके अपने आपका त्यागना है और श्रीजानकीनाथकी और सम्मुखहोना प्रमाण है बहुरि ऐसेही माया को धलरूप जानकर त्यागना और परलोककी और सावधान होना है ताने सर्व शुभगुणोंका फल यही है कि इमका अपना आपा श्रीरामजु विपे लीनहोजावे और मायाके पदार्थों मे विरक्तहोकर परलोकके अविनाशी सुख विपे स्थितहोवे काहेसे कि मायाकी प्रीति इस जीवकी बुद्धिकी नाश करती है और जो पुरुष इममे विरक्त हुआ है सो मुक्तरूप है ताने में प्रयगति निर्द्वन्द्वताकी विशेषता कहताहू ॥ अथ फकीरी अर्थात् निर्द्वन्द्वता निरूपण ॥ ऐसे जान तू कि जिस पुरुषको किसी पदार्थकी चाहहोवे और वह पदार्थ उमके पास न होवे उसको फकीर अर्थात् निर्द्वन्द्व पुरुष कहते हैं सो जब इम भाषकरके देखिये सो सब ही मनुष्य समग्रहे रहित हैं और निर्द्वन्द्व हैं काहेसे कि प्रथम तो इमको अपना जीवना चाहिये और जीवने के सम्बन्ध विपे खान यानभारिक और भी अपनेके पदार्थ चाहते हैं सो इतने पदार्थ में कोई वस्तु इसके हाथ विपे नहीं भोग्यह मनुष्य इन सबके अधीन है ताते प्रसिद्ध हुआ कि यह सबही जीव अतिनिर्द्वन्द्व और दीन हैं और सबके वनी एक श्री अवधचन्द्र महाधन्य हैं काहेसे कि अपनी अंसको फहते हैं जो और किसी के अधीन न हावे अपने आपकरि सतुष्ट होवे सो ऐसा धनी एक श्रीरामदी है और सबही निर्द्वन्द्व हैं इसीपर महाधन्य ने कहा है कि मैं एकही धनी हूँ और तुम सबही निर्द्वन्द्व हो और इसी महापुरुषने कहा है कि मैं आपकरके अत्पन्त पाधीन हूँ और मेरे सर्वकार्योंकी कुर्जा महा राजकी फे होय है ताने में अतिनिर्द्वन्द्व पर ज्ञानवानों के मनविषे अधिपती मुक्त उमको कहते हैं जो अपनी ममता से रहित होवे और सर्वकार्योंविपे आपको पराधीन जानें बहुरिनेने पुरुष इमप्रकार फहते हैं कि जब यह मनुष्य भजत स्मरण भी करे तब केवल असग्रही कहाना है काहेसे कि जिसने शुभकर्मोंकी प्रीति करि या तब उत्तरे फलना अविचारी होता है ताते उसको सत्त्व से रहित नहीं कहसके सो ऐसे वचन का पढ़ना मनमनियों का धर्म है और सन्तकर्मों

की बीज है वहीरे अथपि ऐसे पुरुष आपको बुद्धिमान जानते हैं ही श्रीभिनके  
 अधीन होकर धर्ममार्गसे विगड़जाते हैं श्रीराजगुरु अर्थको शुभं वासो विभे  
 लपेटकर बर्षात करतो हैं इस करके कि अल्पबुद्धि जीव हमको बुद्धिमान जानें  
 और वह मूर्ख इतना नहीं समझते कि ज्वलन भजन अथवा शुभे कर्मों के प्रयोग  
 या धारी हित है तब चिह्नियो कि भगवत्से भी विभक्त हूँ मे काहेसे कि जिसने  
 भगवत्की आसरा है सो सर्व प्रदायों का धिती होता है ताते संग्रहसे रहित वह सु  
 रूप काहिये जो निरभिमान ही कर भजन विषे सुख प्राप्त है वे इसीपर एक महा  
 पुरुष कहते कि भगवत्का भजन भी मेरे बिलकरके नहीं होता और वह आ  
 पही मुझसे भजन करत है और इस मार्ग विषे जो मेने अंग्रह का ज्ञान किया  
 है सो यहाँ निर्द्वन्द्वता की भाव प्राप्त है ताते मे निर्द्वन्द्वता का निर्णय कइता हूँ सो  
 ऐसे ज्ञान तू कि निर्द्वन्द्वता जो प्रकार की होती है प्रथमतः जो अपने पुरुषार्थ  
 करके धनको अंग देवे सो प्रथम रोग्य कहाता है और दूसरे जिसको धन प्राप्त  
 ही न होवे सो उसको निर्द्वन्द्वता कहते हैं पर निर्द्वन्द्वता मनुष्य भी तीन प्रकार के  
 होते हैं सो जिसको धनके संचयन की अभिलाषा है और धन उसको प्राप्त नहीं  
 होता तब वह द्वेषात्ता कहता है और जो पुरुष धनके निमित्त धन और धन  
 धनके और जवत्सको कोई क्लेश देवे तब प्रसन्न होकर अंगीकार करे और जो  
 न देवे तो भी प्रसन्न रहे सो तिसको सन्तोपी कहते हैं और जिस पुरुषको धन  
 की अभिलाषा भी नाहोवे और अथपि उसको धनकी प्राप्ति भी हित तो भी अ  
 र्गीकार न करे सो अरोग्यवान् कहाता है और जिस पुरुषको धनकी अभिलाषा  
 है और उसको प्रीति क्लेश नाहोवे तो भी विशेषे पर सन्तोपी जनों की विशेषता तू  
 निस्सन्देह है ॥ अथ प्रकृत करत पर सन्तोपी निर्द्वन्द्वता ॥ ताते ज्ञान तू कि  
 महापुरुषने भी ऐसे कहते कि भगवत्सन्तोपी निर्द्वन्द्वता अधिक प्रियतम रखता  
 है और यो भी कि हित की है प्रियतमो प्रिय ही पुरुषार्थको जिसके निर्द्वन्द्वता  
 करके परलोका विषे जावो और धनवान् मृत न होवो और एकवार महापुरुषको  
 आकाशवाणी हुई थी कि जवत् तू चाहे तब मैं तेरे निमित्त सबही पहाड़ सीतेके  
 काटूँ तब महापुरुष ने धिन्ती करी कि मैं इसा नार्त्ता को नहीं चाहता काहेसे  
 कि माया निर्द्वन्द्वता धन है और निघरा घण्टे और इसके संचयनहोरे महापुरुष  
 ने वही इसा महापुरुषने अंग विषे किसी को सोता देखाया तब तिससे अ-

हृत् में भये कि उदरकर भगवत् का भजनकर तब तम पुरुषने कहा कि तू मुझ से क्या कहता है मैंने माया तो मायाधारियों को सौंपदी है तम उन्हे भी कहा कि जब तने ऐसे किया है तब अर्चिस्त होकर सीद्ध और सुसा महापुरुष को भी काशबाणी हुई थी कि जब निर्द्धनता तेरे निकट आवे तू उसको प्रसन्न होकर अंगीकार करे और महापुरुषने कहा है कि जब मैंने पियान विषे स्वर्गको देखा था तब वहां अधिक तो निर्द्धन दृष्टि आयेये और नरको विषे भजनवादी विशेष देवेधे और यो भी कहा है कि अमुक सन्त गेरे सब प्रियतमोसि पीछे उत्तमपदको प्राप्त होवेगा इस करके कि वह अधिक धन रखता है यह बार्ता सुनकर उस संत ने केते सहस्रगार संयुक्त अंटे अर्थियोंको उठायादिभे बंधुरि जब महापुरुषने सुना तब प्रसन्नहुये और कहनेलगे कि उसने अपना भला किया और यो भी कहा है कि भगवत् जिसको अपना प्रियतम किरता है तब उसके सम्बंधियों और धनको दूर करदेता है और उसके ऊपर नानाप्रकार के दुख भेजता है और एक पारादुरुषने कहा है कि धनधान्य धनकरके स्वर्गको पावेगे और निर्द्धन सुखसेही स्वर्गको प्राप्तोवेगे और एक महापुरुषने गहाराज के आगे प्रार्थना करी थी कि हे भो ! इस जगत् विषे तेरे प्रियतम कौन है जो मैं भी उनके साथ प्रीति करूं तब उतकी आकाशवाणी हुई कि जो निर्द्धनता विषे संतोष संयुक्त रहने है सोई मेरे प्रियतम है और महापुरुषने कहा है कि परलोक विषे निर्द्धनोंको भगवत् इस प्रकार कहेंगे कि हे मेरे प्रियतमो भिते तुमको नीच जानकर निर्द्धन नहीं किया परं अपनी यद्यत्नीच देनेके निमित्त धनसे यत्रा इगला है इम करके कि भोगों और मायसे तुम्हारी रक्षा होमे जाने जिस जिसने तुमको सुख खान पान दिया है निम्नको अपने साथ लेकर सुखके स्थानों विषे जावे और यो भी कहा है कि निर्द्धनोंके साथ प्रीतिको और यथाशक्ति उनको सेवाको इम करके कि ऐसे पुरुष उत्तम भाग्यवान् होते है और यो भी कहा है कि जिन्होंने निर्द्धनोंकी सेवाकर त्याग किया है और धनके संचने विषे आसक्त हुये हैं सो तिनके ऊपर बार्धिय भव रखहो आवते है एक धर्मिस और दूनरा राजदण्ड यतीसंग भोगों ती अधिकाय भोयारोगध और एक सतने में दाहै कि जो पुरुष निर्द्धनोंको निर्द्धनताके निमित्त नीचजाने और धनधान्यके साथ प्रीतिको सो निम्नकी सहायि करारै और सिकया संतर्षा यह स्वभावपा कि निर्द्धनोंको अपने निकट रखे

धे और धनवानों को सर्वोत्तीपी देखे बैठते थे और पूरा सज्जनने अपने पुत्रको इस प्रकार कहार्था कि हे पुत्र! निर्दनों को रूतानिदृष्टि से न देखना काहेसे कि तेरा और धनका भगवत् एकही है और एकसतने कहा है कि जैसे महामनुष्य निर्दनेता से डरता है सो जब ऐसे ही धनकोसे भयवत् रहता तब दोनोंसे अभय रहता और जैसी पुरुषार्थमायाके काय्यों विपे करता है सो जब ऐसा पुरुषार्थ आत्ममुख के निर्मित करता तब परलोक विपे सुखी रहता और जैसे लोगोंसे संकोच करता है सो जब ऐसे ही अन्तर्यामी महाराजसे संकोच करता तब दोनों धोर सम्मुख होता और किसी पुरुषने चार सहस्ररूपया एक सन्तकी अनिदिया था तब उन्होंने अंगीकारन किया बहुरि जब उसने अधिक विनती करी तब कर्तमेंये किन्तु मुझको कछु कधनकरके निर्दनोंकी समाजसे दूर किया चाहता है सो मैं ऐसा तो न करूंगा और महापुरुषने आशसे कहा था कि जब तू परलोक विपे भरे संग उत्तमपदको चाहती होतो निर्दनोंकी नाई जीवने द्यती तकर और जीवलीग चोरा बिल अत्यन्त पुराना होजावे तब लीग गतिसको उत्तरकर नवीन मत पहर और धनवानोंकी सगति करारियागे कर और योंही कहा है कि निस पुरुषको धर्मके मार्गकी प्रीति है और अल्पमात्र जीविका विपे संतोष सहित अपना समय वितारता है सो पुरुष धन्य है और योंही कहा है कि हे निर्दनों! निर्दनेता की विशेषपदरथे जानकर असन्न होवो तब तुम्हारी निर्दनेता संकल होके सो च्यपि इस बचन विपे इस प्रकार भासता है कि तृष्णावान् निर्दनेता को कुछ फल प्राप्त नहीं होती पर और बचनों विपे ऐसे ही प्रसिद्ध है कि और निर्दनेता भी मूलहीसे निष्कल नही काहेसे कि निर्दनेता करके केने पापों से उन्नकी रक्षा होती है बहुरि यह वार्ता निसमन्देह है कि संतोपी निर्दनेता अधिक फल होता है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि संतोपी निर्दनेताके साथ प्रीति करनी उत्तम सुखकी कुडुती है इस करके कि एमे पुरुष भगवत् के निकट बर्ती है और योंही कहा है कि परलोक विपे सब लोग यही पश्वत्तापकोगे कि जो संसार विपे हमको जीविकामात्र धन प्राप्त हीना तो भला था और इसा महापुरुष को आकाशवाणी हुई थी कि अधीन हृदयों विपे ही मेरा निसा है सो ते तू मुझको वहां ही पोवोगा और एक सन्तने कहा है जो पुरुष धनकी अधिकता करके प्रसन्न नहीं होता और आयु के घटने करके गोकवान् नहीं

हते भये कि उत्रकरा भगवत् का भजन कर सब उस पुरुष को कहें कि तू मुझ से  
 क्यों कहता है मैंने माया तो माया धारियाँ कि सौ पदी ही तब उन्हीं तो कहा कि  
 जब तैने ऐसे किया है तब अचिन्ता होकर सोख और झूठा महापुरुष को आ  
 कशवाणी हुई थी कि जब निर्द्वन्द्वता तेरे निकट आवे तू उसको प्राप्त होकर  
 श्रीगोकीकरे और महापुरुष को कहा है कि जब मैंने प्यान विषे स्वर्ग को देखा था  
 तब वहाँ अधिक तो निर्द्वन्द्व दृष्टि आयी थी और अनरको विषे तब तब ही विशेष  
 देखे और यो भी कहा है कि अमुक सन्त मेरे सब प्रियतमों में सौ पीछे उचत मपद को  
 प्राप्त होवेगा इस करके कि वहाँ अधिक धन रखता हो यह बात सुनकर उस संत  
 ने कते सहस्र मार संयुक्त उठे अर्थियों को उठाये दिये वधुरि जब महापुरुष ने सुना  
 तब प्रसन्न हुए और कहने लगे कि उसने अपना भला किया और यो भी कहा है  
 कि भगवत् जिसको अपना प्रियतम करता है तब उसके सर्व विषों और धन को  
 दूर कर देता है और उसके ऊपर नाना प्रकार के दुःख भेजता है और एक महापु  
 रुष ने कहा है कि धनवान् यज्ञ करके स्वर्ग को पावे और निर्द्वन्द्व सुख से ही स्वर्ग  
 को प्राप्त होवे और एक महापुरुष ने महाराज के अंगी प्रार्थना की थी कि हे  
 प्रभो इस जगत् विषे तेरे प्रियतम कौन हैं जो मैं भी उनके साथ प्रीतिकरू तब उच  
 को आकाशवाणी हुई कि जो निर्द्वन्द्वता विषे सतोप संयुक्त रहते हैं सोई मेरे  
 प्रियतम हैं और महापुरुष ने कहा है कि परलोक विषे निर्द्वन्द्वों को भगवत् इस प्रकार  
 कहेंगे कि हे मेरे प्रियतमों मैंने तुमको नीच ज्ञान कर निर्द्वन्द्वान ही किया पर अपनी  
 प्रखरीस देने के निमित्त धन से वत्ता दराखा है इस करके कि भोगों और प्राप्ति  
 तुम्हारी रक्षा ही वे ताते जिस जिन ने तुमको कुछ खान पान दिना है उचित को  
 अपने साथ लेकर सुख के स्थानों विषे जावो और यो भी कहा है कि निर्द्वन्द्वों के  
 साथ प्रीतिकरो और यथाशक्ति उनकी सेवा करो इस करके कि ऐसे पुरुष उचत  
 भाग्यवान् होते हैं और यो भी कहा है कि जिनने निर्द्वन्द्वों की सिद्धा का त्याग  
 किया है और धन के खर्चने विषे असक्त हुए हैं सो तिनके ऊपर चार विध अन्न  
 रखी जावते हैं एक हीमिस्र और दूसरा राजदण्ड तीसरा भोगों की अधि  
 कता और चोथारोग और एक सतवे कहा है कि जो पुरुष निर्द्वन्द्वों को निर्द्वन्द्वता  
 के निमित्त नीच जाने और धनवानों के साथ प्रीतिकरो सो तिसकी सर्वदा वि  
 कार है और सफयासतका यह स्वभावियाँ कि निर्द्वन्द्वों को अपने निकट प्रवे

धे श्रीरधनवानों को सधोसे पीछे बिठाते थे और एक सज्जनने अपने पुत्र को इस प्रकार कहा कि हे पुत्र! निर्दनों को खानिदृष्टि से न देखना काहेसे कि तेरा और धनका भगवत् एकही है और एकसंतने कहा है कि जैसे यही मनुष्य निर्दन्तता से डरता है सो जब ऐसे ही नरकोसे भयवाचहोता तब दोनोसे अभय रहता और जैसे पुरुषार्थ भाग्योके कार्यो विपे करता है सो जब ऐसा पुरुषार्थ आत्मसुख के निर्मित्त करता तब परलोक विपे सुखी रहता और जैसे लोगोसे भकोच करता है सो जब ऐसे ही अन्तर्यामी महाराजसे सकोच करता तब दोनो ओर सम्मुखहोता और किसी पुरुषने चार सहस्ररुपया एक सन्तकी अनिदिया धी तब उन्हेने अगीकारन किया बहुरि जब उसने अधिक चिन्ता करितब कहितमये कि तू मुझको कलक धनकरके निर्दनों की समाजसे दूर किया चाहता है सो मैं ऐसा तो न करूंगा और महापुरुषने आश्रामके कहाया कि जब तू परलोक विपे भिरे संगे उच्चमापदको चाहती होतो निर्दनोंकी नाई जीवने ध्यती तकर और जबलगतैरा बिल अत्यन्त पुराना होजावे तबलगतिसको खतारकर नवान मित पहर और धनवानों की समातिके आश्रामकर और योभी कहा है कि निस पुरुषको धर्मके मार्ग की प्रीति है और अल्पमात्र जीविका विपे संतोष सहित अर्पना समय वितार्ता है सो पुरुष धर्म्य है और योभी कहा है कि हे निर्दन्तो! निर्दन्तता को विशेषपदार्थ जानकर असन्नहोवो तब तुम्हारी निर्दन्तता संकल होवे सो यद्यपि इसवचन विपे इस प्रकार भासता है कि तृष्णावन् निर्दन्तको कुर्ष फल प्राप्त नहीं होती और वचनों विपे ऐमही प्रसिद्ध है कि ओरनिर्दन्त भी मूलही से निकल उन्हा काहेसे कि निर्दन्तता करके केने पापों से उभकी रक्षा होती है बहुरि यह वार्ता निरमन्देह है कि संतोपी निर्दन्तको अधिक फल होता है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि सन्तोपी निर्दनोंके साथ भीतिकरणी उच्चम सुखकी कुडनी है इमकरके कि ऐम पुरुष भगवत् के निकट बर्ती है और योभी कहा है कि परलोक विपे सबलोग यही परमात्मीयको कि जो संसार विपे इमको जीविकामात्र धन प्राप्त हीना तो मनाथा और इसा महापुरुषको आकाशवाणी हुई थी कि अधीन हृदयों विपे ही मेरा निवास है तो तू मुझको बहाही पविगा और एक सन्तने कहा है जो पुरुष धनकी अधिकता करके असन्न नहीं होता और आयुष् के वधने करके मोकवान नहीं

होता सो महापुरुष है और एक प्रीतिमान् को किसीने लक्षण प्राप्त रोये जाते देखी  
 थी तब उसने पूछा कि तुमने देतनी ही जीविका के ऊपर संतोष किया है तब  
 बड़ा प्रीतिमान् कहे बने भये कि जिसने परलोक के सुख को त्यागकर सामाजिक आर्थी  
 कार-कर्म विधो-निसने इससे भी अधिक प्राप्त संतोष किया है और एक कथा एक  
 मन्त्र को स्त्री ने समझा विषे इस प्रकार कहा कि ज्ञान तो तेरे अद्विष्टे प्रीति  
 ही समाप्त ही है कि तू सो महापुरुष तूने जैसा है तब अन्तर्गत कि हमारे  
 शरीर विषे एक घापी महाकठिना है सो तेरे हलके ही अससे अक्षय प्रित होते हैं और  
 शरीर शरीर इतने हैं इतना सुनकर वह स्त्री मसल दो करीब को जलगी गई ॥ ॥ ॥  
 एकदम करना उचरि पूर्वपक्ष की ॥ जाते जात तू कि केते बुद्धिमान् जे हमारे भी  
 इस प्रकार प्रश्नोत्तर किये हैं कि धन तो प्रदाय विशेष है आयन निर्द्धन सतोपी  
 विशेष है पर-भरे चित्त विषे इस प्रकार भासता है कि निर्द्धन सतोपी विशेष है  
 काहेसे कि निर्द्धन सतोपी के स्वभाव सज्जन इतने रहने हैं और शरीर के दुःखों  
 को देखकर सब वैदाविरक्त जित होता जाता है और अभाव ही की प्रीतिको बड़ा  
 प्रदा है जाते अर्थ के समग्र भी और किसी प्रदार्थ के साथ उसका मोह नहीं रहना  
 और धनी पुरुष यद्यपि उदार और साचिकी होते तो भी जालमकारके सुखों की  
 मोर्गता है इसी कारणसे विक्रान्त जे ही हो सकत वहु विभजन स्मरण के नियम  
 विषे भी धनवान् पुरुष विशेष महित रहता है और सतोपी निर्द्धन की चित्त स्वर्ग  
 भाविक ही हीत और एकत्र रहता है पर साधनी और निर्द्धनी पुरुष दोनों का  
 पण वाच होतें तब दोनों धन के अर्थ कहवते हैं और उच्च विषे अंधास प्राप्त है और  
 जवा सुख दृष्टिकरके देखिये तब भगवत्से अनेत होना ही निन्द्य है सो किसीकी  
 धनकारके अनेतता होती है और किसीको निर्द्धनता ही पटल हीरती है सो  
 मन्त्रजनों जे जीविका प्राप्त को भी निन्द्य नहीं कहा प्रसन्न करके जिस विषे भाग  
 वत्के भजनमें इसका जित स्थिर है सोई उत्तम पदार्थ है वहु विभजन भी ली  
 साचिकी और प्रदा रहे वे और निर्द्धन पुरुष को कुछ धनकी अभिलाषा होवे तब  
 दोनों की अत्रस्था परस्पर निकट होवे है इस करके कि यद्यपि सुखों के भोगमें  
 करके भजनका चित्त मलिन होजाता है पर उदारनाक के उसको निर्भलता  
 भी प्राप्ता होती है वहु जैसे निर्द्धन पुरुष का हृदय वृष्णा करके मलिन होता है  
 जैसे ही दुःखों के खेचने करके उसको निर्भलताई भी प्राप्त होती है तादर्थ्य यह कि

सज्जिनता, त्रधमापत्तिको कहते हैं और निर्वृत्तता का। नामही, निर्मलता है इसी  
 कारणसे जिस अन्तर्गतको होना औरतु होना अन्तर्गतसमाप्तहोवे सोई अधिपति  
 के निमित्त ही धनको सुत्तयत्तताहोवे और निमित्तसका तर्कपदाओंसे निरकहोवे  
 सो निस्सदेह सबसे उच्चम है जैसे न्यायशास्त्रको तीस-सहस्ररूपया किसी और  
 से भेद आयाथा तब तन्होंने पन्ही दिव्यविषे अधिपतिको वाटदिया और अपने  
 निमित्त एकपैसा भी न राखा सो तयह त्वरुथा म्हाउत्तमद्वैततज्जव अन्तर्गत और  
 निर्द्धन होनोंके चित्तकी वृत्ति समानहोवे तब निर्द्धनताही विशेषहै किहसे कि  
 जन्म निर्द्धन पुरुष एकवार श्रीसम कहता है तब दीनताकरके ऐसा प्रकारचिन्त  
 होता है कि अन्यान्यका गत तहुत भोजन औरकेवे दानकरके औरिमाध्यामीति  
 नहीं होता इसकरके तकीवुतवीरका चित्तपदार्थकी प्रसन्नताकरके त्वोर होना  
 ताहै और राजानरूपी बीजा कठोरचित्तविषे उपनताही त्वरिधीताते। त्रिंरूप  
 का चित्त किसी पदार्थविषे आसक्तान होवे औरभी तिसंयुक्त आजन्मरे स्थितरहे  
 सो निस्सदेह महाराजकी त्रिक्रियाको पाताहै प्र जीति विधिसे ही त्वरिधीताते। त्रिंरूप  
 जेवे कि धनविषे निर्लेप रहै तहि सो यह वृत्ति गृहीताहै काहेसे कि प्रसीदा किये  
 गिना श्रमिमानकरना किये हो सो परीक्षाहिसकी यहहै कि जिसे आग्रशाने प्रक  
 षारही धनको वाटदिय और धनके चित्त विषे सत्तय करनेका स्वरूपपदी कि कुरी  
 तर जन्म इस अवस्थाका प्राप्तहोती। सुगमहोती। जन्म तत्तज्जन्म और भीतिप्रारि शन  
 धनका स्वरूपकहि को करते और वेसमकी वृत्तिविषे अहो रहते इसीप्रकार  
 महापुरुषते कहै कि धनवाही ही और त्रिंरूपी तत्तरो मतेहै कि तत्तमसे वृत्तकी  
 हृदि ही तुम्हारे त्रिंरूपीनाश। करोगी और जन्मनी अपनवर्त होनातेगी इस  
 करके कि दोनों औरकी भीति एकदव्यविषे समाप्ति नहीं स्वर्गकी प्राप्ते तक तत्त  
 सत्यहै और प्रकृत असत्यहै सो त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी  
 सो श्रमपदार्थकी सो से विमुक्तहोताहै और त्वेताही त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी  
 त्वेताहै त्वेताही त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी  
 कहाया कि मेरा कुटुम्ब बड़ाहै और मैं त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी  
 भगवत्से आर्थाकारो तत्र उन्हेने कहा कि जिससंभ्र विषे त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी  
 चित्त सदन्कमेलागे और त्वेताचि अत्यन्त आर्धीन और शोकनासुहोवे तत्र त  
 भेदे निमित्त आर्थाकारो तत्र उन्हेने कहा कि जिससंभ्र विषे त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी त्रिंरूपी



से अधिक सफल होगी ॥ अथ प्रकटकरनी युक्ति निर्द्धनताकी ॥ ताते जानतू कि निर्द्धनताभी इस युक्तिकरके सफल होतीहै कि विच जिसको प्रसन्नरहे और किसी के आगे अपना दु ख बर्णन न करे प्रथम तो महाराजको उपकार जान कर प्रसन्न होवे और इसप्रकार समझे कि श्रीरामजी निर्द्धनता अपने मर्का को देते हैं और जब ऐसी प्रसन्नता को प्राप्ति न होसके और निर्द्धनता करके दु खित होवे तोभी महाराजकी आज्ञाविषे ग्लानि न करे सो यहवार्ता प्रसिद्धहै कि दु ख करके दु खित होना भिन्नहै और ग्लानि करनी भिन्नहै जैसे रुधिर कढ़ावनेहारी पुरुष पीड़ाकरके दु खितहोताहै पर रुधिर काढनेहारेपर ग्लानि नहीं करता तैसे ही जो पुरुष निर्द्धनता विषे दु खितहोवे और रागरजाय जानकर उस दु खविषे अपना कल्याण समझे तो यहभी विशेष भवस्थाहै बहुरि जो पुरुष रागरजायको न समझे और निर्द्धनताके दु खविषे ग्लानिकरे अथवा प्रभुकी दयापर प्रतीति ही न करे तब यह वार्ता अयोग्यहै और इसकरके निर्द्धनता फलदायक कभी नहीं होती ताते चाहिये कि सर्वसमय और सर्व अवस्था विषे भगवत्का उपकार जानै और इसप्रकार समझे कि भगवत्की करनूति निष्फल कभी नहीं होती व सर्वदा फलदायकहै ताते उसकी करनूति विषे ग्लानिकरनी प्रमाण नहीं और चाहिये कि रसना करके भी अपनी निर्द्धनता का बखान न करे और धैर्यकरके गुप्तरासे इसीपर एकरसन्तने कहाहै कि एक निर्द्धनताभी दु खोंका कारण होती है सो तिसका लक्षण कठोरता और ग्लानिहै बहुरि एक निर्द्धनता सुखदायक होतीहै तिसकालक्षण कोमलताई और धन्यवादहै और सतजनों ने योंभी कहा है कि अपनी निर्द्धनता विषे दूसरी युक्ति यह चाहिये कि धनवानोंकी संगति कदाचित् न करे और धनके निमित्त उनके आगे दीन न होवे और उनके व हुत आदरभी न करे इसीपर एकरसन्तनेभी कहाहै कि जो पुरुष अतीत हीकर व नवानोंकी संगति करे तब जानिये कि कपटीहै और जब राजाओंकी निकटता को चाहे तब उसको बटमार जानिये २ बहुरि तीसरी युक्ति यहहै कि यथाशक्ति अपनी अभिलाषाओंको सकुचायकर दानभीकरे इसीपर महापुरुषने कहाहै कि जिस पुरुषके पास दो पैसे होवें और एकपैसा किसी अर्थीको उठायेदेवे तब व नवानके सहस्र रूपयेके देनेसे भी अधिक विशेषहै बहुरि दान लेनेकी युक्ति यह है कि सकाम और अशुद्ध पूजाको अस्वीकार न करे और गरीबके निबोह से

आधिकमी न लेवे पर जब और अर्थियोंके निमित्तलेवे तब यहमी प्रमाणहै काहे से कि प्रकटही पूजाका अङ्गीकार करना और भगवत्के निमित्त अर्थियोंको पहुँचाना यह साचे पुरुषोंकी अवस्था है और जिस विषे ऐसी समर्थता न होवे तब उसको चाहिये कि दान देनेहारे से इसप्रकार कहै कि तूही किसी अधिकारीको देदे पर दान देनेहारे की अवस्थाको विचारना अधिक प्रमाण है कि यह पुरुष मुझको भावकरके देताहै अथवा किसी कामना और मानके निमित्त देता है सो जब वह पुरुष भाव करके देवे और लेनेहारे पर उपकार भी न राखे तब उसीकी पूजा अङ्गीकार करनी विशेष है पर तौ भी जेती उसकी श्रद्धाहोवे तिससे अधिक अङ्गीकार न करे इसीपर एकवार्त्ता है कि एक पुरुषने एकसन्त के आगे पचास रुपये पूजाके राखे थे और ऐसा कहने भये कि जब कोई भाव करके याचना बिताही कुछ आनिदेवे तब उसका निरादर करना प्रमाण नहीं यह बचन सुनकर सन्त ने एक रुपया कादलिया और उनचास रुपये उसके फेर दिये ऐसेही एक और पुरुष हसनंभसरी के पास कुछ धन लेआयाया तब उन्होंने अङ्गीकार न किया और कहनेलगे जो पुरुष धर्मका उपदेश करनेहार होवे और किसीकी पूजाको अङ्गीकारकरे तब उसकी निष्कामता नष्ट होजाती है और भगवत्के दर्शन को नहीं पावता पर यह बचन उन्होंने ने इसनिमित्त कहा था कि वह पुरुष उर्त्तका ऐश्वर्य देखकर पूजा देताया और उसके हृदयविषे निष्काम प्रीति न थी बहुरि एक और सन्तजन को एक मित्र कुछ भेंट देनेलगा तब उन्होंने ने ऐसे कहा कि जब यह वस्तु देने करके तेरा भाव अधिक बढ़े तब मैं इसको अङ्गीकार करताहूँ और जब इसवस्तुके देने करके तेरी प्रतीति भाव घटजावे तब मैं इसवस्तु को अङ्गीकार नहीं करता तूही किसी अधिकारी को देदे इसीकारण से सिरुया सन्त किसीकी पूजा नहीं लेनेये और इसप्रकार कहतेये कि जब मैं इनकी पूजाविषे केवल निष्कामता देखू तब इनकी पूजाका निरादर न करू पर जब लोग किसीको कुछ देने लगतेहैं तब अपनी उदारता बर्णन करने लगते हैं और उसके ऊपर अपना उपकार राखते हैं ताते सतजनोंने निष्काम मित्रोंकी पूजाही का अङ्गीकार कियाहै और उपकार राखनेहारे पुरुषोंकी पूजासे विरक्त रहेहैं इसीपर नगरसंतने कहाहै कि मैं और किसीसे कुछ नहीं मागता पर सिरु सतसे मागभीलेताहूँ इसकरके कि जब वह किसीको कुछ देते

है तब वह अधिक प्रसन्न होति है स्वल्पव्यापही कि जब कोई इसकी मान और  
दिल्लीवाँके निमित्त देखे तब उसकी अंगीकार न करे इसीपर एक वाची है कि  
एक सन्तमो किस्तीको पीसिको नित करि क्रियाय तब लोग कहें तब मोकि सुमते  
इसको निरादर रूपी क्रिया तब वह कहते भये कि हमने तो इसकी ऊपर दिया की  
नीहिंको हेमि फिक घड़े ससारी जीषि जब किसी को कुछ देतो है तब फीले अपनी  
बंदई विणन करेने सगत है इसी करिणसे इनकी अर्थनयो व्यर्थ होता है और फल  
गीनिष्ट होजाति है पर जब कोई प्रसन्नता के निमित्त इसको कुछ देयो तब होत  
वर्तिसकता मीकी करिण करे और जब स्वयं अत्यंत धर्मो दोषा तब ननकार भी  
न करे और रूयो मी कहते है कि जब कोई इसकी याचना विना ही भावप्रीतिको  
कुछ देवे और यह पुरुष उसका अभिमान करके निरादर करे तब भावत् समके  
अपराधो तादृश भावता है कि उसको लोगो में याचना करीवता है और सब उर  
सकी देते ही नहीं इसीपर एक वाची है कि सिरि सन्तने कुछ धन पुक सन्तके  
पास भेजाया तब तन्हीं ले धगीकार स क्रिया वहु रि मिरी ने कहा कि सुमने त  
कारके प्रिय सरे भय करी भई करे यह भवम सुभकर तब विचार कर्ता गे और  
ऐमे कहते भये कि प्रका गी शिमी छीविका मेरे पास है ताते सुमि इसे धन को व्यपते  
ति रुटी रीवो जब वह जीविका पूर्ण होसुकेगी तब मैं तुमसे मागलेगो गा। अथ  
याचना की धनि प्रेषता प्रकट करनी मातति जात तब तीस महापुरुषने कहा है कि  
याचना करनी मद्यामलिम है ताते अत्यन्त योजन विना इसी विषे विज्ञानो आ  
यो रये है और इसकी अलि सत्रा हीन अफर कर्षी जानी जानी है अथमतो याचना  
करने से रीवागी की निन्दन प्रकट होती है और इस प्रकारे मावतके उपकार का  
कृतज्ञता होता है जो से ऊरे इस आने प्रवापी अविता और कि सी सा कुछ माये प्र  
वह स्वागी भी रिस ही न्यायिता है तासे अत्यन्त योजन विना याचना कि करे दी  
मलात्के इत्र हुरि सुसुमि मलिगता सदा है कि री तत्रु किरके अपनी निर्माता  
होती है और जिज्ञा सु जेतको यह वाचा मी एत ही कि सगवत विना लोगो कि  
जीमि खोभे के निमित्त आपको धनि मात करे पर जब अत्यन्त योजन होके तब  
निष्काम प्रमदा अथवा किसी पर्यास ही प्रोत्साहिते प्रमाण ही है इसके कि  
उदर मरुपसो निरपेक्षो मिष्टे देने करके मलानि नहीं करता और इसके और  
इप्रका सुभीत ही निरुता पर तो भी होने वृष्ठा या चिन्ता करनी मही अयो प्रये है

बहुरिधीसरीमलिनती यह है कि जिसके आगे जातिना करिये सो तिसको इत्ना  
 वना होता है काहेसे कि जिन असका विधावेने करके प्रसन्न होवे और लज्जा  
 शयव्यापाममान के डरकरके कुछ देवे तब तिसका हृदय दुःखिता होता है ताते  
 चीहिये कि मध्यम अवस्यही मागना होवे तो भी प्रसिद्ध याचना न करे और  
 सैनकरके अर्पना प्रार्थना लखे देवे तो मलेहि इसकरके कि जब देनेहारे पुरुषकी  
 मर्नसा देनेकी न होवि तब लज्जा और सक्रमेच करके नो देवे और जत्र प्रसिद्ध ही  
 मागना होवे तब एक पुरुषकी ओर दृष्टिकरके न कहे और सभावपेसभोसे कहे  
 ताते जिसकी इच्छा होवेगी सो देवेगा मराजत्र किसी और अर्थी के निमित्त  
 प्रसिद्ध भी आगिलेवे तब मागनी प्रमाण है तात्पर्य यह कि जब कोई पुरुष लज्जा  
 और अर्पमानके मयकरके इसको कुछ देवे तब उसके दातका अंगीकार करना  
 अयोग्य है काहेसे कि यह भी दहकरके लेना होता है सोत्यद्यपि स्थूल बुद्धि जीव  
 इसभेदको नहीं समझने पर विचारवान् बुद्धिकरके दुर्यकी ओर देखते हैं कि  
 रजाति संहितादान देना दण्डकी नाई होता है इसकरके प्रसिद्ध हुआ कि अत्यन्त  
 प्रमोजन विनाशिन नाकरनी महानिवा है और मांगना उसहीका अधिकार है  
 जो केवल निधन और दीन होवे और कोई व्यवहार न कर सका दाने पर जिज्ञासु  
 जनको यह भी ज्ञाहिये कि जवानी त्रिकाकी अधिकारी अपेक्षा होवे तब आपिन  
 अथवा वासन अथवा संस्त्राको जेवलेवे और अर्पित अथवा चलते याचना न करे  
 इसी परामर्श पुरुषते कह है कि जो पुरुष कुछ समझेते भी किसीसे कुछ माग  
 ता है सो निस्सन्देह नरको का अधिकारी होता है ताते जेव विचार करके देखिये  
 तब शरीरके निर्विमात्र तनिही पदार्थ इसको ज्ञाहिये है सो कुछ आहार जिसी  
 करके माणवते है न बहुरि प्रताही बस जिस्करके लग्नता दूर होवे २ और शीन  
 तीष्ण त्रयोकी प्रक्षाके माप्रस्थान ३ सो जिस्ने इस भेदको समझा है वह जिस  
 तिस प्रकार अपने शरीरकी निर्बाह समयसिंहन करलता है पर जो पुरुष नाना  
 प्रकारके भोजनों और श्रुमारोके निमित्त याचना करे सो सो निस्सन्देह पापी  
 होता है ॥ अमत्तापमोकी अतीत अन्नस्माका भेद प्रकट करना ॥ ताते जान तू  
 कि अतीतान्ननेकी अिवस्या तीना प्रकारकी है सो एकती येसे उद्यम है जो कि  
 सीसे कुछ मागते भी नहीं और जत्र कोई उतको कुछ देवे तो भी नहीं लेते सो  
 केवल अनाहार है न बहुरि दूसरे पुरुषसे है जो याचना नहीं करते पर जब

कोई अर्था सहित देवे तब अगीकार करते हैं सो यह भी परम सुखके अभि-  
 कारी होते हैं २ और तीसरे ऐसे प्रीतिमान् पुरुष हैं कि जब अत्यन्त प्रयोजन  
 होवे तब याचना भी करते हैं पर मोगों के निमित्त कदाचित् नहीं मागते सो  
 यह भी सात्त्विकी जनोंकी अवस्था है पर प्रथम दो अवस्थासे अरुप है ३ इसी  
 पर इबराहीम ने एक सिद्धसे पूछा था कि तैने बलखके अतीतों को किस प्रकार  
 देखा है तब उसने कहा कि उनकी उत्तम अवस्था है काहेसे कि जब कुछ पावते  
 हैं तब भगवत् का धन्यवाद करते हैं और जब कुछ नहीं पावते तब संतोषकर  
 रहते हैं यह ध्यान सुनकर इबराहीम ने कहा कि यह तो कूकुरों की अवस्था है  
 बहुरि उस सिद्धने पूछा कि तुमने अतीतों की अवस्था कैसी देखी है तब इबरा-  
 हीम कहते मये कि जब उनको कुछ प्राप्त नहीं होता तब धन्यवाद करते हैं और  
 जब कुछ पावते हैं तब उदारता करते हैं यह वार्त्ता सुनकर उसने मस्तक टेका  
 और कहने लगा कि सोचे पुरुषोंकी अवस्था यही है बहुरि एक और वार्त्ता है कि  
 एक सन्तको किसीने मार्गता देखा था तब वह सशयवान् होकर जुनेदसे पूछता  
 भया कि यह तो आचना करते हारे नहीं ताते इनके मागने के विषे क्या प्रयो-  
 जुन है तब जुनेदने कहा कि इनके मागनेकी ओर देखकर रत्नानि न कर काहे  
 से कि यह मागने विषे भी लोगों को कल्याण करते हैं और इनके हृदयकी  
 दृष्टि सर्वदा भगवत्की ओरही होताते इनका मागना भी कल्याणदायक ही है  
 तात्पर्य यह कि साँचे पुरुषों की ऐसी अवस्था हुई है और उतका हृदय ऐसा  
 निर्मल हुआ है कि कहे बिनाही एक दूसरे के स्वरूप को पहिचानलेते थे और  
 जिसी पुरुष को ऐसी अत्रस्या प्राप्त होवे तब चाहिये कि ऐसे पदकी अभि-  
 लापको हृदय विषे दृढ़ करे बहुरि जब प्रीति और अर्थासे हीन होवे तब उनकी  
 अवस्थापर प्रीतिही हृदयसे तो भला है ॥ अथ प्रकट करिना परत्वे और अर्थ  
 योग्यका ॥ ताते जाना ता कि जैसे प्रीतिमन्नु विषे किसी पुरुषके पास बर्क होवे  
 तब उसको शीतलताके निमित्त वह बर्क प्रियतम होता है पर जब कोई उसके  
 अधिकास्वर्ण देकर गोलिया चाहे तब धन करके उसको बेचनेता है और अ-  
 पने शीतल जलके पीनेकी अभिलापको त्यागदेता है और यों जानता है कि  
 यह बर्क क्षणक्षण विषे गलताजाता है और स्वर्णकरके भरेकेते कार्मर्ण पूर्ण होवेगी  
 तैसेही जिस पुरुषने इस प्रकार समझा है कि इससे सारके सुख क्षणक्षण विषे परि-

र्णामको पाते जाते हैं और मृत्युके समय कुच्छही न रहेंगे ताते आत्मसुखकी  
 प्रीति करके संसारके सुखोंको शीघ्रही त्यागदेता है और उसकी दृष्टि विषे सबही  
 भोग तुच्छ भासते हैं सो इसही अवस्थाको वैराग्य कहते हैं पर वैरागीकी परीक्षा  
 दो प्रकारकी होती है प्रथम तो जिसने पुरुषार्थ और निष्काम प्रीति करके धन  
 और मान आदिक पदार्थोंको त्याग दिया है और सर्व भोगोंसे विरक्त होकर म-  
 हाराजकी ओर सावधान हुआ है तब वह भी उत्तम वैरागी कहाँता है १ और  
 जो पुरुष आदि विषे धन कुछ नहीं रखता तब उसके वैराग्य की परीक्षा यह है  
 कि जो उसको धन आदिक पदार्थ प्राप्त होवें तो अहंकार न करे तब उसके  
 वैराग्य का चिह्न प्रकट होता है २ पर जो पुरुष ऐसी परीक्षा किये बिना आपको  
 वैरागीजाने सो महा मूर्ख है काहेसे कि भोगों की प्राप्ति बिना इसका मन स्वा-  
 भाविकही सक्रम रहता है और जब भोगों की प्राप्ति होती है तो महावपलता  
 को पाता है बहुरि एक यह भी वैराग्य की परीक्षा है कि जैसे धन आदिक प-  
 दार्थों का त्याग करता है तैसे मानस से भी विरक्त होवे इस करके कि वैरागी  
 तिसको कहते हैं जिसकी प्रीति भगवत्भक्ति बिना और किसी पदार्थविषे रुद्ध  
 न होवे पर रामभक्तिके निमित्त स्थान सुखोंको त्याग करना बहुत लाभदायक है  
 इसीपर महाराजने कहा है कि जब तुम तन और धन मेरे अर्थ लगावो तब मैं  
 परम सुखरूप अपनी भक्ति तुमको प्राप्त करूँ ताते है जिज्ञासुजनो ! इसकरके तुम  
 को अधिक प्रसन्नहोना प्रमाण है कि यह व्यवहार बहुत लाभदायक है और जो  
 पुरुष अपने मानके निमित्त अथवा किसी और अर्थकरके धन आदिक पदार्थों  
 का त्यागकरे तब उसको वैरागी नहीं कहते और स्वर्गके सुखकी चाह करके जो  
 पुरुष संसार के सुखोंको त्यागता है सो ज्ञानवानोंके निकट यह भी कुछ पुरुषभि-  
 नहीं काहे से कि श्रीरामभक्त जैसे इससंसार के सुखको तुच्छ जानते हैं तैसेही  
 स्वर्गके सुखोंको भी तुच्छरूप जानते हैं काहेसे कि स्वर्गविषे भी इन्द्रिया-  
 दिकही भोगहैं ताते उनको भी विरस समझते हैं और इन्द्रियादिक भोगोंविषे  
 आसक्त होना पशुवोंका धर्म है इसीकारणसे ज्ञानवान् श्रीजानकीवल्लभके  
 शुद्धस्वरूप प्राप्तिबिना और किसी पदार्थ करके सतुष्ट नहीं होते और और सर्व  
 पदार्थोंको कुछ वस्तुही नहीं जानते ताते ज्ञानवान् धनका त्यागभी नहीं करते  
 और जो कुछ समझ भी रखते हैं तो भी अधिकार अनुसार खर्च करते हैं जेमे

पिछले केते, सन्तोंकी, अवस्था, हुई है कि, वह केती, पृथ्वीका राजसी, करते थे और धन भी अधिक रखते थे पर उनका चित्त किसी पदार्थ विषे आसक्त न था तात्पर्य यह कि, ज्ञानवान् के पास लाखों रुपये दोंवें तो भी बेरागी है और ज्ञानहीन पुरुष यद्यपि एक पैसा भी न रखता होवे, तो भी बेरागी नहीं कहा जाता ताते उत्तम अवस्था यह है कि इस पुरुषका चित्त सर्व प्रदार्थों से निर्मोह होवे और किसी पदार्थके ग्रहण अथवा त्यागकी इच्छाही न करे और किसी पदार्थसे श्रुति और विरोध भी न करे काहेसे कि जैसे, प्रियतम पदार्थ चित्तसे कदाचित्त नहीं विसरते तैसेही विरोधी प्रदार्थ भी विस्मरण नहीं होते, और उत्तम अवस्था यही है कि इस पुरुषके हृदय से सबही पदार्थ विस्मरण होजायें और जैसे समुद्रके जलविषे किसीको रूपणता नहीं होती तैसेही धन विषे भी उदारी चित्त होते और धनका होना न होना इसको समान होजावे, सो यद्यपि यह उत्तम अवस्था है पर सुखोंके गिरतेका अधिकार भी यही है अर्थ यह कि जिस पुरुषसे धनका त्याग नहीं होसकता, वह पैसाही अभिमान करलेता है कि मैं धनके रूपे सो कसे रहिगू पर इसकी परीक्षा यह है कि जब उसका धन कोई अधिकारी लेजावे, अथवा और किसी विपत्त करके नष्ट होजावे और उसका चित्त समानता विषे न रहे तब जानिये कि झुझाही अभिमान करता है और उसका चित्त धनसे निरक्त नहीं हुआ तब उसका अधिकार यह है कि पुरुषार्थ साहित्य धनका त्याग करे तो, मायाके विघनोंसे मुक्त रहे इसीप्रकार बार्त्ता है कि एक दर्यागी जहाजको किसीते कहाजा कि तुम बेराग्यवान् हो तब उन्हें निकड़ा कि बेरागी तो अमुक सैनिक का हैगे कि तब सर्व पदार्थोंका संग्रह रखते हैं और हृदय उनका तिलेय है तो मेरे पास तो धन ही कुछ नहीं ताते मेरा बेराग्य क्योकर जाना जावे तब हुरि एक विद्यावान् ने इसी प्रकारे कहाया कि अमुक सन्तु तो जुजाहेका पुत है और हमारे ज्ञानको प्रमाण नहीं करती तब एक और प्रीतिमान् ने किदा कि हमतो इतना नहीं जानते कि वही जुलाहा है मीमा कौन जाति है पर इतना जानते हैं कि माया उनके सम्मुख आती है और वह मायाकी शोभ प्रीत देते हैं और ईम सदेव काल मायाको हृदये है सो हमको प्राप्त नहीं होनी, बहुरि मायाका सुवर्णके समानता वृद्धे और आत्मसुख स्वर्णके समान है सो वर्णके स्वर्णके साथ जेवहालना, कुल वही बात नहीं और सब बुद्धिमान् यह काम करसकते हैं तैसेही मायाके सुखोंको आत्म

सुख परासिद्धावर करना प्रमाण है पर जन्मविचारकरके देखिये तो चर्मा और स्व-  
 णविषे धोहाही भेद है और माया के सुख और आत्मसुखविषे अधिक से अ-  
 धिकही भेद है इस करके कि आत्मसुख के निरुद्ध मय्या के सुख सुख स्वस्तुही  
 नहीं पर खल्वुद्धि मनुष्य इस वार्ता को नहीं समझते कहते हैं कि प्रथम तो  
 इनकी प्रीतिनिहा निरुद्ध है वदुरि दूसरा कारण यह कि माया के भोगी इन्द्रियों  
 के भिषे ई प्रकट है ॥ रंगणीकमासते हैं और सीसरां करणाय है कि अन्य धीपिसन्त-  
 जनी के वचन सुनकर भोगों के त्याग की कुछ श्रद्धा भी प्रजन्ती है तब भी ध्य  
 चेतता करके डील कर रहते हैं और कहते हैं कि अब तो इस भोगी को भोगलोक  
 वदुरि ई से को त्यागदिवेगो पर अधिक भोगों की प्रीति की प्रबलता है जो प्रकट सुख  
 का त्याग करना कठिन है ॥ अब भैराव्य की स्तुति प्रकट करनी गा वते जाना कि  
 जैसे माया की प्रीति करके इस जीवकी बुद्धि का नाश होता है तैसे ही माया का  
 त्यागना मुक्ति का कारण है इस पर संतजनों ने कहा है कि जो पुरुष चली सिद्धि न  
 पर्यंत भोगों से विरक्त होता है तब निस्सन्देह उसके हृदयमें अर्जुनवका प्रकाश  
 प्रकट होता है और महापुरुषने भी कहा है कि जब भगवत्की भियतमें हुआ ज्ञान  
 होता है तो मायाको प्रदायों से विरक्त होता और किमीने भई पुरुषसे पूछा था कि  
 प्रीतिमानोंके लक्षण क्या हैं तब उन्होंने कहा कि जिसका चित्त मायासे विरक्त हो-  
 वे और स्त्रर्ण माटी जिसको समान होजावे तब उसको प्रीतिमान् कहते हैं और  
 यों भी कहते हैं कि भगवत्के प्रकाश करके जिसका हृदय निर्मल है तब उसका  
 चित्त छलरूप ससारसे विरक्त होजाता है और अधिनाशी स्थान की प्रीतिविषे  
 सावधान होता है और मनेसे आगेही ॥ परलोकका तोशा करता है और महा-  
 पुरुषने यों भी कहा है कि हे प्रीतिमानो ! भगवत्की लज्जा करो तब भियतमानी प्रकट  
 कि क्या आगेसे हम लज्जा नहीं करते हैं वदुरि महापुरुषने कहा कि जब तुम्हारे  
 हृदय विषे लज्जा होती तब जीविका से अधिका बनका संवय क्यों करते और  
 जिने मन्द्रियों विषे तुमको नित्य रहना ही नहीं तो प्रीति मय्युक्त उसको क्या  
 बनाते हो वदुरि यों भी कहा है कि जिसने भगवत्की को सत्य स्वरूप जानी है और  
 और प्रदायों को नाशवन्त समझा है तब आत्ममु बला अधिकारी होना है तब  
 एक भियतमने पूछा कि भगवत्को सत्य स्वरूप जानने विषे पट न दे कोहे ते कि  
 केते पुरुष सन्तजनों की नाई निवृत्त वचन कहते हैं और करतून उनके गदा



मलिन है और शोभी कहा है कि जिमका चित्त, गायामे धिरक हुआ है उसके हृदयविषे अनुभवका प्रकाश उपजता है ताते मुखसेही परगपदको पाता है वहरि ईसा महापुरुषमे लोगोंने पूछा था कि जो तुम आज्ञाको तो तुम्हारेनिमित्त एक घर बनावे तब उन्होंने कहा कि जलके प्रवाहपर मेरा घर बनाओ वहरि लोगोंने पूछा कि जलके प्रवाहपर मन्दिर क्योंकर बनाइये तब उन्होंने कहा कि सारका जीवना जलके प्रवाहवत् है ताते इसविषे घर बनाना बड़ी मूर्खना है इसी पर एक सन्तने भी कहा है कि वैराग्यवाच का अल्प, भजनभी, और लोगोंके अधिक भजनसे विषेप होता है और सुहेल सन्त ने कहा है कि जषनग यह मनुष्य भूल और नग्नता और निर्धनता और अपमानसे निर्भय नहीं होता तबलग इसका करतून कदाचित् शुद्ध नहीं होता ॥ अथ निरुद्धकृष्णा भेदाभेद ग्यकी अवस्था का ॥ ताते जानू कि वैराग्यकी तीर्ता अवस्था है सो प्रथम यह है कि जिसने स्थूल मायाका त्याग किया है और चित्तविषे मायाको रमणीक जानता है और यत्न और हठकरके अगीकार नहीं करता सो विसको कनिष्ठ वैरागी कहने हैं १ वहरि दूसरी अवस्था यह है कि चित्तविषे मायाको रमणीक नहीं जानता है पर अपने वैराग्यको विषेप मानना है कि भेने बड़ा वैराग्य किया है सो यह मध्यम अवस्था कहाती है २ वहरि तीसरी अवस्था यह है जो वैराग्य से भी वैरागीहोवे अर्थ यह कि अपने वैराग्यका भी अभिमानी न होवे जैसे कोई पुरुष राजाके निकट जानेकी मनसाको और उसको राजीसे चन्द्रशीसकी आशाहोवे और राजाके द्वारपर कूकुर सूकनेलगे तब रोटीका टुक कूकुरको डारदेवे वहरि आपको उसमे घवायकर राजाके निकट जावे और उचम बखर्गीस उसको प्राप्त होवे तब वह पुरुष अपने चित्तविषे रोटीके डारनेको कूकुर वस्तुही नहीं जानता तैसेही भगवत्के दर्शनकी प्रीतिविषे मायाका त्यागकरना महातुच्छ वाच है कोहे कि उम मुखके निकट मायाका मुख रोटीके घासेसे ही तुच्छ है इस करके कि मायाके मुख सबही परिणामी हैं और जीतम मुख परिणामसे रहित है ताते नाशवाच और अविनाशो मुखका संख्यन किरीप्रकार नहीं मिलता इसीपर वायजीदको कियोंने कहा था कि असुक पुरुष अपने वैराग्यकी स्तुति करता है तब उन्होंने कहा कि उमने कियमे वैराग्य किया है वहरि वट पुरुष कहता भया कि उसने सर्व मायाको त्यागा है तब वायजीदजी ने कहा

कि माया तो कुञ्चवस्तुही नहीं ताते इसके त्यागने विषे क्या पुरुषार्थ है काहेमे कि त्याग तो किसी वस्तुका होता है ताते माया के त्याग का अभिमानी होना क्या है पर यह जो वैराग्यका वैराग्य वर्णन किया है सो सबसे उत्तम अक्सा है शंभुरि वैराग्यकी उत्पत्ति भी तीन कारण करके होती है सो केते पुरुष तो नरकोंके भयकरके मायाके भोगोंका त्यागकरते हैं १ और केते पुरुष परलोकके सुखनिमित्त भोगोंको त्यागते हैं २ और कोई पुरुष ऐसे निष्कामी होते हैं कि उनको नरकोंका भयभी नहीं होता और किसी सुखकी आशाभी नहीं रखते पर केवल भगवत्की प्रीति विषे ऐसे लीनहोने हैं कि लोक परलोककी सच्चा उनके हृदयसे दूर होजाती है ताते महाराज के दर्शन विना आन पदार्थकी ओर देखने विषे उनको लज्जा आवती है जैसे किसी पुरुषने राविआवाईके आगे बैकुण्ठकी स्तुति करी थी तब उन्होंने कहा कि घबाला पुरुष घरसे विशेष होता है अर्थ यह कि भगवत्के दर्शन के निकट बैकुण्ठका सुखक्या है ३ तात्पर्य यह कि जिसको आत्मसुख का भासाव नर हुआ है वह स्वर्गादिक सुखोंको ऐसे जानना है जैसे राज्यसुखके निकट बलबुलके खेल का सुख तुच्छ होना है पर यह वार्त्ता मंसिद्ध है कि बालकोंको राज्यसुखमे बुनबुलका खेल अधिक प्रियतम लगता है काहेमे कि बालकों की बुद्धि अतिसामान्य होती है ताते राज्यके सुख को समझही नहीं सकते तैसेही जिम पुरुषको भगवत् विना और पदार्थ प्रियतम लगने हैं सो तिसकी बुद्धि अतिनीच है और ज्ञानवानोंकी दृष्टिविषेवही बालकही है काहेसे कि उत्तमबुद्धि और पुरुषार्थ नहीं प्राप्त हुआ तात्पर्य यह कि वैराग्यवानों की गिनत अवस्था होती है पर सम्पूर्ण वैरागी विमहीको कहते हैं जो शरीरके निवाहसे जेते अधिक भोग हैं तिन सबमे विरक्त होवे जैसे धन मान निन्दा आहार और वस्त्र उपदेश बालोंके भिलाप आदिक जेने मनके भोग हैं सो सबही मायासिद्ध हैं और त्यागने योग्य हैं इसीपर एकमन्त्रनेभी कहा है कि बुद्धिमानोंके वैराग्यके घन बहुत कहे हैं पर में उसहीको वैराग्य जानता हूँ जो जिस पदार्थसे भगवत्मे विशेष प्राप्त होना होवे सो तिसहीका त्यागदेना उत्तम वैराग्य है ताते प्रीतिमान् कही है जिसको विचविषे श्रीरामरूप विना और किसी पदार्थकी प्रीति न होवे इसी कारणमे सहियासन टाटका चोला पहण्तेये काहेमे कि वस्त्रकी कोमलता करके स्पर्शको भोग होता है तब माता ने यत्रकरके रुईका वस्त्र पहराया कि टाटकरके

तिनका शरीर क्रूर हो गया था बहु शिखाकाशवाणी हुई कि हे यहिया ! तैने मुफे  
 को ज्योग्य करो मोगों को अर्जी कर कि या हे यहा वचन सुन करे यहिया रोपने लगे  
 और फिर उसही टाटको पहरे लियो पर यह ऐसा कठिन प्रोग्राम है कि सत्रकोई इस  
 खिबस्या विषे स्थित नही होसकता ते जेता जेता किसीने यपागंक्रिमोगों को  
 त्यागा है सो तेतार्ही सामको पावता है ॥ अथ प्रकट करजी मर्यादा वैराग्यकी ॥  
 तीते ज्ञान ती कि संसार एक महा अगाध कूप है और संसारी जीव सवही वैसकूप  
 गिमे स्पडे हैं मरो जवा मि चरकर त्रिलिये तव । इसको शरीर के निवाह मात्र स्पे  
 पदार्थ अवश्य ही लाहने हैं जैसे आहार वस्त्र स्थान गृहकी सामग्री घनमान सो  
 सर्वो से प्रथम आहार की अपेक्षा शरीर को अधिक होती है । तार्ते चाहिये कि  
 प्रथम तौ आहार की वस्तुका विचार करे सो उचम वैराग्यवानों का आहार वि  
 श्वकण फल मूलाहोवा हे काहेमे कि उदर पूर्य इन करकेमी होता है मिठुरि और  
 जेते चीच अनहे सो तिनका आहार इनसे राजसी हे वैठुरि कणक और भावले  
 आदिक जेते अनाजहो सो महाराजसी है और जव रोदा और घृता और मिश्र  
 आदिको का आहार करे तव वैराग्यही जहा होजाता है और आहारका प्रमाप  
 जिज्ञासुवर्नाको प्रवा चाहिये कि जो अधिक तृप्त होवे और अधिकाश्वमी  
 भी न रहे मिठुरि अधिक नचम करता भी त्रयोम्य है काहेमे कि वैराग्यको मूल  
 निराशाही है और तृष्णका मूला आश्रयकी वृद्धि है सो जिस पुरुषकी आशा  
 दीर्घ होती है तिसमे वैराग्य नही होसकत और महापुरुष भी सर्वगुणोंके प्रति  
 प्रेक्षे एक वर्षकी जीविका खावतेके धोर अपने निमित्त कुछ सत्तय न्निष्करनेये  
 मिठुरि वैराग्यमान् को योंभी चाहिये कि मोजनके निमित्त तर्कागो लो जवत न  
 हदे और सागा जवना खयडे के साथरीथे । खाडलेवे और जव नोसाप्रकारके  
 अजना विषे आसक्त होवे तनमी वैराग्य नष्ट होजाता है मिठुरि वैरागीको रात्रि  
 दिनविषे एकही वा आहार करना प्रमाप है और जव दो दिनमे एकवार खावे  
 तो अतिही शवाहिए जव एकही दिन विषे दोप्राखाने तव इस करके धेयार  
 नही रहता तो तपक संह नकि जव कोई पुरुष वैराग्यकी तीर्था यवण किमाचाई  
 तव महापुरुष और वनके भिक्षुगों की प्रार्थना ध्यान करे उनके गृह विवेके दिव  
 दीपकान जगता था थोर पशुको फलों बिना और कोई आहार न होता था  
 और ईसाजी नेभी कल्प है कि जिस पुरुष को मगवत् सुखकी प्रीति होवे तिसके

स्वकी रोटी और घरती परसोना त्रिये प्रहो वहु सिं वैरागी को पहिरावा भी ईम ही  
 चाहिमे इस-करके किं जो पुरुषादो महिरवे रवती है सो भैरागी नहीं होत और  
 महिरावेकी जरिये यह है कि एक कटिबेरा और एक चोला अथवा एक चादर भी  
 राखे तो भी प्रमाण है परतो भी विशेष तो कंबलादिक बस्त्रका पहिरनहि अ-  
 थवा रुईका चमड़ेकी मोटाही भला है और कपडकी न और को मल बस्त्र पहिरा  
 जै है तब वैरागी नहीं रहता इसी पर संतजनों ने कहा है कि जो पुरुषाना ना प्रकार  
 के बस्त्रोंको पहरेवा है तब मागवत्सि मिमुव होत है इसी कारणसे कबहुं महापुरुष  
 के बस्त्र मैला ऐसे होजाते थे जैसे तिलीका बस्त्र हीता है और एक धार को ई पुरुष  
 सुन्दर बस्त्र महापुरुषके निकट ले आया था। तब उन्हें निःसक्तकी प्रसन्नताके नि-  
 मिच प्रियम तो पहरलिया बहुरि शीघ्र ही उतार कर कहने लगे कि यह बस्त्र अमुके  
 पुरुषको देवो और मुक्तको वही पुराने गुदही भली है काहेमे कि यह बस्त्र मेरे  
 चित्तको विषेपता देत है और एक पीवोका जोड़ामी धीति सुन्दर भि सीने आनि  
 राखाया उसको पहिरकर कहते मये कि मुक्तको वही पुराना जोड़ी आनि देवो इस  
 कारके कि मेरे जेठो विषे यह जोड़म सुन्दर भासवा है और भजनकी एक  
 घना पिरो मटल डारना है और धमरासन्तके चोला पर नौदह थगली लगी हुई थी  
 और एक सितने भुपने जेलेकी बाँह जेती कुड्या अशिकर्या सो हाथसे फाड़दारी  
 भी लूओ कहते लगे कि महाराजका धन्यवाद है और यो भी कहते मये कि मे छोटा  
 चोला इसी निमित्त पहरता हूँ कि जो धनवान भी मर्याद विषे विधरे और निर्धनों  
 के चित्तकी सिकुत्र दूर है और एक धीतिमान् एक सन्त के निकट पुरातन बस्त्र  
 पहिरकरागनेये तब उन्हें ने पूछा कि तुमने ऐसे पुरातन बस्त्र क्यों पहरे है तब  
 वहा धीतिमान् मौन कर रहा बहुरि उन्हें ने कहा कि तुमने इस बचन का उत्तर कभी  
 नहीं दिया तब वहा धीतिमान् कहते मये कि इस बचनके उत्तर विषे आपना वे प्रग्य  
 जना विता है अथवा निर्धनता प्रकट करती होती है सो अहन्दो नो त्वर्ति अ-  
 योग्य है ताते भौ मौन कर रहा हूँ और एक सन्तको निकसीने कहा भा कि तुम ज-  
 ज्ज्वल बस्त्र क्यों नहीं पहरे हो तब उन्होंने कहा कि सैनिकको ज्ज्वल बस्त्रके साथ  
 क्या प्रयोजन है और एक राजाकी भक्त रात्रि विषे ठाटको पहिरकर मजत करते  
 रहते थे बहुरि दिन विषे और बस्त्र पहिरकर अपनी राजनीति विषे सात्वान् होते  
 थे बहुरि शरीरधारी सन्तके शीतोष्ण की रक्षा के निमित्त स्यातकी प्रेषा

होती है पर उच्चम वार्त्ता यह है कि जिन्नामुर्जन स्थान बंधि कर न रहे और किसी निरदावे ठौर विषे कौल व्यतीत करलेवे अथवा शरीरके निर्बाह मात्र एक कुट्टी अथवा कोठरी करलेवे पर चित्रशाला और गचकारीके मन्दिरों विषे निर्वासना करे और जो पुरुष अपने स्थानको चित्रकारी करके सुन्दर बनावता है वह वैरागी नहीं कहावता काहेसे कि स्थानका प्रयोजन शीतोष्णकी रक्षा है ताते चाहे कि प्रयोजनाविना और कार्योंविषे आसक्त न होवे इसीपर सन्तजनोंने कहा है कि नानाप्रकारके मन्दिर बनावने भी जीवनेकी आशाकी दीर्घताका लक्षण है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान्ने अपने गृहपर ऊँचा भंगलावनवाया सो जब महापुरुषने वह बैंगला देखा तब उस प्रीतिमान् से बोलना छोड़ दिया बहुरि जब उस प्रीतिमान् ने इस वार्त्ता को जाना कि मेरे ओर बैंगले के निमित्त द्वेष नहीं करते तब उसने वह बैंगला गिरा दिया तब उसको महापुरुषने प्रसन्न चित्त होकर बुलाया और महापुरुषने योंभी कहा है कि जिसको भगवत् अपनी ओरसे विमुक्तिया चाहता है तिसका घन मन्दिरोंके बनावनेविषे स्वर्च करावता इसीकारणसे महापुरुषने अपनी आयुष्पर्यन्त चाहकरके कोई मन्दिर न बनाया और एकवार अपने नगर विषे चलेजातेथे वहां एक प्रीतिमान् गृहको बनावता था तब उससे पूछते मये कि तुम क्या करते हो बहुरि उसने कहा कि हमारा घर गिरपड़ा था ताते उसकी भलीप्रकार बनाया चाहता हू तब महापुरुष कहनेलगे कि उच्चम वार्त्ता तो यह है कि अविनाशी गृहकी और प्रीति कीसे और योंभी कहा है कि कार्य जो कुछ मनुष्य करता है और उसविषे स्वर्च काता है तिसका परलोक में फल मिलता है पर अधिक मन्दिरोंका बनावता अत्यंत निष्फल होता है और ऐसे पुरुषको परलोकविषे भी ताड़ना होती है इसीकारणसे यह महात्माने टेषकी कुट्टी बनाइ लीनी थी जब किसीने कहा कि तुमभी जो ईंट माटीका घर बनाइ लो तो इममें क्या दोष है बहुरि उसको कहते मये कि तिसको अन्त मरना है तिसको ऐसे घरके साथ क्या प्रयोजन है सो नवशत वर्षक सन्तकी आयुष् कुई थी और योंभी कहा है कि जब यह मनुष्य ऊँचा मन्दिर बनावता है तब देवता इस प्रकार कहते हैं कि हे मूर्ख ! तुमको श्रेष्ठी में समावर्त्तता है ताते आकाश की ओर काहे ओ चला आवता है इसीपर एक सन्त ने कहा है कि जो सुन्दर मन्दिर बनाइ कर मरजाते हैं सो तिनको मुक्तको आरुर्ष

तहीं आवती पर उन्नपरी अश्वर्य्ये आवती है जो इसवाचीको देखते हैं और भय मानकरा समझते नहीं और चहुरि मन्दिरों को बनावते हैं और इसामनुष्य को गृहकी सामग्री भी कुछ अन्नशय चाहती है पर उन्नपरी बेरागी वहदे जो कुछ ही नाराखे जैसे ईसा महापुरुष प्रथम एक कधी और एक करवा रखते थे सो जब उन्होंने एक पुरुष को ऐसे देखा कि वह हाथोंसे केश और ढाढ़ीको बनावता था और हाथही से जल पीता था तब उन्होंने कधी और करवा भी फेंक दिया और कहने लगे कि यह तो दोनों पदार्थ भरे सगथे ताते जिज्ञासुको जो किसी वासनकी अधिकही अपेक्षा होवे तो काष्ठ अथवा माटीका पात्रराखे और जो पुरुष धातुका पात्र रखता है तिसका बेराग्यहीन हो जाता है इमी कारणसे विचारने वालोंने ऐसे यत्न किया है कि उन्होंने एकही पात्रसे केशों का र्य्य करलिये हैं और कोई पुरुष एक सतके गृहनिषे आयाया तब उसने घरमें कुछ सामग्री न देखी ताते पूछता भया कि तुमने अपना घर ऐसा शून्य किस निमित्त किया है तब उन्होंने कहा कि हमारा एक घर और है ताते सर्व सामग्री उसी घर विषे इकट्ठी करते जाते हैं यह कि सर्व सामग्री कामकरके परलोकके तोशा बनावते हैं बहुरि उस पुरुषने कहा कि जबलग इस सप्तार विषे जीवना है तबलग कुछ सामग्री तो अवश्यही चाहती है तब उन्होंने कहा कि हमको भगवत् दयाकरके सप्तार विषे न राखेगा और एक दिन महापुरुष अपनी पुत्री के घर गये थे सो दरवाजे के दरपर परदे में रूकी कुएही देखते भये ताते गलानि करके वहाँ चले आये और भीतर न गये बहुरि जब पुत्रीने यह वार्त्ता सुनी तब दरका परदा और रूपे की कुएही किसी अर्थीको उठावदी सो जब महापुरुषने सुना तब पुत्रीपर प्रसन्न भये और आशशाजी ने इम प्रकार कहा है कि महापुरुष सर्वदा दोहरे विषपर सोवते थे सो मैंने एक रात्रिको चारत इत्कके भिखा दिया बहुरि अमातममय उठ कर कहने लगे कि मुझको सारी रैन घोरनिद्रा रही है ताते फेर कमी बेलको चार परतकरके न बिछविना बहुरि एकवार किमी ओरसे बहुत धन आया था सो महापुरुषने एकही दिन विषे चाट दिया और छ रुपे शेष रह गये ताते बिश्राम नहीं किया और रात्रि भर विष हो चैन न पडा बहुरि जब वहीमी किसी अर्थीको देह दारे तब निश्चिन्त होकर सोये और हमनवसरी ने कहा है कि मैंने सत्तर बेराग्यवानों को देखा है पर वह भवही एक एक बल रखते थे और वस्तीही पर सोइ

रहते थे चहुरि उसीचित्रको ओढ़लेने धेचहुरि शरीरधारी मनुष्यों को घन और  
 सानुकी अपेक्षागी अवरयही होती है। सो मैंने तीसरे प्रकरणविषे इन सब त्रयनों  
 को भलीप्रकार विस्तारकर कहे हैं कि घन और मानुकी अधिकता जो हला  
 ईसा विषा है पर जब कार्यके निर्वाहमात्र इनको अगीकारकीयेत्तम। यह भी  
 अमृतके समान होजाने है काहेसे जिस पदार्थके धर्मके मार्गकी सहायता  
 होवे तिसको भी अर्म्भरूपी कहते हैं ताने जो पुरुष स्थूल पदार्थको कार्यमात्र  
 अंगीकार करता है और भोगोंके निर्मित अधिकता को नहीं चाहता सो पुरुष  
 मुक्तरूप है काहेसे कि उसका हृदय तो सर्व पदार्थोंसे विरक्त रहता है और  
 जिसकी प्रीति मायाके साथ अधिक होती है सो यद्यपि परलोक विषे जाता है  
 तौसी उसको हृदय भोगोंकी जोर खिंचा रहता है ताते उसको अधोगति कहते  
 हैं और जो पुरुष इसमसार को मलत्यागनेकी चाई जानता है सो जैव सृष्टिको  
 प्राप्त है तब ऐसे समझना है कि भेदा हुआ जो मलिनस्थान से भेरी मुक्ति हुई  
 तीते मायाके हेतु का दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष विरोधरकी जैनीरमाप  
 अपने वालोंको दृष्टाये चहुरि जब धावाला सुरुष भाइकर उसको धावर निको  
 सी त्वा है तब उसको केश उखड़ते हैं और रुधिर निकसता है और रङ्गवित होता है  
 तैसेही भोगी मनुष्य जब इसमसारको त्याग जाता है तब भी उसका हृदय वा  
 सता करके घायल रहना है ताते एक महात्माने कहा है कि जैसे ससारी जीव  
 समादा प्राइकर प्रसन्न होते हैं तैसेही विनाशान् पुरुष आपदा विषे प्रमत्त हो  
 हैं प्ररुद्ध बड़ा आश्चर्य है कि ससारी जीव उत विचरिखान् पुरुषों को विदरा  
 जानते हैं और अवहा सस्तजनगी ससारी जीवोंको सुव्रिणोंके संगोने दिसते हैं  
 तात्पर्य यह कि विचारवान आपदाको सुखरूप इस निमित्त जानते हैं कि तसों  
 करके इस मनुष्यको हृदय ससार से निरक्त होता है और फिस्ती स्थूल पदार्थविषे  
 आसक्त नहीं रहता ॥ अथ यात्रे सर्गविषे निष्कामता और सखाइका वर्धन ॥  
 ताते जानत व कि बुद्धिमानोंने इमवार्त्ताको प्रत्यक्ष देना है कि जगत् मवही  
 नाश हुआ है और कोई विरला सुकर्मी ही बचा है और शुभकर्मी भी सबही ना  
 श हुये हैं विरला कोई विद्यावान ही बचा है और विद्यावान भी सबही नाश हुये  
 ताते कोई निष्काम पुरुष ही बचा है तात्पर्य यह कि निष्कामता विना सपही कर्म  
 दुर्लभरूपे पर निष्कामता और सखाई जो है सो मनसाकी शुद्धता विना कोई

पाय नहीं सक्ता और जो पुरुषामतीसाही के गेदको न जानै सो व्रित्तसको निष्काम  
 मता क्योकर प्राप्त होवे इसी कारणसे भी प्रथम विभाग विपे मत्तसाका रूप वर्णन  
 करताहूँ बहुरि दूसरे विभाग विपे निष्कामता वर्णन करूंगा और तीसरे विभाग  
 विपे सच्चाई का वर्णन होवेगा। अर्थात् प्रथम विभाग विपे मनसाके निर्णयमें। अर्थात्  
 प्रथम तो मनसाकी विवेचनाको अमत्तसा चाहिये ईमकरके कि सब करतवोंका  
 जीव मनसाके और भगवत् भी मनसाही की ओर देखताहै इसीपर महापुरुषके  
 कहाहै कि भगवत् तुम्हारे धन और गरीर और कर्मोंकी ओर नहीं देखता फेवर्ल  
 हृदयही श्री श्रीर देखताहै काहेसे कि मनसाका स्थान हृदयहै और करतवोंकी  
 भी मनसाहै चहुरि योंभी कहाहै कि जैसे किसीकी मनसा है तैसाही उसको  
 फल प्राप्त होनाहै और योंभी कहाहै कि सह मनुष्य कुछ शुभकर्म करताहै और  
 देखने उसको लिखते हैं। तब उसको आकाशवाणी होती है कि अमुककर्म ईस  
 कीचिद्धीसे दूर करदेवो काहेसे कि इसने वह कर्म मेरे निर्मित नही किया और  
 अमुककर्म कीये बिनाही लिखलेवो काहेसे कि इसने उस कर्मकी दृढग्रहण  
 करीभी चहुरि योंभी कहाहै कि एक धनवान् पुरुष ऐसे होते हैं जो विषयकाम  
 खर्च करते हैं और एक पुरुष उनको देखकर ऐसी मत्तसा करते हैं कि जन्मसाके  
 पास श्री धन होवे तब हम भी ऐसेही खर्च करें तावे मनसा करेने द्योको भी प्रथमी  
 पुरुषकी तब उचम फलकी प्राप्ति होती है चहुरि एक ऐसेही बुद्धिहीन हैं जो  
 पापों विपे धनको लंगवते हैं और एक और पुरुष उनको देखकर ऐसी मत्तसा  
 रखते हैं कि जब हम भी धनको पावते तब इसी प्रकार खर्च करवे तब यह भी  
 दोनों पुरुष पापों विपे समान हैं काहेसे कि मनसा दोनोंकी समान है इसीपर एक  
 वार्त्ताहै कि एक प्रीतिमान् देवके देपर जाय, वेदाथा और उस देवसे भिषे चहुरि  
 बुद्धिदया तब वह प्रीतिमान् दया करके कहने लगा कि जब ऐसाही देव अनाज  
 का होता तबसे सबही सुवावानोंको बाँटदेता चहुरि उसको आकाशवाणी हुई  
 कि तेरा दाना सिफने हुआ और मैंने तैरी मत्तसाहीको प्रमाण किया और महा  
 पुरुषने भी कहा है कि जिसकी मनसा और पुरुषार्थ मायाके लक्ष्यमें विपे दृढ़  
 होती है सो विसुको हृदय मद्यो अष्टमरहता है मरि अज्ञान विपे भी उचकी मति  
 मायाही की ओर रहती है चहुरि जिसकी मनसा और पुरुषार्थ भगवत् के मारागी  
 विपे दृढ़ होती है सो पतिमका हृदय भी सर्वदा सिद्ध करेता है और अन्न फल



विषे भी विक्र होकर ससारको त्यागताहै इसीपर सन्न जनोंने कहाहै कि प्रथम मनसाकी विद्याका पढ़ना प्रमाणहै और पीछे करतूति करना प्रमाणहै काहेमे जो पुरुष किसीमे कुछ उधार लियाचाहै और वित्तविषे यह मनमां करे कि मैं कि इसको न दूंगा सो निस्सन्देह चोरहै और एक जिज्ञासुने एमे कहाथा कि मुझको ऐसी विद्या पढ़ाओ जिस करके मैं किसी शुगकरतूनि मे रहित न होऊ तब उन्होंने कहा कि जब शुभकर्म का अवसरहोवे तब उमी क्रिया विषे दृढ़ होवे और जब करतूतिका समय न होवे तब मली मनमांविषे सावधानरहो ताते किसी समयविषे पुरणके फलसे अप्राप्त न होवेगा इसीपर एक और सन्नने भी कहा है कि परलोक विषे भी सबको मनसाकि अनुमार सुख दुःख प्राप्ति होवेगी और एक महात्मा का वचन है कि आत्मसुख की प्राप्ति शरीरके करतूति पर नहीं होसक्ती ताते उमका पावना शुद्ध मनसा करके होता है काहेसे कि जैसे आत्मसुख सूक्ष्म और अनंतहै तैसेही शुद्ध मनमांभी सूक्ष्म और अनंतसे रहितहै ॥ अथ पूकट करना रूप मनसाका ॥ ताते जानतू कि सर्व करतूतोंका बीज ब्रूम और श्रद्धा और बलहै जैसे यह मनुष्य जबलग किसी आहारको नहीं देखता तबलग उसको पावता भी नहीं और यद्यपि उमको देखनाहै तौसी श्रद्धा बिना अङ्गीकार नहीं करता और यद्यपि श्रद्धामी होवे तौ भी हाथ और मुँहके हलाये बिना खाय नहीं सकता तातरथ यह कि सर्व कर्मोंकी सिद्धता ब्रूम और श्रद्धा और बलकरके होती है पर बल श्रद्धाके अधीन है और श्रद्धाही बलको करतूतिविषे सावधान करती है वद्वरि श्रद्धा ब्रूमके अधीन नहीं काहेसे कि यह मनुष्य जेते पदार्थोंको जानताहै उन सबकी श्रद्धा नहीं रखना पर यह चार्ताभी निस्सन्देह है कि ब्रूम बिना श्रद्धाका कुछ रूपभी पूकट नहीं होता काहेसे कि प्रथम जिस पदार्थ को जानेही नहीं सो तिसकी श्रद्धा क्योकर करे तो इसभाव करके श्रद्धाको ब्रूमके अधीन कहमकने हैं पर जब ब्रूम और श्रद्धा और बल एकत्र होते हैं तब इसदी को दृढमनसा कहने हैं सो करतूतिकी सिद्धता उसी मनसाकरके होती पर वह मनसा जो करतूतिकी प्रेरणी है सो कबहू केवल होतीहै और कबहू मिथितभी होतीहै सो इसका दृष्टान यहहै जैसे कोई पुरुष अचानक सिंहको देखे तब उसकी मनसा केवल भागने विषे होती है अथवा जब कोई पुरुष स्वर्ग्यवान् मनुष्य किसीके गृह विषे आवे तब उसके सम्मानके निमित्त सौमही

उठखड़ा होता है सो यह केवल मनसा कहाती है १ और मिश्रित मनसा तीन प्रकारकी होती है प्रथम तो यह है कि वे दोनों मनसा कार्यको समर्थ होती हैं जैसे निर्द्धन सम्बन्धी किसीसे कुछ मागे तब उसको अवश्यही देता है सो अथवा सम्बन्ध के निमित्त देता है अथवा निर्द्धन और अर्थी जानकर देना है ताते इसका नाम मिश्रित मनसा है २ बहुरि दूसरा प्रकार यह है कि दोनों मनसा निर्बल होती हैं जैसे सम्बन्धी निर्द्धन होता तो भी उसको कुछ न देता और जब वह केवल निर्द्धनही होता और सम्बन्धी न होता तो भी उसको कुछ न देता पर जब निर्द्धनता और सम्बन्ध दोनों इकट्ठे आनिहुये तब इसका मन देने को समर्थ हुआ ३ सो प्रथम प्रकार का दृष्टान्त यह है कि जैसे दो बलवान् पुरुष किसी पाथर को उठाने लगे और दोनों पुरुष ऐसे बली होवें कि जब पृथक् पृथक् उसपाथर को उठावते तो उठाय सक्ते पर मिलके उठाने कर सुगमही उठाय सक्ते हैं बहुरि दूसरे प्रकारका दृष्टान्त यह है जैसे दो पुरुष ऐसे निर्बल होवें कि पृथक् पृथक् पाथरको उठाय न सकें और परस्पर मिलकर उठाइ लें २ बहुरि तीसरा प्रकार यह है कि मनसाविषे एक मिलौनी सबल होती है और एक निर्बल होती है पर दोनों के मिलाप करके सुगमताई होजाती है जैसे कोई पुरुष रात्रि विषे प्रीति सयुक्त मजन करता होवे और कोई और पुरुष उसको देखे तब वह मजन उसको सुगम होजाता है ताते इसका दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष अपने बल साथ भी पाथर को उठायसक्ता होवे पर जब निर्बल मनुष्य भी उसको हाथ लगा देवे तब उसका उठावना कुछ सुगम होजाता है सो यह सबकी भिन्न भिन्न अवस्था है ३ तात्पर्य यह कि तू मनसाकी केवलता और मिलौनीको भी जाने और करतूतों का प्रेरक मनसाही को पहिचाने अब इससे आगे ऐसे जान तू कि महापुरुष ने भी इस प्रकार कहा है कि प्रीतिमानों की शुद्ध मनसा करतूति के करनेसे भी विशेषेह सो इस वचनका अर्थ यह नहीं कि श्रद्धाहीन करतूति से मनसा विशेषेह काहेसे कि यह वार्त्ता तो प्रकट है कि शुद्ध श्रद्धा बिना करतूति निष्फल होती है और शुद्ध मनसा करतूति बिना भी फलदायक है ताते महापुरुष के वचन का प्रयोजन यह है कि करतूति शरीर करके होती है और मनसाका सम्बन्ध केवल हृदयहीके साथ होता है इसीकारण से मनमाको कर्मसे विशेष कहा है जो शरीर की करतूति विषे भी हृदयहीके स्वभावका उलटावना प्रयोजन होता है और ह-

दयकी मत्तमा विपे जिज्ञासुका प्रयोजन ऐसा नहीं होता जो शरीरके संरक्षणको उल्टाई करे सधा भोजियो परजरलग गनगा अनुमार शरीरका सम्बन्ध नहीं मिलता तबलम करवृत्ति प्रकट नहीं होती। इसी कारण से अल्पवृद्धि जीव ऐसी जानतो हैं कि मनमा करवृत्तों के तिगित्त चाहती है परजन मन्वी प्रेकार चित्तार करके द्विस्त्रिमे तथ करवृत्ति विपे भी मनसाही उलटावनेका प्रयोजन है काहमे कि शुद्ध मनसा करके जीवका हृदय शुद्ध होता है और परलोकविपे भी इसी जीव को जाना है ताते उत्तम भागों और मत्तभागों का अर्थिकारी भी जीव है और सर्वप्रति परलोक के सुखइ स विपे शरीरका सम्बन्ध भी होता है तो भी सहस्रों की जीवकी अतीत है जैसे तीर्थयात्रा के मार्ग विषोषोद्वा भी उजतरस त्तादिये मरु घोड़ेको तीर्थयात्राका फल सुख नहीं होता और फलकी अधिकांश गितुप्यहै त्वि हृदयके स्वाभाव की उलटावना सर्व वर्णोंकी प्रकृति भयार्थि प्रदायों की ओरसे हृदयके सुखको फेरना और भगवत्की ओर मनस्सुव होना सो हृदयका सुख अद्धाहीकारनाम है ताते जिसकी अद्धागोया के मर्दर्थों विपे स्वभावान है तिसका सुख मायाही की ओर है पर आदि उत्पत्ति विपे इस जीवको नमायीही की अभिलाषा अधिक होती है वहरि जिसेके हृदय विपे भगवत् के दर्शनकी श्रद्धा उत्पन्नहुई तथ जिनिये कि उमका सुख उलटकर महागर्भ और सधा हुआ है ताते प्रसिद्ध हुआ कि मर्भ कर्मों का प्रयोजन हृदयकी मनसा का उलटावना है जैसे मस्तक छेकते विपे यह प्रयोजन नहीं होता कि जीवको धरती पर राखिये पर इस विपे भी यही प्रयोजन होता है कि इस जीवका हृदय अभिमान से उलटकर दीनताको ग्रहण करे ऐंभी भगवत्को बड़ा रहने विपे भी रसनको हलावनेका प्रयोजन नहीं होता ताते बड़ा रहने विपे भी यही प्रयोजन है कि यह गनुष्य अपनी मर्दाईका त्याग करे और मंगवृत्तकी बहाई जानकर उसके अधीन होवे ऐंसे ही सधे शुभकर्मोंका फल येही है कि जिज्ञानुजन अगनी बर्भ सेनाकी त्याग कर उतजनों को आकाशकी देवे उमकर के कि दामको मर्भ प्रेकार अपना आपा टूटकरनाही प्रीण है पर उममिनुषी विपे भगवत्को यह स्वर्ग उत्पन्न किया है कि जब इसको विसे विपे किमी कर्मकी श्रद्धा उपजे और शरीर करके भी चहो कान्ति करे तथ तही स्वभाव हृदय विपे हृदय होजाता है जैसे कि पृथक् मन विपे किसी अनाय वाचरुपर दया आन उपजे पर जीवउमके



और योंभी कहाँ है कि भगवत्मुखके कहनेको नहीं प्रमाण करना और इन्द्रकी  
 की मनसाको मानता है और यह वार्तागी प्रसिद्ध है कि अभिमान कपट अहङ्कार  
 ईर्ष्या दम्भादिक जेते मलिन स्वभावहैं सो सबही इस जीवके बन्धन करनेहारें हैं  
 और यह पाप सबही मनके संकल्प करके होतेहैं सो ऐसे पापोंके होतेहुये मनु-  
 ष्यको निर्वन्ध क्योंकर कहिये ताते इस बंधन का तात्पर्य यह है कि इस जीवके  
 संकल्पका फुनाभी चारप्रकारका होता है सो दोप्रकारका फुना इसके पुरुषार्थ  
 करके होता है और दोमकारका फुना इसके अधीन नहीं इसीकारणसे परार्थीन  
 फुनेका इमको दोष कुछ नहीं लगता और पुरुषार्थसहित फुना बंधनरूप होता  
 है जैसे कोई पुरुष मार्गी विषे जाता है और अज्ञानकही पीछेसे कुछ शब्द मनु  
 लेवे बहुरि जब पीछे नेत्र करके देखे तब उसको स्त्री दृष्टि आवे सो विसको तुच्छ  
 फुना कहते हैं और इस फुनेकरके मनुष्यको दोष कुछ नहीं लगता काहेसे कि  
 यह स्वाभाविक दृष्टि है बहुरि जब दूसरीबार कुछ रुचिकरके देखे तोभी कुछ पाप  
 नहीं कहा जाता काहेसे कि यह भी मनका स्वभाव है और इसी जीवके ऊपर  
 प्रबल है ताते भगवत् वरुण लेता है पर जब निलज्ज होकर तीसरीबार उसके रूप  
 और अङ्गोंको देखनेलगे और उमी संकल्प विषे दृढ़ होवे तब बही संकल्प बंधन  
 का कारण होता है काहेसे कि यद्यपि उस देखनेको बुराई जानता है तोभी त्याग  
 नहीं करसक्ता बहुरि चौथा संकल्प उसको कहते हैं जो उस पापकर्म की बुराई  
 भी विस्मरण होजावे और कामकी अभिलाषाविषे मनसा दृढ़ करे तब यह संकल्प  
 सम्यक् बंधन रूप होजाता है तात्पर्य यह कि प्रयाग दो प्रकारका फुना परार्थी-  
 न और अकस्मात् होता है ताते निर्दोष कहाजाता है इसी कारणसे जिज्ञासुजन  
 को चाहिये कि भगवत्के भयकरके मनके संकल्पको होने न देवे और इउकरके  
 आपको नाशगी न करे काहेसे कि विचार और भगवत्की प्रार्थनाकरके गने-  
 शाने मतके स्वभावको दूर करना विशेष है इसीपर एक प्रीतिमान्ने महापुरुष  
 पूंजाया कि मैं कामादिक संकल्पकी विषेपतासे दुःखित होकर आपको नपुंसक  
 किया चाहता हूँ तब उन्होंने कहा कि नपुंसक होनेसे व्रत और तपकरके शरीरको  
 निर्बल करना विशेष है बहुरि वह प्रीतिमान् कहताभया कि मेरा मन लोगोंके  
 मिलाप से विषेपताको पावता है ताते किमी पहाड़की कन्दराविषे निवासकिया  
 चाहता हूँ तब उन्होंने कहा कि मेरे मतविषे एकान्त रहने से सावुसंगानि नि

रहना विशेष है सो इसका प्रयोजन यह है कि जबलग हम मनुष्यके हृदय विषे पापकर्मकी मनसा दृढ़ न होवे तबलग मनके स्वाभाविक फुरनेकरके पापी नहीं होता पर जब वही सकल्प दृढ़ होजावे अथवा उस पापकी मनसाकरे तब निस्संदेह पापी होता है यद्यपि भगवत् के भयविना अपने मान अथवा लोगों के सक्रोच करके वह कर्म न करे तो भी पापसे रहिन नहीं होता और ताड़नाका अधिकारी होता है काहे से कि ताड़नाका अर्थ यह नहीं कि इसके पापकरके भगवत् को क्रोध उपजता होवे और इसको दण्डदेवे सो ऐसे नहीं ईसकरके कि महाराज क्रोधकरने और दण्ड देनेसे तिलेपडे पर जब हम मनुष्यके हृदयविषे पापकी मनसा दृढ़ होती है तब आपही भगवत् की ओरसे विमुख होता है और वही विमुक्तता इस जीवके मन्द मार्गोंका बीज है जैसे मैंने पीछेभी वर्णन किया है कि जब इस जीवकी श्रद्धा स्थूल पदार्थों विषे बधायमान होती है तब हृदयकी निर्मलता और भगवत् के दर्शनसे इसको पटन होजाता है सो धिक्कार और भगवत् के शोमका अर्थ यही है कि उसकी प्रीतिसे विमुक्त होना और अन्य पदार्थोंकी प्रीति विषे आसक्त रहना सो यह मलिन स्वभाव इसी जीवके मनही से उत्पन्न होता है और सन्निवृत्ता इसके सग रहता है ऐसेही मत्ता स्वभाव भी इसके मनसे उपजता है ताते सन्तजनों ने कहा है कि इस मनुष्यके मले कर्मपर ईश्वरको प्रसन्नता भी कुछ नहीं उपजती और इसके पापकरके उसको क्रोधभी नहीं उपजता पर जिज्ञासुको समझावने के निमित्त बुद्धिमानों ने इस प्रकार कहा है कि मले कर्म विषे भगवत् प्रसन्न होता है और पापियों के ऊपर कोप करता है सो जिसने इस भेदको मलीप्रकार समझा है तिसको यह वार्ता प्रत्यक्ष दृष्टि आवती है कि जब हृदयकी मनसा पापकर्मविषे दृढ़ हुई तब वही मनसा हृदयको मलिन करदेती है इसीपर महापुरुषने कहा है कि जब दो मनुष्य क्रोधभयुक्त एक दूसरे को मार चाहते हैं बहुरि एक पुरुष माराजाता है और दूसरा जीवना रहे तब दोनों नरकगामी होते हैं काहेसे कि जो पुरुष मृत होगया है सो तिसकी मनसा भी शत्रुके मारनेविषे दृढ़ी ताते जब उसका बल पहुँचता तब वह भी दूसरेको मारता सो इन सर्व बचनों और युक्तियों करके प्रत्यक्ष मनसाही की प्रबलता है पर जब इसके हृदयविषे पापका संकल्प उपजे और भगवत् के भय करके वह कर्म न करे तब देवता उसकी मलाई लिखते हैं इस करके कि उस संकल्पका उठना



होगेगा सो यह भी बुद्धि की हीनता कहावनी है तैभेही सने जनोंने श्री जिस वि-  
 द्यार्थी की मनसा मलिन देखी है तिमको उन्हे ने प्रदायाही नहीं तात्पर्य यह  
 कि मली मनपाकरके पाप कर्म भनी नहीं होना इसकरके कि भलाई तिसको  
 लागे है जो, सन् जनों की आज्ञानुसार कर्महोवे १ बहुरि दूसरा कर्म सात्त्विकी  
 कुंहाहै सो इम विषे भी दो भेदहैं प्रथम तो सात्त्विकी कर्मका मूल मनसाकी शु-  
 द्धताकरके दृढ़ होताहै १ और दूसराभेद यहहै २ किं जिमकी शुद्धमनसा अ-  
 धिक्, विद्वन्जीवे तिसका एक कर्मही दशगुण भलाईको प्राप्तहै जैसे क्रोड, पु-  
 स्यामशी मनसावासर धर्मशाला आदिक स्यात्विषे जावें तव एक तो उषसका  
 बहा, ज्ञानाही भलाई, होता है १ बहुरि दूसरी भलाई यहहै कि जब एकीर्तियम  
 संजनका पूर्ण करलेताहै तब दूसरे नियमकी बाधा करता है सो यह वाची, नि-  
 स्पन्देहहै कि भजनके नियमकी बाधा करनाही भजनहै २ और तीसरी भलाई  
 यहहै कि ऐसे स्थानविषे जाय सर्व इन्द्रियों को रोकवैउताहै सो यह सी, उच्य अनु-  
 हो ३ और चौथी भलाई यहहै कि सर्व कार्योंके सकर्योंको सकुचावताहै और  
 जिघंकी एकत्र करके भगवद्भजन विषे सावधान होताहै ४ और पाचवीं भलाई  
 यहहै कि कुर्मगी मनुष्योंके मिलापसे मुक्त रहता है ५ और छठी भलाई यहहै  
 कि किसी मनुष्यको उपदेश करके पाप कर्ममे बरज रखताहै और उसको भलाई  
 का मार्ग दिखाताहै ६ बहुरि सातवीं भलाई यहहै कि जब किसी प्रीतिमान्को  
 देखताहै तब उसके साथ भिताई करताहै ७ आठवीं भलाई यहहै कि शुभस्वात  
 विषे बैठने करके भगवत्का भय उपजताहै ताते किसी अपकर्मकी चिनयनीही  
 नहीं करता, तात्पर्य यह कि जब जिज्ञासुजनकी मनसा किसी शुभ कर्तव्य  
 विषे विधिसयुक्त दृढ़ होनी है तब सवही कर्तव्य अधिकसे अधिक बढ़ता जाता  
 है बहुरि तीसरे कर्म राजमी जो कहेये सो शरीरका व्यवहार है ताते बुद्धिमान्  
 को चाहिये कि शरीरके व्यवहार विषे भी पशुवों की नाई अचेतठोकर न विचरे  
 और किसी समय भलाईमे रहित न होवे इमकरके कि शरीरकी क्रिया विषे मग्न  
 होकर भली मत्तसामे अचेतठोताभी इही हानिहै, काहेये कि पालोक विषे गर्व  
 व्यवहारोंका लेखा होवेगा और वाङ्मना करेगे सो जिसकी मत्तसा उपवहारविषे  
 मलिन होवेगी तिमको दण्ड देवेंगे और निष्कम्पनसा शुद्ध है सो मुक्ति का  
 अधिकारी होवेगा बहुरि जिसकी मनसा शुद्ध और मज्जिनभी न होवेगी तिस-



कों चही बड़ा विग्रह है कि उमकी आयुर्वेद व्याख्यान की जाती है और मनुष्य जन्म विषे उसने परम पदको प्राप्त न किया और भगवत की आज्ञा से विमुक्त हुआ इसीपर महागजने भी कहा है कि यह आयुर्वेदरूपी प्रवाह सर्वदा चलता जाता है सो यह समय मने तुमको इमनिमित्त दिया है कि तुम इस नारायण समयाविषे शुद्ध मनसा करके अविनाशी पदको प्राप्त होवो ऐसेही महापुरुष ने भी कहा है कि जब यह मनुष्य नेत्रोंविषे अजन डारता है अथवा मृत्तिका के साथ हाथ धो-वता है अथवा हाथ पसारकर किसी के वस्त्रको देखता है सो मस्तोक विषे ऐसे क्रमोंका हिसाब होवेगा और इसप्रकार पूछेंगे कि तने अमुककर्म किम मनसा करके किया था इसीकारण से मन्तजनों ने कहा है कि प्रथम सब किसीको मनसाकी विद्यापढ़नी पूजाण्डे पर व्यवहार के कर्मों विषे जिसप्रकार मनसाकी शुद्धता फही है सो यह विद्याभी अपार है जैसे वस्त्रोंको सुगन्ध लगावनी भी कुछ पापनहीं पर जब आपको बड़ा जनावनेकी मनसा न होवे और स्त्रीओंदिकों के चित्तको चपल करनेकी मनसा न होवे बहुरि अपने चित्त विषे यही मनसा राखे कि जब किसीको सुगन्ध पट्टेचेगी तब उमका चित्त प्रसन्न होवेगा ऐसेही अपने शरीरके गैलको इम निमित्त धोवे कि मुक्त हो देखकर ग्लानि किर्मोंको न आवे इसप्रकार जिसका चित्त निर्मल होता है सो सर्व कर्मों विषे निर्मल मनसाही को बढ़ावता है तने उसका आहार और व्यवहार और स्त्रियोंका मिलाप और और सभही कार्य भलाईका फागण होते हैं काहेसे कि जिसकी मनसाशुद्ध है तिसकी क्रिया कदाचित् भी भलाईसे रहित नहीं होनी जैसे सिन्धु सन्तने एकवार उलटा जामा पहिराथा बहुरि जब उसको सीधा करनेलगे तब चित्त विषे विचारतेभये कि यह वस्त्र तो मने शीतनिवारण के निमित्त पहिरा है सीधा क्योंकर बहुरि एक सन्त किसीके गृहविषे मज्जगी करते थे तब भोजनके समय कुछ लोग उमके दर्शनको आये सो तिनसे उन मन्तने ऐमेन कहा कि तुम भी प्रेमद पात्री जैव सम्पूर्ण प्रेमद आप याइनुके तब कहने लग कि मैं इस निमित्त तुमको भोजनका सरकार नहीं किया कि जब मैं वस्त्रोंपर भोजन न पावता तब मज्जी न करमजा और मालिका श्रेणी रहना तात्पर्य यह कि जिज्ञासुजनों ने खानपान आदिकु व्यवहारों विष भी ऐमे शुद्ध मनसाकीनी है सो उस करके उत्तम फलों को प्राप्तहुये हैं और भवेनवा रहित नहीं रहिये ॥

अथ पूर्णकरना, इमका कि शुद्ध मनसा अपने पुरुषार्थ करके उपजाय नहीं सके।। ताते जानू कि जब यह मनुष्य मनसाकी विशेषताको सुनता है तब चित्त विषे ऐमा अनुमान करलेता है कि मैं भी भगवद्भजन के निमित्त भोजन करता हूँ और ज्ञीत्रों के कल्याण निमित्त बचन वार्ता करता हूँ ताते मेरी मनसा शुद्ध है पर जब विचार करके देखिये तब इसकी मनसा करके केवल मनहीं का सरूप होती है काहे से कि मनसा दृढ अभिलाषा और भगवत् की खैच को कहते हैं सो जब इस जीवके हृदय विषे भलीप्रकार करके उत्पन्न होती है तब प्रबल होकर मनुष्यकी करतूत विषे प्रेरती है जैसे किसी गुरुषको राजा का प्यादा खैचले जाके तैसे ही मनसा बलकरके शरीर को करतून विषे सावधान करती है सो ऐसी हृदयता तयहीं उपजती है जब प्रथम किसी कार्य विषे इस की प्रीति प्रबल होती है और जब लग ऐसी प्रबल प्रीति और खैचान होवे तब लग मनुष्यका कहना न्यर्थ होता है जैसे कोई पुरुष दृष्ट होकर भोजन करे और कहे कि मैंने अल्प आहारकी मनसाकीनी है तब उसका कहना व्यर्थ होता है ताते जिस जिस पुरुषका धर्म प्रसंग निर्वल होवे वह सन्नजनों के उचनोंको विचारकर शुभ कर्मोंकी विशेषताको समझे और बहुरि भगवत्की प्रमत्तनाके निमित्त सात्त्विकी करतून विषे दृढ़ होवे तिसका नाम शुद्ध मनसा है पर जिसका चित्त मोगों विषे बध्यमान होवे तत्र ऐसे पुरुषके मन विषे पालोक मार्गकी मनसाका उपजना ही कठिन है और यद्यपि मुवसे भी कहे कि मैं शरीरका व्यवहार शुद्ध मनसा सहित करता हूँ तौ भी उसका बचन कहनेमात्र होता है जैसे कोई सुधिन पुरुष कहे कि मैं धुआनिवारण की मनसा निमित्त भोजन करता हूँ तब ऐसी मनसा ही निष्कन कहाती है काहेमे कि आहार तो सब कोई धुआनिवारण निमित्त ही खाता है ताते ऐसे बचन कहने विषे क्या यत्न होता है तात्पर्य यह कि शुद्ध मनसा इम जीवके सरूप करके नहीं उपजती और वह मनसा भगवत्की प्रेरणा है सो तुम्ह को करतून विषे सावधान करती है पर उम करतूनका मन्बन्ध तेरे पुरुषार्थके साथी निस्मन्देह है इसकरके कि पुरुषार्थ विना करतून सिद्ध नहीं होता ताते प्रसिद्ध हुआ कि श्रद्धाका उपजना तेरे अतीत नहीं जिस प्रकार भगवत् चाहता है सो तैमे ही श्रद्धा उसजीवके हृदय विषे उपजाता है पर श्रद्धाकी उत्पत्तिका मार्ग प्रीति है इसकरके कि जब किसी कार्य विषे तेरी प्रीति दृढ़हानी है तब निस्मन्देह

उम पदार्थकी प्राप्तिके निमित्त तुम्हको श्रद्धा उपज जाती है और तुम्हको सर्वथा  
 वही पदार्थ प्रियतम भासता है। मोर्जिन पुस्तोने इम भेदका भली प्रमाण समझा  
 है। निन्होंने जियसमय विषे अपने चित्त विषे शुद्ध मनसा न देखी तब वेह फ  
 र्मोंकेयोही नहीं काहेमे कि यद्यपि वह करतूत भी नहीं होवे तोभी शुद्ध मनसा  
 विना कनेदयकनहींही। इमी कारण मे एक मन्त्र किमी समय विषे विषय  
 धोर्ता करनेथे और किमी समय मॉनकर रहनेथे वहुते जव उनमे कोई प्रथकता  
 तब कहने कि जव मेरे चित्त विषे शुद्ध मनसा उपजेगी तब मैं तुम्हको उता दे  
 ऊंगा और एक और मन्त्रनेभी कहा है कि मैं अमरु रोगीको पृथने के तिगिष  
 जाना चाहता हू और एक माम व्यतीत होगयाटे पर अभी मैं अपने चित्त विषे  
 मनसा की शुद्धता नहीं देखता ताते ब्रह्मा नहीं जाता ताररर्थ यह कि जगनग  
 अपने धर्मके मार्ग विषे इसकी प्रीति और प्रतीति दृढ़ न होये तबलगा शुद्ध म  
 नसा उपजतीही नहीं यद्यपि कुछ शुभकर्म कर्ता है ताते बुद्धिमान् पुरुषपालोक  
 मे दुःखोंको विचारकरके स्मरण करता है और भगवत्के आगे प्रार्थना करनेनग  
 तो है तब महाराजकी दयाकरके अचानकही शुद्ध मनसा उपज आती है वगुने  
 वही मनसा दृढ़ होजाती है तब वह करतूत भी सुगम होजाती है सो जो पुरुष  
 मनसा के भेदको भली प्रकार समझता है तिमको यह नार्ता प्रत्यक्ष साम आती  
 है मो जव शुद्ध मनसा विना जाग्रत् और भजनधरिषे तिसमे सोय इनादि  
 वेपे पर जव सोनेविषे यह मनसा हाय कि प्रभात् समय निद्रा और आलस्य  
 रहिनहोकर मनन करणा तब जाग्रत्मे विशेष होगा ऐसेही जव गजनकी अ  
 धिक्ता विषे हृदय धिक्ता होजाये तब चाहे कि एक दोघड़ी प्रमाण धिक्की  
 धवन धोर्ताविषे परचावे पर मनसा यहीरावे कि जव हृदयका अग दूरहोजावेगा  
 तब स्वस्थचित्त होकर गजन विषे लीनहोऊगा इमीपर एक मन्त्रने कहा है कि  
 जिस क्रिया विषे चित्तको यत्नकरके रोक रखने हैं तब अशुभही हृदय धिक्ता  
 होकर मूर्च्छित होजाता है तब उन क्रियाको त्यागकर चित्तका अमरु फला  
 और फिर उमी करतूतविषे चित्तको मात्र मन यत्न परमे हे जैसे कोई वैद्यकिमी  
 रोगी की बलवान् आहार प्रथम देवे कि जव हमने शरीर विषे मात्र दोषमात्र  
 जोपरही भर्त्सना पत्रधिमा जयरा जेमे यत्न विषे कोई शूरगा पुरुष सोने  
 शत्रुने जगेंस भागपरो वहुते जव शत्रु उमके पीदे आये तब जबानही उ

सको मारलेवे जैसेही धर्मकामार्गी विवेचिज्ञानसु जनरसदेवो अपन मनके साथ  
 युद्ध करते हैं और ऐसेही दाव खेलेते रहने हैं सो मद्यपिस्थान विद्याव्यदनेहोर  
 मचित ऐसे भेदको समझनेही संकनेपर ज्ञानवान्मत्त मिनीप्रकारप्रहिमेवितेहै  
 महुदि जववेने मनसाहीको करतुतिकी प्रेरकाजानी तब ऐसेमी जानिकेकसै  
 पुरुषकीकरतुति निरीकोभि भयकरकोहोतीहै और किोई स्वर्गो श्री आर्गाकोनि-  
 मिखासुसकर्मकरतेहै सो जो पुरुष स्वर्ग केनिमित्त शुभकरतुतिकरताहैवह  
 श्रीदम्पियोका गुलामहैअर्थ यह कि इन्द्रियादिकामोर्गोकोही यहिहै औरजो  
 पुरुषानरकोकिमायकरके जपातपकरताहै सो भी सुर्गगुलामकीनाईहैअर्थयह  
 के ताइनाकिमेविना अपनेस्वामीकी सेवा नहीं करता मद्यधोनों पुरुषाभरति  
 प्रेय से विमुक्तही और भगवत्को वही मनुष्य प्रियतम लागते हैं जिमकी गकिया  
 केवल भगवत्हीकी प्रसन्नताके निमित्तहोवो और नस्कस्वर्गकी आशा छुडिद्व  
 राखे सो तिसकी निष्काम भक्त रहते हैं जैसे कोई प्रेमीपुरुष अपने प्रियतमके साथ  
 प्रीति करताहै तब उसकोरूपेओर सोनेकी कामनाकुछनहीं हीती और जिसके  
 सेजेरूपेका लोमहै तिसको प्रेमी नहीं कहने कोहैमे कि जव मुलीप्रकारदेखिये तब  
 सोनारूपेही उसका प्रियतमहै तैसेही भगवत्के दर्शन और स्वरूपके साथप्रियत  
 की अधिकी प्रीति नहीं तिसके चित्तमें ऐसी निष्काम मनमां कभी नहीं उपजती  
 और जिसकी प्रीति भगवत्ही के स्वरूपमें है तिसका तत्तम्भवा मोहराजके  
 दर्शनसेलीनरहता है और विन्नाके नेत्रोंके साथ सदेव महाराजको देखनाहै  
 प्रहृति शरीरकरके करतुतिइसनिमित्त करताहै किमेरे प्रियतमाने इसप्रकारव्याज्ञा  
 करी है ताते मुझेको अत्रश्य ऐसे करणीयहैइसकरके कि जैसेचित्तको क्षामा  
 दियोंमें लगाना प्रेमीण नहींतैसेही शरीरभी अपने प्रियतमकी दृष्टिमें लगाना  
 चाहिये है ऐसे जानिकर प्रेमी पुरुषययशक्ति महाराजके दर्शन तन्निमित्तको  
 ठहरताहै और एकत्रहोकर उसहीको दिखनाहै महुदिप्रिपकमोका समागमी इम  
 निमित्त करतीहै कि इनकरके मुझको प्रियतम के दर्शन में मडली औरावितप्रता  
 होवगी सो जिसके चित्तमें ऐसी समकदृष्टि है तिसको ज्ञानवान् ययावेमुक्ति  
 कहते है इसीपर एक प्रीतिमान् की आकाशवाणी हुईमी कि औरसम मनुष्य  
 मुझमें आन पदार्थ मागने हैं और एक धायजीद मुझमें मुझकी को मार्गना  
 है और शिवली सन्तने भी कहा है कि एकरवार मेरे मुखमें यह प्रचन निकसां

धानकिस्वर्ग के मुझसे अप्राप्त रहना वही होती है तब भागवत ने मुझको ताड़ना  
 करके कहा कि तूने मेरे दर्शनसे अप्राप्त रहनेको नहीं छानि क्यों नें कहा और  
 स्वर्गकी और हृदय कर्मों दिया ॥ अब दूसरे विभाग विष्णु निष्कामताका स्वरूप  
 और स्तुति पूर्णत होवेगी निष्कामताकी स्तुति ॥ तब ज्ञान कि इस प्रकार  
 महाराजने कहा है कि तुमकी मने निष्काम भजनकी निमित्त आज्ञा कीनी  
 है और योंही कहा है कि तिम पुरुषको मने अपना प्रियतम किया चाहता है तिसे  
 के हृदय विषे निष्कामता स्थित करता है वृद्धि महामुख ने भी प्रकृत प्रीतिमान्  
 से ऐसे कहाया कि जब तू निष्काम कस्तुतिकरे तब तेरा अरु कर्मभी बहुत बृद्ध  
 होजाये और दम्भको जो मने निन्द्य कहा है सो भवितव्य कारण भी मही है कि  
 दम्भ करके निष्कामता नष्ट होजाती है और दम्भकी निन्द्याही निष्कामता की  
 स्तुति है इसी कारणमे एक सन्त आपने तत्त्वों वाचुत्त गारकर ऐसे कहतेये कि  
 हे मन । तू निष्काम हो तब मुझको पावेगा और एक और सन्त ने कहा है कि  
 धन्य वह पुरुष है जिनेकी मने आयुविषे एक सकलामी निष्काम फुल है जिस  
 करके उमने चाह कुछ नहीं करी वृद्धि अथैवसन्त ने कहा है कि मनसा के व्य-  
 जनेसे भी मनसाको निष्काम रहना अति कठिन है इमीपर एक श्रोता है कि  
 एक प्रीतिमान् ने तीर्थयात्रा के मार्ग विषे एक डोल मोललियाया कि इमकरके  
 अपनी क्रिया मार्ग में करुणा बहुरि आगे बेलखुगा तब अमुकी तीरविषे कुछ  
 लाभभी प्राप्त हावेगा तब रात्रिके समय स्वप्न विषे उनको दो देवता दृष्टि पाये  
 और इस प्रकार मात्रियोंके नाम लिखने लगे कि अमुकपुत्र तमाया देखने  
 आया है और अमुकपुत्र दम्भके निमित्त आया है वृद्धि उद्योगीतिमान्की और  
 देखकर कहतेभये कि यह सोदागरीको आया है तब वर प्रीतिमान् ने कहा कि  
 तुम मूर्खप्रकार देवो मेरे प्राप्त तो सोदागरीकी कुर्बानि वस्तुही नहीं आते अथैव  
 की दुहाई करके कहता है कि मेरी मनसा निष्काम है तब देवतोने कहा कि तूने  
 होल लाभके निमित्त लिया है वृद्धि उद्योगी ने कहा कि मेरी मनसा तो व्यवहारकी  
 न थी पर अबन्मात्र मने लेलियाया यह वार्ता सुनकर एक देवतो दूसरे से क-  
 हता भया कि ऐमे लिखलो कि यह घर से तीर्थयात्रा की मनसा धरकर बला  
 और मार्ग विषे इसने होतभी लिया है वागे तिम प्रकार महाराजकी आज्ञा हो-  
 वेगी सो करेगी इसी कारणसे सन्त जनोंने कहा है कि एक निष्काम भक्तकी

को भी अविनिर्दिष्ट सुखको पाय संकलित है पर एक चड़ीपर्यन्त निष्कामी रहना आति दुर्मम है और यों भी कहा है कि विद्यारूपी बीज है और कर्तृति उसकी खेती है और निष्कामता रूपी जल है ताते मुक्तिरूपी फल उत्पन्न होता है इसी परा एक और वाची है कि एक जगर विषे किसी प्रीतिमान् ने सुना था कि ब्रह्मा लोग अमुक वृक्षको परमेश्वरमानकर पूजते हैं तब उसने यह मनसा करी कि मैं उस वृक्षको काटदोरू तो भलो है तब धरि जब शस्त्रने भर चला तब मार्ग विषे लम्बको कलियुग आनर्मिला और कहने लगा कि तुम महाराजके भजन विषे रसियत होवो वृक्षको काटने से तुमको क्या लाभ हीगा तब प्रीतिमान् ने कहा कि वृक्षको काटना ही मेरा मजन है वद्वरि कलियुग कहता मया कि मैं तो तुमको जाने ल दूगा ऐसे कहकर आपसमें लड़ने लगे तब कलियुगको प्रीतिमान् ने गिरादि या तब वद्वरि कलियुगने कहा कि एक वचन मेरा और भी सुनो कि तुमको महाराजने वृक्ष काटनेकी आज्ञा नही करी और महाराजाने उस वृक्षको काटना चाहता तब किसी महोपुरुषको आज्ञा करता ताते तुमको इम सकल विषे आसक्य हुये हो वद्वरि प्रीतिमान् ने कहा कि मैं तो निस्सदेह उस वृक्षको काटगा ऐसे कई कर फिर लड़ने लगे और फिर भी प्रीतिमान् ने उमको गिरादि या तब कलियुगने कहा कि एक और वचन मेरा सुन लो आगे जो तुम्हारी इच्छा हेनिगी सो कीजियो कि जो तुम वृक्ष काटनेका त्याग करो तो तुमको प्रभात सप्रय नित्य प्रति पाँचरुये मास हु आ करी ताते तुम्हारी जीविका सुखमें होवेगी और भगवत् अर्थ भी ही भियो महाम्बचन सुनकर प्रीतिमान् ने विचार किया कि यह भी तो भली बात है वद्वरि जब घरमें गये तब पाषरुपमे उरनको प्राप्त हुये पर दूसरे दिन कुछ न पाया तब क्रोधवाच होकर वृक्षको काटनेले वद्वरि मार्ग विषे कलियुगने उरनसे कहा कि भवा कहा चले मैं तो तुमको जाने ल दूगा ऐसा कहकर परस्पर लड़ाई करने लगे तब कलियुगने प्रीतिमान् को गिरादि या वद्वरि प्रीतिमान् ने आश्चर्य होकर पूछा कि आगे तो मैं तेरो ऊपर प्रवल तथा तब तैने मुम्हको भेसे गिरादि या तब उसने कहा कि प्रथम तुम्हारी मत्तसा निष्कामयी ताते तुम प्रवल थे और अन्नमायाके निर्मित क्रोधवाच हुये हो ताते मैंने तुमको जीवलिया और तुम्हारा बल क्षीण हो गया है आ अथ निष्कामता स्वरूप निरूपण ॥ ताते जाने तू कि जब इस पुरुषकी मनसा केवल शुद्ध होती है तब उसको निष्काम कहने

हैं जोगनिमकी गतिसा मिश्रित होती है निमित्तकी सकान कहते हैं मिश्रित मनसा  
 ईसकी नापड़े जैसे कोई पुष्ट भंगगते निमित्त जेवरसे परउमके चित्तविषे यद्  
 मनसा सी हीप्रि मिश्रित। आहार कफके मेरागरीरसुब्र भे तदेगा अथवा स्रोतके  
 मनेका प्रेद त हे प्रेगा। अथवा जीविका ही अथवा विषे जहुरि जैसे गुलांमको मुक्त  
 करनेका भी पुण्यकर्म है पर जत्र उस मनसाकरके गुलांमको छोड़े कि भे इसके  
 बुस्वभापसे छूटे जाऊगा तत्र यहभी मिश्रित मनसा कहाती है इहुरि जैसे कोई  
 पुरुषरात्रिकी जोगकर मजनकमनाए परे यहभी मनसाके कि ज्ञाप्यत्काको  
 मेरो मनको चोरकी मन्न त होवे। अथवा जैसे कोई नीयोंको पुण्यके निमित्तजोग  
 और चमकी यहभी मनसा होवे कि अदेगके अदत्तकीके मेरागरीर आरोतमही  
 वेसा अथवा नानामिकारके तगरोके देखीगा अथवा कोई दिन गृहस्थी के जनाल  
 में छूटूगा अथवा कोई इस निमित्त अथवा दे कि मेरी जीविका सुखसे होनी  
 वाचवा विद्याकरके अथवा धतकी सा होवेगी अथवा जेरात विषे मेरा आदर्श होवेगा  
 अथवा लोकोके मां वचन प्रार्त्ता विषे परतागृगा अथवा इस तनिमिषा विषेगी  
 होवे कि मेरे अथवा अथवा हे प्रेगे अथवा इन निमित्त स्तानादि कि कि गको कि  
 गेगथरीर शुद्ध होवे। अथवा इस कामना करके दानदेवे कि यात्रकोकी विदामे  
 छूटेगी अथवा गेसीकी पूरते जवे कि कगीवहगी मुक्तको। अथवा अथवा  
 अथवा जगत विषे मेरी मताई अथवा दे रेगी सो यह प्रथमी कर्म अथवा के सप्रि  
 हैं सो दसको सासरी किराको लेने मम्मके मां विषे विष्णाकरके कहति कि  
 अथवा अथवा अथवा अथवा मी तिपका मनीको अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा  
 गनीका अथवा अथवा निम प्रिप्रे अथवा मी सासना दुषहीं नामिले ओ केवल भगवत्  
 ही के निमित्त होवे इमीपर मकी ही हरिमकने महापुरुषमे। अथवा कि निमित्तमवा  
 क्या हो सवाउन्होंने कहा कि एक भगवत्ही को अपना स्वामी जानकर मकी  
 आत्मा विषे स्थित होना ही निमित्तमता है तात्पर्य यह कि जपउंग यह मनुष्य  
 मनका स्वभावोंमें दू न होवे तत्र नग निष्ठांमहोना महाविदित है। इस विषया के  
 मन्त्रमनेने किहो कि तनिप्राप्तताके समाप्त कोई केशव अलिकविन श्री (५८)  
 र्णो नही इसकारके कि अथवा वद हीने को हृदयविषे निष्ठांमताका उपर्जन  
 पने है जैसे विष्णु रुचिसे पुनसे गेहृयनिकलेना अथवा यह कि विष्णु श्री कृष्ण  
 का अथवा जो नारीदि मो इस विषे दृग्गत्तमकता भगवत्ही का काम है श्री

किसी मनुष्य के (बन्धन करके) नहीं दोसका इसीपर महाराजने भी कहा है कि मैंने जीवोंके प्रतिपाल करनेको निष्ठा और रुधिरमेंसे दूधको उत्पन्नकियाहै ताते, जिज्ञासु ज्ञानको चाहिये कि माया के मर्षपदार्यों से अपने चित्तको विरक्त करे और सर्वप्रकार भगवत्की प्रीति को बढ़ावे तब स्वाभाविकही इसकी सर्व करतूति अपने भियतर्मकी प्रसन्नताके निमित्तहोवे सो जिस पुरुषकी ऐसी अवस्था हुई है तिसका आहार और व्यवहार और मलत्यागनाभी भगवत्की के निमित्त होता है अर्थ यह कि मर्षकी वासनातुमार उसका कोई कर्म नहीं होता और जिसके हृदयमें मायाकी प्रीति प्रबल है सो भगवत्के भजनमें निष्कामहो नहींसका इस करके कि जिमपदार्थ विषे इस जीवकी प्रीति होती है और जैसा जैसा इसका स्वभावहोताहै तब शरीरकी करतूति भी उमही प्रीति और स्वभावको बढ़ावती है जैसे कि जिसको मान और बढ़ाईकी प्रीतिहै तिसके सबही कर्म मानके निमित्त होते हैं पर उपदेश और वज्रनवाचाकी क्रिया विषे निष्कामहोता अत्यत कठिन है काहेसे कि ऐसे कर्मोंका सम्बन्ध लोगोंके साथ अधिक होताहै इसी कारणसे मानकी कामना मिश्रित होजातीहै पर कबहू तो मानकी कामना अभिक्त होती है और कभी धर्मकी कामना प्रबल होजाती है ताते मन आदिक संकल्पके दूर करने विषे बहुरि त्रियावान् भी समर्थ नहीं होते और अल्पबुद्धी जीव मूर्खता करके आपको निष्कामही जानते हैं इसी कारणसे अभिमान्नी होकर अपने अवगुणोंको देखतेही नहीं इसीपर एक सतने कहाहै कि मैंने ययार्थ दृष्टिकरके देखा तब मैं तीसवर्षके भजनको व्यर्थही जानताभया, इस करके कि तीसवर्षपर्यन्त मैंने सबलोगों से आगे ठाढ़ेहोकर भजन किया था बहुरि एक दिन विषे अकस्मात् मुझको कुछ विलंबहोगया ताते लोगोंके पीछे स्थितहोने काके मेरा मत्त खजायमान होनेलगा तब तिसमदेहमेंने जाना कि वह प्रसन्नता और रहस्य मुझको मुखिया होनेकर उपजाताथा तात्पर्य यह कि निष्कामता रूपी पदार्थका समझनाही महाकठिन है ताते स्थिर होना तो आतिही दुर्लभहै और निष्कामता विना जेते सास्त्रिकी कर्म यह मनुष्य करनाहै तेतेही निस्संदेह व्यर्थ होते हैं और भगवत् उनको रचमात्र भी प्रमाण नहीं करता इसी कारण से सन्तजनोंने कहा है कि यद्यपि बुद्धिमान् पुरुष अल्पमात्रही भजन स्मरणके तोभी मूर्ख मनुष्यों के केते वर्षोंके भजनमे अधिक लाभदायक होताहै इसकरके



किं मूर्ख मनुष्य कर्तव्योंके विघ्नोको नहीं जानता ताने उसकी मनसा मान और  
 दमादिक स्वभावों विषे मिलजाती है और वह उस कर्मको निष्कामही जान  
 ताहै और ऐसे नहीं समझना कि भजन विषे और कामना करनी ऐसे है जैसे  
 स्वर्ण विषे और धातुकी मिलौनी होवे ताते जो पुरुष गराफी नहीं जानता सो  
 अवश्यही छलाजाता है और कोई उक्त गराफही आपको खोटेसे बचाय रख  
 ताहै काहेसे कि मूर्ख तो सोनेको पीलेहीसग फरके पहिचानता है तैसेही भजन  
 विषे जो सकामनारुपी खोट है सो वहभी चारप्रकार का होताहै एक प्रकट है १  
 और एक अतिप्रकट है २ एक सूक्ष्म है ३ और एक सूक्ष्मसे भी अतिसूक्ष्म है ४  
 ताते में इसको युक्तिसाथ प्रकटकर फहताहूँ सो प्रथम तो जव यह पुरुष भजनकर  
 ने लगताहै और अधिक लोगोंको अपने निकट देखताहै तब इसके मन विषे  
 यह संकल्प आन फुलताहै कि भजनके नेमको जव विधि संयुक्त सम्पूर्ण कीवि  
 तों भलाहै तब लोग मेरे ऊपर गलानि न राखें सो यह द्वा अतिप्रकट है १ बहुत  
 ईमरा प्रकार यहहै कि जव इमदमको पहिचानकर त्याग करताहै तब मन इस  
 प्रकारकी रीतिकर संकल्प उठाताहै कि जव यह लोग तुम्हको भलीप्रकार भजन  
 करता देखेंगे तब इनको भी भजनकी प्रीति और हृदयता उपजेगी ताते उस म  
 ज्जन के पुण्यका लाभ तुम्हको भी होवेगा सो यह संकल्प ऐसा अल्प रूप है कि  
 इस विषे अवश्यही छलाजाताहै और ऐसे नहीं जानता कि और लोगों के भ  
 जनकी पुण्य इमको तबही होती है जब इसकी एकप्रति उनके विषे जाया प्रवेश  
 करे अन्यथा नहीं होती काहेमें कि जव इममनुष्यका चेतन एकध न होवे और  
 और लोग इसको निष्काम और एकप्रति जानकर भजनविषे प्रीतिकों और  
 हृदयतां तब उनको सो निम्नदेह भनाई प्राप्त होती है पर सकामी पुरुष जो जा  
 पको निष्कामी दिखताहै सो अपनी वासना और दमरूपी रसमी साध धा  
 णी रहनाहै ताने यहभी प्रकट दम चहताहै २ बहुत सूक्ष्मदम सोसरा यहहै कि  
 जिसने इसवार्ताको जानाहोवे कि एकान्त और रोगी विषे एकमासिवाही न  
 जन करना विशेषहै पर जव एकान्तमें भोजीयका भजन कर नसेके और लोगों  
 विषे विधि संयुक्तको तब यहभी कपट होताहै अथवा ऐसे जानकर एकान्त परि  
 र्हा भजनके नियमकी मानी प्रकार प्रकटके पूर्णकी कि रोगी विषे भी ऐसे  
 ही भजन परत्या ताने दमा न होउगा जो एक यह सूक्ष्म दमदे काहेसे कि

इसको ज्ञापना, दम्भी, एकांत, विप्रेमी लज्जामान करता है कि जब एकांत और लोगों विप्रे-विप्रीत भवि करूंगा तब निस्सन्देह, पाखण्डी होऊगा पर इम दम्भी का चिह्न-लाजा नहीं जाता और आपको निष्कामी ज्ञानकर वह पुरुष एकान्त विप्रेमी, दम्भी करता है। बहुरि चौथा दम्भी इससे भी सूक्ष्म है कि जिसने ऐसे भी जाते होवे कि अन्तर बाह्यलोगों के निमित्त, एकाग्रचित्त होना, लाभदायक नहीं होता, चाते मन, उसको इस प्रकार छल देता है कि जिस भगवत्का तू भजन करता है सो, परम ईश्वरों का ईश्वर है, ऐसे महाराज की बड़ाई और तेजको स्मरण कर भयवान् होवो, और उसके सम्मुख सकुचकर स्थित होवो, यह संकल्प धारकर जो पुरुष मनकी वृष्टि को रोक्ता है तिसको इस निमित्त दम्भी कहते हैं कि जिसके चित्त में एकांत विप्रे-ऐसा संकल्प न उपजे और लोगों विप्रे इम सकल्प को बढ़ायकर एकत्र होवे कि लोग मुझको स्थिर चित्त जानें, ताते वह भी दम्भी कहाता है पर यह दम्भी अतिसूक्ष्म है बहुरि लोगों को देखकर भगवत्की बड़ाई को स्मरण करता भी व्यर्थ होता है इसपर सन्तजनोंते कहा है कि जब लगे यह पुरुष भजनके समय पशुओं और मनुष्यों के देखने विप्रे भेद जानता है तब लग केवल निष्काम नहीं होता और शुद्ध निष्काम वही पुरुष है जिसको पशु और मनुष्यका देखना समान भासे तात्पर्य यह कि जिसको ऐमे सूक्ष्मोंकी परिज्ञान नहीं प्राप्त हुई सो जप तप विप्रेमी व्यर्थ ही कष्टको खैचता है ४ ताते ये जान तू कि जब दम्भी और मानकी मनसा भजनकी मनसासे प्रबल होवे तब वह भजनभी सेददायक होता है और जग दोनों मनसा समान होवे तब लाभ हानि कुछ नहीं होती, अर्थ यह कि हृदयकी अवस्था ज्योंकी त्यों रहनी है बहुरि जब भजनकी मनसा प्रबल होवे तब कुछ लाभही होता है यद्यपि मन्तजनोंके वचनों विप्रे इस प्रकार आया है कि सकामी पुरुषोंको भगवत् इस प्रकार कहेगा कि जिसके निमित्त तुमने जप तप किया है फलभी उसीसे मागो पर मेरे चित्त विप्रे यह सत्तन दोनों मनसा की समानता पर भासता है इस करके कि जब शुभ और अशुभ मनसा समान होती है तब उसका पुण्य पाप कुछ नहीं होता और जिन पचनों विप्रे कम्पनामयी करतुतिको सेदका कारण कहा है सो केवल दम्भी की मनसाप्रति, कहा है पर जिसकी मनसा प्रयमही धर्म के निमित्त होवे और पीले कुछ दम्भीकी मनसा मिल जाये तब उसकी कर्तुनि मूलही से व्यर्थ नहीं होनी

यद्यपि निष्काम कर्म के समान फलको नहीं पावता और अत्यन्त निष्कलमी  
 नहीं होता तो इस यत्नको दो युक्तियोंकर समझ सकते हैं प्रयोगतो सुष्टिकी  
 युक्ति यह है कि भगवत्की ओरसे विमुख होनाही परम दुःख है और बड़ी सच्चा  
 गी यही है और मनसा की निष्कामताही इस जीवकी उच्चतम भावोंका बीज है  
 तेसेही गायकके पदार्थकी प्रीति मन्दभागों का बीज है ताने दोनों मनमाकी स  
 गानता ऐमे है कि जेताही शुद्ध मनसा इस जीवको भगवत् के निकट रखती  
 है तेनाही स्थूल कामना इका उस पदसे दूर धारती है ताने 'उसकी' अवस्था  
 ज्योंकी त्यों रहजानी है और लाभ हानि कुछ नहीं पावता जैसे कोई 'रोगी' पुरुष  
 शीतल और उष्णदायक औषध समानही खावे तब उसको रोग ज्योंका त्यों  
 रहता है पर जब शीतल औषध अधिक खावे तब उसकी गरमी क्षीण होजाती  
 है और जब उष्णदायक औषध को खावे तब शरीर क्षीण होती है तैमेही पाप  
 की अधिक मनसा हृदयको मलिन करलेती है और शुद्ध मनसा हृदयका नि  
 र्मल करती है रचकमात्रमी दोनों मनमा व्यर्थ नहीं होनी जैसे रचक पल्प और  
 रचक कृपण्य भी शरीरविषे रोग और आरोग्यता उपजावता है पर यथार्थ नीति  
 की तगजू विषे इनका गुण और अवगुण तोल सकते हैं इसीपर महासागने भी  
 कहा है कि जो पुरुष राईके समान भलाई धरता है वहभी निस्सदेह उसके सृष्ट  
 को भोगता है और जो पुरुष एक राई सग बुराई करता है सो तितके दुःखही  
 फलको भी अवश्यही पाता है इसी कारणमे जिज्ञासुजनको चाहिये कि यत्न  
 करके सार्विकीही श्रद्धाको बढ़ावे और स्थूलकामना का जिस तिसप्रकार धर  
 णकरे धृष्टि दूतरा युक्ति यह है कि जैसे तीर्थयात्रा विषे यात्री पुरुष मार्ग विष  
 सौदागरी भी करलेवे तौभी उसकी यात्रा निष्फल नहीं होनी यद्यपि निष्काम  
 मता करके अधिक फलको पावता है पर यद्यपी मूलही से निष्कल नहीं हाना  
 तैमेही कष्टक सेकल्पभी गिलौनी करके भजनकी सपूट फल मष्ट नहीं होना ही  
 इसनार्त्ताको भी मत्र कोई प्रमाण नरना है कहिये कि मूत्रसे उत्तकी मनमा शुद्ध  
 है और जब ऐमे न होवे तब केवज निष्काम नरनइस जीवसे होनाही कठिन  
 है इसल्लके कि जवनम मर्या देवागिमान से मूक न होवे तबनाग सारिकी  
 वन्धोनिषे भी के १ मन्त्रयुजमी दुःख २ ताते इसका उपाय यही है कि  
 सार्विकी श्रद्धाके बीज ३ ने न ४ शने शने और सकन्यो के

निर्वल करता है-तन्पुरुषार्थ करके निष्कामताको भी प्राप्ति होनाहै।। ज्ञय्यंतीसरी विभाग सचाईकावर्णन। ताते ज्ञानवू कि सचाई और निष्कामता एकही रूप है पर जो पुरुषानिष्कर्म अस्थायीको पावताहै तिसको सांची कहते हैं इसीप्रर महाराजने भी कहाहै कि परलोकविषे सर्वजीवोंसे सांचीकी हृदय प्रच्छेद और किसीने महापुरुषसे पूछा था कि मनुष्य की उत्तम अवस्था क्याहै तब उन्होने कहा कि वचन और करतूतिकी सचाईही को उत्तम अवस्था कहाहै इसीकारण से जिज्ञासुको सचाईकी अर्थापहिचनन अवश्यही प्रमाणहै तीते सचाईरूपी प्रदार्थके पांच लक्षण प्रसिद्धहैं जिसको यहापत्रे लक्षण प्राप्तहुयेहैं सो नियार्थी पुरुष कहाताहै अथमत्तो जिह्वाकी सचाई है जो मूठकभी न कहे अर्थात् व्यपतीत भाषा विषे भी मूठकवर्णन कदाचित् न करे और आगेकोभी किसीके साथ मूठकवचन न करे और वर्तमान कालविषे भी सांची बोलें इसकरके कि जैसा वचन जिह्वा से बोलिया हृदय भी तैसाही स्वभाव परकृता है तीते चाहिये कि अवश्यही कर्मि बिना मूठकदाचित् न कहे पर जब किसीका अर्थरुद्ध कररना होवे तोभी युक्तिकरके ऐसा वचन बोलें जिसी विषे मूठक अक्षर न आवे अथवा जब साची मनसाकरके ऐमें कार्या विषे मूठकी बोलें तोभी प्रमाण है तद्विजे जब भगवत्के आगे बिनमकरे तोभी सांची वचन उचारे अर्थ यह कि जिज्ञ सुखमे इसप्रकार कहे कि हे भगवत् मेरा मुख तेरीही दयाकी ओरदोअपना जब ऐसे कहे कि मे तेरा दासहू और तेमूठीको पूजताहू बहुरिजब हृदयकरके सोगीकी और मुख राखे और जर्मलग अपनी वासनाका आजाकारी और गुलाम है तबिज्ञ की भिनयभी मूठी होतीहै काहेने कि जर्मलग सर्व मायाके रीतिसे मुक्त होवे तबलग भगवत्का पुंजरी और दासतेही होना और मुक्तहोना यहैहै कि आपने आपसे भी मुक्तहोवैअर्थ यहै कि भगवत् विला और किसी प्रदार्थको न ज्ञाहै बहुरि महाराजही की आजा विषे सदैव प्रमत्तहै तब ज्ञानिभारिके भगवत् की साचा सेवकहै और दूसरा लक्षण साचका मन विषे होताहै कि जिसप्रदार्थको अङ्गीकार करे तिसमें सांचीकी मत्तसाराखे और और किसी कामताके साथ मिश्रित न करे सो निष्कामता का अर्थ भी यही है पर निष्कामता और सांच को इस निमित्त एक कहतेहैं कि जिसपुरुषके करतूति विषे दृग्गी मनसा होती है सो मूठहै काहेसे कि जैसा वह पुरुष आपको बाहरसे देखावता है तैसा हृदय

विषे नदीं हाता रं ब्रह्मरितीतिरा लक्षण सात्रेका यहै कि जप-प्रथम पात्रिंती  
 मनसा धारकर किमी कर्मको अर्पि करि करे जैसे धर्मके निमित्त राजाहेवे ज-  
 यानिर्वाहके निमित्त धनराधे तब वम जपस्या विषे भी वही मनुसा हृदये  
 गान श्रीर सोगोकी अभि रवा करके विवत्त त जावे सो ऐसा पुरु निस्सन्देह  
 सा प्रा प्रहावतोहे जैसे एक गदारसाते कहाहे कि जसु क मतने सुम्भुत उपदेश  
 वस्तेसे मुझको अपत्ता मरना सुघर्म भासताहे अर्थ यहै कि आपसे विषे पुरुष  
 के आगे अपनी विरोधता प्रमाण नहीं ताते इसे व्रत विषे महात्मा श्रीसां ही  
 येनमाकी हृदयता प्रकटहोती है कि मन वचन कर्मके उनको यथार्थकी मर्याद  
 प्रियतमपी और अपनी वामनाये रहितमे सो प्रीमनासे रहित पुरुष और मानना  
 बन्धायमान विषे महाभेदहोवाहे व ब्रह्मि प्रोया लक्षण सात्रेका यहै कि जो गुण  
 उसके अन्तर नहोवे तिमको प्राणभी दिग्वावे नहीं इसकरके कि जिन पुरुषकी  
 क्रिया और होती है और हृदयका स्वभाव क्रियासे विपर्ययोहोता है वही नि-  
 स्सन्देह भूगर्ह ताते अन्तर बाहर एक होनाही परम साव है और सनि पुरुषों  
 का हृदय बाह्यकी क्रियासे भी अतिनिर्गर्ह होता है और क्रिया भी वनकी म-  
 स्तीही होतीहोइसीप्र गेहपुरुषने भी प्रार्थना करीपी कि हे गहाराज जिसे हृदय  
 को मेरी क्रियासे भी विषे प करो और प्रीयकी किर्पभी मलीदी देहु प्र ब्रह्मरि पा-  
 र्चवा लक्षण सात्रेका यहै कि जेते धर्मगर्ह के गुणहे जैसे प्रेम मगमा और  
 मय और प्रेम इत्यादिक जो सब सजे स्वभाव है सो तिन करके पूर्ण होवे सो  
 यद्यपि जिज्ञासु विषे यह गुण अधिक अथवा गौर निस्सन्देह होतेहे पर नव  
 लग सम्पूर्ण नहोवे तब लग पूरा माना नदी कहाजाता जेते अधिक मयका  
 लक्षण यहै कि मयवान् पुरुषका मुख प्रीत होजाता है और मयका कायग है  
 ब्रह्मरि मुख प्राप्त और नीर भी उसकी प्र होजाती है वेमेही भागवान् मयकरके  
 जिन पुरुषकी भी अवस्था यहै है तिमको सज्जा मयवान् कहाहे सात्रेका  
 मनुष्य प्रेम के किर्प पापों से इत्याह और प्राणिकात्याग न करे मय उमका  
 देना भी नहीं होवे प्रेमही सर्व शुभगुणों की सीधिका लक्षणता प्रिये बड़ा  
 भेद है पर जिनको यह पाप लगण पूरे शत्रु तिसकी स्वस्था अपने अर्पि  
 करे मनि होभी है

पति वंशिए एतुं प्रामुख्ये चठवां सर्गां। फलितुं कंकभाणि चित्त  
 ... अर्पिते वनको हिसाव और ध्यानके प्रवर्तनम गुरु प्र उ ए एमगा।  
 ' तोसे जानतू कि महाराजने भी ऐसे कहै है कि मैं परलोकविषे यमार्थतः  
 राजारोहण और किसीपर अन्यायन करूंगा ह्यौराभगवत्तने सर्व जीवों के  
 प्रति इसीकारण से यह आज्ञा क्रीनी है कि तुम इसी ससारविषे अपने प्रतका  
 हिसावआपही करो बहुरि महापुरुषतांभी कहहै कि बुद्धिमान् पुरुषवदी है।  
 संकीर्तमय इसी प्रकार भी। एकसमयविषे अपनी जीविकी लत्पत्रकरे और एक  
 समय अर्पने मनको हिसाव करे बहुरि एकसमय अपने शरीरकी क्रिया विषे  
 भित्तवो और एकसमय भिगवत्के आगे अघीनी चित्तहोकर चिन्ती करे ऐसेही  
 चारभागकरके जिसकी आयुष्य व्यतीतहोवे सोई बुद्धिमान् विशेष है इसी पर  
 एक सन्तने कहा है कि परलोकविषे तुम्हारे कर्मोंका हिमविकिरगे ताते तुम  
 आगेही अपनी हिसावकरो इसी कारणसे विचारवान् पुरुषोंने इस प्रकार निश्चय  
 किया है कि हम इस ससार विषे शुभगुणोंकी सोदागरी के निर्मित्त आये हैं और  
 यह मन हमारा सोभी है बहुरि जव सोदागरी कर चुके तब तबको प्राप्तहजिये  
 ऐसे समझ करे उन्हीं ने मनको अपना सोभी बनाया है सो जैसे कोई पुरुष सो-  
 दागरी करने लगता है तब प्रथमतो सोभीके सायायुक्रिया चरित्रता है बहुरि  
 उसकी ओर ध्यान रखता है उससे पीछे हिसाव करता है जव कुछ सोभीने तुरा-  
 या होता है तब उसकी दंड देता है बहुरि उसके ऊपर यत्नरम्यता है और सिखावने  
 के निमित्त अधिक देता है तैसेही विचारवान् पुरुष भी जपत्रे मनके साथ ही  
 मंड उमादा रखते हैं सो युक्ति इस प्रकार देहरावते है कि जैसे जपत्रदार का सोभी  
 भी सर्व क्रमोंकी सहायता करतै हारा होता है वन ई लदासक भी तही होता  
 है इसी कारणसे उसके साथ युक्ति की जाती है कि तू इसे प्रकार रहना और एकमुक्त  
 कार्य करना तब तैरा मेरा निर्वाह हो गेगा तैसेही मनके साथ भी युक्ति देहरावती  
 अवश्यही प्रमाण है कि हमें कि स्थित रूपवहार का लाभ नाशवार् है और शुभ  
 गुणोंके वणिजका लाभ सत्य स्वरूप है और बुद्धिमान् पुरुषोंके निकट नाशवन्त  
 पदार्थ कुछ वस्तुही नहीं होता। इसीपर विचारवानों ने कहा है कि नाशवन्त सुख  
 से आविर्ताशी दुःखभी भता है इसकरके कि उसके वियोग नहीं होता बहुरि यह  
 श्वामरूपी पत्र ऐसा जमो लहे कि इतकरके आविर्ताशी पदको प्राप्त होता है तति

इनको विचारकरके च्यतीतकरना प्रमाण है और बुद्धिमान् पुरुष चही है जो प्र-  
 भावमगय उठकर कुछकाल विचको निरुमकइपकरे और इमीविचारमें मायधार  
 चकर मनको समझावे कि हे मन । मेरे पास इस आयुष्के कुछेडी दिन उत्तम घन  
 हैं और जो स्वाम धीनजात्राहै सो किसीप्रकारनहीं जाता बहुरि इन प्रवासोंको  
 भगवत्ने पितराहो उसमें न बटने हैं न बढ़ने हैं और जब यह आयुष् अचेत-  
 ताविषीं बीतगई तब मजनस्मरण कुछ न होवेगा इषीकारणसे घेततेकामगय और  
 भजनका अवसर यही है सो इसजगत्-विषे जीवना, पीदाहै और परलोक विष  
 कुछे फलनि नहोइमकोगी ताने आनहीं तेरे पुरुषार्थ को दिनदे, जो तुम्हको  
 महाराजने आयुष्केपी प्रदार्थ दिमीहै बहुरि जो ज्यही तेरे स्मृत्युका समय आ  
 जावे और तब तू एकदिन गाओ कि मैं इम एकदिनमें कुछ भजन स्मरण फल  
 तो एकफलकीगिस्तेरे होम न आवेगा और प्रयथात्ताप विषे पैदा जजेगा तब  
 इनीसमयको उत्तम पूजा जान करवृयोत्तलोरो तो भलाहै और ऐसेदी समझते  
 कि आजहो यीमृत्यु पढ़ी नी पदवेक एकदिन मुझको गाओ, गिलाइ इम लके  
 कि आयुष्की, यमीको, वृया सोचना और प्रमपद से अप्राप्त रहने के समान  
 और ह्यभि र्गणहै इसीपर सन्तजनों ने कहाहै कि जब परलोक विषे, इम मनुष्य  
 फे फलको विचार करेगा तब एक एक घड़ीकी, क्रियाको, भिन्न भिन्न देखेगा सो  
 जिन ज्यही विषे इमने भना फर्मा किया होवेगा तब चह घड़ी, सहामकाशमान  
 निकरेगी और उम पुरुषको भी अधिक प्रेमत्रवा उपजेगी और उम ज्यही की  
 शीतलेशा नरको ही अग्नि के सुकारनेको समर्थ होवेगी बहुरि जिसघड़ी इमने  
 माप किया हावेगा वह घड़ी गटी भेरी और मन्थित निकरेगी और महाशुभ  
 प्रकट होवेगी सो उम शुभमें मक्की नाकमंदगे ताने उस पुरुषको ऐसीलज्जा  
 और मय उत्पन्न होवेगा कि उमका वर्णन नहीं किया जाना बहुरि जिस घड़ी  
 विषे पार और पुण्य कुछन किया जायेगा आनसे प्रमाद अपया स्पर्ध संजने  
 में इवेतीन होवेगी सो घड़ी न भेरी भिन्नसेगी न प्रकाशित पर उमको दिनकर  
 यह मनुष्य अधिक पश्चात्ताप करेगा जैसे किसीको बदेसजाने को प्राप्त करना  
 आ और उनमें अपाम गहा तब बड़े पर रासाय विषे जन्ना हेतैमेदी आयुष्के  
 स्पर्ध सोचनेकरके पाणी महादू भितहोवेगा इसीप्रकार मर्ष आदुरितकी घड़ी में  
 तेभिन २ चरके देखेगे ताते चाहिये कि जिमानुजन पेयेहो मदेका फल करने मत

को समझावे कि आजही उस लेखेका दिन है इसी कारणसे एक घड़ीभी अचेत होकर व्यर्थ खोवनी अयोग्य है और जब तू अवर्ती सचेत न होवेगा तब परलोक विषे बड़े खेद और पश्चात्ताप को देखेगा इसीपर सन्तजनोंने कहा है कि यद्यपि भगवत्के अपनी दयाकरके तेरे पाप क्षमाकिये तौभी तू महापुरुषोंकी अवस्था से अप्राप्त रहेगा सो यह भी तुम्हको अधिक पश्चात्ताप होवेगा ताते चाहिये कि तू सब इन्द्रियोंको भगवत्के भजन विषे लगावे तौ भला है और अपकर्मों से रोक राखे तब तेरी रक्षा होवेगी इसीपर सन्तजनोंने कहा है कि जब इन्द्रियों के साथ अपकर्म करता है तब इसीद्वारे यह मनुष्य नरकों विषे जाय प्रवेश करता है इसकरके कि एक एक इन्द्रिय विषे नरकका द्वारा छिपा हुआ है ताते एक एक इन्द्रियके पापोंका विचारकरके लज्जावान् होवे और अपनेमनको भी त्रासदेवे कि जब तैं ये सन्तजनों की आज्ञासे विपर्यय कर्मकिया तब मैं तुम्हको अधिक दयद देखेगा सो यद्यपि यह मन अत्यन्त कठोर है पर तौभी उपदेशका अधिकारी भी यही है ताते जब भलीप्रकार इसको समझाइये तब प्रयत्नकरके सीधेमार्ग विषे लगता है नित्यप्रति यह युक्ति जिज्ञासुजनको कारत्ति से आगेही हृद करनी प्रमाण है इसीपर महाराजने भी कहा है कि मैं तुम्हारे मनके सरूपोंका अनर्यामी हू ताते सर्वदा मेरे मनविषे स्थिरहोवो और महापुरुषने कहा है कि उत्तम पुरुष वही है जो सदैव अपने करतूतिका विचार करता है और उसी क्रियाको अगीकार करे जो परलोक विषे इमको ह्यखदायक न होवे और योंभी कहा है कि जिसकर्म का फल अवश्य तेरे आगे आवना है तब उसको प्रथमही विचार देव ताते भले कर्मको अगीकार कर और बुराईको त्यागदे इसीप्रकार नित्यप्रति अपने मनके साथ प्रमात्समय ऐसीयुक्तियां अवश्यही ठहरानी योग्य हैं पर जिसका मन आगेही शुद्ध हुआ है तिसको किसीयुक्तिकी अपेक्षा नहीं होती ॥ अब इसके आगे मनकी ओर हृदहोकर ध्यानकिया चाहिये ॥ सो ध्यानका अर्थ यह है कि जैसे साभीको पूजीदेकर युक्तिस्थापन करने हैं तब पीछे उमकी ओरमे अचेतहोना प्रमाण नहींहोता तैमेही मनकी ओर भी पलपल विषे ध्यानगवना विषेपहै इसी करके कि जब जिज्ञासुजन मनकी ओरमे एकमण भी अचेत होता है तब मन मर्याद को त्यागकर अपनेही स्वभाव विषे चहिनता है आलस और भोगों के प्रमादकरके उन्मत्त होरहता है ताते मनकी ओर ध्यानरखना यही है कि भगवत्



को अपने कर्मोंका ज्ञानाज्ञान मिश्रण में घाला जाता है। ऐसे ही गौरी  
 महाराज में हृदय का अन्तर्भाव ही मोक्ष देने का प्रयोग है।  
 है और निम्नलिखित विषयों पर ध्यान देना ही तब उनके अन्दर शक्ति का प्रवेश  
 किया दोनों निर्मल होती है इससे कि जिस पुरुष ने महाराजको अन्तर्भाव  
 जाना है सो ऐसे महाराजके सम्मुख पापकर्मों का तब यही वही होना और  
 हृदय ही अन्तर्भाव है इसीपर भगवत् ने भी कहा है कि तुम मुझको अन्तर्भाव ही  
 नहीं जानते तबने महाद्विष्ट हो बहुरि एक प्रीतिमान् ने महापुरुष से पूछा था कि  
 मैंने पाप बहुत किये हैं पर जो अब मैं पापोंका त्याग करूँ तब मेरा त्याग प्रमाण  
 होवेगा अथवा न होवेगा तब महापुरुष ने कहा कि अब भी मेरा त्याग प्रमाण  
 होना है बहुरि उस प्रीतिमान् ने कहा कि जब मैं पापकर्म कर्नाथा तब महापुरुष  
 मुझको देखनाथा महापुरुषने कहा कि देखनाथा इस अर्थसे मुनिक उम प्री  
 तिमान्ने ऊधेस्वामि हाथ करी बहुरि शरीरको त्याग दिया और महापुरुष तब  
 कहा है कि भगवत्को साक्षात् सम्मुख जानकर जो और जब ऐसे न जानकर  
 तब इस प्रकार भगवत् कि भगवत् हमको देखना है तब जब मैंने भगवत्को सर्व  
 अर्थसे और सर्वप्रकार से अन्तर्भाव ही जाना तब तब का कार्य सुफल भया पर  
 इससे भी उत्तम अवस्था यह है कि तू ही मैंने भगवत्का दर्शन प्राप्त करे और  
 उमी स्वरूपके आनन्द विषय लीन होवे इसीपर एक वार्त्ता है कि एक मन्त्र अथवा  
 मंत्र पिलापियों विषय एक प्रीतिमान् को अथवा भिन्नम स्वरुपा इसीकारण म  
 और पिलापियों को ईर्ष्या उत्पन्न हुई कि हममें क्या अथवा है और उममें को  
 गुण अधिक है सो जब उम मन्त्रने इस वार्त्ताको जाना तब उनकी पीडाके नि  
 मित्त मन्त्रने राग विषय एक एक फल दे दिया और इस प्रकार जाता कि तब  
 तब ही कोई न देने तब इसको लीन कर ले आये तब मन्त्र मिया ही एकान्त रूप  
 में जाकर फल ही लीन ने आये और निम्न लिखित सार सन्त ही अधिक ही  
 निम्न ही विद्यापीला रो आया तब उममें मन्त्रजनोंने कहा कि मैंने फल ही  
 नहीं दीना बहुरि वह जिज्ञासु कहना भया कि जिस स्थान विषय कोई देखने का  
 न रहे सो ऐसा स्थान मैंने कोई नहीं देगा अर्थ यह कि भगवत् सर्वप्रकारों  
 विषय अथवा तबने इसी पिलापियों सन्त्रने उम जिज्ञासु का विशेषताकी लभ  
 का कि यह सबदा महापुरुष ही अपने निम्न लिखित तबने ही प्रमाण मन्त्र

अवस्था उत्तम है और मुझको भी अधिक प्रियतम लगना है वृद्धि एक और प्रीतिमान्ने जुनेदमन्तसे पूछा था कि मैं अपने नेत्रोंको रूखकी दृष्टिसे रोक नहीं सकता ताते इसका उपाय क्या है तब उन्होंने कहा कि जब तू किमीकी ओर देखने लगे तब उससे भी अधिक अपनी ओर भगवत्को देखना जान ताते भयकरके स्वामात्रिकही तेरे नेत्र रोकें जावेंगे अन्यथा न रोकेंगे इमीपर महाराजने भी कहा है कि जो पुरुष अकस्मात् पाप कर्मकी चितवनी पाते हैं वृद्धि मेरी बड़ाईको स्मरणकरके उस कर्मको त्यागदेते हैं सो निस्पन्देह परममुखको पावते हैं इमीपर एक और वार्ता है कि एक सन्तने मार्ग में एक चरवादाको बकरी चरायते देखा तब उममे। कहने भये कि तू एक बकरी बचना है तब अजापालने कहा कि मैं तो इनका चरावने हाराहू और इनका स्वामी और है वृद्धि वह मन्त उमको कहने लगे कि इनका स्वामी भव। तो यहा नहीं देवता है ताते उमसे ऐसे कहदेना कि एक बकरीको भेडिये ने मारहाला तब अजापालने कहा कि जो बकरियोंका धनी नहीं देवता तो श्रीगमने सबकुछ देवने और जानते हैं यह वचन सुन कर वह मन्त रुदन करने लगे और बकरियोंके धनीको बुलाकर उसी दासको मोल लिया वृद्धि उम दामको मुक्त कर दिया फिर उसमे एमे कहते भये कि जैसे इम वचन ने तुम्हको यहा मुक्त कराया है तैसेही परलोक विपे भी तुम्हको यह वचन नरकोंसे बचावेगा तात्पर्य यह कि मैंने जिस ध्यानकी स्तुतिकरी है सो ध्यान भी दो प्रकार का है पर उत्तम ध्यान यथार्थी पुरुषोंका यही है कि उनका हृदय भगवत्की बड़ाई विपे लीन होता है और उमकी समर्थता पहिचान कर मर्ददा सकुचे रहते हैं ताते उनका मन और किमीपदार्थकी ओर देखी नहीं मक्का सा जिसको ऐसा ध्यान प्राप्त हुआ है तिमही इन्द्रिया भी स्वामात्रिकही सकुचजाती है और यत्त विनाही भोगोंकी अभिलाषा उमको नहीं रहती तब पापकर्मों विपे क्योकर विचरे इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जो पुरुष प्रातसमय उठकर महाराजकी ओर दृढचित्त और साध्यानहोवे तिमके सधीकार्थ आप महाराज सिद्ध करदेते हैं सो केते सन्तजन इसी ध्यान विपे एमे लीन रहते हैं कि किमीकी चर्चा नहीं सुनने और किसीको देखनेही नहीं यद्यपि नेत्र उनके खुले रहते हैं तो भी चित्त उनका मर्ददा स्थिरहोता है इमीपर एक मन्त्रमे किमीने पूछा था कि तुम तो अब वाज्जारके मार्गसे चले आवते हो पर किसीको तुमने वाज्जारविपे देता भी

को अपने करतूतोंका ज्ञाताजाने कि लोग मेरी वाह्यक्रियाका देखने हैं और महागज मेरे हृदयका अन्तर्व्यापी है सो जिनने डम भेदको भनीप्रकार समझा है और जिसके चित्त विषे यही मुक्तप्रयत्नहुई है तब उसके अन्दर और बाहर की क्रिया दोनों निर्मल होती हैं इसकरके कि जिनपुरुषने महागजको अन्तर्व्यापी जानाहै सो ऐसे महाराजके सम्मुख पापभर्त्स करे तब यह भी बड़ी दीठना और हृदय की कठोरता है इसीपर भगवत्तने भी कहाहै कि तुम मुझको अन्तर्व्यापी नहीं जानते ताते महादीठ हो बहुरि एक प्रीतिमान् ने महापुरुष से पूछाथा कि मैंने पाप बहुत किये हैं पर जो अब मैं पापोंका त्यागकरू तब मेरात्याग प्रमाण होवेगा अथवा न होवेगा तब महापुरुष ने कहा कि अब भी तेरात्याग प्रमाण होताहै बहुरि उस प्रीतिमान्ने कहा कि जब मैं पापकर्म कर्नाथा तब महाराज मुझको देखनाथा महापुरुषने कहा कि देवतांथा इस वचनको सुनकर उस प्रीतिमान्ने ऊधेस्वरमे हायकरी बहुरि शरीरको त्यागदिया और महापुरुषने याभी कहाहै कि भगवत्को साक्षात् सम्मुख जानकरपूजो और जब ऐसे न जानसको तब इसप्रकार समझो कि भगवत् हमको देखताहै ताते जब मैंने भगवत्को सर्व अवस्था और सर्वमग्य विषे अन्तर्व्यापी जाना तब तेरा कार्य सुहलमया पर इससे भी उत्तम अवस्था यहहै कि तूही मद्देन भगवत्का दर्शन प्रकटदेवे और उसी स्वरूपके आनन्द विषे लीनहोवे इसीपर एक वार्त्ता है कि एक मन्त्र अपन सर्व मिलापियों विषे एक प्रीतिमान् को अधिक भियतम रखनाथा इसीकारण मे और मिलापियों को ईर्ष्या उत्पन्नहुई कि हमगे क्या अवगुणहै और उममें कौन गुण अधिकहै सो जत्र उम मन्त्रने इस वार्त्ताको जाना तब उनकी पगीक्षाके निमित्त मन्त्रके हाथ विषे एक एक फल देदिया और इसप्रकार आज्ञाकरी कि जहा तूगको कोई न देवे तहा इमको छीलकर लेआवो तब मव मिलापी एकान्त्र वन में जाकर फलको छीललेआये और जिम जिज्ञासुके साथ सन्नकी अधिक प्रीतिथी सो विनाछीला लेआया तब उसम मन्त्रजनों ने कहा कि तैने फलको क्यो नहींछीला बहुरि वह जिज्ञासु कहनामया कि जिस स्थान विषे कोई देवनेद्वारा न होवे सो ऐसा स्थान मैंने कोई नहीं देखा अर्थ यह कि भगवत् सर्वस्थानों विषे देवताहै ताते इसी पगीक्षाकरके सन्नने उस जिज्ञासुको विशेषताको लम्बा या कि यह मर्षता महाराज को अपने निकट जानता है इसी कारण से इसभी

अवस्था उत्तम है और मुझको भी अधिक प्रियतम लगना है। वहूरि एक और प्रीतिमान्ने जुनेदमन्तसे पूछाया कि मैं अपने नेत्रोंको रूखी दृष्टिसे रोक नहीं सकूँ ताते इमका उपाय क्या है तब उन्होंने कहा कि जब तू किमीकी ओर देखनेलगे तब उसमे भी अधिक अपनीओर भगवत्को देखनाजान ताते भयकरके स्वामात्रिकही नेरे नेत्र रोकैजावेंगे अन्यथा न रोकसकेंगे इमीपर महाराजने भी कहा है कि जो पुरुष अकस्मात् पाप कर्मकी चिन्तवनी करते हैं वहूरि मेरी बड़ाई को स्मरणकरके उम कर्मा को त्यागदेने हैं सो निस्मन्देह परगसुखको पावते हैं इसीपर एक आँगवार्त्ता है कि एकसन्तने मार्ग में एक चखाड़ाको बकरीचरावते देखा तब उममे कहनेभये कि तू एक बकरी बेंचता है तब अजापालने कहा कि मैं तो इनका चरावनेहाराहू और इनकास्वामी और है वहूरि वह सन्त उमको कहने लगे कि इनकाम्बामी अब तो यहा नहीं देखता है ताते उमसे ऐसे कहदेना कि एक बकरी को भेड़िये ने मारहाला तब अजापालने कहा कि जो बकरियों का धनी नहीं देखता तो श्रीगमतो सबकुछ देखने और जानने हैं यह वचन सुन कर यह सन्त रुदन करनेलगे और बकरियों के धनीको बुलाकर उसी दासको मोल लिया वहूरि उस दामको मुक्त करदिया फिर उसमे एमे कहनेभये कि जैसे इस वचन ने तुम्हको यहा मुक्तकराया है तैसेही परलोक विपे भी तुम्हको यह वचन नरकों से बचावेगा तात्पर्य यह कि मैंने जिस ध्यानकी स्तुतिकरी है सो ध्यान भी दो प्रकार का है पर उत्तम ध्यान यथार्थी पुरुषों का यही है कि उनका हृदय भगवत् की बड़ाई विपे लीनहोता है और उमकी समर्थता पहिचान कर सर्वदा सकुचे रहते हैं ताते उनकामन और किमीपदार्थ की ओर देखही नहींसकता सो जिसको ऐमा ध्यान प्राप्तहु आ है तिमकी इन्द्रियां भी स्वामात्रिकही सकुचजाती हैं और यत्न विनाही भोगोंकी अगिलापा उमको नहीं रहती तब पापकर्मों विपे क्योंकर विचरे इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जो पुरुष प्रातसमय उठ कर महाराजकी ओर दृढचित्त और साग्रधानहोवे तिमके सबीकार्य आप महाराज मिट्ट करदेते हैं सो फेते सन्तजन इसी ध्यान विपे ऐमे लीनरहते हैं कि किमीकी चार्त्ताही नहीं सुनने और किसीको देखनेही नहीं यद्यपि नेत्र उनके खुलेहवत हैं तो भी चित्त उनका सर्वदा स्थिरहोता है इमीपर एकमन्त्रमे किमीने पूछाया कि तुम तो अब बाजारके मार्गसे चले आवतेहो पर किमीको तुमने बाजारविपे देना भी

हैं तब उन्होंने कहा कि मैंने तो किसीको नहीं देखा और परमन्त्र अचानक किमी स्त्रीपर हाथ रख बैठेये तब लोगोंने पूछा कि तुमने यह कर्म क्यों किया तब वह कहतेभये कि मैंने इसको भीत जानाथा ताते मेरा हाथ इसके ऊपर, निश्चरूपड़ा इसीपर एक हरिभक्तने कहाहै कि मैंने एकवार अमुकमन्त्रको नगरमे बाहर ब्रैड देखाथा तब मैंने उसके निकट जाके कुछ वार्त्ता पूछनेकी सनसाकरी तो आगेही उसने कहा कि और वार्त्ता के कहने सुनने से श्रीराम भजनही विशेषहै बहुरि मैंने पूछा कि प्रथम मनुष्याविषे उत्तम कौनहै तब उन्होंने कहा कि जिसको श्रीरामजी आप विशेषकर सौई उत्तम पुरुषहै बहुरि मैंने कहा कि तुम यहा अने लेही रहतेहो तब उन्होंने कहा कि श्रीराम सर्वदा मेरेसगी हैं बहुरि मैंने कहा कि सुखका मार्ग कौनहै तब आकाशकी ओर दृष्टि करके उखड़ेहुये, और कहने लगे कि हे सहाराज ! बहुत लोग अपनी ओर परचाइकर तुम्हमे निक्षेप डारते हैं इतना कहकर आगे षो चलेगये, और शिवलीसन्तने भी, अमुक सन्तको देखाथा कि उनके शरीर का एकरोमभी हलता न था और श्रीरामरूप अनूपके ध्यान विषे, मग्नये तब शिवलीजीने पूछा कि तुमने ऐसा ध्यान किसमे सीखाहै तब वह कहतेभये कि मैंने भिल्लीको चूहाके बिनपर इससेभी अधिक स्थिर देखाथा ताते मैंने, यह ध्यान उमसे सीखाहै और एक और सन्तते कहाहै कि मैंने अमुरु नगरविषे, एक युवा और एक बृद्ध दो पुरुष महाएकाग्रचित्त सुनेथे ताते मैं, उनके दर्शनको गया और उनको देवकीर तीनवार प्रणामकरी पर वह कुछ न बोले बहुरि मैंने भगवत् की दुहाई देकर कहा कि मेरेसाथ राग राम तो करो तब युवा पुरुषने ऊंचा गीण करके कहा कि इसससार विषे जीवना अल्पहै और अल्पसे भी अल्पशेष रहहै ताते इसी थोड़े मगय विषे अधिक लाभको प्राप्त करलेवो पर ऐसे जानाजाना है कि तुम्हको अपने कार्यकी खबर कुछ नहीं इसी कारणसे हमारे साथ राग राग करके परचा चाहता है इतना कहकर बहुरि उसने अपने गीणको नीचा कर लिया तिस समय विषे मैं भी भूखा प्यासा था पर मुम्हको भूख प्यास मुलायगई और मेरी सब सुरति, उन्हीं विषे जाइगही ताते मैं रात्रिपर्यन्त उनके पास सदा रहा बहुरि ऐसे कहा कि मुम्हको कुछ उपदेश करो तब युवासन्त कहतेभये कि हय दुखो लोगहैं इम कारणसे हमारी रसना उपदेशकी अधिकारी नहीं इनना कहकर बहुरि गौन रुग्हे पैसेही तीनदिनपर्यन्त मैंने देखा कि उन्हां ने निद्रा

और आहार न किया तब भैने भगवत् की दुहाई देकर कहा कि मुझको कुछ उपदेश मुनावो बहुरि उसने कहा कि जिसके देवने करके तुम्हको भगवत् चि-  
 त्तमें आवे तिसही की संगतिकर हम करके कि जिसकी कर्तृतिही उद्देश करे  
 और जिसकी ताड़ना बिनाही तुम्हको भय उत्पन्न होवे तिसही की संगति के-  
 रनी विशेषहै सो प्रार्थी पुरुषों की अवस्था यही है कि सर्वदा उनके चित्त की  
 वृत्ति श्रीरघुनेन्दनके स्वरूप विषे लीन रहनी है। बहुरि दूसरी अवस्था जिज्ञासु  
 जनोंके ध्यानकी यह है कि भगवत् को अन्तर्गामी जानकर मलिन भक्तियोंसे  
 सङ्गुचे रहते हैं पर तित्तके चित्तकी वृत्ति महाराजके रूपविषे लीन नहीं रहती  
 इसी कारणसे इन्द्रियादिक व्यवहारके मूलरूपसे सम्पूर्ण मुक्त नहीं होते सो इस  
 की दृष्टाव यह है कि जैसे कोई पुरुष अपने घरविषे नग्नी होकर कोई कार्य  
 करता होवे और अचानकही कोई बालक आजावे तब वह पुरुष सचेत होकर  
 बस्त्रकी ओढ़ता है पर अत्यन्त विस्मयनात् नहीं होता बहुरि उत्तम पुरुषों के ध्यान  
 का दृष्टान्त यह है कि जैसे अकस्मात् किसी के घरमें राजा आवे और आगे बढ़े  
 पुरुष नग्नी बैठे होवे तब राजा को देखकर उसकी मुधि खुपिही भूल जाती  
 है और उसके आज्ञा करके मुर्छित हो रहता है तैसेही ज्ञानवान् पुरुष महाराज  
 के ऐश्वर्य को देखकर विस्मय को प्राप्त हुये हैं और उनविषे मनकी चपलता  
 कुछ नहीं रही पर जिज्ञासुजनोंके सबही सकल्प नष्ट नहीं हुये ताने उसकी वृत्ति  
 कभी स्थिर होनी है और कभी विक्रम पावनी है इसी कारणसे चाहिये कि जि-  
 ज्ञासु सर्वदा अपने मनकी ओर ध्यान राखे और सर्व कर्तृता से दो प्रकारकी  
 दृष्टिमें देखता रहे सो एक दृष्टि यह है कि कर्तृविषे धारोही मनके सङ्कल्प  
 को चित्त करके पहिचाने कि यह मनमा मेरे चित्त विषे किमि निमित्त फुगे है  
 तनि जब वह मतमा सात्त्विकी और निष्कामा होवे तब उसको सम्पूर्ण करे और  
 जब मान अथवा भोगोंकी कामताका सकल उर्प जा होवे तब धैर्य कर रहे और  
 महाराज को निकट जानकर हरे कर्मसे लेज्जावान् होवे बहुरि अपने मनको  
 धिक्कार करे कि यह सकल्प तने किमि निमित्त किया और हम करके तुम्हको  
 क्या लाभ होवेगा बहुरि सतजनोंने जो परजो कल्पे पापकर्मोंकी ताड़ना फही  
 है तिमको स्मरण विषे ले आवे सो सर्व कर्मोंके आदिगोही ऐमीही दृष्टि रखनी  
 सर्वदा प्रमाण है कि सकल्पके फुगेकी ओर ध्यान करके प्रथमही उसको विचार

लेवे इसीपर महापुरुषने कहादे कि यह मनुष्य जेते कर्म करना है सो पानोक विषे देना सर्व करतूतो को भिन्न भिन्न करके पूछने है और तीन प्रकारके वचन करके इस जीवको ज्ञान दिखाने है कि अमुक कर्म तेने क्यों किया १ और किमप्रकार किया २ और कौतकी मनमा साथ किया ३ सो प्रथम वचनका अर्थ यह है कि कर्म तो गलाही तुम्हको करणीय था और तेने अपने मनकी चामना करके प्राय क्यों किया १ बहुविध जे उमने वह कर्म चामनाके निमित्त न किया होत तब इउप्रकार पूछने है कि यद्यपि तेने कर्म तो मारिकी किया होवे पर तेने उस करतूतिको मय और विचारकरके विप्रियुक्त सम्पूर्ण नहीं किया है अथवा सुखतीमहित वितासुक्ति किया है इमकरके कि सर्व कर्मोंकी युक्ति भिन्न २ होती है ताते तेने कर्म का निर्वाह क्यों कर किया २ बहुविध जे उम पुरुषने वह करतूति विप्रियुक्त किया होवे तब इसप्रकार पूछते हैं कि शुभ कर्म तो कैवल निष्काम ही करना था सो अब वह करतूति तेने हस्तके निमित्त किया है अथवा केवल निष्काम मनमा के साथ किया है इमसे कि जे मनमा तेरी निष्काम थी तब इमकाल में उमके उत्तम फलको पावेगा और जो किसी और कामनाके हेतु किया है तो उस कर्मके फलमें अप्राप्त रहेगा और तुम्हको तो ऐसी अज्ञा हुई थी कि महायज्ञ निष्काम कर्महीको प्रमाण करते हैं ३ सो जिनने उमके भली प्रकार समझा है वह एशुभ भी मनकी ओरसे अचेत नहीं होता और पुरुषार्थ कके अशुभ सकल्प के बीजकी निर्मल करना है बहुविध जो पुरुष ऐसे न करे तब ही अशुभ सकल्प विषे स्वतः पदात्यौ की अभिजाता उजागरी है श्री प्रीति उभी विषयकी मनसा दृढ़ हो जाती है बहुविध उमी मनमाका प्रवेश सर्व इदियों पर ज्ञान फैलता है इसीपर महापुरुषने भी कहादे कि जे तुम्हारे हृदयविषे किसी पापकर्मका सकल्प करे तब प्रथमही भगवत के मय के साथ उसको दूर करना विषे पड़े पर योभी जानतू कि केते सकल्प मनकी चामनाके अनुसार करते हैं और केने सकल्प शुद्धचित्त विषे उपजते हैं सो उनके परिचयने श्री विद्या भी महा कठिन और दुर्लभ है ताते जिमा मनुष्य विषे ऐसी वृत्ति और पुरुषार्थ की दृढता न हावे तिमको योगी और विचारवान् पुरुषोंकी संगति विषे रहना गता है कि उमके प्रकाशकरके इसका हृदयभी निर्मल होता है और जो विद्यावान् मायाकी दृष्टि विषे व्यासक्रोधे निमकी संगति कदाचित् न करे काहेमे कि उनका

र्गनही इसके धर्मका नष्टकरना है हमीपर दाऊदजी को आकारवाणी हुईथी कि  
 हे दाऊद ! जो, विद्यावान् मायाकी प्रीतिविषे आमकहोने निमके साथ नवनवार्त्ता  
 भी न कर इसकरके कि ऐना पुरुष तेरे हृदयने मेरी प्रीतिको नष्ट कर डारेगा का  
 हेमे कि ऐमे मनुष्य जीवोंके धर्मका नाश करनेको बटपारहैं और महापुरुषने भी  
 कहाहै कि जो पुरुष शुद्ध अगुद्ध तार्त्ताका प्रथगही, तीक्ष्णदृष्टि करके देखता, है  
 और, भोगोंकी मन्त्रवत् के भगवत् विषे जिनको बुद्धि, प्रमादको नहीं पानी, निस  
 को, भगवत् अमना अधिक प्रियतम रवनाहै इसकरके कि जिनने, वर्त्तमान अज्ञ  
 सरको शराफकी नीई उज्ज्वलबुद्धि के नेत्रों, करके, पहिंचाता और फिर पुरुषार्थ  
 की, हृदता, करके, जिसने, मलिन स्वभावकी, प्रवृत्तताको गिराडदिया सो ऐमा, म,  
 नुदय, परम भाग्यवान्, कहाँतहै पर बुद्धि और पुरुषार्थको ऐसा सम्बन्धहै कि जिस  
 विषे, पुरुषार्थ की, हृदता नहीं होती तिसकी बुद्धिभी प्रवृत्ति की, अवसर विषे मन्त्री  
 प्रकार यथार्थको, तहीं लखायती इसपर महापुरुषने भी, कहाहै कि जिस, मनुष्यने  
 पापकर्मको अगीकारकिया, तप जानिये कि, उसकी बुद्धिही, नष्ट हुईहै, और एक,  
 और महात्माने, भी कहाहै कि प्रसिद्ध यथार्थ हो, अगीकार, करना, प्रमाणहै और  
 प्रसिद्ध भूउको त्यागदेना, विगप है, बहुरि, जो वार्त्ता आपकरके सम्भकी, नु जावे  
 सो किसी बुद्धिमानसे पूछकर उसका ग्रहण न त्याग, किया, जावे तो भलाहै और,  
 जिज्ञासुको दूसरी दृष्टि करवृत्ति के समयविषे, इस प्रकार रवनी प्रमाणहै कि मवही  
 कर्म तीन प्रकार के होते हैं गजसी १ तामसी २ सारिचकी ३ पर सारिचकी कर्मों  
 विषे ऐमा ध्यान राखिये कि उनको निष्कामता और हृदयकी एकाग्रताके साथ  
 सम्पूर्ण करिये, १ बहुरि तामसी कर्मों विषे ध्यान यहहै कि भगवत्के, त्रासकर्मके,  
 पापकर्मों को त्यागदेवे और जो आगे कियाहोवे तिसका, पुरश्चरण ३ और स-  
 जसी कर्मों विषे ध्यान करना ऐसे है कि शरीरके सर्व व्यवहारका निर्वाह सप्रम  
 और युक्तिके साथ कीजिये और सर्व पदार्थोंका दाता श्रीसमहीको, जानिये और  
 अपने चित्तविषे, यही विचारकरके समझे कि सर्व अवसर विषे अन्तर्यामी महा-  
 राजके सम्मुख वर्तता है ऐसे जानकर बैठने और चलने और, बोलने और सोव-  
 नेके समयभी अभय होकर न विचरे, और चाहिये कि भोजन करने के समयभी  
 विचारसे रहित न होवे सो, उससमय श्रीजानकीनाथ के उपकार का, विचारना  
 इसप्रकार योग्यहै कि महाराजने अपनी दयाकरके एक आहार विषेभी अमित



कीर्तिगरीरची हैं प्रथम तो ज्ञानोक्तका आकार और रङ्ग और सुगन्ध और स्वाद  
 कैसें अनुभवनायाहै वद्वारे इमगनुष्यके शरीर विषे भिन्न भिन्न अन्न किमपूकार  
 रचेहै जिन् कर्के आहारको अङ्गीकार करताहै जैसे हाय मुखदान कठ हृदय  
 उदर नाभि इत्यादिक जो अङ्ग आहारको धारत हैं और पचाने हैं और मलको  
 उतारते हैं मा यद् मवही उम महागजकी आश्चर्य्य कारीगरी है ताने ऐमे आ  
 श्रचर्यों कीं विचारनोही उत्तम भजन है पर यह अवस्था बुद्धिमानों की होती है  
 और एक ऐसेभी उत्तम पुरुष होते हैं जो कारीगरीको देखकर कारीगरकी ओर  
 ध्यान रखते हैं वद्वारि उसके स्वरूपकी सुन्दरता और मर्मर्यनाविषे चिन्तको लीन  
 करते हैं सो यह अवस्था सावे ज्ञानवानोंकी एक है वद्वारि एक जिज्ञासु नाना  
 प्रकार के भोजनोंको ग्लानिकी दृष्टिके साथ देखते हैं और इसप्रकार चाहते हैं कि  
 जो हम किसी भाति ऐसे पधनों में मुक्तहोवें तो भलाहै इसकरके कि इमी शरीर  
 के बंधनों विषे हमारा चित्त कन्वायमान होरहाहै सो यह अरस्था वैराग्यवानोंकी  
 होती है वद्वारि एक और अनुष्य आहारोदिकोंको अभिनापाके नेत्रों के साथ दे  
 खते हैं और गद्दी चाहते हैं कि अमुक भोजन अगीकार करिये और अमुक विधि  
 करके अमुक भोजन खाडये तब अधिक स्वादिकदोनाहै वद्वारि जब रमोई किसी  
 विधिसे हीन हो जाती है तब रमोई करनेहारेपर क्रोध करने है मो यह अचेत पुरुषों  
 की अवस्था है पर शरीरने व्यवहार विषे जीवोंकी ऐमी भिन्न भिन्न अवस्था हो  
 ती हैं ताते चाहिये कि कोई समय विषे ऐसे ध्यानसे अचेत न हूजिये अब इससे  
 आगे अपने कर्मका हिसाब किये चाहिये कि जिम समय कर्तव्य करचुके तब  
 जिज्ञासुजन गृकान्त ठौरविषे बैठकर अपने कर्मोंका लेखाकरे और दिनके कर्म  
 कर्तव्यों की विचारकरे लगि और हानि और पूजीको मलीप्रकार पहिचाने सो  
 जेत सांत्विकी कर्मसन्नेजनोंने इमगनुष्यको करणीय बदे हैं वह तो इमी जीव  
 की पूजी है औगनिष्कामपदका पावना परमलाभहै और प्रापकर्मों विषे विधा  
 रनाही बडेहानिहै इमी कारणमे जैसे वयवहारके सांकीकेमाय लेखा करते हैं कि  
 गत वह पुरुष कुछ धन चुरायेलेवे तो युग है तैसेही जिज्ञासुजन भी अपने मन  
 का सदैवही लेखा करता रहे इमकरके कि यह भानभी महाचतुराचोरहै और सब  
 करके अपनेराजसी तोमसी मनोरथको सांत्विकीरूप दिव्यवताहै ताने व इमको  
 भलाई जानताहै और पीछे उसका फल घुराई निकसती है इसी कारणमे शरीर

के खानपान आदिक कर्मोंका लेखा करना अवश्यही प्रमाण है सो लेखा इस प्रकार होता है कि हे मन ! तूने अमुककर्म किसनिमित्त कियाथा और क्योंकर कियाथा वहुरि जब ऐसे हिसाब विषे देखिये कि मेरे मनने अमुककर्म अन्यथा कियाथा तब उसको दण्डदेवे इसीपर एक हरिभक्तने अपनी सर्वआयुष्का लेखा कियाथा कि मेरी आयुष्साठिवर्षकी व्यतीतहुई सो यद्यपि मैंने एक एकदिन विषे एक एकही पापकिया होवेगा तौमी इकीस सहस्र २१००० पाप इकट्ठेहुये होवेगे और मैंने तो एकही दिनविषे सहस्रों पाप किये हैं ताते मेरी क्योंकर मुक्ति होवेगी ऐमे कहकर गिरपड़े और शरीर को झोंडदिया पर यह गनुष्य इम निमित्त अचेत रहताहै कि अपने कर्मोंका लेखा कभी नहींकर देखता और जब हिमाचलकरके एक एक पापका एक एक पत्थरही गृहविषे डारतारहै तब थोडेही दिनविषे बहुघर पत्थरोंकरके भरजावे वहुरि जो चित्रगुप्त भी पापोंके लिखनेकी मजूरी गागे तब तुरन्त इमका धन सबही लेजावे पर यह गनुष्य ऐमा दुर्वुद्धीहै कि जो आलस और अचेततासहित केतिकचार श्रीराम नाम लेताहै तो माला की मणियोंके साथ गनती करता रहताहै कि आज मैंने एतेनागलिये हैं और सारानिन व्यर्थवचनोंमें वादविवाद बोलताहै सो इनकी गनती कभी नहींकरता पर जब अपने बोलनेका लेखाकरके देखे तब सहस्रों बृथा वचन गनती में आवे और ऐसे कर्मकरके जो अपने मुक्तहोनेका भरोसा रखता है सो यह उससे भी अधिक मूर्खताहै इसीकारण से उमरमन्न ने कहा है कि परलोक विषे तो देवता तुम्हारे कर्मोंका हिसाब करेंगे ताते तुम जागेही अपनी करतूतोंको विचारकरके देखो और भलीप्रकार इनका लेखाकरो और यही सन्न आप भी अपने चरणोंमें चाबुक मारकर रात्रि के समय कहते थे कि हे मन ! आज तूने अमुक बुग कर्म क्योंकिया ईभीपर एक वार्त्ताहै कि एकसन्तने शरीरकी मृत्युके अगसरविषे ऐमे कहाथा कि अमुक सन्तसे अधिक मेरा कोई प्रियतम नहीं ऐसे कहकर वहुरि कहते गये कि मैंने यह वचन झूलवरके कहा है काहेसे कि मुझको अपना मनही अधिक प्रियतम है तात्पर्य यह कि उन्होंने ऐसेसमय विषे अपने एक वचन का भी हिसाब करलिया वहुरि उसी वचनका पुरश्चरण किया और अपराध क्षमा कराया और एक सन्तने कहाहै कि उमरसन्तको गेते एकचार एकान्त ठौरविषे स्थित देवा सो वह आपको इसप्रकार कह रहे थे कि हे मन ! तुम्हें सर्वमन्त मुविधा

जोग श्रेष्ठ कहते हैं ताते में महाराजकी तुहाईदेकर कहनाहूँ, कि नूगी अन्तर्धा-  
 भी महाराजका भयंकर अधवा, दण्ड और त्रासका आशावन्तहो इसी पर एक  
 महारामने कहाहै कि जब यह मन सात्विकी भावमें स्थितहोताहै तब आपको  
 ताड़नाकरके समझावेताहै कि तैने अमुककर्म क्यों किया और अमुक प्राहार  
 क्योंखाया ताते मसिद्धहुआ कि करततिके पीछेपजन्तासुजनको अपने कर्मका  
 लेखा करना भी अवश्य प्रमाण है ॥ अथ मनको दण्ड देनेका नर्णन ॥ ताते  
 जान तू कि यद्यपि तैने अपने जागे, मनका, हिसाजे निरतिष्ठा परज्वजनका  
 भयंगुण देखकर इसको दण्ड, त, देवे, तब तलटा दीठ होजावेगा और अपदेशकर-  
 के वशीकार न करसकेगा इमीकारणसे चाहिये, कि यह मन जैसाही, पापके  
 तैसाही इसको दण्ड दीजिये जयकुछ अशुद्ध, व्याहार, अमीकार कियाहोवे तब,  
 मूल और समयकी ताड़नाराधिये और जब कभी बुद्धिदेवा द्वेषे तब त्रिषो-  
 को मूढकर ध्यान विषे स्थितहुजिये ऐसैही सर्व इन्द्रियो त्ने, पापों का पुरश्चरण  
 करके, मनको दण्ड दीजिये इसकरके कि आगे भी, जिज्ञासुजनोंने इसी प्रकार  
 कियाहै जैसे एक प्रीतिमाचने किसी स्त्रीकी ओर हाथ प्रसारावा ताते, उसने अ-  
 पने हाथको अग्नि विषे डारकर जलादिया बहुरि एक संजनातन्दी सर्वदोष  
 कान्त कोठरी, विषे बैठे रहनेथे सो सयोग पाइकर उसीमार्गमें कोईस्त्री, जानिकसी  
 तब उसभजनीने अपना पाप कोठरी में बाहरावा और उमको देखनेकी म-  
 तसाकरी बहुरि सचेतहोकर महाराजका त्रास करनेभये और उस, पापका पधा,  
 चाप करके आपको बखशावनेलगे बहुरि जो त्रण कोठरीके द्वासे, बाहरगया  
 था तिमको भीतर न लिया और कहनेलगे कि इस अरे, पापने, पापकर्मकी जोर  
 गंगन कियाहै ताते इसको कोठरी विषे लेआवना प्रमाण नहीं ऐसैही जन्म  
 चरण द्वारे से बाहर शीतकालकी बरफकरके गिरपडा इसीपर एक प्रीनिगान् ने  
 कहाहै कि पररात्रि विषे मुक्तको कैमिका स्वप्न धीपामा बहुरि जब जागा तब  
 गेने स्नानकी मनमाकरी पर भीनकालकी अधिकतादेवकर गेरेगनेने आनस  
 किया कि दिनहुये नसजल विषे स्नान करियेगा तिसभाग्यने गुरुहोमहित  
 स्नान किया और अपनेही ऊपर उने शुद्धीको सुवाता और गेने वशीविषे  
 किया कि जो मन ऐसा भगवत् धर्मसे विमुक्तहोवे, तिसको ऐसीही मजापदेनी  
 गोगदे ऐमेही एक और प्रीनिगान् ने भी किसी स्त्रीकी ओर कुदृष्टि करी थी

बहुति सचेत होकर तपश्चात्प्राप्त हो लगे और भगवत्की दुहाई देकर यही दृढ़ता  
 राखी कि अब इसमें आगे शीतल जल न मिलेगा और इसी ताड़ना धिपे मनको  
 दुःखित करेगा ताते वह दशवर्षपर्यन्त जीवित रहे पर शीतल जल कभी प्राप्त  
 क्रिया-बहुति एक और जिज्ञासु ने सुन्दर मन्दिरको देखकर ऐसे पूछा था कि यह  
 धरः किसने बनाया है फिर आपको समझाने लगे कि इस घरके साथ तो तेरा  
 प्रयोजन ही कुछ नहीं ताते तू, कोहेको पूछता है उसी कारण से उन्होंने मनकी  
 ताड़नाके निमित्त एक वर्षपर्यन्त तब राधा और एक सत् अपने खजुरके वारा  
 धिपे धिपे भजन करते थे सो वृक्षकी सुन्दरतीको देखकर चिक्षित्त होता भया  
 और वचनों का पाठ उतको भूल गया बहुति जल सचेत हूये तब वह वारा सबही  
 दात का दिया और एकवार एक सत्तं किसी पुरुषके मिलनेके निमित्त गये थे  
 सो जमावसके धर्म जाइ पहुँचे तब उमके पुत्र ने रुदा कि वह तो सोते हैं यह  
 वचन सुनकर उन्होंने कहा कि दिनके तीसरे पहर में सोवने का समय कौन है  
 इनना कहकर चले दिये और उस पुरुषका पुत्र इनके पीछे लग चला तब मार्ग  
 धिपे उनको ऐसे कहते जाते देना कि हे मन ! तू मर्यादसे ही न है इस करके कि तू  
 धिपे सोवने का समय कहा हो विचारता है और इस वार्त्ता धिपे तेरा प्रयोजन  
 क्या है ताते मैं तुम्हको दण्ड देनेके निमित्त एक वर्षपर्यन्त तकिया शीतल न  
 रखेगा ऐमे कहते और रुदम करते जाने जाते थे बहुति ऐसे कहते थे कि हे मन ! तू  
 मार्ग तू से रूपों नहीं डरता ऐमेही एक और भजनवात् भी अकस्मात् अधिक  
 सो रहा था ताते रात्रिके भजन का नेम उससे खरिडत हुआ इसी कारणसे उसने  
 अपने साथ यह वचन किया कि मैं एक वर्षपर्यन्त रात्रि धिपे नींद न करूंगा  
 बहुति एक प्रीतिमान् भी नग्न होकर तसका कडों पर पड़े लोटने थे और इस  
 प्रकार कहते थे कि हे मन मेरे ! तू दिन धिपे भूट बालनेहारा और रात्रि में मूर्त्तक  
 सगोत्र सो रहा है ताते मैं अनाथ तेरी वचन से सब हूटगा तब अमान कहीं  
 महापुरुष रुदा आ निकले और उससे कहते गये कि तूने ऐसा कष्ट काहे को  
 धारा है तब उस प्रीतिमान् रुदा कि मेरा सत्त अत्यन्त प्रबल है और मुझको क-  
 भी नहीं डोढता यह वचन सुनकर महापुरुषने कहा कि निस्मन्देह तू परमसुख  
 का अधिकारी है और अपने मक्षिया से कहने लगे कि तुम भी इससे कुछ अती-  
 शीमागो तब यहा पुरुषके मध प्रियतम उससे अतीशे मागत गये और वह प्रीति

मान् भगवत् के आगे उनके निमित्त प्रार्थना करने लगे कि हे महाराज ! तू इन सबको बेराग्यदे और यथार्थ के मार्ग से इनको दूर न कर जाने परमसुखको प्राप्त होवें वृद्धि एक और जिज्ञासुकी दृष्टि भी ऊँचे मन्दिरपर जाइ पड़ी थी तदा। श्री के रूपको देखा तब वह भयवान् होकर यह वृद्धता करने भये कि मैं जन्मपर्यन्त आकाशकी ओर कभी न देखूंगा और एक और हरिमङ्ग भी नित्यप्रति रात्रि के समय दीपक जगावते थे और उसकी गिलापर अपनी अँगुरी रखकर ऐसे कहते थे कि तैने अमुक दिन विषे अमुक कर्म क्यों कियाया और अमुक आहार क्यों खाया तात्पर्य यह कि जिनको अपने मन पर दोषदृष्टि उपजी है तिनहोंने इमप्रकार मनको ताड़ना विषे राखाहै और उन्होंने मनको ऐसा कुदिल जानाहै कि जब इसको कठिन सजा न दीजिये तब हमारे धर्मको नारा करेगा ॥ अथ यन्न निरूपण ॥ ताते जान तू कि जिन पुरुषोंने भजनविषे मनको आलस करता देवा है तब उन्होंने मनके ऊपर भजनके नेमकी अधिकताही कायत राखाहै जैसे उमरके पुत्रमे जब भजनका नेम एकगी खण्डित होताथा तब उमरात्रि विषे दिनपर्यन्त सोवता न था और भजनही करता रहताथा वृद्धि एकवार उमरजीका भी एक नेम खण्डितहुआ तब फेले सहस्र रुपया दानकिया सो ऐमेंही जिज्ञासुजनोंकी साक्षी बहुतहैं और तात्पर्य यह कि जब इमे मनुष्य का मन रुचि सहित श्रीराम नाम स्मरण विषे सावधान न होवे तब चाहिये कि किमी वृद्ध भजनवान् की सगति विषे गहे ताते उसको देखकर इसके हृदय विषे भी प्रीति उत्पन्नहोवे इमीपर एक हरिमङ्गने कहाहै कि जब मेरा मन मनन विषे कुछ आलस करना है तब मैं अमुक भजनवान् की ओर देखताहूँ तो उनकी अवस्था के देखने करके सात दिनपर्यन्त मेरी श्रद्धा नूतन होरहती है पर जब ऐसे पुरुषोंकी सगति तो पाय न सके तब चाहिये कि उनके वचन और अवस्था को श्रवण करे अथवा नित्यप्रति पाठकरता रहे तो भला है इमी कारणसे मैंभी कुछ साक्षी कथा भजतानन्द पुरुषों की वर्णन करताहूँ जैसे दाऊदसन्न अनारकी गेठी नहीं मँकतेथे और आटा भिगोइकर पान करलेतेथे सो इमप्रकार कहते थे कि जेना बिनम्ब रमोई करनेमें लगताहै सो मैं तिननी देरमें फेले वचनों का पाठकालेनाहूँ ताते मेमा मगय व्यर्थ क्या सोऊँ वृद्धि एक पुरुष ने उनसे कहा कि निम गन्धिरमें तुम घेरेहो निमकी तकड़ी टूट गई है तब उन्हाने कहा कि

मैं वीसवर्ष मोयदाही रिहना हूँ पर मैंने इमकी ओर कभी नहीं देखा इमकरके कि प्रयोजनाभिनिती देखना भी निन्द्य है वहूरि एक और श्रीरामानुरागी भी किमी स्थान गेवपे भेटेथे और उन्होंने तीन पहरपर्यन्त किमी और दृष्टि न करी तब लोगोंने पूछा कि तुम नेत्र खोल कर नहीं देखते तब वह कहते भये कि श्री रामज्जने नेत्रोंको इमानिभित्त उतारनिकियाहै कि आश्चर्य्य कारीगरी को देखकर कारीगरका विचार करे और उसकी समर्थता पहिचानकर विस्मित होवे वहूरि जी पुरुष भिस्मय और विचारके साथ दृष्टि न करे निमकी देवनाही पापेडोती है और एकमन्त्रने कहाहै कि मैं अपना जीवना तीन पदार्थोंकरके प्रियनमरखना हूँ सो एकतो शीतकालकी दीर्घ रात्रियोंमें महाराजके आगे दण्डवत्करना १ और दूसरा श्रीर्षज्जनुके दिनों विषे व्रतकरके भूल औ प्यान सहनी २ वहूरि तीसरा पदार्थ यहहै कि जिनपुरुषों के वचन रसीले यथार्थ वस्तुको लखानेहारे हैं सो तिनकी संगति करती ३ वहूरि एक और यज्ञवान जिज्ञासुको लोगों ने कहाथा कि तुम मनकेऊपर ऐसा कठिन रुद्र कर्म रखनेहो तब वह कहने भये कि अपने मनक साथ मेरी अधिक प्रीति है तार्त इमको एमे यत्नों कर के नरकों की आंचसे बचाया जाहना हू वहूरि लोगों ने कहा कि तुम अपने वचनकरके मन को नरकोंसे बचाय सकेगे तब वह कहनेलगे कि मैं यथाशक्ति यज्ञ सर्थदा करता रहताहू इस करके कि परलोक विषे मुझको यह पश्चात्ताप न होवे कि मैं होते बल भलाकर्म क्यों न करलिया इमीपर ज्जुतेद सन्तने कहाहै कि मैंने तिरितदशा यज्ञकरनेहारा कोई नहीं देखा उन ती नन्वेवर्षकी आयुप् हुईथी पर शरीर के मृतकहुये बिना उन्होंने धरतीपर लम्बा आपन न किया ताते मैं उनकी अवस्था को देखकर महभिस्मितहू वहूरि हरीरीसन्त एक वर्षपर्यंत बोले न थे और चरण पसारकर सोये भी नहीं औ तक्रिया लगाकर धेडेभीनहीं तब एकसन्तने उनको कहा कि तुमने ऐसे यज्ञका निर्वाह क्योंकर किया तब वह कहतेभये कि श्रीरामज्जने मेरेहृदयकी धृद्धा देवके शरीरको भी पुरुषार्थदिया है वहूरि किसीने एक रामभक्तको रुधिर के आम्रशिवते देखाथा ताते उनसे पूछा कि तुम ऐमारुदन क्यों करते हो तब उन्होंने कहा कि मैं आगे कर्ती आयुप् अपने पापोंपर रुद्रन करता रहाहू पर अब इस निमित्त रुधिर के आम्रशिवता हू कि जो आम् सकाम निकसे होवेंगे सो वह गेरा रोवनाही निष्कलहुआ होवेगा और दाऊत जीसे भी

लोगोंने रुढ़ाया किजो तुम दादी और केशावपनेगें कवी करे तब क्या पापदेवे  
 तब उन्हेंने कडा किजो सिक्को धर्मकारिग कुंछ न होवे तो इसीकियामें परचार  
 ह्यपर में ऐसा विकार तो कदाचित्त न फरुगां बहुरि आवेश करती संवने ऐसा  
 नियमो किमावा कि एकरात्रि में तो दिनपर्यंत श्रीजानकी जीवितको दयद्वर  
 करते रहते थे और एकरात्रि में अदेशेकर स्मरण करभेथे और एकरात्रिमें श्रीरा  
 गिताम रिल्लवने रहतेथे ऐमेही सर्वज्ञायुक्को च्छतीत करतेभये बहुरि एकरामन  
 काशिरार मन्की अघिक्ताकरके सीप्य होगयाथा ताते माता ने उनसे कहा कि  
 तू छन्ददयातीतवपनें ऊपरभी क्रियाकरातब बद्ध कइनेलगे कि मुझको भीराम  
 जीकी दया चाहियेहे इस कारण सोकुछ मलत्तरसाहुं कि किसी प्रकार अविनाशी  
 सुवन्नो प्राप्त होऊ और एक सन्तने कहाहै किमें आवेश करनी के दर्शनको गया  
 था और वह मंजन विपे स्थितथे ताते में उनको मयकारके बुलवाय न सका ऐसे  
 ही तीतदिन तीतगये कि उन्होंने तिदा और आहार कुछना किया बहुरि जोये  
 दिन उनके तेत्रों विपे कुञ्जाऊपर आई तब सचेत होकर कहनेलगे कि हे महाराज !  
 मैं डभ उरु सयमहीत और नेत्र अधिक निद्राग्रसित से तैरी रसाचाहवाहू यह  
 धवन सुनकर मैंने ऐसा विचार किया कि मुझकोतो इनका इतनाही उपदेश  
 हुत है बहुरि एक और सन्तने ज्ञाली सर्वपर्युन-लम्बा अमन न कियाथा इसी  
 क्राण में उनका नेत्रोंसे जालाजल चुननेतगाभा पर यह व्यवस्था थीसर्वपर्युन  
 अगने सिवनिषों को श्री लक्ष्मवने न भये और मंजनका विषय कंभी तरिद्व  
 त्त किया बहुरि एरुमन्तने कहाहै कि मैं एरवाररात्रिके मयाय प्राप्तिमाजीके पास  
 गयाथा और वह अपने मंजनविपे मग्न थी ताते में भी भजनकरनेलगा ऐमेही  
 सागरेन पीत गई बहुरि जब दिन हुआ तब सहनेलगी कि तिसि महाराजो इन  
 को ऐसा पुरुगार्थ दियाहै सो तिसके उपकारका अंत्यवाद कैसे करियो बहुरि ऐमे  
 कहते हैं कि इस उपकार के मन्त्रवाद निमित्त प्रीतिरपना प्रमाण है वीरर्य  
 यहुंकि मल्लनाड पुरुषों की ऐसीही अवस्था दृष्टहुई है ताते जादिये कि सर्व प्र  
 मनुष्यअपने विपे ऐसा पुरुगार्थ जे लेते तब उनके वज्रनों को सुने और अपनी  
 तीकनाको प्रतिजाने तब इमके हृदय विपे भी मलुई की श्रद्धाउत्पन्ने और मन्के  
 ऊपर मन्मालनेको समर्पयेवेगा अथ सन्के भिडरु क देने के वर्चन तो माता  
 जानू कि इम मनकी प्रादिउत्पत्ति विपे मल्लसजने यही समाप्त रवादे जो

अपनी भलाई से दूर भागता है और बुराई को प्रीतिमयुक्त अगिरी कर चरता है अर्थात् यहाँ कि भगवत्के भजनसे आलसी होना है और भोगों की भोग चाहता है और तुम्हको इस प्रकार आना हुई है कि मनको इस स्वभावसे उलटकर सीधा करो और कुमार्ग से ब्रजकर सुमार्गकी ओर लगानो मोच्यह कार्य वही मित्रा होना है जब मनके साथ कठोरता करिये और कुशल्यरिमी रखिये पर मनको समझावना इस निमित्त प्रमाण कहा है कि इस मनको महाराज ने समझोतका अधिकारी बनाया है ताते यद्यपि यह मन अत्यन्त कुटिल है परे जित् किसी कार्य विषे निरस देह अपनी मलाई दिवता है तत्र उसा विषे प्रीतिमयुक्त साविधान भी होता है और यद्यपि यह कार्य अत्यन्त कठिन होवे तौगी असके खेदको सहकर सम्पूर्ण क्रिया चाहता है पर यह सुखती जो अत्यन्त ही हृम मतको पड़ा पदल हुआ है ताते जब तु मनको अचेतता की नींदमें मलीप्रकारसे वेत करे और सन्त जनों के बचनरूपी दर्पण इसकी दिखवो तब अपनी भलाई को अगिरी कर लेवे इसी पर महाराजाने कहा है कि निरुदने हे जित् जनोंको भेरे प्रतनों का चिन् चारना लाभदायक होवा है ताते तुम्हको चाहिये कि मनको अलीप्रकार समझते और कभी इसको शीघ्रसे ताड़ना करे और इसको ऐसे कहे कि हे मत् ५ त् आपको जो महान्तुरु ज्ञानता है और जित कोई तुम्हें सूत्री कहता है तब प्रम पर को धवाचा होता है परतेरे समान और मूर्खको त है इस प्रकार कि ऐसे समय विषे त है सी और खेल विषे परचा हुआ है जैसे किसी पुरुष को प्रकटने के निमित्त बड़ा लश्करा आइ उतरा होत और उतके हूत इसको ज्ञानने लगे वृद्धि मूर्खता और अचेतता करके पैसे दुखको न जाने और है सी खेल विषे मग्न होइरहे सो गतिसके समान बुद्धिहीन कौन होता है तेमही जेते मनुष्य मृतक दृष्ये सो तेरे पकड़ने हारि लश्कर है और श्मशान भूमि विषे तुम्हको जो आया ज्ञाहते है वृद्धि नरक और स्वर्गमी तेरी निमित्त हवा है और योमी नहीं जानसुक्ता कि मत् औजही तेरी मृत्यु का दिन होवे तौ इस विषे त्वियो आश्रय है इस प्रकार कि जिसी कार्य को अक्षर प्रदी होवना होवे गतिमको जानई हुआ जातिये और कालते किसीके साथ ऐसा बचन नहीं करिया कि मूर्खमुक्त दिव लभवा अमुक मनुष्ये तेरा आहार करुगा काहेसे कि अचानकही स्वको आन प्रकृत है और इस मनुष्य को इसकी कुशा चितवनी ही नहीं होती ताते जब त्रपेने भिषातका ज्ञान



के आवनेसे आगेही सचेत न होवे तब इसमें बड़ी मूढ़ता क्या है और हे मन ! तू  
 जो सर्वदा पापकर्मों विषे आमकरहता है सो जब तू भगवत्को अन्त्यर्थापीतही  
 जानता तब तो निस्संदेह त्रिमूर्ति है और जब तू सो अन्त्यर्थापी जानकर, बहुरि  
 पापकिया चाहता है तब महादोष और निर्तजजन्मेको है कि महाराजके देखने  
 करके तुझको घामनहीं आवता और हे मन ! जबतक तू हलुवा तेरी आज्ञामे वि  
 पर्यय कर्म करता है तब तू उमके ऊपर केमे को प्रवात होता है तैसेही तू सीसग  
 वत्के कोपमे त्रास क्यों नहीं करता सो जब तू ऐसे जाने कि मैं परलोकके दयद  
 को महसूसगा तब अवर्ही एक अंगुरीको अंगितपर रखदे तब अथवा एक मुहूर्त  
 श्रीगणेशतुकी धूर विषे स्थाहो तब अपनी निर्वजना और अमीना को भली  
 प्रकार जाने अथवा तू यह अनुमान करता होगा कि मुझको पापकर्मों प्रक  
 सजा न होवेगी तब सतजनों के वचनों मे त्रिमूर्ति और महाराजने मुख्य पाप  
 लवाने के निमित्त सतजनों को इम समारविषे भेजा है और यह आज्ञा कीन्ही  
 है कि बुरा करनेहारे गनुष्य बुरेकृतको भोगेंगे सो तू इनसर्व विचारोंको मूठ  
 जानकर निदर होनाहोगा तो यह भी तेरी ही जड़ता है और मूर्खता है बहुरि जब  
 तू ऐसे जाने कि श्रीराजजी दयाल कृपाल है इस कारण मे मुझको सजा न  
 देवेंगे तब अह भी विचार करके देख कि असंख्य जीवोंको जानाप्रकार के भोग  
 और दुःखकों भोगावने हैं और जो पुरुष खेरी नहीं घोता सो अनाज क्यों नहीं  
 काटता बहुरि तू इन्द्रियादिक सुखोंके निमित्त अन्न क्यों करता है और मायाकी  
 प्राप्तिके निमित्त उद्यम क्यों उठावता है बहुरि जब तू सोसेकहे कि तुम्हारा अन्न  
 तो अर्थार्थ है पर मैं वैद्य्यादिक साधनोंके दुःखोंको नहीं मीचमकता तब तू इस  
 पार्था को नहीं ममकता कि जो पुरुष बड़े कष्टको नहीं सहैमकता तिसको प्रा  
 हिमे कि थोड़ाही दुःख खीचकर दीर्घ दुःख मे अपनी रक्षाके तैसेही जिन्होंने  
 जप तपस्वी दुःखको अगीकार किया है ते तारकों के बड़े कष्ट मे छूटने हैं और  
 जिन्होंने इम दुःखका सहारता नहीं किया ते गनुष्य विरकालपर्यन्त नरकों की  
 अग्नि विषे जलेंगे ताते जब तू अब इम अन्वयद सुको नहीं सहसकता तब पा  
 लोक विषे अधिक दुःखोंको कैसे महेगा बहुरि जब तू हलुवा तब माया  
 की प्राप्तिके निमित्त बहुरि अन्न और बड़े खेद कर्मों उठावता है और शरीरकी आ  
 रोम्यताके निमित्त लोभी वैद्योंकी आज्ञा मानकर सष ह्योद पाहेको त्यागदेता

है हे, मूर्ख ! तू इस वार्त्ता को नहीं जानता कि इस शरीरके रोगसे नरकोंका दुःख, अनि दीघ है और इस शरीरके क्लृप्त जीवने से परलोक विषे चिरकाल पर्यन्त रहना है वदुरि जब ऐसे कहे कि मैं अपने चित्त विषे पापोंके त्यागनेकी मत्सा रखना हूँ पर अमुक कार्य सम्पूर्ण करके वर्तमान विषे चलागा तब तुझको येती समझगी नहीं आवती कि जब अचानकही तुझको काल, मारलेवे और पापोंके त्यागनेमे अप्राप्त रहजावे तब क्या पुरश्चरण करेगा ताते जाना जाता है कि पश्चात्ताप विषे पड़ाजलेगा और जब तू ऐसे जाने कि अब तो पापोंका त्यागना कठिन है और कल्हि क्लृप्त सुगम होजावेगा तब यहमी बड़ी मूर्खता है काहेमे कि, तू जेती ढील करता है तेताही पापों और भोगों का त्यागना कठिन होता जाता है पर जब तू ऐसे चाहे कि मैं अन्नकाल के विषे भजन करलूगा सो इसका दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष पहाड़की घाटीपर चढ़ने के समय अनाज अथवा घीव देवे तब घोड़ा उम घाटी पर श्रद्ध नहीं सक्ता और बलवान् भी नहीं हेत्ता अथवा जैसे कोई पुरुष परदेश विषे विद्या पढ़ने के निमित्त जावे और वहा सर जाकर अनमाइ रहे इस करके कि मैं जब अपने नगर को चलने लगूगा तब जाती बार विद्याभी पढ़लूगा वदुरि जब इतना न जाने कि एक दो दिन विषे तो विद्या का पढ़ना होही नहीं सक्ता और कितने काल करके उसका पढ़ना सम्पूर्ण होता है ताते ऐसा अजान और आलसी पुरुष विद्याहीनही रहना है तेसेही यह मनभी अनेक विकारों करके भरपूर है सो जबलग इसको यत्र की यत्री विषे दारकर चिरकाल पर्यन्त शुद्ध न करिये तबलग भगवत्की प्रीति और उसके दर्शन के देखनेका अविकारी नहीं होसक्ता ताते जब ऐसाही बडा यत्र करके सध घाटियों को उतरजावे तब परमपदको जाइ पहुँचे पर जब यह आयुवन व्युत्पादी वातगई तब अन्नकाल विषे भजनमे क्योंकर स्थिर होवेगा इसीपर बुद्धिमानों ने कहा है कि यौवनको वृद्धताके आगे और सम्पदा को आपदासे आगे और अरोगता को रोगके आगे वदुरि सावकारीको विक्षेपता दे आगे और मरनेमे आगे जीवने को बड़ा पदार्थ जानिये पर हे मन ! तू श्रीगमत्रु विषे अपने देह के निमित्त शीतकालकी ऋतुके कार्य के उद्यम उठावना है और श्रीगमत्रु को दयालु जान कर ऐसे मनोरथको नहीं त्यागना वदुरि आचर करके त्याग और भजनका कार्य महाराजकी दया पर रखना है सो इम आत्म्य का कारण यह है

कि परलोक के दुःख सुख विषे तुम्हको प्रतीतिही नहीं पर इस विमुखता को तू  
 हृदय विषे गुह्यही रखता है सो इमरके तू सदैव कालके दुःखोंको प्राप्त होवेगा  
 बहुरि जब तू यथार्थ भूक्त विना मुक्तहुआ चाहे तब इसका दृष्टान्त यह है जैसे  
 कोई पुरुष वस्त्र विना शीतकाल की गरदीसे आपको बचाया चाहे तो असेभव  
 है काहेसे कि श्रीरामजी की दयाका अर्थ यह है कि महाराज ने जैसे शरद्वृत्त  
 की गरदी रची है तैमेही गरदीके दूर करनेको वस्त्र बनाये हैं पर जब तू महाराज  
 की दयाके अर्थको न समझे तब तेरीही मूढ़ता प्रकट है बहुरि तू ऐमेभी न जान  
 कि तेरे पापों करके श्रीराम को धनान् होते हैं और तुम्हको इमीकारण से सजा  
 देते हैं सो ऐसे नहीं काहेमे कि तेरे पापोंकरके नरकोंकी अग्निका धीज यहीही  
 बढ़ताजाता है जैसे कुपथ्य करके शरीरविषे रोग उपज आवता है सो जिम प्रकार  
 शरीर का रोग वैद्यकी अप्रसन्नता कर नहीं उपजता तैसेही परलोकका दण्डभी  
 महाराजके कोपकरके नहीं होता पर तेरा चित्त जो स्थूल पदार्थोंकी अभिलाषा  
 विषे बधायमान हुआ है सो यही सर्व दुःखोंका बीज है बहुरि जब नरक स्वर्गपर  
 प्रतीति कुछ नहीं तोगी इतना तो जानता है कि अथयही मरना है और मृत्यु  
 के समय सर्व भोग तुम्हमे दूग होजावेंगे ताते तू उनके वियोगकरके जलना रहेगा  
 सो तू जेताही स्थूल पदार्थों विषे अधिक प्रीति दृढ़ करेगा तेताही अधिक दुःख  
 को प्राप्त होवेगा ऐमे जान कर सचेत हो और समाग के सुखोंको भलीप्रकार देख  
 कि जो उदय अस्त पर्यन्त तेरी आज्ञा वनें और सब लोग तुम्हको दण्डवत् करके  
 तौभी थोड़े दिनों पीछे तू ओर तेरे पूजनेदारे स्वप्न होजावेंगे और कोई तुम्हका  
 स्मरण विषेभी न लावेगा जैसे पूर्वले चक्रवर्ती राजाओंको कोई जानताही नहीं  
 ताते इस समाग का सुख यद्यपि तुम्हको कुछ प्राप्त भी होता है तोगी महागनिन  
 और दुःखों के साथ मिला हुआ है और तू मूढ़ता करके इसके ऊपर अविनाशी  
 सुखको बेचना है जैसे कोई उद्यम रख देकर माटी का टुक भासन लेवे सो महा  
 मूढ़ कहावता है तैमेही इममसारका सुख माटीके भासनकी नाई है और गोप्राई  
 इमको दृष्टाजानिये बहुरि जब इसकी प्रीति करके अविनाशी रख को खोवेगा तब  
 दीर्घ पश्चात्ताप को देखेगा तात्पर्य यह कि जितासु जन सर्व्वदा ऐसेही मनकी  
 भिङ्गी देता रहे तब पुरुषार्थ करके मनको सीवे मार्ग विषे चलावे और इमार्ग  
 से नरजे राखे ॥

## सातवासर्ग ॥

विचारके निरूपणका वर्णन ॥

ताते ऐसे जान तू कि महापुरुषने ऐसे कहा है कि एक वर्ष के मजनमें एक घड़ीका विचार उत्तम है और महाराजने भी अपने वचनों विषे विचारहीको विशेष कहा है सो यद्यपि सबकोई विचारकी विशेषताको सुनता और मानता है पर तो भी विचारका अर्थ बिरला ही कोई समझता है और इस वार्त्ताको भी कोई नहीं जानता कि विचारने योग्य वस्तु क्या है और विचारनेका प्रयोजन क्या है और विचारका फल क्या है इसी कारण से ऐसे भेदोंका खोलना अत्यन्त प्रमाण हुआ ताते मैं प्रथम विचारकी स्तुतिकरूंगा वृद्धि विचारका स्वरूप वर्णन करूंगा तिससे पीछे विचारका प्रयोजन और जिस वस्तु विषे विचारकरना योग्य है तिसको प्रासेद्ध करके कहूंगा ॥ अथ स्तुति विचारकी ॥ ताते जान तू कि एक रात्रि विषे महापुरुष भजन करते हुये रोवने लगे तब आ ईसाने कहा कि तुम्हारे पाप तो महाराजने क्षमा किये हैं फिर तुम किस निमित्त रोवते हो तब महापुरुष कहते मये कि मुझको इस प्रकार महाराजकी आज्ञा हुई है कि जेते आकाश और पृथ्वीकी उत्पत्ति विषे मैंने आश्चर्य रचे हैं और जिस प्रकार रात्रि दिनकी भिन्नता बनावी है सो इनको मलीमाति विचारकरके देखो ताते मैं महाराज की कारीगरी को विचारकरके विस्मित हुआ हूँ और रुदन करता हूँ इमकरके कि जो पुरुष ऐसे वचनों का नित्य प्रति पाठ करे और विचार करके न देखे सो मन्त्रबुद्धी कहा जाता है वृद्धि ईसा महापुरुषको लोगोंने कहा था कि तुम्हारे समान और कोई मनुष्य उपजा है तब उन्होंने कहा कि जिसका बोलना सबही भजन होवे और मौन जिमका विचार सयुक्त होवे और दृष्टि जिमकी भय सयुक्त होवे सो मुझमें भी विशेष है वृद्धि महापुरुषने भी कहा है कि अपने नेत्रोंको भी भजन से अपास न रावो तब भीतिमानोंने पूछा कि नेत्रोंको किम प्रकार भजन विषे लगाइये वृद्धि महापुरुषने कहा कि भगवत्वाक्य पोथीको पढ़ना और त्रिच विषे उमको विचारना वृद्धि महाराज की कारीगरीको देखकर विस्मयवान् होता ही नेत्रोंका भजन है ताते ईश्वर पर दाराई सतने कहा है कि इम समार विषे विचारमहित विचारने करके परलोकके इ लोसे मुक्ति होती है और परलोकके विचारकरके अनुभवरूपी फल प्राप्त होता है और हृदय सुजीत होता है वृद्धि एरुमन्त्र एतन्नि विषे अयो गन्दि

विषे स्थितये और आकाशमे नक्षत्रोंका आश्रयर्थ देकर विचार करतेये श्री  
 रोचतेये मेमेही मूर्च्छितदोका पडोमीके घर्म गिगडे तत्र पडोमीने चार जान-  
 कर तलवार पकड़लीनी बहुणि जब उमने उनको पहिचाना तत्र पूश्नेलगा कि  
 तुमको यहा किसने गिगड दिया तत्र उन्होंने कहा कि मुझको गिगने की कषर  
 कुत्र नहीं पर मैं तारागडनका आश्रय देकर विस्मित होरहाहू ॥ अर्थ प्रकट  
 करना स्वरूप विचारका ॥ ताने जानतू कि बूझता विजनाई विचारका अर्थ  
 हे इमकरके कि जो वस्तु लपी न जाये निमका पहिचानना उगके खोजने का क  
 ही होनाहे सो बूझता खोजना इमभाति करकेहे कि प्रथम दो प्रकारकी मत्त  
 को परस्पर इकट्ठाकरिये तत्र उनसे तीसरी बूझ तुल्य उपज आवती हे जैसे खा  
 और पुरुषके मिलापकरके पुत्रका उपजना हाताहे तैसेही प्रथम जो दोप्रकारकी  
 समकत्ही हे सो मूलकीनाई दोनी हे और तीसरीबूझ उमका फल उत्पन्नदेता  
 हे बहुरि जब तीसरी बूझ के साथ और बूझ गिलनी हे तत्र उनके संयोग क  
 रके चौथीबूझ प्रकट होती हे इमीप्रकार बूझकी मिलौनी करके विद्याकी वृद्धि  
 होनी हे पर इमीरीनिसे जो बूझको प्राप्त नहींकरसका मो तिमका कारण यह हे  
 कि वह पुरुष प्रथम दोप्रकारकी बूझको नहीं जानता सो इमका दृष्टान्त यहहे कि  
 जैसे किमी पुरुषके पास पुंजीही न होये तत्र व्यवहार क्यों करके बहुरि जो पुरुष  
 प्रथम दो प्रकारकी बूझको जानता भी हेवे पर आपुम विषे उनको गिलाइ न  
 जाने सो निमका दृष्टान्त यहहे जैसे काई गनुष्य पूजा रखनाहोये और व्या  
 हारकी विद्याको न जाने तौभी लाभ मे अप्राप्त रहता हे नेनेही जो पुरुष दोनों  
 बूझोंको आपुम विषे गिलाइ न जाने तत्र तीसरीबूझ जो उगा फलहे सो निम  
 को पाइ नहीं सत्ता पर इमका वचन कम्ता भी अत्रिक विस्तार होनाहे जैसे  
 सक्षेपरुके एक दृष्टान्त वर्णन करताहू जैसे कोई पुरुष इम संनागके मुर्वा मे पर  
 लोकके मुग्गी विगोर्पना को समझावाहे तत्र प्रथम इस वार्ताको पहिचाने कि  
 नाशवन्न वस्तु मर्ती हे अथवा अविनाशी वस्तु व रीति बहुरि योगी पहिचाने  
 कि इम संनागका मुग् अविनाशी हे अथवा परबोरु हा मुग् अविनाशी हे ताये  
 निमने इन दो मूर्त्तोंको भलीप्रकार समझहे तत्र समाविक्तहो तीसरीबूझ उपज  
 आवती हे कि इमसंनागके मुग्मे परबोरु हा मुग् विरोधहे अथवा जैसे कोई इव  
 रोदको मगल्लनाहे कि रडे गान् अनामि हे अथवा उरान्नक्रियां कृताहे तत्रथा

तो यह विचार करें कि यह जगत् परिणामी है ध्वंशपूर्ण है चहुरि प्रेम जाने कि परिणामी मस्तु अनादि नहीं होती ताते सुगम ही तीसरी बूझ ही प्रकट होती है कि यह जगत् उत्पन्न किया हुआ है और ध्वंशपूर्ण नहीं ताते पर्याय यह कि ब्रह्म का खोजना दो प्रकार की समझ का प्रथम ईकट्टा करना है सो इस मार्ग बिना विचार की वृद्धि नहीं होती बहुरि यों भी जानने। चौहिने। कि जिसे घोड़ा और घोड़ी के संयोग से घोड़ा ही होता है और स्त्री पुरुष के मिलाप से मनुष्य उत्पन्न होता है तैसे ही जब प्रथम दो प्रकार की व्यवहारिक ब्रह्म चटोरिये तब तीसरी भी व्यवहार की समझ उपजती है और परमार्थ की ब्रह्म की इच्छा करिये तब उमके संयोग विषे परमार्थ का ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ अर्थ प्रकट करना प्रयोजन विचारका ॥ ताते ज्ञान तू कि इस मनुष्य की उत्पत्ति अज्ञान रूपी अंधे में हुई है इसी कारण से ध्वंश ही इसको प्रकाश की अपेक्षा होती है इस करके कि जब विचार स्त्री प्रकाश के साथ मूर्खता रूपी अंधे से बाहर निकले तब अपने आत्म चर्म के कार्यो में सांप्रधान होवे और इम भेद को समझे कि मुक्ति की कौणिय क्या है अर्थ यह कि इम संसार में आसक्त होना भला है अथवा धर्म मार्ग को अंगीकार करना भला है बहुरि देहा में मान विषे बध्यमान होना सुखदा है अर्थ श्री रामजी की शरण विषे भेरा कल्याण है सो ऐसी पहिधान विचार के प्रकाश विनी और किमी प्रकार प्राप्त नहीं होनी इसी पर महापुरुषने कहे हैं कि प्रथम महारजिने। सर्व जीवों की अंधकार विषे उत्पन्न किया है बहुरि सर्ष के ऊपर अपना प्रकाश डारा है सो जैसे कोई मनुष्य अंधे करके दु बिन होवे और उमको प्रभिद्ध मार्ग दृष्ट न आवे तब वह यत्र करके प्रकाश के निमित्त चक्रमक पार्थरकी टि होता है निमने अग्नि की चि नगारी निरुमनी है तब उमके साथ दीपक जनाय लीता है बहुरि दीपक के प्र काश करके उस पुरुष की आस्था ही उन्नट जाती है और सर्व पदार्थों को भली प्रकार देखने लाई मार्ग और कुमार्ग को भी प्रत्यक्ष पहिधानता है बहुरि उमी मार्ग विषे चलने लगता है तैसे ही जिज्ञासु जनको चाहिए कि प्रथम दो प्रकार की ब्रह्म को आप्त विषे मिलावे इस करके कि उमका मिलाप नहीं चक्रमकके टिकोरने की नाई है बहुरि उनके मिलाप करके जो तीसरी ब्रह्म उपजती है सो निस्पंद है अग्नि तैवे और अब ब्रह्म का प्रकाश उदय होना है तब मनुष्यके चित्त की श्रद्धा उराट जाती है बहुरि श्रद्धाके उलटने करके कर्तृनिभी उन्नतानी है तब इसने

जाना कि आत्मसुख अविनाशी है और-संसारके भोग, नागवन्त, हैं तब स्वा-  
 भाविकही संसार के भोगों की ओर पीठ देना है और आत्मसुख की ओर म-  
 म्मुख होता है तब प्रसिद्ध हुआ कि विचार विषे तीन, प्रयोजन प्रकृत है प्रथम तो  
 यथार्थ का पहिचानना १ और दुसरा वित्त की अवस्था का उन्नतना २ बहुते  
 तीसरा कर्तव्यों का उलटावना ३ अर्थ यह है, कि अपकर्मों का त्याग कर भली  
 फलवृत्ति करनी पर उलटावना कर्मों का वित्त की श्रद्धाके अतीत है और वित्त  
 की श्रद्धा यथार्थ की पहिचान करके उलटनी है बहुते यथार्थ की पहिचान  
 विचार करके प्राप्त होती है इसी कारण से विचार को सर्व शुभ गुणों का मूल  
 और कुञ्जी कहा है ॥ अथ प्रकृत करना अथकाण विचार का ॥ ताते जानू  
 कि विचार के अवकाश अपार हैं इसकारके कि प्रथम तो विद्या और बुद्धि  
 अनन्त प्रकारकी होती है और विचार सबों विषे, वर्तना है और जिन विचारका  
 सम्बन्ध धर्मके मार्गके साथ कुछ नहीं तिससे खोलने विषे भेरा प्रयोजन भी कुछ  
 नहीं और जिसविचारका सम्बन्ध धर्महीके साथ है तिसका भी पारानार कुछ नहीं  
 पायाजाता पर जिज्ञासुके समझाने के निमित्त सक्षेप करके कुछ वर्णन करुगा  
 सो धर्ममार्ग तिमको कहते हैं जिन मार्गकरके यह मनुष्य श्रीसीतारामजी के  
 दर्शनको प्राप्तहोवे ताते इस मनुष्य का विचार अधिक तो श्रीराम विषे चाहिये  
 है अथवा अपने आप विषे चाहिये पर महागज विषे विचार करना इसप्रकार  
 कि प्रथम तो महाराजके स्वरूप और गुणों का विचार करना अथवा उनकी का  
 रीगरीका विचार करना सो आप विषे विचारना यह है प्रथम तो अपने मतिन  
 स्वभावोंका विचारना जिनकरके इसजीवको महागज की ओरसे पटन होना है सो  
 तिनके दूरकरनेका उपाय विचारना जैसे जैसे विचार विषे प्रकृतविषे विज्ञान  
 सहित वर्णन किया है अथवा जिन शुभ गुणकरके श्रीरामजीकी प्रसन्नता प्राप्त  
 होनी है तिन विषेभी विचारकरना प्रमाण है ताते प्रसिद्ध हुआ कि धर्ममार्ग विषे  
 चार स्थान विचारके प्रकृत हैं सो इनका दृष्टान्त यह है कि जैसे किर्वाणेशीका वि-  
 चार और विनवन प्रियतममे बाण कटावित् नहीं होता और जिसका विनवन  
 प्रियतमविना और किर्वाणेशीविषे फुलनेलगे तब जानिये कि उसका प्रेमही नि-  
 बल है फाहेमे कि जब प्रेमकी प्रवृत्तता होनी है तब और तिसीवस्तुकी सुरति नहीं  
 रहती ताते प्रेमी पुरुषका विचार और सत्य अधिकतो प्रियतमके दर्शन और

सुन्दरता विषे रहता है अथवा उसकी लीला और गुणों का चिन्तन करता रहता है और यद्यपि उसकी सुरति अपने विषे भी फुरती है तौ भी ऐसे ही गुणों का स्मरण करता है जिनकरके प्रियतमकी प्रसन्नता और रीझ प्राप्त होवे इसी कारणसे उन गुणोंकी प्राप्त किया चाहता है अथवा ऐमे अवगुणों का विचार भी करता है जिनकरके प्रियतमका विषोग और अप्रसन्नता होती है ताते उनको दूर किया चाहता है तात्पर्य यह कि यद्यपि प्रेमी पुरुष को विचारके स्थान चारही है पर तौ भी चारों को मूल प्रियतम और प्रेमी दोनोंका अवकाश मुख्य है तैसे ही भगवत् और भक्तों के प्रेमका भी मार्ग यही है ॥ अथ प्रथम अवकाश विचारका ॥ ताते जान तू कि प्रथम तो प्रीतिमान् को यही विचार करना योग्य है कि मेरे विषे जुरे स्वभाव और चुरी करती कौन हैं ताते विचारकरके आपको उनसे शुद्ध करे सो एक पाप स्थूल है १ और एक पाप सूक्ष्म है २ सो यद्यपि यह भी अमित है जो गन नहीं सकते तौ भी जेते अपकर्म शरीर और इन्द्रियोंके साथ होते हैं तिनको स्थूल पाप वर्णन किया है और मनके स्वभाव मलिन सबही सूक्ष्म पाप कहे हैं सो एक २ पापके विचार विषे भी तीन प्रकार का बल बर्तता है प्रथम यह कि अमुक स्वभाव अथवा कर्म बुरा है व भला है इसकरके कि यह वार्ता भी विचार विना जान नहीं सकता १ और दूसरा प्रकार यह है कि जिम किया और स्वभावको बुरा जाना तब इम भाति विचारकरे कि अमुक अवगुण अथवा अपकर्म मेरे विषे है व नहीं काहेसे कि मन के स्वभावोंको भी दृढ़ विचार विना पहिचान नहीं सका २ बहुरि तीसरा प्रकार विचारके बलका यह है कि जब अपने अवगुण को निश्चय किया तब उसके दूर करने का उपाय करे ३ ऐमे ही जिज्ञासु जन नित्य प्रति प्रातसमय एकत्र होकर इस विचार विषे सावधान होवे प्रथम तो स्थूल पापों का विचार इस प्रकार किया चाहिये कि एक एक इन्द्रिय की क्रिया को भिन्न भिन्न विचारे सो रसनाका विचार इस भाति करे कि बोलना तो मुझे अवश्य ही होवेगा पर किसी प्रकार झूठ और निन्दासे रहिन हूजिये तो भला है ऐसे ही जब देखिये कि मेरी जीविका अशुद्ध है तब उसके त्यागने का उपाय विचारे इसी प्रकार सर्व इन्द्रियों के कर्मों को भिन्न भिन्न स्मरण करे बहुरि जेते भजनके नियम और गली करती हैं तिनमें दृढ़ विचार सहित सावधान होवे और ऐमे जाने कि यह रसना मुझको भजन के निमित्त और मिष्ट बोलने के अर्थ महाराजने दीनी है ताते चाहिये कि रसनाको



मजन विषे लागीं और सर्व मनुष्यों के साथ मीठा बोलों और नेत्र इसनिमित्त  
 निम्ने ह कि महापति की कारिणी को देव कर उत कारिणी को पहि राना अ  
 यथा सोव मयुक्त अत जनों का दर्शन हों और प्राण कर्मियों को रनानि की दृष्टि  
 साथ देखा जाने मुक्त को उन की समझिना प्रवेश त होवे तब नेत्र की उत्पत्ति भी  
 फल ही प्राप्त होवे और महापति ने धर्म को ज्ञानों के मुक्त के निमित्त रचा है तब  
 चाहिये कि मैं धर्म को अर्थियों के अर्थ लागू और यद्यपि मुक्त को भी इस वस्तु  
 की अपेक्षा आवश्यक है तब भी चाहिये कि पुरुषार्थ करके अपने अर्थ का त्याग  
 करे ऐसे ही निरुपनि जित्ना मुक्त को विचार करना प्रमाण है इस करके कि फ  
 दापि एक घड़ी के विचार विषे ऐसा शुद्ध मङ्गल इमको उपज आवे जो मुक्त  
 करके मन्त्र आयु के पापों में रहित हो जावे और पराभक्ति का अधिकार होवे इसी  
 कारण से महापुरुष ने कहा है कि सर्व आयु पर्यन्त के मजन से पुरुष की का  
 विचार भिन्न प्रहे अर्थ यह कि विचार का ज्ञान इसको सर्वदा सुवदायी और ग  
 हासक होता है चट्टिरे जब सुज्ञानों का विचार करके और चाल के शुभ कर्मों  
 का विचार भी करके तब दृष्टि के सुख स्वभावों की ओर दृष्टि करे कि मेरे निमित्त  
 मैं कौन कौन गलित वामना है चट्टिरे जेने धर्म सन्तोष आदिक मोनदायक  
 गुण कर्म ह सो तिन को प्राप्त होने का उपाय विचारै पर ऐसे सपूर्ण गुणों और अ  
 वगुणों का बन्धान भी प्राप्त हो जाते हैं कहु क सभर करके कहना है कि कृष्ण  
 अग्निमान अहकार अर्थात् कोष आहार की अधिकता व्यर्थ बोलना वन और  
 मात्र ही प्रीति अज्ञानता क्रोध स्वभाव आदिक विकारों को विचार करके दृष्टि  
 किया चाहिये अपेक्षीला म का त्याग और दुःख विषे धैर्य करना और महापति  
 उपायों का धन्यवाद करना चट्टिरे महापति की मय और आज्ञा की समानता वि  
 स्थित होना और भाषा के प्रदायों में भिन्न होना मज्जा विषे निष्कामता करना  
 सर्वजीवों के साथ दोगला ह्यभावना प्रकृता और भरोसा महापति की प्रीति से  
 सन्तोष आदिक जेने शुभगुण ह सो सब ही भाव विषे विचारदीना वत चट्टिरे  
 जेने पर गद विचार निमित्त ह दृष्टि विषे उपजता है जिनसे ऐसे शुभगुणों के मर  
 को मन्त्रिकार सभका दोष जमे भुने उगी मोक्षदायक प्रकरण विषे कहते ता  
 जित्ना मुक्त को ज्ञाहिये कि शुभ और अशुभ गुणों के नाम अपने पास निमित्त  
 चट्टिरे जे पुरुष अशुभको दुःख के दान इमके नीचे में दृष्टि हो और जे

एक गुणको प्राप्त करलेवे तब दूसरे गुणके पारनेका पुरुषार्थकरे पर किसी पुरुष पर कोई स्वभाव प्रबल होताहै किसीपर कोई बलवान् होताहै इसीकारणसे चाहिये कि प्रथम प्रबलस्वभावके दूरकरनेका यत्नकरे जैसे कोई विद्यावान् वैराग्य सयुक्तहोवे तब उसको मानकी अभिलाषाका दूरकरनाविशेषहै इसकारके कि विद्या और वैराग्य की प्राप्ति करके मानका हेतु अवश्यही प्रकट होभावता है वहुरि मानके हेतुकरके किसी का वचन नहीं सहसका और अपनी विशेषता को लखाया चाहता है तब चित्त विषे क्रोध और ईर्ष्या का अकुर उपजने लगताहै सो यद्यपि ऐसे स्वभाव महामूर्खरूप हैं पर तौभी निस्सन्देह भागों की हीनताका बीजहै ताते विद्यावान्की चाहिये कि नित्यप्रति मानहीके दूरकरनेका विचारकरे और जगत्की स्तुति निन्दासे विरक्तहोकर समतापदकी प्रीति विषे दृढ़होवे इस करके प्रसिद्धदृष्टा कि अपने भवगुणों और शुभगुणोंका विचारकरनाभी अमितहै सो वचनकरके सम्पूर्ण नहीं कहसकै १। अथ द्वितीय अवकाश ॥ ताते जान तू कि विचारका अवकाश दूसरा भगवत्है सो एक तो श्रीरामजूके शुद्ध स्वरूपका विचारहै और दूसरा श्रीरामजूकी विचित्ररचना और शक्तिका विचारनाहै सो यद्यपि उत्तम विचार और चिन्तन श्रीसीतारामजी महाराजके सुन्दर गौर श्यामस्वरूप और गुणोंका होताहै पर यह जो अल्पबुद्धिजीवहै सो महाराजके स्वरूपका विचार कर नहींसकै ताते धर्मशास्त्रविषे स्वरूप का विचार धर्जित कियाहै सो महाराजके स्वरूपका विचार कुछ गुह्यताके कारण कठिन नहीं पर उसका विचारना इसकारके कठिन है कि जीवके बुद्धिरूपी नेत्र महामन्द हैं और महाराजका स्वरूप परम प्रकाशवान्हे ताते उसको देख नहींसकै और मूर्खोंको प्राप्त होते हैं जैसे चिमगोदरकी दृष्टिकी मन्दता करके सूर्य के प्रकाश विषे आह नहीं होसकती वहुरि जब सूर्यका प्रकाश अस्त होताहै तब रात्रि विषे तारामण्डल के किंचित् प्रकाश करके नेत्रों को खोलती है तैमेही देहामिमानी मनुष्य भी महाराजके शुद्ध स्वरूपको देख नहींसकै तब उसका विचार क्योंकर करे पर जो सत्पुरुष है सो उत्तम अवस्थावाले हैं और तिन्होंने प्रकटही सुन्दर स्वरूपको देखाहै पर सदा एकरम बहभी नहीं देखसकै और उनही बुद्धिभी ये किन्त होजाती है जैसे यह मनुष्य सूर्य को भलीप्रकार देखसकै है पर अधिक देखने करके इनकी भी दृष्टि मन्द होजाती है तैमेही महाराजकी छवि अपागके

विचारने विषे भी यही भय होता है, चिस्मय और आश्चर्य करके बर्षा होजा-  
 ता है इसी कारण से जिनप्रकार सन्तजन महाराजके सर्वगुणोंका भेद जानते  
 हैं सो इनर जीवोंको खोवा कर सुनावतेही नहीं और महाराजने भी उनको यह  
 आज्ञा कीन्हीं है कि सर्वजीवों को अधिकारके अनुकूल उपदेशकरो और नि-  
 मप्रकार उनकी बुद्धि महाराजके कुछ भेद को समझकरे तैसेही सगभावो ताते  
 ऐसे कही कि महाराज अन्वर्थाभी है और सबकुछ देखते सुनते बोलते हैं बहुरि  
 जो कुछ किया चाहते हैं सो करलेते हैं तात्पर्य यह कि अल्पबुद्धि जीव इतना  
 भी इस निमित्त समझते हैं कि इनविषे भी सुनना बोलना देखना कुछ पायाजा-  
 ता है पर इनसे जब इमप्रकार कहिये कि महाराज का बोलना मनुष्यों की नाई  
 नहीं काहेसे कि उनका बचन शब्द और अक्षरोंसे रहित, अर्थात् तब इस वाणी  
 को नहीं समझसके अथवा जब ऐसे कहिये कि महाराजकी स्वरूप मनुष्योंकी  
 नाई नहीं इसकरके कि महाराजका न कोई कारण है न वह किसी के कारण है  
 बहुरि न किसी स्थान के ऊपर स्थित है न किसी स्थान के मध्यमें रहते हैं और  
 न किसी दिशा विषे कहसकेहै बहुरि जगत्में न्यारेभी नहीं और, जगत्के साप-  
 कुछ सम्बन्ध भी नहीं रखते ऐसेही ससार से बाह्य भी नहीं और ससार विषेभी  
 नहीं सो जब यह अल्पबुद्धि जीव ऐसे सूक्ष्म बचन सुनते हैं तब इनकी पहली  
 प्रतीति भी नष्ट होजाती है ताते भगवत्कीका नतकार करनेलगत है इसकरके  
 कि महाराज को भी अपनी नाई सगभा चाहते हैं और उनकी बड़ाईको जा-  
 नतेही नहीं काहेसे कि यद्यपि महाराज को सब से बड़ा कहते हैं तौभी, विष-  
 विषे किसी बड़े भूपतिकी नाई समझते हैं और ऐसे जानते हैं कि परमेश्वर  
 भी भूषों की नाई सिंहासन पर बैठकर मृष्टि का कार्य करता होगा और यों  
 निस्मन्देह जानते हैं कि भगवत्के भी मनुष्योंके समान, स्थूल शरीर हाथ पांव  
 गीण होवेगा इसकरके कि जब हमारे हाथ पांव न हों तब हम अगहीन और  
 दुःखी होते हैं तैसेही जब परमेश्वरके शरीर नेत्र आदिक इन्द्रिय न हों तब वह  
 भी अगहीन रहना है सो ऐसी स्थूलबुद्धिसे भगवत्सगभारे इस करके कि जय  
 मासीके हृदयविषे ऐसीही सूक्ष्म होती है तब वह भी इमप्रकार कहती है कि जैसे  
 मेरे पांव और पंखहैं तैसेही महाराजके भी पंखहोंगे काहेमे कि मैं तो इनकरके  
 सुप्तसे इच्छाचारी उदनी हूं और जब मेरा उत्पन्न करतेहारा ऐसा श्रेष्ठि न-

होवे तब यह अयोग्य वात्सा होती है तैसेही यह मनुष्यभी महाराजके ऊपर अपना अनुमान रखते हैं इसीकारणसे धर्मशास्त्र विषे निर्गुण स्वरूपके विचारसे बर्जा है और सन्तजनोंने भी इसप्रकार प्रसिद्ध नहीं कहा कि महाराज इस संसारसे व्यतिरिक्त है अथवा मिलाहुआ है ताते उन्होंने भी इतनाही वर्णन किया है कि महाराजके स्वरूपकी नाई और कोई वस्तुही नहीं जिसकरके उसको समझायसकिये पर वह परेश महाराज सब कुछ देखने और सुनने और जाननेद्वारा है और समर्थ है सो यद्यपि ऐसे कहा है तौभी इस जगत्में जिसप्रकार देखना सुनना जानना महाराजका है तिसका भेद प्रसिद्ध वर्णन नहीं किया इसकरके कि स्थूलबुद्धि मनुष्य ऐसे भेदों को समझ नहींसके तात्पर्य यह कि परात्पर स्वरूपके विचारनेका अधिकारी कोई बिरला सन्तही होता है और इतर जीवोंकी बुद्धि उसके स्वरूपमें पहुँच नहीं सकी ताते सबही जीवोंका अधिकार यह है कि महाराजकी विचित्र रचनाका विचारकरके उसकी बड़ाई और समर्थताको पहिचाने काहेसे कि जेतेपदार्थ स्थूल सूक्ष्म उत्पन्नहुये हैं सो महाराजही के प्रकाशका प्रतिबिम्बहै पर इसका दृष्टान यह है जैसे कोई पुरुष दृष्टिकी मन्दताकरके सूर्यको देख न सके तब चाहिये कि उसकी धूपको देखकर उसके तेजकी अधिकताको पहिचाने तैसेही रचनाकी विचित्रताका विचारनाभी महाराजकी बड़ाईको लखावता है ॥ अथ तृतीय अवकाशानिरूपण ॥ ताते जानतू कि सब सृष्टि महाराजही की रचना है और सबही आश्चर्यरूप है सो जब विचारकरके देखिये तब सब पृथ्वी और आकाशके जेते अणुहैं ते सब अपने उत्पन्न करनेहार की महिमाको लखावते हैं और कहते हैं कि ऐसी सगर्थता और ऐसी परमविद्या परमेश्वरहीकी शोभती है और उसकी स्तुति ऐसी अपार है कि जो सातोंमनुष्य स्याहीहोवे और सब बनस्पति लेखनीहोवें और पृथ्वी आकाश विषे जेते जीवहैं सो लिखनेलगें और आयुभी उनकी अगितहोये तौभी महाराजकी आश्चर्यताका अन्त कदाचित् नहीं आयता पर सर्व सृष्टि भी महाराजने दीर्घकारकी रची है सो एक सूक्ष्म है और एक स्थूल है बहुरि सूक्ष्म सृष्टि जो जीवगति है सो तिसका विचार नहीं होसका और जो सृष्टि स्थूल कही है वह भी दो प्रकारकी रचना है एक तो हमारी दृष्टिमें अगोचर है जैसे देवता और उनके स्थान और भूत प्रेतादिक जो जीवहैं सो इनका विचारना भी महाकठिन है ताते तृतीय सृष्टि

जो हमारी दृष्टि विषे आवती है तिसका मैं कुछ वर्णन करता हूँ गो देखनेमें आकाश और पृथ्वी सूर्य चंद्रमा नक्षत्र भावते हैं बहुरि पृथ्वी के ऊपर जो पटाइ और वनस्पति और नदी और नगर और मनुष्य आदि जेते जीव हैं सो सबही आश्चर्यरूप बनाये हैं बहुरि आकाश विषे जो बादर और वर्ष और ओला और बिजुली और इन्द्रमनुष्य आदिक जेती रचनाएँ सो सबोंविषे विचारका मन वर्तताहै इमकर्मके कि सर्व पदार्थोंको महाराज ने कौतुकरूप रचाहै ताते मैं सो खेप करके कहूँ इनका वर्णन करूँगा काहेसे कि यह सब पदार्थ महाराज की शक्ति को लखावनेहार हैं और तुम्हको इगप्रकार आजाहूँ है कि तू मेरी रचना को विचारकी दृष्टिके साथ सर्वदा देख और मेरी पढ़ाई को पहिचानकर विस्ति । तहो पर प्रथम तो महा आश्चर्यरूप भगवत् ने तुम्हको जनाया है और तेरे सगान तुम्हको और कोई निकट भी नहीं सो जब तू ज्ञानको विचार तब मेरी संहर्षताको और पढ़ाईको तुरतही पहिचान लेवेगा ताते तुम्हको प्रथम तो अपनी आदिका विचार करना प्रगाणहै कि मैं इस ससार विषे कहासे आयाहूँ सो जन्म विचार करके देखिये तो रज ओ वीर्यही तेरी उत्पत्ति का कारण है बहुरि क्रम करके मास का पूतरा होताहै और बढ़ना जानाहै तिससे पीछे उसी मास विषे गिन्नभिन्न अंग उपनते हैं जैसे मास त्वना नाही मद् अस्थि केश उत्तम होतेहैं बहुरि तेरे अंगों का आकार भिन्न भिन्न भाँति रचा है जैसे शीश दाप पात्र अगुरी नामिका कान दान और नेत्र बनाये हैं और फेले और अंग तेरे शरीरके भीतर रचेहैं जैसे उदर नाभि हृदय और अनेक इसहीनाई जो अंगेहैं सो सबका आकार और गुण और मर्याद गिन्न भिन्न करके रची है बहुरि एक एक अंग विषे अनेक सम्बन्ध मिलाये हैं जैसे नेत्र कि देखने में इनका आकार थोड़ाही भासताहै सो तिनको सान परदे मिलाकर बनायाहै और एक एक परदेका भिन्न भिन्न गुणहै सो जम एक परदेको कुछ खेद पट्ट चताहै तब तेरी दृष्टि गद होजानी है पर जय नेत्रोंहीकी आश्चर्यनाको विस्तार करके कहिये तो कनेपत्र और पोषी लिलेजाते बहुरि जब तू जाने शरीरके अस्थियोंकी जोर देने तब यह भी बढ़ना शर्यरूपहै प्रथम तो शरीरकी दृढ़ता इन्हीं करके होनाहै और जल की बृद्धि में ऐसे कठोर अस्थि कर्षोंका रचैहै बहुरि इनको भिन्न मर्याद सहित उपजायाहै और भिन्न गुणोंकहेतु स्थितिविषेहै बहुरि अभिप्रां को शरीरका समापनाहै और

और अग उनके ऊपर ठहराये हैं और जब सारे शरीर विपे एक ही हाई होता तब यह मनुष्य नवने विपे डू खी होता और जब भिन्न होते तब खडा न होसकी ताते गीठ और ग्रीवा और गोड़ों के हाड़ों को मोहरेदार उत्पन्न किया है और एक दूसरे विपे मिलाय रखे हैं इस करके फियह पुरुष नवने और चलने और खड़े होने को समर्थ होवे बहुरि अस्थियों के मोहरेपर नाड़ी लपेटे हैं और उनको मली प्रकारे हड किया है सो एक ही शीश को पचपने अस्थि मिलाकर बनाया है ऐसे ही केते दातों के शीश तीक्ष्ण क्रिये हैं और केतों के शीश चौड़े बनिये हैं ताते एकदात ज्ञानाज को काट डारते हैं और एक निकांर के पीस डारते हैं बहुरि शरीर विपे तीन सरोवर रखे हैं सो शीशरूपी सरोवर से नाडी के प्रवाह कन्धों विपे पसरते हैं और कन्धों के मार्ग से सर्व शरीर से प्रवेश करते हैं ताते इन्द्रियों को बल प्रद्वृत्ता है और अपत्ते शर्काश्यों को सावधान होती हैं ऐसे ही दूसरा सरोवर जड़ है सो तिससे नाडी के मार्ग से सर्व इन्द्रियों को आहार पद्वृत्ता है और तीसरा सरोवर हृदय स्थान है सो इनकी नाड़ियों करके सर्व शरीर सजीव होता है ऐसे ही तू अपने शरीर के एक एक अंग को विचार करके देख कि महाराज ने इनको कैसी युक्ति कर रचा है और इतमें कैसे कैसे भेद और गुण रखे हैं जैसे यह नेत्र कैसे फोटुकरूप रचे हैं और धूरी रक्षा के निमित्त इनके ऊपर आली रखी हैं सो इस विपे भी बड़ा आश्चर्य यह है कि देखने में नेत्रों का आकार अल्प मात्रा मासता है और पृथ्वी आकाश पर्यन्त सर्व यदार्थ इनकी दृष्टि विपे समाइ जाते हैं ऐसे ही श्रवणों विपे कहुवा जल रखा है इस कारके कि इतमें कोई क्रीड़ा प्रवेशान करजावे बहुरि इन का आकार सीपकी नाई रचा है ताते शब्द को इकट्ठा करके भीतर पहुँचाइ देते हैं पर जब ऐसे ही मुख और हाथ पांव श्रवण और भ्रगों की आश्चर्यता का बखान करिये तो बड़ा बिस्तार होता है तारपर्य्य यह कि जब किसी प्रकार तुम्ह को ऐसे विचार का मार्ग खुले तब तू उत्पन्न करनेहारे महाराज की बड़ाई और समर्थता और दया और उसकी बुद्धि को मली प्रकारे परिचाने का हेम कि महाराज ने जज्ञाशिल पर्यन्त आश्चर्य्य रूप ही रचा है पर जब तू किसी मनुष्य की लिखी हुई गूँथि को देखता है तब उसकी सुन्दरता देखकर विस्मयवन्त होता है और निगवनेहारे की म्बुति कम्ता है बहुरि ऐसे भी जानता है कि महाराज ने वीर्यही की बुद्धि से शरीर विपे वैसी अनुप चित्रकारी रची है और यह भी बड़ा आ-

स्वर्ग्य है कि शरीरके अंगोंकी चित्रकारी का चिनेरा और लिखनि दृष्टि आवती पर तू भगवत्की बड़ाई की विचारकर आश्चर्यवान् नहीं होता व उन्की परमवृत्त और पूर्ण समर्पता को देखकर तू चापग नहीं होता और की परम दयाकी भी तू न्द्राचिन् नहीं पहि जानना काहेसे कि जब गदात गर्भ विषे तुम्हको आहारका अधिकारी देखा और ऐसै भी जाना कि अ सुख इसका सुनता है तो इसके मुख विषे रुधिर प्रवेश करेगा ताते इन्का होवेगा इमकारण से ऐसै विषय स्थान विषे तुम्हको नाभि मार्ग से आहार प्राया और पूर्ण अनुग्रहके साथ तेरी प्रतिपाल कीनी है बहुरि जब तू मात गर्भसे बाहर निकसा तब गदाराजने नाभिके मार्गको तरकालदी गूददिया तैरे मुखको आहारके निमित्त खोलदिया और तिसपर भी तैरे शरीरकी सु ता देखकर तेरी माताके स्तनों विषे दूध उत्पन्न किया और उसको तेरा बननाया बहुरि स्तनों का गीश इमप्रकार छोटा किया कि तू उमको गुम्भे कर सुखसे ही चूनेलें और छिद्र उनका अत्यन्त सूक्ष्म बनाया इम करके इकट्ठा दूधका प्रवाह तुम्हको खेद न देवे और थोड़ा तेरे कंठविषे चलाव बहुरि तेरी माताके स्तर विषे ऐसा धोवी स्थित किया जो संयदा रुधिरको सं दूधकरके भेजता है और तेरी माताके चित्तिये ऐसी प्रीति उत्पन्न कीनी है जब तू एकचहमी भूवा रहता है तब उमके हृदयका विश्राम बूहोजाना है वृ जबलग तू दूध पीवनेही का अधिकारी था तबजग तैरे दान उत्पन्न नहीं है इमकरके कि अज्ञानता सहित जननी के स्तनोंको फाट न द्योरे और अदे देह अनाजका अधिकारी हुआ तब मगयपाइकर आरही दान उपजवारी ताने तू कठोर आहारोंकागी भक्षण करलेना है परम्वह जो तेरी मूर्खता और की हीनता है सा इसकी मर्यादा भी कुछ पाईनहीं जानी इसकरके कि यकी पनी नासिकी तू मगभना और मन्थन देवना है तीगी उत्पन्न करभेसे पर राजकी बड़ाईको पहि जानकर विस्मयको नहीं पावना बहुरि उसकी दान अधिक सुन्दरता को विचारकर उसके साथ तू भीनिही नहीं मग्ना माने मरु रूप इसप्रकार भीममज् की मग्ना को अपने विषे न देवे तो महाजपेन से पगुजों की नाई बुद्धिहीनते और इम मनुष्य क्षिे जा भीमगती ने शुद्ध का अधिकार प्राप्त है सो तिसकी उमने व्यर्थ भोया बहुरि जो आहार को

ई बिना और कुछ नहीं जानता सो निस्सन्देह ज्ञानरूपी वाग के तमारी से  
 पाषाण रहता है ताते जिज्ञासु जनके समझतेको विचारका वर्णन इतनाही बहुत  
 इसकरके कि जब एक मनुष्योही की आश्चर्यताका बर्णन करिये तब जेना  
 छ मने कहा है सो तिससे भी लाख गुणा अधिक है बहुरि ऐसेही महाराजते  
 रती भी को तुम्हें रूप रत्नी है और इसी धरतीपर और भी अनेक आश्चर्यो उ  
 न्न किये हैं सो जषातु अपने आपका विचार करचुके तब चाहिये कि धरतीके  
 आश्चर्यों का विचार करे सो श्रीमहाराजने इस प्रकार धरतीको तरे निमित्त  
 से कसा दीर्घ विद्योना बिछाया है कि तू जिसदिशा विषे चलाजावे तिसीका अन्त  
 जगती ही पानता बहुरि इस धरतीको पहाडरूपी मेलोंके साथ दृढ करके ठहराया है  
 और महाकठोर पत्थरोंसे प्रवाह प्रकटाये हैं कि मलीप्रकार सर्वदा पृथ्वीपर चलते  
 रहते हैं सो वही प्रवाह इस प्रकार धरती से बाहर निकसते हैं कि जब एकहीवार  
 से को छल पड़ते तब धरतीको दुगाइलेते ताते उनको कठिन पत्थरों के तले ठहरा  
 सनेछाया है ऐसेही न मलीमाति विनाकर देव कि यह मलिन माटी वसन्त ऋतु  
 में विषे किस प्रकार प्रफुल्लित होती है और मेघोंकी वर्षाके साथ क्षय कर सजीव हो  
 जाती है कि इसी अप्रेरी माटीविषे अनन्त प्रकारके रंगिन फूल उत्पजते हैं काहेसे  
 कि भिन्न भिन्नही फूल हैं और भिन्न भिन्नही उनके गुण और रंग हैं और एक दु  
 सरे से अति सुन्दर हैं ऐसेही जब वृक्षों की ओर देखिये तब उनका भी रूप और  
 सुगन्ध और फल और गुण अ्यारेही न्यारे रचे हैं बहुरि जिस घासको तू कुछ  
 चस्तुही नहीं जानता सो घास वृषों विषे भी अनन्त गुण और लाभ उत्पन्न  
 किये हैं और सबके भिन्न भिन्न रस हैं एक कहुवे हैं एक भीटे हैं एक तीक्ष्ण हैं  
 और एक रोगोंको उत्पन्न करते हैं और एक दु सोंको दूर करनेहारें हैं एमेही एक  
 वृष शरीरके जीवनरूप हैं और एक महाविपरूप हैं किन्हींका स्वभाव पीतल है  
 किन्हींका उष्णदायक स्वभाव है बहुरि एक चर्दरोगको बढ़ावते हैं और एक दूर  
 करदारते हैं एमेही एक तिद्रा को बढ़ावते हैं एक नींदको क्षीण करलेते हैं एक  
 मसनेता उपजावते हैं और एक शोकनाच करते हैं बहुरि एक घास पशुओंका  
 आहार बनाये हैं और एक वृषोंको पक्षियोंका आहार किया है और एक मृगोंकी  
 जीविका रचे हैं तात्पर्य यह कि वनस्पतिकी जातिही प्रथम तो अगणित हैं बहुरि  
 एक एक वृष वृष फूलों विषे असंख्य गुण राखे हैं ताते जब तू एक चित्त होकर उन



का भिवागरे तव महागजकी पूर्ण समर्थताको प्रसिद्ध पहिचाने अपना उपाय  
 बढ़ाईविषे तेरी बुद्धि लीनहो नावे ऐसेही श्रीरामजी ने जो केने उच्चम पदाय  
 हाइविषे उत्पन्नकिये है सो निनहाभी बखान नहीं करम करने जैसे चांदा सो  
 हींग लाल पत्रा आदिक जो मनुष्योंका शृंगारहै सो सबोंकी खानि परने  
 राखी है बहुरि लोहा और तावा और फनी आदिक धातु जो बासना के निर  
 रची है सो इनकी उत्पत्तिका कारण भी पहाड़ है ऐसेही गंधक हस्तार सिंग  
 आदिक जो अनेक गुणदायक पदार्थ हैं सो प्रह भी पहाड़ोंविषे प्रकट सिद्ध  
 पर यह लक्षण जिसको तू सबसे नीचे जानताहै सो सर्व भोजनोंको स्वाद र  
 करके होताहै ताते जिमदेना विषे एक लक्षणही नहोवे तब उमदेशविषे सब  
 व्यजनपसहीन होजाये और लोगोंको रोग बढ़जावे इस फरके कि लक्षण  
 केते रोगों का नाश करना है इमप्रकार तू बिनार करके श्रीरामजीकी दश  
 भलीभानि समझ कि तेरे निमित्त प्रथम तौ जानाप्रकार कि भोजनविषे कौ  
 उनके स्वाद और गुणके निमित्त जलके अणसे लक्षण उत्पन्न कियेहै सो  
 का बपान करना भी अपार है पर इस पृथ्वीके ऊपर अनेक प्रकारके जीव ज  
 जाये है सो यहभी महाभारवर्षरूप है एक उड़ते हैं और एक पोरोंसे पक्षी  
 एक तिर्यग्योनिहै कि उनका चलना उर और उदरके माथ होताहै वही क  
 के दोटो चरणहै केने चार चरणवाले हैं ऐसेही केते चौबीसपाणोंकरके प  
 हैं बहुरि जब तू पक्षियों और पृथ्वीके कीटोंकी धोर स्थानकरके देखेनपरा  
 भी भिन्न भिन्न रूपहै और न्यागि न्योरी भालहै और एक दूसरे से मुन्दा र  
 है जोर जो ना बिनाको अयेवा भी सो सबही दीनी है वही सबको जद  
 अपने आहारका मार्ग दिखायाहै और अपने अपने पुत्रोंकी प्रतिपाल जिये  
 है और अपने घोसला और चरवागवने की बुझरीती है ताते तू मकोइरा  
 और दृष्टि करके देखेना मनपको पहिचानकर अपने आहार को न्योस  
 कटा करताहै और अपने बिल विषे अनामके कणखत्राहै जो मको विषे  
 का अकुर न होये ऐसेही गजकी की और जग तू गजप्रकार देते तब जने कि  
 यह अपने गृहको क्योता गजानी है और अपने मुलके धुकका मुन का  
 है और मन्दिरके कोण दृङ्कर उमा शुकका ताना बाना मानी है बहुरि उ  
 विषे अपने बालकोंको रन्ती है और मानी की पकड़नेहै निमित्त वाग उ

कोने विषे छिपवैश्वी है वहूरि जब माखीको अचानकही पकड़लेनी है तब म्रव ओरसे उमको तारके सूतके साथ लपेटलेनी है इस करके कि किसीप्रकार माखी निकस न जावे ऐसेही माखियों को पकड़कर सदैव अपना उदर पूर्ण करती है वहूरि जब भृगी माखीही की ओर दृष्टि करिये तब देखिये कि यह माखी भी अपना घर कैसा अनूप बनावती है तात्पर्य यह कि महाराजने अपनी दयाकरके कीटों विषे भी ऐसी उत्तम धूम्र और अनुभव राखी है कि उसका वर्णन कुछ नहीं किया जाता जैसे मच्छरको समझायाहै कि शरीरका रुधिरही तेरा आहार है ताते उसका डंक तीक्ष्ण और सूक्ष्महै और भीतरसे खालीरचाहै सो जब शरीर विषे उसी डंकको लगावताहै तब तुरतही रुधिरही को खैचलेता है वहूरि उमको ऐसा चपल बनायाहै कि जब कोई उसको पकड़ाचाहे तब शीघ्रही लविनेवाहै और भागजाताहै वहूरि तुरतही फिर आवताहै ताते जो इममच्छरके बुद्धि और रसना होती तो अपने उत्पन्न करनेहारे स्वामी की ष्ठी स्तुति करता कि सब लोग सुनकर आश्चर्यवान् होते पर जब विचार की दृष्टि के माथ देखिये तब उसकी अवस्थाही महाराजकी महिमाको स्वतः लखावती है सो ऐमे आश्चर्य जीवभी अनतहीने रचे हैं ताते इतनी समर्थनाभी किसी मनुष्य विषे पाई नहीं जाती जो लाखकोटि आश्चर्यों विषे एक आश्चर्यको भी पहिचाने अथवा एक आश्चर्य का वर्णन करे पर तेरे चित्त विषे इतना विचार भी नहीं उपजता कि सुन्दर आकार और उत्तम अगोसहित जो नानाप्रकार के यह जीव है सो सब आप करके उत्पन्न हुयेहैं कि तैने उनको बनायाहै कि तेरा और उनका उत्पन्न करनेहारा एक वही महाराजहै ताते महाराजकी शक्ति बचन से अगोचरहै मो यद्यपि असख्य पदार्थ उसकी महिमाको सर्वदा प्रसिद्ध आपही लखावते हैं पर उसने अपनी माया करके इस मनुष्यके नेत्रोंको मन्द करडारा है जो ऐमे आश्चर्योंको नहीं देखसके और इस जीवकी बुद्धिभी ऐमी अचेत करराखी है कि रचकमात्र भी अदृश रचनाका विचार नहीं करती यद्यपि नेत्रों के माथ नाना प्रकारके कोतुक देखताहै और श्रवणों करके अनेक प्रकारकी स्तुति सुनता है तौभी जिसप्रकार श्रीगणजूकी महिमा जानने योग्यहै तैमे नहीं जानसकता ताते ऐसे अल्पबुद्धि जीवों का सुनना और देखना निम्नन्देह पशुओं की नाहै है फाहेमे कि महाराजने कलम कागज बिना अनेक भाषि के आश्चर्यरूप अस

लिते, हे तिनको नहीं देखकरे जोगे, यह मन्त्रोद्वा ज्योतिषी कीड़ा है, तो तब तू  
 इसी की ओर मनीषणा ध्यानकरे तो उमड़ी, परमार्थ रचनाही सर्वत्र इस  
 प्रकार कहती है कि वे सर्व मनुष्य जब कोई चित्तम पुत्र्य मानपर पूर्ण निमित्त  
 है तब तू उमड़ी देकर निपनेहो की विद्या और चतुर्धाई की भूमीभूमि से  
 मन्त्रादि और विस्मय होता है पर जब तू पूर्य चित्तोपर मनीषी और दृष्टिके  
 तब भगवत् की सम्पूर्ण समर्थना जोग पूर्ण विद्या को पहिचाने इस क्रमके कि  
 यद्यपि मेरा आकार देखो विषे अनिच्छेय है पर मन्त्रानि जन, महामन जोगे  
 एतेही शरीर विषे किमप्रकार गिन जगत्को है अत्रे हृदय उर मीन जोग पांर  
 नेत्र श्रवण स्पर्श श्रोत्र, आहार न पचरका ह्यात्त वोर मन्त्रके मिलने, तब  
 इत्यादि मन्त्री मागर्भा पुत्रको ज्योतिषी है, तब विषे शरीर विषे चरन्ता मनी  
 है और तीन चन्द्र स्थित हिये है मी तीनों तो व्यापन में, भिन्नाइ मन्त्रा है और  
 भरी कटि में समन्द पद्मगर्भा और मेरा जगत् प्रयाग बनाया है सो यद्यपि तू  
 अपने विच विषे ऐसा अनुमान मन्त्रा है कि में, और मन्त्री जीवामे निरोध  
 पर जब विचार करके देखे तब तू निस्मन्देह भोग इहलुका है इमप्रकार कि तू अ-  
 नेक यत्नों के साथ अनाजोंको पोचता और परिपक्व, फलाने चट्टी, इकट्टा करके  
 बुराह रखता है और भरे हृदय विषे गहागनने मन्त्री शक्ति राखी है कि में सुगम  
 क्षेत्र चुरन्ही खरी के मार्ग में उसी मन्त्रा, जसो दृष्टोताह सो, जोगाम, सम्पूर्ण  
 वर्ष का मन्त्रा नही रहता और, मन्त्रागर्भी जीविता, समन्त्रा तू मन्त्री तुम  
 को वर्षा और माह की सभर कुत्र नही होनी तबे तबे अनाज के दे मीजन है  
 और प्रवाह विषे रहता है, और मन्त्रा, मनीषर अचानक ही मन्त्री समन्त्रा  
 साइ देता है तो में आगेही तबने, अनाजको उग्रयनेवाह इमीकरणमें में उ-  
 पने स्वामीका मन्त्रा धन्यवाद करनागताह कि मुफ पूरे वीर्य कृपादृष्टि कीनी  
 है और तुम एमे उत्तम को मोग इहलुका मन्त्रा में ऐमेही, मन्त्रा, स्वामन्त्रा  
 जगत् जेते जीवते सो, जगती शरणाकी मन्त्राके साथ मन्त्री महामन्त्री  
 स्तुति, करने तू चट्टी मन्त्री और मागर्भा के अन्तरी मन्त्री, शरीरमन्त्री, म-  
 त्रिणाका शरीरमन्त्री है पर यह मन्त्रा, अगमना करके दृष्टि की कटापित, मुन्-  
 नेही नहीं चट्टी मन्त्रा विषे जा जाइ मन्त्रा मन्त्रा रनी है सो मन्त्री मन्त्रा  
 में पडे का मन्त्रे विषे मन्त्री मन्त्रा मन्त्रा मन्त्रा मन्त्रा मन्त्रा मन्त्रा मन्त्रा

के अंग हैं और यह धरती भी समुद्र विषे टापूकी नाई है तो चाहिये कि तू समुद्रों की आश्चर्यता का भली प्रकार विचार करे इस कामके कि समुद्रों विषे घरेती से भी विशेष आश्चर्य उत्पन्न किये हैं और जेने जीव इम धरतीपर प्रकट हैं तेते जल में भी उनकी नाई विद्यमान हैं पर जल विषे ऐभेभी अनेक जीव हैं जिनकी नाई धरतीपर जीव उत्पन्न नहीं हुये वहरि समुद्रों विषे एक ऐभे सूक्ष्म जीव रहे हैं जो दृष्टिही नहीं आवते और एक ऐभे स्थूल हैं कि उनकी पीठ को बरेती जानकर जहाजोंके लोग जाइ उतरते हैं सो इमी समुद्रोंकी रचना विषे विद्यावानोंने केतेही ग्रथ रचे हैं ताते इनका भी अपूर्ण विस्तार नहीं कहसक्ते पर तू एकचित्त होकर देख कि समुद्र विषेही ऐसे जीव बनाये हैं कि उनका सीपही शरीर है मो जइ मेघका सग्रय होता है तत्र यह समय उनके चित्तविषे बढ़ाही भाग आगना है ताते समुद्रमे बाहर निकसकर मुखको खोलने हैं वहरि मेघकी बूदको लेकर मुखको मूदलेने हैं और समुद्रके नीचे जाइ गड्ढते हैं मो इसी वृत्तको आते अन्नर धीर्य की नाई पालते हैं वहरि कुछ कालके पीछे वही उत्तम मोती होते हैं सो उनहींका पहिरावा मनुष्य पहरते हैं ऐसैही समुद्रों विषे एक पत्थर होते हैं सो बेलकी नाई उनकी गुच्छा उपजता है और नित्यप्रति बढ़ता जाता है तिससे गृहारूपी फल उत्पन्न होता है वहरि और भी नाना प्रकार के रत्न जो समुद्रों विषे रचे हैं सो वेह भी एक दूसरेसे कौतुक रूप हैं और भिन्न भिन्न गुण रखते हैं ऐसैही समुद्रों विषे जहाजोंका जो चलना है और जिमप्रकार महाराजने जहाजोंके चलनेके निमित्त खैरियों को सीधे और उलटे पवनकी चूम दीनी है और जिमप्रकार नक्षत्र की विद्या उनको सिखाई है जो समुद्रों विषे जहाजोंका चलना तारागण्डल के आश्रय होता है सो यह भी बड़ा आश्चर्य है काहेमे कि उस ठौर विषे जलविना और कुछ चिह्न नहीं सूक्तना और वह जहाज देश देशान्तरों विषे सीधेही चले जाते हैं पर जम एक जलतत्त्वही को भली प्रकार विचार कर देखिने तब इमका रूप और निर्मलता और स्वाद और सम्बन्ध भी आश्चर्यरूप है काहे से कि जेता जला इकट्ठा होता जावे सो किसी प्रकार इप्रका सम्बन्ध ताड़ा नहीं दृष्टता वहरि चर और अचरोंका जीवनरूप है ताते जइ किसीकी टपकि समय यह जल हाथ न लाये तब सर्व सम्पदा देकर भी पानीको पानकिया चाहता है वहरि जत्र वही जल शरीर विषे अंतरुपावे तौ भी सर्व सागरी देकर उम को बाहर निकामा

चाहता है ऐमेही पवन और मेघमण्डल की रचनाभी अद्भुतरूप है जैसे मेघ आकाशविषे जो यह पवन सदैव चलता रहता है वो यहभी समुद्रोंकी नाई प्रवा उद्वलता है और इसका स्वरूप ऐसा है कि नेत्रोंकरके देखा नहीं जाना सो यहभी शरीरधारी जीवों का जीवनरूप है इस करके कि अनाज और जलकी अभिलाषा किसी एक समय विषे होनी है पर जब एक पलकपर्यन्त इस के प्राण रोकैजावें तब निम्नन्देह उसी समय गरने लगता है सो तुमको इस चर्चा की कुछ खबरही नहीं ताते इसका चक्षान करना भी मर्याद से रहित है पर तु मलीमकार विचार करके देख कि इसी मडल विषे वादल और वाफ और गरज और बिजली आदिक कैसे कौतुक बनाये हैं जैसे यह वादल अपना कहीं इकट्टे मिलकर आकाशको आच्छादित कालेने हैं सो इनका उपजना कबू समुद्रोंमे होता है और कबू पहाड़ोंसे उपज आवते हैं अथवा कबू केरन आकाशही मे प्रकट होते हैं ताते जिन स्थानों विषे जलभी अधिक चाह होनी है तदा धैर्य से एक एक वृद्ध वर्षावते हैं सो जिस जिस जीव और जिम जिम सेनी अथवा प नस्पति में जल पहुँचना होता है तब महाराज की आज्ञानुसार वदाही जलको पहुँचावते है और वनस्पतिके फलोंको दरा करते हैं सो उन्हीं फलोंको सब कोई सर्वदा भक्षण करते हैं पर भवेनता कके महाराजकी ऐमी रचनाको कबू नहीं विचार देखने और उसकी सम्पूर्ण दया कोई नहीं पहिँचानता बहुरि जब मबही लोग मिलकर मेघकी वृद्धोको गननेलगें तो किर्णमकार इनका अंत नहीं पा- इसके और एक ऐमे देश है कि उनमें बरफही बग्नता है बहुरि बरफकोभी जीवों के प्रतिपाल के अर्थ बड़ी युक्तिसे बनाया है इसकरके कि जब फेरल भेवों की वर्षाहोवें तब वह जल इकट्टाही बहजारे और खेतियों की पट्टेन न सके ताते महाराज उमी जलको गरदी की प्रचलना के माध बरफ बनाइ लेता है बहुरि उमी बरफको मैवारकरके पहाड़ों विषे रचना है मा ज्यों ज्यों उपजनाकी शत्रु आवती है त्यों त्यों बरी बरफ समय पाइकर चलता है ताते मरने और जलके प्रवाह हाचलने हैं सो देग देगान्नगेपर्यन्त जीवोंके कार्योंको मिल करने हैं तातार्थ यह कि महाराजने इस बरफदी विषे इतना दया प्रकट फीनी है सो ऐमेही सर्वे पदार्थों विषे उपगी दया भरपूर है ताते पृथ्वी और आकाशके जेने अणुदे ग्रा सबही महाराज अपने विरागके अनुसार गुण और प्रयोजनके निमित्त उत्पन्न

किये हैं इसीपर महाराजनेभी कहाहै कि गैने पृथ्वी और आकाशादिक सर्वमृष्टि को अपनी बुद्धकी नेतसाथ उत्पन्न कियाहै पर इस भेदको कोई नहीं जानसका वदुरि तारामण्डल और देवतों और उनके स्थानों को भी ऐसा आश्चर्य रूप बनायाहै कि उनके निकट पृथ्वी और समुद्रोंकी रचना निस्पन्देह तुच्छमात्रहै ताते महाराजने तुम्हको वारवार, यही आज्ञा कीनी है कि तू तारामण्डल और नक्षत्रों का विचार करके मेरी समर्थता को पहिंचाने काहेमे कि जब तू गेगी विचित्ररचनाका विचार न करे और बूझ विना नक्षत्रों और आकाशकी नीलता को देखतारहे तब यह देखना तेरा पशुओंकी नाई होताहै पर तेरी तो ऐसी मद बुद्धि है कि अपने शरीरके आश्चर्यों की ओरही विचारकर नहीं देखता तब आकाश के आश्चर्यों को क्योंकर पहिंचाने ताते जिज्ञासुजन को इस प्रकार प्रमाण है कि शनै शनैः विचार करके अपनी बुद्धिको बढ़ावे प्रथम तो अपने शरीरके आश्चर्योंका विचारकरे वदुरि धरती पर जो नानाप्रकारके जीवहैं तिन के आश्चर्यों को विचारकी दृष्टि सहिन देवे तिससे पीछे वनस्पति और पद्मादोंकी रचना जो अद्भुतरूप है तिनकी ओर भलीप्रकार चित्त देवे वदुरि समुद्रों की रचनाके विचार विषे सावधान होवे इससे उपरान्त भेषमण्डल के कौतुकोंका विचारकरे ऐमेही पुरियों और नक्षत्रों की आश्चर्यताको भलीभाति समझे वदुरि आकाशवन्न जेते पदार्थ हैं सो तिनसे उल्लपित होकर निराकार तत्त्वों का विचारकरे तब ऐसी युक्तिकरके श्रीगणेशजी के स्वरूपको विचारनेका अधिकारी होताहै पर प्रथम रचनाके विचार विषे ग्रहों और नक्षत्रों का विचारना इसप्रकार है कि महाराजने इसब्रह्मांडकी उत्पत्ति और स्थिति और संहारके निमित्त आश्चर्यरूप देवता और ग्रह नक्षत्र रचे हैं और द्वादश रागिको उपजाया है सो सर्वोंकी मूर्ति और रंग और स्वभाव और स्थान भिन्न भिन्न बनाये हैं और भिन्न भिन्न क्रिया विषे वही स्थित किये हैं वदुरि आकाश विषे सर्वोंकी न्यायि न्यायी गतिहै ताते जिन्होंका ऐमा तीक्ष्ण वेगहै जो एकमामविषे सम्पूर्ण आकाशकी प्रदक्षिणा करलेते हैं वदुरि एकवर्षपर्यन्त और एक बारहवर्षपर्यन्त और एकतीस वर्षपर्यन्त ऐमेही एक इममे भी अधिक कालपर्यन्त आकाश की चारों फेर फिर आरते हैं सो इस विद्याकी आश्चर्यता का भी पारवार कुछ नहीं पायाजाता इसकरके कि यद्यपि तू इस धानीही के कौतुकों को देखकर आश्चर्यवान् हो

घातना है ऐसेही पवन और मेघमण्डल की रचनाभी अद्भुतरूप है जैसे मेघ  
 आकाशविषे जो यह पवन सदैव चलना रहताहै सो यहभी मधुओंकी नाई पड़ा  
 उद्वन्तता है और इसका स्वरूप ऐसा है कि नेत्रों कम्के देखा नहीं जाना सो  
 यहभी रागीरधारी जीवों का जीवनरूप है इस करके कि अनाज और जनकी  
 अभिलाषा विभी एक समय विषे होनी है पर जब एक पल परपर्यन्त इस के  
 प्राण गैरेजाये तब निम्नन्तह उमी समय मग्ने लगता है सो तुमको इस घातना  
 की कुछ समझी नहीं ताने इसका वधान करना भी मर्यादा से रहित है पर तू  
 मनीप्रकार विचार करके देख कि इसी मडल विषे वादल और वाफ और गरज  
 और बिजली आदिक कैसे कौतुक बनाये है जैसे यह वादल अचानकही इकट्टे  
 गिनार आकाशको आच्छादित करलेने है सो इनका उपजना कबू मधुओंके  
 होताहै और कबू पहाड़ोंमे उपज आये है अथवा कबू केवल आकाशही मे  
 प्रकट होने है तात जिन स्थानों विषे जलभी अधिक चाह होती है तहाँ धैर्य मे  
 एक एक बूद वर्षावते है सो जिस जिस जीव और जिस जिस वेनी अथवा प  
 नस्पति मे जल पहुँचना होताहै तब महाराज की आज्ञानुसार वहाही जलको  
 पहुँचावते है और वनस्पतिके फलोंको हरा करने है सो उन्ही फलोंको सब कोई  
 सर्वदा भक्षण करते है पर अवेतना कम्के महाराजकी ऐसी रचनाको कबू नहीं  
 विचार देखने और उमकी सम्पूर्ण दया कोई नहीं पहिँचानना बहुरि जब सबही  
 लोग मिलकर गेवकी बूटोंको गननेलगे तो किसीप्रकार इनका अंत नहीं पा-  
 इसके और एक ऐसे देशमें कि उनमें बरफही बरगनाहै बहुरि बरफकोभी जीवों  
 के प्रतिपाला के अर्थ बडी युक्तिमे बनाया है इसकरके कि जब केवल मेघों की  
 वर्षाहोवे तब वह जल डरुटाही वहजावे और सेतियों की पट्टेन न सके ताते म  
 हाराज उमी जनको गरदी की प्रबलताके साथ बरफ बनाइ लेताहै बहुरि उमी  
 बरफको गैरारकरके पहाड़ों विषे रखताहै सो जहाँ जहाँ उप्यताकी शक्त आरती  
 है त्यों त्यों वही बरफ समय पाइकर गलता है ताने रहने और जलपे प्रवाह  
 दावाने है सो देग देगान्नगोपर्यन्त जीवोंके कार्योंको मिट करते है तात्पर्य  
 यह कि महाराजने इस बरफही विषे इतनी दया प्रकट कीनीहै सो ऐसी ही सर्व  
 पदार्थों विषे उमकी दया भरपूर है ताने पूर्वी और आकाशके जेने अणुं सा  
 सबही महाराज अपने विचारके अनुसार गुण और प्रयोजनके निमित्त उत्पन्न

किये हैं इसीपर महाराजनेभी कहाहै कि गैने पृथ्वी और आकाशादिक सर्वसृष्टि को अपनी ब्रूमकी नेतसाथ उत्पन्न कियाहै पर इस भेदको कोई नहीं जानसक्ता बहुरि तारामण्डल और देवतों और उनके स्थानों को भी ऐसा आश्चर्य्य रूप बनायाहै कि उनके निकट पृथ्वी और समुद्रोंकी रचना निस्मन्देह तुच्छमात्रहै ताते महाराजने तुम्हको बाराबर यही आज्ञा मीनी है कि तू तारामण्डल और नक्षत्रों का विचार करके मेरी समर्थना को पहिंचाने काहेमे कि जब तू मेरी विचित्ररचनाका विचार न करे और ब्रूम बिना नक्षत्रों और आकाशकी नीलता को देखतारहे तब यह देखना तेरा पशुओंकी नाई होताहै पर तेरी तो ऐसी मद बुद्धि है कि अपने शरीरके आश्चर्य्यों की ओरही विचारकर नहीं देखता तब आकाश के आश्चर्य्यों को क्योंकर पहिंचाने ताते जिज्ञासुजन को इस प्रकार प्रमाण है कि शनै शनै विचार करके अपनी बुद्धिको बढ़ावे प्रथम तो अपने शरीरके आश्चर्य्योंका विचारकरे बहुरि धरती पर जो नानाप्रकारके जीवहैं तिन के आश्चर्य्यों को विचारकी दृष्टि सहिन देवे तिससे पीछे वनस्पति और पद्म-इोंकी रचना जो अद्भुतरूप है तिनकी ओर भलीप्रकार चित्त देवे बहुरि समुद्रों की रचनाके विचार विषे सावधान होवे इससे उपरान मेघमण्डल के कौतुकोंका विचारकरे ऐमेही पुरियों और नक्षत्रों की आश्चर्य्यनाको भलीभाति समझे बहुरि आकाशवन्न जेते पदार्थ हैं सो तिनसे उल्लिखिन होकर निराकार तत्त्वों को विचारकरे तब ऐसी युक्तिकरके श्रीराघवजी के स्वरूपको विचारनेका अधिकारी होताहै पर प्रथम रचनाके विचार विषे ग्रहों और नक्षत्रों का विचारना इसप्रकार है कि महाराजने इसब्रह्मांडकी उत्पत्ति और स्थिति और महारके निमित्त आश्चर्य्यरूप देवता और ग्रह नक्षत्र रचे हैं और द्वादश रागिको उपजाया है सो सवोंकी मूर्ति और रग और स्वभाव और स्थान भिन्न भिन्न बनाये हैं और भिन्न भिन्न क्रिया विषे वही स्थित किये हैं बहुरि आकाश विषे सवोंकी न्यारी न्यारी गतिहै ताते जिन्होंका ऐमा तीक्ष्ण वेगहै जो एरुगामविषे सम्पूर्ण आकाशकी प्रदक्षिणा करलेते हैं बहुरि एरुवर्षपर्यंत और एक चारहवर्षपर्यन्त और एरुतीस वर्षपर्यंत ऐमेही एक इसमे भी अधिक कालपर्यन्त आकाश की चारों फेर फिर आरते हैं सो इस विद्याकी आश्चर्य्यता का भी पारवार कुछ नहीं पायाजाना इसकरके कि यद्यपि तू इस धनीई के कौतुकों को देखकर आश्चर्यवान् हो



नहि उमम न् इति तु गामभोगेन नै जा राज विने इमे भी अनन्त गुण  
 भावि कौतुक रवे हं नहि मे कि चव मरु सूर्यही क आकाश और इमे म-  
 फाण ही मर्गादद्य विचार नहि तत्र इमीविष्य इगारी बुद्धि यकिन होजागी हे  
 पट्टि जव इम चार्ताका विचार दसिये कि यउ सूर्य एक सश विने केने लक्ष्मी-  
 जने को नाप जागे हं तत्र इम का जानना भी बुद्धि विष ममाय नही सक्य ताते  
 उननाही जानना चादिय हे कि जव इम सूर्य के चने और मर्गाद को सम-  
 भनाही कडिन हे तत्र आकाश विस्वारको कभावर मगभाचने और किम  
 मकार र्णन करिये मों यद्यपि यह आकाश मेमा अपार हे तौमी गदागनने  
 अपनी शक्ति कके तरे नेत्रा विने अणरूपही दिवायाहे तात्पर्य यह कि रज  
 मकार इगारा विचार नके तु श्रीभारत ही बदाई और पूर्ण पेश्वर्य को परि-  
 चाने पर मराग नही शक्ति पेशी गामने कि जनी तत्र भिया इमको महासव  
 तेहपा कीनी मों जव उरीये अनुवार हेम कवन हों तो बहुव कान वीन पाये  
 और पूर्ण न होवे और इगारी बुद्धि विद्यागनों और श्रेयिकों के निरुद्ध हुये यमु  
 ही नही पेशी वेताओं और महापुत्रों को एक महाशक्ति का निरुद्ध तुच्छत्व  
 हे श्रुति विद्यागनों और मर्गादका और श्रुति मगामों और मत्रा विष्णु  
 आश्रित ईश्वरों और मर्गादका जेता जानहे तो आनीतासपके ही मुक्त  
 तिरुद्ध अज्ञानगते उमाकही निरुद्धहे ता गामनाही कपहे जिन्होंने मी  
 जीविकों पती इम कपारी हे और कि मर्गाद मनाकर अज्ञानाका गाम  
 तागतहे पर यउ ना गयादुदि मंजरा दसिये विचारका रर्थ र विषा हे त्र  
 इमका मयाजन गठे र्ण तु मरी ज ताका ममेद विनाग इरुद्धहे  
 तव न् किम यजा के घणी सु-मना को हे ताहे तत्र मार र्णरुद्ध  
 विष्णुपर्यन्त रगही श्रुति कस्त मनेाहे पर सर्वदा मद्राज ० यादी विने  
 वेता निराद हे मों इमका अन्त तुभना कमावेत् आश्रयों गरी मारना  
 मों यह मसामइस्यी वाके ना ततु र्ण मों विचारके कि नियमिने पेशी श्रुती  
 पिशोना विद्यावाहे पट्टि इम मर्गाद ही मरणा लागहे तो निरुद्ध मर्गाद  
 जनायाहे और मजाने का म्यान पहार हे और मों के दस्ये समुद्र नदी हे और  
 र्ण अनादी इग चारी मागरी हे बुद्ध सूर्य और गाममद्रव प्रमाण सम-  
 हे दीपनों हे तु वेने न ही मर्गादका उा विमित्त मों हे कि यउ म

बड़ा है और, तेरे नेत्र-महामन्द हैं तानि, तेरी, दृष्टि, विपे, इसकी बड़ाई और सुन्दरता ममाय नहीं। सकती सो इसका दृष्टान्त, यह है जैसे राजा के धर विपे किसी की है, मकोड़े का धर होवे तत्र उसको खीनी। खाइतिता। और कुछ नहीं मुक्तता ताते। राजमहलकी सुन्दरता और, रान्यकी। बड़ाई को बह, पिपी चिन्ता। चिन्ता नहीं जानती, तैसेही जल तूमी, मकोड़े अर्थव चिंटीकी। अवस्यको प्रो महु आ। चाइता है तव इसी प्रकार शरीरके खोन मानकी चिन्ता विपे-मग्नरहु और जर्मतु माप को मनुं प्या जातता। है तव विचारको। अगीकार करके ज्ञानरूपी वागकी सैर करे और। बुद्धिरूपी नेत्रों की खोल कर, महाराज की विचित्र रत्नम को महिं जान तव श्रीरामजूके स्वरूपकी आरच्यवा विपे सरेन और विस्मित हो जावे जात।

आठवां सर्ग ॥

परोसा और प्रकाश के निकलने ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥  
 ताने ज्ञान तू, कि-मरोसा सर्वगुणों से विरोध है और श्रीरामजूके निकटवर्ति-  
 योंकी अवस्था है पर मरोसेकी विद्याका पहिंचानता महाकठिन है और सूक्ष्म है  
 सो इसके समझनेकी कठिनाई का कारण यह है कि जब यह पुरुष किसी मानुष्य  
 अथवा देवता अथवा और किसी जीव जंतुको श्रीरामविना मगों का कर्ता देखे  
 तब जानिये कि राघवजूकी एकताको उभिये मनी प्रकार नहीं समझा पर जव  
 ऐसेही निश्चय करे कि सब कुछ करना करानहार प्रक महाराज है तब वेर्ग  
 शालों विपे पुण्य पापका जो तर्णत क्रिया है, मो पेटे जानते करक यह त्वचन  
 व्यर्थ होते हैं बहुरि जव सर्वपदार्थों को गुण और अंगगुणों का कारण न देखे  
 तब पदार्थों की पहिंचाननेहारी बुद्धि और समझ सब मिय्या होनी है और जव  
 श्रीराम विना और किसी पदार्थके गुण जगगुण पर मोसावरे तबसे समझे  
 पृथक्ता, अण्डित होती है तब जव बुद्धि और शान्ति और उन्नता मनि मगेम  
 को मली प्रकार समझिये जो किसीकी अण्डितान्ति बोरे तब डम प्रकार भासके  
 समझना महाउत्तम है सो गूढसे गूढ है इसी कारणमे सब कोई डम विद्याका पहि-  
 चान नहीं मक्ता ताने मे प्रथम भगेमेकी विगेमता वर्णन क र्गा चरुि उनका न  
 रूप रहुगा और निगमे उपरान्त भगेमेकी असरा और क तूनि वर्णन रहुगा ॥  
 अथ प्रकट कर्मी स्तुति भगेमेकी ॥ नाये मे चानतु कि गदागनना मनीरा  
 को भरोसा हो रणीय रहा है और धर्मता मग भगमाही वर्णन चिहा है और

योंगी कहाँ कि भयोमेवानेही मेरे प्रियतम है इसीपर महापुरुष ने भी कहाँ कि  
 मैंने ध्यान विषे केने सहस्र पुरुष इसप्रकार देवे जो कष्ट और साधना बिना मुन  
 सेही मुक्तपदको प्राप्तहुये तब मैंने पूछा कि यह पुरुष कौनहै तब आकाशवाणी  
 हुई कि जिन्दोंने भद्र यत्र और दोनेपर प्रतीति नहीं कीनी और सर्वथा श्रीगम  
 पर भयोमा रावाँहें सो यह पुरुष उहाँ है वहूरि योंगी कहाँ कि जिनप्रकार महा  
 गजपर भरोसा करने योग्यहै सो जब तुम ऐमेही प्रतीति गयो तब यत्र विनाही  
 तुम्हारी जीविका तुम को पहुँचहे तैमे पभी नित्यप्रति भूषे उदधावते हैं और  
 रात्रिको तृप्तोकर गयन कराहने है और योंगी कहाँ कि जो पुरुष अपने निज  
 विषे एक श्रीरामहीकी टेक रक्ताहै तिनकी सर्व सम्पदा श्रीरामही होवेँह और  
 अत्रित्यही महाराज उमको आजा और वृष्णासे रहिन जीविका पहुँचावता है  
 वहूरि जो पुरुष भमारके पदार्थोंकी टेक रक्ताहै तब महाराज उसको पदार्थ के  
 आश्रयही छोड़ देताहै इसीपर एक मार्त्ता है कि एक सन्न भयोमेवाने को जब  
 अग्निके कुण्ड विषे सन्नूकमें डारकर डारनभये तब वह मन्त कहनेलगा कि श्री  
 रामजीकी सदागता परममुखादायकहै ताने मुक्तको उमी की आशाहै सो अनहूँ  
 अग्निशुद्धविषे प्राप्त न हुआथा तब मार्त्तामें एक देवताने आयस्य गेने कहा कि  
 तुम कुछ चाहनेहो तब उन्होंने कहा कि मैं तुम्हसे तो कुछ नहीं चाहता तारर्थ  
 यह कि उनमन्तने श्रीरामहीकी सदायक कहाथा सो इसी समयके निर्वाहकाके  
 स्तुनियोग्य हुआ बहुति एक मन्तकी आज्ञावाणी हुईथी कि हे मार्त्ता ! जो  
 पुरुष पक्वचित होकर मेराही भयोमाके तब यद्यपि पृथ्वी आकाश के मध्य जौन  
 उमके गाय भिन्नकरें तोंगी में उमको कुछ खेद नहीं पहुँचने देना इसीपर एक  
 अनुसार्गाने कहाँ कि एकवार विन्हूने मेरे हाथसे डषा तब मेरी माना मे श्री  
 रामइहाँ देकर मुक्तकी कहा कि तू दावको शहर निकान जो इमके ऊपर भद्र  
 पढ़िये तब गेने दूसरे हाथको निकामा और उमीके ऊपर पत्री ने मंत्र पदा इस  
 प्रकारके कि मैंने महापुरुषके चरणों सुनाया कि भयोमेवाने पुरुष दोने और मप्रों  
 पर प्रतीति नहीं रक्ते इसीपर एक मन्त योग्यमानने कहाँ कि मैंने एक तर  
 स्त्री मे प्रयाथा कि तू आदाय फलाने तावता है तब तपस्वी कहना भया कि मैं  
 उम मार्त्ताकी नहीं जानता ताने तू जीविका देनेहो भगवन्तही मे पूछ कि मुक्त  
 की कलामे जीविका देताँहें बहुति एक आज्ञावाँहें निर्वाण प्रदाया कि तुम्हारा

दिन तो भजन विषे व्यतीत करता है ताते तेरी उदरपूर्ति क्योकर होती है तब उसने मुख और दातों की ओर मैनकर कहा कि जिनमे चाकी बनाई है सोई अनाजको लावना है बहुरि एक प्रीतिमान् ने एक सन्न मे पूछाथा कि मैं कौनमे नगरविषे जायहु तत्र उमने कहा कि तू अमुरुनगर विषे जायरह बहुरि उस प्रीतिमान् ने पूछा कि क्या मेरी जीविका क्योकर होवेगी तब सन्नने कहा कि जीवोंके हृदयपर प्रतीतिकी हीनता और समार अत्रिक प्रथलहोरहा है ताते उपदेशको अगीकार नहीं करने ॥ अथ प्रकट करना स्वरूप एकनाका इमनिमित्त कि भरोमेकी नींव एकतामे ऊपरही दृढ़ होती है ॥ ताते जान तू कि भरोमा इस मनुष्यके हृदयही को उत्तम अवस्था है और उत्तमधर्मका फल है सो यद्यपि धर्मके द्वार अनन्तहैं पर भरोसा सबसे भिगेप है सो भरोमा तवहीं दृढ़ होता है जब इस मनुष्यके हृदयविषे दोषकारकी प्रतीति दृढ़होवे एक तो श्रीगमजूकी एकनाको भलीप्रकार समझना और उसीके ऊपर प्रतीति करनी १ बहुरि महाराजको परम कुरालु दयालु और उदार जानना २ सो एकनाका वचन करनाही अमिा है और एकनाकी विद्याभी और सब विद्याओंका अन्न है पा जेनी कुछ एकना भरोसेकी दृढ़ता के निमित्त चाहती है सो मैं निमकाही कुछ वचनकरनाहू ताते जान तू कि एकता चारप्रकारकी है सो एक तो फलरूप है १ और एकफल का रस है २ बहुरि तीसरी एकता त्रचारूप है ३ और चौथी त्वचाकी भी त्वचा है धनाते प्रसिद्ध हुआ कि दोषकारकी एकता फलरूप है और दोषकारकी एकता त्वचावत है जैसे पिस्ते और वादामकी दो त्वचाहैं और दोफल होतेहैं सो एकफल गिरीका नाग है और दूसरा जो गिरीका रस निकसता है सो फल का भी फल और साररूप है ताते प्रथम एकना यह है कि मुख्यमे एक श्रीमीनारागही को सबका मूल और सगर्थ और कर्त्ता कहना और हृदयविषे प्रतीति कुल्लनहीं रखनी सो यह एकना पाखण्डियों की है १ बहुरि दूसरी एकना यह है कि देवादेवी करके हृदय विषे कुछ प्रतीति करनी अथवा पण्डितों की नाई विद्याकी युक्तियोंकरके हृदय विषे प्रतीति रखनी २ बहुरि तीसरी एकना यह है कि हृदयके नेत्रोंके माय प्रत्यय अथे जो सर्वोंका मूल एक श्रीरामही है और गवार्थ की दृष्टिकरके सगर्थ और कर्त्ता चही है और सब पराधीन और उनक प्रेरणगे चलते है सो जब पंमे ज्ञान का प्रकाश इस मनुष्यके हृदय विषे उपजता है तब यह चर्चा उमको प्रसिद्ध दृष्ट

जावनी है, पर यह अवस्था पण्डितों और मसाली नीरवाकी नाई नहीं होनी । हा-  
 देने कि वह प्रतीति वचनोंकी युक्ति और देमात्रेभी करके होनी है और तीसरी  
 एतना केवल हृदयका प्रकाश है और ज्योंका त्यों दर्शन है सो यथार्थ दर्शन  
 और वचनोंकी प्रतीति विषे बड़ा भेद है जैसे कोई पुरुष इम प्रकार प्रतीतिकर कि  
 अमुक पुरुष अपने गृह विषे निस्सन्देह है इम तरह कि मैं अमुक पुरुष मे सु-  
 नाहे सो यह नमारीजीयों की प्रतीतिकी नाई है जो माना पिनामे सुनकर भी  
 गवजकी को एक मानते है बहरि विद्यावानों की प्रतीति ऐसी है जैसे कोई पु-  
 रुष किसी पुरुष के द्वारपर घोड़े और टटलुवकी प्रत्यक्ष देने नय इस युक्ति करके  
 प्रतीतिकर कि वह पुरुषभी निस्सन्देह गृह विषे हावेगा और तीसरी विचारवानों  
 की एतना इम प्रकार है जैसे कोई पुरुष घबाले मनुष्यको प्रस्ट जाड देखे ताने  
 इस नीनप्रकार की प्रतीति विषे बड़ाही भेद है पर यद्यपि यह तीसरी एतना ग-  
 हाउत्तम अवस्था है तौभी नानात्व दृष्टि विषे दूर नहीं होती इस करके कि पुरुष  
 को भिन्न जानना है और सृष्टिको भिन्न जानना है ताने यह भी प्रस्ट है नय  
 बहरि चौथी एतना यह है कि सबको एक ही देने और भिन्नता कुछ न माने सो  
 इम एतना विषे देनका अरु कुछ नहीं रहता ताने सन्तजनों ने इस अवस्था  
 को निरद्वयत्व कहा है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक ज्ञानवान् एतना न एक  
 गणेशान् को मन विषे फिन्ता देखा तब उसमे प्रकृतता भया कि सू देवा मन्त्रिया  
 घनका अटन जाता है तब उम गणेशान् ने कहा कि मैं निगम सृष्टि के माय  
 अटन करके भगोमे को दृढ़ किया जाटनाहू बहरि ज्ञानवान् ने कहा कि तब मेरी  
 सर्व आयुष् उदरार्थि विषे व्यतीनहुई तब निरद्वयत्व पदविषे स्थित कर होवेगा  
 ताने प्रसिद्ध हुआ कि एतना वाग्प्रकार है सो पूर पापण्डितों की एतना वा-  
 दागकी शरित त्वनावत् है सो किसी कार्य मे नहीं आवती ताने उम विषे इतना  
 प्रयोजन है कि इमी त्वना के परिषद होनेके निमित्त मन्त्रात्त गामी जाइये है  
 तेसेही पापण्डितों की एतनासे भी और कुछ गुण नहीं दाखला पर उम वि-  
 इनवाही कारण है कि भर्षशास्त्राते निमको मार नहीं टांके बहुरि इमी जा  
 मायम भी तया होनी है सो सर्वदा गिरी के ऊपर गृही है ताने गिरीतिरं बहुरि  
 प्रोचन नहीं करयो सा यद्यपि इम इमग त्वनाका गुण प्रस्ट है तौभी गिरी के  
 रजदशाप वृद्ध निरन्तरा नहीं रहती तैसेही विचारवानों की एतना और कार्य

काडियों की प्रतीति यद्यपि नरकों की अग्निसे वचावती है तौ भी विचास्रानों के आनन्द से रहित है बहुरि, यद्यपि एक तीसरी एकता वादामों की गिरीवत् अधिक स्वादी है तौ भी जब उसका रस निकास लीजिये तब गिरी भी फोकर रहजाती है तैसेही तीसरी एकता भी टैतदृष्टिसे रहित नहीं होती ताते चौथीही एकता पूर्ण पदहै इसकरके कि चौथे पदवाला सबको एकही देखताहै और एकही मानताहै बहुरि आपभी उसी एकता विषे लीनहोजाताहै और जब तू इस प्रकार प्रश्नकरे कि यह वार्त्ता मेरी समझ में नहीं आती ताते मुझमे खोलकर कहिये कि धरती आकाशादिक जेती कुछ सृष्टि है सो सबही भिन्न रूपहै ताते सबको एकरूप क्योंकर समझिये सो इमका उत्तर यहहै कि पाण्डित्यों और विद्यावानोंकी एकता तो प्रकटही युक्तिकरके समझ सकते हैं पर तीसरी और चौथी एकता का समझना कठिन है सो चौथी एकता भरोसे के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं रखती ताते मैं तीसरी एकताहीको खोलकर कहूंगा इमकरके कि जिसको चौथी एकताकी बूझ प्राप्त न हुईहोवे तिसको बखानकरके सुनानाभी कुछ लाभदायक नहीं होता पर अब इस ठौर विषे जो वचन आनपहुँचा है ताते मैं संक्षेप करके चौथी एकताका भी कुछ बखान करताहू कि यद्यपि बहुत पदार्थ भिन्न भिन्न रूप और भिन्नभिन्न क्रियासयुक्त होने हैं पर विचारवान् परस्पर उनका सम्बन्ध देख कर एकही स्वरूप जानताहै जैसे मनुष्यके शरीर विषे त्वचा मांस अस्थि हाथ पाय आदिक और भी अनेक अंगहोते हैं पर विचारकी दृष्टिकरके उसको मनुष्य एकही कहते हैं ताते मनुष्य को देखनेहारा पुरुष ऐमेही कइता है कि मैंने अमुक पुरुषको देखाहै और उसके अंगोंको स्मरण विषे भी नहीं लावता तैमेही पूर्णज्ञानकी अवस्थाभी इसीप्रकार है कि ज्ञानीपुरुष यथार्थ की दृष्टि विषे सर्व पदार्थों को एक रूपही देखताहै इसकरके कि धरती और आकाश और नक्षत्र आदिक जेती कुछ सृष्टिहै सो एकही शरीरकी नाई है और शरीरके अंगों की नाई सर्व पदार्थ परस्पर सम्बन्ध रखते हैं पर इन सर्व पदार्थोंकी एकताभी एक भाव करके समझनी योग्यहै और सर्व प्रकार एकता नहीं होमती जैसे शरीरके सर्व कर्मों विषे एक जीवही की मत्ता वर्त्तमानहै पर शरीरको सर्व जीवके साथ एकता नहीं कहीजाती सो इम गेदको मन्दबुद्धि मनुष्य समझ नहींमके जैसे भगवत्नेभी कहाहै कि मनुष्यको अपने शरीरकी नाई बनायाहै र्मादाग्य से

मे इम पवनका गुणही मन्वावाहनाहं क्रियेभे चरनीं विने प्रारगुद्धि जीर्णका  
 मन उट्टा अभिक्र दोनाना हे नाम नीमग प्रकता नो भोगे मी हृद् नीव हे  
 तिमता मगभक्ता इमप्रकारे हि मृत्यु चन्ध्या नां पवन वादन जादिक जेत  
 पदार्थ हे नव गण पुत्रके अधीनहं नसे नितागिके हाथे कन्म पग गिनटे कि  
 आप करके हलनेके योग्य हृद् नहीं नांने जैसे क तम ता हलना पनना प्रार  
 करके जानना अयोग्यहे तेमही कि ती तार्थ अथवा किनी मनुष्यकी पन्नांम  
 मी आप करके जानना अयोग्यहे इम करके कि मनुष्य तो अपने आप करके  
 महाअर्थन और प्रेमदृशा र्तताहं जैसे मेने पीछे भी कृद् र्थन क्रियाहे कि  
 नीविका कर्म पनके आधारहे और वा चाहके तीन हे वदृष्टि चाहका उद-  
 जना और न उपजना तीरक अधीन नहीं नाम प्रभिद्धृशा कि यह मनुष्य  
 केवल पगधीनहे पर तू इमार्त्ता को तव मगभेगा जब मनुष्य के र्थ ररतुवों  
 को गिन गिन करके कहिये सो मवही र्थ तीन प्रकारके प्रकट्टे प्रण तोम  
 भावके कर्म हे जैसे नदी जो मनुष्यको दृशय लेतीहे सो यह उतका स्वभाविक  
 कर्म गदाप्रता हे तेमही मनुष्य का भी यह आदि स्वभाव हे कि जब जन भिने  
 चरण राते तब नीचेकी को चलाजाताहे प्रकृति दृमरा र्थ अग्यही गदाप्रताहे  
 जेमे प्रवासांन निकमना सा ररातभी यद्यपि यद्वायंयुक्त विरुमने हे तो भी  
 अपने वनकरके राते नहीं जातहे र वदृष्टि तीमो कर्म इच्छासगी हे जेमे वा  
 लना और चलाग अर्थ यह कि जब वाहे तबनोपना रनात न होत ३ पगभा-  
 भासिनी र्थ तो प्रकट्टी पगधीन गगका जाताहे कि मनुष्य ता हलना और  
 नदीका उदाप्रता इन्तानोंभी ताहता नहीं राना वदृष्टि जर भलीपकार विता  
 करके हेभिये तव जाग्रयकरक मी पग गिनहे इन्तानो कि प्रामों क सिकमने  
 के विने इम जीतभी मेमी हृद् श्रद्धा उत्तम पीली हे धि प्रारिमी प्रता रेंहे  
 नहीं जामस्त जेमे दिगी मनुष्यके नेत्रापी और सुई मग्गुव करके कोई इाहे  
 तव यद्यपि एमे चाहे हि मेमेत्र गुनहे नोभी अचर्यही सुंदे जाये हे इमकरके  
 कि भगवतो नेत्रों विने मेमेती हृद् श्रद्धा मभी हे नांने इग दोना प्रफारें र्थों  
 विने इम मनुष्यकी पगधीनता प्रकट्टे वदृष्टि तीमो नो इच्छासारीकर्मों जेमे  
 बोधना और चन्मना सो इत विने पगधीनता मगभक्ति ती ररिनेहे इमक हे  
 हि जर चाहे तवही मान्वाचननाहे ताने इमको पगधीन पत्तो कहिये गा इका

उत्तर यह है कि चाह तबहीं उत्पन्न हानीते जा प्रथम बुद्धि आज्ञाकरे और जिम  
 कर्म विषे अधिक भलाई दिखोये तब शीघ्र ही उमविषे जाह उपजती है नरहि  
 इन्द्रिया हलने लगती है जैसे मुईको दावकर तुम्हारा नेत्र मून्जाते हैं सो नेत्रोंका  
 मूदना बुद्धि विषमर्वना मना भामताहै ताते यह वार्त्ता अपि निश्चय होगई  
 है इसीकारणमे इम कर्मकानाम आश्रयकर कहाहै कि इमेवात विषे विचारनेकी  
 अपेक्षा कुछ नहीं होती जैसे कोई पुरुष किमीका नाटी लेकर गानेलेगे तब तु-  
 रतही उसमे भागाचाहताहै पर जब उम को मन्दिरे ऊपर रह पुरुष मरनाहाये तब  
 लाठीके भयकरके ऊच मन्दिम छ लानहीं मरना और तब मन्दिरी उचाई थोई  
 होवे तब तुम्हरी नीचे कूद पड़नाहै तात्पर्य यह कि तब लाठीका दृक्ता अपि  
 देखताहै तब नीचे कूदनाहै और जब कूदनेकी चाहता हुआ अपि देखताहै तब  
 उसकेपाव ऊपरही बंद होइरहते है ताते प्रसिद्धहुआ कि इन्द्रिया श्रद्धाक अधीन  
 है और श्रद्धा बुद्धिकी आज्ञाके वशीकारहै इसीकारणसे जब बुद्धिकरके किमी  
 कर्मविषे भलाई देखताहै तब तुरतही उमकर्मकी श्रद्धा उपज आवती है अन्यथा  
 नहीं उपजती जैसे बहुतसे मनुष्य अपने पास सर्वशस्त्र रखते है तोभी अपने  
 आपको मार कोई नहींसकता ताते जान तू कि यद्यपि श्रद्धाबुद्धिके अंगी  
 पर जब भलीभांति देखिये तब बुद्धिभी पराधीनहै इसकरके कि बुद्धिरूपी दर्पण  
 है सो तिम विष भलाई और बुराई स्वाभाविकही मम आवती है इसीकारणमे  
 अपना मरना नला नहीं भामता पर जबपेमेही पीड़ाकरके दू बीहोवे तब मरना  
 भीसुगमभास आवताहै तात इमकर्मको इच्छाचारा कहतेहै सो ऐसीकरतुतिबुद्धि  
 की आज्ञाके अधीन होतीहै पर जब सूक्ष्म दृष्टिकरके देखिये तब बुद्धिका प्रति-  
 चानना और श्वामाका निकामना और नतीविषे दृक्ता आदि जो तीनों कर्म  
 है सो सवही स्वभावके कर्म है स्वभावका अर्थ यहहै कि स्वत प्रकृतिकर मिद्ध  
 होते है ताते नदी विषे दृक्ताभी मनुष्यकी स्वत प्रकृति है और श्वासोंका नि-  
 कामनाभी इसका स्वत स्वभावहै तैमेही बुद्धिरूपी दर्पण विषेभी भलाई बुराई  
 का भामना बुद्धिकी स्वत प्रकृतिहै ऐसेही सर्वपदार्थोंको मन्वन्य परस्पर भिन्ना  
 हुआ है जैसे जनीग विषे कुण्डिया होनी है सो यह पदार्थ भी अगणितहै ताते  
 सबोंका बखान नहीं किया जाता पर इम मनुष्य विषे बुद्धिका यत्न जो राखो  
 सो यहभी जजीगी नाई एक कुण्डीवतहै इसीकारणमे यह मनुष्य बुद्धि और



बन्दे स्थान विष जायते कर्ना जाननाहे पर नोभी यह बड़ी मुश्किल है राम  
 कि इस मनुष्य का और बुद्धि बलता इनकी सम्बन्ध है कि श्रीगणेश ने इस  
 मनुष्यको बुद्धि बलता स्थान बनाया है जैसे वृक्षको दलना था स्थान बनाया है  
 पर वृक्षका जो दलनाहे सो बुद्धि और श्रद्धा और वक्तव्य नहीं होता ताने वृक्ष  
 को मनुष्यको नाई नहीं करत पर महाराजके मत विषे वृक्ष और मनुष्य दोनों  
 पानीन है इस करके कि महाराज का बल मनुष्यकी नाई पानीन इदाविन्  
 नहीं ताने प्रसिद्ध हुआ कि मनुष्य वृक्षकी नाई जड़ भी नहीं और श्रीगणेश  
 की नाई स्थान भी नहीं ताने मनुष्य को दोनोंका मध्य रहते तात्पर्य यह  
 कि यद्यपि यह मनुष्य कर्मकर्ता दृष्ट आवनाहे नोभी इसकी बुद्धि और श्रद्धा  
 अपने आश्रय नहीं बहुरि जब तू इसप्रकार प्रश्न करे कि तू इसके दाय कुल  
 नहीं तब पाप पुण्य किस निमित्त है और मन्त्रजनों का आयना किम निमित्त  
 है और धर्मशास्त्र किमनिमित्त है तब इनका उत्तर यहते जानतू कि एकना यह  
 शास्त्रोंके धीन है और शास्त्र एकना विषे है इसके बीच अप्यबुद्धि बहुरि बहुरि  
 है और इस बहुरि से रही बननाहे जो पापिने ऊपर चले और जो पानीन तब  
 नोसके तो तेरना जाने और बहुरि इसप्रकार भी बंधे है जो जाने को इसनदी  
 विषे न डारें तब हमने नहीं और अल्पबुद्धि इसमेदको जानने नहीं उनपर क्या  
 करनी यहीहे कि उनको फिरसे गनिये तब यह भवानक न हों और जो प-  
 कनाही नहीं विषे बहुरि तिनगे बहुरि ऐसे है कि यह तेरना नहीं जानते और  
 मर्मकर्मों ऐसी नहीं जो तेरना मीन और अपने अभिमान करके किसीमे पूं  
 जाभी नहीं ताने हषनाते हैं और ऐसे जानते हैं कि हमारे दाय कुल नहीं मन  
 कुल रही करवाहेजिमकेलेगमें बुराई निभी है सो यककर उनसे उदाहर नहीं  
 मरना और जिसके लक्षण भलाई निभी है सो यककाने ही उमरा। अथवा कुल  
 नहीं होनी सो इसप्रकार मर्मकर्म मधी सुनते और अज्ञानता के और विचार  
 इसकाहे और मार्गमें भ्रमनाहे और तात्पर्य इसका परिचानना मेना नहीं जो  
 गोपियों विषे बवान करिये पर बनन जो यही वाय बहुरि का बर इनका कदवा  
 प्रमाणहे जानतू कि यह जो तेने कहा कि पुण्य जो पाप किम निमित्त है कि-  
 सका उत्तर यहते जानतू कि पुण्य पाप इस निमित्त नहीं कि जैसे एक कर्मवि  
 किया और किसीको तेरे ऊपर क्रोध नाया तब इस कर्म के अनुसार सुकरो

उसने दग्ध दिया अथवा, तेरे ऊपर प्रसन्न हुआ, और प्रमत्तनाके अनुसार-कृपा करी सो इनदोनों बातों से भगवत् न्यारा है पर ज्यों वाई विषं कफ करके शरीर विषे रोग बढ़े सो जब औषध किया और औषध का बल पाया तब अरोगता उत्पन्नमई तैसे जब काम काधने तेरे ऊपर बलपाया और तू उनके अधीत हुआ तिसकरके अग्नि उत्पन्न हुई सो उसने तेरे हृदयविषे प्रवेशकिया सो तेरे विनाश का कारण है सो इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि जिसको धको तैने अपने ऊपर प्रवृत्त किया है सो अग्निरूप है और जिस प्रकार बुद्धि के प्रकाशकी प्रवृत्तता काम क्रोधकी अग्नि को निवृत्त करदेती है तैसेही, धर्मका प्रकाश नरककी अग्नि को निवृत्त करता है इसी प्रकार अग्नि नरकके प्रीतिमानके धर्मका प्रकाश, सो पुकार करती है और भाग जाती है जैसे मच्छर पवनसे भाग जाता है इसी प्रकार काम क्रोधादिक की अग्नि बुद्धि के प्रकाश सो भाग जाती है तात्पर्य यह कि तेरे ही विषे भला बुरा उत्पन्न होता है और तू उसीके अनुसार पड़ा भोगता है इसी प्रकार भगवत्ने भी कहा है कि तुम्हारे कर्मानुसार सुख दुःख होता है सो नरककी अग्नि का बीज काम और क्रोध है सो तेरे अन्तःकरण विषे होता है सो, जब तेरे प्रति साक्षात्कार होता तब इस बातको प्रकट जानता जैसे तू विषको भगीकार करे तब तुम्हको रोग उत्पन्न होता है सो किसीके क्रोध करके तेरा विनाश नहीं हुआ तैसे ही पापकर्म और भोग बुद्धि को नाश करते हैं सो बुद्धिका नाश तेरी भागों की हीनताका कारण है सो यह हृदयकी अग्नि है बाहरकी स्थूल अग्नि नहीं जैसे चुबक पत्थर लोहेको खेंच लेता है सो किसीके क्रोध करके नहीं तैसे ही बुद्धि का नाश की करतुति इसी प्रकार समझ लीजिये वदुरि खोलने करके विस्तार होता है यह उत्तर तेरे प्रश्नका है कि पाप पुण्य किस निमित्त है अथ इमका उत्तर सुन जो तैने पूछा था कि धर्मशास्त्र किम निमित्त है और सन्नजनों का आवना किस निमित्त है सो तिसका उत्तर यह है कि तू जान कि यह भी सर्वसमर्थ महाराजकी कृपाकी प्रवृत्तता और जवरदस्ती है जो बखम के जीरों को शुभमार्ग में लगाय कर नरमसे बचाय रखने हैं और सुखविषे प्रवेश करावते हैं इसी प्रकार भगवत्ने भी कहा है कि दग्ध करके तुम्हारी रक्षा करी गई है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि पतंगकी नाईं तुम आपको अग्नि विषे डारने हो और मैं तुमको पकड़पकड़ रखता हूँ मो यद् जजीव भगवत्की है निमकी एरुकुडी सतजनों के

वचन है नानि वचनं के अनुवाक्येति विषय मन्त्रः तत्र ही ति हे वि । मन्त्रे  
 मार्षं कृषार्षं पठित्वा नासाहे मो उन्नवचना हे भवा कर्म सुष्टि ही ताई  
 उतर चली । तब तुम हा यह मन्त्रक पानहोनी हे वि परभावनार्थे विषय वचना  
 इममपारहे सायौव विषये तब इतर त त्वा हृदयविषे पालाए पागो वचने  
 की श्रद्धा उत्पन्न चली हे मो इम श्रद्धा परक नु कानूनि विषय मा पात हो । हे  
 कथांकि कानूनि श्रद्धाके श्रद्धा हे मो इत नभीर गं वी उतर तु कल नरक मे  
 वनायार उन्न लो रविणं उन्नम प्रोग कगवने निमरा हृदा । य हे वि गना  
 अजापानकहे और दादिन जो हर्ग दूरे और शानतिवि मिदु और गदाहे मो  
 अजापान गदेके जागे मडाओर लाठी हुनाइवाहे ना थाय मोर पाय के नि कट  
 जाये और गदा और मिदुमे इनकी म हायेये सा मन्नजोहा जायता इननि  
 विगदुआहे और गद ना तुान मन्त्रके पाया कि जिनक लंभविषे सुगई विनी  
 हे तब इमहा पुत्रार्थे काना चर्च हे मो यः वचन मन्त्रपाए तो मन्त्रहे और  
 दूरे प्रजार विषयोहे मो यदवचन तेगी नगजारहा काण्ये मो गद विदु उभरा  
 हे विषय मन्त्रहीन होनाहे मो निमके दृष्ट्यांविषे पेवी मन्त्रकजाय उत्पन्नहो  
 नी हे जो भवेकर्म विषय उत्पन्न नहीं कता जेमे जो कोई मनी । ही शोरा का नहीं  
 तुनता जेमे जिन पुकाही च्यु अथोमने मन्त्र निनी हे तः पने मन्त्रवचने  
 म्त्र जब मो कर्मविषे श्रवणरत मरना नि ताहे मन्त्रकहा मो जन पावने एके  
 कथा नामहोयेगा नाने भावन नही पाया मो मन्त्रहावाहे और विमर मार्य  
 मे विमनता की आज्ञादुई हे तब उमरे दृश्य विषे यही जाय उपासी हे वि  
 पेनी धोकेन करके मुकसे क्वा नामहावेगा ता । वा । वी शोरा मो इ मीर  
 क विमनही रहनाहे और निमके लन विषे उन्न मन्त्र नि ही हे तः व्यादाए  
 और मनी और भोजन विषे उत्पन्न कताहे ताने आ । जाया । हे जो मन्त्रव  
 न विषा हे सा उप र नहीं विषा मो मन्त्र न जेमे जेमे कथ्ये जिन विमि  
 उत्पन्न विषे हे मो उमी । सम्बन्ध कर मिदुलेनि हे उपा नहीं होइ इमीम  
 कमान ने भी कदा हे कि तुम जागे दृश्य के मन्त्राए और कानूनी की को  
 लो । कि विममन्त्र चर्च हे हे इपी कानूनि हे अनुवाक्य वचनी मन्त्रे हृदय  
 नहीं पावोये जो वचनो विषा उदने की जमिपात जान उपाये तब मन्त्र  
 वि लो भागी वः मन्त्र हे तः जब विदु मन्त्रे तब मन्त्र मन्त्रे और तः मो

खेखमें, मूर्खता लिखी, है तब तेरे हृदयविषे इसप्रकार आन उपजंती है कि विद्या करके मुझको ज्ञयालाभदेवेगा, ताते अपनी मूर्खता और अज्ञानकी पत्रीवांचले तात्पर्य यह कि काम परलोकका भी इमी प्रकारहै जैसे इस ससारके कार्य हैं जब इसप्रकार समझा तब यह तीनोंसशय तेरे निवृत्तहोते हैं और एकता ठहरजाती है तब जानाजाताहै कि बीज, बुद्धि और शास्त्र और एकताविषे भेद कुछ नहीं पर जब तेरे बुद्धि के नेत्रस्रजों सो इससे अधिक इसग्रन्थ विषे। इसवाचीका खोलना प्रमाण नहीं। अथ अरुट, करना, धर्म के दूसरे लक्षण का जो भरोसे की नींवहै। ताते जातव कि पीछे जो कहाहै कि भरोसा दो निश्चयका फलहै एक एकता श्रीरामजी की सो तिसका निर्णय आगे किया गया और दूसरा यह कि तू यह निश्चय लावे कि उत्पन्न करनेद्वारा वही एक महाराजहै और सब उसीके आश्रयहै और सब पर दयालु और कृपालु और जाननेद्वारा है दया और कृपा उसकी सर्वजीव नींटी और मन्त्रपर्यन्त पर अपारहै तदा इस मनुष्यकी क्या वार्ता है सीतारामजी की दया-माता और पिता जैसे पुत्रपर करते हैं तिससे भी अधिकहै इसी पर महापुरुषते भी कहाहै कि सीतारामजी की दया-माता और पिता से भी अधिकहै और यों भी जानतु कि यहजगत् और इमजगत् त्रिषे जो उत्पन्न हुयेहैं सो सबको पूर्ण और सुन्दर और अपने अनुभव करके ऐसा महाराजने बना याहै जो और प्रकार न बनताथा अर्थात् जो जैसे बनाया सो उमी प्रकार चाहिये था और यों भी जान कि महाराज ने अपनी दयाकरके कुछ दया नहीं राखा जैसे उत्पन्न कियाहै तैसेही बननाथा जो सर्व बुद्धिमानों की बुद्धि बढकर फहै और विचारकरे कि इस जगत् विषे एकवाल और मन्त्र के पक्ष समान इसप्रकार न होना चाहियेथा जिसप्रकार अब है अर्थात् कुछ बृद्ध अथवा घाट होवा अथवा सुन्दर अथवा बुराहोता तो ऐसी कोई वस्तु नहीं पावेंगे और जानेंगे कि जैसे बनना चाहिये था तैसाही है जो वस्तु कुरूपहै सो पूर्णता उसकी कुरूपता विषेही है जो कुरूप नहोती तो खोटी होती, बहुरि रचनाकी विचित्रता न रहती काहे से कि जो कुरूपता न होती तब सुन्दरता की विशेषता न होती और सुन्दरता का स्वाद भी किसीको न आवता और जो नीचता न होती तब सम्पूर्णता न होती तब सम्पूर्णता अपनी का स्वाद न आवता सो पूर्ण और नीच एक दूसरेकी अपेक्षाकरके जानाजाताहै जैसे पिता न होना तब पुत्र न होना सो

एक दूसरे के संबंध पर जाना जाता है जब हमे न होवे तब भेद और धुंधले  
 न रहे यह धार्मिक जगत् के लोगों में सुख भली है पर यह बोका भी जाना कि श्री  
 कृष्ण महाराज ने किया गो मधु डि इर्गा में है हमे फुल धन की गो मधु डि  
 महाराज ने किया है जो फुल जगत् विभे भोग और अंगीनता और पाप और  
 मनमुपता और नाश होना और यशना और देव जो फुल महाराज ने किया है  
 तो उसी विषे प्रमोजन था यदुमि जा महाराज ने किया सो प्रयो जर्न विभे न हो  
 किया निरस हो निर्जन उत्पन्न किया सो गवाई उनकी उभी में थी और जो  
 उमकी धन प्राप्त होना तब उम विषे उम ही टागि दाती और जिसकी धनवान  
 किया है सो उमकी गवाई इर्गा विषे भी पर यह भी एक दिग्या प्रकृता के दारिद्र्य  
 ताई अपा रहे सो हम विषे बहुत दुखे है तो इन गेदक। मौलना भी प्रमाण नदी  
 जो हमका निर्णय करिये तब बहुत विचार होना है पर तासरी इर्गा के भेद है कि  
 मनुष्यको हमपर प्रतीति चाहिये कि गोमा इमीपर मिच्छ होत है। अथ गये  
 परना रूप भरीसेता ॥ ताने जानत कि गोमा अवस्था हृदयकी है सो भरीमा  
 फल दो धर्म का है एक श्रीगमत्की एकना पर प्रतीति हृदय करती और हृदय  
 हनेकी देवाका नियंत्रण तावना इनतनों पर हृदय विचारम रूपने का फल ग  
 रोमा है और यह विरयाम हृदयकी एक उत्तम अवस्था है किती ही गति यह कि  
 कोसे कोई अपना पार्थी प्रीति बुद्धिमान की गोपदना है तब उमपर प्रतीति र  
 तो है तैमही महाराज पर प्रतीति यह चाहिये कि अपनी जीविका पर हृदय न रावे  
 जब कोई अकष्ट संवत् जीविका ही न देवे तब हृदय विषे भो फवान् न होवे हृदय  
 तीति श्रीगोपदनावे कि गोरी जीविका श्रीततागम विरभजी पदु धीविगो सो  
 इमिका हेमन्त यह कि जैसे किगी मनुष्यने चक्रकारके इमपर मात्रता मा प्रु  
 दावाकिया होने तब हमने किया सुदिभन् को अपना धर्मोप किया जो राम  
 केलवाले की हृदय पर जगत् जिन तथय उम पर जिनमें पाये जति अर्थ उमपर प्रतीति  
 कर्मता है और निर्गम होना है सा भी तथय गये एक उम दावेवाले के रूप और  
 इमके दवान ता जाना दोवे १ हृदय कर्मता होवे और नापानय कि विरभजीकी  
 है कि जो धार्मिक जने ना भनी परमा विरभजीक यह २ तीमता के मर्ग उम  
 होवे भना चाहने दारा होवे ३ उम यह मौल लयय उम विषे मनुष्य जानना है म  
 उमपर हृदय तीति कर्मता है पर तपनी ममानय चतुर्गाई द्य कर्मता है श्रीरभ

जिसने जाना कि श्रीसीताराम जी के आश्रय सब कुछ ही है और कुर्तों और  
 कोई दूसरा नहीं, गृहिर ज्ञानकारी और बल भी सपूर्ण उन विषे प्रायजाता है और  
 दयालु, क्षालु भी उनके समान, कोई नहीं तब हृदय करके श्रीसीतारामजी परी  
 दृढ़ प्रतीति करता है तब प्रतीति चतुराई और अस्यांतप छोड़ देता है और इस  
 प्रकार जानती है कि नीति का मेरी जितनी श्रीरामजी ने लिखी है सो समय पर्याप्त  
 कर मुझको प्राप्त होवेगी और और भी जो मेरे कार्य हैं सो महाराज की दया  
 के साथ पूर्ण होवेगी सो प्रतीति हृदय विषे यह प्रतीति महाराज पर रखता है पर  
 तो भी श्रीरामजी के प्रेम से जान नहीं होता कि जो दृढ़ प्रतीति करके और तब करके  
 श्रीरामजी को ऐसा समर्थ और दयालु जान करानि भ्रम होवे कुछ सशय हृदय विषे  
 आन हीती है सो इसके बल की हीनता है जैसे कोई मृतक मनुष्य को देख कर  
 उसके साथ अकेली प्राप्त नहीं करता यद्यपि जानता है कि यह जड़ है पर तो  
 भी भ्रम करता है तो मेरी भरोसवान को हृदय पर प्रतीति भी दृढ़ होवे और बल  
 करती विषे भी दृढ़ होवे तब विषे पता हृदय की दूरवाले और हृदय सुखी होवे जब  
 लगा प्रतीति और सुख सम्पूर्ण न होवे तब लग भरोसवान सपूर्ण नहीं होता सो  
 अर्थ भरोसे का यह है कि प्रतीति श्रीसीतारामजी पर सर्व कार्यों विषे होवे जैसे  
 एक सन्त दृढ़ भरोसवान हमे है सो उन्होंने कहा है कि हे महाराज मुझको  
 निश्चय तो है पर हृदय भी भ्रम प्रामपावे सो प्रथम हृदय विषे विश्राम इन्द्रियों और  
 सकल्प के अधीन होता है पर जब दृढ़ हो कर अन्तर साक्षात् कि होता है तब  
 सशय कोई नहीं रहता सदसही हृदय विषे था भी होता है ॥ अथ गफ्ट करने  
 पर भरोसे के ज्ञाने जान कि भरोसा तीन प्रकार का है प्रथम यह कि जैसे  
 किसीने अपने दावेवाले के अर्थ अपना वकील किया सो वह उस वकील पर  
 विश्राम करता है और निर्भय होता है और दूसरा भरोसा यह है जैसे बालक  
 की भरोसा होती है कि जो कुछ उस बालक को प्राप्त होता है सो माता के बिना  
 इससे नहीं जानता जब भ्रम उसको लगती है तो भी माता की पुकारता है और  
 और जो दया संगती है तो भी माता भी और जानता है मोटा भरोसा प्रेम है जो  
 अपने तारोभेकी भी स्वर्ण नहीं करता काहेसे कि वनी माता विषे जीवन रखा है  
 और प्रथम भरोसेवाले को अपनी लक्ष्य रही है और यत्न के अर्थ को मंगि  
 पर रक्ता है और तीसरा भरोसा यह है कि अर्थमा उसकी मृतक की जान है

तीहे सो कृत्क आपका कुछ नहीं करना उसकी क्रिया और जीव करने हैं ऐसे  
 यह सीसरे गोसे बान्ना अपने को कृत्क जानताहै और श्रीराजवल्की भाज्ञा  
 जिसविधि उगझो, बलावती हैं निसर्कविधि चलताहै और अपनी कुला उसको  
 कुछ नहीं रहती सो जबकोई कार्य उमकी खानहोवे तब याचना भी महागज  
 से कुछ नहीं करता सो उन पालककी नाई नहीं जो अवसर विषे भाताको  
 बुलावताहै सो यह पेश बालककी नाई है जैसे बालक जाने कि जब में माताको  
 न बुलाऊं तो भी गोरेपाम पाप आवेगी तैमे यह गोमेवाला तीमरा जानताहै  
 कि जब में याचना न करू तो भी श्रीजानकीनाप सन्धप्रकार गेरां प्रतिपाल  
 करेगे इस तीमरे भगमे विषे अपना पुरुषार्थ कुछ नहीं और प्रथम भेमे कि  
 अपना पुरुषार्थ होनाहै जैसे वकील के गुणको और स्वभावको जानताहै तैसेही  
 कार्य और पदार्थों में यत्न करके लगताहै तैमे यह जानता है कि जपनग में  
 वकील के समीप न जाऊगा तबनग यह वकील मेरे निमित्त न करेगा तब  
 अवश्यही उसके निकट जाताहै तिसमे पीले यह निन्ता करता है कि देखिये  
 यह वकील कैसे करताहै तैमेही यह प्रथम गोमेवाला व्यवहार और मेती जा  
 दिक किया करताहै तब यह जानताहै कि यह भी संयोग श्रीसीताराम महा  
 राजने बनाये हैं और बुद्धि भी महाराजने दीनी है ताने इसका त्यागनहीं करना  
 पर भोगवान् कदावनाहै क्योंकि लेनी आदिक व्यवहार जो कुछ करताहै निम  
 विषे यों जानताहै, कि जब महाराजचाहेगे तब रामशेवंगा और जवन चाहेगे  
 तब न होवेगा जो कुछ करूँति यह करताहै सो सबही श्रीसीतारामजीकी ओरसे  
 जानताहै सो इनीपर भवजनोंने कहाहै कि सब महाराज के अधीनहै और तन  
 की प्रेरणाविना कुछ नहींहोना और बलभी महाराजकाहै सो इसवचनका तात्पर्य  
 यह है कि भोगवान् अपनी बुद्धि और बल श्रीसीतारामजी के अधीन जानता  
 है अपने आशय कुछनहीं जानना सो जब कूल पदार्थों से इसकी बुद्धि  
 तब श्रीराज बिना और किनीको कुछ नहीं जानवा-तब यह भोगवान् होताहै  
 पर उद्यम पर भोगमे का यह है जैसे एक सन्तमें किसी जिज्ञासुने पूछाया कि  
 भोग्या क्या है तब उन्होंने कहा कि तुमको कैसे मातनाहै तब उत जिज्ञासुने  
 कहा कि आगे भोगजनोंने कहा है कि जो इसके दहिने और बाएँ ओर गर्वाहो  
 तोभी तब स पावे तब उनमन्त्रने कहा कि यह बात तो तुम्हें पताहै और तब

सर्वे नरकियोंको नरकविषे डूँधी देखे और स्वर्गविषे स्वर्गवालोंको सुखी देखे तब  
 इसके हृदयविषे कुछ भेद फुरे तो वह भरोसवान् नहीं होता सो तात्पर्य यह कि  
 भरोसवान् को ऐसे जानना प्रमाण है कि जो कुछ श्रीराम करते सोई पूरा है अ  
 पनी चिन्तवन कोई न फुरे सो यह भरोसा महाउत्तम है और एक भरोसवान्  
 सर्पकी बाँधीपर चरण रखकर शयनकर रहा था सो उसके हृदयविषे सर्पको भय  
 कुछ न था श्रीसीतारामकी ओरसे सबकुछ जानता था सो यह भरोसा उस जि  
 ज्ञासुके बचनका है पर जैसा भरोसा उन ज्ञानवान् सन्ने कहै सो बहुत दुर्लभ  
 है सो उसउत्तम भरोसवान्को ऐसे निश्चय होता है कि महाराज दयालु कृपालु  
 और सर्वज्ञ हैं और न्याय करनेहारो हैं ताते नरकका दुःख और स्वर्गका सुखदेख  
 कर उसके हृदय विषे कुछ भेद नहीं फुरता वह जानता है कि रामजीने सब कुछ  
 पूरा किया है ॥ अथ प्रकट करना करतूति भरोसवानों का ॥ ताते जानतु कि  
 सब शुभगुण जो धर्मके मार्ग विषे हैं सो तीन बातोंके आश्रय हैं एक स्मभक्त है  
 और दूसरी हृदयकी अवस्था है २ और तीसरी करतूति है ३ सो मनेपे खेवूँक और  
 अवस्थाका निर्णय किया है अब करतूतिको निर्णय करते हैं कि केते ऐसेभी कहते  
 हैं कि भरोसा तब होता है जब सर्व करतूति अपने श्रीसीतारामजी को अर्पिते  
 और आप कुछ करतूति न करे व्यवहारभी न करे और दूसरे दिनका संचय न करे  
 और सर्प बिच्छू और सिंहादिकोंसे भी न भागे जब रोग इसपर आवे तब औ  
 पधमीति करे सो जिन्होंने ऐसे समझा है वह सब भूले हैं कोदसे कि भरोसकी  
 नीव शास्त्रके अनुकूल है और यह बात शास्त्रके विपर्यय है ताते भरोसा वही  
 विशेष है जो शास्त्रके अनुसार होवे सो इस मनुष्यको इस्तिथार इनचार बाँधी  
 पर है एक उत्पन्नकरना धनका १ दूसरे रक्षाकरनी धनकी २ तीसरा निवृत्तकरना  
 दुःखका ३ चौथे जिसके सम्बन्ध करके दुःख पहुँचनेका भयहोइ तिससे बचना ४  
 सो भरोसा इन सब विषे भिन्नभिन्न होता है ताते इसका निर्णय अब कहता हूँ ॥  
 अथ प्रथम प्रकरण प्रकट करना व्यवहार विषे धनके उत्पन्न करनेका ॥ सो यह  
 भी तीन प्रकारका है प्रथम यह है कि जिसप्रकार महाराजने काव्यविषे मर्याद  
 राखी है और वह अवश्यमेव उसी विधिसे होते हैं तिन मर्यादोंको जानकर  
 उसके विपर्यय बचना यह भरोसानहीं मूर्खता है जैसे कोई भोजन न खावे और  
 कहे कि मेरे मुत्त विषे आपही आइपड़ेगा और इसको भरोसा जाने तब यह



मूर्धनादे अथवा जेमे, कीर्द विराहित करे और कहे कि बिनाकीके मिलाए भेरे, पुत्रहोने सो यह भोग्या नदी मूर्धनादे सहेसे कि जिन कार्पके सन्तानके साथ, मयावृत्ते, मूर्ध्या रावादे सो जमी-समस्तके साथ होनादि सन्पथा नहीं होना सो, कान्तिकके द्वारे पेसहे सो गांछा सुगम और दृश्यकी अस्तराकर होनादि को, वृत्तिकर नहीं देता सो सगम यह हे जो जाने कि हाथ और अनाजा और भोजन और मनुष्य सो ज्ञान मरही श्रीगामजीमे, वापस क्रिये, हो और जीविका, यह कि विषवास हृदय का, श्रीगीतामजी, पी हयाप्र, राते अनाज और हाथों पर म, गले, क्राहेगे, हि हाथ मोरोगे करके ज्वनमी, होजके होमोस अनाज काई दृश्य, दसोसकहे वीते, मर्षदा, अगनीदृष्टि श्रीगामजीकी हयापर सासे अपने बुद्धिबन की जोर-न राते सो-पथम प्रकरण जो, सहाया-कि, जिन कार्पके साथ जिन प्रकार महागजने, शपे हे सहा अचरमगोर, उसी प्रकार दोसे हे सो यह चनात तो भया, १: अच दृश्य प्रकार यहटे कि, यह अस्तरगोर सो नदी पर, उनको निष्पत्ति, कि उस बिना कार्प मिल्द नहींदाता और कभी दोहमी, जानीदे जेसे महापुदो, ने मर्धनोना सगलेना सुसाक्रिये रावादेपर भोग्याउन्दे नि, सगलेनी पर रावा हे साहेमे कि उत्पन्न करनेदाग सोरो और और कार्पको, महा (जदीहे जाने सो) सोपरभोग्यासत राते पर बिना सोरोके वरिषे, जाना, अधिकता भोग्येकीदे और उसीकी, नदी जहाँ जो भोजन न करे और वनदृशा और केपों कि यह सोमानदी और जो बिनासोरो पे, वनविषे जाने सो यह अधिकता इसकी हे जिनविषे सहा दो लक्षण, दावे, मथगा, यह, कि जिनने पेंसा नग्री की मीमाहोर जो सातविनी पर्यन्त भोजन न करे सोभी इतने पा, अर्थ करके और इगम, जो कन्दमूर्ध, कतपर भी शरीरका निर्याह करनेवे सो जय पेमहोने सब सहा वार्ता मच्छे कि फन्दासत फन, सन्विषे प्रवर पहागा हे और किमी अय अनाजा, भी होनादे जेमे एक भोग्यासत च मरी स्रमाव, था कि, इससंदी-वन विषे, सटनयाने ये जो सोद्यापान कृतसत सस्रेपे पर, परसई और जेवही और जसपाय, पाग सन्पे पाहेमे कि यह अचरम जाहिवे हे और जहाँ सन्विषे नहींहोने तावे भोग्याउन्दे के व्यागविषे नहीं होना भोग्या, यह हे कि हृदयकी वीति, श्रीगीतामजीपर राते पर किमी पेमे विषे स्थान अथवा पहावकी कन्दविषे गव जातदे जहाँ घासमी, न देवे और जोभी हृदय गलेकी वानु न राते और वेपे वरे कि वे

ग्रहा भरोसा करे बैठती है सो यह मूल्य तो है और अर्पना नाश करता है ताते जिस प्रकार श्रीरामजीने नेतरी ली है तिसको भली प्रकार समझना नहीं सो यह भरोसा उसकी नाई है जो अर्पना धकील कार्यको करे और यह जानता होवे कि मेरे समीप रहे बिना वह कार्य न करेगा और फिर उसके निकट न जावे तब कार्य नहीं होता जिसपर कि त्यागी नगरकी छोड़कर पहाड़की कन्दरी विषे जाइ बैठे था और भरोसा किर्प्या कि भगवत् मुझको यहाँही भोजन पहुँचाइ देवेगा सो सातदिने मूलेही उसको नीतगये पर उसको प्राप्त कुछ न मया तब एक महापुरुषको आकाशबाणी भई कि तू इस त्यागीको जाइ कहके मे अर्पना दुहाई करके कहता हूँ कि जबलगतु नगर विषे न जावैगा तबलगतु फकी भी भोजन न देऊँगा सो यह वाचा जब महापुरुषने उसको कही तब वह वहाँसे उठकर नगरविषे आया तब सबकोई उसको भोजन ले ओये तब उसको हृदयविषे सशय उत्पन्न हुई कि यह क्या कारण हुआ तब उस महापुरुष की फिर आकाशबाणी भई कि तू उस त्यागीको कहा कि तू अर्पने त्यागकर भरी नेतकी विपर्यय किया चाहता है सो यह तो नो करूँगा और मे इस वाचाकी प्रियतम रखता हूँ जो भरे जीवों के सम्बन्ध द्वारे किमी को कुछ मिनती रहे सो यह वाचा उममे भी विशेष प्रियतम है जो मैं अर्पनी शी फिकरकी किसे कि सम्बन्ध दी विमो देवो तेसे ही जब नगरविषे मुसहे बैठे और घरका द्वारबन्द करे और भरोसा करे तब यह भी प्रमाण नहीं कि है से कि अर्पना नाश करता है यह भरोसा नहीं ताते जो कार्य अर्पणही करने होते है उनका त्यागना करे पर जो द्वार बन्द न करे और भरोसा करके गृहविषे बैठे तो प्रमाण है पर सर्वथा अर्पनी दृष्टि द्वारकी और न सके कि अम कोई लो आवता है और सर्वथा अर्पना हृदय लो गोकी और न राखे भगवत् की और हृदय शाले और अर्पना समय भजन विषे उपती न करे ताते जब स्वल्प सम्बन्धी दूर दूरे तब निश्चय शाले कि जीविका भी उसकी बन्द न होवेगी सो यह वाता ऐसे ही है जैसे सन्न जनों ने कहा है कि जब यह मनुष्य अर्पनी प्राण प्रभु भागता है तब माण्ड इसकी इसके पीछे वावती है और जब श्रीरामवत् ज्ञेया चना करती है तब महीराज कहने है कि हे मूल्य जब मैंने तुम्हकी उत्पन्न किया है तब क्या भोजन न देऊँगा सो जब ऐमे जाना तब जिम प्रकार महाराज की नेव है वह मार्गमान छोडे और बिना भगवत्के योमी न जानते कि इमी सधन्व

करके कार्य देखेगा तब मरोसा श्रीनीतारागनी पर रामे और मरुतों का  
 त्यागभी न करे तब मरुमृष्टि थीरामदीकी दान भोगती है पर केने अपमानके  
 साथ यातनाकरके पावते हैं और केने इ सके साथ भोगते हैं जैसे न्यवहार कर  
 नेदो और केने और सब और उद्यम करके जैसे कृप्य कानेहारे और पेत्रे सब  
 बिना सुभेनदी पावते हैं जैसे भेष्यन-रामानुगर्गी सां वह भीरामदी की ओरसे  
 जानते हैं और किनी मनुष्यकी ओरसे नहीं जानते २ और तीसरा प्रकार यह  
 है जो अवदयदी भी नहीं और अवदयदी के निकट भी नहीं सो अपने सब  
 और चतुर्गई करके जाने यह प्रमाण नहीं सो यद्यपि मरोसवान् न्यवहार करता  
 है परंतु भी मरोसा मदायजदी पर होनादे अपनी चतुर्गई और न्यवहार पर  
 नहीं होना सो ऐमेदी मदायजपने भी कहते कि मरोसवान् अग्र और योगे स-  
 गुन अपसगुन पर प्रतीति नहीं रहता सो ऐसे तो नहीं कहा कि न्यवहार न  
 करो और नगरको छोड़कर सब बिपे जाइ रहे सो मरोसे के प्रद तीनों प्रथम  
 यह है जैसे एक मरोसवान् सन्न तोरो बिना सब बिपे अन्न करते थे सो यह  
 मरोसा उषमदे पर यह मरोसेका चिह्न ऐमे होनादे कि मरोसवान् भूनादे अपना  
 घास पान साइलेवे और यह भी जब प्राप्त न होवे तब मृत्यु का मय उसके हृदय  
 में न होवे और ऐसे जाने कि मृत्यु होनाही मेरी भलाई है कादेने कि केने पुरुष  
 ऐसेभी होते हैं जो तोशास्त्र के पातासने हैं पर यह नई उनका कोई और इरलेतो  
 है और यह मृत हो जाने हैं पर प्रख्यापना कभी देवयोग से होती है तबमे इतने  
 चचना प्रमाण नहीं इनप पद मरोस का यह है जो न्यवहारमी नहीं करता और  
 सब बिपे भी नहीं जाना नगर चिचटी रहतादे पर दृष्टि अपनी भीमप्रतीकी दया  
 पर सन्नोहे लोगों पर नहीं अपना तीमग प्रद यह है जो न्यवहारके गिगिग पा-  
 देशको जाने और जितममर सन्नजनां ने न्यवहार जाना कहादे विभीषणा  
 करे और अपनी चतुर्गई और सब सा आश्रय न करे अपनी अतिम बिपे क  
 हुन चतुर्गई और सब करे तो मरोसवान् नहीं होता पर न्यवहारका त्यागनां श्री  
 मंगसेदी मुक्ति नहीं इसीपर एक मार्गदे कि एक मरोसवान् या पर न्यवहारका  
 त्याग न करनाया सो जब सर्व प्रीतिमानों का सुनिषा महन्त होनामया तबसे  
 सबने हर बाबा बिपे आया सर परो बिचरु २॥ तियेने तो प्रमाण नहीं  
 जो तुम महन्त होकर बाबा बिपे न्यवहार करने हो जायो तब प्रकृति कहा कि

जब मैंने अपने सम्बन्धियों की सुविधा ली तब और किसी की रक्षा क्यों कर करूँगा तब सबने यही काम किया कि जिस वन का कोई वारिस न होवे उस वन के उनके सम्बन्धियों की प्रतिपाल रीति तब यह महन्त सर्व आयुष्के अवसान तक सुखी होकर प्रीतिमानों की रक्षा करते मय्ये भी भरोसा यह है कि अपने अर्थ धन की वृष्णा न करे जो कुछ लाभ हाँसि होवे सो श्रीराम ही की ओर से जाने और धनो अर्पना और मनुष्यों के धन से प्रियतम न राखे तात्पर्य यह है कि भरोसा बिना बेराम्य मिद्ध नहीं होता और भरोसे बिना बेराम्य मिद्ध होता है जैसे एक सन्त भरोसेवान्ने कहा कि धीसे वर्ष मैंने अपने भरोसेको गुप्त राखा है सो नित्य प्रति तीन रूपये व्यवहार विषे उत्पन्न करता था पर एक पैसा अपने निमित्त खर्च न करता मय्ये पुनि हेव दे डालता था सो एक ज्ञानवान् सन्त उनके होते भरोसेको वचन कहते थे कि हेव आप ही उचम भरोसेवान् हेव वृद्धि एक महन्त बड़े स्थानों पर बैठने हैं और अपने चला शिष्य बाहर परदेशों विषे भेजते हैं सो यह भरोसा तुच्छ है और निर्बल है पर जब कोई भरोसेवान् व्यवहार करे तब उसकी युक्तिया बहूत हैं पर जब आकशिवृत्ती होइ बैठे और अपने शिष्य सेवक भी किसी के पास न भेजे तब यह भरोसे के निकट है पर जब जिस स्थान पर बैठता है वह स्थान विख्यात हो जावे तब यह भी धाजार की नाई होता है तात्पर्य यह कि उसके चित्त की वृत्ति उसपर ठहर जाती है पर जब चित्त की वृत्ति उसपर न ठहरे तब यह भरोसा व्यवहारवाले की नाई होता है तात्पर्य यह कि दृष्टि इसकी श्री रामजी पर होवे और लोगों पर न होनी चाहिये और और किसी कारण पर भी न होवे कारण कि महाकारण श्रीराम पर होवे जैसे एक भरोसेवान्ने कहा है कि एकवार बने विषे एक ऐश्वर्यवान् माधु सुभक्तो आइ मिले और मेरे सग रहने मे राजी थे पर मैंने उनके सगका त्याग किया इस कारण करके मत मेरे हृदय विषे उस ऐश्वर्यवान् का भरोसा हो जावे तब मेरा भरोसा श्रीराम पर न रहेगा जैसे एक बुद्धिमान् साधु मे एक भूजूर के पास कुछ क्रिया कराई पी तब अपने सेवक मे कहा कि ईसकी कुछ अधिक भूजूर देवो जब वह देने लगे तब उमने न नीनी बहुरि जब वह भूजूर गृह मे बाहर आया तब उन्होंने अपने सेवक से कहा कि अब उसने पास ले जावो अब लेने वेगा तब सेवक ने पूछा कि वह अब क्यों लेवेगा तब उन्होंने कहा कि आगे उमने अपने हृदय विषे लेने की अभिजापा

काके कार्य हेतु ही भरोसा धीमीतारामती पर रावे और मन्त्रों का  
 त्याग भी न करे तब सर्वमृष्टि श्रीगणेशकी दान, भोगती है, पर केते अपमानके  
 साथ याचनाकरके पावते हैं और केते इ लके साथ भोगते हैं जैसे व्यवहार कर-  
 नेहारे और केते और यत्र और उद्यम करके जैसे कृत्य करनेहारे, और केते यत्र  
 बिना मूलेनहीं पावते हैं जैसे वेणव-रामानुजगी सो वह श्रीगणेश की ओरसे  
 जानते हैं और किमी मनुष्यकी ओरसे नहीं जानते, और तीसरा प्रकार यह  
 है जो अवश्यही भी नहीं और अवश्यही के निकट भी नहीं सो अपने, यत्र  
 और चतुर्गई करके जाने यह प्रमाण नहीं सो यद्यपि भरोसवान् व्यवहार करता  
 है परतो भी भरोसा महाराजही पर दोता है, अपनी चतुर्गई और व्यवहार पर  
 नहीं होता सो ऐमेही महापुरुषने भी कहा है कि भरोसवान् मन्त्र और दोने स-  
 गुण अपसगुण पर प्रतीति नहीं रखता सो ऐसे तो नहीं, कदा कि व्यवहार न  
 करो और नगरको छोड़कर वन विषे जाइ रहे सो भरोसे के पद तीनहैं मध्य  
 यह है जैसे एक भरोसवान् सन्त तोरे-बिना वन विषे अटन-कालेधे सो यह  
 भरोसा उत्तम है पर यह भरोसेका चिह्न-ऐसे होता है कि भरोसवान् सुखारहे अथवा  
 घास पान खाइलेवे और यह भी जब प्राप्त न होवे तब मृत्युका मय उसके हृदय  
 में न होवे और ऐसे जाने कि मृत्यु होना ही भोगी सुखारहे काहेसे कि केने पुरुष  
 ऐसेभी होते हैं जो तोशाधर्व पास रखने है पर वह सर्व उनका कोई चोर-हरलेता  
 है और वह मृत हो जाते हैं पर यहवार्त्ता कभी देवयोग से होती है तबे हमसे  
 वचना प्रमाण नहीं दूसरा पद भरोसे का यह है जो व्यवहारभी नहीं करता और  
 वनविषे भी नहीं जाता नगर विषे ही रहता है पर दृष्टि अपनी धीमीतारामतीकी दया  
 पर रखता है लोगों पर नहीं रखता तीसरा पद यह है जो व्यवहारके निगिच पर-  
 देशको जावे और जिसप्रकार सन्त जनों ने व्यवहार करता कहा है किसी प्रकार  
 करे और अपनी चतुर्गई और यत्र का आश्रय न करे अपनी जीविका बिने  
 द्रव चतुर्गई और यत्र को तो भरोसवान् नहीं होता पर व्यवहारका त्यागता भी  
 भरोसेकी युक्ति नहीं इसीपर एक वार्त्ता है कि एक भरोसवान् था पर व्यवहारका  
 त्याग न करता था-सो जब सर्व प्रीतिमानों का मुक्तिया महन्त होता मया सर्व  
 यत्रनेकर बाजार विषे व्यापार तब अपने भिन्न कर कहा कि ऐते तो प्रमाण नहीं  
 जो तुम महन्त होकर बाजार विषे व्यवहार करनेकी जायो वम उन्हींने कहा कि

जब मैंने अपने सम्बन्धियों की सुधि न ली तब ओ।। किसी की रक्षा क्यों कर करूंगा तब सेवने यहाँ काम किया कि जिस धन का कोई वारिस न होवे। उस करके उनके सम्बन्धियों की प्रतिपाल राखी तब वह महन्त सर्व आयुष्के अवसान तक सुखी होकर प्रतिमानों की रक्षा करते भये सो भरोसा यह है कि अपने अर्थ धन की वृष्णा न करे जो कुछ लाभ हीनि होवे सो श्रीराम ही की ओरसे जाने और भनो खर्चों और मनुष्यों के धनसे मियतम न राखे तात्पर्य यह है कि भरोसा बिना बेराग्य मिद्ध नहीं होता और भरोसे बिना बेराग्य मिद्ध होता है जैसे एक सन्त भरोसवान्ने कहा कि बीस वर्ष मैंने अपने भरोसेको गुप्त राखा है सो नित्य प्रति तीन रुपये व्यवहार विषे उत्पन्न करताया पर एक पैसा अपने निमित्त खर्च न करता मंग पुमिहेत दे डालताया सो एक ज्ञानवान् सन्त उनके होते भरोसेका वचन कहनेसे कहिये कि यह आप ही उचम भरोसवान् है बहुरि एक महन्त बड़े स्थानों पर बैठने हैं और अपने बिला शिष्य बाहर परदेशों विषे भेजते हैं सो यह भरोसा तुच्छ है और निर्बल है पर जब कोई भरोसवान् व्यवहार करे तब उसकी युक्तिया बहुत हैं पर जब आकाशवृत्ती होइ बैठे और अपने शिष्य सेवकों भी किसी के पास न भेजे तब यह भरोसे के निकट है पर जब जिस स्थान पर बैठता है वह स्थान विख्यात हो जावे तब यह भोचाजारकी नाई होता है तात्पर्य यहाँ कि उसके चित्तकी वृत्ति उसपर ठहर जाती है पर जब चित्तकी वृत्ति उसपर न ठहरे तब यह भरोसा व्यवहारयाले की नाई होता है तात्पर्य यह कि दृष्टि इसकी श्री रामजीपर होवे और लोगोपर न होनी चाहिये और और किसी कारण पर भी न होवे कारण कि महाकारण श्रीरामपर होवे जैसे एक भरोसवान्ने कहा है कि एकवार घनविषे एक ऐश्वर्यवान् माधु मुर्ककी आइमिले और मेरे सग रहने में राजीये पर मैंने उनके सगका त्याग किया इसकारण करके मत मेरे हृदयविषे उस ऐश्वर्यवान् का भरोसा हो जावे तब मेरा भरोसा श्रीरामपर न रहेगा उसे एक बुद्धिमान् प्राणु मे एक मजूर के पास कुछ किया कराई थी तब अपने सेवक से कहा कि इसकी कुछ अतिक मजुरो देवो जब बड देने लगा तब उमने मैं लीनी बहुरि जब वह मजूर गृहमे बाहर आया तब उन्होंने अपने सेवक से कहा कि अब उसके पैर ले जावो अब लेलेवेगा तब सेवक ने पूछा कि वह अब क्यों लेवेगा तब उन्होंने कहा कि भागे उमने अपने हृदय विषे लेने की अगिनाया

काके कार्य द्वेषेगा ताते भरोसा श्रीमतीनारामती पर राते और सम्बन्धों का  
 त्यागभी न करे ताते सर्वमृष्टि श्रीयमदीकी दान, भोगती, दे पर केते, अपमानके  
 साथ याचनाकरके पावते हैं और केते, दु खके साथ भोगते हैं जैसे व्यवहार कर-  
 नेहारे और केते और यत्र और उद्यम काके जैसे कल्प करनेहारे और केते, यत्र  
 बिना मूलेनहीं पावते हैं जैसे वेणव-रामानुजगी सो वद श्रीरामदी की ओरसे  
 जानते हैं और किसी मनुष्यकी ओरसे नहीं जानते, न और तीसरा प्रकार यह  
 है जो अवश्यही भी नहीं और अवश्यही के, त्रिस्त भी नहीं, सो अपने यत्र  
 और चतुर्दश करके जाने यह ममाण नहीं सो यद्यपि भरोसवान्, व्यवहार करता  
 है परतो भी भरोसा महाराजदी पर होता है, अपनी, चतुर्दश और व्यवहार पर  
 नहीं होता सो ऐमेदी महापुरुषने भी कहा है कि भरोसवान्, मत्र और दोने-स-  
 गुन अपसगुन पर प्रतीति नहीं रहता सो ऐसे, तो नहीं, कहा कि व्यवहार न  
 करो और नगरको छोड़कर वन विषे जाइ रहो सो भरोमे के पद तीनहैं अपस  
 यह है जैसे एक, भरोसवान्, सन्न तोशे, बिना वन, विषे गहन, करते, पे, सो, यह  
 भरोसा, उचमहै पर, यह भरोसेका चिह्न, ऐसे होता है कि भरोसवान् भूतारहे अथवा  
 घास, पात खाइलेवे, और यह गी, ज्ञप्त प्राप्त नहोते तत्र सन्धु का, भय, उसके इदय  
 में न होवे और ऐसे जाने कि मृत्यु, होनाही-मेरी मनाई है काहेसे, कि केने पुरुष  
 ऐमेभी होते हैं जो तोशासर्व पासखने हैं पर वह सर्व उनका कोई, और इरलेती  
 है और ज्ञह मृत हो जाते हैं पर यहवार्त्ता कभी देवयोग से, होती है ताने इससे  
 वचन प्रमाण, नहीं दूमय, पद, भरोमे का, यहहै जो व्यवहारमें, नहीं करता, और  
 वनविषे, भी नहीं जात, नगर विषे ही रहता है, पर दृष्टि अपनी श्रीरामती की दया  
 पर रहता है लोगों पर नहीं भूता, तीसरा पद, यहहै, जो व्यवहारके सिंगिच पर-  
 देशको जावे और जिसप्रकार सन्तज्ञनों ने व्यवहार करना कहा है निसी प्रकार  
 करे और अपनी चतुर्दश और यत्र का आश्रय न करे, अपनी जीविका विषे क-  
 र्व चतुर्दश और यत्र करे तो भरोसवान् नहीं होता पर व्यवहारके त्यागना भी  
 भरोसेकी युक्ति नहीं इसीपर एक वार्त्ता है कि एक भरोसवान् या प्र व्यवहारका  
 त्याग न करताया, सो जब सर्व श्रीनिमानों का मिलिया महन्त होता मया तबभी  
 यज्ञने कर वाजा विषे-जाया तब मबने, भिज्ज का, कि पूने तो प्रनाय मर्दा  
 जो तुम महन्त होकर वाजा विषे व्यवहार करनेको जायो तब उन्होंने कहा कि

कि एक पढ़ोसीने हमारे साथ बचन किया है कि दोरीठी नित्य प्रति में तुमको भे-  
 जेगा तब वह लुबने कहा कि जो यह बार्ता है तो तुमको व्यवहार का कुछ प्रयो-  
 जन नहीं तब भजनवानने कहा कि तू इस हरिमन्दिरका अधिकार किसी और  
 की सम्पत्ति कर देवे तो भला है तू इस अधिकार योग्य नहीं काहेसे कि तेरी दृष्टि  
 विपे उस पढ़ोसीका बचन महाराज विश्वम्भरके सर्व विश्वप्रतिपालन बचन से  
 विशेष पुष्ट हुआ बहुरि एक मुखियाने एक मजनीसे पूछा कि तेरी जीविका कहा  
 से है तब उस भजनवानने कहा कि जेता मजनका नियम भेने तुम्हारे संग किया  
 है सो सब व्यर्थ होगा ताते फेर आदिसे कर लेऊं काहेसे कि तुमको महाराज  
 की विश्वम्भर विरदावलीपर प्रतीति नहीं लौकिक सम्बन्धपर दृष्टि है सो जिसने  
 यह बात सत्य प्रतीति जानी है तिनको संशय होता ही नहीं और उनको प्रत्यक्ष  
 परीक्षा हुई है कि जहासे कुछ आश्रय न रखते थे तहांसे उनको सबकुछ प्राप्त मया  
 है सो विश्वास उनका महाराजके इस बचनपर है जो महाराज ने कहा है कि  
 धरतीपर जेते जीव हैं तिनको जीविका में पहुँचावेता हूँ इसीपर एक और बार्ता  
 है कि एक प्रीतिमान् से किसीने पूछा कि तुमने अमुक वैराग्यवान् सन्तकी स  
 गतिकरी तिन विपे कौन आश्रय गृह देखा तब उसने कहा कि एक बार मार्ग  
 विपे उनके संगया सो मार्गमें बहुत भूखेहि नव नगर विपे जाइपहुचे तब उन्होने  
 कहा कि तुम स्वयंकरके बहुत आतुर हुये हो तब भेने कहा कि जी ऐसे ही है जैसे  
 आपने कहा है हम भूखकरके बहुत निर्बल हुये हैं तब सन्तने कहा कि एक का-  
 गज और मसी ले आवो तब भे ले आया तब उन्होने कागज पर श्रीरामनाम  
 लिखा और यो भी लिखा कि हमारा प्रयोजन सर्व समय विपे आपही है और  
 कहेंतो भी आपहीके पामहे सोमो स्तुति और धन्यवाद करनेहारा और आपका  
 नाम ज्ञापक हूँ और आप जनप्रतिपालक हैं परमें भूखा प्यासा और नग्नेहू सो  
 स्तुति और धन्यवाद करना और स्मरण यह तीन भेरे कर्म हैं और आहार जल  
 वस्त्र देना आपका धर्म है सो मैं तो अपने कर्तृति विपे सावधान हूँ आप भी अपने  
 दानी धर्म विपे सावधान हूँ जिये सो यह कागज लिखकर मुझको दिया और  
 कहा कि श्रीराम धिना अपना हृदय और और न राखो पर जो मनुष्य प्रथम  
 तुमको भिन्ने उमीको यह कागज देना नव भे पक्ष मे बाहर आया और एक  
 दिजातीय सवार मुझको भिला तब भेने यह कागज उमको दिया मो उय म



करीधी और अब उनके हृदयविषे लेनेकी मनमा नहीं तावे जब लेवेगा तारय्ये यह कि व्यवहार विषे भरोसा पेसाहोवे कि अपने धन और मागमोपर प्रतीति न राखे सो जब इसकी सामग्री चोर लेजावे तब गोकवान् न रहे और श्रीरामजू की दयाकरके जाने कि जब श्रीराम चाहेंगे तब और संयोगकर जान प्राप्त होवेगा और जब न प्राप्त होगा तोभी मेरी भलाई इमी में होवेगी जिसमें श्रीरामजू ही आताहै ॥ अय मरुट करना उपाय इस भरोसेकी अवस्था आवनेका ॥ ताते जान तू कि जब धन और सामग्री किसीकी चोर लेजाव अथवा और संयोगकर तप्त होजावे तब हृदय उसका स्पिररहे सो यह भरोसा दुर्लभ और उच्चमहो पर यहवर्ता भनहोती भी नहीं इसीकारण करके जो प्रतीति और निश्चय श्रीरामजू की पूर्णरूपा और दया और सगर्भपर राखे और जानलेवे कि यहवृत्त मनुष्योंको धन सम्पदा विना गहाराज प्रतिपाल करने हैं और बहुत धनरान् एमे हैं कि उनको वही धन नाशताका कारण होताहै ताते मेरी भलाई इसी विषे है जैसे गहापुरुष ने भी कहाहै कि मनुष्य रात्रि विषे किसी कार्यका संकल्प करते हैं और नाश होना उनका उसकार्य विषे है तब श्रीरामजू अपनी दयाकरके उसके कार्यकी सिद्ध नहीं करते तब यह पुरुष शोकवान् होताहै कि यह कार्य क्यों न हुआ और यहोसियोंपर बुरा अनुमान करताहै कि उन्होंने किसीके जागे चुगली कीनी होवेगी सो यह केवल दया श्रीरघुनाथजू की भी जा उसका कार्य न हुआ लेख एक प्रीतिमान् ने कहाहै कि जब मैं प्रभानममय उठनाहू तब जानताहू कि निर्दैनताई अथवा धनहोवे सो इसी विषे मेरी भलाई है जैसे श्रीरघुनाथजू की आज्ञाहै और निर्दैनताईका भय और बुगईका अनुमान यह मनका स्वभावहै सो इसीपर महागज ने भी कहाहै कि मन निर्दैनताईवा बेही है और क्षियामका स्वरूप यहहै कि श्रीमीतारामजी की रूपापर दृष्टिगमे और पूर्णसम्पत् यहहै कि जिसने सपका कि जीविका हमारी विशेष करके एमे गद्यमार्गपर आवती है जिसको कोई जानतहीसप्रम बहुरि गुणमार्गपर भी विरवाम न गवे श्रीमी तारामजीका जो उम मार्गके कर्ता और कारण हैं आमाग राखे यहहै कि इसकी जीविकाके ज्ञाति वही है इसीपर एक वार्ता है कि एक मजनवान् एक शुभस्थान विषे जाइदाया तब उस स्थान क टडसूने कहा कि तूम अपनी जीविकाके निमित्त कृद्द गवदाह करतो ना भलाई है तब मजनवान् ने कहा

कि एक पढ़ोसीने हमारे साथ बचन किया है कि दोरीती नित्यप्रति मैं तुमको भे-  
 जेगा तब टहलुवने कहा कि जो यह बार्ता है तो तुमको व्यवहारका कुछ प्रयो-  
 जन नहीं तब भजनवानने कहा कि तू इस हरिमन्दिरका अधिकार किसी और  
 को समर्पण करदेवे तो भला है तू इस अधिकार योग्यनहीं काहेसे कि तेरी दृष्टि  
 विषे उस पढ़ोसीका बचन महाराज विश्वम्भरके सर्व विश्वप्रतिपालन वचन से  
 विशेष पुष्टहुआ वही एक मुखियाने एक मजनीसे पूछा कि तेरी जीविका कहा  
 से है तब उस अजनवानने कहा कि जेता मजनका नियम मैंने तुम्हारे सर्गकिया  
 है सो सब व्यर्थहोगया ताते फेर आदिसे करलेऊ काहेसे कि तुमको महाराज  
 की विश्वम्भर विरदावलीपर प्रतीति नहीं लौकिक सम्बन्धपर दृष्टि है सो जिसने  
 यह बात सत्य प्रतीति जानी है तिनको संशय होताही नहीं और उनको प्रत्यक्ष  
 परीक्षा हुई है कि जहासे कुछ आग न रखते थे तहांसे उनको सबकुछ प्राप्तया  
 है सो विश्वास उनके महाराज के इस वचनपर है जो महाराज ने कहा है कि  
 धरतीपर जेते जीव हैं तिनको जीविका में पहुँचावताहू इसीपर एक और बार्ता  
 है कि एक प्रीतिमानू से किसीने पूछा कि तुमने अमुक वैराग्यवान् सन्तकी स  
 गतिकरी तिन विषे कौन आश्चर्य्य गुणदेखा तब उसने कहा कि एकवार मार्ग  
 विषे उनके सगथा सो मार्गमें बहुत सुखे रहे नष नगर विषे जाइपहुँचे तब उन्होंने  
 कहा कि तुम सुखकरके बहुत आतुरहुये हो तब मैंने कहा कि जी ऐसेही है जेसे  
 आपने कहा है हम सुखकरके बहुत निर्बलहुये हैं तब सन्तने कहा कि एक का-  
 गज और मसी लेआवो तब मैं लेआया तब उन्होंने कागज पर श्रीरामनाम  
 लिखा और योंभी लिखा कि हमारा प्रयोजन सर्व समय विषे आपहीहैं और  
 कहनीं भी आपहीके पामहे सोमें स्तुति और वन्द्यवादकरनेहारा और आपका  
 नाम जापक हू और आप जनप्रतिपालक हैं पर मैं भूवा प्यासा और नग्नहू मो  
 स्तुति और धन्यवादकरना और स्मरण यह तीन मेरे कर्म हैं और आहार जल  
 वस्त्रदेना आपका धर्म है सो मैं तो अपने कर्तव्य विषे सावधानहू आपभी अपने  
 दानी धर्म विषे सावधान हुजिये सो यह कागज लिखकर मुझको दिया और  
 कहा कि श्रीराम बिना अपना हृदय और और न रावो पर जो गनुष्य प्रथम  
 तुमको भिले उमीको यह कागज देना तब मैं रहा मे बाहर आया और एक  
 विजातीय सवार मुझको गिला तर मैंने यह कागज उमको दिया मो उम ग

वार ने कायलकी पदा और रुदन करने लगा और कहने लगा कि इसका लि-  
 खनेदारा कहा है, तब मैंने कहा कि अमुक स्थान विषे वेदे है तब उम सवाने  
 एक धेन्वी मोदकी मुक्को दीनी तब मैं उन मत्तके निरुद्ध लेआया और सब  
 वार्ता कहदीनी तब उन्होंने कहा कि यहधेली गहाही रक्खो और खूर्बेन फरो  
 कि इसका देनेदारा भव यह आवेगा तब उसी समय बह सगर तदा आया  
 और उनके चरणोंपर गिरपड़ा और लेलाटुआ तब एनने मुक्के कहा कि यह  
 धेली हो जावो और सपने का र्थ में लगावो पर आप अगीकार कुहने किया  
 ओर एक जोर वार्ता है कि एक प्रीतिमान्ने कहा है कि एक स्थान विषे मेदरा  
 दिन पर्यन्त भूलाहीरदा तब बहुत निर्बल हुआ और बहासे उठकर बाहर आया  
 तब एक पल मूला भूमि में पड़ा हुआ देखा तब मैंने कहा कि यह लेनेजो तब  
 मेरे हृदय विषे यही आनिकुआ कि इस दिन भूलाहदा और अब यह मूलाफक्त  
 तुम्हको मिला सो वेरी प्रारब्ध यही थी तब मैं उसको त्याग कर उमी स्थान पर  
 आइ बेटा तब एक सन्तुष्य वहांआया और चादाम और पिस्ते और मिसरी, भं-  
 गोळा भूलाहदा मेरे आगे आनिराहा और कहने लगा कि मैं जहाज विषे था  
 तब बहुत पवन बहाचला सा मैंने प्रसादबोला और निरमकिया कि मयग जो  
 कोई अतिथि मुक्को मिलेगा तब मैं उसको देऊंगा सो यह बड़ी प्रसाद दे वन  
 मैंने आहार मात्र लेलिया और आकी उमीको फेरिदिया तब मैं अपने आपको  
 समझावने लगा कि प्रारब्ध में तो तेरी यह सेवा महागजने र्थी थी ताते पवन  
 को समुद्र विषे नीविका पट्टे नानेपी आज्ञाई जो यहाँ लेआया और तू मूला  
 और मोरसे दृढ़ताइ तो समझना ऐसी वार्ताका प्रतीतिको दृढ़ क्यतादे ॥ जप  
 प्रकट काना भरोसा गृहस्थी का ॥ ताते ज्ञान तू कि गृहस्थी को यह प्रमाण  
 नहीं कि वन विषे जावे और अपवहारक त्याग करे क्यतादे कि यह भरोसा गृह-  
 स्थीका नीमग पदहे सो अपवहार करना आगेभी क्यतादे जैसे एक साँवे पुरुषने  
 कहा है कि भरोसे के अर्थ दो वार्ता चाहिये एक यह कि भूमर पर्य क्यप्रक  
 और जो रुद्ध प्राणहोडे उमीपर प्रमच्ये नाहे चासदी भाषेदेवे १ और दूसरा यह  
 कि प्रतीति ऐसी होवे कि जो प्रारब्ध मेरी सुखे और मृत्युदे तो मनार्थ मेरी  
 इमी विषे होवेगी २ सो पूर्व भोगे का रती आनकारोहे जिम विषे यह दोनों  
 गुण शोरे पर मर्यादित्वाका एमे राम नदीमत्रा और जय विचारक टेसिमे दो

इसकी, मत्तही। कुलत्री के, समांत दृढ़ता रहित है। सो जन्म देसे। कि सुखमहने का  
 वत् मेरे विपे नहीं और आतुरताई खिन्नता है। तत्र व्यवहार का त्याग करना  
 प्रमाण तर्ही यद्यपि गृहस्थवर्तिते-सर्वत्रभी-भी-सुख सो सिद्धसके तौ भी व्यवहारकी  
 त्याग प्रमाण नहीं परजब किसी को निश्वास पूर्ण होवे। और वैराग्य विपे लगता  
 रहे और व्यवहार न करे तौ भी उसकी प्रीत्य पट्टे रहती है। जैसे बालक माता  
 के उदर विपे कुकु व्यवहार नहीं करता तत्र भी तानिके द्वारे प्रसक्तो आहार गृह-  
 चता है। जव उदरसे बाहर आवता है तत्र माता को स्तनी से उसको दूध मिलना है  
 जव उससे बड़ा होता है और आहार खाने लगता है तत्र माता उसको प्रकट होते  
 है। जव माता पिता उसके सत्युहते हैं और वह बालक भ्रमेला रहता है तब और  
 मनुष्यों के हृदय विपे श्रीरामजी दया द्वार देते हैं आगे दया करनेहारी एक मात  
 ताथी जव अनेक मनुष्य उसपर दया करते हैं जन्म विहा होता है। तब त्रिपदी  
 कार्प्य करनेको समर्थ होता है तब इस विपे प्रीति और प्रलाभ हा संज्ञ देते  
 हैं जो अपना प्रतिपाल आप करने लगता है जैसे आगे माता इतना प्रतिपाल  
 करती थी तैसेही आप अपनी खबर लेती है। जव अपना प्रतिपाल करने से रहित  
 होता है और व्यवहार का भी त्याग करता है और श्रीरामकी और इसका हृदय  
 आवता है तब सर्व जीवों के हृदय विपे इसके ऊपर दया महारिजि हार देते हैं। सो  
 मन मही जानते हैं कि यद्य श्रीरघुतन्दन जीने परचा हुआ है ताने जो कृष्ण उद्योग  
 वस्तु दोइ सो इतको दीजिये और इनकी सेवा कानी प्रमाण सो एओ एक  
 अपने ऊपर दया करना या भव सर्व जीवों के ऊपर दया करते हैं पर तत्र यद्य  
 विकारों विपे लगता है और व्यवहार करनेको समर्थ होकर व्यवहार नहीं करता  
 तत्र इसपर दया किसी को नहीं आवती तत्र ऐसे पुरुषकी व्यवहार का त्याग करी  
 रके भरोसा करना प्रमाण नहीं जव अपने मनके साथ मिलता है तब जमनी  
 जीविका की खबर लेनी आवती को प्रमाण है ताने जव संद मनुष्य आना  
 हृदय गद्यराजकी ओर ले आवता है और स्वीयते प्रतिपाल से रहित होइ। तत्र  
 श्रीरघुवज् सर्वजीवों को इस पर दयालु करि देते हैं इसी प्रकार के कोई त्रैलोक्य  
 कर सत्य तर्ही हुआ सो जिसने यह बात विचार देती है कि श्रीरामजीने लोको  
 और परलोक विपे किस प्रकार सत्ता है। और जे संपूर्ण बनाये हैं तत्र सव-  
 ग्यही इस वचनपर दृढ़ प्रतीति हानी है जेमे महाराज ने कहा है कि सर्व जी-

वार ने कायलको पदा और रुदन करते लगा और कहने लगा कि इसका खि-  
 खनेदारा कहा है तब मैंने कहा कि अमुक स्थान विषे भेदे हैं तब उस सवारने  
 एक थैली मोहरकी मुझको दीनी तब मैं उता सन्तके निरुद्ध ले आया और सब  
 वार्ता कह दीनी तब उन्होंने कहा कि यह थैली सहाई रख दो और खर्च न करो  
 कि इसका देनेदारा शर त्रहा आवेगा तब उसी समय वह सवार तहा आया  
 और उनके चरणों पर गिरपड़ा और जेला हुआ तब सन्तने मुझसे कहा कि यह  
 थैली जेजात्रो और अपत्ते कर्म्य में लगावो पर आप अगीकार कुछ न किया  
 और एक और वार्ता है कि एक प्रीतिमान्ने कहा है कि एक स्थान विषे मैं दश  
 दिन पर्यन्त भूलाही रहा तब बहुत निर्वल हुआ और त्रहासे उठकर बाहर आया  
 तब एक फल सूखा भूमि में पड़ा हुआ देखा तब मैंने ज्ञाहा कि यह लेजेवों तब  
 मेरे हृदय विषे यही आनिष्टा कि दश दिन भूला रहा और अब यह सूखा फल  
 तुझको मिला सो तेरी प्रारब्ध यही थी तब मैं उसको त्प्राणकर उमी स्थान पर  
 आइ बैठा तब एक सन्तुप्य त्रहा आया और चादास और पिस्ते और मिसरी और  
 गोष्ठा भसा हुआ मेरे आगे आनिखा और कहने लगा कि मैं जहाज विषे था  
 तब बहुत पवन बहा चला सो मैंने प्रसाद बोला और नियम किया कि प्रथम जो  
 कोई अतिथि मुझको मिलेगा तब मैं उसको देऊंगा सो यह वही प्रसाद है तब  
 मैंने आहार मात्र लेलिया और बाकी उसीको फेरि दिया तब मैं अपने आपको  
 समझावने लगा कि प्रारब्ध में तो तेरी यह भेवा महाराजने रखी थी ताते पवन-  
 को समुद्र विषे त्रीविका पडुंचानेकी आज्ञा भई जो यहा ले आया और तू भूला  
 और औरसे हृदय है सो समझता ऐसी वार्ताका प्रतीतिको दृष्ट करता है ॥ अथ  
 प्रकट करना भगेमा गृहस्थीका ॥ ताते ज्ञान तू कि गृहस्थीको यह प्रमाण  
 नहीं कि जन्म विषे जात्रे और व्यवहारका त्याग करे काहेसे कि यह भगेसा गृह  
 स्थीका तीसरा पद है सो व्यवहार करना आगे भी कहा है जैसे एक साचे पुरुषने  
 कहा है कि भगेमेके अर्थ दो वार्ता चाहिये एक यह कि भूख पर धैर्य करसके  
 और जो कुछ प्राप्त है स्त्रीपर प्रसन्न रहे चाहे चासही प्राप्त होवे १ और दूसरा यह  
 कि प्रतीति ऐसी होवे कि जो प्रारब्ध भेगी भूख है और मृत्यु है तो मलाई भेरी  
 इसी विषे हवेगी २ सो पूर्ण भगेमे का वही अधिकारी है जिस विषे यह दोनों  
 गुण दोनों पर सम्बन्धियोंको ऐसे राष नहीं मक्का और जब विचार कर देखिये तो

इसकी मन्तही कुलत्री के समान हृदयना रहित है सो जन्म देखे कि स्वसहने का वत् मेरो विपे नहीं और आतुरताई खिजावता है तत्र व्यवहार का त्याग करना प्रमाण नहीं यद्यपि गृहस्थमाले संस्वन्नीर्भी सुख तो सिद्धि के तौ भी व्यवहारका त्याग प्रमाण नहीं पर जत्र किसी को निश्वास पूर्ण होवे और वैराग्य विपे लगा रहे और व्यवहार न करे तौ भी उसकी प्रीत्य पट्ट च रहती है जैसे बालक माता के उदर विपे कुकु व्यवहार नहीं करता तत्र भी त्रासिके द्वारे तसको आहार प्रकृत है जत्र उदरसे चादर आवता है तत्र माता को स्तनी से उसको दूध मिलता है जत्र उससे बड़ा होता है और आहार खनि लगेता है तत्र दार्ता उसके प्रकट होती है जत्र माता पिता उसके मृत्यु होते हैं और खंड बालक अकेला रहता है तत्र और मनुष्यों के हृदय विपे श्रीरामजी दया द्वार देते हैं आगे दया करने वाली एक माता थी अब अनेक मनुष्य उसपर दया करते हैं जत्र बड़ा होता है तत्र आपही कार्य करनेको समर्थ होता है तत्र इस विपे यही शब्द और मल, महाराज होते हैं जो अपना प्रतिपाल आप करते लगता है जैसे मागे माता इतना प्रतिपाल करती थी तैसे ही आप अपनी खबर लेता है जत्र अपना प्रतिपाल करने से रहित होता है और व्यवहार का भी त्याग करता है और श्रीरामकी और इसका हृदय आवता है तत्र सर्व जीवों के हृदय विपे इसके ऊपर दया महाराज चार देते हैं सो सब यही जानते हैं कि यह श्रीरामन्दन जीने प्रवाह है ताने जो कृष्ण उक्त वस्तु दो सो इत को दीजिये और इनकी सेवा करनी प्रमाण है सो अगो एक अपने ऊपर दया करना था अब सर्व जीव इसके आर दया करते हैं पर तत्र प्रद विकारों विपे लगता है और व्यवहार करनेको समर्थ हो कर व्यवहार नहीं करता तत्र हमपर दया किसीको नहीं आवती तत्र ऐसे मनुष्यों व्यवहार का त्याग करनी रहे भरोसा करना प्रमाण नहीं जत्र अपने मनुके सा मतीला हुआ है तत्र अपनी जीविका की खबर भी लेनी आपहीको प्रमाण है तत्र जत्र प्रद मनुष्य अपना हृदय महाराजकी ओर ले आवता है सो कभीपत्ते प्रतिपाल से रहित हो जाते तत्र श्रीरामज्ज सर्व जीवों को इस पर दया लुके दिने हैं इसी करके कोई वैरागी सुख कर मृत्यु नहीं हुआ सो जिसने यह ज्ञान विचार देना है कि श्रीरामजीने लोक और परलोक विपे किम प्रकार मूत्राति है और जेमे सम्पूर्ण बनाये हैं तत्र सब ग्यही इस बचनपर दृढ़ प्रतीति हानी दे जेमे महाराज ने कहा है कि सर्व नी-

वोंका प्रतिपाल भी करनेद्वाराहूँ बहुतियह समझलेना है कि महाराज ने ऐसी सुन्दर रचना बनाई है जो कोई तबाह नहीं रहजाता और जो कोई तपाह और बिगु रहता है तब उसी विषे उसकी भलाई होती है इसकारण कर नहीं कि उंसने व्यवहारफाल्यागियांकाहेसे कि केले पुरुषोंके भासधनेभी अधिक होता है और व्यवहारभी करते हैं पर धन भी उनको नाश होजाता है और वह भी मृत्यु होजाते हैं इसीपर एक साधुजनने कहा है कि यहवार्ता सुन्पर प्रकट है कि जो सारात्तार मेरा कुटुम्बा होजावे और एकदानी अनोजको एक मोहर को मिले तो भी मुक्तोमप फुलानही काहेसे कि प्रतिपाल करनेद्वारे श्रीसीताराम जी हैं इसीपर एक और भरोसानने कहा है कि जो आकाश लोहकाही है और पृथ्वीताबके साथ जड़ीजाये तो भी जीविका का भय कुलनीही सो महाराज जिसमार्ग चाहेंगे तिसमार्गसे जीविका पट्टुचावेंगे बहुतिर एक ज्ञानवान् सन्त के पास केले लोगा आये और कहनेलगे कि इम अपनी जीविका दूढ़े अपवाने दूढ़े तब उन्होंने कहा जो तुम जानतेहो कि जीविकोहमारी अमुके स्थान विपे है तो वहां दूढ़ा बहुतिर पूछा कि महाराजसे अपनी जीविका मार्ग तब उन्होंने ने कहा कि जय महाराज भूलगये हीवें तब तुम सुरति करावो बहुतिर पूछा कि भरोसाकरे और देलें कि क्योंकर करेगा तब उन्होंने कहा कि भरोसा परीक्षा साथ करना भला नहीं बहुतिर उन्होंने पूछा कि भला फिर उपाय क्या है तब सन्तजीने कहा है कि उपायका त्याग करनाही उपाय है तात्पर्य यह कि प्रतिपालक श्री रामहीको जानना प्रमाण है ॥ अथ दूसरापद भरोसे का भय करे और रक्षा करने में ॥ ताते जानतू कि एक वर्ष से अधिक स्वर्ग के हेतु जिसने धन संवय किया तब वह भरोसे से गिरजाता है काहेसे कि गुह्यभेद महाराज के कौन नहीं जानता भया प्रकट स्थूलतापर दृष्टिराक्षी पर जयप्रयोजन मांघपर सतीपकरे रि थाहार एता जो भोजन करलेवे और भय इतना जो निगन्ता को दांफलेवे तब वह भरोसे पर दृढ़हुआपर जब चालीस दिन का संवयराधि तो भी भरोसा दूर नहीं होता और एक सन्तने कहा है कि संवयकरना भरोसे को कुंठा है एक और सन्तने कहा है कि चालीसदिन से अधिक संवयकरे तो भी भरोसा नहीं जाता पर आसरी उर्व संवयपर नाराभे और एक प्रीनिमान् ने कहा है कि मैं एक उत्तम भोग्यवान् के पास था वहां एक सन्त उनके दर्शन को आया तब

उन वैरागीने मुझसे कहा कि तुम उत्तम भोजन लेआवो तब भोजन आया। वह सन्त और वैराग्यवान् दोनों मिलकर भोजन करने लगे सो यह बात मुझको आश्चर्यवत् आई कि उन वैराग्यवान् ने आगे कबहुं ऐसे न कहा था जो ऐसा उत्तम भोजन लेआवो और प्रसादाभी किसी के साथ मिलकर नों पावते थे जब भोजन कर चुके तब प्रसाद जो बच रहा था सो उन सन्तने सब लेलिया और ख-लेगये तब मुझको और भी आश्चर्य आया कि बिना पूछे लेजाता कैसे प्रमाण है तब उन वैराग्यवान् ने कहा कि यह उत्तम सन्तजन हैं और दूसरे तेरे मिलने को आये थे ताते हमको यही सीख दीनी कि जिसको भरोसा दृढ़ हुआ है तिसको मन्वया करना भी कुछ हानि नहीं तात्पर्य यह कि मूल भरोसे का निराशा है सो अपने निमित्त सचय न राखे और जब सचय राखे तब ऐसे जाने कि यह धन और पदार्थ श्री सीतारामजी के भंडार विषे हैं और उन सचय पर भरोसा न राखे तब भरोसा इसका जाता नहीं सो यह चीर्चा असका अधिकार है जो इकने छाही होवे और जो गृहस्था होवे और बड़ा वर्षाशान्ता राखे तब असका भरोसा जाता नहीं पर जब वर्ष से अधिक सचय राखे तब भरोसा दूर होजाती है जैसे महापुरुष भी अपने कृतियों के निमित्त एक वर्ष का सचय कर देते थे और अपने निमित्त दूसरे बेलोका भी न राखते थे और जो रखते वो उनको कुछ घटना भी नहीं कि होना न होना भक्त संप्रदाय का तब को एक समान था पर और जीवों के समझाने के निमित्त ऐसे करते थे सो एक बार महापुरुष के मिली प्रीति का शरीर छूटा था तब पीछे उसके वस्त्र में से दो रूपये निकले तब महापुरुषने कहा कि दो दाग इसके मस्तक पर देवो सो यह चार्चा दो प्रकार कर समझी जाती है एक तो वह लोगों को छल करके आपको इकछाही दिखता था ताते सबके सम्-न्ध करके इतना द्रव्य देना प्रमाण हुआ और दूसरा यह कि जब छला भी न किया होवेगा तब भी सचय करने कर तबको परलोक विषे घटना होवेगी जेमे दाग देना मुख पर सुन्दरता को घटाता है वहुनि एक और प्रीतिमान का शरीर छूटा था तब महापुरुषने कहा कि परलोक विषे इसका मुख पूर्णतामी के चन्द्रमा की नाई होवेगा पर तब एक अवगुण इस विषे न होता तब सूर्य ही नाई इस का प्रकाश होता वहुनि लोगोंने पूछा कि वह अवगुण कौनया तब महापुरुषने कहा कि वस्त्र अपने एक वर्षके दूसरे वर्ष निमित्त रखता था सो यह उसके निश्चय



की कसरहे मर यह आर्चा भ्रमण है कि जो वासन नित्यप्रति चाँदिये तिनको रत्न  
 खाँड़े और अनाज और बख तो भ्रमण उपरान्त और भी आवते हैं और यह नि-  
 त्यप्रति काम्यबाले वासन आदिक नित्यनवीम नहीं पैदा होते सो यह नेत भग-  
 वतने रत्नी है तिसका त्योगना प्रमाण नहीं फिर बख जाईके गोरभी विपे काम नहीं  
 आवते तवाइनकी रसना बुद्धिके निरचयकी निर्वलता है अंबा ऐसे जानू कि  
 जयकोई ऐसा होवे कि मै भ्रमणी विना उसके हृदय विपे आतुरता होवे और और  
 लोंगों की आशखें तब उसको सभय रचना प्रमाण है काँहसे कि जब भजन  
 स्मरण विपे वृत्त ठहरे नहीं तवा बुद्धि प्रयोजन मात्र जीविका का सम्बन्ध राखे तो  
 भला है इस करके कि प्रयोजन स्वयं शुभ गुणों का यह है कि हृदय थीरामंजू की  
 ओर राखिएक ऐसे पुरुष होते हैं जो धनका सभय उनको बन्धमानी और वि-  
 क्षेपताका हेतु होता है और निर्द्वन्द्व विपे एकप्रविष्ट रहते हैं सो यह मनुष्य  
 विशेष है और एकापेसे पुरुष है कि जिनका सभय के उनका चित्त ठहरता नहीं  
 तिनको प्रयोजन मात्र सचया प्रमाण है पर जब अधिक राजसी विपे हृदय होजाये  
 तब वह श्रीतिमान नहीं कहावता ॥ अथ तीसरा पद भरोभे का विभक्त कर मन  
 में धितातो जानू कि जो सम्बन्ध अवरमही है सो तिमका त्यागना भरोमान ही  
 होता और शस्त्ररसना जो शत्रुको दूरकरे तब यह भी प्रमाण है जैसे शत्रुशत्रु विपे  
 बख पहिरे चाहे मार्ग चलने करके बख पहिरे तब भी प्रमाण है पर जपेपै करे  
 कि बख पहिरे और भोजन अधिक करले कि मार्ग विपे गरदी न व्यापेगी  
 सो यह प्रमाण नहीं और भरोसा नहीं कहा जाता काँहसे कि निमप्रकार भगवत्  
 ने प्रकृत सम्बन्ध राखे हैं तिनका त्याग करना प्रमाण नहीं जैसे एक जंगली पुं  
 रुप महापुरुषके पास आया तब महापुरुषने कहा कि तुम्हारा ऊठ कहाँ है तब उस-  
 ने कहा कि भरोसा करके जंगल में छोड़ दिया है तब महापुरुषने कहा कि पाँव  
 बांधकर भरोसा कर पर जब किसीको किसी मनुष्यसे कष्ट पहुँचे तब तिसका सो  
 दना ही भरोसा है जैसे भगवत्मे भी कहा है कि जब किसी मनुष्यसे तुपको दुःख  
 पहुँचे तब भगवान् त्रके उसके दुःखकी सहना प्रमाण है पर जब कोई दुःख मिद  
 अथवा मर्ण करके धान होवे तब उममें दूरहोना प्रमाण है पर जब शत्रु शत्रुके  
 निवृत्त करने निमित्त राखे तो भी धामरा गमोपरन राखे जैसे ताँता धारकी ल  
 गावे ताँता ताले पर प्रतीति जगवे धीरामही पर राखे काँहसे कि केतनाले तीव्रक

भी चोर वस्तु को ले जाते हैं सो भरोसवान्‌को लक्षण यह है कि जब घरमें चोरसा  
मयी लेजावे तब आज्ञा श्रीरागजूकी जानकर प्रमन्नहोवे जब घोंके टंग्वाजे को  
ताला देवे तब हृदयविषे ऐमेकहे कि हे महाराज मैंने ताला इस निमित्त नहीं  
दिया कि तेरी आज्ञासे विपर्ययहोवे और जो तेरी आज्ञामें भरोधन सामग्री किमी  
और भी जीविकाहै तौमी मैं प्रमन्नहू कादेसे कि हमारा मलाईसीमें दोगा जैसे  
तेने चाहाहोवे पर जब ताला देजावे और फिर घरआवे और देसे कि गृहकादार  
खुलाहुआहै और सामग्री नहीं रही और इम करके गोश्वान्‌होवे तब जाने कि  
भरोसा भरोसा पूर्ण नहीं यह भी मनका छलथों पर जब गृहकी सामग्री जावे और  
मुखमें कुछ किसीके आगे न फहे तो सन्तोषवानों विषे होताहै भरोसवान्‌ नहीं  
होता बहुरि जब मुखसे भी कुछ कहनेलगे और चोरकी टटकरे तब सतोष और  
भरोसा दोनोंसे गिरताहै सो जब जानलेवे कि मैं न भरोसवान्‌ न वैधर्म्यभतोप  
वान्‌हू तब यहगुण तो होताहै कि चोरके संबधकरके अनहोता अभिमानी नहीं  
होता बहुरि जब कोई ऐसे प्रश्नकरे कि जो इसको उस धनकी कुछ चाह न होती  
तो घरका ताला न देता सो जब रक्षा और चाह उस धनकी इमेको थी तब वस्तु  
के जानेकरके शोकवान्‌ क्योंकर न होवे तब इमका उत्तर यहहै कि श्रीराघवेजने  
इसको धन दियाहै सो जबतक इसके पासरहे तबनक यह जाने कि भलाई मेरी  
इसी धनमें है क्योंकि महाराजने मेरी भलाईके निमित्त मुझको दियाहै और जब  
धनजावे तब जाने कि भलाई मेरी इसीविषे महाराजने जानी है ताते महाराजने  
लालिया है ताते दोनों अवस्था विषे प्रसन्नरहे और प्रतीति दृष्टावे कि श्रीराम  
जो कुछ करते हैं जिसविषे मेरी भलाई होती है सो यह याची महाराजही भला  
प्रकार जानते हैं मैं नहीं जानता तिसपर दृष्टातहै यह जेमे कोई रोगीहोवे और  
पिता इसका वैद्य और इसपर अनि दयालुहोवे सो जब प्लक्षक आहार इस  
को देवे तौमी प्रसन्नहोकर खाता है और जानता है कि उसने मुझको आरोग्य  
जाना है तब प्लक्षक आहार दिया है और जब ऐसा आहार न देवे तब यों  
जाने कि इसने रोगी जानकर नहीं दिया सो जब इसप्रकार प्रतीति दृष्ट न दृष्टे  
तब यह भरोसा नहीं ऐसेही व्यर्थ वचन कहनाहै ॥ अथ युक्ति मगनेकी ॥ ताते  
जानतू भरोसवान्‌को पृ ६ युक्तिवाहिये प्रथम यह कि अपने गृहका दरवाजा  
जो बन्दकरे तो बहुरि जंजीर और ताने न लगावे और पटोमियों में भी बडन

न कहे कि तुम सुरतग्वना सहनरीनिमे ताला देलेवे जैसे एक भगोसवान् गृह के कपाटको धागा बाध जातेथे और कहतेथे कि जो कूकुरका गय न होना तो मैं धागाभी न बाधता । दूसरी युक्ति यह कि कोई वस्तु अधिक मोलवाली गृह में न राखे जो चोरको उसकी अभिलाषादोवे एक भगोसवान्के पास किसी धनी ने कुछ रुपये भेजेथे तब उन्होंने न लिये और कहतेलगे कि इम धनकरके मन विषे सकल्प यह होताहै कि चोर लेजावेगा और जब चोरलेजावे तब पाप विषे पड़ता है ताते मैं ऐसे नहींचाहता यह वार्त्ता एक और सन्तने सुनी तब कहने लगे कि यह वार्त्ता इनकी निर्वलता भरोमे की है, काहेसे कि बड़ बैराग्यवान् थे जब चोर लेजाता तब क्यामय उनको था सो यह वार्त्ता उल्लम भरोसे की है । बहुरि तीमरीयुक्ति यहहै कि जब गृहमे बाहर निरसे तब यह मनसागले कि जब चोर लेजावे और फेर न देवे तब मैंने उमकी कृपाकिया क्योंकि जबबह चोर मर्था है तब उसका अर्थ पूर्णहुआ और जो धनवान्है तोभी यह भनाई हुई कि औरोंका धन उसने न लिया ताते धनहमारा औरोंपर बारा सो यह वार्त्ता बड़ी दयालुताकी है चोरपर भी और औरोंपर भी ताते आज्ञा महाराजकी तो अवश्यही होनीथी पर इसको अपनी भावनाके अनुसार बड़ा लाभहुआ कि एक दामका सहस्र फल होता है इसीपर महापुरुषने कहाहै कि जब कोई भगवत्के अर्थ शीशदेने युद्धविषे जावे तब भागे उमका गरीरछूटे अथवादे पर उमको वह भावनाका फल होताहै काहेमे कि उमकी भावना शीघ्र देनेकीथी । बहुरि चौथी युक्ति यह कि जब इसका धनजावे तब शोक नकरे और जाने कि गेरा भला इसी में था जब ऐसे कहे कि श्रीगुणार्पण तब उसकी हृदमी न करे और वह जब फेर देवे तौभी अगीकार न करे जब अङ्गीकार करे तब भी वस्तुइमीकी थी ताते दोष उसको न लगेगा पर भरोसा के पद में फेलेता सोभिन नहीं है जैसे एक सतकी गऊ चोर लुरालेगये तब उन्होंने हृदकी पर कहीं दृष्ट न आया तब कहने लगे कि भगवत् निमित्त हुआ और भजन करने लगे बहुरि किसी पुरुषने आन कहा कि गऊ तुमारी अगुरुस्थानमें है तब उउभडेहुये बहुरि निचारकर कहनेलगे कि मैं भूवाहू काहेने कि गौत्री भगवत् निमित्त किनावावाने उत्र में काहेको जानाहू ताते जाना दयागदिया बहुरि एक पीनिपावने कहाहै कि गेने अनुभव पान विषे भगने एक नियमको स्वर्गा विषे देखा कि शोक

घान्हे तब भेने।उनेमे पूछा कि तुम शोरुवान् क्योंहो तब उन्होंने कहा कि यह शोकमेरा अमित्हे इस निमित्त कि प्रथम स्वर्ग में उत्तम स्थान मुझको देवतों ने दिलायेथे जिनसे ऊंचा और कोई न था जब मैं वहां जाने लगा तब मुझको जाने न दिया काहेसे कि यह स्थान उसको प्राप्त होताहै जो अपने वचनों का निर्वाहमी करताहै सो तैने अपने वचनका निर्वाह नहीं किया अर्थात् तुमने कोई पदार्थ भगवत् अर्थ कहाथा सो फेर उसको अङ्गीकार किया सो जब तुम अङ्गीकार न करते तब तुमको स्थान यहां मिलता बहुरि एक और मनुष्य की थैली रुपयोंकी सीधते में किसीने लेलीथी जब वह जागा तब दूढ़नेलगा जब न पाई तब एक भजनवान् से कहनेलगा कि तुम थैली हमारी लेआयेहो तब वह भजनवान् उसको अपने गृहमें लेआये और उसमे पूछा कि तेराधन केताया सो जेता उसनेकहा तेताही देदिया जब वह वहासे लेकर बाहरलेआया तब किसीने कहा कि थैली तुम्हारी तुम्हारे मित्रने हासीकरके लेलीथी तब वह पुरुष वह रुपये भजनवान्के पास फेर लाया तब उसभजनवान्ने अङ्गीकार न किये और कहने लगे कि भेने तो श्रीराम निष्ठावर कहकर दिये थे ताते मैं नहीं फेरसका बहुरि उस पुरुषने कहा कि मेरी थैली भिलगई अब मैं तुमसे दरद क्योंकरलू अन्तको दोनोंने अङ्गीकार न किये यह थैली अर्थियों को वाटदीनी इसीप्रकार जब कुछ भोजन किसी अर्थी के निमित्त कियाहोवे और उसके पास लेजावे सो जब वह अर्थी वहांमे चलाजाये तब वह भोजन अपनेगृह में फेरलाना प्रमाण नहीं किसी और अर्थीको देदेवे छे बहुरि पांचवीं युक्ति यह कि जिसने इमका धन सामग्री हरलियां हीवे तिसके निमित्त शाप न देवे कि आपदेनेसे भरोसा और बैराग्य दोनों नष्ट होजाते है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक साधुकी एक दूधकी गाय किसीने चुंगयलीथी तब वह साधु कहनेलगे कि गऊको जब चोरलिये जानेथे तब भेने देलाया तब लोगोंने पूछा कि तुमने उनको क्यों न बरजा तब उम साधुने कहा कि मैं उसकाल भजनके रसमें मग्नथा ताते भेने कुछ न कहा यहसुन कर चोरको बुझी अगीगदेनेलगे तब साधुनेकहा कि तुम उसको बुगवचन न कहो काहेसे कि भेने उमको बलगाहै बहुरि लोगोंने कहा कि तुम ऐसे तामसी पुरुषको शापदेने नहीं देते तब साधुनेकहा कि उमने अपने ऊपर अन्याय किया है मेरेऊपर तो नहीं किया उमको अपनी बुगईदी बहून है हम उसको क्याकई

इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि जो अपने गर्वको शापदेता है तब अपती गलाईका बदला लेलेता है ५ छट्टीयुक्ति यह कि जब हृदय विषे शोकले आवे तो उस चोरके निमित्त शोककरे कि यह दुर्गार्ड जो उससे हुई है इस पापकरके उसको दण्डदेवेगा, बहुरि धन्यवादकरे कि मेरे धन सामग्रीको दूमेने लिया है मेने तो किसीका सुखनहीं लिया ताते, मेरे धनविषे यह विघ्न हुआ है मेरे भर्गविषे तो निम्न नहीं हुआ ताते जब किसीसे इसका पापहोजावे और यह हृदयविषे क्रेशान करे कि इसमे बुराभया है परलोक विषे दण्डका भागी होवेगा तब वह लोगोंपर दया के देणमे भिन्नहोगया इसीपर एकवार्त्ता है कि एक साधुका बस, किसीने चोराया था तब वह साधु रुदनकरने लगा तब किमीने पूछा कि तुम बसके निमित्त रोवते हो तब साधुने कहा कि मुझको चोरपर दया आवती है कि जब वह परलोक विषे जावेगा, तब उसमे पूछेंगे सो वह क्या उत्तरदेवेगा ॥ अथ चौथापद भरोसे का ओपधि करना और विघ्नकर्त्ताका टारना ॥ सो यह भी तीनप्रकारका है प्रथम, यह कि अवश्यमेव है जैसे भूखका निवृत्तकरना भोजनकर होता है और तृपाका निवृत्तकरना जलकरने होता है और जब अग्नि लागे तब उसपर जल टारना सो इनका त्यागना भरोसा नहीं होता यह बात प्रमाण है १ दूसरा यह जो अवश्यही भी, न होवे और अवश्यही के निकट कदाचित् किंचित् होइ जैसे मन्त्रयन्त्र और टोनाहोता है सो इनका त्यागनाही भरोसा है २ और तीसरा इन के मध्य हे जैसे फस्टकरावना और जुलावलेना और गरमीके रोगकी ओपधि गरम करनी और गर्दीके रोगकी गरमकरनी सो इनका त्यागना प्रमाण नहीं और इनका करना युक्ति भरोमेको भी नहीं केने अवसर विषे न करनेसे करना विघेप है और केने समय विषे न करना विशेष है इसीपर महापुरुष की साक्षी है सो कहनी और करनी करके है सो कहनी यह है कि उन्होंने कहाथा कि हे जीवो ! श्रीरामजूकी रची हुई ओपधिको अवश्यकरो क्योंकि कालमृत्यु के बिना पैमा कोई रोग नहीं जिमकी ओपधि न होइ पर कोई ज्ञानत्रा है कोई नहीं जानना तब लोगोंने पूछा कि ओपधि और मन्त्र श्रीरामजूकी आज्ञाको दूर करसके हैं तब महापुरुषने कहा कि यह भी रामरजायमे है ओर रुधिरका निष्कार बढ़ावना यह भी तुम्हारा नाश करनेहाय है गदाराजकी आज्ञामे यह वार्त्ता अप्रमाण नहीं रुधिरका निकामना और मर्ष को दूर करना अप्रवा अश्रितका निवृत्त करना सो

इत्यादिक इमके विनाश करनेहारे हैं सो इनको न करना यह मरोसी नही क-  
 हावता इमीपर एक मिलापीमे महापुरुष ने कहाया कि रुधिर आपता निकासी  
 और एक ओर की आर्वाको दर्दया, निसको कडा कि खजूर न खावो और शरद  
 आहारखावो और रहनि उनकी यहथी कि अजत नेत्रों भिने नित्यप्रति डारतेये  
 और प्रतिवर्ष रुधिरभी निकसवावतेये और जुलाबभी करनेये, और जब हाथ पात्र  
 शीशको कुछ सेदहोना तब ओपधि करते थे इसीपर एकवार्ता है कि एकसन्त  
 के कुब्ररोग होताभया तब लोगोंने कहा कि अमुक ओपधि इमरोगकी है और  
 आगे हमने भी कियाहै तुमकरो तब सन्तने कहा कि मैं ओपधि नहीकरता जब  
 वहरोग अधिकहुआ तब लोगोंने कहा कि ओपधि इसकी प्रगट है तुमकरो तब  
 सतने कहा कि चाहे यहरोग हमकोरहे पर दवाई न करेंगे तब उमसतकी भगवत  
 की आकाशवाणीहुई कि मैं अपनी दुहाईकरके कहताहू कि जबलग तू ओपधि  
 न करेगा तबलग यहरोग निवृत्त न होवेगा सो उम सन्तने ओपधि किया और  
 रोग दूरहोतभया तब उमसन्तके हृदयविषे कुछ सँगयआया तब आकाशवाणी  
 हुई कि इनवनस्पतियोंविषे जो मैंने शक्तिराली है और इन ओपधियोंमें गुणराले  
 हैं सो तू अपने मरोसेकरके दूरकिया चाहताहै और एकसाधुने महाराजके आगे  
 प्रार्थना करीथी कि मेराशरीर निर्वलहै तब उसको आकाशवाणी हुई कि हृत्त घी  
 आदिक बलदायक आहारखावो सो तात्पर्य यह कि ओपधि करना रोगको नि-  
 वृत्त करनाहै जैसे भूष और टपके निवृत्त करने को जल और अनाजहै तेमेही  
 ओपधिगी है पर हृदयकी प्रतीति श्रीगमहीपर रावे और एक और सन्तने महा-  
 राजके आगे विनती करीथी कि रोग और अगेगता किसकी प्रेरणामे होने हैं तब  
 आज्ञाहुई कि दोनों भेरीही ओरसेहैं वहुँरि प्रार्थनाकरी कि फिर वैद्य किसकाम आ-  
 वता है तब आज्ञाहुई कि ओपधिकरके उनकी जीविका इसीप्रकार रची है और  
 मेरे जीवोंको धैर्य देने हैं सो मरोसा इसविषे हृदयकी समक और अस्या क-  
 रके होता है कि हृदयकी प्रतीति श्रीधनुन्दनजी पर रासे ओपधियोंपर न रासे  
 काहेमे कि केने लोग ओपधि भी खाने हैं और मृत्यु होते हैं पर दागका कसना  
 भरोसा पिराय देता है और दाग लगावना किसी रोगकी निवृत्ति के निमित्त  
 पूमाण भी नहीं काहेमे कि दागकरके बेर बहृत होनाहै और रुधिर कदापने  
 और ओपधि खाने भी नाई नहीं ॥

असतो

विषे ओषधि न खानाभी प्रमाण है और महापुरुष के धवन और करतूतिमें विष-  
 र्थयभी नहीं ॥ तार्ते जान तू कि केने सन्तजनोंने ओषधि भी नहीं करी है पर  
 जब कोई इस प्रकार कहे कि जो ओषधि न करना प्रमाण होना तो महापुरुष ओ  
 पधि न करते सो उन्होंने तो ओषधि किया है तब इसका उत्तर यह है कि ओषधि  
 न करना षट् कारणोंकर होता है प्रथम यह कि जिनमें यह बात प्रत्यक्ष जानी है  
 कि मृत्यु मेरी निकट आई है तब वह ओषधि नहीं खाना जैसे एक मन्त्र रोगी  
 हुआ था तब लोगोंने कहा कि वैद्य को क्यों नहीं बुलावते तब उन्होंने कहा कि  
 वैद्य मुझको जानेंगे सो इसका प्रयोजन यह कि मरना अपना उन्होंने जाना  
 था कि निकट आया है दूसरा प्रकार यह कि जो रोगी जन्म परलोक मार्ग के  
 भयविषे हृदय को लगाये होता है तब ओषधिका और हृदय नहीं देता इसीपर  
 वार्ता है कि एक साधुको रोगके समय विषे किपीने शोभते देखकर पूछा कि तुम  
 क्यों रोवते हो और तुम्हारी चाह क्या है तब उन्होंने कहा कि श्रीमीतारागजीकी  
 दया चाहता हूँ वृद्धि लोगोंने कहा कि वैद्यको बुलाइये तब उन्होंने कहा कि वैद्य  
 नहीं मुझको रोगी किये है और एक और साधुकी आँखोंकी पीड़ा थी तब लो  
 गोंने कहा कि ओषधि नहीं करते तब उन्होंने ने कहा कि ओषधि में उत्तम एक  
 क्रिया विषे लगा हूँ सो इसका दृष्टान्त यह कि जैसे किसीको राजा के निकट  
 पकड़ कर ले जाये और उसकी राजा की बहुत ताड़ना का गय होवे वृद्धि  
 उस वास्तव विषे कोई उसको कहे कि भोजन परले तब वह पुरुष कहता है कि  
 मुझको भोजन की रुचि क्यों कर होवे जो मुझको ताड़ना दोषी है सो यह  
 कहना उसका यथार्थ है तैसेही जो पुरुष परलोकके भयविषे रहने हैं निनयो ओ  
 पधि करना भूलजाता है वृद्धि एक सन्तसे किसीने पूछा कि आहार तुम्हारा  
 क्या है तब उन्होंने कहा कि श्रीरामनाम स्मरण मेरा आहार है वृद्धि लोगोंने  
 कहा कि हम तुम्हारेबले पूछते हैं तब उन्होंने कहा कि श्रीघनानन्दनके रूप अन्या  
 का विचार हमारा चल है वृद्धि लोगोंने कहा कि हम अन्न आहार पूछते हैं  
 तब उन्होंने कहा कि यह वार्ता श्रीराघवस्य सर्वे विष्णुपर गत्वा ५ तीसगवपर  
 यह कि रोग बहुत दिनोंका होवे और रोगी जानमा होवे कि ओषधि खानेविषे  
 सहाय है कि रोग दूर होवे अथवा न होवे तब हम कि वैद्यकता ब्रातांगी नहीं जैसे  
 एक मनुषगीको रोगीहूँमा और उमने चाहा कि ओषधि करू पर यह विचार

उपजा कि आगे भी केंतोंने रोगके, ओपधि किये हैं और उनके शरीर छूटाये ताते हैं, काहेको ओपधि, कुरु, सो प्रत्यक्ष ज्ञातपर उनकी । दृष्टि थी ३ चौथा प्रकार यह कि रामानुरागी इस प्रकार नहीं चाहता कि रोग मेरा निवृत्त होवे काहेमे कि रोग करके मुझको लाभ होवेगा और दूसरे मेरे धैर्यकी परीक्षा होवेगी इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि श्रीरघुनाथजी अपने दामोंको रोगविषे परखा चाहने है जैसे स्वर्ण को अग्नि विषे परखते हैं, सो जो सोना खरा होता है, वह निर्मल होता है और जो खोटा होता है वह काला होजाता है, तैसेही सच्चा अनुरागी रोग के अतसर से, भली भाँति निर्मल होइ निकलता है, और कच्चा श्रीरामजी को चरहना देता है जैसे एक साधु औरों को, रोगकी ओपधि चलावते थे, और आप ओपधि, त, खाते थे और कहते थे कि बैठकर भजन करना रोगसहित मुझको भियतम है जो अरोग होकर खड़ा होकर भजन करूँ, अर्थात् प्रकृत प्रकार यह है जो कोई जाने, कि मैंने आप बहुत किये हैं और यह रोग मेरे पापों का पुरष्कार होना है तब वह ओपधि नहीं करता, जैसे महापुरुषने भी कहा है कि रोग जो मनुष्य को आवता है सो इसके पाप दूर करता है और यह शुद्ध होता है जैसे बिजली निर्मल होती है इसीपर, एक साधुने, कहा है कि जिसके ऊपर रोग मात्रे और वह प्रसन्न न होवे तब जानिये कि इस वार्ता को इसने, गंभीर प्रकार नहीं जाना है कि रोग करके, मेरे पाप क्षय होते हैं इसीपर एक सन्तने, एक रोगीको देखा और महाराजसे प्रार्थना करी कि हे स्वामिन् ! इसके ऊपर दया क्यों नहीं करते तब आकाशवाणी हुई कि इसके ऊपर, यही मेरी दया है जो रोग करके इसके पाप क्षीण होते जाते हैं और इसका पद उत्तम होता जाना है । अर्थात् प्रकार यह कि रोगी यों जाने, जो शरीरकी, अरोगता करके विषयों का सुख और अचेतना होती है और मन्, सुखता, श्रीरघुनन्दनजीसे होती है और रोग करके, मुझमे, अचेतना दूर होती है ताते मेरा हृदय श्रीसीतारामजी की ओर रहता है और जिसका श्रीरघुनाथजी, भला चाहने हैं तिसको रोगोंके संग सचेत करने हैं इसीपर मन्त्रज्ञों ने कहा है कि अनुरागी जन तीन वार्तामे खाली नहीं होने एक निर्द्धनताई १ दूसरे रोग २ तीसरे जयमान ३ जैसे महापुरुषने भी कहा है कि महाराजने यों कहा है कि निर्द्धनताई और रोग मेरा बधने सो मे यह बधन उमीको दानता है जिस को मे प्यारा होता है ताते अरोगता पापोंका कारण है और रोग विषे इसजीवकी



भलाइहै इसीपर एक साधुने किमीमे पूछाथा कि तुम्हारा क्या हालहै तब उस  
 ने कहा कि कुशल है तब सन्तने कहा कि कुशल सुख तब होताहै जिम दिन  
 पाप न होवे औरजन पाप करिये तब कैसा सुखहै और एक राजाने जो आप  
 को ईश्वर कहा तिसका यही कारण था कि चारसौ वर्षकी उसकी आयुपु हुईथी  
 औरउसको कोई रोगभी न हुआ ताने आपको ईश्वर माननेलगा परजब एक  
 क्षणभी उसको रोगहोता तब ऐसा अभिमानो न होता सो जब यह मनुष्य एक  
 दोवाररोगी होताहै और पापोंका त्याग नहीं करता तब इसको धर्मराय कहते  
 हैं कि हे अचेत ! मैंने तुम्हको रोगरूपी सन्देशा भेजाथा और तने न सुनाइसी  
 पर एक सन्तजनोंने कहाहै कि हरिमक्ष चालीसदिनभिये इतनी बातों से खाली  
 न होवे शोक अथवा रोग अथवा भय अथवा कोई धनका विषय इनचारों मेंसे  
 कोई होवे तो भलाहै इसीपर बार्त्ता है कि एकदिन महापुरुषके पास कोई रोग  
 की चर्चा चलावतेथे तब एक मनुष्यने कहा कि यह कैसी बार्त्ता है हग तो रोग  
 को जानते भी नहीं तब महापुरुषने कहा कि मुझमे दूरहोवो और कहनेलगे कि  
 जो किसी नारकी को देखना होवे तो इसकी धोर देखो एक दिन महापुरुषकी  
 स्त्रीने महापुरुषसे पूछा कि स्वामीजीजो पुरुष श्रीरामहेतु शीघ्र अपे उसकेपद  
 कोभी कोई पावताहै तब महापुरुषने कहा कि जो पुरुष एक दिनभिये भीमवार  
 मृत्युको चित्तमें लावे सो उस पदको पावता है सो इस बार्त्ता को रोगीही चित्त  
 करताहै यह सग्य नहीं ॥ अथ प्रदकारण ओपाये न करनेके ॥ सो बहुत पुरुषों  
 ने इन पदकारणों कर ओपाधि नहीं किया और महापुरुषइन पदबार्त्ता से उत्त  
 धित हुयेथ ताते ओपाधि इसकारणमे करतेथे कि और लोगभी इसी भाति बरे  
 तात्पर्य यह कि प्रत्यक्ष उपाधियोंका त्यागकरना भरोसे को खण्डित नहीं करतो  
 एक महापुरुषके प्रियतमथे सो किसी देशको गमन करतेमये तब आगे किमीने  
 कहा कि इसदेशभिये रोग बहुतहै और लोग बहुत मृत्यु होतहै तब किमीने कहा  
 कि जाइये भगवत् की आज्ञा में भय न करिये और किसी ने कहा कि न जाइये  
 तब महापुरुषके प्रियतमने कहा भगवत् की आज्ञाकरकेही भगवत् की आज्ञासे भा  
 गना भगणहै तब और एक प्रीनिमान से भुला कि तुमने महापुरुष का सत्संग  
 बहुत कियाहै तुम उनका सम्मत इम भिये सुनावो तब उन प्रीनिमानने कहा कि  
 एकदिन महापुरुषने ऐसे कहाथा कि जो एक जगलभिये हरीघासहोवे और एक

सूखा जगल होवे तब हे लोणोके जगल विषे पशुना को चखाहाले प्रोताहे मो  
 ऐसेही प्रमाणहे सूखे जगल विषे लेजाना प्रमाण नहीं और महापुरुषने एमेभी  
 कहा है कि जहा रोग करके बहुत मृत होते होवे तहा जाना प्रमाण नहीं परन्तु  
 जब आगेसे वहां रहा होवे तब वहांसे भागना प्रमाण नहीं यह मुनेर उस प्रीति-  
 मान्ने कहा कि भलाहुआ जो मेरी समझमी महापुरुषके कहने के अनुसार हुई  
 और विपर्यय न हुई तब यही सवने प्रमाण किया कि वहां न जाइये पर यह जो  
 कहाहे कि जहा अधिक मृत होते होवे और रोगकी अपिकता होवे और यह भी  
 आगेसे वहां रहता होवे तब वहासे छोड़ न जावे सो इसकारण करके कहा है कि  
 जब यह वहांसे छोड़ जावेगा तब और लोगोंकी खबर कब न लेवेगा और उंम  
 देगकी हवाभी इमधिषे प्रवेश करजाती है तब भागना व्यर्थ है तबि जहा जा-  
 वेगा तहाभी रोग फैलजावेगा ताते वहामे छोड़जाना प्रमाण नहीं इमकारणे कि  
 जिमप्रकार रणमे भागने में अपर घोडाओं और घायलों का मन टूटजाताहे  
 तैसेही यहा रोगियों का मनभी टूटजाताहे कि अब हमारा टहल करनेहारा भी कौई  
 नहींरहा ताते रोगियों का मन अवश्यही होतीहे और भागनेवाले का मृत्युमे  
 वचना संशय विषे है ताते जानतू कि रोगको प्रसन्न न रहना यहलक्षण भरोमे  
 का है और रोगको प्रसिद्ध करना प्रमाण नहीं पर किमी प्रयोजन करके प्रमाण  
 है जैसे वैद्य के आगे रोगकी व्यथा कहनी अथवा अपनी दीनता कहनी को  
 अभिमान और मनकी प्रबलता को घटावे जैसे एक रोगी प्रीतिमान् से लोगों  
 ने पूछा कि आपके कुशलहे तब उन्होंने कहा कि नहीं तब वह लोग विस्मय  
 भये तब उनप्रीतिमान्नेकहा कि भगवत्केमाय अपना वनदिधाता प्रमाणनहीं  
 ताते उन्हीको एमे कहना प्रमाण है जो होने कब अपनी दीनता कर्ने थे इती  
 कारणे से और पुनन्दनज्जमे प्रार्थना करते थे कि हे महागज ! मुझकी अपनी  
 करके घेमा धैर्यदीजे जो दुःख और अपमान को सहें इमीपर महापुरुषने कहा  
 है कि भगवत् में कुशल क्षेममांगो दुःख न मागो मो एमेही कारण करके गेग  
 का प्रकट करना प्रमाण है पर जब एमा कारण न होवे तब कदा प्रमाण नहीं  
 पर जब हे तब भी श्रीगधैवज्ज पर गानानि न रावे पर करने गुणगवना विशेष  
 हे काहेते कि कहने विषे अरु यही अधिक दुःख कह वेनाहे और लोग जान  
 लेते है कि यह गिला परता है तब शरद स्वाम निवासना भी प्रमाण नहीं

यह मा ग्लानि होती है वहुँरि श्रीरामानुगगी ऐसे दृष्टे हैं कि जब रोगी होते थे तब गृहकादार बन्दकरलेते थे कि पूछने कोई न आवे ॥

### नवासर्ग ॥

मीति प्रेम और धीरामनी की भासा के मानने का पर्यन्त ॥

ऐसे जान तू कि भगवद्भक्ति सर्व अवस्थाओं से उत्तम अवस्था है और सर्व शुभगुणों का फल यही है काहेसे कि पापों का त्यागना इस निमित्त कहाते कि इस करके हृदय शुद्धहोता है और श्रीरामभक्ति विषे दृढ़होता है जैसे त्याग और वैराग्य और सन्तोष और भय और और जो इनकी नाई सर्व शुभगुण हैं सो इनकरके श्रीरामभक्ति का अधिकारी होता है वहुँरि प्रेम और श्रीरामजु की आज्ञा माननी भक्तिका फल है ताने इमपुरुष की पूर्णनाई यह है कि इसके हृदय विषे श्रीरामजु की प्रीति प्रबलहोवे और अवर किसी पदार्थकी प्रीति न रहे और जब ऐसी प्रबलप्रीतिको प्राप्त न होमके तब चाहिये कि और पदार्थों की प्रीतिसे श्रीरामप्रीति अधिकहोवे पर श्रीरामप्रीति का पहिँचानना ऐसा फडित है कि पूर्वी परिहृत श्रीरामजु की प्रीतिको पहिँचानतेही नहीं और यों कहते हैं कि प्रीति उसकेसाथ होती है जिसकारूप मनुष्य की नाई होवे अन्यथा नहींहोती ताने वह परिहृत इमप्रकार कहते हैं कि श्रीरामजी की प्रीतिका अर्थ यह है कि श्रीरामजु की आज्ञा माननी सो जिसका निश्चय ऐसाहोरे तब जानिये कि उसको धर्म के मूलकी बृष्ण नहीं ताते इमका यवान करना अधिक प्रमाण है इसी कारण करके प्रथम सन्तजनों के वचनों की साक्षीसयुक्त श्रीरामजु की प्रीति प्रमाण कहूंगा वहुँरि प्रीतिकारूप और उसके लक्षण कहेगा ॥ अथ प्रकट करनी स्तुति प्रीतिकी ॥ ताने जानतू कि सर्व सन्तों का मत यही है कि श्रीरघुनन्दनजु के साथ प्रीति करनी अधिक प्रमाण है और इसीपर महाराजने भी कहा है कि जो पुरुष मेरेसाथ प्रीति करने हैं तब मैं भी उनके साथ प्रीति करत हूँ और महापुरुषने भी कहा है कि सर्व जीवोंका धर्म तब दृढ़होता है जब मरुत पदार्थों से अधिक श्रीरघुनन्दनके साथ प्रीति करे और महाराजने भी ताड़ना फाके कहा है कि जबलग माना पिता पुत्र उन व्याहार मदिग और अरु सर्व माममी साथ तुम्हारी प्रीति है तब निस्सन्देह जानो कि परमदुःख को प्राप्तहोवोगे और एक पुरुषने महापुरुषने कहाथा कि मैं महाराज और महागजके प्रियतमों को प्रियतम

रखेनाहूँ तब उन्होंने कहा जो तू अपने ऊपर दु खको आया जान और एकवार्त्ता है कि एकसतका जीवलेनेको भगवत्दूत आये तब उन्होंने कहा कि कभी तुमने देखाहै कि किसी प्रियतमका जीव किसीप्रियतमने लियाहोवे तबसन्तको आकाशवाणीहुई कि तैने कभी देखाहै जो प्रियतम के दर्शनको कोई प्रियतम नहीं चाहता और अपनाजीव प्रियतम से प्याराकर रखताहै यह सुनकर सन्तने दूतोसे कहा कि अब मैं प्रसन्नहू मेराजीव गीघ्र निकासलो और महापुरुष भी इसप्रकार प्रार्थना करतेथे कि हे महाराज ! मुझको अपनी प्रीतिदेवो और अपने प्रियतमों की प्रीति भी मुझको प्राप्तकरे और जिस पदार्थ करके मैं तेरे निकट होऊ सो तिस पदार्थ की प्रीतिभी मुझकोदेवो और जैसे ग्रीष्मऋतु विषे प्यासे पुरुषको जलके साथ प्रीतिहोती है सो तिमसे भी अधिक आपकी प्रीति मेरे हृदय विषे प्रयत्न होवे वहरि एक जगली पुरुषमहापुरुष के निकट आकर पूछनेलगा कि हे महाराजके प्यारे ! परलोकका समय कब आवेगा तब महापुरुषने कहा कि परलोकका तोशा तेरे पास क्याहै तब उसने कहा कि जप तप तो मैंने बहुत नहीं किया परमें महाराजको और उसके प्यारोंको प्यारारखताहूँ वहरि महापुरुष ने कहा कि इमलोक विषे जिसके साथ किसीकी प्रीतिहै सो परलोक विषे उमीको प्राप्तहोवेगा और एक और सन्तने कहाहै कि जिम पुरुषने केवल श्रीसीतागण जूकी प्रीतिकारम चान्धाहै सो सर्व ससारसे मुक्तहोताहै और जगत्के मिलापको भिस जानकर त्यागकरताहै और उसका आपा महाराज की प्रीति विषे लीन होता है और ऐसेही एक और महात्माने कहाहै कि जिस पुरुषने श्रीराम को पहिचाना है उसकी प्रीति श्रीरामके साथही होती है और जिम पुरुषने माया को छलरूप जानाहै उसने मायाका त्याग कियाहै और जिज्ञासु जबजग महा राजसे अचेत नहीं होता तबजग स्यूक्त पदार्थों विषे प्रसन्नहोताहै और जब माया के छलोंको विचार करके देखताहै कि इनमे रहिनद्योना कठिन है तब शोकवान् होनाहै और एक महापुरुष एकसमा विषे जाय पदृषे और उनके गरीर बहत क्षीण देखते भये तब उनसे पूछा कि तुम ऐसे निर्धन क्यों हृये हो तब उन्होंने कहा कि हम नरकोंके भय करके निर्बलहृये है वहरि उन महापुरुष ने कहा कि निस्तन्देह महाराज तुमको नरकों से बचावेगा तब आगे और समा विषे गये और उनको उन्होंने भी अधिक निर्बलदेखा वहरि उनसे पूछनेभये कि तुम ऐसी

क्षीणता ओर त्रिपु निमित्त प्राप्त हुये हो तब उन्होंने कहा कि इस स्वर्गकी इच्छा  
 करने क्षीण भये हैं वृद्धि उन महापुरुष ने कहा कि भगवत् तुम को तिसमन्द  
 स्वर्गके सुखदेवेगा तब आगे एक और सगति विप गये और इनके शरीर को  
 उन दोनोंसे भी अधिक क्षीण देखते भये पर मस्तक तिनका प्रकाशकरके दर्प  
 एवत् मदाउज्ज्वल था वृद्धि उनसे पूछने लगे कि तुम इस अवस्था में क्यों कर  
 प्राप्त हुये हो तब उन्होंने कहा कि इस श्रीरामजी की प्रीतिकरके क्षीण हुये हैं वृद्धि  
 वह महापुरुष उनके पाम धैर्य भये और कहने लगे कि तुम महाराज के तिसन्द  
 वर्ती हो और मुझ को महाराजने तुम्हारी सगति करनी कही है और तिसन्द  
 ने कहा है कि जो जिसके पथ और मत विपे होवेगा सो परलोक विपे लमी के  
 नामसे बुलाया जावेगा और जो केवल श्रीरघुनन्दन के प्रियतम हैं तिनको श्री  
 रघुनन्दन के प्यार कहकर बुलावेंगे तब वह श्रीरघुनन्दन जनचित चन्दन के  
 तिकट आवेंगे और उनका हृदय प्रसन्नता करके निर्मल होवेगा और महाराज  
 ने कहा है कि मैं तुमको सव प्रकार प्रियतम रखता हूँ तापे चाहिये तुम भी मेरे ही  
 साथ प्रीतिको ॥ अथ प्रकृतकरना रूप प्रीतिक ॥ ताने जानतू कि यह शुद्ध  
 निर्मिकार अगाधिक स्वरूप ही प्रीति ऐसी कठिन है कि केते पुरुषोंने इस कान-  
 तकार किया है और कहते हैं कि भगवत् के साथ प्रीति करनी असंभव है ताते  
 इसका सोचना अधिक पूना है सो यद्यपि इनमें बहुत सुखवचन चलेंगे जा  
 सा किमीका समझने कठिन है पर ये दृष्टानके साथ ऐमे प्रमिद्ध रूपगा कि जो  
 कोई इसमें हृदयदेवे तब सुगम ही समझने ताते प्रथम प्रीतिकामुनी पहिचानना  
 चाहिये कि क्या है सो अर्थ यह है कि जो पदार्थ इस पुरुष को डष्ट होत है तिस विपे  
 चित्तकी वृत्ति में लचरोती है और वही लच जव दृष्ट होती है तब उसीको प्रेम  
 कहते हैं और विप्रीतिक अर्थ यह है कि जो पदार्थ अनिष्ट होता है तिसमें निष  
 की वृत्ति ग्लानि पकड़ती है और जिस पदार्थ विपे पर और ग्लानि कुछ न  
 होवे तदा प्रीति और विप्रीतिक रूप प्रकृत छुद नहीं होना पर यों भी जानना  
 चाहिये कि इष्ट और अनिष्ट क्या है ताने जानतू कि तिसमन्दके सर्व पदार्थ  
 हैं सो एक भवे कि यह पदार्थ को सुखावके अनुसार है और तो निष ही वृत्ति  
 उनको चाहती है सो तिसको इष्ट कहते हैं और दुर्ग इतमकार हो कि यह तिस  
 न्यभाय के विपर्याय है सो तिसको अनिष्ट कहते हैं २ और जो पदार्थ तेरे

मानु के अनुसाराओंके विषयमत्त होतीं मांतिम को इष्ट और अनिष्टो नहीं कं-  
 होते ३ ताते, योंभी जासैना चाडिसे कि प्रथमतःबल पदार्थका तुम्हको इष्ट और  
 अनिष्ट नहीं भासैना जेबलमा उसकी ज्ञान तुम्हको प्राप्त होवे और सर्वपदार्थों  
 की ज्ञान बुद्धि और इन्द्रियों करके होतो है सो इन्द्रिय पाच हैं और एक एक  
 इन्द्रियका भिन्नभिन्न विषय है सो अपने विषयों की प्रीति रखती हैं अर्थ यह कि  
 चित्तको उसविषे सँच होती है जैसे नेत्रों का विषय सुन्दर रूप है और नागापूकार  
 के फूल और जो इसकी नाई है सो अचञ्चदी नेत्रों को प्रियतम लगते हैं  
 और रसनाका विषय स्वाद है और श्रवणोंका विषय राग और तोहरे और ना-  
 सिकाका विषय सुगन्धि है और त्वत्राका विषय स्पर्श है सो यह सब पदार्थ इंद्रि-  
 योंके इष्ट हैं और चित्तको सँचनेहारे हैं पर यह सकल पदार्थ पशुओंको भी प्राप्त  
 होते हैं और सुक्ष्म इन्द्रिय बुद्धि है सो केवल मनुष्यके हृदय विषे होती है और  
 उसी बुद्धिको प्रकाश अथवा बूझ और जान कहते हैं सो यह ऐक्यीचस्तु के  
 नाम है और इसी बूझकरके मनुष्य पशुओंसे विशेष है सो तिस बूझकी भी एक  
 विषय है और उसको बोधी विषय प्रियतम है जैसे इन्द्रियोंको अपनी अपनी विषय,  
 प्रियतम है ताते जो मनुष्य पशुओंकी नाई बूझमे अचेत है और पच इन्द्रियों के  
 विषय भिन्न और बुद्धि नहीं मगभता वह पुरुष बूझता विषय जो मजन की  
 आनन्द है तिसकी नहीं समभता और हमने यह प्रतीति भी नहीं होती कि म-  
 जन करके प्रमानन्दको प्राप्त होते हैं और तिस पुरुषकी बुद्धि उज्ज्वल होती  
 है और पशुओं के स्वभावमे भिन्न होता है सो बुद्धिके नेत्रों करके श्रीजानकी  
 जीवनज्ञही सुन्दरताई के देखनेको प्रियतम रखता है और उनकी समर्थताई और  
 सर्व गुणोंको पहिचानता है और जैसे यह नेत्र सुन्दर रूप और प्रागीने और  
 तालोंको देखकर प्रमत्त होते हैं तैसेही बुद्धिमान् पुरुष महागजके अगोचर स्वरूपकी  
 सुन्दरताई को प्रियतम आधिक इससे भी रखने है वहीमे कि जिसको श्री  
 खनन्दनका स्वरूप प्रकट होजाता है तिमको सर्व इन्द्रियों के रस विग्म होजाते  
 हैं ॥ अथ मद्रह्मिना कारण प्रीति के उत्पन्न होने का ॥ ताते, जान तुम्हि पाच  
 कारण करके प्रीति प्रकट होती है सो प्रथम कांक्ष यह है कि यह पुरुष अपने आप  
 को विशेष प्रियतम रखना है और अपनी बड़ाईकी भी प्रियतम रखता है और किसी  
 प्रकार अपनी नाशताको नहीं चाहता और मदेव अपनी चिरंताको चाहता है

मैं अपनी स्थिरता को इसकारण करके प्रियतम रखना है कि प्रीति उसके साथ  
 होती है जो पदार्थ इसके स्वभावानुसार होता है और कोई पदार्थ इसको अपने  
 जीवने और अपने गुणोंकी पूर्णता के समान प्रियतम नहीं और कोई पदार्थ  
 अपने नाश और अपने गुणोंकी नाशके समान विरोधी नहीं ताते इससे अपने  
 पुत्रको भी प्रियतम रखना है कि पुत्रका होनाभी अपने होनेकी संगान जानना है  
 काहेसे कि यह पुरुष सदैवकाल अपने होनेको समर्थ नहीं होसकता ताते जो पदार्थ  
 इसके साथ सम्बन्ध रखना है सो तिसके होने को अपनी स्थिरता मानता है ताते  
 भलीप्रकार देखिये तो सर्वथा आपहीको प्रियतम रखता है और सकल सम्बन्धियों  
 को भी इसकारण प्रियतम रखना है कि उनकोभी अपने अङ्गोंकीनाई जानना है १  
 और दूसरा कारण यह है कि जो कोई उपकार इसके साथ करता है तिसको भी  
 प्रियतम रखना है इसी पर सन्नजनों ने कहा है कि यह मनुष्य उपकार करनेहार का  
 दास होजाता है और महापुरुषने भी महाराज के आगे प्रार्थनाकी है कि हे  
 स्वामी! किसीनीचका उपकारमे ऊपर न होवे तो भला है काहेसे कि उपधिमें मेरा  
 चित्त बन्धायमान होवेगा और उपकारकरके जो मनुष्य किसीको प्रियतम रखते है  
 सो विचार करके देखिये तो यहभी अपने साथ प्रीतिहोती है और उपकार उस  
 को कहते हैं कि जिमप्रकार हम पुरुषको सुख प्राप्तहोवे मोई उपकार है जैसे यह  
 पुरुष अपनी अयोगता को अपनेही निमित्त चाहता है ताते वैद्यको भी प्रियतम  
 रखना है २ और तीसरा कारण यह है जिसका स्वभाव भलाहोना है सो यह  
 पुरुषभी अवश्यही प्रियतम लगता है यद्यपि इसके साथ कुछ उपकारभी न हो  
 तोभी प्रियतम भासता है जैसे कोई राजाको पश्चिमदिशा विषे सुनिये कि सुदि  
 मात्र और न्यायकरनेद्वारा है और सर्वे लोगोंको सुख देनेद्वारा है तब स्वामीविहरी  
 उसकी मलाई सुनकर चित्तको प्रियतम लगता है यद्यपि जानता है कि मुझको  
 पश्चिम दिशा विषे जानाही नहीं और उसकी मलाई और उपकार का मुझे  
 देखनाही नहीं तब भी चित्तको प्यारा लगता है ३ वृत्ति चौथा कारण यह है कि  
 जो मनुष्य सुन्दरहोना है सो वह भी अवश्यही चित्तको प्यारा लगता है सो किसी  
 प्रयोजन के अर्थ प्यारा नहीं लगना पर उसकी जो सुन्दरता है सो जागी  
 चित्तको खेचती है और योगी प्रमाण है कि रूपका देखना केवल फापादिक मो  
 गोंके निमित्त नहीं होना चाहेमे कि जैसे नाल और चागीने को देखकर प्रियतम

रखता है सो उर्मविषे स्पर्शके भोगोंका प्रयोजन नहीं केव न नेत्रोंको उमके देखने विषे प्रसन्नता होती है काहेमे कि यह सुन्दरताई भी नेत्रोंको प्रियतम है ताते जब इम पुरुषको श्रीजानकीबलमजू का रूप बुद्धि विषे प्रत्यक्ष भासे तब निस्सन्देह जाना जाता है कि उनको अधिकही प्रियतम राखे और श्रीजानकी, जीवनजूके स्वरूपकी सुन्दरताई को मैं अपनी बुद्धिके अनुसार कुछ वर्णन करूंगा ४ और पाचवा कारण यह है कि जिसको किसीके साथ कुछ सम्बन्ध होता है सो वहभी प्रियतम, लगता है काहेसे कि जिसके साथ चित्तकी वृत्ति और स्वभाव मिल जाता है तब निस्सन्देह प्रियतम भासता है यद्यपि रूपवान् भी न होवे, पर यह सम्बन्ध जो मैंने कहा है सो इसप्रकार होता है जैसे बालकके साथ बालककी प्रीति होती है और वजारी के साथ वजारीकी प्रीति होती है और विद्यावान् की प्रीति विद्यावान् के साथ होती है, सो यह प्रकट है पर एक ऐसा भी सम्बन्ध होता है जो आदि उत्पत्तिविषे शरीरके उत्पन्न होनेसे आगेही हाता है सो वह प्रकट जाना नहीं जाता सो ऐमेही महापुरुषने भी कहा है कि शरीरसे आगेही जीवोंका आपमविषे सम्बन्ध है और विरोध भी होता है सो जिमका सम्बन्ध आदि उत्पत्तिविषे जिसके साथ होता है जिमके साथभी अवरयही प्रीति होती है सो सुन्दर सम्बन्ध इसीका नाम है ॥ अथ प्रकट करना अर्थ सुन्दरताई का ॥ कि सुन्दरताई क्या है ताते जानू कि जिम पुरुषकी बुद्धि पशुओंकी नाई होती है और नेत्रोंकी इन्द्रियों के बिना और कोई मार्ग नहीं समझता सो वह यही कहता है कि सुन्दरताई इमीका नाम है कि जिसके बदनका रङ्ग गौर और उज्ज्वल होवे और सर्व अङ्ग उसके समान, और सुन्दर गेवें तब उसीको सुन्दर कहने हैं और इसने अन्यथा सुन्दरताई कुछ सिद्ध नहीं होती सो इस विषे यही प्रसिद्ध होता है कि जहा रङ्ग और आकार न होवे तहां सुन्दरताईभी नहीं होती सो यह उनका कहना अयोग्य है काहेसे कि सभी बुद्धिमान् यों कहने हैं कि यह लिखित सुन्दर है अथवा घोड़ा सुन्दर है अथवा घर और बाग सुन्दर है और अमुक नगर और मराय सुन्दर है ताते सुन्दरताईका अर्थ यों जाना जाता है कि जो पदार्थ की पूर्णताई और सार्थ है सो उस पदार्थ विषे सम्पूर्ण पाया जावे तब उमको सुन्दर कहने हैं जेने अगों की सुन्दरताई यह है कि वह अक्षर सग और शुद्ध हों सो यह निस्सन्देह है कि अक्षरों की सुन्दरताई और घरकी सुन्दरताई को देखो करके नेत्रोंको प्रसन्नता



होती है और यह भी प्रसिद्ध है कि सर्व पदार्थों की सुन्दरताई और पूर्णताई भिन्न-  
 होती है ताते सुन्दरपदार्थ वही कदावना है जो सर्वअंगोंमें परिपूर्णहोवे सो इम तरहके  
 पूरठहूआ कि सुन्दरताई के मन मुने के गुजर नहीं परे येह जो चाय और धर  
 और अक्षरोंका भेने दृष्टान्त सि पाहे सो मगो पदार्थ भाकरि हँताने स्थल नेत्रों  
 करके देख सकेहें सो जब कोई इमरो प्रमाण भी करे और फिर यह प्रश्नको कि  
 किस पदार्थको नेत्रों करके देखे न जावे सो घेहो पदार्थ किम प्रकार सुन्दरहोना है  
 सो यह मूर्खताई काहेमे कि बुद्धिमान् व्योमी कहते हैं कि भ्रमके पुस्तका स्वभाव  
 बहुत सुदृह और विद्या भी बेराग्यमयुक्त अत्रिक सुन्दरहेती है और शूरता उ  
 दारतामहित बहुत सुन्दर होती है और निर्यां गतां और संयोगं सर्वपदार्थोसे शक्ति  
 सुन्दरहै और और भी इमकीनाई जो सर्व शुभगुणहै सो तिमको स्थूल नेत्रोंकर  
 देखा नहीं जाता और बुद्धिके नेत्रों करके देखमेके सो यही ध्यान आगे भी  
 कहा है कि सुन्दरताई दो प्रकार की है एक स्थूल दूमरी सूक्ष्म, गो भले स्वभावकी  
 सुन्दरता सूक्ष्म कहावती है और चित्तकी यह भी प्रियतम लगती है सो युक्ति इम  
 की यह है कि बहुत जोगोंकी भीति विद्वज महारत्नाभोगों बुद्धि दे और ऐभीभीति  
 कि उनकी प्रतीति और प्रीतिमें शरीर और धनको निन्दाधरकरने हैं सो यहभीति  
 उनके शरीरकी सुन्दरताके निमित्त नहीं होती काहेमे कि इन्होंने उनके शरीरकी  
 देवाभी नहीं और उनका आकार सुसहोगया है ताते यहभीति उनके हृदय की  
 सुन्दरताई विद्या और बेराग्य और शुभगुणकी है और इसी कारण मे जानाये  
 और अत्रतागे को धर्मवान् पुरुष प्रियतम स्वमे है ताते सो कोई किमी महापुरुष  
 के साथ प्रीति कान्ता है सो उमकी दृष्टि उक्तके शरीरकी और सुन्दर नहीं होती  
 काहेमे कि उमकी भावना उनके गुणोंकी ओर हँती है सो विद्या और सचाई  
 जो महापुरुषोंके अंगोंमें कदाचित् उनमे दृगो नही होनेवा यहा वास्तुमिद  
 है कि इने लक्षणों का योग और जोफार बुद्ध नहीं होवे सो प्रीति उक्तके पु  
 स्तों को निस्सन्देह होती है केमेरी सर्वस्वगतो जागस्य कृश नहीं और अप  
 विने प्रियतम भावनेभी यही है काहेमे कि नेत्रकी दृष्टि और पाने ती प्रीतिके  
 अत्रिकान्ही नहीं तनि जो बुद्धिमन् पुरुषोंमा दे गा सुदृह सुन्दरताई का  
 नेत्रका नहीं करना और स्थूल सुन्दरताई को प्रिय लागता है और दृश्यही  
 सुन्दरताई को अत्रिक प्रियतम रचना है ताते कि जो एतदुत्तरी प्रीति कर्गमे

की मूर्त्ति के साथ होवे और एक और पुरुषकी प्रीति किमी सन्नजन के साथ होवे तब इस प्रीति और उस प्रीतिमें बड़ा भेद है और योंभी है कि जब कोई पुरुष किसी सुयेहुये मनुष्य की बड़ाई करने लगता है तब उसके नेत्र और मुस की स्तुति नहीं करता उसकी उदारता और विद्या और शूरता और धैर्यको स्मरण करके स्तुति करता है और जब किसीकी निन्दा करना है तब उसके शरीरकी कुरूपता का वर्णन नहीं करता इमी कारण मे महापुरुष के प्रियतमों को सब कोई प्रियतम रखता है और जो मनुष्य उनके विगेरी हुये हैं तिनको बुझाने हैं ताते यह प्रसिद्ध हुआ कि सुन्दरताई दो प्रकारकी है एक सूक्ष्म है और दूसरी स्थूल है सो सूक्ष्म सुन्दरताई स्थूल रूपसे भी अधिक सुन्दर है, पर जो बुद्धिमान् पुरुष है तिसकी प्रीति अन्तरीय सूक्ष्म स्वरूप त्रिपेदी होती है ॥ अथ प्रकट करना इसका कि सर्वप्रकार प्रीति करने योग्य श्रीसीतारामजीही हैं ॥ ताते जान तू कि जो विचारकर देखिये तो श्रीजानकी जीवन विना प्रीति करने का अधिकारी कोई नहीं और जो कोई किसी और पदार्थ के साथ प्रीति करता है तो मूर्खता है पर जब हम पुरुषकी प्रीति श्रीगणनिमित्त सन्नजनों के साथ होवे तो यह भी महा राजकी प्रीति होनी है काहेसे कि जिसके साथ किमीकी प्रीति होनी है तब उसके प्रियतम और सदेशे देनेहारो को भी प्रियतम रखना है ताते विद्यारानों और वैसागियों के साथ प्रीति करनी भी व्यदभी प्रीति श्रीगणनन्दन भोग्य होती है और यह जो आगे कहाथा कि प्रीति करने के अधिकारी श्रीरामवज्रुंगी हैं सो तुम्हको तब प्रत्यक्ष होवेगा जब तू प्रथम प्रीतिके कारणों को विचारकर देखेगा सो प्रीति का प्रथम कारण यह है कि मनुष्य अपने आपको अधिक प्रियतम रखता है और अपनी पूर्णताईको भी चाहता है सो इस कारण करके प्रमाण है कि अक्षय्यही श्रीरघुनन्दन साथही प्रीतिके काहेमे कि इमका होना और इमके अगोंकी पूर्णताई महाराजकी सच्चाकर होनी है कि जब श्रीगणवज्रु अपनी दया करके इम जीवकी रक्षा न करे तब एक क्षण भी इमका रहना नहीं होता और जो प्रथम अपनी दयाकरके इसकी उत्पत्ति नहीं करने तब इमका उपजना ही न होना और जब इसके अग और गुणों को अपनी दया के साथ प्रकट ही न करते तब महानीचसे नीच होता जाने यह बड़ा आश्चर्य है कि जो कोई पुरुष मोक्षमन्त्र विषे उष्णतासे भाग्य धृषकी दयाको प्रियतम गने और धृषको प्रियतम न गने जो

घादीनी है ताते जब सबही पण्डित इकट्ठे होवें और भगवत्की जो आश्चर्य  
 रूप विद्या माफी और चीटीकी उत्पत्तिविषे प्रकटहुई है सो तिसको पहिचानना  
 चाहे तोभी समर्थनहीं होसके और यद्यपि कुछ जाननेभी हैं तोभी श्रीरामहीका  
 जनाया जानत हैं वहुनि सर्व जगत्की जो विद्याहै सो मन्ही गिनती और मृत्यु  
 विषे है और श्रीरामजीकी जो विद्याहै सो सर्वप्रकार गिनती और मृत्युमे रहित  
 है और जगत्की सर्व विद्या उन्हींके आश्रितहै और उनकी विद्या जगत्के आ  
 श्रित नहीं वहुनि जब तू बलकी ओर देखे तो बलभी अधिक सुन्दर है जो केते  
 भगवद्गुरुको बल करकेही प्रियतम रखेहैं और केने भक्तोंको न्यायकरके प्रिय  
 तम रखते हैं जैसे भीमसेन और महाराज युधिष्ठिरादिक हुयेहैं सो न्यायभी बल  
 करके होताहै पर सर्व जीवोंका बलभी श्रीरघुनाथजूके निकट कुछ पस्तुनहीं काहे  
 से कि सबही पगधीन हैं और इन विषे भी एतबिलहै जेता जिस किमीको महाराज  
 ने दियाहै वहुनि सबोंको ऐसा निर्बल बनाया है कि जब मात्सी इनमे कुछ ले  
 जावे तब फिर उससे लेनेको समर्थ नहीं होते और श्रीरघुनाथजूका बल बेअन्त  
 और अपार है काहे से कि धरती और आकाश और जेता कुछ इनके विषे है  
 जैसे देवता और मनुष्य और पशु पक्षी मूँ पेटादिक जो हैं सो सबही श्रीर  
 घुनाथ जूके बलका प्रतिबिम्ब है ताते जो कोई पुरुष बलके अर्थ श्रीरामकिना  
 किसीको प्रियतम राखे तो भी अयोग्य है वहुनि जब निर्जपना और शुद्धताकी  
 ओर दृष्टिकरे तो भी यह मनुष्य सब दोषों से रहित कय होसका है काहेमे कि  
 प्रियत तो इमविषे यह नीचताहै कि यह उत्पन्न किया हुआहै और अपने आप  
 कर स्थित नहीं वहुनि अपने अन्तरमे भी मूर्ख है नव और किमीको कर पहि  
 चान सकाहै काहेमे कि जब एरु नाड़ी इनके शीश विषे विपर्यय होजावे तब  
 मात्रा होजाताहै और इस दुलके कारणोंको भी नहीं पहिचान सका यद्यपि  
 इस रोग ही औपर इम मनुष्यके निकटही धीहोवे तोभी नहीं जानसका ताते  
 जब इम मनुष्यकी निर्बलता और मूर्खता का विचार करिये तब गिनती विषे  
 कुछ नहीं आवता वहुनि विद्या और बल इस जीवना कुछ अक्षमात्रही मासता  
 है यद्यपि भिन्न और जात्रार्थहोवे तोभी परधीन है ताते सर्व दोषों से रहित  
 एरु श्रीरामही है काहेमे कि उनकी विद्या अमिन है और उनको मूर्खताका मेत्र  
 कत्रचित् स्पर्श नहीं कामका और उनका बलभी अपार है काहेमे कि वो रहें

लोक उनकी के बल विपे स्थित है और जब सर्व ब्रह्मांडों को लाया करें तो भी उनकी साहवी और ऐश्वर्य्य बढ़ाईकी हीनता कुछ नहीं होती बहुरि जब और लक्ष ब्रह्मांडोंको उत्पन्न किया चाहें तो एक क्षण विपे सर्व ब्रह्मांडों के उत्पन्न करने को समर्थ हैं और उनकी बड़ाई एक स्वकभी इनको उत्पन्न करने करके कुछ अधिक नहीं होती, काहे से की श्रीगुणायत्री के स्वरूप विपे ऊनता और अधिकता का प्रवेश, कदाचित् नहीं होता इसी कारण करके कि महाराज सर्व दोषों से निर्लेप हैं और सत्यस्वरूप हैं और उनके स्वरूप और गुण विपे नाशताका प्रवेश कदाचित् नहीं ताने अकस्मात् भी उनकी बड़ाईकी हाति नहीं होसकी इसी कारण से कहा है कि जो पुरुष किमी और के साथ श्रीराम बिना भीति करता है और श्रीराम को प्रियतम नहीं खवा सो महामूर्ख है ताते जो भीति उपकार करके होनी है सो तिससे भी उनके स्वरूप की प्रीति अधिक उच्चम है काहे से कि उपकार की प्रीति कबहु भदती है और कबहु घट जाती है और जो श्रीगुणायत्री के स्वरूपको प्रहिनान कर प्रीति होती है सो सदैव एकसरहती है इसी कारण कर एक महारामा को आकाशवाणी हुई थी कि मुझको वही पुरुष प्रियतम लगता है जिसकी प्रीति अय और आशा कर न होवे और केवल मेरी भजन इसी निमित्त करे कि मेरी बड़ाई को जान कर ससुख होवे और महाराज ने योंभी कहा है कि ऐसा गुणपुरुष और कौन है जो नरकोंके भय और स्वर्गकी आशा करके मेरा भजन करे काहेसे कि जब मैं नरक स्वर्गको उत्पन्न करता तो भजन करनेका अधिकारी न होता ४ बहुरि पाववा कारण प्रीतिकी सम्बन्ध है सो श्रीरामजी के साथ इस जीवका निस्मदेह सम्बन्ध है जैसे महाराजने भी कहा है कि यह सब जीव मेरी आज्ञा और इच्छा है अर्थ यह कि जैसे राजा का हुक्म राजासे भिन्न नहीं होता तैसेही जीव मुझसे भिन्न नहीं सो इस भवन करके जीव ईशका सम्बन्ध प्रसिद्ध हुआ और महापुत्र ने योंभी कहा है कि मैंने इस मनुष्य को अपने रूपके अनुसार उत्पन्न किया है सो यह भी उसी मनुष्यकी ओर लक्ष्य और योंभी कहा है कि जब यह पुरुष अधिक प्रेम करके मेरे विपे लीन होता है तब यह मेरा प्रियतम होता है बहुरि उसके श्रवण और नेत्र और रसनाभी में ही होता है ऐसी ही एक महापुत्र को भी महाराजने कहा कि जब मैं रोगी हुआ था तब न मुझको पूछने ही भी न आया बहुरि, उन महापुरुषने प्रा-

नेनाफरी किहे महागज ॥ तू तो सर्वजगतका ईश्वरही तू मरने रोग कर्मोकर हुआ  
 तबे महागजने कहा कि मेरा जसुकमरु जो रोगी हुआ तब नो माता मेही रोगी  
 जानाने जवात उमकी मोर पृथ्वने को जनाता तब यह भेसाही पृथ्वने का काहेमे  
 के सुक्तमें और मेरे मरने में कुछ भेद नहीं बड़े भेरेही स्वल्प है प्रो हेसाम्बन्ध  
 ता बनिान रुद्ध आगे भी फहाई और सम्पूर्ण भेद ईश्वर जीवके सम्बन्धका इत  
 भयविषो कहा नहीं जाता ताहे मोकि सब कोई इस जघन को समझने की मली  
 उही रखता और केते जित्नासु इस बचनको विपर्यय समझने मांगी विषे गी  
 पड़े है जिते कोई पुरुषों ही समझते है कि जैसे हमारे शरीर का आकार है  
 सेही महाराज भी शरीरमें साकार होयगा ताते वह सम्बन्धका अर्थ योही  
 भिक्ते है चहुरि एक और पुरुष इस प्रकार कहते है सिद्धिसे हम भेनन्व स्त्री  
 एपा है तैसेही भगवत् भी जेनन्व रूप है ताते जीविरागी और परस्परता की व  
 त्ता बर्णन करते है सो यह भी उतकी समझना विषय है किहि सीक भग  
 वी आकारसे विचक्षण है और जीविकी नाई मिलिन और पार्थिवि मानही  
 चहुरि भेरे कहनेका प्रयोजन यह है कि जेमे पार्थिवि प्रीतिके भेन फहे है सो  
 तेतको जव तेने मली प्रकार पार्थिवान्तिवा इमी करके यही सिद्ध हुआ कि जग  
 तके बिना किसी ओरसे प्रीतिके ना गूबनाई और जो पुरुष भगवत्की पार्थि  
 वी तत्कार करने है और कहने है कि प्रीति उषी के साथ स्नेहमो है विप  
 नुष्य की नाई आकावेन्न स्वलताये सो भगवत् इम भेनन्व की नाई ओकि  
 न्न नहीं और शुद्ध सूक्ष्म रूप है ताते भगवत्के साथ प्रीतिहीनी व्यभवत और  
 प्रीतिका अर्थ लही है कि भगवत्की आज्ञामाननी मो वेगे जो पार्थिव है और  
 प्रीतिके भेदकी नहीं समझने सो तिनकी बुद्धि ही हीनता भवेत है कोहि म  
 के चह पुरुष क्रियादिको की प्रीतिसे और प्रीति संगम नहीं मरिपो यह वाणी  
 ने सम्बन्ध है कि ऐसी स्थल का आदिक प्रीति तमही विमलदीनी है जो आप  
 भेयगाक दूसरे की नाई होते है मर जेमे प्रीतिके भेन व भाग विगाडे मो वि  
 गुणित अमायिक स्वल्प की भुन्दरमाई और प्रीति ही प्रीति है और यह  
 प्रीति स्थन शरीरके आका धार सम्बन्ध से रहित है कहिये कि जेमे पुरुष की  
 प्रीति किसी अन्यके साथ होती है मो इतका गुण तम नहीं होनी कि पाही नाई  
 मस शरीरकी भीश और गुण और शयि पावे जाते इस प्रीतिके भेदके भाग्य

है। किन्तु जैसे यह पुरुष अतन्मय आर बुद्धि यन्त्र और श्रेष्ठी करते द्वारा होते हैं। मेही वह सन्त भी हैं। इन लक्षणों से मुक्त है। पर सन्त जनों विषे यह सबही लक्षण सम्पूर्ण हैं और इतर जीवों विषे कुछ आरूप मात्र हैं। सो जब विचार करिये तब वस्तुको सर्वत्र प्रसिद्ध है और गुणोंकी अधिकता औरी जनता विषे भेद भी बहुत है। तब तो यही गुणा जिस विषे अधिक होते हैं सो तिसके मध्य प्रीतिभी निस्सन्देह अधिक होती है। पर प्रीति का कारण जो सम्बन्ध है सो सर्व जीवों और सन्त जनों और भाग्य विषे प्रसिद्ध है। किन्तु प्रीति तै तन्मयता और विद्या मुक्त ही वस्तु है सो इस सम्बन्धको सर्वकोई प्रमाण करता है। यद्यपि इस वचनके अर्थको ज्योंकी त्यों नहीं समझने सो जैसे महा राज तै कहते हैं कि मनुष्यको अपने अपने स्वरूपकी ताई वरदान किया है सो अर्थ सम्बन्धीकी विधी है। पर इसका भेदा समझनी कठिन है। ता अय प्रकृत करनी इसका कि कोई सुख श्रीरामरूप दर्शनके आनन्दके समान नहीं। ताते ज्ञानवृत्तिसे भी कोई सुखमेयी ही कहते हैं कि श्रीरामरूप दर्शना विषे जैसा आनन्द है सो तैसा आनन्द और कोई नहीं। पर जैसा कोई इसी स्वप्नके अर्थको अपने हृदय विषे देते हैं कि जिसका दर्शन किसी दिशा विषे न होवे और उसका रूप भी कुछ ना होवे तिसके दर्शन विषे आनन्द किम प्रकार होता है जैसा इस वाचा का विचार करे तब उनके हृदय विषे ऐसे दर्शन और आनन्द का स्वरूप कुछ इसी नहीं भासता। पर यद्यपि सुखसे भी मन कोई योही प्रमाण करता है। काहे से कि यह स्वप्न विषे भी प्रसिद्ध है। पर उनके हृदय विषे इस दर्शनकी प्रीति कुछ नहीं और प्रीति जनकी इस कारणे कर नहीं होती। कि जिस पदार्थकी जान नहीं होती तिसके साथ प्रीतिभी नहीं लगती। सो यद्यपि एमे भेद का ज्ञान करना बहुत कठिन है। पर तो भी मैं अपनी बुद्धि अनुसार कुछ वर्णन करूंगा। सो इस वचनका भेद जैसा प्रकार कर समझ सकें हैं। सो प्रथम यह है कि इस मनुष्यके हृदय विषे ज्ञान और बुद्धिके प्रसन्नता और आनन्द होता है। यद्यपि उस प्रसन्नता में नैस और सर्व इन्द्रियों को कुछ सुख नहीं प्राप्त होता। पर वह सुख केवल इमके हृदय में होता है। और दूसरा प्रकार यह है कि प्रसन्नता इमको वृत्त और विद्या कर होनी है। सो तिसका मन्त्र इन्द्रियोंके रससे अधिक है। यद्यपि तीसरी प्रकृतिय है कि सब पदार्थोंकी बुद्धि भगवत्की पहिचान कर। रस वि शेष है। और चौथा प्रकार यह है कि भगवत्की पहिचानमे भगवत्के दर्शन।

आनन्द और रहस्य अधिक है सो जव नैने इस चार प्रकारके भेदको समझा तब तुम्हको यह अर्थ प्रसिद्ध होवेगा कि श्रीगणेशजी के दर्शन के समान और पदार्थ कोई नहीं पर प्रथम प्रकार यही है कि प्रसन्नता हृदयकी वृद्ध और विद्याका होती है सो ऐसे जानतु कि हृदयका आनन्द विद्यासे होता है सो सर्व इन्द्रियों में बिलक्षण है काहेसे कि इस सन्तुष्ट विषे ब्रह्मन स्वादि उत्पन्न क्रिये है सो मवही अपने अर्थमें प्रयोजनको ग्रहण करने हैं और प्रियनमें लगने हैं जैसे काधको गन्धों के जीतने और पूवजता के निमित्त उत्पन्न किया है सो काधको गन्धके जीतनेकी विषे रमते ऐसेही नेत्र और श्रवण और सर्व इन्द्रियों के विषे भिन्न भिन्न है जैसे कामादिकोंका रस क्रोधके रममें भिन्न है और योंभी है कि सर्व इन्द्रियोंके रम एक समान नहीं कोई अति पूवज है कोई उममें निर्वच है जैसे नेत्रों के विषे जो सुन्दर नाई है सोनामिका के विषे सुगंधिके रममें अति पूवज है तेसेही मनुष्यके हृदयमें विषे बुद्धि और विद्या भी भगवत्के उत्पन्न कीनी है सो उपकारूप सकृद्विष और इन्द्रियों विषे नहीं आवता और जैसे इन्द्रियों को स्थूल विषयों के ग्रहण करनेको उत्पन्न किया है तेसेही बुद्धि तो सूक्ष्म पदार्थों के समझनेको उत्पन्न किया है और उम्मी बुद्धिके योंभी जानता है कि यह जगत् उत्पन्न किया हुआ है और इस जगत्का उत्पन्न करनेवाला ईश्वर समर्थ है और मवका विद्या है इस प्रकार बुद्धिभक्तके श्रीरामजके अवगुणों और आरवर्णनाकी परिचानता है सो यह सबही गुण गेते सूक्ष्म हैं कि इनकार्णमें स्वयं और इन्द्रियों विषे नहीं आवता और बुद्धिही इनको परिचानती है और बुद्धिही करके बाण, पत्नी अनुभव होती है और स्वयंकारकी निश्चिन्ता भी बुद्धिका होती है और और भी सूक्ष्म विद्या बुद्धिही के आश्रित है और बुद्धिको इतनेमें विषे रम उत्पन्न होता है और जब कोई नीच पदार्थकी विद्याभक्तके इसकी स्तुति करता है तब पूज्य होता है और जब कोई कहता है कि इस विद्याको अमुक मुझ नहीं जानता तब गोपयान होता है सो इसका कारण यह है कि यह पुरुष विद्याही को अपनी पूर्णताई जानता है जैसे कोई पुरुष आपस विषे उत्तरत भेदनेदावे और यह उनको यामजाय है और यह पुरुष इसको गतरजती चाल घताने में वरजे तब आपकी चताने में रात नहींसहा सो यद्यपि गतरजती विद्या मपि भीचदे तो भी इसकी पूज्यता और स्वात् विषे पवच है सो उनको चताने लया है और

अपनी बड़ाई किया चाहता है मो विद्याकरके बड़ाई और प्रमत्तता क्योंकर न करे कि विद्या श्रीराघवजू का लक्षण है ताते इस मनुष्यको विद्याके समान और कुछ बड़ाई नहीं होती कि विद्या श्रीगमजी का लक्षण है ताते इस वचनके अर्थ करके तैने प्रसिद्ध जाना कि इस मनुष्यके हृदयको सूक्ष्म पदार्थों की विद्या करके आनन्द होता है और यह आनन्द नेत्र और श्रवणादिक इन्द्रियों में भिन्न है । वृद्धि दूसरा प्रकार यह है कि विद्या और वृद्धि जो आनन्द है सो इन्द्रियोंके रससे आनि प्रबल है जैसे किसी पुरुषको शतरज खेलने का स्वभाव होवे सो वह पुरुष उस खेलविषे ऐसा मग्न होता है कि जब उसको कोई कहे कि तू भोजन कर तब वह पुरुष भोजनकी ओर सुरति नहीं करता उसी खेलविषे लीन हो जाता है ताते प्रसिद्ध हुआ कि उस पुरुषको भोजनके रससे शतरजका खेलना अधिक प्रियतम है इसी कारणसे भोजनका त्याग करता है और शतरजके खेलने का त्याग नहीं कर सका सो प्रवचन और निर्बलता तबहीं पहिचानी जाती है जब दोनों पदार्थ इकट्ठे आइहोते हैं तब जो पदार्थ निर्बल होता है तिमका त्याग करना सुगम होता है और जिस पदार्थका रस प्रबल होता है तिमको अगीकार करता है ताते जानतू कि जो पुरुष बुद्धिमान और व्यवहारविषे चतुर होता है सो इन्द्रियोंके रसोंसे मानका रस तिसको अधिक होता है काहेमें कि जब कोई उसको कहे कि चाहे तू मिष्टानादिक भोजनकर अथवा इसका त्याग करके अपने शत्रुके जीतने का उपाय कर तब तेरी जीतहोवेगी और तुझको बड़ाई प्राप्त होवेगी तब वह पुरुष मिष्टानादिकों का त्याग करता है और अपनी बड़ाईके निमित्त शत्रुके जीतने का उपाय करता है और जब यों न करे तब जानिये कि उसकी बुद्धि अल्प है ताते जिस पुरुषको भोजनके रमकी भी वृष्णा होवे तब भी निस्मन्देह भोजनके रससे मान और बड़ाईको अधिक प्रियतम स्वभाव है मो इमो कारणसे जाना जाता है कि रसनाके स्वादसे मानका स्वाद प्रबल है ऐमेही विद्यावान्को विद्या व्यवहारकी और वैद्यक और धर्मशास्त्रकी विद्या और और जो सर्व विद्याह मो इनविषे उमको अधिक रस प्राप्त होता है पर तब उसकी विद्या सम्पूर्ण होवे तब सर्व भोगों और मातादि रसमें भी विद्याके रसको अधिक प्रियतम स्वभाव है पर जननग सम्पूर्ण विद्याका वेत्तान होवे और विद्याकी बड़ाईको भलीप्रकार न जाने तबलग विद्याके रहस्यको नहीं पावना इमकरके समिष्ट



हुआ कि विद्या और ब्रह्मका आनन्द उस पुरुषको प्रबल होता है जिसकी बुद्धि उज्ज्वल होती है और जिसको दोनों पदार्थ का ज्ञान होता है सो इस वार्ताको बोधी समझना है पर जैसे बालक गानके रससे खेलनेके रसको अधिक प्रियता रखता है तब इस करके हमको कुछ यह मग्य नहीं होता कि खेलन का रस अधिक है और मानका रस जल्पके कहे से कि एमे जानना उस बालकही की बुद्धिकी नीचता है और उसने मानके रसको भलीप्रकार नहीं जाना और जब उसको भी मानके रसकी पहिचान होती है तब खेलने का त्याग करके मान और बड़ाईको अङ्गीकार करता है वहुतर तीसरा प्रकार यह है कि जो रसके पदार्थोंकी विद्यासे श्रीराम स्वल्पका पहिचानना गहा उत्तम है कहैये कि जब तने भलीप्रकार जाना कि विद्या और ब्रह्म आनन्ददायक है तब इस वार्ता विवेकी सशय नहीं कि कोई विद्या नीच होती है और कोई उममे विनोप होता है कहैये से कि जैसा कोई पदार्थ होता है तैसीही उमकी विद्या होती है ताने जो नीच पदार्थ है सो तिसकी विद्याभी नीच है और जो उत्तम पदार्थ होता है तिसकी विद्याभी उत्तम होती है जैसे गतरजकी गोदोंके रखनेसे शतरंज खेलनेकी विद्या विनोप है और जैसे खनी और दरजी की विद्यामे राजकाज और प्रधानी की विद्या निरुपदेह विनोप है तैसेही धर्मशास्त्रके अर्थकी विद्या कोप व्याकरण की विद्यामे विनोप है और जैसे बाजारीकी विद्यामे वर्जारीकी विद्या और उमके भेद का मगभना विनोप है एमेही राज्यके गेदका जानना वर्जारीके भेदमे उत्तम है ताते जेना एक जानने योग्य पदार्थ उत्तम होता है तैसाही उमकी जातिविषे आनन्द अधिक होता है इभीकारण मे नू विचार करके देव कि मर्वा मुष्टि विषे श्रीरामज्जमे इतर कौन पदार्थ विनोप और सुन्दर और पूर्ण है कहैये कि भीयम जू केते हैं जो मर्ब सुन्दरताई और पूर्णताईके उत्तम कर्नेहारे हैं और तैसी वादनाही श्रीरामज्ज ही है तैसा वादनाह नौर केते देव और भौती और त्याकाग और इयनाक और पुरनो हकी भिममताग भीमवभी ने भिमवक्तिया मे येना समर्थ और कोई नहीं जो श्रीगुनावतु के दग्ग मद्यम मुन्दर और विनोप और कोप दग्गा है ताने एके श्रीगुनावतु के दर्शन और दग्गर के गमान विधी और का दग्गा तब केतेहै एग जिम पुरुषकी बुद्धि केनेन उज्ज्वल होत है सो इस दर्शनको बोधी देवना है और एमे महापनके भेद जानने न किगी

और राजाका भेद जानने से और उमके गुण और उसकी ईश्वरताईके भेदोंका समझना सर्व पदार्थों की विद्यासे अधिक विघेपहै काहेसे कि रामरूपी ऐसा परम पदार्थ है कि उसके समान-जानने योग्य और पदार्थ कोई नहीं और और पदार्थों से श्रीरामजीको विघेप कहना भी अयोग्य है काहेसे कि ऐसा पदार्थ कौनहै जिसकी उपमा-श्रीरघुनन्दन के साथ कहिये और फिर श्रीरघुनन्दनको विघेप कहिये सो ऐसा कहना भी श्रीरामजीकी षड़ाई के निकट हीनता होतीहै ताते ऐसे कहनाभी अयोग्यहै इसीकारण से जिन पुरुषोंने श्रीरामजीको पहिचानाहै सो इस जगत्त्रिपे भी श्रीसाकेतधाम विपे सदैव बैठे हैं और उनका हृदयही साकेतरूपहै सो कैमाहै कि इस धरती और आकाश से भी विशाल है काहेसे कि यह धरती और आकाश मृत्युविपे है पर जिसस्थान और जिस हृदय रूपी वाग्विपे रामानुरागी विचरते हैं सो अमिटहै और इसजागके फलभी सर्व मृत्युविपे अट्ट और अरोकहै काहेसे कि वह फल उसी हृदय के गुणहै और और जो स्थूल पदार्थहै सो सबही हृदयसे बाहरहै और अपना आपाही इसके अति निकट है ताते ज्ञानवान् पुरुषोंके फलों को कोई विघ्न दूर नहीं करसक्य बहुरि जेता किसीको ज्ञान अधिक होताहै तेताही उसको आनन्द अधिक होता है और ज्ञानरूप ऐसा स्वर्ग है कि वह स्थाय कदाचित् सकृचित नहीं होता ३ बहुरि चौथा प्रकार यहहै कि श्रीरामचन्द्रके स्वरूपके ज्ञानसे श्रीरामरूप दर्शन का आनन्द बहुत विघेप है ताते जानवू कि जानना दो प्रकारका होताहै सो एक यहहै कि उमका रूप और आकार मनोराज विपे मूर्तिमान् स्थूल भासता है और दूसरा यहहै कि उमको बुद्धिही पहिचानती है पर उमका आकार सकल विपे नहीं आवता जैसे श्रीरामचन्द्रजी की सुन्दरताई है और जेते उनके गुणहै सो बुद्धिहीकर अनुभव होतेहैं बहुरि इम जीव के भी केने स्वभाव एमे हैं कि उनका कुछ आकार नहीं जेमे बल और विद्या और श्रद्धा सो यह मूर्ति अनूप हैं बहुरि क्रोध काम और हर्ष शोक सो यह सब आकार से रहित हैं ताते इनका रूप सकल्प विपे नहीं आवता बहुरि जो पदार्थ आकारवन्त होनाहै सो प्रथम तो वह पदार्थ मनके सकल्प विपे प्रपन्न भासताहै जेमे वू सिमी पुष्प को ध्यान विपे देखे तब वू जानताहै कि मैं इनको देनताहूँ सो यह देखना मकल्पमान् होताहै ताते अल्पहै और सम्पूर्ण नहीं होताहै बहुरि इतना यहहै कि

जिम्पदार्थ को नेत्रों से देखना है सो यह देवना अनि मृत्यु है और मन्पूर्णा है इमां तारणमे प्रियतमके ध्यानमे प्रियतमके दर्शनविषे अधिक आनन्द होता है सो इस कारण कर नहीं कि ध्यान विषे उक्तारूप कुछ और था और देवने विषे कुछ और है अथवा मुन्दगाई अधिक हुई है पर इमका प्रयोगन यह है कि ध्यान में उक्तारूप मन्पूर्णाभावका और देवने विषे अतिमरुत होता है जेमे कोई अपने प्रियतम को प्रमान समय देखे और फिर उमको दिनके प्रकाश विषे देखे तब उममे अधिक आनन्द को प्राप्त होता है सो इस कारण कर नहीं कि प्रमान विषे कुछ और रूपथा और प्रकाश विषे कुछ और रूप हुआ है पर इम विषे प्रकृतता हीका भेद होता है तेमेही जिम पदार्थका रूप संकल्प विषे नहीं आवता और बुद्धिही कर पहिचाना जाना है सो अतिमेका पावनार्थी दीपकार मे होता है एक ज्ञान कहावता है और दूसरा दर्शन कहावता है सो जेमे ध्यान और प्रकृत देवने विषे भेद है तेमेही ज्ञान और दर्शन विषे भेद होता है और जेमे नेत्रोंकी पलकों कर दर्शन विषे पटल होता है पर ध्यान विषे कुछ पलकों का परदा नहीं होता तेमेही यह पात्रतत्त्वका जो शरीर है और इम शरीरके माध जीरका सम्बन्ध है और इसी करके इन्द्रियोंके स्पर्शके आमकृते सो यह देहाभिमान श्रीगणदर्शन विषे पटल है और उमके जानने विषे पटल नहीं ताने जवनग इमजीव का देह और गान दूर न होवे तबजग श्रारागरूप दर्शन को प्राप्त नहीं होता इधी कारण से एक महापुरुषो आकाशवाणी हुई थी कि देहके अभिमान मनुक तू मनुको न देख सकेगा ताने प्रसिद्ध हुआ कि जेसे ध्यानके देवने मे प्रत्यक्ष का देवना विशेष है तेमेही श्रीगणजी के पहिचानने मे दर्शन विषे आनन्द अधिक है ताने जान तू कि मृत दर्शनका ज्ञानही है पर देहाभिमानके दूरहोये तब ज्ञानही पूर्ण सम्पूर्णताको प्राप्त होता है कि यह ज्ञानादि अवस्थाके ज्ञानकी नाईही नहीं भासता जेमे शरीरकी उत्पत्ति बीजकरके होती है पर मनुष्यके शरीर और बीजका स्वरूप एक मरेना नहीं होता तद्वि जेसे बीजमे घृत होता है पर बीजकी नाई पृथक्ता स्वरूप नहीं होता तन्वि तब बीजकी सम्पूर्णताको प्राप्त होता है तब घृत कहावता है तेमेही जब यह ज्ञान सम्पूर्ण होता है तब यह दर्शन प्रकाशताके फले मे कि जिम पदार्थकी सम्पूर्णता प्राप्त होती है सो दर्शनभी तमीकानामे ताने जानता त्यों ममकता दर्शन है सो इसी कारणमे श्रीगणदर्शन किन्हीं दिशा वि

नहीं पाया जाता जैसे बूझ और ज्ञान भी स्थूल दिशासे विनक्षण है तैमेही उन का दर्शन भी दिशा और स्थानसे रहित है पर दर्शन का मूल ज्ञानही है ताने जिस पुरुषको ज्ञान कुछ नहीं तिसको श्रीराम दर्शन विषे भी बड़ा पटल है और उसको दर्शन कदाचित् नहीं प्राप्त होता जैसे बीजके बिना खेती उत्पन्न नहीं होती और जिसको सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ है सो तिसको सम्पूर्ण दर्शन प्राप्त हुआ है पर इस दर्शनके विषे सबही पुरुष समान नहीं होत काहे से कि जिसको ज्ञान अधिक है तिसको दर्शनका आनन्द भी अधिक है और जिसको ज्ञान अल्प है तिसको दर्शनानन्द भी अल्प है इसीपर महाराज ने भी कहा है कि मैं सब लोगोंको उनके अधिकार प्रति दर्शन दिशाऊंगा और केवल दर्शन सन्तजनों को देऊंगा सो इसका तात्पर्य यह है कि बीज दर्शन का ज्ञान है सो ज्ञान सत्ता के हृदयमें होता है ताने उनको शुद्ध सच्चिदानन्द विग्रहका दर्शन प्रकट होता है और इनरजीवोंको ऐसा दर्शन नहीं होता काहे से कि उनमें ज्ञानरूपी बीज नहीं मिलता इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि अमुरु प्रीतिमान् की विशेषता बहुत भजन, तप और व्रतोंकर नहीं पर उनकी विशेषता बूझमे है और वह बूझही ज्ञानरूप है ताने सर्वजीवोंको जो भगवत्का दर्शन अपने अपने अधिकार प्रति होता है सो तिसका दृष्टान्त यह है कि जैसे बहुत दर्पण होवें और कोई मलिन होवे कोई उज्ज्वल होवे और कोई अति उज्ज्वल होवे और कोई अतिमलिन होवे सो यद्यपि उन विषे एकही स्वरूपका प्रतिबिम्ब भामना है तौ भी उसका आकार भिन्न भिन्न दिशाई देता है काहेमे कि जो दर्पण मीथा होता है तिमविषे सी गही आकार भासता है और जो दर्पण टेढ़ा होता है तिसमें सुन्दररूप भी लुरूप भासता है जैसे तस्वारकी दीर्घता विषे सुन्दर मुखका आकार भी दीर्घ दृष्टि आवता है तैसेही परलोक विषे जिम पुरुषका हृदयरूपी दर्पण मलिन और टेढ़ा होता है तप उसको निस्सदेह सुखदायक पदार्थ भी इ सुखदायक भासना है ताने ऐमे जानतू कि श्रीरामरूप दर्शनविषे जैसा आनन्द मन्त्रजनों को होता है सो इनर जीवोंको प्राप्त नहीं होता है और जैसा रहस्य विद्यावानोंको होता है तैसा विद्याहीन जीवोंको नहीं होता बहुरि जैसा सुख विद्यावान् वेरागी और मेरी को प्राप्त होता है सो इनर विद्यावानोंको नहीं होता ताने जिम पुरुषने श्रीरामको पहिचाना है और श्रीगणदी के माय जिमकी अधिक प्रीति है बहुरि जिमने श्रीगणजी को

पहिचाना और भीनि उसकी उत्तर है सो इनदोनों के आनन्द विषे बड़ा भेद  
 होनादे यद्यपि उभो दर्शन देवने विषे गगाननादे तौनी उत्तरे आनन्द विषे  
 समानता नहीं सो यह भद्र मुनिविषे दर्शन विषे नहीं कहने कि रूप पृथही दे  
 बहुरि दर्शनका बीज ज्ञानदे और ज्ञानरूपी बीज दोनोंको दे सो तिसका दर्शन  
 यह है कि जेगे दो पुरुष होवें और दोनोंकी दृष्टि समानहोवे, सो तिसी सुन्दर  
 पुरुषको देखे पर उनमें इननाभेदहोवे कि एकपुरुष उसको अधिक भीनिके साथ  
 देखे और दूसरे पुरुषभी भीनि थोड़ी होवे तब उनके देखने विषे भेद कुछ नहीं  
 होना पर आनन्द विषे बड़ा भेद होना है ताने प्रसिद्धहूआ कि प्रेमसाय देखने  
 हारे पुरुषको आनन्द अधिक होनादे और जो पुरुष भीनिते रहिन दे सो तिस-  
 को ऐसा आनन्द नहीं प्राप्तहोना सो इसका तात्पर्य यहै है कि केवल ज्ञानरूपके  
 भी जीवको उत्तम भागोंकी सम्पूर्णता नहीं प्राप्तहोती ताते जब प्रेम और ज्ञान  
 दोनोंहोवें तब उत्तम भागोंको प्राप्तहोताहै और प्रेमभी मबलता तब होती है जब  
 प्रथम उसमनुष्यके हृदयसे गायत्रीभीति सपूर्ण दूधोवे ताते श्रीरूपानि नगणी  
 भीनि वैराग्य विना मिद्ध नहीं होती इसीकारण करके ज्ञानी योगी को आनन्द  
 अधिक होताहै बहुरि जब कोई इसप्रकार प्रश्नकरे कि जो दर्शनका आनन्दभी  
 ज्ञानके आनन्द की ताई है तब यह आनन्द कुछ अधिक नहीं मानना सो उस  
 का उत्तर यहै है कि इसप्रकार प्रश्न तू तबलग करताहै जतलग के ज्ञानके आ-  
 नन्दको जाना नहीं है और केनेही बनन जात्ताके पद हर, अथवा सीगफा अगठ  
 किये है सो इसीको तेने ज्ञान जाताहै ताते इसकरके तुम्हको बड़ आनन्द प्राप्त  
 न होयेगा किमी प्रकार जेस कोई पुरुष अटेको भिगोपरन पावे सो ताहै कि  
 इसकरके मुक्तकी मिठाई का स्वाद आवे तब कदाचित् मिठाई के स्वादका प्राप्त  
 नहीं होता और जित पुरुषको ज्ञानका मस ज्योंका त्यों आपादे तब उसका इस  
 जगत् विषे ऐसा आनन्द होनादे कि उस आनन्द को स्वर्गके सुखमें अधिक  
 भिगतन समनादे सो यद्यपि ज्ञानका सुख ऐसादे कि उसके समान और सुख नहीं  
 नहीं पर नौमी धीरापुरुष के दर्शनका आनन्द एसा अभिन है कि उसमें नि-  
 कट ज्ञानका आनन्द भी तुच्छन मानताहै पर इत बनारस भेद दर्शन विना  
 प्रकट नहीं समझवकै ताने इनका दर्शन पढ़े नेमे तिसी सुन्दर पुरुषके साथ  
 तिसीभी भीति गयिहोवे और प्रथम प्रथम अने प्रियतमको दे लज्ज सुख

का प्रकाश प्रकट न हुआ होवे वहरि उस देवनेहारे पुरुष को विच्छ और मो-  
 खिया भी हंसती होवे और उसी संग व विषे किमी के भयकरके डरना भी होवे  
 और किसी और कार्यकी चिन्ताभी कस्ताहोवे तब यह वार्त्ता निस्सन्देह है कि  
 जहा एते विघ्न इकट्टेहोवे तब उस प्रेमी पुरुषको अपने प्रियतमके दर्शनका सुख  
 सम्पूर्ण प्राप्त नहीं होता पर जब अचानकहीं सूर्य उदय होवे और प्रकाश अ-  
 धिक प्रकटहोवे वहरि जिसके भयकरके डरताया सो तिसका भयभी दूरहोवे और  
 किसी कार्यकी चिन्ताभी न होवे वहरि विच्छ और माखीका डबना भी दूरहो-  
 जावे तब निस्सन्देह उस प्रेमीपुरुषको अपने प्रियतमके दर्शनका आनन्द अति  
 अधिक होताहै सो उस पूर्व देवने कीनाई नहीं होता और विघ्नके दूरहये तब  
 आनन्द सम्पूर्णताको प्राप्त होताहै तैसेही यह पुरुष जबलग देहके अहिमान  
 विषे बंधा रहता है तबलेग इतने विघ्न इस जीव को लगेहुये हैं कि ज्ञान की  
 अलजना अंधेरी कीनाई है अथवा परदेकीनाई है वहरि विच्छ और मखियों  
 का डसनाभी इन्द्रियों के रसोंकी खैव है और सदैवकाल शरीरकी नाराजा का  
 भय रहता है और नानाप्रकार के शोक और दुःख विषयको विषेपना देनेहारे हैं  
 और सर्वदा आहारके उत्पत्तिकी चिन्ता रहनी है पर जब डम जीवको देहाभि-  
 मान नष्टहोताहै तब यह परदे सर्वही दूरहोजाने हैं और उस दर्शनकी प्रीति स-  
 म्पूर्णताको प्राप्त होती है और प्रकाशके प्रकटहोने कके बड़े अंधे भी दूर हो-  
 जाता है वहरि मायाके व्यवहारकी विषेपता भी नाश होजाती है इसी कारण  
 करके यह दर्शनका आनन्द अधिकताको प्राप्त होताहै और जैसे उस देहाभि-  
 मान विषे ज्ञानका आनन्द अलथा तैसेही देहाभिमानके दूरहये तब आनन्द  
 सम्पूर्ण होताहै जैसे अनाजकी सुगन्धिका मुल भवेरुषको कुछ अलपदी होना  
 है तैसेही वह ज्ञान जबलग देहाभिमान युक्त होता है तबजग उसका आनन्द  
 अल्पमात्र होताहै और देहाभिमानके दूरहये तब ज्ञानही दर्शनरूप होनाहै और  
 उसका आनन्द भी अति अधिक होताहै वहरि जब तू इसप्रकार मर्शनके कि  
 तुम तो ज्ञानही की सम्पूर्णताई को दर्शन कहतेहो तो ज्ञान हृदय विषे होताहै  
 और दर्शन का देखना नेत्रों के विषे होताहै तब ज्ञान और दर्शनकी पटना  
 क्योंकर जानिये तब ऐसे ज्ञान तू कि दर्शन का नाम दर्शन इमकरके फटनेहै  
 कि जिसपरार्थ का स्वरूप भक्त्य विषे दृढहोताहै सो दर्शन विषे उभकी प्राप्ति

प्राप्ति होना है तब उमकी दर्शन कहने है इमी कारण चर प्राप्त हुआ कि मपूर्ण  
 प्राप्ति का नाम दर्शन है और नेत्रों के देवने कर दर्शन नहीं कहा जाता तब कोई  
 पुत्र पुत्र अपना बीन को देखे पर तबतग उमकी सुगन्ध तब नेत्रों और बीन के  
 नन्दको श्रवण न करे तबतग सुगन्ध और रागके दर्शनको प्राप्त नहीं होना अर्थ  
 यह कि यद्यपि उनको नेत्रोंकर देखना भी है तोभी उमके रहस्य को प्राप्त नहीं  
 होता तब यह निस्सन्देह है कि श्रीरामचन्द्रनी जब दर्शन का देवना मस्तक  
 विषे उत्पन्न करने तो भी उमको दर्शनही कहने तबने केवल नेत्रों काके देख-  
 नेही को दर्शन समझना भी बुद्धि की हीनता है पर यद्यपि दर्शन के अर्थको तू  
 नेत्रों का देवनाही समझना है तोभी तुम्हको ऐसी प्रतीति चाहिये कि श्रीराम  
 दर्शन भी परलोक विषे नेत्रोंकर पूर्य दृष्ट आवेगा पर वह नेत्र इन स्थूल नेत्रों  
 की नाई न हीयेगा काहेसे कि यह शरीर के नेत्र, स्थूल दृष्टि बिना नहीं देवपाके  
 और वह सूक्ष्मनेत्र ऐसे हैं कि उनका देवना दिशा और स्थान मे रहित है पर  
 उमके अधिक ऐसे वचनकी चर्चा और बखानकरना अयोग्य है काहेसे कि म  
 किसीकी बुद्धि ऐसे भेदको समझ नहीं सकती जैसे सुन्दर चित्रकारी की क्रिया  
 बदले नहीं होतासोही बहुरि यद्यपि कोई पुरुष विद्यावान् भी होवे और वह कर्म-  
 काण्ड और कपाकरण और और विषे चतुराहेवे तब ऐसे सूक्ष्मवचना में उसकी  
 बुद्धि का पहुँचना भी कठिन होता है और जो पण्डित या पाण्डितके वचनोंके  
 निर्णय कानेहोते हैं सो ऐसे भेदको बहभी नहीं पावसक कहते कि यह पुरुष  
 पण्डित मयाही जीशोंके धर्मके कोतवाने हैं अर्थ यह कि पाव पुण्य और नरक  
 स्वर्ग का निराप सनाही जीशोंके हृदय में दृढ़ कराने है और जो मनमोहि  
 लम्हा मनमुनह विनकी विषयो प्रइ पण्डितकी दृष्टाने हैं और तर्का करके उन  
 के मतको खण्डन करने है पर यह ज्ञानकी जो पार्थी है तो निमला मार्गही निम  
 है और इसके समझनेको ज्ञानवान् पुण्य दुर्लभ है तबने इस वचन का पचान  
 करना ऐसे प्रत्य में योदाही मयाहै इमी कारण चरके पैस इसको यदां सम्पूर्ण  
 विद्यारे पद्वि जब नू इसपका मन्त्रके कितने तो ज्ञान और दर्शनके जान-  
 न्दकी ऐसी विशेषता नहीं है कि इस पुनके निरूपणके सुवर्गी सुन्दरपाव-  
 होना है सो इस वचनका अर्थ में हृदय मयाहै नहीं भावना को  
 यद्यपि इमी अर्थ में मन्त्रजनोंके वचन पहुँचते पर भी बुद्धि ऐसे सुख्य भेदकी

समझ नहीं सकीं और वह भोग्य उत्पन्न होता है कि ऐसी सुख कौन होगा जिसे सुखके आगे स्वर्ग का सुख भी धिंस हो जाना है और जयन्तग यह मगप दू न होवे तबलग हृदयकी पूर्तीति और निश्चयभी दृढ़ नहीं होती सो निम्का उक्त यह है कि इमवचनके अर्थका भेद तीन प्रकार करके तेरी बुद्धि में प्रत्यक्ष भामेगा सो प्रथम यह है कि तब तुम्हको यह अर्थ पूगट भामेगा जब तू बहुतरवार भनी प्रकार इन वचनों के अर्थका जो हगने कहा है निम्का मनन और विचार करेगा काहेसे कि जो वचन एकहीवार श्रवण किया जाता है तब तू चित्तम नहीं उठरता ताते बारबार इम वचनका विचार करना प्रमाण है बहुरि दूमरा उपाय यह है कि मनुष्यमें सभी स्वाद इकट्ठे नहीं उत्पन्न किये ताते अपने २ मगय अनुमार प्रकट होते हैं जैसे बालकको प्रथम आहारहीकी तृष्णा होती है और आहार से इतर किसी पदार्थको नहीं जानता बहुरि जब सातवर्ष का होता है तब उमको खेलने की तृष्णा उत्पन्न हाती है और उसी खेलने के रसमें ऐमा लीन होता है कि आहारका स्मरण भी नहीं करता बहुरि जब दशवर्ष का होता है तब उमको शृगार और सुन्दर वस्त्रों की अभिलाषा उत्पन्न होती है और सुन्दरताई के स्वाद करके खेलनेका भी त्याग करता है बहुरि अब यौवन अस्थानको प्राप्त होता है तब कामादिक भोगोंकी प्रवृत्ता होती है और कामकी अभिलाषा विषे ऐमा मगन होता है कि उस करके आहार और खेलन और शृगार की अभिलाषा नष्ट हा जाती है बहुरि जब बीसवषका होता है तब इसमनुष्य विषे मान और बड़ाईकी तृष्णा उत्पन्न होती है सो इम मानबड़ाईका स्वाद ऐना है जो माया के सर्वपदार्थों विषे प्रवल है जैसे प्रभुके वचनों विषे भी आया है कि इमममार विषे इम जीवको इन नाही प्राप्त होता है जो खेल और सुन्दरताई और मान और सम्पदा और दुर्वासना सो इम ससार विषे यही पदार्थ है पर जब यह पुरुष मायाके पदार्थों करके मलिन और रोगी और आमकन होवे तब इससे पीछे सर्व जगत्के उत्पन्न करनेहारे जो भगवत्के सो तिनकी विद्या और उनके ज्ञानका आनन्द इमजीवको पूगट होता है सो भगवत्के जाननेका रहस्य ऐमा है कि जैसे मानके स्वाद विषे सर्वपदार्थ मायाके लीन होजाते हैं तैसेही भगवत्के परिचानने के आनन्द विषे मान और बड़ाईका आनन्द भी विरम होजाता है और यह वार्त्ता प्रगिट्ट है कि स्वर्ग विषे भी आहार और रूपके मुखमे अधिक और मुखकोई नहीं काहेसे कि



प्राप्ति होती है तब उसको दर्शन कहते हैं इसी कारण प्रसिद्ध हुआ कि संपूर्ण शाक्तिका नाम दर्शन है और नेत्रों के देखने पर दर्शन नहीं कहा जाता जैसे कोई पुरुष पूरुष अथवा वीनको देखे पर जबलग उसकी सुगन्ध न लेवे और वीन के शब्दको श्रवण न करे तबलग सुगन्ध और रागके दर्शनको प्राप्त नहीं होता अर्थ यह कि यद्यपि उनको नेत्रोंकर देखना भी है तभी उनके रहस्यको प्राप्त नहीं होता तब यह निस्पन्द है कि श्रीरामचन्द्रजी जब दर्शन का देसना मस्तक विषे उत्पन्न करते तों भी, उसको दर्शनही कहते तबने, केवल नेत्रों करके देखनेकी दर्शन, समझना भी बुद्धिकी देसना है पर यद्यपि दर्शन के अर्थको, तू नेत्रों का देखनाही समझना है तोंभी तुम्हको ऐसी प्रतीति चाहिये-रुके श्रीगण दर्शन भी परलोक विषे नेत्रोंकर पूष्ट दृष्ट आवेगा पर वह नेत्र इन स्थूल-नेत्रों की नाई न होवेगे काहेमे कि यह शरीर के नेत्र स्थूल दृष्टि-विना नहीं देखसके और वह सूक्ष्मनेत्र ऐसे हैं कि उनका, देसना, दिशा और स्थान-से रहित है पर इमसे अधिक ऐसे वचनकी चर्चा और बतानाकरना, अयोग्य है काहेमे कि सब किमीकी बुद्धि ऐसे भेदको समझ नहींसकी जैसे सुन्दर चित्रकारी की क्रिया वदसे नहीं होसकी वदुरि, यद्यपि कोई पुरुष विद्यावान् भी होवे और वह कर्म-काण्ड और व्याकरण और और विषे चतुरहोवे तब ऐसे सूक्ष्मवचनों में उसकी बुद्धि का पहुँचना भी कठिन होता है और जो परिदत्त, ज्ञानप्रकारके वचनोंके निर्णय कर्मेहोते हैं सो ऐसे भेदको वही नहीं पससके काहेमे कि यह प्रकृति परिदत्त ससारी जीवोंके धर्मके कोनवालहें-अर्थ यह कि पाप पुण्य और नरक स्वर्ग का निश्चय मंसारी जीवोंके हृदय में दृढ करारते हैं और जो, मनमति लभत मनमुक्ते तिनके विन्नकी यह परिदत्तही दूरकरते हैं और चर्चा करके उनके मनको खण्डन करते हैं, पर यह ज्ञानकी जो चर्चा है सो निश्चय मार्गही भिन्न है और इमके समझनेटो ज्ञानवान् पुरुष दुर्लभ हैं तबने इम चर्चा कर बतान करनेना ऐसे ग्रन्थ में थोड़ाही प्रमाण है इमोकारण करके मैंने इमको यहा सम्पूर्ण किया है वदुरि जब तू इसप्रकार प्रश्नकरे, कि तुमने तों ज्ञान और दर्शनके आनन्दकी ऐसी विशेषता कही है कि इस सुखके निकट स्वर्गके सुखभी तुम्हमात्र होजाते हैं सो इस वचनका अर्थ मेरे हृदय में प्रत्यक्ष नहीं भासना और यद्यपि इसी अर्थ में मन्त्रजनोंके वचन बहुत हैं पर मेरी बुद्धि ऐसे सूक्ष्म भेदको

समझ नहीं मक्की ओग' रहमणय उत्पन्नहोताहै कि ऐमासुप कौन होयेगा जिम सुखके आगे स्वर्ग का सुख भी बिस होजाताहै और जयलग यह मणय दूग न होवे तवलंग हृदयकी पूर्तीति और निश्चयभी दृढ़ नहीं होती मो निमका उत्तर यहहै कि इमवचनके अर्थका भेद तीनपूकार करके तेरी बुद्धि में प्रत्यक्ष भामेगा सो प्रथम यहहै कि तव तुम्हको यह अर्थ पूगट भामेगा जय तू बहुतवार भनी पूकार इन वचनों के अर्थका जो हमने कहाहै निमका मनन और विचार करेगा काहेसे कि जो वचन एकहीवार श्रवण । रुया जानाहै तव वच वित्तमें नहीं उठरता ताते बारवार इम वचनका विचार करना प्रमाणहै बहुरि दूमरा उपाय यह है कि मननुष्यमें सभी स्वाद इकट्ठे नहीं उत्पन्नकिय ताते अपने २ समय अनुमार पूकट होते हैं जैसे बालकको प्रथम आहारहीकी तृष्णा होती है और आहार से इतर किसी पदार्थको नहीं जानता बहुरि जब मानवर्षका होताहै तव उसको खेलने की तृष्णा उत्पन्न होती है और उसी खेलने के रसमें ऐमा लीनहोताहै कि आहार का स्मरणभी नहीं करता बहुरि जब दशवर्ष का होता है तव उसको शृंगार और सुन्दर वस्त्रों की अभिलाषा उत्पन्न होती है और सुन्दरताई के स्वाद करके खेलनेका भी त्याग करताहै बहुरि अब यौवन अवस्थाको प्राप्तहोताहै तव कामादिक भोगोंकी प्रवृत्ति होती है और कामकी अभिलाषा विषे ऐमा मग्नहोता है कि उस करके आहार और खेलने और शृंगार की अभिलाषा नष्ट हो जाती है बहुरि जब बीसवर्षका होताहै तव इसमनुष्य विषे मान और बड़ाईकी तृष्णा उत्पन्न होती है सो इम मानबड़ाईका स्वाद ऐमाहै जो माया के मर्षपदार्थों विषे प्रबलहै जैसे प्रभुके वचनों विषे भी आयाहै कि इमममार विषे इम जीवको इतनाही प्राप्तहोता है जो खेल और सुन्दरताई और मान और सम्पदा और दुर्वासना सो इम ससार विषे यही पदार्थ है पर जब यह पुरुष मायाके पदार्थों करके मलिन और रोगी और आमकून होवे तब इससे पीछे सर्व जगत्के उत्पन्न करनेहार जो भगवत्के मो तिनकी विद्या और उनके ज्ञानका आनन्द इमजीवको पूगट होताहै मो भगवत्के जाननेका रहस्य ऐमाहै कि जेने मानके स्वाद विषे सर्वपदार्थ मायाके लीन होजाते हैं तेमेही भगवत्के परिचानने के ज्ञानेद विषे मान और बड़ाईका आनन्द भी बिस होजाताहै और यह बार्त्ता प्रामिष्ट है कि स्वर्ग विषे भी आहार और रूपके सुखमे अधिक और सुखकोई नहीं काहेसे कि

उहा भी बागों विषे कीड़ा करते हैं और उनके फलों का आहार करते हैं और फूल जल और और सुन्दर मन्दिरोंको देखकर प्रसन्न होते हैं सो यह सभीभोग इसमसार विषे मानके भोग की अभिलाषा के निकट तुच्छरूप होजाते हैं ताते ज्ञानके आनन्द विषे स्वर्ग के भोगों का विस्मरण कैसे कठिन होगा काहेसे कि मानकी तृष्णा करके यह मनुष्य ऐसा कठिन तप करते हैं कि प्रथम एकान्त ठौरविषे अपना बन्दीखाना बनाते हैं अर्थ यह कि कमी बाहर नहीं निकमते बहुरि नित्यपूति एकही दानेका आहार करते हैं और सर्वरात्रि जागरण करते हैं यद्यपि ऐसा तप करते है कि सर्वभोगोंका त्याग करते हैं पर तौभी मानका त्याग नहीं करसके ताते प्रसिद्ध हुआ कि स्वर्ग के सुख जो इन्द्रियादिक भोगहै सो इससे मान और बड़ाईके सुखको अधिक प्रियतमरखते हैं सो जैसे ऐश्वर्य और मानकी अभिलाषा इन्द्रियादिक भोगोंके रसको विसर कर डारती है तैसेही ज्ञान के रस करके ऐश्वर्य और मानका रसभी विगम होजाता है सो यह सभीवार्त्ता तेरीबुद्धि विषे निस्सन्देह प्रत्यक्ष भासती है काहे से कि इन मानादिक रसों को तू भलीप्रकार जानताहै पर बालककी बुद्धि विषे जो मानके रसका स्वाद नहीं भासता ताते वह मान के रसकी प्रतीति भी नहीं करसकता और अब तू बालक को मान और बड़ाई के रस को लखाया चाहे तो जवनग उस की बुद्धि विषे आपही उसका स्वाद न भासे तबलग उसे बचन करके लखाना कठिन होताहै तैसेही जवलग तुम्हको ज्ञानके आनन्दका स्वरूप प्रत्यक्ष न भासे तबलग ज्ञानवान्भी अपने बचनों करके तुम्हको समझाय नहीं सकता जैसे तू बालकको समझाने विषे समर्थ नहीं होसकता २ बहुरि तीसरा उपाय यहहै कि जब तू ज्ञानवानोंकी अवस्थाको देखे और उनके बचनोंको श्रवणकरे और उनसे प्रश्नोत्तर करके अपने सणयको दूरकरे तब तेरे वित्त विषे इस बचन का अर्थ अवश्यही प्रकट होवेगा जैसे नपुमक पुरुष कामादिक भोगों के रसको आप करनहीं जानता पर जब कामी पुरुषों को देखनाहै कि वह अपनी सर्वमानधी इसी भोगकी प्रबलता विषे खर्चते हैं तब उसकोमी इनना भासने लगताहै कि इन कामादिक भोगोंकारस महाप्रबलहै तैसेही जब तू ज्ञानवानोंकी अवस्थाको देखे और उनके परमानन्द को पहिचाने तब तुम्हको भी ऐसी प्रतीति दृढ़ होजावेगी कि उनके हृदयमें निस्सन्देह बड़ा सुखहै इमीपर राधियाबाईकी वार्त्ता है कि उनको किसी

पुरुषने कहाथा कि स्वर्गको चाहतीहो तव उन्होंने कहा कि मेरी प्रीति घरवाले के साथहै ताते में घरको नहीं चाहती अर्थ यह कि मुझको प्रीति भगवत्की है इमकारणसे मैं स्वर्गरूपी घरको नहीं चाहती वहुदि दाराई सतनेभी कहाहै कि श्रीरामजीके ऐसे प्रियतमहैं कि उनको स्वर्गकी आशा और नरकोंका भय आसक्त नहीं कर सका पर इमलोक के सुख तो अल्पमात्रहैं तव उनविषे आमक्त क्योंकर होवें इसीकारण से सर्व वासनाको दूरकरके श्री रघुपतिचरणप्रीति विषे मग्न रहतेहैं वहुदि एक और सन्नकोभी किसीप्रियतमने कहाथा कि तुमको सर्व ससार और मायासे जो वैराग्य प्राप्त हुआहै और एकान्त ठौरमें मजन विषे जो स्थित हुयेहो सो तिसका कारण क्याहै तात्पर्य्य यह कि तुमको काल का भय स्मरण विषे आयाहै अथवा नरकोंका भयहै अथवा स्वर्गकी आशाहै सो इस का उत्तर मुझसे कही तव सन्तने कहा कि कालका भय क्याहै और नरकोंका भय क्याहै और स्वर्गकी असल क्याहै पर एक ऐसा परेश प्रभुहै कि यहलोक और परलोक उसीके हाथ विषे हैं सो जब तू उसकी प्रीतिकारस चाखे तब यह समी डर और आशा विस्मरण होजावे और जब तुझको उसकी पहिचानहोवे तब इन सब पदार्थोंसे तू लज्जावान् होवेगा वहुदि एक और महात्माको किसी ने स्वप्नविषे देखाथा तव उमने पूछा कि अमुकसन्नकी गति परलोक विषे क्यों करे हुईहै तव उन्होंने कहा कि अवर्ही मैं उसको स्वर्गविषे अमृतफलोंका आहार करते देखआयाहू वहुदि उसपुरुषने पूछा कि तुम्हारी अवस्था क्योंकरहै तव उन्होंने कहा कि श्रीरामजी मेरे हृदयके अनर्यामीहैं सो जब महाराजने जाना कि इसको स्वर्गके खान पान की अभिलाषा कृद्य नहीं तव महाराजने अपनी दया करके मुझको दर्शन दिया और एक और सन्तनेभी कहाहै कि मैंने स्वप्न विषे स्वर्ग को देखा था और उम स्वर्ग विषे बहुतलोग भोगोंको भोगते देखे तव मैं एक और पुरुषको देखा कि वह शुद्धस्थान विषे बैठाहै और नेत्र उमके खुलेहुये हैं और मतवारे की नाई स्थितहै तव मैंने स्वर्गवासियों से पूछा कि यह पुरुष कौनहै तव उन्होंने कहा कि यह मारुत्जीहै सो यह ऐमे महापुरुषहै कि इन्होंने नरक की भय और स्वर्ग की आशाकरके श्रीरामज्ज का मजन नहीं किया और निष्काम होकर श्रीरामनामस्मरण विषे दृढ़ दृष्टे नो उनको श्रीरामज्ज का दर्शन हुआहै और स्वर्गके भोगों से निरत स्थिति पायी

सन्तनेभी कहा है कि जो कोई पुरुष इसलोक विषे अपने शरीरके भोगोंके साथ परचाहुआ है सो परलोक विषेभी शरीरके भोगों विषे आसक्त रहेगा, और जो पुरुष इसलोक विषे श्रीरामभजनके साथ परचाहै सो परलोकविषे श्रीरामजी के दर्शन सुखवर्षन को प्राप्त हवेगा बहुरि एक ओर सन्तनेभी कहा है कि एकवार मैंने वायजीदजी को देखाथा कि वह सन्ध्याकालसे लेकर प्रभात समय पर्यन्त चरणोंके गार बैठेहै और ध्यान विषे नेत्रोंको मूदलिया बहुरि धरतीपर मस्तक टेककर उठ खड़ेहुये और प्रार्थना करनेलगे कि हे महाराज ! जिनपुरुषों ने आपका भजन कियो है तब उनको आपने-सिद्धताका बल दिया है तातः तब पुरुष जलोंपर सूखेही तरजानेहैं और आकाश विषे उड़ने लागते हैं पर मैं इनसर्व सिद्धियों से अपकी रक्षा चाहताहू बहुरि एक ऐसे पुरुषहुये है कि उनको दूधे हुये खजाने मिले हैं और एक ऐसे हुयेहैं कि वह एकही रात्रि-विषे सहस्रयोजनों के मार्गको लावगयेहैं और इसी मिद्धता-विषे प्रसन्नहुये हैं पर मैं इनसे भी रक्षा चाहताहू तब इतना कहकर वायजीदजी ने, उनी पीठकी ओर देखा और मुझको देखकर कहनेलगे कि तू यहाँहीं बैठाथा तब मैंने कहा कि हा स्वामी जी मैं यहाँहीं बैठाया बहुरि उन्होंने कहा कि क्वका बैठा है तब मैंने कहा कि जी मुझको यहाँ बैठे बहुत चिरकालहुआ और मैंने योंगी कहा कि हे स्वामीजी ! अपनी भवस्थाका बखान कुछ मुझकोभी सुनावो तब उन्होंने कहा और कि तेरे अधिदार अनुसार मैं कुछ कर्णन करताहू बहुरि कहनेलगे कि मैं एकवार आकाशविषे देवतों के स्थानों में गयाया तब तहा स्वर्ग वैकुण्ठादिक सर्व लोकोंको देवता भया और वहा मुझको आकाशबाणी हुई कि जिस पदार्थकी तुझको इच्छा होवे सो अब मागलेवो तब मैं तुझको वही पदार्थ देऊ बहुरि मैंने प्रार्थनाकरी कि हे दीनदयाल ! तेरे बिना मुझको किसी पदार्थकी इच्छा नहीं तब स्वामीने कहा कि तू मेराही दासहै बहुरि एक महात्माका एक निज्ञासुया-सो वह हृदयकी एकाग्रताविषे लीन रहताथा तब एकवार महात्माने कहा कि उस जिज्ञासु को कि तू वायजीदजी का दर्शनकरे तो मलाहै बहुरि उसने कहा कि मैं अपनेही हृदय विषे परचा हुआहू तब महात्माने उसको केतीवार फेरभी कहा कि तुझका उनका दर्शन करना अविश्रु प्रमाणहै बहुरि उसने कहा कि मैं उनकेभी स्वामीको नित्यप्रति देखताहू ताते मुझको उनके देखनेकी इच्छा क्योंकर हेवे

बहुरि महात्माने उसको, कहा कि जो तू एकवार उत्कर्ष दर्शन करे तो सत्तरवार प्रभुके देखने से उनका दर्शन तुम्हको विगप है तब वह जिज्ञासु आश्चर्यमान् होकर कहने लगा कि हे स्वामीजी ! तुमने यह वचन किस प्रकार कहा तब उन्होंने कहा कि हे भाई ! अब जो तू प्रभुको देखता है मो अपने अधिकार प्रति देखता है और जब तू उनके निकट जावेगा तब तू प्रभुका उनकी अवस्थाक अनन्तर देखेगा तब जिज्ञासुने इस वचनको समझकर कहा कि हे स्वामीजी ! तुमभी मेरे साथ चलो तब वहा जाकर उनका दर्शन करें बहुरि दोनों गुरुशिष्य वायजीदजी के पास गये तब वायजीदजी लज्जित भिपे गये ये बहुरि जब अपने गृह विपे आये और उम जिज्ञासुने उनको देखा तब वायजीदका देखनेटी उम जिज्ञासुने कहा कि भले आये हो बहुरि इतना कहकर उस जिज्ञासुका शरीर छू गया तब उसके गुरुने कहा कि हे महापुरुषजी ! तुमने इस जिज्ञासुको एकही दृष्टि र समाप्त किया तब उन्हा तो कहा कि यह सौचा जिज्ञासु था और इसके हृदय विपे एक गृहभेद था सो वह भेद इसको आपकरके सुनता न था और जना मुझको इसने दखा तब वह भेद इसको प्रकट हुआ है पर, इसके हृदय विपे उमा भेद के रक्त लेनेका बल न था ताते शरीर छू गया और वायजीदजाने योमी कहा है कि यद्यपि वडे महापुरुषोंके समान सरामा और प्रार्थना और दिव्यता तुम्हको मिले तो भी चाहिये कि तू श्रीराम विना और किसी पुरुषका अङ्गीकारना करे काहेसे कि ज्ञातवानों की अवस्था इनसे भी परहे इमीए, एकवार्ता है कि वायजीदजी से एक भीतिमान ने कहा कि मुझको तीसमर्ष इमी प्रकार मिले है जो रात्रि विपे भजन करता है और दिनेको व्रत रखता है पर जेमे ज्ञानके वचन तुम्ह कहते हो सो मुझको इनकी समझ कुछ प्रकट नहीं भासती तब उन्होंने कहा कि जब तू तीन मे वर्ष पर्यन्त ऐसाही कठिन तप करे तब भी हमारे वचनों के भेदको समझन सकेगा बहुरि उम पुरुष ने कहा कि मैं इस भेदको किस कारण करने समझन सकेगा तब उन्होंने कहा कि तुम्हको अपने गान और गहकार का पटल है बहुरि उम पुरुषने पृश्न कि इसका उपाय क्या है तब उन्होंने कहा कि तू इसका उपाय न धारसे गा बहुरि उसने कहा कि तुम दयाकरके मुझको बनाओ तब मैं उपाय करुंगा तब उन्होंने कहा कि प्रथम तू आगी दादी, को दूकर और नगाहोकर अखरोटों का घेना गले में डालने और बाजार विपे जाकर कह कि जा फेई

बालक मुझसे। एक मुष्टिका मारे तो मैं उसको एक अखरोट देऊंगा बहुरि राज-  
सभाके परिडनों के आगे इसीप्रकार कहे तब तेरे अहङ्कार का पटल दूर होवेगा  
बहुरि, जब यह वचन उसपुरुषने सुना तब कहनेलगा कि इससे भगवान् रक्षाकरे  
तुमने यह वचन कैसा कहा तब वायजीद उसको कहनेलगे कि यह वचन जो  
तैने कहाहै सो इमकरके तू मनमुख हुआ है काहेमे कि यद्यपि मुझसे तू यों क  
हताहै कि भगवन्त जो निर्लेपहै सो मेरी रक्षाकरे पर इसी कहने विषे तू अपनी  
बड़ाई को चाहताहै ताते तू मनमुख है बहुरि उस पुरुषने कहा कि तुम मुझको  
कुछ और उपायकरो तो मैं करूंगा और यह जो तुमने आगे कहाहै सो मुझमे  
हो नहीं सका तब उन्होंने कहा कि औपध तेरा यहीहै बहुरि उसने कहा कि यह  
तो मुझसे नहीं होसका तब उन्होंने कहा कि मैंने तो तुझको प्रथमही कहाथा कि  
तेरा जो उपायहै सो तू न करसकेगा पर वायजीदने यह उपाय उसको इसकारण  
कर कहाथा कि वह पुरुष मान और बड़ाई की अभिलाषा विषे आमङ्गथा और  
उसको मानहीका रोगथा ताते निर्माण होना उसका औपधथा और एक महा-  
पुरुषको आकाशवाणी हुईथी कि जिस मनुष्यके हृदयविषे लोक और परलोक  
का अभिलाषा नहीं देखताहू तब उसके हृदय विषे मैं अपनी प्रीतिको रखताहू  
और सर्व प्रकार उसकी रक्षा करता हू बहुरि एक महात्माने महाराज के आगे  
प्रार्थना करीथी कि हे प्रभु ! तू भलीप्रकार जानताहै कि जैसे अपनी प्रीति और  
भजनकारहस्य तैने मुझको अपनीदयासे दियाहै तिममे स्वर्गके सुखोंकामोले  
मञ्छरके परकी समान भी नहीं लगता बहुरि रावियाबाई से भी किसी पुरुषने  
पूछाथा कि तुम महापुरुषको प्रियतम रखतीहो तब उन्होंने कहा कि ऐसापुरुष  
कौनहै जो महापुरुषको प्रियतम न राखे पर मुझको भगवत्की प्रीतिने ऐसा लीन  
कियाहै कि और किसीकी प्रीति मेरेहृदयमें नहीं रही और एक और महापुरुष  
से लोगोंने पूछाथा कि उत्तम करतूति कौनहै तब उन्होंने कहा कि श्रीरामजीकी  
प्रीति और उनकी आज्ञामें प्रसन्नरहना सो उत्तम करतूति यही है पर तात्पर्य यहहै  
कि सन्तजनोंकी साक्षिया भी ऐसी बहुतहैं पर उनकी अवस्थाकरके जानाजा-  
ताहै कि स्वर्ग के सुख से श्रीरघुनन्दनजीकी प्रीति और तिनकी पहिचान का  
आनन्द अधिक होताहै ताते चाहिये कि तू ऐमे वचनोंका विचारकरे तब तुझ  
को भी इस वचनका अर्थ प्रत्यक्षमासे ॥ अप प्रकट करना इमका कि श्रीरामजी

की पहिचान किमकारण छिपी हुई है ॥ ताते जान तू कि जिस पदार्थकी पहिचान कठिन होती है सो दो कारणोंकर होती है सो प्रथम यह है कि जो पदार्थ अति गुह्य होता है तिसको पहिचान नहीं सके । और दूसरा कारण यह है कि जो पदार्थ अति प्रकट और अधिक प्रकाशवान् होता है तब उसको भी नेत्रोंकर देख नहीं सके जैसे चिमगोदर सूर्यको देख नहीं सका वहुनि जब रात्रिका समय होता है तब नेत्रको खोलकर देखता है सो तिसका कारण यह है कि दिनविषे सूर्यका प्रकाश अधिक होता है और चिमगोदर की दृष्टि मन्द है ताते अंधकार विषे नेत्रोंको खोलकर देखना है तैसेही भगवत् के पहिचानने की कठिनाई भी अति पूगटना करके है कि भगवत् अनि प्रकाशवान् और अति प्रत्यक्ष है ताते बुद्धिरूपी नेत्र उसको देख नहीं सके और श्रीरामजी का प्रकाश और उनकी प्रकटता इमप्रकार जानी जाती है कि जैसे तू किसी के सुन्दर अक्षरदेखे अथवा किसी वस्त्रको सिलाहुआ देख तब तू निस्सदेह दरजीकी विद्याको और श्रद्धाको सुगमही पहिचान लेता है और कारीगरीकी क्रियाको देखकर उसकी विद्या प्रत्यक्ष भास आवती है तैसेही श्रीरामजी जब इस जगत् विषे एकही पक्षी अथवा एकही वृक्ष उत्पन्न करते तब जो कोई उसको देखता सो निस्सदेह उसके उत्पन्न करनेहारे महाराजकी वृक्ष और समर्थताई और बड़ाईको सुगमही पहिचानता काहे से कि यह महाराजकी रचना ऐसी है जो वस्त्र और अक्षरों की रचना के समान नहीं इमकारण से कि वस्त्र और अक्षरोंकी कारीगरी आरम्भ और सामग्री और यत्नकर सिद्ध होती है और यह धरती और आकाश और पशु वृक्ष और पर्वत और अवर जो इसकी नाई सृष्टि है और जो कुछ मनके सकल्पविषे आवता है सो सभी महाराजकी कारीगरी है और इसकारिगरीको महाराजने आरम्भ और यत्न बिनाही उत्पन्न किया है ताते यह सभी पदार्थ महाराज की बड़ाई के लखावनेहारे हैं और यद्यपि एने पदार्थ लखावनेहारेभी हैं तोभी अति पूगटना करके उमका पहिचानना गुह्य हो रहा है काहे से कि जब एक पदार्थ महाराजने उत्पन्न कियेहोते और एक और पदार्थ किसी और ने बनाये होने तब निस्सदेह महाराजकी बड़ाईको पहिचानसके पर जब सर्व सृष्टिका उत्पन्न करनेहारा महाराजही है इमीकारणकर लखा नहीं जाना और इसका दृष्टान यह है कि जैसे सूर्य के समान इम जगत् विषे और कोई पदार्थ प्रकाशवान् नहीं काहे से



सर्व पदार्थों को सूर्य्यही लिखावनेवाले पर जव यह सूर्य्य भी रात्रि के समय अस्त न होता अथवा भेदोंके आवरण विषे सूर्य्यको पेटले नहीतो तब कोई मनुष्य इस प्रकाशको सूर्य्य के आश्रय न जानता और यों जानते कि यह सबही रंग आप करके प्रकाश हुयेह पर सब कोई नो रंगोंके लिखावनेद्वारे प्रकाशको पहिचान ताहै सो इसकारण करके जानतेहै कि रात्रिके समय सभीरंग छिपजातेहै और प्रकाशविना कोई रंग दीखानही सकता नाते जानाजाताहै कि रंग भिन्नहै और प्रकाशभिन्नहै सो प्रकाशका लेखना अन्धकार होताहै कोहे से कि विरोधी पदार्थको विरोध करकेही लेखा जाताहै तेसेही सर्व जगत् का उत्पन्न करनेद्वारा जो भगवन्त है सो वही किसी कालविषे सूर्य्यकी नाई जव अलोप होजाता अथवा नाशनाका प्राप्त होता तब यगती और आकाश भी नष्ट होजाते तब इस करके सब कोई भगवत्को सुगमही पहिचानलेता पर वह भगवन्त जो नाशता और आवर्णादि क्रमे रहितहै और सर्वपदार्थ उसीकी लिखावनेद्वारे हैं और सर्वदा उत्सक्रा प्रकाश आवण्डहै तति अधिक प्रकाश करके छिप रहाहै वहरि योंभी है कि बाल अवस्थासे लेकर जव तेरे विषे कुछ बुद्धि ही न थी तबमे तू सर्व मृष्टिको देखता है और सृष्टिके उत्पन्न करनेद्वारे का बुद्धिही करके पहिचान करके है सो बुद्धिके आगेही सृष्टिके देखनेमें तेरे नेत्रोंकी वृत्ति हटहोगई और स्वाभाविक होगयाहै तति मानापूकारके चरित्र देखकर भी तुम्हको आश्चर्य नहीं मानना वहरि जव अचानक किमी अपूर्व पक्षी अथवा धृषकी तू देखनाहै तब जानता है कि इसका उत्पन्न करनेद्वारे ईश्वर समर्थहै और तू यों कहताहै कि जिसने इसको बनायाहै सो उसद्वारा जकी भेदिमा अपारहै और उम अपूर्व आश्चर्य को देखकर भगवत्की कौशिकी तुम्हको प्रत्यक्ष प्राप्त आवती है ताने जिन पुरुषकी बुद्धिके नेत्रकी दृष्टि उन्ज्वलहै सो सर्वपदार्थोंको आश्चर्य रूपही देखता है और भगवत्की कौशिकीको पहिचानताहै और अपनी वासनाकरके किमी पदार्थको नहीं देखता जैसे कोई पुरुष सुन्दर अशरों को देखे तब वह पुरुष जो विद्याहीन होताहै तो ममी और कौशिकीको देखताहै और जो विद्यावान होताहै तो सुन्दर अशरोंको देखकर लिखावनेद्वारे की कौशिकीको पहिचानताहै और बाणी करके बाणीके बनानेद्वारे की विद्याको समकताहै तेमेही जो बुद्धिमान पुरुषहै सो सर्वपदार्थोंविषे भगवत्की मन्ता कि देखनाहै और जो पुरुष बुद्धिसे हीनहै

सो इस समारंभ को अपनी वासना और वृष्णायुक्त देवता है और बुद्धिगान्पुरुष इसप्रकार जानता है कि कोई पदार्थ भगवत्की सत्ता से भिन्न नहीं ताते उसको सब कुछ आश्चर्यही भासता है इसकारण कर सबही पदार्थ भगवत् की वड़ाई और समर्थताई को प्रकट लखावते हैं ताते इसजगत् विषे भगवत् के समान और कोई पदार्थ प्रकाशमान और उज्ज्वल नहीं पर यह जीव अपनी बुद्धिकी हीनता करके उसको पहिंचान नहींसके ॥ अथ प्रकटकरना उपाय प्रीतिके प्राप्तहोने का ॥ ताते जान तू कि भगवत्की प्रीति सर्वपदों से उत्तमपद है और उसके प्राप्त होनेका उपाय समझना अतिप्रमाण है सो इस प्रीतिके उपजने का दृष्टात यह है कि जैसे कोईपुरुष किसी सुन्दर पुरुषके साथ प्रीति कियाचाहे तत्र इसका उपाय यह है कि प्रथम अपने प्रियतम बिना और सर्व पदार्थों से विरक्तहोवे वहरि उसी प्रियतमको सर्वदा प्रीति सयुक्त देखतारहे और उसके सर्वअङ्गोंके देखनेकी अभिलाषा को बढ़ावे ताते जेती जेती उसकी सुन्दरताई को देखना है तेतीही उम के हृदय विषे प्रीति दृढ़ होतीजाती है सो जब वह पुरुष इस प्रीति के स्वर्भोव विषे दृढ़ होताहै तत्र निस्सन्देह उमको प्रीतिकी अधिकता होतीहै तैमही श्रीरामजी की प्रीतिका उपायभी यहीहै कि प्रथम माया के सर्व्व रसों से भिक्तहोवे काहे से कि महाराजकी प्रीति विषे मायाकी प्रीति पटल डारनी है सो मायाकी प्रीतिका दूरकरना ऐसे है जैसे किसान फटकों को दूर करके धरती को शुद्धरुताहै वहरि इससे पीछे रामजीकी पहिंचान को ग्रहण करे काहे से कि जबलग यह पुरुष रामजीको नहीं पहिंचानता तबलग इसको श्रीरघुनन्दनज की प्रीति भी नहींहोती ताते यह ज्ञाती प्रसिद्धहै कि हृदय सुन्दरताई और पूर्णताई आपही वित्त से संचती है और प्रियतमहै सो जब यह पुरुष उमको पहिंचानताहै, तत्र निस्सन्देह उमको प्रियतम रक्षताहै जैसे कोईपुरुष किसी महात्माकी विशेषताको जाने तत्र अवश्यही उसके साथ प्रीति करताहै काहेसे कि उसमें शुभ गुणोंकी सुन्दरताईको प्रकट देवताहै ताते उसको प्रीति स्वाभाविकही दृढ़होती है तैमही जब यह पुरुष श्रीरामजी को पहिंचानता है तत्र सहजही प्रीति उत्पन्न होतीहै सो यह पहिंचानना बीज की नाई होना है वहरि चाहिये कि सर्व्वकाल श्रीराम भजनम स्थित होवे सो गहन विषे स्थितहोना जल सोचनेकी नाईहै सो योंभी दे कि जो कोई किर्मीका अधिक स्मरण करता है तत्र इस करकेमी प्रीति अधिक होती है नाते

जान तू किं यद्यपि सात्त्विकी मनुष्यों के हृदय विषे महाराजकी प्रीति अक्षर्य होती है पर सर्वको समान नहीं किसी को अल्प किसी को अधिक होनी है सो अधिकता और अल्पताका भेद तीन कारण कर होता है सो इसका प्रथम कारण यह है कि जिसका चित्त माया के व्यवहारविषे अधिक पसरा हुआ है तब उसको श्रीरामचरण प्रीति थोड़ी होती है काहे से कि एक पदार्थकी प्रीति दूसरे पदार्थकी प्रीतिको मन्दकरती है ? बहुरि दूसरा कारण यह है कि पहिचान विषे भी भेद होता है जैसे कोई पुरुष विद्याहीन होवे तब वह पण्डितोंको इतना ही पहिचानता है कि अमुक पण्डित बहुत पढ़ा हुआ है और जो आप भी विद्यावान् होवें सो उस पण्डित के नाना प्रकारकी विद्याको पहिचानता है और उस पण्डित के साथ जिसकी प्रीति होती है तब वह उसके हृदयके गुणोंकी भी पहिचानता है और गुण गुणोंकी सुन्दरताई को देखकर अधिक प्रियतम रक्ता है जैसे ही जो पुरुष श्रीरामजीको भक्ती प्रकार पहिचानता है तब उसके माथे प्रीति भी अधिक ही करता है ? बहुरि तीसरा कारण यह है कि गजन स्मरण करके जो रहस्य प्राप्त होता है सो उस विषे भी बड़ा भेद होता है काहे से कि कोई पुरुष भजनकी सावधानता विषे दृढ़ होता है और कोई अल्प दृढ़ होता है ? ताते जान तू कि प्रीतिकी अधिकता और अल्पताका भेद इन तीन कारणों कर होता है पर जिस जीवकी प्रीति रामजी के साथ कुछ नहीं होती तब जाना जाता है कि उमने रामचन्द्रजीकी पहिचाना ही नहीं पर जैसे शरीरकी सुन्दरताई चित्तको खिंचती है तैसे ही गुणोंकी सुन्दरताई को लो पुरुष देखता है तब उसको अवश्य ही प्रीति प्रकट होती है ताते यह प्रीति भी श्रीराम सर्वदिव्य भव्य गुणसागरकी पहिचानकी फल है और रामजीकी पहिचानका प्राप्त होना भी दो कारणों कर होता है सो एक योगीजनोंका मार्ग है कि वह प्रथम तप करते हैं बहुरि भजन करके हृदय को शुद्ध और एकत्र रक्ते हैं और आपको और सर्व पदार्थोंको विस्मरण करते हैं इससे पीछे उन के हृदय विषे ऐसी अवस्था प्रकट होती है कि उम उनके श्रीरामजीकी बड़ाईको प्रत्यक्ष देखते हैं पर इस मार्गका दृष्टान्त ऐमे है जेमे कोई चिकित्साकी पमार तब उस पन्द विषे मृगपक्षी कैमता है अथवा नहीं भी कैमता अथवा मूम उस कासी विषे ध्यान कैमता है अथवा वाज भी प्राप्त होता है तैसे ही जो मार्गकी साधना विषे भी अवस्थाका बड़ा भेद होता है जेमे किसीका चचन कुंने लगता है किसीको

वृद्धता का फल होता है किसी को पूर्णज्ञान भी होता है १ दूसरा मार्ग विचारका है सो सतमग और ब्रह्मविद्याकर प्राप्ति होता है और श्रीरामजीकी विचित्र रचनाका विचार करना इसका मूल है बहरि श्रीरघुनन्दन जनचित्तचन्दन के अग और उनके स्वरूपका विचार प्रकट होता है तब श्रीरामजीकी पूर्णताई और बढ़ाईको प्रत्यक्ष देखता है सो इम विचारकी विद्याका अन्त नहीं पर बुद्धिमान् पुरुष इस को सुगमही प्राप्त होता है और इम मार्ग विषे ज्ञानवान् सदगुरु की सहायता चाहता है पर जिस पुरुषकी बुद्धि नीचहोवे और हृदय उसका मलिन होवे तब वह ऐसे मार्ग विषे नहीं पहुँच सका है सो यह विचारकी विद्या फन्द विखानेकी ताई नहीं ताते इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष व्यवहार अथवा खेती करे अथवा कुछ और मँजूरीकरे तब इस करके निस्सन्देह लाभको पावता है पर जब कोई अकस्मात् बिबेन पहुँचजावे तब हानि भी होती है तौगी इम व्यवहार विषे लाभकी प्राप्ति अभिक्रि है और हानि होना अकस्मात् है ताते विचारहीका मार्ग विशेष कहा है और जब कोई पुरुष विचार विना श्रीरामजीकी प्रीति को प्राप्त हुआ चाहे सो यह भी अमभव है और विचारकी प्राप्ति भी इन दोनों मार्ग विना सिद्ध नहीं होती २ और जो कोई यो जाने कि रामजीकी प्रीति विना परलोक विषे में सुखी होऊगा सो यह मूर्खता है काहेमे कि यह पुरुष रामजी की प्रीति विना परलोक विषे सुखको प्राप्त नहीं होता सो इसका कारण यह है कि रामजीके निकट पहुँचनेहीका नाम परलोक है ताते जिमपुरुषकी प्रीति आगेही किसी पदार्थ के साथ होती है सो यद्यपि अकस्मात् किमीके मयोग करके उस पदार्थ से दूरभी रहता है तौभी उसके चित्त विषे तौही प्रीति दृढ़ रहती है बहरि जब उस पदार्थको प्राप्त होता है तब स्वाभाविकही परमानन्दको पावता है और उत्तम भक्ति इसीका नाम है पर जब आगेही उस पदार्थ के साथ जिमकी प्रीति कुछ नहीं होती तब तिमको उस पदार्थकी प्राप्ति विषे सुखभी कुछ नहीं प्राप्त होना और जब प्रीति अल्प होती है तब उसकी प्राप्ति विषे सुखनी अल्पमात्र होना है ताते प्रभिद्ध हुआ कि परलोक की भलाई और सुख इम जीवको प्रीति के अनुसार होता है और भगवान् खाकरे इममे कि जब इम मनुष्यका हृदय ऐसा मलिन होजावे जो श्रीराममे इतर पदार्थों के साथ इमकी प्रीति होवे और मर्यादा चित्त की वृत्ति स्थिरता विषे पमजजावे तब तद् पुरुष निस्सन्देह परलोक विषे पमज

स्वको प्राप्त होता है और जिस पदार्थको पाकर गुरुमुख प्रसन्नताको पावते हैं सो उसी पदार्थको मनमुखी जब पावता है तब प्रीतिकी हीनताकरके वह निस्सन्देह बुझी होता है सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई चाडाल चाजार विपे गंधी के निकट आया और सुगन्ध की अधिकता करके मूर्च्छित होकर गिरपड़ा तब वह गन्धी उसके चैतन्य करनेके निमित्त उस चाडाल पर सुगन्धें गुलाबजल आदिक डारने लगा पर वह चाडाल सुगन्धकरके अधिक मूर्च्छित हुआ तब अचानकही एक और चाडाल बड़ा आवतामेया और उसने इस वृत्तान्तको पहिचाना तब वह विप्टाको भिगोकर उस मूर्च्छित चाडालको सुधावने लगा तब वह चाडाल शीघ्रही जागउठा और कहने लगा कि यह मली सुगन्ध है तैसेही जिस पुरुषकी प्रीति मायाके साथ अधिक दृढ़ हुई है और वह सर्वया मायाहीको प्रियतम जानता है सो उस चाडालकी नाई है काहेसे कि जैसे चाडालका स्वभाव दुर्गन्धताके साथ दृढ़या और गन्धियोंके वाजार विपे उसको दुर्गंध प्राप्त न भई ताते मूर्च्छाको प्राप्त हुआ तैसेही परलोक विपे भी इस जीवको मायाको सुख कोई न होवेगा ताते जो कुछ परलोक विपे उम जीवको प्राप्त होता है सो वह गनमुखके स्वभावमे विरोधी होता है इसी कारणसे परलोकविपे विपयी पुरुष महादुःखी होता है अर्थ यह कि परलोकमी चैतन्यताके प्रकट होनेका नागहै इसी चैतन्यता विपे भगवत् का स्वरूप भी प्रकट होता है ताते वह भागी पुरुष बही है जिसकी प्रीति इमलोक विपेही रामजीके साथ दृढ़ हुई है और जिसका विच चैतन्यपुरुषके साथ सम्बन्धी हुआ है सो धैर्यहै काहेसे कि सर्व तप और गजनोंका प्रयोजन श्रीरघुपति चरण प्रीतिहै और सम्बन्ध भी प्रीतिका नामहै इसीपर महाराजनेभी कहाहै कि जो उत्तम पुरुषहै सो निस्सन्देह परम शुद्धताहीको प्राप्त होते हैं और जेते पाप कर्म और मायाके भोगहै सो श्रीराम प्रीतिके सम्बन्ध विपे विरोधी हैं जेमे महाराज नेभी कहाहै कि जिन पुरुषकी प्रीति बुराईके साथ होती है सो अक्षयही बुगईकोही प्राप्त होता है ताते जिन पुरुषों के बुद्धिरूपी नेत्र खुले हैं सो इस भेदको प्रपक्ष देखने हैं और सन्तजनों के हृदयकी निर्मलताई को प्रकटही पहिचानते हैं और यद्यपि वह सन्तजन अपनों वन और पृथ्वी नहीं दिखानते तौगी बुद्धिमानपुरुष उनके हृदयकी शुद्धताको हस्तागलकवत् देखते हैं जैसे कोई पुरुष वैद्यकधियाका वेत्ता होता है सो सुगमही वैद्यको पहिचानले नाहै और जो

पुरुष पावण्ड करके आपको बैद्य किया चाहता है सो उसको भी विद्यावान् पहि-  
चान लेता है कि यह पावण्ड ही है तैमेही सन्तजन और दम्भीको बुद्धिमान् पुरुष  
प्रकटही पहिचान लेता है और योंभी चाहिये कि जबलग इस जीव के बुद्धिरूपी  
नेत्र खुले न होवें तबलग सन्तजनों के वचन और अवस्था अनुसार पहिचाने  
और प्रतीतिकरे पर जबलग इस जीव की दृष्टि बल और ऐश्वर्य पर होती है तब  
लग जिम विपे सिद्धताका बल कुछ देवता है उसीको सन्त जानता है सो यह  
अयोग्य है काहेसे कि सिद्धताका बल सन्तजनोंको भी होता है और वरदान कर  
के अथवा जादू करके भी होता है सो इस गेदका समझना हृदयकी शुद्धता बिना  
कठिन है ताते यह परीक्षाही भूठी है ॥ अथ प्रकट करने लक्षण प्रीति के ॥ ताते  
जान तू कि श्रीरामजीकी प्रीतिरूपी रत्न महादुर्लभ है और अभिमानकरना अ-  
योग्य है काहेसे कि श्रीरामजीकी प्रीतिके भी मातलक्षण हैं ताते चाहिये कि यह  
मनुष्य वह सातलक्षण अपने हृदयमें दृढ करे सो प्रथम यह है कि प्रीतिमान् पुरुष  
कालके भय करके कदाचित् नहीं डरता चाहे से कि शरीरके मृत्यु होने करके वह  
जानता है कि मुझको अपने प्रियतम का दर्शन होवेगा ताते प्रीमी पुरुष सर्वदा  
प्रियतमका दर्शनही चाहता है इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि जो पुरुष श्रीरा-  
मजीके दर्शनकी चाहता है सो तिमको श्रीरामजी भी चाहते हैं और एक हरिजन  
ने किसी तपस्वीसे पूछा था कि तुम मृत्युको प्रियतम रखने हो तब उह तपस्वी मौन  
कर रहा बहुरि उसको हरिजन ने कहा कि जब तुमको मायी प्रीति होती तब तू  
निस्सन्देह मृत्युको प्रियतम रखता पर इस विपे इतना भेद है कि प्रीतिमान् पुरुष  
मृत्यु होनेमे ग्लानि नहीं करता पर मृत्युकी शीघ्रता से ग्लानि करता है काहेसे  
कि उसको परलोक मार्गका तोरा समावनेकी अधिक अभिलाषा होती है ताते  
बहुत काल जीवनेको भी चाहता है पर इसकी परीक्षा यह कि येमा पुरुष पर-  
लोकही के कार्यविपे अतिदृढ़ होता है और कदाचित् अत्रेत् नहीं होना १ बहुरि  
दूसरा लक्षण प्रीतिका यह है कि जिस पदार्थ विपे रामजीकी पूजना और नि-  
कटता प्राप्त होती है सो प्रीतिमान् पुरुष उसीको अङ्गीकार करता है और जिस  
पदार्थ करके रामजीमे विभोग होता है तब उसको त्याग करता है पर ऐसी अव-  
स्था उम पुरुषकी होती है विमती सम्पूर्ण प्रीति श्रीगणजीके साथ होती है पर  
जिस पुरुषमे अस्मात् कुछ पापभी हो जाये तब उसको सर्वथा प्रीतिमें हीनगी

नहीं कहा जाता पर यों कहा जाता है कि उसको सम्पूर्ण प्रीति नहीं इसीपर एक  
 सतने कहा है कि जब कोई पुरुष तुम्हमें पूछे कि तू प्रीतिमान है तब तुम्हको मोन  
 करनीही भली है काहेसे कि जब तू ऐसेकहे कि मैं रामजीको प्रियतम नहीं रखता  
 तब मनमुस्रता होती है और जब तू कहे कि मैं प्रीतिमान हूँ तब प्रीतिमानोंके ल-  
 क्षणोंको प्राप्तहोना कठिन है २ बहुरि तीसरा लक्षण यह है कि प्रीतिमानका हृदय  
 सर्वदाही भजनके रसविषे लीनहोता है और यत्र बिनाही भजनविषे स्थित रहता है  
 सो यह बात प्रसिद्ध है कि जिसके साथ किसीकी प्रीति होती है तब स्वाभाविकही  
 उसका स्मरण करता है और जब सम्पूर्ण प्रीति होती है तब प्रियतमको कदाचित्  
 विस्मरण नहीं करता और जब यों होवे कि यत्र करके मनको भजन विषे लगावे  
 तब जानिये इसकी प्रीति किसी ओर पदार्थ के साथ अधिक है और श्रीरामजी  
 के साथ अल्प है पर श्रीरामजी को प्रियतम रखता है ताते चाहता है कि मेरी प्रीति  
 श्रीरामजीके साथ दृढ़होवे ३ और चौथा लक्षण यह है कि सन्तजन और उनके  
 वचनों विषे प्रीतिकरे और जिसके साथ कुछ अपने प्रियतमका सम्बन्धहोवे तब  
 उसको भी प्रियतमराखे इसीकारणकर कहा है कि जब इसकी प्रीति श्रीरामजी के  
 साथ सम्पूर्ण होती है तब सर्वजीवों को प्रियतम रखता है और जानता है कि यह  
 सबही जीव मेरे स्वामीके उत्पन्न किये हुये हैं ताते सर्वसृष्टिको भाव संयुक्त देख-  
 ता है जैसे किसी मनुष्य के साथ किसीकी प्रीति होती है सो अपने प्रियतम की  
 वाणी और उनके अश्वरोंको प्रियतम रखता है तैसेही प्रीतिमान पुरुष सर्व सृष्टिको  
 प्रियतम रखता है ४ बहुरि पांचवा लक्षण यह है कि प्रीतिमान पुरुषको एकान्त और  
 प्रार्थना की अधिक अभिलाष होती है और चाहता है कि जो रात्रिका समय  
 आये तो गलावे क्योंकि रात्रि विषे व्यवहार की विक्षेपता दूर होती है और केवल  
 एकांत करके भजन विषे दृढ़ होसकता है और जबलग मिला  
 के एकांतसे प्रियतमराखे तब जानिये कि इसकी प्रीति दा  
 आकाशवाणी हुई थी कि जो पुरुष अपने को प्रीतिमान र  
 निद्राकरके सोई रहता है सो झूठा है नि  
 दर्शन का त्याग कैसे करसकता है ता क  
 निकटहू और एक महापुरुषने प्रार्थना  
 तब आकाशवाणी हुई कि जब तेरे ह-

निस्सन्देह मुझको पाया और महाराज ने योंभी एक अनुरागी मे कहा है कि जगत् विषे तू किसीके साथ प्रीति न कर तब मुझमे दूर न होवे काहेसे कि दो पुरुष मुझमे निस्सन्देह दूर होतेहैं एक वह जो पुण्यके फलकी सिद्धताको शीघ्र ही प्राप्तहुआ चाहे और जब उम फलकी प्राप्ति विषे कुछ ढीलहोजावे तब पुण्य कर्मका त्यागकरे और दूसरा वह जो मुझको विमारकर शरीरके सुखों विषे ग-ग्न होइरहे तब मैंभी उसको विमार देताहू ताते वह जगत् विषेही दुःखी रहनाहै इस करके प्रसिद्धहुआ कि जब सम्पूर्ण प्रीति होतीहै तब किमी और पदार्थकी अभिलाषा नहीं रहती इसीपर एक वार्त्ता है कि एक तपस्वी था सो जिस वृक्षके ऊपर पक्षी शब्द करतेथे तब उम वृक्षके नीचेजाकर भजन करनेलगा तब महाराजने उस तपस्वीको कहा कि अब तेरी सुरति पक्षियोंके गन्धकी ओर गई है ताते तू अपने पदसे गिरा है और जबलग इस वृक्षको त्याग न करेगा तबलग किसीप्रकार उस पदको न पहुचेगा और केते सतजनोंकी अवस्था भजन और विनय प्रार्थना विषे ऐसी दृढ़हुई है कि जब उनके घरमें अग्निलगी तौभी उन्हों ने नहींजाना और किसी और सन्तजनके चरण विषे कुछ रोगथा सो जब वह सन्त भजन विषे स्थितहुआ तब वैद्योंने उसका चरण काटलिया और उस सन्त को पीड़ाकी कुछ खबर न भई ५ बहुरि छटा लक्षणमी प्रीतिका यहहै कि प्रीति मान्को भजनकरना सुगमहोताहै और कुछ यत्न और आलम उसको नहींरहता इसीपर एक सन्तने कहाहै कि जब मैंने भजन किया तब प्रथम बीस वर्ष पर्यंत मुझको यत्नकरना होतारहा बहुरि अब बीस वर्ष हुये हैं तब से भजन करनाही मुझको सुखरूप हुआहै तात्पर्य यह कि जब रामजीकी प्रीति सम्पूर्ण होती है तब श्रीरामभजनही इसपुरुषको सर्वथा सुखरूप भासताहै और कोई पदार्थ सुख दायक नहीं भासता और कठिनता भी दूर होजाती है ६ बहुरि मातवां लगण यह है कि प्रीतिमान् पुरुषका मिलाप और मन्त्र मूर्त्तिकी गन्तुष्यों के साथ होताहै और सर्व जीवोंपर दयादृष्टि रखताहै और कुमगियों का मग कदाचित् नहींकरता जैसे किसी सन्तने महाराजमे विनतीकरके पूंजा था कि हेमदरान ! तेरे प्यारे मन्त्रजन केमे हैं तब महागजने उमको आज्ञाकी कि जैसे घालरकी प्रीति गानाके माथ होतीहै तेमेही जिनकी प्रीति मेरे माथहै और जैसे पक्षी अपने घोंसलेमें विधाम पावताहै तेमेही जो पुरुषमे भजन विषे विश्रामो होना



है और जैसे मित्र निर्भय हो कर किसीके ऊपर कोप करता है, तैसे ही कुसुमियोंकी ओर जिनको निर्भय, कोपदृष्टि होती है सो-येमे पुरुष मुझको महाप्रियतम है ७ इमी प्रकार और भी प्रीतिके लक्षण अनेक हैं, पर जिसको सम्पूर्ण प्रीति होती है तिसके हृदय विषे सम्पूर्ण ही लक्षण स्थित भाइ होते हैं और जिसके विषे कुछ लक्षण होते हैं और कुछ नहीं होते तब जानिये कि उसकी प्रीति ही अल्प है ॥ अथ प्रकृत करना रूप प्रेम और उत्कण्ठाका ॥ ताते जानतू कि जो पुरुष प्रीतिको प्रमाण नहीं करते सो प्रेम और उत्कण्ठाको भी नहीं जानते और महाराजने इम प्रकार प्रसिद्ध कहा है कि उत्तम पुरुषोंकी चाह और प्रेम मेरे ही साथ अधिक है और मैं उनको उमसे भी अधिक चाहता हूँ, ताते प्रेमका अर्थ अत्यन्त ही पहिचानना चाहिये, सो प्रीति ही प्रेम और उत्कण्ठाका अगद है इसी कारणमे जिस पुरुषको प्रीति कुछ नहीं होती तिसको प्रेम और-उत्कण्ठा भी नहीं होती, और जो पुरुष अपने प्रियतमको प्रकृत देखता है तब वहा भी प्रेम और-उत्कण्ठाका स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता और समाप्त हो जाता है ताते प्रेम का स्वरूप-बढ़ाई प्रकृत भावता है जहा वह पदार्थ एक-प्रकारकर प्रसिद्ध होवे और एक भावकरके बोझ पदार्थ गुप्त होवे जैसे प्रियतमका देखना ध्यान विषे प्रकृत होता है और नेत्रोंसे दूर होता है तब प्रेमी पुरुष ऐसे ही चाहता है कि जिस प्रियतमको मैं ध्यान विषे देखना हूँ सो उसका दर्शन भी मैं किसी प्रकार नेत्रों साथ देखूँ तब मुझको प्रियतमकी सम्पूर्ण प्रसिद्ध होवे सो इमी स्वैचकानाम उत्कण्ठा और प्रेम है बहुरि तैसे ही जानतू कि जबलग इम जीवका सम्बन्ध शरीरके साथ है तब लग-सम्पूर्ण प्रेमको प्राप्त नहीं होता काहेसे कि यद्यपि बुद्धि करके श्रीरामजीको पहिचानता है तो भी दर्शन से दूर है ताते प्रसिद्ध हुआ कि प्रेमकी सम्पूर्णता देहाभिमानके दूर दृष्टे से प्राप्त होती है और एक ओर भावकरके देखिये तो देहाभिमानके दूर दृष्टे भी प्रेमका अग कदाचित् नहीं आता, काहेमे कि देहाभिमानका आवरण ऐसा वर्णन किया है जैसे कोई अपने प्रियतमको महीतबलके परदे विषे देखे अथवा प्रमात समय देखे सो देहाभिमान विषे महाराजको पहिचानना ऐसे ही होता है अर्थ यह कि यद्यपि देखना भी है तो भी अनिप्रत्यक्ष नहीं देखना, सो देहाभिमानके दूर दृष्टे से यह परना तो दूर हो जाता है पर एक भावकरके प्रेम और उत्कण्ठाकी अधिकता रहती है जैसे प्रेमी पुरुषने प्रियतमका मुख देखा हवे और उमके और

अंगान् देखे होवें और योंभी जानताहोवे कि मेरे मियतमके सर्व अग सुन्दरहैं तब उसको सर्व अगोंके देखनेकी अभिलाषा रहती है तैसेही चैतन्यरूप जो श्रीरामजी हैं सो तिनका कुछ अन्त नहीं ताते जो कोई उनको बहुतही पहिचानताहै तौभी उनकी सम्पूर्णताको पाय नहीं सका काहेसे कि श्रीरामरूप अपारहै और मर्याद से रहित है ताते प्रसिद्ध हुआ कि जब उनको सम्पूर्ण पहिचाना नहीं जाँता तब सम्पूर्ण देखनाभी नहीं होसका इसीकारण करके कहाहै कि यह जीव स्थूल देशविषे भी और सूक्ष्म देश विषे भी श्रीरामजी के सम्पूर्ण भेदको जान नहीं सका पर योंहै कि जेता सूक्ष्मदेश विषे महाराजके दर्शनको अधिक देखताहै तेताही अधिक आनन्दको पावताहै सो उनका दर्शन वैश्रन्तहै पर जेता किसीने देखाहै तिसके चित्तकी वृत्ति उसी दर्शनविषे लीनरहे तब इसीका नाम मिलापहै और जेता देखना शेष रहताहै सो जब चित्तकी वृत्ति उसीमगिलापा विषे होवे तब इसीका नाम प्रेम और उत्कण्ठा है चाते प्रकट हुआ कि इसलोक और परलोकविषे उत्कंठा और मिलापका अन्त कबहू नहीं आता पर यह जीव परलोकविषे जो देखनाहै सो श्रीरामरूपके प्रकाशको देखनाहै तौभी दर्शनकी सम्पूर्णताईको चाहताही रहताहै पर यह वार्त्ता निस्सदेहहै कि श्रीरामही अपने आपको ज्योकात्पो जानताहै और और ऐसा कोई समर्थ नहीं जो श्रीरामस्वरूपको सम्पूर्ण जानसके और जब सम्पूर्ण पहिचाननाही कठिन है तब उसको पहुँच नहींसका पर वहा सन्तजनों की अवस्था ऐसी होती है कि उनको सदा सर्वदा दर्शनकी अधिकता खुलती जातीहै सो इसीकारण करके आत्मसुखको अपारकहाहै कि उसका पार कभी नहीं आता और बढ़नाही जाताहै सो जब वह सुख ऐमा न होता तब उसकी मर्याद होती और कुछकाल के पीछे आनन्द न भासता काहेसे कि जो आनन्द मर्यादविषे होनाहै तब उमकेमाथ चित्तकी वृत्ति वही स्वभावको पकड जातीहै ताते यह आनन्द नहीं भासता और आनन्द तबहीनग भासता है जब उसकी अरस्था बढ़नी जाती है सो आत्मसुख ऐसाहै कि उसका आनन्द सदाही नूननहै और बढ़ना जाताहै बहुति जब इस पचनके निर्णय विषे तेने मिलाप और प्रेमके अर्थका समझा कि प्राप्त वस्तुकी पूमनाका नाम मिलापहै और शेष वस्तुकी अभिनाषाका नाम प्रेम और उत्कण्ठाहै तब प्रेम जानू कि प्रेमोगुरु इसलोक और परलोक विषे मिलाप

और उत्कण्ठा विपेही रहते हैं इसीपर प्रभूने दाऊदजीकी कहाथा कि हे दाऊद ! यह सदेशा मेरा जीवोंको पहुँचावो कि जो मेरेसाथ प्रीति करते हैं मैंभी उनको प्रियतम रखताहूँ और मैं उनहीका मगीहूँ जो एकात विपे मेरेही साथ स्थित होते हैं और मैं उनकाही मित्र हूँ जो निर्वासना होकर मेरेही भजन विपे परचते हैं, और मेरे प्यारे वही हैं जिन्होंने मेरे प्यारकरके और सब कुद्द विस्मरण कियाहै, और जो मेरे आज्ञाकारी हैं मैंभी उनका आज्ञाकारी हूँ ताते जिसपुरुषने मुझको प्रियतम कियाहै सो निस्सदेह मैंने उसको प्रियतम और विशेष कियाहै और जो कोई मुझको दूँढताहै सो अवश्यही पाँवताहै और जो पुरुष किसी और प्रदार्थ को दूँढता है सो मुझको नहीं पायसकता, ताते तुमको चाहिये कि जिस मायाके फाय्यो विपे तुम आसक्तहुये हो और छलेगये हो सो इमका त्यागकरके अपना सुख मेरी और लेआवो और मेरेही साथ प्यारकरो तब मुझकोभी प्यारे होवो और जेते मेरे प्रियतमहैं सो उनको मैंने अपने प्रकाशसे उत्पन्न कियाहै और अपने ही तेजसे उनको मैंने पालाहै वहुँर किसी और सन्तको भी आकारवाणीहुई थी कि जिनकी प्रीति मेरे साथहै मैंभी उनहीको प्रियतमरखताहूँ और जो मुझको चाहते हैं मैं भी उनको चाहताहूँ और जो मेरा स्मरण करते हैं मैंभी उनका स्मरण करताहूँ और जिनकी दृष्टि मेरी ओर है मैंभी उनकी ओर देखताहूँ पर तू भी जब उनही के मार्ग चलेगा तब मेराप्यारा होवेगा और जब विपरीत मार्ग विपे चलेगा तब मुझमे विमुख होवेगा सो इसीप्रकारके चचन प्रीति और प्रेमके निर्णय विपे बहूत आये हैं ताते इतनाही बखान बहूतहै ॥ अथ प्रष्टकरना अर्थ रजाय का और निगेपता रजाय मानने की, ॥ ताते जान तू कि श्रीरामजी की आज्ञा मानना उत्तमपदहै और और अवस्था इसके ममान विशेष नहीं फादेसे कि यद्यपि प्रीतिकी अवस्थाभी महावत्तमहै पर महाराजकी आज्ञा मानना सा चीही प्रीतिका फलहै इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि श्रीगुरुनाथजके प्राप्तहोने का परमद्वारा यही है जो श्रीमद्भागजकी आज्ञामाननी और परममुखका ढारा भी यही है वहुँर महापुरुषने किसी से पूछाया कि तुम्हारे धर्मका चिह्न कौनहै तबउन्होंने कहा कि हम दु ल विपे मन्तोप करते हैं और सुखमें न्यवाद करते हैं और सर्वकाल विपे महाराजकी आज्ञापर प्रमत्तहने ह तब महापुरुषने उनसे कहा कि तुम बुद्धिमानहो और विद्यावान्हो और सन्नजनोंके निकटवर्तीहो और

योंभी कहा है कि परलोक विपे एक गनुप्य ऐमे होवेंगे जो परमसुख के स्थानों विपे आनन्दवान् होवेंगे और उनको दण्ड ताडना न होवेगी वहरि उनसे देवता पूछेंगे कि तुम ऐसी अवस्थाकी क्योंकर प्राप्तहुयेहो तब वह कहेंगे कि हम ने दो फरतूति किये हैं सो एक यह कि हग एकान्त विपे भी श्रीरामजी का भय करके पापकर्म का त्याग करते थे और दूसरा यह कि जैसी हमारी प्रारब्ध राम जीने रची थी सो हम उमी विपे प्रसन्न रहते ये तब देवता कहेंगे कि तुम ऐसेही सुखके अधिकारी हो और धन्यहो वहरि एक महापुरुषने महाराज के आगे प्रार्थना करी थी कि हे महाराज ! तू किस फरतूति करके प्रसन्न होता है तब हग बोधी फरतूति करके तुझको प्रसन्न करे तब आकाशवाणी हुई कि जब तुम मेरी आज्ञा विपे प्रसन्न होवोगे तब मैं भी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होऊंगा और दाऊदजीको भी आकाशवाणी हुई थी कि जो मेरे सन्तजनहैं सो किसी गायक के पदार्थका शोक नहीं करते इसी कारणसे उनके गजनकी प्रसन्नता कदाचित् खडित नहीं होती ताते हे दाऊद ! मेरा प्रियतम वही है जिसका हृदय अपने आप विपे स्थितहुआ है और किसी पदार्थ करके उसको शोक और मोह नहीं होता वहरि महापुरुषने भी कहा है कि महाराजने इसप्रकार अपने वचनों विपे कहा है कि मैं ऐसा ईश्वर समर्थ हू कि मुझ ऐमा और दूसरा कोई समर्थ नहीं ताते जो गनुप्य दुख विपे सन्तोष नहीं करता और सुख विपे मेरा धन्यवाद नहीं करता और मेरी आज्ञा विपे प्रसन्न नहीं रहता तब उमको चाहिये कि वह अपना ईश्वर कोई और दूहे और योंभी कहा है कि मैंने सर्वकाश्योंकी नेत रची है और सबकुछ मगभक्तके दृढ़ किया है और मर्थ विपे मेरी आज्ञा बर्नमान है ताते जो कोई मेरे कियेपर प्रसन्नहै तब उनपर मैंभी प्रसन्नहू और जो कोई पुरुष मेरे किये पर प्रसन्न नहीं रहता तब मैंभी उमपर अप्रसन्न होता हू अर्थ यह कि वह मुझको दुःखदायक समझता है ताते दुःखी रहता है और महाराज ने यामी कहा है कि भला और बुरा सब मैंनेही उत्पन्नकिया है पर जिन पुरुषकी भाँड विपे प्रीति है सो सुखी रहता है और जिस मनुष्यको बुराई करनी सुगम भामती है और मेरी आज्ञा से विमुखहै सो अभागी है और एक मन्त्रके ऊपर श्रीमन्त्रार्थन भुव जो निन्दनताईका दुःखप्रतिक महाया जो नव कुट्ट मदागत मे गायताया तोंभी उमको प्राप्त न होताथा वहरि उमको आकाशवाणी हुई कि जब आदिर्ही जगतको मैंने

उपजायाथा तव तेरी प्रास्व इसी प्रकार रची थी सो अब तू चाहता है कि मैं तेरे निमित्त अपनी नेतकी, विपर्यय करूँ और तेरी चाहके अनुसार, तुम्हको सुखी करूँ और जिसप्रकार मेरी आज्ञा है सो व्यर्थ होवे ताते मैं अपनी बुझाई करके कहता हूँ कि जो तैने मेरी आज्ञासे विमुख होकर कुछ और चाहकरी तब तुम्हको अपने पदसे गिराइदूंगा बहुरि उस सन्त ने कहा है कि बीसवर्षपर्यन्त मैं गहा-पुरुषकी, टहल विपे रहाथा पर उन्होंने ने मुम्हको ताड़ना करके कवहू न; कहा कि अमुक कार्य्य तैने किस निमित्त किया है और अमुक कार्य्य क्यों न किया; पर जब कोई मुम्हको डुलाता और मैंभी उमके साथ कुछ विवाद करतो तब मुम्हको ताड़नाकरके कहते कि जब तू श्रीरामज्ञाको पहिचानता तब अपने शत्रुके साथ विवाद न करता और मौन कररहता बहुरि दाऊदजीको भी आकाशवाणी हुई थी कि हे दाऊद! एक तेरी चाह है और एक मेरी चाह है पर कार्य्य वही सिद्ध होता है जिसको मैं सिद्ध करता हूँ ताते जब तू अपना आपा समर्पण करेगा, तब सुखी होवेगा, और जब मेरी आज्ञासे विपर्यय होवेगा तब अपनी चाहविपे दुःखी होवेगा बहुरि एक और सन्तका वचन है कि जैसी नेत महाराजने रची है सो मैंभी उसी विपे प्रमन्न हूँ और सर्वदा दृष्टि मेरी उसकी आज्ञा विपे ही रहती है बहुरि जब उन सन्तके कुछ रोग उत्पन्न हुआ तब लोगोंने पूछा कि तुम क्या चाहते हो तब उन्होंने कहा कि मैं वोही चाहता हूँ जो कुछ महाराज चाहता है और एक और सन्तने भी कहा है कि जो कार्य्य प्रभुने किया होवे सो तिसविपे जब अभाव करूँ तब इस विमुखतासे मुम्हको विपे लाता सुगम भासता है बहुरि किसी तपस्वीने चिरकालपर्यन्त तप कियाथा तब बहुत कालके पीछे उसको आकाशवाणी हुई कि तुम्हको अमुक धाईका दर्शन करना विशेष है तब वह तपस्वी उस धाईके निकट गया और चाहने लगा कि मैं इसका गजन और तप देखूँ सो तपस्वीने रात्रि विपे कुछ उसकी जाग्रत भी न देखी और दिनको व्रतभी न देखा तब उससे पूछनेलगे कि तुम्हारी कर्तूति क्या है तब धाई ने कहा कि मेरी कर्तूति यही है जैसी तैने देखी है बहुरि तपस्वी ने बहुत विनती करके पूछा तब धाईने कहा कि मेरा एक यह भी स्वभाव है कि जब मुम्हको कुछ रोग और क्रूर होता है तब मैं अरोगता के सुखको नहीं चाहती और जब धूपविपे होती है तब मैं छायाकी अभिलाषा नहीं करती और जब छाया विपे होती है तब धूपको नहीं चाहती

और जिस प्रकार श्रीजानकीनाथ की आज्ञा होती है तब मैं उसी में प्रसन्न रहती हूँ, बहुरि, उस तपस्त्रीने दयवच करके कहा, कि, यह तुम्हारा स्वभाव महाउत्तम है ॥ अथ प्रकटकरना अर्थ महाराजकी आज्ञा माननेका ॥ ताने जान तू कि केते पुरुष इसप्रकार भी कहते हैं कि दु ख में प्रसन्न होना असम्भव है काहेसे कि दु ख में सन्तोष तो कर्मरुहे पर दु ख में प्रसन्न होना बुद्धि में नहीं आता यह उनका फटना प्रमाण नहीं काहेसे कि जब इसपुरुष की प्रीति सम्पूर्ण होती है तब दोषकारसे दु खमें प्रसन्नता होती है सो प्रथम यह है कि प्रेमीपुरुष प्रेम में प्रेमा लीन होता है कि उसको दु खकी, सुधिही नहीं रहती जैसे युद्ध में शूरमा पुरुष ऐसा अचेत होता है कि यद्यपि युद्धमें उसका घायलशरीर होता है तभी वह पीडाको जानता नहीं और उसके चित्तकी वृत्ति, शत्रुके जीतने में मग्न होजाती है, बहुरि जब उस, चोट घावको देखता है तब जानता है कि मैं घायल हुआ हूँ और जब कोई धनकी, टूटणकरके किसी कार्यमें दौड़ता है और उसके चरणमें काटा, प्रवेशकर जाता है, तब उसको भी नहीं जानता और यहभी प्रसिद्ध है कि व्यवहारकी अधिक्ता विषे भूल प्याम नहीं भोसती ताने प्रकटहुआ, कि जब स्थूलशरीर, और व्यवहार की प्रीति विषे एते दु खोंका भान नहीं रहता तब त्थीरामजीकी प्रीति, और प्रेमविषे दु खोंका भान जानना क्योंकर असभव होता है काहेसे कि इस स्थूल रूपकी सुन्दरताई से दिव्यरूप की सुन्दरताईका, देखना महाविशेष है और, यह जो, शरीर है सो मलसूत्र का घर है और चर्म करके, लपेटा हुआ है और इसको, देखनेहारे, नेत्र भी, क्षणभंगुर है और जिस बुद्धिरूपी नेत्रोंकरके दिव्यस्वरूपकी सुन्दरताई देखसकता है सो दृष्टि महासूक्ष्म और उज्ज्वल है और यह जो स्थूल नेत्र है, सो इनकी दृष्टि विपरीत है काहेसे कि घडेको छोटा देखने है और छोटे को बड़ा देखते हैं बहुरि जो वस्तु दूर होती है तो निकट भामनी है और जो निकट है सो दूर भामते हैं ताने प्रसिद्ध हुआ कि स्थूलरूपका देखना तुच्छमात्र सुनि है और सूक्ष्म सुन्दरताई का देखना परमानन्द स्वरूप है इसी कारण से ऐसे आनन्दविषे दु खका विस्मरण होना कठिन नहीं ३ बहुरि दूसरा प्रकार यह है कि यद्यपि प्रेमीपुरुषको कुछ दु खभी लगता है तदपि वह प्रेमे जानता है कि मेरे भित्तमनी आज्ञा इसी प्रकार है ताने उनका हृदय प्रसन्न हो जाता है और उस दु खको दु ख नहीं जानता जैसे कोई मित्र अपने मित्रका कपि रूढ़ावे जयता बहुरि

औषध खाने तब वह औषध खानेवाला कुछ वेद नहीं मानता और भलाही जानता है जैसे ही जो पुरुष श्रीरामजीकी आज्ञाको पहिचानता है सो निर्द्धनताई और और दु ख करके शोकवान् नहीं होता जैसे वृष्णावान् पुरुष व्यवहार के निमित्त बड़े २ दु खोंको खैचता है पर धनकी आशाकरके उसको दु खनहीं जानता है तैमेही जिन्नामु अनुरागी भी जब ऐसे जानता है कि महाराजकी आज्ञाको प्रमन्न होकर मानने विषे महाराज प्रमन्न होना है तब उसकी प्रसन्नताके निमित्त दु खको दु ख नहीं जानता सो बहुत सन्तजन इस अवस्थाको प्राप्त हुये हैं जैसे एकवाईकी वार्त्ता आगेभी कही है कि वह गिरपड़ीथी और उसके पावके अँगूठेका नख उतर गयाथा तब वह हँमने लगी बहुरि लोगोंने उससे पूछा कि तुमको दु खनहीं प्राप्तहुआ तब उसने कहा कि दु खविषे प्रमन्नहोनेका फल जो है सो तिसकी आशाकरके मुझको दु ख नहीं गामा बहुरि एक सन्तके कुछ रोगथा और उमका उपाय न करताथा तब किसीने कहा कि तुम रोगका उपचार क्यों नहीं करने तब उन्होंने कहा कि हे भाई ! तू नहीं जानता कि अपने प्रियतमकी चोटकरके दु ख और पीडा नहीं होती बहुरि जुनेद सन्तनेभी कहा है कि तैने अपने मद्रुहमे यह वार्त्ता पूछीथी कि हे स्वामीजी ! शरीरके दुःख विषे प्रेमी पुरुषभी दु खी होता है तब उन्होंने कहा कि प्रेमी दुःखी नहीं होता बहुरि तैने पूछा कि जब उमको तखारकी चोटलगे तब क्योंकर कहना है तब उन्होंने कहा कि एक तखारकी चोट क्या है जो उसके सत्तर चोटलागे तोभी उसको दु ख नहीं भासता और एक सन्तने ऐमे कहा है कि जो कुछ रामजी चाहते हैं मेंभी वोही चाहताहू ताते जब मुझको महानरकमें डारें तोभी में प्रसन्नहू और उस नरकही में भला जानताहू बहुरि एक और महात्माने कहा है कि किसी मनुष्य से कुछ अपज्ञाहुईथी तब लोगोंने उसको मद्रुत लाठीगारि और उसने पुकारे न कयी तब तैने उससे पूछा कि तैने पुकार क्यों न कयी बहुरि उमने कहा कि जब वह लोग मुझको लाठी गारते थे तब मेरा प्रियतम मेरे सम्मुख सड़ाहुआथा और मेरीओर देखनाथा और मेरी दृष्टि भी उसीके ओरथी ताते मुझको पुकारकरनी भूलगई तब तैने उसपुरुषको कहा कि अयतो नेरी प्रीति स्थूय मनुष्य के साथ है पर जो सर्व सौन्दर्यसागर श्रीगुणन्दन महाराजके रूप अनूपकी छत्रिच्छाको देखता तब क्या करता बहुरि इनना सुनकर ऊर्त्ता पुकारकरके हागकी ओर गरीरमाइ

दिया बहुरि उन्हीं महात्माने कहाहै कि प्रथम अश्वस्थविषे में वनमें गयाथा और, वहा जाकर भजनविषे दृढ़हुआ बहुरि मैने एक पुरुषको देखा कि वह बावरेकी नाई बरतीपर पढ़ाहुआया और चींठी उसके मासको फाटती थी तब मैने दया करके उसका गीश अपनी गोदमेंलिया बहुरि जब वह चैतन्यहुआ तब कहने लगा कि तू ऐसी फजूली करके भरे और स्वामीविषे परदा क्यों डारताहै और यह वार्त्ता तो प्रसिद्धहै कि मिश्र नगरकी स्त्रियोने जब यूमफको देखा तो उनकी सुदरताईको देखकर नीचके बदले अपनी अगुरिया काटडारि और उनको पीडा की खबर न भई बहुरि जब उस नगरविषे दुर्भिक्ष पढाया तब नगरके लोग जब भूखे होतेथे तब यूसफजीको आय देखते थे और उनको भूख भूलजातीथी सो यह तो स्थूलरूपकी मग्नताई भी ऐसी प्रबलहै पर जिसने परमशोभासागर श्री जानकीवरजी की सुन्दरताई को देखाहै सो उसको दु खका विस्मरणहोना क्या आश्चर्य है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक पुरुष वनविषे रहताथा और सर्व्वदा योंही कहता था कि सर्व्वप्रकार श्रीरामजीकी आज्ञा विषेही कुशलहै बहुरि उनके घर विषे एक कूकुरथा सो रात्रि विषे चोरसे रक्षा करताथा और एक वृषमया सो उनका भार उठावताथा और एक पक्षीया सो उनको जगावता था बहुरि अचानकही सिंहने आइकर वृषमको मारडाला तब उन्हीं ने कहा कि इमी विषे भला होवेगा बहुरि कूकुरने पक्षीको मारडाला और वह कूकुरभी मग गया तबभी उन्हींने कहा कि इसी विषे भला होवेगा पर स्त्री उनकी जोकरके कहनेलगी कि तुम यह कैसावचन कहतेहो तब भी उन्हींने कहा कि इमी विषे कुशलहोगी सो जब दूसरा दिनहुआ तब क्या देखते है कि उनके निकट जो गावथ मो सब ही चोरोंने लूटलिये और ग्रामवासियों को मारडाला तब उन्हींने अपनी स्त्री मे कहा कि जब कूकुर और वृषभ हमारे घरविषे होने और रात्रिको बोलते तब निस्सन्देह शब्द सुनकर चोर हमारेनिकट आकर लूटनेजाते और प्राणभी न बचते ताते सर्व्वप्रकार भगवत् भला करता है पर कोई जान नहींसका बहुरि ऐमे भी जान तू कि केने पुरुष इसप्रकार भी कहते हैं कि महागजकी आज्ञा मानने का अर्थ यहहै कि महाराजके आगे प्रार्थना और याचनाभी न रहे और पापकर्म को देखकर ग्लानि न करे फारहे कि यदभी भगवत्की आज्ञाकरके होते है बहुरि जिस नगरमें पाप और क्रोध और दुख दुखकी अधिकताहोवे तब उसका



1.  $\frac{1}{x^2} = x^{-2}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-2} = -2x^{-3} = -\frac{2}{x^3}$

2.  $\frac{1}{x^3} = x^{-3}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-3} = -3x^{-4} = -\frac{3}{x^4}$

3.  $\frac{1}{x^4} = x^{-4}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-4} = -4x^{-5} = -\frac{4}{x^5}$

4.  $\frac{1}{x^5} = x^{-5}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-5} = -5x^{-6} = -\frac{5}{x^6}$

5.  $\frac{1}{x^6} = x^{-6}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-6} = -6x^{-7} = -\frac{6}{x^7}$

6.  $\frac{1}{x^7} = x^{-7}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-7} = -7x^{-8} = -\frac{7}{x^8}$

7.  $\frac{1}{x^8} = x^{-8}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-8} = -8x^{-9} = -\frac{8}{x^9}$

8.  $\frac{1}{x^9} = x^{-9}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-9} = -9x^{-10} = -\frac{9}{x^{10}}$

9.  $\frac{1}{x^{10}} = x^{-10}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-10} = -10x^{-11} = -\frac{10}{x^{11}}$

10.  $\frac{1}{x^{11}} = x^{-11}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-11} = -11x^{-12} = -\frac{11}{x^{12}}$

11.  $\frac{1}{x^{12}} = x^{-12}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-12} = -12x^{-13} = -\frac{12}{x^{13}}$

12.  $\frac{1}{x^{13}} = x^{-13}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-13} = -13x^{-14} = -\frac{13}{x^{14}}$

13.  $\frac{1}{x^{14}} = x^{-14}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-14} = -14x^{-15} = -\frac{14}{x^{15}}$

14.  $\frac{1}{x^{15}} = x^{-15}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-15} = -15x^{-16} = -\frac{15}{x^{16}}$

15.  $\frac{1}{x^{16}} = x^{-16}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-16} = -16x^{-17} = -\frac{16}{x^{17}}$

16.  $\frac{1}{x^{17}} = x^{-17}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-17} = -17x^{-18} = -\frac{17}{x^{18}}$

17.  $\frac{1}{x^{18}} = x^{-18}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-18} = -18x^{-19} = -\frac{18}{x^{19}}$

18.  $\frac{1}{x^{19}} = x^{-19}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-19} = -19x^{-20} = -\frac{19}{x^{20}}$

19.  $\frac{1}{x^{20}} = x^{-20}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-20} = -20x^{-21} = -\frac{20}{x^{21}}$

20.  $\frac{1}{x^{21}} = x^{-21}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-21} = -21x^{-22} = -\frac{21}{x^{22}}$

21.  $\frac{1}{x^{22}} = x^{-22}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-22} = -22x^{-23} = -\frac{22}{x^{23}}$

22.  $\frac{1}{x^{23}} = x^{-23}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-23} = -23x^{-24} = -\frac{23}{x^{24}}$

23.  $\frac{1}{x^{24}} = x^{-24}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-24} = -24x^{-25} = -\frac{24}{x^{25}}$

24.  $\frac{1}{x^{25}} = x^{-25}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-25} = -25x^{-26} = -\frac{25}{x^{26}}$

25.  $\frac{1}{x^{26}} = x^{-26}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-26} = -26x^{-27} = -\frac{26}{x^{27}}$

26.  $\frac{1}{x^{27}} = x^{-27}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-27} = -27x^{-28} = -\frac{27}{x^{28}}$

27.  $\frac{1}{x^{28}} = x^{-28}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-28} = -28x^{-29} = -\frac{28}{x^{29}}$

28.  $\frac{1}{x^{29}} = x^{-29}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-29} = -29x^{-30} = -\frac{29}{x^{30}}$

29.  $\frac{1}{x^{30}} = x^{-30}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-30} = -30x^{-31} = -\frac{30}{x^{31}}$

30.  $\frac{1}{x^{31}} = x^{-31}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-31} = -31x^{-32} = -\frac{31}{x^{32}}$

31.  $\frac{1}{x^{32}} = x^{-32}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-32} = -32x^{-33} = -\frac{32}{x^{33}}$

32.  $\frac{1}{x^{33}} = x^{-33}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-33} = -33x^{-34} = -\frac{33}{x^{34}}$

33.  $\frac{1}{x^{34}} = x^{-34}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-34} = -34x^{-35} = -\frac{34}{x^{35}}$

34.  $\frac{1}{x^{35}} = x^{-35}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-35} = -35x^{-36} = -\frac{35}{x^{36}}$

35.  $\frac{1}{x^{36}} = x^{-36}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-36} = -36x^{-37} = -\frac{36}{x^{37}}$

36.  $\frac{1}{x^{37}} = x^{-37}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-37} = -37x^{-38} = -\frac{37}{x^{38}}$

37.  $\frac{1}{x^{38}} = x^{-38}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-38} = -38x^{-39} = -\frac{38}{x^{39}}$

38.  $\frac{1}{x^{39}} = x^{-39}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-39} = -39x^{-40} = -\frac{39}{x^{40}}$

39.  $\frac{1}{x^{40}} = x^{-40}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-40} = -40x^{-41} = -\frac{40}{x^{41}}$

40.  $\frac{1}{x^{41}} = x^{-41}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-41} = -41x^{-42} = -\frac{41}{x^{42}}$

41.  $\frac{1}{x^{42}} = x^{-42}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-42} = -42x^{-43} = -\frac{42}{x^{43}}$

42.  $\frac{1}{x^{43}} = x^{-43}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-43} = -43x^{-44} = -\frac{43}{x^{44}}$

43.  $\frac{1}{x^{44}} = x^{-44}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-44} = -44x^{-45} = -\frac{44}{x^{45}}$

44.  $\frac{1}{x^{45}} = x^{-45}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-45} = -45x^{-46} = -\frac{45}{x^{46}}$

45.  $\frac{1}{x^{46}} = x^{-46}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-46} = -46x^{-47} = -\frac{46}{x^{47}}$

46.  $\frac{1}{x^{47}} = x^{-47}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-47} = -47x^{-48} = -\frac{47}{x^{48}}$

47.  $\frac{1}{x^{48}} = x^{-48}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-48} = -48x^{-49} = -\frac{48}{x^{49}}$

48.  $\frac{1}{x^{49}} = x^{-49}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-49} = -49x^{-50} = -\frac{49}{x^{50}}$

49.  $\frac{1}{x^{50}} = x^{-50}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-50} = -50x^{-51} = -\frac{50}{x^{51}}$

50.  $\frac{1}{x^{51}} = x^{-51}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-51} = -51x^{-52} = -\frac{51}{x^{52}}$

51.  $\frac{1}{x^{52}} = x^{-52}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-52} = -52x^{-53} = -\frac{52}{x^{53}}$

52.  $\frac{1}{x^{53}} = x^{-53}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-53} = -53x^{-54} = -\frac{53}{x^{54}}$

53.  $\frac{1}{x^{54}} = x^{-54}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-54} = -54x^{-55} = -\frac{54}{x^{55}}$

54.  $\frac{1}{x^{55}} = x^{-55}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-55} = -55x^{-56} = -\frac{55}{x^{56}}$

55.  $\frac{1}{x^{56}} = x^{-56}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-56} = -56x^{-57} = -\frac{56}{x^{57}}$

56.  $\frac{1}{x^{57}} = x^{-57}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-57} = -57x^{-58} = -\frac{57}{x^{58}}$

57.  $\frac{1}{x^{58}} = x^{-58}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-58} = -58x^{-59} = -\frac{58}{x^{59}}$

58.  $\frac{1}{x^{59}} = x^{-59}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-59} = -59x^{-60} = -\frac{59}{x^{60}}$

59.  $\frac{1}{x^{60}} = x^{-60}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-60} = -60x^{-61} = -\frac{60}{x^{61}}$

60.  $\frac{1}{x^{61}} = x^{-61}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-61} = -61x^{-62} = -\frac{61}{x^{62}}$

61.  $\frac{1}{x^{62}} = x^{-62}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-62} = -62x^{-63} = -\frac{62}{x^{63}}$

62.  $\frac{1}{x^{63}} = x^{-63}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-63} = -63x^{-64} = -\frac{63}{x^{64}}$

63.  $\frac{1}{x^{64}} = x^{-64}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-64} = -64x^{-65} = -\frac{64}{x^{65}}$

64.  $\frac{1}{x^{65}} = x^{-65}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-65} = -65x^{-66} = -\frac{65}{x^{66}}$

65.  $\frac{1}{x^{66}} = x^{-66}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-66} = -66x^{-67} = -\frac{66}{x^{67}}$

66.  $\frac{1}{x^{67}} = x^{-67}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-67} = -67x^{-68} = -\frac{67}{x^{68}}$

67.  $\frac{1}{x^{68}} = x^{-68}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-68} = -68x^{-69} = -\frac{68}{x^{69}}$

68.  $\frac{1}{x^{69}} = x^{-69}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-69} = -69x^{-70} = -\frac{69}{x^{70}}$

69.  $\frac{1}{x^{70}} = x^{-70}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-70} = -70x^{-71} = -\frac{70}{x^{71}}$

70.  $\frac{1}{x^{71}} = x^{-71}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-71} = -71x^{-72} = -\frac{71}{x^{72}}$

71.  $\frac{1}{x^{72}} = x^{-72}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-72} = -72x^{-73} = -\frac{72}{x^{73}}$

72.  $\frac{1}{x^{73}} = x^{-73}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-73} = -73x^{-74} = -\frac{73}{x^{74}}$

73.  $\frac{1}{x^{74}} = x^{-74}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-74} = -74x^{-75} = -\frac{74}{x^{75}}$

74.  $\frac{1}{x^{75}} = x^{-75}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-75} = -75x^{-76} = -\frac{75}{x^{76}}$

75.  $\frac{1}{x^{76}} = x^{-76}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-76} = -76x^{-77} = -\frac{76}{x^{77}}$

76.  $\frac{1}{x^{77}} = x^{-77}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-77} = -77x^{-78} = -\frac{77}{x^{78}}$

77.  $\frac{1}{x^{78}} = x^{-78}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-78} = -78x^{-79} = -\frac{78}{x^{79}}$

78.  $\frac{1}{x^{79}} = x^{-79}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-79} = -79x^{-80} = -\frac{79}{x^{80}}$

79.  $\frac{1}{x^{80}} = x^{-80}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-80} = -80x^{-81} = -\frac{80}{x^{81}}$

80.  $\frac{1}{x^{81}} = x^{-81}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-81} = -81x^{-82} = -\frac{81}{x^{82}}$

81.  $\frac{1}{x^{82}} = x^{-82}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-82} = -82x^{-83} = -\frac{82}{x^{83}}$

82.  $\frac{1}{x^{83}} = x^{-83}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-83} = -83x^{-84} = -\frac{83}{x^{84}}$

83.  $\frac{1}{x^{84}} = x^{-84}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-84} = -84x^{-85} = -\frac{84}{x^{85}}$

84.  $\frac{1}{x^{85}} = x^{-85}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-85} = -85x^{-86} = -\frac{85}{x^{86}}$

85.  $\frac{1}{x^{86}} = x^{-86}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-86} = -86x^{-87} = -\frac{86}{x^{87}}$

86.  $\frac{1}{x^{87}} = x^{-87}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-87} = -87x^{-88} = -\frac{87}{x^{88}}$

87.  $\frac{1}{x^{88}} = x^{-88}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-88} = -88x^{-89} = -\frac{88}{x^{89}}$

88.  $\frac{1}{x^{89}} = x^{-89}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-89} = -89x^{-90} = -\frac{89}{x^{90}}$

89.  $\frac{1}{x^{90}} = x^{-90}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-90} = -90x^{-91} = -\frac{90}{x^{91}}$

90.  $\frac{1}{x^{91}} = x^{-91}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-91} = -91x^{-92} = -\frac{91}{x^{92}}$

91.  $\frac{1}{x^{92}} = x^{-92}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-92} = -92x^{-93} = -\frac{92}{x^{93}}$

92.  $\frac{1}{x^{93}} = x^{-93}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-93} = -93x^{-94} = -\frac{93}{x^{94}}$

93.  $\frac{1}{x^{94}} = x^{-94}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-94} = -94x^{-95} = -\frac{94}{x^{95}}$

94.  $\frac{1}{x^{95}} = x^{-95}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-95} = -95x^{-96} = -\frac{95}{x^{96}}$

95.  $\frac{1}{x^{96}} = x^{-96}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-96} = -96x^{-97} = -\frac{96}{x^{97}}$

96.  $\frac{1}{x^{97}} = x^{-97}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-97} = -97x^{-98} = -\frac{97}{x^{98}}$

97.  $\frac{1}{x^{98}} = x^{-98}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-98} = -98x^{-99} = -\frac{98}{x^{99}}$

98.  $\frac{1}{x^{99}} = x^{-99}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-99} = -99x^{-100} = -\frac{99}{x^{100}}$

99.  $\frac{1}{x^{100}} = x^{-100}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-100} = -100x^{-101} = -\frac{100}{x^{101}}$

100.  $\frac{1}{x^{101}} = x^{-101}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-101} = -101x^{-102} = -\frac{101}{x^{102}}$

101.  $\frac{1}{x^{102}} = x^{-102}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-102} = -102x^{-103} = -\frac{102}{x^{103}}$

102.  $\frac{1}{x^{103}} = x^{-103}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-103} = -103x^{-104} = -\frac{103}{x^{104}}$

103.  $\frac{1}{x^{104}} = x^{-104}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-104} = -104x^{-105} = -\frac{104}{x^{105}}$

104.  $\frac{1}{x^{105}} = x^{-105}$   
 $\frac{d}{dx} x^{-105} = -105x^{-106} = -\frac{105}{x^{106}}$

## इश्तहार रामायण आल्हा का ॥

देखहु ! देखहु ! यह देखहु अथ, कीरति रघुपति परम उदार ॥

प्रकट हो कि इस यशालयाध्यक्ष ने सर्व्व भारतनिवासियों की रुचि आजकल जैसी आल्हा में देखी ऐसी किसी विषयमें नहीं फिरि वह कौन आल्हा कि जिसमें जान जिसको जानिपरै तौ नई सो बनायके गावै—जैसे कि लोग गाते हैं ( भैंसि बियानी रे कनउजमों पढ़रागिरा महोषे जाय ) अथवा ( बनी रोसइया लखनआल्हा कै अहिमों परी साठिपन हांग ) ऐसैही सम्पूर्ण गाया कि जो न किसी पुराण में लिखी न कोई देवताही का आराधन इसमें व्यर्थ समय व्यतीत करने के सिवाय और क्या अर्थ सिद्ध होसकतै इन सर्व्व बातोंको अल्पशुद्धि भी छोड़ेही विचार से समझ सके हैं और गाना तो यही है जिसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी प्राप्ति हो और भ्रेष्ट से भ्रेष्ट देवता की आराधनाहो जैसे ( अहि स्वगेश रघुपति सम लेखों । अस स्वभाव वहुँ मुनों न देख्यो ) यह काकमुखापिटनी गड़गड़ी से कहते हैं कि हे स्वगेश ! हम किस को श्रीरामचन्द्रजी के समान लेखाकरें ऐसा स्वभाव तो हम किसी को न देखते हैं न मुनते हैं—क्योंकि जो लडा रावण को बड़ी बठिन तपस्यासे प्रसन्न हो श्रीगिबजी ने टी थी वह लडा सहमई में श्रीरामचन्द्रजी ने विभीषणजी को देदी—अथवा ( उलटा नाम अपत जगजाना । बालमीकि भे ब्रह्म समाना ) कि जिनके उलटे नाम के जापसे बालमीकिजी ब्रह्मके समान भये राम को उलटने से मरा होताई—अथवा ( बसन हीन नहिं सोइ मुरारी । सत्र भूषण मूषित वरनारी ) कि भैसे स्त्री को सम्पूर्ण अवर पहनादियाजाये लेकिन वह न हों तो क्या उसकी शोभा होसकती इसीतरह सम्पूर्ण राग बिना ईश्वरके नाम व्यर्थ है जैसे ( नैकर्म्यमप्यप्युतभावबन्धिव नशोभतेप्रानमलनिरजनम् ॥ कुतःपुनःशरवदमृमीरवरे नचा पितृर्भयपदप्यकारणम् ) ऐसैही अभिप्रायों को समझकर इस यशालयाध्यक्षने बहुतसा धन देकर वर्धमान कवियोंमें श्रेष्ठ कविबर १० बन्दीदीनजी से सातोबाण्ट रामायण का आल्हा ऐसी मरल भाषा के मनोहर पदों से बनवाया है कि जिसको बिना पढ़े लिखे भी मनुष्य अवधीतरह से समझ सके हैं और जिनको कि भाषा में कुछ भी ज्ञान है वे तो हमसे सम्पूर्ण सर्व्वों को समझ ने राम भक्ताधिकारीही होनायेंगे क्योंकि इस में ज्ञान भाक्ति, वैराग्य, शृंगार, युद्धादि जौन जहाँही जौन तहाँ गान करन में उससे रूप को दर्शाई देने हैं क्योंकि सत् कवियों के वाच्यका प्रभावही यह है—लडाबाण्ट के धीर वृषान्तों को मुनके कादरों के रोमाय होजाताई मुना श्रेष्ठ फरवने लगने हे शीरों की कथाही क्या इसीतरह रामचरणमन मुनने से जौन ऐमा पापाण की मूर्ति है कि जिससे अधुओंकी पारा न चलनेनेण इमीतरह यह आल्हा रामायण बड़ीही विगान इम यशालय में बाल, अयोध्या आरण्य, विहित्या, मुन्दर, लडा और उगर मातोबाण्ट ऐसे लयावहें और प्रादरों को कर्पाण्य मे गोघरी भिषमके हैं और कीमती पशुती सप्त स्वर्गागई जिनमें प्र तीव अमीर सभी लोग इमके रमको पागके हैं जिन नो गोघरा न चरेगे उनको परिनी न हृषि की ली रामायण आल्हा दिनना हुआर हागा बदीदि बहुत क्यापण (कहा है ॥

## मनुस्मृति सटीक का विज्ञापनपत्र ॥

पवित्रत मिदिरधन्द कृत मन्वर्षीभास्कर भाषाटीका सहित—जिसमें प्रथम मनुभीका बनाया हुआ रत्नोक उसके पीछे पदच्छेद फिर अन्वय तदनंतर भाषामें भावार्थ और तात्पर्याथे बनाने के प्रकारके टीकाओंमें इसप्रकार भूषित किया है कि जिसमें केवल भाषामात्रके जाननेवाले भी शस्त्री तरह सपभसके यह स्मृतियों में शिरोमणि ग्रन्थ है इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के धर्म कर्म और शूद्रस्य, ब्रह्मचर्य, धानमस्य और मन्व्यासी के भी यथोचित धर्म और रामाओं के यथा योग्य प्रजापालनादि नियम विस्तारपूर्वक धारित हैं ॥

## इशतहार सरित्सागर भाषा ॥

हिन्दी भाषा के परमद्वैतीय भार्गवशासकतस मुंशीनवलकिशोर ( सी, आई, ई ) ने विद्वानों के झुलसे इस कथा सरित्सागर नाम ग्रन्थरत्नी प्रशासा तथा सदुपदेश मरी अत्यन्त मनाइरकपाओंको सुनकर अपनी मातृभाषा हिन्दी का गौरवबढ़ाने के लिये हमलोगों को यथोचित धन देकर इसका अनुवाद करवाया इस अनुवादमें हमलोगोंने यथाशक्ति यह उद्योग किया है कि रत्नोकके किसी शब्दका अर्थ न रहने पावे और यथासम्भव भाषाका प्रचयभी न बिगड़ने पावे इसमें जहाँ जहाँ नीतिके रत्नोक आगये हैं वहाँ भी अनुवाद सहित कोष्ठक में लिख दिये गये हैं—

हमलोग आशा करते हैं कि जैसे इस ग्रन्थकी कथाओं व आशयोंको लेकर अस्तुत के कवियों ने नागप्रान्तकादबरी हितोपदेश मुद्राराक्षस तथा वेतालचरित्रिका आदि अनेक ग्रंथ बनाये हैं इसीप्रकार इस अनुवाद को देखकर हिन्दी भाषाके सुल्लेखकगण भी इसकी कथाओं के आशयोंको लेकर अनेक नवीन ग्रंथ बनाके अपनी मातृभाषा के गौरवको बढ़ावें हमलोगोंको यह भी एक विश्वास है कि यदि इस यत्रालयापिथिकी आज्ञानुसार इस ग्रन्थकी छोटी छोटी कथाओंको लेकर दो चार छोटे २ ग्रंथ बनवाकर पाठशालाओं के दशम नवम अष्टम तथा सप्तम आदि वर्गों के विद्यार्थियोंको पढ़ाने के लिये नियत किये जायें तो उनको बिना प्रयासकेही सदुपदेशका लाभ होगा और इससमय यह ग्रन्थ विशेष शुद्धताके साथ उम्मा इकक में छपा हुआ तैयार है मूल्य पड़वरी न्यून है प्राइकलोग बिलम्ब करने में पड़तावगे ॥

मैनार नवलकिशोर प्रेस  
लखनऊ इतरतगज



क्र०	विवरण	पू०स	पू०स	क्र०	विवरण	पू०स	पू०स
१	दा चरित्र	११४	१०१	११	केन्द्रीय कथ	१११	११४
२	राजाध्यायसु चरित्र	१०१	१०२	१२	पद्य का नाम में मनोरंजन कथा	११४	११५
३	पद्यक सुपरीच पद्यकालि क्रम	१०१	१०३	१३	छन्दसा पद्यों का समष्ट्या के प्रा		
४	रचिते पुत्रोत्ते ईश्यों का मायमाना	१०१	१०५	१४	तापण कथा	११५	११५
५	पद्यके ईश का पद्यों	१०५	१०५	१५	मापी, योर्वी हावारी का नामा	११५	१२१
६	कार्तवीर्य कथा	१०५	१०७	१६	बंसने	११५	११५
७	पद्यकान्तात धीपुत्रकथे कथा	१०५	१०९	१७	उपवन चरित्रक, पद्यकालि नियोजन	११५	१२५
८	सायकथे स्वमन्त्र कथा	१०५	१०५	१८	प्रातरांग कथा	११५	१२५
९	गुण्यकालि मिथुनाय कथा	१०५	१०७	१९	काकबानका माय	११५	१२५
१०	दृष्य क्रम मिथुनाय कथा	१०७	१०७	२०	बरोच कथापमतीता परना	११५	१२५
११	सुभुगुंर कथा	१०७	११०	२१	पल्लवागजीकों पद्यका भीषणा	११५	१२५
१२	दुर्गकथ	११०	११०	२२	दृष्य कथे कथी विना प्रमुक्त क	११५	१२५
१३	सुभुग कथा	११०	१११	२३	रतिता कायके मिथुना	११५	१२५
१४	पुत्रका प्रकथा	१११	१११	२४	कृष्णकी वी प्रा पुत्रों का कथन	११५	१२५
१५	सकल सुभुग कथा	१११	११५	२५	कृष्णका भीषाके को कथ कथ		
१६	प्रतिनिधय कथा	११५	११५	२६	१११०० कथा प्राता	११५	१२०
१७	सोमसुभुग कथा	११५	११५	२७	प्रातिनिधी कृष्णका सुभुग कथ	११५	१२५
१८	सिन्धुप्रपनकथे सोमसुभुग कथा	११५	११५	२८	कथियातापना १११०० कथा की		
१९	कनिष्ठकथ पद्यक	११५	११५	२९	व्याद कथा	११५	१२५

पाचवाअश ॥

१	कृष्ण क्रम कथा	१०१	१०७
२	ईव कथि	१०७	१०७
३	इति काय निदाना प्रकथा	१०७	११०
४	कथका यज्ञिकाके माने के गिय के		
५	कथका कथ	१११	१११
६	कथका कथ	१११	१११
७	कथका कथ	१११	१११
८	कथका कथ	१११	१११
९	कथका कथ	१११	१११
१०	कथका कथ	१११	१११
११	कथका कथ	१११	१११
१२	कथका कथ	१११	१११
१३	कथका कथ	१११	१११
१४	कथका कथ	१११	१११
१५	कथका कथ	१११	१११

३०	कथका कथ	११५	१२५
३१	कथका कथ	११५	१२५
३२	कथका कथ	११५	१२५
३३	कथका कथ	११५	१२५
३४	कथका कथ	११५	१२५
३५	कथका कथ	११५	१२५
३६	कथका कथ	११५	१२५
३७	कथका कथ	११५	१२५
३८	कथका कथ	११५	१२५
३९	कथका कथ	११५	१२५

छठवाअश ॥

१	कथका कथ	१२५	१२५
२	कथका कथ	१२५	१२५
३	कथका कथ	१२५	१२५
४	कथका कथ	१२५	१२५
५	कथका कथ	१२५	१२५
६	कथका कथ	१२५	१२५
७	कथका कथ	१२५	१२५
८	कथका कथ	१२५	१२५
९	कथका कथ	१२५	१२५

इति ॥

# भूमिका ॥

विष्णुपुराण भाषा ॥

दोहा ॥

अतिज्ञानी ध्यानी सकल गुणखानी वरवानि ॥ परम सुशील सदी-  
लमत कील सुलील बखानि ॥ १ ॥ सज्जन मनरञ्जन दुरितगञ्जन  
भञ्जन पाप ॥ शुभअञ्जन मल तिमिरहित विहित सदा शुभ लाप ॥  
२ ॥ स्वस्ति श्रीशुभगुणसदन मुशी नवलकिशोर ॥ दान मान बुध  
जनन को करत सदा नहिं धोर ॥ ३ ॥ तिन निजमति उदगारसो स-  
कल जननके हेत ॥ सस्कृत विष्णुपुराण को भाषाकरण सुचेत ॥ ४ ॥  
जामो अबतक तिलकू तासु सस्कृतहि केर ॥ मिलत रेह भाषा नहिं  
यासो होन करेर ॥ ५ ॥ पर जो परहित चित धरत तासु मनोरथ पूर ॥  
करत सदा हरि करि कृपा यासो नहिं कछुदूर ॥ ६ ॥ सुकुल बहोरण  
राम सुत धीरधीरमणि नाम ॥ तासु तनयवर इन्द्रमणि सबविधि  
पूरण काम ॥ ७ ॥ तासुत श्री विश्राम युत राम तासु सुत नीक ॥  
रजावन्द सुखकन्द तिन अवधराम सुत ठीक ॥ ८ ॥

दोहा ॥

सुकुल महेशदत्त सुत ताके चारहबद्धि प्रदेशा ॥ वहिरालय जन-  
पद गोमति तट धनावली कृतवेशा ॥ तिनसो शुभ भाषा करवाई  
मुशी जीव प्रवीनेलखत जाहि सज्जन जन तनमन छहँ सबसुखभीने ॥  
९ ॥ प्रतिश्लोक प्रतिचरण बहुरि प्रतिपद भाषान्तर कीनी ॥ तदपि  
सुजन जन निजमन देके लखिहँ दृष्टि प्रवीनी ॥ जहँ कहँ भूलहोय  
सो जमिहँ पादिहँ शुद्धमनेह ॥ जासो भ्रान्तिधर्म पुरुपनको भूलत  
सब न सँदेह ॥ १० ॥

दोहा ॥

यहि श्रीविष्णुपुराणमें छाहँ सुन्दर अश ॥ अतिपवित्र सुचरित्र  
वर हरिगुणकेरि प्रशश ॥ ११ ॥ चाहम पहिलेअजमें मोलह दृजे  
माहि ॥ अष्टादशक तृतीयमहँ चौथे चौधिमआहि ॥ १२ ॥ पचम

क्र०	विषय	पृ० सं०	पृ० सं०	क्र०	विषय	पृ० सं०	पृ० सं०
१	देव परिवर्त	११०	१११	१६	बेटी प्रव	११२	११३
२	गागाप्रमावतु नरनुशत परशुमर परिवर्त	१०१	१०२	१७	पट्टर का पाग में मनोरथ कथा	११४	११५
३	पनशद सुप्रेरुष परशुमरि जन्म	१०३	१०४	१८	कनकशुभ्रुष वर गागाप्रमावत का नाश	११६	११७
४	रतिके पुत्रों के देवों का मायाजात्रा	१०५	१०६	१९	माया, चार्वाक इत्यादि का माया	११८	११९
५	सुप्रेरुष देव का वर्णन	१०६	१०७	२०	कनकशुभ्रुष	१२०	१२१
६	कार्वाक कथा	१०७	१०८	२१	उत्सेवक अभिषेक, रामशुभ्रुष विद्यावत	१२२	१२३
७	सुप्रेरुषमायात कापुत्रोंका वयन	१०८	१०९	२२	माया के पुत्र	१२४	१२५
८	गागाप्रमावत स्वयंभूतक कथा	१०९	११०	२३	कागाप्रमावत का	१२६	१२७
९	सुप्रेरुष कथिगुणाल वर कथा	१११	११२	२४	कागाप्रमावतकी वरना	१२८	१२९
१०	कनक जन्म शिशुपाल कोप कथा	११२	११३	२५	कागाप्रमावतकी वरना की वरना	१३०	१३१
११	हनुमन्त कथा	११३	११४	२६	कनक शिशुपाल की वरना	१३२	१३३
१२	हनुमन्त	११४	११५	२७	कनक शिशुपाल की वरना	१३४	१३५
१३	कनक कथा	११५	११६	२८	कनक शिशुपाल की वरना	१३६	१३७
१४	कनक कथा	११६	११७	२९	कनक शिशुपाल की वरना	१३८	१३९
१५	कनक कथा	११७	११८	३०	कनक शिशुपाल की वरना	१४०	१४१
१६	कनक कथा	११८	११९	३१	कनक शिशुपाल की वरना	१४२	१४३
१७	कनक कथा	११९	१२०	३२	कनक शिशुपाल की वरना	१४४	१४५
१८	कनक कथा	१२०	१२१	३३	कनक शिशुपाल की वरना	१४६	१४७
१९	कनक कथा	१२१	१२२	३४	कनक शिशुपाल की वरना	१४८	१४९
२०	कनक कथा	१२२	१२३	३५	कनक शिशुपाल की वरना	१५०	१५१
२१	कनक कथा	१२३	१२४	३६	कनक शिशुपाल की वरना	१५२	१५३
२२	कनक कथा	१२४	१२५	३७	कनक शिशुपाल की वरना	१५४	१५५
२३	कनक कथा	१२५	१२६	३८	कनक शिशुपाल की वरना	१५६	१५७
२४	कनक कथा	१२६	१२७	३९	कनक शिशुपाल की वरना	१५८	१५९
२५	कनक कथा	१२७	१२८	४०	कनक शिशुपाल की वरना	१६०	१६१
२६	कनक कथा	१२८	१२९	४१	कनक शिशुपाल की वरना	१६२	१६३
२७	कनक कथा	१२९	१३०	४२	कनक शिशुपाल की वरना	१६४	१६५
२८	कनक कथा	१३०	१३१	४३	कनक शिशुपाल की वरना	१६६	१६७
२९	कनक कथा	१३१	१३२	४४	कनक शिशुपाल की वरना	१६८	१६९
३०	कनक कथा	१३२	१३३	४५	कनक शिशुपाल की वरना	१७०	१७१
३१	कनक कथा	१३३	१३४	४६	कनक शिशुपाल की वरना	१७२	१७३
३२	कनक कथा	१३४	१३५	४७	कनक शिशुपाल की वरना	१७४	१७५
३३	कनक कथा	१३५	१३६	४८	कनक शिशुपाल की वरना	१७६	१७७
३४	कनक कथा	१३६	१३७	४९	कनक शिशुपाल की वरना	१७८	१७९
३५	कनक कथा	१३७	१३८	५०	कनक शिशुपाल की वरना	१८०	१८१
३६	कनक कथा	१३८	१३९	५१	कनक शिशुपाल की वरना	१८२	१८३
३७	कनक कथा	१३९	१४०	५२	कनक शिशुपाल की वरना	१८४	१८५
३८	कनक कथा	१४०	१४१	५३	कनक शिशुपाल की वरना	१८६	१८७
३९	कनक कथा	१४१	१४२	५४	कनक शिशुपाल की वरना	१८८	१८९
४०	कनक कथा	१४२	१४३	५५	कनक शिशुपाल की वरना	१९०	१९१
४१	कनक कथा	१४३	१४४	५६	कनक शिशुपाल की वरना	१९२	१९३
४२	कनक कथा	१४४	१४५	५७	कनक शिशुपाल की वरना	१९४	१९५
४३	कनक कथा	१४५	१४६	५८	कनक शिशुपाल की वरना	१९६	१९७
४४	कनक कथा	१४६	१४७	५९	कनक शिशुपाल की वरना	१९८	१९९
४५	कनक कथा	१४७	१४८	६०	कनक शिशुपाल की वरना	२००	२०१
४६	कनक कथा	१४८	१४९	६१	कनक शिशुपाल की वरना	२०२	२०३
४७	कनक कथा	१४९	१५०	६२	कनक शिशुपाल की वरना	२०४	२०५
४८	कनक कथा	१५०	१५१	६३	कनक शिशुपाल की वरना	२०६	२०७
४९	कनक कथा	१५१	१५२	६४	कनक शिशुपाल की वरना	२०८	२०९
५०	कनक कथा	१५२	१५३	६५	कनक शिशुपाल की वरना	२१०	२११
५१	कनक कथा	१५३	१५४	६६	कनक शिशुपाल की वरना	२१२	२१३
५२	कनक कथा	१५४	१५५	६७	कनक शिशुपाल की वरना	२१४	२१५
५३	कनक कथा	१५५	१५६	६८	कनक शिशुपाल की वरना	२१६	२१७
५४	कनक कथा	१५६	१५७	६९	कनक शिशुपाल की वरना	२१८	२१९
५५	कनक कथा	१५७	१५८	७०	कनक शिशुपाल की वरना	२२०	२२१
५६	कनक कथा	१५८	१५९	७१	कनक शिशुपाल की वरना	२२२	२२३
५७	कनक कथा	१५९	१६०	७२	कनक शिशुपाल की वरना	२२४	२२५
५८	कनक कथा	१६०	१६१	७३	कनक शिशुपाल की वरना	२२६	२२७
५९	कनक कथा	१६१	१६२	७४	कनक शिशुपाल की वरना	२२८	२२९
६०	कनक कथा	१६२	१६३	७५	कनक शिशुपाल की वरना	२३०	२३१
६१	कनक कथा	१६३	१६४	७६	कनक शिशुपाल की वरना	२३२	२३३
६२	कनक कथा	१६४	१६५	७७	कनक शिशुपाल की वरना	२३४	२३५
६३	कनक कथा	१६५	१६६	७८	कनक शिशुपाल की वरना	२३६	२३७
६४	कनक कथा	१६६	१६७	७९	कनक शिशुपाल की वरना	२३८	२३९
६५	कनक कथा	१६७	१६८	८०	कनक शिशुपाल की वरना	२४०	२४१
६६	कनक कथा	१६८	१६९	८१	कनक शिशुपाल की वरना	२४२	२४३
६७	कनक कथा	१६९	१७०	८२	कनक शिशुपाल की वरना	२४४	२४५
६८	कनक कथा	१७०	१७१	८३	कनक शिशुपाल की वरना	२४६	२४७
६९	कनक कथा	१७१	१७२	८४	कनक शिशुपाल की वरना	२४८	२४९
७०	कनक कथा	१७२	१७३	८५	कनक शिशुपाल की वरना	२५०	२५१
७१	कनक कथा	१७३	१७४	८६	कनक शिशुपाल की वरना	२५२	२५३
७२	कनक कथा	१७४	१७५	८७	कनक शिशुपाल की वरना	२५४	२५५
७३	कनक कथा	१७५	१७६	८८	कनक शिशुपाल की वरना	२५६	२५७
७४	कनक कथा	१७६	१७७	८९	कनक शिशुपाल की वरना	२५८	२५९
७५	कनक कथा	१७७	१७८	९०	कनक शिशुपाल की वरना	२६०	२६१
७६	कनक कथा	१७८	१७९	९१	कनक शिशुपाल की वरना	२६२	२६३
७७	कनक कथा	१७९	१८०	९२	कनक शिशुपाल की वरना	२६४	२६५
७८	कनक कथा	१८०	१८१	९३	कनक शिशुपाल की वरना	२६६	२६७
७९	कनक कथा	१८१	१८२	९४	कनक शिशुपाल की वरना	२६८	२६९
८०	कनक कथा	१८२	१८३	९५	कनक शिशुपाल की वरना	२७०	२७१
८१	कनक कथा	१८३	१८४	९६	कनक शिशुपाल की वरना	२७२	२७३
८२	कनक कथा	१८४	१८५	९७	कनक शिशुपाल की वरना	२७४	२७५
८३	कनक कथा	१८५	१८६	९८	कनक शिशुपाल की वरना	२७६	२७७
८४	कनक कथा	१८६	१८७	९९	कनक शिशुपाल की वरना	२७८	२७९
८५	कनक कथा	१८७	१८८	१००	कनक शिशुपाल की वरना	२८०	२८१

कार ॥ विष्णुसहस्रनाम ॥  
 णि देश सरिता जलधि पर्वत जौनि प्राग्निवृक्षा  
 वहुरि खगोल अविद्ध ॥ २३ ॥ सुमति भरत सुखनृपनकी कथा ॥ २४ ॥  
 बहुभाति ॥ वेदवेदशाखाकथन सुनतदहतअघपांति ॥ २५ ॥ जग  
 सवर्जनपालनहरण करणविष्णुकीगाथ ॥ वर्णितविष्णुपुराण में ज्यहि  
 सुनि होत सनाथ ॥ २६ ॥ जो सुनि हैं गुनिहहिये पढिहैं सहित वि-  
 धान ॥ वहाँ सकल सुखभोगि हरिपुत्र लहिहैं अवसान ॥ २७ ॥

हरिगीतिका ॥

ऋतुरासनवनिधु १९३६ अर्द्ध भादों मगुरु चामन द्वादशी ॥  
 नवलक्ष्मणसुमहि १८७९ सृष्टमस्त तिवि अमास्त अठाय ॥ प्रा-  
 रम्भविष्णुपुण्य भाषान्तरकरण किय सुमहे ॥ श-  
 नवलकिशोर आज्ञापायके ॥ २७ ॥

# भूमिका ॥

## विष्णुपुराण भाषा ॥

दोहा ॥

अतिज्ञानी ध्यानी सकल गुणखानी वरत्रानि ॥ परम सुशील सदा-  
लमत कील सुलील वखानि ॥ १ ॥ सज्जन मनरञ्जन दुरितगञ्जन  
भञ्जन पाप ॥ शुभअञ्जन मल तिमिरहित विहित सदा शुभ लाप ॥  
२ ॥ स्रस्ति श्रीशुभगुणसदन मुशी नवलकिशोर ॥ दान मान बुध  
जनन को करत सदा नहिं थोर ॥ ३ ॥ तिन निजमति उदगारसों स-  
कल जननके हेत ॥ सस्कृत विष्णुपुराण को भाषाकरण सुचेत ॥ ४ ॥  
जासो अवतकतिलकहू तासु सस्कृतहि केर ॥ मिलत रहे भाषा नहिं  
यासों होनकरेर ॥ ५ ॥ पर जो परहित चित धरत तासु मनोरथ पूर ॥  
करत सदा हरि करि कृपा यासों नहिं कलुदूर ॥ ६ ॥ सुकुल बहोरण  
राम सुत धीरधीरमणि नाम ॥ तासु तनयवर इन्द्रमणि सबविधि  
पूरण काम ॥ ७ ॥ तासुत श्री विश्राम युत राम तास सन ॥ ८ ॥  
रजावन्द सुखकन्द तिन अध्यायमहं सप्तपुराणप्रस्ताव ॥ २ ॥

जिमि मैत्रेय पगशरहु प्रश्नोत्तर श्रुति गाय ॥ ३ ॥

हे पुण्डरीकाक्ष ! आपकी जयहोय व हे त्रिष्वभावन हृषीकेश महापुरुष सत्र  
से पूर्वज ! तुम्हारे नमस्कार है जो विष्णु मत् अक्षर ब्रह्म ईश्वर पुरुष अपने  
गुणों की तरङ्गों से इम समार की सृष्टि पालना व नाश करते और प्रधानद्वारा  
बुद्ध्यादिकों की उत्पन्न करने हैं सो हम लोगों को गति भूति मुक्ति दे विश्व  
के ईश्वर विष्णु व ब्रह्मादिकों व गुरुके गणना के वेदमग्नि पुराण कहने हैं  
इतिहास पुराणोंके जाननेवाले वेदवेदाङ्गके पागन्ना धर्मशास्त्रादिकों के जा-  
ननेदारे ऋषि मुनि के पौत्र मुनिवर्गों में उत्तम सुखमदित वैदेह्ये पराशर  
ऋषिमे नगम्कारपूर्वक गोत्रेण मुनि बने हे गुरुनी । आप मे हमने सम्पूर्ण  
वेद सब धर्मशास्त्र वेदाङ्गादि भी यथाक्रम पढ़े व तुम्हारे ही प्रमाद मे इन में  
श्रम भी किया व जो हमारे बरीभी कोई है उनमें भी सब शास्त्र पढ़ावेंगे कुछ  
दिपावेंगे नहीं इससे हे धर्मज्ञ ! यह नगत् त्रेण दुष्णा व जेमे होगा व जिम



समय यह चराचर है जहा से है व जहा लीन होगा जहा लीन हुआ था व जितने प्राणी इसमें हैं सनकी व देवादि समुद्र गर्वियों की उत्पत्ति पृथ्वी सूर्यादिकों के टिकने के स्थान व इन सबोंका प्रमाण व देवादिकों को वश मनु मन्वन्तर कल्प त्रिकल्प चारों युगोंकी उलटापलटी फल्पान्त का स्वरूप सब युगों का अन्त देवर्षि व राजाओं के चरित्र व्यामकून वेदशास्त्राओं का अलग होना ब्राह्मणादि वर्णों व आश्रमों के धर्म ये सब बातें आप से सुनाचाहते हैं हमारे ऊपर प्रसन्न हूजिये जिनमे यह सब तुम्हारे अनुग्रह मे हम जानें यह सुन पाशर मुनि बोले कि हे धर्माज्ञ मैत्रेय ! अच्छा किया जो हमारे पिता के पिता वशिष्ठजीने पूर्वही हमसे कहा था उमका स्मरण कराया हमने सुनाया कि विश्वामित्र के कहने से किसी राक्षस ने हमारे पिता को खा लिया था इन मे हमारे बड़ा क्रोध हुआ तो हमने राक्षसों के विनाग के लिये यज्ञका आरम्भ किया जिसमें सैकरों निशाचर भस्म होगये होते २ जब सम्पूर्ण राक्षस नाश हुये तो हमारे पितामह वशिष्ठजीने आय हमसे कहा कि हे तात ! इस अत्यन्त क्रोध को शांत करो व त्यागो क्योंकि राक्षसों ने तुम्हारे पिता को नहीं मारा उनका कुछ भी अपराध नहीं है तुम्हारे पिता का उसी प्रकार मरण था जिससे कि पुरुष सदा अपना किया हुआ ही भोगता है इस से हे तात ! कौन किसको मारना है ऐसा क्रोध मूर्खोंको ही होता है न कि ज्ञानवानों को हे वत्स ! बड़े २ क्रोध कर के मनुष्य जो यज्ञ तपस्थादि इकट्ठा करते हैं उनके नाशनेवाला क्रोध ही है यह क्रोध स्वर्ग व मोक्षके निषेधका कारण है इसीसे महर्षि लोग इसे बराने हैं तिससे हे तात ! इसके वश तुम न होवो और नेत्रके अपट्टागी राक्षसों के जारने से कुछ नहीं यह यज्ञ बन्द होये साधुलोगों का सार क्षमा ही है गगनरजी बोले कि इस प्रकार जब हमारे पितामहने शिसादी तब तिनके वाक्यकी गुरुतासे हमने यज्ञ करना बन्द कर दिया वशिष्ठजी बहुत प्रसन्न हुये उसी समय ब्रह्मा जीके पुत्र पुलस्त्यजी वहां आये और हमारे पितामहने अर्घ्यपायामनादि दिया उमे अर्गीकारकर हमसे बोले कि जिससे हम बड़े वेमें इन परमगुरु वशिष्ठजीकी आज्ञासे हमने क्षमाकी निममे तुम सब शास्त्रों के वेत्ता होगे व जिससे कि क्रोधयुक्त भी तुम पे पर हमारी मन्तति राक्षसों का नैदान नहीं किया इससे हे महाभाग ! और भी बरदान तुमको देते हैं हे वत्स !

आप पुराण संहिताके कर्त्ता होवो व देवनाभों के परमार्थ को यथाविधि जानो व हमारे प्रसाद से प्रवृत्त निवृत्त दोनों कर्मों में मन्देहरहित विमल तुम्हारी गतिहो यहमुन हमारे पितामह वशिष्ठजी ने भी आशीर्वाद दिया कि जो २ पुलस्त्यजी ने कहाहै सब कुछ सत्यदेवेगा मो इमप्रकार वशिष्ठजी व पुलस्त्यजी ने जो पूर्वही कहा था तुम्हारेप्रश्न से सब हमको स्मरण हो आया ॥

चौ० सो हम तुमसनसकलखानत । जासों पूठत अरु सुख मानत ॥

शुभ पुराण संहिता बनाई । सुनहु यथाविधिसों चितलाई ॥ १ ॥

हरिमों होत सकल ससारा । जा देखत यह पसर पसारा ॥

तिथि सयम करता जग केरो । स्वइ हरि आनाहिं जनि हिय हेरो ॥ २ ॥

तासों बाहर तनिक न येहू । देखहु सुनहु तजहु सदेहू ॥

जो जब चहत करत तव सोई । नयनन देखहु फतहूँ न गोई ॥ ३ ॥

## दूसरा अध्याय ॥

दो० कहत द्वितीयाध्याय महँ प्रश्न कथन हरि नाम ॥

क्रमपुराण कर सृष्टि पुनि सब महदादि न खाम ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले कि अविचार शुद्ध नित्य परमात्मा सदैवरूप विष्णु सर्व जिष्णु हिरण्यगर्भ हरि राकर वामुदेव तार सृष्टि स्थिति पालनकारी एकानेक स्वरूप स्थान सूक्ष्मात्मा अव्यक्तव्यक्त रूप विष्णु मुक्ति हेतु ससारकी सृष्टि स्थिति विनाश करनेवाले जगन्मय जगन्मूलभूत विष्णु परमात्मा विश्वके आधारभूत अतिसूक्ष्ममे सूक्ष्म अच्युत पुरुषोत्तम ज्ञानस्वरूप अत्यन्त निर्मल अथ स्वरूप विश्वके वेष्टन व ग्रसन करनेवाले व सृष्टिस्थिति के स्वामी जगत्के ईश अज अक्षर अव्यय ऐमे श्रीविष्णुजी के प्रणाम करके जिस प्रकार दक्षादि मुनियों के पूछने पे ब्रह्माजीने कहाहै व उन मुनियोंने नर्मदा नदीके तट पर पुरुकृतम राजासे कहा व राजाने सारस्वत मे व सारस्वत ने हममे मो सब हम तुम से कहेंगे व इ ईश्वर परोंसे पर परमात्मा परमपुरुष आत्मसास्थित रूप वर्ण निर्देश और विशेषण रहित अपक्षय विनाश परिणाम वृद्धि जन्मादि वर्जित सदा व सर्वत्र विद्यमान व यह सब निगमैही रहता है उसीको विद्वान् लोग वामुदेव कहते है व वही ब्रह्म नित्य अज अभय अव्यय एक स्वरूप निर्मल है वही व्यापकव्यक्त स्वरूप व

कालरूप पुरुषरूप सर्वत्र स्थित है हे दिनश्रेष्ठ । ब्रह्मका प्रथमरूप पुरुष है और व्यक्तअव्यक्त दो और उसीके रूप हैं तिसके पीछे काल एकरूप है और जो प्रधान पुरुष व्यक्त कालादिकों से पृथक् मिश्र रूप है उसीको परिडनलोग श्रीविष्णु का परमपद कहते हैं प्रधान पुरुष व्यक्त काल ये सब विष्णुहीके रूप हैं तिनमें प्रधान से सृष्टि होनी है पुरुष उसको स्थापित रखना व व्यक्त महत्त्वात्ति व्यक्तियों की उत्पत्ति का कारण है व काल इस सृष्टिके नाशका हेतु है व्यक्तपुरुष काल अव्यक्त ये सब नाम विष्णुहीके हैं जैसे बालक लोग राजा मजा आदिकी क्रीडा करते हैं वैसेही कार्य कार्य के निमित्त श्रीविष्णु जी इन नामोंका धारण करते हैं अब इनकी चेष्टा बताते हैं श्रवण कीजिये जो अव्यक्त कदातहै ऋषिलोग उमीको प्रधान कारण प्रकृति इन नामों से ब्रह्मानते हैं वह प्रकृति अतीव सूक्ष्म व नित्य कार्य कारण शक्तियुक्तहै व अक्षय आधाररहित प्रमाणरहित जराहीन अचन शब्द स्पर्शादिरहित व इनके रूपादिकों से बाहर त्रिगुण ससारको उत्पत्ति स्थान अनादि उत्पत्ति नाशरहितहै तिसीसे प्रथम यह मसार हुआ था और अब सबमें व्याप्त है व प्रलयके पीछेभी वही रहेगी इसीको निरन्तर वेदवादी विद्वान् प्रधान कहते हैं प्रलयके समय दिन रात्रि आकाश भूमि चन्द्र सूर्य इत्यादि कुछभी न था केवल एक ब्रह्मप्रधान पुरुष और काल येही थे परम निरुपाधि श्रीविष्णु से, प्रधान व पुरुष उत्पन्न हुगे और फिर तिसी विष्णुके स्वरूप से काल उत्पन्न हुआ जिससे किसव रूपादि होतेहैं और जिससे कि धीतीहुई प्रलयमें पुरुष संकृतिमें स्थित तथा तिमसे इस प्रलयका नाम प्राकृत प्रलय हुआ है मैत्रेय भगवान् काल अनादि है व इसका अन्न नहीं है तिससे सृष्टि पालन नाश ये प्रारहरूप क्रमसे चने आते हैं व गुणों की संगता में जब प्रधान व पुरुष अलगहोजाते हैं तो उनके एकत्र फलने के लिये विष्णुका कालनाग रूप रहनाहै फिर जब सृष्टि का समय आनाहै तो परब्रह्म परमात्मा जगन्माय सर्वगापी सर्वभूनेश सर्वरत्मा परमेश्वर श्रीहरि अपनी इच्छा से प्रकृति व पुरुष दोनों में प्रवेशकरके कालके दाग चेतन्य करते हैं जिसप्रकार गन्ध गन्धको सन्निधिगात्रसे धोभिन करताहै तिसीगति यह परमेश्वरभी प्रकृतिपुरुषको चेतन्यकरना है हे ब्रह्मन् । सोई परमेश्वर चतानवाला है व पुरुषोत्तम चलनेवाला व वही परमेश्वर सकोच वविकाशमे प्रवाननामें गी

टिकोहे तद्गुणादिकों के साथ विकार जो गहत्तत्त्वादि व अणु जो जीव तिन का स्वरूपभी विष्णुही हैं व व्यक्त का स्वरूप भी कर्पांति वे सब ईश्वरों के ईश्वर है फिर जब गुणों की समता ईश्वरने देखी तब उससे गुण व्यजन जो बुद्धि तिसकी उत्पत्ति हुई फिर प्रकृति से उत्पन्न जो बुद्धि वह सर्वत्र व्यक्त होगई सो राजसी सात्त्विकी तामसी के भेदमे तीन प्रकारकी है जैसे त्वचा से बीज घेग हृन्ना रहता है तैसेही प्रधान तत्त्वमे गहत्तत्त्वा घेगहृन्ना उत्पन्नहोताहै व गहत्तत्त्वा से सात्त्विक राजस तामस तीनप्रकारका अहकार उत्पन्नगना है हे महामृनि ! सो अहकार पृथ्वी जलाग्नि वायु आकाश और इन्द्रिया इनके उत्पन्न हानेका कारणहै व जैसे प्रधान से बुद्धि घेरी हुई है तैसेही बुद्धिमे अहकार व अहकार से सृष्टितन्मात्रा उत्पन्न हुई फिर शब्दतन्मात्रा से आकाश उत्पन्न हुआ जि सका गुण शब्द है व आकाश से स्पर्शमात्र उत्पन्नहुआ उससे बलवान् वायु हुआ जिमका गुण स्पर्श है फिर शब्दतन्मात्र जो आकाश वह स्पर्शमात्र जो वायु तिममें व्याप्त हुआ फिर जब वायु चैत्य हुआ रूपतन्मात्र सूर्यादिको उसने उत्पन्न किया जिमका गुण रूप है व सूर्यमे रसतन्मात्र जो जल सो उत्पन्न हुआ वह जल रसाधारहै फिर जनमे गन्धतन्मात्रा पृथ्वीकी उत्पत्तिहुई तिसका गुण गन्ध हुआ इन सबकी मात्रा अविशेष हैं इमी से ये भी अविशेषहैं किन्तु न शान्त घोर न मूढ़ ये गुण इनमें नहीं हैं व पृथ्वी जलाग्नि वायु आकाश व इनकी मात्रा गन्ध रस रूप स्पर्श शब्द व कर्ण त्वचा नेत्राजिह्वा नासिका वाणी हाथ चरण गुद शिखा ये इन्द्रिया व क्रममे इनके अधिष्ठ तृत्वेना दिशा वायु सूर्य वरुण अग्निनीकुमार अग्नि इन्द्र विष्णु मित्र प्रजापतिहैं व स्याग्नी इन्द्रिय मनहै त्वचा नयन नासिका जिह्वाकाथ व शब्दादिक पापों के ग्रहण करने के लियेहै बुद्धि भी इन्हीं के मग है व गृहहै शिख हाथ पैर वाणी व पाप हैं इनके कर्म क्रमसे ये हें पुरीष व मूत्र त्याग शिल्पकर्म चलना बोलना व आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी इनके क्रममे शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ये ५ गुण हैं ये शान्त घोर मूढ़ व विशेषहैं यद्यपि ये सब नानाप्रकार के पराक्रम मे युक्तये पर जषत्क अलग २ रहे बिना एकत्र द्वये प्रजाजों की सृष्टि न करमके तब सब एकत्र हो एक दूसरे की महायना ले पुरुरके व प्रकृति की दया मे बुद्ध्यादिकों ने अथहकी उत्पत्ति की सो जलके बुल्लके समान धर्म धीरे बढ़ा व मोलाका

वन बड़ी वृद्धि को प्राप्त हुआ व जलमें गयन करने लगा वही हिरण्यगर्भ थी  
 त्रिष्णुजीकी आकृति हुई वह आकृति अव्यक्त स्वरूप थी व व्यक्तरूप जगत्पति  
 श्रीत्रिष्णुजी ब्रह्मस्वरूप उसमें पेटे कुछ उत्पन्न नहीं हुये फिर उगी से गेरुचचार्यन  
 के सहण गर्भ लपेटने के लिये चर्म जगयु पर्वत वृक्ष गर्भ पा जल समुद्र  
 दीप दीपान्नर सूर्य चन्द्र नक्षत्रगण देवता देत्य मनुष्य मय उसी अण्डाकृति  
 से उत्पन्न हुये फिर उस अण्ड कटाहके बाहर ७ आवरण हुये यथा पृथिव्यावरण  
 से २५०००००००० योजनपर उससे १० गुणा जलावरण व जलावरण में इतनी  
 ही दूर दश गुणाही अग्न्यावरण उसमें उतीही दूर पवनावरण फिर वमें ही  
 आकाशावरण फिर वायुसावरण तदनन्तर अहकारावरण यही ७ आवरण हैं  
 जैसे नारियलके फलमें बाहर छिन्नेकेहोते बीज सबके मध्यमें होता है वैसेही इन  
 आवरणों के मध्यमें अण्ड रहता है व जब ऐसा अण्ड कटाह होजाता है तो श्री  
 हरि रजोगुणी ब्रह्माक्षो उममें पेट इम ससार की सृष्टि करते हैं वह सृष्टि जब  
 तक कल्प विकल्पों की कल्पना रहेगी तबतक चलीजावेगी व तबतक सत्त्वगुणी  
 श्रीत्रिष्णुजी पालन करने रहेंगे हे भेत्रेय । फिर कल्पांत में तमोगुणी क्रूररूपको  
 वही जनार्दन भगवान् मय प्राणियोंको नाश करते हैं उपमगय बड़ागयानक  
 रूप धारण करते हैं ॥

चौ० सशहि विनाशि प्रलयकरि नीके । जलमय जगत करत विधि ठीके ॥  
 शेषनाग पर सोधन लागत । रमानियाम शयन सुख पागत ॥ १ ॥  
 पुनि जागत धरि विधितनु स्वामी । करन सृष्टि सब पूरण कामी ॥  
 उपजावत पालत पुनि नाशत । शिधि हरि हर राजक सोइ यागत ॥ २ ॥  
 सोइस्वष्टामिरजन पुनि पालन । पाल्य स्वई स्वइ रात्रक पालत ॥  
 एक जनार्दन तीनिउँ कामा । करन यथाविधि हरि प्रय नामा ॥ ३ ॥  
 क्षिति जल पाषक पयन अवादा । इन्द्रिय अन्त करण प्रयादा ॥  
 पुरुष नाम यह जगत अनूपा । तासु पृथक्तां होत स्वरूपा ॥ ४ ॥  
 विद्यरूप अवश्य सय ग्यानी । स्वइ हरि आन तहीं यज्ञनामी ॥  
 यासो सृष्टि आवि मय केरे । करन हर हरि अम श्रुति केरे ॥ ५ ॥

व वही भगवान् हरिसृष्टिकर्ता व सृष्टपेटे वही पालक वही पाल्य वही हर्ता  
 वही हार्ष केवल ब्रह्मा त्रिष्णु शिव ये सत्तार्य भिन्नहै वस्तुन मन्वमेष्ट सर्वपर  
 सर्वदर्शी सर्वकर्ता भर्ता वही है ॥

## तीसरा अध्याय ॥

दो० भगत तृतीयाध्याय महँ विष्णु सृष्टि घञ्चि ।

सकल कालगति अरु प्रलय सुनहु तजहु मथादि ॥

इतनी सृष्टिकी व्यवस्थासुन मैत्रेयजी पराशर मुनिमे बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ ।  
 निर्गुण अपमेय शुद्ध अमलात्मा ब्रह्मसृष्टिपालन महार केमे कर्मका है क्योंकि  
 वे बिना कर व्रणादिकों के व्यापार के नहीं होमके व निर्गुण के इनका अभाव  
 है यह सुन पराशर मुनिबोले हे मैत्रेय । लोकमें सब गणि मन्त्रादि भावों की  
 शक्तियाँ अचिन्त्य ज्ञानगोचर होतीहैं इमीमे सृष्टिआदि भाव शक्तियाँ ब्रह्माके  
 भी होतीहैं जैसे कि अग्निमें दाहक शक्ति होतीहै सो त्रिसप्तकार सृष्टिके विषय  
 में भगवान् नारायण ब्रह्मा लोककेपितामह उत्पन्नहो सृष्टि करनेहैं सुनिये ब्रह्मा  
 जीके वर्षोंमे ब्रह्माकी आयुर्द्वय १०० वर्षकी होतीहै व उम ब्रह्माकी आयु ता पर  
 नामहै व निमके आधेका परार्द्ध श्रीविष्णुका काल स्वरूप जो हमने तुमसे  
 कहाहै तिसीसे ब्रह्माकी भी आयुहोतीहै व अन्य पराचर पृथ्वी पर्वत सागरादि  
 सबकी भी उमीसे होतीहै हे मुनिमत्तम । १५ वार पलक मारने में जो समय बी-  
 तनाहै उमे काण्डा कहनेहैं वषीम काण्डाको कला व ३० कलाको मुहूर्त कहने व  
 ३० मुहूर्त की गनुष्योंकी दिनरात्रि होतीहै व ३० दिनरात्रिका गहीना उभमें  
 सृष्णशुक्र के भेदमे दोपक्ष होते ६ गहीना का अयन होता वर्षम तो अयन  
 होते एक उत्तमयण दूसरा दक्षिणायन दक्षिणायन देवताओं की रात्रि होती व  
 उत्तमयण दिन इस प्रकारके ३६० दिन रात्रियों का देवोंका वर्ष होता है व देव-  
 ताओंके १२००० वर्षों में सत्ययुग व्रता व्यापार कलियुग चारोंयु । बीतने हैं इन  
 देवताओंके १२००० सहस्र वर्षोंमें गनुष्योंके ४३२०००० वर्षकृषे इनमें देवताओं  
 के ४००० वर्ष अर्थात् गनुष्यों के १७२०००० वर्ष सत्ययुग व देवोंके ३६००  
 वर्ष अर्थात् गनुष्यों के १२६६००० वर्ष व्रता व सुगोंके २४०० वर्ष अर्थात्  
 गनुष्यों के २६४००० वर्ष व्यापार रहताहै व देवोंके १२०० वर्ष अर्थात् मानवाँके  
 ४३२००० वर्ष कलियुग रहता है परन्तु इन युगों में पूर्वार्धपर मनुष्याओंके भी  
 वर्ष भिनेहूय हैं यथा सत्ययुगमें देवोंके २०० वर्ष अर्थात् गनुष्योंके २०००००  
 वर्ष व व्रतामें देवोंके ६०० वर्ष अर्थात् गनुष्योंके २१६००० वर्ष व व्यापारमें देवों

के ४०० वर्ष अर्थात् मनुजों के १४४००० वर्ष व कलियुग में देवोंके २०० वर्ष अर्थात् मानुषों के ७२००० वर्ष सन्ध्या रहती है व मत्स्ययुग त्रेता द्वापर कलियुग ये जब द्वापर वार बीन जाते हैं तो ब्रह्मा का एकदिन होता है ब्रह्मा के दिन में १४ मनु बीतते हैं दिनका प्रमाण कहते हैं मुनी एकमन्वन्तर में ७ ऋषि देवता इन्द्र मनु मनुपुत्र राजा ये सब उत्पन्नहोते व जब फिर नया मन्वन्तर होता है तब नये ये सब होते हैं व एक मनुमें ७१ चतुर्भुगी बीनती है इन ७१ चौबुगी योगों मनुष्योंके ३०२७२०००० वर्ष होते हैं इनके १४ गुनेका ४२६४००००००० ब्रह्माका एकदिनहोता है और इनकेहीकी रात्रि इनका समय बीतनेपर ब्रह्माका नित्यप्रलय होता है तब भूर्भुव आदि लोकोंका भी नाश होजाता महर्षिकोंके निवासी मारे तापके जनलोक को चले जाते हैं व त्रिलोकी एकार्णव होजाती है तब भी ब्रह्माजी नारायण स्वरूप हो शेषनागको शय्या बनाय शयन करने लगते हैं जब उतनेही वर्ष शयन करते रहते हैं तो जनलोक निवासी योगी लोग चिन्तना करते हैं तभी जाग फिर ब्रह्मा सृष्टि करनेलगते हैं ॥

चौ० यहिप्रिधि वर्षशतक जबजाहीं । विधि आयुष सम होयत आहीं ॥

एक परार्द्ध सखल भव करे । शीत्यहु सुखयुत वर्ष घनेगे ॥ १ ॥

तासु अतमो कल्प महाना । जाहि पाष अस करत मखाना ॥

बहुरि द्वितीय परार्द्ध सुहावन । अग्रन्यग्रहु मध भाति सुहावन ॥ २ ॥

है वागह फल्य यहि नाम् । यहि परार्द्ध मह प्रथम ललाम् ॥

तुमसन विप्र सृष्टिकी गाथा । इमिघरणी मुनि होहु सगाथा ॥ ४ ॥

## चौथा अध्याय ॥

दो० गहत चतुर्त्याप्याय महै श्री वराह अनतार ॥

धरणि सान्धनकृम विनय लोक विभाग प्रकार ॥ १ ॥

इतनी कथा मुन गैत्रेयजी पराशरमुनिसे बोले कि हे महामुनि । नागयण नामक ब्रह्मात्मगवान् ने इस वाराहकल्पकी आदि में जैसे सृष्टि की रचना की है कृपापूर्वक कहिये पराशर मुनि बोले जिसप्रकार नागयण स्वरूप प्रजापतियों के प्रति यक्षानी ने प्रजाओंको उत्पन्नकिया है सो वगैरे मुनी जब पाद्मकल्प के पीछे नारायणस्वरूप मत्सरूप ब्रह्मा नारायणमूर्ति सब से श्रेष्ठ भवित

महिमा श्रेष्ठोंके भी प्रभु ब्रह्मस्वरूपी अनादि मवराचरके जन्मस्थान उन्हीं ने त्रेलोक्य धराचर रहित देवा ऋषि लोग नारायण इम शब्द का यों अर्थ करते हैं कि नार जलको रुढ़ते हैं व जल पुराण पुरुष भगवान् का रूप है निम नार कहे जल में जिमका अयन अर्थात् स्थानहो उमे नारायण रुढ़ते हैं जब तिन्हीं नारायण स्वरूपी ब्रह्माने जाना कि प्रलयके पीछे जलमय समार होगयाहै पृथ्वी भी दूबगई है वस उमके ऊरलाने के लिये अनुमान किया व जैमे अन्यकल्पों में गत्सरादि रूप धारण किये थे वैमेही इस कल्पमें श्रीवागहजीका अवतार हुआ जो अवतार वेद यज्ञमय सम्पूर्ण जगत्की स्थिति के लिये प्राप्त स्थिरात्मा सर्वात्मा प्रजापति ऐसे भगवान् शूकरजीका अवतार लेतेही जनलोकनिवासी सिद्धोंने स्तुतिकी व जलमें प्रवेश करगये वहा जाने २ पातालमें पहुँचे पृथ्वी भी बड़ी थी उमनेजानाकि साक्षात् पुराण पुरुष परमेश्वर आये हैं इससे स्तुति करने लगी पृथ्वी बोली सर्वभूत शक्त चक्र गटा धारण करनेवाले भगवान् तुम्हारे नमस्कारहै हमको इम स्थानसे लेवलिये क्योंकि पूर्वही हम तुम्हीं से उतरन हुई थी व में तुम्हाराही स्वरूपहूकुछहमी नहीं आकाश अग्नि आदि सब तत्त्व आपही में उतरनहुये हैं व अन्य भी चगचर आपही में पैदाहुये हैं हे परमात्मन् भूतात्मन् पुरुष, त्मन् प्रधानरूप कालरूप ! आपने नमस्कारहै आप ब्रह्मा विष्णु रुद्रका रूपधर इम ससारकी उतरात्ति पालन व नाश करनेहो इम ससारको अन्तमें नाशकरके जलमें शेषके कोरामें तिर धरके शयन कर रहनेहो तुम्हारे नमस्कार है तुम्हारा जो परमोत्कृष्ट रूप है उसे कोई नहीं जानना अवतारों में जो जो रूपधरनेहो देवगण उन्हींकी स्तुति कर्ने हैं हे परब्रह्म ! आपकी आराधना से मुक्तिवाहनेवाले लोग मोक्षको पहुँचे इमसे तुम्हारी आराधना बिना कौन मोक्षपावेगा जो रूप गनमे ग्रहण करने के योग्य जो नेत्रों से देखने के लायक व जो बुद्धिके पट्टचने के योग्यहै वह सब आपहीकारूप है में त्वन्मय हू व तुम्हीं मेरे रहने के स्थानहो व तुम्हीं मेरे उतरन करनेवालेहो में तुम्हारे जगणागतहू व इमी मे मेरा मोक्षरीनाग लोकमें कहाजानाहै हे मवके ज्ञानमय ! हे नाग रहित स्थानस्वरूपा ! हे अनताव्यग ! हे व्यङ्गपायप्रभु ! आप ही जगदो हे परात्मान ! हे विश्वात्मन् ! हे यज्ञपति ! हे पापरहित ! तुम्हारी जगमे यज्ञ वपट्टकार अकार व तीनों अग्नि तुम्हींहो चारोंवेत्त वेदोंके अग यज्ञरुद्रा मूर्ध्नी



ग्रह तानगण सपूर्ण अश्विन्यादि नक्षत्र मूर्तिमान् अमूर्तिगान् दृश्य अदृश्य  
 हे पुरुषोत्तम ! जो कुछ हमने कहा और जो नहीं कहा सब कुछ तुम्हीं ही तुम्हारे  
 वाग्वचनमस्कारहै इस प्रकार भगवान् वागह जी की जब पृथ्वीने स्तुति की  
 तामये के स्वर्गके मगान गच्छ से घर्गराकर गर्जे व नदनन्तर अपने दाँतों  
 पृथ्वीको धर कगजनयन भीवागह जी ग्मानलमे निकले जेने कि नीलपर्वत  
 रसानल मे निकले व श्रीभगवान् वाराहजी के मुखारविन्द मे जो पान निकली  
 उमके लगने से प्रलय समुद्र का जल उछला व जनलोक में टिकेपुत्रे महत्  
 देदीप्यमान सनन्दनादि मुनियोंको प्रक्षालित किया व महीको ले वाराहजी जब  
 जलसे निकले तो उनके वेदमय शरीर ही मेरा रोमसे उठेपुत्रे जलसे भीगेपुत्रे  
 मुनियों की व उनके सुगमसे सुदेहपुत्रे रसानल में जो जल उछला था कमसे  
 प्रवेश करगया व जनलोक में जो मिद्धलोक समनेये वे वाराहजी के जाग ने  
 प्रेरित चारोओर तिन वितरहोगये तब जनलोक पित्रामी सनन्दनादि योगी  
 सन्तुष्ट व प्रणतकन्तर हो स्तुति करने लगे हे शरीरों के ईश ! हे केगल !  
 हे प्रभु ! हे गच्छ चक्र गदा खड्गधर ! इसममरकी उत्पत्ति पालन व नाश करने  
 वाले तुम्हीं ही व परमपत् तुम्हीं ही हे प्रभुजी ! यज्ञपुरुष तुम्हीं ही तुम्हारे  
 पावोंमें चारोवदहें व यज्ञस्तम्भवत् आपके दाँतहें यज्ञ व अन्य वहन यज्ञनामपों  
 आपके मुखमें रहती हैं आपकी जिह्वाही अग्निहै तुम्हारे रोगहीकुरा है हे  
 महात्मन् ! आपके नेत्रही रात्रि दिनहें व सवरा आश्रयभूत ब्रह्मपर जाप व  
 शिष्टे वैष्णव जीवाति मुक्त तुम्हारे कर्णों के रोगहै सब खीर आपकी नामिका  
 हे धृथुन सुवाहे मामवेद तुल्यस्वरधीर नादयुक्त पवीशाला का पूर्वभाग तुम्हारा  
 कायहै मापूरुष यज्ञ तुम्हारे अगोंके जोड़हें श्रोत स्मारचं सब धर्म तुम्हारे कण्ठ  
 हे मनातनात्मन् ! हे भगवन् ! ममन्न हृजिये हे वेद व वेदपाठकं स्थापनके स्वात  
 आपको इस ममर के अन्त पालन उदाधि करनेवाले हूँ जानने हूँ व नाश  
 गहित त्रिरामूर्ति तुम्हीं ही व चराचरकेनाथ परमेश्वर ममन्न हृजिये व जैसे जन  
 में स्वल्पेदुष मजेन्द्रक दोगं लपटाहृआ कगनिनीपव शोभन होनाहै वैमरी  
 यह मय भ्रमगडज आपके दाँतोंपर जोषितहैहे अतुल प्रभाव ! पृथ्वी व वाता-  
 शका जो अन्नरहें जो तुम्हारा ही शरीर है हे तिमूर्ती ! इसममर के व्यापक है  
 जगत्पते ! परमार्ज ! तुम्हीं ही और कोई नहीं है यह जारही की महिमहै तिमम

यह चगनर समार व्याप्त है ज्ञानात्मा जो आपने भी पर रचित यह भमार है जो लोग कहते हैं कि केवल पृथ्वी जल वायु अग्नि आकाश इन ५ तत्त्वों में ही यह बना है वे अज्ञानी हैं व ज्ञान स्वरूप इस भमार को जो निर्बुद्धि लोग अर्थ स्वरूप ज्ञान देखते हैं वे मोह समुद्र में भ्रमते हैं व जो शुद्ध चित्त ज्ञानी लोग हैं वे इन सम्पूर्ण जगत् को ज्ञानरूपा ही देखते व तुम्हारा ही रूप इसको मानते हैं क्योंकि यह तुम्हारा ही रूप है हे सर्व भर्गात्मा । प्रमत्त हूँ तब व इस जगत् की स्थिति के लिये इस पृथ्वीको उद्धारिये हे कमल नयन । व हग लोगों का कल्याण दीजिये आप सत्त्व मूर्ति हैं हे भाविन्द ! इ । पृथ्वीको सारे कल्याण के लिये स्थापित कीजिये व हग लोगों को भगल महिन कीजिये व धरणी आपकी सृष्टिकी उपकारिणी देगी स्थापन कीजिये व हे वारिजाक्ष । हम को शुभदीजिये परमात्मा गद्दी धारण करनेवाले भगवान् वाराहजी की जब जनलोक निराभी सनकादियोने इस गाँवि स्तुति की तो इ । महोको उग्रय महापत्नयन जो जन भरा हुआ था उसीपर स्थापित करदिया निम जल समूह के ऊपर नौका के समान पृथिवी धापी गई पन्नु अति बड़ी होने के कारण व ईश्वरानुग्रह मे फिर ज्वनई गई नदानी पृथिवी तो समान करदिया व पर्वतों को भी प्रथम पृथ्वी करदिया पाव यथास्थान स्थापित किया यत्रि प्रया सृष्टिमें मर पर्वत जगत् में थे परतु सफल प्रभाव भगवान् ने अपनी कृपासे फिर ज्यों के त्यों बनाकर स्थापित किया तदनन्तर धारणीके ७ भाग जैसे चाहिये किये व भू भुव स्व मह इन्हीं लोगों का नाश नित्य प्रलय में होताही है सो हुआ व उन्हें पूर्वस्व स्थिति पित करदिया फिर भगवान् हरि रजोगुणी ब्रह्मस्वरूप चतुर्भुखीशो सृष्टिकी कनेलगे सो केवल सृष्ट्यकर्मोंके बनानेमें ब्रह्मा निमित्तमात्रही थे जैसे उद्यत हुये वे सब वा गये सृष्ट्य पदार्थोंकी शक्ति प्रकृति के कारणों का रूप है केवल ब्रह्माज्ञाने निमित्त मात्र एक पदार्थको बना लिया उनमे उसके मजानीय पदार्थ हजारों होगये क्योंकि उनमे उत्पन्न होनेकी प्रत्यक्ष शक्ति है ॥

## पांचवां अध्याय ॥

दो० कहत पंचमाध्याय महँ तह सुर मनुजन सर्ग ।

अपर पति पशुआविहुन अरु तिनकेर निमर्ग ॥

इतनी कथा सुन मैत्रेय जी बोले हे ऋषि ! जिस प्रकार नारायणरूपी ब्रह्माजी ने देवता ऋषि पितर तानत्र मनुष्य पशु वृक्ष व पृथिवी आकाश जलके निवासियोंको मिरजा व जौन गुग जोने स्वभाव जोने रूाके जगतको सृष्टिके आरम्भमें मिरजा सर हगमे विस्तारसहित कहिये यह सुन पराणर मुनि बोले हे मैत्रेय ! जिस प्रकार ब्रह्माजी ने देवादिक ममूर्ण सृष्टि को रना है हम कहने हैं एकाचित्त ही मुनिये जैसेही ब्रह्माजी ने सृष्टिको चिन्ताकी थी जैसेही जैसे पूर्व कल्पमें सृष्टि हुई थी उसीके सना तयोमय अविद्य बुरु तामपी सृष्टि उत्पन्न हुई यथा तममोह महामोह तापिस बन्नामिम ये अविद्या ही ५ पर्वे उत्पन्न हुई वही स्यावसृष्टि है वह ५ प्रकारकी है वृक्ष गुहा लतापीरुत् वृष जिससे इममें अन्न पदार्थ मुख्य हैं इमसे इमसृष्टिका नगात्मक नाम है इम सृष्टि में ज्ञान नहीं होता इसके पीछे श्रीब्रह्माजी ने किं प्ना र किया थी पशु जों की सृष्टि हुई इमसृष्टि का निर्यक्तोतनाम है जिममें ब्रह्माजी उम समयमें आशरमें भवति थी इमने इम सृष्टिका निर्यक्तोतनाम पदाये सब पशु जादि तपोगृपी होने हैं इनमें त्रिगेपब्रान नहीं होता ब्रह्माजी को ये ज्ञान मानने हैं भद्रागधय का विवेक भी इनमें नहीं होता यहकारी अहमानी भी होने हैं कद्र अन्न कारणे इनके ज्ञान होता है जिमते वे अपनी जातिनानों के साथ भाषमों मिये मुन रहते हैं व अपने पातकको भी पहिंनानते हैं उम सृष्टि में ब्रह्माजी ममन्न नहीं दृगे तो और सृष्टि करने के लिये ध्यान करने योग्य तर देवताओं की सृष्टि हुई इम सृष्टिका उर्द्धनोत नाम है व तीमपी सृष्टि है यह मर्त्तगुपी है उर्द्धवाप इमने नाम है जिममे कि देवनाग पृषाऊराही म्दने है ये सुपरीनि बहुत नाते हैं ७ भीतर बाह्य सबकेही की चीमें जानने व सृष्टचित्त होते हैं जबत देवताओं की सृष्टि हुई तो ब्रह्माजीकी उममें बड़ी भीनि हुई निपके पीछे और सृष्टि करने के लिये ध्यान किया व चाहा कि इमी सृष्टि के सना तरो नर मनुष्या री उरालि हुई पान्तु यह सृष्टि सत्त्वगुणहीन हुई उमम देवसृष्टि की न समानवाही रग-

सक्री है न ब्रह्माजीकी उतनीप्रीतिही इममें हुई तब ब्रह्मा नीने फिर अन्य सृष्टिके लिये ध्यानकिया तोफिर मनुष्यही दृष्टे पर प्रथमवाले मनुष्यों से बहुत अच्छे इस सृष्टिका अर्वाञ्छित नामहै इम में सत्त्वगुण और रजोगुण बहुत हुआ तमोगुण बहुत कम रजोगुण अधिक होने के कारण मनुष्योंको दुःख बहुत होते हैं परन्तु वे जिसकार्य के करने में लगते हैं वार २ क्रियाकरते हैं सुखदुःख का बड़ा विचार नहीं करते पराणरजी बोले हे मुनिसत्तम ! इसममय ६ प्रकारकी सृष्टि तुमसे कही व तीन प्रकार की प्रथम कहीथी सब ६ प्रकार की सृष्टि हुई १ गद्यान की सृष्टि वह ब्रह्माकी सृष्टिहै २ भूतसृष्टि इसमें तत्त्वों की उत्पत्ति हुई है ३ वैकारिकी सृष्टि इममें इन्द्रियों की उत्पत्ति हुई है ४ मुख्य सृष्टि इसमें वृक्षादिकों की उत्पत्ति है ५ तिर्यक्स्त्रोत सृष्टि इममें पशुओंकी उत्पत्ति है ६ स्रोतमसृष्टि इम में देवताओं की उत्पत्तिहै ७ अर्वाञ्छितम सृष्टि इममें मनुष्यों की उत्पत्तिहै ८ अनुग्रह सृष्टि इममें देवता मनुष्य दोनोंकी उत्पत्ति है इमीमे यह सत्त्वगुणी व तमोगुणी सर्गहै ९ कोमार सृष्टि इसमें सनन्दतादि मुनि व महादेवजी की उत्पत्तिहै इसप्रकार ब्रह्माजीकी ६ प्रकारकी सृष्टि तुमसे हमने कही हे मैत्रेयजी ! अब और क्यासुनाचाहने हो यह सुनके मैत्रेयजी फिरबोले हे महामुनिजी ! यह देवादिकोंकीसृष्टि आपने संक्षेपरीति से कही अब आपमे विस्तारमहित सुनाचाहते हैं सुनाइये पराणरजी यह सुनबोले अपने २ कर्मों के कारण जब प्रलय होता है प्रजाओं के रूपकुच्छ के कुच्छ होजातेहैं प्रलय के रूप नहीं रहजाते देवताओं से ले स्थावर पर्वन्त ४ प्रकारकी प्रजाइतीहैं वे ब्रह्माकी गानमी प्रजाकहानी है वे देवता दैत्य पितर व मनुष्य ये हैं पहिले पहिल जन्म ब्रह्मा सृष्टि करनेलगे तो तमोगुण उत्पन्नहुआ उम तममे ब्रह्माकी जाँचमे दैत्य उत्पन्नहुये तब ब्रह्माजीने उम सृष्टिको अपसत्त्वर अपने उस तमोमयी शरीर को छोड़दिया यह रात्रि होगई फिर और देह धारण किया उस शरीरके मुखमे देवता लोग उत्पन्नहुये ८ वे सब सत्त्वगुणी हुये इम सृष्टिमे ब्रह्माजी बहुत प्रमत्त हुये वह भी शरीर त्याग दिया वही सत्त्वगुणी दिनहुआ तिसीमे दैत्यगत्रिमें पत्नी रहने दें व देवतादिनमें फिर सत्त्वगुणीही और गरिध धारण किया व पिताके ममान गाना उस शरीरसे सत्त्वगुणी पितग्लोग उत्पन्न हुये पितरों को उत्पन्नकर उसदेहको भी छोड़दिया यह मन्ष्या होगई चोकि दिन व रात्रिके बीच में रहती है फिर

रजोगुणी और शरीरधारणरिया उससे रजोगुणी मनुष्य ब्रह्मदृष्टे उसदेह  
 को भी छोड़ा वह प्राणःकाल हुआ जिससे पूर्वमन्या करने हैं प्रमाण होने  
 पर मनुष्य बली होते हैं व मन्या मरण में पितर प्रमाण रात्रि दिन मन्याये १  
 ब्रह्माके त्रिगुणमयी शरीर हैं तदनु रजोगुणी और देह धारणरिया तिमसे सुख  
 उत्पन्न हुई और निममे कोप कोप मे यज्ञ व रागम वड़े भूने जन्मे ब्रह्माजी ने  
 उनको अन्धकारमें फेंकदिया पर वे ब्रह्माटीको गक्षण करने दौड़े व वे बड़े कुरूप  
 बड़े धार रवायेथे उनमें से जिन्होंने कहा कि हम ब्रह्माको लार्थेगे उनको नाम  
 यज्ञदृष्टो व जिन्होंने कहा इनकी रक्षा करो श्वाचीनदी उनका राक्षस नाम पदो इन  
 को अतिभयानक देव ब्रह्माजी के वारगिरपड़े परन्तु पीछेसे फिरगिरये जा जमें  
 जो कुछ परेदीगडे वे सर्प होगये तथ ब्रह्माजी ने बड़ाकोप कर भूने वर्णके भूनोंकी  
 उत्पन्न किया ये बड़े कठोर स्वभाव व मांमागीदृष्टे फिर इनको देव ब्रह्माजी हैपके  
 कुब्ज गायउठे उम गानेसे गन्वर्वदृष्टे इषीमे वे मानविद्या में निपुण होने हैं ई  
 श्वरप्रेरित ब्रह्माजीने इतनीमृष्टि करके फिर अपने मनसे पक्षियोंकी सृष्टिकी फिर  
 उनकी छानी से गेड़े व मुचमे लगरिया उत्पन्न हुई पेट व पसुरियों से गौयें  
 व पदों से घोड़े हाथी मदहा नीलगाय मृग उट पक्ष्य हरिण व अ-प मा यनके  
 नीच दृष्टे अन्यमरे उनके गेगोभेदुये इपप्रकार परत्ययुग नीचगया अनाकी आदि  
 में पशु व ओपत्रि उत्पन्न परते यज्ञके अर्थ म्याति कर दिया परन्तुभी बोने  
 गाय धेनू लगरि खनी मनुष्य गेड़ा घोड़ा खजा गन्धा ये सब प्राणी में रहनेवाले  
 हैं व अब वनके रहनेवालों को रताने हैं सुभो व व निह गेड़िया गियार नील-  
 गाय हाथी वानर पशु व छुआ प्राणि जकजन्तु अन्ये पशु सुग गाह आदि ये  
 सब वन व जलके रहनेवाले हैं फिर अपने वारभूषों में गायत्री छन्द मृगवेद  
 त्रिहोत्राग अन्तर जो तीनवार गागाजाताहें अग्नि पशु । एकप्रकार या यज्ञ ये  
 सब पूर्व वाले मुचमे उत्पन्न किये गजोंके त्रिष्टब्जन्मोप जो १५ वा पदानावा  
 है बृहत्साम उरुयसोर्गमहा वज्र ये दक्षिण्यमान मुचमे गिज्ञाने सामवेद जगती  
 छन्द जो १७ वा पदानावाहै यह मोचरे ह्य यह भी एक प्रकार का सामवेद  
 ही है अनिगत सोममहा ये पश्चिमके मुचमे निज्ञाने २० वा पदानावा  
 साम अथर्ववेद आसौर्यागाण पर प्रकार ही सोममन्वाजन्तु छन्द रोगनाम  
 मागवेद ये सब उत्पन्न सुभो गिज्ञाने मरपदार्थ म विचारकाते नीचुं ईर

देवता दैत्य पितर गनुष्य बनाये थे उमीप्रकारके इनकलाग भी बनाये जैसे कि यक्ष पिशाच गन्धर्व अप्सरा मनुष्य किन्नर राक्षस पक्षी पशु मृग सर्प नारासहित मरण चल अचल सब पदार्थ उत्पन्नकिये तिन सबके जौन जौन कर्म पूर्वसृष्टिमें थे सोई सोई इस सृष्टिमें भी उनको पहुचाये गये जीवमानेवाले जीव खाकर-नेवाले कोमलस्वभाव क्रूस्वभाव धर्म अधर्म सत्य झूठ ये सब पूर्वही के स्वभाव के अनुमार सबको मिले व इसी से सबको वे अच्छे लगते हैं इन्द्रियों के नानाप्रकार के स्वभाव नानाप्रकारके शरीर ये सब ब्रह्माजीनेही सबकेलिये उनके पूर्व स्वभाव के अनुमार बनादिये हैं ॥

ची० नाम रूप अरु कर्म सुहाये । वेद रीति सों, सुरन बनाये ॥

अरु जिमि ऋषिनहेतु भ्रुतिगाये । नामरूप तिमि ऋषिगणपाये ॥ १ ॥

जिमि वसन्तऋतुमहँ तरु पाती । झरतलखत नहिँ तिन न सँघाती ॥

पुनिनिजजाति जाति अनुसार । होत पत्र जानत ससाग ॥ २ ॥

तिमि सब पूर्व सृष्टि अनुमारा । नामरूप अरु कर्म विचारा ॥

देवन योग्य देवगण पाये । ऋषिनयोग्य ऋषिगणमनभाये ॥ ३ ॥

इमि विधि कल्पआदिमहँ नीके । पुनि पुनि सृष्टिकरत विधिटीके ॥

सर्जन शक्तियुक्त विधि काजा । करत विष्णुप्रेरित गुणभ्राजा ॥ ४ ॥

## छठा अध्याय ॥

दो० कहव उठे अध्याय गहँ मनुज सृष्टि तिनवर्ण ॥

सत्त्व गुणादिकु भावसाँ सुरन सृष्टि शुचिवर्ण ॥ १ ॥

श्रीभैरवजी बोले हे गहामुने ! जो आपने अर्धाङ्गानस्नाग गनुष्यों की सृष्टिकरही जिमपदार ब्रह्माजी ने बनायाहो विस्तारमहित कहिये व निमप्रकार विषादि वर्णों के गुण व कर्मदों रूपापूर्वक कहिये यह सुन पद्मगुणमुनि बोल सुनिये जब सृष्टिकरने की इच्छा ब्रह्माजीने की प्रथम उत्सर्गुण को ध्यानकिया तब उनके मुखमे सत्त्वगुणी प्रजा उत्पन्नहुई व धानी मे रजोगुणी व तावा मे रजोगुणी तमोगुणी व सा पापों मे प्रजाहुई वे तमोगुणीहुई व तिनके मुखमे ब्राह्मण उत्पन्नहुगे चाहेआते धर्मिय उद्धमे योग्य पापोंमे मूढ यह शत्रुवृत्तियुक्त की सिद्धि के लिये ब्रह्माजीने उत्पन्नकिया इमीमे ये ब्राह्मणः पदके अदि-

कारी ह व यज्ञमे तृप्तदो देवतानां गृष्टिं करते हैं जिससे अन्नादि उत्पन्न होने  
 व उनसे प्रजाओं का पोषण होता है इसमें यज्ञही उत्पाणके हेतु हैं जिसमें यमात्मा  
 अच्छे मार्ग के पुरुषों को चादिये कि यज्ञ अरथ करे क्योंकि यह मनुष्य का  
 देह अति दुर्लभ है व इसी मनुष्य शरीरमें स्वर्ग मोक्ष सब कुछ मनुष्योंको मिलते  
 हैं जिस स्थानको चाँह नामरुद्ध मो ब्रह्माजीने चाँगे उणोंकी व्यवस्थामें प्रजा  
 बनाई हैं प्रथम जब ये सब वनाथे गये थे स्वच्छन्दचायि मव बाधाहीन शुद्धविष  
 शुद्धशरीर सब कार्योंमें निर्भलवृद्धिये व अब भी जिनका मन अन्तःकरण शुद्ध  
 है वे लोग श्रीविष्णु जी के शुद्धज्ञान परमपदको देखते हैं व जो कालका वर्तन  
 किया था वह हरिक्रा अंग है वही प्रजाओं में थोडा थोडा कंक पापको धीरे  
 धीरे जैसे जैसे समय बीतता जाता है फैलता जाता है यह मन प्रथम अर्धम धीज  
 रहित था परन्तु लोभ करने के कारण प्रजाओं का मन काम क्रोध रागादि में  
 फँस गया इसी से पाप करने लगा इसी से प्रजाओं की स्वाभाविकी सिद्धि जाती  
 रही व आणिकादि सिद्धिया भी नहीं मिलनीं जब ये सब सिद्धिया जातीरहीं व  
 पापवद्गया तो ये प्रजा नाना प्रकारके दुःखमें दुःखिन होने लगीं चौर इष्टादिकों  
 से बचने के लिये किना खावा ऊचे ऊचे स्थान पुर खोर ग्राम नगरादि बनाये  
 जिसमें कि जाड़ा गर्मी वर्षा इनसे बचाव रहे फिर नाना प्रकारकी जीविका  
 बनाई गई भोजनार्थ खेती बनाई गई उसमें धान चर गेहू नन्दिगांधान गिरा  
 काकुनि देवान्न कोदव च्यनशां उर्द मूग ममुदी गोम कुरपी अहा बना पटुवा  
 १७ अन्न उत्पन्नक्रिये गये व ये ग्रामोंके निरुत्पन्न ग्रामोंमें होते हैं व कुछ इनमें  
 के कुछ वनके मिलाकर १४ यज्ञके अन्न हैं जैसे कि धान पव उर्द मोह नन्दिगा  
 धान तिल काकुनि कुन्धी गारा तिनी पसादी फटतिनी उजर्ती धुतुनी वामे  
 के चावल क्यपाव ये सब यज्ञके अन्न हुये इन्हीं में पण्डितलोग यज्ञ करने हैं  
 गृहस्थोंको प्रतिदिन यज्ञ करना चादिये क्योंकि उनके उच्छ्रजने पीसने पठाने  
 काढ़ने व लीपने से ५ दृश्याहुया काती हैं परन्तु जिन लोगोंके चित्तमें पाप  
 का लेश भी बढ़जाता है वे यज्ञ करने में मन नहीं करते व वे लोग वेदवाद वेद  
 यज्ञसर्व इत मरकी निन्दा करने व यज्ञों के करने में निषेध करते हैं इसी में  
 सतांगी जिनका मार्ग है निमरु नाशनेनाने वेदके निन्दक दुर्गता दुर्गप्राणी  
 पपटी यदीनेगहने हैं जब द्येपचारकी जीविका प्रजाओंके लिये नैपादेगाई

तव प्रजाओं के गुण वर्ण के अनुसार मर्यादा बनाई गई व ब्राह्मणादिवर्णों व गृहस्थाद्याश्रमों के धर्म भी बनाये व जो जाग अपने वर्ण आश्रमके अनुसार धर्म करते हैं उनकेलिये लो कभी नियत करदिये कि यह कार्यकरे तो इसलोक को जावे व यह करे तो इसको जो ब्राह्मणलोक वेदके अनुसार अग्निहोत्रादि क्रियाकरते हैं उनको पितरोंकालोक मिलताहै व जो क्षत्रिय सग्राम से नहीं भागते उनकेलिये इन्द्रलोक ठहरायागया व कृषी वाणिज्यादि कर्म करनेवाले वैश्यों के लिये वायुलोक बतायागया व ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों की सेवा करनेवाले शूद्रों के लिये गन्धर्वोंका लोक विचारागया व जो गुरुकुलमें पढ़ने हुये ब्रह्मचारीलोग हैं उनके निमित्त जो ८८००० ऋषयोंकेलिये स्थाननियत है वह है व वानप्रस्थोंके लिये सप्तर्षियों का स्थान मिलेगा व गृहस्थों को पितरों का लोकमिलेगा सन्यामियों के अर्थ ब्रह्मलोक नियतहुआ व ज्ञानीलोगों के लिये त्रिष्णु का परमपद वैकुण्ठ नियतहुआ जो त्रिष्णुपद एकान्तमें सदा ब्रह्मके ध्यान करनेवाले योगियोंकेही लिये है वहा ब्रह्मज्ञानियों को मिलता है व वही स्थान भगवद्गुणसकों को भी मिलता है क्योंकि चन्द्र सूर्यादि ग्रह अपने अपने लोकों को जाय जाय कर फिर लौटआते हैं पर अन्मोभगवते वामुदेवाय इम द्वादशाक्षर मंत्रके जपनेवाले वहामे कभी नहीं लोटने और ॥

श्री० वेद यज्ञ निन्दक जन हेतू । सदन नियत जो सुनहु सचेतू ॥

शैरव कालसूत्र अतिघोरा । तामिस्रान्धत मित्त कठोरा ॥ १ ॥

श्वङ्ग परवन अरु महरीरय । पुनिअधीचिमत जहँ दुखगौरव ॥

इन्हें आदि सत्ताइस नरकू । रवे त्रिरचि मुनत जिय करकू ॥ २ ॥

## सातवां अध्याय ॥

श्री० फहय सप्तमाध्यायमहं मानस मुन भय कान ॥

तिन मिलि विधि जिमि कानि मव दैहिकसृष्टिप्रवीन ॥ १ ॥

श्रीपराशरमुनि बोले कि फिर जब ब्रह्माजीने सृष्टिके लिये स्थानक्रिया ने मानसी सृष्टिदृष्टि जिमका वर्णन पूर्वके अध्यायोंमें होतु पाठे वह देवनागों ने लो कृषी के अन्तकदे जब यह सृष्टिजिननी पाई गई उननीकी उननीदी बनरीरही तब और सप्त एक स्वभाव एक रूप मानसी पुत्र उत्पन्न किये जिनके नाम ये हैं ॥



श्री० नृसिंहाय नमः । अथ विष्णुसुखा भाषा अ० १ ।

पुत्रान् अत्रि वशिष्ठ सुनात् । विधिगानान नय सुत शुभशाली ॥ १ ॥

व जो मनक मनन्दन सनातन सनत्कुमार ये १४ मानसीपुत्र प्रसाजी के  
 दृयेथे वे लोक निषेक्ष रहे इसी मे उन्होने सृष्टि बढ़ाने में कुछ सहायता न की  
 क्योंकि वे सप्त रागरहित महाज्ञानी अहकारहीन थे जब उनको उत्पन्न किया  
 व प्रसाजीके कहनेपगयी उनलोगों ने सृष्टि न की तो प्रसाजी पेड़ा कांधेइसा  
 जिससे तीनोंलोक जरजानेका भयदुआ पन उम क्रोधकी ज्वालासे त्रिचोकी  
 जलने लगी व गौरी अतिदेवी हुई पेसा होतेही गौरीके गर्भसे इषाहरके सूर्य  
 के समान श्रीरुद्रजी उत्पन्न दृये वह शरीर आधा तो स्त्री का था व आधा पुरुष  
 का उस रूपमे प्रसाजीने कहा कि तुम अपना रूप जो स्त्री पुरुष समुद्रके उभे  
 अलग अलग फटडालो इतना फटकर अन्नर्दान होगये व उनके कहने मे  
 रुद्रजीने बेसाही किया स्त्री का रूप अलग करदिया व पुरुष का अलग फिर  
 एक पुरुष ११ होगये बेही ११ रुद्र हैं उनमें कोई गौरी कोई काले थे फिर स्त्री  
 रूपसे भी बहुत स्त्रिया बनाई उनमें भी बहुत गौरी व बहुत काली थी तिसके पीछे  
 प्रसाजी ने स्वायम्भुवमनुको उत्पन्न किया व उनको पूजापालनके निये नियत  
 किया ये मनुजी भी जब उत्पन्नदृये थे तब एक उन्दीके समही स्त्री भी उत्पन्न  
 हुईथी जिसका नाम शतरूपाया मनुजीने उसको अपनी स्त्री बनाई तिन  
 स्वायम्भुवमनु व शतरूपामे प्रियवन व उत्तानगाद दो पुत्र व प्रमृति आकृति  
 दो कन्या उत्पन्नहुई ये दोनों कन्या रूप उदाभता सुर्गीजसादि गुणयुक्त थी  
 प्रमृतिका विवाह प्रसाजीके पुत्र दक्षके साथ हुआ व आकृतिका रुचिर सग  
 फिर तिन रुचि व आकृतिसे एकपुत्र एककन्या दालुदरे दृये पुत्ररा यह नाम  
 हुआ व कन्याका दक्षिणा यामे दक्षिणामे १० पुत्र दृये उन सब का यामनाम  
 हुआ थेही सग स्वायम्भुव मन्वन्तर में देवता दृये व प्रमृति में दक्षजीने २४  
 कन्या उत्पन्न की उनके नाम व विवाहपुत्रो १ अरु २ सारुणी ३ भृनि ४ तृष्टि  
 ५ पृष्टि ६ मे ७ जित्या ८ बुद्धि ९ उज्ज्या १० वपु ११ शक्ति १२ अर्द्धि  
 १३ वीरि इत १४ का रणक सग विवाहहुआ उनमें सारी ११ रही तिनके ये  
 नामहे १ न्यायि २ यनी ३ यम्भुयि ४ सृष्टि ५ प्रीति ६ सगा ७ मन्त्रि  
 ८ मनरुपा ९ उज्ज्या १० अथाहा ११ इराग क्रपने इनके पति ये हे १ वपु

२ महादेव ३ गरीचि ४ अगिरा ५ पुलस्त्य ६ पुलह ७ क्रतु ८ अत्रि ९ वगिष्ठ  
 १० अग्नि ११ पितर धर्म की स्त्रियों के पुत्र ये हे श्रद्धाके दाग लक्ष्मी के  
 अहकार धृतिके नियम तुष्टिके सतोष पुष्टिके लोग मेधाके श्रुत क्रिया के दण्ड  
 नय विनय बुद्धिके बोध लज्जाके विनय वपुके व्यसय शान्तिके क्षेम ऋद्धिके  
 सुख कीर्त्तिके यश ये सब धर्म के पुत्र हैं काग से नन्दी स्त्रीमें हर्षनाम पुत्रहुआ  
 अधर्म की स्त्रीका हिंसा नामहै तिससे अनृत नाम पुत्र हुआ व निकृति नाम  
 कन्या इन दोनों से मय व नरक दो पुत्रहुये व इन दोनों की स्त्रिया माया व  
 वेदना भी अनृति व निकृतिसे हुई गायकके प्राणियोंके नाश करनेवाला मृत्यु  
 नाम पुत्रहुआ व वेदनाके दुःखनाम पुत्रहुआ मृत्युके व्याधि जरा शोक तृष्णा  
 क्रोध ये हुये ये दुःखादि सब अधर्मके लक्षण हैं इनके न स्त्रीही थी न कोई  
 पुत्रही हुआ क्योंकि ये सब ऊर्ध्वरेता ये ये सब विष्णुजी के भयानकरूप हे व  
 ससारके प्रलय के अर्थ हैं व दक्ष गरीचि अत्रि भृगुआदि इस समारमें सृष्टि के  
 कारण हैं व गनु गनुओं के पुत्र अन्धेगार्ग चलाने वाले व शूरीर ऐसे राजा  
 ये सब ससारके पालनके कारण हैं इतनी कथासुन मैत्रेयजी बोले कि हे द्विज-  
 राज ! आपने जो यह नित्यपालना व नित्य सृष्टि रुही अब नित्यप्रलय का भी  
 हालःहमसे कहिये श्री पराशरमुनि बोले मुनिये इस असार समार की सृष्टिपा-  
 लना व नाश भगवान् मधुसूदन तिन्हीं मनु व मनुपुत्रादिकोंके रूपोंसे करतेहे  
 प्रलय नैमित्तिक प्राकृतिक आत्यन्तिक व नित्यके भेदसे ४ प्रकारका होता है  
 जब ब्रह्मा दिनभर सृष्टि करके सोय जाने हैं वह उनका नैमित्तिक प्रलय है व  
 जब ब्रह्माह प्रकृति में लीनहोजानाहै तब प्राकृतिक प्रलय होता व योगीलोग-  
 ज्ञानसे परमात्मा में लीन होते उसे आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं व जोकि प्रति-  
 दिन जीव मरा करतेहैं वह नित्यप्रलयहै ॥

चौ० प्रकृतिप्रसृति एते ज्यहिमाहीं । सो प्राकृती सृष्टि शक नाहीं ॥

दे नदिनी सृष्टि यहि कहई । जब विधिदिन घीतन सुखलहई ॥ १ ॥

पुनि सब प्रविदिन होयन भूना । नित्य सृष्टि त्यनि गुनुमजवृता ॥

यहि विधि सब शरीरमहैं सोई । श्रीहरिमस्थित ई नदि गोई ॥ २ ॥

उपजायत पालत अरु पालत । सब जग यागहि धार तृपालन ॥

सृष्टि स्थिति विनाशकी नोकी । प्राणिनगाई शक्ति समु ठोकी ॥ ३ ॥

तो सय शक्ति वैष्णवी होई । जानत ही न कतहुं कन्दु गोई ॥  
 गुणत्रयमय यह ब्रह्म अपारा । तीनिशक्तियुत सहित विचारा ॥ ४ ॥  
 जो त्याहि भजत तजन सयकामा । मो त्याहि रूप मिलवयुत सामा ॥  
 पुनि नहिं किरत यथा मयलोगा । आवत जात सहत नितशोगा ॥ ५ ॥

## आठवां अध्याय ॥

श्री० कश्यप अष्टमाध्यायमहं रुद्र सर्ग को प्रेरि ॥  
 त्रिपुण्ड्रशक्ति प्रेरित जगत चरधिरस्वचना देरि ॥ १ ॥

श्रीपराशरमुनि बोले कि हे महामुने । ब्रह्माकी तागती सृष्टि कही अब रुद्रसृष्टि कहते हैं मुनिये कल्प ली आदिमें श्रीब्रह्माजी ने चारा कि हमार ही समान पुत्रहोवे यह विचार करते उनके कोरासे नीललोहित एक भानक उत्पन्न होआया व बड़े ऊँचेस्वर मे रोदन करनेलगा ब्रह्माजी ने पूंछा क्यों रोतेहो तब उस कुमारने कहा हगारा नाम त्रिपुण्ड्र कीजिये ब्रह्माजी ने कटा तुम्हारा रुद्र नामहै अब न रोदन करो धैर्य धारण करो जब इमप्रकार रुद्रजी कह गये तो ७ बार रोये ब्रह्माजीने ७ नाम ७ स्थान ७ त्रियां व पुत्र बताये वे नाम भव १ शर्व २ ईगान ३ पशु गति ४ भीम ५ उग्र ६ महादेव ७ इग ७ के क्रममे सूर्य जल पृथ्वी वायु अग्नि आकाश दीक्षित ब्राह्मण मोग ये स्थान बनार्ये इसी मे ये सब शिवमूर्तिही हैं व सूर्यना ऊप विनेरी अपरा शिवा स्वाहा दीक्षा रोहिणी ये त्रियां अब सूर्यादि तीनों पुत्रों के नाम मुनिये जिन हे वंग की प्रमूनि से समार पूर्णहोगया सूर्यके गनेरवर जलके शुक्र पृथ्वी के मङ्गल वायुके मनोज व अग्निके रुद्र आकाश के स्वर्ग दीक्षितके सन्तान सोमके शुब इम प्रकार रुद्रजी को सतीनाग स्त्री मिली जिन्हों ने दक्ष अपने पिताके कोप से गरीर छोड़दिया फिर हिमवान्गर्भतकी स्त्री गेतांग पैदाहुई तब उमा नाम हुआ व फिर महादेवही के माथ त्रिचक्र वृजा मृगुमे स्थाति में पाता विधावा दोपुत्र व श्रीनाग कन्या जो देवदेव श्रीनारायण वी स्त्री हुई इनकी कथा मून भेद्रयजी बोले कि हमने तो मूना था कि जब मंगुद्र गया गयाथा तब स्वर्गी जी निवन्नी भी व त्रिपुण्ड्रजी को स्थाही गईथी जब आप बताते हैं कि मृगुसे स्थानिमें लक्ष्मी नीहुई वरुकेगी कावहें मूनाइये परागम्बी बोलें हे कितानम ।

जो जगन्माता लक्ष्मीजी नित्य हैं जैसे विष्णुजी सबमें विद्यमान हैं विष्णुजी अर्थ व लक्ष्मी वाणी नयहरिनीति लक्ष्मी विष्णुबोध लक्ष्मी बुद्धि विष्णुधर्म लक्ष्मी सत्किया विष्णु सृष्टि करनेवाले व लक्ष्मी सृष्टि विष्णु भूधर लक्ष्मी भूमि भगवान् सन्तोष लक्ष्मी तुष्टि भगवान् काम लक्ष्मी इच्छा भगवान् यज्ञलक्ष्मी दक्षिणाहव्य विष्णुघृताहुति लक्ष्मी प्राग्वश भगवान् पत्नीशालालक्ष्मी हरियूप लक्ष्मी चिति भगवान् कुशलक्ष्मी इष्मा भगवान् सामलक्ष्मी उद्गीतिहरि अग्नि लक्ष्मी स्वाहा हरिशकर लक्ष्मीगौरी भगवान् सूर्य लक्ष्मी प्रभा विष्णु पितृगण लक्ष्मी स्वधा विष्णु अवकाश लक्ष्मीद्यौ विष्णुचन्द्रमा लक्ष्मीकान्ति वायुहरि धृति लक्ष्मी विष्णुममृद्र लक्ष्मी लहरी हरिइन्द्र लक्ष्मी इन्द्राणी केशव यम लक्ष्मी धूमोर्णा विष्णु कुबेर लक्ष्मीऋद्धि केशव वरुण लक्ष्मीगौरी विष्णु कार्तिकेय लक्ष्मी देवसेना विष्णु पुरुपार्थ लक्ष्मीशक्ति हरिनिमेष लक्ष्मीकाष्ठा हरिमुहूर्त्त लक्ष्मीकला हरिप्रदीप लक्ष्मीज्योत्स्ना हरिवृक्ष लक्ष्मीलना दिनहरि रात्रिलक्ष्मी विष्णुवर लक्ष्मीवधू हरिनद लक्ष्मीनदी हरिष्वज लक्ष्मी पताका नारायणलोभ लक्ष्मी तृष्णा हरिराग लक्ष्मी रति ॥

श्री० कहँलग कहँहुँ तोहिँ मुनिराऊ । अउ सो सुनहुँ जु कहत घनाऊ ॥

देव दनुज नर तरु जगमाहीं । पुरुष विष्णु योपित कमलाहीं ॥ १ ॥

## नवां अध्याय ॥

श्री० कह्य नवम अध्याय महँ जिमि दुर्वामा शाप ॥

लहि कमलान्तर्द्धान भइ कीन्द्यो सयन विलाप ॥ १ ॥

पुनि हरि सस्तुति करि जलधि मयनभयो तहँ डेर ॥

लक्ष्मी मुख निकसे बहुत सुभपदार्थ श्रुति डेर ॥ २ ॥

पराशरजी बोले कि हे भेत्रेपजी ! लक्ष्मीका सम्बन्ध हमने पूर्वेटी जिस प्रकार मरीचिजीमे सुना हे आपके प्रश्न के अनुसार कहते हे महादेवजी के अश दुर्वाभामुनि एक समय पृथिवी में घूमने थे मार्ग में एक विद्याधरी के हाथ में फून्की माला देखी वह माना कल्पवृक्षके फूलोंकी थी जिसकी सुगन्धसे वह बनकावन सुगन्धित रहना था उस माला को देख मुनिना उन्मत्त व्रतकी तो धारणही किये थे उस विद्याधर की स्त्रीमे मागनेलगे उमने मुनिको

प्रणाम कर वड़े आदरसे मालादेरी व उसको मूड़ेपर धाके मुनिराज पृथ्वी में  
 विचरने लगे एकदिन देरा तो देवगणों के साथ मतवाले पेशवत हाथी चै  
 चढ़ेहुये इन्द्र चले आते हैं श्रीमुनिराज उन्मत्त तो ये ही अपने शिर से उगत  
 देवगज महागज के ऊपर उस मालाको फेंक दिया देवराजने पेशवत के शिरसे  
 रख दिया मानाकी सुगन्धसे अधिक मत्तही पेशवत ने उमे मूड़ेमे पृथिवी में  
 पटक दिया तब तो दुर्वासागुनि चढ़े क्रुद्धहो इन्द्रसे बोले हे पुरन्दर ! तू अपने  
 पेशवर्ष के गटसे बड़ा दुष्टात्मा होगया है व बड़ा मूर्ख है जो पेशवर्षके देर देने  
 वाली मालाका निरादर काताहै अरे यह भेरीदी हुई है हाथीके पहिगने के यो  
 ग्य नहीं है तूने इसे प्रसाद मानकर प्रणाम करके शिर पर न धरा जिससे हे  
 मूर्ख ! हमारी दी हुई मालाको तूने बहून नहीं माना इसमे जा तेरी श्रेयोक्षयभी  
 बहूनही शीघ्र नष्ट होजावे हे इन्द्र ! हमको तुमने अन्य ब्राह्मणों केही समान  
 समझा इसीसे हमारा अपमान किया अच्छा जिससे हमारी दी हुई माला तुमने  
 धरणी में फेंकवादी इसमे श्रेयोक्षयभी तुम्हारी ब्रह्महो जिस भेरे कोपसे चरित्र  
 तीनों लोक भयभीत होने हैं निन हमको तुमने अपमानित किया इतना सुन  
 इन्द्रजी हाथीमे उतर टाय जोड़ मुनिके चरणोंपर गिर बिननी काने लगे नव दुर्वा-  
 साजी बोले हे देवराज ! हम उन मुनियों में नहीं हैं जो हाथ जोड़नेमें ही मनस  
 होजाते हैं हमारा दुर्वासा नाग है दया हमारे छुट्टी नहीं गई इस अपमान  
 का फल तुम्हें भोगनाही पड़ेगा हम तुमको पुरजातनेह कि गौतमादि मुनियों  
 ने तुम्हें अहंकारी बनाकर है हम दुर्वासा मुनि हैं जिनके जोषही धरोहे वगैरे  
 प्यादि दयाशील मुनियों ने स्तुति करके तुम्हें अहंकारी कर दिया है इसीसे ह-  
 मारा भी अपमान करेहा गुणों संसार में कौनहै कि जब मैं कोषकरके जग  
 पटफाना उस समय देखी गौडाके साथ भो सुनरो देव गणभीनन होये बहुत  
 बकने मे कपाहे हय किसी भांति क्षण न दंगे कि कि तुम क्यों हमारा  
 निन्द्य फगे इननाकर दुर्वासा अपना गयी बनेगये व इन्द्र अपने पेशवत से  
 नद इन्द्रजी को गये हे मंत्रेण । तबसे सब समागहित श्री इन्द्रजीन होगये व न  
 तपसे कही यज्ञ ऐसी न तपस्यान कौट नाग देना सब होर सुख पर रहनेको  
 मननोग बनदीन हागये सोही २ मानवैलिये मगदा कवाद फलनगे पी-  
 ना पकरी जायीहो तिर तब पांगवादी नहीं नो चरदी कदा १५मर्षाई करीके

बहतो वहींरहती है जहा धीरता रहती है जब पुरुष बल शूरतादि से हीन होजा-  
ता है तो उसे कोई नहीं मानता यह वान सप्तर में भी प्रसिद्ध है सो जब देव-  
तालोग भी धीरतादि गुणों से हीन हो गये तब दैत्यों ने उनके ऊपर चढ़ाई की  
यद्यपि दैत्य लोग बड़े लोभी धीरतादि गुण हीन थे पर देवता लोग उनसे हार  
गये व ब्रह्माजी के शरण को गये व सब समाचार ब्रह्माजी ने जाना व रुहा कि  
सबके स्वामी महापुरुष श्रीनारायण के शरण में पहुँचो वे आप लोगों का क-  
ल्याण करेंगे इतना रुह सब देवगणों को साथले क्षीरमागर क किनारे पहुँचे  
व श्रीभगवान् परमात्मा परब्रह्म की स्तुति करने लगे ब्रह्माजी बोले ॥

चौ० अज अनन्त अव्यय सव, स्वामी । लोकधाम महिषर खगगामी ॥

नारायण लघुतम अति भारी । सब जगकारण सवजगहारी ॥ १ ॥

तुमसे होत सकल जग स्वामी । तुमपालत पुनि द्विजपतिगामी ॥

सर्व भूतमय, सव गुण खानी । परमपुरुष निज जन वरदानी ॥ २ ॥

ज्यहि ध्यावत योगीजन झारी । मुक्तिहेतु प्रभु पाहि मुरारी ॥

सत्त्व आदि गुण नहीं तुम माहीं । जा प्राकृत गुण प्रकट सदाहीं ॥ ३ ॥

सव शुद्धन महँ शुद्ध पुनीता । कृपा करहु हरि देव समीता ॥

काष्ठा कला मुहूर्च तुम्हारी । शक्ति सकल प्रणवों दनुजारी ॥ ४ ॥

जो कारण फारज कारण कर । कारण कार्य हेतु कमला वर ॥

सो प्रसन्न देवन पर होऊ । तुम्हरो भेद न पावत षोऊ ॥ ५ ॥

कारणह के कारण तासू । पुनि कारण कृतलोक प्रवासू ॥

भोक्तभोज्य सकल जगकारक । कर्त्ता कार्य दैत्य गण दारक ॥ ६ ॥

अव्यय अज अक्षय भगवाना । नमो नमो गुणवानि मुजाना ॥

कोटिन अश अश गति तोरी । सजत विश्वचिन्तनी मुनिमोगी ॥ ७ ॥

दर्शन देहु कृपाल गोसाई । हेरुहु दुखित प्रजा मय आई ॥

इमिधिधि अस्तुतिमुनि सयदेवा । करन लगे कमलापति सेवा ॥ ८ ॥

धीनबन्धु प्रणतारत हर्त्ता । जगदाधार विश्व के भर्त्ता ॥

जामुअपार गुणन की वादा । विधिहु न पायहु अतिअरगादा ॥ ९ ॥

नमो नमो शरणन महँ तासू । भूविलाम यद जगटै जानू ॥

जामु न आदि भूष्य अग्रसाना । सो पालहु श्रीपति भावाना ॥ १० ॥

गुण्युक्त्यादिः । सुवि मुरानी । आप्तु प्रणमत दृग्गुण ग्यानी ॥

मिषि नदगष्ट उमापति देव । तरणिसहितगणनकचदि मेज ॥ ११ ॥

पायक वसु अरिनी वुमाग । परा साय्य निश्चय्य इतरा ॥

इन्द्रपुत्रे ररण सव आये । अमुर निकर्पाहित शरणाये ॥ १२ ॥

इस प्रकार जब देवोंने स्तुति की तो भगवान् स्वयंभूतानिने दर्शनदीया  
 गत्य चक्र गदा धारणशी हुई अपूर्व शक्ति देख परिने नव चक्रिन हुये पंक्ति  
 द्वितीय स्तुति करनेलगे हे भगवान् । आपदेवार २ नगस्कागहे इन्द्र अग्नि परुष  
 सूर्य वमगज यदु ४६ पवन कटा लंग गनाये जितने देवगण यहाँ आये हे  
 सब आपदी हे व यज्ञ वपट्टार ॐकार भजापति भव तुम्हीं ही । अति गपनीय  
 देवगण आपके शरणगत हे प्रमजहृजिये क्योंकि प्राणिपोंको तभीतक भयहे  
 जवनक तुम्हारे शरणगत नहीं होने जब देवगणों ने इतनी स्तुति की तो श्री  
 भगवान् प्रसन होकर बोले हे देवगणो । तुमलोगोंके ही तेजसे सबकुछ होवेगा  
 सदायता हम भी वोगे जाय देवोंको भी मायल सब जीवों की समुद्रों को  
 मन्दगवलको गवानीवनाय वामुक्तिमर्षको नैदावनाणो व मागर मथा उममे  
 से अमृतनिश्चनेगा यह तुम्हींको पियावेगे कोई २ वस्तु देवोंको भी देदेवो  
 अन्नत पीनेसे तुमलोग वनी राजावोग वम आप देवों का जीवलेवोगे कुछ  
 वही सहायताकी अवश्यका रही है इगमे शक न करे कि अमृत दान  
 भी न पीलेवे जिये और वनीराजावे वद न होनेवावेगा ये देवल जेसामारी  
 हीहोगे व तृण उत्तमफलसारी इस भावि भगवान् की वाणीसुत देवनाभा । आप  
 देवोंकाभगणिया व उमका पायने समुद्र मथनेका उपायपिया मवप्राप्तकी  
 कोपपिया मापरा दोही व नालका गवानी व वामुक्तिनागको नैदावनाया  
 गगवाभनागयणगी आप उन्ने देवगणोंका पुँक्षकी कोलगाया व देवोंको  
 वामुक्ति के गुणकीओर इममे जब गवानीवनी नैदावर वामुक्ति के मुनये रिया  
 गिरवानानिकरनेनगम निनरेनगमेमे देव विरचन होगये व अनदराओं के  
 गमने से मेवनि पुँक्षकीजोग वर्षाकी जियेमे देवगणजुझागये जब मन्दगवल  
 समुद्रमें घुमनेजगा ता देव देल कोई न जाइनके नीचेसे चलनेजगा भगवान्  
 म विष्णुगिने विनाम कि क्षय गण उरके भयजोगे इममे कल्याण व । का  
 तान्ने उमके तीरे जारिडे व मन्त्रय भास्यर देवनाओंकी समुद्रमें धारिदे

पकड़ा दूसरा रूप धरकर दैत्योंकी समाजमें व एकबड़ा भारी रूप धारण कर गन्दरा-  
चलके ऊपर बैठ चारों ओरसे उसे आटा कि ढगमगाने न पावे पर इसरूपको सुरा-  
सुरोंमेंसे किसीने नहीं देखा केवल गुप्तस्वरूपथा व अपनेही तेजसे देवता दैत्य  
वासुकिआदि मवफो तेजस्वी करदिया इसी कारण कोई नहींथके सबमे पहिले  
मयनेपर आगधेतु निकली उसे देवताओंने लेलिया दैत्योंकी अग्नि ऐसी गूदमी  
गई कि उन्हेंने देखाही नहीं फिर वारुणी गदिरा निकली फिर अतीवसुगंधित  
कल्पवृक्ष निकला इमे भी देयोंने लिया तदनन्तर अप्सराओं का झुंड निकला  
फिर चन्द्रगाजी निकसे उन्हें महादेवजी ने अपने माथे पै धरने के लिये लिया  
फिर विष निकगा उसे नागोंने फिर अमृतसे भरा कलश लिये धन्वन्तरिजी  
निकसे तिन्हें देव देव दानव ऋषिमुनि सब परमानन्दितदृये फिर लक्ष्मीजी  
निकसीं तिन्हें देव देवगण स्तुति करनेलगे विश्वावसु आदि गन्धर्व्व तिनके  
आगे गाने व घृताची आदि अप्सरा नाचनेलगीं गगादि नदिया स्नानके  
लिये पहुचीं दिग्गज लोग सोने के कलशों में जललाय स्नान करानेलगे  
क्षीरमागेर मनुष्य रूप धरके एक कमलोंकी ऐसी मालालाये जिसमें के फूल  
कभी सुखातेही नहीं इमप्रकार दिव्यमाला भूषण वस्त्र रत्नादिपहिन मव देव  
दैत्यों के देवतेही देखने त्रिष्णुजी के वक्षस्स्थलमें जावेतीं वधेउनेही कृपादीष्ट से  
देवताओं को देखा वे देवतंही कृतार्थ होगये व त्रिष्णुविमुख दैत्यलोग वड़े क्रुष्ट  
को पहुचे क्योंकि श्रीलक्ष्मीजी ने उनकी ओर नहीं देखा व इसीबीचमें उन्हेंने  
ने धन्वन्तरिके हाथ से अमृतपूर्ण कलश छीनलिया परन्तु श्रीभगवान् ने  
गोदनी मूर्ति छी वन दैत्यों को मोहितकर उनमे अमृतने देवताओं को पिया  
दिया अमृतपान करने मे देवगण अनिबलीहो नानाप्रकार के अस्त्रशस्त्र ले  
दैत्योंसे प्रेमनड़े कि सके मवदेव कुञ्ज गोरगये कुञ्ज पानागको चलेगये दे-  
वतालोग परमानन्दितहो श्रीहृदि स्तुतिकर जेमे पहिले स्वर्गके मुख भोगमे  
वे भोगनेलगे सूर्यनारायण जेमे प्रथम प्रकाशित रहनेये प्रशान्तदृये नारा-  
यण मव स्वच्छदोगये ब्राह्मणों के अग्नि अपने आप धधकिउठे आदृतिनेने  
लगे तीनोंलोक शोभायमानदृये इन्द्रजी कि मज्य लक्ष्मी को प्राप्तदृये जब  
सिंहासनपे बैठे कमल हाथमें लिये कमलाङ्गी स्तुति करनेलगे इन्द्रजी बोले  
कमल मे उतरन मव समार की माना प्रकृतित कमलनयनी त्रिष्णु के वन-



सुरगुरुआदिकं सुनिःसुरांनी । आप्तु प्रणमत हरिगुण खानी ॥  
 विधि सहस्रद उमापति देवा । तरणिसहितगणकृज्यहि सेवा ॥ ११ ॥  
 पात्रक वसु अश्विनी कुमारा । पवन साध्य निश्वेद्वर मारा ॥  
 इन्द्रकुयेर वरुण सव आये । असुर निकरपीडित शरणाये ॥ १२ ॥

इस प्रकार जब देवोंने स्तुति की तो भगवान् कमलापतिने दर्शनदिया  
 शंख चक्र गदा धारणकी हुई अपूर्व मूर्ति देख पहिले सब चकित हुये पीछे  
 द्वितीय स्तुति करनेलगे हे भगवान् ! आपकेभार २ नगसकागहे इन्द्र अग्नि वरुण  
 सूर्य यमराज वसु ४६ पवन फटा लग मनाये जितने देवगण यहा आय है  
 सब आपही है व यज्ञ वपदकार ७० कार प्रजापति सब तुम्हीं हो अनि भयभीत  
 देवगण आपके शरणागत है प्रमत्तहृजिये क्योंकि प्राणियोंको तभीतरु भयह  
 जबतक तुम्हारे शरणागत नहीं होते जब देवगणों ने इतनी स्तुतिकी तो श्री  
 भगवान् प्रसन्न होकर बोले हे देवगणो ! तुमलोगोंकेही तेजसे सबकुछ होवेगा  
 सहायता हम भी करेंगे जाय दैत्योंको भी सायलाभव ओपत्री समुद्रमें छोड़  
 गन्द्रराचलको गथानीवनाय वासुकिमर्षको नैदावनाओ व सागर मथो उमों  
 से अमृतनिकलेगा वह तुम्हींको पियावेगे कोई ० वस्तु दैत्योंको भी देदेवोंके  
 अमृत पीनेसे तुमलोग बनी होजावेंगे धम आप दैत्योंको जीतलेवोंगे कुछ  
 बड़ी सहायताकी आवश्यकता नहीं है हमें राका न करो कि अमृत दानध  
 गी न पीलेवें जिनमें और बलीहोजावें यह न होनेपावेगा वे केवल क्लेशभागी  
 हीहोंगे व तुम उत्तमफलभागी इस भाति भगवान् श्रीवाणीसुन देवताओंने जाय  
 दैत्योंकामगकिया व उनको साथते समुद्र मथनेका उपायकिया सबप्रकारकी  
 ओपधिया मागरमें छोड़ी गन्द्रराचलको गथानीव वासुकिनामको नैदावनाया  
 भगवान् नारायणभी आये उन्होंने देवताओंको पूँछकीओरलगाया व दैत्योंको  
 वासुकिके गुब्बकीओर डमसे जब गथानीवली नैदावर वासुकिने मुखसे विपा  
 रीशवासानिकलनेलगे जिनकेलगनेसे दैत्य विकल होगये व उगदवात्तों के  
 लगने से भेवोंने पूँछकीओर वर्षाकी जिसमे देवगणजुड़ागये जब गन्द्रराचल  
 समुद्रमें घूमनेलगा तो देव दैत्य कोई न आडसके नीचेको चलनेलगा भगवा  
 न् विष्णुजीने विचार कि अब मैं ऊपरके भागजावेगे इसमें कण्डर का जब  
 तारले उमकेनीचे जावेगे व एकरूप धारणकर देवताओंकी समाजमें प्रा नैदा

पक्का दूसरारूपपरकर दैत्योंकी समाजमें व एकवड़ाभारीरूपधारणकर मन्दरा-  
चलके ऊपरवैठ चारोंओरसे उमेआढा कि डगगगाने न पाये पर इसरूपको सुरा-  
सुरोंमेंसे किसीने नहीं देखा केवल गुप्तस्वरूपया व अपनेही तेजसे देवता दैत्य  
वासुकिआदि सबको तेजस्वी करदिया इसीकारण कोई नहींथके सचमे पहिले  
मथनेपर आमधेनु निकली उसे देवताओंने लेलिया दैत्योंकी आँखें ऐसी मूदमी  
गई कि उन्होंने देखाही नहीं फिर वारुणी मंदिरा निकली फिर अतीवसुगंधित  
फलपत्रस निकला इमे भी देवोंने लिया तदनन्तर अप्सराओं का झुड निकला  
फिर चन्द्रमाजी निकसे उन्हें महादेवजी ने अपने गाये पै धरने के लिये लिया  
फिर विष निकगा उमे नागोंने फिर अमृतसे भरा फलश लिये धन्वन्तरिजी  
निकमे तिन्हें देव देव दानव ऋषिमुनि सब परमानन्दितहूये फिर लक्ष्मीजी  
निकसीं तिन्हें देस देवगण स्तुति करनेलगे विश्वावसु आदि गन्धर्व तिनके  
आगे गाने व घृनाची आदि अप्सरा नाचनेलगीं गगादि नदिया स्नानके  
लिये पहुँचीं दिग्गज लोग सोने के फलशों में जललाय स्नान करानेलगे  
क्षीरमागेर मनुष्य रूप धरके एक कमलोंकी ऐसी मालालाये जिसमें के फूल  
कभी सुखातेही नहीं इमप्रकार दिव्यमाला भूषण उन्न रत्नादिपहिन सा देव  
दैत्यों के देखतेही देखने विष्णुजी के वक्षस्थलमें जावैँटीं व बैठनेही कृपादृष्टि से  
देवताओं को देखा वे दावतेही कृतार्थ होगये व विष्णुविमुख दैत्यलोग बड़ेरुष्ट  
को पहुँचे ज्योंकि श्रीलक्ष्मीजी ने उनकी ओर नहीं देखा व इसीबीचमें उन्होंने  
ने धन्वन्तरिके हाथ से अमृतपूर्ण फलश छीनलिया पन्नु श्रीभगवान् ने  
गोदही मूर्ति स्त्री वन दैत्यो को मोदितकर उनमे अमृतने देवताओं को पिया  
दिया अमृतपान करने से देवगण अनिषन्नीहो नानाप्रकार के अस्त्रशस्त्र ले  
दैत्योंमे पभेलड़े कि सबके सबदैत्य कुत्र गोरगये सुद्ध पानानकी चलेगये टे  
वनालोग परमानन्दिनहो श्रीहरिही स्तुतिकर जेमे पहिले स्वर्गके सुन भोगने  
ये भोगनेगये सूर्यनारायण जेमे प्रया प्रकाशित रहनेये प्राश्रितहूये नारा-  
गण सभ स्वच्छडीगये ब्राह्मणों के अग्नि अपने आप धधकिउठे आटुनिनेने  
लगे तीनोंलोक जोगायमानहूये इन्द्रनी फिर राज्य लक्ष्मी को प्राश्रुये जब  
सिंदासनपै बैठे कगल हायम लिये कगलार्की रतुति कग्नेलगे इन्द्रजी गेने  
कगल मे उरयत्र सब समार की माना प्रकृष्टित रतननगनी विष्णु दे वन-

स्वयल में विराजती हुई लक्ष्मीको नमस्कार है हे देवि । सिद्धि स्वर्ग स्वाहा लोकपावन करनेवाली सध्या रात्रि प्रभा बुद्धि श्रद्धा मरस्वती यज्ञविद्या गदा विद्या गुह्यविद्या आत्मविद्या विमुक्ति फल देनेवाली आन्वीक्षिणी वेदत्रयी कृपी वाणिज्यदंडनीति ये सब तुम्हीं हो तुम्हें छोड़ सर्व यज्ञमय शरीर और कौतूहल तुमने सब तीनों भुवनों को छोड़ दिया था इसीमे सब नष्टपाय होगये थे अब तुमने कृपाकी सब फिर ज्योंके त्यों होगये स्त्री पुत्र धर मित्र धन धान्य सब तुम्हारे ही निहारनेसे होते हैं हे भगवति । शरीरकी निरोगता ऐश्वर्य शत्रुओंका जीतना सुख सब कुछ पुरुषों को तुम्हारी सुदृष्टिहोनेसे दुर्लभ नहीं तुम सत्सारी की माता व विष्णु भगवान् पिता तुम्हीं दोनों से चराचर सत्सार पूरित है हे महालक्ष्मी । खजाना कोठा घर परिवार शरीर स्त्री हमारे इन पदार्थों को कभी न छोड़िये व पुत्र इष्टवर्ग पशु गण भूषण इनको भी न छोड़िये क्योंकि जिन पुरुषों को तुम छोड़ती हो वे सत्यशौच शील आदि गुणों से तुरन्त ही हीन होजाते हैं व जिनको तुम कृपाकटाक्ष से देवदेती हो उनके शील आदि गुण व ऐश्वर्यादि सब होजाते हैं चाहे वे निर्गुण भी हों फिर जिसको तुमने देखा वड़ाई के योग्य गुणी धन्य कुचीन बुद्धिमान् शरवीर व पराक्रमी वह तुरन्त होजाता है व जिससे तुम अपमन्न होती हो उसमे चाहे कितने गुण हों सब भ्रवगुण ही समझजाते हैं आपके गुणोंको तो ब्रह्माकी भी बुद्धि नहीं कहसकी फिर अन्य लोग कैसे कहसके हैं तिममे प्रमन्न होवो व हम लोगों को कभी न छोड़ो इतना मुन श्रीलक्ष्मी जी बोली इन्द्र हम तुम्हारे इस स्तोत्रसे सन्तुष्ट हुई जो चाहे वरमांगो इन्द्रजीने कहा जो मैं वरदान पाने लायक समझा जाऊ व आप वर देनेको तैयार हों तो तीनों लोकों को न छोड़ो वस यही वर मागता हू व दूसरा यह कि जो कोई इस स्तोत्र से तुम्हारी स्तुतिकरे उसेगी कभी न छोड़ियेगा लक्ष्मीजी ने कहा अच्छा हम इस स्तोत्रसे सन्तुष्ट हैं तीनों तुम्हारे लोकोंको कभी न त्यागेगी व सन्ध्या प्रात काल समय जो इस स्तोत्रसे हमारी स्तुति करेगा उसे भी हे मैत्रेय । इस भाति इस स्तोत्र से सन्तुष्ट हो लक्ष्मी जी ने इन्द्रको वरदान दिया यही लक्ष्मी प्रथम स्थातिनाम स्त्रीमें भृगुमुनि से उत्पन्न हुई थी फिर जब समुद्रमथागया उससे जन्मी इसीभाति जब जब देवदेवेश जगन्नाथ विष्णुजी अवतारलेते है तभी तभी लक्ष्मी भी जन्मती जब भगवान् वागनद्वये

तब लक्ष्मीजी ऋगन से उत्पन्न हुई जब हरिने परशुरामावतार लिया तो लक्ष्मी जी धराणी हुई रागावतार में सीता कृष्णावतार में रुक्मिणी इमीभानि अन्य अवतारों के साथ जन्म लेती है देवावतारके-साथ देवता व मनुष्यावतार के सग मनुष्य जैसा हरिफा अवतारहोता उसके योग्य आप भी जन्मती हैं जो कोई इस लक्ष्मीजी के जन्मकी कथाको सुनता व जो पढ़ता उनके तीन पुस्तिलों घरमे लक्ष्मी नहीं जाती और भी जिमवर में यह कथा पढ़ी जाती उसमें लक्ष्मी वसीरहती दरिद्रता खई आदि नहीं वसती हे मैत्रेय ! जिसभाति लक्ष्मीजी समुद्रमे उत्पन्न हुई व जैसे भृगुमुनिसे ख्यातिमें हुई व जैसे जैमे दूसरे स्थानों में जन्मी सब तुमसे कदा ॥

चौ० सकल विभूति मिलन उपकारी । यह कमलास्तुतिशक्रप्रचारी ॥

जो नित पदिहिमुनिहि पुनिगाइहि । ताम्र सदनसों भूतिनजाइहि ॥ १ ॥

## दशवां अध्याय ॥

दो० कहत दशम अध्याय महँ कमला जन्म वहेरि ॥

दक्षमुता गाथा सुभग मुनियो मुजन निहोरि ॥ १ ॥

श्री मैत्रेयजी बोले हे गहामुनि । जो जो हमने पूछा सो सो आपने कहा अब भृगुकी सृष्टिके पीछे जो सृष्टिहुईहो सुनाइये मुनिने कहा मुनिये भृगु मुनिसे ख्यातिमें लक्ष्मीजी व धाता विधाता दो पुत्रहूये उनका पिवाह मेरुकी कन्या आयति व नियातिके साथहुआ तिनदोनों के प्राण व मृद्हु पुत्रहूये मृद्हुके मार्कण्डेय मुनि हूये तिनके वेदाशिर नाम तनय हूये व प्राणके गृतिमान् तिनके राजिगान् तिनमे भृगुका वरा बढ़ा गरीचिकी स्त्री सम्भूति मे पौर्णगाम पुत्र हुआ निसमे विरज व मर्वगहूये व गरीचिही के कश्यपजीहूये हे उनका वग जय बड़ी वशावली कहेंगे तब कहेगे अगिराकी स्त्री स्मृतिसे पुत्र व सिनी वाली कुहू राका अनुमति कन्याहुई अत्रिहीस्त्री अनसूया से सोम इर्वाभा दचात्रेय ये तीन मदा प्रतापी पुत्र हूये पुनस्त्यकीस्त्री प्रीतिसे दम्भोलि नामक पुत्रहूये पूर्व जन्म में इन्हीका आस्त्यनामथा पुनदकीस्त्री क्षमासे कर्म उररीवान् मादिष्णु तीनपुत्र हूये ऋषी स्त्री मन्त्रिने ६०००० बालभित्य उत्पन्न किये वशिष्ठ कीस्त्री उज्जनासे रजगात्र उर्द्धवाहू मरन अनर सुतरा व शुक्र ये पुत्रहूये जो

तीसरेमन्वन्तर में सधर्षिये जो ब्रह्माके एक अग्निनाम पुत्र हुये थे उनकी स्त्री स्वाहासे पावक पत्रमान व शुचि तीनतनय हुये इन तीनोंके पन्द्रह पन्द्रह पुत्र हुये ये अपने बाप दादामहिन ४६ हुये अग्निष्वाता बर्हिषद ये दो पितरों के गण ब्रह्मासे उत्पन्न हुये थे इनमें जो लोग अग्निहोत्र चक्र करते हैं उनका पितर अग्निष्वाता है व जो तिसैतर्ही करते उनके बर्हिषद पितर हैं इनपितरोंसे स्वाहा स्त्रीमें मेना व वैधारिणी दो कन्या हुईं इनमें सब उत्तम २ गुणये ॥

चौ० वचसुता सन्तति यहगाई । जो यहिसुमिरिदि नितचितलाई ॥

सन्ततिरहित कर्बहु सोमानी । नहिहोइदि यह कहत बबानी ॥ १ ॥

## ग्यारहवां अध्याय ॥

दो० अथ ग्यरहें अध्यायमह ध्रुवचरित्र अतिपूत ॥

कहत सुनहु चितदै सुजन होहु कामजयूत ॥ १ ॥

राजा स्वायम्भुव मनुके प्रियव्रत उत्तानपाद दो पुत्र बड़े पराक्रमी धर्मदार हुये तिनमें उत्तानपादके सुरुचि स्त्री में उत्तमनाम पुत्र हुआ वह पिता को बहुत ही प्याराथा एक सुनीति नाम स्त्री थी जोकि राजा को बहुत प्यारी न थी उसके ध्रुवनाम पुत्रहुये ऋदिन राजा उत्तानपाद उत्तम नाम पुत्रको कोरामें लिये राज्यसिंहासन पे बैठे थे ध्रुवजीने चाहा कि हममी जाकर पिताके कोरामें बैठें परन्तु उमसमय उत्तमकी मात्रा सुरुचिमी वैठीथी हममे उनकी सौतिके पुत्र ध्रुवकी राजाने प्रमत्नतासे न बुनाया तथापि वे चढ़नेको लपके यहदशा देख सुरुचि ध्रुवसे बोली है भैया । तुम हमारे गर्भमे नहींहुये अन्य स्त्रीके पेटमे होकर ऐमेबड़े मनोरथको क्यों करतेहो यह वानमत्यहै कि तुममी इन्हीं राजाके पुत्रदो पर हमारे गर्भमे न होनेके कारण राज्यसिंहासन पे नहीं बैठसके यह राज्यसिंहासन हमारे ही पुत्र के नियेहै इसके लिये अपने जात्माको क्यों कष्ट देनेहो हमारे पुत्रके समान ईसबड़ेभागी मनोरथ को क्यों करतेहो क्या तुम यह नहीं जानते कि हम सुनीतिके लड़केहैं सौतेलीगानाके ऐसे वचनसुन पिताको छोड़ अति कोप्रस्तर अपनीमाता के गन्दिरको ध्रुवजी चलेगये मानाने देखा कि पुत्रकहीं गे सकुपिन चला आताहै कोरामें बैठाकर पूछनेलगी है 'पारे' तुम्हारे कोप करनेका कौन कारणहै कौन तुम्हारा आदरनहींकमना व ऐसा कौनहै जो तुम्हारे पिताको

नहीं जानता तुमसे अन्याय करता है ये सुन जो १ वातें सुरुचिने सहित घमण्ड राजाके आगे कहीं थीं सब अपनी मातामे कहीं सुनीति सुनके वड़ी उदासहो व शोचिविचार ध्रुवमेवोलीं हे प्यारे ! सुरुचिने सत्यही कहा तुम वड़ेही अमागीहो क्योंकि पुण्यात्मानोगोंको वैरी ऐमा नहीं रहने अब परिताप न करो जो कर्म पूर्वजन्ममें तुमने किया है उनको कौनमिडामक्रा व जो नहीं कियाउनकोकौन देसक्राहै राज्यामन छत्र अच्छे २ घोड़े उत्तम २ हाथी इन्हें आदि पदार्थ जिगने पूर्व जन्ममें पुण्यकीहै उसीको मिलने अये प्यारे ! कोप नान्नरुो सुरुचिने पूर्व जन्ममें बहुत पुण्यकीहै इसीमे उनमें राजाकी वड़ीरुचिदे वे उन्हीं को स्त्री कहते हैं हों ऐसी पापिनियोंका स्त्रीही नहीं कहते इसीसे अतिपुण्यात्मा उनकापुत्र उत्तम भी उनके जन्मा भरे तो स्वयं पुण्यकरने वाले तुमहुयेहो यद्यपि ऐसाहै तथापि अये वषे ! इ ली न होवो जिनके जितना होताहै वह उतनेहीमें सन्तोष करताहै नहीं जो सुरुचि के कहनेमे तुम्हें बहुतही डरनाहो तो पुण्य वदोरनेमें यत्न करो क्योंकि उसने सब फलमिलतेहैं तुम प्रथम सुशील धर्मात्मा भिन्न माणियोंकेहित करनेवाले होवो जब ऐमे गुणोंको धारण करोगे जैसे जहाजनीत्री भूमि होती है वहाही पानी ठहरताहै वैसेही गुणी केहीनिकट सम्पत्तिया ठहरनी है सो ठहरेगी यहाँमुन ध्रुवजीने कहा है अम्ब ! जो वातें तुमने भरे हु एव गान होनेकेलिये कहीं वे सुरुचिके दुर्वचनमे भिन्न भेरेहृदयमें नहीं ठहरती अगों ऐसा उपायकरना जिससे मनुष्योंको दुर्लभ व जिसकीपूजा सब करें वैमास्थान पाऊ सुरुचिही राजाकी प्यारीरानी ठहरी उनके पेटमे हमहुयेही नहीं रहगतो तुम्हारे उदरसे हुये हैं तथापि हगारा प्रभाव देखिये क्याकरतेहैं उत्तमहमारे भाई पिताका दियाहुआ राज्यमि- दासनलें उमकी हों इच्छा नहीं हद किसीका दियाहुआ स्थान लेदींगे नहीं किन्तु उस स्थानको लेंगे जिसे हमारे पिताजीने भी न पायाहो व नपानेकी आगा हो ऐमामातासेकह घरमेध्रुवजीनिजलबड़ेहुये जाते २ चारही फुल चाही में पड़ेवे वहाँ ७ ऋषिज्ञोग बैठेहुयेये उनके विधि पूर्वक प्रणामकर घोले दे ऋषिज्ञोगो । हग राजा उत्तापपादके पुत्रहैं सुरुचिने करने से हगको कुछ दुःखहुआहै इसलिये आपनोगोंके निरुद जायेंहै ऋषिज्ञोग योने हे राज कुमार ! तुम चार पाव व आठ उपाँकेहोगे तुम्हें अभी किसीरु कुछ रहने मुनने से दुःख न होनाचाहिये तुम्हारेपिता तो राजाहैं सो अपनाकार्य कम्बेहाहैं व

समें कुछ तुम्हारे चिन्तनाके लायक नहीं फिर कोई इष्टमित्रका वियोग भी नहीं देवपरता व तुम्हारे शरीरमें कोई रोग भी नहीं देवपरता फिर तुमको किसलिये इ ल हुआ है कहिये पराशरमुनि बोले कि जिस रीति से मुरुचिने इतको कहा था सब विस्तार पूर्वक कहा सुनके मुनि लोग आपम में कहने लगे अहो इ त्रियोंका अति उत्कृष्ट तेज होता है जो बालकभी किसी की इच्छा नहीं मरसका मौतेलीमाताके वचन हृदयसे नहीं जाते हे राजकुमार ! मौतेलीमाताके कहने से जो इ ल तुमको हुआ उससे अब क्या करना विचारो है यदि मनभावि तो हम लोगों से कहो व जिम तुम्हारे कार्य में हम लोग महायना करके हैं सो भी कहो क्योंकि तुम्हारे देखनेसे जाना जाता है कि कुछ पूजा-चाहते हो यह मुनि ध्रुवजीबोले हे द्विजसत्तमो ! न हम अन्वयकी इच्छा करते हैं न राजकी किन्तु वही एकस्थान चाहते हैं जिसे आज तक किसीने न भोग किया हो यही हमारी सहायताकीजिये कि वह उपाय बताइये जिससे सबस्थानोंसे उत्तमस्थान मिले यह मुनि ऋषियोंमेंसे मरीचिजी बोले हे राजनन्दन ! जो लोग गोविन्दकी आराधना नहीं करते उनको श्रेष्ठ स्थान नहीं मिलता इमलिये तुम अच्युत भगवानकी आराधना करो फिर अत्रिजीबोले श्रेष्ठोंके श्रेष्ठ पुराण पुरुषर्जना हैं न जिनके ऊपर सन्तुष्ट होते हैं वह नाशरहित स्थान पाता है यह हमने सत्यकी कहा है फिर आशिराशुनि बोले कि जो सबसे उत्तमस्थानकी इच्छा करते हो तो जिस अन्वयत्वा अच्युत भगवानके भीतर यह सर्वममर है तिस गोविन्दकी आराधना करो कि पुलस्त्यजी बोले कि परब्रह्म परन्थाग ब्रह्मरूप अतिश्रेष्ठ जो श्रीहरि हैं तिनकी आराधनासे अतिदुर्लभ मुक्तिभी मिल जाती है तो अन्यस्थानकी कीर्तनात है फिर कतुजी बोले कि जो यज्ञमें यज्ञपुरुष व योगमें परमपुरुष हैं तिमज नार्दनके मतुष्टहानेपेपेमाकी व पदार्थ है जो न मिले फिर पुलहजीबोले जिम जगत्पतियज्ञपति विष्णुकी आराधनासे इन्द्रने परमोत्तम इन्द्रस्थान पाया है हे राजकुमार ! तिसको आराधो फिर विशिष्टजी बोले कि हे वरस ! सर्वोत्तम विष्णुकी आराधनासे जो ३ मुक्तवादि की भी इच्छा मनसे करे सबपदार्थ मिलते हैं फिर नीनोलीको पेशाकी व पदार्थ है जो उनकी आराधनासे न मिले यह मुनि ध्रुवजीबोले अभिगत्र जो मैं तिनके लिये आराधना करनेके योग्य जो है उसे तो आपसोगोंने बनाया अब कोई मन्त्र भी बताइये जो उसके परिपोषकेलिये उपयोगी है व जैसे तिसमहात्माकी आरा

धना हमारे करनेलायकहो प्रसन्नहो सोभी आपलीग कहैं यहसुनऋपिलोगवो-  
ले हे राजपुत्र ! जो त्रिपुणकी आराधनामें निपुणलोगोंके करनेलायकराख्य है  
हमलोगकहते हैं सुनो मनुष्यको चाहिये कि प्रथम सब वाहरके अर्थ देखने सुनने  
आदिके बन्दकरे फिर उम जगद्धाग परमेश्वर विष्णुमें निश्चल गनलगावे जन  
एकाग्रचित्तहो मन हरिमय होजावे तो जो जपनेके योग्य है कहतेहैं सुनो ब्रह्मा  
त्रिपुण महेश तीनोंके प्रेरक भगवान् वासुदेवका ॐ नमोभगवनेवासुदेवाय यह  
जो द्वादशाक्षर मन्त्रराजहै सोई जपनाचाहिये इमीमन्त्रको आगे तुम्हारे पितामह  
राजा स्वायम्भुव मनुजीने जपाया तिसके ऊपर भगवान् जनार्दन ने सन्तुष्टहो  
त्रैलोक्य दुर्लभ यह ऋद्धि दीधी तिससे तुमभी इस मन्त्र को जपतेहुये गोविन्द  
को प्रसन्न करो ॥

## वारहवां अध्याय ॥

दो० द्वादशमें अध्याय महँ ध्रुव वृन्दावन वास ॥

जिमिकरि हरिसेवा करी कहतलखो सुखरास ॥ १ ॥ .

पराशरजी बोले हे मैत्रेय ! ऋपियों के वचन सुन ध्रुवजी उनको प्रणाम कर  
उस फुलवाड़ी से निकल खड़ेहुये व अपना को कृतार्थमान मधुवन में पहुँचे  
इम वनमें कभी मधुनाग दैत्य रहताया उसी के नाम से मधुवन नाम हुआ इम  
मधु के पुत्रका लवणनाम था उसे शत्रुघ्नजी ने मार उसी वनमें मधुरानाम  
पुरी बसाई जिस मधुरा में श्रीकृष्णचन्द्र सदा विराजमान रहते हैं वहाँ ध्रुवजी  
तपस्या करनेलगे जिस भाति मरीच्यादि मुनियों ने उनमे बनाया था उसी  
भाति तपकर अपना शरीर ईश्वरमय कर दिया व समझा कि हमारे हृदय में  
त्रिपुणजी बैठे हैं जब बनाय स्थिरचित्तहो त्रिपुणको हृदय में देखनेलगे हरिने  
जाना कि अब इनका चित्त हममें लगगया आरु दृढ़नापूर्वक उनके हृदयमें  
निवास किया जब ऐसाहुआ तो यद्यपि यह पृथ्वी मन चराचर का भार मम्हा-  
लतीहै तथापि ध्रुवजीका भार न महसूसकी जब बायें चरण से खड़ेहुये तो पृथ्वी  
का आधा खण्ड नय गया व जब दक्षिणसे खड़ेहुये तो दूसरा खण्डभी नयगया  
जब कि पावके भँगूटे से पृथ्वी को दनाकर ध्रुवजी खड़ेहुये तो सम्पूर्ण पृथ्वी  
पर्वतों के साथ कापने लगी तथा नदी नद समुद्र ये सब शीमकी प्राप्तहुये व



देवताओं को भी बड़ा क्षोभ हुआ तब पराशरजी बोले हे मैत्रेयजी ! देवता लोग  
 इन्द्रसे सम्गति करके ध्रुवजीके ध्यान में विघ्न करने की यत्नमें उतारूढ़ये इन्द्र  
 की आज्ञा पाय कूष्माण्डलोग तरह २ के रूप बनाय २ आये माया की बनी  
 हुई सुनीति अर्थात् ध्रुवजी की माता रोतीहुई आकर कहनेलगी कि हे पुत्र !  
 जिसमें शरीर नाश होजाने का भय ऐसे इस दारुणकार्य से निवृत्तहो बड़े २  
 मनोरथों से मुझे तुम प्राप्त हूयेहो सवति के कहनेसे दीन अनाथ मुझको त्याग  
 न कीजिये मेरी तुम्हीं गतिहो कहा तो तुम्हारा पाचवर्ष का वय व कहा यह  
 परमदारुण तपस्या तिससे निष्फल कष्ट देनेवाली इस तपस्या को मतकीजिये  
 यह समय तो तुम्हारे खेलने व पढ़नेका है इसके अनन्तर गोग करते का समय  
 आवेगा तिसके अनन्तर कहीं तप करने का समयहोगा हे पुत्र ! खेलनेकेसमय  
 में ऐसा तप करतेहो क्यों अपने नाश होनेमें लगेहो तुम्हारा धर्म यही है कि  
 जिससे मैं पूसज रहूँ इससे गैरे वचन से अपनी अवस्था के अनुरूप कामकी  
 व इस अधर्म से निवृत्तहो हे प्रियपुत्र ! जो तू इस तपस्या को नहीं छोड़ता तो  
 देख तेरे देखनेही में भी प्राणों को त्याग करती हू ध्रुवजी के सम्मुखही ऐसे  
 विलाप करती हुई मानाश्री ईश्वर में चिचलगाये हुये ध्रुवजीने नहीं देखा तब हे  
 वरस ! इस भयकर वनमें बड़े २ राक्षस शस्त्रलियेहुये चलेजाते हैं यहा से अन्यत्र  
 चलेजाओ ऐसा कहकर सुनीति तो अन्तर्द्धान होगई व नाना विधि शस्त्र लिय  
 हुये बड़े २ भयकर राक्षस पूकटहुये व आय ध्रुवजी के सम्मुख खड़ेहो भयकर  
 शब्द करनेलगे इधर चमकते हुये शस्त्रों को घुगानेलगे व उनके डरवाने के लिये  
 मुष्ममे अग्नि की ज्याला निकलनीहुई मियारिया आय फेरनेलगी इसे गार  
 ढालो काटढालो खाढालो ऐमे सब राक्षस कहनेगगे किसी राक्षसका व्याघ्र  
 फासा मुख किसी का ऊटकामा किसीका गगर कासा सब आकर ध्रुवजी के भय  
 देखलाने के लिये बड़ा नाद करनेलगे वे सब राक्षस व उनका भयंकर शब्द  
 सियारियों का फेरना नानाविधि शस्त्र यह कुछभी नारायण में चिचलगाये  
 हुये ध्रुवजी को नहीं विदित हुआ किन्तु ध्रुवजी एकाग्रचित्तहो फेरल नारायण  
 के ध्यानही में लगेरहे और कुछभी न जाना तब देवताओं की सब माया व्यर्थ  
 होकर नष्टहोगई व देवतालोग ध्रुवके अनादर करनेसे बहुत डराये व पवित्राये  
 व उनकी तपस्या से सतापितहो अशरण्यारण्य परमदारुणिक श्रीगमारण्य के

शरणको प्राप्तहुये व बोले हे देवदेव पुराणपुरुषोत्तम ! हमलोग ध्रुवकी तपस्या से व्याकुल हो आपके शरणको आयेहैं जैसे दिन २ चन्द्रमा बढ़ते २ पूर्णहो जाताहै वैसेही यह राजकुमार ध्रुव तपस्यासे पूर्ण होगयाहै आप उमको तपस्या करने से रोकिये किंच हम यह भी नहीं जानते कि वे इन्द्र सूर्य कुबेर ऋण व चन्द्रमा आदि गैसे किमकी पदवीको चाहते हैं तिममे महाराज ध्रुवको तपस्यासे रोक हमलोगों की छातीमे तीर निकालिये यह सुन अनायनाथ लक्ष्मीनाथ बोले इन्द्र सूर्य ऋण कुबेरादि किसीकी पदवीको परमोदार राजकुमार ध्रुव नहीं चाहता जो चाहता है हम जाय देने हैं तुमलोग न डरो व अपने २ स्थानों को जाओ तपस्या में लगेहुये ध्रुव को हम रोक देने हैं इमभानि परमसुजान श्रीभगवान् के कहने से सब देवगण अपने २ स्थानोंको गये व ध्रुव की तपस्या से प्रसन्न हो श्रीविष्णुभगवान् भी ध्रुवके निकट आये व बोले हे हमारेप्यारे ध्रुव ! तुम्हारी तपस्या से हम अति सन्तुष्ट हुये व वरदान देने के लिये आयेहैं जो चाहे वर मांगो जिममे तुम बाहर के अर्थों की इच्छा नहीं रखने केवन हर्षीमं चित्त लगाये हो इससे बहुतही प्रसन्न हुये वर मांगो इनना सुन जैगही नेत्र खोलैहैं देखा कि शश्व चक्र गदा धनुष खड्ग धारण किये मुकुट गिरणै घरे मन्द मन्द मुमकाते हुये श्रीहरि आगे खड़े हैं वम देखनेही स्तुति करने के लिये पृथ्वी व दण्डवत् गिर परे व सोचने लगे कि कैसे इनकी स्तुति करें इसभानि व्याकुल हो उन्हीं के शरण को प्राप्तहुये व बोले हे भगवन् ! जो इस दीन के ऊपर प्रसन्न हुयेहो तो मैं आपकी स्तुति किया चाहताहू उसके योग्य बुद्धिदीजिये क्यों कि वेद वेदान्त जाननेवाले ब्रह्मादिदेवगण जो आपकी गति नहीं जानते तो मैं बालक कैसे स्तुति करमका हू तुम्हारी भक्ति में मेराम व बहुत लगा है व स्तुति करना चाहना है इम मे वैसी गति दीजिये यइ सुन श्री हरिने हाथजोड़े हुये ध्रुव के गाल में गच्छ ह्युआदिया कि वे प्रसन्नहो स्तुति करने लगे ॥

ची० घराणि तोय पात्रक अग् वाता । इन्द्रिय मनमति प्रकृतिविधाता ॥

सच तत्र रूप प्रणति पति नाचा । चार चार त्रहं तावर्तुं माया ॥ १ ॥

शुद्ध सूक्ष्म व्यापक प्रधाता । जालु रूप प्रणनां भगवाना ॥

भूमिगन्ध सुख युद्धि प्रधाना । परम पुण्य पर जो भगवाना ॥ २ ॥

साम कान् पद् यत्रा, तिके । शुद्ध रूप परमेश्वर त्रिके ॥

सहस शीर्ष लोचन अरु पादा । जामु दया करिये सुनि नादा ॥ ३ ॥  
 व्यापकमाहि व्यापक दश आणुर । जोहरि त्यहि वन्दौ नाहिं चातुर ॥  
 भूत भव्य राव तुम पुरुषोत्तम । तुम विराट सम्राट सदोत्तम ॥ ४ ॥  
 अघ ऊघ तिर्य्यक क्षिति केरो । भूत भविष्य विश्व श्रुति टेरो ॥  
 तुम सन यज्ञअनल घृत अरुपशु । ऋचासाम सप्तछन्द परम यशु ॥ ५ ॥  
 तुम सन यजु तुरग गोमृगगण । अजाअवी महिपादि शुद्धमण ॥  
 तव मुख सो ब्राह्मण तव बाहू । क्षत्रिय ऊरु वैश्य युत लाहू ॥ ६ ॥  
 पदसौं अद्र सूर्य्य तव लोचन । प्राण पवन विषु मनभव मोचन ॥  
 प्राण सुपुम्ना सौं मुख पावक । नाभिगगन शिरस्वर्ग सुभावक ॥ ७ ॥  
 कर्ण दिशा महिपद सौं होई । सकल पदारथ तुम नाहिं गोई ॥  
 अल्पवीजमहँ जिमि बटमारी । तिमि तुममहँ यह विश्वकारी ॥ ८ ॥  
 जिमि सुवीज सौं अक्षर तासू । घट महान यह चात खुलासू ॥  
 तिमि तुमसन यह जग भगवाना । वदत धीरही सौं श्रुति माना ॥ ९ ॥  
 जिमि फदली नाड़ी महँ नाथा । त्वचा जलादि लखात न गाथा ॥  
 इमि जगनाड़ी तुम जगदीशा । तुममहँ स्थितियाकीनहिंकीशा ॥ १० ॥  
 रूप प्रकाशकरी अरु सचिनि । उभयशक्ति तुममहँ हरिनदिनि ॥  
 नाहिं सो शक्ति जीव महँ स्वामी । जघलगहोय न तत्र अनुगामी ॥ ११ ॥  
 सो सात्त्विकी प्रकाशत जोई । अरु तामसी ताप कृति होई ॥  
 उभय सहित राजसी ब्रह्मानी । तुमसौं घाहर नाहिं कश्युजानी ॥ १२ ॥  
 पृथक भूत इक भूत भूतभव । अहुरि प्रभूत भूत भव मापत्र ॥  
 भूतात्मा तव चरण नमामी । जगदात्मा तव अन्तरायामी ॥ १३ ॥  
 व्यक्त प्रधान पुरुष तुम रजामी । पुनि स्वराट सम्राट निशामी ॥  
 अरु त्रिगट तव हृदय मैशारी । वसततकल्पप्रणमत शिरघारी ॥ १४ ॥  
 तुम सधमहँ तुमसन सध होई । पुनि सध तुम सध रूप न गोई ॥  
 यादि मध्य अयसान सुरारी । गदे बहो रटिवहु मयहारी ॥ १५ ॥  
 सर्वात्मक सधेश कृपाला । सर्व भूषणत होहु दयाला ॥  
 जासौं इमि त्वरूप शमाय । तासौं जाना माय हृदयपरा ॥ १६ ॥  
 गान्धर्वहृदे दधिधारन नाहौं । कृपाकण्ठु पनग मम दाहौं ॥

जो मम हतो मनोरथ स्वामी । सफल कीन्हतुम अन्तरयामी ॥ १७ ॥  
 अरु सब तपसो सफल मुरारी । जो तव दर्शन भो अघहारी ॥  
 करत प्रणाम बहोरि बहोरी । मातिअनुसार नाथ नहिं खोरी ॥ १८ ॥

जब इतनी स्तुति ध्रुवजीने की करुणानिधान श्रीभगवान् बोले हे ध्रुव ! जो हमारा दर्शन तुमने पाया तपस्या का फल तो हुआ परन्तु अब दर्शन होनेका भी फल होना चाहिये क्योंकि हमारा दर्शन विफल नहीं होता इससे जो कुछ अभीष्टहो वर भी मागो क्योंकि हमारे दर्शन होने पर पुरुषको सब कुछ मिलता है ध्रुवजी बोले हे स्वामिन् ! आप सब प्राणियों के स्वामी हैं व सबके हृदयमें बसते हैं इससे जो मेरे हृदयमें है क्या आप नहीं जानते तथापि जो मेरे हृदयमें है मागताहू क्योंकि आपके प्रमत्तज्ञानेयें त्रिलोकी में कुछभी दुर्लभ नहीं रहना इन्द्रभी तुम्हारीही कृपासे त्रिलोकीनाथ हैं जोकि मेरी सौतेली माताने अहंकारमें मुझसे कहाया कि हमारे पेटमें तुम उत्पन्न नहीं हो इससे यह राज्यासन तुम्हारे योग्य नहीं इससे आपके प्रमाद से ऐसा स्थान चाहता हू जो सब स्थानों में उत्तम में उत्तम हो व कभी उमका नाश न हो श्रीभगवान् कृपानिधान बोले हे ध्रुवजी ! तुमने मा ॥ सो पावोगे क्योंकि तुमने हमको पूर्वजन्ममेंही प्रसन्नकर रखा है पूर्व जन्म में अपनी माता पिताके सेवक व निज धर्मों के पालक तुम एक ब्राह्मण थे कुछदिन बीतेपर एक राजकुमार तुम्हारा मित्र हुआ वह नानाप्रकार के भोग विलास करने से बड़ा तेजस्वी जान पड़ता था तिसके सगरे उमठी राज समृद्धि देव तुम्हारे वाञ्छाहुई कि हमभी राजकुमार होते तो अच्छा था तिसीहेतु राजा उत्तानपाद के तुम पुत्रहृये पर यह उत्तानपादके घरमें उत्पन्न होना जो योगीजन हमारेभक्त नहीं है उनको तो अतिश्रेष्ठ व दुर्लभ है पर हमारे भक्त तुमलोगोंके लिये अनित्युद्ध है क्योंकि हमारी आराधना में प्राणी मोक्ष पाताहै उमको स्वर्गादि फल कुछ दुर्लभ नहीं इसमें हमारे प्यारे ध्रुव तीनोंलोकों से अधिक स्थान में जिसकी प्रदक्षिणा मूर्त्यादि किया करते है विगतजोगे हमारी प्रसन्नता का यही प्रभाव है जाय मूर्ध चद्र गगन वृष वृहस्पति शुक्र जनेश्वर सब तागगण मसर्षि अन्य प्रिमानोंपर चढ़नेवाने सब देवगण इस सबमें ऊपर तुमको स्तानिषा कोई कोई देवनालोग ४ युगनरु अपने स्थान पर रहन न कोई २ गन्धर्वसभामि वा हमारे

तुमको करपपर्यन्त रहनेके लिये स्थान दियाहै व तुम्हारी माता सुनीति भी अतिनिर्गल स्वरूपिणी। तुम्हारेही निष्ठ नारादो जवनक तुम बहा रहोगे रहेगी किंच जो मनुष्य प्रात व सध्या समय तुम्हारा स्मरण करेंगे उनको बड़ी पुण्य मिलेगी इममानि जगन्नाथ देवदेव जनार्दन भगवान् से वरपाय यहां बहुतसुख योग उनी श्रीहृगिके उपायेद्वये स्थान को ध्रुवजी मथे व तिनकी इस त्रिसूतिको देत देवता व अमुरों के आचार्य ने यह श्लोक पढ़ा अहो इसकी तपस्या का पराक्रम व फल कि निमसे सप्तर्षि लोग इमको आगे कर प्रदक्षिणा करते हैं व इम ध्रुवकी माता सुनीतिभी महिमा कौन बहसकता जिसने ध्रुवको उत्पन्नकर ऐमा स्थान पाया जो सर्वों को दुर्लभ है जो यह ध्रुव का स्वर्गरोहण कहेगा वह सब पापोंसे छूट स्वर्ग में वयेगा व चाहे स्वर्गहो वा पृथ्वीहो कभी स्थान न छूटे गा व नन कल्याण सहित बहुत दित्त जीवेगा ॥

## तेरहवां अध्याय ॥

बो० तेरहवें अध्याय ध्रुव यश फल जहें वेन ॥

उपनि जरेउ द्विज कोपसों पुनि पृथु जनि सुखदेन ॥ १ ॥

श्री पराशरमुनि बोले कल्याणरू ध्रुवकी स्त्रीका शम्भु नागया नितसे श्लिष्टि व भव्य दोपुत्रद्वये शिलाश्री सुक्रया नाम स्त्रीसे रिपु रिपुंजय विष वृकल वृहतेज ये पापगहित ५ पुत्रद्वये रिपुकी वृक्षी नाम स्त्रीसे अतिनेजस्त्री चाक्षुर पुत्रद्वया व क्षपमें वरुणके वगमें उत्तम द्वये बुद्धिमान् अनरण्य प्रजापतिकी कन्या पुष्करिणी में चाक्षुरमनु छठे गन्वन्तरके पति उत्तमद्वये फि मनु से वेराज प्रजापतिकी कन्या अति नेजस्त्रिनी नडागा स्त्रीमें अ० १ पृ० २ गतगुम्नश्नपस्त्री ४ सत्यवाक् ५ शुचि ६ अग्निपुत्र ७ अतिरात्र ८ सुगुम्न ९ व अग्नि गन्धु० पुत्रद्वये ऊरुमे अग्नि की कन्या महाभोगमें अग १ सुमनस्त्र्यानिश्कतु ४ अगिरा ५ भोषित्तद्वये ६ पुत्रद्वये अगमे सुनीयानाम पत्नीं वेन नाम पुत्रद्वया मन्तानके लिये अपिप्योने जिसका दहिनाहोव मथा जिमसे महाभोग परमेशु गीन अतिनेजस्त्री महागजाभिगज पृथुजी उत्तमद्वये जिन्होंने सबजाके लिये पृथ्वी दुही थी इनती कथागु नैत्रात्री थी व किन लिये अपिप्योने वेन का ददि नाहाध मथा जिमसे अति पापकर्मी महारात्र पृथु द्वये पराशरमुनि धोनें वृत्तरी

फन्याका सुनीचा नामचा वह राजा अग को व्याहीगई उसमें वेन नाम पुत्र हुआ वह अपने नाना मृत्युके दोषमे जन्गहीसे अनिदुष्ट हुआ जैसेही ऋषियोंने उसके पिताके पीछे उसे राज्यके लिये अभिषेकित किया वेमेही उसने अपने राज्यमें छोड़ी पितादी कि हमारे राज्यमें कोई भी यज्ञ दान होम न करे यज्ञभोग करनेवाला हमसे दूसरा कौन है हमी यज्ञों के पति व स्वामी हैं तब सभ ऋषि लोग राजा वेन के निकट आय समझाने लगे हे महाराज ! आपके राज्य व देह व पूजाके कल्याण के लिये जो २ हम लोग कहें रूपापूर्वक मुनिये १०० वर्षतक वड़ाभारी यज्ञ करें व उम में सवयज्ञों के स्वामी श्रीहरिकी पूजा करें उसमें छठाअश आपको भी मिलेगा हमलोग जब यज्ञमे श्रीहरिकी पूजाकरेंगे तो वे यज्ञसे प्रसन्नहो आपकी सब कामना पूर्ण करेंगे हे राजन् ! जिन राजाओंके राज्यमें यज्ञपुरुष श्रीविष्णु पूजे जाने हैं तिनको सब कुछ देनेहें यह सुन राजावेन बोले हमसे अधिक दूसरा कौनहै व कौन आराधना करनेके योग्य व वह हरि कौन है जिसे तुमलोग यज्ञेश्वर समझते हो क्योंकि ब्रह्मा विष्णु महादेव इन्द्र पवन यमराज सूर्य अग्नि वरुण धाता पूषा धरणी चन्द्रमा इन्द्रआदि अन्यभी जो देवगण हैं सब शापदेने व क्षमा करने में समर्थ है ये सब राजाके शरीर में सदा रहने हैं इससे राजा सर्वदेवमय होता यह जान जो हगने आज्ञादी है कि यज्ञ दान होम कुछ न करो तिसकी पालना करो जैसे स्त्रियों को अपने २ पतिकी सेवा करनी चाहिये तेसेही तुम प्रजा लोगोंको राजाही सेवा व तिसकी आज्ञाका पालन करना चाहिये ऋषिनोंगोंने यहसुन कहा राजन् ! यज्ञादि करनेकी आज्ञा दीजिये जिसमें धर्म न नाशहोवे यह सब समार केवल यज्ञही के करने से चलाजाता है धर्मक्षीण होने से जगत् भी क्षीण होजावेगा इसर्गानि ब्राह्मणों ने दशवीम चार समझाया पर राजावेन उसीप्रकार बकना रहा यज्ञादि करनेकी आज्ञा नहीं हुई तबतो सब मुनियों ने बड़ाकोप करके आपसमें कहा इसपापी राजाको मारडालो मारडालो यह किसीतरह राज्यके योग्य नहीं क्योंकि यह पुरुष अनादिनिधन सबके स्वामी विष्णुजी की निन्दा करताहै यह वह मन्त्रपद कुशासे घोर जल छिरकदिया राजा तो भगवान् ही निन्दासे पहिलेही मारुका था पर उम जलके पढ़ने से अन्धीभावि मृतक होगया राजाके मरने के घोड़ेही दिनोंके पीछे चारोंओर से बड़ी धुरि उड़नी हुई देव

ऋषियों ने लोगोंसे पूछा धूरि कहामे आतीहै लोगोंने कहा राज्य विना राजा  
 के होगयाहै इससे चोरलोग सबका धन लूटने व धूरि उड़ाते हैं यहलोग कहीं  
 रहने थे वहा भी धूरिपहुंची तब सब मुनियों ने सम्मन करके पुत्र होनेके लिये  
 मन्त्रगद् २ राजाकी जाँघ मथी उनमें से एक अतिकुरूप बहुतही छोटे होलका  
 काला मनुष्य निकला व उसने ऋषियों से पूछा कि क्याकरू उन्होंने कहा  
 ( निपीद ) बैठ इसमे उसका निपाद नामहुआ व उसके वरावाले तमीमे वि-  
 ष्याचल पर्वत में बसनेलगे बहुधा इनलोगों की चोरीही जीविकाथी उस पा-  
 परूप निपाद के होनेसे राजाका शरीर निष्पाप होगया फिर मुनियोंने राजश-  
 रीरका दहिना हाय मथा उससे महाप्रतापी सब शुभगुण सहित पृथुजी उत्पन्न  
 हुये जिनका शरीर अपनेही तेजसे ऐसा प्रकाशित था मानो दूसरी अग्निही  
 की मूर्तिहै ऐसे महाराजाधिराज के होनेही आकाश से महादेवजी का अज-  
 गव नाम धन्वा व बाण व ( कवच ) वस्त्रादि सबआये व सब लोग परमान-  
 न्दित हुये इनके होने से वेन ऐसे पापी भी स्वर्गको चलेगये क्योंकि पुत्र नाम  
 नरकसे जो रक्षाकरे उमीका पुत्रनामहै सो नरकसे अपने पिता की रक्षा इन्होंने  
 की व उमीसमय अभिषेकके लिये सब समुद्र व नदियां मनुष्यभूषिसे अपना २  
 जल व रत्न लाई ब्रह्माजी गरीष्पादि मुनियों को सग लेआये अन्य सब चंग  
 चर पहुँचे व सबोंने अभिषेक किया ब्रह्माजी महाराज पृथुके दहिने हायमें चक्र  
 देत्वकर विष्णुजी का अवतार सगक प्रणाम कर पापानन्दिन हुये इसभाँति ब्रह्मा  
 जी के आगेही सब महो भोविद ऋषियोंने ऐसे महाराज्य पै महाराजाधि-  
 राज पृथुको स्थापितकिया व इन्होंने अपने पितासे क्लेशिन सब प्रजाओं को  
 भलीभाँति प्रमत्तकिया क्यों न करे राजा उसीका नाम होतहै जो प्रजाओं अ-  
 नुराग करे महाराजाधिराज पृथुजी राज्यमें जब कभी कहीं जाने थे तो नदियाँ  
 याह होजाती थी समुद्रका जल पैमजाता पृथिवीमें विना जोते केजल चिन्तना  
 करनेही से अन्न उपजना था गरया से जब चाहो दूध इहलेवे व जब ये पेटागद  
 यज्ञ करनेलगे कि सूत व मागध दो उत्पन्नहुगे उन्होंने कहा राजाकी स्तुति  
 करनी चाहिये यह मोचकर ऋषियों से पूछा इन नये राजाके गुण हमनोग  
 भभी कुछ नहीं जानते आपनोग जैसा बतावे वैसी स्तुति करे ऋषिलोग सोले  
 हे सूत व मागध ! य महाराजाधिराज चक्रवर्ती जो २ गुण व कर्म आगे

करेंगे उन्हीं २ गुण कर्मों से इनकी स्तुतिकरो महाराज भी इस बातको सुन  
 बहुत प्रसन्न हुए कि ये लोग वर्णन तो करें मन्त्रा इम अपने गुण दोष जान  
 तो लेवें व जो २ ये दोनों हमारे गुण वर्णन करेंगे सो २ हम करेंगे जो दोष  
 बतावेंगे उन्हें न करेंगे इसकेपीछे सूत मागध दोनों बड़े ऊचेस्वर से राजाके  
 होनेवाले गुण कहनेलगे कि ये महाराजाधिराज सत्यव्रत न दानशील सत्य  
 प्रतिज्ञा लज्जावान् सबके मित्र क्षमाशील अनिपराक्रमी दुष्टोंके शिस्तक ध-  
 र्मज्ञ कृत्त दयावान् प्रियवचन मान्यों को माननेहारे यज्ञकर्त्ता ब्रह्मण्य साधु-  
 वत्सल व्यवहारमें शत्रु मित्र सन से गमता करनेवाले ढोंगे सूत व मागधने  
 जो २ गुण कहे महाराज उन सबको भगीकार कर राज्य करने व विविधभाति  
 यज्ञ करनेलगे पर जब कोई राजा न था उनदिनों अन फलादि सबका होना  
 भी बन्द होगयाथा इससे प्रजा बड़े दु खमें थी जब ये राजाहुये मारेभूवोंके इनके  
 शरणमें आई व बोली हे पूजानाथ ! जब अराजकथी पृथिवीने सब अन्नादिकों  
 को चुरालियाथा इस हेतु सब पूजा मरी जाती है व आप हमलोगों के वृत्ति  
 करनेवाले व पूजापालक बनाये गये हैं इमलिये हम भूची पूजाओंको अन्ना-  
 दि दीजिये यहसुन राजा धन्वावाणले अतीव क्रोधकर धर्णीके मारनेके लिये  
 दौड़े वह गायका वेपथर भागी भागने २ ब्रह्मादि लोकों को गई पर जहांही  
 घूमकर देखा धन्वावाण लिये राजा पीछे खड़ेहैं जय जाना नहीं भी बचाव नहीं  
 मारे भयके कापतीहुई राजासे वाली हे पृथिवीपाल कृपालु ! हमको मारना चा-  
 हतेहैं क्या स्त्रीवधमें कुछ दोष नहीं देखने उममें तो बड़े २ दोषहैं यहसुन राजा  
 पृथु बोले जो एकदुष्ट के मारनेसे बहुतोका कल्याण हो तो उमके प्रयत्नमें  
 कुछ दोष नहीं होना पृथिवी बोली हे नृपश्रेष्ठ ! जो आप पूजाके उपाय के  
 लिये हकको माराचाहते हो तो हमारे न होनेपर पूजा कहा रहेगी राजा ऐसे  
 वचन सुन बोले हमारी आज्ञाके प्रतिकूल चलनेवाली तुमका वाणा मे तिल २  
 उदादेंगे और अपने योगबलसे पूजाको आड़ेरहेगे यह सुन धर्णी फिर काप  
 तीहुई बोली सबकार्य उपायसे सिद्ध होतेहैं तिम मे हम उपाय बनानीहैं जो  
 आपको रुने तो कीजिये हे समात्ताथ । मन्त्र अन्नादि सोपयिया हममें पवित्र हो  
 गई जो आप इच्छाकरनेहो तो दूधकर दूधनीजिये यो तो अब नहीं निकल  
 सकी तिससे हे पूजापाल ! पूजा व हमारे हितरु निय बहून पूजाके बरदे



बनाइये जिसमें हम पन्हाकर सब पदार्थ चुनादेवों पर हों बराबर भी अवश्य  
करदीजियेगा जिसमें दुग्ग्रह सब शोषवियां अपने २ स्थान पर जमें यहमुन  
महाराज पृथुजीने जो सर्वत्र पृथिवीपर पर्वतही पर्वतये दूर २ धन्वाकी नोकमें  
तूडफाड़कर स्थापित करदिये प्रथमकी भी सृष्टि में प्रागपुर नगरादिकोंकी व-  
स्ती न थी पृथिवीके विभागथे इस सृष्टिमें भी महाराज पृथुके प्रथम सेतीपाती  
कुछ नहीं होतीथी वम पृथुजीने पृथिवी को बगधर कर ग्राम पुरादि बसादिये व  
लोगजोतने बनेलगे व पूजाओंके लिये अन्नफल पुष्पादि सब होने लगे अब  
इस सबके होनेका काम लिखते हैं प्रथम राजाने स्वायम्भुवगनुको बद्धवा बनाय  
अपने हाथही को दोहनी मगभ गोखूप धरणी बुही उससे सब अन्न प्रजाके अर्थ  
निकले अवतरु भी उसी अन्नमे प्रजा बढ़ती है पृथिवी के प्राण जिससे पृथुजीने  
छोड़ दिये इससे वे उगके पिता ठहरे व इसी से इसका पृथ्वीनाम हुआ ॥

श्री० पुनि मरु देव पितर मुनि नागा । दैत्य निशाचर युव अनुरागा ॥

यक्ष वृक्ष गन्धर्व समेता । निज अनुरूप पात्र ले नेता ॥ १ ॥

वत्स दोहनी निज अनुरूपा । करि वाञ्छित दुहिलीन मुरूपा ॥

भये अनन्द सकल सब पाई । अथ न परत फलु कमी देखाई ॥ २ ॥

यह पृथिवी जननी सब केरी । पालन पोषण करनि घनेगी ॥

पुनि सब सुख सदा सब भांती । चासों सेवत यदि जन पती ॥ ३ ॥

इमि प्रभाव युत पृथु धरणीशा । प्रथम मदीपति भयमु मतीशा ॥

पुनि जनरजन सां भे राजा । अमितप्रभात ताल गुणधराजा ॥ ४ ॥

वेन तनय नृप वर पृथु गाथा । जो यदि पदिदि मो होइ सनाथा ॥

सामु न दुष्कृति वीनिउं भांती । तत्प नहन नाई ठरुतवहाती ॥ ५ ॥

अरु जो सुनत लहत नाहि शोरा । पृथु चग्नि जा करत अशोया ॥

यह मंत्रेय कहा नुम पाहीं । पूगेहु जो पृथु घगणि दुशही ॥ ६ ॥

## चौदहवा अध्याय ॥

श्री० चौदहवें अध्याय महें प्रुष के वंश प्रचेन ॥

जह्मधि करी तापदृग्निमें प्रज, सृष्टिपरत्न ॥ १ ॥

सोई वर्णन सुजन जा सुनिषं शेट्ट प्रगत ॥

हरिहरिजनयशश्रवणमां वृद्धनचहतपुनिमत्त ॥ २ ॥

श्रीपराशरमुनि बोले राजा पृथु के अन्नर्द्धान व पालित दो पुत्र हुये अन्नर्द्धान से शिम्बण्डिनी स्त्री में हविर्द्धान नाम तनयहुआ हविर्द्धानमे अग्नि के वशमें उत्पन्न धिपणानाम नारी में प्राचीनवर्हिष १ शुक्र २ गाय ३ कृष्ण ४ राज ५ व अजिन ये ६ पुत्र हुये ये महाराज प्राचीनवर्हिष बड़े प्रतापी व धर्मात्माहुये इनसे बहुत प्रजाओंकी बढ़ती हुई व पैसे २ यज्ञ इन्होंने पृथिवी में किये जिनमे रुग परने से कहीं धरणी खाली न रही इससे ये अतिप्रसिद्ध महाराज हुये हे इनका सवर्णानाग समुद्रकी कन्याके साथ विवाहहुआ उसमें इनसे १० पुत्र हुये उन सर्वोंका प्रचेतम एकही नाम हुआ थे लोग धनुर्विद्या में बड़े प्रवीणथे व सबका एकही स्वभावथा इसीमें एक सग समुद्रके भीतर सर्वों ने जाकर १०००० वर्ष तक तपस्याकी इतनी कथा सुन मैत्रेयजीने पूछा हे पराशरजी ! प्रचेतसों ने समुद्रके भीतर क्यों तपस्याकी कृपा करके कहिये पराशरजीने कहा मुनिये इनके पिता प्राचीनवर्हिष से ब्रह्माजीने कहा प्रजा बढ़ावो तब उन्होंने १० पुत्र उत्पन्न करके कहा हे प्यारे ! इससे ब्रह्माजी ने प्रजा बढ़ाने के लिये कहाहे मो हग तुमको आज्ञा देते हैं जिमभानि बने प्रजा बढ़ावो यह सुन प्रचेतमलोग बोले बहुत अच्छा पर यह तो बतलाइये कि कौन उपाय करें जिसमें प्रजा बढ़े प्राचीनवर्हिषजी ने कहा सब कुछ देनेवाले श्रीविष्णुजी की आराधना बिना मनुष्य कुछ भी नहीं करसक्ता बहुत क्याकरें तिससे जो मिष्टि की इच्छाहो तो सर्वभूतोंके स्वामी श्रीहृदिकी आराधना करो धर्म अर्थ काम व मोक्ष इनकी जिसको इच्छाहो उमे चाहिये कि पुण्यपुरुषोत्तम श्रीहरिकी आराधना करे जिम विष्णुकी आराधना करके सबसे प्रथम ब्रह्माजीने सृष्टि की है तुमभी तिसीको आराधो प्रजाकी वृद्धिहोगी जब प्रचेतमां के पिताने ऐसा कहा वे सब समुद्रके भीतर खड़ेहो श्रीहरिका स्मरण करनेलगे व १०००० वर्ष तक वहीं करतेरहे बड़ बड़ाभागी स्तोत्रहै जिसमे प्रचेतमलोग श्रीनारायण सर्व लोकरायण की स्तुति करतेरहे मैत्रेयजी ने यह सुन पूछा हे मुनिश्रेष्ठ ! जिस स्तोत्रमे उन लोगोंने श्रीहरिकी स्तुतिकी हंभागी मनाइये मनिने कहा मुनिये ॥

श्री- सफल जगत्पति प्रभु भगवान्ता । जहँ सब वरन प्रमिष्टा पाता ॥

प्रणयों सो एहि सहित निषाना । कर्णु मदा प्रभु मम कन्याता ॥ ३ ॥

स्थानर जगम स्रव जग रत्नामी । उपभारहित ज्योति रत्नगामी ॥  
 करों प्रणाम बहोरि बहोरि । नाथ कृपा कीजे यहि ओरी ॥ २ ॥  
 दिन अरु राति रूप हं जान्म । यद्यपि अरुप कवीश प्रकाश ॥  
 फालरूप तो कृपानिधाना । करहु कृपा श्रीपति भगवाना ॥ ३ ॥  
 देव पितर ऋषि सुधा समाना । सोम रूप तत्र श्रीभगवाना ॥  
 जीव भूत भोगत सब कोऊ । चन्द्ररूप त्रहिं विनय सुनाऊ ॥ ४ ॥  
 जो निज प्रभा हरत अँधियारी । घाम शीत जलप्रद अधिकारी ॥  
 सूर्यरूप त्यहि प्रणवों नीके । कृपा करहु हम पर गनि जीके ॥ ५ ॥  
 जो काठिन्य रूप जग क्षारी । शब्द गन्ध आश्रय करि भारी ॥  
 भूमि रूप तो प्रणत कृपाला । प्रणवों सत्रिधि तिजके जाला ॥ ६ ॥  
 योनि सकल भूतन की जोई । मकल शरीरि वीज जो होई ॥  
 सो जलरूप अनूप विधाता । नमो नमो लीजे सुरप्राता ॥ ७ ॥  
 हृद्य कव्य सुर पितृ मुख होई । जो भोगत नित नहिं पहुँ गोई ॥  
 अग्निरूप मो श्रीहरि आशु । कृपा करहु सबलोक प्रकाश ॥ ८ ॥  
 प्राण अपान उदान समाना । ध्यान रूप तुम श्रीभगवाना ॥  
 पच प्रकार प्राणि के देह । घसत यायु तनु तुम न सँदेह ॥ ९ ॥  
 सकल जीव अवकाश शरीरा । शुद्ध अनन्त मूर्धि यमु घीरा ॥  
 व्योम रूप प्रणवों हरि तोहीं । करिके कृपा दश वे मोहीं ॥ १० ॥  
 सय इन्द्रिय गणके सुरधाना । शब्द रूप तुम कृपानिधाना ॥  
 सुनिये विनय सकल नयपाला । हमहिं दशवे करहु निहाला ॥ ११ ॥  
 इन्द्रिय रूप त्रिपय सब माहीं । अक्षर धाण शील जो आहीं ॥  
 ज्ञानरूप धिनवों सो स्वामी । जो पट पट कर अन्नयामा ॥ १२ ॥  
 इन्द्रिय मों गहि अर्थ यहोगि । जीव तिपट पहुँघारत ओधि ॥  
 अन्त करण रूप मो रत्नामी । विनय सुनतु मम अन्तर्व्यामी ॥ १३ ॥  
 शासों होत जगत ज्यहि माहीं । पुनि प्रोदणत वदु अन्तर नाहीं ॥  
 प्रकृति रूप मो दयानिधाना । लेहू प्रणाम महान मदाना ॥ १४ ॥  
 अज अधिकार शुद्ध गुणहीना । चतुरि निरन्तर परम प्रवीना ॥  
 हस्य अवीर्य अल्प मूला । अननु शरीर रहित मगमूला ॥ १५ ॥

अनाकाश विन गन्ध रसादी । नयन कर्ण वच विना अमादी ॥

नाम गोत्र सुख तेज विहीना । अभयभ्रान्ति विनभजरनदीना ॥ १६ ॥

इसप्रकार प्रचेतसोंकी स्तुतिसुन गरुड़पै चढ़े समुद्र के भीतर श्रीभगवान् ने दर्शनदिया प्रचेतसों ने फिर गलीभाति प्रणाग किया श्रीभगवान् ने कहा हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं जो चाहो वरमागो उन्हेंने यही मागा कि जैसा हमारे पिता चाहते हैं प्रजा बड़े श्रीभगवान् अच्छा कहकर अन्तर्द्धान होगये और प्रचेतस, जलसे निकसे ॥

## पन्द्रहवां अध्याय ॥

दो० पन्द्रहवें अध्याय महँ घाड़ीजनि त्याहि माहिं ॥

दक्षजनन तासों कहव सृष्टि बड़ी सुनु ताहिं ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले हे भैत्रेय ! जबतक प्रचेतस तपस्या करनेरहे उस समय कोई राजा नहीं रहाया क्योंकि प्राचीनवर्हिष को नारदजी न ऐसा उपदेश दियाथा कि वे सब छोड़ वनकी तप करने चलेगये थे इसलिये पृथ्वी पर सब वृक्षही वृक्ष होगये थे कहीं भी जोतने बाने को धाणी नहीं रह गई थी इसलिये बहुतसी पूजा मर गई थी वृक्षों के ही कारण पवन भी नहीं चलनी थी जब प्रचेतस तपस्या करके निकसे वृक्षों को देव बड़ाही कोप किया व मुख से पवन व अग्नि छोड़ी सब वृक्ष जरने लगे पहिले वायु के जोर से वृक्ष उखड़ पड़ते फिर अग्नि से जलते फिर पवन उड़ालेजाती जब इसभाति बहुत वृक्ष जरगये थोड़ेही रहगये तब वृक्षोंके राजा चन्द्रमा जीने प्रचेतसों से कहा हे राजकुमारो ! कोप शान्त करो इन वृक्षों से भी आरलोगों का कुछ काम निकलेगा अर्थात् इनके एक कन्या है उसे लेकर दत्तोजने अपनी स्त्री बनायो इसका मारिषा नाम है ले जावो आधे तुम्हारी तपस्या के तेजसे व आधे हमारे तेजमे हमें महाप्रतापी दक्षप्रजापति नाग पुत्रहोगा उममे बड़ी सृष्टि चलेगी यह कन्या वृक्षों को इमभानि मिली कि एक रण्डुनाम मुनि थे वे सुगमणीक गोमती नदी के किनारे तपस्या करनेथे उनके चलायमान होनेके लिये इन्द्र ने प्रम्नोचानाम अम्परा भेजा उमने मुनि को अपने वग बालिया मुनि १०६ वर्षतक मन्दराचल पर जाय उमके सग विद्या काने रहे एक दिन मुनि ने दक्ष

मैं इन्द्रलोक को जाया चाहती हूँ आज्ञा दीजिये मुनि उसमें आसक्त तो येही कहा  
 कुछदिन और रह जावो गाथा के भयभे वह रह गई इनने गे, १०१ तर्प फिर धीरे  
 फिर उसने मुनिसे कहा मुनिने फिर उसे धिलगाया इसभाणि कईवाग कहा सुनी  
 हुई एकदिन मुनि उठे व हरपराते हुये नदीकी ओर चले अप्सराने कहा कहा  
 जाइयेगा मुनिने कहा बोलो नहीं मध्या, करनेका समय है काल धीतजायेगा  
 उसने हँसकर कहा सैरुड़ों वर्ष होगये आपको संध्या करने नहीं देखा मुनिने  
 कहा सत्य २ कहनी है व हँसो आ करनी हाको तो तू प्रात मध्याके पीछे मि-  
 लीथी और यह साय संध्याका समय है सत्य सत्य बताव किनना समय हुआ  
 हास्य न कर अप्सरा बोली हास्य नहीं करती आपको मेरे सग विहार करतेहुये  
 ६०७ वर्ष ६ मास ३ दिनभीते अपि बोले सत्यही कहती है हमनो यही मानते  
 हैं कि तुम्हारे सग विहार करनेगें हमको एकही दिन धीताहै अप्सराने कहा आप  
 के सामने गे भूट क्यों कहती फिर पृच्छनेपै तो ऐभे महात्मा के सागने कोईभी भूट  
 न कहेगा यहसुन मुनिने वहा पश्चात्तापकिया हाय गेने सबभ्रमनी तपस्या नष्ट  
 कगदी व ब्रह्मज्ञानियोंका धर्म जो वेद व ब्रह्म तिमै नष्टकरके इस वेश्याके सग  
 भ्रष्ट होगया हाय मेरा विवेक कहागया काग क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्ग्यादि  
 दोषों को जीत कर यह ब्रह्मज्ञान मेने घटोरा था जिम कागने मेरी यह दशा थी  
 उसे भी धिक् है हाय वेदविद्या के काग ए ये सब व्रत एकत्र हुये थे उन्हें गेने  
 नरक समूह के मार्ग से नष्ट का दिये इस भाणि ब्रह्म पद्धिताकर उस प्रम्लो-  
 चासे बोले हे दुष्टे ! इन्द्रलोक को अगी चलीजा तूने इन्द्रका काम अच्छाभाति  
 किया नहीं तो तुफको अगी भस्म करूंगा क्याकह तेरेमग इनने दिन रहानही  
 तो भस्म करदी देता शयवा तेरा भी कौन दोषहै हर्षा शक्तिनेन्द्रिय शोगरी  
 नहीं तो इन्द्र के भिय करनेवाली व महाभोट की प्यगरी व जनीव निन्दित  
 तू मेरा तप काहे को नाशनी जबवर मुनि इस भाणि रोने पीटने क्रमते रहे  
 तबतक उसे मोरे गय के मूर्च्छा आगई व मन्वांग मे पसीना बहा मुनि ने  
 वहा कोपरकरके फिर वहा चली जा चलीजा यहसुन मुनिने आश्रममे प्रन्नाषा  
 आकाशमार्ग हो मागी व वृषों के पत्रों में अपना पसीना पीक्षनेनगी  
 इसकारण जो अपिके बीजमे उमरु गर्भ था यह रोमा की उद निवन  
 वृषों में दोषदा पवन ने उस को उदाय एकत्र कर दिया व चन्द्रगा पहनने

कि हमने अपने फिरणों में पोषण कर बढ़ाया वही मारिषा नाम कन्या वृक्ष  
लोग तुमको देते हैं क्रोध न कीजिये यह कण्डमुनि की कन्या वृक्षों से उत्पन्न  
हमारी व वायु व प्रम्लोचाकी भी बेटी आपलोग लवें परागरजीवोले हे मैत्रेय ।  
जब कण्डुजी की तपस्या भ्रष्टहोगई तो मुनि बदरिकाश्रमको चलेगये व बड़ा  
ऊपरको धाहु उठाकर फिर तपस्या करनेलगे यह सुन प्रचेतमोंने चन्द्रमा से पूछा  
कि कण्डुमुनि जब फिर तपस्या करनेलगे तो कौन स्तोत्र जपते थे सुनाइये  
चन्द्रमाने कहा सुनिये ॥

चौ० परम्पार हरि अपरम्पारा । परसे पर परमार्थ विचारा ॥

ब्रह्म पार पर पार स्वरूपा । परसे पार पार पर भूषा ॥ १ ॥

कारणसहित अकारणगामी । तामु हेतु परहेतुक स्वामी ॥

कार्य कर्म कर्ता तुम होई । पालतसबहि तनिकनहिगोई ॥ २ ॥

ब्रह्म समर्त्य ब्रह्म सचकारक । ब्रह्म प्रजापति अम्युत पारक ॥

अव्यय ब्रह्म नित्य अज मोई । अक्षय सग रहित नहि, गोई ॥ ३ ॥

ब्रह्माक्षर अज नित्य कहावत । पुरुषोत्तम पुराण श्रुति गावत ।

सो रागादिक हरहु कृपाला । प्रणवीं तोहि रहितसब जाला ॥ ४ ॥

हे प्रचेतसो ! वही स्तोत्र कण्डु जपते थे अब इस मारिषाके पूर्वजन्मकी कथा  
सुनाते हैं सुनिये यह पूर्वजन्म में रानी वी इसके पुत्र कन्या कुछ नहीं हुये थे  
कि विधवा होगई उसी अस्थायमें श्रीविष्णुकी स्तुति करनेलगी स्तुतिसे भग-  
वान् प्रसन्नहो बोले हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहैं वदान गागो यह सुन उमने यह  
वरमागा कि हे भगवन् ! मैं बालकपनही में विप्रा होगई इससे यह वर मागनीहू  
कि जहा जन्महो वड़े सुन्दर बहूत से भरे पतिहों व प्रजापतिके समान पुत्रहों  
व यहभीहो कि मैं रूपमपत्तिमयुक्त होऊ व योनिमें न पैदा होऊ यह सुन श्री  
भगवान् ने कहा अच्छा अन्य जन्म में बड़े पगकर्मा दानी विज्ञानी गदासु-  
गील १०तेरे पति होंगे व पुत्रभी अत्युत्तमहोगा जिनमें बड़ीप्रजावद्देगी नीनों  
लोकमें उसका यश व ऐश्वर्यहोगा व तुमभी हमारे प्रसादमें जयोनि से उत्पन्न  
होवोगी व सब सुशीलादि गुण भी तुममें होंगे यह यह श्रीविष्णुजी अन्न-  
र्दानहोगये यह वही रानी मारिषाई जो आपलोगाकी स्त्री होगी फिर यहसुन  
प्रचेतसोंने वृक्षों के ऊपर पोष न किया व शास्त्रानुसार उमके भग विवाह कर

अपनी स्त्री बनाया उन १० प्रचेतसों से मारिषा में दक्षनाग पुत्रद्वये इन्हीं ने ब्रह्माजी की आज्ञासे दो पाँचवाले ५ चार पाँचवाले भी बहुत प्राणी सृष्टि के लिये उत्पन्न किये इनके पीछे बहुतसी कन्या इन्हीं ने उत्पन्न कीं उनमें १० धर्म को दीं १३ कश्यपको २७ चन्द्रगाको तिन्हीं में देवता देत्य नाग गाय पक्षी गन्धर्व अम्परा व दानवादि सब उत्पन्नहुये तबसे गेथुनी सृष्टि बहुत हुई इसके प्रथम भी थी पर बहुत्वा सफल व दर्शन व सर्गही से सृष्टि होती थी क्योंकि आगे लोग बड़ी बड़ी तपस्या करते थे व तेजस्वी होते थे उनमें वैभीही शक्ति होती थी इतनी कषामुन गेथ्रेयजी बोले कि प्रथम हमने सुनाया कि ब्रह्माजीके दाहिने अँगूठासे दक्ष उत्पन्नहुये हैं फिर प्रचेतसोंके केंबेहुये व यह कि चन्द्रमादी की कन्या मारिषा थी फिर उसके पुत्र दक्ष चन्द्रमाके श्वशुर कैसेहुये यह बड़ाही सदेह है पराशरमुनि बोले गेथ्रेयजी सुनिये उत्पत्ति व नारा प्राणियोंमें निरपेक्ष ऋषिलोग वा अन्य दिव्यदृष्टिलोग इसविषयमें मोह नहीं करने ये दक्षादि युग २ हुआ करने हैं व फिर नागको प्राप्त होतेहैं पडितोंको चाहिये कि इसमें मोहित न हों और छुटाई व बढ़ाई आगे न थी केवल तपोव नहीसे बढ़ाई छुटाई ली जा ती थी क्योंकि प्रमावही कारणहै आगे पीछे उत्पन्नहोने से कुछभी नहीं होता यह सुन गेथ्रेयजीने कहा हां यह तो समझा अब देवता दानव गन्धर्व नाग राक्षसादिकों की उत्पत्ति विंगेप गौनि, से विस्तारसहित सुना चाहने हैं पराशरजी बोले जब पहिले पहिल दक्ष तो भजा बनाने के लिये ब्रह्माजीने आत्मादी थी व जैसे उन्होंने सृष्टिकी सुना पहिले दक्ष जीनेभी मानसीही सृष्टिकी रीतिसे देवता ऋषि गन्धर्वादि बनाये जब इस सृष्टिमें प्रजा न बड़ी तो गेथुनी सृष्टि का विचार किया व वीरणा नाम प्रजापति की अमिकनी नाग कन्या से अपना विवाह किया उममें सृष्टि के लिये ४००० पुत्र उत्पन्न किये उनको नाराद जीने देया कि सृष्टि बढ़ाया चाहते हैं एकद्वय में आयये जो १००० हयैरयनामधे दिनमें फटा है हयैरवलोगो। तुम्हाय अमिप्राय ऐसा मन्त्रित होना है कि तुम प्रजाओं की सृष्टि करोगे तुमलोग बड़े अनापिहो इस पृथ्वी का अन्न व ऊरु व नीचाँसो जाननेही नहीं कि किननाटे फिर प्रजाओंकी सृष्टि कैसे करोगे जो कशे कि हम इसके नीचे ऊपर पर सब करीं चाकरहैं तो जाकर देन क्यों नहीं लेते प्रजाओंको कैसे बनाना चाहते हो बड़े अनापिहो यह सुनाये सब दशोंदशों

का अन्नलेनेकोचलेगये आजतकनहींलौटे जैसेकि समुद्रको जाकर फिर नदिया  
 नहीं लौटनी जबहर्षश्वसन्नक ५००० पुत्रनारदके वहाँकानेसे नष्टहोगये तो दक्षजी  
 ने १००० पुत्र और उमीष्रीमें उत्पन्न किये इनका गवलाश्व नामधरा व इनसे  
 भी कहा कि सृष्टिरुगे नारदजीने आकर इनसेभी वही कथा वे सुनकर आपस  
 में कहनेलगे मुनि सत्य कहतेहैं विना पृथिवीका प्रमाण जाने पूजावनाकर क्या  
 करेंगे वस यही शोच विचार वेगी अपने भाइयोंकी पदवीको चलेगये अवतक  
 नहीं लौटे तबमे गेमा कोईमाई नहीं हुआ जो अपने भाइयों को ढूढ़ने गयाहो  
 यह अपूर्व स्वभाव उन्हीं महाशयोंका था दक्षजीने देखा कि हमारे इनपुत्रोंकोभी  
 नारद ने वहाँकाय कहीं भगादियाइमलिये नारदको शापदिया कि जाव तुम्हारा  
 यह शरीर छूटजावे फिर गर्भवासीहो यह शापदे जाना कि पुत्रनो नारदके मारे  
 वचनेही न पावेंगे ६० कन्या उत्पन्न कीं उनमें १० धर्मको दीं १२ कश्यप को  
 २७ चन्द्रमाको ४ गिष्टनेमि को २ बहु पुत्रको २ अंगिरा को २ रुशाश्वको इन  
 ६० के नाम ये हैं अरुन्धती १ वसु २ यामी ३ लम्बा ४ भानु ५ मरुत्वती ६  
 सकल्पा ७ मुहूर्त्ता ८ साष्या ९ विश्वा १० येसव धर्मकी स्त्रियाँहैं इनकी सन्तान  
 मुनिये विश्वाके विश्वेदेवद्वये साष्याके साष्य मरुत्वती के मरुद्गण वसुके वसु  
 भानुके भानु मुहूर्त्ताके मुहूर्त्तज लवाके घोषयामीके नागवीथी अरुन्धतीके पृथि-  
 वीका सबविषय सकल्पाके सकल्प वसु के जो वसुद्वयेहैं ८ थे उनके आप ध्रुव  
 सोमधर अनिल अनल प्रत्युप प्रमान ये नामहैं आपके पुत्र तैत्तरीय्य अग गांन  
 धनि ये द्वये ध्रुवके काल सोमके वर्षतघरके मनोहरा स्त्रीमें द्रिण्टृत हव्य वह  
 गिगिरमाण व रमण ये पाचपुत्र द्वये अनिलकीस्त्री शिवामें मनोन व अविज्ञात  
 गति अग्नि के सरपतके घुस्सामें कुगार नागक व राक्ष विशाख नैगमेय ये ४  
 पुत्र द्वये कृत्तिकाकी के पुत्रका कार्तिकेय नाम प्रत्युपके देवल देवन्न के दो पुत्र  
 सगवान् व मनीषी बृहस्पतिकी भगिनी का कामवेरिणी नाम था जो आठपे  
 वसुमभासकी स्त्री हुई जिसमें विश्वकर्मा नाम पुत्रद्वये भिन्दा ने देवनाओं के  
 सन विमान व घर बनाये गिर्यपविद्या उन्हीं की भवारी हुईटे जिममेवहन मे  
 गनुष्पगी धवईका काम करके जीते हैं २ अजैकपाद १ अदितुष्प २ राष्ट्रा ३  
 रुद्र ४ ये ११ रुद्रोंहैं त्वष्ट्रा के विश्वरूप हर ५ चद्ररूप ६ अम्बक ७ अपनजित  
 ८ वृषाक्षि ९ जग्मु १० रूपदी ११ गेन गदी ११ रुद्र इनष्ट्रोटे तेजमे मेरुहो



अपनी स्त्री बनाया उन १० प्रचेतसों से मारिषा में दक्षनाम पुत्र हूये इन्हीं ने ब्रह्माजी की आज्ञासे दो पाँचवाले व चार पाँचवाले भी बहुत प्राणी सृष्टि के लिये उत्पन्न किये इनके पीछे बहुतसी कन्या इन्हीं ने उत्पन्न कीं उनमें १० धर्म की दीं १३ कश्यपको ३७ चन्द्रमाको तिन्हीं में देवता दैत्य नाग गाय पक्षी गन्धर्व अप्सरा व दानवादि सब उत्पन्न हूये तबसे मैथुनी सृष्टि बहुत हुई इसके प्रथम भी थी पर बहुतधा सफल व दर्शन व स्पर्शही से सृष्टि होती थी क्योंकि आगे लोग बड़ी बड़ी तपस्या करते थे व तेजस्वी होते थे उनमें वैभीही शक्ति होती थी इतनी कथामुन मैत्रेयजी बोले कि प्रथम हमने सुनाया कि ब्रह्माजीके दहिने अँगूठासे दक्ष उत्पन्न हूये हैं फिर प्रचेतसोंके कैसे हूये व यह कि चन्द्रमाही की कन्या मारिषा थी फिर उसके पुत्र दक्ष चन्द्रमाके श्वशुर कैसे हूये यह बढ़ाही सदेह है पराशरमुनि बोले मैत्रेयजी सुनिये उत्पत्ति व नाश प्राणियोंमें नित्य है ऋषिलोग वा अन्य दिव्यदृष्टिलोग इसविषयमें मोह नहीं करते ये दक्षादि युग २ हुआ करते हैं व फिर नाशको प्राप्त होते हैं पण्डितोंको चाहिये कि इसमें मोहित न हों और छुटाई व बढ़ाई आगे न थी केवल तपोबलहीसे बढ़ाई छुटाई ली जाती थी क्योंकि प्रभावही कारण है आगे पीछे उत्पन्न होने से कुछभी नहीं होता यह सुन मैत्रेयजीने कहा हाँ यह तो समझा अब देवता दानव गन्धर्व नाग राक्षसादिकों की उत्पत्ति विशेष मानिसे विस्तारसहित सुना चाहते हैं पराशरजी बोले जब पहिले पहिले दक्षको प्रजा बनाने के लिये ब्रह्माजीने आज्ञा दी थी व जैसे उन्होंने सृष्टिकी सुनी पहिले दक्षजीनेभी मानसीही सृष्टिकी रीतिसे देवता ऋषि गन्धर्वादि बनाये जब इस सृष्टिसे प्रजा न बड़ी तो मैथुनी सृष्टि का विचार किया व चीरणनाम प्रजापतिकी असिकमी नाम कन्या से अपना विवाह किया उसमें सृष्टि के लिये ५००० पुत्र उत्पन्न किये उनको नारद जीने देखा कि सृष्टि बढ़ाया चाहते हैं एकान्त में आप थे जो ५००० हर्षश्वनामथे तिनसे कहा हे हर्षश्वलोगो ! तुम्हारा अभिप्राय ऐसा लक्षित होता है कि तुम प्रजाओंकी सृष्टि करोगे तुमलोग बड़े अनारीहो इस पृथ्वी का अन्त व ऊपर व नीचा तो जानतेही नहीं कि कितना है फिर प्रजाओंकी सृष्टि कैसे करोगे जो कहो कि हम इसक नीचे ऊंचे व इस पर सब कहीं जा मरूँ तो जाकर देख क्यों नहीं लेते प्रजाओंको कैसे बनाना चाहते हो बड़े अनारीहो यह सुन वे सब दशोदिशाओं

का अन्नलेनेकोचलेगये आजतकनहींलौटे जैसेकि समुद्रको जाकर फिर नदिया नहीं लौटनी जबहयंश्वसन्नक ५००० पुत्रनारदके वहकानेमे नष्टहोगये तो दक्षजी ने १००० पुत्र और उसीस्त्रीमें उत्पन्न किये इनका गवलाश्व नामधरा व इनमे भी कहा कि सृष्टिकरो नारदजीने आकर इनसेभी वही कहा वे सुनकर आपस में कहनेलगे मुनि सत्य कहतेहैं विना पृथिवी का प्रमाण जाने प्रजावनाकर क्या करेंगे वस यही शोच विचार वेगी अपने भाइयोंकी पदवीको चलेगये अवतक नहीं लौटे तबमे ऐमा कोईभाई नहीं हुआ जो अपने भाइयों को दूढ़ने गयाहो यह अपूर्व स्वभाव उन्हीं महाशायोंका था दक्षजीने देखा कि हमारे इनपुत्रोंकोभी नारद ने वहकाय कही भगादियाइमलिये नारदको शापदिया कि जाव तुम्हारा यह शरीर छूटजावे फिर गर्भवासीहो यह शापदे जाना कि पुत्रतो नारदके मारे वधनेही न पावेंगे ६० रुन्या उत्पन्न कीं उनमें १० धर्मको दीं १३ कश्यप को २७ चन्द्रमाको ४ गिष्टेनिमि को २ बहु पुत्रको २ अगिरा को २ रुशाश्वको इन ६० के नाम ये हैं अरुन्धती १ वसु २ यामी ३ लम्बा ४ भानु ५ मरुत्वती ६ सकल्पा ७ मुहूर्त्ता ८ साध्या ९ विश्वा १० येसव धर्मकी स्त्रियाँहैं इनकी सन्तान मुनिये विश्वाके विश्वेदेवद्वये साध्याके साध्य मरुत्वती के मरुद्गण वसुके वसु भानुके भानु मुहूर्त्ताके मुहूर्त्तज लवाके घोषयामीके नागवीथी अरुन्धतीके पृथिवीका सवविषय सकल्पाके सकल्प वसु के जो वसुद्वयेहैं ८ थे उनके आप ध्रुव सोमधर अनिल अनल प्रत्युप प्रभान ये नागहैं आपके पुत्र वैतराष्ट्र श्रम गांत धनि ये द्वये ध्रुवके काल सोमके वर्षतधरके मनोहग स्त्रीमें द्विविणहृत हव्य वह शिशिरमाण व रमण ये पात्रपुत्र द्वये अनिलकीस्त्री शिवांग मनोज व अविज्ञात गति अग्नि के सरपतके घुस्सामे कुगार नामक व शाल विगाख नेगमेय ये ४ पुत्र द्वये कृत्तिकावीं के पुत्रका कार्तिकेय नाम प्रत्युषके देवल देवल के दो पुत्र क्षमावान व मनीषी बृहस्पतिकी भगिनी का कामवेरिणी नाग था जो आठवें वसुमहासकी स्त्री हुई जिसमें विश्वकर्मा नाम पुत्रद्वये जिन्दों ने देवनाओं के सग विमान व घर बनाये गिल्पविद्या इन्हीं की भँचारी हुईटे जिसमे बहुत मे गनुष्पभी धरका काम करके जीते हे २ अजेकपाद १ अटिर्युष्प २ तश ३ रुद्र ४ ये ११ रुद्रोंहैं तश के विश्वरूप हर ५ वद्वरूप ६ द्यम्बक ७ जपगजित ८ वृषाणि ९ शम्भु १० फपर्दा व गैत गृही ११ रुद्र इन्द्रोंके तेजमे सरदाँ

पुत्र हुये अब कश्यपकी स्त्रियोंके नाम सुनिये अदिति दिन दनु काला अरिष्टा सुरसा वसा सुरभि विनता ताम्रा क्रोधवशा इगकट्टुमुनि अब इनकी सतानि के नाम सुनो जो तुषिनाम चाक्षुष मन्वन्तरमें देवतागण कहाते थे जब वैवस्वत मन्वन्तर लगने परथा सर्वोंने मिलकर सम्मत किया कि आत्रो इस मन्वन्तर में भी जन्म लेंवें जिम से इमगेंगी इगी देवता रहें यह कह जब वैवस्वत मनुलगा तो कश्यपसे अदितिनाम स्त्रीमें उत्पन्नहुये वे विष्णु १ शक्र २ अर्यमा ३ धाता ४ त्वष्टा ५ पूषा ६ विवस्वान् ७ सविता ८ मित्र ९ वरुण १० अश ११ भग ये १२ आदित्य हुये यह वही हैं जो चाक्षुष मन्वन्तर में तुषिनाम देवगण थे जो चन्द्रमाकी २७ स्त्री कहीथीं सत्रमें बड़े २ तेजस्वी पुत्र हुये अरिष्टनेमि की स्त्रीके १६ पुत्रहुये वरुणके ४ कन्याहुई वही विजली कहानीहैं अगिराके २५ वेदकी ऋचाओं की अधिष्ठातृ देवता हुई व कृशाश्व के देवप्रहरण नाम पुत्र हुये ये सहस्र युगोंके पीछे फिर उत्पन्न होते हैं इसीसे फिर इनकी उत्पत्ति कह नी पढ़ी जैसे सूर्यका उदयास्त एक दूमेरे के पीछे हुआ करता है इनी भाति कल २ में देवगणभी होते व नाशको प्राप्तहोते और कश्यप से दितिनाम स्त्री में हिरण्यकशिपु व हिरण्यक्ष दो अतिदुर्जय पुत्रहुये यह हमने सुनाहै व दिति हीके सिंहिकानाम कन्यार्या हुईथी जो विप्रचित्ति को व्याही गई हिरण्यकशिपु के अनुद्वाद द्वाद प्रह्लाद व सद्वादये ४ पुत्रहुये उनमें प्रह्लाद बड़े धर्मवान् हुये हैं जिन्होंने श्रीविष्णुजीकी वही भारी भक्तिकी है जिनके ऊपर हिरण्यकशिपु ने अग्नि बरवाय छोड़वादिगा पर जिससे उनके हृदयमें श्रीविष्णुका वासया तनिक गर्भी भी न पहुची जार कौन सके फामीमें बरवाय समुद्रमें फेंकनादिया तब पृथिवी चलायमान होगई अनेक शस्त्रात्र मारे छोड़ेगये पर उनका अंगन कस उनके हृदयमें तो विष्णुजास धाही देह पर्यन्तमे भी कठिन होगई थी बड़े २ विपथर सर्प छोड़ेगये पर किसीने न काटा पर्वतोंके नीचे दबादियेगयेपर न कचरे पर्यन्त परसे नीचेभी टकेलेगये पर कुब्जगी चोट न लगी सशोपक पवन चलाया गया पर उनके अंगोंमें लगनेसे वही नाश होगया बड़े २ दातोंवाले मतवाले हाथी मारने के लिये हुलकार गये पर इनकी देहमें लागते उनके दान दृग्गये देत्यराज के कहने से इनकेही मारनेके लिये पुरोहितों ने कुर्या उत्पन्नकी वह निकट पट्टचनेही आपही भस्म होगई इनको कौन भस्मको शम्बरामुरकी बनाई

हुई अनेक भातिकी माया इनके ऊपरकी गई पर जो इनकी रक्षाकेलिये सुंदर्गन चक्र रहनाया उसने सबको नागा इनका स्वभाव भी ईश्वरानुग्रह से अपूर्वही था कि जैसे अपनाको जानते थे वैसेही अन्यको भी वैर किमीमे नहीं मित्रता सबसे बड़े धर्मात्मा सत्यशीलादि सब गुणोंके खानि सप्त माधुश्री के उपमान सब इनके उपमेय ॥

## सोलहवा अध्याय ॥

दो० सोरहवें अध्याय महं मुनि प्रह्लाद चरित्र ॥

पुनि २ जिमि पूछेउ कहत मुनिजनि होहुसचित्र ॥ १ ॥

श्रीमेत्रेयजी बोले हे मुनिराज ! आपने मनु का वश कहा उससे भलीभाति प्रिदितहुआ कि इस समार के कारण श्री विष्णुही हैं परन्तु जो आपने कहा कि दैत्यश्रेष्ठ प्रह्लादजी को अग्निमें जलाया अस्रोंके लगने से उनके अग न फटे व प्राण न निकले जब वे समुद्रमें छोड़ेगये पृथिवी चलायमान हुई व जब वे बाँधेगये तबगी धरणी चनी पहाड़ोंके नीचे दबाने से भी न कचरे इन्हेंआदि जो २ अनुत्पभाव उन महावैष्णव शिरोमणि प्रह्लादजी के आपने रहे वे विस्वारपूर्वक कहिये हमारे सुननेकी इच्छा है इनको दैत्योंने शत्रुओं से क्यों मारा व समुद्र में क्यों फेंका कि ये धैर्यही कैसे धारण कियेरेह पर्वतों से क्यों दबवाये गये सग्यों से फटवाये काहे हो गये पर्वतों से क्यों गिरायेगये व अग्नि में क्यों डालेगये हाथियों से उनके ऊपर दान क्यों चलावाये गये भगोपक पवन दैत्यों ने इनके ऊपर क्यों छोड़ा व दैत्यों के गुरुओं ने कृत्या क्यों छोड़ी शम्भरामुर ने सद्स्रों अपनी माया इनके ऊपर क्यों चलाई दैत्यों के रसोईवरदारों ने भोजन में विष क्यों डारा कि जिममे ये न मों हे भगवन् ! ये सब महात्मा प्रह्लादके चरित्र सुनाचाहते हैं कुछ इसविषयमें दगआश्रय नहीं मानने कि ऐसी ऐसी विपत्तिया हुई पर प्रह्लादजी को कुछ भी न व्यापी विष्णु के परम भक्त शिरोमणिको वे कैसे होसकते हैं क्योंकि उनके छोटेसे छोटे भक्त को नहीं सतासकते हमें केवल इस विषय में सदेह है कि जिस ऐसे महात्मा धर्म पाप यण केशवाराधन में तत्पर ऐसे परमशुशील में उन्हीं के वंशजालों ने कैसे इतने उपद्रव किये ऐसे महात्मा के साथ तो वैरीभी ऐसे पाप्य नहीं करमते न

कि उनके वशही वाले करें ताहेसे दैत्येश्वर प्रह्लादजी के चरित्र अच्छी भांति कहिये हमारे सुनने की इच्छा है ॥

## सत्रहवां अध्याय ॥

दो० सत्रहवें अध्याय महँ जिमि प्रहार भे सर्व ॥

श्री प्रह्लाद शरीर महँ कहवै सुनहु नु खर्व ॥ १ ॥

अन्य सुतनमहँ राग पुनि विष्णुपरायणताहि ॥

वैर कीन दनुजाधि पति अय वर्णत हैं जाई ॥ २ ॥

पराशरमुनि बोले हे मैत्रेयजी ! तिन बुद्धिमान् उदारचरित्र महात्मा प्रह्लाद जी के चरित्र आप से कहते हैं अच्छी भांति सुनिये दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु ने ब्रह्मा के वरदान से अहकारीहो तीनों लोक अपने वश करलियाइन्द्र पदवीको आपही भोगने लगा व सूर्यपवन अग्नि वरुण चन्द्रमा कुबेर वसराज सब आपही होगया व यज्ञों के सब भाग भोगने लगा देवतालोग तिसके मय से स्वर्ग छोड़ मनुष्यों का वेप बनाय पृथ्वी में घूमने लगे तीनों लोकों को भलीभांति जीत सब त्रिलोकी का ऐश्वर्य पाय महाअहकारीहो सब राज्य भोगने लगा गन्धर्वादि उसी के आगे गाने बजाने लगे जब वह मदिरा पी बैठताया तो सब सिद्ध गन्धर्व नागादि सेवा करते थे व कोई २ सिद्ध लोग बजाते गाते जय जय शब्द करते थे अप्सरों के नाच सहित स्फटिक मणियों के बजरहारा पर बैठकर मदपान करताया तिसके पुत्रका प्रह्लाद नाम था जो कि वड़ेही विष्णुभक्त थे गुरु के घर में बालकों के संग पाठ पढ़ते थे एक दिनकी बात है कि प्रह्लादजी अपने गुरु के साथ पिता के निकट गये पिता उससमय बहुतही मतवाला बैठाया पुत्रको देख कोरा में बैठाय प्यारमे बोला अय हमारे दुलारे प्यारे प्रह्लाद ! इतने दिनों में तुमने जो जो पढ़ा व उसमें जो तुम्हें बहुतअच्छा लगताहो व जो सबका साराण हो पढ़ो तो यह सुने प्रह्लाद जी बोले पिता जी जो मैं अच्छीभांति पढ़ा हू व अच्छा समझता हू आपको सुनाता हू सुनिये आदि मध्य अन्त हीन अज बुद्धिनाश रहित सब के सिताने वाले व सब के कारण अच्युत भगवाचके साष्टांग प्रणाम हैं वस यही पढ़ा यह सुनतेही अनीव क्रोधयुक्त हो आगे खड़े हुये गुरुजी से कहा अय

नीच ब्राह्मण ! तूने हमारे वैरीही की मक्कि इम लड़के को मिखलाई हमारा  
 वड़ाही अनादर किया यह सुन गुरुजी बोले हे दैत्येश्वर ! आप कोप के  
 वश होने के योग्य नहीं हैं तुम्हारा पुत्र जो कहना है हमने नहीं पढ़ाया तब  
 हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद से पूछा हे वत्स ! तुम्हारे गुरु जी कहने हैं कि यह  
 हमने नहीं पढ़ाया तो तुमने किम से सीखा वतलाओ प्रह्लादजी ने कहा हे  
 तात ! इस सत्सार के मिखानेवाले श्री विष्णुही हैं उन्हें छोड कोई किम से  
 सीखना है हिरण्यकशिपु बोला अरे दुष्टबुद्धे ! विष्णु कौन है जिस को मुझ  
 जगतीश्वर के आगे वार वार कहना है फिर प्रह्लादजी ने कहा जिन विष्णु  
 का परमपद शब्द गोचर नहीं होसकता न योगी लोगों के ध्यान में आता है  
 व जिसका रूप यह सत्सार है वह विष्णु सबका ईश्वर है न कि तुम हिरण्यक  
 शिपु बोला हे मूर्ख ! क्या हमारे होनेपर भी दूसरा और परमेश्वर जिसे वार २  
 कहता गेने जाना तू मराचाहना है प्रह्लाद फिर बोले हे तात ! वे केवल मेरेही  
 विष्णु नहीं हैं वरन सब पूजाओं व आप के व सब ब्रह्मादि परमेश्वरों के भी  
 धाता विधाता वही हैं इम से प्रमन्न हूजिये कोप क्यों करते हो फिर हिरण्य-  
 कशिपुबोला इम दुर्बुद्धि के हृदय में कौन पापी पैठा है जिमसे यह ऐसे अ  
 साधु वचन बोलताहै फिर प्रह्लादजी बोले हे पिता जी ! सो विष्णुजी केवल  
 हमारेही हृदय में नहीं हैं किन्तु सबलोक को दवाये बैठे हैं व सोई हमको व  
 आपको व सब सत्सार को सब कार्य करनेकी आज्ञा दिया करतेहैं क्योंकि सब  
 के हृदय में टिकेहैं यह सुन फिर हिरण्यकशिपु बोला इस दुष्ट को यहा से  
 निकालो व गुरु के घर में लेजाओ कि पढ़ाया जावे जिमगँहमारे शत्रुमें लगी  
 हुई इसकी मति लौट जावे इसभाति जब दैत्येश्वर ने कहा दैत्यलोग गुरु के  
 घर में पठे आये गुरुकी सेवा करते हुये प्रह्लादजी फिर विद्या पढ़ने लगे बहुत  
 दिनों के पीछे हिरण्यकशिपु ने फिर प्रह्लाद को बुलाया व कहा हे पुत्र ! कोई  
 कथा कहे तो प्रह्लादजीने कहा सुनिये जिस विष्णु से प्रकृति व पुरुष उत्पन्न  
 हुये व जिस से यह चराचर सत्सार हुआ व जो इस सबका कारण है वह मेरे  
 ऊपर प्रसन्न होवे फिर हिरण्यकशिपु बोला इस दुष्टात्मा को मारही डालो इस  
 के जीने से कुछ भी प्रयोजन नहीं यह अपने पत्तवालों की दानि करने से  
 कुलका अगारही है इस में भलाई न होगी ऐसी आज्ञाके पातेही सेकरो, दैत्य

हथियार उठाकर प्रह्लाद के मारने को दौरे प्रह्लाद जी हैं करबोले हे दत्तो ! जैसे तुम्हारे शस्त्रों में विष्णु टिके हैं वैसे ही हम में भी है यह हमें निश्चय है इसी से तुम्हारे हथियार हमारे विषय में नहीं चलसकते यह कहने ही रहे कि दैत्यों ने सैकरों अस्त्रशस्त्र चलाये पर इनको तनिकभी पीड़ा न हुई वरन वैसे ही सब आग बने रहे यह दशा देव हिरण्यकशिपु ने कहा हे कुर्वुष्टे ! तू वैरी हीके पक्षका आदर करता है उससे अपनी बुद्धि लौटार हमने तुम्हे अभयदान दिया अनि मृद मति न हो प्रह्लादजी फिर बोले सब मयोंके हरनेवाले विष्णु हमारे हृदयमें टिके हैं फिर भय कहा रहसकती है कि जिस विष्णु के म्गणमात्रसे जन्म हुआ था आदिसे उठे भय नाश होजाने हैं हे तान ! यह सुन हिरण्यकशिपु अपने सप्योंसे बोला हे मेरे सप्यों ! इस दुराचारी अत्यन्त दुर्गतिको विपकी ज्वालासे उज्ज्वलित अपने मुखोंमें काट इन्ने गारहाली यह सुन कुहक तक्षक अन्धकादि सप्य जो उसके यहाये सब अंगोंमें उन्हेने काटा पर प्रह्लादजीके हृदयमें तो सबके आनन्द देनेवाले विष्णुजी बैठेही ये नहीं मालूम उनका विष कहांगया ये ज्योंके त्यों ही बैठे रहे सप्योंने दैत्यराज ने कहा हे दैत्येश्वर ! हम लोगों के दान टूटगये मणि फूटगये फणों में जलन उठी है हृदय कापता है और इस लड़केकी घोड़ीभी छाल नहीं फूटी इसमें अब और उपाय विचारिये यह सुन हिरण्यकशिपु दिग्गजों से बोला हे दिग्गजो ! हमारे वैरीके पक्षमें टिकेहुये इस लड़केको अपने बड़े कठोर दानों से मागडा तो नहीं तो यह कुछ दिनमें हमीको गारहालेगा यह तुम न विचारो कि इन्हीं से उत्पन्न इनको कैसे गार सकेंगे ऐसा होता है देखो लकड़ीही से अग्नि पैदा होनी फिर उसीको जलाती है तब दिग्गजों ने मृदसे पकड़ पृथ्वीमें प्रह्लादको गिरा दिया व लातों में गोंदहाला व दातोंपेट में अड़ाया प्रह्लादजी ने भोविन्द का स्मरण किया दिग्गजों के दातगिरपड़े व वे अपने पितासे बोले कि वन्नते समान ये दिग्गजों के दान अति निहुर मेरे अंगों में लगने से टूटगये वह मेरा वन नहीं है किन्तु महा विपत्तियों के नाशनेवाला श्रीजनार्दन भगवान् के स्मरण का प्रभाव है यह सुन दैत्यराज ने पवनको आज्ञादी कि अग्नि प्रज्वलित करके इस पापीको जलादेवो व हे दिग्गजो ! बैठो तुमसे अब क्या होगा जब इस प्रकार की आज्ञा हुई दानवों ने बहुत काठ इकट्ठा किया उसके बीचों

ह्लादजी को बैठाय आग लगादिया उस समय पवन भी उसकी आज्ञा के कारण वहीं प्रचण्डता से चली उसके बीचमें बैठेहुये प्रह्लादजी पिनामे बोले हे तात ! इम समय यद्यपि पवन अग्निको प्रेरणाभी करती पर मुझको नहीं जलाती किन्तु सब चोरसे यही जान पड़ता है कि चन्दन के फुहारे चले आते हैं यह भी हरिस्मरणही का प्रभावहै यह कहते शुक्राचार्य के पुत्र आय दैत्यराज से बोले महाराज इस अपने पुत्रमें कोप न कीजिये रहने दीजिये देवताओं पर फिर क्या करोगे अब हमको दीजिये बालकको ऐसा सिखलावेंगे जिसमें आप के वैरीका स्मरण तो क्या नामभी कभी न लेवे और लड़कपन सब दोषों का स्थानही होता इससे इम बालकमें कोप न कीजिये जो हमारे कहने से भी हरिका पक्ष न बढ़ेगा तो इमके मारनेके लिये ऐसी कृत्या उत्पन्न करेंगे कि जो देखतेही इसे भस्म करदे जब इम गाति गुरुपुत्रों ने प्रार्थना की तो दैत्योंसे अग्निमें से पुत्रको निकलाय गुरुपुत्रोंको सौंपदिया वे लेकर नानाभातिसे पढ़ाने लगे एकदिन गुरुपुत्र कहीं चलेगये थे कि अन्य बालकोंको भी बैठाय एकान्त में बोले हे दैत्यपुत्रो ! हमारी बात धिनलगाकर मु तो व जो कहें वही मानों देखो पहिले सबका जन्म होता फिर दाल्यावस्था आनी फिर जवानी फिर धीरे-२ बुढ़ापा पडुचजाता है फिर मृत्युभी आयही जाती है सो प्रत्यक्ष है इमतुम सब जन्म देखतेहैं फिर जो मारता उसका जन्मभी होता यही उलटापलटी लगीरहती है गर्ववाससे ले जन्तक जन्म नहीं होता सब बु वही बु तहें जन्महोने पर भी जो भ्रम प्यास लगनी है और उमके गानहोने के लिये पदार्थ मिलने हैं गुरु उसे सुख मानतेहैं विचारसे देखो तो सब बु वही बु तहें सुखकानागभी नहीं जिनके अति बलिष्ठअंग है उनको मल्लयुद्ध में कोई मारताभी है तो उमे सुखही समझने हैं इसीगानि जिनकी जाँभ्रमी हैं वे मारको भी सुखही समझने हैं कहा नाक धूंक खैन्वार आदिमे मगीहूई देह कहा कानि गोमा सौंभ्यादि अञ्छेगुण जो शरीर नरकों भी मिलता है उसमें स्नेह मग्ना मूर्खहीका काग है क्योंकि इम शरीरमें माम रुधिर पीव विष्णु मूत्र नम चम्बी हाइ यही पदार्थ तो हैं क्या ये नरकमें नहीं हैं फिर क्यों इसको चाहे शान्तगने पर अग्नि से मुक्त समझने प्यास लगनेपर जलमे भ्रम लगने मे अन्नमे वस्तुन इ वके मित्राय सुख नहीं है हे दैत्यकुमारो ! पुरा जितनाही अधिक धनादि मप्रद करवादे उ-



तनाही चौरादिकों से भय रहता है वही दु ख है ऐमेही जितने प्रियरम पदार्थ एकत्र करते उतनाही शोकहोता क्योंकि उन पदार्थों में चित्तलगा रहना है कि कौनवस्तु कहा धरी है जन्म में जानों वड़ाही दु खहोना कि मरण समय में भी जानों होताही है यमराजकी पुरीमें मानों सब कष्टहीकष्ट है जो गर्भमें भी कोई सुख आपलोग अटकरने हों तो कहें हमतो जानते हैं कि जो यहां सुख नहीं तो गर्भ में भी न होंगे कौन बहुत कहे इम ससार में सब दु खही दु ख है केवल श्रीविष्णुके शरण होना यही सुखहै हे बालको ! यह न जानना चाहिये कि जीव देहों में निरन्तर रहता ये बुढ़ापा जवानी जन्म मरणदि देहदिके धर्म हैं कुछ जीवके नहीं जबतक हमलोग बालकहैं यह न विचारना चाहिये कि जब जवानहोंगे तब कल्याण के कामकरेंगे व जब युवावस्था को प्राप्त होंगे तो यह न विचारें कि बुढ़ावस्था में करलेवेंगे क्योंकि बुढ़ावस्था में तो अपने देखने सुनने चलने आदिके कार्य न करसकेंगे फिर कल्याण के लिये क्या करसकेंगे इससे जबतक हाथ पैर चलतेहैं तभीमे करना चाहिये इसीप्रकार ना नाभाति के दुराशयो में चित्तलगा रहता पुरुष सदा विचारा करता कि आज नहीं रह करलेगे पर कल्याणकीवात कभी नहीं होती जैसे कि धोषीलोग गगार्जी में कपड़े धोतेहैं यही विचाराकरते कि इस कपड़े को धोकर पानी पियेंगे जब उसे धोचुकते दूसरा उठालेते इसी भाति धोते २ सन्ध्या होजाती विचारे प्यामेही रहजाते ऐमेही मनुष्यों के कार्य भी एक दूसरे के पीछे आया करते उनसे कल्याणवाले कार्य के करने का श्रवकाणही नहीं मिलना वम एकदिन मुहँबाय गरजाते मूर्खलोग वाक्यावस्था को मिलने खिलते युवावस्था को विषयों के भोग में भिताकर बुढ़ावस्था में सामर्थ्यही न हो येअरे हैं कल्याणकीपार्त्ता किससमयकरें तिसमे वाक्य यौवन बुढ़ापन ये सब शरीर के धर्म हैं इनमें आसक्त नहोकर वाक्यावस्थाही से कल्याण में प्रयत्न करना चाहिये प्रह्लादजी बोले कि आपलोगों से मैंने यह जो सब कहा इससे सत्यजानों तो मुक्ति देनेवाले नारायण का स्मरण करो इसमें भेरी भी प्रसन्नता होगी देवों विष्णुके स्मरण करने में परिश्रम तो कुछ भी नहीं पर विष्णु गगवान् मुक्तिदेते हैं व सम्पूर्ण पापों का नाशहोता है सवपाणियों के हिनकारी नारायण में यदि आपलोगों की भक्ति व सव प्राणियों में भेरीहोगी तो सब दु खों से मुक्त हो

जात्रोगे जब देखोगे कि मत्र प्राणी आधिभौतिक आध्यात्मिक आधिदैविक इन तीनोंतापों से पीड़ित हो रहे हैं तो अकस्मात् उन प्राणियों के ऊपर दया व मैत्री होहीगी व जब देखो कि मत्र प्राणी धनादिनों में समृद्ध हैं मंडी अकेला अशक्त निरुद्ध हो रहा हो तो भी आनन्दही होना चाहिये न कि किमीके साथ द्रोह करना क्योंकि द्रोहका फल बुरा है यदि सब लोग अपने में विरोधभी रखें तो भी उन्हें अज्ञानी समझ साधु छो उनके ऊपर दयाही करनी चाहिये हे दैत्यकुमारो ! यह तो मैंने भेददृष्टि में ज्ञान कहा अब संक्षेपसे कहताहूँ सुनिये यह सब जगत् एक नारायण ही केवल विभूति है इससे ज्ञानवान् को चाहिये कि भेदको त्याग अपने सदृश सब जीवों को देखै इससे आपलोग आसुरभाव को छोड़ वैसा प्रयत्न करो जिससे अनन्त सुख पावो जो मनुष्य नारायण में चित्त लगाताहै उस सुखको पाताहै जोकि अग्नि सूर्य चन्द्रमा वायु मेघ वरुण सिद्ध गक्षम यक्ष दैत्य सर्प किन्ना मनुष्य पशु व अपने दोष व ज्वर अतीमागदि रोग इन किसी से भी नष्ट नहीं होसक्ता इम असारसमार में सतोपाखवो व सब जीवोंमें समदृष्टि करो क्योंकि इसी से ईश्वर प्रसन्न होताहै ॥

श्री० जासु प्रमत्त भये जग माहीं । सकल पदारथ दुर्लभ नाहीं ॥

धर्म अर्थ अरु काम बहता । पायत अल्प कौन मजवृत्ता ॥ १ ॥

ब्रह्म वृक्ष सब अन्तर्यामी । आदि अनन्तरु पूरण कामी ॥

तासु शरण जब जैहहु प्यारे । सकलमहाफलहोहि तुम्हारे ॥ २ ॥

## अठारहवां अध्याय ॥

श्री० अद्वरहं अप्पायमहं कर्त पुगोहित लोग ॥

जिमि मारणमनि वीन पुनि सोइ वचे सदृशोग ॥ १ ॥

पराशरजी बोलै प्रहादजी के ऐसे वचनसुन हिमयप्रकशिपु से डरेद्वरे दैत्य कुमारों ने जाय मपूर्ण वृत्तान् हिमयप्रकशिपुसे कहै तत्र हिमयप्रकशिपु ने अपने रसोईदारों को बुलाय कहा कि यह मेरा पुत्र बड़ा दुष्ट होगया आप सो कुमारों चलताही है औरभी बानकों को बेमाही भिन्नाना श्ममे आच डमरेनिये जो भोजनबने उमगें हलाहन विष हालदी जिममें यह पाती साक मरनावे तैमी प्रहादके पिताने आना दी थी बेमाही रसोईदारों ने किया उम विष दिलेद्वये अत्र

को प्रह्लाद जी नारायण का नाग लेकर बड़ी रुचिसे भोजन करगये जब कि नारायण के नामके गाहात्म्य से विप भी प्रह्लादजी को पचिगया किचिन्मात्र भी विकार न हुआ तब तो रगोईदार मन भयभीनहाकर दैत्यराज मे बोले हे दैत्यराज । विप मिलाकर अन्न प्रह्लाद को हगने खिलाया पर वहभी पचिनहीगया आपके पुत्रको कुछभी विकार न हुआ तब दैत्यराजने अपने पुरोहितों से कहा कि इम दुष्ट मेरे पुत्रको नाश करनेहारी एक कृत्वा अतिशीघ्र उत्पन्न करो पाराशरजी बोले हे यैत्रेयजी ! ऐसी दैत्यराजकी आज्ञापाय पुरोहितलोग प्रह्लादजी के पास आय बोले कि हे चिरजीव ! तीनोंलोक में प्रसिद्ध ब्रह्माके कुलमें तुम उत्पन्नहुये तिसमें भी दैत्यराज हिरण्यकशिपु के पुत्रहुये तुमको क्या तेवताओं से व क्या नारायण से जैसे तुम्हारा पिता तीनोंलोक का स्वामी है वैसे तुमभी होगे इससे अपने शत्रु विष्णुकी स्तुति मत करो पिताकी आज्ञा मानो क्योंकि पिता सबसे श्रेष्ठ व परमगुरु होताहै तब प्रह्लादजीने उत्तरदियां कि पुरोहितराज आप सत्य कहने हैं यह गरीबिका कुल ऐसाहीहै इसको कौन अन्यथा कह सक्ता है व मेरा पिताभी तीनलोक में श्रेष्ठहै यहभी मैं सत्य जानताहू व सब गुरुओं का गुरुपिताहोगाहै इममें कुछ मन्देह नहीं आपने जो कहा कि पिता परमगुरु है व पूजनीयहै सो सत्यहै मैंभी पिताकेपाय किसी प्रकारका विरोध नहीं करता परन्तु आपने जो कहा कि नारायणसे तुम्हारा कुछ प्रयोजन नहीं यह कहना अयोग्य व ऐमा और कोई भी नहीं कहसक्ता ऐसा कहकरपुणोहितके गौरव से प्रह्लादजी कुछ देर मौनहो कि बोले कि वाह वाह पुरोहितजी वाह आप अच्छे व मारे गुरु मिले जो कहने हैं कि नारायणसे तुम्हारा क्या प्रयोजनहै यदि आप कुछ न हों तो मैं कहताहू सुनिये जिस नारायणसे धर्म अर्थ काम मोक्ष चारांपदार्थ मनुष्यको प्राप्त होते हैं उससे प्रयोजन क्या न हो देखो मरीच्यप्रादि ऋषियों ने और दक्षप्रजापतिने नारायणकी सेवाने धर्म अर्थभी किमी ने अर्थ किमीने धन पाया औरभी बड़े २ महात्मा लोग तरुवेद्या नारायणही के ध्यानसे मुक्त होगये सम्पत्ति ऐश्वर्य्य प्रतिष्ठाज्ञान सन्तान इत्यादि सम्पूर्ण पदार्थों की प्राप्ति का कारण केवल नारायणका ध्यानहै हे पुणोहितजी । जिस नारायणसे धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पदार्थ सुत्तभ है निमके आराधन को आप निष्फल कहने हैं वय अब बहुत कहांतक कहें आप मेरे गुरुहैं चाहे अच्छा कहतेहो व सत्त

मेरीही समझ में नहीं आता प्रह्लादजी के ऐसे वचन सुन पुरोहितजी बोले रे बालक ! जब तेरा पिता तुझे अग्निमें जलाये देनाथा तब हर्षाने तुझे बचाया रे मूर्ख ! हम न जाननेथे कि तू फिरभी ऐसेही बकना रहेगा यदि हमारे वचन से तू इस आग्रहको नहीं छोड़ता तो देख तेरे नाश करनेवाली एक कृत्या हम उत्पन्न करते हैं पुरोहितों के ऐसे वचन सुन प्रह्लादजी ने कहा कि मुनिये महाराज न कोई किसीको मारसक्ता न कोई किसीकी रक्षा करसक्ता किन्तु आपही असत्कर्मों से नष्ट होजाता और सत्कर्मों से रक्षित रहता है ऐसे प्रह्लादजी के वचन सुन पुरोहित लोगों ने अतिक्रोध से एक कृत्या उत्पन्न किया जिसमें अग्निनेही ज्वालायें जल रही हैं जिसके जलने से पृथ्वी हिलती है ऐसी महाभयकर उस कृत्याने आय प्रह्लादजी की छातीमें एक त्रिशूल मारही तो दिया उस त्रिशूलके प्रह्लादजी की छाती में लगने से सौ टुकड़े होगये क्योंकि जिस प्रह्लादजी के हृदयमें अविनाशी माक्षात नारायण विद्यमान है वहा वज्रके भी तो टुकड़े न होहीजाते त्रिशूल विचारेकी कौन गिनती है वहामे निष्फलहो वह कृत्या उन्हीं पुरोहितोंको जलाय आपभी नष्ट होगई उस कृत्याग्निसे जलतेहुये पुरोहितों को देव परमदयालु प्रह्लादजी जिसमें ब्राह्मण न जलें इस लिये नारायणकी स्तुति करनेलगे हे मर्कव्यापिन् ! हे जगन्नाथ ! हे जनार्दन ! इस बड़ी दुःमह कृत्यारूप अग्निसे इन ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये जो मत्र जगत् में नारायण व्याप्तहो तो आज इम अग्निसे ब्राह्मण न जलें जैसे मैं विष्णुको सब जीवोंमें व्याप्त देखताहू किसीको शत्रु नहीं जानता तैसे ये ब्राह्मण आज न जलें मेरे मारनेके लिये हाथी विष अग्नि सर्प ये सब आये पर भेने यदि इन सबों में पाप न विचारा हो तो उस मेरी सत्यतासे ये पुरोहितचोग बचजायें ॥

श्री० यह मुनि दैत्य पुरोहित सारे । हैं प्रमत्त इमि उचन उचारे ॥

वीर्यजीवि अप्रति हत शक्ती । वीर्ययत्नादिसद्वित द्विजभक्ती ॥ १ ॥

पुत्र पौत्र घन युत सुत होइ । तुम्हरी कृपा जियाइसि मोह ॥

यह यदि दैत्यगज पढ़े जाई । तामुन क्या द्विजन नच गाई ॥ २ ॥

## उन्नीसवां अध्याय ॥

दो० उन्निसयें अध्याय महँ पुनि प्रह्लाद प्रयोधि ॥

द्वारेगे शिर गिरि घरे हरि निनती कह शोधि ॥ १ ॥

श्रीपराशर मुनि बोले हिरण्यकशिपुने जन सुना कि कृत्याभी प्रह्लाद जो न मारसकी तव प्रह्लादको बुलाय पूछा कि हे भियपुत्र ! यह तेरा प्रभाव आप ही आप ऐसा है कि तुम्हें कहीं भय नहीं होता या कुछ मन्त्र तत्र तू करता है ऐसे पिताने जब पूछा तो प्रह्लादजी अपने पिताको प्रणामकर बोले हे पिता जी ! यह प्रभाव न किसी मन्त्रका है व न मेरे स्वभावही से यह तो सागान्य है जिस २ के हृदयमें अच्युत भगवान् निवास करने हैं तिन सब लोगों का ऐसाही प्रभाव होताहै हे तात ! जो मनुष्य गान वचन कर्म से दूसरेको दुःख देना नहीं चाहता उसको कभी नहीं दुःख होता व दूसरेको दुःख देना चाहता है उसे अवश्य दुःख होताहै मैं न किसीको दुःख देनेकी इच्छा करू न देख न कहू केवल सब प्राणियों में नारायण का व्यापक देवताहूँ मैं तो सब जीवोंका शुभचिन्तकहूँ मुझे शरीर मानस अभिदेव अभिष्टान आदि कोई दुःख नहीं होने इसीभांति नारायणको सर्वत्र व्यापक जान विद्वान् को चाहिये कि सबसे गैत्रीको ऐसे प्रह्लाद के वचन मुन सौयोजन के ऊंचे शिखर पर बैठाहूया दैत्यराज मार कोषके आलें लाली करके अपने किंकरोंसे बोला कि इस दुष्टको इस शिखरसे नीचे दकेलदो नीचे पर्वतहैं उमपर गिरनेमें हाथ पैर सब टूटजावें दैत्यगजकी ऐसी आह्ला पाय किंकरों ने प्रह्लादजी को दकेना नारायणका भक्त जान उसी समय अतिशीघ्र आय पृथ्वीने अपने हाथोंपर प्रह्लादकी लेलिया तनिकगी चोट न लगी जब इसप्रकारमेभी कुछ न हुआ तो दैत्यराज शम्भुराजसे बोला हे शम्भु ! यह बालक बड़ा दुर्बल है इसके मरने के हम सब उपाय करके पर कोई नहीं चलता तुम माया बहुत जानतेहो माया से इसे मारडालो शम्भुराज बोला हे दैत्यराज ! मैं अभी इस बालक को मारता हूँ हजारां तिरोंहों माया करुंगा देखिये ऐसा कह प्रह्लादके सामने अनेक माया शम्भुराज ने छोड़ी परन्तु प्रह्लादजी तो बड़े समदर्शी शम्भुराज से भी कुछ डोढ़ न मानका केवल परमेश्वर के ध्यान में तत्पर दृष्टे तव नारायणजीका भेजाहूया जिस में से

अग्नि की ज्वाला धधकती हुई चली आती हैं सुदर्शनत्रक ने आय सब गाया-  
ओं को क्षणमात्र में नाश कर दिया तब दैत्यराज अतिक्रुद्ध होकर सशोपक  
नाम वायु से कहा कि तू इसी समय इस दुरात्मा बालक को सुखादे दैत्यराज  
की आज्ञा से बड़ी शीतल व रूबी पवन सुखाने के लिये प्रह्लादके हृदयमें पैठगई  
जब उन्होंने ने जाना कि मेरे शोषण करने के लिये पवन मेरे हृदय में पैठी है  
तो जगत् धारण करनेवाले नारायण को अपने हृदय में धारण किया श्रीनारा-  
यण जीने हृदय में आय सम्पूर्ण पवन को पान कर दिया ऐमेही जब सब माया  
भी नष्टहोगई व पवनभी नाशहोगई तो प्रह्लादजी चुपचाप उठकर अपने गुरुजी  
के पास फिर पढ़ने को चले गये गुरुजी प्रह्लादजी को शुक्रनीति रोज २ बहुत  
अच्छी तरह पढ़ाने लगे जब देखा कि यह सब नीतिशास्त्र पढ़ चुका तो दैत्य-  
राज से जाकर बोले हे दैत्यराज ! आप के पुत्र प्रह्लाद को हमने नीतिशास्त्र  
बहुत मलीभाति से पढ़ाया अब यह बहुत अच्छा नीतिशास्त्रमें शिक्षित हो चुका  
ऐसा सुन हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को बुलाकर पूछा कि तुमने नीतिशास्त्र  
पढ़ा है वनलावो तो कि मित्र शत्रु और ममके साथ राजा को किस २ काल  
में किस २ प्रकार धर्तना चाहिये और मन्त्रियों के साथ भ्रमात्स्यों के साथ तथा  
जो बाहरी मनुष्य या जो आपस के लोग हैं और हरकारों के साथ गृहवाले  
मनुष्यों से राजा को कौन २ व्यवहार करना चाहिये किसप्रकार शत्रुके साथ  
मेल व किसप्रकारके से विग्रह करना चाहिये किला कैसे बनाना चाहिये शि-  
कार में कैसे जाना चाहिये हे प्रह्लाद वत्स ! ये सब जो मैं पूछता हूँ व और जो  
तुम जानतेहो कहो मैं सुना चाहता हूँ परागरी वाले कि हे मैत्रेय जी ! ऐसे पिता  
के वचन सुन हाथजोड़ सविनय प्रह्लादजी बोले हे पिताजी ! गुरुजीने मुझे  
सब पढ़ाया है इसमें कुछ सदेह नहीं पर इस सबको व्यर्थ भगवा जान गेने  
भलीभाति ग्रहण नहीं किया परन्तु आपकी आज्ञा है तो कहना हूँ सुनिये शत्रु  
के वग करने में साम दाग दण्ड भेद ये चार उपाय नीतिशास्त्र में कहें परन्तु  
हे पिता जी ! क्रोध न श्रीजिषेणा में किसी को भी शत्रु नहीं मगभना सब  
जगत् मेरा मित्रही है जब कोई शत्रु नहीं तो इन उपायों से मरा जगत् प्रयोजन  
सब प्राणियों के आत्मा जगत् के सापी जगन्माय परमात्मा गोविन्द में शत्रु  
मित्रकी क्या क्या नारायण आप के हृदय में हैं व गे भी इनाप्रकार सब

जगत्मेंगी हैं तो कहिये कौन किस का शत्रु है वरन मय सबका भिन्नही है तिम से हे पिताजी ! ये राग, देवादि कों के बढ़ानेवाले नीतिशास्त्र के बरने से कुछ फल नहीं ऐसा कोई उपाय करना चाहिय जिममें कुछ कल्याण हो हे तात जिन विद्याओं को आप कहते हैं वे विद्या नहीं किन्तु अविद्या हैं उनमें केवल अज्ञान उत्पन्न होता है जैसे बालक आकाशमें उड़तेहुये जगन् को अग्नि जानता है वैसैही इन विद्याओं से ज्ञान होता है कर्मों वही है जिससे बन्धन न हो विद्या वही है जिममें मोक्षहो और तो ये सासारिक कर्म केवल परिश्रम देने के लिये होते हैं व विद्या भी सब इन्द्रजातों की नाई भूठी है हे महाभाग पिता जी ! इम ससार को अमार समस्त एक अत्युत्तम उपाय आप को, पूर्णामकर कदताहू मुनिये इस ससार में ऐसा फौन है जो कि राज्य या धनकी इच्छा न रखता हो परन्तु प्राप्त उसी को होना जिसकी मारग में है मय कोई अपनी र वृद्धिही के उद्यम किया करता पर बढ़ना भाग्यही से न कि उद्यमसे बड़े र मुख शूरा वीरना नीतिशास्त्रहीन को कभी स्वयं में उनको भी मारवल से राज्य मिलजाती इम से जो बड़ी सम्पत्ति की इच्छा को तो पुरय बढ़ानेमें यत्न करे और जो मुक्त होना चाहे वह सब जीवों में समता होने का उपाय को देवता गनुप्य पशु पक्षी सर्प आदि यावत् जगत् सब नारायण का रूप है भिन्न र रूप से दृष्टिगोचर होता है ऐसा जानकर सब चर व स्थिर जगत् में नारायणको प्राप्त देखो क्योंकि यह जगत् ईश्वरमय है ऐसा ज्ञान होने से अनादि भगवान् पुरुषोत्तम अतिशीघ्र प्रसन्न होते हैं व उनकी प्रसन्नता मे मय क्लेशों का नाश होजाता है यह मुन बड़ा कोप कर अपने रागसिंहासन से उठ प्रह्लादजी की खानी में हिमयकशिपु ने लान मारा व हाथ से हाथ गीज बड़ा कोप कर भयो यो मेंने कडा हे विप्रचित्त ! हे गहू ! हे बलि ! इमको नागकांस में वा उनके समुद्रमें फेंक दो कुछ भी विचार न करोगे नहीं तो मय लोक व दैत्य दानमें इमी दुष्मरमा र मुख के मत्रपर चलने लगेंगे देवो इमदुष्ट को दमलोगों ने बनेक गाति समस्ता बुझा कर रोंगा भी पर हमारे शत्रु ही की स्तुति करता हे इमलोगों युष्टों का मारना ही ठीक है यह मुन मरने स्वामी की आज्ञा सिंगर घर मय दैत्यों में नागकांस में घा र प्रह्लाद जी की समुद्रमें फेंक दिया समुद्र में इनके गिरनेई इतनी बड़ी र लहें उठी कि मय पृथ्वी दूबने लगी यह देव हिमयकशिपु दैत्यों में भोजी नि

हे देवियो ! सब पर्वत ठौर २ मे उषाङ्ग समुद्र में एकभोर से डालो कि उमी में कवरकर हूँ मैं क्योंकि न तो यह अग्नि से मरा न शत्रुओं में न सर्पों से न पवन से न विषमे न कृपासे न मायाओं में न ऊँचेपरमे दकेलने से न दिग्गजोंके गोंजने से इममे इमके जीने में कुछ भी प्रयोजन नहीं गारहीडालो जब समुद्रमं १००० वर्ष पर्वतों से दवाया ग्हे ॥ तो अवश्य यः दृष्ट मृत्तु होजावेगा इस श्राद्धा के पानेपर जहा समुद्रमें इनको छोडा था हजरों योजन पर्वतों से पाटदिया ये उन पर्वतों के नीचे तो दोही ये जब पूजाका समय आया श्रीभगवान् विष्णु की स्तुति करनेलगे ॥

चौ० कमल नयन पुष्पोत्तम स्वामी । सर्व लोक मय तुम्हें नमामी ॥

गो ब्राह्मण हित ब्राह्मण देवा । कृष्ण गोविन्द करहुँ तव सेवा ॥ १ ॥

ब्रह्म विष्णु हर तनु धरि सचजग । उपजावन पालन नाशन हँग ॥

देव यक्ष दानव अहि किन्नर । सिद्ध पिशाच मनुज पशु गीयार ॥ २ ॥

पक्षी रघावर सर्व पिपीला । भूमि धारि नम अनल अनीला ॥

शम्भु स्पर्श रूप रस गन्धा । मन मति आत्म काल गुण सन्धा ॥ ३ ॥

यह सब तुम अप्युत भगवाना । नमस्कार तव कृपानिधाना ॥

सत्य असत्य अधिद्या विद्या । अमृत गरल श्रुति कर्म अर्निद्या ॥ ४ ॥

प्रवृत्त निवृत्त कर्म के भोजक । सकल कर्म उपकरण नियोजक ॥

सर्व कर्म फल तुम मम स्वामी । तव पद कमल नमामि नमामी ॥ ५ ॥

योगी ध्यावत तुमहि कृपाला । याशिक यजन तोहि जनपाला ॥

हव्य कव्य भोक्ता तुम नाथा । देव पितर तनु धरि शुभ गाथा ॥ ६ ॥

महारूप तव यह जग रामा । सूक्ष्मरूप जग तुम गुणधामा ॥

भूत भेद तनु सूक्ष्म शरीरा । इन के मप्य सूक्ष्मतर पीग ॥ ७ ॥

नाम रूप गुण रहित कृपाला । वन्दी पद शरोज गत जाला ॥

जामु सकल अथतार निकाया । पूजत भजत देव राम दाया ॥ ८ ॥

जो प्रभु सब उर व्यापक होई । शुभ अथ अशुभ रूपन नहि गोई ॥

सप साक्षी त्यहि वन्दी आजू । ज्यहि वन्दनचिन जम अगाजू ॥ ९ ॥

जासों नवग और अनन्ता । तासों सामु रूप म रन्ता ॥

हमने सप सप है मुहि माई । पमनसकल जग मदाय नाई ॥ १० ॥



हम अक्षय पुनि नित्यहु आहीं । परमात्माश्रय हमहिं कहाहीं ॥  
हमहिं ब्रह्म हम आवि अत सब । जो कछु जग सबहमहिंमाहिं कच ॥ ११ ॥

## वीसवां अध्याय ॥

दो० कह विसर्ये अध्याय महँ कनककशिपु सुत ध्यान ॥

हृग्दर्शन जलनिरतरण पुनि हरिविनय घखान ॥ १ ॥

परांशर मुनि बोले कि जव इस भानि प्रहादने आपमें व विष्णु में भेद न  
समझा तब वे हरिरूपही होगये व अपनाको सब कुछ समझने लगे और सब  
भूलगये व यह माननेलगे कि अव्यय अनंत हरीं हैं जव ऐसी चिंतना करते  
अंतःकरण शुद्ध व पापरहित होगया सर्वज्ञानमय भगवान् विष्णु अंतःकरण  
में आपसे ऐमे हानेमे प्रहाद जी नागफाँणमे छूटगये व जल जलुओं सहित समुद्र  
खनभलाउठा वन पर्वतमहिं पृथ्वी काँपनेलगी और देखते जो पहाड़ उनके  
ऊपर डालेये उन्हें भिन्न व बाहर निकलभाये बाहरजाय आकाश पृथ्वी आदि  
देखकर फिर सुधि आई कि हम प्रहाद हैं फिर एकाग्रचित्त हो श्रीहरिकी स्तुति  
करनेलगे ॥

चौ० नमो नम परमार्थ रूप हरि । स्थूल सूक्ष्म अक्षर क्षर अघ हरि ॥

व्यकाव्यक्त कलासौ बाहर । अरु सकलेश निरजन श्रुतिपर ॥ १ ॥

गुण अजन निर्गुण गुण धारा । मूर्त्तामूर्त्त सूक्ष्म तनु सारा ॥

महामूर्त्ति अस्फुट स्पुट तोहीं । कृपा करहु आपसे लेखि मोहीं ॥ २ ॥

नौम्य कराल रूप तव स्वामी । विद्याविद्या सय गुण ग्रामी ॥

सदसदृष अनूप तुम्हारा । सवमन्त्राव भयन ससारा ॥ ३ ॥

नित्यानित्यर एक अनेका । कारण फार्ये कर्म सविनेका ॥

स्थूल सूक्ष्म अरु प्रकट प्रकासा । सर्व भूत नहिं सो जग भासा ॥ ४ ॥

नहिं ससार हेतु समाया । होत तुमहिं सो परम उदाया ॥

करत प्रणाम बहोरि बहोरी । नाथ कृपा कीजे यहि ओरी ॥ ५ ॥

इम गानि म्नुनि करनेसे प्रहाद जीके हृदयमें श्रीहरि प्रकट हुये उन्हें देन हर  
वराय स्तुति करनेलगे हे देवदेव ! पूज्यहृदयमें व पूज्यक्षदोकर दर्शन दीजिये  
श्रीभगवान् बोले प्रहाद तुम्हारी अचलगाँठसे इम प्रसन्नहुये जो चाहो वभागा

प्रह्लादजीने कहा हे नाथ ! जिस २ योनियों मेरा जन्महो तिसरमें सदा आपकी अच्युत भक्तिहो व जो प्रीति अविवेकियों को स्त्री पुत्रादि विषय वासनाओं में होती है वह आपको स्मरण करते हुये मेरे हृदय से कभी न जावे श्रीहरि बोले हममें तुम्हारी ऐसीही भक्तिहो व सदा वनीरहै परतु और भी अभीष्ट वर मांगो प्रह्लादजीने रुहा यदि आप यही चाहते हैं तो जब हग तुम्हारी स्तुति करने लगे थे और हमारे पिताने आपसे वैरमान हममेंनी वैरमाना यह उनका पाप नाश हो व जो मेरे अर्गोंपर अस्त्रशस्त्र चलवाये अग्नि में मुझे फेंकवा दिया मर्षोसे कटवाया विष खराया वात्रकर समुद्रमें बहवा दिया ऊगरसे पहाड़ों से ढववाया इन्हें आदि और भी जो २ खराव काम मेरे लिये किये कराये सो आपके भक्त मेरे सग ऐसा करने से पाप अवश्यही हुये दोगे इन सब पापोंसे तुम्हारी कृपा से मेरे पिताजी छूटजावें श्रीभगवान् बोले अच्छा ऐसाही होगा पर कुछ औरभी वरमागो प्रह्लादने कहा हे नाथ ! मैं हज्जारों योनियों में चाहें जहां जो जो होऊ पर तुममें अचल भक्ति बढ़ती रहै इसीमे कृतार्थहू कर्षोकि जिसने आपमें अचल भक्ति की मुक्ति उसके हाथहीमें धरी रहनी फिर धर्म अर्थ काम उसके आगे क्योहै श्रीहरि ने रुहा जैसा सहित भक्ति तुम्हारा मन हमसे निश्चल है तैसेही हमारे प्रमादमे जीवन्मुक्तता को पडूचोगे यह कह श्रीहरि तो अनर्जान होगये प्रह्लादजी ने आय अपने पिताके चरण गहे पिताने मूइसूय अच्छीभाति छाती से लगा कहा जिभो व आँसुओं से शिर सींचदिया व सब वैरझाड़ा प्रह्लादजी भी गुरु व पिताकी सेवा करनेलगे जब श्रीनृसिंहजी के हाथों से हिरण्यकशिपु मारागया तब दैत्योंके राजानृये व राज्यके नानाप्रकारके सुख भोगने लगे पुत्र पौत्रादिभी बहुतहुये जब राज्याधिकार छूटा उम समय पाप पुण्य दोनों उनमें न रहे माक्षात् मोक्ष पदको प्राप्त होगये हे गौत्रेय ! ऐसे प्रभावयुक्त प्रह्लादजी हुये जो तुमने पूजाया सब कदा इन गदात्मा दैत्यराज परमभक्त का यह चरित जो मुनेगा व कहेगा उसके सबपाप नष्टायेंगे यह चरित पढ़नेवाले के रात्रि दिनके किये हुये पाप मिटही जावेंगे व जो कोई पौर्णगामी जमायास्या व अष्टमी को व द्वादशीको पड़ेगा गोदान करनेका कन पावेगा व जो कोई सदा इन चरितको सुना करेगा उम की स्वागी ईश्वर वैभेरी होगी तैने सब विषयियों से प्रह्लादर्श की ॥

## इक्ष्वाकुसखां अध्याय ॥

दो० इक्षिसख्यं अन्व्यावमहं कश्यप वशं पत्नान् ॥

जहा मानु शुचि होन मा परनवेव यह गान ॥ १ ॥

श्रीपराशरमुनि बोले हे गोत्रिय । हिरण्यकशिपुके जो ४ पुत्र कहेये उनका वंश मुनिमे सह्यादके आयुष्मान् शिवि व वाष्मन्त ये ३ पुत्र हुये प्रह्लाद जीके विरोचन विरोचन के बलि बलि के वाणासुरादि १०० पुत्र हुये उनमें वाणासुर सबसे ज्येष्ठया हिरण्याक्षके महाबलत्रान् उत्कूर शकुनि भूत सतापन महानाम महाबाहु कालनाम ये हुये कश्यपकी स्त्री दनुगें द्विमूर्द्धा शबर शकर अयोमुत्त शकुशिर कपिल एकत्रक महाबाहु तारक महाबल स्वर्भानु वृषपर्वा पुलोमा विप्रचित्ति ये हुये स्वर्भानुके प्रमानाम व वृषपर्वाके शर्मिष्ठा कन्पाहुई वैश्वानरके उपदानधी ह्यशिर पुलोमा कालिका ये हुई पुलोमा व कालिका दोनों कश्यपको व्याहीगई इनके ६०००० दानव हुये ये दानव पौलोम और कालकज नामोंसे प्रसिद्ध हुये विप्रचित्तिकी स्त्रीका सिद्धिकानामया उमके व्यश शक्य बनवान् नग महाबल वातापी नमुचि इल्वल अजकनरक फालनाम स्वर्भानु महावीर्य चक्रयोधी महाबल ये सब दानव दनुवश बढ़ानेवालेहुये इनके पुत्र पौत्र प्रपौत्रादि हजारों लाखों हुये प्रह्लादजी के कुलमे निवातकवचादि पुत्र हुये व ताम्रा नाम स्त्रीमे शुकी श्येनी भार्मी सुधीवी शुचि गृध्रिका ये ६ कन्पाहुई शुकीमे सब सुम्ना उत्पन्नहुये उल्कीसे खनट श्येनीमे जुर्ग भार्मीसे याज गृध्रीमे गृध्र शुचिसे जलपक्षी सुधीवीसे घोड़े ऊट गदह हुये और कश्यपकी पितता नाम स्त्रीमे गरुड़ व अरुण दो पुत्रहुये गरुड़जी सप्तपक्षिर्षाम श्रेष्ठ दारुणहं कर्षोकि सप्तोकोणी भोजन करजातेहैं व सुरसानाम स्त्रीमे कश्यपमे महम्मो सर्पहुये कद्दू नाम स्त्रीसे गीर्षर्षहीहुये इसीसे सप्तोका काद्रवेय नामहै ये सप्त गरुड़के अर्पितहैं इनमे मुरपर शेष नामुकि तक्षक शम्भुत्रेण महापद्म कम्बल अशाना प्लापत्र नाम कर्कोटक धनजय इतने ये इनके विगेप अन्य भी सहस्रों नामहुये ये सब महाकोधी होते व दानोंमेही काटने हैं पक्षी स्थलचारी व जलचारी दो प्रकारके होते उनमें जो मासगक्षी होने वड़े दारुण होते सुरभि नाम कश्यपकी स्त्री ने गाय बैल व भेड़ भेमे उत्पन्न शिये शराने वृल त्रामी लता नृणादि सब पैदाकिये तमामे यज्ञ गङ्ग

मुनिनाम स्त्री ने अप्सराओं को उत्पन्न किया व अग्निदेवों के गन्धर्व हुये स्थावर व जगमके भेदसे दो प्रकार के कश्यपजी के पुत्र कहे इनके पुत्र पौत्रादि सहस्रों हुये यह सब सृष्टि चाक्षुष मन्वन्तरकी है वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर में तो जो यज्ञ करने के समय ब्रह्माजी से सप्तर्षि उत्पन्न हुये थे वही इसमें हुये व जब देवता गन्धर्व और दैत्योंसे विरोध हुआ उसमें दैत्य मारे गये तब दितिने कश्यप अपने पतिको प्रसन्न किया कश्यपजी ने दितिसे प्रसन्न होकर कहा वरगागो दितिने कहा जो आप प्रसन्न हों तो ऐसा पुत्र देवें जो इन्द्रको मार डाले कश्यपजीने कहा अच्छा ऐसा ही होगा परन्तु इन्द्रके मारनेके योग्य ठीक २ पुत्र तभी होगा जब तुम १०० वर्ष तक गर्भ धारण किये हुई वड़ी पवित्रता से रहोगी यदि पवित्रता में कुछ भी अन्तर होगा तो वह पुत्र इन्द्रको न मारेगा वरन त्रिण्डुका भक्त देवताओं का भाई होगा यह कह कश्यपजी ने दितिको गर्भाधान कराया व उन्होंने नियममें तत्पर हो गर्भ धारण किया इन्द्रने जाना हमारी सौतेली माता हमारे मारने के लिये पुत्र उत्पन्न किया चाहती हैं इस लिये आय उनकी सेवा में लगे व उनकी पवित्रता में भ्रष्टता विचारते व दितिभी वगैर अपने नियम से चली गई जब १०० वर्ष में १ वर्ष पुत्र होनेको रहा तो एकदिन त्रिन पौरुषेयों रात्रिको सोरहीं इन्द्र सूक्ष्मरूपा धा दिति के पेटमें पैठ गये व गर्भके उन्होंने ७ खण्ड वज्रसे कर डाले जब वे सातों रोने लगे तो प्रथम समझाया कि न रोवो जब उन्होंने न माना तो एक २ के फिर वज्र में मान २ खण्ड कर डाले वही ४६ पवन हुये ये सब इन्द्रकी के सहायक हुये ॥

## वाइसवा अध्याय ॥

दो० याइसवें अध्यायमें जिमि विधि सप्तकई दीन ॥

आधिपत्य निज प्रियन की वर्णन मोइ प्रमाण ॥ १ ॥

श्रीपराशरमुनि बोले जैसे पूर्वही ऋषियोंने पृथुको राजनिर्दामन पर बैठाया उसी क्रमसे ब्रह्माजीने सब को राज्य दिये जैसे कि नक्षत्र ग्रह वायु वृक्ष वल्ल्यादि वज्र व तपस्या इनके राजा चन्द्रमा को बनाया राजा का के राजा कुबेर को जलके वरुणको देवताओंके राजा यामनजी को अग्निदेवों के राजा पावक को प्रजापतियोंके राजा दक्षको देवताओं के राजा इन्द्रकी भी दैत्य व दानवों के

स्वामी महाद को पितरों के धर्मराजको हाथियों के ऐरावत को पक्षियों के गरुड़को घोड़ों के उषैश्रवा को गाय बैलों के नन्दीश्वर को सर्पों के शेष को वनपशुओं के मिहको सब वृक्षों की रानी पकरिया को बनाया इस भाँति इन सबके राजा बनाय सब दिशों के भी स्वामी नियत करदिये जैसे पूर्वदिशाके स्वामी वैशान प्रजापति के पुत्र सुवन्माको बनाया व दक्षिण दिशा के ऋद्वग प्रजापति के पुत्र गङ्गवद को व पश्चिम दिशा के रजसके पुत्र केतुमान् को तथा पर्जन्य प्रजापति के पुत्र दुर्द्धर्षको उत्तर दिशाके स्वामी बनाया ये लोग सप्तद्वीपवती इम पृथ्वी में अपनी २ दिशाओंके स्वामी हुये व अथैतक पालन करते हैं ये सब राजा व जो होचुके हैं जो होंगे सब विष्णु भगवान् के ऐश्वर्य रूप हैं इसी भाँति दानव गक्षस भूत प्रेत पिशाच पशु पक्षी गन्धुप सर्प नाग वृक्ष पर्वत मृद इनके जो २ पति हैं सब ईश्वरकी विभूति हैं व इन्हीं की शक्तिसे पालन करते हैं क्योंकि विना भगवान् विष्णुकी शक्ति किसी में सामर्थ्य नहीं जो राज्यको प्रबन्ध करसके क्योंकि सृष्टिके समय रजोगुणी ब्रह्माहो ससारको वही विष्णुजी बनाते पालनके समय सत्त्वगुणी हरिहो पालते प्रलयके समय तमोगुणी रुद्र हो नाशते हैं चार प्रकारकी सृष्टिके उपराजने पालने नाशने के लिये श्रीविष्णु अपने चार चार भाग करके सृष्ट्यादि करते हैं सृष्टिके समय एक अंश से ब्रह्मा होते दूसरेमे मरीचादि मुनि तीसरेसे काल चौथे से सब प्राणियों को बनाते यह चार प्रकार का रजोगुणी स्वरूप हुआ पालनसमय में एक अंशसे विष्णुहो पालते दूसरे मे मन्वादिक रूप होते तीसरे से कालरूप होते चौथे से सब प्राणियों में स्थितहो पालते हैं इसीभाँति प्रलय के समय तमोगुणी रुद्रहो एक अंशसे नागनेलगते दूसरे मे जगन्मन्तकादिरूप धारण करते तीसरे से कालस्वरूपी होने चौथे से सब प्राणियों को नाशने ब्रह्मादिसादि काल व सब प्राणी सृष्टिके समय हरिकी सब विभूति रहती विष्णु मन्वादि काल सब प्राणी पालनके समय यह हरिकी विभूति रहती है रुद्र काल यम राजादि सब प्राणी यह सब चारप्रकारकी प्रलयके समय हरिकी विभूति रहना है जगत् के आदि व मध्यमें जनन व प्रलय नहीं होनी ब्रह्मा मरीचादि व बन्तुओं से सृष्टि हुआ करती है पहिले ब्रह्मा सृष्टिको बनाते फिर मरीचादि सन्तान उत्पन्न करते उनके पीछे सब बन्तु प्रतिक्षण उत्पन्न करतेही मृते विना काल ब्रह्मा प्रजापति

व जन्तु कोई नहीं सृष्टि करसके इससे कालभी मुख्य कारण है इसीभाति पालन व विनाशमें भी चार २ प्रकार होते हैं इसप्रकार जगत्कर्ता-जगत्पालक जगन्नाशक सब विष्णुही हैं तत्त्व ज्ञानमय परमात्मा भगवान्का परमपदभी चारप्रकार का है यह सुनामैत्रेयजी बोले हे मुनिराज । उस ब्रह्मभूत परमेश्वरका जो चारप्रकारका परमपद आपने कहा सो सुनाइये पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय । सब वस्तुओं के कारणको साधन कहते हैं व जिस वस्तुको सिद्ध किया चाहते हैं उसे साध्य कहते हैं जैसे कि मुक्तिकी कामना किये हुये योगियों के प्राणायाम साधनहैं व जिस ब्रह्मको प्राप्तहो फिर जीव नहीं लौटना वह ब्रह्म साध्य है साधनावलम्बी जो योगियों का ज्ञान मुक्तिके लिये है वही ज्ञानसून परमेश्वर का पहिला भेदहै फिर साध्य ब्रह्मके निकट पहुँचने व मुक्तिके लिये क्लेश सहना इनके अवलम्बन वाला ज्ञान उसका दूसरा अंगहै फिर इन साध्य साधन दोनों की एकतासे जो अद्वैतमय ज्ञानहै वह उसका तीसरा भागहै व जो इन तीनों ज्ञानोंसे विशेष इनके छोड़ने से होता वह निर्व्यापार अकथनीय परिपूर्णमात्र उपमासहित ईश्वरके बोधका विषय चैतन्यमात्र लक्षणरहित प्रशान्त अभय शुद्ध अविभाव्य सश्रयहीन यह ज्ञान श्रीविष्णुका परमपद व चौथा अंग है वही अमल नित्य व्यापक नाशरहित सब भेद शून्यहैं जिसको पहुँचकर योगी पुण्य पाप रहितहो फिर कभी नहीं गिरता उस ब्रह्मके दो रूप हैं एक मूर्त्त दूसरा अमूर्त्त वे क्षर अक्षर स्वरूप से प्राणियों में स्थित हैं अक्षर तो परब्रह्म हैं व क्षर ससार जैसे एक स्थान में अग्नि वारो उमकी उजियारी दूरतक जानी ऐमेही ब्रह्महै तद्दामी जो पदार्थ अग्निके निकटहैं वहा बहुत प्रकाश पहुँचना जहाँ दूर है कम ब्रह्मा विष्णु शिव ये ब्रह्मकी प्रधान शक्तिहैं इनसे उत्तर इन्द्रादि देव उन से कम दक्षप्रजापत्यादि तिनसे कम मनुष्य इनमे पशु पशुओंसे भी कम वनके जीव उनमे कम पक्षी इनसे सर्प वृश्चिकादि इनमे बहुतही न्यून वृक्ष वल्क्यादि हे मुनिवर । यह ईश्वर अक्षय नित्य है जगत्की अक्षयहे जोर सब शक्तिमय श्रीविष्णु ब्रह्मके श्रेष्ठरूपहैं मूर्त्त वह रूप तिसे योगीनोग प्यावते हैं व जो बहुत प्यावते २ सुन्दर मनमें आजाताहै वही ब्रह्मस्वरूप हरि हैं उमी ईश्वरमें यह ससार वस्त्रकी भाति दोनोंओरमे बीनाहै इसीसे उमीमें जगत् होता व उमी में गिनजाता वह ईश्वर क्षर अक्षर रूपहै व इस ससारको सृष्टण व वस्त्ररूप था

रण किये है भैत्रेयजी इस कथाको सुन बोले कि हे पराशरजी ! जिस प्रकार सृष्टि व अन्नरूप इस संसारको श्रीविष्णु धारण करते हैं वह हमसे कहिये पराशरजी बोले श्रीविष्णुको पूणाम कर जिसगानि वशिष्ठजी ने हमसे कहा है तुमको सुनाने हैं निर्दोष गुणरहित इस संसारको भगवान् विष्णु कोस्तुगमणिके समान धारण किये हैं अनन्त गगवान्के कोरा में सोतेहुये हरि श्रीवत्सरूप जगत्को धारण करते प्रकृति व बुद्धि तत्त्व गदारूपसे पृथिव्यादि ५ तत्त्व व मुखादि १० इन्द्रियोंको व अहंकार तत्त्वको शब्द व धनुषरूपसे अतिवंचल मनस्वरूप मनको हाथमें चक्र स्वरूप धारण करते हैं जो मुक्ता गणिक्य गरकनमणि इन्द्र नील हीरक इन ५ से बनीहुई विष्णुकी वैजयन्ती माला है वह शब्द रूप स्पर्शादि जो आकाशादि तत्त्वोंकी मात्रा हैं उनके रूपसे धारण किये हैं व जो ज्ञानेन्द्रिय ५ धर्मन्द्रिय ५ हैं उन्हें धारणरूप श्रीभगवान् ग्रहण करते निर्मल खड्ग श्रीहरि धारते वह विद्यामय है व अविद्यामय दाल इसभांति श्रीजनार्दन भगवान्में पुरुष प्रकृति बुद्धि अहंकार पृथ्वी वायु आकाश अग्नि जल मन सब इन्द्रिय विद्या अविद्या सब अन्नरूपमे विद्यमान हैं ये सब मायारूप हरि प्राणियोंके उपकारके लिये धारण करते हैं प्रकृति पुरुष व सब जगत् परमेश्वर परब्रह्म में रहते हैं विद्या अविद्या सब असत्, अव्यय जो कुछ है सब मधुसूदन भगवान्में है सूर्लोक सुवलोक स्वर्लोक महर्लोक जनलोक व सत्यलोक सब उन्हीं में है सब लोकोंकी मूर्ति सबमे पूयग होनेवाले सब विद्याओंके आधार वही है देव गनुष्य पशु आदि बहुत रूपोंमें टिकेहुये देवने में मूर्तिमान् वस्तुनाम अमूर्तिमान् वही हरि है सब वेद महाभारतादि इतिहास आयुर्वेद धनुर्वेदादि उपवेद वेदान्त गनुस्मृत्यादि धर्मशास्त्र अन्य वेदाङ्ग वैशेषिकादि ६ शास्त्र कल्पसूत्रादि काव्य मगीतशास्त्र गृह मंत्र शब्दमूर्ति विष्णुकी मूर्ति हैं इनकी गिनाये पर जो कुछ संसार में है सब हरिरूपही है जिसका मन यह समझना कि हरि में ही यह सब संसार हरिरूपसे कारण कार्यं सुखभी तिमने अलग नहीं वह संसार से बाहर होजाना है ॥

ची० यह पुराण प्रथमांश बलाना । तुगमन द्विजवर सहित विधाना ॥

जामु सुने नर, पाप नशाहीं । अन्तधान् हरिपुर, ते जाहीं ॥ १ ॥

दास्य यर्ष कार्मिकी माहीं । जो जन पुष्कर मार्ति हाहीं ॥

पावत जो फल सो सब पावत । जो यहि सुनत गुनत अरु गावत ॥ २ ॥

देव ऋषिषि पितर गन्धर्वा । किन्नर यक्ष अन्य सुर सर्वा ॥

जो यह सुनत ताहि श्रदाना । देत सकल यह सत्य वखाना ॥ ३ ॥

इति श्रीमद्विष्णुपुराणे प्रथमेऽंगे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

## अथ विष्णुपुराणस्य ॥

### द्वितीयोऽशः २ ॥

दो० अहँ दूमरे अश मँहँ सब सोरह अध्याय ॥

जहँ भूगोल खगोल कर वर्णित हैं समुदाय ॥ १ ॥

तहँ पहिले अध्याय मँहँ कथा प्रियव्रत केरि ॥

तासु वश वर्णन मही गोलहु सूचित देरि ॥ २ ॥

प्रथम अश के २२ अध्यायों की कथा सुन मैत्रेयमुनि मुनिराज परागर जी से बोले कि हे भगवन् ! जगत्की सृष्टि जो हमने पूछी थी सो तो आपने भली भाँति कही इस प्रथम अशमें अभी फिर कुछ हम सुना चाहते हैं जो कि आपने स्वायम्भुव मनु के पुत्र प्रियव्रत व उत्तानपाद बनाये उनमें उत्तानपाद के पुत्रादिपुत्र कहे उनकी कथा भी कही पर प्रियव्रत की सन्तति नहीं बनाई हम उसे सुना चाहते हैं प्रसन्नचित्तहो सुनाइये परागरमुनि बोले कर्दममुनिकी कन्या जिसका कन्याही नाम था राजा प्रियव्रतका उसके साथ विवाह हुआ उसमें सम्राट व कुक्षी दो कन्या और बड़ेपूतार्पी १० पुत्र हुये ये सब महापरिंडन महापराक्रमी महासुशील अपने पिता के परम्प्यारे हुये इनके नाम ये हैं १ अग्नीध्र २ अग्निवाहु ३ वपुष्मान् ४ श्रुतिमान् ५ मेधा ६ मेधानिधि ७ भव्य ८ मवन ९ पुत्र १० ज्योतिष्मान् इनमें ज्योतिष्मान् बड़े तेजस्वी थे इनमें मेधा अग्निवाहु व पुत्र ये तीन बड़े योगी व जानिस्मरथे इन्होंने ने राज्यही इच्छा ही न की सब कामों से निर्मोह होने से जितनी क्रिया करने थे फल किसी में नहीं चाहते थे बाकी ७ पुत्रोंको प्रियव्रतजाने पृथ्वी के सात दीप बनाय बाट दिया यथा अग्नीध्रको जम्बूद्वीप दिया वह सबके बीचमें है इसके चागें जोर शान्द-



लि ट्रीप हे वह वपुष्मान्को फिर ऐमेही कुगर्दीप ज्योविष्मान् को कौचर्दीप  
 श्रुतिमान् को शाकर्दीप मव्यको पुष्करर्दीप सवन को दिया इनमें जम्बूर्दीप  
 के गति अग्नीध्रजी के नाभि १ किम्पुरुष २ हरिवर्ष ३ इलावृत् ४ रम्य ५ हि-  
 रण्यवान् ६ कुरु ७ भद्राश्व ८ व केतुमाल ये ९ पुत्र हुये इन में नाभिको सब  
 से दक्षिणवाला खण्ड जो हिमालय से समुद्र पर्यंत है पिनाने दिया इममे उत्तर  
 वाला जिस में हेमकूट पर्वत है किम्पुरुष को मिला जिसमें निषर नाम पर्वत  
 है हरिवर्ष को सौंपा जो सबके मध्यमें है व उसके बीच में सुमेरु है वह इलावृत्त  
 को दिया गया व जिसमें नीलनाम पर्वत है रम्यको मिला जो उससे उत्तर नि-  
 स में श्वेताचल है हिरण्यवान् को मिला जिस में श्रुतवान् पर्वत है व सब के  
 उत्तर समुद्र के किनारे है कुरु को सौंपा सुमेरु के पूर्व ओर जो खण्ड है भद्राश्व  
 को दिया व जो सुमेरुवाले इलावृत्तकी पश्चिम ओर है जिस में मर्षादागिरि  
 गन्धमादन है केतुमालको मिला इम गति अपने नवपुत्रों को नखण्ड सौंप  
 राजा अग्नीध्र शालग्रामाश्रमको तपस्या करने चले गये जो किम्पुरुषादि खण्ड  
 हैं उम में स्वागविकी मिद्धि है वहा जिनकी भितनी आयुष नियत हुई यनी  
 रहती अकाल मरण नहीं होता धर्म अधर्म कुछ नहीं उत्तम मध्यम अधम  
 भी कोई नहीं सब समान स्वभावही होते जातिकी व्यवस्था तो है पर नागमा-  
 त्रकी को युग की भी अवस्था कुछ नहीं और जो हिमालय के दक्षिण खण्डके  
 पति नाभिजी थे उनका विवाह मेरुदेवी के भग हुआ उसमें उममे ऋषगनाम  
 पुत्र हुये ऋषगजी के १०० पुत्र हुये उनमें सभमे बड़े भारतजी थे ऋषमजी  
 भारतको राज्य दे पुलस्त्याश्रम को तपस्या करने चले गये वहा चानमस्था-  
 श्रम के अनुसार बहुत दिन तपस्या कर परमभाग को गये जाहे से वन के चल-  
 ने के समय ऋषगजी ने भारतही को यह खण्ड दिया इसी से इनका भारतवर्ष  
 भारत खण्ड नाम कहा जाता है भारतके पुत्र का सुमति नाम हुआ बहुत दिनों  
 तक राज्य कर सुमति को दे अन्तवस्था में महाराजाधिराज भारतजी शाल  
 ग्राम को तपस्या करने चले गये व वहाँ मृन्कद्रुपे फिर माझण के यहा जन्म  
 पाया हे भैत्रेय ! निसका चरित्र पीछे से कहेंगे सुमति के इन्द्रपुत्र हुये नितके  
 प्रमेष्ठी परमेष्ठी के प्रतिहार इनके प्रतिहर्ता नितके गुण सुव के उदगीप इन  
 के प्रस्तार नितके प्रथ पृथुके नक्र नक्र के गप गपते नर नर के विगद् विगद्

के महावीर्ये तिमके श्रीमान् तिमके गदान् तिमके गनुस्यु तिमके त्रप्टा त्रप्टा  
के विरज विरजके रज रजके विष्णुगज्योनि जादि १०० पुत्र हुये इनमे बहुत  
प्रजा बड़ी यह सब उत्तानपाद व प्रियव्रत केही यशार्त्ता ही मन्वान है तिमके  
गर्भखण्डको भोगा ॥

चौ० कृतव्रता द्वार कलि जचहीं । जात एवत्तरि वागई मवहीं ॥

यद्विस्त्रायम्भुवसृष्टि कहत सत्र । यामांपृग्नि भयहृ जगत फत्र ॥ १ ॥

यह ताराह कल्प सव गाथा । प्रिभली विधि तुम्हें सुनावा ॥

अथवा सुना चहत चितलाई । हम मन दीजे तुम्हें बताई ॥ २ ॥

## दूसरा अध्याय ॥

दो० कहच द्वितीयाध्यायमहं प्रश्नोत्तर बहु भांति ॥

जहा चरित प्रियव्रत मही गोल कथाकी पांति ॥ १ ॥

श्रीगौनेयमुनि बोले हे मुनिश्रेष्ठ । आप ने सारम्भुव मन्वन्तर की सृष्टि  
कही अब भूगोलविद्या सुनाचाहते हैं इन मे इस पृथ्वी में जितने सागर दीप  
खण्ड पर्वत व नदी देवता आदिकों की पुरियाहों व जितना पूजाण भूगो  
ल का हो तिमपर, यह थैमा हो सब यथाविधि कहिये परान्मुनि बोले हे  
गौत्रय । विस्तारपूर्वक तो इस भूगोल को कोई कैरुग वर्ष भं नहीं कह  
सकता इसलिये हम अक्षा रेखि मे कहते हैं गुनिये इस गलीतन पर जम्बू द्वीप  
शाल्मलि कुण क्रोञ्च शारु व पुष्कर ये ७ द्वी । हे ये मानों दीप का मे त्र-  
णोद क्षुप्तोद सुरोद घृतोद दग्निगण्डोद शुभ्रान्त व शुद्धजलमे धेगये हृडा  
सब दीपों के मध्यमें जम्बूद्वीप है इस के बीचोबीच सुकेरु नाम नोने का पर्वत  
है वह पृथिवीन मे चौरासी हजार योजन ऊंचा है व सोढदहनार योजन धा-  
णीमें गड़ाहै ३२००० योजन चौड़ा स्थान इसली सीमा पर है नीचे मोलहरी  
सहस्र योजन विस्तारहै यह पर्वत कमनासार पृथिवी पर कर्णिकार टिकाहै हि  
मवान् हेमफूट व निपथये ३ तो इसके दक्षिण वान समुद्र के दाहोंपर है नीचे  
श्वेत व शृङ्गवान् उत्तरवालोंके इन में निपथ व नीचे तो नाम योजन बहें बाकी  
सब दश २ सहस्र योजन पर कृमरे की अपेक्षा ऊंचे इन तीनों की उंचाई  
दा २ हजार योजन है व चौड़ाई भी इतनीही समुद्र पर्वत के पश्चिम पट्टी

ओग मे गारुतर्ष निम्पुरुतर्ष य दग्निर्व ये तीनखण्ड क्रमसे हैं इसी भाति सुमेरु  
 से उत्तर समुद्र पर्यन्त सम्यक् दिशामय य कुरु ये तीन खण्ड हैं ये सब गारुतखण्ड  
 दि नव २ सहस्र योजन के हैं इलायुत खण्ड सबके मध्य में है इसी में सुमेरु  
 वर्त सोने का है इलायुत भी सुमेरुके चारों ओर नवमहस्र योजन है इसके चारों  
 ओर चार पर्वत हैं वे सुमेरु को गानों चारों ओर से आड़े हैं सुमेरु के पूर्व मद्-  
 राचल व दक्षिणमें गन्धमादन पश्चिम विपुन उत्तर सुपाश्वर्ष इन गन्धरादिपर्वतों  
 के ऊपर क्रम से ११०० योजन के ऊंचे कदम्ब जामुनि पीपर व वाग्द के ये ४  
 वृक्ष भी हैं इसका जम्बूद्वीप इसीमे नामदृग्मादे जिससे इस में जम्बूकहे जागुनि  
 का पेड़ है इस जामुनिके फल बड़े बड़े द्वायियोंके समान होते हैं व पहाड़ पे गि-  
 रने से फूटजाते उन्हीं के रस से एक जम्बूनाम नदी बहती है इलायुतखण्ड के  
 निरासी उमका जल पीने है इसके पीनेवालाके पपीना दुर्गन्धि बुढ़ापा इन्द्रिय  
 क्षयआदि रोग नहीं होने इसी नदी में जम्बूनद नाम सुवर्णोत्ता वहांके सिद्ध  
 लोग उसे धारण करने और मेरु के पूर्व मद्राश्व वर्ष पश्चिम येत्रुपाल है इन  
 दोनों के बीच में इलायुत खण्ड और सुमेरुके पूर्व येत्राय नाम वन है दक्षिणमें  
 गन्धमादन पश्चिममें येत्राज व उत्तरमें नन्दन व पूर्वहीके क्रमसे अरुणोद महा-  
 भद्र अभिनोद व गानस ये चार मगेश्वर हैं इनमें देवतानांम विश्र किया करते  
 व शीतान्तचक्रमुञ्ज कुरगी मारुपवान् वैरुफ आदि कर्षिकाकार सुमेरु के पूर्वा  
 केमराकार ये पर्वत हैं व दक्षिणमें त्रिकूट शिशिर पतग रुचक निषादि पश्चिम  
 में शिषिवाम वैदुर्ग कपिल गन्धमादन याकधि आदि उत्तर में शक्रेष्ट ऋषभ  
 हसनाग फालञ्जगदि ये मय सुमेरुके पेट आदि अगा में और और नपेटेदृपे हैं  
 सुमेरुके ऊपर १४००० योजनकी ब्रह्मरी पुगि है इसकी वाग दिशा य उर-  
 दिशा में इन्द्रादि लोकपालों की ८ पुगिया हैं वामनावतार त्रिपुण्य जी के चरण  
 से निरसी हुई गगाजी अन्नरिषसे चन्द्रमण्डल सिगानो हुई भी ब्रह्मपुत्री मे  
 गिरती है वहासे इनकी ४ भाग होगई है वे सीता भालवनन्दा चक्षु व मराके  
 नागमे प्रसिद्ध हैं पर्वतसे सीता पर्वतकी चटी व मद्राश्ववर्षमें दोती हुई समुद्रमें  
 पड़ती निसी भाति अलकनन्दा दक्षिण दिशाकी बही बहने २ मस्तखण्डकी  
 समुद्रमें पड़ती इनकी ७ वाग है १ नलिनी २ हास्तिनी ३ प्रायनी ये तीनों  
 सीधी पूर्वकी चली गई सीता ४ वसु ५ व मिन्धु ६ ये तीनों सीधी पश्चिम

को और सातवीं गगानाम से भागीरथ के साथ दक्षिण ओर बहती हुई सागरमें मिली हैं व चक्षु नाम सुमेरु पर्वतके पश्चिमवाले सब पर्वतोंपर द्योती हुई केतु-माल वर्षमेंही पश्चिम सागरमें मिली और इसीभाति भद्रा सुमेरुके उत्तर पर्वतों व उत्तर कुरुदेशों में होती हुई उत्तर महासागर में जा मिली नील निपथ माल्यवान् व गन्धमादन इनके बीचमें इलावृतखण्ड जिसके मध्यमें सुमेरु पर्वत है इन रुष्णि रूकाकार जम्बूद्वीप के भारतकेतुगाल भद्राश्व कुरु ये पत्राकार हैं और देवफूट व दक्षिण उत्तरके मर्यादा पर्वत ये गानों जम्बूद्वीपके पेट हैं गन्धमादन व कैलास ये दोनों पूर्व पश्चिमको अस्ती योजन लम्बेहो समुद्रमें मिले हैं निपद व पारियात्र ये मर्यादा गिरिसुमेरु की पश्चिम ओर है त्रिशूद्र व जा रुधि ये दोनों उत्तरके मर्यादा पर्वत हैं व पूर्वसे पश्चिमको लम्बे हे मैत्रेय । ये मर्यादा पर्वत तुमसे बताये ये जितने मर्यादा व केसराकार पर्वत रहे हैं इनमें अनिमनोहर कन्दला हैं उनमें सिद्ध व चारणलोग निवास करते हैं अनि रगणीरु व न नगरादिगी उनमें लक्ष्मी त्रिण्ण अग्नि सूर्यादि देवोंके हैं उन स्थानोंमें किन्नर नर गन्धर्व यक्ष राक्षस दैत्य दानव इत्यादि विहार किया करते हैं धर्मगात्माओंके लिये ये स्वर्ग पृथ्वीनली पृथ्वी पाप त्मालोग चाहे मैत्रो जन्म धरें इन स्थानोंको नहीं जाते भद्राश्वखण्ड में हयशीर्ष भगवान् की मूर्ति रहती केतुमानवर्ष में वाराहजीकी भरतखण्डमें कच्छपजीकी कुरुवर्षमें-मत्स्यजीकी ॥

चौ० विश्व रूप सर्वेश्वर श्रीहरि । रहत मदा सर्वत्र नेह करि ॥

मर्वाधार अखिल जग स्वामी । घट घट व्यापक अन्तर्यामी ॥ १ ॥

जाकिम्पुरुष आदि क्षमुखण्डा । तहां न शोक मोह अति चण्डा ॥

नहि उचोग न क्षुधा पियासा । कोऊ काहुकि करत न आमा ॥ २ ॥

प्रजा सबल तहें सुस्थिर रहई । दुःख दुराशा फोड न लहई ॥

दश द्वादश सहस्र सम जीवत । मदा सुपा सम रग मद्र पीवत ॥ ३ ॥

तहां न फण्डु मेघ गण वर्षत । भूमिगारि राघकटु जन हर्षत ॥

कृत प्रेता युग सम सब बाला । तहां रहत हरि सुपा विशान्या ॥ ४ ॥

सय राण्डन नहें सुखद सुशाय । सात नात पत्रा मन भाये ॥

तिनसों पहत नदी गण नाना । तिनमें जगत पेर दम्याना ॥ ५ ॥

## तीसरा अध्याय ॥

द्वे० काम तृतीयाध्यायमहं नदी पहाड़ पर्वतान् ॥

भारतम्बुड गहिमा बहुत सुनहु सुगन् देवान् । १ ॥

पराशरमुनि ब्रौणे दक्षिण महासागर मे उत्तर व हिमालय पर्वतमे दक्षिण जो देशहे उत्रे नामवर्ष कहते हे उ पहाकी राजाको भाती यह पण्डे नवसु ह्य यो जनका तमा चौड़ाहे स्वर्ग उ मोक्षके पानियासों के लिये वर्माभूमि नदी हे चाह अन्धे र्मन कर्मे अन्धे लोकों को जाओ चाहो पाप करके नर कादिकर्म जाओ इन लगडों गहेन्द्राचल १ मलयानल २ महाचल ३ श्रुक्ति गान् ४ मृन्नयान् ५ विन्ध्याचत ६ उ पारियात्र ये ७ मुख्य पर्वत हे इसी लगड से पुरुष स्वर्ग मोक्ष व नारकी गति सबको पहुचते हे अन्यत्र कर्मभूमि नहीं हे जो कुछ यहा से करके लेजाओगे वहा भोगोगे इस भारतवर्ष में नव भेदहे यथा इन्द्रद्वीप कशेरूगान् तामवर्ण गभास्तिमान् नागद्वीप सौम्यद्वीप गान्धर्व द्वीप वारुणद्वीप व यह इतना जोकि मगरने पुत्रों के पनेष्टये समुद्र व हिमालय के बीचों हे ये मर इसपण्डके द्वीप दक्षिण महासागर में दूर २ हे इनने इस देश व उम दक्षिण समुद्रकी भी भारतवर्ष सजे हे उ गहा मे वर्धाचक ६००० योजन वर्गात्मक हे यह समरसुन कृत समुद्रमे हिमालयपर्यन्त १००० योजन हे इनके पूर्वमे विमानदेग पश्चिममे यरगदेग हे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य व शूद्र इमी देशों समतेहे इनकी शक्ति कम से ग्राह्यादि पठन पाठन युद्ध वाणिज्य व विचर्य पी भेरा यह हे इस पण्ड में भी पारियात्र पर्वतके निवासी वेद व सृष्टि में बड़ा ज्ञानवान् स्तन उ नर्मदा सुगन् आदि नदिया विन्ध्याचलमे निकलती हे नारी पयोपशी व निर्विन्धादि नदिया मृन्नयान्पर्वतमे मोदावर्ग भीमवर्ग कृष्णा व वेणी आदिमहापर्वतके निवसवर्षीगिरिमे कूनमाला काप्रार्ण आदि मनवाचन से विनागा अपिहृता आदि गहेन्द्राचलमे दूमरी अपिकृष्णा व सुगाग आदि शक्रिगान् के तीरवाले पर्वतोंमे गनहु व चन्द्रशगा आदि ठिणवर्षके नीचे तागे ये इन नदियोंमे गो बहू व नदिया व छोटी नदियां निकलती हे इनके किनारे २ व दूर २ भी कुरु पाताल मध्यदेग पूर्वदेग कागरूप पत्कनिग नगप याधि एतय परान्त मोक्षेष्ट शूद्र आभीर अश्रुत मालक मानव पाण्डित्य मोक्षी मँधर कृष्ण पाण्ड व पाण्डन पटगण जम्बूत नामर्षीक आदि देश समये व इनके निवासी

इनका जल पी २ आनदिन होने ये मरत्युग त्रेता कलियुग इसी भरतखण्ड हीमें गानजाते हैं अन्यत्र नहीं क्योंकि इनके अनुमार धर्मके ४ पाँचें ऋग २ से इसीखण्डमें घटन इससे डाका प्रयोजन अन्यखण्डोंमें नहीं है व इसीखण्डमें पुरुष तपस्या व्रत यज्ञ दानादि आद्वर्ग्य परलोककेलिये करते कराये यज्ञ पुरुषगगवान् जम्बूद्वीपद्वीपों यज्ञोंमें पूजेजाते अन्यद्वीपों में नहीं फिर जम्बूद्वीपमें भी नराखण्ड हैं उनमें यह भरतखण्डही सर्वोत्तम है क्योंकि यह वर्गशुभ है व अन्य खण्ड भोगशुभिहें इस भरतखण्ड में लाखों जन्म के पीछे जन्म होना फिर यदि मनुष्यका जन्म बड़ी पुण्य इच्छा होनसे मिनजावे तो अयोग्य है ॥

चौ० गावत सकल देव गण गीता । घन्य पुरुष जिन जन्म पुनीता ॥

स्वर्ग मोक्ष प्रद भारत माहीं । करनिउ विधि पायउ शुभ माहीं ॥ १ ॥

जामों भरतखण्ड जनु पाई । होत सुकृति नर मुर समुदाई ॥

यामों धाय घन्य त्यहि खण्डा । जन्महोय जाकर श्रुति मण्डा ॥ २ ॥

करन कर्म सकल्प विहीना । जहघरि नर हरिपद लरलीना ॥

पुनि पायत हरि रादन निराम् । घन्य धाय महि सकल सुपाम् ॥ ३ ॥

स्वर्गद कर्म हीन जय होइहि । नहि जानत जन्मघरुहं गोइहि ॥

घन्य मनुज जो भारत वर्ष । शुभ इन्द्रिय युत रहत गरुष्व ॥ ४ ॥

पुनि पावत हरि पद युत नेमा । स्वर्ग लहत अरु रहत मक्षेमा ॥

घन्य घन्य यद खण्ड महाना । लहै जन्म तहँ तो कल्याणा ॥ ५ ॥

जम्बूद्वीप खण्ड नर भाना । योजना लक्ष जानु परमाना ॥

योजन लक्ष जलधि चहु कर्ना । जम्बू द्वीप भली विधि धरा ॥ ६ ॥

## चौथा अध्याय ॥

श्री० कश्यप चतुर्धाप्याय मों प्रक्षादित च दप ॥

पुनि विनगिरिनदिरण अरु पृथन मरत् गरुष्व ॥ १ ॥

शौरोगादि समुद्रती जिमि रणरा विधिना ॥

सर यामें मुनिराज यह मुनिये धरग्य पथिय ॥ २ ॥

पराशरमुनि वागे जिमिगानि क्षामगुड म जम्बूद्वीप रिगहै नेपथी भास-  
समुद्रका अक्षद्वीप धर्म जम्बूद्वीप तापयोजन का है अक्षद्वीप दो तापयानत्र  
का उच्छेदक राजा विषयनरे पुत्र ने विधिसे ताप यानत्र विधिसे मु

खोदय जानन्द गिव क्षेमक व भुव ये ७ पुत्रये इन्हींके नामसे पूर्वदिशाके  
 क्रम से शांतिन व शिगिर सुखद भानन्द गिव क्षेमक व भुव ये ७ खण्डोंके  
 गणदृष्टे मर्यादाकारक गोमेद चन्द्र नारद हुन्दुमि सोमक सुमन व वैभ्राज  
 ये ७ हैं इन सब पर्वतों पर देवता गधर्वादि व प्रजाभी बसती है व उस  
 खण्डमें पुण्यात्मा लोगही रहने उनके आधि व्याधि कुछ नहीं होती सदा-  
 सुखमे निवास होताहै नदी भी बहा अनुत्ता शिखी विषापा त्रिदिवा क्रतु अ-  
 मृता व मुरुना ७ हैं ये सब समुद्रमें मिलीहैं व इनके स्मरणमे पाप भिटने हैं  
 जो नदी व पर्वत गनाये सब प्रधान २ हैं इनको छोड़ छोटीनदियां व पर्वत  
 हजारों हैं नद्या भी नदिया कभी घटती बढ़ती नहीं सदा समान रहतीहैं इमलिये  
 प्रसन्नतासे बहाती प्रजा उनमे अपना काम चलातीहैं वहां युगोंके अनुसार  
 धर्मकी घटतीबढ़ती नहीं होती मद्रा त्रेतायुगके समानही काल बनारहता है  
 पृथ्वीपरसे ले भास्वटीप पर्यंतके जन ५००० वर्षतक जीनेरहते व उनमें भी  
 धर्म वर्णोंकेही अनुसारहैं व वर्ण भी चारहीहैं ब्राह्मणोंको आर्यक क्षत्रियोंको  
 कुख वैश्योंको विष्ण व शूद्रोंको भावित्री कहते हैं जैसे जम्बूदीपमें जम्बूका  
 बड़ामागि रूसहै जिसके नाममे यह जम्बूदीप कहलाता वैसेही अश्वदीपमें अ-  
 क्षरुहै पकरिया का तरुहै उसी के नाममे वह अश्वदीप कहाया वश अश्वी  
 श्रीहगित्री पूजा सब आर्यकादि करते हैं अश्वदीपके किनारे ० दोनाय योजन  
 का इक्षुरसोदनाग समुद्रहै है मेधेय । पृथ्वीपकी व्यवस्था तो सधेयगीनि से  
 कही अब शास्त्रलि टीपकी बहने हैं विचलगाय श्रवण कीजिये गारु-  
 लिटीप के अधिपतिका वपुष्मान् नाग था उनके भी श्वेत हरित जीमूत  
 रोहित वैशुन मानम व सुमभ ये ७ पुत्रये इन्हींके नामों से ७ खण्ड बनाये गये  
 यह टीप ४००० योजन का है व इक्षुरसोद समुद्र के किनारे वर्तमान है इनमें  
 भी बड़े २ पर्वत व नदिया मानहीमान हैं यथा कुमुद उन्नत सुवतादक शोषा  
 चल कि जिगमें पड़ी औपों है व शक गडिप व शकुमान ये ७ पर्वत और  
 योनी तोया विवृष्या चद्रा शुक्रा विगोचनी व निवृत्ति य ७ नदियां हैं जिनके  
 स्मरण मात्रहीमे पाप जान होजाते हैं और श्वेत रोहित जीमूत हरित वैशुन  
 मानम व सुमभ य ७ खण्डहैं इसमें भी चार वर्ण हैं ब्राह्मण तो अधिन धीरप को  
 अक्षय वैश्यको पौन शूद्रका कप्य कहते हैं ये सब पर्याय्य भगवान विष्णु

धी पूजा यज्ञादिकोंसे करते हैं इसमें देवनालोग वृद्ध रहने और १ शाल्मलि  
 कहे सेमरका वृक्ष बड़ा भारी यहां है उसीके नामसे यह शाल्मलिदीप कहाता  
 इसके किनारे २ सुरोदक नाम समुद्र ४००० योजनका है शाल्मलिदीपके आगे  
 कुशदीप है इसके महाराजाजिगज का ज्योतिष्मान् नामथा उनके उद्भिद वेणु-  
 मान् स्वैर्य लम्बन धृति प्रमाकर व कपिल ७ पुत्र थे इन्हींके नामसे सातवण्ड  
 घनायेगये उनमें मनुष्य दैत्य व दानव सब एक सग चसनेहैं देवता गन्धर्व  
 यज्ञ किन्नरादि भी रहते वर्ण यहामी चारहैं ब्राह्मणको दमी क्षत्रियको शुर्ष्मी  
 वैश्यको स्नेह शूद्रको मन्देह कहते हैं वहा ब्रह्मरूप श्रीविष्णुजीकी पूजा होती  
 है और विद्रुम हेमशैल श्रुतिमान् पुष्पवान् कुशेगय हरि व मन्दराचल ये ७  
 पर्वतहैं धृतपापा शिवा पवित्रा सम्मनि विद्युत्भग्गा व गही ये ७ नदिया हैं  
 सब स्नानमात्रसे पाप नाशती हैं इनके विणेष बहुतसी छोटी २ नदिया व  
 पहाड़ हैं इस द्वीपमें १ कुराका बड़ा भारी समूहहै उसीमे इसका कुशदीप नाम  
 है इस द्वीपके किनारे २ घृतोदक समुद्र उतनेही योजनकाहै जितने का कुश-  
 दीपहै इस समुद्रके उसपार कौचदीप इसका दूनाहै इसके महाराजका ज्युतिमान्  
 नामथा उनके कुशल मनुग उष्ण पीवर अन्धकारक मुनि व इन्दुभि ये ७ पुत्र  
 थे इसमें भी पव क्रौंच वामन अन्धकारक देवावृत्त पुडरीकवान् इन्दुभि व महा  
 क्रौंच ७ मर्यादा पर्वत है इन सनपर देवता व मनुष्य गन्धर्वादि चमने हैं व  
 ब्राह्मण तो पुष्कर क्षत्रियको पुष्कर वैश्य को धन्य शूद्रको निगम कहने इसमें  
 भी छोटी २ बहुत नदिया हैं पर प्रधान तो गौरी कुमुदनी सन्ध्या रात्रि मनो-  
 जवा रूषानि पुडरीका ये ७ नदियां हैं यहा रुद्ररूप श्रीभगवान् जनार्दनकी  
 पूजा मवलोग करते हैं इस द्वीपको दधिमण्डोद समुद्र पेरेहै जितने योजनका  
 यह द्वीपहै उतनेही योजन का वह समुद्रभी है दधिमण्डोद समुद्रके आगे शाक  
 द्वीपहै यह कौचदीप से दूना है यहाके महाराजका भव्य नाम था उनके भी  
 जलदकुमार सुकुमार जणीवक कुसुगोद मौदारि य महाद्रुम ये ७ पुत्र दृये  
 उन्हींके नामसे ७ राण्ड घनाये गये इस द्वीपमें भी ७ पर्वत उदयगिरि जला-  
 धार रेवतक श्याम आम्बिकेय रम्य व केमरीनाम से प्रसिद्ध है और भारनाम  
 बड़ा भारी एक वृक्षहै इसीके कारण इसका शाकदीप नाम हुआहै इसीके साथ  
 के लागने से बड़ा सुख होताहै और नदियांभी यहाकी सब पाप नाशनेक नी



हे उनके नाम सुकुमारी कुमारी नन्दिनी गणुका इधुधेनुका व गगस्ती ये हैं इनको छोड़ नदिया व पर्वत हजारों बहा हैं जो लोग वहा नमते हैं उनकी न वर्महानि होती न उनका कभी पक्ष्य फहामुनी होती सब मदा प्रमजचित्त बने रहते वहा ब्राह्मण को मग क्षत्रिय को मागध वैश्य को मानव व शूद्र को मन्दग कहते हैं इममें सूर्यरूप भगवान् विष्णु ही पूजा होती है इमके किनारे २ क्षीरोद समुद्र है इस समुद्रके उत्तपार गा कर्डीपकादूना पुष्काटीपके पुष्काटीपके अधिपतिका सवननामथा उनके महावीर व धातकि दोही पुत्रथे इनदोनों के नागसे उममें दोही खगडकियेगये इममें गर्यादापर्वत गौनमे सज्जाग एकही है यह पृथिवी तलमे ५०००० योजन ऊचा है व इतनाही इसका विस्तार भी है इगटीपके निवासी १००००० वर्ष तक जीने हैं और सब अरोगी अशोकी स्नेह वैर हीन होने अधप व उत्तम तो उनमें होते पर कोई गाने के योग्य व गानेवाला नहीं देखपड़ता और कोई किसीकी ईर्ष्या निन्दा नहीं करता भय रोप टोप किमी को नहीं होने उन दोनों महावीर व धातकी खगडों में सत्य व भूठ दोनों नहीं हैं वहा नदी व पर्वत कुलनहीं सुन्दरसाफपडे हैं पर्वत एकही मानमोत्तर दोनों खगडोंकियेगये है वहा देवादि व मनुष्य एकहीरूपमे भिन्ने हैं व वर्षाश्रयकी व्यवस्था भी नहीं बदेवाद न्यायशास्त्र उद्यमादि भी नहीं ये दोनों खगड पृथिवी के स्वर्ग हैं इम पुष्काटीपों एकवडाभागी कण व ना वृगहे उमरु पत्रे व्रजा जीका स्थानदे देवा व देव्य सब त्रसागीकी पूजा कने इम भागि दीप और समुद्रकी व्यवस्था नहींगरे जिनका जो टीपके उमके वेगोराना समुद्रभी उतनाही है लम्हूदीप जो सबके नक्षत्रमें है वहा १००००० योजनका है इमके घेनेवाला लम्हमसु भी इननाही है इमके आगेराना टीप व समुद्र इममे दूना फिर आगेराना उसमे दूना इमीभाति सबको जानो इम सब समुद्रमें जिनना २ जल रक्षता है सदा उतनाही बना रदनाहें न्युनाधिक वर्मा नहीं होना जैसा कि नदियों में और जो ब्रह्मि कर्मी २ देवी जानी है उममें जल अधिक नहीं गजाना धान जेगे किमी वर्त्ताम जन फरके अग्नि पर चढावे तो पर उरुचना है उसी भाति समुद्रका जल उरुगा की देखकर उरुगता व कि नीचे जाजाता इमको घटनी वदनी कह मन्त्रे है सम्भुन जन जाकात्याही रस्ता व वदनी रदनी नुरुक व पृष्णयधरे अनुशा होनाहै यथा



से ही प्रकाश होता व मक्की प्रीति बढ़ती दैत्य व दानवोंकी कन्या इस उधर घूमती हैं एमे पातालों में विमुक्तभी हो पर कौनहै जिसकी प्रीति न हो जहा दिनको सूर्य के किरण प्रकाश तो करने हैं पर घाम नहीं चन्द्रमाके किरणभी रात्रिको प्रकाशते नोहै पर शीत नहीं करने भक्ष्य भोज्य लेखादि सब भानिके भोजन करतेदृष्टे दैत्योंको बीताहुआ समय जान नहीं परना कि किनना बीता वन व नदियां सब रमणीक तड़ागों में कमल फूल रहेहैं ठौर ठौर मनवाले को फिल बोल रहेहैं अतिमनोहर वस्त्र व भूषण व सुगन्धित पदार्थ व वीणा वेणु मृदंग नगारे आदि वाजन ठौर २ विद्यमान हैं इन्हें आदि औरभी नाना प्रकारके भोग विलासके पदार्थ हैं दैत्य दानव नागलोक भोगते हैं और सय पातालोंके नीचे भगवान् विष्णुकी जो एक नागमी मूर्तिहै जिसे अनन्न जे-पादि अनेक नामोंसे पुकारते हैं उनके गुणोंको दैत्य दानव तो क्या कोई नहीं जानसका इनके १००० गिरहैं और ये सब जगत के हिन अने फणोंसे ऐसा प्रकाश करते कि दैत्योंके परक्रम घटनेजातेहैं इसीसे नीचेमे ऊंचे नहीं आते सदा इन अनन्नजीके नयन गढसे घुमा करतेहैं कुण्डल एकही कानमें पहनने मुकुट धरे रहने मानाभी गले में विराजा करती गानों जगिन सहित उज्ज्वल पर्वतहैं वस्त्र सब नीलके रंगीदृष्टे पहिनते हार उज्ज्वल हल व मुश्रन हाथों लिये कला-न्त में इन्हीं के मुखमे अग्नि निरुलने से सब भस्मीभूत हो जाता तभी स्वरूप विष्णु जगत् नागने इनके १००० गिरां में से किसी एक पर यह भूमण्डल धाराहना व बहा सब देशगण स्तुति किया करतेहैं तिनका वीर्य व प्रभाव रूप व स्वरूप देवता लोग भी न जानही सकेन कहीसके जिनके मस्तकमें यह इतनी बड़ी पृथ्वी फूलके मालाके समान धरी है फिर तिनका पराक्रम कौन फहेगा जब शेषत्री कभी २ जभाई खेतहैं तमी २ यह मही पर्वत व समुद्रों के साथ चलायमान होती है ॥

श्री० चारण सिद्ध नाम गणपत्या । किरा अपार उरु नर मर्त्या ॥

अन्न न रहन कहा गुणजायु । नाम अनन्त ताहिसौ तायु ॥ १ ॥

नागपथु हरगन ररिचन्दन । जायु श्याम पपनास्तुमन्दन ॥

होमदिता पटमान मोह्र । मागुणगण पटु किमि कहयोई ॥ २ ॥

समपुराण पाचम मुनिगर्गा । जादि जगप्यो परम नितर्गा ॥

लहीसकल ज्योतिषकी विद्या । मकल निमित्त कहेगति निद्या ॥ ३ ॥  
सोइ नागपाति निज शिरमाहीं । घरे रहत मडि मशय नाहीं ॥  
सकल पताल कथायह भानी । सुनहु भली विधि मुनिवरज्ञानी ॥

## छठा अध्याय ॥

दो० कहव छठे अध्याय महँ सव नरकनकी गाथ ॥

जो क्षिति नीचे जलउपर हैं मुनि कांपत माथ ॥ १ ॥

श्रीपराणरमुनि मैत्रेयमुनि से बोले तिन सब पातालों के नीचे व जल के ऊंचे सब नरकहैं जहा सब पापी जन्तु गिराये जाते उनके नाम सुनिये १ रौरव २ सूकर ३ रोध ४ ताल ५ विशमन ६ महाज्वाल ७ तप्तकुम्भ ८ सवन ९ विमोहन १० रुधिरान्ध ११ वैतरणी १२ कृमिश १३ कृमिभोजन १४ असिपत्रवन १५ कृष्ण १६ लालाभक्ष १७ दारुण १८ पूयग्रह १९ पाप २० वद्विज्वाल २१ अधशिशार २२ सन्दश २३ कृष्णसूत्र २४ तम २५ आवीचि २६ श्वभोजन २७ अप्रतिष्ठ २८ अर्वाचि इन्हें आदि और बहुतसे महादारुण नरकहैं ये नरक सब यमराज के अधिकार में हैं इनमें जो कोई किसीको तस्त्रास्रसे मारडालते व कहीं अग्नि लगादेते व अन्य पाप करने वहीलोग जव-रदस्ती गिराये जाते हैं जो लोग झुंठी साखी देते व किसी की मुहदेखी करते व औरही झुंठाई करते वे रौरवनरकमें डारेजाते कि जिममें रुकनाम वड़े कट्टे जीव भरेहैं और जो लोग गर्भगिराने गाव फूरुने गायबेल मारडालने व किसी को सास बन्दकरके मारते गदिरा पीते द्राघण को मारने व द्राघण का सोना चुराते व इन लोगों के सगन्वाते पीने ये सब सूकर नरकमें जाते हैं जो कि सोरफे मुहके डौलका बनाहे व जन्तुके पग्ने से चवाने लगता है जो लोग स-त्रिय व वैश्यको मारडालते वे तालनाम नरकमें परते हैं जिममें जीव नालफ-लके समान फेरुदिये जाते और जो गुरुकी शय्यापर बैठ जाता वह तप्तकुम्भ नरकमें परता जिसमें कि सौलता दृआ पानीभरा है इसी में जो अपने वहिन के सग भोग करने व जो राजदूतोंको मारने ये भी परते हैं और जो पवित्रता स्त्रीको सोइदेने व बेचडारने जो पन्धुओं का स्वामी फग्न व जो घोड़ा बेचने व शरणागत को त्यागने ये सब तप्तनाह नरकमें परत हैं जिममें सब अग्निवे-

तपायेष्टय लोहर्हा ये स्वान् ६ जो लोग अपनी कन्या व पतोहू के सग भोग  
 करने व मटात्राल नरक्य पाने जिममें अग्नि की लारके जाती है जो माता  
 पिता गुरु आदि भ्राने पडों का निराटा करते व पगपयाद कहते सुनते व वे-  
 दकी मिंदा करते व वेद लिखानिन बेचने व वेद पढ़ाकर कुछ द्रव्य लेने ये सप-  
 न नाम नरक में जाने जहा पहुँचतेही मुद्दरोंमें छूटडारे जाने और चोर सदा-  
 चार मार्ग धर्मके दूबनेराले दरजा व लक्षण व पिताके बेरी अन्धे स्वमें दोष  
 लगानवाने ये सब विमोहन नाम नरकमें जाने जहा जातेही आवसाव-वस्ने  
 लगते जो क्रिपीके ऊर मारण मोहनादि कर्म व पिता देवता अतिथि इनको  
 वगप आपहीवाने ये मनुष्याधम कृमिगक्ष जिममें कीड़ेही पानेको मिलते उ-  
 ममें पाने व कृमिगण में भिमों सब कीड़ेही बलबलारहे हैं जो तीरवनाने व म-  
 णियो में छेद करने व तरारि आदिराम बनाने ये लान्तागक्ष नरकमें जाते जहाँ  
 कि लारही भर्गहे वही पीनेवाने का मिलती यहीलोग विष्णुमन नरकमें भी  
 पाने जहा वही विशाईधि जाती है अमर दान लेनेवाले अधोमुप नरक में  
 जाने जहा कि नीने गुबक सब टगेजाते इपी में वेभी पाने जो बाधणशोशू-  
 शोको यनराने व जो अन्धी भाति ज्यानिप गाल् नही पदे गरणीभद्रा बनाते  
 फिरते और जो अविचार के नाय राग करते ये पूययह नरकमें पाने जहाँ  
 पीपही भगी रहती इपी में अन्य वजानों को छोड़ तो आपही नी की गीठी वस्तु  
 पाने पाने व ब्राह्मणहोकर जोन्नास गाम लोन लेन घुगादि रस व निख सेपने  
 वे भी पाने थार पिता गुरगा हगड़ी कूकर सोर पक्षी इनके पालनेवाने  
 भी जोर फुसीवाज गछाड धतकण्ड ही बनी वस्तु पानेवाला विष देनेवाला  
 चुगुली कनेवाला भोगा जोननेवाला व जिमकी स्त्री व्यभिचारिणीहो अमा  
 वास्या माद्रादि के दिन मेंपुा करनेवाला घर फुंकेमया मित्र मारनेवाला  
 विद्रिया बकानेवाला पुगेहित सपुंषी बेदनेवाला ये सब रुचिरान्ध नरक में  
 जाने जहाँ सब सखटो रहना रहनाहै मिठई भोगनेवाला प्राग वजारिवाला  
 बेवाली नरकमें जाना इनमें सुंभ नाक दिन व रात्र जाति बहनेदे कण पीनेवाले  
 हादृष्टवानेनेवाने अपापा म्थेवा द्रव्य विमो म ये सब कृष्णनरक में जाने  
 नेहा सब अंधिपारदी अंधिपार में जो नाहक नग फावना वद अक्षिपत्र वन न-  
 रकमें जाना इस वनम जिदत भेदते सबके दुषाया नरकभिते समान पनेदे भेद

जिवैया शिकार खेलैया कुम्हारी वृत्तिकरैया ये अग्निज्वाल नरकों गिरते इसमें अग्नि की ज्वाला जलाकरती हैं जो किमी का व्रत भग करदेता व अपने धर्मको छोड़देता ये दोनों सदशनाममें पगते जिममें मसा आदि जीव भरे पहुचतेही रुधि चूसलेते हैं जो ब्रह्मचारीहो दिनको स्वप्नमें भी काम गिराते व जो अपने पुत्रमेही विद्यापढ़ने वे श्वभोजन नाममें पगते इसमें कूकुर काट खातेहैं इनने ये इन्हें छोड और भी हज्जारों नरकहैं सर्वोंमें पापीलोगही परतेहैं जो लोग वर्ण व आश्रमके विरुद्ध कर्मकरते वे सब नरकों मेंही परते नरकनिवासी लोग नीचेसे देवताओं को देखने व ललचाते हैं कि हाय हमने ऐसे कर्म न किये जो स्वर्ग को जाते देवता भी ऊपर से नरकनिवासियों को देखने व पछिताने कि हाय जब हमारी पुण्य क्षीण होजावेगी तो पृथ्वीमें जन्म लेकर पाप करने से नरक भोगने परेंगे ये नरकनिवासी भी क्रमसे कभी न कभी मोक्षपदतक पहुचते हैं जैसे कि नरकसे निकल वृक्ष वल्ल्यादि होते फिर कीड़े मकोड़े फिर गच्छली आदि जल जन्तु फिर पक्षी फिर पशु पशुके पीछे गनुष्य इन्हों में जब धार्मिकहुये तो देवता हुये और भजनानन्द हुये तो मुक्तही होगये पर वृक्षादि योनियों में बहुत २ दिन रहना परता जैसे २ अन्यकृमि आदि योनियों में जीव आता हज्जार २ योनि कमपरती जातीहैं जितने जन्तु स्वर्ग में हैं उननेही नरक में भी पाप न करे व करके प्रायश्चित्त करडाले तो स्वर्ग को जाता जो पापक प्रायश्चित्त नहीं करता नरकको जाताहै प्रायश्चित्त पाप शोधनके उपाय को कहतेहैं सब पापोंके योग्य विचार २ अपिनोगोंने बनायेहैं बड़े पापके लिये बड़े २ प्रायश्चित्त व छोटे पापके लिये छोटे २ प्रायश्चित्त स्वायम्भुवमनु आदि अपने २ गनुस्मृत्यादि ग्रन्थों में लिखेहैं सब प्रायश्चित्त तपस्या व्रतदानादि साध्यहै पर उन सब प्रायश्चित्तों से श्रीकृष्णस्मरणरूप प्रायश्चित्त श्रेष्ठहै जिमको पाप करने के पीछे पश्चिर्ताईआवे उमके लिये कृष्णस्मरणरूपही प्रायश्चित्त ठीकहै श्रीकृष्ण स्मरणका क्रम यह ठीकहै जो प्रातः काल मन्था मगय मथ्याह २ रात्रिको स्मरणकरै इसगति करने २ पाप छूटजाने व प्राणी नारायण में लीन होना। ह विष्णुके स्मरण करने से मय जेगोंके देग नाग होजाने २ जीवमुक्ति को पहुच जाना यदि इमंग कुछ विघ्नहजा तोभी स्वगयाम होनाहै जिमने रामदेव में मनलगाय जप होग पूजनादि किया व बीचग इत्यादिपत्र पानेही इन्द्राकी इमी

को विष्णु स्मरणका विघ्न कहनेहैं क्योंकि उनके स्मरणका तो मोक्षही फलहै  
 इन्द्रलोकादि तो यों यंत्रोंसे भी मिलजातेहैं कहा स्वर्ग जहां जाय गनुष्य फिर  
 लौटजाता कहा वासुदेव के अर्थ जप जो मुक्तिका उत्तम बीजहै बड़ा भन्वर है  
 तिससे पुरुष को चाहिये कि दिन रात्रि विष्णुका स्मरणकरे जिससे सब पाप  
 मिटजावें व वह शुद्ध परमधाग को चलाजावे जिस कार्य के करनेमे मन प्रसन्न  
 रहे और कोई निन्दा न करे उसीका स्वर्ग नामहै व जिसके करनेसे मन भी न  
 प्रसन्नहै व कोई निन्दाभी करे उसको नरक नामहै अर्थात् वैसा कर्म करने से  
 स्वर्ग व पेसा करने से नरक होताहै पापसे नरक पुण्य मे स्वर्ग एकही वस्तु मे  
 कभी दु ख कभी सुख कभी ईर्ष्या कभी क्रोध होता फिर वस्तु दु ख देनेवालीही कैसे  
 होमकी है फिर वही वस्तु कभी प्रसन्नताको प्राप्त करानी कभी दुःखको कभी क्रोध  
 को कभी फिर प्रसन्नताको निममे न कोई वस्तु दुःख देनेवाली न सुख देनेवाली  
 है यह सुख दु ख मनकादी परिणाम है जिम वस्तुमे मनने सुख ममत्ता वह सु-  
 खद जिससे दु ख समझा वह दु खद ज्ञानही परब्रह्महै व ज्ञानमेही मन न होता  
 व ज्ञानही से मुक्ति यह सत्तार ज्ञानस्वरूप ज्ञानसेपरे कुछ नहीं है विद्या अनिद्या  
 सब ज्ञानही हैं ॥

श्री० इमि तुममन भूगोल यत्नाना । सुनि पाताल नरक पुनि नाना ॥

सागर गिरि नदि ह्योपह रण्डा । सय सगेप कहा मति गण्डा ॥ १ ॥

अथवा सुना चहन द्विजराई । पृष्ठहु तौ एम तुम्ह सुनाई ॥

इमि न कछु जो नाह तुमयोग । यासौ पूछ्यु सहित प्रयोग ॥ २ ॥

## सातवां अध्याय ॥

दो० कहस सप्तमाध्याय महँ ब्रह्ममाण सम्मान ॥

पुनि सुवजन सुख लोक कर सुनियो लोग समान ॥ १ ॥

श्रीमंत्रपजां षोले हे सुनिराज । आपने पृथिवी मे नरक पर्यन्त सब कहा  
 अब भूतल्लोकादिकी व्यवस्था व प्रदोर्षीनाम प्रगाणादि सुना चाहने हैं क्या  
 सहित सुनाइये परागरमुनिषोले मूर्ध चन्द्रपाके विरण मे जगत्तक उजियाती  
 यहूचनी है मय मगुद र पटाड़ोंके साथ उननाही पृथिवी लोकहै जिननी लक्ष्मी  
 जोई व निम्न जाकाही पृथिवी है उननाही भूतल्लोक भी है भूमितलमे

लाख योजनदूरीपर रविलोक है व रविलोक से उत्तनीही दूर चन्द्रलोक है व चन्द्रलोकसे १००००० योजन दूर तारागण मण्डल व वहामे २००००० योजन पर बुधमण्डल वहा से शुक्र २००००० योजन शुक्र से २००००० योजन मंगल इनसे २००००० योजन पर बृहस्पति इनमे २००००० शनैश्चर इनसे १००००० योजनपर सप्तर्षियोंका स्थान इससे १००००० ऊंचे ध्रुवस्थान है वस त्रि लोकी इतनीही है यज्ञ व्रतके करनेवाले यहीनक पहुँचसके ध्रुवसे १००००००० योजन ऊंचे महर्लोक इससे २००००००० योजन ऊंचे जनलो है जहा ब्रह्माके पुत्र सनकादि रहते हैं वहा से ८००००००० योजन ऊंचे तपलोक है जहा दाह-रहित वैराज नाम देवगण रहते हैं तपलोकसे ४०००००००० योजन सत्यलोक है जहा पट्टच फिर जन्म मरणशून्य जीव होजाते हैं इमी को ब्रह्मलोक कहते हैं जहातक पैदर मनुष्य पट्टच सके हैं उसी पृथिवीको भूर्लोक कहते हैं भूमि व सूर्य के अन्तर में जो कुछहै उसे भुवर्लोक कहते हैं यहा सिद्ध व मुनिलोगोंकी गतिहै सूर्यलोक ध्रुवलोक के बीचों १४०००००० योजन है उमे स्वर्लोक कहते हैं ये तीनोंलोक कृत्तिमनक हैं क्योंकि ब्रह्माकी नित्य प्रलयों में विगड़जाते हैं जन तप व सत्य ये नित्य हैं इनछत्रों के बीच में महर्लोक है नित्य प्रलय में इस का नाश नहीं होना पर जीव ऊँचेके लोकको भागजाते हे मैत्रेय ! ये ७ लोक ऊपर के व ७ पाताल वम इतनाही ब्रह्माण्डका विस्तार है व सब करोरियोजन अण्डकटाह से घिरा हुआ है फिर इस अण्डकटाह के उधर उसमे दशगुण जला-वरणहै फिर यह अग्निसे घिराहै व अग्नि वायुसे वायु आकाशमे आकाश ताम-साहङ्कार से तागमाहङ्कार महत्त्व से महत्त्व प्रकृति मे और फिर प्रकृतिको कोई भी आवरण नहीं न उसकी गिनतीहोसकती है क्योंकि वह तो अनन्तहै व प्रमाण व्यापी है इससे इस ससारका कारण प्रकृतिही है क्योंकि उसपरमेश्वर की रचना से सैन्धों व मधुसौं अण्ड होते हैं क्योंकि प्रकृति व पुरुषमें कुछ अन्तर नहीं जैसे इंधनमें अग्नि तिलोंमें तेल तैसेही प्रकृतिमें पुरुषहै प्रधान व पुरुष दोना सर्वशक्ति युक्त विष्णु शक्तिसे घेरेहुये हैं सृष्टिके समय प्रकृति पुरुषके अलग करनेका कारण वही विष्णुकी शक्तिही है क्योंकि वही इनदोनों को चैनन्प करती है जैसे नल की शीतलना को कणिकाओं के द्वारा तायु धागण करताहै विष्णुकी शक्ति प्र धानपुरुष द्वारा नगद को प्रदण करती है जर डार पानी गरित वृषणादि बीज



से उत्पन्न होता व उसमें अन्यबीज होते हैं फिर उन बीजों से उसी तरह के लाखों वृक्ष होते इसी तरह प्रकृति व पुरुष से महत्त्वादि होते फिर उनसे पृथिवी जलादि इन सबसे देवतादि होते फिर निनके पुत्र पौत्रादि जैसे बीजसे बीज उत्पन्न होने से वृक्षका नाश नहीं होता इसी भांति पृथिव्यादि मूर्तों से पृथिव्यादि बनने से पृथिव्यादिकों का नाश नहीं होता जैसे आकाश व कालादि के एकत्र होने से वृक्ष के कारण होने तैमही विष्णुके विना परिमाण विष्णुका कारण है जैसे बीजहीसे वृक्षकी जड़ नाड़ी अँलुआ पत्ता शाखा पुष्प फल भूमी कन आदि वृत्त होने पर होते हैं तैसेही विष्णुकी शक्ति से अनेक कर्मों से देवता उत्पन्न होवें हैं क्योंकि विष्णुही पद्मसद्वै निनमे यह सब नगत् हुआ है वही सबों विद्यमानदें व उन्हीं में सब भलय के मगप लीन होगा ॥

चौ० सदसत्पर पद परम मुजाध । सोई वष सर्वत्र प्रकमध ॥  
 भेद रहित जाकर जग यह । चर अरु अचर न कहु भेद ॥ १ ॥  
 मूलप्रकृति मोह सवजगरचना । व्यक्तरूप हरि जोनिर्वचना ॥  
 मिलतताहिमह अरुत्यदिमार्ही । अवहु विराजमान जग आँहीं ॥ २ ॥  
 यज्ञ क्रिया कर्त्ता हरि सोई । सोई पूज्य कतु सोई कल रेंदि ॥  
 सवयुग साधन जो कहु अहई । एरिते भिन्न न कहु श्रुति महई ॥ ३ ॥

### आठवां अध्याय ॥

दो० कद्वय अष्टमाध्याय महं सत्या भेदभयल ॥  
 बुनि हरि शरण प्रसागसां गगा गमन न यक ॥ १ ॥

श्रीपराजगमुनि बोले हे मेत्रेवर्ती ! ब्रह्माण्डकी रम्या तो तुमसे कही भव सूर्यादिकों के प्रमाण व सस्था मुनिये नय सहस्र योजन का मयं नागपण का रथ है व अष्टादश सहस्र योजन की करिया १५७५०००० योजन का समस्त क्योंकि पुष्कर टोपके मध्य में जम्बूद्वीपके मध्य तक इनकीही दूरी है उननाही पदा मृगाध होना चाहिये इगर्भ मकर और पुरुषद्विपाचमीदें एकपदियाजाना गिराप्रानगोत्तर पर्वत पर कि उसीपर पहिया घुमनी है और विना पहियाराजा रूप सुवेद पर्वत ये भयारतना इस पहिया में जादा गर्भी वर्षा सीत लगपदी नीन गर्भी है इस वनरादि ५५ मागगज ५ अन्तु पुट्टिया यह कानचक मय मरमपदे और दूसा

मुसरा ४५५०० योजनका है इस स्थाने गायत्री वृहती उष्णक् जगती त्रिषुप्  
 अनुष्टुप् पक्रिये ही ७ छन्दके नामके चोठेहैं मानसोत्तर पर्वत पर यहासे वि-  
 चारें तो पूर्व ओर इन्द्रकी पुरीहै दक्षिण ओर यमराज की पश्चिम में वरुण की  
 उत्तर चन्द्रमाकी इन्द्रकी पुरीका अमरावती यमराज की का सयमनी वरुणकी  
 का मुख्या सोमकीका विभात्री नाम है दक्षिणायन में बहूतशीघ्र सूर्य चलते  
 इसीसे दिन छोटा होता उत्तरायण में धीरे २ इमसे उनदिनों में दिन बड़ाहोता  
 रात्रिदिन के होनेका कारण सूर्यनारायणही है व योगियों के क्लेश नाशने  
 के मार्ग भी वही है दिनके मध्यमें सूर्य सब ढीपोंमें उम स्थानपर पहुँचने जि-  
 सके ठीक उत्तर आधीराति को पहुँचते है उदय समय में सबढीपों में पूर्वही  
 देखपरते व अस्त समय में पश्चिम जहा जिम देशवाले सूर्योदय देखते उम  
 देशवालों को वही सूर्योदय स्थान है व जहा अस्त देखते वही अस्तका स्थान  
 सत्य २ तो न कभी सूर्यका उदय ही हो न अस्तही क्योंकि कहीं न कहीं उनका  
 उदय बनाही रहता है पर उदयास्त दर्शन व अदर्शन को मानते हैं जब तक  
 देखते उदय बताते जब नहीं देखने अस्त बताते हैं इन्द्रपुरी आदि में टिके हुये  
 सूर्यनारायण जिस पुरीमें रहते हैं उसे और दो उसके आगे वालियों में प्रका-  
 शकरते व इन्हीं पुरियों के मध्यके दोढोणों में भी प्रकाशते हैं जब किसी को-  
 णवाली दिशा में आजाते हैं तो जिसमें है एक उसके पीछेवाले कोणको व  
 उसको व उसके आगेवाले इन तीन कोणोंको प्रकाशते व अगली पिछनी दो  
 पुरियोंको जब उदय होते तबसे दो पहरतक तो उनकी किरणें बढ़तीजाती फिर  
 कमती होनेलगती हैं उदय समय में सूर्य जहाँ देखपरने वह पूर्वदिशा जहा  
 अस्त समय देखने वह पश्चिम उदयकी दिशाको मुख करने से दक्षिणीओर  
 दक्षिण वाईओर उत्तर दिशा होतीहै जबनक किसीके सागने सूर्य देख परते तो  
 उसकी बगलकी ओर व पीछेभी प्रकाश करनेहै पर सुमेरु पर्वत पर जो यहा  
 की सभाहै उसे छोड़ क्योंकि उसपर सदा प्रकाश व सदा अप्रकाश रहता है  
 जाहे से सबढीपों व खण्डोंके सुमेरु पर्वत उचरही है जरा सध्याको सूर्य अस्त  
 होनेलगते हैं तो उनकी दीप्ति कुछ २ अग्निमें रहजाती है इसीमे रात्रिमें आग  
 दूरमे प्रकाशित होती और दिनमें अग्निका चतुर्तांग सूर्यमें बनाजाना इसीमे  
 अग्नि के अतीव संयोग से सूर्य अग्नि होने व गरमी भी होने है सूर्य

से उत्पन्न होता व उससे अन्यबीज होते हैं फिर उन बीजों से उसीतरह के लाखों वृक्ष होते इसीतरह प्रकृति व पुरुष से महत्त्वादि होते फिर उनसे पृथिवी जलादि इन सबसे देवतादि होते फिर तिनके पुत्र पौत्रादि जैसे बीजसे बीज उत्पन्न होने से वृक्षका नाश नहीं होना इसीभाति पृथिव्यादि भूतों से पृथिव्यादि वनने से पृथिव्यादिकों का नाश नहीं होता जैसे आकाश वा कालादि के एकत्र होने से वृक्ष के कारण होते तैसेही विश्वके विना परिमाण विष्णुका कारण है जैसे बीजहीसे वृक्षकी जड़ नाहीं अँसुआ पचा शाखा पुष्प दुग्ध भूमि फल आदि वृक्ष होने पर होते हैं तैसेही विष्णुकी शक्ति से अनेक कर्मों से देवता उत्पन्न होते हैं क्योंकि विष्णुही परब्रह्म हैं तिनमे यह सब जगत् हुआ है वही सर्वमे विद्यमान है व उन्हीं में सब प्रलय के समय लीन होगा ॥

श्लो० सदसत्पर पद परम मुजासू । सोई ब्रह्म सर्वत्र प्रकासू ॥ १ ॥  
 भेद रहित जाकर जग येह । चर अरु अचर न कछु सदेह ॥ १ ॥  
 मूलप्रकृति सोइ सयजगरचना । व्यक्त रूप हरि जोनिर्व्वचना ॥  
 मिलतताहि मह अरु त्यहिमाही । अचहु विराजमान जग आही ॥ २ ॥  
 यज्ञ क्रिया कर्त्ता हरि सोई । सोई पूज्य क्रतु सोइ फल होई ॥  
 सबयुग साधन जो कछु अहई । हरिसे भिन्न न कछु श्रुति कहई ॥ ३ ॥

## आठवां अध्याय ॥

श्लो० कहव अष्टमाध्याय महँ संस्था भेदभक्तक ॥

पुनि हरि चरण असगसों गंगा गमन न वक्त ॥ १ ॥

श्रीपराशरमुनि बोले हे मेत्रेयजी । ब्रह्मागडकी संस्था तो तुमसे कही अब सूर्यादिकों के प्रमाण व संस्था मुनिये नव सहस्र योजने का सूर्य नारायण का स्थ है व अष्टादश सहस्र योजनकी फरिया १५७५०००० योजनका मुसरा क्योंकि पुष्कर द्वीपके मध्य से जम्बूद्वीपके मध्य तरु इनतीही दूरी है उननाही बड़ा मुसरा होना चाहिये इसमें एक ओर एकपटिया लगी है एकपटियावाला गिरमानसीत्तर पर्वत पर कि उसीपर पहिया घूगती है और विना पहियावाला स्थ सुमेरु पर्वत पे धरारहता इस पहिया में जादा गर्भी वर्षा तीन समयही तीन नागी है इडा वत्सरादि ५ आरागज ६ ऋतु पुट्टिया यह कालचक्र मन्वन्तमय है और दूसरा

मुसरा ४५५०० योजनका है इस स्थाने गायत्री बृहती उष्णिक् जगती त्रिपुष्प अनुष्टुप् पङ्क्ति ये ही ७ छन्दके नागके घोड़े हैं मानसोत्तर पर्वत पर यहासे विचारे तो पूर्व ओर इन्द्रकी पुरी है दक्षिण ओर यमराज की पश्चिम में वरुण की उत्तर चन्द्रमाकी इन्द्रकी पुरी है अमरावती यमराज की का सयमनी वरुणकी का मुख्या सोमकीका विभावरी नाम है दक्षिणायन में बहुतशीघ्र सूर्य चलते इसीसे दिन छोटा होता उत्तरायण में धीरे २ इमसे उनदिनों में दिन बड़ा होता रात्रिदिन के होनेका कारण सूर्यनारायणही है व योगियों के क्लेश नाशने के मार्ग भी वही है दिनके मध्यमें सूर्य सब द्वीपोंमें उम स्थानपर पहुँचते जिसके ठीक उत्तर आधीराति को पहुँचते हैं उदय समय में सबद्वीपों में पूर्वही देखपरते व अस्त समय में पश्चिम जहा जिस देशवाल सूर्योदय देखते उम देशवालों को वही सूर्योदय स्थान है व जहाँ अस्त देखते वही अस्तका स्थान सत्य २ तो न कभी सूर्यका उदय ही हो न अस्तही क्योंकि कहीं न कहीं उनका उदय बनाही रहता है पर उदयास्त दर्शन व अदर्शन को मानते हैं जब तक देखते उदय बताते जब नहीं देखते अस्त बताते हैं इन्द्रपुरी आदि में टिके हुये सूर्यनारायण जिस पुरीमें रहते हैं उमे और दो उमके आगे वालियों में प्रकाश करते व इन्हीं पुरियों के मध्यके दोकोणों में भी प्रकाशते हैं जब किसी कोणवाली दिशा में आजाते हैं तो जिसमें है एक उसके पीछेवाले कोणको व उसको व उसके आगेवाले इन तीन कोणोंको प्रकाशते व अगली पिछली दो पुरियोंको जब उदय होते तबसे दो पहरतक तो उनकी किरणें बढ़ती जाती फिर कमती होनेलगती हैं उदय समय में सूर्य जहां देखपरते वह पूर्वदिशा जहा अस्त समय देखने वह पश्चिम उदयकी दिशाको मुख करने से दहिनीओर दक्षिण बाईओर उत्तर दिशा होती है जबनक किसीके सामने सूर्य देख परते तो उसकी बगलकी ओर व पीछेभी प्रकाश करनेहैं पर सुमेरु पर्वत पर जो ब्रह्मा की समाई उसे छाड़ क्योंकि उसपर सदा प्रकाश व सदा अप्रकाश रहता है जाहे से सबद्वीपों व क्षणदोके सुमेरु पर्वत उत्तरही है जब मध्याको सूर्य अस्त होनेलगते हैं तो उनकी दीप्ति कुछ २ अग्निमें रह जाती है इसीमे रात्रिमें आग दूरमे प्रकाशित होती और दिनमें अग्निका चतुर्थांग सूर्यमें चला जाता इसीमे अग्नि के अनीत्र मयोग से सूर्य प्रकाशित होने व गम्भी भी जाने है सूर्य

तेजमें प्रकाश करना ही गुण है उष्णता करना नहीं और अग्नि के तेजमें उष्णता करना गुण है प्रकाश करना नहीं इसलिये जब रात्रिको अग्निमें सूर्य तेज जाता तो अग्निमें प्रकाशन शक्ति हो जाती और दिनको अग्नि तेज सूर्यमें जाता इसलिये सूर्य के तेजमें उष्णता मी हो जाती है जब सुमेरु पर्वतके दक्षिण सूर्य रहते जबकि यहा दिन रहता तब अधियारी करनेवाली रात्रि जल में प्रवेश कर जाती जब सुमेरुके उत्तर सूर्य जाते जबकि ग्रहा रात्रि हो जाती है तब उजियारी करनेवाला दिन ही जलमें प्रवेश करता है इससे दिनको अंधेरा व रात्रिको प्रकाश नहीं होता दिनमें जल में रात्रिके प्रवेश करने के कारण पानी कुछ ललभर हो जाता और रात्रिको दिन पानीमें रहता इस हेतु जल उजला रहता सूर्य जितने समय में पृथ्वीका तीसवा भाग चलते हैं उतने समयको मुहूर्त्त कहते हैं जब मकराशि में सूर्य जाते हैं उसे उत्तरायण कहते उत्तरायण जब आधा बीतजाता है जबकि मेषकी सक्काति लगती है उसे विपुत्र्त कहते हैं तब रात्रि दिन बराबर होते हैं फिर रात्रि छोटी होने लगती व प्रतिदिन दिन बढ़ने लगता है फिर जब कर्कराशि के सूर्य होते हैं दक्षिणायन कहाने लगते इस अयनमें बहुत शीघ्र सूर्य चलते इससे जल्द दिन बीतजाता दक्षिणायनमें १२ मुहूर्त्त में ही दिन बीतजाता व १२ मुहूर्त्त में रात्रि पर यह बात सर्वत्र नहीं होती, किसी देशमें होती है और उत्तरायणमें सूर्य बहुत धीरा चलते इससे उतने कालमें बहुत कम भूमि चलते हैं जब उत्तरायण बीत नगिवाता अर्थात् आपाढ़में तब १२ मुहूर्त्त में दिन भर चलते हैं और रात्रिको १२ मुहूर्त्त में जैसे पहियाकी नाभि धीरे घूमती है और पुट्टियां जल्द २ इसी भांति ज्योतिश्चक्रके मध्य में बैठे हुये ध्रुव बहुत कम चलते वरन चलते हुये विदितही नहीं होते जैसे कुम्हारके चारुकी नाभि घूमती हुई अपने स्थानही पर रहती इसी भांति ध्रुव अपने स्थानही पर रहने अन्य मन्त्रक घूमता जाता है दक्षिण व उत्तर दोनों दिशाओंके मध्य में चलते हुये सूर्य के कारण दिन रात्रि होती है जब दिनको सूर्यकी चाल शीघ्र होती तब रात्रिको धीरा जब रात्रिको शीघ्र तब दिनको धीरा पर चाहे शीघ्र चलें चाहे धीरा उतने समय में १२ राशियों को अवश्य पार करते हैं उनमें ६ रात्रिको और ६ दिन को भोगने हैं राशियों केही प्रमाणमे दिन व रात्रिकी घटनी बढ़नी होती है उत्तरायण में रात्रिको शीघ्रताके साथ चाल होती व दिनको मन्दताके साथ व

दक्षिणायनमें सूर्यकी चाल दिनको शीघ्र रात्रिको मन्द होती है रात्रि को उपा कहते दिनको व्युष्टि और इनदोनों के बीच में सन्ध्या होती जो सन्ध्यासंगम में राक्षस लोग सूर्यको खाने को दौड़ते हैं क्योंकि उनको प्रलापतिका शाप है कि दिनको तुम्हारा शरीर अक्षय रहेगा व प्रतिदिन मरते भी रहोगे इस लिये सूर्य से व राक्षसों से सन्ध्याओंमें युद्ध हुआ करता है इसीसे जो उत्तम ब्राह्मण क्षत्रिय व वैश्य हैं अकारयुक्त गायत्रीको पढ़ सूर्यके आगे जल उछालते हैं व जल उन राक्षसों के बाणसमान लगता है व जलजाते हैं जो अग्निहोत्रमें पहिली आहुति दी जाती है उससे सूर्यनारायणकी किरणें बढ़ती हैं अकार श्रीविष्णुका रूप है तिसके उच्चारणमात्रमे वे सब राक्षस नाग होजाते हैं व सूर्यनारायणभी विष्णुका तेज है नहीं तो अकार उनको न प्रेरणाकरता इसी सन्ध्यासंगममें गायत्रीमन्त्र से अभिमन्त्रित जल उन मन्देहा नाम राक्षसोंको मार फुदेता तिससे सब कार्यक्षोभ सन्ध्याकाल से सन्धयोपासन अवश्य करना चाहिये क्योंकि जो उससमय सन्धयोपासन नहीं करता वह मानों सूर्यको मारता है व पाप लूटता है जब ब्राह्मण लोग सन्ध्याके जलसे उन राक्षसोंको मार डालने हैं तो दिजों से पालित भगवान् सूर्य अपने ६०००० बालबिलियोंके संग जगत्की पालना करते हुये चले जाते हैं १५ वार पलक मारने को फाण्डा कहते ३० फाण्डा को फला व ३० कलाको मुहूर्त्त ३० मुहूर्त्तमें रात्रिदिन होता है कमती व बढ़ती दिन ही की होती पर सन्ध्या सदा एकमुहूर्त्तकी होती इममें न कमी न बढ़ती जब आधे सूर्य निकल आते हैं तबसे तीन २ मुहूर्त्तके काल माने जाते हैं इमी से जो तीन मुहूर्त्त दिनचढ़ेतक भी स्नानकरता वह प्रातस्स्नायी कहाता है तीनदी मुहूर्त्तका दिनका पौचवांगामही होता है फिर प्रातःकालमे तीन मुहूर्त्ततक सगव नाम कालरहता उमके पीछे तीन मुहूर्त्ततक मध्याह्नकाल रहता मध्याह्नकालके पीछे तीनमुहूर्त्त तक अपराह्न काल अपराह्न काल के पीछे उननाही मायाह्न काल होता १५ मुहूर्त्तका सामान्यत दिन होता और मेपकी सकानिसे मिथुनकी म फ्रातितक १८ मुहूर्त्तका भी वहीं २ होजाता है १५ मुहूर्त्तका केवल मेप व तुन्डा के सूर्यमें दिनहोता दक्षिणायनमें रात्रि बढ़ती उत्तरायणमें दिन जब दिन बढ़ने लगता तो रात्रिसे घटित करता जब रात्रि बढ़ने लगती है तो दिनको शब्द व वमतश्चतु में विषुवत् होती है तुला व मेपके मृत्यों में रात्रि दिन कात्रा २

होते हैं कर्कराशि के सूर्य से धनु तक दक्षिणायन व मकर से मिथुनान तक उत्तरायण होता है ३० मुहूर्त्तका रात्रि दिन जो कहा गया है उन्हीं १५ रात्रि दिनोंका पक्षहोता है दोपक्ष का एक मास दो मासका ऋतु तीन ऋतुओंका अयन दो अयनोंका वर्ष सवत्सरादि के नाग से चान्द्र सावन सौर व नाक्षत्र ये चार मास इन नामों से प्रसिद्ध हैं अमावास्या से अर्मावास्या तक चादमास होता चाहे जिस तिथि से जिस तिथि तक हो ३० दिनका सावनमास होता है सूर्य जितने समय में एक राशिको भोगते उसे सौरमास कहते हैं जितने दिनों में सब नक्षत्र बीत जाते हैं उतनेको नाक्षत्रमास कहते और वत्सरों सेही युगोंका निश्चय होता उनमें १ सवत्सर २ प्रस्वित्सर ३ इन्द्रावत्सर ४ अनुवत्सर ५ इन्द्रत्सर और जो श्वेतकी उच्चर और शृङ्गवान् नाम पर्वत है उसके तीन शृङ्ग हैं इसी से शृङ्गवान् उसका नाम है शरद व वसन्त ऋतुओं में सूर्य मध्येखासे दक्षिण उत्तर नहीं दबते गोपादि व तुलादि में विपुवत् रेखापर रहते तभी दिन रात्रि समान पन्द्रह २ मुहूर्त्तोंकी होती जबतक कृत्तिका के प्रथम चरण तक सूर्य पहुँचते तबतक चन्द्रमा विशाखा के चौथे चरण तक अत्रश्य पहुँचता जब सूर्य विशाखा के तीसरे चरण में जाते तो चन्द्र कृत्तिकाके शिरपै पहुँचता तभी पुण्यदायक विपुवत् काल होता तब देवता व पितर व ब्राह्मणों को दानदेना चाहिये क्योंकि यह समय दानका मुख है व जो विपुवत् कालमें दान देना कृतार्थ होजाता कोई दिन कोई रात्रि कोई मघ्याह अर्द्धरात्रि मास कला काण्डा क्षण ये विशेष पुण्यदायक होते पूर्णमासी व अमावास्या व इनके भेद सिनीवाली कुहू व राका अनुमति ये सब पुण्यके मुख हैं माघ फाल्गुन चैत्र वैशाख ज्येष्ठ व आपाद ये उत्तरायणमें और श्रावण भाद्र आश्विन कार्तिक आग्रहायणिक व पौष ये दक्षिणायनमें हैं हे मैत्रेय ! जो प्रथम लोकालोक पर्वत कहाया उसपर सुधामा शङ्खपाल हिरण्यरोमा व केतुमान् ये चार लोकपाल चारों दिशाओं में टिके हैं ये सब अकेलेही अकेले रहते विवाहादि इन्होंने नहीं किया मानगी नहीं रखते अगस्त्यसे उत्तर व अजवीथीके दक्षिण वैश्वानर मार्ग के बाहर पितृलोककी गली है वहाँ अग्निहोत्र करनेवाले ऋषिलोग रहते हैं व परब्रह्म को हृदयसे जपते हैं व प्राणियों के आरम्भ होनेके लिये वेद कहते व लोकका आरंभ किसी २ युगके पीछे कराते हैं और युग २ चलायमान होजाने पर वेदका

प्रचार कराते व सन्तति तपस्या वर्णाश्रमादिकी मर्यादासे अग्नित्राले पिछले वालोंकी स्त्रियों में उत्पन्नहोते व पिछलेवाले पहिनेवालोंकी स्त्रियों में इमभाति प्रलयपर्यन्त जन्म लिया करते व मरतेहैं और सूर्य के दक्षिण मार्गमें टिके रहतेहैं नागवीथी के उत्तर व सप्तर्षियों के दक्षिण इस बीचमें सब देवताओं के आने जानेका मार्ग है उसमें जितेन्द्रिय सिद्धयोग विमल ब्रह्मचारी वमते हैं वे सन्नतिनी सदा निन्दाकरते इसीसे मृत्युको जीनेहुयहैं और सूर्यके उत्तरमार्ग में ८८००० ऊँटैरता अपि टिकेरहते ये भी जबतक प्रलय नहीं होता तबतक वही विराजा करने क्योंकि न वे किसी प्रकारका लोग करते न भोगकी इच्छा करते इच्छा व वैरभी नहीं करते सृष्टिभी नहीं करते किसी प्रकारका सयोग नहीं करते न किसी के दोष निहारने इन्हीं गुणों से शुद्धहो अमृतस्वरूप होगये वे इसीसे त्रिलोकी के प्रलयपर्यन्त स्थिर रहने इम स्थानको पहुँच फिर कोईभी नहीं मरता ब्रह्महत्या का पाप व अश्वमेधयज्ञकी पुण्य ये दोनों जबतक त्रैलोक्यका प्रलय नहीं होता तबतक रहने हैं इनका फल कहीं नहीं जाता जहा भुवजी हैं तिसके नीचेनर पृथिवीकी प्रलयमें नाश होजाताहै अपियों के ऊपर व जहा धुवहैं तिसके भी ऊपर तीसरे आकाश में त्रिपुणुपद वैरुड नामहै यह स्वान पापरहित जितेन्द्रिय योगियोंका है जब पाप पुण्य दोनों नहीं रहजाते तब मिलताहै व वहाँ जाय फिर नहीं लौटने वही त्रिपुणुजी का परमपदहै फिर जहाँ धर्म व भुवादि लोकके साखी टिके रहने वह त्रिपुणु का पदहै फिर जहाँ यह ससार ओतप्रोतहै व जहा से इस चराचरकी उत्पत्तिहुई है व जहाँ से फिर होगी वही त्रिपुणु का परमपदहै जो योगियोंके विवेक ज्ञान से देखा जाता जिसमें भुवजी मेदीभून बैठे हैं व भुव में सब नक्षत्रगणहैं व मेघगण भी जहाँ हैं कि जिनसे सदा वृष्टि होती है वृष्टिमें पानी गिरता उससे सबका पालन पोषण होना व उसीसे सब अन्नादि होने जिनसे आहुति दी जाती वृष्टि के सब कारण सृष्टि के उपकारदीके लिये होने इस प्रकार का वह त्रिपुणु का परमपदहै निमी त्रिपुणु के परमपद से देवताओंकी स्त्रियों के अनुलेप चन्द्रनादि बहानेवाली श्रीगंगा जी उत्पन्न हुई जो कि श्रीत्रिपुणुजी के बायें चरणके अँगूठसे निकली और भुवजीने अपने गस्तक पर धारण किया निमके पीछे सप्तर्षियों के लोकमें आई व उन लोगोंने प्राणायाम कर अपनी जटा धोई निमके पीछे नन्दव-



रहल को सींचती हुई सुमेरु पर्वत पर आई वहाँ से जगत् के पवित्र करने के लिये ४ दिशाओं को सीताँ अलकनदा चक्षु व भद्रा नामों से प्रसिद्ध हो चलीं उनमें अलकनदा में भी सात भेद हैं उनमें जो गंगा नामसे प्रसिद्ध है उसे शिव जीने अपनी जंटा में धारण कर लिया व १०० वर्ष तक न छोड़ा शिवजी की जंटासे भगीरथ राजाकी तपस्यासे आई व सगर के पुत्रोंकी राक्षस पर बहकर उन को भारती गई जिनके जल में स्नान करने से तुम्हें ही पाप नशाते व अपूर्व पुण्यकी प्राप्ति होती व जिनका जल कदाचित् पुत्रों ने अरने पुर्यों को दिया तो तीन वर्ष तक पितर तृप्त रहने फिर जिसके किनारे यज्ञेश विष्णु को राजालोग यज्ञोंसे प्रसन्न कर बड़ी २ ऋद्धि सिद्धियों को पहुँचे फिर जिनके जलमें स्नान कर तपस्वी लोग पापरहित केशव भगवान् में चित्त लगाय मोक्ष को प्राप्त हुये ॥

श्लो० सुनत चहत देखत जो कोई । छुवत पियत अवगाहत जोई ॥

१) कहत कहावत पावन करई । तासु महामहिमा किमि कहई ॥ १ ॥

२) गंगा गंगा जो नर कहई । भई योजन शत पै सो रहई ॥

३) तीन जन्म कृत पाप नशाहीं । मानहुँ कबहुँ रहे सहँ नाहीं ॥ २ ॥

४) जासो जग पावन हित सोई । आई अहाँ तनकि नहि गोई ॥

५) श्रीहरि तीसरें पद नो संवेह । तिन दर्शन अघ किमि न बवेह ॥ ३ ॥

## नवां अध्याय ॥

श्लो० कहत नवम अध्याय महँ भुव पर ग्रह तिथि ठीक ॥

शिशुमाराकृति रूप हरि तारामय अति नीक ॥ १ ॥

पराशर मुनि बोले हे मैत्रेय ! शिशुमाराकृति भगवान् का जो तारामयरूप आकाशमें है तिसकी पृष्ठपर भ्रुवजी टिके हैं व वे जब आप घूमते हैं तो चन्द्र सूर्यादि ग्रहों को घुमाते हैं व जब वे घूमते हैं तो तिनके पीछे चक्राकार सब नक्षत्र घूमते हैं क्योंकि सूर्य चन्द्रमा तारा नक्षत्र व अन्य सब ग्रह पवनरूप वन्धनसे भ्रुवमें बाधे हैं इस शिशुमाराकार ज्योतिषचक्र के आवार नारायण श्रीहरिही हैं व राजा उत्तानपाद के पुत्र भ्रुवजी तिनहीं नारायणकी आराधना से शिशुमाराचक्रकी पृष्ठपर टिके हैं शिशुमाराके आधार सब प्राणियोंके स्वामी

जनार्दनही हैं व ध्रुवके आधार शिशुमार व ध्रुवमें सूर्य टिके हैं फिर जितना चराचरहै सबको आधार सूर्य है इसकी विधि बताते हैं सुनिये सूर्यनारायण आठ महीनोंमें पृथ्वीका स्वरूप जल हरलेखे हैं व फिर चारमास वर्षामें बरसाते हैं उसमें अन्नादि उपजते उनमें सम्पूर्ण ससार पोषित होता तीखी किरणों से सूर्य जगत् का जल खींचते व फिर चन्द्रमाको उसीसे पोषने चन्द्रमा नलरूप वायुके द्वारा आकाश में मेघोंके ऊपर छिस्कते ये मेघ धुआ अग्नि व पवन के योगसे बनते हैं जिससे इन मेघोंसे अपने आप जल नहीं गिरता इसीसे इनका अभ्रनाम है उन मेघोंमें इसप्रकारसे जल सदा रहताहै पर जब समय आताहै पवनकी प्रेरणासे जल वर्षने लगता नदी समुद्र पृथ्वी व प्राणियों की देह इन चार स्थानों से जल सूर्य खींचतेहैं व आकाशगगाका भी जल ले किरणों से धरतीपर छिस्कते हैं उस जलके परनेही प्राणियों के पाप मिटजाते व नरकको वे नहीं जाते दिव्य स्नान इसीका नामहै जो वर्षतेहुये जलमें कियाजाता है जब कभी सूर्य देखपरतेहों व बादर बिनाही पानी बरमनेनगे जानना चाहिये कि आकाशगगा का जल सूर्यकी किरणों से बरसता है कृत्तिका मृगशिर आदि विषम नक्षत्रों में जब सूर्यहों और उनके देव परनेपर बिना बादरका जल बरसे तो वह दिग्गजोंकी सूइमें छिस्काहुआ आकाशगगा का जल है और रोहिणी आर्द्रादि युग्म नक्षत्रोंमें जब सूर्यहों और बिना बादलकी वृष्टि हो तो गगाहीका जल सूर्य किरणों से गिराहुआ समझो ये दोनों जल अति पवित्रहै इससे इनमें स्नान अतिपुण्यदायकहै व जो बादरहो वृष्टि होती उसमें सब अन्नादि ओषधिया पुष्ट परती जिनमे समार जीता है इसी जलमे सब ओषधिगण बढ़तीको पहुँच प्रजाओंकी बढ़ती करता फिर उन्हीं अन्नमें नाना प्रकारके यज्ञ होते जिनमे देवगण प्रसन्न होते हैं इमभाति यज्ञ वेद ब्राह्मणादि वर्ष सब देवगण पशु पत्नी मृगगण सब वृष्टिहीके भरोसे रहने कर्षोंकि उमीमे अन्न होता फिर उस वृष्टिके करने कगनेत्राले सूर्य उठे व सूर्यके आधाभूत ध्रुव ध्रुवके शिशुमार वह नारायणके आधयस्त है ॥

ची० आदि सप्तान सब जग भर्त्ता । सगर्जन पालन नादाय भर्त्ता ॥

नागयण शिशुमार हृदय मर्ह । चमनन्तन सप धाम पम गदं ॥ १ ॥

## दर्शनां अध्याय ॥

दो० कहच वृशम अध्याय महू रवि रथ द्वय अयनीय ॥

तिमि सप्तक गण भासके षण्णव अति कमनीय ॥ १ ॥

श्रीपराशर मुनि बोले कि जिन दक्षिण व उत्तर दिशाओं के बीचमें सूर्य की चाल होती है उनके मध्यमें १८० मयहलहै अर्थात् एक अपनमें सूर्य १८० बार घूमते हुये चलते हैं इन्हींमें चलने उतरनेसे मानुकी एक वर्ष में चाल पूरी होती है उस सूर्य के रथपर १ आदित्य १ ऋषि १ गन्धर्व १ अप्सरा १ राक्षस १ यक्ष १ रुष्य ये साने २ प्रतिमास रहते हैं चैत्रमास में धाना सूर्य कृतस्थली अप्सरा पुलस्त्यऋषि वासुकी सर्प रथकृत यक्ष हेतिराक्षस तुम्बुरु गंधर्व ये सब सूर्य रथपर रहते वैशाखमें अर्घ्यमा सूर्य पुलहऋषि स्यौजा यक्ष पुञ्जिकस्थली अप्सरा प्रहेतिराक्षस कञ्च नीर सर्प नारद गन्धर्व ज्येष्ठमें मित्र सूर्य अत्रिऋषि तक्षकसर्प पौल्येय राक्षस मेनेका अप्सरा हाहा गन्धर्व रथस्त्रन यक्ष आपादगे वशिष्ठऋषि वरुण सूर्य रमा अप्सरा हूहू गन्धर्व रथचित्र यक्ष व सर्प दोनोंका नामहै बुधराक्षस श्रवणमें इन्द्रसूर्य विश्वावसुगन्धर्व स्रोतयक्ष एनापत्रमर्ष अगिराऋषि मन्वीचा अप्सरा सर्पनाम राक्षस भाद्रपद में विवस्वान् सूर्य उग्रमेने गन्धर्व आपूर्णयक्ष मृगुऋषि अनुम्लोचा अप्सरा शल पाणसर्प व्याघ्रराक्षस आश्विन में पूषासूर्य सुरुचिगन्धर्व वात राक्षस गौतम ऋषि धनञ्जय सर्प सुषेणयक्ष घृनाची अप्सरा कार्त्तिकमें विश्वावसुके नाम का दूसरा गन्धर्व भारद्वाजऋषि पञ्चमन्यसूर्य ऐगवत सर्प विश्वाची अप्सरा सेनजित्नाग यक्ष व राक्षस अगहन में अशु सूर्य ताक्ष्य यक्ष मडापदा सर्प चित्रसेन गन्धर्व विशुत्तगक्षम पौषमें क्रतुऋषि भगसूर्य ऊर्णाचुगन्धर्व सहज्ज राक्षस व कौटिकमर्ष अरिष्टनेमियक्ष पूर्वाश्रित्तिअप्सरा मावसे त्वष्टासूर्य जमदग्निऋषि कम्बलसर्प निलोत्तमा अप्सरा ब्रह्मपेन राक्षस क्रतुजित् यक्ष धृतराष्ट्र गन्धर्व फाल्गुनमें विष्णु सूर्य अश्वतरसर्प रमाअप्सरा सूर्यवर्षा गन्धर्व मत्स्यजित् यक्ष यज्ञापेन राक्षस विश्वामित्र ऋषि इनमें ऋषिलोग सूर्यकी स्तुति करते गन्धर्व आगे गाते अप्सरा आगे नाचती राक्षस रथ देकेनमे सर्पोंसे रथ बाधाजाता यक्ष किरणोंका प्रबन्ध करते बालाविल्य आगे २ चलने ये मात्र २ प्रतिगाम अपना २ कार्य करते व वृष्ट्यादिके कारणगी यही मन्त्रहै ॥

## व्यारहवां अध्याय ॥

दो० व्यारहवें अध्याय सहँ चद्यपि गण रवि सात्र ॥

सृष्टि हेतु प्राधान्य कह-हरि प्रवेश यह गाव ॥ १ ॥

इतनी कथा सुन मैत्रेयजी बोले हे पगशरजी ! आपने सब गणोंके समा-  
 चार कहे व गन्धर्व राक्षसादि इन सबके पापकर्मगी सूर्य के साथ कहे पर सूर्य  
 का कर्म नहीं बताया कि वे क्या किया करते हैं यदि इस समझी से जल  
 वर्षना गर्मी व जाडा होता तो फिर सूर्य का कौन प्रयोजन है व उनमे वृष्टि  
 होती है यह कैसे कहा सो कहिये यद्यपि इनके कर्म अलग कुछे सुनेगी हैं  
 तथापि इन छहोंके साथी जो कुछ करनेहों कहिये यह सुन पाराशरमुनि बोले  
 कि सप्तगणगी प्रधानतासे एक सूर्यस्वीही है व जो विष्णुकी शक्तिसे मरु  
 यजु व सामके नामसे प्रसिद्ध हैं जिसे त्रयी कहने हैं व महारण तपस्या करने-  
 वालोंके पापोंको नाशती हैं मो विष्णु इस नगत्की स्थिति में टिकेहुये पालन  
 नहीं करते व जो वेदत्रयीरूप उनकी शक्तिसे वह सूर्यही में टिकी रहती मही-  
 ना २ जो २ रवि जहा २ रहने तहाँही तहाँ वेदत्रयी मयी विष्णुकी शक्तिगी  
 रहती दोपहरतक विष्णु शक्तियुक्त ऋग्वेद तथा करता मध्याह्न में यजुर्वेद दिन  
 अस्त होनेपै सामवेद यह वेदत्रयी विष्णुमयी प्रतिमान सूर्य में स्थान करती  
 व सबको प्रकाशती है यह त्रयीमयी वैष्णवी शक्ति केवल सूर्यहीमें नहीं वरन  
 ब्रह्मा व महादेवों भी हैं सृष्टिके आदि ऋग्वेदमयी यथा होते हैं पालन समय-  
 यजुर्वेदमाय विष्णु अन्तकाल में सामवेदमय रुद्रजी होते हैं तिससे इण वेदत्र-  
 यीका शब्द पवित्रहै इसप्रकार यह वेदत्रयी नास्तिक वैष्णवी शक्ति अपने  
 सातगणों सहित सूर्यमें टिकी रहती है तिसके टिकनेही के कारण सूर्यनागाण-  
 क्रिणोंसे प्रकाशित रहते व सब नगत्का अन्तरात् नाशनेह गुनि लोग उनकी  
 स्तुति करने गन्धर्व आगे २ गाने अप्सरा नात्नीहुई व नगी गान पीछेमे रवों  
 लगेहुये होते ऐमही सप्तोंमे रय बाधाजाता वत्र नाशित्वा करने व बान्धनिरा  
 उकी ओर मुँड कियेहुये जागेको चढ़नेजातेह विष्णु शक्तिसे शम्भु व नग  
 न उगते न अम्न होने यह सूर्यका गण विष्णुमय मित्रहै केरव उकी शक्ति  
 नहीं नो कार्य वे अलगही प्रगल्ब करने जैसे समस्त गीर्ष फेहुये दर्पायें जो

जैसेही निकटहै वह अपने को देखताहै इसीभाति वह वेदमयी वैष्णवी शक्तिमी  
सूर्यके रयमें सदा प्राप्त नहीं देखपरती वस्तु उनके गण सप्तकमें प्रवेश किये रहनी  
है ये सूर्यनारायण पितर देवता मनुष्यादिकोंको तप्त करतेहुये दिन रात्रि करते  
हैं जो सूर्य की किरण शुक्लपक्ष में होती उससे चन्द्रमा तप्तहोते व कृष्णपक्ष में  
प्रतिपदसे प्रतिदिन देवतालोग पीने लगते अमावास्यातक पीलेते हैं क्योंकि  
चन्द्रमाकी दीप्ति अमृतमयी है इसभाति चतुर्दशी के अंत में केवल दोही अश  
चन्द्रमा में शेषरहजाते अमावास्याको पितरपीते हैं इसकारण सब देवताओंकी  
दीप्ति सूर्यही से होती है जन्तु व पृथिवी में टिकेहुये रसको सूर्य पहिले अपनी  
किरणों से खींचलेते फिर प्राणियोंकी पुष्टताकेलिये भन्न बढ़ानेको वर्षते हैं ॥

चौ० तासों पितर देव मनुजावी । अखिल भूत पालत शुभ नावी ॥  
सबहि पियावत सुधा अनूपा । रविप्रताप को क्वि अनुरूपा ॥ १ ॥  
पक्ष वृत्ति देवन की होई । पितरमासिकी वृत्ति न गोई ॥  
मनुजवृत्तितो करत निरन्तर । मार्चण्ड महिभाति । गृहचर ॥ २ ॥

## वारहवां अध्याय ॥

छो० द्वादशमें अध्याय मई चन्द्रादिक तिथि मान ॥

कहवसुनहु सज्जन सकल तनमन घन धरिध्यान ॥ १ ॥

श्री पराशरमुनि बोले चन्द्रमाके रय में तीन पहिया हैं व शुद्धसमान श्वेत  
वर्ण के १० घोड़े नहेजाते हैं व नागवीर्यावाले अश्विन्यादि नक्षत्रों में चन्द्रमा  
का रय चलता ध्रुवके आधार होनेसे चाल में घटनी बढ़ती सूर्य के समान इन  
कीमी होती है सूर्य के घोड़े कल्पकी आदि में एरुवार नहेजाते फिर कल्प प-  
र्यन्त चलाकरते है क्योंकि वे अमृतमे उरपन्नहुये हैं इसीसे उनके भूत प्यास  
नहींलगती चन्द्रमा को अमावास्या पर्यन्त जब सप्तदेव पीलेते हैं सूर्यनारा  
यण फिर अपनी एक किरणसे तप्त करते हैं जिसकाममे कृष्णपक्ष की पक्षीवा से  
अमावास्यातक देवता चन्द्रमा की एक २ कना सुनामयी सगम् पीलेते हैं उसी  
कामसे शुक्लप्रतिपदा से एक २ कला सूर्यनारायण बढ़ातेहैं फिर जो पूर्णमासी  
तक कला चतुर्थ कृष्णपक्ष में फिर देवगण पीलेते क्योंकि अपृत तो देवोंका आ-  
हारही है ३६३३ देवता चन्द्रमाको पियाकरते हैं जब चन्द्रमाकी दोकला गढ़

जाती हैं सूर्य के मण्डलमें चलाजाता है इसीसे नहीं देखपरता जिस में नहीं दीखता उस तिथिको अमावास्या कहते हैं उसरात्रि के पहिले एकरात्रि व एक दिन पानीमें बसता फिर वृक्षां में फिर सूर्यमण्डलको जाता है जब चन्द्रमा वृक्षां में बसता अर्थात् प्रतिपत्को जोकोई वृक्षकाटना व वृक्षके पत्तेतोड़ता वह ब्रह्महत्या को प्राप्त होता है जब पन्द्रहवीं कला में चौथाई बाकी रहजाती तब पितरलोग सबसे पीछे पीते हैं उतनीही कलाके पीनेसे मासपर्यन्त पितर वृक्ष रहते हैं पितरों के तीनगण हैं सौम्य बर्हिपद अग्निप्राता शुक्राक्ष में देवताओंकी वृषि होती क्योंकि यज्ञादि उसीपक्ष में होते व कृष्णपक्ष में पितरोंकी क्योंकि पितृ क्रिया कृष्णही पक्ष में होती है और वृक्षांकी वृषि जलमय किरणों से कृता व वृक्षवल्ली अन्नादि के सींचनेमें व गर्मी ग्लानिआदि हरने से मनुष्यादिकोंकी वृषिकरता और बुध का रथ जलअग्नि से बना है इसमें ८ पीलेघोड़े नहेजाते हैं और सवप्रकार के अङ्गोंसे सुन्दर बनाहुआ शुक्रकाभी रथ है मङ्गलजी का सुवर्णमय अष्टकोण रथ है घोड़े भी इसमें लालरङ्ग के हैं व ८ पाण्डुरङ्ग के घोड़ेनहे हुये सोनेके रथ हैं चंद्र वृहस्पति एक राशि में वर्षभर रहत हैं शनैश्वर के रथ में कालेघोड़े नहेजाते इसरथपर बहुत धीरे २ चलते यहा तक कि एक राशिको द्वादशवर्ष में पूराकर पातेहैं राहुके रथमें गैवोंके रङ्ग के ८ घोड़े नहेजाते व रथगी इसीरङ्ग का है इसकेभी एरही वारके नहे हुये वोड़े नित्यप्रलय पर्यन्त चलेजाते हैं सूर्य से निकल राहु जबकी सब योग होने हैं पूर्णमासी में चन्द्रमाको पृथिवी की छाया में प्रवेगकरके ग्रसता व चन्द्रमा में प्रवेग करके अमावास्याको योगपाय र्गिको ग्रसता है तैभे ८ केतुके भी रथमें पवन सगान वेगवान् पैराके धुआंके रङ्गके सगान हैं व बड़े दारुण घोड़े हैं हे भैत्रेय! मव गहों के रथ तुमसे बनाये ये सब पवनरूप रस्मीमें ध्रुवों बाधे हैं ग्रह नक्षत्र तारा सब पवनरूप रस्मी से ध्रुव में बाधेहुये भ्रमण क्रिया करने हैं निननेही नागें उतने ही पवनकी रस्सियां हैं सबधेहुये घूमते व ध्रुवकेभी कुब्ध घूमते हैं त्रैभ सौख्य पर चढ़ेहुये लोग आपभी घूमतेजाते और कौन्हीभी घुमाने जाते हैं सब नक्षत्रगण जैसे कोई लकड़ी के एक रथ में जागन्माय घुमाये वृत्ताकार चमक देलाती है इसीभाँति घूमते हैं पवनता प्रबल इमीसे नाग हैं जादे से भागकत्ते घुमाता है जिमागिश्मामाचक्र में ध्रुव स्थित हैं निमर्क सिपति रहने हैं नुनिये

दिनको जो पाप मनुष्य करेगा वह शिशुगारके दर्शनसे रात्रिको मिटजाता  
 और १४ वर्ष आयुर्वन बढ़ती है शिशुगाररूपकी देहिनी चौह उत्तानपति  
 नागजन है व चक्र धारि मस्तकपै धर्म हृदय में नारायण अश्विनीकुमार  
 दोनों चरणों में तरुण व अर्धगाः उनकी ऊरुई सर्वरसर लिंगेन्द्रिय मित्र गुद  
 स्थान पूछमें अग्नि इषकश्यप व ध्रुवह ४ ताराकभी अस्त नहीं होती वहीऊनी  
 पूछ होने के कारण सदा दिवाई देती हैं हे मैत्रेय ! पृथ्वी नक्षत्र तारागण दीप-  
 समुद्र पर्वत खण्ड व इनके जमनेवाले इन सबके समाचार सुनाये अत्र और  
 सुनो जो ब्रह्माण्डस्य जलरूप विष्णुका शरीर है उसीसे पृथिवी समुद्रादि स-  
 हिन उत्पन्न हुई हैं विष्वक्वीनक्षत्रमण्डल १४ सुवन रत्न पर्वत दिशा नदियां  
 समुद्रादि जो कुछ विद्यमान हैं व जो कुछ नहीं हैं सबकुछ विष्णुही हैं परंतु  
 जिससे भगवान् विष्णु ज्ञानस्वरूप सकल लोकमूर्ति हैं कुछ कोई वस्तु नहीं है  
 कि सर्वत्र व सबको देखपड़े इससे समुद्र पर्वतादि जो ईश्वरकी मूर्तिया हैं  
 उनको विष्णुके विज्ञानशक्ति युक्त जानना चाहिये जब कि सबके कर्म नाश  
 होजाते तब शुद्धरूपही हरिरूप होजाते हैं तब फिर जन्म नहीं मिलता कर्मा  
 कोई वस्तु व कदा आदिमध्य अन्तहीन सदा एकरूप परमेश्वर जो फिर ईश्वर  
 भी इन वस्तुओं के समान घटा बढ़ा व गरा जिया सौती ईश्वरता काटेको फिर  
 वस्तुतो कुछ पदार्थही नहीं क्योंकि उसकीदशा पलटा करती है जैसे पृथिवी  
 से घड़ा बना घड़ासे मिटकिया हुई मिटकियां से चूर्णहो कर चूर्ण पानीपड़ने  
 से फिर पानी में मिलकर बग्गी होगई इसी भाँति गतुओं की भी गति है  
 कि वस्तु कौन पदार्थ है निरासे है दिजधेष्ट । ससार में कोई वस्तु कभी  
 व कहीं नहीं केवल विज्ञान में ही निज कर्मों के भेदमें वस्तु नाना प्रकारसे  
 देख पती है और विष्णु विगत विशोक निःसंमम सदा एकरस परम  
 योग विज्ञान भगवान् वासुदेव हैं जिनसे घाटर कुछभी नहीं यह ज्ञानस्वरूप  
 सत्यरूप तुमसे कदा इसी ज्ञानस्वरूप परमेश्वरके अतीत सब समा रहे ॥

श्री० यज्ञ अनन्त पशु प्रकृतिक नाना । सधत्सर मय काम सहाना ॥

इन्द्र आदि । जे कर्म महात्म । तिनके कलद विष्णुयुनिगायत ॥ १ ॥

जो यह भवत राकल । हम गाया । नम रयकर्म वसतै न मुदाया ॥ १ ॥

यह मुनि निश्चय करु जियमाहीं जिहो । विप्र झटित हरि पाहीं ॥ १ ॥

## तेरहवाँ अध्याय ॥

दो० तेरहवें अध्याय महं मुजुङ्गभरत इतिहास ॥

कहय जहा विज्ञान कर वर्णन पुरण आम ॥ १ ॥

श्री मैत्रेयमुनि बोले हे भगवन् ' जो हमने समुद्र पृथिवी नदी प्रहादिकों की स्थिति पृथ्वी आपने कही व. यहभी कि सब सप्तर विष्णु के अधीन है व विज्ञानगी सुनाया परन्तु जो आपने कहा कि भग्न राजा के चरित पीछे से कहेंगे अब हमारे सुनने की इच्छा है सुनाइये क्योंकि राजा भरत राज्यछोड़कर शालिग्रामाश्रम में तपस्या करके वासुदेव में मन लगाये रहे तथापि मरने के पीछे फिर ब्राह्मण हुये मुक्त नहीं हुये यह कैसी बात है व ब्राह्मणकी देहमें उन्होंने कौन २ कर्मा किये सब कहिये पराशरामुनि बोले हे मैत्रेय । गजाभरत अहिमा संत्पादि गुणों में तत्परहो शालग्रामाश्रम में बहुत दिनोंतक बसे रहे व यह जपते रहे कि ॥

श्री० यज्ञेशाम्युत केशव भाषय । कृष्णानन्त गोविन्द अवाधय ॥

विष्णो हर्षिकेश भगवना । केवल करत रह यह गाना ॥ १ ॥

हमे छोड़ स्वप्नमें भी और कुछ राजाने चिन्तना नहीं की कुशपत्र इन्धनादि जो कुछ लाते थे यज्ञहीके अर्थ लाते और कोई कर्म नहीं करते थे क्योंकि वे तो परमविक्रम निरसग रहतेहीथे जब उन्होंने देहछोड़ी सदाचारी परम कुलीन ब्राह्मणों के कुलमें विप्रहृये उस देहमें भी सर्व विज्ञान सम्पन्न सर्व शास्त्रों के अर्थके जाननेवाले हुये व जपना की प्रवृत्तिमें पर परम पुरुष समझने लगे अपना व देवता गनुष्य पशु इत्यादिमें में कुछ अन्तर नहीं देखने थे न तो उन्हां ने यज्ञोपवीत होजाने पर गुरुका पढ़ाया वेद पढ़ा न कर्मों को देना न शास्त्रों को ग्रहण किया जब बहुत भानिसे रहने सुननेपर कुछ कहेंगी तो यह भी जहोंकी ऐसी बोलीमें व गर्वई गावभी भाषाओं जो निष्कृत संस्कार रहित भाषाहोती है व वस्त्र जो पहिनने सब मेले कुचले देशर्ग धरा चगाये तन्वयावनादि कभी नहीं करते नगरनिवासी ऐसे आरग्य देस निगदर करने व पर उनका तो यह विचारया कि सम्मान योगमिद्विकी चही हानि कथना है जो योगी जनों में निगदग्नि होना वद सब योगमिद्विया की पाना है उन



ब्रह्मा के वचन को स्मरणकर जनों के आगे अपना जड़ व उन्मत्तोंकासा आकार बनाय घूमनेलगे तिसभे योगीको चाहिये कि महात्माओं के धर्मों को दूषना हुआ घूमे जिसमें लोग उसका अपमान करें व उसके निकट न खड़े हों पर त्रिचसे कभी न सन्मार्ग दूषण करें उनको जो कुछ कण आदि की रोटिया दीजाती थीं बड़े प्रेमसे भोजन करते थे इसीसे बड़े मोटेताजे बने रहते जब इनके पिताजी मृतरुहुये तो इनकेभाई व भाई के लड़के कण आदि की रोटी खिलाते हुये इनसे खतरखवाने व खोदानेलगे पर ये तो बड़ेरुखे व बड़े मोटे जो कुछकरें उलटाही पलटाकरें फिर खेती कैसे चले ऐसे विलक्षण तो ये थेही एकदिन खेत खातेथे कि सौवीर देशके राजा रहूगणकी सवारी जातीथी उसमें एक कहार थकगया बड़ा मोटा ताजादेख दूतोंनेइन्हें बेगारपकड़लिया व पालकी में लगादिया राजा रहूगण इक्षुमती नदीके किनारेपर कपिलदेवजीके स्वानपर यह पृच्छनेजाते थे कि हम हु लसागर ससार में पुरुषोंके कल्याणके योग्य कौन वस्तुहै क्योंकि इस विषय में कपिलदेवजी के समान कोई नहीं था जैसे अन्य बेगारी पकड़े हुये राजा की पालकी में नहे ये ये भी नहेगये व कईबार कहेगये तो लेकरचले पान्तु जब दो हाथ आगे बनाय भूमि देखलें व कोई जीव न हो तभी पावधों उठावें नहीं तो खड़ेही रहने तबतक और बेगारी आगे चलदेते यह दशा राजा देख कहारोंसे बोले यह क्याहोता जो पालकी टेढ़ी मेढ़ी चलती है अच्छी भाति लेचलो कुछ दूरपर ये फिर किमी जीवको देख कूदे कि पालकी विलकुल ढगमगागई राजा हँसकर बोले कि भरे यह पालकी क्यों ढगमगाती सूधे क्यों नहीं चलते यह सुन अन्य कहार बोले महाराज हम तो अच्छे चलते यह जो नया आया है जनर्ध का मूल है राजा बोले क्या थकगया है क्यों न थके बहुत दूरसे तो लगाहीहै क्या थोफ नहीं ले जासक्ता मोटा तो है चलवाच भी देख परता यह सुन ब्राह्मणदेव बोले न हम मोटे हैं न तुम्हारी पालकी हमने उठाई है न धकेहें न हमें कुछ वृत्त करना परता न हम लिये चलते हैं राजाबोले प्रत्यक्ष में तो मोटे देखपरतेहो व लादे तो हो यह कैसे कहते कि हमने तुम्हारी पालकी नहीं उठाई व भार लेचलने में श्रम भी होना फिर तुमको वृत्त क्यों नहीं लगाना परता ब्राह्मणदेव फिर बोले हे राजन् ! जोहममें प्रत्यक्ष देखाहो रुहो फिर यह भी कि कौन घनवान् होना कौन निर्धन व जो तुमने कहा कि तुमने पा-

लकी उठाई व तुम्हारे ऊपर अब भी धरी है यह सब झूठ कहते हौ हमारे वचन सुनो दोनों पैरतो भूमिपर हैं व पैरोंपर दोनों फीलिया फीलियों पर ऊरु ऊरुपर पेट पेटपर छाती व इसपर बाहें व कंधेपर तुम्हारी पालकी फिर इसमें हमारे ऊपर कौन भार है व पालकी पर यह तुम्हारी देह लदी है जिसे तुम अपनी मानते व कहते कि हम चढ़े हैं तुम पैदरहो ये दोनों बातें झूठी हैं क्योंकि तुम हम ये पद ही झूठे हैं ये तब होसकते जब ईश्वर दो हों हम तुम व सब और कहा ये गुणों की धारामें परे हैं व इसीसे जानपरता कि ये पालकी उठाते हम चढ़ते वस्तुतः कुछ भी नहीं और ये गुणमी कर्म वश हैं व ये कहारभी क्योंकि अविद्यासे बटोरे हुये कर्म सब जन्तुओं में रहने हैं परन्तु आत्मा शुद्ध अक्षर शांत निर्गुण प्रकृतिसे पर है इसकी न कभी वृद्धि होमक्ती न नाशही क्योंकि वह सब जन्तुओंमें एकही है जब उसकी न कभी वृद्धिही होमक्ती न हानिहीहोती यह तुमने किस युक्तिसे कहा कि मोटे हो हे भूपाल ! तैसेही जब यह पालकी जांच करिहाव पेट कंधा सबके ऊपर धरी है तो तुमने हमको क्यों कहा कि तुम तो लिये हो जब हमसे दूसरा और भी कोई होता तो यह ठीकथा कि हम तुम व वह जब एकही ईश्वर है तो ये सब नहीं होसकते तुम राजा यह पालकी हम सब पालकी उठाने वाले ये सिपाही यह तुम्हारी राज्य यह कहना अच्छा नहीं देखो वृक्षसे काष्ठ काष्ठसे यह पालकी जिसपर तुम चढ़ेहो कब इसकी वृक्ष सत्त्वाहुई थी व कब काष्ठ सत्त्वा पर यह कोई नहीं कहता कि यह महाराज वृक्षसे चढ़ा जाना वा काष्ठपर से बनी है अब तुम बूढ़ो तो कि कहा वे लकड़िया हैं इसी प्रकार द्युती व लोह शलाका आदिमें जानो अपना व हममें भी जानो यह पुरुष यह स्त्री गाय बेल घोड़ा हाथी पक्षी इत्यादि सत्त्वा ससार में कर्म हेतु देहोंकी है न कि परमात्मा की पुरुष देवता मनुष्य पशु वृक्ष ये कोई नहीं केवल ये नाम इनके देहके ढोलमे ढालदिये गये हैं सो भी कर्मों के योगसे राजा यह जो लोक में पदार्थ है व जौन राजदूत यह पदार्थ है तेमेही और भी जो कुछ है यह सत्प्रद्वन्द्वनागय नहीं किन्तु सब मिथ्या क्योंकि कालान्तर में इसकी यह सत्त्वा न रहेगी कुछकी कुछही होजायेगी कहो तुम्हारे भी तो कई नाम हैं कौन लेकर पुकारें १ सब लोकके राजा २ अपने पिताके पुत्र ३ त्रेयीके वेगी ४ स्त्रीके गनि ५ पुत्रके पिता

इनमें से कौननाम ठीक है मना यहतो घंताजो तुम्हीं गिरहो कि तुम्हारा यह गिरहै फिर तुमपेटहो कि यह पेट तुम्हाराहै इमीभानि ये चरणदि तुम्हारे हैं वा तुम्हीं सबहो वा इन सब के तुमहो तुम सब अंगों से अलगहो क्योंकि हमको है इम कहने में निष्ण हो विन्नारो तो क्या बातहै जेव इस भोगि निरुप्य होजावे तो हमने ऐसा किया हम हैं पेसी घातें कैसे होमकी हैं ॥

## चौदहवाँ अध्याय ॥

दो चौदहवें अध्याय महं यद्यपि भूयहु विभेक ॥

राजानिजाहित वारबहु पूछेठ कहत सटेक ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोलें इसभाति परमार्थमानी विभकी वाणी सुन परगविज्ञानी राजारहूगण प्रणागकर ब्राह्मण से बोले भगवन् जो परमार्थ युत वचन आपने कहे उनके सुनने से मेरे मनकी वृत्ति बहुतही अभित होगई यह विभेक विज्ञान जो सब जन्तुओं में आपने देखाया वह प्रकृति से परे है जोकि हम पालकी को नहीं लेचलते न हमपर पालकी का बोझहै क्योंकि शरीर हमसे अलग है जो पालकी लिये जाताहै यह कहा व यह भी कि गुणोंकी प्रकृति से प्राणियों की प्रवृत्ति कर्म करने में लगती व गुण सब में विद्यमानही हैं तुमने हमारा क्या कहा यह बात जो मेरे कानों में पगी तो मन व्याकुल होगया व परमार्थ जानने की इच्छा करने लगा मैं पहिले कपिलजी से कल्याण की बात पूछने जाता था तिसी बीचमें आपने ऐसे वचन कहे अब परमार्थ जानने के विषय में तुम्हीं में चित्त दोहता है कपिलदेवजी सर्वभूतपालक भगवान् विष्णुजी के अग्र से ससार के मोह नाशने के लिये पृथिवीतल में अवतारे ह वे हमी लोगों के हित के लिये प्रकट हुये हैं जैसे आप भी इसी लिये हुये हैं तिसमे जो परमकल्याणकी बातहो मेरे ऊपर दगाकरि कहिये क्योंकि सम्पूर्ण विद्वान लहरियों के आप ममुद्रहैं यह सुन ब्राह्मणदेव बोलें हे भूग ! फिर भी कल्याणदी पृच्छतेहो परमार्थ क्यों नहीं पूछते कल्याण की तो सब बातें परमार्थ में बाहर हैं जैसे देवता की आराधनाकर के धन मम्पत्ति सुत्र राज्यकी इच्छा करता है इसीको श्रेय वा कल्याण कहते हैं जो बिना सकल्प किये हुये यत्तत्त्व कर्म किया जाना वह श्रेय स्वर्गलोकके फलको देताहै इनमें यह मुख्य श्रेयका कर्म

हैं व जो नानाप्रकार के योगों में परमात्मा का ध्यान किया जाता है श्रेय ठीक २ उसीका नाम है क्योंकि उसमें यह जीव परमात्मा में लीन हो जाता है इस भाँति सैकड़ों हजारों कल्याणकी बातें हैं पर परमार्थ ये कोई नहीं है यदि धन परमार्थ होता तो धर्म के लिये क्यों खर्च किया जाता नहीं धन कभी परमार्थ नहीं होसकता क्योंकि वह तो केवल कामके ही अर्थ खर्च किया जाता है व उसके खर्च से कामही मिलसकते न कि मोक्षरूप परमार्थ यदि पुत्र को परमार्थ समझे तो वह भी नहीं क्योंकि यह भी तो किनी का पुत्र है फिर उसको अपने पिताका परमार्थ बननापड़ेगा इसभाँति इस चगचर ममारों कारणोंका परमार्थ कार्य नहीं होसकते अर्थात् पुत्र पिताका घड़ा कुम्हार का परमार्थ नहीं है यदि राज्यादिकोंका मिलना परमार्थ समझा जाये तो यह भी नहीं होसकता क्योंकि क्याजाने किसका २ राज्य उम्मे होनापड़े वा वेद्विहित यज्ञ कर्म परमार्थ भूत होसकते हैं पर उम विषय में भी जोहम कहते हैं सुनो जो वटादि कार्य प्राणभूत पृथिवी से बनते हैं सो जब कारण भिड जाता फिर वडा में मिट्टीही हो जाती है इसभाँति समिधा घृत कुश आदि नाशहोनेवाले पदार्थों में जो वजादि क्रिया कीजावेगी वह भी नाशही भेगी और परमार्थ तो नाशही नहै वह भी जब नाशहोनेवाले पदार्थों से कियाजावेगा तो नाशनाको पहुँचेगा परमार्थ अन्य कोई पुत्र धनादि फल नहीं देसकता क्योंकि वह केवल मुक्त हीही सिद्धिदेना इस से परमार्थ से किसी अन्य पदार्थकी इच्छान करनी चाहिये हे राजन् ! ईश्वर का ध्यान परमार्थके अर्थको जानाहै परन्तु वह त्रेधादिका के करने में भेद फरि होजाताहै फिर परमार्थ तो भिदज्ञान न होनाचाहिये इसमें ध्यान भी परमा नहीं जो कहे परमात्मा व जात्माका योग परमार्थ है तो वत भी नहीं क्योंकि अन्य पदार्थ अन्य पदार्थना को कभी नहीं प्राप्त निरम दे भुगत । कल्याणकी बातें बहुत हैं इममें कुछ मन्त्रेह नहीं परन्तु परमार्थ हम सदैव गीतमें बताने हैं सुनिये वह एक सर्वव्यापी समानरूप शुद्ध अनर्गुण प्रकृति में परे जन्म वृद्धि मरणरदिन सवमें गत शक्यव जात्माहै व परमनामग समर्थ गमा ईश्वर जानि नामादि अपरादाथों से न कर्मा यक्त हुआहै व शुद्ध न पुत्र होगा इसीसे प्रकृतिमें पर फटा जानाहै कि गण ना प्रकृति में उत्तरन होने उममें कैसे होसकते हैं ईश्वर समीचीन है पर निम निम उद्धरे प्राण देता

भ्रान्ति से विदित होता कि इसमें भी सुख इत्यादि का भागी यह नहीं, वह एक निगकार विज्ञानस्वरूप है व वही परमार्थ है जो नैयायिकादि द्वैतवादी हैं वे अपरमार्थदर्शी हैं ईश्वर जीव एकही हैं जैसे वासुदेव में छेदों के भेद से वही परमपूज्य मध्यम धैरतादि का भेद कदापि लगता वस्तुतः दूना नहीं है इसी भाँति ईश्वरभी भेदरहित है एतना व रूपभेदना बाहर के कर्मोंकी प्रवृत्तिसे उत्पन्न होती है वे अन्य देवतादि देवों में हैं उसमें नहीं क्योंकि वह जगत्परिहित है ॥

## पन्द्रहवाँ अध्याय ॥

दो० पन्द्रहवें अध्याय में चतुर्हि व्याकुलित वेलि ॥

कण्ठ निद्राघस्यान द्विज वर्णत सोऽह विशेष्णि ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले कि यह सुन राजा गौतम व चिन्ता व्याकुल होगये तब ब्राह्मणदेव अद्वैत ब्रह्मके अन्तर्गत एक कथा कहने लगे हे चतुर्धरे ! सुनिये निद्राघ नाम ब्राह्मण के शोचार्थ ऋभुजीने जो इतिहास कहा है कहने हैं स्वर्गावली में महाविद्वानी ब्रह्माजी के ऋभुनाम ब्राह्मण एक पुत्र हुये तिनके पुलस्त्यके पुत्र निद्राघ नाम शिष्य हुये उन्हें उन्होंने परमानन्द से सम्पूर्ण विज्ञान दिया जब निद्राघ ने ज्ञान तत्त्व पाया तो द्वैत भासना न रही यद्यपि ऋभुजी ने भल २ देखा पर उमका कहीं ले-ही न दीखता देविका नदी के तीर अनिगणनीय एरुनगर नाम पु पुलस्त्यजी ने बसाया उसी में ऋभुजी के शिष्य निद्राघजी वसते थे बहुत दिनों के पीछे निद्राघ के देखने के लिये ऋभुजी आये व उनकी अनिदिशाला के आगे खड़े हुये निद्राघ चढ़ी शिष्या चारी के साथ आने गृहमें लगेये व उनके हाथ पर घुलाके घोने गहाराज भोजन कीजिये ऋभुजी बोले कहो तुम्हारे बड़ा हगारे भोजन के लिये कौन वस्तु है खराब भोजन हमें नहीं अच्छा लगना निद्राघ बोले मतुवा गवका पिसान और मागपान बहुत है जो इच्छासे खाइये ऋभु बोले ये सब कदबहे हमको स्वादिष्ट स्यई तीर्थ दधि भात कनी आदि पिनाइये यह सुन निद्राघ ने अपनी स्त्री में कहा जो नीक गीठ कुड़ही इनके लिये बनादो ऐसे वचन सुन स्त्री ने जहा तक होसका बहुत नीक गीठ बनाकर निवेदन किया वे अच्छे प्रकार भोजन करने लगे तो निद्राघजी बोले कि आपकी इस आहारमें परम प्रीति

हुई व चित्त प्रसन्न हुआ कहिये आप कृपा रहते हैं व नहा चले व कृपामें इस समय आतेहो कहिये ऋभु बोले हे ब्राह्मण ! जिसके भ्रूव होनी है भोजन करने से उसकी वृत्ति दोर्न है हमारे तो भ्रूवही न थी फिर वृत्ति क्यों पूछतहो शरीर में जो पृथिवी का अणु है अग्नि में तप्त होना तब भ्रूव व जब जनका अणु क्षीण हुआ तो पिपासा जगती है भ्रूव प्यास ये दोनों देहके धर्म हैं ये हमारे नहीं हैं क्योंकि हमारे शरीरही नहीं इसीमें भ्रूव प्यास न होने में दृग सदा आनेही बने रहते हैं मगकी स्वास्थ्य व मन्तुष्टना दोनों चित्तके धर्म हैं जिसके चित्त न हो उससे पूछो पुरुषपुराण परमेश्वर के ये नहीं होते व जो पूछा कि कहा रहते कहा जावोगे कहा से आतेहो इन तीनों के उत्तर सुनो जिससे वह पुरुष सर्वमें प्राप्त व सब कहीं आकाशके समान व्याप्त है इससे कहामे आने कहा रहने कहा जावोगे इस आप के प्रश्नका कुछ अर्थही नहीं है मो हम न जानेवाले न आनेवाले न एक देगके रहनेवालेहैं और तुम न तुम न अन्य अन्य न हम न कोई यह कुछभी नहीं यह भीठ भीठ नहीं न तुमने हमारी जीभ गीठी कीहै जो कहो क्या कहते हो तो कहते हैं सुनो जो भोजन करनेको उद्यत है उसको क्या अच्छा व क्या खराब सब अच्छेही है जिसको भू व नहीं अच्छेगी खराब हैं कभी २ गैरभीठ भीठ होजाता व चोभीठ भीठ आदि मध्य व अन्तमें क्या अन्नही रुचिका कारण है नहीं जैसे माटीका घर ऊपरसे माटी लगानेसे पोड़ा होजाताहै तैसेही यह पृथ्वी में उत्पन्न देह पृथ्वीसे उत्पन्न यव गोधूम मूग घृत तेल दूधदही गुड़ फलादिकोंसे पृष्ठ बना रहताहै निमसे आप भीठ करुका विचार जानकर मनको समान करो क्योंकि समताही का कार्य मुक्तिदायक होता है ब्राह्मणदेव रहमण राजामे बोले कि इस भांति ऋभुजी के वचन सुन निदाव जी प्रणाम करके बोले हे महाराज ! ममन्न हृत्तिये तुम्हारे वचनमें हमारा गोद गया अब कहिये आप क्या आये ऋभुजी वचन दृग तुम्हारे जानार्य ऋभु हैं तुमको वित्तान देने जाये थे सो दिया व परमार्थ भी फटा अब जानें हैं इमी भांति यह जगत् पकड़े भेद नहीं है वामुदेव जिमका नामहै वही परमात्मा ता स्वरूप है ॥

श्री० इमि निदाव मन कहि ऋभुजाना । भि प्रणाम मगता निजशामा ॥

कहा भ्रमण तुम मग मोह । नरन वचन परमात्मे न गोष्ट ८ ॥

## सोरहवां अध्याय ॥

दो० सोरहव अध्याय महँ मुनि ऋषु मुनि तहँ आय ॥

कह परमार्थ निदाघसों सोइ कहत मनलाय ॥ १ ॥

ब्राह्मणदेव फिर ग्दू।ए राजासे बोले कि १००० वर्ष के पीछे ऋषुजी फिर निदाघको ज्ञानदेवके लिये तिमी नगर को आये व देखा कि एक राजाकी सवारी नगर में जाती है व निदाघ मुनि भी वनसे कुश पाता लिये आते हैं सवारी देखकर दबकि ग्हे हँ ऐमे निदाघ से जाकर पूछा कि तुम क्यों दबकि रहे निदाघ बोले कि यह राजाकी सवारी जातीथी इसीको देख यँग रहेहँ ऋषु बोले हे द्विजश्रेष्ठ! इनगँ राजा कौन है व इतरजन कौन हैं वतावो तो हमारे विचार से जानो तुम इस विषय के जनैया जान परनेहो निदाघ बोले जो पर्वताकार हाथी पँ चढ़े जाते हैं वेतो राजा हैं वाकी उनके नौकर चाकर हैं ऋषुजी बोले ये हाथी व राजा आपने साथही हमसे वताये विगेष कोई चिद नहीं बनाये तिससे इन दोनों में जो कुछ विगेषहो कहिये हमारे जानने की इच्छाहै निदाघ बोले यह जो नीचे है हाथी है जो इसके ऊपर चढ़ाहै राजा है भला सवार पैदरफा सम्बन्ध कौन नहीं जानता ऋषु बोले हे ब्रह्मन् ! जिस कहने से हम जानें तैसा कही नीचे किसको कहने व ऊँचे किसको यह मुन निदाघ बोले जो हम से पूछनेहो कहते हँ ऊपर हमहँ जैसे राजा नीचे तुमहँ जैसे हाथी तुम्हारे चोपके लिये यह दृष्टान्त हमने दिया ऋषु बोले हे द्विजश्रेष्ठ! तुम गजा के तुल्यहा और हम हाथीके तो यह वतावो कौन तुमहो कौन हम यह मुन निदाघ बहुतही नीप्र दोनों चरणोंपर गिरके बोले गहाराज तुम हमारे गुरु ऋषुजी हो क्यांकि अन्य किसी का गन टैन सस्कार से सस्कृत नहीं है जैसा कि हमारे आचार्य आपकाहै हमने जाना कि हमारे गुरुजी आये ऋषुजी बोले हा तुम्हारी पूर्वकी मेधा से उग बहुत मसन हुये थे इससे तुम्हारे गुरुही हैं तुम्हें दर्शन देने आयेहँ सो मन्त्रेपही स देस लिया कि परमार्थ तत्व तुमगँहै यह कह ऋषुजी तो वन गये निदाघ उमी उपदेश से अटैन गँ समित हुये तप प्राणियों तै ममान देखने लागे कि वैभेही जीव व व्रत को समान समझ अन्नावस्था में ईश्वर म नानि होगये ब्राह्मणदेव कहनेहँ हे राजन् ! तैसेही तुमभी

सब प्राणियों को समान देखो अपना व शत्रु व बन्धु भाई में अन्तर न रखो जैसे श्वेत नीलादिबर्णों के भेदमे एकभी आकाश भिन्न २ जान पड़ता इसी भाँति आत्मा भी एरुही है पर भ्रातेदृष्टि से अलग अलग जान पड़ता है जो कुछ इस जगत्में है सब वही ईश्वर है उससे बाहर कुछ भी नहीं सो हम सोनुम सो यह सब यह मोह भेद छोड़ो पराशर मुनि बोले ॥

चौ० यह सुनि भेद सकल नृप त्यागे । अरु परमार्थ्य दृष्टि अनुरागे ॥

द्विजहु जाति सुभिरण के हेता । ताहिजन्म मे विष्णु निवेता ॥ १ ॥

भरत महीष कथा कर सारा । सुनै पढ़ै जो सहित प्रिचारा ॥

अमल मुक्ति लहि लहै न मोहा । मुक्ति योग सो सृष्टि सोहा ॥ २ ॥

इति श्रीमद्विष्णुपुराणेद्वितीयोऽशेषोऽध्याय १२ ॥

## अथ विष्णुपुराणस्य ॥

तृतीयोऽङ्ग ३ ॥

### पहिला अध्याय ॥

दो० अष्टादश अध्यायहैं अश तीसरे माहिं ॥

व्यास मनुमभृतिक कहैं धर्मशास्त्र गण नाहिं ॥ १ ॥

तासु प्रथम अध्याय महैं मात मनुनकी गाय ॥

वर्चमान अरु भूतसत्र हरि अवतार सुसाय ॥ २ ॥

श्रीभैत्रेयजी बोले हे गुरुजी ! पृथिवी समुद्र सूर्यादि ब्रह्मनक्षत्र गण्डल देवता ऋषि आदिकी सृष्टि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र पशु पक्षी इत्यादिकोंकी स्थिति व चाल प्रहाद व ध्रुवादिकों के चमिन सब यथाक्रम आपने कहे मत्र मन्वन्तर के स्वागी इन्द्रदेवता ऋष्यादिकी कथा आपके कहने मे सुना चाहने हैं पराशर मुनि बोले कि बीनेहुये वर्तमान मत्र मन्वन्तर तुममे यथाक्रम कहने हैं स्वायम्भुव स्वरोचिष औत्तमि नाम म रौत व राक्षस ये ६ मन्वन्तर पीत तूके आजकल जो मन्वन्तर है उसका वैश्वानरनाम है यह मानवां दे उनमें स्वायम्भुव मन्वन्तरकी कथा तो सृष्टिके नाहिं ही में पहचूके उनके देवता ऋष्यादि



भी कहे अग्न स्वामिचिप मन्वन्तरकी कथा कहते हैं जिसमें मन्वन्तर के स्वामी व ऋषि व उनके पुत्रोंकी भी कथाहोगी स्वामिचिप में पागवत व तुपित नाम देवताथे व इन्द्रका पिपशिवत नाम था ऊर्जस्वत प्राणदत्त अग्निऋषम निश्वर व ऊर्जरोवान् ये ७ ऋषिथे व चैत्र किम्पुरुपादि स्वामिचिपके पुत्रथे यह दूसरेमनुकी कथाकही अग्न औत्तमिनाम तीमरे मनुकी सुनिये हममें के इन्द्रका मुग्धाति नामथा स्वधामान मत्स्य शिवदर्शन व वरावर्ती ये चारह २ के देवताओंके ५ गणथे वशिष्ठजीके पुत्र सप्तर्षिथे परमदिव्यादि प्रजार्थी उनउत्तम मनुके पुत्रका तामसनाम था ये चौथे मनु हुयेहैं इसमें सुरूप व हरि सत्यपुधी सज्ञक देवताथे इन्द्रका शिखी नाम था ज्योतिर्द्धामा पृथुपाव्य चैत्र अग्निवमक वपीवर ये ७ ऋषिथे व ख्याति शतद्वय जानुजघादि तामसकेपुत्र बड़ेवलवान् राजाहुये पंचयें मनुका रैवतनामहुआ व इन्द्रका त्रिसु और प्रमिताम सूनरज वैकुण्ठ सुमेधाइन्हें आदि चौदह २ के चौदहगण देवोंकेथे हिरण्यरोमा वेदश्री ऊर्ध्वबाहु वेदवाहु स्वधागा पञ्चन्य व महामुनि ये ७ ऋषिथे घलन्धु सम्भावा व सत्यकादि तिनकेपुत्रथे ये सब बड़ेभारी राजाहुये स्वामिचिप उत्तम तामग व रैवत ये ४ मनु प्रियव्रतके वराके हैं इनको प्रियव्रतजीने विष्णुकी बड़ीआ राधनासे पायाथा जो चारों मन्वन्तरापिप हुये छठेमनुका चाक्षुपनामहुआ इसमें इन्द्रका मनोज व आद्यप्रमृत भव्य पृथग दिवोकाः महानुभाव लक्षये देवता सुमेधा विरज हविष्मान उच्चग मधु अनिनागा सहिष्णु ये ७ ऋषि ऊरुशु श तन्मन्नाम मनुके पुत्रथे अब इससातयें मन्वन्तरके स्वामी सूर्यके पुत्र थाद्धदेव जिनका वैवस्वतभीनामहै हुये व आदित्य वसु रुद्रादि देवता पूरुष इन्द्र वशिष्ठ कश्यप अत्रि जमदग्नि गोतम विश्वामित्र भाट्टाज ये ७ ऋषि इक्ष्वाकु १ नभग २ घृष्ट ३ शर्यानि ४ नरिष्यन्त ५ नामभाग ६ दिष्ट ७ करूप ८ पृषन्थे सब ६ पुत्र हुये सब परम धार्मिक व विष्णुभक्तगण हुये इन सब मन्वन्तरों में देवताओं के बीच एक २ विष्णुका अवतार भी रहताहै जैसे कि स्वायम्भुव मन्वन्तर मे यज्ञजी का अवतार यह अमृतीमें मानसी अवतार हुआ था फिर स्वामिचिप मन्वन्तरमें तुपितनाम देवताओंके साथ तुपितनाम अजित्जी का अवतार उत्तम मन्वन्तरमें वही अजित्जी सत्यामें सत्यनाम देवों के साथ सत्य नाम मे प्रसिद्ध हो अवतारे नाममें शर्यामे हग्निनाम देवों के साथ हरि नामसे

प्रसिद्ध हो अवतारे स्वतनाम मन्वन्तरमें सम्भूति नाम स्त्री में गानम नाम देवों के साथ मानस नाम हरि अवतारे चाक्षुष मन्वन्तरमें वैकुण्ठ नाम भगवान् विकुण्ठा नाम माता में वैकुण्ठ नाम देवों के सग जन्मे और इम वैवस्वत मन्वन्तरमें अदिति में कश्यपजी से वागन नाम श्री हरिने अन्तार लिया जिन्होंने तीन पैर से तीनों लोक को नापके बलिसे छीन इन्द्रको सब देदिया ३ इन्द्र के कोई षटक न रहने दिया ॥

चौ० यहिविधि सात मनुनमहँतासु । भई मूर्त्ति सातकहु खुलासु ॥  
जिनसों पाल्यहु प्रजासमूहा । मगुण ब्रह्महै जनिवरुऊहा ॥ १ ॥  
जासोंतासु शक्तिसों यह जग । विष्टष्टि आवत जगमअग ॥  
तासो त्रिष्णु कहत प्रविशनसों । जो विशधातुप्रयोग लगनसा ॥ २ ॥  
देवऋषीश्वर मनुमनुजाता । इन्द्र आदि मन्वन्तर पाता ॥  
सरुल विभूति रमापति केरी । हे विचारि देग्गहु चित हेरी ॥ ३ ॥

## दूसरा अध्याय ॥

दो० कहव द्वितीयाध्याय महँ सप्तमनुन इतिहास ॥  
जहँसावर्णि खरांश सुत करइनिहास विलास १

भेत्रेयजी बोले हे मुनिराज! मान मन्वन्तरों के समाचार तो आपने कहे अथ जो ७ होनेवाले मन्वन्तरहै उनके भी वृत्त सुनाइये पराशर मुनि बोले सूर्यकी सज्ञानाम स्त्री मे श्राद्धदेवगनु यमराज ३ यमी ये तीन सन्तान हुये मन्नासूर्यका तेज न महमकी इसमे अपनेही समान एक छाया राग स्त्री वराय सूर्यनारायण की मेवागें लगाय आप वनको तपस्या करने चली गई सूर्यजीने जाना ये सता नाम हगारीही स्त्री है इम लिये छायागें अनेश्वर तपती रुन्या व स्रावर्णि मनु तीन और सन्तान उरारत्र मिये एक समय यमराजजीने देखा कि यह ह गारी माता शनैश्वरादि तीनों मे बड़ा स्नेह म्बती है हगामे कप इममे छाया के मारने को नात उठाया छायाने शारदिया तुम्हाग चरण गिरपे तब सूर्य ३ यमराज को जानपरा कि यह मंता नाम नदी है सो दूषगे स्त्री है नदी नो अपने पुत्रको साप न देती तब सूर्यनागयण के पुत्रने पर छायाने बनाया गे मन्ताही छायाह ने उपाय कुरुंज तपस्या करने तनीगई यमुना सूर्यकीने

वदाजाय देखा तो सज्ञा घोड़ीका रूपधरे तपस्या कर रही हैं आपभी घोड़ावन  
 के उनमें अश्विनीकुमार व रेवन्ना नाम ३ पुत्र उत्पन्न किये व फिर संज्ञाको अ-  
 पने स्थानपर लाये विश्वकर्मा को बुलाया कि उन्होंने कुछ सूर्यका तेज अपनी  
 खादपर चढ़ाय बोलढारा कि वे सज्ञाके संग विहाग करनेवाले रहगये इस  
 बोल्ला छाली में ७ भाग तेजके निकल गये केवल एक भाग रहगया वह न  
 छुला क्योंकि मुख्य विष्णुका तेज तो नाश रहित हैं फिर विश्वकर्मा ने जो  
 तेज सूर्य से क्षीण कर ढागवा वह अतीव देदीप्यमान हो भूमिमें गिरपरा उसी  
 से विश्वकर्मा ने विष्णुका सुदर्शनचक्र रुद्रका त्रिशूल कुबेरकी पालकी पद्मा-  
 नन की शक्ति अन्य सब देवों के आयुध बनाये व जो छायाके पुत्र मनु हुये थे  
 श्राद्धदेय मनुके सगर्ण भाई होने से इनका सावर्णिनाम पडा इन्हीं के नाम से  
 सावर्णिक आठवागनु कहायेगा तब सुतया अमिताभ आदि देवता होंगे तिन  
 देवताओं के गणों में बीस बीस देवहोंगे व दीप्तिगान् गालव परशुराम कृ-  
 पाचार्य अश्वत्थामा व राम व ऋष्यशृंग ये ७ ऋषिहोंगे व पापरहित विरोचन  
 के पुत्र बलिजी विष्णु के प्रसादसे इद्र विरज उर्वरीपान् निर्मोहादि मनुके पुत्र  
 दक्ष सावर्णिनाम नवयें मनु होंगे व पारमरीचि गर्भ निर्मोहादि तीन प्रकारके  
 देवता वारह २ होंगे व अद्भुत नामइन्द्र मवनश्रुतिगान् भव्य रसु मेधा मृति व  
 ज्योतिष्मान् ये ७ ऋषि धृत्वकेतु दासकेतु पचहस्त निरामय पृथुश्रवा आदि मनु  
 के पुत्र राजा होंगे दशयें मनुका ब्रह्म सावर्णि नाम होगा वडा सुधागा विरुद्र  
 गतसरुय आदि देवता शान्तिनाम इन्द्र द्विविष्णान् सुहृति सद्य अपामृषि ना-  
 गाग अपनिमोज सत्यकेतु सुक्षेत्र उत्तमोज हरिपेणादि १० मनुके पुत्रहोंगे  
 ग्यारहयें मनुका धर्मसावर्णि नाम होगा तब विहगग काम गम निर्माणरति  
 इन्हें आदि देवगणहोंगे इन एक २ गणों में तीस २ देवता हैं इद्रका रूपनाम  
 होगा निश्वर अग्नि तेज वपुष्मान् विष्णु वारुणि द्विविष्णान् ये मनुके पुत्र सर्वग  
 सर्वेश्वर्मा देवानीकादि मसर्षि होंगे वारहयें मनुका रुद्रसावर्णिनाम होगा व इन्द्र  
 का ऋतधागा हरित लोहित सुभगम सुर्गा तारागादि दश २ देवों के पाँच  
 गण व तपस्वी सुतपानपोमूर्ध्नि तपोमि तपोधृति तपोश्रुति तपोधनये ७ ऋषिहोंगे  
 वान् उपदेव देवश्रेष्ठान् मनुके पुत्र तेहोंगे मनुका रौच्यनाम होगा वसुत्राणा सु-  
 कर्मा सुधर्मा आदि ३३ गोत्रिके देवगणहोंगे दिवस्पति इन्द्रनिगोह वधर्मा

निष्कम्प निरुत्सुक धृतिगान् अवपय वसुतपाये ७ ऋषि व चित्रसेन वि  
चित्रादि मनुपुत्र चौदह मनुका भौत्यन्नाम दोगा इन्द्रका शुचि चाक्षुष पवित्र  
कनिष्ठ भ्राजिर वाचावृद्ध आदि देवता अग्निवाहू शुचि शुक्र मागध अग्नीध्र  
युक्त अजित् ये ७ ऋषि उरुगर्भाङ्ग बुध्नादि मनुके पुत्र किञ्च सप्त मन्वन्तरों की  
कथा कही चारोंयुग बीतने पर वेद नहीं रहजाते तब स्वर्ग से पृथ्वीपर आय  
सप्तऋषि प्रचार कराजाते हैं प्रतिसत्ययुग धर्मशास्त्र के पूर्वर्तक मनुजी होते हैं  
व देवतालोग यज्ञ भागही भोगते हैं व जो मनुके पुत्रहोते तिन्हींके वरावाले  
एक दूसरे के पीछे राजाहोते मनु सप्तऋषि देवता राजा मनुके पुत्र व इन्द्र इतने  
इतने अधिकारी प्रत्येक मन्वन्तर में होते हैं जब इम प्रकार के १४ मन्वन्तर सः  
हस्तयुग पर्यन्त बीतते हैं तो एक कल्प होता है इतनेही समयकी रात्रिभी हो-  
ती है दिनको ब्रह्माका रूप धारण कर सृष्टि करते रात्रिको वही ब्रह्मा नारायण  
स्वरूप से अनन्त शेषके ऊपर गिरधरके सोरहते हैं फिर जन जागते हैं रजोगुणी  
ब्रह्माहो जैसी प्रथम सृष्टिबी बनाने लगते व मनु मनुपुत्र राजा इन्द्र देवता सप्तर्षि  
ये सब सार्विकी अशासे पालन करने लगते फिर चारोंयुगों में भगवान् जना-  
ईन पालन के करनेवाले युगव्यग्रम्या करने हैं व बनाने हैं सुनिये सत्ययुग में  
कपिलदेवादि का रूप धारण कर परमज्ञान मंत्र प्राणियों को श्रीविष्णुजी देते हैं  
त्रेतायुग में चक्रवर्ती धीरामचन्द्रादि रूप धारण कर दुष्टोंको मार त्रिनोकी की  
रक्षा करते फिर द्वापर में व्यामावतार धारण कर एकही वेद के चार बनाते हैं व  
कलियुग के अन्त में कल्की भगवान् हो दुष्टोंको मार वेदोंका स्थापन करते ॥

चौ० इमि त्रिलोक उपजात पालत । अतसमय पुनिस्वइ त्यदिपालत ॥

जासों नाम अनन्त कहायत । नहिं तासों बाहर कुछ आयत ॥ १ ॥

भूत भाविष्य भव्य जो कुछ सच । तामु वृषा सों होत नशत अच ॥

सो सच तुममन कहा दावानी । मुनहु मयी विधि मुनि नजानी ॥ २ ॥

मन्वन्तर मन्वन्तर स्वामी । तुमसन सकल कहे मत पामी ॥

अथ का मुना चहत मो परह । कह्य नलीविधि शक न लह ॥ ३ ॥

## तीसरा अध्याय ॥

दो० कश्यप उवाच ॥ तत्रैव विनाग विष्णो ॥

मुनो साक्य साजन मनुष्य जयु मुने पश्यत ॥

श्रीमद्वेद्यमुनि बोले है महाग १। हमने यह जाना कि सव संसार को विष्णु ही पालते उन्हीं से उत्पन्नहोना व उन्हीं में लीनहोजाता। विष्णु से पर और कुछ नहीं अब यह चाहतेहैं कि वेद व्यासका रूप धारण कर जिस २ युगमें वेद विभाग जैसे २ करते हैं सुनाइय जिस २ युग में जो २ व्यास हुये हैं बनाइये व वेदों की शाखाओं के भेदभी पराशरमुनि बोले है मुत्रिवर्ष्य। वेदवृक्ष की शाखाओं में बहुत भेद इमलिये विस्तार महिन तो नहीं कहसकें सके से बखानते हैं मुनिये व्यासकी विष्णु पर्येक टाप में एकही वेदको कई प्रकार करनेहें वेदके भेद करन का कारण गनुष्यों में तीर्थ तेज उनकी कमी है यही विचार वेदव्यासनी अचम २ इनका किया करतेहैं जिसमूर्तिसे वेद विभाग करतेहैं वह मूर्ति श्रीविष्णु जी की है जिस २ युगमें जो २ व्यास हुये हैं उनके नाम व शाखाओं के भेद मुनिये इम वैश्वत मन्वन्तरमें २ = वार महर्षिपौर्ये वेद विभाग कियाहै पहिले टापके अन्तमें ब्रह्माजीने आपही वेद विभाग किया दूसरे में राजा स्वागन्धुस गनु जीने धामरेमें शुक्राचार्य चौथेमें बृहस्पति ५ येंमें सूर्य ६ ठें में मृत्यु ७ यें में इन्द्र = गं म रशिपु ८ यें में साखत ९ ० यें में त्रिधा गा ११ यें में त्रिवृषा १२ यें में सरदाज १३ यें में अन्तर्गिह १४ यें में वभीवा १५ यें में ब्रह्मरुष १६ यें में धनजय १७ यें में कुनजय १८ यें में ब्रह्मरुष १९ यें में सरदाज २० यें में गौतम २१ यें में ऊतम जो ह्यपिता कहाने पद यें में वेन २२ यें में सोन २३ यें में शुष्मायण २४ यें में वृषविन्द २५ यें में हम २७ यें में जातुकर्ण २८ यें में कृष्ण छेपायन ये २९ यें में युगने वेद व्यास कहै इसके आगेवाले ३६ यें में अश्वत्थामा व्यासमें पराशर जी बोले कि जब हमारे पुत्र कृष्णछेपायन न-संगे तो ऊचड़ी अवर वेदका रदनावेगा क्याकि इमी से प्रथम वेदहृजा भी था यह ऊहार ब्रह्मस्वच्छाही है व इमी में सु सु स्वर और अक्षर बजु साम उपदेश्य सव विद्यमान हेये वेद व नक्षरूप ऊहार के नगस्तारके त्रिवृ निमंत्रणके जगतकी उत्पत्ति पालन प्रार होतीहै व महत्व मे गुणइ एमे ब्रह्मके नगस्तार है फिर ना अघादिनाग वर हीन जगत् मोहन स्या। पविष्णु सान् रजामन्त्रेना ज्ञानियो ही मत्रिकाम्यान जन्म मरणादि निराम रदयान्ता मरुति व पुरुष क होनेना स्थाप गागद्गि गुरुनक्षर एमे परमपुत्र के निगरी नगस्तार है फिर जो परमात्मा स्वामी

भगवान् वासुदेव का रूप एही त्र्यम् तीन पदा का होता व भेदरहित है अथ ।  
के प्रणामः ॥ १ ॥

चौ० भेद रहित पर जड़मति मानत । सकलभूत सहँ भेद लग्नावत ॥

सोइ साग ऋक यजुर अथर्वा । इनकर सार सोइ अरु सर्वा ॥ १ ॥

सोइ भेद वदा श्रुति मय होई । करतवेद सोइ तनिक न गोई ॥

शास्त्रा वेद प्रणेता सोई । सव शास्त्रा स्वरूप पुनि ओई ॥ २ ॥

## चौथा अध्याय ॥

दो० कह्य चतुर्थाध्याय सहँ वेद व्यासही व्यास ॥

होतकरत श्रुति भेद सय वर्णन मो सप्रकास ॥ १ ॥

श्रीपराशरगुनि बोले वेद आतिहैं व इसमें ऋक यजुस्सामाथर्वाण के भेदमे चारपाद व १००००० श्लोकहैं सब यज्ञ मयहैं इसी एक वेद को हगोपुत्र कृष्ण द्वैपायनजी ने २८ यें द्वापर के अन्तमें ऋगादि ४ मन्त्र करडारे जिस भाँति इन वेदव्यासने इमके विभाग किये ऐमेही पिछलेवाले व्यासोंने व हमने भी किये थे परन्तु कृष्ण द्वैपायन के समान अन्य अम्पदादि वेदविभाग करनेवाले नहीं हैं क्योंकि वे साक्षात् नारायण के स्वरूप हैं नहीं तो ऐसा कौन महीमगडन में दूसरा है जो महाभारत बनाता यह इन्हीं महर्षि का कार्य है तिन हमारे महात्मापुत्र ने जिस प्रकार वेदोंका विभाग कियाहै तुमकी सुनाते हैं ब्रह्माजी की आज्ञासे व्यासजी वेदोंके विभाग करनेनगे उन वेदोंके ग्रहण करनेवाले चार शिष्य भी उनको मिले उनमें पैलको ऋक्वेद पढ़ाया वैशम्पायनको यजुर्वेद जैमिनि को सामवेद व मुमन्तु को अथर्वण और शंगर्हण नाम मुत्तनी को इतिहास व पुराण पढ़ाये यजुर्वेद में फिर ४ चार भाग बनाये वही प्रातुर्होत्र पुत्रे जिनमे सम्पूर्ण यज्ञ होनेहैं इनमें राजुर्वेदी अथर्व्यु ऋग्वेदी होता साम वेदी अग्निकार्य कर्ता अथर्ववेदी मन्त्रोत्तरण करनेवाला होता उन्दीमेंमे ऋक गन्नोंको पात्रकर ऋग्वेद बनाया यजुर्वेदी मन्त्राभे यजुर्वेद गावेवाली ऋग्वेदी साग राजाओं के जितने कार्य जान्ति पुष्टातिहैं सब अथर्वण मे भिन्न किये व चक्षत्र, मनिपादन भी यह वेदका मन्त्री पृथ वत्सनामजी ने चार प्रमाणका वेदरक्ष बनाया पहिले ऋग्वेद रक्षको पंचमुनि ने भेदितकर इन्द्रप्रमनि व वा प्तनको पढ़ाया वापकलजीने अथर्वी पहिलेके २ प्रमाण फरदिये व बौध्यादि

शिष्योंको पढ़ा दिया फिर उमी ऋग्वेद की शाखाओं की शाखाबोध अग्नि-  
मातर याज्ञवल्क्य पराशर आदिने ग्रहण किया उनमें इन्द्र प्रमतिजीने १ संहिता-  
माइकेय नाम अपने गद्दारगा पुत्र को पढ़ाई तिनके पुत्र प्रपौत्र शिष्यप्रशिष्य  
पढ़ते गये उनमें १ वेदमित्र नाम ने इन्द्रप्रमति संहिता पढ़ी व उस संहिता  
की ५ संहिता बनाय अपने शिष्यों को पढ़ाई उन शिष्यों के सुवेगल गोखल  
वाश्यशालीय व गिशिर ये नामथे इन्द्रप्रमति के एक शिष्य शाकृष्णिये उन्हें  
ने अपनी संहिता में ३ संहिता व निरुक्त बनाया क्रोज वैतालिकवलाक इन  
तीनोंको तो एक २ संहिता व निरुक्त कृतको निरुक्त पढ़ाया व पैलके शिष्य  
वाष्कलने तीन संहिता और बनाई व कालायनिगार्ध कथा जवनाग अपने  
शिष्यों को पढ़ाई ये सब मुनिलोग बहुत २ ऋचों के ब्रह्माहुये हैं ॥

## पांचवां अध्याय ॥

दो० कह्य पचमाध्याय महँ यजुर्वेद की शाख ॥

तैत्तिरीय अरु वालिकी शास्त्रासुनु तजिमात्र ॥ १ ॥

श्रीपराशरगुनि बोले कि इसीभाति व्यासजी के शिष्य वैशम्पायनजी ने  
यजुर्वेद की २७ शाखा बनाई व याज्ञवल्क्यादि अपने शिष्यों को पढ़ाई एक  
दिन सब मुनियों ने कहा कि जो हगारे इस पर्वतपर की समाजमें न आवेगा  
उसे सात रात्रितक ब्रह्महत्या होगी उममें वैशम्पायनमुनि नहीं पहुचे क्योंकि  
उन्होंने किसी कारण से अपने भैनेको जापदे मारडालाथा व शिष्यों से कहा  
हे शिष्यो ! हमारी ब्रह्महत्या मिटने के लिये प्रायश्चित्त करो यह सुन याज्ञव-  
ल्क्यमुनि बोले हे भगवन् ! इन थोड़े थोड़े तेजवाले ब्राह्मणोंके करनेसे प्रायश्चित्त  
कैसे होगा हग अकेले ब्रतकरोंगे कि प्रायश्चित्त होजावेगा यह सुन वैशम्पा-  
यनजी रिसाकर याज्ञवल्क्य से बोले कि जो हगमे पढ़ाई छोड़दी क्योंकि तुम  
ने इन ब्राह्मणों का अपमान किया जिस से तुमने इन सब ब्राह्मणश्रेष्ठों को  
बिना तेज कहा इससे तुम्हारा यहा कुछभी काम नहीं क्योंकि तुमने हमारी  
आज्ञाका उल्लघन किया याज्ञवल्क्यजी ने कहा कि हमने तो आपको भक्तिसे  
कहाथा कि हमी अकेले करडालें इन बेचारों को कादे को क्रुगपरे पर आप  
हृददी होगये तो अच्छा हमारा भी इस आपसे पढ़ने से कुछकाज नहीं अपना  
वेद लीजिये यह कह कर लगेहुये मय यजुर्वेद के अङ्ग उन्होंने पढ़ये क्योंकि

त्यों उगिल दिये व वैशम्पायनजी ओ दे उनके निम्न से चलेगये तब मुनिने तित्तिरों का रूपवन सवमन्त्र चुनलिये डभीसे वे मन्त्र तैत्तिगीय कहाने ह फिर वैशम्पायनजी ने अन्य शिष्यों से कहा उहोंने ब्रह्मइत्या भिटाने के लिथे प्रायश्चित्त कहाला याज्ञवल्क्य भी यजुर्वेद फिर पढ़ने की इच्छा से सूर्य नारायण की स्तुति करनेलगे ॥

श्री० मुक्तिद्वार सविता सित तेजस । ऋग्यजु सामरूप शुभ मेघस ॥  
 वेदत्रयीमय नमो नमामी । सकल मनोरथ पुरग्रह स्वागी ॥ १ ॥  
 अग्नीषोम भूत जग कारण । भास्कर परम तेज के धारण ॥  
 काष्ठा कला निमेष स्वरूपा । विष्णुरूप जगमाक्षि निरूपा ॥ २ ॥  
 जो निज किरण सकलसुरचन्द्रा । धारण करत प्रकाशत मन्दा ॥  
 सुधामयी तनु पीतर पोषत । नमो नमो त्वर्हि कोइ न दोषत ॥ ३ ॥  
 हिम जल धाम वृष्टि के कर्ता । नमो नमग्मन के पुनि र्त्ता ॥  
 हरत जगतपति जग तम भारी । सत्त्व धामधर विनय पुनारी ॥ ४ ॥  
 जामु उदय त्रिन शुभकृति धारी । होतनजन नहि जलशुचिधारी ॥  
 विनवत ताहि पाहि सो भानू । क्षमाकरहु अव तुम मत्र जानू ॥ ५ ॥  
 जामु किरण लगि मय ससाग । क्रियायोग्य होवन सविचारा ॥  
 अरु शुचिता कारण है जोइ । करत प्रणाम वरं हित सोई ॥ ६ ॥  
 सविता सूर्य भास्कर देवा । धिवत्थान आदित्य फरेवा ॥  
 देवादिक भावन तुम स्वामी । अग्णसरोज नगानि नमामी ॥ ७ ॥  
 जामु हिग्मय रथ अनिघवन । वेनु अमृतधारी मननारन ॥  
 जामु नयन सौ देवन लोका । नेटु प्रणाम विद्यागु शोभा ॥ ८ ॥

इतनी स्तुति सुन वाचीना रूप पर मर्षनागपण बोले कि वांछिन वरमांगो यावबल्क्यजीने कहा वे यजु एगको दीपिये जिन्हें हमारे गुरुजी न जाननेहैं यह सुन भगवान् भास्करजीने अपाननाम नाम यजु याज्ञवल्क्य से कहे जिन्हें उनके गुरु वैशम्पायनजी नहीं जाननेथे उन यजुनाके धारण करनेवाले वाजी कहते हैं क्याकि वाजी जो घोड़ा निमने रूपने मूर्षनारायण ने कहाथा इन यजुओं की शास्त्राओं में १५ भेदहैं जिन्हें याज्ञवल्क्य क पढ़ाने से पण्डित्ति मनिगो ने धारण दिया ॥



# छठवां अध्याय ॥

दो० बहव उठे अप्याय महँ सामाथर्वपुराण ॥ ३ ॥  
शास्त्राभेद विचार अध्वेतात्तासु प्रमाण ॥ १ ॥

श्रीपराशरमुनि बोले हे भोजेय । सामवेदवृक्ष की शाखा व्यास के शिष्यजि  
मिनिजीने जैसे पढ़ी उन्हें कहतेह सुनिये जैगिनि के सुमन्तु सुमन्तु के सुकर्मा  
इन दोनों ने सामवेद भी परु २ सहिता पढ़ी सुकर्मा ने अपनी सहिता के  
सहस्रोभेद बनाय अपने शिष्योंकोपढ़ाये उनमेंपरुगिष्यका हिरण्यनाभनागधा  
इनके १५ शिष्यथे इसलिये अपनी सहितामें इन्होंने १५ भेदकिये व शिष्योंका  
पढ़ाये उनलोगोंको उदीच्यसाग कहते हैं व उतनीही सहिता हिरण्यनाभसे लो-  
काक्षि कुधुमिकुमीदी लाङ्गलि ये सब पौष्यजिके शिष्यह इन्होंने पढ़ी इन्हें मान्य-  
सामग कहतेहैं व हिरण्यनाभही के परु कृतिनाम शिष्यथे उन्होंने अपनी सहिता  
में २४ भेदकिये व अपने शिष्योंको पढ़ाये इनलोगोंने सामवेद की बहूतसी  
शास्त्रोंकी और सुमन्तुमुनि ने अथर्ववेद की सहिता कवन्धनाम अपने शिष्य  
को पढ़ाई उन्होंने उममें दो महिना बनाई एक देवदर्श नाम अपने शिष्यको  
दूसरी पथ्यको पढ़ाई देवदर्शके शिष्य मौद्ग अक्षयलि शौएकाथिनि विष्यला  
दादि चट्टन ये व पथ्यके ३ शिष्य जाजलि कुमुदादि व शौनक ये थे शौनक  
ने अपनी सहिता के दो भेद बनाये एक त्तं वधुनामको पढ़ाया दूसरी सैन्धवा-  
यनको इसी से उस वेदके सैन्धव व मुजनेश दो भेदहुये और सहिताओं के  
नवत्रकरूप वेदकरूप सहिताकरूप अङ्गि पल्प गान्धिकरूप ये सब अथर्ववेद  
की सहिता कहीं और सकता पुषाणार्थे विंगारद धीमेदव्यासजी ने आरुयान  
उपाख्यान गाथा कल्पशुद्धादि पुषाणार्थोंके साथ पुषाण बनाये व अपने शिष्य  
रोमहर्षणनाम सूतजीको पढ़ाये रोमहर्षणजीके सुमनि अग्निवर्चा मित्रसु शा-  
न्तपायन अरुनवणीय व मावर्षि ये ६ शिष्य हुये अरुनवण सावर्षि शान्त-  
पायन इन तीनोंने परु परु सहिता बनाई व रोमहर्षणकी सहिता चौथाई उसमें  
१८ पुषाण हैं उनमें गृह विष्णुपुराण इगने बनाया पुषाणों के नाम ये हैं सब  
पुषाणों में पहिला ब्रह्मपुषाण है १ ब्रह्मपुषाण २ पद्मपुषाण ३ विष्णुपुराण ४  
शिवपुषाण ५ धीमद्भागवतपुराण ६ नागदासपुषाण ७ माहेश्वरदेवपुषाण ८ अग्नि-  
पुराण ९ भविष्यपुराण १० ब्रह्मवैवर्तपुषाण ११ लिङ्गपुराण १२ वायव्यपुराण १३

स्कन्दपुराण १४ वागनपुराण १५ कूर्मपुराण १६ मत्स्यपुराण १७ गरुडपुराण १८ ब्रह्माण्डपुराण इन सब पुराणोंमें सर्ग प्रतिसर्ग वग गन्वन्तर वशानुचरित ये ५ पदार्थ कहे जाते हैं यह विष्णुपुराण जो तुममें रुढ़ने हैं उसे पद्मपुराण के पीछे व्यासजीने ही बनाया था वही ह्य तुमसे कहते हैं इस पुराण में सर्ग प्रतिसर्ग वशगन्वन्तर वशानुचरित पाँचों पदार्थों के कथन में मुख्यकर विष्णु का वर्णन है इसीसे इसका विष्णुपुराण नाम है वेदाङ्ग शिक्षाकल्प ज्योतिष छंद निरुक्त व्याकरण ये ६ ऋक् यजु साग अथर्वणये ४ वेद भीमासा न्यायपुराण ब्रह्मादि व मनुस्मृत्यादि धर्मशास्त्र इन्हीं का चौदहविद्या नाम है और आयुर्वेद धनुर्वेद गान्धर्ववेद नीतिशास्त्र इन चारोंको गिलाने से १८ विद्याहोती हैं इनके जाननेवाले प्रथम तो ब्रह्मर्षि व्यास नारद वशिष्ठादि हैं उनसे देवर्षियों ने पाया तिनसे राजर्षियों ने ये तीनों ऋषिगण हैं ॥

चौ० शाखा शाखाभेद चम्बाना । शाखा कारक सकल महाना ॥ १ ॥

भेद हेतु सप्त भाति मुनाया । सत्य सत्य भाषा न बनाया ॥ १ ॥

शाखाभेद गन्वन्तर माहीं । रहत समान न्यूनधिक नाहीं ॥

ब्रह्ममणित श्रुति नित्यन शका । शाखाभेद न तात्तम अका ॥ २ ॥

जो पूछा सम्यन्ध वेदकर । सो तुमसों भाषा सँदेह हर ॥

अथका मुना चहत सो कहिये । मुनि उच्चर सच भगल लहिये ॥ ३ ॥

## सातवा अध्याय ॥

दो० कह्य रासमाध्याय महँ तान्त्रिकधर्मरु कर्म ॥

कहल सहित इतिहास सो मुनहु सुजन नहि नर्म ॥ १ ॥

श्रीभैरवमुनि बोले हे भगवन् ! जो जो हमन पूछा सब आपने मुनाया अब और कुछ सुना चाहते हैं ७ ढीप ७ पानालयीधी ७ लोकस्थान सूक्ष्म जो कुछ है सबमें प्राणी विद्यमान है कहीं यत्रगर यात्री नहीं जहाँ कोई न कोई प्राणी न हो व ये सब यमराजके अधीनहैं मरण के पीछे सबको यमवानना भोगनी परती है यातनाआ के पीछे सब देवना देत्य मनुष्यादि योनियोंमें उत्पन्न होते हैं हम वद उपाय सुना चाहते हैं जिसमें प्राणी यगर्फी यातना के बन्धोभा ७ हों पराशरमुनि बोले हे मुनिवर्ष्य ! यही प्रश्न नकुलजी ने गोप्यपिनामह से पूछा था तिम गांनि उन्हांने उनको उचर दिया मुनिये नकुल का मन्त्रमुन

श्रीगर्जा बोले कि एक समय हमारे समीप कालिङ्गक नाम मुनि आगे उन्होंने  
 कहा कि हग पूर्व जानिस्म हेतव हमने उनमें पूछा व ये २ वाने आगे ऐसी २  
 होंगी यह भी कहा कि जैसा २ व फहगये थे वैसाही वैसा हमने देखा भी एक  
 दिन फिर मुनि से हमनेभी यही पूछा जो तुमने आज हमसे पूछाहै मुनिने इस  
 विषय में यमराज व यमदूतों के एकान्त की वार्त्ताका यह इतिहास हमसे कहा  
 कि एक दिन यमराजजी अपने दूतोंके कानोंमें लगेहुये यह कहने थे कि अये  
 दूता ! जो गधुसुदन भगवान् विष्णुजी के शरणमें है उनकी ब्रौड ओंरा की  
 यहा लायाकरो क्योंकि हम और मनुष्यों के स्वागी हैं वैष्णवों के नहीं देव-  
 तार्यों से वन्दित ब्रह्माजी ने लोकको हिनाहिन विचारने के लिये यमराज इस  
 नामसे हगको स्थापित कियाहै परन्तु हग हरिके बणीभूत है स्वन्त्र नहीं है  
 क्योंकि विष्णुजी हमारे भी यमराजाधिगजहैं जैसे करधी नारी मुकुट बस्ता  
 मुन्दरीजादि शेरों से मोना बहुत प्रकार का विदित होता पर वस्तुत सत्र में  
 सुवर्ण एकही है इभी शक्ति देवता पशु मनुष्यादि कल्पना से हरि कईप्रकारमे  
 विदित होते पर वे एकही हैं फिर जैसे पृथिवी के परिमाण पवन के चलने से  
 इधर उधर उड़ जाने फिर घूमचाम उमीमें जाय मिलने इनीगांथि देव दनुज म-  
 नुजादि भी उधी ईश्वर विष्णुमें अन्नमें मिलते हैं देवगणों से वन्दित चरण  
 कमल श्रीहरिको जो मनुष्य मणाम करताहो उसे घृत परेहुये प्रखरलिप्त अग्नि  
 के समान तगदेना यह सुन पांसीधारेण कियेहुये यमदूत ने यमराजसे पूछा  
 महाराज बनाइये तो हरिमरु कैसे होतेहैं यमराज बोले कि जो अपने चर्ण के  
 धर्मों से कभी न ननापमान दा व अपनार्थों योगमें ममभाव रत्ताहो न किमी  
 की चन्तु चोगर लेताहो न किसीकी हिंसा कताहो उगको दोगिरू जानता  
 किन्तु त्रिम विगलमति सा आत्मा कलिगुग के पापों मे मलिन न होवेपाता  
 हो ३ गोहमें न कैमनाहो मनमें सदा श्रीश्री को रत्ताहो उसे अतीव दोगिरू  
 समझना और जो पगति इन्ध नुर्णादि एकान्त में भी परीदये उसे केनाके  
 समान समझना हो व गगनात्को छोड़ किमीमें चित्त न लगाताहो उसे हरि  
 भक्त समझना कदा स्मिन्शिला समान निर्मल श्रीविष्णुजी कदा मनुष्यों  
 के मर्गों अहङ्कारादि दोष यह योग नहीं होकरा तथाकि चन्द्रमा की चिन्ता  
 के जागे अग्निरा प्रशम के होतप्र है और जो मनुष्य विगलमति अह

झारहीन प्रशान्तचित्त पवित्रत्रिभुज मय संसारसे मित्रभाज रखनेवाला प्यारहित बोलनेवाला मान मायाहीन होता उसके हृदय में श्रीवासुदेव बसते हैं तिन भगवान् के हृदयमें उसनेसे पुरुष जगत् का भिय होजाता व उसीसे विष्णुमहत् सूचित होता जैसे साखू का छोटापेड़ अतिरगणीरु होनेसेही पृथिवी के समझो बताता है हे दूत ! यमनियम से विधूनपाप प्रतिक्षण अच्युत में मन लगायेहुये गान गद अहङ्काररहित ऐसे मनुष्यों से दूर भागना क्योंकि यदि उनके हृदय में असि शल चक्र गदाधर अनादि श्रीहरि हैं तो उनके पाप नाशहोचुके अब कहा है जैसे सूर्य के उदय में अन्धकार नहीं रहना और जो मनुष्य परधन हरता जन्तुओंको मारता सदा निष्पुत्राणी बोलता ऐसे अशुभ दुर्मदसहित व पापमति पुरुष के हृदय में अनन्त भगवान् नहीं बसते और जो असाधु दुष्ट जन पापमति महात्माओंके अधिकार को नहीं देखसके व उनकी निन्दा करते हैं व विष्णुकी न पूजा करते न उनके भक्तोंको कुछ देते उन अधर्मों के हृदयमें भगवान् विष्णु नहीं बसते व जो लोग परमप्रिय मित्र भाई बन्धु स्त्री पुत्र कन्या पिता माता सेवक इनसे भी पालनके वेतनमें धनकी इच्छा करता उम अधमको विष्णुमहत् न समझना व जो पुरुष अशुभमति असत्कार्यों में सक्र अगारियों के सङ्ग निरन्तर लगा प्रतिदिन पापही करने के उपाय करता ऐसा पुरुषों में पशुपुरुष वासुदेवका भक्त नहीं है और जो पुरुष ऐसा मित्रारताहो कि यह सब सत्कार व हमभी वासुदेवरूप हैं वह परमपुरुष वासुदेव सर्वत्र व सम प्रकृती है इस भातिकी निर्मलमति जिनकी हो उनको दूरसे बरय जाना और जो ऐसा कहा करते हों कि ॥

श्री० कमलनयन अच्युत महिधारी । वासुदेव विष्णु भयदारी ॥

शाय चक्र कर शरण तुम्हारी । जो इमि भाषत सदा पुकारे ॥ १ ॥

पापरहित तिनको जनि लायतु । तिन देखा घग् दूर पसारतु ॥

जामु पुरुषपर के हिय माहीं । धनन मदा हरिकरि निगछाहीं ॥ २ ॥

तिन्हें विलोपन की तुम कार्यों । और हमें की आशा नाहीं ॥

जायों चक्र परक्रम पाई । तिन हित हरिपुर भाग न भाई ॥ ३ ॥

कालिन्जकजी भीष्मपितामह से बोले कि इसभानि जगने दुर्तोंके भित्तानेके लिये यमराजजी कहतेथे हमने भाग से रुदा भीष्मपितामह नहुन मे बोले ३

नकुल ! ये समाचार कलिगदेरासे आय कानिगब्राह्मण ने हगमे कहेथे सो तुम को सुनाया इससे जानना चाहिये कि इस समार में श्रीविष्णु को छोड़ और कोई रक्षा करनेवाला नहीं जिस पुरुषका चित्त श्रीहरिके शरण में पहुँचा उस को यमदूत यमदण्ड यमपाश यमराज व यमयातना कोई भी कुद्वनहीं करसके पराशरजी बोले हे मैत्रेय ! यमराज ने जो अपनी गति दूतों को बताई तुमसे कही अब और क्या सुना चाहने हो ॥

## आठवां अध्याय ॥

दो० कहम अष्टमाध्याय महँ निज धर्मन अनुसार ॥

हरि आराधन विधि सगर और्व्वकपन आचार ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले हे भगवन् ! भगवान् विष्णु जिस भाँति संसार वासना जीतने की इच्छा कियेहुये लोगों में आराधना करने के योग्यहों कहिये व विष्णुकी आराधना करने से जो फलभीहो सो भी कहिये पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय ! जो आपने हगमे पूछाहै यही मगर राजाने और्व्वमुनि से पूछाथा जैसे जैसे उन्होंने उनसे कहा उसी रीतिपर कहते हैं सुनो और्व्वजी सगरसे बोले कि विष्णुकी आराधना करने में प्राणी पृथिवी स्वर्गादि के सुख व मोक्ष सब कुछ पाताहै कदांतक गनावें जो २ व जितना फल विष्णुके आराधन से होता व जितना वह चाहताहै सब फल पानहै हे भूाल ! जो तुम हरिका आराधन पूँछो हो सब तुमसे कहते हैं सुनो वर्णाश्रम के आचारवालों को सगरो चाहिये कि हरिकी आराधना को क्योंकि ईश्वर के प्रसन्न करने का और मार्ग नहीं जिस से हरि सर्व्वशुभप्रद है तिमसे चाहे जिसकी पुनाकरे वद हरिहीकी होती चाहे जिसको जपे व चाहे जिसका गो स्रव भुजा हुआ जो फसे हरिहीके सुग होला हे तिससे अपने वर्णाश्रम के अनुमार सदाचारियों को चाहिये कि श्रीहरि कीही आराधना करें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य व शूद्र सब अपने ० धर्ममें तत्पर हो विष्णुही को आराधते ह जो लोग परमा अपवाद पाई चुगुली सुनाई नहींफसके व और को कष्ट नहीं देनेहें उनसे फसय भगवान् यमजगहने जो पाईसी पाई द्रव्य परहिंसामें मन नहीं लगाना उममे भी विष्णु सन्तुष्ट रहने व जो प्राणियों को न मानना न प्राणमें मानना उममे भी बहुत सन्तुष्ट हरि रहने व जो देवना

ब्राह्मण गुरुकी सेवा करता व जो अपने व अपने पुत्रके सगान सब ससार पर कृपा करता व जिसका मन रागादि दोषोंसे सन्तुष्ट नहींहोता व शुद्धचित्त रहता इन सबसे विष्णु सन्तुष्ट रहते हैं सो विष्णुके सन्तुष्ट होनेके लिये जिस २ वर्णाश्रमके लिये शास्त्र में जो २ धर्म कहे हैं वही हैं उनके प्रतिकूल करने से हरि कभी प्रमत्त नहीं होमके यह सुन राजामगर बोले हे द्विजश्रेष्ठ ! हम वर्ण व आश्रम सबके धर्म सुना चाहते हैं आप कृपाकर कहिये और्वज्जी बोले अच्छा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य व शूद्र चारोंवर्णोंके धर्म बताते हैं सुनिये दानदेना देवताओंकी पूजा करना वेदपढ़ना अग्निहोत्र करना सप्या तर्पणादि करना ब्राह्मण की यह नित्य वृत्तिहै यदि इतने में निर्वाहहो तो बहुत अच्छा नहीं तो जीविकाके अर्थ औरोंको यज्ञ करावै शास्त्रपढ़ावै व दानलेवै पर असत्दान न लेवै व सब प्राणियों का हितकरै अहित किसीका न करै सब से प्रीति राखै ब्राह्मण का यही उत्तमधन है पत्यर व स्त्र में समदृष्टि रहे ऋतुकाल में स्त्रीको मासहो ब्राह्मण के धर्म कहे क्षत्रियों के सुनिये इच्छापूर्वक ब्राह्मणों को दानदेवै यज्ञकरै व वेदशास्त्र पढ़ै शास्त्राख वाधकर जीविका करै पृथिवी व प्रजाकी रक्षाकरै इन कृत्योंमें मुख्य महीकी पालनाहै क्योंकि उसके पालन से दान यज्ञादि सबहोंगे जो राजा दुर्णको गयदेना व सज्जनोंका परिपालन करना है वह वाञ्छितलोक पाताहै वैश्यों को ब्रह्माजी ने पशुओं का पालन वाणिव्य व खेती करना यही जीविकादी है और वेद पढ़ना यज्ञकरना दान देना येभी कर्मा वैश्योंके हैं इस से पर्वोंमें दान यज्ञादिभी कियाकरै शूद्रलोग ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंकी सेवाकिया करै उसमें जो धनपावै व कुछ मोलवैच मेरा किंडिहिर चटाई छान छप्परआदि बना २ फर वैच उनसे जो धन मिले वही उनकी जीविका है यदि खाने पीने से घबै तो शूद्रभी दानदेसकाहै श्राद्धमी उसी द्रव्यमे करै और सेवकोंके पालन पोषणके लिये सब वर्णोंको कुछ २ धनका समझ चाहिये व सबको ऋतुकालमें अपनी स्त्रीकेसाथ भोगभी करना चाहिये किंच सब प्राणियों पर दया करना सहना मानहीन होना सत्य बोलना शौचवामे रहना बहुत यत्न न करना प्रसन्नचित्त रहना भिष्योलना सबमे गैत्री कर्मना अलोमी होना दृश्यतान करना किसीकी निन्दा न करना मागान्परिनि मे ये चारों वर्णों के धर्म हैं सामान्यतः ये धर्म सब आश्रमोंकेभी हैं अथ ब्राह्मणान्तिकों के वाग्व्रतान के धर्म सुनो

आपत्काल में ब्राह्मण क्षत्रियका धर्म व क्षत्रिय वैश्य का करें पर क्षत्रिय वैश्य दोनों न गूढ़के 'कर्मों' न ब्राह्मण के पर 'निके'मले में अपना २ कर्म किसी को छोड़ना न चाहिये नहीं तो कर्णोका भेलहो जाना है हे राजन् । ये वर्णोंके धर्म आपमें कहे अब आश्रमों के कहने देखुनिये ॥

## नवां अध्याय ॥

यो० , कह्य गवम अध्यायमहं, आश्रम, धर्म पुनीत ॥

श्रवणकरत पातक मित्त सग्जन सुनहु विनीत ॥ ३ ॥

श्रीवर्षजी राजामगरसे बोले हे महीपाल । जब ब्राह्मणका यहोपवीत होजावे तो वेद पढ़ने के लिये ब्रह्मचारीहो गुरुके घरमें जा बसे वहां शौचाचारसहित गुरुकी सेवा व व्रतकरताहुआ वेदपढ़े दोनों सन्ध्याओं में रवि व अग्निका वपः स्नानकरे व गुरुके प्रणाम जब गुरु बैठेहो आप भी बैठे जब कहींचले तो सग जायें पर गुरुके घरमें जबतक रहे नीच वृचिसे रहे कभी गुरु के प्रतिकूल कुछ कार्य न करे जब आज्ञाहो तभी वेदपढ़े जबतक सामने बैठा रहे अलग चिघ न खगावे जब आज्ञाहो तभी शिक्षादि लेकर वा आने पासहो तो सोई भोजनकरे प्रथम जिम नदी तड़ागादि में गुरु स्नानकरलेवे पीछे आपसी नहाय व प्रातः काल उठके गुरुके लिये इन्धन जलादि आन दियाकरे जितना प्रयोजन हो वेद पढ़ गुरुकी आज्ञाने गुरुदक्षिणा दे गृहस्थाश्रम में भ्राते वेदविधि से विवाह करे व कर्मानुसार वगको प्राप्तहो यथाशक्ति गृहस्थों के सवकाम को पिण्डादि दानसे पितृगंभी पूजाकरे यज्ञोंसे देवोंकी अन्नसे अतिथि व मुनिवोंकी वेदपढ़ने से व पुत्र उत्पन्न करने से सब ब्रह्मादि प्रजापतियोंकी धनिपैश्वदेवादिकों में पृथ्वी जलाग्नि वातायानादिकों की पूजा करना रहे सत्यबोद्धन से भंगारोंकी इस भांति जो पुरुष कर्म करता वह उत्तम लोफको पाना जाहे से शिक्षाके भक्षण करनेवाले सन्धासी वन्न वारीषादि भी । इस गृहस्थाश्रमकी वागारसोई हैं इससे सब आश्रमों से यह भेद है क्योंकि माटी लेनके लिये ताप्यं स्नान करने व पृथ्वी दर्शन करने के लिये जिना वाद्वार व चिना आहारके ब्राह्मणजोग भगवने सन्धाको गृहस्थके द्वारसे जावे उनको भानेपर गृहस्थोंको चाहिये कि भोगसे बेठारे उठावे मनुष्यवन बोलें व ध्यान भोजनादि की सामग्री इ इहा करे

क्योंकि जिस गृहस्थके द्वारपरसे अभ्यागत तिरागहो लौटजाताहै अपना पाप उसको देजाता व उमकी पुण्य आप लेजाता है गृहस्थ को चाहिये कि किसी का अनदिर अहकार पाखण्ड परिनाप उपघात निन्दुरता न करे जो गृहस्थ इस भाति गृहस्थाश्रम के धर्मों पर चलता वह सब बन्धनोंसे छूट उत्तमलोक पाता है जत्र वृद्धावस्था आवै व वीचहीमें जब गृहमें जो २ ऋणीय होताहै उससे छुटी पाय स्त्री पुत्रको सौंप व सगही लिये वनको चलाजावै वहा पाता जड़ फल भोजनकरै वार न वनवावै भूमिमें रायनकरै सबका अतिथि वनजावै वेप्रयोजन न बोलै मृगचर्म कांश व कुण पहिरै ओढ़ै तीनोंकाल स्नानकरै देवताओं की पूजा होम अतिथि पूजन भिक्षान्नभोजन ये भी अवश्य करै वनके पाखीआदि वृक्षोंके तेलभी जब इच्छा चाहै लगावै तपस्या करने में जो जाड़ा गर्मी वर्षा आदि सहने परने हैं सदै जो कोई मुनि इस वानप्रस्थाश्रम को करता है वह अग्निसमान तेजस्वीहो सब दोषोंको भस्मकर नाशरहित लोकों को जाता है अथ चौथा सन्यासाश्रम कहते हैं चिचलगाय सुनिये पुत्र स्त्री द्रव्यादिकों का स्नेह छोड़ चौथे आश्रम को जाना चाहिये उसमें पाखण्डादि भी न करना चाहिये अर्थ धर्म कर्म के लिये कुछ भी न करै सब जन्तुओं में मित्रत्व वर्तावराखे पशु पक्षी जो वनमें रहते मनसा वाचा कर्मणा सबका हिन करै अहित कभी न होनेपावै जब कभी ग्रामको जाय तो १ रात्रिसे अधिक न धमै नगरमें ५ रात्रि इसमें भी इस रीतिसे रहै जिसमें ग्राम व ग्रामीणों से न वदृत प्रीतिही होनावे न वैरही जब वनाय अग्नि पुतायजावै तो भोजन करनेजावै भोजन भी ब्राह्मण क्षत्रिय व वैश्य तीनही वर्णों के घरका करै शूद्रान्न कभी नहीं अपने शरीर की यात्राही को अग्निहोत्र समझे शरीरही को अग्नि अपने मुच में भिक्षान्न ढालनेही को खीर प्रक्षेप समझे वम अगीष्टलोरु पावे और जो मोक्षही इच्छा करताहो तो पवित्र बुद्धिहो अपनेहीमें अग्नि उत्पन्नकर उर्ध्वमें प्रशान्तचिन्तहो परब्रह्म को प्राप्त होजावै ॥

## दशवां अध्याय ॥

दो० कष्टव दशम अध्यायमहं नित्यनैमित्तिक फम ॥

जामों षोडश सम्पत्तण विना न छिज के धर्म ॥ १ ॥



इतनी कथा सुन राजामगर बोले हे विप्रश्रेष्ठ ! आपने चार छात्रम व चार  
वर्ण व इनके धर्म कहे अब हम पुरुषों की नित्यनैमित्तिक व काम्यक्रिया सुना  
चाहते हैं दयाकर कहिये जोर्वजी बोले हे राजन् ! पुरुषों की नित्यनैमित्तिका-  
दिक्रिया जो आपने पूछी कहते हैं सुनिये पिता को चाहिये जैसे पुत्रहो उठ  
के जानकर्मोंदि कर अम्युदयिक श्राद्ध करे प्रथम तो दो ब्राह्मणों को पूर्वमुक्त  
बेठाय भोजन करावे फिर शास्त्र व कुलानुसार देवता पितरगादि के कर्मकरे  
यथा दधियवका पिमान बरेके फन वा पाता जैसा सम्मवहो लाय पियहस्नाय  
नान्दीमुख श्राद्धके अनुसार यह देवकर्म करे वा सव कर्म कनिष्ठा अगुली  
गुलामे करे क्योंकि हाथमें यह प्रजापति तीर्थ कहाता है केवल जन्महीमें नहीं  
कन्या पुत्रके विवाह व पुत्रके यज्ञोपवीन में भी अवश्यही अम्युदयिक श्राद्ध  
करना चाहिये तदनन्तर दशदिन वीतजानेके पीछे जब शुद्धस्नानादि होजायें  
तो नागकरण करे उसमें प्रथम सवके नाममें देवताका नाम होना चाहिये पीछे  
ब्राह्मणादि वर्णोंके क्रमसे शर्मा वर्मा गुप्त व दास लगाना चाहिये यथा सोमदत्त  
गर्मा ब्राह्मण इन्द्रदत्तवर्मा क्षत्रिय चन्द्रदत्तगुप्त वैश्य शिवदास शूद्र न ऐमा  
नाम धरवे जिनका संस्कृतविद्या के अनुसार कोई अर्थ न हों न ऐमा जिससे  
देशभाषा में कुछ हैसीही न ऐमा जिसमें गुदवार इत्यादि गदेश्वरान्त्र परे न  
आगमलरूप न निन्दित और दो चार लक्ष्यादि सम.जन्तों का नामहो १, २,  
५ आदि विपगातर न पानेपावें न बहुत बड़ा न बहुत छोटाहो न बहुत दीर्घ  
अक्षरका हो नहावकहो इस्वाक्षर बहुतहों जिसमें सुस्तपूर्वक पुकारते बने इस  
मांति धाम्नाशन घृष्टाकरण यज्ञोपवीनादि संस्कार होजानेपर गुरुके घरगाय  
विद्यापदे विद्यापद गुरुकी आज्ञाले गुरुदक्षिणा दे यदि गृहस्थाश्रम की इन्दा  
हो तो विवाहकरे यदि गृहस्थाश्रममें प्रीति न हो तो मद्यचर्म्यही धारणकिये रहे  
सदा गुरुकी व गुरुपुत्र की सेवा नियाकरे व मद्यनर्भके पीछे वनको जाय  
वानमस्वाश्रम में चलानावे व सन्यासाश्रमको प्राप्तहोजावे व पहिले निरा आ-  
श्रमकी इन्दाको जन्मपर्यन्त उसीमें रहे आश्रमसे आश्रम में जानेकी कुछ  
बड़ी वापश्यस्ता नहीं विवाद करने में स्त्री मदा पनि से कमवर्षों की हो फिर  
न उसके पट्टत बाहों न विनकुल वार हीनही हो न बहुत फाली न बहुतगोपी  
न स्त्री न नन्मही से भगतीन न अधिकांगी न अशुद्धा न जन्मोगिणी न अ

कुलीन न कुलमें उत्पन्न न अतिरोगिणी न दुराचारिणी न दुष्ट वचनवाली न जिसके माता पिता कोढ़ीहों न दाढ़ी मोछवाली न पुरुषाकृति न कड़े बोलवाली न अतिधीरे बोलनेवाली न जिसकी आँखें सोनेमेंभी अच्छी भाति न भूदती हों न गोली आँखों की न जाघमें रोमवाली न घुडुनू ऊंचेवाली न हँसने के समय जिसके गालों में खाली होजाताहो न अतिरुखी छविवाली न पीले नहवाली न मोटे हाथ पैरवाली न बहुतही छोटेडील की न बहुत लम्बायमान न भौंह मिलीहुई न धिस्तदन्तवाली न करालमुखी ऐसी स्त्रियों के सग न विवाह करे और मातृपक्ष में नाना से पाचपुस्ति ऊंचेवाले वश्योंकी कन्याके साथ न करे इसीभाति पिताके सातपुस्ति ऊंचेवालों की सन्तान को भी छोड़ अन्यो के सग पूर्वदोपरहित कन्या के सग विवाह करे विवाह ब्राह्म १ देव २ आर्ष ३ प्राजापत्य ४ आसुर ५ गांधर्व ६ राक्षस ७ व पेशाच = प्रकार के होतेहैं १ ब्राह्म वह विवाह जिसमें यथाशक्ति भूषण वस्त्र पहिनाय वरको बुलाय कन्यादी जात्रे २ देव वह जिसमें यज्ञकराय ऋत्विज को कन्यादीजात्रे ३ आर्ष वह जिसमें कन्या का पिता दो बैल वरसे लेकर कन्यादे ४ प्राजापत्य वह जो वर कन्या राजी होकर आपस में करलेवें ५ आसुर वह जो कन्या पिता बहुत धनपर बँचवालें ६ गांधर्व वह जिसमें कुछ कौल कार दूनोंओर से होजावे ७ राक्षस वह जिसमें युद्धहोकर विवाहहो ८ पेशाच वह जिसमें कन्याको छनसे गगाय कहीं करलेवें इसमें पेशाच विवाह महाअधम है पहिले के चार ब्राह्मणों के योग्य व गान्धर्व राक्षस क्षत्रिय वैश्य के योग्य आसुर शूद्रके पेशाच महापापिष्ठ विवाह किसी वर्ण के योग्य नहीं जो अच्छेप्रकार अच्छेकुन की दोपरहित स्त्री विवाहितहो उससे धर्मार्थ काम तीनों वर्ग सिद्ध होते हैं ॥

## ग्यारहवाँ अध्याय ॥

दो० ग्यारहवें अध्याय में गन्धर्वाध्याय प्रधान ॥

यह सफल सत्कार पुनि सदाचार हरिध्यान ॥ १ ॥

यह सुन राजासगर बोले हे मुनिराज ! अब हम गृहस्थ के सदाचार सुना चाहते हैं जिनके करने से गृहस्थ इमलोक व परलोक कहीं से न तुके और्व-गुनि बोले हे पृथ्वीपाल ! जिन सदाचार के करने से पुरुष इमलोक व परलोक

दोनोंको जीतता है कहते हैं चुनिये क्षीणदोष साधुलोगोंके आचरण ही सदाचार कहनेके कर्षोकि सत्त्वगुणका साधुही अर्थ है इस सदाचारके ब्रह्मवर्षकी समस्तपि मनु प्रजापतिलोग हैं पुरुषको चाहिये कि दो घड़ी रात्रिसे शयनमे उठे स्वम्भगनहो धर्म व अर्थको चिन्तना करे जिसमें इन दोनोंका जानन हो इसलिये कामकी भी चिन्तना करे धर्म अर्थ काग इन तीनोंको समान समझे क्योंकि इनमें एक दूसरे की सहायता चाहताहै परन्तु ऐसे अर्थ कागकी न करे जिससे धर्मकी पीड़ाहो क्योंकि धर्म करने मे बहुधा दु स्रोते पर करना अवश्य चाहिये चाहे अर्थ काम सिद्धहों वा न हों तिसके पीछे प्रातः काल ठंड जलपूरित पात्रले ग्रामकी नैऋत्यदिशा में जहांक तीर चलानेमे जासंक्राया और दूर जहां शुद्ध व निर्जर्जनस्वान हो दिया फिरनेजाय आयके शौच करे कर्षो पार्यधोने से वचा जल प्राके भीतर न फेंके अपनी वृक्षकी छाया व नाय मूर्ध अग्नि पवन गुरु ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इनके सागते कर्षो न दिशाजाय जोते व अन्न लगेद्युये सेनमें न जाय व जहां गोवं बैठती हों जहां बहुत जल वेडेहों मार्ग नदी प्रादि तीर्थे जल जलके किनारे जहां मुर्दा फूकेजाने हों इन स्वानोंमें दिशा पेशाव दोनों न करने चाहिये यदि कोई कठिनना न हो तो दिनको उत्तरमुख रात्रि को दक्षिणमुख दिशा पेशाव करने चाहिये गिरये कुछ ब्रह्मवर्ष यज्ञोपवीत दहिने कानमे चढ़ाय शृंगी पर कुछ खरपत्तवार धार मलोत्सर्गको बर्दादेरतक न रहा भेअरदे व न कुछ नवव्रकमोले और न्यमोदि की माथी मूमकी सोदीहृई पानी के भीतर की किमीके दाय गडिपाने से बर्षोहृई घरकी दीवार से सोदीहृई घरके लेपने से बनीहृई अिसमें फीट पत्ताहो हनकी जोनीहृई इनकी मृत्तिका शौच करने को न लेनी चाहिये लिंग इन्द्रिय में एक बार मृत्तिका लगानी चाहिये गुणामें ५ बार बाणें हाथमें १० बार दोनों हाथोंमें सान २ बार लगाय हाथ धोने पैठों तीन २ बार फिर अन्ये साकजलसे कुत्रा करे नानवार जल से गर्ज्जन भी करे जलसदित्त दाग से मूत्र आय वान नाशप्रादि हुरे जब जन्दा गानि शुद्धहोचारे तो यान भरिफुरि हारे व दर्शण ले मुन देमे कि भस्मे बर्षके अनुवार द्रव्याज्जनहरे वगसादि करनेकी तेगामे करे धन अन्वय करनेके कर्षोकि देवता पितृया सुव उमीये दोमेई निष्पिचारने के लिये नदी नद नद्यागादिमें या पर्वत के भस्मामें स्नान करने

चाहिये अथवा कूपसे कलशादिकोसे भरभराके स्नान करे स्नानके पीछे पवित्र-  
 वस्त्र पहिन देव पितृतर्पण कुश जल-तिल से करे देवता ऋषियों को भूँदवा-  
 स्नर्पयामि भूमृषीस्तर्पयामि इत्यादि मन्त्रों से तीन २ वार तर्पण करे प्रजाप-  
 तियोंको एक २ वार पितृपितामह प्रपितामह मातामह प्रमातामह वृद्धप्रमाता-  
 महादिकोंको भी तीनही तीनवार अजलि देना चाहिये इसीभाति माता पिता  
 मही प्रपितामही गुरुपत्नी गुरु मामा मित्र राजाआदिकों को भी इतना तर्पण  
 कर फिर देव असुर यक्ष गन्धर्व राक्षस पिशाच गुह्यक सिद्ध कूपमाण्ड वृक्ष पक्षी  
 जलेचर भूमिचर वायुमक्षी इन सबको देवै व जो लोग सब नरकों की यातना  
 भोगते हैं तिनके लिये भी जो बन्धु वा बन्धुहों जो अन्य जन्मके बन्धुहों तिन  
 सबको देवे यह काम्य तर्पण है इसके करने से जगत् वृषहोताहै इतना तर्पण  
 कर सूर्यको जलाजलि देवै फिर घरमें आय इष्टदेव की पूजाकरे उममें जल से  
 स्नान कराय फिर पुष्प धूप दीप नैवेद्यादि देवै तदनन्तर अग्निहोत्र करे उसमें  
 पहिले ब्रह्माको फिर प्रजापतिको फिर गुह्यादिदेवोंको फिर कश्यप भ्रुमनि को  
 फिर मणियों को द्वारपै धाता व त्रिधाता को बीचमें ब्रह्माको घरमें ये दिग्देव  
 भी रहते इन्द्र धर्मराज वरुण चन्द्र इनको पूर्वादि दिशाओंमें आहृति देनीचा-  
 हिये पूर्व उत्तर के कोणमें धन्वन्तरि को इम अग्निहोत्र के पीछे वैश्वदेवकर्म  
 करे उसमें वायव्य कोण में वायुको फिर प्राच्येदिशे दक्षिणस्येदिशे इत्यादि  
 मन्त्रोंसे ब्रह्मा अंतरिक्ष भानु विश्वेदेव विश्वभूत भ्रुनपनि वरुणदेव निसके पीछे  
 घोड़ा अन्नले पृथिवी में सब प्राणियों के लिये छोड़े फिर यह पढ़े कि देवता  
 मनुष्य पशु पक्षी सिद्ध यक्ष नाग दैत्य भेन पिशाच वृक्ष पिपीलिका कीट पतंग  
 जिनके माता पिता बन्धु न हों न अन्नकी सिद्धिहो न अन्न मिलताहो ये सब  
 हमारे भ्रत से वृषहों और १४ प्रकार के जो मृगण हैं तिनके अर्थभी हम  
 यह अन्न देतेहैं वे वृषहों ये मन्त्र पढ़ गृहस्थ सब प्राणियों के लिये प्रतिदिन  
 अन्न दियाकरे फिर कुत्ता कोवा आदि जन्तुओं के लिये कुछ भूमिमें छोड़ देवे  
 इतनाकर गोदोहनमात्र अपने घरके अंगना में लड़े छोड़ देवले कि कोई  
 भूखा अतिथि तो नहीं है यदि आज्ञावे तो उमे भोजन रगके नहीं तो ऐसेही  
 भोजन करे कदाचित् अतिथि आज्ञावे तो उमचा आगतस्वागत करे पूछे  
 बैठवे पाद धोय देवे श्रद्धापूर्वक जल देवे पिय सम्भाषण करे जब चननेलगे

दोनोंको जीतता है कहते हैं सुनिये क्षीणदोष साधुलोगोंके आचरणको सदा चार कहतेहैं क्योंकि सत्शब्दका साधुही अर्थ है इस सदाचारके वक्ता व कर्ता सप्तऋषि मनु प्रजापतिलोग हैं पुरुष को चाहिये कि दो घड़ी रात्रिरहै शयन से उठे स्वस्थमनहो धर्म व अर्थकी चिन्तनाकरे जिसमें इन दोनोंका नाश न हो इसलिये कामकी भी चिन्तनाकरे धर्म अर्थ काम इन तीनोंको समान समझे क्योंकि इनमें एक दूसरे की सहायता चाहताहै परन्तु ऐसे अर्थ कामकी न करे जिससे धर्मकी पीड़ाहो क्योंकि धर्म करने में बहुधा दु खहोते पर करना अवश्य चाहिये चाहे अर्थ काम सिद्धहों वा न हों तिसके पीछे प्रात काल उठ जलपूरित पात्रले ग्रामकी नैऋत्यदिशा में जहातक तीर चलानेसे जासका वा और दूर जहा शुद्ध व निर्जनस्थान हो दिशा फिरनेजाय आयके शौच करे कभी पायेंधोने से बचा जल धारके भीतर न फेंके अपनी बसकी छाया व गाय सूर्य अग्नि पवन गुरु ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इनके सामने कभी न दिशाजाय जोते व अन्न लगेहुये खेतमें न जाय व जहा गौवं बैठनी हों जहां बहुत जन बैठेंहों मार्ग नदी आदि तीर्थ जल जलके किनारे जहां मुर्दा फूकेजाते हों उन स्थानोंमें दिशा पेशाव दोनों न करने चाहिये यदि कोई कठिनता न हो तो दिनको उत्तरमुख रात्रि को दक्षिणमुख दिशा पेशाव करने चाहिये शिरसे कुछ वस्त्रवाध यज्ञोपवीत दाहिने कानपे लदाय पृथ्वी पर कुछ खरपतवार धर मलोत्सर्गकरे वहीदेरतक न वहा बेठारेहै व न कुछ तबक भोलै और व्यगोरी की माटी मूसकी खोदीहुई पानी के भीतर की किमीके द्वाप मटियाने से बचीहुई घरकी दीवार से खोदीहुई घरके लेपने से बचीहुई जिसमें कीट पतहाह हलकी जोतीहुई इननी मृत्तिका शौच करने की न लेनी चाहिये लिंग इन्द्रिय में एक वार मृत्तिका लगानी चाहिये गुदामें ५ वार नायें हायमें १० वार दोनों हायोंमें सात २ वार लगाय हाथ धोवें पैरोंमें तीन २ वार फिर अच्छे साफजलसे कुला करे तीनवार जल से मज्जन भी करे जनसहित हाय से मूठ आँव कान नाकआदि छुवें जब अच्छी मांति शुद्धहोजाये तो चाल मारिफारि द्वार व दर्पण ले मुख देखे फिर अपने वर्णके अनुसार द्रव्याज्जनकरे व यज्ञादिकरनेकी तैयारी करे धन अवश्य बटारेक्योंकि देवयज्ञ पित्रयज्ञ सब उसीमें होतेहैं नित्य क्रियाकरने के लिये नदी नद तडागाण्डिमें वा पर्वत के मरना में स्नान करना

चाहिये अथवा कूपसे कलशादिकोंसे भस्मताके स्नानकरै स्नानके पीछे पवित्र वस्त्र पहिन देव पितृतर्पण कुश जल-तिल से करै देवता ऋषियों को भूँदवा-स्तर्पयामि भूऋषीस्तर्पयामि इत्यादि मन्त्रों से तीन २ वार तर्पण करै प्रजाप-तियोंको एक २ वार पितृपितामह प्रपितामह मातामह प्रमातामह गृहप्रमाता-गहादिकोंको भी तीनही तीनवार अजलि देना चाहिये इसीगाति माता-पिता-मही मपितामही गुरुपत्नी गुरु मामा मित्र राजाआदिकों को भी इतना तर्पण कर फिर देव असुर यक्ष गन्धर्व राक्षस पिशाच गुह्यक सिद्ध कूष्माण्ड वृक्ष पक्षी जलेचर भूमिचर वायुमक्षी इन सबको देवै व जो लोग सप्त नरकों की यातना भोगते हैं तिनके लिये भी जो अचन्द्र वा चन्द्रुहों जो अन्य जन्मके बन्धुहों तिन सबको देवे यह काम्य तर्पण है इसके करने से जगत् तृप्तहोताहै इतना तर्पण कर सूर्यको जलाजलि देवै फिर घरमें आय इष्टदेव की पूजाकरै उममें जल से स्नान कराय फिर पुष्प धूप दीप नैवेद्यादि देवै तदनन्तर अग्निहोत्र करै उसमें पहिले ब्रह्माको फिर प्रजापतिको फिर गुह्यादिदेवोंको फिर कश्यप अनुमति को फिर मणियों को द्वारपे धाता व विधाता को बीचमें ब्रह्माको घरमें ये ऋग्देव भी रहते इन्द्र धर्मराज वरुण चन्द्र इनको पृथ्वादि दिशाओंमें आहृति देनीचा-हिये पूर्व उत्तर के कोणमें चन्द्रन्तरि को इस अग्निहोत्र के पीछे वैश्वदेवकर्म करै उसमें वायव्य कोण में वायुको फिर प्राच्यदिशे दक्षिणस्येदिशे इत्येदि मन्त्रोंमें ब्रह्मा अतरिक्ष मानु विश्वेदेव विश्वभूत भूतपति वरुणदेव तिसके पीछे थोड़ा अन्नले पृथिवी में सब प्राणियों के लिये छोड़ै फिर यह पढ़े कि देवता गनुष्य पशु पक्षी सिद्ध यक्ष नाग दैत्य भेन पिशाच वृष पिपीलिका कीट पतंग जिनके माता पिता चन्द्रु न हों न अन्नकी मिद्धिहो न अन्न मिलताहो ये सब हमारे अन्न से तृप्तहों और १४ प्रकार के जो मृगगण हैं तिनके अर्त्यगी हम यह अन्न देतेहैं वे तृप्तहों ये मन्त्र पढ़ गृहस्प सब प्राणियों के लिये प्रतिदिन अन्न दियाकरै फिर कुत्ता कोवा आदि जन्तुओं के लिये कुछ भूमिमें छोड़ देवै इतनाकर गोदोहनमात्र अपने घरके अंगना में राड़े छोड़ देतले कि कोई भूवा प्रतिधि तो नहीं है यदि आज्ञावे तो उसे गोजन रगके नहीं तो ऐगही गोजन करे कदाचित् प्रतिधि आज्ञावे तो उनका वागनसागव करै पूछे वेअवे पाद धोय देवै श्रद्धापूर्वक जल दवै पितृ मग्नापु करै जव चन्नेनने

दोनोंको जीतता है कहते हैं सुनिये क्षीणद्रोप साधुलोगोंके आचरण को मदी-  
 चार कहते हैं क्योंकि सत्शब्दका साधुही अर्थ है इस सदाचारके वक्ता धर्मकर्त्ता  
 सप्तऋषि मनु प्रजापतिलोग हैं पुरुष को चाहिये कि दो घड़ी रात्रिहै शयन  
 से उठे स्वस्थमनहो धर्म व अर्थको चिन्तना करे जिसमें इन दोनोंका नाश  
 न हो इसलिये कामकी भी चिन्तनाकरे धर्म अर्थ कागइत तीनोंको समान  
 समझे क्योंकि इनमें एक दूसरे की सहायता चाहता है परन्तु ऐसे अर्थ कामको  
 न करे जिससे धर्मकी पीड़ाहो क्योंकि धर्म करने से बहुभाङ्ग सहोते पर कर्त्ता  
 अवश्य चाहिये चाहे अर्थ काम सिद्धहों वा न हों तिसके पीछे प्रातःकाल उठ  
 जलपूरित पात्रले ग्रामकी नैऋत्यदिशा में जहातक तीर चलानेसे जासकता वा  
 और दूर जहा शुद्ध व निर्जर्जनस्थान हो दिशा फिरनेजाय आयके शौच करे  
 कभी पायँधोने से ववा जल धारके भीतर न फेंके अपनी वृक्षकी छाया व गाय  
 सूर्य अग्नि पवन गुरु ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इनके सामने कभी न दिशाजाय  
 जोते व अन्न लगेहुये सेनमें न जाय व जहा गौवें बैठती हों जहा बहुत जन  
 बैठेहों गार्ग नदी आदि तीर्थ जल जलके किनारे जहा मुर्दा फेंकेजाते हों इन  
 स्थानोंमें दिशा पेशाव दोनों न करने चाहिये यदि कोई कठिनता न हो तो  
 दिनको उत्तरमुख रात्रि को दक्षिणमुख दिशा पेशाव करने चाहिये शिरसे कुछ  
 वस्त्रवाध यज्ञोपवीत दहिने कानपै चढ़ाय पृथ्वी पर कुछ सरपतवार धर मलो-  
 त्सर्गको बड़ीदेरतक न वहा बैठारहे व न कुछ तववक्र मोले और व्यमोरी की  
 माटी मूसकी खोदीहुई पानी के भीतर की किरीके हाथ मटियाने से धनीहुई  
 घरकी दीवार से खोदीहुई घरके लेपने से धनीहुई जिसमें फीट पतगहों हलकी  
 जोतीहुई इतनी मृत्तिका शौच करने को न लेनी चाहिये लिंग इन्द्रिय में एक  
 वार मृत्तिका लगानी चाहिये गुदामें ५ वार बायें हाथमें १० वार दोनों हाथोंमें  
 सात २ वार लगाय हाथ धोने परोंमें तीन २ वार फिर अच्छे साफजलसे कुत्ता  
 करे तीनवार जल से मज्जन भी करे जनसहित हाथ से मूँड जीव कान  
 नाकआदि छुँके जब अच्छी भाति शुद्धहोजावे तो बाल मारिभूरी डारे व  
 दर्पण ले मुख देखे फिर अपने वर्णके अनुसार द्रव्याज्जन करे वयज्ञादिकरनेकी  
 तैयारी करे धन अवश्य बटोरें क्योंकि देवयज्ञ पितृयज्ञ सत्र उमोंसे होतेहैं नित्य  
 क्रियाकरने के लिये नदी नद तड़ागादिमें वा पर्वत के मरना में स्नान करना

शुद्ध पात्रमें आप कोपराहित व, प्रसन्नचित्त हो भोजन करे और विना किसी ऊचे स्थानपर धरे न। खराब दुर्गन्ध्यादि युक्त स्थानमें न सन्ध्यादि काल में न अतिमकीर्ण स्थानमें न विना अग्राशन व अग्निमें धरे न विना मंत्रोंसे पवित्र कियेहुये न वासी न, विना जलके धोये न भोजनकरे पर मिठाई पूरी भात रोटी आदि धोने की आवश्यकता नहीं धोना केवल शाकादिकों केही लिये है व किसी वस्तुका बरूला न खावे मिठाई दही घृत पूरी भोजन करने में इन को तो न छोड़ना चाहिये अन्य जितने पदार्थ हैं कुछ छोड़देने चाहिये पहिले सब भोजनों में जो गीठीवस्तु हो खाय फिर सल्लोनी खड़ी फिर करू व तीत आदि जो पुरुष ग्रथम घृत तैलादि द्रव पदार्थ खाता मध्य में कठिन पदार्थ अन्तमें फिर द्रवपदार्थ उस का बल व आरोग्यता फही नहीं जाती इस भाति अनिन्द्य अन्न भोजन करना चाहिये जिससे कि भोजनकी निन्दा न करनी चाहिये इसलिये गौन रहकर भोजन करना चाहिये बहुत नहीं तो ५ फवल तक तो श्वररपही गौन चाहिये ऐसे भोजन कर पूर्व व उत्तरमुख बैठके आचमन मुख धोवनादि करे कईबार खूब जुझाकरे टिड्डीनीतरु हाथ धोवे तिसके पीछे स्वस्थचित्त हो श्चञ्चे आसन पे बैठ इष्ट देवता का स्मरण करे व यह कि पवन की प्रेरणा से अग्नि भरे शक्ति अन्न पचावे व धातुओं को बढ़ावे व सब मुख देवे यह भेरा खाया हुआ अन्न पृथ्वी जल पवनादिकों के बलके निगित्तहो व मुक्तको हमसे सुखहो सब प्राण अपान मगान उदान व्यान इन पवनोंको भेरा अन्न पुष्टिकरहो व मुक्तको भी सुख देवे अग्नि व वइवानल अग्नि हमारे साथे हुये अन्नको पचावे व हमको सुख देवे कि जिममें शरीर आरोग्य रहे जिम भांति विष्णु इन्द्रिप व जीवोंके स्वामी हैं व सबकी रक्षा करते इसी भांति उनकी दयासे अन्न हमारी रक्षा व पुष्टता को जिस सत्पता से विष्णुही हम अन्नके भोक्ताहैं तिसी सत्पता से हमारा खाया हुआ अन्न पचे इन मन्त्रों को पढ़ हाथ से पेट सुइसवे फिर जो कुछ करनाहो करनेलगे व सञ्चालनों के देखने सुनने पढ़ने पढ़ाने में दिन वित्तोवे सन्ध्यासमय सण्पोपामन करे दिनान्तवाली संध्या जब कुछ सूर्य्य रहजावे तब करनी चाहिये प्रात कालवाली कुछ २ नक्षत्र रहने पर सन्ध्या सब गास व सबदिन सब तिथियों में करनी चाहिये केवल गूतक जबकि वसों किमीके लड़का लड़की हो व अगोच में जबकि कोई जा;



थोड़ीदूर पठेआवै यह गृहस्थ का कर्महै अनिथि। उसका नामहै जिसका नाम  
 व कुल न जानते हों अकस्मात् कहीं से आगयाहो। एक प्राणवामी च चीन्हा  
 परिचर्ष को अतिथि नहीं कहते ऐसे दग्ध वं। रिता, पहिचाने, तुये, अन्य देशसे  
 आयेहुये अतिथि को विना भोजन कराये जो भोजन करता है वह त्राकगागी  
 होता गृहस्थ अतिथिका नाम वेद गोत्रं कुलं क्रुद्ध नं पूंछे उसको ब्रह्माकी मूर्ति  
 समझ पूजन भोजनादि देवै पितरों के अर्थ, एक ब्राह्मण को और भोजन दे  
 पर इस ब्राह्मण के आचार कर्म, धर्म उत्पत्ति कुल सब जातताहो व-वह पंचपत्र  
 भी करता हो उसेही भोजन करावै भोजन के समय पहिले ४ कौर, त्रिकाल  
 दाले फिर १६ कौर ब्राह्मण को देवै सन्यासी व ब्रह्मचारी को भी तीन ९ कौर  
 देवै यदि होसके तो इन सबको भोजन भरको देवै नहीं तो जितता ९ कहा है  
 अवश्य देवै इन चारों ब्राह्मणादिकों की पूजा जो करता मनुष्य यज्ञके ऋणसे  
 छुटनाता है जो अतिथि विना भोजनादि पाये गृहस्थके घरसे चलाजाता है  
 वह अपने पाप उसे देजाता व उसकी पुण्य लेजाता है ब्रह्मा भजापति इन्द्र  
 अग्नि, वसु सूर्य ये सब अतिथि के भीतर प्रवेश करके भोजन करते हैं जिस से  
 अतिथि के भोजन कराने में अवश्य यत्न करना चाहिये क्योंकि जो विना अ  
 तिथि भोजन करता वह केवल पापही पाप खाताहै अतिथिके पीछे जिस कन्या  
 का विवाह होगयाहो व अपने पिता के घरमें हो उस सुवासिनी को भोजन  
 करावै तदनु दु ली गर्भिणी वृद्ध बालक इनको फिर आप भोजन करे इन  
 के विना भोजन कराये जो खाता यहा तो पापही खाता गरणान्त में नरको  
 जाताहै जो विना स्नानकिये भोजन करता वह मानो विष्णु खाता जो विना  
 गायत्र्यादि मन्त्रों के जपने पर खाता वह पीव व रुधिर विना सम्कार किया  
 अन्न खाता सो मूत्र जो बाल ब्रह्मादिकों के प्रथम खाता वही विष्णुही खाता  
 इस से हे राजन् मुनिये जिस गांनि गृहस्थ को भोजन करना चाहिये व जिस  
 भाति भोजन करने से स्वर्गी होताहै स्नानकर यथावत् सन्ध्यावन्दन बलि  
 वैश्व अग्निहोत्रातिथ्यादि को भोजन कराये सुवर्णादि हाथ में पहिने घोती  
 पहिन अंगोष्ठा लिये पैर व हाथ तुरन्तही वीथ उत्तर व पूर्वमुख बैठ भोजनको  
 अन्य दिशोंमें न करे अन्न महन अन्ध पथ्य खवमाफ शुद्धतापूर्वक ननायाहुआ  
 हर्गन्धिरहित परिपक्व होना चाहिये जिन २ को उचित है प्रथम देकर अन्धे व

शुद्ध पात्रमें आप कोपरहित व, प्रसन्नचित्त है भोजन करे और विना किसी ऊंचे स्थानपर धरे न। खराब दुर्गन्ध्यादि युक्त स्थानमें न सन्ध्यादि काल में न वातिमंकीर्ण स्थानमें न विना अग्नाशन व अग्निमें डारे न विना मंत्रोंसे पवित्र कियेहुये न वासी न विना जलके धोये, न भोजनकरे पर मिठाई पूरी भात रोटी आदि धोने की आवश्यकता नहीं धोना केवल शाकादिकों केही लिये है व किसी वस्तुका चकला न खावे मिठाई दही घृत पूरी भोजन करने में इन को तो न छोड़ना चाहिये अन्य जितने पदार्थ हैं कुछ छोड़देने चाहिये पहिले सब भोजनों में जो गीठीवस्तु हो खाय फिर सलोनी खटी फिर करू व तीत आदि जो पुरुष प्रथम घृत तैलादि द्रव पदार्थ खाता मध्य में कठिन पदार्थ अन्तमें फिर द्रवपदार्थ उस का बल व आरोग्यता कहीं नहीं जाती इस भाति अनिन्द्य अन्न भोजन करना चाहिये जिससे कि भोजनकी निन्दा न करनी चाहिये इसलिये गौन रहकर भोजन करना चाहिये बहुत नहीं तो ५ कवल तक तो अवरयही गौन चाहिये प्रेम भोजन कर पूर्व व उत्तरमुख बैठके आचमन मुख धोवनादि करे कईबार सूत्र कुम्भाकरे टिठुनीतरु हाथ धोवे तिसके पीछे स्वस्थचित्त हो अन्धे आसन पे बैठ इष्ट देवता का स्मरण करे व यह कि पवन की मेरणा से अग्नि भरे गक्षित अन्न पचावे व धातुओं को बढ़ावे व सब सुख देवे यह गेरा खाया हुआ अन्न पृथ्वी जल पवनादिकों के बलके निमित्तहो व मुक्तको इससे सुखहो सब प्राण अपान सपात उदान व्यान इन पवनोंको भेरा अन्न पुष्टिकरहो व मुक्तको भी सुख देवे अगस्ति व इवानल अग्नि हमारे साथे हुये अन्नको पचावे व हमको सुख दें कि जिसमें शरीर आरोग्य रहे जिस भाति विष्णु इन्द्रिय व जीवाके स्वामी हैं व मक्की रक्षाकरते इसी भाति उनकी दयासे वात्र हमारी रक्षा व पुष्टता को जिस सत्यता से विष्णुही इस अन्नके भोक्ताहें तिसी सत्यता से हमारा खाया हुआ अन्न पचे इन मन्त्रोंको पढ़ हाथ से पेट सुहरावे कि जो क्रुद्ध करनाहो करनेलगे व मन्त्राओं के देखने सुनने पढ़ने पढ़ाने से दिन विनावे सन्ध्यामगय सम्प्रापानन करे दिनान्तवाली सन्ध्या जब कुछ सूर्य रहजावे तब करनी चाहिये प्रात कालवाली कुछ २ नष्ट रहने पर सन्ध्या सब मास व सबदिन सब तिथियों में करनी चाहिये केवल मृतक जबकि वरामें किसीके लड़का लड़की हो व अशोचमें जबकि कोई मा;

रोगीयं मरें प्राजव चित्तविभ्रमहो व वीमारी या किसीका चढ़ाभय हो इन समयों में न करनी चाहिये वीमारादिकों को छोड़ जो कोई दोनों सन्ध्याओं में सोता है सन्ध्यापासन नहीं करता वह पापी होता विना प्रायश्चित्त किये हुये छुट्टी नहीं पाता तिससे प्रतिदिन सूर्योदय के प्रथम उठ सन्ध्यापासन करे दिनान्त की सन्ध्याभी कुछ दिन रहतेही रहने फरहाले क्योंकि जो भिनसारे व साभकी सन्ध्या नहीं करता वह तामिस्र नरकको जाता है सायं सन्ध्यापासन के पीछे वैश्वदेव के निमित्त कुछ अन्न ले विना मन्त्रही पढ़े स्त्री वलि दे देवै वा पुरुष ही स्त्रीको सगलेकर दे देवै व अन्य श्वपच चाडालादि व अतिथि आवै व शक्तिहो तो सबको भोजन करावै अतिथि को आने पर पांय घोने को जल बैठने को आसन प्रणाम कर स्वागत पूछना अन्न देना पीछे शयनदेना यही अतिथि की पूजा है दिनको अतिथि लौट जाने से जो पाप होता है रात्रि के लौटने से उसका अठगुना पाप होता तिससे सूर्यास्त होने के पीछे अतिथि की पूजा अवश्य करनी चाहिये तिसकी पूजाहुई मानों सब देवोंकी होचुकी अन्न शाक जल विछौना आदि जो होसके उससे पूजा करे तिसके पीछे हाथ पैर मुँहघोय भोजन करे चाहे काठकी खटिया आदिहो पर टूटी न हो तिसपर शयन करे टूटी फाटी ऊंची खाली बड़ी छोटी अगभग खटकिया आदि युक्त निखरहरी शय्या न हो कि तो पूर्व दिशाको शिर करके सोवै वा दक्षिणको परिव्रम उत्तर को शिरकर कभी न सोना चाहिये व स्त्री के संग रति तो ऋतुकालमेंही प्रशस्त है उसमें भी ऋतुमती स्त्री के स्नान से छठई आठई दशई आदि सम रात्रियों में उनमें भी पहिलेवालियों से जैसे आगे की हों अच्छी हैं फिर उनमें भी आर्द्रादि १३ नक्षत्र छोड़के शेष १४ नक्षत्र उत्तमहैं इनमें भी रेवती अश्विन्यादि जो मूलसङ्गक कहाने हैं उनमें नहीं फिर जो स्त्री रजोदर्शनके पीछे चौथे दिवस न अन्हाई हो जो वीमार हो जो रजस्वला हो जो इच्छा न करती हो जो रिसानी हो जो खड़की हो जो गर्भिणी हो जो अनुकूल न हो जो अन्य पुरुषकी अभिगाथा किये हो जो इच्छाही न करती हो जो अन्यकी स्त्री हो जो बहुत भूखी वा बहुत अघानी हो ऐसी स्त्रीके संग रति कभी न करनी चाहिये फिर आप स्नान किये मान्ना पहिने चन्दनादि गन्ध लगाये अच्छी भाँति भोजन किये घकवाही रहित सकाम प्रीति सहित हो तब भैयुन करे पर चतुर्दशी अष्टमी अ

मावास्या पौर्णमासी व सक्राति ये ५ पर्व प्रत्येक मासमें होती हैं इनमें न मैथुन करे क्योंकि इन तिथियों में जो तैल स्त्रीका सग्रह व मासभक्षण करता वह विष्टा व मूत्र जिस नरकमें खानापीना पड़ता है उसमें जाता है इसलिये इन पर्वों में समय कर नियम व्रतके साथ पूजा पाठ अच्छे २ शास्त्रों का देखना यही कार्यकरना चाहिये किंच परवादिकों के सग व पुरुष वा स्त्रीके मुख गुदादि में बाधुत वाजीकरणादि ओषधि भक्षण करके व देवता के स्थान ठाकुरद्वारा शिवालादि में मैथुन न करना चाहिये व अच्छे देवता के चोतरा नदीतीर वन उपवन चौरहा श्मशान व पानीके भीतरभी न चाहिये इन सब पर्वों व सन्ध्याओं में व जब पेशाब लगाहो ऐसे समय में न करना चाहिये पर्वों में करने से घनहानि दिनको पाप पृथिवी पर रोग जलाशय में अप्रशस्त होता है मनसे भी परस्त्रीगमन न करना चाहिये फिर वचन व कर्मसे कौन कहै क्योंकि परदारगामीको मरणात् में तो नरकहोता और यहा भी आयुर्दाय घटती है यह गानके पुरुष ऋतुकाल में सब दोषरहित समय में अपनी ही स्त्रीके सग भोगकरे नहीं तो जब उसकी स्त्री की इच्छाहो ऋतुसमय के पीछे जबतक रजस्वला फिर न हो प्रतिदिन भोगकरे परन्तु परस्त्रीगमत्से दूर दूर रहे ॥

## वारहवां अध्याय ॥

दो० धारह्ये अध्याय महं सदाचार बहुमति ॥

पुनि घर्णय सञ्जन मुनहु सकलधर्मकी पाति ॥ १ ॥

ओर्वमुनिराज राजासगरसे फिर बोले देवता गाय ब्राह्मण सिद्ध शूद्र आचार्यकी पूजा व दोनों कालमें सन्ध्यापासन निरप २ का कार्य है सदा साक व पुष्ट वस्त्र धारण प्रगस्त अन्न भक्षण गरुडादि रत्नोंका पहिरनाभी नित्यकर्म है वार सदा साक स्वना सुगन्धित वस्तु लगाना मुन्दर वेप रहना श्वेतपूल पहिरना यह भी कि धोड़ी भी किसीकी द्रव्य न ले धोड़ा भी किसी से अप्रिय न बोले झूठ प्रिय भी न कहै किसी के दोष कभी मुखसे न निकाले अन्य के धन व बैरकी इच्छा न करे इष्ट सवारी कष्टर घोड़े आदि पर न चढ़े नदी के परार परके दृष्टकी छायामें न बैठे अतिवेरी जातिधर्मभ्रष्ट विषिम जिसके बहुत बैरी हों जिसके दरुमें कुष्ठादिरोगहों वेश्यारत जिसके बोड़ा लाग मृत्युन स्वर्गहो मित्यावादी अतिस्वर्ध वा हजो पराई निन्दा चुगली करताहो अनिकृष्टिहो इनकेमाप

ज्ञानी मित्रता न करे न कभी अकेला गली चले नगा हो स्नान सोना आच-  
 गन न करे जब पीठपर छुटा कपड़ा पराहो तो न आचमन करे न देवता की  
 पूजा व होम देवपूजन आचमन सन्ध्या तर्पणादि जप तप आदि कर्म एकही  
 वस्त्र पहिने न करे दुष्टों के संग क्षणमात्र भी न बैठे क्योंकि उनके लगका थोड़ा  
 भी बैठना बड़ा अकार्य करता जैसे सज्जनों के निकट का थोड़ा भी बैठना  
 बड़ा कार्य करता अपने से बड़े व छोटे के साथ विगाड़ न करे क्योंकि विवाद  
 व विवाह समानके संग करना चाहिये खई व नाहक बैर न करे अपनी थोड़ी  
 हानि होतीहो तो सहलेवे पर बैरसे द्रव्य न बटोरे स्नान करते के पीछे न तो  
 भोतीसे देह पोछे न हाथसे यदि होतो अँगोच्चसे पोछे नहीं, तो थोड़ी सूखनेदे  
 और चारभी उस समय न फटकारे न आचमन करे, पवित्र पावन मीजें न किसी  
 अपने बड़ेके आगे पसारें गुरुके आगे वेप व आसन व द्रव्य विचारके साथ करे  
 देवताके स्थान व चौरहा के विना प्रदक्षिणा किये न चला जावे और अमाङ्क-  
 क्य पदार्थोंकी प्रदक्षिणा कभी न करे चन्द्रमा अग्नि सूर्य वायु व अन्य पूज्योंके  
 भी सामने दिशा पेशाव व धूकना न चाहिये सड़े २ दिशा पेशाव न करे खँखार  
 विष्ठा मूत्र न नावें धुंफना खींकना व मलोत्सर्ग भोजन के समय व बलि मङ्ग-  
 ल जप करने के समय महाजनों के आगे व होम करते में न करना चाहिये और  
 स्त्रियोंका न कभी अपमान करे न उनका विश्वास करे न बड़ा दुलारही करे न  
 उनका पुरुपार्थ ही होने देवे मङ्गल पदार्थ, स्नान पुष्प धूव व पूज्यलोग इनके  
 विना देखे व विना प्रणाम किये धारसे कभी न निकले अर्थात् धर्मा काम गोक्ष  
 चारों मार्गोंके नमस्कार करे व होम करता रहे दीन दुःखियोंको उधार व देहानी  
 साधुओं की उपासना करे जो मनुष्य देवपिंसी, पूजाकनता पितरोंको पिपहदेता  
 अतिथिलोगों का सत्कार करता बह उत्तम लोकोंको जाता है व जो हितप्रिय  
 विचारके साथ थोड़ा बोलता वहभी उत्तम लोकोंको जाता है किष्क घुद्धिमात्र  
 लज्जावान् समावान् वेदशास्त्रनिष्ठ विनयकारी विद्या विनय व वृद्धोंको आ-  
 तता वहभी उत्तमलोकनिवासी होता पौपादि ४ मासों में वर्षने व गर्जने पर  
 अमावास्याष्टम्यादि पर्वों में व अशौच सूतक में वेद पात्र न पड़े जो रिशाने  
 पुरुषोंको समझाके शान्तकरता सबके साथ बन्धुवद वर्तव वर्तना अहङ्कार नहीं  
 करता भयभीतोंको अभयदान देता ऐसे मनुष्य को जो स्वर्गही मिला तो

अतीव तुच्छफल है यर्षा घामादि व्रताने के लिये चतुरी रखनी चाहिये रात्रि व वनमें जानेकेलिये लाठी शरीर भरकी रखाके लिये जूता सदा चलनेमें पहिरे व चलनेहीमें त ऊपर को बहुत निहारै न तिरखा न बहुत दूको केवल ४ हाथ धागेकी भूमि देखताहुआ चलै जिनने दोषके हेतु कहचुकेहैं व कहेगो उनको जो कोई वसयात्मा होके गिटाता है तिमको धर्म, अर्थ काममें कुछभी हानि नहीं होती और जो पापी पुरुषके भी साथ आप-अपायी हो मियता करता उसके हापमें तो मुक्ति धरीही है जो विरागी लोग काग क्रोध लोगमें अपनी इन्द्रिया नहीं लगाने किन्तु-सदाचारही में, लगाते उन्हीं लोगों के अनुभाव से पृथ्वी अड़ीहै तिससे मनुष्य को चाहिये कि जिस सत्यके बोलनेसे लोग प्रसन्न होते हैं मत्पही बोले पर जिस, सत्य से किसी को दुःखहो न बोलै वहां फिर मौनही रहनाठीक सत्पासत्प कुछभी न कहै प्रिय बोलना सदा उचितहै पर जिससे यह जानपरै कि किसी को हित न होगा तो मिय न कहे चाहे अत्यन्त अप्रियहो पर उममें किसीका कल्याण होता हो तो अवश्य कहना चाहिये जिसमें प्राणियोंका उपकार हो मनसा वाचा कर्मणा वही कहना पुनना बोलना करना चाहिये ॥

## तेरहवां अध्याय ॥

दोः - तेरहवें अध्याय मैं कहय श्राद्ध विधि हैत ॥

प्रेतक्रिया अथ तामु आधिकारी श्रुति सुखदेत ॥ १ ॥

श्री और्वमुनि बोले जब किसी के पुत्र हो तो उसे चाहिये जितने पपड़े पहिने हो पहिनेही स्नानकर जातवर्मा व अभ्युदयिक श्राद्ध करे, देवता व पितर दोनों के निमित्त दो २ व चार २ व द्धः २ आदि युगल ब्राह्मणों की पूजाकरे उससमय पुत्रके होने के उत्सवमें विद्य न लगने पावे दधि दधन व धेरकेफल व पाताके पिण्डबनाय उत्तर व पूर्व मुख बैठ देवतीर्थमें व प्रजापति तीर्थ से पिण्डदान करे इस अभ्युदयिक श्राद्धसे नान्दीमुख पितरोंके गण लभ्य होते हैं तिससे विवाह, यज्ञोपवीत नवगृहपवेश नागकरण नृडाकर्म सीमन्त कर्म पुत्रादिके होनेपर इन कार्यों ग नान्दीमुख नाम पिताका गृहस्थ पुत्रे शुद्धिदात्त ग तो पिताके पूजनकी विधि बनाई दे गरीपाल । प्रेतकर्म क्रिया

हानी मित्रता न करे न कभी अकेला गली चले जंगा हो स्नान सोना आच-  
 गन न करे जब पीठपर छुटा कपड़ा पराहो तो न आचमन करे न देवता की  
 पूजा व होम देवपूजन आचमन सन्ध्या तर्पणादि जप तप आदि कर्म एकही  
 वस्त्र पहिने न करे दृष्टों के सग क्षणमात्र भी न छेडे क्योंकि उनके लंगका थोड़ा  
 भी बैठना बड़ा अकार्य्य करता जैसे सज्जनों के निकट का थोड़ा भी बैठना  
 बड़ा कार्य करता अपने से बड़े व छोटे के साथ बिगाड़ न करे क्योंकि विवाह  
 व विवाह समानके सग करना चाहिये खई व नाहक बैर न करे अपनी थोड़ी  
 हानि होतीहो तो सहलेवे पर बैरसे द्रव्य न बधोरे स्नान करने के पीछे न तो  
 भोतीसे देह पोछे न हाथसे यदि होतो अँगौल्लासे पोछे नहीं तो योंही सूखनेदे  
 और चारभी उस समय न फटकारे न आचमन करे पायसे पावन मीजे न किसी  
 अपने बड़ेके आगे पसारो गुरुके आगे वेप व आसन बहुत विचारके साथ करे  
 देवताके स्थात व चौरहा के विना प्रदक्षिणा किये न चला जावे और अमात्र-  
 र्य पदार्थोंकी प्रदक्षिणा कभी न करे चन्द्रमा अग्नि सूर्य वायु व अन्य पूज्योंके  
 भी सामने दिशाभेदाव व थूकना न चाहिये खड़े शदिशा भेराव न करे रूपेखार  
 विष्य मूत्र न नांवे थूकना खींकना व मलोत्सर्ग सोजन के समय कबालि मङ्ग-  
 ल जपकरने के समय महाजनों के आगे व होम करते में न करना चाहिये और  
 स्त्रियोंका न कभी अपमान करे न उनका विष्वास करे न बड़ा दुलारही करे न  
 उनका पुरुषार्थ ही होने देवे मङ्गल पदार्थ मूल पुष्प घृत व पूज्यलोग इनके  
 विना देखे व विना प्रणाम किये घरसे कभी न निकले अर्थ धर्म काम मोक्ष  
 चारों मार्गोंके नमस्कार करे व होम करता रहे दीत दुखियोंको उभारे बड़ेहानी  
 साधुओं की उपासना करे जो मनुष्य देवर्षिकी पूजाकरता पितरोंको पिण्डदेता  
 अनिधिलोगों का सत्कार करता वह उत्तम लोकों को जाता है व जो हितप्रिय  
 विचारके साथ थोड़ा धोखना वहभी उत्तम लोकों को जाता है किष् बुद्धिमान्  
 लज्जावान् क्षमावान् वेदशान्निष्ठ विनयकारी विद्या विनय व बूद्धों को मा-  
 नता वहभी उत्तमलोकनिवासी होता पोषादि ४ मासों में वर्षने व गर्जने पर  
 जमावास्याष्टम्यादि पर्वों में व अशौच स्नान में वेद शान्ति न पड़े जो रिशते  
 पुरुषोंको समझाके शान्तकरता सबके साथ बन्धुवत् बर्ताव बर्तता अहङ्कार नहीं  
 करता भयभीतोंको अभयदान देता ऐसे मनुष्य को जो स्वर्गही मिला तो

अतीव तुच्छफल है वर्षा घामादि, वचाने के लिये चतुरी रखनी चाहिये रात्रि व वनगें जानेकेलिये लाठी शरीर भरकी रखाके लिये जूना सदा चलने में पहिरे व चलनेहीमें न ऊपर को बहुत निहारे न तिरछा न बहुत दूरको केवल ४ हाथ आगेकी सूमि देखनाहुआ चले जिनने दोषके हेतु कहचुकेहैं व कहेंगे उनको जो कोई बरयात्मा होके मिटाता है तिमको धर्म, अर्थ काममें कुछभी हानि नहीं होती और जो पापी पुरुषके भी साथ आप-अपापी हो प्रियता करता उसके हाथमें तो मुक्ति धरीही है जो विरागी लोग क्राग क्रोध लोभमें अपनी इन्द्रिया नहीं लगाते किन्तु सदाचारही गें, लगाते उन्हीं लोगों के अनुभाव से पृथ्वी अड़ीहै निससे गनुष्य को चाहिये कि जिस सत्यके बोलनेसे लोग प्रसन्न होते हैं सत्यही बोले पर, जिस सत्य से किसी को दुःखहो न बोलें वहा फिर गौनही रहनाठीक सत्यासत्य कुछभी न कहै प्रिय बोलना सदा उचितहै पर जिससे यह जानपरै कि किसी को हित न होगा तो प्रिय न कहै चाहे अत्यन्त अप्रियहो पर उममें किसीका कल्याण होता हो तो अवश्य कहना चाहिये जिसमें प्राणियोंका उपकार हो मनसा वाचा कर्मणा वही कहना पुनना बोलना करना चाहिये ॥

## तेरहवां अध्याय ॥

दो, तेरहवें अध्याय महँ कहवँ श्राद्ध विधि हेत ॥

प्रेतक्रिया अरु तामु अधिकारी श्रुति सुरदेव ॥ १ ॥

श्री श्रीर्व्वमुनि बोले जय किसी के पुत्र हो तो उसे चाहिये जिनने फपड़े पहिने हो पहिनेही स्नानकर जानकर्म व अभ्युदयिक श्राद्ध करे देवता व पितर दोनों के निमित्त दो २ व चार २ व छः २ आदि युगल ब्राह्मणों की पूजाकरे उससमय पुत्रके होने के उत्सवमें चिच न लगने पावे दधि अन्न व घेरकेफल व पानाके पियहवनाथ उत्तर व पूर्व मुख बैठ देवतीर्थासे व प्रजापति तीर्था से पियउदान करे इस अभ्युदयिक श्राद्धसे नान्दीमूत्र पितरोंके गण वृत्त होते हैं निससे विवाह, यज्ञोपवीत नवगृहपवेश नामकरण ब्रह्मकर्म भीमन्त कर्म पुत्रादिके होनेपर उन कार्योंमें नान्दीमूत्र नाग पितरोंता गृह्य पूजे पृष्टिश्राद्ध में तो पितरके पूजनर्था विधि बनाई दे गरीपान । प्रेतकर्म क्रिया



की विधि कहते हैं सुनिये जब कोई पुरुष व स्त्री मरे तो अच्छे जलसे स्नान कराय पुष्प मालादि पहिराय ग्रामके बाहर लेजाय दाहकरे जितने मनुष्य उस के सगजावें जितने व वस्त्र उनके पासहों सब लेकर स्नानकरें व उसका नामले ले दक्षिणमुख हो तिलाजलि देवें सन्ध्यासमय गृहको आवें व मृतककुरूपकरें सब के सब नहीं तो जो दाहकरे भूमिमें दृष्ट विद्याके रहे प्रतिदिन प्रेतके निमित्त पिण्डदान करे दिन रात्रि जंबूकमी भोजनकरे मांसाशीभी हो तो मांसग्राहण न करे और प्रतिदिन अपने वशवाले दो एक ब्राह्मणादिकों को भोजन कराता रहे क्योंकि भाई विरादरीके भोजन करने से प्रेतकी बड़ी दृष्टि होती है पहिले तीसरे सतयें व नवयें दिन ग्रामके बाहर जाय स्नान कर आवे व वहाँ जो वस्त्र पहिने हो छोड़ आवे चौथेदिन अस्थि व भस्मसञ्चयन श्राद्धकरे तिसके पीछे दाह करनेवाला सपिण्डवालों को छूसकाहै पर अन्य लोगोंको नहीं फिर उस दिनसे समानोदक जो वशके लोगहैं पशुयज्ञादि करसकते हैं पर चन्दन पुष्पादि भोग विलोप धारण नहीं करसकते एक सङ्ग बैठना उठना खाना पीना सपिण्ड सबलोगों का अस्थिसचयन के ऊपर होसका पर स्त्रियों के संग भोग विलास नहीं यदि दन्त जाग आयेहों ऐसे लड़के का मरण विदेश में वर्ष दिन के पीछे सुने तो स्नानकरके अग्नि स्पर्श करने से शुद्धहोगा यदि वर्ष के मध्यही में सुने तो तीनरात्रि अशौच मानना चाहिये जिसके कुलमें कोई मरे दशदिनतक अन्नकुल जातिवाले उसके घरका अन्न जल न ग्रहणकरें व सत्रियके अशौच हो तो १२ दिनतक लोग वरारें वैश्यको १५ दिन व शूद्रको एकमास अशौच रहताहै ११ वें दिन १, ३, ५, ७, ९ आदि महान्नाहणों को भोजन देवें व प्रेतको पिण्डदान करे इन ब्राह्मणों के भोजन करानेके पीछे ब्राह्मण जल सत्रिय दधियार वैश्य पेना शूद्र लाठी छूके शुद्धहोताहै तिसके पीछे ब्राह्मणादिकों के लिये जो २ धर्म कहें हैं अपने २ वर्षके धर्म के अनुमार करनेलोगें व जवनक जावें करते रहें जिस तिथिकी प्राणी मृतक हुआ हो जवनक वर्षी न हो प्रतिमास उसी तिथिकी एकोद्दिष्ट श्राद्ध कियाकरे इस श्राद्धमें आवाहन अग्नौकरण विश्वेदेव विषामन्त्रण नहीं होता और प्रेतके अर्थ इममें एकही अर्थ १ पवित्रक व एकही पिण्ड देना चाहिये व ब्राह्मणों का भोजन इसमें श्राद्धके प्रथम कराना चाहिये यह एकोद्दिष्ट कर्म जवनक वर्ष व्यतीत न हो प्रतिमास कियाजावे सपिण्डीकरण

भी वर्षके पीछेही करना चाहिये उसका विधान कहते हैं सुनिये यह भी एको-  
द्विष्टही के विधानसे होगा तिल चन्दन जलयुक्त ४ पात्र धरने होंगे उन चारों में  
एक भेतपात्र व ३ पितृपात्र होते भेतके पात्रका जल पितरोंके पात्रमें जब धाद्ध  
विधिसे मिला दियाजावे तबसे सब पितरोंके साथ उम प्राणिका भी श्राद्धहोने  
लगे भेतक्रिया करनेके पुत्र पौत्र प्रपौत्र बन्धुभाई की सन्तति व सपिण्डसन्तति  
इतने अधिकारी हैं इनके अभाव में समानोदक सन्तति अर्थात् मातृपक्ष के  
लोगकरें यदि दोनोंकुलों में कोई न हो तो स्त्री भेतक्रिया करे कदाचित् कहीं  
विदेश में मरा व कोई उमके गोत्रों में वहा नहींहै तो उसके सगजाने करें जि-  
नके कोई भी किसी प्रकार करनेवाला नहीं उनकी क्रिया राजाकरावे पूर्वा म  
ध्यमा उत्तरा क्रिया तीन प्रकारकी हैं सो दाहसे ले जल हथियार पैना लाठीचू-  
ने पथ्यन्न जो क्रिया है वे पूर्वा और वारहमासतक प्रतिमाम एकोद्विष्ट करना  
मध्यमाक्रियाहै और जो सपिण्डीकरणको ले पीछे ही जानीहै वे उत्तमाक्रिया क-  
हातीहै कदाचित् किसी कारण किसीके पिता माताकी क्रिया समानोदकवाले  
व सङ्गी साधियों ने व राजाने करी कराई हो तो पूर्वक्रिया तो होहीचुकी उत्त  
राक्रिया पुत्र पौत्रादि करें पर मध्यमाक्रिया तो क्रिया होजाने पर भी जब कभी  
पुत्रभावें वही करें व उमकी यैतीका वेडाकरें स्त्रियोंका श्राद्धभी जिस गासगं मरी  
दो उसी विधिको प्रतिवर्ष एकोद्विष्ट करना चाहिये पर पार्वणश्राद्ध तो पितृपक्ष  
में नवमीही को कियाजावे इसीको जन्वष्टका श्राद्ध कहते इममें ६ पिण्ड दिये  
जाते हैं प्रथम तीन पितृ पितामह प्रपितामह को फिर माता पितामही प्रपिता-  
मही को तदनन्तर मातामहादिकां को तिमभे अब उत्तमाक्रिया का विधान  
कहते हैं सुनिये ॥

## चौदहवां अध्याय ॥

दा० चौदहवें अध्याय महें नित्य काम्य सय श्राध ॥

दृष्टमयुरितिनपन्तरामय कन्वादिः सुवमाध ॥ १ ॥

और्व्वमुनि राजामगसे बोले जो कोई श्रद्धामहिन श्राद्धकरनाहै वह ब्रह्मा  
इन्द्र रुद्र अग्निर्नाकुमार सूर्य्य अग्नि वसु पवन विन्वेदेव सपिण्ण पशु पक्षी  
मनुष्य सर्प वृश्चिक पितृगण व अन्य सब तीरममृतों को उवसना है लोग

की विधि कहते हैं सुनिये जब कोई पुरुष व स्त्री मरे तो अच्छे जलसे स्नान कराव पुष्प भालादि पहिराय ग्रामके बाहर लेजाय दाहकरे जितने मनुष्य उस के सगजावें जितने व वस्त्र उनके पासहों सब लेकर स्नानकरें व उसका नामले ले दक्षिणमुख हो तिलाजलि देवें मन्थ्यासमय गृहको आवें व मृतककूपकरें सब के सब नहीं तो जो दाहकरे भूमिमें टण विछाके रहे प्रतिदिन प्रेतके निमित्त पियडदान करे दिन रात्रि जबकभी भोजनकरे मासाशीभी हो तो मानभक्षण न करे और प्रतिदिन अपने वशवाले दो एक ब्राह्मणादिकों को भोजन कराता रहे क्योंकि माई विरादरीके भोजन करने से प्रेतकी षड़ी तृप्ति होती है पहिले तीसरे सतयें व नवयें दिन ग्रामके बाहर जाय स्नान करआवे व वहाँ जो वस्त्र पहिने हो छोड़ आवे चौथेदिन अस्थि व भस्मसञ्चयन श्राद्धकरे तिसके पीछे दाह करनेवाला सपियडवालों को छूसकाहै पर अन्य लोगोंको नहीं फिर उस दिनसे समानोदक जो वशके लोगहैं पक्षयज्ञादि करसकेहैं पर चन्दन पुष्पादि भोग विलास धारण नहीं करसके एक सङ्ग बैठना उठना खाना पीना सपियड सबलोगों का अस्थिसचयन के ऊपर होसका पर स्त्रियों के सग भोग विलास नहीं यदि दन्त जाम आयेहों ऐसे लड़के का मरण विदेश में वर्ष दिन के पीछे सुनें तो स्नानकरके अग्नि स्पर्श करने से शुद्धहोगा यदि वर्ष के मध्यही में सुनें तो तीनरात्रि अशौच मानना चाहिये जिसके फुलमें कोई मरे दशदिनतक अन्पकुल जातिवाले उसके घरका अन्न जल न ग्रहणकरे व शत्रियके अशौच हो तो १२ दिनतक लोग वरपे वैश्यको १५ दिन व शूद्रको एकमास अशौच रहताहै ११ वें दिन १,३,५,७,९ आदि महाब्राह्मणों को भोजन देवें व प्रेतको पियडदान करे इन ब्राह्मणों के भोजन करानेके पीछे ब्राह्मण जल सात्रिय धधि यार वैश्य पैना शूद्र लाठी छुके शुद्धहोताहै तिसके पीछे ब्राह्मणादिकों के लिये जो व धर्म कहें हैं अपने २ वर्षके धर्म के अनुमार करनेलगे व जन्मक जावें करते रहें जिस तिथिको प्राणी मृतक हुआ हो जबतक वर्षी न हो प्रतिमास उसी तिथिको एकोदश श्राद्ध कियाकरे इस श्राद्धमें आवाहन अर्गनोकरण विश्वेदेव निषामन्त्रण नहीं होता और प्रेतके अर्थ इसमें एकही अर्घ्य १ पवित्रक व एकही पियडदिना चाहिये व ब्राह्मणों का भोजन इसमें श्राद्धके प्रथम कानना चाहिये यह एकोदश कर्ग जबतक वर्ष व्यतीत न हो प्रतिमास कियाजावे सपिस्तीकाणी

भी वर्षके पीछेही करना चाहिये उसका विधान कहते हैं सुनिये यह भी एको-  
द्विष्टही के विधानसे होगा तिल चन्दन जलयुक्त ४ पात्र धरने होंगे उन चारों में  
एक प्रेतपात्र व ३ पितृपात्र होते प्रेतके पात्रका जल पितरोंके पात्रमें जब श्राद्ध  
विधिसे मिला दिया जावे तबसे सब पितरोंके साथ उभ प्राणीका भी श्राद्धहोने  
लगे प्रेतक्रिया करनेके पुत्र पौत्र प्रपौत्र बन्धुमाई की सन्तति व सपियडसन्तति  
इतने अधिकारी हैं इनके अभाय में समानोदक सन्तति अर्थात् मातृगण के  
लोगकरे यदि दोनोंकुलों में कोई न हो तो स्त्री प्रेतक्रिया करे कदाचित् कहीं  
विदेश में मरा व कोई उसके गोत्रों में वहां नहीं है तो उसके सगवाले करे जि-  
नके कोई भी किसी प्रकार करनेवाला नहीं उनकी क्रिया राजाकराये पृर्वा म-  
ध्यमा उत्तरा क्रिया तीन प्रकारकी हैं सो दाहसे ले जल दृधियार पैना लाठीकू-  
ने पधर्षन्न जो क्रिया है वे पूर्व्या और वारहगासतक प्रतिमाम एकोद्विष्ट करना  
मध्यमाक्रिया है और जो सपियडीकरण को ले पीछे ही जाती है वे उत्तराक्रिया क-  
हाती है कदाचित् किसी कारण किसीके पिता माताकी क्रिया समानोदकवाले  
व सङ्गी साथियों ने व राजाने करी कराई हो तो पूर्व्याक्रिया तो होहीचुकी उत्त-  
राक्रिया पुत्र पौत्रादि करे पर मध्यमाक्रिया तो क्रिया होजाने पर भी जब रुगी  
पुत्रभावै वही करे व उसकी बेटाका बेटाकरे ब्रिगोंका श्राद्धभी जिस गासगें गरी  
हो उसी नियमको प्रतिवर्ष एकोद्विष्ट करना चाहिये पर पार्वणश्राद्ध तो पितृगण  
में नवमीही को क्रिया जावे इसीको अन्वष्टका श्राद्ध कहते इसमें ६ पियड दिये  
जाते हैं प्रथम तीन पितृ पितामह प्रपितामह को फिर माता पितामही प्रपिता-  
मही को तदनन्तर मातामहादिकों को तिमने अब उत्तराक्रिया का विधान  
कहते हैं सुनिये ॥

## चौदहवां अध्याय ॥

३० चौदहवें अध्याय महं नित्य वाग्य मय श्राव ॥

कह्यधसुरिनिनरत्नममय कम्पादिक मुन्त्रमाद्य ॥ १ ॥

ओर्व्वमुनि राजासगरने बोने को कोई अष्टामहिन श्राद्धकरनाहै वह जला  
इन्द्र रुद्र अश्विनीकुमार सूर्य जग्नि वसु पवन विश्वेदेव सृष्टिगण वसु पथी  
गनुष्य सर्ष वृश्चिक पितृगण व अन्य मय जोदममृतों को ठगरना है ओ

प्रतिमाम अमावास्या और अगहनके कृष्णपक्ष की अष्टमीतककी ३ कृष्णाष्टमी इनका अष्टका नामहै इनमें सदा श्राद्ध करना चाहिये श्राद्धके लिये जो वस्तु व ब्राह्मणादि चाहिये बनाय अर्घ्याभाति उनकी परीक्षा करलेनी चाहिये कि श्राद्धयोग्यहै व नहीं व्यतीपातयोग व दक्षिणायन उत्तरायण अयनों के दिन व तुला मेपकी सक्रांति सूर्य चंद्रके ग्रहणकेदिन सब सक्रांतियोंको श्राद्ध करे और जब कभी नक्षत्र व ग्रहकी पीड़ाहो व वृष्टस्वप्न देखाजावे जब नवाग्रह हो इन में इच्छाश्राद्ध करनी चाहिये अमावास्याके दिन जो विशाला व स्वाती नक्षत्रहो व उसमें श्राद्ध कियाजावे तो पितरों को ८ वर्षनक की वृत्ति होती है यदि पुण्य आर्द्रा पुनर्वसुयुक्त अमावास्याको श्राद्ध करे तो १२ वर्षकी पितरोंकी वृत्तिहो और ज्येष्ठा पूर्वभाद्रपदा शतभिषानक्षत्र जिस अमावास्याको हों वद तो देव पितृकार्य करनेवालोंको अतिही दुर्लभ है यद्यपि प्रतिअमावास्याको नित्यश्राद्ध होताहै तथापि इन ६ नक्षत्रों के योगसे अतीव माहात्म्य है अथ और श्राद्ध तिथि कहते हैं जोकि सनत्कुमारजीने पुरूरवा से कही है वैशाख मासकी शुक्लतृतीया व नवमी कार्तिककी नवमी भादोंकी अंबेरे त्रयोदशी माघकी अमावास्या ये युगादि तिथिया हैं इनमें भी देव पितृकार्य अवश्य होने चाहिये सूर्य चन्द्र ग्रहण व अष्टका दोनों अयन इनमें जो मन्त्रपढ़के तिलजल भी कोई पितरोंके नाम जोड़ताहै व श्राद्धकरताहै तो उसके पितर हजारवर्षतक वृत्त रहते हैं कदाचित्त माघकी अमावास्याको शतभिषा नक्षत्र हो तो पितरों का बड़ाही उत्तमकाल है यह बड़ी कठिनता से मिलता और जो उमी अमावास्या को धनिष्ठानक्षत्रहो व अजजल कुछ पितरोंके लिये दियाजावे तो दस हजार वर्षतक पितर वृत्त रहते हैं व यदि उसी तिथि को पूर्णमादादाहो व श्राद्धादि कियेजावे तो एकयुगपर्यन्त पितरोंकी वृत्तिहोती व जो कोई गंगा शतद्र व्यासा सरस्वती नैमिषारण्य गोमती इनमें स्नानकर पितरोंका तर्पण करता गानों उनके सब पाप धोता है पितरलोम यह गाया करते हैं कि माघ नगिचाय आया हमारे पुत्र त्रयोदशी व अमावास्याको श्राद्धकरोगे और हम लोग वृत्त होंगे पर श्राद्ध करने में इतने पदार्थ अवश्य होने चाहिये मनुष्योंका प्रथम चित्त व द्रव्य शुद्धहो उत्तमकाल हो तिथिसहित क्रिया कीजावे जैसा चाहिये पात्रहो परगमकृि देव पितर में हो तो सब वाञ्छित फल मिलते हैं जब

पितरोंके गीत कहते हैं चित्तलगाय सुनिये पितरालाग अपने लोकमें बैठेहुये गनाया करतेहैं कि हमारे कुलमें ऐसा बुद्धिगान् व धन्यपुरुष उत्पन्नहो जो वि-  
त्तशाठ्य को छोड़ हपलोगों को पिण्डदान करे व यदि उसके ऐश्वर्यहो तो  
हमारे निमित्त उत्तम २ ब्राह्मणों को रत्न वस्त्र पृथिवी मवारी उत्तम २ मोगके  
पदार्थ देवे और कदाचित् बहुत विभव न हुआ तो हगारी अमावस्यादि ति-  
थियों में ब्राह्मणों को भोजनही देवे कदाचित् भोजनमात्र को मात्रमी न दे-  
सके तो भक्तियुक्तहो चुटकी २ तिलही देदेवे कदाचित् इतने तिलमी न मिले  
पाचही सात तिल मिलाय दो एक अजुरी जलही हमारे निमित्त भूमिमें छोड़  
दे न कुबहो तो हमारे लिये एक गायको खानेभर को घास भृसाआदिही देवे  
यदि यहभी न हो महादरिद्राधिगजही हो तो हमारे पर्वतों में चुपे वनको चला  
जावे ऊपरको हाथ उठाय वड़े जोरसे यह पढ़े कि ॥

चौ० नहिंघन वित्त न ममकुलभाना । जामों श्राद्ध फगें मनमाना ॥  
केवल करत प्रणाम पिता के । कष्ट न कमी रहत नितजाके ॥ १ ॥  
वृत्त होहिं मम भक्ति निहारी । पितर विनय यह लेहिं हमारी ॥  
दोनों हाथ पवन के मारग । दीन पसारि होहिं गतिपारग ॥ २ ॥  
यह पितृगीता भाव प्रभावा । सहित प्रयोजन तुममनगावा ॥  
जो यह करहिं मनीं तैं मीना । सकल श्राद्धपर है गतिदीना ॥ ३ ॥

## पन्द्रहवां अध्याय ॥

दो० पन्द्रहवें अध्याय महें श्राद्ध सकल करणीय ॥  
कर्त्ता भोक्तृ के नियम कहत विप्र रमणीय ॥ १ ॥

और्वमुनि बोले कि भव पार्वणश्राद्ध विधान कहेंगे प्रथम उसमें खानेवाले  
ब्राह्मणों के लक्षण कहते हैं वे त्रिणाचिकेन त्रिपधु त्रिसुपर्ण पद्मगवित् ये ४  
प्रकारके होनेचाहिये द्वितीय काठक के तीन अनुवाकों को त्रिणाचिकेन कहते  
उनके पदनेवालों को त्रिणाचिकेन गधुशानात् ३ श्रुत्वा पदनेवालों को त्रि  
गधु मयमेतुगाम् इत्यादि ऋचों के पदनेवाला को त्रिसुपर्ण ६ अगम्युत्त वेद के  
जाननेवाले को पद्मगवित् प्रभोजन कि अर्दानकहो श्राद्धमें वेदराठीही ब्राह्मण  
को खिलाना चाहिये आगे गिनाने भीहें वेदार्थ विचानेमाना वेदार्थ के अ-

नुसार करनेवाले योगी सामवेदपाठी ऋत्विक् भानजा नाती दमाद शत्रशुभ्र  
 मामा तपस्वी पचाग्नि तापनेवाला शिष्य समधीका लहका व जो अपने  
 पिता माताकी भक्ति करताहो सामवेदाध्यायी नक्षत्र जितने हूँ व तो श्राद्ध में  
 भोजन कराने के लिये मुख्यहैं तिनके पीछे ऋत्विजादि सबको भोजन करावे  
 और मित्रदेही खराब नहवाला नपुमक करिया दांतवाला कन्याके संग योग  
 करनेवाला अग्निहोत्र व वेदाध्ययन करसका पर जो जान कर न करताहो यज्ञो-  
 पधि वेचनेहारा महापापी चौर चुगुल पुरोहित शूद्र को वेद पढ़ानेवाला व उस  
 से पढ़नेवाला अन्यकी स्त्रीके संग विहार करनेवाला माता पिताका त्यागी  
 शूद्रीपुत्रपालक शूद्रीका पति शिवालय ठाकुरद्वारा भैरवादि गठमें पूजा करने  
 वाला इनको कभी श्राद्धमें भोजन न करावे प्रथम दिन जिन अन्धे २ ब्राह्म-  
 णोंको निमंत्रण देनाहै उनसे कहभीदे कि ऐसे आचारों से रहना हीगा श्राद्ध  
 वाले ब्राह्मण व यजमान क्रोध मैथुन भास्टोना मार्गबलनादि दोनो उस दिन  
 न करें श्राद्धभोजन कर व श्राद्धकरके दूसरे दिनभी जो मैथुन करता नरकगामी  
 होता व अपने पितरोंको काम के कुडमें गिराताहै तिससे जहानकहो विना नि-  
 मन्त्रण दिये भी जिनके स्त्री न हो व सत्कर्म करतेहों उन्हीं ब्राह्मणों को भोजन  
 देवे ब्राह्मणलोग जत्र आवें प्रेमपूर्वक उनके पादप्रक्षालनादि कराय आसन  
 पर बैठवै पितरों के कार्य में १ । ३ । ५ । ७ आदि विषम ब्राह्मण बिलाने  
 चाहिये व देवकार्य में २ । ४ । ६ । ८ आदि सम व देवता पितर दोनों के  
 कार्यों में अच्छा एरुही एरु बिलाने नाना का श्राद्ध विश्वेदेवपूर्वक अलग  
 भी करना चाहिये देवकार्यमें पूर्वमुख पितृकार्यमें उत्तरमुख भोजन करावे कोई २  
 महर्षि कहते हैं कि पित्रादि श्राद्ध से अलग पाक बनाय गातामहादिकों  
 का श्राद्धकरे कोई एरुही पाकमें कहते हैं प्रथम बैठनेके लिये कुण्डलके वि-  
 श्वेदेवों का आवाहन करे जब वे आयजावें तो उनकी आज्ञामें सबकार्य काने  
 लगे विश्वेदेवों की पूजा यत्र जलमें करे व पुष्पगाला चन्दन धूप दीप ताम्र-  
 लादि भी यथाविधि पितरों का सब काज अपसन्धही कियाजाता है सो देवों  
 की आज्ञा से मोटर पर पितरोंका आवाहन करे जैसे मंत्र आवाहन के वंदों में  
 लिखेहै उनसे पितरोंका आवाहन करे व तिल जलमें मंत्रलिपिकें गंध पुष्प  
 धूपादि करे उदाचित् उन समय कोई गनीया चलेया अतिथि आजाने तो

ब्राह्मणों के साथ उसकी भी पूजा करें क्योंकि योगीलोग नरोंके उपकारके लिये विविधभांति के रूपोंसे पृथिवी में घूमा करते हैं तिममें श्राद्धमगय के अनिधि की पूजा अवश्यहो क्योंकि उसके निराग जाने मे श्राद्धहन होजाना फिर दिजोंकी आज्ञाने एक दोनामें तीन आहुतें सीरकीदे १ अग्नयेऋष्य वाहनाय स्वाहा इससे २ सोमायपितृ गनये इससे ३ वैश्वनाय स्वाहा इसमे वना अन्न फिर उसी पात्रमें डालदे फिर घृतादि मिनाय कुछ अन्न पात्रोंमें छोड अमृत ज्जुपध्वम् यह पढ़े प्रीतिपूर्वक जब ब्राह्मण भोजन करहों तो पितरोंका आवाहन करें और कहै कि हमारे पिता पितामह प्रपितामह ब्राह्मणों के देहोंमें बैठेहुये इस भोजनमे तप्तहों व पिता पितामहादि हमारे पिण्डादि देनेमे तप्तहों व जो कुछ भक्तिपूर्वक हमने यहा पहुचाया है उससे पिता पितामहादि अपनी वृत्तहों और मातामह प्रमातामह वृद्धप्रमातामह भी तप्तहों सब राक्षस नाशको प्राप्तहा जब सब ब्राह्मण वनाय तप्त होजायँ तो उनके मुखादि धोनेके लिये शुद्धजल देये फिर उनकी आज्ञाले अन्नसे पिण्डदान करै सब पितृ पितामह प्रपितामह मातामहादिकों को अन्न जलादि जो जो देनाहै पितृनीर्धही से देना चाहिये कुछ विद्वान्के अपने पिता को पहिले पिंडदे फिर पितामहादिकों को इसभांति सब पिंड क्रियाकर पित्रादित्रय मातामहादित्रयको दक्षिणादेवे पितरोंको दक्षिणादे विश्वेदेव प्रसन्नहों यह उनके आगेपढ़े ब्राह्मणलोग जब कहदेवै कि हम प्रसन्नहूये तब पहिले पितरोंका विसर्जनकरै फिर विश्वेदेवा का अन्य सब श्राद्धके रूपों में प्रथम विश्वेदेवोंकी पूजाहोती पर विसर्जन पितरोंकेही पीछे होना ब्राह्मणों के प्रणामकरै और ठारेतक पठेके उनकी आज्ञालेके लोटे किं वैश्वदेव गिर्य क्रियाकरै पश्चात् सब नौकर चाकर भाई बधुओं के सम भोजनकरै इसभांति पंडितलोग पिता पितामहादि मातामहादिकों का श्राद्ध करै कि ये पितर मनुष्य हों सबरुग पूरकरै श्राद्धम कन्याका पुत्र अर्द्धवर्षी व तिन ये तीन बहून प वित्रहैं और घोड़ी बहून चांदीका दान भी अत्यावश्यक है विश्वेदेवा के लिये कुछ सुवर्ण भी चाहिये कुशोंका होना भी अत्यावश्यक है श्राद्ध करैया व न बैया दोनोंको चाहिये कि उमदिन कोषगती चलना चल्पाती किनी कार्य में न करै श्राद्ध करने मे विश्वेदेव पितृ पितामहादि व मातामहादि व वृत्त सब तप्त होतेहै पितरलोग योगाध्याय होनेह अर्थात् योगी होते इसने श्राद्धम योगा



म्यामी व वैदपायी अवश्य न्योतेजावें क्योंकि सहस्र ब्राह्मणों के आगे एक योगाम्यासी ब्राह्मण खड़ाहो तो सब श्राद्ध भोजन करनेवालों व यजमान को तार देता है ॥

## सौरहवां अध्याय ॥

दो० सौरहवें अध्याय महँ श्राद्ध अयोग्य सुयोग्य ॥

सकल परतु धरणन करत सुनिश्चित होय निरोग्य ॥ १ ॥

और्व्वमुनि बोले हविष्य मत्स्य शशक पक्षी वन्य मूरु छाग हिरण रौरु गवय उरभ्र इनके मास से एकमास अधिक पितर वृषहोते हैं वाष्ठीणस क्रै गांससे तो नित्य वृषहोते हैं परंतु कलियुग को छोड़ यह अन्य युगों की व्यवस्था माससे श्राद्ध करनेकी है क्योंकि इस युग में अश्वमेध गोमेध सन्पास मास से पिण्ड देना देवसे पुत्रोत्पादन का निषेध है वस अन्ययुगों में ऐसा होताथा गैंडाका मास बहुतही पवित्र व उत्सवगय में जो शोक होतेहों जो पुरुष गयाभिं जाय श्राद्धकरता उसका जन्म सुफल होजाता व उसके पितर वृष निनी पसादी सात्रा ये भी श्राद्धकर्म में अतिपवित्रहैं यव कांकुनि मूंग गेहूँ धान निल सरसों ये भी श्राद्ध योग्यहैं जिस अन्नमे नवान्न श्राद्ध न हुईहो व काले उर्द ज्यटऊसावा लोकी गाजर प्याज सलजम लहसुन गंधिलाशाक क्यरमुआ अमलोनादि लोनखर पदार्थ ऊपर में उत्पन्न अन्नादि सर्व्वखोंका गोद प्रत्यक्षमें लोन जो विहितभी हो पर उसका नामही निकाहो रात्रिमें लाई वस्तु भ्रंज फूपआदि अपवित्र स्थानमें उत्पन्न जो बहुतही घोड़ीवस्तु उत्पन्न हुईहो जिस में गौभी न खायसकै फेना व दुर्गाभिसहित जल एकतुर घोड़ी गढहीआदि ऊटिनी गेहूँ चकरी हिरणी गेंस इनका दूध नपुंसक चाडाल पासंडी तिरों कुप्पादि महारोगी मुरगा नंगावानर ग्राममूरु रजस्वला सूतक अशौच व मुर्दा देनेमें भन्न पापकर भोजन करनेवाला इनलोगों के देवनेद्वये धार रुमियुक्त काजीआदि से मिलाहुआ पदार्थ और वासीअन्न इन पदार्थोंसे श्राद्ध न करना चाहिये क्योंकि देवता पितर कोई ऐसी वस्तु नहीं ग्रहण करते जो अन्नादि श्रद्धासहित उत्तम उत्तम दिये जाते हैं पितर उनसे वृष होते हैं देखो कन्याप्राणके उपरानमें राजा इक्ष्वाकु के पितर गाया करते थे कि भला हगार कुन्ने

ऐसे सन्मार्गशीली पुरुष उत्पन्नहोंगे जो गयामें जाय हमलोगोंको पिण्डदान करेंगे व भादोंमें मघायुक्त प्रयोदशी को श्राद्धकरेंगे व ८ वर्षकी स्त्रीकेसग विवाह करेंगे वृषोत्सर्ग करेंगे व अश्वमेध यज्ञ विविध दक्षिणामहित करेंगे ॥

## सत्रहवां अध्याय ॥

दो० सत्तरहें अध्याय महँ देव स्तुति सों विष्णु ॥

उपजायो छलमोह जेहि असुरनग्न असहिष्णु ॥ १ ॥

श्रीपराशरमुनि बोले हे मैत्रेय ! आर्ष्वमुनि ने महात्मा राजा सगर से इस भांति सदाचार कहा वही हमने आपसे कहा जो इसके प्रतिकूल चलता है उसका कल्याण नहीं होता इतनी कथा सुन मैत्रेयजी बोले कि नपुंसकादिकों के छुयेहुये व देखेहुये पदार्थों से श्राद्ध न करना चाहिये यह तो हमने जाना पर यह नहींजाना कि नगे कौन लोग बाजते हैं जो उनके देखने से कर्मनगा होजाताहै उन नगोंकी कथा सुनाइये कैसीहै पराशरमुनि बोले ऋगू यजु साग ये तीनोंवेद ब्राह्मणआदि वर्णोंकी पहिरावरि है इन्हींके अनुसार इनको चलना चाहिये जो कोई इन वेदोंको छोड़ अन्यमार्ग में चलता वही महापापी नगा कहाता है जाहेसे चारों वर्णोंके वस्त्र तीनों वेदही है इससे जो इन वेदोंको छोड़ता है वह नगाही है इसमें कुछभी सन्देह नहींहै औरभी सुनिये यही बात हगारे पितामह वशिष्ठजीने भी भीष्मपितामह से नग्न सम्बन्धिनीवार्त्ता फही थी और उस समय हमभी वहाये जिस २ भांति उन्होंने उनसे कहाहै सुनाते है सुनिये आगेकी बातहै कि देवता व दैत्योंसे देवताओं के १०० वर्षनक युद्ध हुआ उसमें द्वादआदि दैत्योंसे देवतालोग हारे तब क्षीरसागर के उत्तर कूलपे जाय विष्णुजीकी आराधना के लिये इस स्तोत्रसे स्तुति करनेलगे कि लोकोंके स्वामी श्रीविष्णुकी आराधना के लिये जो वाणी हमलोग कहेंगे तिसमें श्री विष्णु प्रसन्नहों जिससे सबप्राणी उत्पन्नहोते हैं व जिसमें फिर लीन होनेहें उम ईश्वरकी स्तुति कौन करसकहोतिम आपकी उक्तियांको तो यथार्थ नहीं जानते पर शत्रुओंमें पीड़ित हमलोग अपने कल्याणके लिये व वैरियों के नाशके लिये तुम्हारी स्तुति करते हैं पृथिवी जल अग्नि वायु वाफाग अन्तःकण प्रकृतिपुरुष सब तुम्हींहो यह ब्रह्मामे ले सृष्टीके अन्ततक चिन्ता है मा भी

तुम्हींहो जिस अवतार के नाभिसे फगल जागता जिमसे ब्रह्माहोते उस मूर्तिके नमस्कार है इन्द्र सूर्य रुद्र वसु अश्विनीकुमार प्रवत चन्द्रगा इन आदिके भेदसे हमसब जिसका स्वरूप है उसके प्रणामहैं दम्भमय सम्बोधनरहित सदनशीलता जितेन्द्रियता हीन जो दैत्यस्वरूपी भगवान् है उसके दण्डवत् जिस पर-गेश्वरकी नाड़िया अतीवज्ञान पहुँचानेवाली नहीं व शब्दादि का लोभ करती हैं उस यक्षात्मा ईश्वरके प्रणाम है क्रूरतासहित मायायुक्त जो निर्शाचरी-स्वरूपहैं तिसके भी देवताओंके स्वभाववाला जो स्वरूप धर्मनामकहै तिसके भी ॥

चौ० हर्ष प्राय ससर्ग विहीना । सिद्धरूप नति करत प्रवीना ॥ १ ॥

क्रूर सहनशीलता विहीना । उपभोगता सहन लवलीना ॥ २ ॥

जिहायुगल जासु मुखमार्हीं । सर्वात्मा त्यहि धिनय कराहीं ॥

योधनिकाय अदोष अपापा । नमो नगो ऋषिरूप अलापा ॥ २ ॥

निर्भय कल्प समय राव प्राणी । जो मक्षत नहिँ तनिकगलार्नी ॥

कालरूप सो श्रीभगवाना । लेय प्रणाम मोर गत माना ॥ ३ ॥

देवादिक सब नाशि सुनावत । कल्प समय अपने मनगाजत ॥

रुद्ररूप सो अनिधिकराला । हरै सकल रिपुगणकी माला ॥ ४ ॥

अष्टादिश भेद पशु घृन्दा । जासु भेद वर्णित गत विदा ॥

सो उन्मार्गगामि भगवाना । नोहहु दैत्य करहु कल्याना ॥ ५ ॥

जो प्रधान पुरुष भगवाना । कौनिउँ भाति न आनतमाना ॥

सो कारण कारण जगदीशा । लेहु प्रणाम नवाग्रहें दीशा ॥ ६ ॥

शुक्ल वीर्य घन जादि विहीना । अगम अगोचर शुद्ध प्रथीना ॥

लखतजाहि ऋषिगणकी माला । कृपा करहु हरि परमकृपाला ॥ ७ ॥

जो मम देह जो आन दारोरा । सकलज तुमहें यगत सुधीरा ॥

जाधिन तनिक नहीं रातारा । ब्रह्मरूप सो लायहु पारा ॥ ८ ॥

श्रीपराशरामुनि बोले कि इम स्तुतिके पीछे शक चक्र गदा पद्मादि धारण किये श्रीहृषिको देवगण देवके बोले हे देव ! प्रसन्नहृजिये व इन दैत्योंसे रक्षा कीजिये हम आपके शरणागत हैं आदि दैत्योंने त्रैलोक्य के सबभाग हरि लिये ब्रह्माज्ञाकी भी आज्ञा नहीं मानने यद्यपि हम आपही के अंगसे हैं और आपहीके हैं तथापि मायाके भेदसे आपनाको भिन्न मनमते हैं हमारे शत्रु

अपने वर्णाश्रम के धर्मों में निरत वेदमार्गानुसार चलनेवाले व तपस्यायुक्त होनेके कारण ऐसे नहीं हैं जो हमलोगों से हारें इसलिए वह उपाय बनाइये जिससे हम उन असुरों से जीने पराशरमुनि बोले श्रीमगवान् से देवोंने जब ऐसाकहा तो उन्होंने मायामोह अपने शरीर से उत्पन्नकर देवोंको दे कहा कि यह मायामोह सब दैत्योंको मोहित करेगा तब वे वेदमार्ग से बाहर होजावेंगे व तुमलोग उन्हें मारसकोगे सप्तर में जितने परिपन्थी हैं हम उन सबको वध करते हैं तिससे जाव तुम्हारे उपकार के लिये मायामोह आगे आगे जाताहै निर्भय चले जावो तुम्हीं जीतोगे यह सुन देवगण श्रीहरि के प्रणाम कर जहा दैत्यगण थे गये उन्हीं के सग मायामोह भी ॥

## अठारहवां अध्याय ॥

दो० अह्वरहें अध्यायमहें मोहित दैत्य विनाश ॥

नग्न दोष लगी शतघनु कथा कहनगतप्राश ॥ १ ॥

श्रीपराशरमुनि बोले कि देवताओं के सग मायामोह ने नर्मदा के किनारे तपस्या करतेहुये दैत्योंको देखा व नगे मूढ़ मुढ़ाये कुशकी पत्नी पहिने दैत्यों से कहा हे दैत्यो ! इस तपस्या से इस लोकमें कुछफल चाहतेहो व परलोक में वताओ तो क्यों तपकरतेहो दैत्योंने कहा हग परलोक के लिये तपकरते हैं कहिये इस पूंछने से आपका क्या प्रयोजन है मायामोह बोले यदि मुक्तिकी इच्छाहो तो हमारी बातें मानो इनसे ऐसा धर्म पासोगे जिसमे मुक्तिका फाटक खुलजावेगा जब चाहना सीधे चलेजाना त्रिमुक्तिने योग्य यही धर्म है इससे बड़ा और कोई नहीं इससे चाहे यहीं त्रिकेहुये स्वर्गसुख भोगना चाहे त्रिमुक्ति हीको प्राप्तहोना इसभाति बहुतसी बातें मायामोहने युक्तिपूर्वक कहीं जिनमे दैत्यों की वेदविहित धर्म से निष्ठा जातीरही अधर्म में लगी यज्ञतक कि आर्हतधर्म व बौद्धधर्म वताये नव उमीगर आन्दृ हुये उनसे भोगने सीखा फिर उनमे दूसरोंने इसी भांति धरे २ वेदत्रयी धर्म बिलकुल छुटगया जो कोई इस मुहुभा मतपर व बौद्धादि मतपर नहीं जायेये उनके पाम माया मोह एकदिन लालकपड़े पहिने जामेचढ़ाये जाय आमिगधुर बचन बोलि हे- दैत्यो ! यदिस्वर्ग की वा मोक्षकी इच्छाहो तो जिनमें पगु मारजाने हैं जेसे

यज्ञ न करो इनसे स्वर्ग न मुक्तिमुद्धे भी नहीं वरन, नरकही होता, यह हमने  
 बड़े बड़े पण्डितों से सुना है तुम जबल विज्ञानही को धारण करो क्योंकि विना  
 ज्ञान मुक्ति नहीं होती और यह मसार अनाधार है न कोई इसके करनेवाला न  
 पालने न नाशनेवाला है वमपही योगाचारोंका मनमानों इससे सबकुछ पा-  
 वोगे इसभानि वाग्वार नानाप्रकार से परमेश्वर गायत्रा मोहने देत्यों का जो  
 वैदिक धर्माथा उमेशुद्धादिया उन लोगोंने श्राद्ध में देवगाल वहीगत सील  
 लिया वेद व स्मृतियों के मतको बिलकुल छोड़ दिया जो इससे भी, वने उनको  
 अन्य पालडियों के मत बनाये इसभानि थोड़ेही समय में सब देत्योंने वेदकी  
 कथाही छोड़ी तिसके अनुराग धर्मा कौनकरे कोई कोई तो वेदोंकी निन्दा करने  
 लगे कोई २ देवताओं की कोई यज्ञ कर्मोंकी कोई ब्राह्मणोंकी और भाई । यह  
 जान युक्तिमाध्य नहीं है कि यज्ञमें पशु मारने से धर्महोगा व खीर अग्नि में  
 जारने से फलहोगा यहजान तो लड़कों कीभी है जो अनेक यज्ञोंमें देव पदवी  
 को पाय इन्द्र शमी पलाशादि काष्ठ हैं। खाने हैं तो क्यावात पशुबाना तो उ-  
 नको सहजमी बात है क्योंकि यह तो वृक्षोंके कोमल फोगल पत्र खाता है जो  
 काष्ठकी अपेक्षा बहुतही नम्र होने जो कहो कि यज्ञों जो पशु मारा जाता है उमे  
 स्वर्गप्राप्त मिलता है तो स्वर्ग जानेके लिये यज्ञगान अपने पिताही को  
 क्यों नहीं यज्ञपशु बनाय मारता जो श्राद्धादि में अन्य के भोजन करने से  
 अन्य पितरोंकी वृष्टि सत्य मत्प होती तो लोग विदेश को सीधा पानी आदि  
 काहेकी लादलेजाते धर्म उनके पुत्र श्राद्धकरके किसीको भोजन न करदेने कि  
 उनको विदेश में पहुंचता रहता है लोगो । गेव वेद वाक्यों की छाड़ी देवो  
 कोई युक्तिकी चार्ता उमर्ष नहीं हमारीही वानमानो फुल्लभेष्ट वचन आकाश  
 से कभी नहीं गिरते केवल सगुक्ति वचनोंकोही श्रेष्ठ वचन कहे है फिर  
 हमारे तो सब सगुक्तिकही हैं क्योंकि गानते इसप्रकार गायामोह ने नानाभानि  
 उलटी सीधी झूठीमाँची बातें कह उन देत्योंको उलट पलट देखा जब उनकी वेद  
 वाक्य से बनाय अरुविहोगई तब छाड़ा इसभानि जब राय देत्य वेदवाह्य मार्ग  
 चलने से धर्माहान व निर्व्वल होगये तब देवताओंने लड़ाईका सामान  
 इन्द्रावर उनके ऊपर चढाईकी व कि देवामूर मयाय हुआ जिसमें देत्योंकी  
 पराजय और देवोंकी विजय हुई तिसमें है मंत्रेय । जो श्लोक वेदानुमा नहीं

चलते वहाँ नग्न कहाते हैं क्योंकि वेदही जनों के वस्त्र हैं जब वेदानुसार कर्म न करेगा तो मद्धा तो होहीगा ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ सन्यासी यही ४ आश्रम हैं पांचवा नहीं जो गृहस्थ अन्तःस्थाओं भी गृहस्थाश्रम छोड़ वानप्रस्थ वा सन्यासी नहीं होजाता वह भी पापी नग्नही है जो सन्या पूजा तर्पणादि नित्य कर्म हैं उनके न करने से पुरुष पतित होजाता है यदि किसी आपत्ति के कारण नित्यकर्म नहीं छोड़ा गनमाना योही नहीं किया तो विना प्रायश्चित्त किये हुये नहीं शुद्ध होमक्का जो पुरुष वर्षभर नित्यनेमित्तिककार्य न करे उसके देखने से जष सूर्य के दर्शन करें तो शुद्ध हो जो कभी उमका स्पर्श होजावे तो सबस्र स्नान करनेसे शुद्धि होगी और उम नित्य क्रियाहीन पापी की तो कभी शुद्धि ही नहीं होसकी यह शुद्धि तो केवल उसके देखने बूनेवालोंकी है देवता पितर ऋषि वा अन्यप्राणी जिमके घरमे ऊर्ध्वश्रवामले विनापूजे खाये पिये चलेजाते हैं तिममे अधिक पापी न हों जिमका घर वा देह देवादि निश्चयमे दत्तहोजावे चाहिये कि उसक घरमें वा उसकेमद्ग न उठें बैठे क्योंकि उमके साथ बोलने व बनलाने हँसने उठने बैठने से उमकी तुल्यता वर्षपर्यन्त उसकी भी होजाती है और जो उसके गृहमें भोजन करता वा उस चौकापर खाता वा उसकेसङ्ग गयनकरता वह तो तुरन्तही उम पापीके समान होजाता है जो द्वेषता पितर अन्य प्राणी आतिथि इनकी विना पूजा किये भोजन करता वह तो पापही माना कि उमके उद्धारका कौनसा उपाय है ब्राह्मण क्षत्रियादि वर्ण अपने २ धर्म मे यदि विमुक्त हो नीचकर्म करने लगें तो वेगी नश्व जहाँ चारोंवर्ण के लाग एकस्थान में बड़ी गचापत्री के साथ बैठते हैं वहाँ जो जैसा अधिक वर्णराला है उनकी अधिकदोष होता जो लोग देवताऋषि पितर अनिथिआदि के विना पूजेहुये भोजन करते उनके साथ नरकमें पड़ेहुये लोगभी बनलाना नहीं चाहते तिससे वेदत्यागी इनमेंगों के साथ उठना बैठना बोलना बनलाना पंडित को न करना चाहिये चाहे बड़ी भी श्रद्धामे श्रद्धादि कर्म करें पर जहाँ इनमेंगोंके देवा देवादि प्रमा नहीं होते धर्म अपपत्र हो चनेचाते हैं गुनते हैं कि नामे पुरु ननःपु नाम गत्ता थे उनकी स्त्रीना गेवरा नाम था जाहि मर गुम धर्मों में तदर्थी बर्दा यन्त्रिणा सत्य गौर दयादि गुणसम्पन्न नय दिनयानी भी दिन राजान ठपनी स्त्री के

साथ देवदेव जनार्दन विष्णुकी आराधनाकी उसमें होम जप दान उपवास पूजा-  
दि करके दिन बिनाये वे एक दिन स्त्री पुरुष दोनों भंगाजी में स्नान कर निकले  
उसदिन कार्तिककी पूर्णमासीका व्रतथा निकलनेही एक पाखंडी देख पड़ा  
वह कभी राजाका गित्रया इसकारण उसके गौरव में राजा उससे वतलाने लगे  
पर रानी नहीं बोली वरने उसने सूर्य के प्रणाम किया व कहा कि महाराज में  
आज व्रतमें हू यह कह दोनों अपने स्थानपै आये और श्रीविष्णुकी पूजा करने  
लगे कुछ दिन के पीछे राजामरे रानी लेकर सती होगई परन्तु उसदिन उस  
पाखण्डी से वतलाने के कारण राजा कुकुर हुये-और रानी व्रत के प्रभावसे  
काशी के राजाकी कन्याहुई जैसे सुन्दर गुण रूपादि राजकुमारियों में चाहिये  
उसमें हुये व्रतके प्रभावसे राजकुमारी को पूर्वजन्मकी कथा भी स्मरणथी राजा  
ने चाहा कि कहीं कन्याका विवाह करें पर कन्याके न मानने के कारण नहीं  
किया राजकुमारी ने ध्यान धरके देखा तो विदित हुआ कि मेरा पति उस पा-  
खण्डी के साथ वतलाने के कारण वैदिशपुर में कुचा हुआ है वम वहां जाय  
कुरुर रूप अपने पतिको देखा और वहां रहिके अति भीड़ी नीकी वस्तु खिलाने  
पिलाने लगी राजा कुत्तों की भांति पूछ्यादि हिलाय अपनी पालिका जान  
प्रिय करनेलगे तब राजकुमारी बहुत लज्जित हो व शोचकर बोली महाराज  
उस जन्मका स्मरण आपको सुनागया अब उस पाखण्डी के संग व्रत में घेतले  
से इस योनिको प्राप्तहुये हौ इस भांति राजकुमारी के वचन सुनकार्तिक व्रत  
प्रभाव से पुन्य जाति का स्मरण आया तब अतीव डली होगये और उस  
प्रामत्ते भाग मरुदेश में जाय विनाजल शीघ्रही नृवरु होगये फिर फोलाहल  
पर्वत पर सियार हुये दूमेरेही वर्षमें वहागी राजकुमारी जानके पट्टची और पति  
से बोली कि जो हमने आपने पूजुरकी योनि में उस पाखण्डीके संसर्ग का क्षण  
कहा था स्मरण है व नहीं स्मरण कीजिये फिर राजाको स्मरण होआया इस-  
लिये निराहार रह वसी व्रतमें शरीर छोड़दिया फिर भेदिया हुये राजमुवा ने  
जाय फिर समझाया कि जाय गतजन्मराजा है इस पाखण्डी के कारण कुचा  
सियारहोके अब भेदिया हुयेहो इस स्मरण के फलाने से उस योनिको छोड़  
गीपहुये नहा गी समझाया तब उसे छोड़ फौआ हुये वहा जाय बहुतगैय रा-  
गभाया कि दाय सब राजाजोग तुमको वसि देने में अब तुम पतिपुरु की आ

हुये क्या कहें यह सुन काक योनि छोड़ मुँहलाहूये वहागी जात्र सगभाया यह  
जन्म जनकपुर में हुआ उन्हीं दिनोंमें जनकपुर के राजाने अश्वमेध यज्ञ किया  
उस राजकुमारी ने वदा पहूध उमी यज्ञान्त स्नान जलमें उस मुँहलाको स्नान  
कराया व सब योनियोंकी सुधि दिलाई उम योनिको भी छोड़ा ईश्वरानुग्रहसे  
जनकपुर के महाराज के पुत्रहुये तब राजकुमारी ने आस कुछ दिनोंके पीछे  
अपने पितासे कहा हमारे विवाह के लिये अब यत्र भीजिये काशिंगजने स्व-  
यवर किया उसमें जनकपुर के राजकुमार भी जाये वम उन्हीं के गले में राज-  
कुमारी ने जयमाला डारी इसलिये फिर अपने पतिको प्राप्तहुई जब राजा ज-  
नकपुरे तो ये राजकुमार राजाहुये व ये रानी जनकपुर में नानाप्रकार के भोग  
विलास किये बहुत यज्ञ किये करायें दानभी बहुतदिये पुत्रभी कईहुये शत्रुओं  
को समर में पराजित भी किया न्याय पूर्वक राज्यभी किया प्रजाओंका पाल  
नभी न्यायही से अन्तमें सम्राज्यभूमि में वीरताके साथ प्राणछोड़े राजपत्नी पूर्व  
हीकी भांति राजाको लेकर सनीहुई राजा रानी दोनों इन्द्रलोक को जात्र वड़े  
उत्तम लोकको गये जहा पुरयक्षीण नहीं होती पराशर मुनि बोले हे मैत्रेय ।  
यह पाखण्डी के माथ व्रत में बोलनेका दोष व अश्वमेध यज्ञके अवमृत्यु स्नान  
का फलकहा निससे पाखण्डियों का देखना व उनसे बतलाना सदा छोड़ना  
चाहिये यज्ञ दान व्रत श्राद्धादि क्रिया कालमें तो विषयता से बचाना चाहिये  
नहीं तो यही दशाहोनी है जिमके घरमें मामपर्यन्त क्रिया दानिदो तिमके  
देखने पर सूर्यके दर्शन अशक्य करने चाहिये फिर जो वेदानुसार कुलभी क-  
र्म नहीं करते केवल संतमेत का पराया अज्ञही ग्याते व वेद विरोधी हैं उनको  
तो दूरसे बगाना चाहिये जो अपने घरमें भ्रष्टो जो निपिड कर्म करताहो जो  
गुप्तपापीहो जो सागने गियबोले पीछे श्रमिय करे वेदानामें जो नानाभानि की  
कुनोदनाभामे सन्देहकरे तथा जो गिर्याही बाल बोन अपना प्रयोजन मिड  
करताहो इन इष्टमें सुधे व्रत भी न बोनने चाहिये पूजाका योग्य पापियों  
का भेल गिलाप व उनके भागका वेदना दृष्टी में त्याज्य है निसमें इन दुगुण-  
रियोंका छोड़नाही टीकहै ॥

श्री० इत्यने नग्न रहे तुमगर्भा देवता ध्यात्र दिनाशक्त शर्मा ॥

पित्र सग्नयग सा मपवर्मा । टीनन दिनके निये न सग्न ॥ १ ॥



इन पाखण्डिन पापिन मारिं । कनहु न थोलहु मुनि मनमार्ही ॥  
 दिनहुत पुष्य जात इन सगा । सम्भाषण सौं जासौं नगा ॥ २ ॥  
 जटाघारि शिर मुण्डन कारी । सिष्या भोजन हित तनु धारी ॥  
 शौचहीन पितृ पिण्डजलादी । जान वेत सब चड़े भषादी ॥ ३ ॥  
 इन सम्भाषणही सौं लोगा । नरक धास पावत सहिसोगा ॥  
 यासौं इन्हें दूर सौं त्यागहु । मुनि ममवचन बहुत अनुरागहु ॥ ४ ॥  
 इति श्रीमद्विष्णुपुराणेतृतीयाशेऽष्टादशोऽध्याय ॥ १८ ॥

## अथ विष्णुपुराणस्य ॥

चतुर्थोऽश ४ ॥

### पहिला अध्याय ॥

दो० यहि चौथे शुभ अश में चौबिस हैं अध्याय ॥  
 कथामनुनकी है सकल नाना भांति रोहाय ॥ १ ॥  
 तह पहिले अध्याय सह बल रेवती विवाह ॥  
 मनु प्रसंग सौं कहत हैं सुनतै परग उछाह ॥ २ ॥

गेत्रेणमुनि बोले हे गुरुदेव । साधुकर्मकारी गनुप्यों के लिये जो नित्य  
 नैमित्तिक कर्म हैं आपने हमसे कहे वर्ण व आश्रमों के भी धर्म बनाये अर  
 हग वश वर्णन सुना चाहने हैं कृपापूर्वक कहिये पराशरमुनि बोले हे गेत्रेण ।  
 खनेक यज्ञ करनेवाले शूरीर राजाओंसे शोभित ब्रह्मा से उत्पन्न राजा मनुका  
 वश सुनिये प्रतिदिन जो कोई राजामनुके वशका स्मरण करेगा तिसके बंध  
 कानारा न होगा तिसके वंशकी वंशावली सपूर्णपाप होने के लिये सुनिये  
 सब जगत्के आदि वेदमयी शरीरधारी श्री विष्णुके अवतार ब्रह्मांडों सब में  
 पहिले ब्रह्माजी उत्पलहुये ब्रह्मा के दक्षिणे अंगुठा में दक्ष मजापनि हुये उनके  
 आदिनि नाम कल्याण्डे तिसके विवस्वाव निगके मनु मनुके इक्ष्वाकु १ नृग

२ धृष्ट ३ शर्याति ४ नरिष्यत ५ प्राशु ६ नाभाग ७ नेदेष्ट ८ करूप ९ पृषध्र  
 १० आदि पुत्र हुये इन पुत्रोंके होनेके लिये राजा मनुने मित्रावरुण देवताओं  
 की आराधना यज्ञद्वाराकी तदा राजाने चाहा कि एक पुत्रहो रानीनेचाहा  
 कन्याहो होताने रानीके कहने से कन्याहोनेही का मन्त्रपढ़ा इसलिये इलानाम  
 कन्या उत्पन्न हुई गजाने मित्रावरुणकी प्रार्थनासे उस कन्याहीको सुद्युम्न नाम  
 पुत्र धनाया फिर सुद्युम्न महादेव के कोपसे स्त्री होगये व सोगके पुत्र बुधके  
 स्थानसे घूमते २ पङ्कचे बुधसे उसमें पुरूरवा नाम पुत्र हुये फिर ऋषियोंने  
 चाहाकि सुद्युम्न पुन पुरुष होजावे इसलिये वेदमूर्ति सर्वमय मनोमय यज्ञ-  
 स्वरूपी भगवान्की आराधनाकी तिसके प्रसादसे इला फिर सुद्युम्न नाम पुत्र  
 होगई सुद्युम्न के उत्कल गय विनत तीन पुत्र हुये तिससे कि सुद्युम्न प्रथम  
 स्त्रीही उत्पन्न हुये थे इससे उनको राज्य न मिला परन्तु तिनके पिताने वशिष्ठ  
 जी के कहने से सुद्युम्नको प्रतिष्ठान नाम नगर जो प्रयाग के निकट है दिया  
 सुद्युम्न ने अपने पुत्र पुरूरवा को वह पुर दिया पृषध्र तो गुरूकी गाय मारने  
 के कारण शूद्र होगये करूपसे कारूप नामक महाधर्मी क्षत्रीहुये नामाग वैश्य  
 होगये नाभाग के भलन्दन नाम उनके वत्सपि वत्सपि के प्राशु तिनके प्रजानि  
 तिनके सनित्र तिनके क्षुप क्षुपके विंश तिनके खनीनेत्र तिनके अतिमत तिन  
 के करन्धम तिनके अविक्षि अविक्षि के मरुत्त नाम पुत्रहुये जिन मरुत्तकासा  
 यज्ञ भूतल में किसीका नहीं हुआ क्योंकि इनके यज्ञमें सब वस्तु सुवर्णहीकी  
 बनाई गईथी व यज्ञोपधि पान करने से इन्द्र अतीव तृप्तहुये व दक्षिणा पाय २  
 ब्राह्मण लोग व परिवेष्टा व सदस्य देवतान्त्रोग थे गरुत्त चक्रवर्ती से नरिष्यन्त  
 तिनसे दग दम से राज्यवर्द्धन तिनसे सुधृति तिनसे नर नरसे केवल तिनसे  
 धुन्धुमान् तिनसे रगवान् तिनसे बुध बुधसे वृणभिन्दु तिनके इन्द्रविलानाम  
 कन्या हुई व उन्हीं वृणभिन्दुका दूसरा विवाह अलम्बुपा नाम अप्सराके साथ  
 हुआ तिमसे विशाल हुये जिन्होंने विशालापुरी बसाई व इनमें हेमचन्द्र नाम  
 हुये तिनमें सुचन्द्र तिनमें धृमाश्व तिनमें मृन्मय तिनमें सहदेव तिनमें रुद्रा-  
 श्व तिनसे सोमदत्त जिन्होंने १० अश्वमेध यज्ञ किये तिनमें जनमेजय तिनमें  
 स्वर्गति इतने वैजान राजाहुये राजा वृणभिन्दु के प्रसादसे सब वैशाखराजा  
 दीर्घजीवी महात्मा पगकर्मा व धर्मवान् हुये और राजा शर्याति के सुकन्या

नाग कन्या हुई जो चपवन मुनिको च्याही गई और आमर्त्तनाग पुत्रभी जिन्हों के आनर्त्त के सेत नाग पुत्रहुये जिन्होंने आनर्त्तदेज में राज्यक्रिया व द्वाका पुत्री बसाई सेत से सेत नाम पुत्रहुये इनके कसुची आदि १०० पुत्र में सेवती नाग कन्या हुई विमके विवाहकी सम्मति लेनेके लिये कन्याको लें सेत ब्रह्माजी के पास ब्रह्मलोक को गये उमममय ब्रह्माजी के निरुद्ध हाहा हूह नाम गन्धर्व अनि तान नाग भीतगाने थे जब तक उस राग के पहज मध्यग गान्धार थे स्वर हुआ चाहिं तब तक अनेक युग बीत गये सेतने जाना अभी एकही सुसूत बीता होगा जब गान बन्दहुआ सेतजीने ब्रह्माजी से अपनी कन्या के योग्य वर पूछा कि किस राजा के यहा करें ब्रह्माजीने कहा जहां २ करनेकी इच्छा हो कहिये तो हम बनावें सेतने प्रणामकर जहां २ विवाह करना अगीष्ट या वृताया व पूछा कि इन में किमके घर में इस कन्या का विवाह करें कृपा पूर्वक बचना इये तब गगनात् ब्रह्माजी कुङ्कुनीचे मुखकर मुमुकातेहुये बोले कि जिनके २ यहा आपको विवाह करना अगीष्ट है अब उनके पुत्र, पौत्र प्रपौत्र तो क्या सत्तान में भी कोई नहीं रहा इम गान के सुनने में बहुतसी चतुर्गुणियां आती हैं इम समय अष्टाईसवीं चतुर्गुणी के ठापस्यग का अन्तहो रहा है तिससे अन्य किमी को यह कन्या खदीजिये आपके भी मित्र मन्त्री गेवक बन्धुवर्गी गेना सजाना आदि सब बहुतकाल बीतने के नष्टहोगये अब नहीं है यह सुन राजने गणायग पूर्वक फिर पूछा कि यह तो हमने जाना कि अब वे लोग नहीं रहे परन्तु जो विद्यमानहैं उनमें किसको कन्यादेवे सो बचनाइये तब ब्रह्माजी बोले कि जिस इन्द्रका आदि मध्य अन्न नहीं है हम इम मृष्टि में हैं पर नहीं जा नतेत्र न जिनका म्बह स्वभावम्ब जानते हैं व का ताप्रा सुदुर्वादि का जिनके अन्त के हेतु नहीं हैं व जो जन्म नाशरहित मर्षपूर्ण सौम्य सुनातन है व जिसकीही कृपासे हम विष्णुके शशहो मृष्टि करने व कोषमूर्ति रुद्र इन सप्तार दो नाशक व जो विष्णु स्वरूपी मध्य में मयरी पानना व जो मन्म जीवा अस्तारति तत्र भूमण्डल आने गमनको घग्ना व इन्द्रादिरूप में मयकी पानना करवा मर्षरूपमें अथियारी नाशता अग्निस्वरूपी सबके लिये अजादि पञ्चात्र प्रवित्री स्वरूपीहो मनहा भार गैवपानना एवमदाम्नीहो मयको स्वाम देना व चताना किगता जन स्वरूपीहो मयकी त्रयवना आताग म्बरूपीहो

जगत् भरको रहनेका स्थान देना व सब में आप व्याप्त रहता व जो अनेही आप इस जगत् को बनाता पालता नाराताहै पर मवभे अलगहै फिर जिसमें यह जगत् है व जो इस सभारके पहिनेथा व अत्र सबमें टिहहै अत्र आप उत्पन्न होना वह परमात्मा परम्पन्न अपने अग से आज हल पृथिवीमें अनतरा है मो जो तुम्हारी कुशस्यलीनाग पुरीथी रही अब द्वारकानाम पुगी वसगई हे वस वहां वे बलदेवके नाम से प्रसिद्ध केगवके अगमूनहै वम बहुतही उत्तम वर बनाया उन्हीं को अपनी कन्या देवो जैसे वे सर्वोत्तम वर ह वैसीही तुम्हारी कन्यागी सर्वोत्तमा है यह कन्या वरकी भती जोड़ी वनीहे इनभाति जब ब्रह्माजी से राजा रैवतनेसुना प्रणामकर अपनी कन्याको ले चनदिया यहा पृथिवीतल में देवा तो सब मनुष्य छोटे २ व बलहीन होगये थे चलते चलते द्वारका में आय ब्रह्माज्ञा सुनाय बलदेवजी के सग अपनी कन्याका विवाह करदिया बलदेवजी ने देखा कि यह स्त्री तो बहुतही लम्बी है वम अपने हल से दबाय दिया कि जैमी उस समय की सब स्त्रिया थी रैवती भी होगई राजा रैवत भी रैवतीको बलदेव जी को दे आप हिमालयपर तपस्या करने चलेगये ॥

## दूसरा अध्याय ॥

दो० कहन द्वितीयाध्याय मह धृष्टादिक के वश ॥

अरुतिन चरित प्रसग सों श्रीभक्तिधा प्रशश ॥ १ ॥

श्रीपराशरमुनि बोले कि जवनक राजारैवत ब्रह्मनोक में आया चाहें तत्र तरु पुण्यजन सन्नक राक्षस रैवतकी पुती कुशस्यली में आये इनपुण्यजनों के गयसे राजाके जो ६६ भाईथे सब भागगये निसके पग के सत्रिय भी इनस्वत भागगये वस हृदतापूर्वक वैवस्वत के मनुपुत्र धृष्ट राजा हुये नभगके नामाग तिनके अम्बपीप तिनसे विरूप तिनमे प्रपदश्च तिनमे रथीतरहुये इनकी स्त्रीके इनसे पुत्र न हुआ तो अङ्गिरामुनिने जाय उत्पन्न किया उसये जो मन्वानरुई वह सत्रिय व चाणूर्योनी मिलीरुई रुहई वैवस्वतमनु के लोकभाई उनी समय नाभिरामे इक्ष्वाकु नाम महाप्रनायी पुत्रहुये इन के १०१ पुत्रहुये उनमें विकृषि निगि दगड ये तीन श्रेष्ठ हुये व शत्रुनिभाति ५० पुत्र उत्प।दशके रक्षरुहुये ५० दक्षिण दिनाके राजा हुये राजा इक्ष्वाकुको जष्टका श्राद्धकन्याया जयते पुत्र

विकुक्षि से कहा मास लावो क्योंकि उम युगमें मांस केभी पिण्डदिये जायें  
 अब कलि युग में मांसपिण्डका निषेध होगया है विकुक्षिने वनमें जाय बहुत मू  
 मारे घूमते २ वड़ा परिश्रम पड़ा इससे सूँबलागी एक चौगड़ा उन्हीं मेंसे ला  
 लिया बाकी मांसले पिताको दिया इक्ष्वाकुजी ने अपने कुन्ताचार्य्य पशिपु  
 जीको मांस प्रोक्षण करने को बुनाया उन्हींने जैमिही मन्त्र पढ़ा विदिन हुआ  
 कि जूठा मांस है कहा इस माममे श्राद्ध नहीं होमक्या जिससे विकुक्षि ने एक  
 राग अर्थात् चौगड़ा लाय लिया इससे इनका शशाद नाम धराया जाता है  
 व राज्य कार्य के योग्य नहीं समझे जाते यह सुन राजाने विकुक्षि को घासे  
 निकाल दिया जब राजा इक्ष्वाकु गये विकुक्षि वन में आय अपना राज्य करने  
 लगे इन शशादके पञ्जपनाम पुत्रद्वये इन्हीं के समय त्रेतायुग में पूरु और  
 देवासुर सभाम हुआ उसमें देवता हारे दैत्य जीते देवगण श्रीविष्णु के भाण  
 में पहुँचे वहा में आज्ञा हुई कि शशाद राजर्षिके पुत्र परजय के गीर में हम  
 अपने अश से प्रवेग कर सब दैत्योंको जीवेंगे तुम लोग प्रार्थना कर उनके  
 सभाम में लेचलो यह सुन देवगण राजा परजय के निकट आये व कहने लगे  
 महाराज आप के सहायक होनेमे हमारे मन्त्र दैत्य पराजित होंगे आप सहायक  
 हजिये राजाने कहा हा योंतो सहायक नहीं होते यदि देवराज हमारी सवाी  
 को गिलें उनके पाप पर चढ़ लवेंगे व दैत्योंको हरावेंगे यह सुन इन्ने वैन  
 का रूप धारण किया राजा परमानन्दिनहो उम वैनके ककुत्स जा काया तिमो  
 चद्र मभाम में पहुँचे विष्णुजीका तेजगी राजाकी देखें जाय गयाथा पहुँचे  
 ही दैत्य परजितद्वये देवताओं की विजय हुई जिसमे कि राजा वैतरण इन्द्र  
 के ककुत्स पर स्थितद्वये थे इसीसे उनका एक ककुत्सप नामदृमा ककुत्सके पुत्र  
 का अनेहा नामदृमा इनसे पृथु पृथुमे विष्वगश्व निनसे शार्ङ्ग जादिते पुत्रनाम  
 तिनसे श्रावस्व जिन्होंने श्रावस्वीपुगे वमाई श्रावस्व के वृहदश्व निनसे वृान  
 याश्व जिन्होंने उत्तममुनि के अपतापी पुन्धुनाम दैत्यकी अपने २१००० पुत्रों  
 को मायने मागडाला जिससे पुन्धुमार नामदृजा इन गजाके सबपुत्र उत्तम  
 के गुणके धुआँलगने से उस लड़ाई में गये केवल वृदाश्व वन्द्राश्व व फणित  
 २२ ये तीनपुत्र बचे वृदाश्व मे वृश्वश्व निनमे निजुम्भ तिनसे सदाशर शि  
 से कुरारव निनसे प्रसेनजित निनसे सुवनाश्व इन राजाके पुत्र न था इति

परमकृपालु ऋषि लोगोंने पुत्र होने के लिये पुत्रेष्टि यज्ञ कराई मन्त्रितजल वेदीपर धर मुनिलोग रात्रिको सोयगये रात्रिको राजा बहून प्यासे हुये जनके लिये यज्ञशाला में आये मुनिलोगों को सोतेहुये देव जगाय न सके कि पूछ-लेते उसी मन्त्रित फलशका जल उठाके पीगये प्रात काल जब ऋषिगण जागे पूछनेलगे इसकलशका जल किसने पिया इसके पीनेमे तो रानीके गहाप्रतापी पुत्र होता यह सुन राजाने कहा हमने बिना जाने पीलिया ई मुनियों ने कहा आपकी के गर्भ रहेगा कौनकहे राजाहीके पेटमें गर्भावान हुआ व क्रम क्रम से बढ़नेलगा जब समय आया तो राजाकी दाहिनी कोखि चीरके पुत्र निकाला गया पर ईश्वरानुग्रहमे राजा न मरे जबवाल रुहुआ मुनियोंने कहा यह क्यापिये गा उम समय इन्द्रने आयकहा हमको पियेंगे व अपनी अमृतमयी कनिष्ठिका पिलादी इसीसे उनका मान्धातानाम हुआ उस अमृतमयी अंगुली के पीने से एकही दिनमें बाढ़गये ये मान्धाताजी सातोंदीपयुक्त मव पृथ्वी के चक्रवर्ती राजाहुये हैं उनके राज्य के विषय में यह चौपाई गईजाती है कि ॥

चौ० जहँते उदय होत रविप्राता । पुनि सन्ध्यातक जहँलग जाता ॥

सकल राज्य मान्धाता वेरो । लिखा पुराणन में नहिँ केरो ॥ १ ॥

राजा शशबिन्दु की कन्या बिन्दुमती के साथ महाराजाधिराज चक्रवर्ती मान्धाता का विवाह हुआ व पुरुकुत्स अम्भीरप मुचुकुन्द ये तीन पुत्र उत्पन्न हुये और ५० कन्या उमी समय सर्व्ववेदपाठी सौभरिष्णपि यमुना के जल के भीतर १२ वर्षमे तपस्या कररहे थे उम जलमें एक सम्पन्नाग मच्छलियों का राजा बहामारी गत्स्य रहता था उमके पुत्र सोत्रादि बड़ाभारी परिवार था कोई उसके गिरये कोई पीठये कोई घाल में लपटाहुआ घूमना था इन बातों से वह बार २ क्षिप्त होनाथा बहुधा ऋषिके आसदी पाम घृणा करता सोगरिनी १२ वर्षके पीछे उसमत्स्यके परिवार व उसके वार २ प्रमन्न रहनेके चरित देखे अपने मनमें चिन्तना करनेलगे कि देखो यह जड़जन्तु गत्स्य जाने पुत्र पौत्रादिकों के साथ बिहरनाहुआ भ्रैसे २ आनन्द कररहा है हमनी इससी भाँति स्त्री पुत्र पौत्रादिकों के संग बिहारकरेंगे यहविचार मुनि जलके भीतरसे निश्चल और कन्या दूदों के लिये बने आते २ महाराजा मान्धाता के यज्ञ श्रेष्ठे राजा ने मुनिका आगमनजान अर्घ्यपात्रावगीयादि से मुनिको पुजाया व पुनि

विकुक्षिमे कहा गास लावो क्योंकि उस युगमें माम केभी पियडदिये जाते थे अब कलियुग में मामपियडका निषेध होगया है विकुक्षिने वनमें जाय बहुत मृग मारे घूमने ९ वड़ा परिश्रम पड़ा इससे सूबलगी एक चौगड़ा उन्हीं मेंसे माग लिया बाकी मांभले पिताको दिया इक्ष्वाकुजी ने अपने कुलाचार्य वशिष्ठ जीको माम प्रोक्षण करने को बुनाया उन्होंने जैसेही मन्त्र पढ़ा विदित हुआ कि जूठा मास है कहा इस माससे श्राद्ध नहीं होसकता जिससे विकुक्षिने एक शश अर्थात् चौगड़ा खाय लिया इससे इनका शशाद नाम धराया जाता है व राज्य कार्य के योग्य नहीं समझे जाते यह सुन राजाने विकुक्षि को घामे निकाल दिया जब राजा इक्ष्वाकु गरे विकुक्षि वन से आय अपना राज्य करते लगे इन गणादके परजयनाम पुत्रहुये इन्हीं के समय त्रेतायुग में एक और देवासुर सम्राम हुआ उसमें देवता हारे दैत्य जीते देवगण श्रीविष्णु के शरण में पहुचे वहा से आज्ञा हुई कि शशाद राजर्षिके पुत्र परजय के गरीर में हम अपने अश से प्रवेश कर सब दैत्योंको जीनेगे तुम लाग प्रार्थना कर उनको सम्राग में लेचलो यह सुन देवगण राजा परजय के निकट आये व कहनेलगे महाराज आपके सहायक होनेमे हमारे शत्रु दैत्य पराजित होंगे आप सहायक हूजिये राजाने कहा हग योंनो सहायक नहीं हैतें यदि देवराज हगारी सवाी को मिलें उनके काधे पर चढ़ लड़ेंगे व दैत्योंको हरादेेंगे यह सुन इन्द्रने बैल का रूप धारण किया गजा परगानन्दिनहो उस बैलके ककुत्त जो काना तिसरे चढ़ सम्राग में पहुचे विष्णुजीका तेजगी राजाकी देहमें आय गयाथा पहुचने ही दैत्य पराजितहुये देवताओं की विजय हुई जिसमे कि राजा बैलरूप इन्द्र के ककुत्त पर स्थितहुये ये इमीमे उनका एक ककुत्स्थ नागहृमा ककुत्स्थके पुत्र का अनेहा नामहृमा इनसे पृथु पृथुमे विष्वगश्व तिनसे आर्द्र आर्द्रसे युवनाश्व तिनसे श्रावस्व जिन्होंने श्रावस्नीपुरी बनाई श्रावस्वके बृहदश्व तिनमे कुवल याश्व जिन्होंने उत्तङ्गमुनि के अपकागी धुन्धुनाम दैत्यको अपने २१००० पुत्रों को साथले मारहाला जिससे धुन्धुमार नामहुआ इन रानाके सवपुत्र उसीदैत्य के मुखके धुजाँलगने से उस लड़ाई में गरे केवल हृदाश्व चन्द्राश्व व वपिला यन ये तीनपुत्र बचे हृदाश्व से हर्षश्व तिनसे निकुम्भ तिनसे सद्भनाश्व तिनसे ठराश्व तिनसे ममेनजिव तिनसे युवनाश्व इन राजाके पुत्र न था इसलिये

परमकृपालु ऋषि लोगोंने पुत्र होने के लिये पुत्रेष्टि यज्ञ कराई मन्त्रितजल वेदीपर धर मुनिलोग रात्रिको सोयगये रात्रिको राजा वहुत प्यासे दृये जनके लिये यज्ञशाला में आये मुनिलोगों को मोतेदृये देत जगाय न सके कि पूछ-लेते उसी मन्त्रित कलशका जल उठाके पीगये प्रात काल जब ऋषिगण जागे पूंछनेलगे इसकलशका जल किसने पिया इसके पीनेमे तो रानीके महाप्रतापी पुत्र होता यह सुन राजाने कहा हमने बिना जाने पीलिया है मुनियों ने कहा आपकी के गर्भ रहेगा कौनकहे राजाहीके पेटमें गर्भावान हुआ व क्रम क्रम से बढ़नेलगा जब समय आया तो राजाकी दाहिनी कोखि चीरके पुत्र निकाला गया पर ईश्वरानुग्रहमे राजा न मरे जबवाल रुहुआ मुनियोंने कहा यह क्यापिये गा उम समय इन्द्रने आयकहा हमको पियेंगे व अपनी अमृतमयी कनिष्ठिका पिलादी इसीसे उनका मान्धातानाम हुआ उस अमृतमयी अगुनी के पीने से एकही दिनमें बाढ़गये ये मान्धाताजी सार्तोद्दीपयुक्त मव पृथ्वी के चक्रवर्ती राजाहुये हैं उनके राज्य के विषय में यह चौपाई गाई जाती है कि ॥

चौ० जहँते उदय होत रथिप्राता । पुनि सन्ध्यातक जहँलग जाता ॥

सकळ राज्य मान्धाता केगे । लिखा पुराणन में नहिं केगे ॥ १ ॥

राजा राणविन्दु की कन्या विन्दुमती के साथ महाराजाधिराज चक्रवर्ती मान्धाता का विवाह हुआ व पुरुकुलम अम्बरीष मुचुकुन्द ये तीन पुत्र उत्पन्न हुये और ५० कन्या उमी समय सर्व्वप्रेतपाठी मौभरिष्वपि यमुना के जल के भीतर १२ वर्षसे तपस्या कर रहे थे उम जनमें एक सम्प्रदानाग मछलियों का राजा बड़ा भारी मत्स्य रहता था उमके पुत्रपौत्रादि बड़ा भारी परिवार था कोई उसके निरपे कोई पीठे कोई बगल में लपटाहुआ घूमता था इन बातों मे वह वार २ हर्षित होनाथा बहुधा ऋषिके आसदी पाम घुमा करता सो गरिजी १२ वर्षके पीछे उसमत्स्यके परिवार व उसके वार २ प्रवत्र रहनेके चग्नि देव अपने मनमें चिन्तना करनेलगे कि देवो यह जड़जन्तु मत्स्य करने पुत्र पौत्रान्त्रियों के साथ विदरनाहुआ कैसे २ जानन्द करहा है हमनी इसकी भावि स्त्री पुत्र पौत्रादिकों के संग विहारकरेगे यहविचार मुनि जलके भीतरसे चिन्तन और कन्या दृढ़ने के लिये चने आने २ महाराजा मान्धाता के १२ रथों गता ने मुनिका आरागनजान अर्घ्यपात्रात्रम तीयादि मे मुनिको पुत्रान्त्रो नव मुनि



राज बोले हे महाराज । हम विवाह के अर्थ आपसे कन्या मागने आये हैं हमारी याचा भग न करना क्योंकि अर्थी लोग जबकभी एक कुत्स गोत्रवाले राजाओं के यहां आते हैं विमुक्त नहीं जाते इस प्रथिवी में और भी राजालोग हैं कि उनके भी कन्या उत्पन्न हैं अर्थियों के अर्थ पूर्ण करनेवाला यही आपही का कुल है आप के ५० कन्या हैं उनमें से एक हमको दीजिये जिस में हमारी पहिली याचा भग न हो क्योंकि हम इसमें डराते हैं राजाने मुनिको महाजर्जरी भूत देख मन में कहा यदि इन महावृद्धको कन्या देते हैं तो वह शापदेगी यदि नहीं देते तो मुनिशाप देंगे यह शोच कुछ न बोले मुनिराज यह दशा देख फिर आपही बोले हे राजन् । चिंता क्यों करते हो हमने कोई ऐसी वस्तु नहीं मागी जो देनेके योग्य न हो आखिर किसीन किसीको तो अवश्य ही देवोगे फिर हम मागते हैं हमीको देवो । हममें आपकी कौनसी प्रसन्नता नहीं है हम तो जानते हैं कुछ हानि नहीं शाप से भयभीत हो हाथ जोर राजा मुनि से बोले हे भगवन् । हमारे कुलकी यह रीति है कि जिस वरको कन्या प्रसन्न करे उसीको देते हैं यही चिंतना करते हैं और अदेय कुछ भी नहीं है सन कुछ आपही लोगोंके लिये है मुनिराजने राजाके इस आशयको भलीभांति समझलिया कि राजा हमको कन्या नहीं देना चाहता पर साक २ जवाब नहीं देना क्योंकि जानता है कि इस वृद्धको तो कोई भी स्त्री न प्रसन्न करेगी फिर राजकुमारी काहेको प्रसन्न करेगी मुनि यह विचार के बोले अच्छा जहा आपकी कन्या रहती हो वहा हमको भेजिये जो हमें प्रसन्न करेगी उमीके सग विवाह कर देना यह सुन राजा मुनिशाप से शङ्कि न हो कन्यासक पुरुष के साथ मुनिको भेजा कि जाइये मुनिराजने अपनी तपस्या के प्रभाव से मार्ग में सरुन देव गन्धर्व नरादिकों से सुन्दर व युवावस्था को प्राप्त रूप धारण किया दूतने मुनिको ले कन्याओं के आगे ठाढ़कर कहा कि तुम लोगों के पिताने इन मुनिको भेजा है कि इन जब रदस्ती नहीं कहने जिम कन्याका मन हो इनके साथ विवाह करे यह सुन मुनिको सकल भानि मुद्र देव मयकीसव उठवड़ी टूई व कहने लगी कि हमारा विवाह हो हमारा विवाह हो और सब आपस में कहने लगीं कि ये हमोही योग्य हैं तुम्हो नहीं गरी कह कह पचासोंने मुनिको घेरा व परस्य लड़ने लगीं दूतने राजा से कहा कि मुनिने ऐमा रूप बनाये लिखा है कि प्रत्येक कन्या उनको चाहती है

राजाने बहुत शोच विचार पचासों के साथ मुनिका विवाह करदिया मुनि सब को अपने आश्रमपर लाये और द्वितीय विश्वकर्मा को उत्तमकर आह्लादी कि इन सबके लिये अन्न २ नानापक्षिगण सहित तड़ाग परमोत्तम उपवन सुन्दर २ शय्या अन्य नानाप्रकार के भोग विलासके पदार्थ बनावो उन्होंने वैसाही धरन मुनिके कथनमे भी उत्तम २ पदार्थ बनाय दिये तदनन्तर सौभरि की आह्लासे अक्षयानन्द नामनिधि सत्रयों में आय निवृत्ता फिर नानाभाति की सेवकी प्रत्येक गृहमें सेकरो आई व राजकन्याओं की सेवा करनेलगीं सब राजकन्या मुनिको भोज्य लेह्यादि अनेक स्वादुके पदार्थ बनाय २ भोजन कराने व करने व भोगविलास करनेलगीं कुछ दिनोंके पीछे राजाने शोच कि नहीं जानते कन्याओं की क्या दशा हुई सुखमे रहती हैं वा दुःखमे यह विचार मुनिके आश्रमपै आये आतेही अनिरमणीक तड़ाग उपवनादि देखेरे वहा एक ध्वरहर में प्रवेश कर कन्याको कोरामें बैठाय बड़े प्रेममे पूछा हे वरमे ! यहा तुमको सुखहै वा दुःख महर्षि स्नेहरखने हैं वा नहीं रगी हमारे घरकी भी सुधि आतीहै वा नहीं कन्याने उत्तरदिया पिताजी किसीप्रकार का कष्ट यहा नहीं नानाप्रकार के पक्षियों के मुहावने बोल मुनाई देने सब प्रकार के भोजन विद्यमानहैं भाति २ की शय्याहैं महर्षि बड़ी कृपा रखते हैं पर ऐनी कौन कन्याहै जो पिताके घरका व पिता माताकी कृपा को स्मरण न करे केवल एक यही दुःख हम को है कि हमारे पनि हमारे घरमे रात्रि दिन नहीं निकलने हमारी बहिनी दुःखिन रहती हैं नहीं जानती उनकी क्या दशाहै यदमुन राजा दूसरी कन्या के मन्दिरमें गये उस कन्यामे भी वैसेही पूछा उमने भी सब भोगकी वस्तुओंका बखान किया व वही दुःख धनाया कि हमारे पनि हमारेही समीप बैठे रहते हैं अन्य हमारी भगिनियोंके यहा नहीं जाने यही दुःखहै इसीभाति मर्षों के मन्दिरों में गये व सर्वोंने यही कटा सो मुनि राजा अर्थावहर्षिन व विस्मिपतहो सौभरिमुनि के निरुद एकान में जाय यथाविधि धोत्ते टे भगवन् ! यह आयकी सिद्धतारा प्रभाव हमने देखा ऐमा अन्य अस्मदादि स्त्री के नहीहै यह स्त्रिनी तपस्या का फलहै नहीं जानने इत्यादि वचनकह कुलदिग यहा रह मुनिके सग नानाप्रकार के भोग विधानादि कर अपने नगरको लाये बहुत स्त्रियों क पीछे तिन राजकुमारियों में तीन ० पुत्रद्वय जो १ २ होतें मुनि गये मगता

के उनमें बहुतही मन लगाने लगे व शोचने लगे कि भला ये हमारे इतने पुत्र कभी तुतुगी तुतुरी बोली नोलेंगे व अपने पैरोंमे चलेंगे फिर युवावस्था को पहुँचेंगे इनके विवाह होंगे पुत्रवधू उत्तम आवेंगी इनके भी पुत्र होंगे फिर ये पुत्र अपने पुत्रोंके साथ घुमेंगे व हम देखेंगे इत्यादि मनोरथोंकी चिन्तना रात्रिदिन करतेथे अकस्मात् एकदिन बड़ा पश्चात्ताप किया व कहा हाय अहो हमारे मोह का विस्तार कहाँ कैसे इन मनोरथोंकी समाप्ति तो हजारों लाखों वर्षलग न होगी जब एक मनोरथ पूराहोगा तो दूसरेकी इच्छाहोगी उर्मके पीछे तीमे चौथे आदि की होतीही जायगी देखो पहिले मनोरथ कियाथा कि हमारे पुत्र अपने पैरोंचलेंगे सो चलनेलगे विवाह भी हुये स्त्रिया भी यथोचित मिलीं उनके पुत्र भी हुये अब पुत्रोंके पुत्रोंके पुत्रोंके देखने की वाञ्छाहोती है कदाचित् तिनके भी पुत्र देखेंगे तो और मनोरथहोंगे उसके पूर्णहोने पे और मनोरथहोंगे प्रयोजन कि इन मनोरथों भी समाप्ति न होगी कहानग कहें जबतक जीवहै मनोरथों का गन्त न होगा यह आज हमने विचार लिया और मनोरथों में लगाहुआ जीव पर मात्मा का सगीठोही नहींसक्ता हाय यह मेरी समाधि जलजीवके सग परने से नष्ट होगई यह परिग्रह मैंने किया जिसमे नानाप्रकार की वाछा होतीहै देविये इसी एकही शरीर के नानाप्रकार के दुःखये जिनमे दुःख होताथा, फिर १५० राजाकी कन्यालाये इनके पुत्र पौत्रादि हुये अब तो इन सब दुःख से दुःखिन होना पड़ता है फिर यह बढ़ताही जावेगा इसमें दुःखके सिवाय सुख कभी होने हीवाला नहीं हाय मुझको उस अर्त्ता के सगसे यह गतिमिली गई तपस्वियों को निस्सगही रहना चाहिये सगसे अनेक दोष होतेहैं चाहे पूर्णयोगी भी हो सग करने से नीचे गिरायाजाना है व थोड़े योगशाले को क्या कहें हम अब ऐसा करेंगे कि जिसमें इस परिग्रह का कर्दा लेशभी हमारे पाम न रहेगा और हम फिर इनके दुःखमे न हूँ गिहीहोंगे अर्थात् सबके धारण करनेवाले अचिन्त्यरूप सृष्टगसे सृष्टग स्वरूप सबमे बड़े व मोटे शूद्र व कृष्णस्वरूप ईश्वरों के ईश्वर ऐसे विष्णु की आराधना तपस्या से करेंगे जिनमें उस सच्चिदानन्द अन्न गगवान् विष्णु में अवलम्बित लगे कि फिर जन्म न हो ॥

श्री० राय जीवन्तसो अमल अनन्ता । सर्वेश्वर ज्यहि आदि न अन्ता ॥

तार्ता पर न गट्ट गताग । सो सुठ सुठ तन्दिशण सुजाग ॥ १ ॥

## तीसरा अध्याय ॥

दो० कह्य तृतीयाध्याय महँ मौभरि सिद्धि वस ॥

मान्धाता के तनयकर सगर चरित्र प्रशस्त ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले इस भाति सौभग्निमुनि को अपनेही आप परम विराम  
 हुआ पुत्र परिवार सब भ्रापन वासनादि छोड़ त्रियोंको सग ने बन हो चनेगये  
 वहा गानप्रस्थाश्रम में रहनेलने उम आश्रम की जो २ क्रिया है मन करतेरहे  
 जिमसे सब पाप जातेरहे व मनकी वृत्ति ईश्वर में पकी होगई दोने २ सन्यास  
 धारण किया सकल कर्मकलाप भगवान् विष्णुमें अर्पित किया अच्युत भग-  
 वान के पदमें शरीर छोड़ लीनहोगये उनकी स्त्रियां उनकी पत्नी को प्राप्तहुई  
 यह राजा मान्धाता की कन्याओं के सम्बन्ध की कथा कही जो कोई यह भो  
 मरिचरित स्मरण करेगा व पढ़ै सुनेगा = जन्मतरु उमकी अमन्मति अर्ध  
 अमन्मार्ग में मनकी वृत्ति न होगी व गृह पुत्रादि में गमना भी न होगी अब  
 गान्धाता के पुत्रोंकी सन्निधि कहने हैं गान्धाता के पुत्र अम्बरीष के युवनाम्ब  
 पुत्रद्वये तिनमे हरित तिनसे अगिराजी के सयोग से द्वारिण मङ्गर वात्सल्यद्वये  
 उसी समय पाताल में सौनेयनाम छ स्योरि गन्धर्व पट्टुचे व वग के नामों को  
 नीत सम्पूर्णरु अपने अविहार में करलिये सपौने जाय जनशायी भगवान्  
 की स्तुतिकी उममे श्रीहरि जागे सपौने कहा भगवान् इन सपौ मे हपारि  
 रक्षा कीजिये श्रीविष्णुजी बोने कि राजा मान्धाता के पुत्र पुरुकुत्तके देह में  
 प्रवेशकर हग इन गन्धर्वोंको मारंगे यह सुन भगवान् को प्रणामकर फिर नाग  
 अपने लोकको आये व अपनी गगिनी नर्गदानाम मे जोकि पुरुकुत्त की स्त्री  
 थी कहा किसी यत्रसे राजाको यहा भेजो नर्गदाने रह सुन पुरुकुत्त को नाग  
 लोकको भेजा वहा जाय भगवान् विष्णुके तेजमे गरेद्वये पुरुकुत्तने सब गन्ध  
 र्वोंको मारा व फिर अपने नगरमें पहुँचे सपौने नर्गदा की वरदान दिया कि जो  
 कोई नमस्कार पूर्वक नृम्हाग नाम स्मरण करेगा उमे सर्वथा विपन ब्यापेगा ॥  
 विप निवारण का मन्त्र ॥ नर्गदायेनम प्रातर्नर्मदाये नमोनिनि ॥ नमोस्तु न-  
 र्मदेनुभ्यं रत्नपांविपमर्षत १ इम मन्त्रकी पद चाहे जिम जन्महार में चना-  
 जावे सर्प उमे न चाहेगे कदाचित् स्मरणके पूर्वही सर्प काटचुताहो तो माग्य

करने से विष न चढ़ेगा राजा पुरुकुत्स के पुत्र नहीं होनाया सपौने बरदान दिया तब नर्मदा नाम स्त्रीमें पुरुकुत्स से त्रमदस्युनाम पुत्र हुआ तिनसे सम्भूत इये तिनसे अनरण्य इसको दिग्विजय में रावणने मारहाला अनरण्य से पृथक् इतने हर्यश्व तिनसे वसुगना तिनसे त्रिधन्वा तिनसे प्रथारुण तिनमे सत्यव्रतजिनका दूसरा नाम त्रिशकु हुआ यह नाम वाशिष्ठ की गाय मारहालने से हुआ व उन्हींके शापसे चाण्डालता कोभी प्राप्त हुये उसी समय में त्रिशकु वनगें थे कि १२ वर्ष तक अवर्षण हुआ विश्वामित्रजी अपनी स्त्री पुत्रादि छोड़ तपस्या करने चले गये थे उनकी स्त्री पुत्रादि के खाने केलिये त्रिशकु एकमृग मारके उनकी कुटीके निकट एकवृक्ष में बाँधआते थे मुनिकी स्त्री व पुत्र खाते थे जब १२ वर्षपे मुनि लौटे त्रिशकु के ऊपर प्रसन्न हुये त्रिशकु की इच्छाजान सहित शरीर मन्त्र के जोरसे स्वर्ग को भेजा त्रिशकु के हरिश्चन्द्र हुये तिनसे रोहिताश्व तिनसे हरित तिनसे चतु चंचु ने विजय व वसुदेव विजय से रुक रुकमे वृक वृकसे बाहु जो हय ताल जघादिकों से हार अपनी गर्दिमणी स्त्रीके साथ वनको चले गये वहा उनकी दूमरी स्त्रीने सौतिके गर्भ मरजाने व धँसजाने केलिये विषदे दिया गर्भ मरातो नहीं पर ७ वर्ष पर्यन्त धँसाराहा राजा वृद्धतो येही इसी अन्तर में और्वमुनि के स्थानपे मृतक होगये उनकी मगगीरानी सतीहोने चली तब त्रिकालदर्शी और्वमुनिने अपने आश्रमसे अलग ले जाय एकांत में रानीमे कहा तू सती न हो तरेपेट में महाचक्रवर्ती मनु क्षयकारी वहा पराक्रमी पुत्रहै तो भवहोनेही चाहता है यहसुन रानीसती नहीं हुई राजाकी दासकिया कराय मुनि रानीको अपने आश्रमपर लाये कुछदिनों के पीछे उथी विष के साथ वहा तेजस्वी बाल रुहुआ मुनिने उसके सब जात कर्मादि किये व सगरनाम धराया यज्ञोपवीत होजाने पे और्वजी ने चारोवेद पढ़ाये व ६ नाम गार्गव, रुय अग्निका अन्नगी पढ़ाया जब सुद्धि हुई तो सगरजी ने अपनी मातासे पूछा हेमातः ! हमतुम यहाँ कैसे हैं हमारे पिताजी कहा है ये मुनिसे धारी कौनहैं इत्यादि सब प्रमाचार पूछे माताने यथाविधि मुनापे सुननेही म निज्ञा थी कि जिन्होंने मेरे पिताका राज्य लेलियाहै मवको मारहालगा यहकह हेहयमे प्राण किया, उनको मार शक मवन काम्भोज पारद परहव इनमव देश वालों को माग जो वक्त्रनाये वशिष्ठजी के शरणमें भाये वशिष्ठजी ने बहुत

फटकारा वं दुर्वादि कदा पर शान्नहो सगरमे कहनेनग उत्तर इन भौहृआ को कया  
 गास्ते हो जानेदेवो अपने कियेको पहुँचगये इन फो हमने तुम्हारी प्रतिज्ञा पी-  
 लनके लिये द्विजानि धर्ममे बाहर करदिया उस गगगये क्योंकि लिखाहै जो  
 अपने धर्मसे अष्टहोजावै वा ब्राह्मणलोग जिमे पक्ति मे बाहर कग्दरे वह लोके  
 में जानो जीताहुआ मरगया सो ये जीतेही मरे हँ हमने द्विजानि धर्ममे बाहर  
 करदिया सगरजीने गुरुके वचन गाने व बड़ी प्रशामाफी व इनमच यवनादि  
 देशीय क्षत्रियादिकों के वेप बदलादिये यथा यवनों को मूड़ मूड़ाये व मूड़उत्तरे  
 रहनेकी आज्ञादी शकोंके लम्बे वार रखनेकी पारद व पल्लवों को दाढ़ी स्वाये  
 रहने व स्वाहा स्वरा वपट्टकार न करने वेद न पढ़नेकी इमीभानि औगोंको भी  
 ये लोग जब वेदबाह्य होगये और ब्राह्मणोंने इनके यहाँ आनाजाना बन्द कर  
 दिया तो सबकेगव म्लेच्छ होगये और महाराजाभिगज सगरभी अपनी राज  
 धानी में आय बड़े प्रताप के साथ सप्तदीपवरी पृथिवी की पालना करनेनगो।

## चौथा अध्याय ॥

वा० कह्य चतुर्थाध्याय महँ सगर सुताकर नाश ॥

कपिलद्वष्टिर्गा जिमिभयो राक्षस होन सुदाश ॥ १ ॥

पराशामुनि गेने राजा सगरके दोस्त्रिया हुई एक कश्यपकी कन्या सुगति  
 दूमरी निदर्भ देशके राजाकी कन्या केशिनी इन दोनोंमें मनान होनेके निग  
 और्वमुनिकी आराधनाकी मुनिने आशीर्वाददिया कि इनमेम परके पकरी  
 पुत्र वगधर होगा दूमरी के ६०००० तिमको जो इच्छाहो मार्ग केशिनी ने  
 एक पुत्र गांगा सुमनि ने ६०००० केशिनी के थोड़ेई तिनोमें अ गजपनाम  
 १ पुत्रहुआ सुमनि के ६०००० अगजम मे अशु गाम् दृये अमगजम जानी  
 षड़ेये पर ऊरामे लड़कानही मे बड़े दृष्टकृति विदिन गेनेये इनके पिता जा-  
 ननेये कि नच सयानेहोमे तब सदाचारी होजावगे पान्तु नचये पुरावम्भाकी  
 भी प्राप्तहुये और इराचास्ता न मिटी तो इनके पिताने घामे निराल दिया  
 और वे ६०००० भी अनमनपर्हा ये मगान दुगचार कर्म मे यशानक गोरु  
 में मवास्तादि पन्द कगभिये १ लूटने पूँहनलगे नच नच देगग गमकन  
 कपिलजी की शरण में जाय जेरा दुष निरदनहा शेने गरीनिर्भयग

के ये भी ६०००० पुत्र अममजमही के मे दुराचार करनेलगे मि वइ, गंगार  
 फाहे को रहेगा और आपका अवतार, इ खितजनों की रक्षा करने ही के  
 लिये है यह सुन कपिलदेवजी ने कदा थोड़ेही दिनों में ये नाश होजायै  
 इसी अवसर में राजा सगर अश्वमेध यज्ञ करनेलगे व आने ६०००० पुत्रों  
 को घोड़ेकी रक्षाकेलिये भेजा उम थोड़ेको पकड़ फोई पृथ्वीके विवर में समाप्त  
 गया उसके खुर देखनेहुये मष पहुँचे प्रत्येक राजकुमार प्रतिदिन योजने २ पृ  
 थिवी सोदनेलगा जाते २ पानाल में राजकुमारों ने घोड़ा देखा जब वहाँ प्रवेश  
 करनेलगे तो बहुतही निफट कपिलजी को देखा सबके सब अन्नशन्न उठाप  
 दोरे कि यही हमारे घोड़े का घोर है मारो २ जाने न पावे यह सुन कपिलदेव  
 जीने किंचिन्मात्र अपना एक नेत्रलील राजकुमारों की ओर देवा कि उन सबों  
 के देहसे आगउठी सबके सब मरम् होगये सगरजी ने सुना कि उन ६००००  
 पुत्रोंकी यह दशाहुई तो असमजस के पुत्र अंशुमान् को घोड़ा हेरने के लिये  
 भेजा ये जाते २ वहा पहुँचे जहा कपिलदेवजी थे पहुँचतेही मुनिकी बड़ीस्तु  
 ति की मुनि ने प्रसन्नहो आशीर्वाद दिया कि जाव बहुतशीघ्र घोड़ा पावोगे व  
 तुम्हारे पितामह यह पूर्णकरोगे व तुम्हारा पौत्र इस लोकमें गंगाजीको लावेगा  
 अशुमान् ने फिर बड़ीस्तुति श्री व कहा कि महाराज अब यह वर दीजिये त्रि  
 समें हमारे पिठव्य जिनकी यह राख पंरी है स्वर्गवासी हों कपिलदेव ने कहा  
 हमतो प्रथमही कहचुके तुम्हारा पौत्र जब गंगा लावेगा तो इन सबके देहकी  
 राखपे गगाजल पौगा वम सब स्वर्गवासी होजावेंगे यह भगवान् विष्णु के  
 पादांगुष्ठसे निकसेहुये गगाजलहीमें शक्तिहै जो कि केवल स्नान पान गार्जन  
 करनेवालेही पुरुषको न तारे किन्तु सैकड़ों हजारोंवर्षके सदेगले वार नह हाइ राख  
 आदिये जलपरनेसे उम प्राणीको भी तारदेवै यह सुन अशुमान् भगवान् कपिल  
 देवके प्रणामकर पानाल से घोड़ालाय अपने पितामह के यज्ञमें पहुँचे सगरजी  
 ने घोड़ाले पन्न किया व अपने पुत्रोंकी सोदने से मदाजान समुद्रको पुत्रही मा  
 नने लगे अशुमान् से दिलीप दिलीप से भगीरथ हुये जो गंगाजीको स्वर्ग से  
 गर्त्यलोक को लाये इसीसे गगाका एक भागीरथी नाम हुआ भागीरथ से अब  
 इनके पुत्रका भी नामाग नाग हुआ इनसे अम्बरीष तिनसे सिन्धुद्वीप तिनसे  
 अमुन्धारन तिनसे अतुगण राजानल इनके बड़े मित्र थे व शत विद्यामें बड़े

निपुण थे ऋतुपर्ण से सर्वकाम तिनके सुदास सुदामके सौदाम इन्हीं का मित्रसह भी नाम था जिन्होंने शिकारके लिये वनों जाय दो व्याघ्र देते जिन व्याघ्रों ने उम वनमें कोई मृगही नहीं रक्खाथा उनमें से एकको राजाने एक षाण से मारवाला जब वह मरनेलगा तो महाकराल मुख बढ़ाभागि राक्षसहोगया दूसराभी यह कह कि इम अपने साथी का दाँव पीछे से लूंगा अन्नर्द्धान होगया कुछ दिनके पीछे राजा सौदास कुछ यज्ञ करनेलगे यज्ञकी सामग्री इकट्ठा कराय वशिष्ठजी तो यज्ञशाला से बाहरगये वह राक्षस जो उसदिन अन्नर्द्धान होगया था वशिष्ठजी का रूपधर यज्ञान्त में आया व कहनेलगा कि हम भूँले बहुतद्वे अभी हमारेलिये गाव भँगावो आते हैं इतना कह चलागया तुरन्त राजाके रसोईवर्दारका रूपधरके आया राजाने कदा बहुतही जल्द कहीं से गुरुजीके लिये मासलाय बनाव वह चटजाय एकमनुष्य मारलाया उसका मास रोध सोते के पात्रमें कर राजाके आगेधरा कि सत्य सत्य वशिष्ठजी भी आये कि प्रेगपूर्वक वही मात्र निवेदन किया मुनि ने तुरन्त जाना कि यह अगक्ष्य मनुष्य का मासहै इमलिये राजा को शापदिया कि जावो जिसमे तुमने हमको मनुष्यमास खानेको दिया इमसे मनुष्यमास खानेवाले अर्थात् राक्षस होंगे यह सुन राजा ने प्रार्थना की कि हमार इम विषय में अपराध तो नहीं पर यथाइये जन्मपर्यन्त के लिये यह शापहै वा थोड़ेही दिनों के लिये मुनिने भी जो समाधि धर देला तो राजाका अपराध न पायागया कदाजाव जन्मपर्यन्तका तो शाप नहीं १२ वर्ष राक्षसहोना पड़ेगा अतःतो मुखसे निकमगया यह सुन राजा ने भी गुरुको शापदेने के लिये क्रोधकर जल उठाया तब उनकी रानी मदयन्ती हाथ जोर खड़ीहुई महाराज ये कुनगुरु है शापके योग्य नहीं सदा पूजन करनेही के लायक हैं राजा ने विचार कि सत्य है पर उम जलको पथिनी में बहाने से अन्नका न होना सम्भ्र और आकार में फँसने में इष्टिका न होना इसलिये अपने दोनों पैरों पे दारुजिया परन्तु वह जल तो प्रनागी राजाके क्रोध से तप्तहोही गया था राजा के पैर कबुने दोगये इसी स राजा का एकनाप परमापवाद हुआ वशिष्ठजी के शाप दे के पीछे हीसरे ित गना राक्षस होगये और वनमें घूष घूम मनुष्य खानेलगे एक दिन घुरने घुराने एा मुनि के पुत्रको देला कि उगरी स्त्री ने उम दित ऋतुस्नान किया था इसलिये



ब्रह्म मेधुन करने में प्रवृत्त था वे दोनों इस गर्वानक राक्षस को देख उठगए  
 परन्तु भगवत् के ब्राह्मण को राक्षसेरूप राजाने पकड़ लिया ब्राह्मणी ने ब्रह्म २  
 गानि विनय किया व कही कि आप राक्षस नहीं हैं इचराकुरगियों के विनय  
 मदयन्ती के पति राजा सौदागहैं हग अभी तम नहीं हुई हमारे पति के माण  
 दान दीजिये पर राक्षमराजने न सुना ब्राह्मणी हाय हाय करती रोतीही रही  
 और उसने ब्राह्मणको खापदी लिया तब ब्राह्मणी यह कहा कि जाहे से हम  
 अभी मेधुनमे तम नहीं हुईथी कि तुमने हमारे पतिको खा लिया ताहे से तुम  
 भी जैभेदी अब कभी मेधुन करने लगोगे तुरन्त गरजाओगे यह थापदे अपने  
 पति के हाइले अग्नि में प्रवेश करगई जब १२ वर्ष के पीछे राजा का शाप  
 छटा और राक्षम में मनुष्य हुये तो रानी के साथ मेधुन करने में उत्पन्न हुये  
 रानीने ब्राह्मणी के शाप की सुधि दिलाई राजा ने उम दिनसे स्त्रियों का सुख  
 छोड़ दिया वशिष्ठजी की प्रार्थना राजा रानी ने पुत्र होने के विषय में की  
 गुनिने पुत्रष्टि यज्ञ कराय रानी के गर्भाधान काया परन्तु वह गर्भ पुरुष के  
 संयोग में तो हुआही न वा ७ वर्षनरु पुत्रही न हुआ तो रानी ने अपना  
 पेट पत्थर से फाराय बालक निकरागा इम कारण उमका अश्मक नाम हुआ  
 अश्मक के मूलक हुये जब पशुसामजी इम पृथिवी का निक्षत्रिया करनेनगे  
 तो इन अश्मक को स्त्रियों ने नङ्गी हो चारों ओर से घेर के बचाया क्योंकि  
 महात्मा पशुसाम नङ्गी स्त्रियों के बीच में कैसे जाने इभी से इनका एक नारी  
 कवच नाम हुआ मूलके दशरथ तिनमे इल विन तिनमे विश्वमह तिन से  
 षट्पाङ्ग परु ममय देवगण देवों में हार तब राजा षट्पाङ्ग को अपने यहा  
 लेगये इनके लड़ने से देवहार देवताओं ने प्रसन्नगे कहा जो चाही वर माँगे  
 राजाने कहा प्रथम यह वराओ कि हम अब कितने दिग जीवेंगे देवों न कहा  
 दो घड़ी बस राजा तुरन्त अनिशीघ्रना से देवप्रसाद बल में गर्त्यलोक में  
 आये व तन मन धन भगवान् वामुनेर में लगाय उन ही गतिको पहुँचव इति  
 में लीगहृय जिनके कारण के ममय मत्सर्पियों ने ये इलोक गाये कि षट्पाङ्ग  
 समान न कोई राजा हुआ है न होगा क्योंकि मूर्च्छेही मर्गे स्वर्ग से जाय  
 भूतल में दग्धिरणारविन्दों में निजलगाय उनही पदवी को पहुँचे षट्पाङ्ग ने  
 दीर्घवाहू जिनका दिनीपगी नामथा तिनमे शुभ्रये वा अत्र में महापद

दशरथ तिनके श्रीगगवान् सस्यारकी स्थिति के लिये अपने अशमे गग लक्ष्मण  
 भारत शत्रुघ्न इन ४ नागों से प्रसिद्ध हो, अतरे श्रीरामचन्द्रजी ने बाल्यावस्था  
 ही में विश्वामित्र की यज्ञ रखाते ताडका नाम राक्षसी को मारा व विश्वामित्र  
 हीके यज्ञमें अधम गारीचको मारा कि बाण के परनही के लागने से वह समुद्र  
 में गिरा व पठी सुबाहुआदि राक्षसों को भी विनाशा दर्शनमात्रही से बहल्या  
 को पापरीहित करदिया जनकपुर में जाग अनक राजाभा का गान मथ जनक  
 की अयानिजा कन्या जानरी के मङ्ग अपना विवह किया मथ क्षत्रियों को  
 क्षयकारी हैदयराज के कुनको नाशनेहो परशुरामजो सा वीर्य दूकिया पिता  
 के वचन से राज्यकी अभिनाषा छोड अपने भाई लक्ष्मण व सीताजी के साथ  
 वनको गये वहा विराध खर दूषणादि व कबन्ध बालीआदि को मारा समुद्र में  
 सेतु बाध मपरिवार लड्डाके राजा महाप्रतापी रावणको मारा उमी रावणकी  
 हरीद्वई निष्कनक सीताजीको अग्नि में प्रवेशकराय प्रत्यक्ष में भी शुद्धराय  
 अनेक देवगणों की स्तुति कीद्वई जनकराजकी तनयाको अयोध्या में लाय  
 भारत ने भी दिग्विजय में तीन करगड गन्धर्व मथे शत्रुघ्नजी ने भी महाबल  
 पराक्रमी मधुक पुत्र लरणनाग गक्षमराजको मारा व मधुपुत्री के स्थानमें मधुरा  
 नाम पुरी बसाई इसी प्रकार नानाबल पराक्रमी अतीव दृष्टस्वभाव राक्षसादिकों  
 को मार पृथिवीका भार उतार राम लक्ष्मण भारत व शत्रुघ्न कि जहा से आये  
 थे वहाँ चलेगये जो कोई अयोध्यावासी श्रीरामान्ति में अधिक अनुगम करने  
 थे वेभी उनक लोकके गये रामचन्द्रजी के कुश व लव दो पुत्र दृये लक्ष्मण  
 जी के अङ्गद व चन्द्रसेतु भारतके लक्ष व पुष्कर शत्रुघ्न के सुबाहु व शूरमेन  
 कुशके आतिथि तिनके निषय तिनके नल नन के नभ नम के पुण्डरीक तिन  
 के क्षेपधन्वा तिनके देवानीक तिनके अहीनगु तिनके रुक रुक के पारिवार  
 तिनके दल दलके राज शलक उष्य उष्य के यज्ञाभ तिनके शुकनास ति  
 नके उत्थिनाश्व तिनके विश्वमट जिनका दूषग नाम दिग्मयनाम है जिनमे  
 याज्ञन्यकी ने योग साँवा दिग्मयनाम क पुष्य पुष्य के धुरमन्त्रि तिनके  
 सुदर्शन तिनके अग्निवर्ण तिनके गीम्य तिनके भीमक जो योग भाग वा  
 रण तिनके दृये अरुमी कनापप्रम में दिते ह मरुके पशुधन पठी छिा सूर्यवन  
 के उत्तम रुनेरान होंगे डाके सुगति तिनके जसपय तिनके गरुडान

तिनके बृहद्वन जिनको अर्जुन के पुत्र अभिमन्युने महाभारत में मारा ॥  
 चौ० ये इक्ष्वाकु वंशके भूषा। सकल प्रधान प्रधान निरूपा ॥  
 एक ओरमों इतन्यन नहीं। गने करोरिन की गणनाही ॥ १ ॥  
 इनके चरित सुनतही प्रानी। पापन सों छूटत है शानी ॥  
 लहत सकल सम्पतिमनमानी। कहैलग मुनि तिनके फलमानी ॥ २ ॥

## पांचवां अध्याय ॥

श्लो० कहच पचमाध्याय महै निमि वशिष्ठकर शाप ॥

जागै देहतजी उभय अरु ताजशकलाप ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले गता इक्ष्वाकु के पुत्र जो निमि नाम थे उन्होंने ने इक्ष्वाक  
 वर्षनक करने के विचार में यज्ञ का भार्गव कराया व वशिष्ठजी को यज्ञ काने  
 को कहा वशिष्ठजी न कहा हमको तुम्हारे कहने से प्रथम ही इन्द्र न ५०० वर्ष  
 तक यज्ञ करने के लिये न्योता है इस निमित्त पहिले उनका यज्ञ करा जावे फिर  
 तुमको करावे पर हमको बुगाना ऐसा न हो कि अन्त किमीसे करालेवो रा  
 जा सुनके हों नहीं कुछ न बाले वशिष्ठजी ने जानाभी कि राजाकी इच्छा  
 हमारे वहां जानेभी नहीं है पर बलोगये व इन्द्रको यज्ञ कराने लगे राजाने भी  
 गौतमादि मुनियों को बुवाय यज्ञारम्भ करदिया इन्द्रकी यज्ञ मगाए जाने पर  
 वशिष्ठजी सद्वृत्तदी शीघ्र निमि की यज्ञ कराने की वांछाम जाये व देता कि  
 गौतमादि आदि से अधिक यज्ञ कराचुके हैं वम वड़ा क्रोधकर सोनेहुये राजा  
 को शापदिया कि जाव तुम्हारी यह देह न रहे निमित्त जागने पे जाना कि  
 गुरुने शाप दियाहै आपने भी शाप दिया कि तिमसे हम सोने भ विना फदे  
 मुने हमको हुये शाप दिया तिमसे इस दुष्ट गुरुकी भी देह न रहे यह कह  
 गरीर छोड़ दिया राजाके शाप से वशिष्ठ जब भरे तो उनका तत्र मित्रावरुण  
 मुनिकी देह में समाय गया व उर्वर्गा अपनाको देव वर्ण न्युन हुआ एक  
 फलश में मिरा तिमसे वशिष्ठ व अगस्त्य दो पुत्र हुये निमिकी देह भी सेज  
 की नागों धरती गई इसमें तुम्हारी गरीमी वी गही सड़ी चुनी नहीं यज्ञ मगाए  
 होने पे जब अपना अपना भाग लेने देवतालोग जाये तो गौतमादि ऋषिजी  
 ने कहा कि राजाको आर्षीर्वाह देके विनाइये देवोंने निमि को बुजाया

तो बोले कि हे देवगणो ! आपलोग सब-समार के ऊपर कृपा करने हैं पर यह नहीं जानने कि उत्पन्न होने व मरने में कितने कितन कष्ट होने हैं उमंग बड़ ही क्लेश होने हैं इसलिये अब हम जीना नहीं चाहते वरन अत्येक प्राणी की पलकपर बैठा चाहते हैं कि सब की स्मरण रहेंगे देवोंने कहा अच्छा तब मे प्राणी पलक मारनेलगे राजा ने पुत्रतो हुआही नहींथा कि उनके पात्रे राजा होता इसलिये गजहीन राज्य होने से चोरों ने बड़ा उपद्रव मचाया तब ऋषि लोगों ने आय राजशरीर तथा तिम्रमे परुपुत्र हुआ उमका जनकनाम परा विदेह होने से विदेह मयेजाने से प्रियि ये सब नाम उमी बालक के हुये विदेह के उदारवमु तिनसे नन्द्रिवर्द्धन तिनसे स्वकेतु तिनके देवरात तिनसे बृहस्प तिनसे कृति कृतिसे विबुध विबुधसे महाधृति तिनमे कृतिगत तिनमे मह रोगा तिनसे सुवर्णरोमा तिनके इस्वरोमा तिनके महाराज सीरष्वज हुये इनके पुत्र होनेके लिये यज्ञ करने के निमित्त सुवर्ण के दलसे पृथ्वी जोती जानी थी कि कृष्णे सीतानाम कन्या उत्पन्नहुई सीरष्वजके भाई का कुम्भज नाम था सीरष्वज के भानुमान तिनके शतद्युम्न तिनके शुचि शुचिके ऊर्जवह तिनके सत्यष्वज तिनके कुणि कृणिके अजन तिनके ऋतुजित तिनके अरिष्टनेगि तिनके श्रुतायु तिनके सुाशर्व तिनके सजय तिनमे क्षेमारि तिनके अनेना तिनके भीनरथ तिनमे सत्परथ तिनके सात्यरथि तिनसे उपगु तिनमे था तिनसे शाश्वत तिनमे सुभन्वा तिनमे सुमाम तिनमे सुधुन तिनसे जय तिनसे विजय तिनसे ऋत तिनसे मुनय तिनमे वीतरुच्य तिनसे धृति तिनमे बहूलाश्व तिनसे कृति वम इन्हींतक यह जनकका वंश चना ये,मच मिथिनापरीषे राजा गात्मविद्याविशारद हुये हैं ॥

## छठा अध्याय ॥

श्लो० कह्य छठे अध्याय मई ऐल कथा रवि पत्त ॥

सुनतु मुजन जामे बहुरि चन्द्रश परदास ॥ १ ॥

मैत्रेयमुनि बोले हे भगवन् । आपने सूर्यचरा कहा वह हगने मुना अथ चंद्रवंश मुना चारते हैं जिस वंशके राजाओं की मन्तति अपनक कही जानी है रूपाकर चन्द्रवंशही मुनाइये पराशरमुनि बोले हे मुनिवर्य । मुनिये सोम

वशकी कथा कहते हैं जिसमें अनेक राजा बड़े २ प्रतापी कीर्त्तनीय हुये हैं यह  
 वश बड़े २ प्रतापी यशस्वी गुणवान् नहुपयथानि कार्त्तरीर्ष्याञ्जुनादि राजा-  
 ओं से शोभित है सुनिये भगवान् विष्णु ही नाभिमें कमल जामा उमसे प्रसा  
 जी हुये तिनके अत्रि अत्रिके सोग इन चन्द्रमाको ब्रह्माजी ने सब जन्माद्योप  
 धियों व नाक्षत्रों व नक्षत्रों का राजा बनाया उन्हों ने राजसूय यज्ञ किया इस  
 यज्ञके करने व सभके राजा होनेमें इनको बड़ा अहङ्कार होगया उसी अहङ्कार  
 से सब देवोंके गुरु बृहस्पतिकी तारा नाम स्त्री जवरदस्ती हरली बृहस्पतिजी ने  
 ब्रह्मासे कहा उन्होंने व सभर्षियोंने बहुत संभ्रमताया बुझाया पर उन्होंने गुरुकी  
 स्त्री न छोड़ी बृहस्पति से वैर होनेके कारण शुक्राचार्य चन्द्रमाके सहायक हुये  
 व बृहस्पतिसे सकल विद्या पढ़नेके हेतु इन्द्रजी बृहस्पतिके सहायक हुये जिम  
 ओर शुक्राचार्य हुये उप ओर जम्भ कुमादि भवे दैत्य दानवहुये व सभ्रागके  
 लिये बड़े २ उपाय करनेलगे बृहस्पतिकेभी सकल देवमहित इन्द्र सहायक हुये  
 इमंभानि दैत्य व देवों से ताराके लिये बड़ागरी तारकामय नाम सभ्राग हुआ  
 उसमें सब शस्त्रास्त्र दैत्यों ने देवोंके ऊपर व देवोंके दैत्यों के ऊपर चलाये इम  
 सभ्रागसे चलायगातही सब जगत् ब्रह्माके शरण कोगये ब्रह्माजीने आप शुक्रा-  
 चार्य बृहस्पति व चन्द्रमा व देवता दैत्योंको समझ व तागकी बृहस्पति को  
 दि तादिया इस अन्नभूमि तारके गर्भ भ्रमयाया उभे देव बृहस्पतिने कहा कि  
 हमारे वनमें अन्य किसीका बीज न रहने पावेगा इससे इम गर्भको गिरायेदा  
 ता हमारे यहाँ राजे बेचारी पतिव्रता तारा ने पति ही भ्राताभ्राय सभ्रागमें पैड  
 गंगा गिरादिगा वह बाँक फँसही ऐसा देदीपगा व ने मसी हुआ कि देव  
 ताओं का तेज उसके आगे छिागगा अब उम मनोहर बालकको देव बृहस्पति  
 व चन्द्रमा दोनोने चाहा कि तै त्र देवगणों ने ताग से पूछा कि नराही मत्त  
 कहना यह बालक बृहस्पति का है वा चन्द्रमाका यद्यपि भनीगाति देवोंने पूछा  
 पर गोरज्ज्जा के तारा मुख न बोलो त्र वह बालक आप बोला कि हे देव !  
 हमारे पिताको क्यों नहीं बतानो बनावनी बनावनी नो अभी वह गोरज्ज्जा  
 कि नु अपनी दुपनाहा फल पावगी त्र प्रतापी ने बालक को शोक गसन  
 गे ताग से पूछा बरतम बनावे लेहो बृहस्पति को है वा चन्द्रमा का गोरज्ज्जा  
 के कापसीहुइ ताराने औरसे कहा कि चन्द्रमाको है त्र चन्द्रमाने उठाणियो तार

बड़ा प्यारकर कहा प्रेम बड़े पड़ितहो तुम्हारा बुझनाम उगत है यह कह अपने घर लेगये यह कथा जागे कही चुकेहैं जैसे बुझने पुरुखा को उतरन किया जो कि बड़े तेजस्वी दानी यज्ञरुगी हुये जितके गुण सर्गलोक में नारदमे सुन मित्रावरुणके शापसे जब उर्वशी मर्त्यलोकको आई तो उन्हीं पुरुखाके घरमें रही राजा ने भी देखा कि सब लोककी स्त्रियों में यह सर्वांगिणी है इतलिये अतीव प्रेमपूर्वक उममें चित्त लगाया दोनों का चित्त एक दूसरे में ऐतानला कि देह भेदादिकी भी मुधि भूनागई राजा द्विडाईमे उर्वशीमे बोले हे सुनयने। हम तुम्हारे सग विहार किया चाहते हैं यह सुन उर्वशी बोली अन्धा परन्तु हम कुछ करार करती हैं जवनक आप पूर्ण करतेरहोगे अवश्य हमारे सग विहारोमे राजा ने कहा जो करार करनाहै हमने कही उमने कहा ये हमारे दो भेद हैं इनको सदा शयनके समीपही आप बांधे बरनाये रहियेगा व मैयुन के समय को छोड कभी भी आपको नग्न न देखूगी और घृनही भोजन करूगी जब इन में से कोई बात न होगी तो चलीजाऊगी राजाने कहा ऐसाही होगा यह कह उर्वशी के सग चैत्ररथादि वनों व कमल फूलेहुये तड़ागों के समीप भोगविनास करनेलगे यद्वातक कि ६००० वर्ष बीतगये राजाका प्रेम उसमें बढ़नाही गया उर्वशी भी राजाके सग भोगविनास करने मे इन्द्रपुरी के सुच भूचमई परन्तु उर्वशी बना सुग्लोनिवासी गन्धर्व अस्पता व देव गणा को दरगोक गणीक नहीं लगनाथा इतलिये उर्वशी व पुरुखाके करार के जाननेवाला विश्वायसु गन्धर्व रात्रि में गता को सोने देव उर्वशी का एक भेदा चुरालेगया भेदा आश्रममें जाच बोला उर्वशी सुन रुद्धो गी कि मुक्त अनाथ बेचारीका पुत्र कौन लेगया अरमें शिमके शरणको जाऊं राजा ने सुना परन्तु यह सोचा कि जो हम नगे उरों को उर्वशी देनेगी तो चलीजायगी इसलिये न उठे तबसक ओर गन्धर्व आये और इनसभी भेदा चुरालेगये उसवाभी शब्द उर्वशी सुन कहेलगी मुक्त अनाथता दृगप भी पुत्र कोई लेगना अब किसके शरणजाऊ हम नमुसक टपसक गन्धर्व के संग नादकपी यह सुन राजा न सदतके जाना कि अधिपारी रात्रि में हे उर्वशी नगेभी हमको न देखसकेगी इतलिये चम्पूदिनही गाननवागे हृष्यभद्रादाक कहनेहुये टोरे गन्धर्वों ने इनमें में बड़ी चटहीनी विजुनी चमकाडी शिममे

बनाय उजियाली छायागई उर्वशी राजाको नगेदेख उठके आकाशको उषागई  
 गन्धर्व गेहें छोड़ आकाश पो चलेगये राजा भेड़ियाय परमानन्दित है अपने  
 शयनस्थान में आये पर उर्वशीको न देख विशिषोकी भाति रोनेलगे हे प्रिये।  
 वहांगई ठाढ़ो वैज्रा इत्यादि वचन कहने लगे उर्वशी ८ अन्य अप्सराओंकेसग  
 एकवार कुरुक्षेत्र में आई राजा देख पकड़ने दारे तब बोली राजन् रोदन न की  
 जिचे आपसे मृग में गर्भहै वर्षदिन के पीछे इसी स्थानपर आइयेगा मैं जाय  
 आपको पुत्रदेजाऊगी और एक रात्रि मग भी गृही राजा इस बात को सुन  
 परमानन्दितहूये वर्षदिन चीतने पै उर्वशी आई आयुर्त्राम पुत्र देगई व एक  
 रात्रिह अन्व्य पुत्रके लिये गर्भ वारण करालेगई इसीभांति वर्ष २ के पीछे प्रेक्षार  
 आई व पुत्र देदेगई अन्य अप्सराओंये राजाती सदा बड़ाई करनी रही जिससे  
 सबका मन होताया कि इस राजा के मग कभी हम भी विहार करने राती तो  
 अञ्छाया एकवार राजा से उर्वशी ने कहा कि आप इन गन्धर्वों से वरमांगिये  
 तो हमें आपको देडालें राजा ने गन्धर्वोंसे कहा अन्य किसी पदार्थकी अंगि-  
 लापा हमको नहीं केवल उर्वशी के लोह के जाने व इस क सग विहार करते  
 की प्रभिलापाहे सो आपलोगों मे मांगनेहैं गन्धर्वों ने यह सुन एक अग्नि-  
 स्थाली राजा को इस आशय से दी कि इसमे अग्नि निकाल अग्निहोत्र  
 रनेसे उर्वशीलोक मिलेगा वहा उसनेमग विहागी होगा यही राजासे कही  
 दिया राजा उम स्थाली को लेआये आन २ एक वन में विन्यना करनेलग  
 कि हाय ! गने बड़ी मूर्खता की जो स्थाली लाया उर्वशी न लाया यह गोन  
 स्थाली वनमें धर अपने पुरको आये रात्रिको सोयमागे तो सोरने लगे कि  
 उर्वशी के लोह पाने के लिये गन्धर्वों ने हमको अग्निस्थाली दी थी सो  
 एक वन में धर आये अब जाय लेजायें यह विचार जहां धाआये मे गये  
 अग्निस्थाली वहां न थी उम स्थानये एक पिपल जगआपा था जिसके गीतर  
 एक गमीका बूझगी था उसे देख सोचे कि ये वृक्ष उमी अग्निस्थालीही सजमे  
 हुये हैं इससे इनसे दो लकड़िया लोडलेवें उनका व्यास में घिरे उगये तो  
 अग्नि उत्पन्नहो उर्वशीलोक पाने के लिये उमी की उपायना करे यह वि-  
 चार लकड़ी अपने पुरको लाय यहा लकड़ी जंगुनों से नापने २ मायत्री पहने  
 लगे मायत्री पढ़ेही मायत्री के अक्षरों के समान बर्थात् २५ अंगुली की ल

कहीं होगई उसे गध अग्नि निकाला उम अग्निमें अनेक यज्ञकिये जिनसे गन्धर्वलोक गिला व उर्वरी का सगङ्गा एकही अग्निसे राजा पुरूवाने तीन अग्नि उत्पन्न किये ॥

## सातवां अध्याय ॥

दो० कश्यप मत्तमाध्याय महँ वश अमावसु केर ॥

जहँ जहन्वादिक राजकुल जन्म परशुघर टेर ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले राजा पुरूवा के उर्वरी से आयुध धीमान् अमावसु पि श्वावसु शतायु ये ६ पुत्रहुये तिनमें अमावसु के भीमनाम पुत्र भीमके काचन काचन से सुहोत्र सुहोत्र के जहनुराजर्षि हुये जो कि यज्ञ करतेये उस समय गंगाजी का जल बाढ़के यज्ञ सागभी बोरनेलगा गगवान् को ध्यानकर परम क्रोध सयूक्तहो सब गंगाकी गंगा पीगये तब मर्षिन्नों ने भ्राय राजा की बड़ी प्रार्थनाकी व कहा कि अब गंगाजल छोड़ दीजिये ये तुम्हारी कन्या हो-जावेगी यह सुन दहिनेफान से जहनुराजर्षि ने गंगाजल छोड़दिया तो कि धारावही तबसे गंगा का एक जाह्नी नागहुआ जहन् के मुजन्तु तिसके अ-जक तिसके मलाकाश्रय निमके कुश कुशके कुशाभ्य कुशनाम अर्चय अ-मावसु ये ४ पुत्रहुये तिनमें कुशाभ्यने इन्द्रके समान पुत्रहोने के लिये तपस्या की तिसकी उपतपस्या देख इन्द्रने जाना हमारे सहस्र सोई नहा इमनिये आपही आय पुत्रहुये सोई पद्मपत्नी राजागाधि दूये गाधि के मत्पत्नीनाम कन्या हुई तिसको भृगुर्षी ऋचीरुमुनिने मागी राजा गाधिने देना कि बड़े क्रोधी इम वृद्धनाक्षण को कन्या न देनी चाहिये इमनिये जिन घोड़ों का पकवान श्वाग रग हो अन्य सब शरीर चन्द्रममान युक्तवर्ण हो चान पवा के समान जहदहो ऐसे १००० घोड़े कन्या के दामगागे कि मुनि न कहीं पाँगे न हग विवाद करगे यत् सूर ऋषि वरुण के समीप उभेगये उभेही सहस्र घोड़े गांग राजाकी देदिगे व मत्पत्नी का विवाह भगिन्या जपनी कुत्री भ भ्राय पुत्रहोने के लिये व्रतार्थ स्थापन कर थीर चाई मत्पत्नी ने कश हमार भाई पत्नी दे चाही थीर जीव उरदिने तो माता गाधि भाई होना मुँगे छत्रि का वीर्य स्थापन कर दुनरी थीर बनाई व कहा कि यह थीर तुम जाना व दुनरी कुँ



माता इतना कह वाका चलेगये सत्यवती की माता आई कहनेलगी हे  
 बेटी । सब कोई जाना पुत्र गुणी चाहना है स्त्री के भाईको नहीं वैसा चाहना  
 इसलिये मुनिने तुम्हारे निमित्त अच्छी खीर बनाईदोगी भो यह तुम इमको दो  
 हपारी तुम खावो क्योंकि हगारे पुत्रमे मरुत सुगण्डत की पालना होनीचा  
 दिये ब्राह्मण को बहुत बचवीर्य दिया करना है यह कह दोनों ने परस्पर खीर  
 बदललिया व माया मुनिने वन से आय सत्यवतीको देना तो अतीव विचारा  
 क्षत्रियवीर्य रूप पानेमे मुलहोगया था कहा दुष्टे तूने जान रनाहे कि भानी  
 गातामाली खीरलाई यह बहुतही खराब हुआ क्योंकि हगने इस खीर में सकल  
 शूरा वीरता वीर्यवल सम्पत्तिया आरोपित की थी व तुम्हारी खीर में सम्पूर्ण  
 शास्त्रिज्ञान सहनशीलतादि ब्राह्मणों की सम्पत्तिया इम उलटापलटी के कारण  
 तुम्हारे अभिषयानक कठोरसख धारण करनेवाला कारण में निपुण क्षत्रियोंका  
 आचार करनेवाला पुत्रहोगा व तुम्हारी माताके परमजिनेन्द्रिय यम नियमकारी  
 ब्राह्मण स्वभाव गहातेजस्वी पुत्रहोगा यहसुन सत्यवती बहुत भयभीतहो मुनिके  
 पैरोंपर गिरी वा यांती हुई कहनेलगी भगवत् मेंने अन्न न में ऐसा कामरुपा  
 है कृपाकीजिये एसा पुत्र न मेरेहो चाहे पौत्रहो मुनिने कहा अच्छा पौत्रही ऐसा  
 होगा कुछ दिनके पीछे सत्यवती के जमदग्निगुनि हुये व तिसकी माता के  
 विश्वामित्रजी सत्यवती मरने पे कौशिकी नदी हुई जमदग्निजी का विवाह  
 इक्ष्वाकुपुत्री रेणुताजाकी कन्या रेणुता के साथ हुआ निम्न जमदग्निजी ने  
 मरुतलाक गुरुनारायणजी के अश क्षत्रियोंके वन गगन भगवान परशुराम  
 जीको उत्पन्न किया विश्वामित्रजी के दो मृगवन्शी सुनशोक नामपुत्र देवों  
 के देनेमे हुये जिनका पीछमे देवगत नामहुआ निमके पीछे और भी मधुकर  
 जयकृत देवदेव अष्टक कच्छप हातीरुकादि विश्वामित्रके पुत्र हुये तिनके बहुत  
 कौशिकगोत्र अथ व ऋषियों में हुये ॥

## आठवां अध्याय ॥

१००- १२५- १२६- १२७- १२८- १२९- १३०- १३१- १३२- १३३- १३४- १३५- १३६- १३७- १३८- १३९- १४०- १४१- १४२- १४३- १४४- १४५- १४६- १४७- १४८- १४९- १५०- १५१- १५२- १५३- १५४- १५५- १५६- १५७- १५८- १५९- १६०- १६१- १६२- १६३- १६४- १६५- १६६- १६७- १६८- १६९- १७०- १७१- १७२- १७३- १७४- १७५- १७६- १७७- १७८- १७९- १८०- १८१- १८२- १८३- १८४- १८५- १८६- १८७- १८८- १८९- १९०- १९१- १९२- १९३- १९४- १९५- १९६- १९७- १९८- १९९- २००-

१००- १२५- १२६- १२७- १२८- १२९- १३०- १३१- १३२- १३३- १३४- १३५- १३६- १३७- १३८- १३९- १४०- १४१- १४२- १४३- १४४- १४५- १४६- १४७- १४८- १४९- १५०- १५१- १५२- १५३- १५४- १५५- १५६- १५७- १५८- १५९- १६०- १६१- १६२- १६३- १६४- १६५- १६६- १६७- १६८- १६९- १७०- १७१- १७२- १७३- १७४- १७५- १७६- १७७- १७८- १७९- १८०- १८१- १८२- १८३- १८४- १८५- १८६- १८७- १८८- १८९- १९०- १९१- १९२- १९३- १९४- १९५- १९६- १९७- १९८- १९९- २००-

यमानमुनि धर्म मन्त्रापुराण नाम आशुनाम सुपते उपासी मद्रुकी कर्मा

के साथ विवाह हुआ तिसमें उन्होंने नट्टपक्षत्रवृद्ध रश्म राजि अनेना ५ पुत्र उत्पन्न किये उनमें क्षत्रवृद्ध के मुनहोत्रनाम पुत्रहुये तिनके काश लेश गृत्स मद ३ पुत्रहुये गृत्समद के गोनकेय हुये जिन्हों ने चातुर्वर्ण्य यथाविधि कैलाया काश के काशिराज तिनमे दीर्घवतम तिनके धन्वन्तरि हुये ये सकल संसिद्धियों के जाननेवाले व सब शास्त्रोंके वेत्ताहुये भगवान् नारायण न क्षीरमागरमें जन्महोनेके लिये इनको वरदान दिया व कहा कि काशिराजके गोत्र में अवतार ले तुम वैद्यविद्या के ८ भागफरोगे व यज्ञोंमें तुम्हारा भागगी लगा कोगा तिन धन्वन्तरि के केतुगान् हुये तिनके भगीरथ तिनके भी दिवोदास तिनके प्रतर्दन इन्होंने भद्रश्रेययवण का नाश किया उसमें अनेक शत्रुओंकी जीता इससे इनका दूमरा शत्रुजित् नामहुआ इन्होंने अपने पुत्र को वरम २ कर पुकारा इसलिये वह वत्सही नाम होगया पर सत्य बोलने के कारण उन्हीं का श्वनष्वजनाम हुआ फिर इनको कुवलयनाम एक अश्व मिला इससे कुवलयारथभी एक नाम हुआ तिन वरमके अलर्कनाम तनय हुये जिनके लिये यह पद्य अगभी गायाजाना है ॥

चौ० छासठि सप्त वर्ष गृहि माहीं । धिन अलर्क दूसर नृप नाहीं ॥

युवा अवस्था में क्षिति भोगा । इन काहू कर नाहिं नियोगा ॥ १ ॥

अलर्क के सन्नर्ति नाम पुत्रहुये तिनके सुनीध तिनके सुकेतु तिनके धर्मकेतु तिनके सत्यकेतु तिनके विभु विभुके सुविभु तिनके सुकुमार तिनके भी धृष्टकेतु तिनके वैनहोत्र तिनके भार्गव भार्गवके भार्गवभू इनसे चातुर्वर्ण्य प्रवृत्ति ये काशसज्ञक राजाहुये अब राजिकी मतति सुनिये ॥

## नवां अध्याय ॥

दो० कल्प नवम अध्याय महर् रजिसुत शग पुम्हान ॥

त्रिमि नाश्यो पुनि क्षप्रवृष वदा गधन मज्जया ॥ १ ॥

पगनरमुनि बोले राजा रजिके अनुनपगकर्षी १०० पुत्र हुये उभी मपय दवना देत्यासे दवामुनाम मप्राम होनेरान्वाया देवता व देत्य दांतीने ब्रह्मार्जामे पृक्षा कि हमनांगों में शीत जान । ब्रह्मार्जामे पृक्षा निमर्वा ओर राजा गतिक

पुत्रहोगे देवोंने अतिशीघ्र जाय रजिमे कहा आप अपने पुत्र भेजें तो हम देवों  
 से जीते रजिमे कहा । हुन अच्छा भेजेंगे पर देवना शोफे हारनेपे इन्द्र हमी होंगे  
 देवोंने कहा इन्द्र तो हम अपने प्रहादहीको धनावेगे चाहो सहायता करो व न  
 करो यह कह चनेगये इनने में देवगण आये उनमे भी इन्द्र होनेके लिये कहा  
 उन्होंने कहा अच्छा तुम्हीं इन्द्र होना जिनाओ तो रजिने अपने पुत्रोंको ले  
 देवोंकी सहायता की उसमें लक्षों देव मारे व चने प्रचाये भाग सड़ेहृये इन्द्रकी  
 प्रियतम पुत्र पुन्य राजा रजिके चरणों पे गिर कहने लगे आपने हृगकी  
 अगम प्रिया इमलिये हमारे पिताहो व धन्यहो कि जिनका पुत्र में इन्द्रहूँ यह सुन  
 राजा रजिने हैंके कहा कि इम भातिके प्यारे व र त तो शत्रुभी कड़े तो उसके  
 ऊपर दया की जानी है फिर तुमनो देवताहो अच्छा जाव हुन इन्द्रपदवी लेंगे  
 लड़का वनके मागने हो तुम्हीं लेजाव यह सुन इन्द्र तो इन्द्रपदवी भोगने लगे  
 रजि अपने घरआये अपना राज्य भोगनेलगे जय रजिगरे तब नारदजीने उनके  
 पुत्रोंको बहँसाया कि इन्द्रपदवी तो तुम्हारे वापकी है अब क्यों नहीं लेते रजि  
 पुत्रोंने यहसुन इन्द्रके समीप जाय निनकी पदवी मांगी इन्द्रने नहीं दी पर ये तो  
 वड़े बर्जाये ज्वरदम्नी इन्द्रकी जीत जाय इन्द्रपुत्री का राज्य काने लगे इम भानि  
 बहुत दिनोंतरु ये लोग इन्द्र ने द्वे एकदिन रुहीं एकान्न में चडेइय वृःसावि  
 जीकी देव दीनतापूर्वक प्राप्तिके इन्द्र सेजे महागज अब तो कोई बरकेपत भी  
 नहीं देना सीपकी फौज रुके स्याहरे मो बनाइये वृदम्पनिने बड़ा प्रथगदी ऐसा  
 कहेहोने कि देवोंकोही किनी व किमी उपाय मे हमने पाये मयके रजिके नि-  
 कट नाहक गये अच्छा जब थादेही दिनोंमें तुमने तुम्हारे पदवी स्थापित क्रा-  
 वेगे यह कह प्रतिदिन उन लोगोंकी बुद्धि अभिचार की और नमानेनगे व  
 पूर्वं इन्द्रकी बुद्धिके लिये एवनादि कते महागज कि उन विचारों की बुद्धि  
 पमे मोहपे डाली कि वे नाहकणी के री गुमभर्मस्यागी देवने पाएहुन हो  
 गये तब ये नानाप्रकार के अय्य काने मे बनदीन होगये वर इन्द्रो सारो  
 गार त्रितोकी का राज्य लेलिया व पुरोहित के मन्त्रों मे कि वनराव होगये  
 जो कोई गर इन्द्रके पदच्युता होनेकी कथा सुनता है वह अपने अधिार से  
 फणी नदी गिम्ता रसाके कोई पुत्र न पा वरहृदके मन्त्रिय हुये निनके सडय  
 किनप विनय निनके सहाय विरहे स्पर्द्धन निनके महद्वे निनके अदीन

तिनके जयत्सेन तिनके सम्भूति तिनके क्षत्रवर्मा इनने क्षत्रशुद्ध के वशम दृये अब नदृप का वश कहने हे ॥

## दशवां अध्याय ॥

दो० कह्य दशम अध्याय महँ नदृप तनूज वयाति ॥

वश सुने ज्यहि नरनको अभिमत सुफलददानि ॥ १ ॥

पराशामुनि बोले यति ययाति मयाति अयाति वियाति कृति ये ६ नदृप के षडे पराक्रमी पुत्रदृये यतिने राज्यकी इच्छाही न की इसलिये उनसे छोटे ययाति राजादृये इनके दो मित्रार्थी एक शुक्राचार्य्य की कन्या देवयानी दूसरी वृषपर्वा दैत्यराजकी शर्मिष्ठा उनमें देवयानीसे यह व तुर्वसु दो पुत्रदृये दृत्य अनु पुरु शर्मिष्ठा से शुक्राचार्य्य के शापसे युवावस्थाही में ययाति वृद्धहोगये शुक्रकी प्रसन्नता से अपनी बुढ़ाई जेष्ठपुत्र यहको दे उनकी युवावस्था आप लेनेके लिये कहा कि तुम्हारे नानाके शापसे युवावस्थाही में हमको वृद्धावस्था आ गई है सो तिसे तुम्हारे नानाकेही अनुग्रहसे तुमको दिया चाहते हैं व तुम्हारी युवावस्था द्वावार्षके लिये हम लिया चाहते हैं क्योंकि अभी भोग करनेसे हम तृप्त नहीं दृये इससे तुम उसके देनेमें निषेध न करना यह तुन यहने वृद्धावस्था की इच्छा न की तब ययाति ने शाप दिया जात्र तुम्हारी सन्तान में से कभी कोई राजा न होगा इसके पीछे राजाने दृत्य तुर्वसु अनुने भी अपना बुढ़ाग देने व उनकी जवानी लेनेका कहा उनमें भी प्रत्येक ने अंगीकार न किया तो हरएक को वही शापदिया जो यहको दियाथा तब सब मे छोटे शर्मिष्ठा के पुत्र पुरुसेकहा उन्हाने वही प्रसन्नतासे अपनी जवानी पिताकोही न पिताकी बुढ़ाई आपने ली उस पुत्र की जवानीमे पिताने १००० वर्षनक धर्ममहित क्रियों के सग भोगकिया व राज्य पाला पोषा विवाहिता स्त्रियाके विशेष एव विन्वाचीनाग अप्सरा भी भोग करनेके लिये थी उसमें प्रतिदिन माग सतदृये यही चाहने थे कि अब तृप्त होजायेंगे अब तृप्त होवटें परंतु दिन २ तृष्णा बढ़नी ही गई शांत न हुई एक दिन उसमे हाथ सीप ययाति यह कया गानेजगें ॥

चौ० कवां न राम भोगसों रामा । शांत होत यह तस्य कल्याण ॥

जिमि रविसों नहि क्षन-सुनाई । यदने गान न यदने अफरई ॥ १ ॥

जो पृथिवी महँ, ब्रीहि यनादी । पशु सुवर्ण नारी इन भादी ॥  
 इन एवहु सों हटत मन नाहीं । तासों धुष त्यागाहि, इन काहीं ॥ २ ॥  
 जो न पाप सत्र भूतन माहीं । करै भाव अपनो दुख वाहीं ॥  
 तो समदृष्टि पुरुष कहँ सवहीं । दिशा होत सुखमय न दुखवाहीं ॥ ३ ॥  
 जो दुर्मति दुरत्यज अरु जोई । खात पचत नहिं तृष्णा सोई ॥  
 त्यहियागत धुष सय सुखलहर । वेखु निचारि कहा षोड बहर ॥ ४ ॥  
 दांत खियात चलत अरु केशा । श्वेत होत अरु सरत कुवेशा ॥  
 पर न घनाशा जीवन आशा । कषहुँ घटत नितघटतसुलाशा ॥ ५ ॥  
 विषयासक्त चिचहे मेरो । वर्ष सहस्र गये यहि फेरो ॥  
 ताहू पर घृष्णा दिन राती । बढतगात विषयन महँ घाती ॥ ६ ॥  
 तासों यहि तजि मैं मनआपन । लाय मक्ष महँ करहुँ सुजापन ॥  
 हे निर्द्वन्द्वरु निर्म्मम नीके । मृगन सग विचरहुँ विधि ठीके ॥ ७ ॥

पराशरमुनि बोले कि पुरु अपने पुत्रमे अपनी जरावस्थाले, उनकी युवा  
 वस्था उनको दे व अपना राज्य भी उन्हींको दे आप तपस्या करने को, वनको  
 चक्षेगये दक्षिण व पूर्व की दिशा में तुर्बसुको स्थापित किया था पश्चिम में  
 दुह्यको दक्षिणमें यदुकी उत्तरमें अनुको इन सपको मडलापिप राजा बनायदिया  
 सब पृथ्वीके राजगजेश्वर पुरुही को बनाय राजा यगाति नाको गये ॥

## ग्यारहवां अध्याय ॥

वो० अब शुभ पचाप्याय महँ अनिपुनीत पदुपस ॥  
 काल्य जज्ञ हरि अवसरे यिन्हें गुष्ट विप्यस ॥ १ ॥  
 ग्यारहवें अध्याय महँ पार्श्वीय्ये नृप साध ॥  
 जो तातिगर्वित है मोउ परशुराम के हाथ ॥ २ ॥

पराशरमुनि बोले कि इसके पीछे यषानि के प्रपण पुत्र यदुका वंश बढेगे  
 त्रिमर्ग अशेषलोका निवासी गनुष्य गंधर्व यक्ष राक्षस गुहाक त्रिभुरूप अप्स-  
 र उग विद्वान् देव टानव देवर्षि ब्रह्मर्षि मोक्षकी इच्छा कियेहृये व प्रमात्तव  
 फानु मोक्षकी वाञ्छा कियेहृये इनसबों से स्तुति कियेहृये अपरिगितपादात्म्य  
 अपने जन्ममें श्रीकृष्णभदने अवता लिया इस यदुवध के मृगने में मनुष्य

सब पापोंसे छूटजाताहै क्योंकि इसमें विष्णुनाग परब्रह्म परमात्माने अवतार लियाहै यदुके सहस्रजित् क्रोष्टु नल व रघु ४ पुत्रद्वये सहस्रजित् के शतजिष्ठ तिनके हेहय वेणु व हय ३ पुत्रद्वये हेहय के धर्मनेत्र तिनके कुति कुतिके साहजि तिनके महिष्मान् तिनके भद्रश्रेण्य तिनके दुर्दम तिनके धनक धनक के कृन्वीर्य कृताग्नि कृतवर्मा कृतौजा ये ४ पुत्र द्वये जो कि वीर्य से अर्जुन हुये जो कि सप्तर्षीपत्नी पृथिवी के पति व जिनके सहस्रबाहु थे जिन्होंने भगवान् विष्णुके भवतार अत्रिके पुत्र दत्तात्रेयजी की उपासनाकर सहस्रबाहु अधर्मसेवा निवारण धर्मसे पृथिवी जीतना धर्मही से पालनकर शत्रुओं से सदा जीतना ससार भरमें प्रख्यातपुरुषमे मृत्यु इतने बरगांगे व पाये तिन्होंने इस मन्त्र पृथिवी की पालना धर्मही के साथकी व दश सहस्र यज्ञ किये तिमके विषय में यह पद्य अवमी गायाजाता है कि ॥

श्री० कार्त्तवीर्य्य गति कहैं कोउ भूपा । फरुँ न जैहैं कहत अनूपा ॥

यज्ञ दान तप प्रश्रय दम से । कौनिउँभानि न पहुँचे यगसे ॥ १ ॥

इस राजाके नाग लेनेसे ठावभी चोगीकी वस्तु मिलजाती हैं उसके राज्य में तो चोरीका नामही न था इसगानि पनामी सठम वर्षतक उन्होंने एरुक्कमही का राज्य किया इन्हीं के समय में सब देवता दैत्य गन्धर्वों के जीतने वाला लकाका राजारावण माहिष्मती नाग इनकी पुरी में दिग्गिचय करने के लिये आया और नर्मदा नदी में क्रीडा करते हुए गदान्धीमन नयन इन्होंने उसे पकड़ बलिप्रदानके पशुकी गांति बाध अपने ठारों बाधदिया व ८५००० वर्ष गन्ध करने के पीछे भगवान् विष्णु के अणमे अवतरेद्वये श्री परशुरामजीके हाथमे मृत्युपाया तिनके १०० पुत्रद्वये परशुर शूमेन शृण्णि मधु व जयश्वज ये ५ प्रधान हुये जयश्वज मे तानजघ तानजघ मे तानजघही नाग के १०० पुत्रद्वये तिनमें वीतिहोत्र सबसे ज्येष्ठ पुत्रथा व पत्ता भग्न नाग हुना भग्न से शृप व सुजान दोद्वये शृपके मधु मधुके शृण्णिजादि १०० हुये जिससे इस गोत्रकी शृण्णिसत्ता हुई व मधुमे मधुसत्ता हुई यदुके नाममे यादवसत्ता हुई ॥

## बारहवां अध्याय ॥

दो० द्वादशमं अध्याय महं यदुत्तमोऽपि यश ॥

वर्षत्र जहं ज्यामघ नृपनि नारीवश्य प्रसादा ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोने यदुके पुत्र कोपुके वृजिनीवान तिनके स्वाहि स्वाहिके  
रुपइजु तिनके चित्रग्य तिनके शशविन्दु वे भी चक्रवर्ती राजा ह्यहें इनके  
१००००० स्त्रिया थीं व १०००००० पुत्र तिनमें पृथुपरा पृथुकर्मा पृथुजय  
पृथुकीर्ति पृथुदान पृथुश्रवा ये ६ प्रधानहुये पृथुश्रवाके तम तमके उगना जि-  
न्होंने १०० अश्वमेध यज्ञकिये इनके पुत्र काग्निनेयु नाम हुआ तिनके रुमग  
कवच तिनके पराचन इनके रुमोपु पृथुहृग ज्यामघ पालित हरित ये ५ पुत्रहुये  
इन ज्यामघ का यह पद्य अर्वागी गायाजाता है कि ॥

चौ० भार्यावश जो है है कोऊ अरु जो मरे नारिवशी सोऊ ॥

शिनमें ज्यामघ श्रेष्ठ बस्ताना । शैव्यापति अतीव अज्ञाना ॥ १ ॥

पुत्र हीन दौव्या अरु थापू । मुन कागना भई करि वापू ॥

दौव्याकीन कीन्ह पुनि क्याह । यशहीन बुधि गये अधाहू ॥ २ ॥

उन राजा ज्यामघ ने एक समय बड़ेभारी मग्नम में अनिपबल शत्रुओंको  
जीता वे शत्रुनोग अपनी २ स्त्री पुत्र वंशु कोप गृहादि छोड़ सागगये वहां में  
जाने जाय देवा तो द्वाय ९ भाई भिता माना इत्यादि करती हुई एक राजक-  
न्या बेठी है उसको देख अतिप्रीति हुई व चिन्तना करने लगे कि हमारे पुत्र  
नहीं है और वह स्त्री बन्ध्या है हमनिये ईश्वरने इसे भेजाहै हम पावकी पे व  
द्वाय धरनेजावें व इसके सग विवाह करें कि पूत्रदो यदि भेज्याफी अज्ञादोगी  
तो अपना विवाह करेंगे नहीं तो देवा जागगा यह सोच लगे चद्राग अपने  
नगरको साथे विजयी राजाके देवने के लिए मंत्रा पुत्रनों के साथ शै-  
व्या धारणें लड़ी थी राजाकी बाइओ उम कन्याको बेटीहई देव मारि कोपके  
ओठ कपानी हुई शैव्या राजामे योनी कि अनिपबल विन यह तुम्हारे संग  
फोनदे जल्द बनाओ राजा स्त्रीनदा तो बेटी उनके पुत्रहने से चंद्राग मये खुष  
छगर न देमके रहने २ रहा कि नगाम पुत्र २ है भेज्यायोनी कि हमको बौमई  
और फंद उम्हारे स्त्री नहीं कि पुत्र इहा पाया तिनकी यह कहे राजाने कदा

जब तुम्हारे पुत्रहोगा उसके सग विवाह करेंगे यह सुन गेव्या प्रसन्न हुई व अपने घरकोलाई ईश्वरानुग्रह से शैव्याके गर्भ रहा दशमास पै पुत्रहुआ पिता ने उसका विदर्भ नाम धराया व उमी के माथ उम राजकन्या का विवाह किया विदर्भ के उम स्त्री में क्रय व कौशिक दोपुत्र हुये फिर रोमपाद नाम तीसरा बालक हुआ रोमपाद के बभ्रु वभ्रु के धृति व कौशिकके चेदि जिमकी संतति के धेध राजाहुये क्रयके कुन्ति कुन्तिके वृष्णि वृष्णिके निवृति निवृतिके दशार्ह तिनके व्योमा तिनके जीमूत तिनके विरुति तिनके भीमरथ तिनके नवरथ तिनके दशरथ तिनके राकुनि तिनके कार्मिभ तिनके देवरात तिनके देवदत्त तिनके मधु गधु के अनवरथ तिनके कुरुव्रत तिनके अनुरथ तिनके पुरुहोत्र तिनके अश तिनके सत्वत इन्हीं से सात्वतपत्नी रुहाये यह ज्यागष की सन्तति श्रद्धापूर्वक सुनने से पाणी सब पापों मे छूटना है ॥

## तेरहवां अध्याय ॥

श्लो० तेरहवें अध्याय महँ सत्वत यश पुरान ॥

करयै जहाँ स्यमन्तमणि कथा नहित विज्ञान ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले कि सत्वत के भोजिन भजमान दिव्य अधक देवाद्य महा-  
भोज वृष्णि ये ७ पुत्रहुये भजमानक निगि करुण गृष्णि नदजित् सदसजित्  
अपुनजित् हुये देवाद्य के बभ्रु इनके लिये भी गाया जाना है कि जैसा दृष्टे  
सुनते हैं वैसीही निरुद्धे भी देवतदे कि बभ्रु मनुष्या में भेष्टे व देवाद्य द-  
वोंके समानहैं क्योंकि बभ्रु व देवाद्य के उपदेश मे ६०६७४ पुरुषने महाभोज  
अतिधार्मिक हुये इन्हींके नाम से भोजवर्जा कहाय वृष्णके सुमित्र व सुधाजित्  
दो पुत्रहुये सुमित्र के अनमित्र व अजिनी दो पुत्र हुये अनमित्र से निष्ण  
निष्णमे प्रमेत व मत्रानित इन सन्तानितके मित्र भगवान् सूर्यनामण ये एक  
समय समुद्रके तटपे बैठ मत्राजित ने सूर्यकी म्नुनिही सूर्यनामण प्रसन्नहो  
सुन्दर मूर्तिमे मत्रानित के जागे पड़ेहुये मत्राजित ने कहा जैसे जाप आरा-  
धने देव पढ़ते थे वैसीही यहांभी आय पड़ हुये कुलाश्रयपानान जान परी न  
सुख प्रसादही गिना जब इगानि सूर्यनामण वृष्णपे तो जवने गले मे  
स्वयमन्तक नाम गणि निकान मत्राजित के निरुद्ध रपादिपा तर श्रोतीसी मूर्ति



होगई उसे देव सत्राजित स्तुति करनेलगे तब श्रीसूर्यनागपण बोले गिन्न ब-  
 रदान मागो सत्राजित ने वही गणि मांगा सूर्यनारायण मणि ने अपने लोक  
 को चले गये और सत्राजित भी अमलगणि ऋतों धारण करने के कारण दूसरे  
 सूर्यही के समान सब दिनोंको प्रकाशित करतेहुये द्वाका में आये उन्हों ने  
 देव दारकावामी लोग भगवान् भनादि पुरुष पुरुषोत्तम जो धरणीमार उता-  
 रने के लिये अपने अणसे मानुषरूप धारण किये द्वाका में निवास करने थे  
 प्रणाम कर उनसे बोले हे भगवान्! आपको देवने के लिये निश्चय है कि  
 ये सूर्यनारायण जी आतेहै यह सुन श्रीकृष्णचन्द्र हँसके उनमे बोले ये भगवान्  
 आदित्य नहीं हैं किन्तु उनका दिया हुआ स्वपन्नकगणि पहिने सत्राजित  
 आतेहैं तुगलोगोंने अणसे सूर्य बतायाहै यह सुन सबसेसब अपने अपने कार्य  
 को गये सत्राजित ने वह गहामणि अपने गृह में धरा बट गणि प्रतिदिन ८  
 भार सुवर्ण उगिलता था व तिस मणिही के प्रभावसे सब राज्य में अवर्षण दु-  
 र्भिक्ष सर्पभय अग्निपीडा आदि भय नहीं होते थे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने  
 भी समझा था कि यह गणि उमनेन के योग्य है इसे लेलें परन्तु गोत्र में पि-  
 गाइ होने के भयसे नहीं लिया यद्यपि सब भानि उसके लेनेकी सागर्थ्य रखते  
 थे सत्राजितने भी जाना कि कृष्णचन्द्र इस गणिको इच्छा करते हैं इसलिये  
 अपने भाई प्रसेनजित को देविगा उस मणि में यह भी गुणया जो उसे पवित्र  
 ताके माघ धारण किये रहे उसे ८ भार सुवर्णादि दियाकरे जो अपवित्रता से  
 पहिरे उसके प्राणही दगले उमे गलमें पहिन छोड़े सत्राजित शिथिल  
 खिलनेगये वहाँ सिंहने सहितघोड़ा प्रसेनजितको मारवाना व गणि गृहमें दयाय  
 लामेलगा कि जाम्बवान् ऋतगज ने देखा देवतेही मारडाशा व मणिले अ-  
 पने बिनमें आया व सुकृमारक नाग अपने पुत्रको खननेके लिये दिशा अब  
 दोनीनदिन होगये प्रसेनजित शिकार खनक न लोटे तो लोग आपा में धीरे  
 धीरे कहनेलगे कि यह मणि कृष्णचन्द्र ने मांगा था व सत्राजित ने नहीं दिया  
 था निश्चय है कि प्रसेनजितको मार उन्ही ने गणि लेलिया है भगवान् कृष्ण-  
 चन्द्रजी ने भी सुना कि सबलोग हमको अपवाद लगाने है इसलिये बहुतमे दार-  
 कावासी संगने प्रसेनजित के छोड़े की घोडा देवने हुये उनमें दूढ़ने गये देखा  
 तो छोड़े सहित प्रसेनजित सिंहके गोरेहुये बहुत मर दशा सब गणियोंको दि-

खाई कि देखो भिंहने माग है फिर सिंहनी पौदर देखनेहुये आगेको बढ़े देसा तो धोहीही दृषे ऋतका पाराहुआ सिंह पड़ा है मणिके लोभमे अब ऋतकी पौदर लगातेहुये आगेको बढ़े जब पर्वतके किनारे पहुँचे तो सब रागियों को वहीं लड़ेकर आप आगेबढ़े जाते २ एक बिल गिला तो उसमें एक लड़का खिलानेवाली नीचेवाला सलोक पढ़तीहुई बालक खिलती थी कि ॥

सिंह प्रसेनगवधीस्सिंहो जाम्बवान् दत्त ॥

सुकुमाग्रु मागेदीस्तत्र ह्येप स्यगन्तक ॥ १ ॥

अर्थात् भिंहने प्रसेनको मारा व सिंह जाम्बवान् से मारागया हे सुकुमाग्र ! न रोवो यह स्यगन्तक तुम्हारा है यह सुनके समाचार पाय बिल में बैठे तो देखा कि लड़के को गोदमें लिये मणि हाथ में किये धात्री मणि को उछालती हुई खेलाती है धात्रीने देखा कि यह अपूर्वपुरुष मणिलेने की इच्छा करता है इसलिये विस्लाई कि बचावो २ यह सुन बढ़ाकोबकर जाम्बवान् आये कृष्णचन्द्र से युद्धहोनेलगा यहाँतक कि रात्रिदिन २१ दिनतक युद्ध हुआ तो यदुवशी जो कृष्णचन्द्र के समगये थे सान आठदित विनाय के कहनलगे निश्चय कृष्णचन्द्रको बिलमें किसी ने मारहाला नहीं तो इनने दिन ात्रुके मारने में उनको न लगते यह विचार द्वारका को चले जाये व कहा कि कृष्णचन्द्र मारडाने गये तिनके भाई बन्धुओं ने जो मरणकी क्रिया की थी उम श्राद्धादि मे लड़ाई में कृष्णचन्द्र के बल व प्राणकी पुष्टताहुई इममे २१ दिनतक भूष्यपाम न लगी और जाम्बवान् की तो ऐमे महापगकमी के मग लड़ने व चोट मटने व सुने रहने से बलहानि हुई इस हेतु जाम्बवान् हारे व प्रणाम कर्नेलगे कि महागज आप ईश्वर के अवतार हे देवता असुर गन्धर्वादि कोई तुममे नहीं जीवमक्रेमें विचारा अल्पपराक्रम क्या जीव प्रथम विनागो हुके लड़नेलगा था कृष्णचन्द्र ने कहा तस्य २ दम धाष्ठी का भार उताग्न के त्रिये यदुवशी अवतार हे यह यह भीतिपूर्ण आपना स्मरण जाम्बवान् की पीडाव देसिया कि सुद्ध सब व्यथा जातीहरी नव जाम्बवान् ने श्रीगंगात तो फिर प्रवृत्तिया व जाने परम जाते के हेतु जाम्बवान् ने नाम आपनी पत्नी अर्थात् स्नातगती व स्नातन्तकगणिभी क्रिया यत्रपि स्वगन्तक जाम्बवान् ने लड़केके स्वतन्त्र का १११ पा कृष्णचन्द्र को उचित न था कि मन्वन्ती के लड़के की वस्तुनें कषापी लोक में

होगई उसे देख सत्राजित स्तुति करनेलगे तब श्रीसूर्यनारायण बोले गित्र बरदान मागो सत्राजित ने वही मणि मागा सूर्यनारायण मणि दे अपने लोक को चले गये और सत्राजित भी अमलमणि कठमें धारण करने के कारण दूसरे सूर्यही के समान सब दिशोंको प्रकाशित करतेहुये द्वारका में आये उन्होंने देख द्वारकावासी लोग भगवान् अपनादि पुरुष पुरुषोत्तम जो धरणीभार उतारते के लिये अपने अणसे मानुषरूप धारण किये द्वारका में निवास करते थे प्रणाम कर उनसे बोले हे भगवन् ! आपको देखने के लिये निश्चय है कि ये सूर्यनारायण जी आतेहैं यह सुन श्रीकृष्णचन्द्र हँसके उनमे बोले ये भगवान् आदित्य नहीं हैं किन्तु उनका दिया हुआ स्पगन्तकमणि पहिने सत्राजित आतेहैं तुमलोगोंने भ्रमसे सूर्य बतायाहै यह सुन सबकेसब अपने अपने कार्यको गये सत्राजित ने वह महामणि अपने गृह में धरा वह मणि प्रतिदिन ८ बार सुवर्ण उगलता था व तिस मणिही के प्रभावसे सत्र राज्य में भ्रवर्षण दुर्मिक्ष सर्पभय अभिनपीड़ा आदि भय नहीं होते थे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने भी समझा था कि यह मणि उग्रमेन के योग्य है इसे लेलें परन्तु गोत्र में विगाढ़ होने के भयसे नहीं लिया यद्यपि सब भाति उसके लेनेकी सामर्थ्य रखते थे सत्राजितने भी जाना कि कृष्णचन्द्र इस मणिकी इच्छा करते हैं इसलिये अपने भाई प्रसेनजित को देदिगा उम मणि में यह भी गुणथा जो उसे पवित्रताके साथ धारण किये रहै उसे ८ बार सुवर्णादि दियाकरै जो अपवित्रता से पहिरै उसके प्राणही हरले उसे गलमें पहिन घोड़ेपै सवारहो प्रसेनजित शिकार खेलनेगये वहा सिंहने सहितघोड़ा प्रसेनजितको मारडाला व मणि मुहमें दवाय जानेलगा कि जाम्बवान् ऋक्षराज ने देखा देखनेही मारडाला व मणिले अपने बिलमें आया व सुकुमारक नाम अपने पुत्रको खेलनेके लिये दिया जब दोतीनदिन होगये प्रसेनजित शिकार खेलके न लौटे तो लोग आपस में धीरे धीरे कहनेलगे कि यह मणि कृष्णचन्द्र ने मागा था व सत्राजित ने नहीं दिया था निश्चय है कि प्रसेनजितको मार उन्हीं ने मणि लेलिया है भगवान् कृष्णचन्द्रजी ने भी सुना कि सबलोग हमको अपवाद लगाने हैं इसलिये बहुतसे द्वारकावासी सगले प्रसेनजित के घोड़ेकी पौदर देखते हुये वनमें दूढ़ने गये देखा तो घोड़े सहित प्रसेनजित सिंहके मारेहुये पड़ेहैं यह दशा सप्तसगियोंको दि-

खाई कि देवो भिंहने माग है फिर मिहकी पौदर देखनेइये आगेको बड़े देमा तो धोड़ीही दृग्ने ऋक्षना मारादुआ सिद्ध पड़ा है मणिके तोभेम अब ऋक्षकी पौदर लगातेइये आगेको बड़े जव पर्वतके किनारे पहुँचे ती सब सगियों को वही खड़ेकर आप आगेइहे जाने २ एक बिल मिला तो उममें एक लड़का तिलानेवाली नीचेवाला श्लोक पढ़तीहुई खलक विलाती थी कि ॥

सिद्ध प्रसेनगवधीर्त्सिंहो जाम्बवता इत ॥

सुकुमारक मागेदीस्तव ह्येप स्यगन्तक ॥ १ ॥

अर्थात् भिंहने प्रसेनको मारा व भिंह जाम्बवान् से मारागया हे सुकुमारक ! न रोवो यह स्यगन्तक तुम्हारा है यह सुनके समाचार पाय बिल में पड़े तो देखा कि लड़के को गोदमें लिये मणि हाथ में किये धात्री मणि को उछानती हुई खेलती है धात्रीने देखा कि यह अपूर्वपुरुष मणिलेने की इच्छा करना है इसलिये विस्वाह कि वचावो २ यह सुन बड़ाक्रोधकर जाम्बवान् आये कृष्णचन्द्र से युद्धहोनेलगा यहाँतक कि रात्रिदिन २१ नितक युद्ध हुआ तो यद्वशी जो कृष्णचन्द्र के सगगये थे सात आठदिन विनाय के कहनेलगे निश्चय कृष्णचन्द्रको बिलमें किमी ने मारहाला नहीं तो इनने दिन शत्रुके मारने में उनको न लगते यह विचार द्वारका को चलेआये व कहा कि कृष्णचन्द्र माग्दाले गये तिनके भाई बन्धुओं ने जो मरणकी क्रिया की थी उम श्राद्धादि से तादाई में कृष्णचन्द्र के बल व प्राणकी पुष्टताहुई इममे २१ दिनतक भूख प्यास न लगी और जाम्बवान् की तो ऐमे महापराक्रमी के सग लड़ने व चोट सहने व खड़े रहने से बलहानि हुई इम हेतु जाम्बवान् द्वारे व प्रणाम कर्त्तेनगे कि महाराज आप ईश्वर के अवतार व देवता असुर गन्धर्वादि कोई तुममे नहीं नीतगहने में विचारा अक्षयपराक्रम क्या जीतू प्रथम वितागने वृत्ते लड़नेगया ॥ कृष्णचन्द्र ने कहा नत्या २ इम धारणी का माग उतागने के लिये यदुम्हारी जगत् व यद कह प्रीतिपूर्वक अपना करकण जाम्बवान्की पीठपर देगिया कि युद्ध सर व्यथा जानीरही तत्र जाम्बवान् ने श्रीगणेश व श्रीभक्तिसिवा व जर्त्तन घर्में आने के हेतु जाम्बवती नाम राक्षसि स्वामी स्वामी देवी व स्वयन्तकमणिभी दिया यद्यपि स्यगन्तक जाम्बवान् ने लड़के के बचन के लिये प्रा कृष्णचन्द्र को उचिन न था कि सम्बन्धी के लड़के की रस्तुतां तपारि ताक में

प्रसिद्ध करने व जो दुर्यश उसके लिये उनको लगा था उसके मिटाने के अर्थ लोलिया व जाम्बवती को सगले द्वारका को आये कृष्णचन्द्रका आगमन सुन यदांतक द्वारकानिवासियों को सुख हुआ कि जो बूढ़े लोग भी थे मानो ज्वाने हो गये वसुदेव देवक्यादि व सकल यादव अहो भाग्य २ कह बहुत मिले गेते कृष्णचन्द्रभी यथोचित सबको मिले भेटे व सबसे स्वयंन्तक मणिकी प्राप्ति जैसे जैसे हुई कहा व सत्राजित को बुलाय मणि देदिया अपना दुर्यश मिटाया सत्राजित ने विचारा कि हमने नाइक इनको दोष लगाया अब अपनी कन्या विवाहि दें तो इनका क्रोध शातहोगा यह सोच सत्यभामाताग अपनी कन्या कृष्णचन्द्र को देदी तिस सत्यभामा को प्रणम अक्रूर कृतवर्मा शतघ्नवा आदि यादवों को देने को कहा था इसलिये वे लोग सत्राजित से वैरभाव रखने लगे अक्रूर व कृतवर्मादिकों ने शतघ्नवा से कहा कि इस दुष्ट सत्राजित ने अपनी कन्या हमको व तुमको देनेको कहा था परन्तु हमारा तुम्हारा सबका निरादर कर कृष्णचन्द्र को दिया इसलिये इसकोमार मणि क्यों नहीं लेलेते जो अह्युन तुमसे वैरकरेंगे तो हमलोग तुम्हारे सहायक होंगे यह सुन शतघ्नवा ने कहा अच्छा जब कृष्णचन्द्र पाँदवों को लाक्षाभवन में जेरहुये सुन दुर्घोषन के सम्भक्ताने को हस्तिनापुर गये तब सोनेहुये सत्राजितको शतघ्नवा ने गारहाला यह बातजान मारे क्रोधके व्याकुल हो सत्यभामा रथपै सवार हो हस्तिनापुर पहुँची व अपने पिताका वध कृष्णचन्द्र से कहती गई यह सुन बड़ा क्रोधकर सत्यभामा सहित हरि द्वारकामे आये बलदेवजी से एकान्त में कहनेलगे गई देखिये प्रसेनजित को शिकार खेलने में सिंहने मारा सत्राजित को शतघ्नवा ने सोतेहुये मारहाला व मणि लेलिया अब तो चाहिये कि मणि हम व आपलें तिससे उठिये रथपै सवार हूजिये व शतघ्नवा को मारिये बलदेवजी ने कहा हा घलिये शतघ्नवाने जब जाना कि हमारे गानेके लिये तैयारि है तो कृतवर्मा के पासजाय कहा अब हमारी सहायता कीजिये कृतवर्मा ने कहा हम बलदेव व कृष्णचन्द्र से विरोध नहीं करसके तन अक्रूर से कहा अक्रूर धोले सब देवता देत्योंमें मे कोई भी कृष्णचन्द्र व बलदेवजी से नहीं युद्ध करसका फिर हमारी क्या गणना है तिसमे अन्य से सहायता मागो शतघ्नवा ने कहा यदि आप सहायता नहीं करसके तो हमारा मणिही धर रखिये अक्रूरने कहा यदि हाथ

हस्तेपर्यन्त किसीसे यह न कहौ कि हमने अक्रूरके पास गणि गङ्गाहै तो हम धरें शतधन्वा ने कहा खलिये हम किसीसे न कहेंगे तब अक्रूरने गणि रत्नलिया और शतधन्वा २०० कोस पवनरूपी अतिर्गामि चलनेवाली घोड़ी पै चढ़ गागा व शैल्य सुग्रीव गेषपुष्प बनाहक ४ घोड़ोंके रथपै चढ़ बलदेव व कृष्णचन्द्र भी उसकेपीछे दौरे वह घोड़ी ४०० कोस दौड़ी चलीगई उसके आगे फिर जब दौड़ाई गई तो जनकपुरी की फुलवाड़ी में पहुँच गरगई शतधन्वा वहामे पैदल भागा कृष्णचन्द्र ने बलदेव से कहा तनकर इसी रथपै बैठेरहिये हम इस बुष्टको पैदरजाय के मारआवे यहामे आगे इन घोड़ों को न बढ़ाइयेगा बलदेवजी तो उसी रथपै बैठेरेहे कृष्णचन्द्र शतधन्वा के पीछे दौड़े वहाँसे दोहीकोम पर दूरी से चक्रफेरक शतधन्वा का मूड़काट सब कपड़ों में उलट पलट दूड़ा पर गणि नै मिला लोटके बलदेवजीसे कहनेलगे भाई नाहक शतधन्वाको मारा गणि उसके पास न था यह सुन बलदेवजीने बड़ा कोपकिया व कहा तुमने नाहक उसको मारडाला वहभी तो भाई बन्धुओं में था धिक्कार ऐसी झूठीबातों को जाव अब हम तुम्हारे संग न जायेंगे हमारा द्वारका जाने से व बन्धुओं के भेटने से कुछ प्रयोजन नहीं हमारे आगे तुमने झूठी बातें कहीं कृष्णचन्द्र ने प्रार्थनाभी की पर न खड़ेहुये जनकपुरी में चलेगये जनकने बडी शिष्टाचारी के साथ अपने यहाँ बैठाया कृष्णचन्द्रजी द्वारकाको चलेआये जवनक बलदेवजी जनकपुर में रहे तबतक धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन उनसे गदाचलाना सीखतेरहे तीन वर्ष के पीछे बभ्रु उग्रसेनादि यादवों ने जाय बलदेवजी मे फडा कि सत्य २ कृष्णचन्द्र ने गणि नहीं पाया आपसे झूठ नहीं कहा अब द्वारकाको चलिये तब बलदेव आये यहा अक्रूरके जानों ८ भार सोना प्रतिदिन गणिमे जानाही था वार २ यज्ञ होने थे इस भाँति ६२ वर्षतरक उनके घरमें गणिरहा इमलिये दुर्गिभ गारी गयादि उनने दिन द्वारकामें नहीं हुये जब अक्रूरके पक्षचले भोजवगिरा ने सात्वतके प्रपौत्र भद्रुष्ण की मारहाला तो उनके संग अक्रूरभी द्वारकामे निकलगये तर से महागारी अशाल में पत्वर गिरा सप्राप्ति भयद्वारका में बहुत हीने लगे तब तब यादव बलदेव उग्रसेनादिकों ने सम्मानिरर कहा कि देखो भगवान कृष्णचन्द्र भी द्वारकामें विद्यमान हैं पर एकाएकी सब बलदेव हीने लगे इमका क्या कारणहै नहीं विदित होना यह सुन अन्यायनान यदुर्गिणी

में बड़ा बृद्ध था बोला इन अक्रूरके पिता श्वफल्क जहां २ जाते थे तहां २ महामारी अवर्षादि नहीं होतेये एक समय काशिराजके राज्यमें अत्यन्त अवर्षण था तब श्वफल्क बुजायेगये उनके पहुँचतेही तुरन्त वर्षाहुई काशिराजकी पत्नी के कन्या होनेवाली थी समय बीनभी गयाथा पर नहीं हुई यदातक कि १२ वर्षतक गर्भही बनारहा तब काशिराज गर्भमें टिकीहुई कन्या से बोले पुत्री क्यों नहीं उत्पन्न होती निकल आव तेरा सुख हम देखना चाहते हैं अपनी माता को क्यों चिरकाल से क्लेशदेती है यह कहने से गर्भमेंसेही बोली पिताजी जो प्रतिदिन ब्राह्मणको एक २ गाय देते रहोगे तो अबसे तीनवर्ष के पीछे हम होंगी नहीं तो नहीं यह सुन राजा दिन २ ब्राह्मणको गाय देतेरहे तीनवर्षके पीछे कन्याहुई तिसका उमके पिताने गान्दिनीनाम धराया उही कन्या उम उपकार में राजाने श्वफल्क को दी गान्दिनी यहाभी जवनक जी प्रतिदिन ब्राह्मणको गाय देती रहीं तिसमें ये अक्रूर श्वफल्क से उत्पन्नहुये इनकी उत्पत्ति ऐमे गुणी माता पितासे है वो ऐमे अक्रूरके यहाँ में चलेजानेसे ऐसे ऐसे २ उपद्रव न हों तिससे तिसीको ले भाइये अन्य गुणी वृद्धसे कुछ प्रयोजन नहीं ऐसे यदुद्ध अंवरु के वचन सुन बलभद्र केशव उग्रसेनादिकों ने अक्रूरके अपराध क्षमाकर फिर द्वारकामें बुलाया तिसके आनेही स्वगन्तकमणि के प्रभावसे अकाल महामारी सर्पभयादि उपद्रव सब शान्त होगये कृष्णचन्द्रजी ने अपने मनमें चिन्तना की कि यह बहुतही बड़ा कारण है कि केवल गान्दिनी के उदरसे उत्पन्न अक्रूर महामारीआदि भयोंको दूर करें यह कुछ नहीं निश्चय है कि इनके घरमें वह स्वगन्तकनाम महामणि है क्योंकि उसका ऐमानी प्रभाव सुनाजाता है फिर ये अक्रूर एक यज्ञ समाप्त नहीं होनेपाना कि द्वारे में प्रारम्भ करते हैं पीगति एक दूसरे के पीछे किगाकरते हैं यह विचार सब यादवोंकी समाज रुद्धाकर श्रीकृष्णचन्द्र महाराज अन्य २ लोगोंसे वृद्धमानिकी वार्त्ताकर प्रथम कृष्ण अक्रूरजी से इसीकी बात पूछपात्र कहनेलगे हे अक्रूरजी ! हमने गली मति जानलिया है कि जनपन्था स्वगन्तक महामणि आपके समीप धरगया ॥ उरमें आप व हम मंत्र यदुवर्णियों का करमाण होताहै वह आपही के यहाँ है कष्ट भावश्यकता नहीं पान्तु हमारे भाई क्लगमजी उमके लिये अपसन्न रहते हैं अपने मनमें जानते हैं कि शतपन्था को गार अवश्य इन्हों ने मणि

लिया है हमसे बिपाते हैं इसलिये आप सबके सामने देवेन भाई को दिखला  
 फिर लौटा देंगे जैसे आपके यहाँ तैसे हमारे यहाँ चाहें जहाँ रहे यह सुन अक्रूर  
 अपने मनमें विचारने लगे कि अब इस विषय में क्या करे जो नहीं देते तो क  
 पड़ा में लपेटा हुआ गण्डे दूढ़ने से मिल ही जायगा तो कौन गलाई होगी इ-  
 त्यादि विचाराश कर बोले हा शतधन्वा जब गागने लगा था तो गणिराज ह  
 मारे पास धर गया था तबमे यही सोचने कि आज गागते हैं कल गागने वा परसों  
 गागेंगे इतने दिन बीत गये अब लीनिमे यद्यपि यह सुवर्ण देता है तथापि नहीं वि-  
 दित इसमें कौन अगुण है कि जबमे हमारे यहाँ है क्लेशहीम मन धर गया करता  
 है अब आपलें चाहे जिसको देवें हमसे कुछ काग नहीं है यह कह वस्त्रके भीतर  
 से निकाल मणि दे दिया जैसे ही कपड़ा से गणिराज अनग किया गया उसकी  
 दीक्षिमे सबसभा प्रकाशित होगई अक्रूरने कहा भाइयो यह वही मणि है जो  
 शतधन्वा हमको दे गया था अब जिसका हो सो लें यह सुन सब यादवोंने सा-  
 धुवाद किया कृष्णचन्द्रजी ने कहा अब हमारा मणि है लिया जावेगा बलदेवजी  
 ने कहा हमलेते हैं सत्यभामाजी ने कहा हमारे पिताका धन है हमलेंगी यह  
 सुन श्रीकृष्णचन्द्रजी ने विचारा कि अब तो घरही मैं बिगाड़ हुआ चाहता है  
 इस लिये यह कहतेहुये बोले कि हा इस मणिमें सत्रका टात्रा है क्योंकि हमारे  
 तो स्वशूर का उहारा बलदेवजी जानो पुरुषाही उहारे सत्यभामाके जानो पिता-  
 हीका है परन्तु इसमणि को जो कोई ब्रह्मचर्य के साथ रहता उही तो धारण  
 कर सकता है नहीं तो धारण करनेवालेही का विनाश हो जाता है ओं नभी सब  
 का करवाण भी इसके रहने में होना है फिर १६१०८ म्रिया हमारे है हममे  
 ब्रह्मचर्य के से सपरोगा इसी भाति सत्यभामा भी उहरीं क्याके जगाम मग केमे  
 छोड़मकेगी भाई बलदेवजी गदिरा पान बटु सा किया जगते है फदिता जेइने  
 लगे फिर गणिराज केमेहोगा इस लिये अब मयोंने देन पागलिया अक्रूर  
 जी इमे आपही धारण किये रहिये वन अब ओं विचार न कीजिये अक्रूर  
 ने कहा जन्दा नय से सबके सामने मयामें गणिधाराण कर अशूर आनेवा ॥

श्री० जो यह हरि मिय्या अयपावति । पथा मुक्ति मो पत्र नशरनि ॥

मिय्या योष तदि नदि गामिति । नक्यत्तपमिनि नुमम पमिनि ॥ १॥



## चौदहवां अध्याय ॥

दो० चौदहवां अध्याय महँ वृष्णवश की गाथ ॥

अरु शिशुपाल विनाश की कथाकह्य धुनिसाथ ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले कि सत्वनके पौत्र अनभिन्न तिनके सत्य सत्यके सात्यकि  
 तिनके युयुधान तिनके अमग तिनके तूष्णि तूष्णिके युगन्धर इन सबकी शैनेय  
 सज्ञाहुई अनभिन्नहीके वरगें पृष्णिनामक हुये तिनके श्वफल्क तिनका प्रमा-  
 व कह्युकेहैं श्वफल्क के छोटेभाई का चित्रकनाम हुआ श्वफल्क से गादिनी  
 में अक्राह्ये और उपागु गृदर विशारि में जयगिभि क्षत्रोपक्षत्र शत्रुघ्न अरि  
 मर्दन धर्मवृक् दृष्टशर्मा गन्धगोक्ष आवहू प्रतिवाह ये पुत्र व सुतारा कन्या अ-  
 क्रूरके देव अनुपदेव दो पुत्र और चित्र ऋ के पृथु विपृथु आदि तनय हुये किसी  
 तरह कुकुर भगमान शुचिकुम्बल वर्धिष ये चार पुत्र अन्नककेहुये कुकुरसे धृष्ट  
 धृष्टसे कपोतरोमा तिनसे तिलोमा तिनसे तुम्बुरुके मित्र भवनामहुये तिनसे नन्द-  
 नोदक दुन्दुभि तिनसे अभिजित तिनसे पुनर्वसु तिनसे आहुक व आहुकीकन्या  
 व आहुक के देवक व उग्रमेन देवक के देववानुपदेव सुदेव व देवराक्षित ये चार  
 पुत्रहुये व शुकदेवा उपदेवा देवराक्षिता श्रीदेवा शातिदेवा सहदेवा और देवकी  
 ये ७ कन्या इन सब कन्याओं का वसुदेव के साथ विवाह हुआ और उग्रमेन  
 के कंस न्यग्रोधयुनाम एक एक स्वभूमि राष्ट्रपाल युद्धपाल युद्धमुष्टि तुष्टिमान्  
 ये पुत्र व कसा कंसवती सुननु राष्ट्रपाली ककी ये कन्याहुई गजमानके विदूरथ  
 विदूरथ के शूर शूरके शमी शमी के प्रनिक्षत्र तिनके स्वयम्भोज तिनके हृदि  
 तिनके कृतवर्मा शतधन्वा देवमेदुक आदिहुये देवमेदुक व शूर दोनोंकी स्त्रियों  
 का गारिपानाम था तिसमें शूरमे वसुदेवादि दश पुत्रहुये वसुदेवजी के जन्म  
 होतेही इनसे भगवान् त्रिपुण्ड्र का अवतार होनेवाला जानके देवगणोंने दिव्य  
 नगारे आकाश में बजाये इसी से वसुदेवजी का एक जानकदुन्दुभि भी नाम  
 हुआ इनके देवभाग देवभवा अनाधृष्टि कर्कश वत्सवालक सृजय श्याम श-  
 मीक गृणहूप ये ६ भाई थे इन सब वसुदेवादिकोंके कुन्ती ध्रुवदेवा श्रुतिकीर्ति  
 श्रुतभवा राजाधिदेवी य पात्र योगिनिया थीं शूरके कुन्तियोजनाम एक मित्र  
 थे उनके कोई सतान न थी इनलिये शूर जीने अपनी कन्या कुन्ती जिसका पृथा

भी नामधा उनको देडाला उन्होने राजा पाण्डुकेसाथ विवाह करदिया तिसमें धर्म पवन इन्द्र इनके श्योंसे युधिष्ठिर मामसन अर्जुन ये तीनपुत्र उत्पन्न कराये और जब इन कुन्तीजीका विवाह नहीं हुआथा तभी सूर्यनारायण से कर्णनाम पुत्रहुयेथे कुन्तीकी सौतिकी मादी नाम था तिसमें अश्विनीकुमार के अशमे नकुन व महदेव पांडुके दो पुत्र हुये श्रुतदेवाका विवाह बृद्धगर्मानाम स्वरूपके साथहुआ तिसमें दत्तवक्रनाम महाअसुर उत्पन्नहुआ श्रुतकीर्तिका विवाह केकपदेश के राजाके सगहुआ तिमके मन्तर्दनादि ५ पुत्रहुये राजाधि देवीका अवतिकापुरी के राजाके साथ विवाहहुआ उममें विन्दानुविन्द दोपुत्रहुये श्रुत श्रवाका विवाह चेदिराज दमघोष के सग हुआ तिसमें शिशुपाल नाम पुत्र हुआ यह पूर्व जन्ममें अतिदुराचारी दैत्यराज हिरण्यकशिपु के नामसे प्रसिद्ध हुआथा तब इमे भगवान् विष्णुजीने नृसिंहावतारले माराथा फिर महापराक्रमी अतिशूरवीर त्रिलोकविजयी रावणहुआ तदाभी श्रीसकललोकपालनकारी साक्षात् परब्रह्मावतार श्रीरामचन्द्रजीने मारा फिर वही चेदिराज दमघोषका पुत्र शिशुपाल के नामसे प्रसिद्धहुआ इम जन्ममें भी भगवान् कृष्णजी से वैरानु रोध करने के कारण उन्हींसे गागगया तिममे रात्रिदिन गोरे वैरके उन्हीं परमात्मा परब्रह्मही में निच लागये रहता था इननिये मरणान्त में उन्हीं में लीन भी होगया ॥

चौ० जिमि प्रमत्त है श्रीभगवाना । तेत गयहि अभिमत्त फल नाना ॥

अप्रमत्त है मारत जाही । अनुपम घाम देन तिमि ताही ॥ १ ॥

## पन्द्रहवां अध्याय ॥

दो० पन्द्रहवें अध्याय महें कृष्ण जन्म की गाथा ॥

फरव मोदा शिशुपालकर सोत्पत्ति गुण गाथा ॥ १ ॥

इतनीकथा सुन गेत्रेगजी बोले हे मुनिराज महागन । यह शिशुपाल जब हिरण्यकशिपु हुआ था तो भी श्रीनारायण ने नृसिंहावतारले मारा फिर जब रावणहुआ तो भी श्रीभगवान् ने श्रीभगवान्द्वारा मारने मारा परन्तु फिर २ वदे अन्धे प्रतापी कुनमें जन्मवा रहा चाडिये था कि हिरण्यकशिपु से मारागयाया मुफ होजाता मो नहीं हुआ अब शिशुपाल के देहमें कृष्णचन्द्र के दाधमे मारा

## चौदहवां अध्याय ॥

दो० चौदहवें अध्याय महँ वृष्णवश की साथ ॥

अरु शिशुपाल विनाश की कथाकह्य धुनिमाथ ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले कि सत्वरतके पौत्र अनभिन्न तिनके सत्य मरत्यके सात्यकि  
 तिनके युयुधान तिनके अभय तिनके तूष्णि तूष्णिके युगन्धर इन सबकी शैनेय  
 सज्ञाहुई अनभिन्नश्रीके वरागें पृष्णिनामक हुये तिनके श्वफल्क तिनका प्रभा-  
 व कह्युकेहें श्वफल्क के छोटेभाई का चित्रकनाम हुआ श्वफल्क से गांदिनी  
 में अक्राह्ये और उपभगु मृदर विशारि में जयगिरि सत्रोपक्षत्र शत्रुघ्न अभि-  
 मर्दन धर्मपृक् दृशश्मर्मा गन्धगोक्ष आरुह्यतिवाह ये पुत्र व सुतारा कन्या अ-  
 क्रके देव अनुपदेव दो पुत्र और चित्ररु के पृथु विपृथु आदि तनय हुये तिसी  
 तरह कुकुर भजमान शुचिकम्बल वदिप ये चार पुत्र अन्यककेहुये कुकुरसे धृष्ट  
 धृष्टसे कपोतरोमा तिनसे तिलोमा तिनसे तुम्बुरुके मित्र भवनामहुये तिनसे नन्द  
 नोदक बुन्दुगि तिनसे अभिजित तिनसे पुनर्वसु तिनसे आहुरुव आहुरकीकन्या  
 व आहुरुके देवक व उग्रमेन देवक के देववानुपदेव सुदेव व देवरक्षित ये चार  
 पुत्रहुये व वृकदेवा उपदेवा देवरक्षिता श्रीदेवा शांतिदेवा सहदेवा और देवकी  
 ये ७ कन्या इन सब कन्याओं का वसुदेव के साथ विवाह हुआ और उग्रमेन  
 के कस न्यग्रोधमुनाग एक सफ स्वभूमि राष्ट्रपाल युद्धपाल युद्धमुष्टि तुष्टिमान्  
 ये पुत्र व कसा कंसवती सुवन्तु राष्ट्रपाली ककी ये कन्याहुई भजमानके विदूरथ  
 विदूरथ के शूर शूरके शगी शगी के प्रनिक्षत्र तिनके स्वयम्भोज तिनके हृदिक  
 तिनके कृतवर्मा शतधन्वा देवभेदुरु आदिहुये देवभेदुरु व शूर तिनकी क्रियो  
 का गारिपानाम या निमगं शूरमे वसुदेवादि दश पुत्रहुये वसुदेवजी के जन्म  
 होतेही इनसे भगवान् त्रिष्णु का भवनार होनेवाला जानके देवगणोंने दिव्य  
 नगारे आकाश में वनाये इसी से वसुदेवजी का एक आनन्ददुग्धि भी नाम  
 हुआ इनके देवभाग देवश्रया अनाधृष्टि कर्कुक वत्सवालक सृजय श्याम श-  
 भीक गृहहृप ये ६ भाई थे इन सब वसुदेवादिश्रीके कुन्ती ध्रुवदेवा युतिकीर्ति  
 श्रुतभवा राजाधिदेवी ये पात्र योगिनियां थीं शूरके कुन्तिगोजनाग एक मित्र  
 थे उनके कोई सतान न थीं इपनिये शूरजीने अपनी कन्या कुन्ती जिसका प्रया

भी नामधा उनको देडाला उन्होंने राजा पाण्डुके साथ विवाह करदिया तिसमें धर्म पवन इन्द्र इनके श्रौंसे युधिष्ठिर भामसन अर्जुन ये तीनपुत्र उत्पन्न कराये और जब इन कुन्तीजीका विवाह नहीं हुआथा तभी सूर्यनारायण से कर्णनाम पुत्रहुये कुन्तीकी सौतिका गात्री नाम था तिसमें अश्विनीकुमार के अगमे नकुन व सहदेवा पांडुके दो पुत्रहुये श्रुनदेवाका विवाह वृद्धराम्मनामकारूपके साथहुआ तिसमें दत्तवक्रनाम महाअसुर उत्पन्नहुआ श्रुतकीर्त्तिका विवाह के रूपदेश के राजाके सगहुआ तिमके सन्तर्हनादि ५ पुत्रहुये राजाधि देवीका अवतिकापुरी के राजाके साथ विवाहहुआ उममें विन्दानुविन्द दोपुत्रहुये श्रुन श्रवाका विवाह चेदिराज दमघोष के सग हुआ तिसमें शिशुपाल नाम पुत्र हुआ यह पूर्व जन्ममें अतिदुराचारी दैत्यराज द्विरण्यकशिपु के नामसे प्रसिद्ध हुआथा तब इमे भगवान् विष्णु जीने नृसिंहावतारले माराथा फिर महापराक्रमी अतिशूरीर त्रिलोकविजयी रावणहुआ तदाभी श्रीसकललोकपालनफारी साक्षात् परब्रह्मावतार श्रीरामचन्द्रजीने मारा फिर वही चेदिराज दमघोषका पुत्र शिशुपाल के नामसे प्रसिद्धहुआ इन जन्ममें भी भगवान् कृष्णजी से वैरानु-रोध करने के कारण उन्हींमे मागगया तिमसे रात्रिदिन गारे वैरके उन्हीं पर-मात्मा परब्रह्मही में निज लगाये रहता था इननिये मरणान्त में उन्हीं में लीन भी होगया ॥

चौ० तिमि प्रसन्न है श्रीभगवाना । देन सबहि अभिमत्त फल नाना ॥

अप्रमत्त है मागत जाही । अनुपम धाम देत तिमि ताही ॥ १ ॥

## पन्द्रहवां अध्याय ॥

दो० पन्द्रहवें अध्याय मई कृष्ण जन्म की गाथा ॥

महत्य मोक्ष शिशुपालकर तापपत्ति सुख साथ ॥ १ ॥

इतनीकथा सुन मंत्रेयजी बोलें हे मुनिगज महागज । यह शिशुपाल जब द्विरण्यकशिपु हुआथा तो भी श्रीनारायणने नृसिंहावतारने मारा फिर जब रावणहुआ तो भी श्रीभगवान् ने श्रीरामचन्द्रजीने मारा परन्तु फिर ५ बड़े बन्धे प्रतापी जन्ममें जन्मना रहा पादिये था कि द्विरण्यकशिपु से मागगयाथा मुक्त होनाता सो नहीं हुआ अब शिशुपाल के नेहमें कृष्णचन्द्र के साथमें मरा

और उन्हींमें लीनभी होगया इसका कारण हम सुना चाहते हैं कृपासे सुनाइये  
 यहसुन पराशरमुनि बोले कि जब यह हिरण्यकशिपु हुआ था व नृसिंहजी ने  
 उसे आय वधकिया तो उसके मनमें यह न आईथी कि ये विष्णुहैं किन्तु यह  
 सगम्भा था कि ये कोई महाप्रतापी राजराजेश्वर जो गुणी नानासम्पत्ति युक्त  
 विलक्षणजीव हैं इन्हीं सब अतिशय रजोगुणी पदार्थों को विचारताही था कि  
 मारागया इसीसे मुक्ति न हुई वरन उसीप्रकारका अतिशय रजोगुणी रावणहुआ  
 जिसके आगे औरोंके रजोगुणकी गणनाही नहीं होसकती रावण होनेपरभी रा-  
 मचन्द्रजीको यही सगम्भाथा कि ये जानकीके लिये घूमते घूमते आयेहैं विष्णु  
 नहींहैं कोई मनुष्यहीहैं इसी चिंतनामें मारागया इससे उस वारभी मुक्त न हुआ  
 और परमेश्वर्यज्ञान् चेदिराज दमघोषके वरमें जन्मा इस जन्ममें बहुत दिनके  
 वैरानुबन्ध से बाल्यावस्थाही से कृष्णचन्द्र के अनेक गुण व नाग कहता हुआ  
 गान्धीआदि देतारहा यही करते २ सब संसारको सोतेजागते परब्रह्म परमात्माकी  
 मूर्त्ति कृष्णगय देवनेलगा इसी अवसर में सुदर्शनचक्र से मारागया व श्रीहरि  
 में लीनहोगया इससे हे भेत्रेय । प्राणी चाहे जिस रीतिसे ईश्वरमें चित्त लगावे  
 मुक्तहोही जाता है सो वैरभाव सेचित्त लगाने से ऐसी गतिपाता है जो भक्तिमे  
 लगावे तो उसको क्या कहना वसुदेवजीके पौखी रोहिणी मदिरा भद्रा वैशन्ती  
 देवकी आदि १८ स्त्रियाथी उनमें बलभद्र सारण शठ दुर्मदआदि रोहिणीके पुत्र  
 हुये बलभद्रजीके रेवनीमें निशठ व उल्मुक्त टोपुत्रहुये मारणके मर्ष्टिमान् शिशु  
 सत्य धृतिआदिहुये रोहिणीहीके भद्राश्व भद्रबाहु दुर्गमशूत ये भी हुये मदिराके  
 नन्द उपनन्द कृत्क आदि भद्राके उपनिधि गदाआदि वैगलीसे एक कौशिक  
 नागही पुत्रहुआ और देवकी में वसुदेवजी से कीर्त्तिमान् सुषेण उदापी भद्रसेन  
 ऋमुदास भद्रदेह ये ६ पुत्रहुये इन सबको कंसने मारडाला फिर सातवांग्रभ भ  
 गवान्की प्रेरणासे योगनिद्राने आधीरात्रिको खींच रोहिणीके गर्भ में करदिया  
 खींचनेके कारण इसी गर्भसे उत्पन्न पुत्रका सङ्घर्षणनागहुआ इसकेपीछे धृष्णी  
 का भार उतारनेकेलिये सब ब्रह्मादि देवताओंने जाय श्रीनारायणकीस्तुतिकी तो  
 रक्त समारके उतरन करनेके महावृक्ष रूप भूज वर्त्तमान मयिष्यत् तीनोंकालों  
 से घाह्य सकल सुरासुर मुनि गनुष्यों के मनभी जहां नहीं पहुंचने ऐसे श्रीवि-  
 ष्णुमगवान् देवकी में आय अवतरे जिनका वासुदेव नागहुआ निन्दीके प्रसार

से गान पाई हुई योगनिद्राभगवती नन्दकी स्त्री यशोदा में जन्मी जब कृष्ण-  
चन्द्र जन्मलेनेको थे तब चन्द्रमा सूर्यादि ग्रह प्रसन्नहोगये सब ससार सर्पादि  
भय रहितहो सुस्थितचित्त होगया जन्महोनेही सब जगत्को सन्मार्गवर्त्ती पर-  
दिया भगवान् वासुदेवजीके इसवार मर्त्यलोकमें अवतार लेने से १६१०८ स्त्रिया  
हुई तिनमें रुक्मिणी सत्यभामा जाम्बवती जालहासिनी आदि ८ स्त्रियां प्रधान  
हुई तिनसगोंमें अनादिपुरुष भगवान् ने हजारों लाखों पुत्र उत्पन्नकिये तिनमें  
प्रद्युम्न चारुद्रेष्ण साम्बादि १३ पुत्र प्रधान हुये प्रद्युम्नका विवाह रुक्मीकी  
पत्न्या कुमुदती के साथ हुआ तिनमें अनिरुद्धनाम महारथीपुत्रहुये अनिरुद्ध  
जी का भी विवाह रुक्मीकी पोती सुमद्रा के साथ हुआ तिसमें अनिरुद्ध से  
वज्रनाम हुये वज्रके प्रतिवाह तिनसे सुचारु इभीभाति सैकड़ों हजारों लाखों  
फट्टोरों अब्धौयद्वयशीहुये उनकीगिनती सैकड़ों वर्षोंमेंभी नहींहोसकी क्योंकि ॥

चौ० अट्टासीलख तीन करोरी । घनुर्वाण शिक्षक एक ठोरी ॥

युवा कुमारन शिक्षा देहीं । लघुजालकन पाठिनहिं यहीं ॥ १ ॥

यासों सख्या यदुकुल केरी । कौनकरै आसिमति कहैं हेरी ॥

जानहु यादव सख्या हीना । कौनकहै यहि विधि मतिहीना ॥ २ ॥

ये इतने यदुवशी इममांति हुये कि देवासुर सग्राम में जो दैत्य मारेगये वे  
सब महापराक्रमी मनुष्यों में नानाभाति के उपद्रव करने को उत्पन्नहुये तिन  
दुष्टों के नाश करने के लिये भगवान् कृष्णचन्द्र यदुकुल में अवतरे १०१ कुल  
इस यादवकुलमेंही उन दुष्ट दैत्यों के उत्पन्नहुये उनमें सबके भेरु श्रीविष्णुजी  
हुये अर्थात् इनकी प्रेरणामे यदुवशियोंने अन्य दुष्टोंको गाम व अन्नमें कृष्ण-  
चन्द्रने इन सबोंको भी मरवा के पृथिवीका गार उतारा यह यादवों का वश जो  
कोई मुनता है सब पापोंसे छूट विष्णुके लोकको जानाहै ॥

## सौरहवां अध्याय ॥

दो० सौरहवें अध्याय महँ तुर्गसु रण अनूप ॥

कह्य मरुचक्र जन्मलग दापययाति रयरूप ॥ १ ॥

पगजरमुनि बोले हे भोत्रेय । यह यदुका वन तो तुममे कहा अब तुर्गसु  
वरा कहते हैं मुनिये तुर्गसुके वशि वादिके गोमानु गोमानुके प्रेणाम् प्रेणाम्के

और उन्हींमें लीनभी होगया इसका कारण हम सुना चाहते हैं कृपासे सुनाइये। यह सुन पराशरमुनि बोले कि जब यह हिरण्यकशिपु हुआ था व नृसिंहजी ने उसे श्राप बधकिया तो उसके मनमें यह न आई थी कि ये विष्णु हैं किन्तु यह समझा था कि ये कोई महाप्रतापी राजराजेश्वर जो गुणी नानासम्पत्ति युक्त विलक्षणजीव हैं इन्हीं सब अतिशय रजोगुणी पदार्थों को विचारता ही था कि मारा गया इसीसे मुक्ति न हुई वरन उमीप्रकारका अतिशय रजोगुणी रावण हुआ जिसके आगे आगे के रजोगुणकी गणना ही नहीं होसकती रावण होनेपरमी रामचन्द्रजीको यही समझा था कि ये जानकीके लिये घूमते घूमते आये हैं विष्णु नहीं हैं कोई मनुष्य ही हैं इसी चिन्तनामें मारा गया इससे उस वारमी मुक्ति न हुआ और परमप्रेमव्यवहार चन्द्रराज दमघोषके घरमें जन्मा इस जन्ममें बहुत दिनके वैरानुबन्ध से बाल्यावस्था ही से कृष्णचन्द्र के अनेक गुण व नाम कहता हुआ गान्धी आदि देतारहा यही करते २ सब संसारको सोते जागते पूरुष परमात्माकी मुक्ति कृष्णाय नमो नमो २ श्री प्रसन्नोत्तरेण मे सूतता भिधान ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले यथातिके चौथेपुत्र अनुके सगानर चाक्षुष परमेष्ठ ये तीन पुत्रहुये उनमें सगानर के कालानर इनके, सूत्रजय इनके पुत्रजय इनके जन्ममें जय तिनके महापणि तिनके महापन तिनके उशीनर २ तितिक्षु दो पुत्र उशीनरके शिवि नृगनर ऋषि दर्जी ये ५ जनय हुे फिर शिवि के उपदग्ध सुत्रीर कैकेय भद्रक ये ४ पुत्रहुये व तितिक्षु के उपदग्ध तिनके हेम सुतप सुतपके बनि बलिके अग वग कलिंग लुक्षपुण्ड्र इन नामों में प्रसिद्ध क्षत्रिय हुये इन्हींके नागसे अगवगादि, ५ देववने आगेके पार पारके दिविसथ तिनके घर्गरथ तिनके चित्ररथ इन्हीं का रोमपाद भी नामहुआ इनके देवगन्धताग पुत्रहुआ इन्हीं रोमपाद को महागज शयोष्याशिव दशापती ने मित्रना के कारण अपनी शान्तानाग कन्यादेसी कयोकि इन राजाके कोई सन्तान न थी इस निषे वही कन्या सन्तान हुई रोमपाद के इस कन्याके पाने के पीछे चतुरग नामपुत्र भी हुआ निमके पृथुनाक्ष तिनके चम्पा जिन्दान चम्पाताग पुषी वसाई १ गके दृ गंग तिनके भद्रथ तिनके नृष्ट १ व वृष्टरुग्गा वृष्टरुग्गा के वृष्टदानु तिनके वृष्टगन तिनके जयद्र १ मित्रके चित्रथ इनकी गाना नादासी में क्षत्रियसे उत्पन्न

से मान पाई हुई योगनिद्रा भगवती नन्दकी स्त्री यशोदा में जन्मी जब कृष्ण-  
चन्द्र जन्मलेनेको थे तब चन्द्रमा सूर्यादि ग्रह प्रसन्नहोगये सब सप्तर सप्तादि  
भय रहित हो सुस्थिरचित्त होगया जन्महोतेही सब जगत्को सन्मार्गवर्त्ती कर-  
दिया भगवान् वासुदेवजीके इसवार मर्त्यलोकमें अवतार लेने से १६१०८ स्त्रिया  
हुई तिनमें रुक्मिणी सत्यभामा जाम्बवती जालहासिनी आदि ८ स्त्रिया प्रधान  
हुई तिनसबोंमें श्रनादिपुरुष भगवान् ने हजारों लाखों पुत्र उत्पन्न किये तिनमें  
प्रद्युम्न चारुदेष्ण साम्बादि १३ पुत्र प्रधान हुये प्रद्युम्नका विवाह रुक्मीकी  
कन्या कुमुदती के साथ हुआ तिनमें अनिरुद्धनाम महारथीपुत्रहुये अनिरुद्ध  
जी का भी विवाह रुक्मीकी पोती सुमद्रा के साथ हुआ तिसमें अनिरुद्ध से  
वज्रनाम हुये वज्रके प्रतिवाहू तिनसे सुचारु इभीभाति सैकड़ों हजारों लाखों  
फहोरों अर्धोपद्रवणीहुये उनकी गिनती सैकड़ों वर्षोंमेंभी नहीं होसकी क्योंकि ॥

चौ० अट्ठासीलख तीन करोरी । घनुराण शिक्षक एक ठोरी ॥

हुये तमुके अनिल अनिल के दुष्पन्नादि ४ पुत्र १०० ॥ १ ॥

राज चक्रवर्त्ती भरतजी हुये राजा दुष्पन्त शिकार हो गयेये जाते २ करणमुनि  
के आश्रम में पहुँचे वहा विष्णुमित्रजी से भेनका नाम अप्पमग में उत्यन  
शकुन्तला नाम कन्या के साथ अपना गान्धर्व विवाह कर गन्धीमान करा,  
आये मुनिने अपने शिष्यों के साथ गन्धीवती शकुन्तलाको राजाके पास भेजा  
राजा दुर्वासा के शापमे एक तो भूलही गयेथे दूसरे लोकापवाद के भयमे श-  
कुन्तलाके पुत्र व शकुन्तला के लेनेसे निषेव स्त्रिया तब बातके जन्मका कारण  
बनाने के लिये देवोंने थे पत्र पढ़े ॥

पंच० माता भारता पुत्र पिताकर । जार्ध जन्मन पिता आयकर ॥

सुत दुष्पन्त भरत भित्तार्ड । जनि अपमान शकुन्तलपार्ड ॥ १ ॥

पिता शीर्यतां होत तनुना । नय दुष्पन्त जानु जनि दृडा ॥ १ ॥

तुम यदि नर्त्त धगयन । सत्य प्राकृत्य चरन सुकृत् ॥ २ ॥

यद्यमुन राजा दुष्पन्तने भरतनाम पुत्र व शकुन्तला को गणपकिया इन महा  
प्रतापी भरतजी के नरपुत्र हुये भगव ने कहा ये पुत्र हमका नहीं परे हम तिये  
सन्निधाने जाना कि गना दुष्पन्त समझ तमको यन्निपाय न होइ हमने तुम्हें



को मारडाला तब इन राजाके कोई पुत्र न रहा तो पुत्र के लिये यज्ञकराया तब पवनने भरद्वाज नाम पुत्र भारत को दिया इन भरद्वाजके जन्मकी ऐसी कथा है कि बृहस्पति के बड़े भाई उत्तथ्य की स्त्री का ममतानाम था वह गर्भिणीधी पर बृहस्पतिजी ने भी उसके सङ्ग भोग किया उससे भी दूसरा गर्भ धारण हुआ परन्तु जो गर्भ उसके पेटमें प्रथमसे था उसने बड़ा कमस्थान होनेके कारण लात मार २ पिछिले गर्भको बाहर कर दिया तब बृहस्पति ने कहा हे ममते मूढ़े । इरा द्राज अर्थात् दूसरीवार के उत्पन्न पुत्रको भरण पोषण कर ममता ने कहा बृहस्पति तुम इसको भरण करो यह कह माता पिता दोनों चले गये किसीने ग्रहण न किया उस पुत्रका भरद्वाज नाम हुआ वही पवनने राजा भारतको दिया इनका दूसरा नाम वितथ हुआ वितथ के अभवन्मन्यु नाम पुत्र हुआ अभवन्मन्यु के बृहत्क्षत्र महावीर्यनर गर्गादि हुये उनमें नरके सकृति सकृतिके रुचिरवी व रन्ति देव दो पुत्र हुये गर्ग के शिनि तिनके गार्ग्य इन सबकी क्षत्रिय ब्राह्मणकी मिली हुई जाति हुई महावीर्य के उरुक्षय हुये तिनके त्रय्यारुण पुष्करी कपि ये २ पुत्र हुये ये तीनों पीछे से ब्राह्मण हो गये बृहत्क्षत्र के सुहोत्र सुहोत्र के हस्ती जिन्होंने हस्तिनापुर बनाया इनके अजमीढ दिमीढ पुरुमीढ तीन तनय हुये अजगीढ के कण्व कण्वके मेधातिथि इन मेधातिथि से कण्वायन सञ्जरु या क्षण हुये अजगीढ के एक और पुत्र बृहदिपु नागथा तिसके बृहद्मसु तिनके बृहत्कर्म तिनके जयदय तिनके विश्वजित् तिन के सेनजित् तिनके रुचिराश्व काश्य दृढधनु वत्सहनु ये हुये रुचिराश्व के पृथुसेन तिनके पार पारके नीप नीप के १०० पुत्र तिनमें काम्पिल्य नगरका स्वामी समरनाग प्रधान हुआ समरके भी पार सम्पार सदश्व तीन पुत्र हुये पारके पृथु पृथुके सकृति तिनके विभ्राज तिनके अनुह इनका विवाह शुक्राचार्य की कन्या सकृत्वा के सापट्टुआ तिनके ब्रह्मदक्ष तिनके विष्वक्सेन तिनके उदकसेन तिनके दिगीढ तिनके प्रभीनर तिनके धृतिमान् तिनके मत्पधृति तिनके दृढनेपि तिनके सुपार्व तिनके सुगति तिनके सन्नतिमान् तिनके कृत्त तिनको हिरण्यनाभने योगशास्त्र पढ़ाया इसलिये इन कृत्तने मामवेदकी २४ संहिता बनाई कृत्तके उग्रायुत्र हुये जिन्होंने नीपवर्णा क्षत्रियों का नाश किया उग्रायुत्रके भ्रम्य तिनके सुवीर तिनके उपनय तिनके बहुरथ ये इतने पुरुवंशी हुये अजमीढ की स्त्रीका नीनिनीनाम

या तिसमें नीलहृये तिनके शान्ति शान्तिके सुशान्ति तिनके पुरुजानु तिनके चक्षु तिनके हृष्यश्व तिनके मुद्गल सृजय बृहदिपु प्रवीर ऋषिय ये ५ पुत्रहृये इन पाशोंकी रक्षासे इनके पिता प्रसन्नहृये इसीसे अपने देशका पचालनाग धराया मुद्गलसे मौद्गल्य नाम क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी मिलीहुई जानिहुई व उनके पुत्रका बद्ध्यश्वनाम हुआ तिससे द्विवोदामपुत्र व अहल्यानाम कन्या हुई शारदात् अर्थात् गौतम मुनिसे अहल्यामें गतानद जी हृये गतानदके सत्यधृति धनुर्वेदान जाननेवाले हृये सत्यधृति के उर्वशीको देख वीर्यस्त्रालितहोने व सरपत्त में परने से एकपुत्र व एक कन्या उत्पन्नहुई उसीममय राजाशान्तनु शिकार खेलने गये थे मारे कृपाके उगलाये इसलिये उस बालकका रूप व कन्याका कृपी नामहुआ इससे द्रोणाचार्यका विवाह हुआ जिसमें अश्वत्यामाजी उत्पन्नहृये द्विवोदासके मित्रायु तिनके च्यवननाम राजा तिनके सुदास तिनके सौदास जिनका सहदेवभी नागहुआ तिनके सोमक तिनके जन्तु इन जन्तु के ६६ भाई इनसे छोटे औरथे तिनमें सबसे छोटा पृषतनागहुआ तिनके द्रुपद तिनके धृष्टद्युम्न तिनके धृष्टकेतु अजगीढके एक और ऋषनाम पुत्रहुआ तिसके सवरण तिनके कुरु तिन्होंने यह धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र बनाया इन कुरुके सुधनु जहु परीक्षित आदि पुत्र हृये सुशनुके सुहोत्र तिनके च्यवन तिनके कृनक तिनके उपरिचर तिनके वसु तिनके बृहद्रथ प्रत्यङ्कुराग्र गावेत्त मत्स्य आदि ७ पुत्रहृये बृहद्रथ से कुशाग्र तिनके ऋषभ तिनके पुष्पवान् तिनके सत्यधृत् तिनके सुधन्वा तिनके जन्तु इन्हीं बृहद्रथ से एकपुत्र हुआ जिसके बीचोबीच से दो सद्ये उमे जतानाम राक्षसी ने सन्धिन किया इसलिये उमका जरासभ नाम हुआ तिसके सहदेव नाम पुत्रहुआ तिनके सोमापि तिनके श्रुतधरा ये इतने गगधदेश के राजा रहे ॥

## वीसवां अध्याय ॥

श्लो० ना धिमयं अप्याय महं बहत् सकलं कुरु यश ॥

जहा ज्याममे पांडु धृतराष्ट्र त्रिदुरजनि दास ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोलै कुरुके पुत्र पर्माशिन के जनमेजय श्रुतमेन उपसेन भीम-  
नेन ये ४ पुत्रहृये व जहनु के सुर्य तिनके विदग्ध तिनके मार्गभोग तिनके

जयसेन तिनके आग्रही तिनके अग्रतः, यु तिनके अक्रोशं तिनके देवातिथि तिनके श्रद्धा तिनके भीमसेन तिनके दिलीप तिनके शनीप तिनके देवापि शन्तनु बाहीक ये ३ पुत्र हुए देवापि शल्यावस्वाही में वनको चले गये तब शन्तनु राजा हुये ये शन्तनु जी जिस २ बूढ़े को लूने थे तुम्हें ज्ञान हो जाता था व वह बड़ी शक्ति को पहुँचता था इमलिये इनका शन्तनुगर्भ हुआ तिन शन्तनु के राज्य में १२ वर्ष लग वर्षों न हुई तो सब राज्यका नाशदेख राजा ने ब्राह्मणों से पूछा हे ब्राह्मणो ! हमारे राज्य में वर्षों क्यों नहीं होती इममें हमारा अपराध हो गताइये ब्राह्मणों ने कहा यह पृथिवी तुम्हारे ज्येष्ठ भाईकी है व उनका विवाह नहीं हुआ था इसलिये तुमको परिवेत्ता दोषजागा इसीसे वर्षों नहीं होती रानाने कहा फिर इमका कोई उपाय है या नहीं ब्राह्मणों ने कहा हाँ जब तक देवापि किसी का रण पतिव न होजावै तबतक आप राज्य न कीजिये प्रथम उसके पतित होनेका उपायहो यह सुन राजमन्त्री अशमसार ने ब्राह्मणोंका वेपथर दोषार वेद विरुद्ध काम करनेवाले लोग वनमें देवापिके निकट भेजे उन लोगोंके वहाँ जाने से देवापि की मति वेद विरुद्ध होगई तब शन्तनु ब्राह्मणों को संगले वनमें अपने भाईको राज्य देने गये व बहुत विनयी की कि आप अपना राज्य कीजिये ब्राह्मणों ने भी वहन देवगणी इस विषयमें सुनाई पर देवापि की मति तो वेद विरुद्ध होरही थी उन्हों ने वेद व ब्राह्मण दोनोंकी बड़ी निन्दा की तब ब्राह्मणों ने शन्तनु से कहा अब आप इनको न मनाइये चलकर राज्य कीजिये ये अब वेद ब्राह्मणों की निन्दा करने से पतित होगये अब परिवेत्ता दोष आपमें नहीं रहा क्योंकि जब बड़ाभाई किसी कारण पतिव होजाता है तो छोटे के विराहहाने व बड़ेका राज्य लेने से परिवेत्ता दोष नहीं होता यह सुन शन्तनु अपने नगर में आय राज्य करने लगे तब वेदविरुद्ध बात उच्चारण करने से देवापि पतित होगये शन्तनु के राज्य में वर्षाहुई और बाहीक के सोमदत्त नामपुत्र हुआ तिनके भ्राता शूरिभया व शल तीन पुत्रहुये और शन्तनु के श्रीगंगाजी में उदारकीर्ति मयशास्त्रवेत्ता महामयी भीष्म नाम तनयहुये व सत्यरती स्त्री में चित्रागद विचित्ररीर २ पुत्र शन्तनुजी के हुये उनमें चित्रागद को तो वाग्यावम्पाही में चित्रागद नाम मन्त्रों ने मप्राम में गारबाला और विचित्ररीर का भी विवाह कृत्तिसाच की कन्या अम्बिका व

श्रम्वालिका के साथ हुआ उनदोनों के मग अनिभोग करनेसे उनके क्षयरोग होगया कि वहभी विना सतानही गरे पराशर मुनि बोले कि तव सत्यवती अपनी मानाके गौरव से हमारे पुन कृष्ण द्वैपायन वेदव्यासने विचित्रवीर्य की स्त्रियोंमें धृतराष्ट्र व पांडु दोपुत्र और विचित्रवीर्यकी स्त्रीकी मेव ही एक शूद्रमें जिसे उन्होंने अपने स्थान में भेजा था विदुरनाम पुत्र ये सब तीन पुत्र उत्पन्न किये धृतराष्ट्र के दुर्योधन दुष्शासन प्रधान १०० तनयहुये व पांडुके भी वनमें गृहके शापसे पुत्रोत्पादन करने की सामर्थ्य न रहने से धर्म वायु इन्द्रमे युधिष्ठिर भीमसेन अर्जुन तीन कुन्ती में व अश्विनीकुमार से नकुल सहदेव दो माद्रीमें सब ५ पुत्रहुये इन सबकी साभे में एक द्रौपदी नाम स्त्रीथी उनमें उन सबों से एक २ पुत्र अर्थात् ५ हुये युधिष्ठिर मे प्रतिविन्द भीमसेनमे सुतसोन अर्जुन से श्रुतकीर्ति नकुलमे शतानीक सहदेव से ध्रुवकर्मा ये तो द्रौपदी में हुये इनको छोड़ अन्य स्त्रियोंसे युधिष्ठिरादिकों के अन्यभी पुत्रथे जैसे कि युधिष्ठिर से योधेयी नाम स्त्री में देवक भीमसेन से द्विदम्बी में घरोत्कच व सर्वत्रग सहदेव से विजया में सुहोत्र नकुल से करेकृमती में निरामित्र अर्जुन से उलूपी नाम नागकन्या में इरावाग् मणिपुरपतिकी पुत्री में पुत्रिका धर्म से वधुवाहा नाम व कृष्णचन्द्रकी भगिनी सुगदाजी मे अभिमन्युजी हुये जिन्होंने वाएपात्रस्याही में अमरुप शत्रुओं को मारा अभिमन्यु के उत्तरा नाम स्त्रीमें जब कुरुवगी परिक्षीण होगये तब अश्वत्थामा के चलाये हुये ब्रह्मास्त्र से गर्भही भस्म हुआजाता था भगवान् कृष्णचन्द्र के प्रभावमे गर्भ की रक्षाहुई इससे परीक्षितजी तत्पनहुये जो आजकल मगस्त महीमण्डल ही पालना करनेहै यह पराशर का वचन है ॥

## इक्रीसवां अध्याय ॥

दो० इष्टिमये श्रप्याय महं नविषियस कुटोत्र ॥

उर्णय क्षेमकनकगालिः यस्मिन् महिः ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले हे मेरेपुत्र ! अब हम भविष्यत राजाओं का भवान करने हैं जो आजकल परीक्षित नाम महागण राज्य करने हैं इनके भी वनमेजय ध्रुवमेत उद्यमेन भीमसेन २ पुत्रहोंगे और एक शतानीक नाम पुत्रहोंगा जो

याज्ञवल्क्यजी मे वेदपद कृपाचार्य से अन्न पाय विषयवाचना से विरक्तचित्त हो शौनक के उपदेश से आत्मज्ञान पाय परम मोक्षपद को पहुँचेगा शतानीक से भस्वमेधदत्त होंगे तिनके अधिसीम कृष्ण तिनके निचकम्प होंगे जो इस्तिनापुर गगामें डूबजाने से कौशाम्बी पुरी में वसेंगे तिनके उष्ण उष्णके चित्ररथ तिनके शुचिरथ तिनके वृष्णिमान् तिनके सुपेण तिनके सुनीथ तिनके ऋच तिनके नृचक्षु तिनके सुखावरा तिनके परिश्रव तिनके सुनय तिनके मेधावी तिनके नृपंजय तिनके मृडु तिनके तिग्म तिनके बृहद्रथ तिनके वसुदान तिनके शतानीक तिनके उदयन तिनके अहीनर तिनके खण्डपाणि तिनके निरमित्र तिनके क्षेमक ॥

चौ० आस्य ऋषि योनि जो वशा । जासु राज कपि कर्त प्रदासा ॥  
सो कलियुग महँ क्षेमक राजहि । पाय समाप्त होहु विन साजहि ॥ १ ॥

## वाइसवां अध्याय ॥

बो० वाइसवें अध्याय महँ सोम सूर्य के वश ॥

जो भविष्य नृप होहिने तिनकी वरय प्रदासा ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले हे भेत्रेय ! अथ भविष्यत् सूर्यवशी राजाओं का यत्न करते हैं जिस सूर्यवशी बृहत्तलको महागारुड में अभिमन्यु ने मारा उनके पुत्र का बृहत्तल नाग होगा तिनके गुरुक्षेप तिनके वरुत वरुतके वरुतवर्षुद तिनके प्रतिव्योम तिनके दिवाकर तिनके गहदेव तिनके बृहदश्व तिनके भानुरथ तिनके सुप्रतीक तिनके गरुदेव तिनके सुनक्षत्र तिनके किन्नर तिनके अन्तरिक्ष तिनके सुवर्ण तिनके मित्रजित तिनके बृहद्राज तिनके धर्मा तिनके वृन जय तिनके रणजय तिनके संजय तिनके व्याख्य तिनके शुद्धोदन तिनके रातुल तिनके प्रसेनजित तिनके क्षुद्रक तिनके कुण्डक तिनके सुरथ तिनके सुमित्र इनमे यह सूर्यवंश समाप्त होजावेगा इस विषयमें यह पद्य गायाजानाहै ॥

चौ० यह इक्ष्वाकुवंश अति पावन । भूप सुमित्र अन्ततर गायन ॥

कलियुग में सुमित्र के पाठे । विर न चलिहि वर्णत यह आठे ॥ १ ॥

## तेईसवां अध्याय ॥

बो० तेइसवें अध्याय मई चन्द्र वश के भूप ॥

कहय गिपुजय लग भविषि कलिमई अतिमि अनूप ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले सूर्य सोमवशी भूत भविष्यत् राजाओंका वधान होचुछा अब सोमवशी के पक्षव से उत्पन्न बार्हद्रथ राजाओंका भविष्यत् वश कहने छे इस भाग प्रथम में जसमन् रात्रि प्रतापी राजाहुये जगमन्त्रके पुत्र सहदेव के सो मापि पुत्रहोगा तिसके सुनयान् तिनके अयुतायु तिनके निरगित्र तिनके सुक्षेत्र तिनके बृहत्कर्मा तिनके सुश्रुग तिनके दृढसेन तिनके सुमति तिनके सुबल तिनके सुनीत तिनके सत्यजित् तिनके विश्वजित् तिनके रिपुजय इने बार्हद्रथ मागध राजा कलियुग के १००० वर्ष बीतेतक रहेंगे ॥

## चौबीसवां अध्याय ॥

बो० चौबिसवें अध्याय मई कलि नृप धर्म वधान ॥

भूमिगीत शिक्षा कहय हेतु विराग अमान ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोलेहे मैत्रेय ! जो मगधदेश के राजाओं में गिपुजय सबसे पिछला राजाहै तिसका सेवक शुनक नाम होगा वह अपने स्वामी गिपुजय को गार अपने पुत्र प्रद्योतनको राज्यमिंहासन पर बैठावेगा तिमके पुत्रका पालक नामहोगा तिमके विशाख्युप तिमके जनक तिनके नन्दिमर्दन ये पात्र प्रद्योतन नाम राजा १२८ वर्षतक राज्य करेंगे तिसके पीछे अन्य वशका शिशुनाम नाम राजाहोगा तिनके कारुण्य तिनके क्षेमधर्मा तिनके सत्रौज तिनके विन्दुसार तिनके अजातशत्रु तिनके दर्बाक तिनके उदयन तिनके नन्दिमर्दन तिनके महानन्दी ये १० शिशु नामकुल के राजा ६२० वर्षतक राज्य करेंग महानन्दीका पुत्र शूरी के गर्भ में उत्पन्न महापद्मनाम क्षत्रिया के नाम कर्मानेके लिखे दूसरा परशुमगही होगा तिनके पीछे सब शूरी राजाहोग यह महापद्म पृथ्वीवरका पृथ्वी राजा होगा तिसके सुगान्धी जाति = पुत्र शमि ये महापद्मके पीछे राजाहोगे महापद्म के पुत्र सब १०० वर्षतक राज्य करेंगे उन नन्दों के पीछे एक मात्राय ने कुट्टिननाम नन्दको पञ्चाग के शत्रुवश भव

दिलावेगा चन्द्रगुप्त के विन्दुमार तिनके अशोकवर्द्धन तिनके सुपरा तिनके  
 तशग्य तिनके सगन तिनके शानिशूक तिनके सोमरामा तिनके शतधन्वा  
 तिनके अनुवृद्धय इन १० राजाओं की मौर्यसत्ता होगी ये १३७ वर्ष राज्य  
 करेंगे इनके पीछे शुंगजाति के राजा होंगे उन शुंगों की सेनाका स्वामी उ  
 पने स्वामीको मार आप राज्यकरेगा इमका पुष्पमित्र नामहोगा इमके पुत्रका  
 अग्निमित्र तिनके मुञ्ज्येष्ठ तिनके प्रमुमित्र तिनके भार्गव तिनके पुलिन्दक  
 तिनके घोषवसु तिनके वज्रमित्य तिनके भागवत तिनके देवभूमि ये १० शुंग  
 नामक १० वर्षनक राज्य करेंगे तिसके पीछे कण्ववंशीयों के पाम यह भूमि  
 जायगी शुंगों के अविग राजा देवभूमि को कण्ववंशीयों वसुदेव नाम जो कि  
 उसीका नौकर होगा मार आप राज्य करनेलगेगा तिसके पुत्रका भूमित्र नाम  
 होगा तिनके नारायण तिनके सुशर्मा ये ४ कण्ववंशी ४५ वर्षनक राज्य  
 करेंगे सुशर्मा को उसीका सेवक अयकवन्गी क्षिप्रनामक मार आप राज्य करेगा  
 तिसके पीछे उसका भाई कृष्णनाम राजा करेगा तिनके श्रीजातरुर्षि तिनके  
 पूर्णोत्सग तिनके शानकरुर्षि तिनके लम्बोदर तिनके द्विवीलक तिनके मेघ  
 स्वाति तिनके पटुमाग तिनके अरिष्टकर्मण तिनके ह्वान तिनके पत्तलक तिनके  
 पविष्ठमेन तिनके सुन्दर शानकरुर्षी तिनके चकोर शानकरुर्षी तिनके शिवस्वानि  
 तिनके गोमती तिनके पुलिमान तिनके शानकरुर्षी शिवश्री तिनके शिवस्कन्ध  
 तिनके यज्ञश्री तिनके विजय तिनके चन्द्रश्री तिनके पुनोगर्षि ये १३५६ वर्ष  
 राज्यकरेंगे तिसके पीछे ७ थागीर १० गर्दभिल १३ अकवन्गी तिमके पीछे ८  
 यवन १४ तुषार अर्थात् गौरा १३ गुण्ड ११ गोन ये ७६ राजा १३६६ वर्ष राज्य  
 करेंगे तिमके पीछे पौरनामक ११ गजा तीनसौ वर्षनक राज्य करेंगे तिनके उच्छि  
 न्न होजानेपे कौचिकि कनाम यवन राजा होंगे तिनका अभिषेक केवन विष्णुशक्ति  
 हीका होगा तिसके पीछे पुरजय तिनके रामचन्द्र तिनके धर्म तिनके वरांग तिनके  
 कृन्तदन तिनके सुमनसि तिनके नन्धियज तिनके शिशुक तिनके मवीर ये  
 राम १०६ वर्षनक राजा होंगे तिसके पीछे विष्णुशक्त्यादिकों के १३ पुत्र मा  
 भीक सत्तक होंगे फिर तिनके पुष्पमित्र पटुमित्र ये ३ होंगे फिर १३ मेकन  
 इनमें अयोध्यामें ९ राजा होंगे ६ नैपवराजा तमभापुरीमें विन्धवसुष्टिक नाम  
 एक राजा होगा यह सबको अन्यवर्ष करठानेगाय केवत्तपटुमित्र नामोंको

राज्यमें स्थापित करेगा सब क्षत्रियोंको देशसे निकालदेगा कि पद्मावतीपुरी में ६ राजा नागसङ्गक होंगे कानीपुरी मथुरा गंगाके किनारे २ प्रयागवरु मुझ जातिके राजा होंगे व कोशलेंद्र ताम्रलिप्तपुरी जो समुद्र तटपेहे इतमें देवरक्षित राजा होगा कर्लिंगमाहिषक माहेन्द्रकी पृथ्वीको गुडसङ्गक भोगेंगे नैपाद नैमिपिककालतोय देशोंको गणधान्यशी भोगेंगे स्त्री राज्यमूपिक देशोंको कनक सङ्गक भोगेंगे सौराष्ट्र अतिकापुरी मरुदेव इनको जातिभ्रष्ट ब्राह्मण व शूद्र भोगेंगे सिंधुदेश व काष्मीरादिमें चद्रमागा नदीके किनारे २ जातिभ्रष्ट ब्राह्मण व म्लेच्छ व शूद्रादि राज्यकरेंगे ये सब राजा और २ एकही कालमें इस भराखण्डमें होंगे और सबके सब प्रसाद तो योड़ादेंगे कोप नष्ट कोंगे मन काल में झूठी बोलने व स्त्री बाल गोपन करनेवाले परद्रव्यलेनेमें रुचि करनेवाले अल्प बली उदय होनेमें महातमोगुणी धोड़ी २ आयुर्दायवाले बडी २ इन्द्रा करनेद्वारे अल्पधर्मकारी ये सब गुण सर्वोंमें होंगे इनमें जो राजाओं के नगीचीहोंगे वही बलवान् रहेंगे चाहे म्लेच्छ भी हो उन्हींकी रीति श्रेष्ठ समझी जायगी व श्रेष्ठलोगों की रीति म्लेच्छों की रीति समझी जायगी इमजाण धर्माभ्रष्टहो सब प्रजा नाश होजायगी तदनन्तर धीरे २ गिटने २ धर्मातीर्षकी वार्त्तामसार से जाती रहेगी तदनन्तर अर्त्यही से प्रयोजन रहेगा लोग धनहीको गर्भ मम करने लगेंगे केवल स्त्री पुरुषहीका सम्बन्ध रहेगा अन्य भाई बन्धु गाता पिता ही कोई न मानेगा परद्रव्य लेलेना वा उद्यम करना यही चतुग्ना रहेगी स्त्रीरूपहो पुरुष भोग करावेंगे पृथिवी रखने से केवल खन ताम्रादि की प्राप्तिही हेतु माना जायगा न कि उससे जो द्रव्य मिले तीर्त्यवात्रादिमें तागाईजाये केवल यज्ञोपवीत धारण करनाही ब्राह्मणताका हेतु होगा न कि मन्था वन्दन नर उपादि करना रंगे कपड़े पहिनना यही सन्यासी तपस्वी आदियों का हेतु होगा न कि अन्य कर्मा अन्याय करनाही जीविकाका हेतु होगा जो दुर्जन होगा उमरों जीविका न मिलेगी दीनताके साथ बोलना इमीका पाठित नाम होगा कुल भी दान करना धर्म मगन्ता आवेगा धनी होगा वही मनु कश्यपेगा मानव रनाही पवित्रता कदावेगी किसीका हाथ पकड़नेना यही विराट कहा वेगा अन्धे मन्दादि धारण विषहो ताटे नाचगीहो योग्य नगन्ताजायगा जो वस्त्रे दूहो वही तीर्ष कदावेगा इम भाँति विष्णुपुराण मन्थन मन्थन में होजाये



तो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र अन्त्यजों में जो कोई बनवान् होगा वही राजा हो-  
 लायगा कुछ जातिका नियम न रहेगा इमीमोनि होते २ जब पृथिवीका पौत्र  
 बढ़जायगा तब प्रजा पीड़ितहो भाग २. पर्वतादिकी कन्दों में जागिरैगी व  
 नाशको पहुँचैगी जो जीतीरहेगी मनु पुष्प कल शांकादि व्यापगी वृक्षाके व  
 फला पत्ता आदि पहिनेगी इसलिये गीत वर्षा घाम सहनेका स्वभाव होजा  
 यगा कोई भी २२ वर्षे न जीवेगा बहुधा सबही शल्यही जायुप होगी इसमेंपर  
 सब जन नाशको पहुँचेंगे वेदस्मृतिके अनुसार कर्मोंके न होनेपर व भयर्मा  
 चरण प्रवृत्त होजानेपर सब जगत्के सदा चगचरके पिता आदि मध्य अन्तमम  
 ब्रह्मण्य आत्मस्वरूपी भगवान् वामुदेवके अशमे जम्भलपाम में ब्राह्मणोंमें प्र-  
 धान विष्णुयण नागके यहा श्रीकृष्की जीका अवतार होगा तब मकग म्लेच्छ  
 और दुष्टाचरण लोगोंका नाश वे करेंगे व सब जगतीको वर्षमें चलावेंगे जो  
 कलियुग नाकी रहेगा उममें सब शुद्धगनिलोग रहजावेंगे उन सब लोगों की  
 सतति उनसे भी अच्छी होनेवगेगी यहानक कि तब मत्स्ययुगी मनुष्यों के स-  
 गान काग करनेलगेंगे इस विषयमें यह पत्र पढ़ाजाता है ॥

चो० चन्द्र सूर्य गुरु एकहि समा । पुष्यकृष्ण में जाहिं व्यभगा ॥

न्यूनाधिक तनिकी नहिं कोई । तब सुखदायिमत्ययुगतोई ॥५॥

हे मैत्रेय । जो राजा वीतजाये प्रजो जब राज्य करने हैं व जो आगे राजा  
 होंगे उन सबके वगवाले राजाओंकी कथा कही राजापरीक्षित के नन्पमे से  
 महानन्द राजाके अभिषेकतक १०५ वर्षतक शुद्ध क्षत्रियलोग कलियुग में  
 राज्यकेंगे सप्तर्षियों में जो पुलह पुलस्त्य सबसे पूर्व हैं उनके चीनके नक्षत्र  
 में सप्तर्षि जब होते हैं तब कलियुग लगताहै मो राजापरीक्षितके जन्म काल  
 में सप्तर्षि गंधानक्षत्र में ये तभी कलियुग लगाया वह वही समय है जब  
 भगवान् कृष्णचन्द्र स्वर्गको गये थे तभीमें कलियुग आया है जयनक वे अपने  
 चरण कानन से पृथ्वी को छूनेके तबपर कलियुग पृथ्वीको नहीं छुपका जब  
 कृष्णचन्द्र इस पृथ्वी को छोड़ स्वर्ग को चनेगये तभी राज्यछोड़ धर्मके पुत्र  
 महाराज सुषिष्ठिरजी भी अपने भाइयाममेत स्वर्गको चने गये तब देवा कि  
 कृष्णचन्द्र चनेगये और गठीमण्डप में रहे व जन्म होनेवगे तब अपने पौत्र  
 परीक्षितजी का जन्म देखा गयेये तब ये सप्तर्षिलोग मन्त्रा में पर्याषाद में पाये

तव जन्म के पीछे जाने राजाहारी और तभीमे कलियुग अपनी बढ़नी को प-  
 हूँचेगा त्रिभुदिन कृष्णचन्द्र महीमण्डल छोड़ अपने धामको गये उमीदिन क-  
 लियुग, आया तिसकी मरुपा सुनिये ३६०००० वर्ष मनुष्यों की गिनती मे यह-  
 कलियुग रहेगा देवता आ की गणनामे १२०० वर्ष रहेगा जब सब कलियुग बीत  
 जायगा तो फिर सत्ययुग लगेगा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये सब युगों में  
 महात्मा होते चले आये हैं और उनके बहुत २ नाम हुये व होने जायेंगे क्योंकि  
 कुल २ के नाम भिन्न हैं बड़ा गारी मन्वहोजाने के भय से उन सबके नाम हार  
 ने नहीं कहे पुरुशरियों के राजा देवापि व इक्ष्वाकुवर्गी राजा मनु महायोग के  
 बल से कलापग्राम में तपस्या करते हैं जब सत्ययुग लगेगा तो यदाया चन्द्र  
 सूर्यवशको चलावगे इस क्रम मे मनु के पुत्र सत्ययुग त्रेना द्वार तीर्नायुगों  
 में राज्य करते कलियुग में राज्य नहीं करते केवल बीजमून कोई २ नहीं २  
 टिके रहते हैं जैसे देवापि व मनुपुत्र दोनों इसममय कलापग्राम में टिके द  
 हे मैत्रेय ! यह लक्षेपरीति से प्रधान २ राजाओं का वश हमने कहा सम्पूर्ण  
 वश तो सेकरो वर्षों में भी नहीं कहसके जितने राजा गिनाये व जिन्हें नहीं  
 गिनाये व उन्हें ने इस नित्य पृथिवी में अपो अनित्य देह से गमना की है  
 कि हाय २ हमारे पीछे हमारा पुत्र कैसे राज्य करेगा फिर उसके पुत्र पौत्रादि  
 कैसे राज्य करेंगे इन सबको पुष्टिगत हो पृथिवीईसा कर्ता है हे मैत्रेय ! पृथिवी  
 के गायेहूये श्लोक सुनिये जिन्हें धर्मध्वजी जनक राजा मे अमितमुनिने कहा  
 है पृथिवी कहती है कि इत राजा आये यह मोड़ क्यों है जो केन गगानेद  
 में विश्राम मानते हैं ये लोग यहिने जरना तो जीतने फिर मन्त्रियों को जीत-  
 ना चाहते फिर भृत्ययोग व पुरवाभिया के जीतने की इच्छा करते जैसे कि  
 राज्ञों को जीतना चाहिये इमीक्रम मे विचारन है कि जीतने कुछ दिन म  
 मसुद्र पर्यंत पृथिवी जीतनेमे मुझे पे लहेहूये सत्य को नहीं देने यह गरी  
 कि अपने काम को धादि जीते कि सत्तावरण मे मुक्त होके रहस होजाये तगार  
 जीतने से उनकी क्या मिलेगा त्रिभुदारी छोड़ के उनके पहिनेवाने चने  
 गये व ये भी मोद जायेंगे वे मुद्र निभ हगारे जीतनेमें क्यों रूपा परिश्रमारी  
 है हगारे निमित्त विना पुत्र व शारदा में रिपद जन है इमी मे अपनी मात  
 मे पराई यह सब श्रुति हगारी है व स्वहृत्ता तपसनी व पाम मदा मदा

जो २ कुमुदि राजाहृये व जो होंगे उन सबकी ऐसीही गति रही व रहेगी हम नहीं जानती कि जब उनके पहिलेवाला राजा मरता व हग भी पहिलेवाला जाता तो उसको देखनेभी है कि पहिलेवालों को क्यों हममें ममता होती है जो लोग अपने दूतोंसे शत्रुओंको कहला भेजतेहैं कि यह पृथ्वी हमारीहै शी प्रही इसे छोड़दो तिन मूढ़ राजाओं की गति देख हमें बड़ी हँसी आती है पर कि दयायाजाती है पराशर मुनिबोले हे भेत्रेय ! ये धरणी के गाये श्लोक जो सुनतेहैं तिनकी ममता दूर होजाती है जैसे गग्गीमे जाड़ा मिटना है यह मनु का वश हमने कहा जिसकी स्थिति चलाने के लिये विष्णुके अशाश से राजालोग हुये जो इस मनुवगकी कथा कणसदित सुनता उसके सबपाप बूढ़ जातेहैं व अनि पवित्र मूर्ख लोगवगकी कथा जो सुनता अतुन धनधान्य श्रद्धिसिद्धि सब उसके होतीहै मनुष्योंको चाहिये कि इन्द्राकु जहनु मान्याता सगर रघु ययाति नहुप आदि महापराक्रमी व वंजवान् राजाओं का नाशदेस व मुन पुत्र पौत्रादि में ममता न करे जब ऐसे २ न रहे तो औरों की क्या गणना जिनलोगों ने ऊपरको बाहुउठाय जलशायीहो नानाप्रकार की तपस्या की उन्हेभी फात कलेवा करगया केवल कथागात्र सुनी जाती है राजा पृथु ने सब पृथ्वीमण्डल में राज्य किया शत्रुओं का नामही भेटदिया तो भी काल-प्रेरित पवन के झकोड़ों से प्रचण्डअग्नि में गिर गसग होगये जैसे मेमर की रुई में आग लगती है उसका पता नहीं मिलना जिस सहस्रबाहु फाँसीरग-ज्जुन राजा ने सप्तद्वीपवती पृथिवी का राज्य किया बहगी कालके मुषर्ष पा अब केवल कथाप्रसङ्ग में नाम लिया जाना है गवण ऐमा महाप्रतापी जिन के ऐश्वर्यके आगे रघुवशियों का भी ऐश्वर्य तुच्छया व सब दिशां में प्रफा जिन या सो भी काल मुन में पर गसगहोगया फिर अन्य ऐश्वर्यकी धिकार है भूमि में मान्याता राजाकी कथाही गानों उनका शरीर बनाहै बड़ेप्रतापी चक्र वर्धी राजा हुयेहे पर रह न सके उन ही कथा श्रवणकर कोई माधु ममता न कोगा भीत्यासि सगर ककुत्स्थ रावण राम लक्ष्मण युधिष्ठिरादि महुमराजा हुये मित्या नहीं पर नहींजानने फर्दागये जो राजालोग इसममय विद्य गान हैं व जो आगे होंगे सबकी वही दमा होगी जो पहिलेवालोंकी हुई है यह जान श्रेष्ठ पण्डित को चाहिये कि अपने शरीरमें भी ममता न करे

फिर स्त्री पुत्रपौत्र धन धान्य ये शरीरमे अलग हैं इमलिये इनको अलग धरे ॥

इति श्रीमद्विष्णुपुराणे चतुर्थेऽङ्के चतुर्विंशोऽध्यायः २४ ॥

## अथ विष्णुपुराणस्य ॥

पञ्चमोऽङ्कः ॥

### पहिला अध्यायः ॥

श्लो० यापञ्चम शुभ अश में अरातिस हैं अध्याय ॥  
 तहां प्रथम अध्यायमहं कृष्णजन्माहित जाय ॥ १ ॥  
 देवन हरि सस्तुतिकरी सो वर्णत मुनिलेहु ॥  
 कृष्णजन्मकी है कथा मित्र चित्त यह देहु ॥ २ ॥

चतुर्थ अशकी कथामुन मैत्रेयमुनि बोले हे मुनिराज ! आपने राजाओं का वंश विस्तार सहित कहा व वंशानुचरित भी सब यथावत् कहा पर जो यदुकुल में श्रीविष्णुभगवान् के अश से श्रीकृष्णावतार हुआ है उमकी कथा विस्तार पूर्वक सुना चाहने हैं अशारा से महीत नगों अवतारने जो कर्म भगवान् पुरुपोत्तमने क्रियेहों सब हममे कहिये यह सुन पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय ! विष्णु के अशारा से उत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र के एवमचरित्र जो तुमने पूछे सो संमारके हेतु कहने हैं श्रवण कीजिये गजा देवकी कन्या बड़ी भाग्यगात्रिनी देवकीजी का विवाह वसुदेवजी के साथहुआ जब देवकी वसुदेव स्वयं चंद्र चले तो उग्र सेनका पुत्र कंस उनका रथ हाकने लगा तो कंसको आदर महित सुनाय बड़े जोर से आकाशवाणी हुई कि हे मुद कंस ! जिन इन दोनोंको तू गयी चढ़ाये भेजनेको जाता है तिनके अउर्ये गर्भवाने बालक से तेरा मरणहोगा यह सुन तलवार भींच कंस देवकी को गाने चला तब वसुदेवजी बोले हे महाबाहू कमजी ! याप इमको न मारिये जो २ बातक इससे गर्भमेहोंगे सब ह्यतुनकी देनापोंगे वसुदेवजी के वचनगान कंसने देवकी को न मारा इन्दी तिनोवे द्र

राजाओं के भारसे पीड़ित हो पृथिवी सुमेरु पर्वत पे-देवताओं की सम्राज में  
 पहुँची यदा ब्रह्मादि मन दबोगे अपने दुःख का हेतु बहुत मेघ २ कहने लगी  
 जैसे अग्नि सुवर्ण का गुरु है व सूर्य्य पशुओं के वैसही हगारे व सब लोक का  
 पालन करनेवाला गुरु श्रीनागचण हरि है ये प्रजाओं के पति अग्नी पत्नी  
 कृष्णा मृदुर्षादि के स्वामी तिसी नागचण के अश्रुमें उत्पन्न हैं जोकि सुम मय  
 देवगणों के अधिष्ठाना है आदित्य पवन साध्य रुद्र वसु शश्विनीकुमार अग्नि  
 पितर अन्य भी जो लोककी सृष्टि करनेवाले हैं ये सब उसी अतुलबल श्रीहरि  
 के रूप हैं यक्ष राक्षस दैत्य पिशाच नाग दानव गन्धर्व्व अप्सरा ये भी उन्हीं  
 महात्मा विष्णु के रूप हैं मइ नक्षत्र तारागण आकाश अग्नि पवन जल व ह्रम  
 सब सब जगत् विष्णुमय हैं यद्यपि उस परमात्मा के रूपसे बाहर कुछ नहीं तथापि  
 इन्हींमें से कोई किसी के मारनेवाला व कोई किसी से मरनेवाला होता है जैसे  
 समुद्र की लहरें जो जल समुद्रमें हैं वही उमकी लहरों में कुछ भ्रान्त  
 नहीं तथापि वे समुद्र की लहरें कहाती हैं तिसाँहेतु भ्राजकल कालनेमि  
 आदि देव्य पृथिवीतल में आय प्रजाओं का नाश किये डालने व जो कहा  
 कालनेमिको तो श्रीहरि ने वध किया अथ बहु कहा है सो वही भ्राजकल उभय  
 का पुत्र का हुआ है इसके पिता व अग्नि धेनुकासुं केती प्रजांम्यासुर नगका-  
 सुर सुन्दामुर याणामुर तथा अन्यभी जो राजाओं के घरमें वृष्ट उत्पन्न हुये हैं  
 जिनकी गिजती में नहीं फरसकी उन सब हणोंकी आक्षोहिणीकी नयोदिपति  
 सब गेरेजार वृगनी हैं तिनके गासमें पिभी जाती हैं अब मुझमें उतका भार  
 नहीं सहाना नहीं आपलोगों से कहने आई हूँ तिसीसे हे देवो । जगत्पोग  
 हमारे नाम बनाने का उपाय भीजिये जिसमें बहुत नरुभाष साउल को न  
 चली जाऊ परमारगुनि बोले जब इतमाति पृथ्वीने कहा तो उगले भार उना-  
 रनेका उपाय कहतेहुये गजराजी बोले हे देवताओ ! जना पशु की कही है हम  
 तुम सब नारायणी के अश्रु व इतलिये इतक भार उगलेसा उपाय करना  
 चाहिये और विभीम मुर्द्धरजीकी है वर उभमें न्यूनान्धिकाके वारण माने  
 व मानेनाता समग्र जाना है जिसमें जासो उर जब सीतामारदे तीर पके व  
 श्रीहमिनी नृविन्द पशुके भारके समारथ उनमें कहे कयोकि नया वे भी  
 हरि जगत्के उत्तम क्षपने स्वरूप अंगमें प्ररताले अर्थात्मान काये हैं यह

मह सम देवताओं व पृथिवीकी भगले क्षीग्मगुडके किनारे लाय चित्त लगाय  
 गायत्राय श्रीहरिकी स्तुति करनेलगे ब्रह्माजी बोले हे नारायण ! आपके  
 सगुण निर्गुण दोरुहहे फिर दो अन्यरूपहे एक स्थान एक सूक्ष्म व एक शब्द  
 ब्रह्म एक ब्रह्मब्रह्म ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद शिखादत्तय निम्न  
 छन्द ज्यातिष इन्द्रिहाम पुषाण व्याकरण गीर्मांमा न्याय धर्माशास्त्र आत्मज्ञान  
 विचार वेदान्तशास्त्र सब तुम्हींहो फिर सर्वमें तीन सधननादर विन्ननां ररनके  
 योग्यभक्तिरूप पर चण्णादितीन परमपद विष्णु मः तुम्हींहो ॥

- १) धी) सुनत यान धिन लपत विनयना । रूपहीन वतुत्प सुधयना ॥
- २) कर चरणादि हीन अतिघावत । ग्रहणकरत पर सयष्टिनचावत ॥ १ ॥
- ३) तुम सब जानत तुम्हीं न कोई । जानत कृपासिधु नहिं गाई ॥
- ४) लघुते लघु तयरूप कृपाल । नहिं अज्ञानि लपत त्रयकाल ॥ २ ॥
- ५) धीरबुद्धि सुच्यत तयपासा । आनबुद्धि नहिं पदुच गुलासा ॥
- ६) तुम बरदानि परे सब सेती । तुम्हरी नहिमा विमिकहिजेती ॥ ३ ॥
- ७) विदधनामि तुम सुवन । पलैया । सकल भूत तुम महँ न छुटेया ॥
- ८) गूत मन्त्रिपितृ लघुते लघुजोई । प्रकृति परे तुमही हरि सोई ॥ ४ ॥
- ९) एक रूप पर चारि प्रकार । हे पावक जग करत उजारा ॥
- १०) विदय नयन तुम नेत्र विहीना । मूर्च्छि रहित बहु मूर्च्छिप्रवीना ॥ ५ ॥
- ११) यथा एक पावक यहू रूपा । फाट भेद सो लपत अनुषा ॥
- १२) तिमि तय एक रूप भगवाना । नाना रूप मर्म को जाना ॥ ६ ॥
- १३) एक आदित्पूरुष तुम स्वामी । तत्र पर पद देवर्हि ध्रुविगामी ॥
- १४) तुमसो अलग न कहू समारा । भूत सधिपि सो पउर पगाग ॥ ७ ॥
- १५) अव्यक्तव्यक्त रूप तुम अदृक् । तुम सर्वेश शक्ति सब लहक ॥
- १६) सद्यत पदत कथह नहिं काऊ । स्वयण सदा परवदा विमिगाऊ ॥ ८ ॥
- १७) ननुवापरण वातीतग मानन । निगलम्य जगतीश मुपायन ॥
- १८) चण विभूति नाथ पुरुषोत्तम । नमस्कार लीजे मकारोत्तम ॥ ९ ॥
- १९) अज्ञान न कारण कर्मण सोई । जामो सब धनु पारन लई ॥
- २०) धर्म म्पायन दित भाषना । सदा नेत्र तुम रूप मुगला ॥ १० ॥
- पगनामुनि बोले इसभांनि ब्रह्मादि द्वांशी स्तुति सुनु श्रीबृहस्पति हरि

राजाओं के भारसे प्रीङ्गिते हो पृथिवी सुमेरु पर्वत पे-द्वयताओं की समान में  
 पहुँची यद्यद् ब्रह्मादि तत्र देवोंसे अपने दुःख का हेतु ब्रह्म गेयः रहते स्वर्गी  
 जेमे अग्नि सुवर्ण का गुरु है व सूर्य पशुओं के यमैत्री ह्यारे व सव नाक के  
 पालन करनेवाले गुरु ध्रानारायण हरि हे य प्रजाओं के पति ब्रह्माजी कला  
 काष्ठा मृत्तादि के स्वांगी तिष्ठी नारायण के अशस उत्पन्न हैं जोकि सुम सव  
 देवगणोंके अधिष्ठाता है जादित्य पवन साध्य रुद्र वसु अग्निनीकुमार अग्नि  
 पितर अन्य भी जा लोककी सृष्टि करनेवाले हैं ये सव उसी अनुलजल श्रीहरि  
 के रूपहैं यत्र राक्षस दैत्य पिशाच नाग दानव गन्धर्व अप्सरा ये भी उन्हीं  
 महात्मा विष्णु के रूपहैं प्रहृ नक्षत्र तारागण आकाश अग्नि पवन जल व ह्य  
 सव सव जगत् विष्णुमय है यद्यपि उस परमात्माके रूपसे बाहर कुछ नहीं तथापि  
 इन्दीग से कोई किसी के माननेवाला व कोई किसी से मरनेवाला होताहै जेमे  
 समुद्र की लहरें जो जल समुद्रमें हैं वही उसकी लहरों में कुछ अन्तर  
 नहीं तथापि वे समुद्र की लहरें फटाती हैं तिसीहेतु आजकल कालनेगि  
 आदि दैत्य पृथिवीतल में आय प्रजाओं का नाश किये डालते हैं जो फहो  
 कालनेगिको तो श्रीहरि ने वध किया अब वह कहाँ है-सो वही आजकल उग्रमेन  
 का पुत्र कंस हुआहै इसके विवाय अग्निष्ठ धेनुताम्र केशी प्रजंभ्यासुर ताका  
 सुर सुन्दासुर पाणासुर तथा अन्यभी जो राजाओं के घरमें ह्य उत्पन्न हुये हैं  
 जिनकी गितती में नहीं करसक्य उन मय ह्यकी अक्षोहिणीकी अक्षोहिणी  
 सब भरे ऊपर घूमती हैं तिनके भासे में पिनी जामी ह्य अथ मुक्तमें उरका गा  
 नहीं सहाजात वही आपत्तोगो से कहने आर्द्र ह्य मिर्मसेदे देवी। ज्ञापलोग  
 ह्यारे नाग उराने का उपाय कीजिये जिनमें बहुत सारेभाय समातना को ज  
 चलीजाऊ पराशरगुनि बोलें तत्र इतभाति प्रयत्नोने कदा ता उरके भा उरदा  
 रनेका उपाय कइनेहुये ब्रह्माजी बोलें हे देवताओं। जेना परणी पड़ी है ह्य  
 तुग सव नाकप्रभृती के वरसे हे इच्छिये इसके और उरनेका उपाय कइना  
 चाहिये और विभूति मय देवसहीकी है पर उग्रमें न्युतागिकताके कारण मात  
 व मरनेवाला समया ज्ञातहै तिससे आयो मर जन शीघ्रमागके सीम फने व  
 श्रीहरिकी वसुति कर धरणीके भागक समानतर उनमे कइ देवोंकि मरा ने श्री  
 हरि जगत्के अन्य अपने अन्तः अंगमे जियमाने धर शिवायन कइने है यह

पह सब देवताओं व पृथिवीको भगले क्षीस्ममुद्रके दिनारे जाय चित्त लगाय  
गायगाया श्रीहृदिकी स्तुति करनेलगे ब्रह्माजी बोले हे नारायण । आपके  
सगुण निर्गुण दोन्नोंके फिर दो अन्यरूपोंके एक स्थान एक सूक्ष्म व एक जट्ट  
ब्रह्म एक ब्रह्ममज्ञ अग्नेदे यजुर्वेदे सागवेदे अथर्ववेदे शिक्षादत्त निरुक्त  
छन्द ज्यातिप इतिहास पुराण व्याकरण मीमांसा न्याय धर्मशास्त्र आत्मज्ञान  
विचार वेदान्तशास्त्र सब तुम्हींहो फिर सबोंकीन सवनेत्रांतर विन्तना करनेके  
योग्य अनिन्द्यरूप कर चरणान्त्रिीन परमपद विष्णु सब तुम्हींहो ॥

श्री० । सुनत कान विम लपत विनयना । रूपाहीन बहुरूप सुधयना ॥

। कर घरणादि हीन अतिघावत । ग्रहणकरत पर सबहिनचायत ॥ १ ॥

। तुम सब जानत तुम्हीं न कोई । जानत कृपासिन्धु नहि गई ॥ २ ॥

। लघुते लघु तथरूप कृपाळा । नहिअज्ञानि लपत पयताला ॥ ३ ॥

। धीरशुद्धि प्रह्वित तथपासा । आनघुद्धि नहि पशुत्र खुलारा ॥ ४ ॥

। तुम बरवानि परे सब सेती । तुम्हरी महिमा किमिकहिजेती ॥ ५ ॥

। विश्वनाभि तुम सुवन । पलैया । सकलभूत तुम महँ न छुँडेया ॥

। भूत मन्त्रिषु लघुने लघुजोई । प्रकृति परे तुमही हरि सोई ॥ ६ ॥

। एक रूप पर । चारि प्रकार । ई पावक जग करत उजारा ॥

। विश्व जयन तुम नेत्र विहीना । मूर्ति रहित बहु मूर्तिप्रवीना ॥ ७ ॥

। यथा । एक पावक बहु रूपा । काष्ठ भेद सो लपत अनूपा ॥

। तिमि तव एक रूप गगवाना । नाना रूप मन्म का जाना ॥ ८ ॥

। एक आदि । पूरुप । तुम स्वामी । तव पर पद देवर्हि श्रुतिगामी ॥

। तुमसो अलग । कसु मसारा । भूत भाषिणि ओ पनर पगारा ॥ ९ ॥

। व्यक्ताव्यक्त रूप तुम अदृक । तुम सव्यज शक्ति सब लृक ॥

। भटत पदत क्यहू नहि फाऊ । स्वयदा सदा परश विमिगाऊ ॥ १० ॥

। सज्जवायण अतीतग भावन । निरात्मर जगतीश गुपावन ॥

। सदा विभूति नाथ । सुदयेषम । नमस्कार लीजे सदनोचम ॥ ११ ॥

। आन न कारण । काम्य दोई । जसो तव धनु धारा छोई ॥

। धर्म ग्गावन दित भगवाना । सदा त्वा तुम रूप सुगन्त ॥ १२ ॥

। पाशागुनि बोले इमभाणि ब्रह्मादि देवोंकी स्तुति सुन श्रीभगवारा हरि



गमन्नहो पाने हे ब्रह्माजी । तुम सब देवताओं के साथ जो २ हमसे चाहतेहो  
मध कहो मकन अपने मनोरथ पूरेही जानना यह सुन व श्रीहृदिका दिव्यरूप  
देव ब्रह्माजी कि स्तुति करनेलगे सहस्रमूर्ति सहस्रबाहु सहस्र चरण सहस्र  
सहस्र मुख ममारकी उत्पत्ति पालन नाराज करनेवाले तुम्हारे अर्ध नमस्कारहे  
सूक्ष्ममेभी अनिसूक्ष्म बड़ेसेभी बड़े गरुओं से गरू प्रधानपुरुष परसेपरे हे भग-  
वन् । प्रसन्न हूजिये यह पृथिवी धरणी पे उत्पन्न इष्ट दैत्य व राजाओंके भारसे  
पीड़ितहे इमके भार उतारनेके लिये कोई उपाय कीजिये और हममे महादेव  
अश्विनीकुमार वरुण रुद्र वसु सूर्य पवन अग्नि आदि सब देवता आपके  
अधीनहे इम विषयमें जो कार्य जिमके करने लायकहो उमके लिये उसे भी  
आज्ञा दीजिये सब आज्ञा पालन करेंगे यह सुन भगवान् नारायण ने अपने  
दो बार श्वेत व कृष्ण उखारे व देवोंसे बोले कि ये दोनों हमारे धार महीतल में  
अवनारले धरणी का भार उतारेंगे ये सब देवनालोग भी महीमयदन में  
अवनार लें व पूर्व के जन्मे हुये इष्ट दैत्य व राजाओं से युद्ध करें इस रीति  
से सब इष्टदैत्य नाशहोगे क्योंकि हमारे जो दोनों अवनारहोगे उनकी दृष्टि  
पत्नेमेही चूर्णित होजावेंगे फिर समगरे जौन वीरता दिखवेंगे हमारा यह एक  
बार तो वसुदेवकी स्त्री देवकी के अठवें गर्भ में होगा होके कसको मारेगा व  
दूमरा श्वेतवार रोहिणी के उत्पन्नहोगा इनना कह श्रीहृदि वही अन्नर्दान हो-  
गये जहां हरे अन्नर्दान हुये उस और प्रणामकर देवगण सुभेरुर्जन पे गये  
व अपने २ अंगसे महीतलमें जहां तटा अवनरे यहाँ यह सब होताहीगहा यहाँ  
नारदमुनिने जाय कम से कहा कि देवकी के अठवें गर्भ में श्रीहृदि तुम्हारे  
मारने के लिये अवनार लेनेही है यह सुन कमने बड़ा कोपकिया व देवकी  
उमुदेव को पकर धुआ करदिया वसुदेव ने भी जैसा कम से कहा था कि जो  
पुत्र इनके होंगे तुमको देनायाकरेंगे उसी भांति देनेहेवे वाचक येमेथे किहि  
रायकरिशु ६ पुत्रये उनको विष्णुकी प्रेरणा पे योगनिद्रा भगवतीने पानाक  
म करदिया था तब फिर श्रीहृदि उम भगवती महामाया योगनिद्रा से बोले कि  
हे योगनिद्रे ! हमारे आज्ञा पे पालन में जाय यहाँ जो हिरण्यकशिपु के ६  
पुत्रहें उनको एक एककर वसुदेव की स्त्री देवकी के गर्भमें उत्पन्न करव जप  
उन मपको कम मारहावेगा तो हमारे अंशक अंशतः उपायवार मनमें देवकीके

गर्भमें वास करेंगे जब थोड़े दिन होने को बाकी रहें तब देवर्षी के गर्भस खींच जो रोहिणी नाम वसुदेवकी स्त्री गोकुलमें नन्दके यहाँ हैं उन के गर्भमें कर देना सो कसने जाहेम देवकी को वन्दीघर में रक्खावे इमलिये लोग कहेंगे कि देवकीका अठवा गर्भ कसके भयसे गिरपा और उस गर्भ के मन्त्रकण कहें खींचाची होनेके कारण उससे जो उत्पन्न होगा उसका सवर्षण नाम होगा उमका शरीर भी बहुत ही गोर होगा तिसके पीछे हम अपने अशभे देवकी के गर्भ में आवेंगे तुमभी बहुत ही शीघ्र नन्दकी स्त्री यशोदा के उदर में जाय वाम करे वर्षाञ्चतुमें भादों गहीनाकी अँधेरी अष्टमी को हम अवतार लेंगे व तुमगी अर्द्ध रात्रिके पीछे अष्टमी वीतते ही नवमी में जन्मलेना उसी रात्रिको हमारी गच्छि की प्रेणासे वसुदेव हों तो यशोदाके शयनमें पौढ़ा आवेंगे व तुमकोले देवकी के आगे धेंगे तब कम तुमको जान पकरे पत्यरपै पटनेगा पर तुम उसके हाथ से छूट अन्तरिक्ष को चली जावगी तब हमारे गौरवसे इन्द्रजी तुमको अपनी भगिनी सनक ग्रहण करेंगे तब तुम शुम्भ निशुम्भदि हजारों दैत्योंको मार अनेक स्थानों में विराजमान हो महीगण्डल को भूपिन करोगी मृति सन्नति कीर्षि क्षान्ति द्यौ पृथिवी लज्जा पुष्टि प्रात काल व जहाँतक सप्तारमें स्त्रियाँ होंगी सब तुम्हारा ही रूप होंगी शौर ॥

चौ० जो तुम कहँ आर्या जगदम्या । दुर्गा भद्रा क्षेम कदम्या ॥  
 श्रीभम्बिका क्षेमकरि आदी । कहिभोरहि विनयहि शुभवादी ॥ १ ॥  
 तामु सकल वाञ्छित मगकारी । होइहि मशय कृतु न पुरारी ॥  
 भक्ष्य भोग्य नाना पकवाना । रिप्र तोहि देहँ सविधाना ॥ २ ॥  
 सुगमांस शूद्रादिक देहँ । पर हममों सपानि सच पैहँ ॥  
 विन सन्देह सवाहँ सवकाही । देवजाहु जन्मरु शकताही ॥ ३ ॥

## दूसरा अध्याय ॥

श्री० कण्व टितोयाध्याय महँ जिमि देवन अस्तुनिर्जन ॥

देवकि को जब हरि उदर देवकि निवसति स्त्री ॥ १ ॥

पराशरमुनि येनि कि जिमगाँने देवदेव भीहारी ने योगिदि मगरनी में कहा उसी मानि उसने ६ गर्भ पानानमें लेभार २ वर्ष २ दिनके पीछे देवकी

के उदगों प्रवेश किये व उन सबको कमतेमारा मानवी गर्भ भी बीचनेहिारी के पेटमें प्रवेश कराया तब तीनोंलोकोंके उपकार के लिये देवदेव गंगेयान् देवकी के उदर में जाये उसी दिन योगनिद्रा यज्ञोदा के पेटमें आई व उत्पन्न होनेके समय उत्पन्न हुई जब विष्णुका अंग महीनलमें आया तो सब महगण व अतुमुहूर्त्त शुभदायक हुये देवकीजी का एसा अद्भुतनेत्र हुआ कि कोई सागने देव नहीं सकाया उन्हीं दिनोंमें जिसमें स्त्री पुरुष कोई नहीं देखे ऐसे गुणरूप से सब देवगण आय गात्रि दिन देवकीकी स्तुति विष्णुते गुणगाय व करनेलगे दे-देवकीजी । तुम आदि प्रकृति ब्रह्मगर्भवाग्निषी वेदवाणी सब तुम्हीं ही तुम्हीं सृष्टि करने का स्वरूप तुम्हीं पालन महार करनेका सब संसारके बीजके धारण करनेवाली सब कल सब अग्नि तुम्हीं से होने देवोंकी माता अदिति-देव्या की माना दिनि, इन्द्रकी माना उग्रोत्सा ज्ञान गन्धर्भनाति नीनि लज्जा इन्द्रा तुष्टि मेवा धृति अन्नविक्ष, आदि जितनी विभूतिया हैं अब आजकल तुम्हारे गर्भ में हैं व सब पर्वत, नदी, ग्राम, नगर, पेरी, खेरा आदिक स्थान पृथिवी सब जगिन सब समुद्र सब पवन प्रह नक्षत्र तारा गण भूलोक भुवर्लोक स्वर्लोक महर्लोक जनलोक तपजोक सरैयलोक व सब महाएड निमके मध्यमें टिके जा देव देव गन्धर्व विद्याधगदि गनुष्ण पशु पक्षी इन्हें आदि जिनकी सृष्टि है सो सब अपन्न गर्भ में धारण कियेहुये श्री विष्णु तुम्हारे गर्भ में हैं तुम्हारी जनरो स्वाहा स्वधा विशा अयोनि तुम्हारी व मन लोककी स्वा करने लिन । महीभव, मं अरामीष्टी द्वाजोमं । ए ऊरु ५-मत्र हृजिये व इन महाप्रभु हो जा कि सब नगर लो धारण । एव है श्रीतिपूर्वक भाषण किये गहिय ॥

## तीसरा अध्याय ॥

यो कश्यपुः पृथिव्याप्ताय गदं हरिः । विद्रा अयत्त ॥

जनमे मधुग मधुर मत्र परिचरान विरताय ॥ ३ ॥

पराशरमुनि, बोलने इत्ययम् देवो ने देवकीजी की स्तुतिकी व उन्हीं ने देवों के देव जनरुके रक्षा करनेवाले पुण्डरीकाक्ष भगवान् का उदर में धारण किये, तब कपलरूपे ममा के प्रकृतिरुप कल्प के त्रिषे पालन व चमूत भगवान् पाठ

काल की सन्धारूपिणी देवकीजी में उदयहृये तिनके जन्म के दिन मत्र  
 दिशा विकशिनहुई व सबलोक परमानन्दको प्राप्तहुआ जैसे चन्द्रमाकी किरणों  
 से सबको आनन्द होताहै तैसे महात्मा लोगोंका परममनोप हुआ प्रचण्ड  
 पवन जो चलते थे गान्त होगये नदिया धीरे २ वक्षनेलगी समुद्र अपने शब्द  
 से मनोहर बाजा बजानेलगे गन्धर्वपति गाने व अप्परा नाचनेलगी देवता  
 लोगोंने आकाश अतगिष व सूनलमें भी आय २ धाय धाय पून चरसानेलगे  
 जो तपस्वियों के अग्नि मद होगयेथे अपने आप प्रज्वलित हो उठे जब आधी  
 राति हुई तो सकल जगदाधार भगवान्ने जन्मलिगा मेवलोग मदमद गर्जत  
 हुये पुष्परूप जल वर्षानेलगे श्याम कमलवर्ण चतुर्भुजी मूर्ति श्रीवत्स चिह्न  
 चिहिन भगवान्को देख वसुदेवजी स्तुति करनेलगे बहुतमाति स्तुतिकर कराय  
 कामे डरेहुये तो थेही यह कहनेलगे हे देवदेव शशचक्रगदाधर ! हमने आप  
 को जाना अब कृष्ण यह दिव्यरूप समेटिषे नहीं तो आपको मेरेमदिरमें अ-  
 वनरेजान इसीसमय कस मेरी नानायतिना करनेलगेगा फिर देवकीजी बोली  
 कि जो अनतरूप भगवान् जिसके गर्भमें सब समाहै वह परमात्मा गानरूप  
 प्रसन्नहो व यह अपना अद्भुत चतुर्भुजरूप समेटे जिममें दुष्टस न जानै यह  
 सुन श्रीभगवान् बोले कि तुमने पूर्व जन्ममें हमारे समान पुत्र होने के लिये  
 तपस्या कीथी वही सफल करने के हेतु हम तुझारे उदरमें उत्पन्न हुये यह वृद्ध  
 भगवान् तो मौन होगये वसुदेवजी उनको उदाय रनिदीमें पग्मे साहर हुये जब  
 वसुदेवजी कृष्णचन्द्रको ले बाह्य निरुलनेलगे तो मध दारपाल जो स्थाने थे  
 योगनिद्राके प्रभावमें मोहित मोयगये उम चलते के समय मध वर्षा करदे थे  
 शेषजीने अपने सहस्ररूपों में छायाकी कि एह बूढ भी उतर गहीं परा जो  
 जाने यमुनाजीमें पट्टने तो भादोंती अधीरानि भ्रमकि २ मा ती प्रभुदाथा म  
 यकर गैवरचूमनेथे पर पाव धनेही गाटिके नीचेती पानी हुना उम पाव पट्टनेह  
 कि देखा कमका चर्मोई कामेने के लिये न्यामिगोर जायेते यमुनाके तीर  
 परेहुयेथे गदकी रानी यशोदा के कन्या हुईथी पर योगनिद्र ने एनामवती गो  
 हिन किपाषा कपा स्त्री कपा पुरुष कोई उम सपन नागता न था सप वसुदेवजी  
 यशोदाके विस्तरापे अपना पुत्र पौदाय व उनकी कन्याने बहुत शक्ति मेटेउदाय  
 यशोदा जब फिर जागी तो कमलपवन मगुमूर्ति मगोहण्य चनेलगे व परना

नदिव दृष्टं वन्दुदेवजीमी कन्याले प्राय देवकीने विस्त्रयपे पौदाय पूर्वकी गानि  
 बैठे तब कन्या रोई रोदन सुननेही रसनेने जाय कससे कहा कि देवकी के ल-  
 दजा हुआ यह सुनतेही चदरद कम बढ़ा पधुचा व देवकीके आगेसे कन्या व  
 ठालिया यद्यपि देवकीने बहुत कुछ कहा पर न माना ले पररपे पटकदिया पर  
 वह हाथसे छुटनेही पररपे नहीं गिनी वरत सन्नरिश्चको चली गई वहा अष्टभुजा  
 मूर्ति कमको देखपी व विलसितना व वहीमे कममे बोनी अय यूव । हमारे गाने  
 से क्या होगा जो तुम्हे माँगा वह तो जन्मलेजुग जोकि देवोंका सर्वभन व  
 तुम्हे जिसने पूर्वजन्म में माराथा अब उनको दृढ़ अपना द्विजक इतना कह  
 दिव्यमाला भूषणादि पहिने आकाशमें टिकेहुये सिद्धोंसे स्तुति की दृष्ट कथाके  
 देखतेही देखते कहीं चली गई ॥

## चौथा अध्याय ॥

श्लो० या चौथे अध्याय महें निज रिपु बाल्य नास ॥

करनेहेतु पठइति द्विज निररकन मृत्पिपास ॥ १ ॥

पाशरमुनि बोले उम कन्याके ऐसे वचन सुन कर बहुत उद्विग्नविषदृमा  
 प्रलम्बासुर केभोभादि देवों तो पुत्राय बोला हे प्रनम्ब केगी भेनुकासुर पुत्रना  
 अग्निदि देव । हमारे वचनसुनो दृष्टमा देवता बोल हमारे गाने का यवक्रिया  
 है परन्तु हम अपने बलके आगे उन देवोंकी रुच भी नहीं मनने कशकि शत्रु  
 पराक्रमी इन्द्र क्या करेगा महादेव अकेले वनगे नपस्था विषाकरने क्वाकरने  
 हरिभी कुछ नहीं करसके क्योंकि वे जब कोई अग्निदेव तभी देवोंको मारने  
 हैं आदित्य वसु अग्नि इनके जानो बहुतही थोड़ा पराक्रमके क्या करसकेगे  
 फिर अन्य विचारे देवता क्या करसके है वे तो हमारे सर्वभनके जीवे हुये परे  
 है क्या हमने कभी लड़ाई में डूबे नहीं देवता जिनके भागत हुये पीडर्म ह-  
 जारों बाण मारें देवो हमारे राज्यमें इन्द्रके वर्षा मे लदी थी फिर हमारे प्राणोंसे  
 द्विज भिन्नदेव भेष धामनेलगे इनके मिश्राय श्रावरीके वीनये राजा मेरे प्राणोंसे  
 हार शरणागत नहीहुये हा जगन्नाको छेदना ता जागे हमारा यवमुक्ती है  
 उमकी कोन लड़ाई देवताओं के साथगे हमारा निगदर होगा इस पावको सुन-  
 क्षमों चढ़ी हमीचारी है रि के नोग उमका यव करसके यद्यपि वे ह्याग दृम

भी नहीं कर सकें तथापि जितना अपकार वे वृष्ट हमारा क्रियाचाहते हैं हम उससे अधिक उनका करेंगे तिसमें अब देताओं के अपकारार्थ जो लोग यशस्वी व यज्ञ करनेवाले हैं उनको मार डालो क्योंकि यज्ञादिही से देवोंका भाग पहुँचता है और देवकीके गर्वामें जो कन्या दृष्टि है उसने कहा है तुम्हारा पूर्वही जन्मवाला वैरी उत्पन्न हो चुका है विमभे बालकोंके मारनेमें बड़ा विचार रखना चाहिये जोई कोई लड़का तेजस्वी जानपड़े प्राण्य मार डारा जाये इस भाति देवोंको आजादे हम अपने घरको बनागया देवकी समुदेव को बंधोईसे छोड़ दिया व उनसे बोला क्या कह तुम्हारे बालक हमने नाहरुमार हमको मारने वाला तो कहीं अलगई उत्पन्न हुआ मो जो हुआ मो हुआ आपलोग अपने बालकोंका शौच न करें क्योंकि विना आयुर्वर्धन क्षीणवृत्ते कोई किसीको नहीं मारसका इस भाति बहिन बहनोई को समझा बुझा अपने मनमें हरना हुआ कस अपने घरको गया ॥

## पाँचवाँ अध्याय ॥

दो० या पंचयें अध्याय महँ गरी पृतना देवि ॥

समयानन्द गोपुच्छभ्रमि हरिरक्षा करि शोखि ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले वसुदेवजी जब रात्रिही को बंधोई से छूटगये व प्रात काल होतेही सुना कि नन्दादि कसको पोत देने आयेह हममें उनके निकट पहुँच व बोले कि बड़े हर्षकी बात है भाई तुम्हारे बुढ़ापेमें बालक हुआ है अब जिनकार्थ के लिये आगेहो मो भी कम्बुके कसका वार्षिक पोत देवुके निष्प्रयोजन यहाँ का रहना अच्छा नहीं क्याकि महात्माओं चाहिये प्रयोजनमात्र ठहरे अप्रयोजन न ठहरे सो सब होचुका व ने जाइये ह मार्ग जान तुम्हारे गोकुलमें जान कुछ न कुछ उपद्रव होगा भाई हमारा पुत्र भी जो रोहिणी से उत्पन्न हुआ है आपके ही यदा है उसकी भी रक्षा वैसीही करना जैसी अपने पुत्रकी करोगे यह मुन नन्दादि गोप अपनी २ लड़ोंपर दूर दूरीके मय वर्तन नाद पाद कर्मरौनजर गेउदे अपने गोकुल को चलेगये गोकुलमें पशुप कुल टिगये एक दिन यात घातिनी पृतना नाम सधुषी रात्रिको जात दृष्णयन्त्रकी क्षीरणें बेशय दूषितलानेनगी यह पृतना जिन २ बालकको मात्रिमें दूष पिलाती वनीआईची मो

मो सुन्न गरगयाथा पर बहा बह चान कहा कृष्णचन्दने दोनो हाथोते पूतना  
 का सान थोते दगागा ति दृष न उम के प्राण सावटी पीलिये पैसा परनेही  
 दहाकार गन्दकर प्राण रहित पूतना भूमिमें गोइ हाथ केनाय गिरी उमने  
 दहाकार गन्दसुन मत्र ब्रजगासी जागउठे दौर २ बहा गाये तो पूतना गरी पही  
 कृष्णचन्द्र उमकी छानीपे लोअहेहै यह देख मशोदाजी अति मयभीनहो बालक  
 को उत्राय छानीलगाय राक्षनीके ऊपर लोअने के टोप मिटाने के लिये मायकी  
 पूछ हरिकेऊपर घुमानेलगी नन्दजी भी गायका गोबरले कृष्णचन्द्र के गस्तक  
 में लगाय अनिहर्षाय गाय २ आगे लिखेदुये मन्त्र पढ़तेहुये रक्षाकरनेलगे ॥

चौ० जामुनाभि पदुजसो सब जग । होनसो हरि रक्षहि त्वहि हैलग ॥  
 सकलभूत जनि पारणकार । श्रुतिपालन विनि सनु विदारण ॥ १ ॥  
 जासुन्तश्रुतिघराजिगतसब । धाम्ण करत भरन सुग शुभदय ॥  
 नो बराह हरि पालहि तोही । वृपाकरहि निजजालधि मोही ॥ २ ॥  
 जासुनगवाकुर भिद्य अरातिन । वधरथल महिदेव प्रपातिन ॥  
 नो नृमिह हरि, तोहि रवार्य । सकल दिशा के दुष्ट मगार्य ॥ ३ ॥  
 जो क्षणमाहि घावि त्रय पादा । नापि लीन प्रैलोक न वादा ॥  
 सो वामन त्रिभु तो बहै पाठे । सफल घेरि सुनके पर घाले ॥ ४ ॥  
 मत्र शिर पालहि श्रीगोविन्दा । रक्षहि पेशय मण्ड अतिदा ॥  
 सुख जट्ट श्रीधिष्णु रगाथे । जपा पाद जनार्दन साहे ॥ ५ ॥  
 यवन बाहुमनसथ इन्द्रियगन । अव्यारत ऐश्वर्य महागन ॥  
 श्रीनामायण पालहि नीचे । दयाकारहि विद्वर लखिटीके ॥ ६ ॥  
 शार्ङ्ग चक्र असि गदा शरसुत्र । मुनत नाद उपज तिनके दुत्र ॥  
 भूत भैत राक्षस जो सारे । होति अहित यह करीनिहारे ॥ ७ ॥  
 विशान माहि रादि श्रीपुत्रा । मधुसूदन भिक्षुदानहु भद्राज ॥  
 एनीनेश अम्बर महि पालहि । भूमि महीचर जीव कृपालहि ॥ ८ ॥

इसगानि जब नन्दजीने पुतनाकी रक्षाकी तो श्रीकृष्णचन्द्रको लकी के नीचे  
 पनेगरी पर नयाय कालमा व गोपगण गरी पूतना का मयानक बहा मापि  
 री देख बड़े विस्मय हुये ॥

## छठवां अध्याय ॥

दो० या छठयं अध्यायमहं यमलाञ्जुन शकटादि ॥

मजन वृन्दावन वमन वर्षा कीड़ा आदि ॥ १ ॥

पराशरमुनिबोले एकदिन श्रीकृष्णचन्द्र जानन्दकन्द लड़ी के नीचे सोते थे कि दूधपीने की इच्छा हुई रोने लगे पर किसी ने न सुना तब दोनों चरण कमल ऊपरको उझाले तिनके चरणारविन्दों के लगतेही लड़ी उलट पलट गई उसपर जो दूध दही आदि के भाजन लदेथे सबके सब टूटफूट गये उमका शब्द सुन हाय २ कै गोप गोपी सब दौर आये देखें तो लड़का उतान पट्टड़ा है गोप गण कहनेलगे लड़ी कैसे उलटी वहार जिनने लड़के खेलेते थे उन्होंने कहा इसी बालकने अपने पात्रों से उलटदी है पहिले तो रोनेलगा फिर इधर उधर देख पांपचलाय उलटदिया इसमें कुछ सदेह नहीं इगलोगों ने नगीचे से देखा है अन्य किसीका कर्म यह नहीं है यहसुन और सब गोपी गोप विस्मित हुये नन्द व यशोदाजी ने आय उठाय लिया और फिर दधि पुष्पासन से लड़ी फ्री पूजा यशोदा करनेलगीं एकदिन वसुदेवजी के भेजेहुये यदुवशियों के आचार्य गर्गजी गोकुल में आये और सब गोपों से चोराय नदके कहने मे दोनों लड़कों के भस्कार करनेलगे ज्येष्ठ बालकका नाम राम धराया छोटेका कृष्णनाम करणादि कर कराय गर्गजी तो चलेगये अब थोड़ेहीदिनों में राम कृष्ण दोनों पैया २ चलनेलगे माटी गोबर धूरि लगायेहुये इधर उधर रंगेनगे गारे स्नेह के यशोदा रोहिणी कोई रोकती नहींथीं जाने २ गाय व बद्धरुओं के जानेकी गली में पट्टचे एरु २ बद्धों की पृथपकर उनके पीछे २ खींचे २ फिरनेलगे जब दोनों भाइयों को चचलता के साथ खेचने से यशोदा न रोकपकीं तो एकदिन कृष्णचन्द्रको ओसरी में बांध बोलीं अब तुम्हारी चचलना देखें तो यदि खींच सकीं तो खींचो यह कह अपने घर कार्यमें लग गई तब कृष्णचन्द्रने ओसरी खींची खींचतेई दो अञ्जुन के पेडथे उनसे धीचमें निकले वहा ओसरी विगधी दोगई दोनों वृधों में अड़ी कि दोनों जड़मे उनदूपरे वृक्षोंकी चरनगष्टसुन वज्रवामी धायआये देखें तो दोनों के धीच में ओसरी में यीं मधुमूर्ध्नि नन्दनन्दन परे दू वृक्षोंकी डाली २ शाखा २ सब टूट गई दू वनये लड़े २ दाननिकले हुये मदन



गोहन निते रहे ह जिमसे कि दाम जो रस्ती सोई जगाय परतोदाजी ने मनमो  
 एन की यावाया इमने एक इनका दागोदा नामदृजा तब नन्दीपनन्दादि सब  
 गोपवृद्ध बट्टे बहून उादर देव मयगीनहो परस्पर बोले हे गाइयो । इम स्थान में  
 अब बहुत उरात होनेलगे उगमे यदा गहना भ्रन्धा नही जहा कहीं अच्छा बन  
 हो अलग चनेचलो देखो पूतना जाई फिर लदी उचटगई आज भिन पवन पंग  
 लाज्जुन उगवड़ परे इसमे यहा से घाड़ीही दूर वृन्दावन है चलो यहीं चलेनले गह  
 सम्मतकर अपने २ भाई बन्धुओं मे कहनेलगे अब विलम्ब न करना चाहिये  
 बहुतही शीघ्र वृन्दावन चलेचलो वस इम गांति सब के सब पणुने वर्तन मोहा  
 गादियो पे लाद फाँट चलदियो एकदोही खड़ी में सब जत खालीदोगया डोर डोर  
 कोआ बोननेलगे मनुष्य र पशु मोकां वहाँ नागभी न रहगया व जाय वृन्दावन  
 में सब पहुँचे व वमे कृष्णवन्द की कृपामे वृन्दावन में श्रीपुण्ड्रु में भी वर्षाही  
 काल रहनेलगा सब मामोंमें पशुओं को हठी २ घास चरनेकी गिजनेलगी होती  
 होते वलदेव व कृष्णवन्दजी बद्धरु चरानेलगे वनमें जाय गोन्के पलनोंमे मुकुट  
 बनाने वनके नानामांति के पुषों मे शिशोभूषण बनाने चांसकीक्षती बजाने  
 पत्ता जादि बजानेलगे कालीजुलुहे स्वयमे आपम में हँसने हँसाते गोपकुमारों  
 के संग वनमें बिनरनेलगे धीरे धीरे बद्धरु चरामे २ अब सान सान वर्ष के दूधे  
 होते २ वर्षाकाल आया उममें चाँों ओर मे रयाम पादन की घंग उठनेलगी  
 मानों गारे वर्षा के सबदिशा एक होजायेगी महीमें हठी २ घास माने गगोदा  
 दृई उमके बीच २ शारवृद्ध केमे शोभित होनेलगी जेमे मारकनमथि के निरुद  
 पद्मगभगणि रचने से रोमा छेती है नदियोंके चरोंके बाहर खेमे नल बहाहाडे  
 केमे वृर्जन लोगों केगन लक्ष्मीपाप इम उपर उकलाने है निर्मल मी मन्दागा  
 मलिन मेघों से लिपापुष्पा भोमा हो नहीं पाता नैसे बहुत उत्तमराजप मूलोंकी  
 दीदीधोलियों से आन्धादितहो नहीं गोभित होने फिर रोदा रहित भी इन्द्रबनुर  
 धा फाश में स्थितरी देगाई देताहै जेमे अत्रियेकी राजाके यहा गुणोदितमदा  
 मर्षी स्थानपाप शोभित मेमे गगति है काने मेघों के उपर उजने रगुना की  
 पानि मे से शोभित होती है नैसे दुरानारी पृथ्वीके शीतों फुलीन मनुष्य म उरा  
 भार अरुदन्त बबला विजुनी मेघों मे से स्थिर नहीं होती जेसे धृष्ट मनुष्यों  
 के संग इर्जना ही मेधी नहीं बिनर रहती भारे नदीचाम के मार्ग केसे भेदमें

हैं जैसे विक्षिप्तों की उक्ति से साफ साफ अर्थ नहीं जानपरते- उन्मत्त मोर व  
 अमर युक्त तिस वर्षाकालमें आनन्द सहित रामकृष्ण दोनोंजन गोपालों के सग  
 विचरते थे कभी कभी तो गाइयों के बोलके साथ आप भी बोलने गाने लगते  
 कभी कभी झाँकआदि वृक्षोंकी डालें पकर खींचतेदृये विचरते कभी कभी बदध्व  
 के फूलोंकीमाला पहिनते कभी २ मयूर के पंखों के मुकूट बनाय धारण करते कभी  
 कभी नानाप्रकार के गेरूआदि धातुओं से अपने अङ्ग रँगते छुहने कभी कभी  
 पाता व घासपैँ बैठजाते व शयन कर रहते कभी कभी जब घन गर्जने लगते तो  
 आप भी हाहाकार शब्द करनेलगने कभीकभी अन्य गोपकुमारोंका गाना सुन  
 प्रशंसा करनेलगते कभी कभी मोरोंकी बोली बाँसुरी में गाने इसभाति नाना  
 प्रकार की क्रीड़ा करतेदृये प्रसन्नचित्तही औरोंको आनन्दित करतेदृये पृन्दावन  
 में विचरते खेलकूद सन्ध्यासमय ब्रजकी बछरूले आने फिर यहाभी गोपकुमारों  
 के सग कूदफाद वड़ी दोघड़ी राति धीते तक करने कराते उन सबमें देवरूप मय  
 के स्वामी येही दोनों रहते ॥

## सातवां अध्याय ॥

दो० या सतयं अप्याय महँ जिमि हरि कालियनाग ॥

यमुना से बाहर कियो कहत सहित अनुगम ॥१॥

पराशरमुनि बोले एकदिन कृष्णचन्द्र आनन्दभक्त प्रिना बलदेवही के वृ  
 न्दावनको गये वहा वनके फूलोंकी मालापहिन गापों के सग विचरने लगे  
 खेलते २ अति चलायमान लहरी सहिन यमुना के तीर पहुच उमगें फेना तट  
 पे नहीं लगाहुआ है गानों यह टान निकोई दँमनी है निमि है भीतर आनि ग  
 यानरु विपानल से सन्तप्त बद्धभयभी काणियागका सुगड देवा जिसके  
 रिपकी अग्निके गोरे तीसके तरु जरवर रहेये व उनके जलकी स्पर्श परवाक  
 लगनेसे आकाश में उड़तेदृये पक्षी उमगें गिग्हे ये भगवान् मधुसूदन ने दे ता  
 कि यह तो अति बडोर गाना मृत्पृका दमग चर यही है इमम इष्ट क'तिव ।  
 सवा है जिसे हमारे चकने हगादिया था वर समुद्र देह पशु आपाते निर्वा दुः  
 न यमुनाको दूषित करि रा है कि मनुष्य पशु पक्षी फाँडे इस कुगडका जन  
 नहीं पीमके निमसे निम दट नागगत जानियरो हग इममे निराने कि गग-

मोहन बिलैरहे हैं जिसमें कि दाम जो रस्सी सोई लगाय यशोदाजी ने मनमोहन को बांधागा इसमें एक इनका दागोदर नामहुआ तब नन्दोपनन्दादि सब गोपपुत्र बटुरे बहुत उपद्रव देव मयभीतहो परस्पर बोले हे भाइयो ! इम स्थान में अब बहुत उत्पात होनेलगे इगमें यहा रहना अच्छा नहीं जहा कहीं अच्छा बन हो अलग चलेचलो देखो पूतना आई फिर लंदी उलटगई आज विन पवन धम लार्जुन उखड़ परे इससे यहा मे थोड़ीही दूर वृन्दावन है चलो वही चलेचले यह सम्मनकर अपने २ भाई बन्धुओं मे कहनेलगे अब विलम्ब न करना चाहिये बहुतही शीघ्र वृन्दावन चलेचली वस इसमाँति सब के सब पशुने वर्त्तन भाङ्गा गाडियो पै लाद फाँद चलदिये एकदोही घड़ी में सब वन खालीबोगया ठौर ठौर कौआ बोलनेलगे गनुष्य व पशुओंकां वहा नाम भी न रहगया व जाय वृन्दावन में सब पहुँचे व वमे कृष्णचन्द्र की कृपासे वृन्दावन में श्रीष्णभ्रतु में भी वर्षाही काल रहनेलगा सब मामोंमें पशुओं की हरी २ घास चरनेकी मिलनेलगी होते होते बलदेव व कृष्णचन्द्रजी बखरू चरानेलगे वनमें जाय मोरके मखनोंसे मुकुट बनाने वनके नानाभाँति के पुष्पों मे गिरोभूषण बनाने बाँसकीधरो वजाने पत्ता आदि वजानेलगे कालीजुलु हैं रखाये आपम में हँसते हँसाते गोपकुमारों के सग वनमें विचरनेलगे धीरे धीरे बखरू चरते २ अब सात सान वर्ष के दुरे होते ३ वर्षाकाल आया उममें चारों ओर से श्याम बादल की घटा उठनेलगी मानों मारे वर्षा के सबदिशा एक होजायगी महीमें हरी १ घाम अति मनोहर हुई उसके बीच २ नीरबहती कैसे शोभिन होनेलगी जैसे मरकनगणिके निकट प्रक्षालगगणिके रखने से शोभा होती है नदियोंके करारोंकेबाहर कैसे जल पहरहादि जेमे कुर्जन लोनों के मन लक्ष्मीपाय इंधर उधर उफलाते हैं निर्मल भी वृन्दमा मलिन मेघों से छिपाहुँछा शोभाको नहीं पाता जैसे बहुत उचमवाक्य मूलोंकी हीठीबोलियों से आच्छादितहो नहीं शोभित होने फिर रोदा रहिन भी इन्द्रगनुष काकांग में स्थितहो देखाई देताहै जैसे अग्निदेकी राजाके यहा गुणरहित महा सूर्यगी स्थानपाय शोभिन होने लगते हैं काने मेघों के ऊपर उज्जले मंगुनों की पोति कैसे शोभित होती है जेमे दुगचारी पुरुषोंके बीचमें कुनीन मनुष्यका सदाघार अत्यन्त बबला विजुनी मेघों में कैसे स्थिर नहीं होती जैसे थप्ट मनुष्यों केसंग कुर्जनों की मेनी नहीं स्थिर रहती भारे मईवामके मार्ग कैसे मुदगये

हैं जैसे विक्षिप्तों की उक्ति से साफ साफ अर्थ नहीं जानपरते-उन्मत्त मोर व भ्रमर युक्त तिस वर्षाकालमें आनन्द सहित रामकृष्ण दोनोंजन गोपालों के सग विचरते थे कभी कभी तो गाइयों के बोलके साथ आप भी बोलने गाने लगते कभी कभी झाँकआदि वृक्षोंकी डालें परर खींचतेदृष्टे विचरते कभीकभी वृद्ध के फूलोंकीमाला पहिनते कभी २ मयूर के पंखों के मुकुट बनाय धारण करते कभी कभी नानाप्रकार के गेरूआदि धातुओं से अपने अङ्ग रँगते छुहने कभी कभी पाता व घासपै बैठजाते व शयनकर रहते कभी कभी जब घन गर्जने लगते तो आप भी हाहाकार शब्द करनेलगने कभीकभी अन्य गोपकुमारोंका गानामुन प्रशसा करनेलगते कभी कभी मोरोंकी बोली बाँसुरी में गाते इसभांति नाना प्रकार की क्रीड़ा करतेदृष्टे प्रसन्नचित्तहो औरों को आनन्दित करनेदृष्टे वृन्दावन में विचरते खेलकूद सन्ध्यासमय ब्रजकी बधूरुले आते फिर यहाभी गोपकुमारों के सग कूदफाद वड़ी दोघड़ी राति धीते तक करने कराते उन सबमें देवरूप सध के स्वामी येही दोनों रहते ॥

## सातवां अध्याय ॥

दो० या मतर्ष अप्याय महँ जिमि हरि कालियनाग ॥

यमुना से बाहर कियो वहत सहित अनुगम ॥१॥

पराशरमुनि बोले एकदिन कृष्णचन्द्र आनन्दकृष्ण विना बलदेवही के वृन्दावनको गये वहा वनके फूलोंकी मालापहिन गोपों के सग विचरते नरो खेलते २ अति बलायमान लहरी सहित यमुना के तीर पहुच उमगें फेना तट पे नहीं लगाहुआ है गानों वद टान निकारे दँसनी टँ तिसके भीतर अनि भयानक विषानल से सन्तप्त बधुभयकागी कालियनागका सुण्ड देना जिमके विपकी अग्निके गारे तीरके तरु जरख रहेये व उमके जल में स्पर्शका पराके लगने से आकाश में उड़नेदृष्टे पक्षी उमगें गिररहे ये भगवान् मधुसूदन ने दूरा कि यह तो अनि कठोर माने मृत्युका दूनरा चक्र यही है इमग दृष्ट क'ति १३-मवा है जिमे हमारे चक्रने हगदिया था नउ ममृद द्रोद यत्र नापादे निर्वा २५ ने यमुना को दूषित करदि रा है कि मनुष्य यमु पक्षी कोई इम सुण्डना जत नहीं पीमके निमसे निम दृष्ट नागगत कालियको दग इमने विफाने कि यम

नाजल सब पशु पक्षी नरादि पानकरें क्योंकि इम नरलोक में हमने इसीलिये  
जन्मलिया है कि ऐसे २ दुष्टोंको जिसादिये निममे अब हम इम कदम्बों चढ़  
के जो अनिही इम कुण्ड के निकट है कुण्ड में कूदे व उस दुष्टको पकरना  
यह विचार अच्छी तरह फौड़वाध कदम्बोंचढ़ कालियकुण्ड में कूदपो हरिके  
जोरसे कूदने से ऐसा जल इधर उधर उखला कि बहुत दूर २ बोले वृक्षों पे  
जाय गिरा तिस विपारी पानी के पाने से सहस्रों वृक्ष गरम होगिये कि मत्स्य  
हाहाकार मत्स्य उसकुण्ड के भीतर पहुँचनेही कृष्णचन्द्रने ताल ठोंका सुनतेही  
नागराज कुण्ड आयदौरा मारे क्रोधके अरुण २ नयन होगये वे उसके संगे  
और हजारोंनाग व नागिनिया फण लपलपाती दौड़ी चली जाती थी कदा  
तक कहें सब सर्प सर्वाङ्गों कृष्णचन्द्र की लपट गये व काटनेलगे कृष्णचन्द्र  
को कालियकुण्डमें कूदनेहुये देव रात्र गोप गण जो संगये रोने पीग्ने ब्रज  
में पहुँचे व कहनेलगे नहीं जानते कृष्णचन्द्र कैसे गोहमें फँस गये जो कालिय  
कुण्डमें कूदे वहा सर्पोंने काटाही होगा इसलिये गरगये होंगे चलो देवो यह  
वज्रपात समान वचन सुन नन्दादि सब गोप व यशोदादि गोपिया रोनी पी  
ठनी कालियकुण्ड पे पहुँची वहा जाय देखा तो कृष्णचन्द्र नागराज कालिय  
के फणों में लपेटेहुये जल के ऊपर इधर उधर छूटनेका यत्न कर रहे हैं पर नहीं  
छूटने नन्दजी व यशोदाजी दोनों यह दशा देख मुर्च्छित हो धरणी व गिरपरे  
तब गोपी लोग कृष्णचन्द्रको देख २ व सुनाय २ रोय २ बोलीं हे नाय! यशोदा  
सहित हम सब गोपिया भी तुम बिना इसीकुण्ड में गिरती है अब ब्रजमें जाने  
को हम लोगोंका कुछ प्रयोजन नहीं क्योंकि बिना सूर्य दिन किम काम को  
बिना चन्द्रमा राति किम काम की येन बिना गाये किम काम की इसी गीति  
पर बिना कृष्ण के ब्रज किम काम का बिना वृष्ण ब्रजको न जायेंगी क्योंकि  
वहा कौन रखा करेगा जैसे जल बिना तडागकी शोभा नहीं होती वैसी ही इगार  
प्यारे मनमोहन बिन ब्रजकी शोभा न होगी जिम ब्रजमें श्यामकमल राग रा  
नि मनोहरा श्रीहरि न हागे उममें चाहे जो सुख हो कैसे रहाजायगा मरुच्छित  
कमलदल समान लोचन महिन कृष्णचन्द्र का मधु सुव विता देवे ब्रजमें क्या  
होगा अति प्यारी २ बनवारी की बोलीं सुन सुन हम लोगका मन दर गया है  
नो बिना उनके नन्दगोकुलमें जायें हाय क्या करेगी आयि गोपियो! देवो ना

नागगज के फणों में वेष्टित भी श्यामसुन्दरका मुखारविन्द कैसा शोभित होता व कैसे कमलनयन हृग्लोगोंको निहार रहे हैं इम भाँति गोपियों के वचन सुन गोपों को अतिभयभीत देख नन्दजीको कृष्णचन्द्रकी ओर एष्टक देखने देखने व यशोदाको मूर्च्छित विनोक्ति बलरामजी कृष्णचन्द्र से बोले हे देवदेवेश ! क्या निज मनुष्यहीका भाव अपना में लाये हो जो आत्माको क्रेश देखे हो यह कैसी बात है आप जगत् की नाभि हैं जैसे आरागजोंकी नाभि होती कि उमी में सब छेद्रेहृये होते इस ससार के कर्त्ता धर्त्ता भर्त्ता हर्त्ता सब तुम्हींहो। त्रिलोकी में वेदमय स्वरूप तुम्हाग हैं व इन्द्र वरुण रुद्र आदित्य वसु पवन अग्नि व योगी गण सब तुम्हारी चिन्तना करते हैं हे जगन्नाथ ! जगत् का भार उतारने के लिये अपनी इच्छासे यदा अवतारेहो व तुम्हारेही अश हम तुम्हारे बड़े भाई हैं हे भगवन् ! तुम तो मनुष्यलीला कर रहेहो पर देखो तो ये देवता लोग आकाशमार्ग से देख २ कैभी विडम्बना कर रहे हैं उनके मित्राय ये राजवामी भी तो देवताही हैं जिनको पहिले भ्रात्रादे आपने जन्मलेवाया है तत्पश्चात् आपने लिया है ये भी अपने मनमें हँसते होंगे फिर यदा अवतार लेने से यही गोप गोपी भाई बन्धु हैं ये सब तुम्हें विना महाविपत्ति में डूबते हैं इनको देख भी दया नहीं आती वस अब मानुषभाव व बाल्यावस्थाकी चञ्चलता देखाचुके इम दुष्टात्मा नागको अभी दमन कीजिये अब खेलानेका कुछ काम नहीं परागर मुनि बोले जब बलदेवजने इम भाँति स्मरण दिलाया तो कृष्णचन्द्र तालदे नागगजके फण त्रस्फार नागवन् उनसे अलग होगये व दोनों दार्धमें नागराजका भीचवाना फण नत्राय कृत्के उम पर चढ़ अतिभार बढ़ाय नाचनेलगे कृष्णचन्द्रके नाचने से उमके फण में घावही पाव होगये नाचने के समय जो ० शिर बह उठता उमी फो लानसे मई देने कृत्ने २ यदातरु कृत्त कि फानियको मूर्च्छा आगई और सब मुखोंमें रुधिर उगलनेलगा उसकी यह दशा देख नागकी मित्रां कृष्णचन्द्र की स्तुति करनेलगी हे देवदेवेश ! हृग्लोगोंने जाना कि याप सब के ईश सर्वोत्तम परज्योति अचिन्त्य परमेश्वर हैं तुम्हारी स्तुति करने में जब देवता लोग समर्थ नहीं तो हम मित्रिया कैसे रूप वर्णन कर सकेंगी कि भूमि माताग जल पवन अग्निमे बना हुआ मन्नाद जिमरी। पृथे मे पाये जेन्नाहा जगदे निमे हग कैसे स्तुति सुनायें नयोगी लोग जिमरी पृता मित्रा भी करने पा

नहीं जानते तिम मूढम से मूढम स्वरूप तुम्हारे नगस्कार है जिस तुम्हारे जन्म देनेके कारण ब्रह्मा नहीं व नाश करनेके यमगर्ज वन कोई अन्य पालन करने वाला तिमके मदा नगस्कार है महाराज आप तो सदा सबका पालन पोषण ही करतेहो कि इरा फालियके दमन करनेमें क्या कारण है जो हो अब हग सब दीतियोंके ऊपर कृपा कीजिये क्योंकि साधुलोग सदा दीनोंपर दयाही करते हैं इसको छोड़ दीजिये नहीं तो यह भरताही है क्योंकि कहा आप समस्त जगतके आधार कहा यह अक्षयत्र सर्प तुम्हारे पावोंसे पीड़ितहो एक घड़ीही भाग्ये प्राण छोड़देगा हे भगवन् । प्रीति व वैर सगान के सग होने के कहां यह अत्यल्प दीर्घ्य नाग कहा महाराजकृपी मकल भुवनाश्रय आप भना इसका आग का वैर कैसे होमका तिसमे अब यह बहुत व्याकुल है प्राण निकलनेही है इसके ऊपर कृपा कीजिये व हगलोगोंको पति भिक्षामें दीजिये इस भाति नागकी स्त्रिया विनय करतीहीथी कि धीरे २ श्वास लेताहुआ नागराजभी बोला हे देव ! प्रमन्न हूजिये आपके साधारण आठगुण हैं जिनके आगे किसीका विभव नहीं तिसकी स्तुति हग क्या करें ॥

श्री० तुम समयमें पर ही जगदीश । तब मायावश विधि सुर ईशा ॥  
 किमि तव गुण गावहुँ मैं भोगी । नहीं सुर सिद्धि न गतमद योगी ॥ १ ॥  
 जासों विधिहर विधुशं सुरपति । सूर्य अश्विनीसुतसुग्नशुभमनि ॥  
 देव न जानत तुम्हें सुरगी । मानु विनयधिमि वचन उचारी ॥ २ ॥  
 मूढम अज्ञ तनु यह जगजासु । धिचयकर्मों मैं जड़ विधि सामु ॥  
 मन्मद्वय न्य विधि आदी । जामु न जानत सो किमि घादी ॥ ३ ॥

जिम आपकी पूजा ब्रह्मादि देव नन्दनादि वनके सुगन्धिन पुष्पोंसे करते हैं विम भीमें कैमेकरू जिमके सत्रागों के रूप इन्द्र मदा पूजतेहैं तिसकी पूजा कैसेकरू विषयामनामे सब इन्द्रियोंको खीच जिमकी पूजा ये भीतीग करते तिसकी मैं विषयी कैमेकरू हृदयमें प्याप्तसे कल्पनासर योगीलोग जिमकी पूजा करते तिसकी मैं अभिधानी कैमेकरू तिससे हे देवदेव । मैं आपकी पूजा स्तुति प्यान नन्दना किनीके योग्य नहीं आप अपनी कृपागात्रसे प्रसन्न हूजिये हे केशव । क्याकरू पर मेरी मर्षकी जानिही अतिक्रम स्वभाव होगी हे जो मैं फाटने दोग उम विषयमें मेरा आगर कुचमी नहीं जागही प्रयग गव सत्रा

को बनाते फिर नाशने हैं सृष्टि करनेके मगर जातिके अनुसार रूप व स्वभाव भी बनाते फिर जिसप्रकारकी जातियें जैसरूप स्वभाव आपने बनाया उसका जो कुछ व्यापार था वह मैंने फर दिखाया यदि मैं जाति स्वभावने विपरीत कुछ करता तो आपको यह दण्ड देना उचितथा नहीं तो अनुचितही दण्ड हुआ है यद्यपि आपने अयोग्य दण्ड दिया तथापि अब मैंने उसे सहलिया अब अपने प्राण वरदान में मागताहूँ अन्य कुछ नहीं चाहता यह सुन कृष्णचन्द्र बोले हे सर्प ! तुझे प्राणदान दिये पर अब सहित परिवार यमुनाजलसे निकलजा समुद्रमें जाय वस यथा रहनेका कुछ काग नहीं यदि रहा गरुडसे डरताहै तो हमारे चरणोंके चिह्न मेरे शिरपै देव गरुड अब तुम्हें न मारेंगे इन-नारुह कृष्णचन्द्रने कालियको छोड़दिया वह प्रणाम कर सहित परिवार समुद्र में जाय बसा सर्पके चलेजाने पैं सब गोपगण कृष्णचन्द्रको प्रेमसे मिले व अपने नेत्रोंके जलसे इनका शिर सींचने लगे अन्य गोपोंने देखा कि नदीका जल अब इनकी कृशासे मीठा होगया इसलिये वे स्तुति करनेलगे सब गोपगोपी कालियदमन लीला गाने घजाने नन्द यशोदा बलदेव श्रीकृष्णचन्द्रके माध व्रजको आये ॥

## आठवां अध्याय ॥

श्लो० कहव अष्टमाध्याय महं धेनुक मघ जिमि कीन ॥

कृपासिन्धु व्रज पशु नरन जिमि सो वग्नि मुख वीर ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले एक दिन वनगग न केशव मूर्ति दोनों नन गोपकुमारों के संग धेनु चरातेहुये तालोंके वनमें पहुँचे उग वनमें मनुष्य व पशुओंके गाँव खानेवाला गर्दगरूपी धेनुससुर चट्टन दिनोंसे रहता था तदा पहुँच अनिरुद्ध ताल फल देव पानेकी इच्छामे गोपगण कृष्णचन्द्र व वनमदतीने बोले हे राम ! हे कृष्ण ! इस वनके फल मदा धेनुससुर रखाया काना है इसीमे देखिये वृद्ध पक्षेफल लगहैं हमलोग खाया चाहते हैं यदि आपभी चाहें तो उताड़ते कि हमलोग भी साथे व आपभी गोपकुमारों के ऐसे वचनमुक्त कृष्णचन्द्र व इन देवकीने पत्रा ० जोरमे तालवृक्ष हलादिये कि सब फल भूमिमें गिरपर फलोंके गिरनेका शब्दमुन अनिकोपकरके गर्दगरूपी धेनुससुर आनरहुँचा व दोंके



पिछने दोनों लाल बलरामजी की छानीमें मारो कि उन्होंने एक २ हाथमे एक २ पैरपकर घुगाया घुमतेही उसके प्राण निकलगये व उठाय उसी ताल की जड़ पे पटक दिया उसके पटकन से जो कुछ फन हिलाने के समय गिरने को रह भी गये थे वेभी गिरपरे तब उसकी जातिके और भी गईगाकार बहुतसे देव आये उन्हें भी दोनों जनों ने पटकपटक ममासि कएदिया एरु संस्रमात्र में वहां की मही तालोंके फन व उसी वर्ण के देवोंके परनेसे पूर्णहो शोभायगात्र होने लगी तबमे ब्रजवासियों के पशु अतिनरम घास उम बनकी चरनेलगे काँड़ेकी कभी ऐसी खाई हुई घास चरने का मिली थी ॥

## नवम अध्याय ॥

बो० कहव नवम अध्याय मई जिमि प्रलम्ब कहँ राम ॥

मास्यो पुनि गोपन कियो तिमि सरवृत्ति अभिराम ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले जबमे सपरिवार धेनुकासुर मागगया तबसे सब गोपत्र गोधन उममें जाने फलादि खाने चरने चरानेलगे व धेनुकासुर को मारद्विषित हो दोनों माई गोपोंके संग भायडीरनाम बनको गये वहां गे तने कूदनेहँमने हँसाने व दूर घलीगई गायोंके नाम ले २ पुकारनेलगे व गायें बुहनेके न्नेदे फांधोंपर धरे बनमाला पहिने शोभित होनेलगे सुन्दर रगका अजन लंगाय अन्य नानाभाति के धातुओं से कपड़े रंगविरंगेकर पहिन २ ऐसे शोभित होने लगे जैसे इन्द्रधनुस्के साथ उमली व काँडी वादर की घटा शोभित होती है फहालों गनवों जिनने खेल लोकमें प्रसिद्ध हैं लोकके नाथ बलदेव व कृष्णचन्द्र धरणीतल में जवनार ले सभ करतेहुये वनमें निचरते थे क्योंकि गनुष्यके अवतार धारण किये थे फिर गनुज चेष्टा करनीही चाहिये इसीमे उसकी मंगसा करते थे जैसे कि आपसमें दोजन हाथजोर एक को चढ़ाये दूरलेजाते कुत्ती लड़ते दपट करते इधर उधर पत्यर बहाने दूमरा रोकता एक दूमरे को अपने ऊपर घदाना व लेजाता यही भेन देव प्रलम्बासुर गोपत्रेप धारणकर आया व जन्दीमें गुसहोकर खेलनेलगा और कृष्णचन्द्र व बलदेवजी के भेत्तों हिंदसां लनेलगा खेनवे २ चादा कि बलदेव व कृष्णचन्द्र दोनों भाइयों को मारहायें अब घदीवदेया खेनहोनेलगा जिसमें दाइनेराले जीतनेवातों को अपने ऊ-

पर चढ़ाय किसी नियमित स्थानपर ले जाते हैं उसमें श्रीकृष्णचन्द्र और श्रीदामा गोपके साथियोंसे व प्रलम्बासुरके साथियोंसे बलभद्रजी से खेलहोनेलगा कृष्णचन्द्र श्रीदामा से जीते बलरागजी प्रलम्बासुर से तब भायडीरनाग वरगद बदा गया जो हारे चढ़ाय २ ले चले कृष्णचन्द्र को श्रीदामाने अपने ऊपर चढ़ाया व प्रलम्बासुर ने वनदेवजी को भायडीर तर पहुँच मरौने तो उनार दिया पर प्रलम्बासुर बलभद्रजी को आगे लेभागा परन्तु वनदेवजीका भाग जब न सहसका तो अपना शरीर उसने चढ़ाया सङ्कर्षणजीने देखा अभी यद् सव गोपों के समानथा अब पर्वताकार होगया तब कृष्णचन्द्र को मोहराया देखिये भाई यह कोई दैत्य है जो गोपालवेषधारी था हमको पर्वत की कन्दरा को लिये भगा जाताहै सो भाई इम विषय में जो हमें कर्त्तव्यहो बताइये यह दुष्टात्मा लियेही जाताहै यह सुन कृष्णचन्द्र ने हँसके कहा कि आपभी क्या गनुष्यभाव को प्राप्त होगये जो हममे उपाय पूछते हो भाई अपने उस रूपको स्मरण कीजिये जिसके मुखसे अग्नि निकल प्रलय समय ससार को भस्म करता क्या नहीं जानते कि हम व आप दोनों धरणीभार उतारने के लिये मर्त्यलोक में अवतरे हैं हे भाई ! तुम्हारा शिर तो आकाश शरीर जलमय चरण पृथिवी मुख अग्नि मन चन्द्रमा श्वास पवन चारोंदिशा बाहुह व तुम्हारे मुख चण कर शिर सव सहस्र ९६ तुमको मुनिलोग सहस्रयोनि कहत हैं तुम्हारा दिव्यरूप अन्य कोई देवता नहीं जानता व सत्र अन्तमें तुम्हारीही स्तुतिकरने सम्पूर्ण ससार तुम्हींमें लीनहोताहै तुम्हारीही धरीहुई यह धरती चराचर ससारको धारण कियेहै सत्ययुगादिके भेदसे अत्र कान रूपतुम्हींहो व निमेषरू यह विश्व दग तुम दोनों एकही हैं कुछ अन्नर नहीं केवल कीटाके लिये अवतार लियाहै इसदुष्टके मारनेमें कौन प्रयास करनाहै शीघ्रमार बन्धुओं को प्रसन्न कीजिये जब इमगांति कृष्णचन्द्र ने स्मरण दिवाया तो हँसके चरामजी ने प्रलम्बासुर के एक मूका भाय जिससे उमके प्राण निकलगये आँखें निकलभाई पृथिवी म गिरपरा व मरगया गोपोंने बलदेवजी की बड़ी स्तुतिकी कृष्ण व वनदेवजी गोपोंके साथ फिर ब्रजहो आये ॥

## दशवां अध्याय ॥

दो० कश्यप दक्षम अध्यायमहं जिमि हरि सुरपति याग ॥

चन्द्रकराय लगाय विय गोवर्द्धन गिरि भाग ॥ १ ॥

पराणर मुनि बोले हे गौत्रेय ! राग कृष्ण के इमर्मांति विररने २ वर्षा ऋतु  
 धीतगई शरदू ऋतुआई जिममें कमल फूलनेलगे व छोटी २ तलैयों की मध्  
 लियोंकी कर्मांतरन हानेनगी तैमे ली पुत्र खीनी पानीभ लगेहुये थोड़े धनवाले  
 गृहस्थों को दानी ठे व मदान्वना को छोड़ गयूरगण मीनत्रन धारकर बैठे जैमे  
 समार को अपारजान योगी लोग एरान्त्र में गोनहो बैठन व मेवगण नेजज  
 ही मानो उनका सर्वधन है निमे छोड़ विमनतासे उज्ज्वलहो आकाश छोड़  
 दिया जैमे विज्ञानी लोग सत्रान दान पुण्यकर घा छोड़नेते हैं शरदू ऋतु के  
 सूर्यकी किरणों से सन्तपितहो जल सुखागया जैसे गिन प्राणियों की गृहादि  
 में बडी ममता है उनके हृदय नानागाति की तापों से सुखाजातेहैं कुमुदों के  
 फूलनेमे शरदू ऋतु के जन योग्यता को पढ़ने जैसे विगत विज्ञानी मनुष्यों के  
 मन अच्छे धोधमे और भी योग्य होजातेहैं तारागणों सहित विमल आकाश में  
 पूर्णमासी का चन्द्रमा कैसे शोभायमान होताहै जैमे माधुओं के फूलमें अच्छा  
 योगी देदीप्यमान होता है तद्भाग नदी आदि जलाशय धीरे २ आना किनारा  
 छोड़ २ सिमटनेलगे जैमे परिडनलोग स्त्री पुत्रादि में लगीहुई ममता धीरे १  
 छोड़ने ठे वर्षाकाल में इसोंने जलाशय छोड़ दिया था जब शरदू ऋतुमें फिर  
 विमल जल पाय योग्यता को पढ़ने जैमे कुयोगी लोग नपस्था करने हैं तो  
 किसी भांति के विघ्न मे नप करना लूट जाता जब फिर रोग करने लगने तो  
 योग्यता को पढ़चने समुद्र अब नदियों की ठारा जल पढ़चनेके कारण बनाय  
 परिपूर्ण होचुकाहै शब्द नहीं करना जैमे क्रम २ से जययतीको महायोग गि-  
 लजावा तो वह महागम्भीर स्वभावहो बैठता बोलता नहीं मवरुही विमलहो जल  
 प्रमन्न हुये जैसे सर्वव्यापी विष्णु को अच्छीभांति जाननेमे परिडनों के मन प्रमन्न  
 होजातेहैं मेवराहित आकाश विमल होगया जैसे योगारिगसे क्रमसमूहोंके  
 जरने मे योगियों का मन विमलहोजाता दिन को जो सूर्यकी किरणोंमे मनु-  
 ष्यादिकोंको ताप होनीहै रात्रि में चन्द्रमा शक्तिकिरणोंमे ताप फादेताहै जैमे

ग्रहकारमे उत्पन्न इ लको महाविवेकनागता हे आकाश मं मेघों को भूमि से कीचको जल से गलितना शब्द ने हगलिया जैसे प्रत्याहार नाम योगाग सर्व विषयों से इन्द्रियों को खींचलेना तड़ागों के जन मानो जहा तहा मे जलखींचने व छोड़ने आदि मे पूरक गेवत धारणादि पाणायाम करने में अभ्यास करते हैं ऐसी शब्द में कृष्णचन्द्र आनन्दरन् ने देखा कि सब ब्रजवासी इन्द्र की यज्ञ करने में मन्न करते हैं सब को उमी में लगेहुये जान जो गोपोंमें वृद्ध थे उनसे बोले यह इन्द्र कौन है जिसकी यज्ञ करने में तुम लोगों को तड़ाहर्ष है जब ऐसे पूछा तो नन्दजी बोले कि भैया मेघों व जनों के स्वागी इन्द्रजी हैं निन्हीं की आज्ञा से भेय पृथिवी में जलमग्न म वर्षने है तिसी वृष्टिमे ७ न्न घास फूस फल मूलादि सब होते हैं उनमे हमलाग व सब अन्यप्राणी देवताओं को हवनादि द्वारा पहुँचाय आप प्याने पीने निर्वाह करते हैं ये गौर्यें जो बहुत २ दूध देती व गोटी ताज्जी आनन्दिन घूमती वझे देती यह सब मेघोंके वरमने से जो घास होती उमी के खानेका प्रभाव है जहा पानी बरसतेहुये वादर देवपग्ने वहा बिना मन्न व बिनाघाम की पृथिवी नहीं देख परनी न कोई भूवा जन देव परता है इम पृथिवी का जल मूर्य्य आनी किरणों से ८ महीनों में सोव लेते फिर उमी से वर्षाकाल में वादर बनने जो समार के कल्याण हेतु भ्रमणीतलम वरसते हैं निमी कारण राजालोग शब्दश्रुतु में इन्द्रजी पूजा करने हम लोग व अन्य भी प्राणी तिसी से निनकी पूजाकरते हैं नन्दगोप के ऐं व वचन इन्द्रकी पूजाके विषय में सुन सुगपतिको कीप करानेक लिये श्रीनन्दनन्दन बोले जिस से कि हे तात । हमलोग वनचर रहे हैं हमारे धन तौलन व देवता गायें हैं कुछ खेतीपाती व वाणिज्य हमारा काम नहीं न्याय शास्र वेदत्रयी कृष्णादिवार्ता दण्ड नीति ये ४ वणों की विद्या हैं उनमें वैश्यों की वृत्तियार्ता है उमको हम तुमसे वनाते हैं सुनिये खेती करना वाणिज्य व्यापार करना पशुपालना इन तीनों वार्ताओं के साथ एक विद्याहृई इनम विमानों की वृत्ति भेती है वगियों की वृत्ति लेन देन गोन भेचकग्ना हमनोगों की वृत्ति पशुओं का पालना है यह भी उन्हीं तीग वृत्तियां में भे है इरलिये जो विद्या जिनके लिये है वने उमीमे निर्वाह करना व उमीका पूजा करना नारिये क्यायि उमका देवता रही है जो अपनी विद्यार्ता छोड़ अन्य किमीरीको प्रणय करना

## दशावां अध्याय ॥

दो० कहव दशम अध्यायमहं जिमि हरि सुरपति याग ॥

बन्दकराय लगाय दिव गोवर्द्धन गिरि भाग ॥ १ ॥

पराशर मुनि बोले हे भैत्रेय । राम कृष्ण के इसभाति विचरने २ वर्षा ऋतु नीतगई शरद् ऋतु आई जिममें कमल फूलनेलगे व छोटी २ तलैयों की मखलियोंकी कमीतरन होनेलगी जैसे स्त्री पुत्र लेनी पातीरं लगेहुये योड़े धनवाले गृहस्थों को होती है व मदान्वना को छोड़ गयूरगण मीनवन धारकर बैठे जैसे समार को अपारजान योगी लोग एकान्न में मौनहो बैठने व मेघगण नेजल ही मानो उनका सर्वधन है तैसे छोड़ विमलतामे उज्ज्वलशे आकाश छोड़ दिया जैसे विज्ञानी लोग सवन दान पुण्यकर घर छोड़नेते हैं शरद्ऋतु के सूर्यकी किरणों से सन्तापितहो जल सुखागया जैसे जिन प्राणियों की गृहादि में बड़ी ममता है उनके हृदय नानाभांति की तारों से सुवाजाते हैं कुमुदों के फूलने से शरद्ऋतु के जन योग्यता को पहुँचे जैसे विमल विज्ञानी मनुष्योंके मन अच्छे बोधमे और भी योग्य होजाते हैं तारागणों सहित विमल आकाश में पूर्णमासी का चन्द्रमा कैसे शोभायमान होता है जैसे साधुओं के कुनगे अच्छा योगी देदीप्यमान होता है तइग नदी आदि जलाशय धीरे २ अरना किनारा छोड़ १ सिमटनेलगे जैसे परिदनेलगे स्त्री पुत्रादि में लगीहुई ममता धीरे २ छोड़नेते हैं वर्षाकाल में हसोने जलाशय छोड़ दिया था अब शरद्ऋतुमें फिर विमल जल पाय योग्यता को पहुँचे जैसे कुपोगी लोग तपस्या करते हैं तो किसी भांति के विघ्न से तप करना छूट जाता जब फिर योग करने लगते तो योग्यता को पहुँचने समुद्र अब नदियों की द्वारा जन पहुँचनेके कारण बनाय परिपूर्ण होचुका है शब्द नहीं करता जैसे क्रग २ से जनयतीको महायोग मिल जाता तो वह महागम्भीर स्वभावहो बैठता बोलता नहीं सबकई विमलहो जल प्रसन्न हुये जैसे सर्वव्यापी विष्णुकी अच्छीभांति जाननेसे परिदनोंके मन प्रमन्न होजाते हैं मेघरहित आकाश विमल होगया जैसे योगाग्निसे ज्वाशसमूहोंके जरने से योगियों का मन विमलहोजाता दिन को जो सूर्यकी किरणोंसे मनुष्यादिकोंको ताप होती है रात्रि में चन्द्रमा शीतकिरणोंसे नान करदेता है जैसे

अहकारमे उत्पन्न इत्यको महाविवेक नागता हे आकाश से मेघों को भूमि से कीचको चल मे गगनना शरद ने हगलिया जैसे प्रत्याहार नाग योगांग सर्व विषयों से इन्द्रिया को खींचलेना नडागों के जल गानो जहा तहा मे जलखींचने व छोड़ने आदि मे पूरक गेवक धारणादि माणायाम करने में अभ्यास करते हे ऐसी शरद में कृष्णचन्द्र आनन्दरन्द ने देखा कि सब ब्रजवासी इन्द्र की यज्ञ करने में मग्न कर रहे हैं सब को उभी में लगेहुये जान जो गोपोंमें बृद्ध थे उनसे बोले यह इन्द्र कौनहे जिसकी यज्ञ करने में तुम लोगों को नडाहर्ष हे जब एमे पृच्छा तो नन्दजी बोले कि गेया मेघों व जलों के स्वाामी इन्द्रजी हैं निन्हीं की आज्ञा से मेघ पृथिवी में जलगम गम वर्षने हे तिसी वृष्टिमे अन्न घास फूस फल मूलादि सब होतहे उनमे हमलोग व सब अन्यप्राणी देवताओं को हवनानि द्वारा पडुंचाय आप लाने पीने निर्वाह करते हे ये गौयें जो बहुत व दूध देती व गोठी नाज्जी आनन्दिन घाती वधे देती यह सब मेघोंके वसने से जो घास होती उमी के खानेका प्रगावहे जहा पानी बरसतेहुये वादर देखपगते वहा बिना अन्न व बिनाघास की पृथिवी नहीं देख परती न कोई भूवा जन देव परता हे इस पृथिवी का जल मूर्य्य आनी फिरणों से व महीनों में सोप लेते फिर उमी से वर्षाकाल में वादर बनने जो समार के कल्याण हेतु भ्रमणीतलम वरसतेहे निमीकारण राजालोग शरदऋतु में इन्द्रकी पूजा करते हग लोग व अन्य भी प्राणी तिसी से निनकी पूजाकरतेहे नन्दगोप के एमे वचन इन्द्रकी पूजाके विषय में मुन सुरपतिको गोप कगनेके लिये श्रीनन्दनन्दन बोले जिम से कि हे तात ! हमलोग बनचर रहेहे हमारे धा टोलन व देवता गायेंहे कुछ खेतीपाती व वाणिज्य हमारा काम नहीं न्याय शास्त्र वेदत्रयी स्पर्णादिवार्ता दण्ड नीति ये ४ वणों की विद्याहे उत्तमों वैश्यों की वृत्तिवार्ता हे उमरां हम तुमसे वनाते हे सुनिये खेती करना वाणिज्य व्यापार करना पशुपालना इन तीनों वार्ताओं के साथ एक विद्याहुई इगम विमानों की वृत्ति गेयी हे वनियों की वृत्ति भेग देन गोल बेचदरना हमलोगों की वृत्ति पशुओं का पालना हे यह भी उन्ही तीन वृत्तियों में मे हे इनलिये जो विद्या जिम के लिये हे उमे उमीमे निर्वाह करना व उमीका पूजा करना चाहिये क्योंकि उमका देवता नहीं हे जो अपना चित्तको सोच अन्य विद्याओंको पठण करना

व पूजता वह न इसीलोकमें सुखपावै न परलोकही में ग्रामसे जहा उसका डाँड़ होता वहां तक खेती होती ढाड़के बाहर पर्वत तक वन होता हम लोगोंका बड़ा प्रयोजन पर्वतसे निकलता है इससे पर्वतकी पूजा करनी चाहिये क्यों कि जिम प्रकार लड़ावही लादनेवाले पशु चरानेवाले जैसे कि हमलोग हैं सुखी रहने जैसे गद्दी किला बनाये रहनेवाले व खेती पाती करनेवाले नहीं सुखी रहते सुनते हैं कि हम वनमें जो ये पर्वत हैं सब इच्छाचारी हैं अपना २ रूप धर २ अपने २ कंगूरोंपै फिरा करते हैं जब कोई वनवासी उनका कोई अपराध करने हैं तब वे सिंह व्याघ्रादि रूप धारण कर उनको मारते हैं तिससे यज्ञ व गोयज्ञ लावो करें हमारा इन्द्र क्या करेंगे हमारे तो पर्वत व गायें यही देवता हैं ब्राह्मण लोग मन्त्र यज्ञ करने किसान लोग हलकी यज्ञ तिसीभाति वन पर्वत निवासी हम लोग पर्वत यज्ञ करें तिससे हमलोग विविध भातिके पशु बलिप्रदान कर गोवर्द्धन पर्वतकी पूजा करें ब्रज भरका सब दूध आज लेलियाजाय तिससे ब्राह्मण व अम्भागतों का भोजन कराया जाय जब गोवर्द्धनकी पूजा होम ब्राह्मणोंका भोजन होजाय तो शरद्वृत्तुके फूलोंकी मालादि पहिनायें गायोंकी प्रदक्षिणा करो हे गोपो ! हमारा तो यह मत है जो ऐसा करोगे तो गाय पर्वत व हमारी सबकी प्रीतिहोगी पराशर मुनि बोले हे विप्र ! कृष्णचन्द्रके ऐसे वचन सुन सब गोप प्रसन्न हो बहुत अच्छा बहुत अच्छा कहनेलगे हे भैया ! तुम्हारा मत बहुतही अच्छा है अब चलो पर्वत यज्ञ करें और बन्धुओं से कुछ काम नहीं यह कहें जैसे २ कृष्णचन्द्रने बताया जैसे २ गोवर्द्धनकी पूजा करी कराई पीछे नानाप्रकार की वस्तु गोवर्द्धनके आगे निवेदनकी तदनन्तर सहस्रों ब्राह्मणोंको खीर आदि उत्तम २ पदार्थोंसे भोजन कराया जब पूजा होगई तो गोघन आगेकर सब गोप गोपी गोवर्द्धनकी प्रदक्षिणा करने लगे उससगय बेल ऐसे ढकरते थे मानों वर्षाकालके मेघ गज्जते हैं कृष्णचन्द्रने अपनी दूसरी मूर्ति बनाय पर्वतके ऊपरसे कहा हम पर्वत हैं वस जितने खीर पूरी पुआ आदि पक्कान्न ब्राह्मणादिकोंके भोजनसे बचेथे वे गोवर्द्धनके आगे निवेदन कियेगये थे सब उठाय २ खायगये और दूसरी मूर्ति जो गोपोंके सगथी उससे गोपोंके सग उस पर्वतस्य अपनी मूर्तिको पूजा करतेरहे वह मूर्ति बोली हम बहुत दृष्टहुये कृष्णचन्द्रने कहा तुम लोग सदा इन्द्रकी पूजा करतेरहे कभी

प्रमत्तहो उन्हानि कहा कि इग त्तद्दुये यह कहतेही वह मूर्ति तो अन्तर्धान होगई कृष्णचन्द्र सब ब्रजवासियोंके सग ब्रजको आये ॥

## ग्यारहवां अध्याय ॥

वे० ग्यारहवें अध्यायमहैं इन्द्र कोपसे वृष्टि ॥

जिमित्रजर्मै कहय पुनि गिरिघर रक्षादृष्टि ॥ १ ॥

पराशर मुनि बोले हे भैत्रेय ! जब इन्द्रकी यज्ञ इसभाति रोकगीहई तो अति कराल कोपकर व सावर्त्तनाम मेघोंके राजामे बोले हे मेघो ! हमारे वचन सुनो मुनके उससे विचार न करो तुरन्तही करना होगा मदादुर्वुच्छि नन्द गोपने धन्य गोप व अपने पुत्र कृष्णकी सहायता मे हमारी यज्ञ भङ्ग करदी तिसमे तिन गोपोंकी जीविका जो गाइया हैं उनके ऊपर ऐसी ऐसी वर्षा करो कि सब गारे जाड़ेके पीड़ित होजावें हमभी पर्वनाकार ऐरावन चतुर्दन्त अपने हाथी पै चढ़ पवनको सग चलवानेहुये तुम्हारी सहायता करेंगे पराशर मुनि बोले इतनी आज्ञापाय मेघगण धाये व ब्रजके ऊपर श्याय गाइयोंके नाश करनेकेलिये बड़े वेगसे वर्षा करनेलगे ऐसी वर्षाकी कि क्षणमात्रमे पृथिवी आकाश व सब दिशा जलमे पूर्ण होगई विजुनी का चमकना मानो लोहका दण्ड धा निसके गयहीमे पीड़ितहो जानो एक बादरमे दूमेरे लड़ने व भागते व चिछाते हुये सम्पूर्ण दिशाओं में शब्द व जल भरनेलगे वन्त गाही दिया लगानार ऐसी वर्षाहुई कि लोकमें अन्धकार होगया नाचे ऊंचे वान कड़ी पानीसे पानी न रहा ऐसा विदित होआथा कि जानो प्रलय होजायगी मागे जाड़ेके माथे इधर उधर तुराय कराय भार्गी व मारे पवन क वेगमे गिर २ मग्नेलगी कोई गाय अपने बच्चे अपने पेटके नीचे स्थिये खड़ीथी किमी २ के बच्चे मरहीगये कोई बघे धीरे धीरे शब्द परने ये मानो कृष्णचन्द्र से आगना हु ल कइ रक्षेमे यही दशा मनुष्यों की भीथी यह सबदेव कृष्णचन्द्रने जाने मनमें विनाना ही कि यज्ञभङ्ग होनेके कारण यह सब इन्द्रने किपारे इमानिये अभी जलकी रक्षा करनी चाहिये इसके लिये यही उपाय कों कि इग गोरक्ष व पर्वत को उपाड़ उर को उठावें उसीके नीचे ये सब लड़ेगें तो मैं पथराभुजा पैरों पर रिखा गोवर्द्धन एक हाथमे लीलापूर्वक उपाड़ु निगा ३५ ऊपर उठाव गाईये क



अपने २ गोधन व मनुष्य ले २ इमके नीचे आजावो हमने वर्षासे रक्षा  
जवतक यह वर्षा व वान न गिटे इमीके नीचे निर्वाह करो हगारि हाथसे पं  
गिरने का भय न करना यह अब न गिरैगा यह सुन सब गोप गोपी अप  
गोधनले माल अमचाव छ रुडों पै लादफाद गोवर्द्धन के नीचे आयगये  
कृष्णचन्द्र भी उसीके नीचे निश्चलता से पर्वत धारण किये हुये खड़े रहे  
गोपी गोप निहार २ आनन्दित होतेथे, व सबके सब स्तुति करते थे इम म  
इन्द्रकी आज्ञासे नन्दगोप का व्रज नाशनेके लिये भेष सात दिनतक महावे  
साथ वर्षा करनेरहे सात दिनके पीछे जब इन्द्रनेजाना कि हमारा किया कुञ्चन  
हुआ गोकुलकी रक्षा कृष्णचन्द्रने करली तो लज्जितहो अपने भेषोंको रोक  
वर्षा बन्दकरो जब बादर निकलगया व इन्द्र की प्रतिज्ञा भ्रष्टहोगई तो कृष्ण व  
भी सबको सङ्गले गोवर्द्धन को यथा स्थान स्थापित कर व्रजको आये ॥

## वारहवां अध्याय ॥

दो० द्वादशाय अध्याय महँ लज्जित है सुरराज ॥  
सुरभि सहित आये व्रजहि हरि विनवन के काज ॥ १ ॥  
गोविंद नाम धराय करि कै अभिषेक विशाल ॥  
करि उपेंद्र हरिको गये वर्णव सोह द्वालय ॥ २ ॥

पराशरगुनि बोले जब गोवर्द्धन उठाय कृष्णचन्द्र ने गोकुलकी रक्षाकरले  
तो इन्द्रको श्रीहरि के देखने की इच्छाहुई इम लिये ऐरावत हाथी पै सवार  
व्रजकी आये कृष्णचन्द्र को गोवर्द्धन पर्वत पै गोपोंके मग गाये चगते हुये  
देखा जो कृष्णचन्द्र सम्पूर्ण सप्तर के पाखन करनेवाले ३ सो गावोंकी पालन  
करते हैं इन्द्रको यह भी देखपरा कि मरुद्गनी अपने पंखोंमे ऊार से कृष्णचन्द्र  
के शिरपै रक्षा कररहे हैं यह जान ऐरावत से उतर एकान्त में कृष्णचन्द्र से बोने  
हे कृष्ण ! हम जापके निकट जिस लिये आये हैं निवेदन करते हैं आप कुछ  
उमके विरुद्ध न चिन्तना कीजिये हम जानते हैं कि आप अनादि पुरुष पर  
गात्मा हौं महीमार उतारने के लिये यथा भ्रतरेहो यज्ञभग करने के लिये हम  
ने क्रोधकर गेवोंको व्रजवासियोंके नाशार्थ भेजाथा उन्होंने वर्षासे गोधन गोपी  
गोपोंको बहुत पीड़ित किया पर तुमने गोवर्द्धनउठाय उनकी रक्षाकी इमलिये

तुम्हारी वीरता देख हम बहुत सन्तुष्ट हुये व हमने जाना कि तुमने देवों का कार्य भिन्नकिया क्योंकि जब इतना बड़ा पर्वत उखाड़ लिया व ७ दिन तक हाथों धरे हुये गोकुलकी रक्षा की तो दुष्ट दैत्यों के मारनेमें क्या है तुमने गायों की जो रक्षा की है इस से प्रसन्न है सुभी ने व सब गायोंने हमको भेजा है आज से तुम्हारा गोविन्द नाम दृष्ठा व गायों के उपेन्द्र हुये यह कह ठौर २ से तीर्थोंका जल मँगवाय व ऐरावत की सूड़में जो आकाशगंगा का जल भराथा ले कृष्णचन्द्रका अभिषेक पुरन्दर ने अपने हाथ से किया जब अभिषेक करनेलगे तो प्रसन्न हो गायोंने स्वर्ग मे दूवरी बर्राकी वह भी अभिषेक हुआ इसके पीछे कृष्णचन्द्र से हाथजोड़ इन्द्र बोले कि एक वान और भी आपसे कहते हैं हमारे अशमे कुन्ती में अर्जुनजी उत्पन्न हुये हैं उनकी रक्षा जतनक चहा रहियेगा करते कराते रहियेगा यह सुन कृष्णचन्द्र बोले कि हम जानते हैं तुम्हारे अगसे कुन्तीमें अर्जुन उत्पन्न हुये हैं जबतक यदा है उनकी रक्षा अशय करते रहेंगे जबतक हम महीतल में हैं तबतक सम्राग में कोई उनको न जीतसकेगा कम अरिष्ट केशी कुवलयापीड भौमासुरादिकों के मारेजाने के पीछे महाभारत नाम सम्राग होगा उसमें सहस्रोंवीर मारेजायेंगे जब वह हो जावे तो तुम जानना कि पृथिवी का भार उतारा गया निमसे आप जायँ पुत्रके अर्थ शोच न करें हमारे आगे अर्जुन का शत्रु कोई न होगा अर्जुन के लिये भागत हो जानेके पीछे सब युधिष्ठिरादिकों को कुन्तीको सौंप देंगे व उन तबक जो सम्रागम घाबल गेंगे सब नीरु होजायेंगे यह सुन देवराज कृष्णचन्द्र को मिन भेट पैगवन पे सवार हो फिर स्वर्गको चलेगये व कृष्णचन्द्रभी गोपाला के साथ ब्रजको जाये ॥

## तेरहवां अध्याय ॥

दो० तेरहवें अध्याय महँ गावन हरि को चीर ॥

कहव सोइ पुनि जिमि तरी राहमकीड़ा रीरि ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले जब इन्द्र चलेगये तो गोपों ने गोवर्द्धन उठा लेतेके दंतु भीतिसहित कृष्णचन्द्रसे कहा हे महाभाग ! आपने पर्वत उठाय इन्द्र क तौर मे हुई वर्षा से हमलोग व गायों की पालना की पर हमलोगों को एक बड़ी गयों है कि आप के सब कर्म तो देवताओं के से भी अच्छे हैं पान्त् मिन द्द

गोपोंके साथ करते जो अतिनिन्दित हैं यह क्या बात है कहिये यमुनाजल के भीतर जाय कालियदमन आपने किया प्रेल्म्बासुरों को मार्ग गोवर्द्धन पहाड़ उठा लिया इन २ बातों से हमलोगों के मनो में बड़ी शका होती है हम हरिके चरणोंकी सौगन्द सायकर सत्य २ कहते हैं कि आपका ऐसा वीर्य देख हम लोग तुमको मनुष्य नहीं मानते फिर ब्रज में क्या स्त्री क्यों पुरुष क्या लड़के सब में आपकी प्रीति है जैसे मनुष्यों को होती पर कर्म तुम्हारे ऐसे हैं जिन्हें देवतालोगभी नहीं करसके फिर धार्यावस्थाहीमें जिनके इतने पराक्रम हों हमलोगों में उसका जन्म किसी भांति शोभित नहीं होता जब ऐसी २ बातों की चिन्तना करते हैं तो शका होती है इसलिये पूछने हैं कि तुम देवता हो वा दानव वा यक्ष गन्धर्व कि हमारे बाधवहो जो कुछहो तिसके नमस्कार करते हैं यह सुन कृष्णचन्द्रक्षणमात्र चुपारहे फिर कुछ प्रेम कुछ कोपमाने बचन बोले हे गोपो ! जो हमारे सम्बन्ध से तुमको लज्जा न आती हो तो हम तुम्हारे प्यारे हैं विचार से तुम लोगों का कौन प्रयोजन है जो हममें तुम्हारी प्रीति हो व हम तुमको प्रिय लगतेहों तो हममें तुमलोग वही प्रीति रखो जो माई बन्धुओं में रखतेहो न हम देवता हैं न गन्धर्व न यक्ष न दानव किन्तु हम तुम्हारे बान्धव उत्पन्नहुये हैं हममें और बुद्धि न मानो यह सुन सब गोप कृष्णचन्द्रको प्रीति कोप सहित जान चुपहो ब्रजको चले गये व कृष्णचन्द्रजीने एक दिन बलरामजी के सग ब्रज के बाहर बैठेहुये देखा कि आकाश विमल हो रहा है शरद्भ्रतु के चन्द्रमाकी स्वच्छ चन्द्रिका फैल रही है कुमुदिनी फूलरही है उसकी महक से दिशा पूर्ण है वन में भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं ऐसा सगम् गोपियों के सग विहार करने की इच्छाकी व मधुरस्वर से बेगीवजाय हाएक गोपी का नाम ले २ बुलाया यह रमणीक दिव्य वगीका शब्दसुन जहाँ मनोहर कृष्ण चन्द्र थे सब गोपिया भेषना घरबाग छोड़ धाय २ आय पहुँची कोई २ धीरे २ भी आई कोई गली में सुस्ताती व हरिको सुमिरती हुई पहुँची कोई २ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! यह कह लजाय उठी कोई २ प्रेममग्न हो लज्जारहित मधुके पास ही जायसड़ीहुई एक चलने को तैयारहुई अगनामें उसका स्वशुर खड़ा था उसे देख घामे न निकल सकी वम वहींसे कृष्णचन्द्रका ध्यान करने लगी यहाँ तक कि ध्यान करते २ हरि में लीन होगई क्योंकि हरिके न मिलने से जो

महादृक् उसको हुआ था उस से उस के सब पातक छूटाये एक और गोपी  
 वहा से परब्रह्मस्वरूपी गदनमोहन को सुभिरनी हुई देह छोड़ आगे केशवमूर्ति  
 में लीनहोगई जब सब गोपिया आयगई तो रावचन्द्र से समणीक सत्रि देख  
 वृन्दावनविहारी ने चाहा कि इनके संग रामकीड़ा करें यही सोच राम करने  
 लगे करते २ कुञ्जैर में अन्तर्धान होगये तो गोपिया कृष्णचन्द्र का वेप बनाय  
 उनकी फीहूई लीला करनेलगी जैसे कि एक गोपी बोली देखो हम कैसी  
 सुन्दर कृष्णचन्द्रकी चाल चलतीहैं हमरी ने कहा हा कृष्णचन्द्रके गीत गाती  
 हैं सुनिये अन्य बोली हे कालिय दुष्ट ! लड़ाहो हम कृष्णदेव तुम्हे दगन करते हैं  
 यह कह तालतोंक लड़ने को खड़ीहुई एक बोली हे गोपी ! अब न डरो हमने  
 गोवर्द्धन उठा लिया इसके नीचे आजावो एक बोली अब सब तान वन के  
 फल खावो हमने धेनुकासुर को मारडाला इसभानि अनेक कृष्णचन्द्रके किये  
 हुये खेल करतीहुई गोपिया वृन्दावन में दृढ़नेलगी उन में एक पृथिवी देव  
 कहने लगी गोपियो ! देखो यहा की धरणी अतिरमणीक व चटकीली है व  
 इस में कृष्णचन्द्र के चरणारविन्द के ध्वजा पनाकादि चिह्न देव परते व  
 उनके साथ कोई अन्य स्त्री भी गई है क्योंकि उसके गी पेर बने हैं इस स्थान पे  
 गदनमोहन ने फूल तोड़े हैं क्योंकि आधे २ चरणों के चिह्न बने हैं देखो  
 यहां पैठ उन्हीं फूलों से उमका शिर गूधा है इमने पूर्व जन्म में हरिकी  
 वड़ी तपस्या की है नहीं तो ऐसा साधे को होता देवो यहा जब हरि ने  
 फूलों से उसके धार गूदे को उसने मान किया है फिर नन्दनदन उसे छोड़  
 चलेगये हैं देखो कृष्णविहारी यहामे भागे हैं तो कोई और गोपी उनके संग  
 दौड़ीहुई चली गई है जखदीके पाव बनेहैं हे सभियो ! यहां स्वाममुन्दर उम  
 का हाथ पकरके चले है फिर देवो हाथ पररनेसे उम को मान हुआहै तब गद-  
 नमोहन आगे चलेगये हैं वह पीछे २ धीरा २ गईहै देखो यहा फिर विहारीके  
 पकरनेको दौरी है क्योंकि दौरनेके पाव बनेहैं देवो यहा उसके पाव नहीं जान  
 परते जानपरता है कि मोहनने उसे काये वा पीउये चढ़ालियाहै भयि सभियो !  
 चलो अब लौटवलो क्योंकि चन्द्रमा अस्त होने चाहता है यह कह निरागदो  
 सब गोपियां यमुना तीरपे आई व नन्दनन्दनके सत्रि गानेलगी कि देखो  
 हमनेहुये मनोहरण कृष्ण चलेजाने हैं देवनेही कोई गोपी तो कृष्ण २ यही

वहनेलगी कोई सकुपितहो नयन तोर फिर निज नेत्रभ्रमर से हरि आनन  
 कगल रस पीनेल ।। कोई कृष्णरूप निहार नयन मूढ मनमें ध्यान करनेलगी  
 देवनेमें जानो योगाभ्यास कररही है कोई २ प्रिय आलापोंमे कोई २ भौंड़-  
 टहीकर कोई हाथ पकर कृष्णचन्द्रको शिखासी देती है कि मोहन भरो हमको  
 छोड चलेगयेये इमभानि कडमुन हरिकेसग गोपिया विहरनेलगी हरि एक २  
 गोपीका हाथ पकर नाचनेलगे फिर शरदश्रुतुके गीत गानेनगे उससमय  
 कृष्णचन्द्र नो शरदश्रुतुके चन्द्रगा तथा उसकी किरणोंकी प्रशमा करतेहुये  
 गानेथे गोपीलोग वार २ कृष्ण २ कहतीहुई गान्तीर्थी नाचनेके समय एक गोपी  
 थकउठी वह श्यामसुन्दरका काध पकर लटकरही कोई गोपी गाते २ भाव  
 बनानेके ओढ़रमे हरिका मुख चूबनेलगी गोपीके कपोलसे चुम्बिन हरिके बाहु  
 कणयुक्तहो फेसी शोभाको पहुँचे जैसे हरे नाजके ऊपर गेघकी बूंदिया शो  
 भितहोनी जवनरु हरि गम गीतके तालस्वर मिलाय २ गाते तवतरु गोपिया  
 जय कृष्ण २ कदा करती जब हरि चलते तो गोपिया आपभी चलती जब गाते  
 तो गाती जब हँसते तो हँसती इमभानि सब नन्दकुमारकी सेवा करतीर्थी यद्य-  
 पि गोपियोंके पनि पिता भाइयोंने मनाभी किया पर, रात्रिमें गोपियोंने हरिके  
 सग विहारकिया हरिभी किशार अवस्थाको तो प्राप्तही थे जैसे २ गोपियों ने  
 चाहा वैमेही वैमे उन्होंने भी विहार किया सो कुञ्ज-दोष ही बात नहीं गोपियों  
 के पनियों में व मनमें व मव प्राणियों में भगवान् हरि टिके हैं इसीमे सर्वस्व-  
 रूपी भगवान् कृष्णचन्द्रके विहारों दोष नहीं जेम रायु सवमें व्यापक है तैसे  
 हरि भगवान् हैं जैसे सव प्राणियों में आकाश अग्नि पृथिवी जन वायु हैं तैसे  
 आत्मरूप सर्वव्यापी कृष्णचन्द्र हैं ॥

## चौदहवां अध्याय ॥

दो . चौदहवें अध्याय महें जिमि रामोत्सव माहिं ॥

हरि वृषभासुरको, हन्वो बर्यय सो शक नाहिं ॥ १ ॥

पराशर मुनि बोले कि किसी दिन दोघड़ी रात्रि बीते कृष्णचन्द्र गोपियोंके  
 संग रासक्रीड़ा करने ये कि गोपियोंको भयभीत करताहुआ वृषभासुर आया  
 मानो सजल मेघहै वड़ी तीखी सींगें लाली २ आनें काढ़े सींगें व धूपनेसे

पृथिवी खोदे डालताथा वार २ जीभसे ओंठ चाम्ता मारे क्रोधके पूछ पटकता  
 बड़ाभारी कांधा फापता गोबर व मून पीठों लगाये गायोंको उद्वेग कराना  
 हुआ बड़े लम्बे गन्नेवाला आतेही ऐमे जोरमे हकारा कि गायोंके गर्भ गिर  
 परे उमका हफरना सुन गोप गोपी सब भयवान् कृष्णचन्द्रे शरणदृये श्री  
 हरिनेभी सिंहके सगान शब्द किया निसे सुन हरिके सामने दौरा आयकै पेट  
 में सींग लगायही तो दिया कृष्णचन्द्रे देला कि यह तो मारनेही चाहताहै जैसे  
 मारनेको चाह्हा कि हरिने सींगोंपर एक लान उसके पेटमें ऐसे जोरमे मारा  
 कि भहरापरा गिरनेपै गला पकर ऐसा दवाया जैसे कोई आंदा कपड़ा गांता है  
 फिर सींग उचार मरा भद्र पीटडाला उसके प्राण निकलनये गोपोंने हरिकी वड़ी  
 स्तुतिकी जैसे जम्भामुरके मारनेपर देवताओंने देवराजकी कीयी ॥

## पन्द्रहवां अध्याय ॥

श्लो० पन्द्रहवें अप्याय महँ नारद सों सुनि कस ॥

अदला बदली कृष्णकी पठयाऽकूर मो शस ॥ १ ॥

पराशर मुनि बोले कि जब वृषभामुर धेनुवासु प्रलम्बासु मागय गोव-  
 र्द्धन उठायागया कालियदमितहो निकाला गया यमलाञ्जुन वृष उलाडेगये  
 पृतना मारीगई लदी उलटाई गई तो नारदजी ने आय धमये सब कथा कही  
 जिस भाति देवकी के पुत्र कृष्णचन्द्र यशोदा के यहा जाये व यशोदा की  
 कन्या देवकी के यहा आई यह मुन क्रमने वसुदेव के ऊपर बडाही कोप लिया  
 व सब यदुवशियोंके आगे बैठाव वसुदेव को बहुत ऊची नीची कही व यशोदे  
 लगा कि जवनक गम कृष्ण दोनों बालक युवावस्थाको न प्राप्तहा नभीतरु च-  
 हिये कि उनको मारडालें नहीं तो जब युवावस्था को पहुँचेंगे तो महापराक्रमी  
 होजाने के कारण हमारे मारे न करेंगे अभी अब्दाहै कि दोनोंका बुनाव नीर  
 चाणूर मुष्टिक दोनों महापराक्रमी वीरोंमे कुरनी वेनाय मग्वाडाने यदांभनु  
 र्थज्ञकी तैयारीकरें उसीके देखनेके ओदगसे ब्रतमे उनको बुनाव कि व २ उपाय  
 करें जिनसे वे महादुष्ट मारेजावें निममे शकलक के पुत्र अकूर को निनने बु-  
 लानेके लिये गोकुलको भेजें व महाबली देवी को कृष्णचन्द्र भेजें कि यह वही  
 उनको मारगावे व उन दोनों वसुदेव के पुत्र चरवाहों को कुबरादापीट टा म

वहनेलगी कोई सङ्घुपितहो नयन तेर फिर निज नेत्रभ्रमर से हरि आनन  
 कमल रम पीनेल नी कोई कृष्णरूप निहार नयन मूढ मनमें स्थान करनेलगी  
 देखनेमें जानो योगाभ्यास करगही है कोई २ मिय आलापोसे कोई २ भौंह  
 टढ़ीकर कोई हाथ पकर कृष्णचन्द्रको शिखासी देती है कि मोहन भरो हमको  
 छोड़ चलेगयेथे इसभांति कदमुन हरिकेसग गोपिया विहरनेलगी हरि एक  
 गोपीका हाथ पकर नाचनेलगे फिर शब्दश्रुतुके गीत गानेलगे उससमय  
 कृष्णचन्द्र तो शब्दश्रुतुके चन्द्रगा तथा उसकी किरणोंकी प्रशंसा करतेहुये  
 गानेथे गोपीलोग वार २ कृष्ण २ कहतीहुई गार्तीर्थी नाचनेके समय एक गोपी  
 एकउठी वह श्यामसुन्दरका पाध पकर लटकरही कोई गोपी माते २ भाव  
 वतानेके ओढ़से हरिका मुख चूनेलगी गोपीके कपोलमे चुम्बित हरिके बाहु  
 कणयुक्तहो फैली शोभाहो पट्टेथे जैसे हरे नाजके ऊपर मेघकी बूदिया शो  
 भितहोती जवनक हरि गम गीनके तालस्वर मिलाय २ गाते तबतक गोपिया  
 जय कृष्ण २ कहा करती जब हरि चलने तो गोपिया आपभी चलती जब गाते  
 तो गाती जब हँसते तो हँसती इसभांति सब नन्दकुमारकी सेवा करतीथी यद्य  
 पि गोपियोंके पनि पिता भाइयोंने मनाभी किया, पर रात्रिमें गोपियोंने हरिके  
 सग विहागकिया हरिभी किरार अवस्थाको तो प्राप्तही थे जैसे २ गोपियों ने  
 चाहा वैमेही वैमे उन्होंने भी विहार किया सो कुछ दोषकी बात नहीं गोपियों  
 के पनियों में व मनमें व मव प्राणियों में भावान् हरि टिके हैं इसीमे सर्वस्व  
 रूपी भगवान् कृष्णचन्द्रके विहारमें दोष नहीं जैसे वायु सबमें व्यापक है तैसे  
 हरि भगवान् हैं जैसे सब प्राणियों में आकाश अग्नि पृथिवी जल वायु हैं तैसे  
 आत्मारूप सर्वव्यापी कृष्णचन्द्र हैं ॥

## चौदहवां अध्याय ॥

दो० श्लो० चौदहवें अध्याय महँ जिमि रामोरसव माहि ॥

हरि वृषभासुरको हन्यो वरीय सो शक नाहि ॥ १ ॥

पराशर मुनि बोले कि किसी दिन दोघड़ी रात्रि बीते कृष्णचन्द्र गोपियोंके  
 सग रासकीड़ा करने थे कि गोपियोंको गयभीत करताहुआ वृषभासुर आया  
 मानो सजल मेघहै पड़ी तीली सीमें लाली २ भाँसे काढ़े सीमें व धुपनसे

पृथिवी खोदे डालताथा बार २ जीममे जाठ चाटना गारे कोवके पूछ पटकना वड़ाभारी बाधा थापता गोबर व मून पीठगें लगाये गायोंको उठेग कराता हुआ चडे लम्बे गलेवाला आनेही एमे जोरमे डकारा कि गायोंके मर्ग गिर परे उसका डकरना मुन गोप गोपी सब भयवान् कृष्णचन्द्रे शरणहुये श्री हरिनेगी सिंहके समान शब्द किया निसे मुन हरिके सामने दौरा आयके पेट में सींग लगायही तो दिया कृष्णचन्द्रे देवा कि यह तो मारनेही चाहताहै जेमे मारनेको चाहा कि हरिने सींगेपकर एक लात उसके पेटमें एमे जोरमे मारा कि भहरापरा गिरनेपे गला पकर ऐसा दबाया जैसे कोई जोदा कपड़ा मारता है फिर सींग उचार भद्राभद्र पीटडाला उसके प्राण निकलगये गोपीने हरिकी वड़ी स्तुतिकी जैसे जम्भामुरके मारनेपर देवताओंने देवराजकी कीधी ॥

## पन्द्रहवां अध्याय ॥

श्लो० पन्द्रहयं अध्याय महँ नारद सों मुनि वस ॥

अदला बदली कृष्णकी पठवाऽकुर सो वस ॥ १ ॥

पराशर मुनि बोले कि जब वृषनासुर धेनुकासुर प्रलम्बासुर गागय्ये गोर-  
र्जन उठायागया कालियदमितहो निकाला गया यमलाज्जुन शूद्र उखाड़ेगये  
पूतना गारीगई लही उलटाई गई तो नारदजी ने जाय ५ ममे मर तथा कही  
जिस भाति देवकी के पुत्र कृष्णचन्द्र यगोदा के यहा जाये व यगोदा की  
कन्या देवकी के यहा आई यह मुन कपने वसुदेव के ऊपर बडाही सोप किया  
व सब यदुवशियोंके आगे बैठाय वसुदेव को बहुत ऊची नीची रहीं व जो गये  
लगा कि जवनक गम कृष्ण दोनों बालक युवावस्थाको न प्राप्तहा तभीतरु व  
दिये कि उनको मारडालें नहीं तो जब युवावस्था को पहुँचगे तो महापराक ही  
होजाने के कारण हमारे मारे न गरेंगे अभी अन्धहै कि दोनों को युवावे और  
चाणूर मुष्टिक दोनों महापराकगी वीरोंसे कृष्ण की रचनाय पात्राडाये यहाँ वसु-  
देवकी सैयारीकर उसीके देखनेके श्रोत्रसे व तमे उनको बुना व दिये २ उपाय  
करे जिनसे ये महादुष्ट मारेजावे निसेमे दक्षके पुत्र अक्षर को निगडे यु-  
लानेके लिये गोकुलको भेजे व महाबली केगी ० शृंगार व भेने कि वह इहाँ  
उनको मारवावे व उन दोनों वसुदेव के पुन चरवाहा की दुःखदा गेह दापी



यहा आतेही आते मारहालेगा पराशरमुनि बोले इम भानि दुष्टात्मा कसने अपने मनमें ठान राम कृष्णने मारने के विषय में अक्रूर को बुलाय बोला हे अक्रूर। हमारी प्रसन्नताके लिये यह बात मानिये कि अभी स्वयं चंद्र नन्द गोकुलको जाइये क्योंकि वहा विष्णु के अशसे उत्पन्न वसुदेव के दो पुत्र हमारे मारनेके लिये बढ़नेहैं सो चतुर्दशी के दिन हमारे यहा धनुर्ग्र्यज्ञहैं उसके देखने के लिये दोनोंको बुलायलावो कि यहा आय कुशतीलहैं त्राण व मुष्टिक दो हमारे यहा बड़े कुशनीवाज्य हैं तिनसे वे दोनोंलहैं कि सबलोग देखें वा उन दुष्ट वसुदेवके पुत्रोंको कुबलयापीड़ हाथी जो मड़ा मदान्धहैं दोरसे पहुँचतेही पहुँचते मारहालेगा तिन दोनोंको मार वसुदेव व दुष्ट नन्द गोप व अपने पिता उग्रसेन को भी मारहालगा तिसके पीछे दुष्टगोपों का सब धन लेलूगा क्योंकि वे मेरावध चाहतेहैं तिसके पीछे आपको छोड़ इन सब दुष्ट यादवों के गानेका भी उपाय करूगा तो यह अयादव राज्य निष्कटक होजायगा वस तुम्हारी सहायता से हम भोगेंगे इमलिये हे गीर। आप शीघ्रही चलेजाइये जैसा कहने से गोपलोग बूध दही थी हमारे लिये भेंटलावें वैसा उनसे बनलाना पराशरमुनि बोले कि जब परग मागवत अक्रूरजी मे कसने पेमा कहा तो वे बहुत प्रसन्नहुये कि प्रात काल जानो इसी बढ़ाने से हरिके दर्शन करंगे यह विचार फटा बहुत अच्छा हम जाते हैं वस स्वयं चंद्र मथुरापुरी से बहिराय खड़ेहुये ॥

## सोरहवां अध्याय ॥

दो० सोरहवें अध्याय मैं हरि केशी घष कीन ॥

अन्य भाषि सग्राम सब नारद मुनि कविदीन ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले कसके दूतका भेजाहुआ महापराक्रमी केशीनाम दैत्य कृष्णचन्द्रके मारनेकी इच्छामे वृन्दावनमें आया आतेही सुरोंसे पृथिवी स्रोदने अपने कंधे परके वार हिनाय २ चादरों में धका मारने व अपनी अतिवेगचाल से सूर्य चन्द्रमा का मार्ग रोकनेलगा व अपने शब्दसे गोप गोपियों के हृत्थ कम्पाने तिसका दिनहिना सुन अतिगयभीत हो गोपा गोप सब गोविन्द के शरणागत हुये उनका प्राहि प्राहि वचन सुन दीनबन्धु श्रीहरि गेन्नरदगम्भीर वाणी बोले हे गोपो। इम अश्वरूप दैत्य का दिनहिना सुन नाहक डरते हो

पर क्या करौ गोपजाति तो हैंदीहौं तुम लोगोंने वीरना का लोपही करदिया इस दुष्टके केवल हिनहिनाने से क्याहै दैत्योंके सगान चल तो इसके हई नहीं केवल चिघरनाही चिघरना है यह गोपोंने यह केगीने बोले हे दैत्य दुष्ट । यहा आव हम कृष्णहैं जैसे पुष्पके दान वीरगद ने दक्षयज्ञ में हँमनेपर तोड़डाले थे वैसेही मुखमे तेरे सब दान गिराये देनेहैं यह यह तालडाक गोविन्द केगीकी ओर चले केशी भी मुँह वाय हरिकी ओर दौरा वह मुँह जाये तो थाही मधुसूदनजी ने अपना हाथ उमके मुखमें डाल दिया हाथ में गेमी उष्णताकी कि उससे केशीके सब दान आगे गिरपरे व हाथ पेटनक पहुँचाय ऐसा मोटाकिया कि दुष्टदैत्य की श्वाप चन्दहोगई जैसे मरण समय में कफकी वृद्धिमे कगडा-वरोध होजाता अत्र उमका मुख बहुतही फैलदोगया आँखें निकलजाईं भूमि। गिर पेर फटकनेलगा मुँहमे फना व रुधिर डाकने लीट गयेगा कलेलगा अब कुछ यत्र उमका किया नहीं होता वस मुँह फैलगा वीचोभीचो व गगिर फटगया जैसे विजुली गिरनेसे वृक्ष फटजानाहै अब केशीके दो पैर आधी पूछ आधीपीठ पर कान नेत्र नासिका अलगहोगये दोलखड केशीकेहो योगित होनेलगे केशी को मार आनन्दित गोपोंके साथ हैंपते दृष्टे किसी स्थानपर नन्दनन्दन खड़ेहै गोप व गोपियां दुष्ट केशीके मारेजाने पे श्रीहरिकी स्तुतिकानेनगे त्रिममय केशीको प्रभुने माराथा उत्तममय नागदमुनि वातों में लुकेहुये आजाग से ते-खत्रेये गानेही के साथ वाह २ करने व कहनेनगे कृष्णचन्द्र अच्छा किया इन देवताओंके बेरी दुष्ट केगी को नीघरी गाडान्ता दगे कभी मनुष्य गां व दे की लड़ाई नहीं देखी थी उमी के देवने के लिये सर्ग तो क में यहा आये व आपने अपने अवनार में जो २ कर्मा किये उनके दण्डने मे मन मडन प्रमन हुआ इस घोड़े से सब देवमडित इन्द्रगी डगकाने ने ना २ यद हिनहिनाय अ पने कन्धेके वार हिलाय स्वर्ग की ओर मुँह उठानाया तत्र २ इन्द्रादि तापने लगने थे हे जाहर्न । त्रिममे आपने अकेनेही इम दुष्टरा केगीको गाग ह्ये इससे आजमे पर तुम्हास केशवनाम हुआ अब नुशगि स्वप्ति हो हम जाने है अब परमों आपका फपके साथ युद्ध देपने जावो तत्र उपपेनके पुत्र दुष्टरा कपको सहित परिरा गाडान्तागे तो शूरिों का भा उतागेमे उप ग हाभाग्न में अनेकों राजाओं को मदा कगेगे इन पर परियों को जाव जगेग

व हम देखेंगे सो अब हम जाने हैं आपने देरताओं का कार्य खूब किया २ अभी बहुत करोगे तुम्हारा कल्याण हो जाति है पराशरमुनि बोले कि ॥

चौ० जब नारद गे अपने घामा । गोपन सञ्चित कृष्ण अभिरामा ॥  
गोकुल गये गोपिजन नयना । देखन पात्र कहत मृदु वयना ॥ १ ॥

## सत्रहवां अध्याय ॥

दो० सत्रहवें अध्याय महँ करत मनोरथ पुज ॥

गे गोकुल अक्रूर हरि बल देख्यो धृतगुज ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले अक्रूर भी कमके दियेहुये रथचक्र मथुरा से निकले कृष्ण चन्द्रके दर्शन की लालसा से नन्द गोकुल को चले व मनमें विचारनेनगे कि हमारे समान कोई धन्य नहीं काहेसे कि आज विष्णु के अशुभनार प्रयाग सुन्दर का मुखारविन्द अवलोकन करेंगे आज हमारा जन्म सफल हुआ व आजकी रात्रि का प्रभात सुप्रभात हुआ क्योंकि प्रफुल्लितकमलदलनयन विष्णुका मुखारविन्द देखेंगे जाहेसे वेदलितिन अच्छे २ सुगण हमारे दाहिने हाथ चलते हैं ताहेसे अवश्य श्रीहरि के दर्शनहोंगे जिस ईश्वरको यज्ञोंमें लोग यज्ञपुरुष पुरुषोत्तम कहकर पूजते हैं निस जगत्पति को हम देखेंगे जिस अनन्त भगवान् के लिये १०० अश्वमेध यज्ञकर इन्द्र अमर राजता को पट्टेचे तिस आदि पुरुष को देखेंगे जिस हरिको ब्रह्मा इन्द्र रुद्र अश्विनीकुमार वसु आदित्य पवनादि देवगण नहीं जानने सो हरि आज प्रत्यक्षमें हमारे आगे प्राप्त होंगे जो परमात्मा सर्वज्ञ सर्वज्ञता सच प्राणियों में टिका नाशरहित सर्वव्यापी है वह आज हमारे साथ प्रत्यक्ष में मार्चालाप करेगा जो हरि मत्स्य कूर्म वराह ह्यग्रीव नृसिंहादिक रूप धारणकर जगत्में विचरा सो आज हमसे भलीभांति बोलैगा इम समय जो जगत्स्वामी आर ॥ सवके अन्त फरण का जाननेवाला देवताभा के कार्यदेगिये मनुष्यता को धारण किये है नहीं तो नाशरहित है सो वह हमको मिलेगा जो अनन्त भगवान् शेषस्वरूपी अपने गिरने धारणी धारण किये है सो संसार के हेतु आतारले हमसे अक्रूर अक्रूर कह बोलैगा जिसकी मायामे मोहित समारपिता पुत्र सुइद भाई गाना बजुने फँसहि व इम मायाक पाव जाने में समर्प्य नहीं निमके नगस्कार है जिस ईश्वर को हृदय

में बैठाने से पुरुष अविद्या को तरिजाता है निम विद्यास्वरूपी के नमस्कार  
जिमको यज्ञ करनेवाले लोग यज्ञपुरुष भगवद्दाम तामुत्वे वेदान्तवादी विष्णु  
कहते हैं तिसके नमस्कार करते हैं जैसे निम जगद्धाम परमेश्वर मैं यह मत्र  
स्थावर जगम समा टिका है निम सत्यता से वह परमात्मा भेरे ऊर कृपाकटाक्ष  
करे जिमके स्मरण से पुरुष मत्र कलराणों का पात्र होता है निम अन्न अनादि  
नित्य विद्यमान हरिके शरणको जाता हूँ पराशरमुनि बोले कि इमभाति चि-  
न्तना करते हुये मक्तिसे काम नयाये अक्षु' कुछ दिन रहे गोसुल में पहुँचे व  
उन्हींने भगवान् कृष्णचन्द्र को गायों के डुझाने में लगे हुये चक्षरां के मध्य में  
प्रफुल्लित नील कमलदल समान छत्रि देवा जो मूर्ति माफ कमलदल समान  
लोचन श्रीरत्नचिह्न चिह्नित वक्ष स्पल प्रलम्बबाहु उच्चनासिका वक्षःस्थल  
सहित विलास हँसो हुये मुखको धारणकिये ऊँचे ऊँचे व लाने कर चरण के  
नख विराजमान पावों मे धारणी में धीरे धीरे चलने हुये पीताम्बर ओढ़े वनके  
फूलोंकी माला पहिने सचन्द्र नील रत्न के समान दीप्ति उज्ज्वल कपलों से  
शिरोभूषण बनाये हरिफो व तिमके पीछे ही हम कुन्द चन्द्र समान गोरग  
वँजनी वस्त्र ओढ़े ४ दाय ऊँची मूर्ति ऊँचे बाहु व कन्धे प्रफुल्लित कमलसग  
मुख मानो मेघपागा मे घेरा हुआ कैलासपर्वत घेने वनभद्री को भी देखा  
ऐसे दोनों भाइयों को देव अक्रूती वहुगुणी मन्त्र हुये व गार्ग कहने लगे कि  
निरवय निरवय भगवान् तामुदेर हा अग यही है जिमकी ये दो मूर्तिया  
होगई ह इन जगद्धाता के दर्शन से भेरे नयनों की मरुता निरवय हुई  
भना मेरा यह अग भगवान् की अगभगता को पहुँचेगा वा नहीं भना ये म-  
दनमोहन मूर्ति मेरी पीठो अरना करकनक रंगे वा नहीं कि जिमकी अगु  
लियों के स्पर्श से सम्पूर्ण पापसमूह नाग हो जाने व नागगिन भिद्धि होय है  
व जिस करकमल से चलाये हुये अग्नि विजुली गिरी किरणों की मालाओं  
से अतिकराल सुदर्शन वक्रमे गोरुये देवोंकी स्त्रियों के तंत्रों का अन्न रक्ष  
गया है व जिसमें जलदान कर गजाचलि ने पृथिवीतल में टिकेटीटिके चि-  
रमणीक भोग विनास पाया व इन्द्रने जिममें यज्ञरुन ममर्षण कर कर्णों व  
र्यन्त शकारहित देवाधिपत्य पाया भना ये कृष्णचन्द्र मुफ दमर्षण को  
कमका भेजा हुआ जान दोषी तो न ममर्षे कि देव चुा होय है इन्द्रने

हुआ तो मुझको धिक्कारें क्योंकि जिसका महात्मा साधुओं से निरादर हुआ।  
उमके जन्म ही धिक् है पर मैं यह ठीक ठीक जानता हू कि ज्ञानात्मा अमल स-  
त्त्वगुणराशि तोषाहित सदा देदीप्यमान मर्व्वज्ञ मर्व्वदर्शी अन्तर्यामी भगवान्  
कृष्णचन्द्र न जानतेहों ऐसा कौन पदार्थ ससारमें है क्योंकि वे सबके हृदयमें  
टिके हैं क्या मेरे मनका हाल न जानतेहोंगे जानतेहोंगे फिर कौन ग काही ॥

श्री० तासों हम विनम्रचित होई । सर्वेश्वर ईश्वर नहीं गोई ॥

पुरपोत्तम अवतार करारी । हरिके शरण होय भयहारी ॥ १ ॥

आवि मध्य अघसान विहीना । जो हरि विष्णु जाहि मुनिचीना ॥

तासु अश भवतार अनूपा । शरणजाव यह योग्य निरूपा ॥ २ ॥

## अठारहवां अध्याय ॥

दो० अद्वरहैं अध्याय महें राम कृष्णको देखि ॥

वार्त्तालाप अक्रूर से मधुग चलन विशेषि ॥ १ ॥

गोपिन केर विलाप अक्रूर स्तुति जिमि कीन ॥

जिमि नन्दादिक कस उपहार चीन कहिदीन ॥ २ ॥

पराशरमुनि बोले कि इस भाति चिन्तना करतेहुये अक्रूजी स्वसे उतर में  
अक्रूहू यह कइ कृष्णचन्द्रके चरणारविन्दों में प्रणाम किया श्रीहग्नि भी अ-  
क्रूको ध्वज वज्र कमलचिह्न विहित अपने करकमल से स्पर्शकरि प्रीतिपूर्वक  
खींच अच्छी भाति गेंदा पलदेव व कृष्णचन्द्रने भी उनकी प्रणाम किया हाथ  
पकड़ अपने मदिरको लाये यहाँ आय जब भोजनादि काचुके तो अक्रूजी  
राम कृष्ण से कहनेलगे जैमे २ दृष्ट कमने वसुदेवजीका अपकार किया जैमे  
देवकी का निरादर किया जैमे वह दृष्ट उग्रमेतसे वर्ताववर्षता जिमके लिये कंस  
ने गोकुलको भेजाथा सब विस्वारपूर्वक दोनों जनोसे कहा सब सुन मधुमूदन  
भगवान् बोले हे अक्रूजी । यह सब हगने जाना इम विषयमें जो उपाय करना  
हे अवश्य करेगे पर यह अवश्य जानो कस माराही पराहे हम व बलरामजी  
दोनों तुम्हारे साथ प्रात काल मधुगको चलेगे व गोपबृद्धभी कंसके लिये दूध  
दही घीआदि भेटकी वस्तु बहुत लेवलेगे यह रात्रि बिनाइये चिन्ता न कीजिये  
तीन रात्रियों के बीचमें उमके अनुयायी मगेन कसको मारडालेंगे पराशरमुनि

- बोने इतना कह गोपालों से कहनादिया प्रातःकाल दूध दही आदिने मधुराको  
 चलना है हममी कसकी घनुर्यज्ञ देखने जायेंगे यह कह आप वचनगम व  
 अक्र सवजन नदमदिर में सोयरहे प्रातःकाल होनेही कृष्णचन्द्र व वनरागजी  
 दोनों अक्र के साथ मधुरापुरी के जानेको तैयारहुये यह देव गोपियों के कृष्ण  
 गिरपरे ऊंची श्राम लेतीहुई परस्पर बोलीं मधुराको जाय कृष्णचन्द्र फिर  
 गोकुलको काहेको आवेंगे क्योंकि वहा गहर की स्त्रियोंकी गीठीबोली कानोंसे  
 पानकरेंगे जब नगर की स्त्रियों के विलासी वचन इनके कानों में पेंगे तो फिर  
 गवईगाँव की स्त्रिया गोपियों की बात इनके चित्त में काहेको आवेगी इत्या  
 वहा दुष्टात्मा है जो सब गोकुल के सागग कृष्णचन्द्र को हरेलिये जाना व  
 गोपियों को मारेजाता नगर की स्त्रियों के हाथगवादिगुरु पाक्य होते चाल  
 उनकी विलास मे ललित कटाक्ष जानो देखनेवाले को तुम्हही मोहित कर  
 लेते फिर वे लोग चाहे नगरवाले मनुष्योंको न मोहित करसकें पर गवई गाँव  
 वालों को तो तुरत मोहित करलेती फिर ये हरिभी तो गवई के मनुष्य उहरे जब  
 उन नागरियों के विलास बेरी में फँमेंगे तो हमलोगों के निकट किस युक्ति से  
 आवेंगे देखो अतिक्र इस अक्र के वहाँकाने मे मदनमोहन रथ पै चढ़ गधुरा  
 को जाते हैं क्या यह निर्दयी अनुरागी मनुष्यों का जलुराग नहीं जानता जो  
 हमलोगों के नेत्रों के सुखदेनेवाले मनोहरण प्यारे को लिये जाताहै अयि स-  
 लियो ! ये निर्दयी कृष्ण वलराम सहित रथ पै चढ़े चनेही जाते हैं इनके रोकने  
 में शीघ्रताकरो जब चलेही जायेंगे तब उपाय करना व्यर्थ है यदि यह कहती  
 हो कि माता पिता सामु श्वशुरादि श्रेष्ठ जनोंके जागे ऐसी धारें न कटो सो  
 ये श्रेष्ठ लोग कृष्णविहानल से भस्म हम लोगा को क्या करेंगे देखिये नो  
 नन्दगोपादि सब गोप चलनेही की तैयारी करहे हैं गोविन्दके लौटागने की  
 युक्ति कोई भी तो नहीं करता यह रात्रि मधुरावामिनी स्त्रियों के लिये सुप्रमाना  
 होगी क्योंकि उनके नेत्र सोई मानो भ्रमकी पातिल मो उन्हीं से कृष्णचन्द्र  
 का मुखागिन्द पीवेंगी सलियो वे जन धन्यहै जो बिना गोकुलके चानेहुये  
 कृष्ण के साथ जाय गली में मार्ग के श्रमके सिद्धियों सहित नन्दलाल का मुख  
 कमल देखेंगे मधुगनगर्ग के लोगों का आज गोविन्दके अंग देख देस महा-  
 उत्साह होगा नहीं जानती कि जानकी रात्रि मधुगवामिनीने शीतना अन्दा

स्वप्न देखा है जिमके प्रभाव मे दिनको गधु मूर्ति गोहनप्यारेको देभेगी हाय वि-  
 धाना वद्वानिर्दयी है गोपियोंको महानिधिरूप गदनगोहनको देखाय अब गोपियों  
 के नयनही खोदे लिये जानाहै देवो चले जानेहुये हरिको अनुराग अब हमलोगों  
 में शिथिल होगया चटफ नहीं रहा नहीं तो लौट के निहारने तो उनमें हर्मीलोगों  
 का अनुराग है सो क्यों न हो जब ककणादिकों को भी उनका अनुगमहै कि  
 हम लोगों के हाथसे गिरे पगते हैं हा देव' षडेकशकी बात है देखो तो यह क्रूर  
 चित्त अक्रूर शीघ्रताके साथ रथ टाकताहै भना ऐभी दु खिनी स्त्रियों को देख  
 किमको दया न आवेगी अयि सखियो ! देखो यह कृष्णचन्द्रके रथके पहियों  
 की धूरिहै जिमने हरिको दूरकरदिया है अब वहभी नहीं देखपरती इस भाति  
 देखनेही देवते राम के साथ केशवमूर्तिने व्रजभूमि छोड़दी जाते २ मध्याह्न  
 समय यमुना के किनारे पै रयारूढ़ बलराम कृष्णचन्द्र व अक्रूर पहुंचे अक्रूरने  
 कहा आप दोनों जन तबतक रथमें बैठे रहें जब तक हम यमुना से स्नान सन्धा  
 वन्दनादि न कर आवैं दोनों भाइयों ने कहा अच्छा जाइये यह सुन अक्रूजी  
 यमुनाजल में स्नानकर फिर बुद्धीमार परब्रह्म परमात्माका ध्यान करने लगे तो  
 प्रथम सदस्र फण सहित कुन्द समान गौरशरीर कमल नयन बलभद्र जी को  
 देखा यहभी कि उनके चारोंओर वासुकी स्मादि नागराज स्तुति कर रहे हैं  
 वनगाला धारण किये वैजनी बल ओढ़े सुन्दरे फूलों का शिरोभूषण बनाये  
 अतिगनोहर फुरदल पहिने जलके भीतर बैठे हैं व तिमके कोरागें घनश्याम  
 स्वरूप बड़े २ अरुणनेत्रधारी चतुर्भुजी मूर्ति सकलअंगउभार पीनाम्बर पहिने  
 चित्रविचित्र फूलोंकी माला पहिने गानो विजली सहित सजल मेघरूप श्री-  
 वरस छाती में विराजमान अनिरमणीक बज्रुक्ता व मुकुट धारणकिये कमल  
 के फूलों से शिरोभूषण बनाये सनन्द नन्दादि पापपहिन मुनि स्तुति कर रहे  
 हैं ऐमे श्रीकृष्णचन्द्र को देखकर चिन्तना करने लगे कि बलदेव व कृष्णको  
 तो हम रथमें बैठा आये थे वे इस जनमें कैमे आये यह पूछने पर हुये कि कृष्ण  
 चन्द्र ने वचन रोक दिया बोलही न सके तब जलसे बाहर शिग उठाय देखा तो  
 राम कृष्ण दोनों मनुष्य देह धारण किये जैसे अक्रूर बैठा गये थे वैमेही रथमें  
 बैठे हैं तब फिर जलमें बुद्धीमारी देवा कि जोभी मूर्ति पहिने देवपरी थी वैसेही  
 हैं केवल इतना अन्तर है कि गन्धर्व सिद्ध चारण स्तुति कर रहे हैं इस भाति

दो चार धार जलके भीतर व रथों के डेढे देख जाना कि ये स्वयम्भूत परमात्मा  
पुराणपुरुष हैं इसलिये स्तुति करने लगे ॥

श्री० मात्रा रूप अचिन्त्यक महिमा । परमात्मा व्यापी गुण रहिमा ॥

एक अनेक रूप तुम स्वामी । सब अंग जग के अन्तरयामी ॥ १ ॥

सत्त्वभूत हवि रूप प्रकृतिपर । पर विज्ञान पार करुणाकर ॥

करहु दया निज जन पहिचानी । मैं मतिमन्द कथनि विधिजानी ॥ २ ॥

भूतात्मा आत्मा परमात्मा । तुम प्रधान इन्द्रियसुखदात्मा ॥

पच प्रकार तुमहि प्रभु नीके । करहु प्रणाम भलीविधि टीके ॥ ३ ॥

होहु प्रसन्न सर्व सर्वेश्वर । सब मय सघसेरहित महेश्वर ॥

ब्रह्म त्रिष्णु शिव आधिक नामा । हैं तत्र नाथ न मृषा कलामा ॥ ४ ॥

सब स्वरूप प्रभु नहि कथनीया । नहि प्रयोजन पुनि बढनीया ॥

नहि तत्र नाम कथनकोउ लायक । कृपा करहु सुखमम्पतिदायक ॥ ५ ॥

नाम जाति गुण रूप बम्बाना । नहि जहँ सोइ ब्रह्म भगवाना ॥

तुम अविकारि सनातन स्वामी । क्यहि विधितत्रगुणकहुँ अनामी ॥ ६ ॥

विन कल्पना अर्थ नहि होई । तासा तोहि कहँ सबकोई ॥

अश्रुत कृष्ण अनन्त मुरारी । दैत्य विदारण सुर सुखकारी ॥ ७ ॥

सकल अर्थ तुम महँ गुनि भेदा । अखिल जगनतुमइमिकहुवेदा ॥

विश्व स्वरूप विकार विहीना । तुमसे घाव बरतु नहि चिना ॥ ८ ॥

तुम त्रिधिशिवविष्णु त्रिधाता । सुरपति अनल शरुणयमदाता ॥

धनद आदि सब नाम तुम्हारे । भिन्न अर्थ लहि अथ ससारे ॥ ९ ॥

किरण रूप जग तुम उपजावत । पालन हरत वेद अम गावन ॥

विधि प्रपच यह जग तत्र रूपा । मद्रिति रूप जो पर अनुरूपा ॥ १० ॥

अक्षर ज्ञान रूप गुण खानी । तुम प्रभु सकल भाँति सजानी ॥

करत प्रणाम पाणि युग जोरी । कृपाकहु मम मतिअभिगोरी ॥ ११ ॥

यामुद्देश्य सदर्पण नामा । प्रद्युम्नानिल गुण धामा ॥

करहुँ प्रणाम चहोरि घनेरी । पालहु नाथ बुनमि हर गोरी ॥ १२ ॥



## उत्तीसवां अध्याय ॥

दो० उत्तिसयें अध्याय महँ लखि अद्भुत अकूर ॥

मथुरा चलि माली रजक तारे हरि भरिपूर ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले इसमाति जल के भीतर कृष्णचंद्र की स्तुतिकर अकूरजी ने मानसी पुष्प धूपमे प्रजा की अन्य विपयता छोड़ कृष्णचंद्रही में मन लगाय ब्रह्मरूप मान बढ़ी बेरलग ध्यान करते रहे अपना को कृतार्थमान यमुना जल से निकल रथके लगे आये राम कृष्णको देखा तो वैमेही बैठे हैं जैसे पूर्व बैठे थे अकूरको विस्मितचित्त देख श्रीहरि मुमुक्षुय बोले हे अकूर ! तुमने यमुना जल में निश्चय है कि कुछ आश्चर्य देखा है क्योंकि तुम्हारे नयनोंसे विदित होता है कि कुछ अद्भुत पदार्थ देखा है यह सुन अकूर बोले हे भगवन् ! जो कुछ आश्चर्य हमने देखा सो उसकी मूर्ति तो यहा है इसलिये यहा भी देखते हैं आश्चर्य देखने में कौन आश्चर्य है क्योंकि यह आश्चर्यरूप ससार जिस महात्मा का बनाया हुआ है तिस आश्चर्य में निपुण आपके तो सगही में हैं सो हमसे क्याहे अब मथुराको चलते हैं फस दुष्टसे डरते हैं विलम्ब बहुत हुआ पराधीन के जन्मको धिक्कार क्याकरें जीव चलिये यह कह घोड़ों को हांका सन्ध्यामग्य अकूर जाय मथुरामें पहुँचे मथुरापुरी देखवनदेव व कृष्णचंद्रमे अकूर बोले अब तुम दोनोंजन पैदर चले जावो हम रथमें बैठे हैं पर देखिये वसुदेव के चक्रों न जाइयेगा क्योंकि तुम्हारेही दोनों जनों के कारण फस उनको दुःख देना है यह सुन कृष्णचंद्र तो राजाके द्वापर को जो मङ्गक लागीथी महित चलराग उम पैचले व अकूररथो चढ़े हुये अन्य मार्ग से मथुरामें पैठे जिस जिम गली म दोनों गई जाने थे स्त्रिया देख देख अतिदुर्षिन होनीथी जाते जाते देखा तो एक घोड़ी राजाके कपड़े धोये लिये जानाथा दोनों भाइयोंने कडा और मन्त्र कपड़े हुगकीभीदे यह शस राजाका मदांन घोड़ी यहसुन कृष्ण रामको बहुत २ बुर्वादि कहने लगा तब कृष्णचंद्र ने कूद गकलात उस दृष्ट घोड़ी के गले पै मारा कि उसका शिर दृष्ट भूमि में गिर पड़ा वम परमानन्दिनहो कृष्णचंद्रने उनमें से अच्छे २ पीले वस्त्र पहिन लिये व चनराम ने वैजनीरग के दोनों गई जाने ० एक मालीके द्वारे पहुँचे मालीने देख चिन्ना की कि ये आनिपमत्रे

वदन कौनहैं व कहासे आतेहैं पीताम्बर नीलाम्बर धारण किये दोनों जनोंको देख उसने अपने मनमें तर्कणाकी कि निश्चय ये देवताहैं किसी कारण पृथिवी में आयेहैं माली यह तर्कणा करनाही था कि दोनों भाइयोंने हँसके कहा अच्छे अच्छे पुष्पों की माला होंभी देते यह सुननेही उसने भूमि छू वड़ी नम्र ताके साथ झुकके प्रणाम किया व कहा आप दोनोंजने प्रसन्ननापूर्वक मेरे घर आये हैं आज धन्य व कृतार्थ हुआ पुष्पों से अवश्य पूजा करूंगा इनना कह बहुत अच्छे २ फूल उनके गुण व सुगन्धादि बताता हुआ देने लगा बार २ प्रणाम करता हुआ माली सुन्दर २ सुगन्धित फूल देता रहा श्रीकृष्णचन्द्रजी ने भी प्रसन्नहो उसे वरदान दिया कि हे मालाकार ! जाव तुमको लक्ष्मी कभी न छोड़ेगी व बलहानि घनहानि भी न कभी होगी व जवनक सूर्य इस सप्तारमें उदयहुआ करेगे तवनक तेरी सतति बनी रहेगी जवनक तूर्जवेगा हमारे प्रसाद से नानाप्रकार के भोग भोगेगा अतमें हमारा स्मरणपाय दिव्यलोक पावेगा सर्वकाल तेरा मन धर्महीमें लगा रहेगा तेरीसततिमें जिनका जन्महोगा सयकी आयुष बढ़ीहोगी महामारी आदि उपद्रवोंसे तुम्हारी सततिमें कोई न मरेगा पराशरमुनि बोले यह कह बलदेवजीके साथ गालाकारके घरसे आगेको चले उसने चलतेसमयमी वड़ी पूजाकी ॥

## बीसवां अध्याय ॥

दो० कहचिसयें अध्यायमहँ कुचरी गध प्रदान ॥

घनुपभंग करिवध घणुर मुष्टिक फसमरान ॥ १ ॥

पुत्रपिता स्तुति चहुन समक्षारन सपिधान ॥

सुनए सुजन मनलायकै हरियश करत यत्नान ॥ २ ॥

पराशरमुनिबोले कि गालाकारके घरसेचल दोनोंभाई राजमार्ग में चले जातेये कि चंदन अरगजादि सुगन्धित लगानेकी वस्तुलिये चली जातीहुई कुचरी देखपरी मदनमोहन मन्दमुमुक्षुकाय तिससे बोले हेकमननपने ! यह अनुलेपन किसकाहे जो तुम लियेजातीहो मत्प २ कहना मोहनके दर्शनमात्रसे मोहित सकामहो प्रीति सहित हरिसे बोली हे पान्त ! क्या नहीं जानते कि कसकी आज्ञामे अनुलेपन में लियेजातीहू व अनेकवधा भेषनामहै मुझे शोड

अन्य किसीका पीसा हुआ अनुलेपन वसको पिय नहीं है इससे उनकी मसल ताके लिये मैं जायलगाया कभीहू यहसुन श्रीहरि बोले हे रुचिरानने । यह था जाके योग्य अनुलेपन हम दोनों के लागक धोड़ा देदीजिये यहसुन उसने सहिन आदर कहा लीजिये यह कह जिनना व जो इनदोनों भाइयोंके चोरप या दे दिया उसके लगाने से दोनोंभाई ऐसे शोभिन दृये जैसे इन्द्रधनुष सहित श्वेत व श्याम जलधर शोभिन होने हैं तदनन्तर कृष्णचन्द्र ने अपनी दो अंगुलिया उलट्टीके उसकी दाढ़ीके नीचे लगाई एकहाथपीछे पैरों पैरों ऊपरको उठया कि कुवरीके सब अंग सीधेहागये जब टेढ़ाई जातीरही तो स्त्रियोंमें घेष्ट होगई व मन्दमुसुकाय विलास ललित वचन नन्दनन्दन के वर पकर बोली अथ श्यामसुन्दर । मेरे घरको चलिये कृष्णचन्द्र ने कहा अच्छा तुम्हारे घरको आयेगे यहकह उसे निदाकिया व बलमत्र की ओर देख हँसे वहाँमे चल विप्र विचित्र माला व अनुलेपन धाण्य किये धनुषके स्थानमें पहुँचे रत्नवारोंसे पूरक धनुषउठाय हरिने कानतक उसकी रोदा खींची सीचनेही धनुष दृश्या उसके गब्दसे दिशा पूरित होगई व मधुगणों भ्रमभ्रमःहृष्ट गरही उठी धनुषमें ग होनेसे रत्नवारों ने कुछ मारो २ पीटो २ वसा दोनोंभाइयोंने उनको समाप्तके आगेकी गलीली यहा कसने भी अक्रूरके भ्राने व धनुषके भगके वृत्त सुन चाणूष्ण्टि कनाम दैत्यवीरों को बुलायकहा दो गोपाल लड़के आयेहैं उन्हीं से हमारा गरण होनेवालाहै इसलिये चाहिये कि हमारे सामने कुस्तीलड़ उन्हें गाग्दानो जब दोनोंको युद्धमें मारडालोगे तो तुम लोगोंके ऊपर हम बहुत प्रमत्त होंगे जो २ वाञ्छित मागोगे सब देंगे इसमें कुछ मदेह नहीं कुस्तीमं न्याय अन्याय चाहे जैसे बने उनको मारही टानना जब वे गाग्जायेंगे तो यह तुम्हारा राज्य निष्कण्टक होजायगा योद्धोंमे मेमा कह कुवलयपीड़ हाथीपरखाले शयित्रालको बुलाया व कहा तुम रगभूमिके द्वारों कुवलयपीड़ हाथी मझाकर रखना जैसे वहा लड़ने के लिये वे गोपालन करनेवाने लड़के आवें तुरंत उससे उनको मखाहालना इन सबको ऐसी आज्ञादे सूर्योत्थि होतीहीहोते कम एकमनाना येबेठा अन्यमंचानोंसे सब राजाके नौकर धाकर व मधुगणिवामी धेरे यहाँ रंगभूमि रखानेके लिये अन्य वट्टनसे सिपाही भी नियत किये जिस मयाने वे कसबत्रा वह सबसे कैचाया इनके विशेष रनिवासोंके येउनेकेलिये व वेन्याजों

के अर्थ अन्यनगरी की स्त्रियोंके लिये अलग मन्थान बनाये गये थे उनपर आय आय सबनोग यथोचित बैठे नन्दादि गोप एक गधपै बैठे अक्रूर व वसुदेव मर्षों के निकट बैठे नगरकी स्त्रियों के मध्य में पुत्र देखने की इच्छा से देवकीजी भी जाय बैठीं जब चारों ओर से वाजन वाजनेलगे व चाणूर मुष्टिक ताल देने लगे तो लोगोंने हाहाकार मचाया उसीसमय कृष्णचन्द्र व बलदेवजी द्वारपे खड़ेहुये कुवजयापीड़ हाथीको मार जिसे कि हथियात्तने इनके मारने को दौरायाया उसका एक २ दानकाधेपै धरे मुखपै पसीना व हाथी के रुधिरकी छिट्टिया विराजमान हाथियों के झुडमें सिँहके समानआय रगमूमि में पट्टचे सब लोगोंने इन किंगोर अरस्याके दोनों भाइयों को देख हाहाकार मचाया कि हाय इन्हीं बालकोंसे चाणूर मुष्टिक महापराक्रमियों की कुस्ती होगी लोग यह भी परस्पर कहनेलगे ये वही कृष्णचन्द्रह जिन्होंने निशाचरी पूतनामारी व जिन्होंने लड़ी उलटादी यमलाज्जुन वृध गिराये का लियके मस्तकपै चढ़ नाचें किया सात रात्रिनक गोपदर्शन पर्वन उठाया अरिष्टासुर धेनुकासुर केशी आदि जिन्होंने मारे वही कृष्णचन्द्र हैं खूब देव लेयो ये इनके बड़े भाई वनदेवजी ह प्रलम्बासुर को इन्हींने माराहै इन दोनों जनों को पुराणवक्ता लोग कहतेहैं कि इ खसागरमें बड़नेहुये यदुवर्णियोंको उबारेंगे ये भगवान् विष्णुके जन्ममें भूतलमें अवतरहैं निश्चयहै कि पृथिवीका भार उतारेंगे इसीमाति जबतक कहनेलगे तो देवकीका हृदय जरनेलगा मारे स्नेहके स्तनोंसे दुग्ध बहआया वसुदेवजी भी पुत्रका मुखदेख बड़े आनन्दको पट्टचे यद्यपि युद्धापाको भी प्राप्त हागयथे पर कृष्णचन्द्रको देखनेही जानों फिर युवावस्थाको प्राप्त होगये सब राजाकी रानिया व मधुमारी स्त्रिया बड़े प्रेममे देखने लगीं व परस्पर कहनेलगीं कि हे सन्निगो ! देवो तो अति अरुण्यनयन कृष्णचन्द्रका मुखारविन्द जिसमें हाथीके माप युद्ध करनेसे पमीनाके वृंश व मलकी वृंदिया शोभितहै प्रफुल्लित गगद्भ्रतु के फमन री गोभाको दूर खिये देता है अच्छीभाति मदनमोहनरा मुख देखो हे गामिनि ! श्रीवत्स विह्व सदिन धानी व राष्ट्रओंके नाशनेवाने भुज तो देवो अधि मधि ! इत रत्नभद्रजीका पुनारविन्द क्यों नहीं देखती जो दुग्ध व दग्धामे भी मार रहे वनराम यही हँ जो नीलाचर ओदहैं अधि मधि ! चाणूर व मुष्टिकका इधर उधर कूटना देखि मद ३

मुमुक्षुते हुये बलदेवका सुखकमल देखो तो सखियो देखो तो मुष्टिक के साथ लड़नेके लिये कृष्णचन्द्र खड़े हैं क्या इस समय कोई वृद्ध लोग लड़नेवाले नहीं जो लड़के के सङ्ग लड़ाई होती है कहा अभी तनुक २ युवावस्था को प्राप्त सुकुमाराङ्ग मदनमोहन कहा यज्ञसे भी कठिनाज्ञ यह मुष्टिक महामुर ये दोनों तो अति ललित मूर्त्ति सुकुमाराङ्ग लड़ेंगे व उधर चाणूर मुष्टिकादि अति कठोर दैत्य यह बड़े अन्यायकी बात है इस लड़ाईके देखनेवालोंको बड़ा पाप लगेगा जो बलवान् व निर्बल ही कुस्ती देखते हैं पराशरमुनि बोले कि इस रीति से स्त्रियां आपसमें कहनीही रहीं कि भटपट कृष्णचन्द्र लड़ने के लिये फाड़वाड़ बांधनेलगे फिर बल गद्गजीने इधर उधर कूद अपने वस्त्रबांधे उस समय जो पृथिवी मारे धमकके फट नहीं गई सो बड़ाही आश्चर्य्य है चाणूरसे कृष्णचन्द्र से युद्ध होनेलगा बलरामसे मुष्टिकसे ये दोनों दैत्य लड़नेमें बड़े कुशलथे अब चाणूर कूद फाद करनेलगा इधर उधर मूका चलाने चरणसे चरण बम्बाने ला तोसे लात लड़ाने मूढसे मूढ़ गिरानेलगा इस कूदाफांदी खींचाखींचीमें चाणूर काबल कमहोने व कृष्णचन्द्रका बढ़नेलगा जब कसने देखा कि चाणूरका बल घटताही जाता है व कृष्णका बढ़ताही तो उसने कुस्ती बन्दहोनेकी आज्ञादी वाजन सब बन्द करादिये तब देवतालोग आय आकाशमें अनेक तरह के वाजन बजानेलगे व कहनेलगे कि हे गोविन्द ! आपकी विजय हो इस बुष्ट चाणूर को जल्द मारिये इस बोलीको सधोने सुना बड़ीदेर लग कृष्णचन्द्र चाणूरके साथ खेलते कूदते रहे अब मानने के विचार से उठाय खूबजोर से बुभाया व आकाश को फेंकदिया वहासे पृथिवीमें गिरा गिरनेही प्राण निकल गये व उसका अङ्ग रची २ फटगया जिससे इन्द्रभूमि में सब रुधिरही रुधिर देखाई देनेलगा जितने समय तक कृष्णचन्द्र चाणूरसे लड़ते रहे उतने समय तक बलदेव जी भी मुष्टिक से लड़ते हुये अनेक मांतिकी युद्धक्रिया दिखाने रहे चाणूर के मरतेही उन्हों ने मुष्टिक को भी ऐसा पटकनादिया कि तुरन्त प्राण निकल गये कृष्णचन्द्र ने तपतक तोशलनाम गह्वराज को बायें हाथसे मारा कि उसके भी प्राण जाते है जब चाणूर मुष्टिक तोशल महापाकमी तीनों घोवा मारेगये तो बाकी सबके सब इधर उधर भाग खड़े हुये बलदेवजी व कृष्णचन्द्र अपनी २ हमजोलीवाने गोपोंके सग लपटने, मारनेलगे तब कप्त अनीव कोपमे आने अन्य नौकर

चाकरो से कहनेलगा इन दुष्ट गोपालों को मारपीट हमारी रङ्गभूमिसे बाहर नि-  
कालो व नन्द पापीके लोहेकी बेगी ढालदेवो वसुदेवको भी ऐसा कठोर दरहदो  
कि जिमे बृद्धमनुष्य न सहसके व जो गोपलोग इस कृष्णके सग इधर उधर  
कूदरहे हैं तिनकी गायें व जो रुद्ध और घनहो सब खीनलो ऐसी बातें वकतेहुये  
कसको श्रीकृष्णचन्द्रने कूदजाय वही शीघ्रताके साथ मञ्जही पै पकरा व घुमायके  
पृथिवीमें गिरायदिया ऊपरसे आपभी उमीकेऊपर कूटपरे अशेष मसार के भार  
से गरु श्रीहरिके कूदनेसे बेचारा कस मृत्नक टो गया गरेहुये कसकी देहपकर ग-  
धुसूदनने रङ्गभूमिमें इधरसे उधर कईवार घभीटी अनि बलकेमाय निसकी लोथ  
खींचनेसे रुधिर जलभरी मानों वड़ीभारी साईंहेगई कमके मारनेके पीछे सुना-  
मानाम उसका भाई षड्ढाकोपक्रिये आया उसे बलदेवजीने पकर मरोरडाला इन  
सयके मारेजानेपै तहा हाहाकारमचा क्योंकि इतनाबड़ा राजाकस इस निरादर  
के साथ मारागया इसकेपीछे कृष्णचन्द्र व बलदेवजीने वसुदेव देवकीके चरण  
कमललुये वसुदेव व देवकी जन्म समयके वहेहुये वचनों की सुधिकैके कृष्ण-  
चन्द्रको उत्राय स्तुति करनेलगे ॥

श्री० होहु प्रसन्न देव भयहारी । देव प्रवर सुर नर सुखकारी ॥  
जिमिप्रसन्नहै महिमरनासा । तिमि हरु मोहमोरलखिदासा ॥ १ ॥  
मम आराधन सौं भगधाना । जन्म लिखो ममसदन प्रधाना ॥  
यासौं मोर कीन कुल पावन । सकलपाप दुखदुग्ति नशासन ॥ २ ॥  
तुम सयकेउर मांझ निवासी । सयमहँ सदा रहत अधिनासी ॥  
भूत भविष्य सकल तुमहींसे । होत नाथ नहिं अनत कहसि ॥ ३ ॥  
सर्व्व देयमय यागन माहीं । पूजे जात तुमहिं शकनाहीं ॥  
तुमहिं यज्ञ अरु कारन तासू । परमेश्वर यज्ञेदा प्रकासू ॥ ४ ॥  
तुममहँजोममनादितिजारी । निन्दासाहित होत इमिकारी ॥  
ममदयिता देवकिमहँ जननू । मयहु तोर यह कथन विटयनू ॥ ५ ॥  
कह सबभूत फारितुमनाथा । आदि अन्तगतिकरनसनाथा ॥  
कहँमममनुजकेरि यहजीला । कहत तुमहँ सुत यहपरिदिहा ॥ ६ ॥  
जगसाथ जासौं अग येह । तुमसन होत न तनिव मदेह ॥  
कौनिउपलनचिन तयमागा । नाम तुम्हार होत यदुसाह ॥ ७ ॥

अगजगसकलविश्वज्यहिमाही । सदा रहत क्लृप्तसशबनाही ॥

सो मनुष्य सों जन्मिहि कैसे । मनुष्य सदन महँ सोइहितीने ॥ ८ ॥

हे परमेश्वर ! सो आप मेरे ऊपर प्रसन्नहूजिये व ससारकी रक्षा कीजिये तुममेरे पुत्र नहींहो क्योंकि विष्णु के अशासे अवनरेहो ब्रह्मासेजे च्युंठी पर्यन्त मत्र आ पहीका स्वरूपहै इमलिये मुझको मोहित न कीजिये हे परमेश्वर ! परब्रह्म तुम्हारी भाषासे मोहित हो भ्रमजाना कि तुम मेरे पुत्रहो इसलिये कससे भयभीत हो तुम्हें ब्रजमें पठेआया बहा जाय तुम बड़े श्रद्धाये इन्हीं इन्हीं बातोंसे मेरी ममता बड़ी जो कर्म रुद्र पवन इन्द्रादि देवताओं से सिद्ध नहीं होसके वे आपने किये हमलोगोंने देना तुम विष्णुहो ससार के उपकारके लिये यहाँ अवतरेहो मेरा मोहगया अब न मोहित करना ॥

## इक्कीसवां अध्याय ॥

दो० इक्षिसयें अध्याय महँ उग्रसेन अभियेक ॥

सभामुधर्मागमनजिमि भयो कह्यकरिटेक ॥ १ ॥

जिमिसादीपनिसों पढ़ी विद्याभरसुततासु ॥

आनिदई गुरुदक्षिणा ताकर करव प्रकासु ॥ २ ॥

पराशरमुनि बोले देवकी व वसुदेव दोनोंको भगवान् के अद्भुतकर्म देख अतिविज्ञान समुत्पन्नहूआ व यदुवशियोंको भी ज्ञान होआया था इन सबके मोहनके लिये भगवान् कृष्णचन्द्रने फिर अपनी वैष्णवीमाया फैलाय बोले हे अम्ब ! हे तात ! बहूतदिनोंमे मुझको व वनदेव को कममे भयभीत आपके दर्शनकी अग्निपापी अब आय दर्शनपाये इतना समय व्यर्थही बीतगया क्योंकि जो समय विना मातापिताकी पूजाकरने से बीतता वह साधुओं के मनसे आसुगमें व्यर्थही जाताहै हे तान ! गुरु देवता गायण व माता पिता इनका पूजन करते हुये प्राणियों का जन्म सफल होता है पिताजी ! मो कुछ हमने नहीं बनपरा आप धर्मा कीजिये क्योंकि कमके वीर्य व प्रनाप के बारे हम तुम दोनों परवशयेन तुम बड़ा जागके न हम यदा जागके पराशरमुनि बोले यह फल दोनोंने यदुवशियों मे जो बृद्धलोग थे यथाक्रम उनके प्रणाम किया फिर पुराणियों के मनोरथ पूर्ण किये तदनुत्तर कमस्त्री निरा व गाता

चारों ओर से मरे हुये महीतल में परे कसको घेर रोने लगीं उनकी ऐसी दशा देख जगमोहन भगवान् भी बहुत पङ्खिताये व नानाभाति उनको समझाने लगे उस समय कमलनयन के नयनों से अश्रुपात भी होने लगे सबको समझाय बुझाय उग्रसेन को बँधोई से छोडाय पुत्रकस के मरनेपर उन्हीं को वहा का राजा बनाय जब श्रीहरि ने राज्य पै बैठादिया तो कमादि जितने मारे गये वे उन सबकी प्रेतक्रिया उन्हींने करी कराई जब सबकी मृतक क्रिया उग्रसेन करहुये और फिर सिंहासनपै बैठे तो कृष्णचन्द्र बोले हे नानाजी ! जो २ कार्य करनाहो निशक आज्ञा देते रहियेगा यद्यपि यथातिके शापमे यह वंश राज्यके योग्य नहीं तथापि हम ऐसे सेवकको पाय देवताओंको भी आज्ञा देते रहिये फिर इन पृथिवीके क्षुद्रराजाओंकी क्या गणना यह कह हरिने पवनको स्मरणकिया स्मरण करनेही वे आन पड्डुचे कहा हे पवन ! तुम इन्द्रके निकट जाय हमारा सदेश कहौ कि अहंकार करने का कुछ प्रयोजन नहीं अपनी सुधर्मा सगा उग्रसेन को दे यह सभा यदुवशिष्यों के साथ राजा उग्रसेनही के भोग करने के ल्यायक है पराशरमुनि बोले यह सुन पवनने जाय कृष्णचन्द्र का सन्देश इन्द्र से कहा सुनतेही उन्हींने सभा पवनके हवालेकी पवन ने सब पदार्थ मरीष्टुई सभालाय मथुरामें स्थापित करदिया कृष्णचन्द्र की कृपासे मव यदुवगी उसके सुखको भोगने लगे यद्यपि सम्पूर्ण विज्ञानोंको जानते थे व सब ज्ञानमय थे तथापि गुरु शिष्योंका कर्म प्ररुपात करानेके लिये कृष्णचन्द्र वनदेव दोनोंगई अरतिकापुरी के वासी सादीपनिनाग गुरुमे जो कारीगें रहते थे विद्या पदोंको गये वहा जैसे गुरुके घरमें गुरुकी सेवा करने हुये नीचवत् रहना चाहिये तैसे रहने व पढ़नेलगे जिसमें उनको देव और लोगभी बैसाही कर सादित रहस्य धनुर्विद्या वेद पुराणादि १४ विद्याओं की ६४ कला ६४ दिनमें पढ़ली यह मानों अद्भुतसा होगया सादीपनिजी ने इनके अमानुष कर्म देख अपने मनमें जाया कि ये दोनों चन्द्रगा सूर्य हैं सब विद्यापद जब पैंसठवें दिन था फो चलनेलगे तो दोनों भाइयाने कहा गुरुजी जो चाहिये गुरुदक्षिणा मागलीजिये सादीपनिजी ने इनके अद्भुत कर्म जान प्रणामकेत्र मं समुद्रकी लटगें से ह्व उनका पुत्र मराया उसीका मुन्द्रक्षिणा में मागा गो सुन हरिदोनो भाई समुद्रके पास गये उमनेकहा मैंने तुम्हारा गुरुका पुत्र नहीं लिया देखतुम्हें ।



अगजगसकलनिश्चय्याहिगाही । सदा रदत कट्टु सशवनाही ॥  
सो मनुष्य सौ जन्मिहि कैते । मनुष्य सवन महँ सोदहितैते ॥ ८ ॥

हे परमेश्वर ! सो आप भरेऊरर प्रसन्नहृजिये व ससारकी रक्षा कीजिये तुममेरे  
पुत्र नहींहो क्योकि विष्णु के अग्रसे अवतरेदो ब्रह्मासेले च्युटी पर्यन मय आ  
पहीका स्वरूपहे इसलिये मुफको मोहित न कीजिये हे परमेश्वर ! परब्रह्म तु  
म्हारी गायासे मोहित हो भेनेजाना कि तुम मेरे पुत्रहो इसलिये कससे भयभी  
हो तुम्हें ब्रजमें पठेआया बहा जाय तुम बड़े बढाये इन्हीं इन्हीं बातोंसे मेरीमगत  
बढ़ी जो कर्मा रुद्र पवन इन्द्रादि देवताओं से सिद्ध नहीं होसके वे आपने किये  
हमलोगोंने देना तुम विष्णुहो ससार के उपकारके लिये यहा अवतरेहो गेग  
मोहगया अब न मोहिन काना ॥

### इकीसवां अध्याय ॥

दो० इषिसयें अध्याय महँ उग्रसेन अभियेक ॥  
सभामुधर्मागमनजिभि भयोक्वय्यकरिटेक ॥ १ ॥  
जिमिसादीपनिसौ पद्मी विद्याभयसुततासु ॥  
आनिदई गुरुदक्षिणा ताकर करय प्रकासु ॥ २ ॥

पराशरमुनि बोले देवकी व बसुदेव दोनोंको भगवान् के अहुतकर्म देव  
अतिविज्ञान रामुत्पन्नहृत्था व यदुवगियोंको भी ज्ञान होआया था इन सबके  
गोहनके लिये भगवान् कृष्णचन्द्रने फिर अपनी वैष्णवीमाया फैलाय बोले हे  
श्रम्व ! हे तात ! बहूतदिनोंमें मुफको व मनदेन को कससे भयभीत आपके व-  
र्जनकी आगिनापाथी अब आय दरानपायेइवना ममयन्पर्येही वीतगया क्योकि  
जो समय विना गानापिनाकी पूजाकरने से पीतता बह माधुओं के मतमें आ  
सुपों व्यर्धही जानाहे हे तात ! गुरु देवता ब्राह्मण व गाना पिना इनका पूजन  
करसे हुये प्राणियों का जन्म मफल होता हे पिनाजी ! सो कुछ हमसे नहीं  
वनपरा आप क्षमा कीजिये क्योकि कसके वीर्य व प्रताप के मोरे हग तुम  
दोनों परयग्ये न तुम ब्रह्म जागये न हम यहा आपके पराशरमुनि बोले यह  
कर दोनानि यदुवगियों म जो ब्रह्मलोग थे यथाक्रम उनके प्रथाम क्रिया  
कि पुत्रासिथा के मनोरथ पूर्ण किये तदनन्तर कंसके शिरा व गाना

चारोंओर से मोरहूये महीतल में परे कसको घेर रोनेलगीं उनकी ऐमी दशा देख जगमोहन भगवान् भी बहुत पङ्किताये व नानाभाति उनको समझाने लगे उस समय कमलनयन के नयनों से अश्रुपात भी होनेलगे सबको सम-  
 भाय बुझाय उग्रसेन को बँधोई से छोड़ाय पुत्रकस के मरनेपर उन्हीं को वहा का राजा बनाय जब श्रीहरि ने राज्य पै बैठादिया तो क्रमादि जिनने मारेगये थे उन सबकी प्रेतक्रिया उन्हेँने करी कराई जब सबकी मृतक क्रिया उग्रसेन करहूये और फिर सिंहासनपै बैठे तो कृष्णचन्द्रबोले हे नानाजी ! जो २ कार्य करनाहो निशक आज्ञा देतेगहियेगा यद्यपि ययातिके शापसे यह वंश राज्यके योग्य नहीं तथापि हम ऐमे सेवकको पाय देवताओंको भी आज्ञा देतेरहिये फिर इन पृथिवीके क्षुद्रगजाओंकी क्या गणना यह कह हरिने पवनको स्मरणक्रिया स्मरण करनेही वे आन पहुचे फडा हे पवन । तुम इन्द्रके निरुट जाय हमारा सदेश कहौ कि अहकार करने का कुछ प्रयोजन नहीं अपनी सुधर्मा सगा उग्रसेन को दें यह सभा यद्वगणियों के साथ राजा उग्रसेनही के भोग करने के व्यायक है पराशरमुनि बोले यह सुन पवनने जाय कृष्णचन्द्र का सन्देश इन्द्र से कहा सुनतेही उन्हेँने सभा पवनके हवालेकी पवन ने सब पदार्थ मरीष्टुई सभालाय मथुरामें स्थापित करदिया कृष्णचन्द्र की कृपासे सब यद्वगणी उसके मुखको भोगने लगे यद्यपि सम्पूर्ण विज्ञानों को जानते थे व सब ज्ञानमय थे तथापि गुरु गिण्योंका कर्म प्रख्यात करानेके लिये कृष्णचन्द्र वनदेव दोनोंभाई अश्विनिकापुरी के वासी सादीपनिनाम गुरुसे जो कारीग रहने थे विद्या पढ़ने को गये वंश जैसे गुरुके घरमें गुरुकी सेवाकरते दृये नीचवत् रहना चाहिये तैसे रहने व पढ़नेलगे जिसमें उनको देख और लोगभी बैमाही करे सहित रहस्य धनुर्विद्या वेद पुराणादि १४ विद्याओं की ६४ कला ६४ दिनम पढ़नी यह मानों अञ्जनमा होगया सादीपनिजी ने इनके अमानुष कर्म देख अपने मनमें जाना कि ये दोनों चन्द्रमा सूर्य हैं सब विद्यापद जब पैंसठयें दिन घर को चलनेलगे तो दोनों भाइयोंने फडा गुरुजी जो चाहिये गुरुदक्षिणा माग-  
 लीजिये सादीपनिजी ने इनके अद्भुत कर्म जान प्रभासनेत्र म समुद्रकी लहरों से दूब उनका पुत्र मराधा उसीको गुरुदक्षिणा म मांगा मो चुन हरिद्वाना भाई समुद्रके पास गये उमनेकहा मैंने तुम्हारा गुरुका पुत्र नहीं लिया हे शुशुभदन ।

हमारेही जलके भीतर पञ्चजन नाम दैत्य राक्षका रूप धारण किये रहताहै उम  
 बालक को उसने लियाहै यह सुन भगवान् ने जलके भीतरजाय पञ्चजन को  
 मार उसके अगसे उत्पन्न शललिया निस शंख के नादसे दैत्योंकी तो बलदानि  
 होती व देवोंका तेज बढ़ता तथा अधर्म की क्षयहोती गुरुपुत्र पंचजनके निकट  
 भी न मिला तो हरि यमपुरी को गये वहा पहुँचतेही वही पाञ्चजन्य शख थी  
 हरिने बजाया बलदेवजी ने यमराज को जीता दोनों भाइयोंने यमपातना में  
 परेहूये पुत्रको लाय गुरुके निवेदन किया गुरुसे विदाहो उमसेन की पालीहुई  
 व प्रसन्न पुरुष स्त्रियोंसे भरीपुरी मथुराको आये॥

## वाईसवां अध्याय ॥

दो० चाइसयें अग्याय महँ जरासन्ध की हारि ॥  
 हरिसे अरु यलवेव से हुई कहत निरधारि ॥ १ ॥

परशरमुनि बोले हे गौत्रेय ! जरासन्ध की कन्या अस्ति व प्राप्ति कंसकी  
 स्त्रियां थीं जब कम गारागया व उसकी मृतकफिया होगई तब उन स्त्रियों ने  
 अपने पतिको मरण अपने पितासे कहा उमे सुन बड़ाकोपके जरासन्ध कृष्ण  
 चन्द्रके गानेके लिये मथुरामें चढ़जाया व आनेही २३ अश्वोहिणी सेनासे चारों  
 ओरसे पुरीघेरलिया तब घोड़ेसे साधीले राम व कृष्णचन्द्र लड़ने के लिये आये  
 और लड़नेलगे व नाहा कि पुराने अन्न राक्ष सुदर्शन हलादि से लड़ें यह वि-  
 चारतेही आकाश से शारङ्गनाग धनुष व अक्षय तरकम कौमोदनी गदा बल-  
 भद्रजी के लिये हल सुनन्दनाम मूशल व चक्र ये सब अन्न शस्त्रादि आये इन  
 को ले हरि व बलदेवजीने सब सैन्यको पराजित किया जरासन्ध भी हारा उसे  
 वहीं छोड़ अपनी पुरीको आये जाहेमें जीनाही जरासन्ध भी अपने देशको  
 चलागया ताँहे में कृष्णचन्द्र ने उसे निर्जित नहीं समझा कुछ दिनके पीछे  
 फिर उतनीही सेनाले जरासन्ध आया फिर राम कृष्ण दोनों भाइयोंने हरादिया  
 इसी भाँति राम कृष्णादि यदुवंशियों से १८ बार उसने युद्धकिया व सब युद्धों  
 में हारा यद्यपि उसके संग सेना बहुत आभीरही व यदुवंशियों के संग बहुत  
 कम गाई घोड़ीभी सेना यदुवंशियों की जरासन्धकी बड़ी सेनासे न हारी सन-  
 उसीको हराया यह कृष्णचन्द्र के सदाय होनेका प्रमाकहे और जो नानामांति

के आयुध शत्रुओं के ऊपर हरि चलाते थे वह मनुष्य भाव को प्राप्त होनेसे उस की लीला करते हैं नहीं तो जो हरि मन ही में समार को उपजाने नाशते हैं उनको शत्रुओं के नाशने के लिये बड़े विस्तारित उद्यमका कौन प्रयोजन है पर नहीं मनुष्यों के सिखाने के लिये सब धर्म करते रहे जिनको देख देख अन्य लोग भी करें इसीसे बलवान् शत्रुके सग मेल करते थे निर्व्वल से युद्ध कहीं कहीं शत्रुको समझा बुझा देते कहीं कहीं शत्रुओं में फोरतोर करा देते कहीं कहीं दण्डमी देते कभी कभी कहीं कहीं से भागते भी थे इस रीति से मनुष्यभाव की लीला परमेश्वर कृष्णचन्द्र करते थे ॥

## तेईसवा अध्याय ॥

दो० तेइसयें अध्याय महँ कालयवनकर नाश ॥

देखतही मुचुकुन्द के भयो कहत सुवरादा ॥ १ ॥

कृष्णविनय मुचुकुन्दकृत भरु द्वारका घसाय ॥

सकल कहत मुनियो सुजन करिकै बहुत घनाव ॥ २ ॥

पराशरमुनि बोले गर्गवशी एक ब्राह्मण कहीं यदुवशियों के यहा किसी का भेजा हुआ बरदेखी आया वह कुछ टेढ़ामेढ़ाथा उसे देख यदुवशियों के लड़के हँसी से कहनेलगे यह हमलोगों का शयाल है व नपुमक है यहसुन उसने बड़ा कोपकर दक्षिण में जाय शिवजीकी तपस्याकी उस तपस्या से वह ऐसा पुत्र चाहताथा जिसे देख यदुवशी भागें लड़ने से कभी न जीते जब उसने १२ वर्षतक तपस्या की तो महादेवजीने प्रसन्न हो बरदान दिया ये ब्राह्मण देव यहा से आतेथे गली में एक यवनों के राजाके पुत्र न था उसने इनको टिहाय गोजन कराया व रात्रि में अपनी स्त्रीको विप्रकी सेवा करने व पुत्र उत्पन्न फगने के लिये भेजा दिजराज के सयोग से गर्भाधान हुआ व समय पर शिव के बरदान के प्रभाय से महाप्रतापी पुत्र हुआ उसका उसने कालयवन नाम धराया कुछ दिनके पीछे कालयवन को राज्यदे वह यवनेश्वर बनको चला गया कालयवन महाप्रतापी लड़ने के लिये सब से बलवान् राजा पृथ्वा करना नारद जीने बताया आजकल यदुवशियों में बनावान् कोई नहीं इस लिये उनमें लड़ी यह सुन उसने बड़ी भारी सेना एकत्र की जहाने चला वे कोई मित्रा या

उमे गारता पीटना यादवों के ऊपर क्रोध किये हुआ मथुरापुरीको चला उसका  
 जाना सुन कृष्णचन्द्रने विचार किया कि यदि हमसे लड़ाई करते हैं तो यह  
 वशिष्ठोंकी शक्ति नम होजायगी जरासन्ध आनेवालाहै उससे हार जायेंगे जो  
 कहें जरासन्धकी के साथ लड़ें तो वहनो निर्द्वल भी हैं यह यवन तो बड़ा परा  
 कर्माहै सबको मारदीडालेगा इस रीति से यहवशिष्ठों को दोनों ओर से कष्ट  
 होनेवाला है तिमसे हम ऐसा किला अति दुर्गम बनावेंगे जिसमें से बाहें  
 म्लिया लड़ाकरें फिर वृष्णिध्रैष्यजीरों को क्या कहना जिससे कभी इस कोई  
 अमल लायेहा या चित्तही गह्वरइहो या मोनेदों वा कहीं अन्यत्र गये तो उस  
 समयमें यादवोंका निगदर कोई दृष्ट शत्रु न का मके यह शोच कृष्णचन्द्रने  
 १२ योजन स्थान समुद्र के भीतर उसीमे यागा उसमें दारका नामपुरी बनाई  
 जिसमें बड़ी २ कुचचारिया उड़े २ पानां सैकड़ों ताताव बड़ी २ छहरदीवारें  
 विभ्रमानधी गानो इमरी इद्री अगारावतीपुंगहै मथुरावासियोंको अपने प्रगाव  
 से दोषहीमें रहा पट्टवाय वपाय दिया तत्रक कालयवन भी मथुराके निकट  
 आया उधरसे आयभी आनगहृच पुगी के वातर मालयवन पराधा कृष्णचन्द्र  
 त्रिना आयुधही पेंदर उगीरी तरफ दौनिकले उमने इन्हें देखा व जाना कि  
 नासुदेव यही हैं इम लिये इनके पीछे दौंग जिन कृष्णचन्द्रको योगी लोग  
 अपने चित्तोंसे नहींपातें तिनके पीछे दौंगजानाहै ऐरेकिष्णगरीयसी कृष्णचन्द्र  
 भीजाते उस मुद्रामें पट्टचे जियर्ष राजामुचु मुन्द्र साते थे हृमिनो आगे फो पद-  
 गये वहभी दृशाधेगज पीछे में पट्टचा देखातो पर मनुष्य सोताहै उसमें जाना  
 वासुदेवही है परलान माग जैने उन्में क्रोधने नेत्र खोलि उनमे जो आंन  
 निकली उममे तुम्ह न भ्रम होगया ये राजा मुचुमुन्द्र जी देवामु यसाग में  
 देवोंकी ओर से लड़ने रहे जा देवोंकी पराजय व देवोंकी विजयहुई तो इन्हां  
 ने चतुर्दशिनो से न सोने क कारण देवोंमे मोनाही यदान मागा देवोंने कश  
 अच्छा नयन कीजिये मोने ग जो कोई तुम्हें जगावेगा तुम्हारे नेत्रों की दाव  
 से तुम्ह न भ्रम होनावेगा जय कालयवन इनरीति ने भस्महृजा तो कृष्णचन्द्र  
 को देश राजाने पूरा प्राण कीनेई हरिने रुद्रा ज्ञानका तो हन पन्द्रवय में  
 उत्पन्न हुये हैं उनमें भी यहवर्ती वपुत्रके पुत्रों मुनुमुन्गी रुद्र भर्षी के  
 वचनों की स्मरण पर श्रीदामिके मायाजकर मोने हमने जाना धाप भगवाव

विष्णुके अशहौं हम से आगे बृद्ध गर्गामुनिने कहा था कि अट्टाईसमें द्वापर के अन्त में यदुवश में हरिक्रा जन्म होगा सोई आप प्राप्त हुयेहो इसमें सन्देह नहीं मनुष्यों का तुम मे बड़ा उपकार होगा द्रुग तुम्हारा तेज नहीं सहसके तैसेही सजल मेघ गर्जन समान तुम्हारा गोल भी नहीं महसके व तुम्हारे पाशों का आघातभी धरणी नहीं सहती देवासुर मग्राम में बड़े २ तेजस्वी दैत्य दानव ये कोई भी हमारा तेज नहीं सहसके पर हम आप का तेज नहीं सहसके स-सार में पतित जीवको एक तुम्हीं राण्य हौं हे प्रपन्नार्त्तिहर । प्रसन्न हो मेरे अशुभ दूर करिये ॥

चौ० जलधि शैल वन नदी तड़ागा । नदी गगन जल पवन विभागा ॥

अग्नि बुद्धि मन प्राण परेशा । सकल वस्तु तुम सदा रमेशा ॥ १ ॥

शब्द रूप रस आदि विहीना । अजर अमर क्षयहित अदीना ॥

जनन मरणगत ब्रह्म स्वरूपा । तुम हरि यह हम इमि अनुरूपा ॥ २ ॥

अमर पितर किन्नर गन्धर्वा । यक्ष सिद्ध नर पशु स्वगसर्वा ॥

उरग महीरुह मृग गण जेते । भूत भविष्य तुमहिं सो तेते ॥ ३ ॥

सूर्त्तिमान् विन सूर्त्ति चराचर । स्थूल सूक्ष्म तर् सकल उरावर ॥

हौ तुम जग फारक भगवान्ना । तुम सन भिन्न न तनिक वखान्ना ॥ ४ ॥

हे भगवन् ! तीनों तापों से तपाया द्रुग्ना में इस समारचक में फिरता हूँ कल्याण कहीं नहीं दिवाई देता जो दु सद्धे मृगवृष्णा जलश्री आना से उन को सुखही मानता चला आया पर उनसे दु सद्धी मिलता रहा राज्य पृथिवी बल कीश मित्र लोग पुत्र गण स्त्री सेवक ये सब कहनेही कहने की हूँ कोई भी काम नहीं आते इन सब को मुपके लिये मैंने पालन पोषण किया परन्तु जन्म में जो देखा तो सब सन्तापही के देनेवाले द्रुये में देवलोक तक भी गया व जब चाह चला जाऊ परन्तु देवता लोग ने मुझी से महायता चाहत हूँ फिर देवलोक को जाना निरन्तर मुखदायक कैसे जगत् के उत्तम पालन नाश करनेवाले आपकी आराधना विना निरन्तर निर्गति पन्थ कैसे पायमत्ता तुम्हारी गाया से मूढ़ मानस लोग जन्म मरण जग आदि तापों को पाप चमकन का मुस देखतेहैं वहा नामाप्रकार के व भोगने हें वहां आपके शरणामन नहीं होते कि इन सब से दृष्टी पाय आव में आपनी गाया से मोहितहो रात्रि दिन

उसे मारता पीड़ता यादवों के ऊपर क्रोध किये हुआ मथुरापुरीको चला उसको  
 आना सुन कृष्णचन्द्रने विचार किया कि यदि इससे लड़ाई करते हैं तो यह  
 वशियोंकी शक्ति कम होजायगी जरासन्ध आनेवालाहै उससे हार जायेंगे जो  
 कहें जरासन्धही के साथ लड़ें तो बहुतो निर्व्वल भी है यह यवन तो बड़ा परा  
 क्रमीहै सबको मारहीडालेगा इस रीति से यहवशियोंको दोनों ओरसे कष्ट  
 होनेवाला है तिससे हम ऐसा किला अति दुर्गम बनावेंगे जिसमें से चाहे  
 स्त्रिया लड़ाकरें फिर वृष्णिध्रुञ्जरीों को क्या कहना जिससे कभी हम कोई  
 धमल लायेहों या चित्तही गड़बड़हो वा सोनेहों वा कहीं अन्यत्र गये तो उस  
 समयमें यादवोंका निरादर कोई दुष्ट शत्रु न कर सके यह शोच कृष्णचन्द्र ने  
 १२ योजन स्थान समुद्र के भीतर उसीसे मार्गा उसमें द्वारका नामपुरी बनाई  
 जिसमें बड़ी २ कुञ्चारिया उड़े २ खावा भैरवों ताजाव बड़ी २ छहरदीवारों  
 विभ्रगानयीं गानों दूसरी इन्दरी अमरावनीपुरीहै मथुरावासियोंको अपने प्रभाव  
 से दोषहीमें बहा पडुवाय वसाय दिया तत्रक कालयवन भी मथुराके निकट  
 आया उधरसे आपभी आनपहुंचे पुरी के बाहर कालयवन पराया कृष्णचन्द्र  
 विना आंशुधही पैदर उमीकी तरफ होनिकले उसने इन्हें देखा व जाना कि  
 नासुदेव यही है इम लिये इनके पीछे दौरा जिन कृष्णचन्द्रको योगी लोग  
 अपने चित्तोंसे नहींपाते तिनके पीछे दौराजाताहै हरिश्चन्द्रागरीयसी कृष्णचन्द्र  
 भी जाते उस गुहामें पडुचे जिसमें राजामुञ्जुन्द, सोते ये हरितो आगे कौ बढ  
 गये वहभी इष्टाधिराज पीछे सेपडुचा देखातो एक मनुष्य सोताहै उसने जाना  
 वासुदेवही है एकलात मारा जैसे उन्हींने कांधमे नेत्र सोले उनमे जो आंच  
 निकली उससे तुरन्त भस्म होगया ये राजा मुञ्जुन्द जी देवासुर समाम में  
 देवोंकी ओर से लड़ते रहे जनदेवोंकी पराजय व देवोंकी विजयहुई तो इन्हों  
 ने बहुतदिनों से न सोने के कारण देवोंमे सोनाही बरदान मांगा देवोंने कथा  
 अच्छा शयन कीजिये सोते में जो कोई तुम्हें अगावेगा तुम्हारे नेत्रों की आंच  
 से तुरन्त भस्म होजावेगा जब कालयवन इसरीति से भस्महुआ तो कृष्णचन्द्र  
 को देख राजाने पूछा आप कौनहैं हरिने कहा आज्ञकल तो हम चन्द्रवश में  
 उत्पन्न हुये हैं उसमें भी यहवशी वसुदेवके पुत्रहैं मुञ्जुन्दभी वृद्ध गर्गके  
 वचनों की स्मरण कर श्रीहारेके प्रणामकर मोले हमने जाना आप भगवां

विष्णुके अशहौ हम से आगे बृद्ध गर्गमुनिने कहा था कि अट्टाडसमें टापर के अन्त में यदुवध में हरिक्रा जन्म होगा मोई आप प्राप्त हृयेहो उसमें सन्देह नहीं मनुष्यों का तुम मे बड़ा उपकार होगा हम तुम्हारा तेज नहीं सहसके तैसेही सजल मेघ गर्जन समान तुम्हारा शान भी नहीं महमके व तुम्हारे पावों का आघातभी यरणी नहीं मढ़नी देवामुर संग्राम में बड़े २ तेजस्वी देत्य दानय ये कोई भी हमारा तेज नहीं सहसके पर हम आप का तेज नहीं सहसके स-सार में पतित जीवको एक तुम्हीं गरण हो हे मपनार्त्तिहर ! ममन हो भरे अशुभ दूर करिये ॥

चौ० जलधि शैल उन नदी तड़ागा । मही गगन जल पवन विभागा ॥

अग्नि बुद्धि मन प्राण परेशा । सकल वस्तु तुम सदा रमेशा ॥ १ ॥

शब्द रूप रस आदि विहीना । अजर अमर क्षयरहित अदीना ॥

जनन मरणगत ब्रह्म स्वरूपा । तुम हरि यह हम इमि अनुरूपा ॥ २ ॥

अमर पितर किन्नर गन्धर्वा । यक्ष सिद्ध नर पशु खगसर्वा ॥

उरग महीरुह मृग गण जते । भूत भविष्य तुमहिं सो तेते ॥ ३ ॥

मूर्त्तिमान् विन मूर्त्ति चराचर । रडूल सूक्ष्म तर् सकल चराचर ॥

ही तुम जग फारक भगवाना । तुम सन भिन्न न तनिक यन्त्राना ॥ ४ ॥

हे भगवन् ! तीनों तापों से तपाया हुआ मैं इस ससारचक्र में फिरता हूँ कल्याण कहीं नहीं दिग्गई देता जो दु खों से मृगतृष्णा जलनी आशा मे उन को सुखही मानता चला आया पर उनसे दु खही मिलता रहा राज्य पृथिवी बल फोग मित्र लोग पुत्र गण स्त्री सेवक ये सब रहनेही कढ़ने की है कोई भी काम नहीं आते इन सब को सुखसे लिये गैने पालन पोषण किया परन्तु अन्त में जो देखा तो सब सन्नापही के देनेवाले हृये में देवलोक तक भी गया व जब चाहू चला जाऊ परन्तु देवता लोग तो मुझी से महायता चाहते है फिर देवलोक को जाना निरन्तर सुखदायक कैसे जगन् के उत्तरन पालन नाश करनेवाले आपकी आराधना विना निरन्तर निरुत्ति पुण्य कैसे पापसत्ता तुम्हारी गाथा से मूढ़ मानम लोग जन्म मरण जग आदि तापों को पाप यमगज का सुख देखतेहै वहां नामाप्रकार के हृ म भोगते है यदां आपके शरणगन नहीं हैने कि इन सब से हृही पाप जांव गे आपही गाथा मे मोहितहो रात्रि दिन



विषय वासनामें लीन भ्रमा करता हूँ व मोक्षकी अभिलाषा करता हुआ आद्य  
अनन्त ईश जो आप जिससे परे कुछ नहीं है सत्कार भ्रमण करने के ताप से  
तापित तिसके शरणागत हूँ ॥

## चौबीसवां अध्याय ॥

दो०- चौबिसवें अध्याय महँ नृप वर यवन घनाप ॥  
कहव बहुरि बलदेव ब्रज गमन गोपिकालाप ॥ ३ ॥

पराशरमुनि बोले जब इस रीति से मुञ्चकुन्दजीने स्तुति की तो सब प्राणियों  
के अनादि भगवान् हरि बोले हे नरेन्द्र ! जिस लोक की इच्छाहो वहा जाये  
हमारे प्रसाद से बिन रोक टोक वहा सब पदार्थ तुमको मिलते रहेंगे बहुत दिनों  
तक वहाके दिव्य भोग विलास भोग महीतल में फिर ब्राह्मणके कुल में जन्मो-  
गे वहा तुमको जातिस्मरण बनारहेगा मरणानन्तर मोक्षको पावोगे पराशर  
मुनि बोले यह वर पाय अच्युत भगवान् के नमस्कारके गुहाके मुखसे राजा  
निफले देखातो सब मनुष्य छोटे २ होंगये थे राजाने जाना कलियुग आय  
गया इस लिये नरनारायणाश्रममें जो गंधमादन पर्वतपैहै तपस्या करने वहां  
चले गये कृष्णचन्द्रभी उपायसे कालयवन को वध कराय हाथी घोड़े आदि  
जो उसका धनया मधुरा में लाये फिर वहा से लदाय फँदाय द्वारका में लाय  
राजा वयसेनके आगे धरा यदुवश अब बनाय निर्भय होगया तब सब विभ्रद  
शांत होजाने के पीछे बलदेवजी सब इष्ट मित्रोंके देखने के लिये नदगोकुलको  
गये वहा पहुच गोप गोपियों से उसी भांति प्रेगसे बोले जैसे पूर्ववर्ही बोलते  
बतलाते थे जो लोग उनसे ज्येष्ठथे उन्हांने तो इनको छातीमें लगाय लिया जो  
छोटे थे उनको इन्होंने छातीसे लगाया जो बराबर के थे उनसे हैंसते हुये मिले  
चाहें वे गोपये चाहें गोपिया गोप लोगोंने भी बलभद्रजीके सामने अनेक प्रेमकी  
बातें कहीं गोपियोंने भी अपना प्रेम खूब प्रकट किया परतु जो कृष्णचन्द्रकी  
स्त्रियार्थी उनमें कोई २ प्रेमसे कोप करतीहुई ईर्ष्याके साथ बोलीं कोई २ हरिके  
समाचार पूछने लगीं हे बलरामजी ! शला नगरकी स्त्रियों के बल्लम स्त्रिय प्रेम  
श्रीकृष्णचन्द्र सुखसे है फिर कभी पुरयोपितोंके आगे उनका मान अधिक बढ़ाने  
केलिये क्षणमात्रही मित्रता रखनेवाले मोहन हमलोगों के कर्मोंको तो नहीं

हँसते भला कभी हमलोगों के गाने बजाने आदिको तो नहीं स्मरण करते भला एकवार भी अपनी माता यशोदाको देखने तो न आवेंगे और गोपिया बोलीं उनकी बतकही से क्याहै अब औरही बात चलाइये क्योंकि हमें बिना उनका भी काम चलाजात है व उनके बिना हमारा भी चलाजावेगा फिर क्या प्रयोजन भला हमलोगों ने कौन कौन नेकी उनके साथ नहींकी पिता माता भाई धन्धु अपनी जान सब उनकेलिये छोड़ा पर उन्होंने कुछभी न माना घस नेकी न माननेवालों के शिस्ताज हरिको समझना चाहिये यद्यपि वे ऐसेही हैं तथापि कहिये कभी यहाँ आने की वार्त्तालाप करते हैं आप सत्यही कहियेगा उनकीसी झुठाई न कीजियेगा हमको तो यह जानपरता है कि मदन-गोहन श्यामसुन्दरका नगरकी स्त्रियों में मन लगगया है हमलोग वनचरियों की भीति जातीरही इससे उनका दर्शन हमलोगों को दुर्लभ है पराशरमुनि बोले यहकह दामोदर गोविन्द कृष्ण ऐसाकह हरिकी ओर मन लगाई हुई गोपी अकस्मात् हँसउठीं तब बलरामजी ने मधुर शिवा सहित प्रेम भरेहुये अहकार रहित अतिमनोहर कृष्णचन्द्र के सदेशों से गोपियोंको अच्छीभांति समझाया व गोपोंसे भी पूर्वर्हीं की रीति से हँसते हँसातेरहे व कथा वार्त्ता भी विविधभाति कहते सुनते रहे व ब्रजभूमि में ठौर ठौर विहार भी करतेरहे ॥

## पच्चीसवा अध्याय ॥

दो० पधिसयें अध्याय महँ यमुना खींची राम ॥

कांति वारुणी रेवती प्रियामिलीं अभिराम ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले जब मानुषरूपपारी धरणीधर शेषावनार बलदेवजी गोपों के सग वृन्दावन में विहरते थे जिन्होंने पृथिवीका बहुतमा भार उतार डालाथा व कारणपाय जो धरणी में विचरते थे तिनके भोग करने के लिये वरुणजी वारुणी से बोले हे मदिरा ! जिससे तू वनदेवजी को सदा प्यासा है तेरे पान की इच्छा उनको वनीही रहती है इनलिये अब तू उन्हीं के भोगकेलिये उनकेनिकट जा जब वारुणी मदिरा से वरुण ने ऐसाकहा तो उर भाय वृन्दावन में एक कदम्बके खोदले में जाय वमी बलदेवजी भी विचरते विचरते बर्रां पान पट्टेचे जहाँ मदिरापी उसकी महक उनको दृष्टी ने जानागी पीनेकी इच्छामे बनाय

निकट पहुँचे तब वृक्षके कोटसे बड़ीभारी मदिरा की धारा बही उसेदेख बल-  
रामजी परमानन्दित हुये गोप गोपियों के साथ गाते बजाते हुये पहुँचे व यथेष्ट  
पानकिया जब बनाय मतवाले हुये तो यमुना से कहनेलगे हे यमुने ! हमको  
बड़ी गरमीलगी है यहा चलीआ तो हम स्नानकरें मतवाले जान तिनके बचनों  
की ओर यमुना ध्यान धर न आई तब तो बलदेवजी ने क्रोधसे अपना हलालिया  
व किनारेपै लगाय खींचा व कहा हे पापे न आई न आई अब जहाँ वह तहाँ  
चली तो जा जब ऐसाहुआ तो जहाँ यमुनाजी बहतीथी उस गलीको छोड़  
जिस वनमें बलदेवजी थे जाय उसमें वहनेलगी और शरीर धारणकर प्रणामके  
साथ बोली राम कृपा क्रीजिये हमको छोड़ दीजिये बलदेव ने कहा हमको व  
हमारे बलको तू नहीं जानती हम खींचके तेरे सहस्रधारा कर देंगे जहाँचाहें  
लोग नौघजाया करें यहमुन यमुना ने बड़ी स्तुतिकी तो अपना हल मुका  
दिया फिर नदी बहनेलगी फिर इन्होंने अच्छीभाँति स्नानकिया स्नानान्तर  
और अद्भुत काति होगई पुष्पोंकी माला पहिने एक कानमें कुण्डल धारण  
किये अति शोभित होनेलगे तब लक्ष्मीजी ने आय वरुणकी पठाई एक कमल  
पुष्पोंकी मालादी इसमें कमी फूल कुमलाते न थे व दो नीलरग के वस्त्र भी  
समुद्रके यहाँ से मँगाय लक्ष्मीजी ने दिया तब पुष्पोंकी माला पहिन रगणीक  
कुण्डल धारणकर नीलास्त्र पहिने अति कान्तियुक्त शोभित होनेलगे इस  
रीति से दो महीने तक बलमदजी गोकुल में गोप गोपियों के सग विद्वर फिर  
मथुराको आये यहा खेत राजा की कन्या खेती के सग विवाहहुआ उससे  
उन्होंने निशठ व उल्मुक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥

## छत्तीसवां अध्याय ॥

दो० छत्थिसवें अध्याय महँ कृष्ण रुक्मिणी व्याह ॥

भया भया प्रद्युम्न जिन शम्भर हत्यो कनाह ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले विदर्भदेशमें कुडिनपुरके राजा भीष्मक हुये उनके पुत्र  
का रुक्मी व कन्या का रुक्मिणी नामथा रुक्मिणी ने कृष्णचन्द्रके साथ अ-  
पना विवाह करनाचाहा व कृष्णचन्द्रने रुक्मिणीके साथ परमारे वैके रुक्मीने  
अपनी गगिनी कृष्णचन्द्रको न दी जयसथ के कहने से व रुक्मीकी सम्मतिसे

भीष्मकने शिशुपालके सग रुक्मिणी के विवाहकी तैयारीकी यहाँ बलभद्रादि यदुवशियों के साथ कृष्णचन्द्रमी चँदेली के राजा शिशुपाल का विवाह देखने को कुडिननगर को गये प्रातःकाल विवाह होनेवाला था कि श्रीकृष्णचन्द्र भ्रानन्दचन्द्रने रुक्मिणी को हरलिया बलभद्रादि यदुवशी सगहोलिये जो दोचार शत्रुभाये मारेगये तिसके पीछे पांडक दन्तवक्र विदूरथ शिशुपाल जरासध राव्वादि राजा सकुपितहो हरिके मारडालने को दारे परतु रामादि यदुवशियों ने सभको पराजित किया फिर विना कृष्णको मार डाले कुण्डिन नगरमें न प्रवेश करेंगे यह प्रतिज्ञाके रुक्मी कृष्णचन्द्र को मारने दौरा श्रीहरिने लीला पूर्वकही उसके सग जितनी सेना हाथी घोड़े रथआदि की थी सबनाश रुक्मी को पराजित करदिया रुक्मी को जीत राक्षस विधिमे रुक्मिणी को ले आय अपना विवाह किया तिसमें से कामके अण प्रद्युम्नजी उत्पन्नहुये जिन्हें शम्बरामर हरलेगया व उन्होंने शम्बरको मारभी डाला ॥

## सत्ताईसवां अध्याय ॥

दो० सप्तविंश अध्याय महँ मत्स्योदरसे काम ॥

मिन्देरतिहिहतिक्षम्यगहि पुनिआयेनिजघाम ॥ १ ॥

इतनी कथामुन मैत्रेयजी बोले इ मुनिराज ! वीर प्रद्युम्नजी को शम्बरामर कैसे हरलेगया व शम्बरमी तो बडा वीरया वह प्रद्युम्नके हाथ मे रैने गागगया यह मुन पराशरमुनि बोले शम्बरामरने मुनरक था कि कृष्णचन्द्रके पुत्र प्रद्युम्न मुझे मारेंगे इसलिये जन्म के छठेदिन शौरी के घरमे प्रद्युम्नको उतानेगया व प्राह मकर नक्र सर्पादि से भरेहुये महामागर में फेंकदिया बहा एक गधली ने लीलालिया पर महाप्रतापी प्रद्युम्न उसके उदरकी भागमे न जरे गधरी मारने वाले धीमरोंने अन्य गधलियों के साथ उस गधलीको भी मार शम्बरामर को आय नजर दिया पाक करनेवालों की स्वागिनी एक गायावनी नाम उसके यहा उसकी स्त्री थी उसे सब गधलिया बनाने के लिये द्रीगई जब वह मदनकी चौगीगई तो अत्युत्तम मानों जगहृये काम वृष का लकुट्टी है एक शानक नि-कला निमे देख वह स्त्री कहनेलगी यह कौनहै व मदनकी के पेटमे गनुष्य दा लदका कैसे आया वह पैगा कहतीही थी कि नामदमुनि थाय उममे बोले कि

यह बालक ससार के उत्पन्न पालन सहार करने वाले कृष्णचन्द्र का पुत्र है इसे शम्भरासुर लाया था व समुद्र में फेंक दिया था वहा मछली लीला गई थी अब यह तुम्हारे वशमें आया है इस मनुष्यरत्नकी पालना अच्छी रीतिसे करना पराशर मुनि बोले कि नारद के कहने से उस बालककी पालना मायावती करने लगी अतिमनोहर रूप देख धार्यावस्थाही से उसपर मोहित होगई जैसे २ ये सयाने होतेजाते थे उसका प्रेम अधिक बढ़ता जाताथा उस मायावती ने जितनी मायाहैं सब प्रद्युम्नजीको दीं जब ये वनाय किशोर अवस्थाको प्राप्तहुये तो एक दिन उसने अपना पुरुष बनाने की इच्छासे कुछ रसीली बात सुनाई सुनतेही प्रद्युम्नजी ने कहा आज माताका भाव छोड़ यह कैसा भाव करतीहो उसने कहा तुम मेरे पुत्र नहींहो किन्तु कृष्णचन्द्रके हों तुमको शौरीके घरसे शम्भरासुर उठा लाया है व उसीने समुद्र में छोड़ दिया वहा मछलीने लीला लिया उसके पेटसे हमने तुमको पाया है यद्यपि तुम्हारी माताके पतिमी है तथापि तुम पुत्रके स्नेह से रात्रिदिन रोया करती है यह सुन प्रद्युम्नजी ने शम्भरासुरको युद्ध करने के लिये खलकारा सुनतेही वह आन पट्टुचा लड़ाई होने लगी पहिले उसकी सेना मारी गई पीछे दोनों ओरसे मायायुद्ध होनेलगा प्रद्युम्नजीने ७ माया छोड़ आठईमाया छोड़ी उससे शम्भरासुर को मार विमानारूढ़हो अपनी स्त्री मायावती के साथ द्वारकाको आये जाते २ विमान जहा भीतर स्त्रियां रहती थी वही उतरा स्त्री सहित प्रद्युम्न को देख जोकि कृष्णचन्द्रके समानही थे हरिकी स्त्रियां कुछ लज्जित हो इधर उधर छिपने लगीं पर रुक्मिणीजी बोलीं वह स्त्री धन्य है जिसका युवावस्थाको प्राप्त ऐसा मनोहर यह पुत्र है हमाराभी प्रद्युम्न नाम पुत्र यदि जीता है तो इसी अवस्थाका होगा हे वरस ! तुमने किस माताको भूपित किया है नहीं तो हमारे विचार से जैसा तुममें हमारा स्नेह है व जैसी तुम्हारी देह है इन सब बातों से अवश्य तुम श्रीहरिहीके पुत्रहोगे इतने में नारद मुनिके साथ कृष्णचन्द्रजी वही आये नारद कहनेलगे हे रुक्मिणि ! यह तुम्हारा वही पुत्र है जो सूतिकागृहमे उठा गया था इसे शम्भरासुर ले गया था अब उसे मार स्त्री समेत आया है यह मायावती शम्भरासुर की स्त्री नहीं है किन्तु तुम्हारे पुत्रहीकी है इसका कारण बताते हैं सुनो जब कामको महादेवजीने मस्मका दिया तो उसकी स्त्री रति कामके उत्पन्न हेनिमें लगी हुई मायाके रूपमें शम्भ-

रामुर को उसने मोहित किया जब दैत्यराज विहारादि करनेआवे तब यह अपनी मायासे दूमरी स्त्री बनादेती थी सो अब यह तुम्हारा पुत्र कामही उत्पन्न हुआ है फिर इसका वह पतिहै क्योंकि यह रति है इसमें कुछ शङ्का न करो तुम्हारी यह सत्य २ पतोहू है यह सुन रुक्मिणी श्रीहरि दोनों बहुत आनन्दितहुये सब द्वारकावासी भी परमानन्दितहो वाह २ करनेलगे ॥

श्री० बहुतकाल सुत रखहु सुलाना । त्यहि लहि रुक्मिणि अतिमुखमाना ॥  
सो लखि सकल द्वारकावासी । अतिविस्मित भे लहि मुन्वगसी ॥ १ ॥

## अष्टाईसवां अध्याय ॥

श्री० अष्टाविंशाध्याय महँ हरि सुत अरु सप्त नारि ॥  
कहव काम अनिरुद्धकर ग्रह फल रुक्मि सहारि ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले चारुदेष्ण सुदेष्ण चारुदेह सुपेण चारुगुप्त भद्रघारु चारु-  
विन्द सुचारु चारु ये पुत्र व चारुगती कन्या रुक्मिणीजी ने उत्पन्न किया  
रुक्मिणी को छोड़ हरिके ७ और पटरानिया थीं उनके नाम ये है कालिन्दी  
मित्रविन्दा सत्या नाग्नजिती जाम्भवती सुशीला सत्यमामा लक्ष्मणा इन के  
विशेष १६१०० और स्त्रिया कृष्णचन्द्र के थीं प्रद्युम्न का विवाह उनके मागा  
रुक्मीकी कन्या के साथभी हुआ तिसमे अनिरुद्धजी हुये अनिरुद्ध का भी वि-  
वाह रुक्मी की पौत्री के साथहुआ यद्यपि हरि व रुक्मी से थिरोव था तथापि  
हुआ इस विवाहमें बलभद्रादि यदुवगी बहुत धरानमें गयेये जब विवाह होगया  
तो कलिगदेशादि के राजाओंने रुक्मी से कहा कि बनदेव जुवा नहीं खेलना  
जानते इससे भावो इनको उसमें हरायदें जब होंगे तो तो हमने को दोजाय-  
गा युद्धादिमें तो जीतना कठिनही है रुक्मी ने कहा कि अच्छा युन्नावो बस  
बलदेवजी को सभामें चुनाया व जुवा होनेलगा पहिले १००० पणर्फी बाजी  
लगी उसमें रुक्मीजीना दूसरी बार फिर उतनीही बाजीलगी उसमें भी वहीं  
जीता तीसरीबार १०००० की लगी उसमें भी वही जीता तब कलिगदेश का  
राजा दान निकाल उठाय हैमा व मदगघ रुक्मी भी कहनेलगा देखो इन को  
नाहक जुवा खेलने का घमण्डया हमने जीतलिया ये वनेचर जुवाका दान क्या  
जाने यह सुन व उमको दान निकाने हैसने देन इन्नेवजीने पदा कोररिषा

त कहा कि अबकी करोरनिष्क बाजी लगाते हैं सँभर के खेलना रुक्मीने कहा  
अच्छा फिर अबकी बाजी बलदेव जीते तब रुक्मीने कहा हम जीते हैं तुम झूठ  
कहते हो तुमने बाजी लगाई, पर गौने तो इननी गायी बाजी, मानीही, तर्ही यदि  
तुम अपना को जीता बताते हो तो हम अपना को बताते हैं कहनेहीसे हो तो  
हमभी जीते यह सुन आकाशावाणी हुई कि रुक्मी मिथ्या कहता है अबकी  
बलदेवही जीते हैं यह सुनतेही बलरामजी ने अतिकोप किया व वही पांशा  
फेंक रुक्मी के खोरसे मारा व कोपसे कलिङ्गाजा के दातों में जिन्हें निकाल  
पहिले हँसाथा मूकामारा सबके सब भूमिमें गिरपरे वहा मण्डपमें एक सोनेका  
खम्भा गड़ाथा उसे उखाड़ जितने दुष्ट राजा उसके पक्षीये सबको मारडाला  
रुक्मी उसी पांशाही के लगने से गरमया यह दशा देख हाहाकार मचा जो  
कोई बचे इधर उधर भागगये राजभरमें हलकम्प मचगया कृष्णचन्द्र ने सुना  
बलदेवने रुक्मीको मारडाला सत्यासत्य कुछ नहीं कहा क्योंकि प्रसन्नता प्रकट  
करने से भाईके मारे जानेसे रुक्मिणी रिसती, अपसन्नता से बलदेव ॥

चौ० तत्र अनिरुद्धहि वधू समेता । रथे च द्वाये श्रीकृपानिकेता ॥ ५ ॥

राम, आवि यावत् के साथ । आय द्वारकहि कीन्ह सनाथा ॥ ५ ॥

## उन्तीसवां अध्याय ॥

दो० उन्तिसये अष्याय महं इन्द्र माहं हरि भौग ॥

मारि कुमारि समूहैः आये गुणन अनीग ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले कि एकदिन मत्त पेरवत हाथीपै चढ़ इन्द्रजी हरिके दर्शन  
के लिये द्वारकामें आये व हरिसे बोले नरदेह धार आपने देवोंके सन सुख नि-  
वारे तपस्वियोंके नाशने में प्रवृत्त अरिष्टासुर धेनुकामुर केशीआदि को मारे  
कस पूतना कुवलयापीड़ादि जो ससार के उपद्रवरूप ये सबको विनाशा आप  
की भुजाओं से ससारकी रक्षाहुई यज्ञ करनेवाले लोगोंके यज्ञाश से देवता  
दसहये अब हम जिसलिये आपके निकट आये हैं निम्ने सुन उसके विषयमें जो  
कर्त्तव्यहै उसके यज्ञ कीजिये यह प्राण्योतिषपुर का राजा ओमासु जिसे नर-  
कामुर कहते हैं, सष प्राणियोंको नाश किया करताहै देवता सिद्धादि व राजा-  
ओंकी मन्पाहर उसने अपने मन्दिरमें करकक्षी हैं निम छत्र से जन्म बुजा

करता है उसे वरुण से छीनलाया गन्द्राचल पर्वत अब हमारा पर्वत यानी श्रृंगमणि पर्वत लाया मणिसे बनेहुये जिनसे अमृत बुझा करता ऐसे अदिति देवमाता के कुण्डल छीनलाया अब हमारा ऐरावत हाथीभी लिया चाहता है उसके द्वाराचर सब आपसे कहे अब जो उचित समझिये सो कीजिये पराशर मुनिबोले यहसुन श्रीहरि हँसे व इन्द्रका हाथ पकड़ आसनसे उतरे व गरुड़को स्मरण किया वे आये सत्यभामा सहित चढ़ प्राग्ज्योतिषपुर को चलदिये तब द्वारकावासियों के देखतेही गें इन्द्रभी स्वर्गलोक को गये प्राग्ज्योतिषपुर के चारोंओर सौ सौ योजन तरु मुदितपने लोहकी फाँस ऐसी लगाय रखीयीं कि वह छूतेही छिन्न भिन्न करदेती थी भगवान् कृष्णचन्द्र ने पहुँचतेही सुदर्शन चक्रसे सब फाटडाली मुरके ७०० पुत्रये उन्हें भगवान् ने सुदर्शनकी आगसे टीढ़ियों के समान सब भस्म करदिया मुरकोभी चक्रसे गारडाला मुर हयग्रीव पंचजन इन दैत्यों को गार हरिने प्राग्ज्योतिषपुर में प्रवेश किया वहाँ भोमासुरकी बड़ी सेना के साथ युद्धहुआ हरिने सहस्रों दैत्य गारडाले फिर नाना शस्त्रात्र वरसाते हुये भोमासुर को चक्रसे गारडाला जन नरकासुर गारडाला गया तो भूमि उसकी गाता अदिति के कुण्डलनाय हृगिसे हाथ जोड़ बोली हे नाथ ! जब आपने सूकरायतार धार हमको लायेथे तब तुम्हारे सगर्भ यह नरक नाम पुत्र हमारे हुआथा सो यह पुत्र आपही ने दियाथा अब आपही ने हरभीलिया अच्छा किया अब अदिति के कुण्डल लीजिये व उनकी सन्तति की पालना कीजिये आप गेराही भार उतारनेके लिये अशसे अवतरे हे हैं अन्युन ! जगत् के कर्ता धर्ता हर्ता तुम्हींहो कौन तुम्हारी स्तुतिकों सब शूत्रोंके आत्मसून व्याप्य व्यापक किया कर्ता कार्य मन तुम्हींहो फिर कौन तुम्हारी स्तुति करे परमात्मा आत्मा भूनात्मा अन्य जन सब तुम्हींहो तो कौन स्तुति कीजावे महाराज प्रमन्न हूजिये नरकासुर के अपगध क्षमा कीजिये उसकी सन्तति पालिये पराशरमुनि बोले कृष्णचन्द्र ने अच्छा कह निनने रत्र नरकासुर के यदा थे सब लेलिये फिर कन्यफागार में देवा तो १६१०० कन्या थीं गजगान्ना में देखा तो ३००० चौदन्ने हाथीथे गजिगान्नाकी ओर दृष्टिगई तो २१००००० काम्बोज देशके घोड़े बंधेहुये थे तिन कन्या टापी घेदों को नरकासुर के नोकुरा के भुग हरिने दान्ना को पटया देवा तो वरुण का सत्र व गणिकर्तन येगी



धरे धे दोनोंको उठाय गरुड़ पै लाद आपभी सवारहुये फिर सत्यमाया को भी चढ़ालिया अब अदितिके कुण्डल देनेके लिये इन्द्रपुरी को गये ॥६॥

## तीसवा अध्याय ॥

श्लो० कह निमय अध्याय महँ अदितिहि कुण्डलदाने ॥

अदितिबिनय सुरतरुहरण इन्द्रपराजय गान ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले वरुण का छत्र मणिपर्वत सर्षक कृष्णचन्द्रको सहज में अपने ऊपर चढाय गरुड़चले सुरलोक के द्वारपै पहुँचते ही हरिने पाञ्चजन्य शङ्ख चजाया जिमे सुनतेही देवगण अर्घपाद्याचमनीयादि हरिके लिये-लाये देवताओं से पूजित हरिने देवमाता अदिति का उज्ज्वल बाँदल के कर्गुर के आकार मन्दिर देखा व उसमें प्रवेशकर अदितिजीको भी देखा हरिने इन्द्रके संग अदिति को प्रणाम किया उनके कुण्डलदे नरकासुरका वध भी सुनाया तब अदिति हरिकी स्तुति करनेलगी ॥

श्लो० भक्ताभयकर कमल विलोचन । सनातनात्मा भव भय मोचन ॥

सर्वात्मा भूतात्मा स्वामी । भावन भूत नमामि नमामी ॥ १ ॥

मनसतिभेरक इन्द्रि गुणात्मक । त्रिगुणातीतक इन्द्र गतात्मक ॥

तुम सबके प्रभु हृदयनिवासी । कृपानिधान मुक्ति सब दासी ॥ २ ॥

सित दीर्घादि कल्पना हीना । जन्म मरण वञ्चित गुण घीना ॥

स्वप्न सुषुप्ति आवि तुम माहीं । नाथ अवस्था एकहु नाहीं ॥ ३ ॥

मन्थ्या रात्रि भूमि दिन अम्बर । पवन हुताशन मन मति सम्बर ॥

सब तुम दयानिधान सुरारी । लजि विनय मुघारि हमारी ॥ ४ ॥

ब्रह्म विष्णु हर है सारा । उपजावत पालत सहाय ॥

देव दनुज राक्षस अहि यक्षा । दूष्माण्ड गन्धर्वर ऋक्षा ॥ ५ ॥

सिद्धपिशाचमनुजमृग पशुगन । पतक मरीच्य वृक्ष सुल्म घन ॥

बहली रता सकल तर जाती । तुम सब नाथ कहीं क्यादिमांती ॥ ६ ॥

यह तम माया जो जग तोहीं । नहि जानत उपजावत मोहीं ॥

हम हमार घट जीव्य माहीं । तय माया कृत सदाय नाहीं ॥ ७ ॥

जो निज धर्म रीतिसों तोहीं । नाथ अराघत नजि छुछोहीं ॥

सो तरिजात तुम्हारी माया । नाथ नहीं कन्हु आन उपाया ॥ ८ ॥

हे नाथ ! ब्रह्मादि सब देव मनुष्य पशु पक्षी सब विष्णुमाया महाआवर्त्तमें हमारहे हैं दैवयोगसे जो तुम्हारी आराधना भी करते हैं तो स्त्री पुत्र भनादि गों-गते हैं यही आपकी गाथा है सो इसीमानि भैनेभी पुत्रकी कामना व वैरियों के मारनेहीके लिये तुम्हारी आराधनाकी मोक्षकी कामनासे नहीं आप कल्पतरु कोभी पाय यदि पापी पुरुष भोजन व स्त्रीही मागे तो उसीके अपराधका दोष है तिससे हे सब ससार के मोहनेवाले ! कृपा कीजिये ज्ञान सदभावसे उत्पन्न अज्ञान नाशिये शङ्ख चक्र गदा शार्ङ्ग धारण करनेवाले तुम्हारे नमस्कार हैं मैं आपका सूक्ष्मरूप नहीं देखती यह स्थूलहीरूप देखतीहू कृपा कीजिये यह सुन हैंस जगन्मोहन श्रीहरिवोले तुम हमारी माताहो तुम्हें प्रसन्न होना चाहिये अदिति ने कहा ऐसाही हो लड़काही सही जो हमसे प्रमन्नता चाहनेहो तो मर्त्यलोक में सब देवता दैत्यों से अजयहोवो तब सत्यभामाजी ने इन्द्राणी सहित अदि-तिसे कहा हमारे ऊपरभी कृपा कीजिये अदिति बोली सत्यभामा हमारे प्रमाद से न कभी तुमको वृद्धता आवेगी न अगोंमें विरूपता व सदा सब फाम पूर्ण रहेंगे तब अदिति से विदाहो श्रीहरि व इन्द्र सत्यभामा के साथ देवताओं के नन्दनादि वन देखनेगये सब देख देखाय इन्द्र तो लौटआये आते २ हरिने कल्पवृक्ष देखा उसे देखतेही सत्यभामा ने गोविन्दसे कहा यह वृक्ष द्वारकाको क्यों नहीं लेचलते जो आपके वे वचन सत्यहो जिनमे कहा था कि सत्यभामा तुम हमको वहुत प्यारीहो तो यह वृक्ष उखाड़ हमारे घरके उपवन में लगादी-जिये यहगी तो कहा था जैसे सत्यभामा तुम हमको प्यारीहो वैसे जाम्बवती रुक्मिणी आदि नहीं यह कईवार कहचुम्हो यदि सत्यहो हास्पहीन हो तो यह कल्पतरु अवश्य हमारे घरका भूषण होवे हम चाहती हैं कि कल्पवृक्ष की मजरी शिरके वालोंमें गूथ सौतियों के बीच शोभिनहों जय ऐमा हगिसे सत्य-भामाने कहा तो गण्डसूदन ने हमके कल्पवृक्ष उखाड़ गरुड़पे लादनिया यह दृशा देख वनरखवारे बोले हे गोविन्द ! इन्द्रकी स्त्री इन्द्राणी का यह पारिजान है इम लिये इसे लेजाने के योग्य आप नहीं भ्रमृत मपन समय में देवोंने राचीके विस्-पणके लिये इसे निकाला था इमसे इसको ले करानपूर्वक यदात्रे न जानेपा-वोगे इन्द्र जिनम इन्द्राणी का मुख देखा करने जो वे चाहती है मोई करे फि

तिन्हीं राचीका यह वृक्ष हमे लेजाय कौन कुशज सहित जायसका है हे कृष्ण।  
 इसके अर्थ अवश्य इन्द्र आवेंगे व जैसेही अपना वज्र उठावेंगे देवगण भी तुन्त  
 पहुँचेंगे विससे सत्र देवताओंके सग विग्रह कतेसे कुछ अरुधा नहीं क्योंकि जि  
 सका परिणाम करूदो उसकर्मकी प्रशसा पण्डित लोग नहीं करते यहसुन हरि  
 तो नहीं बोलने पाये सत्यभामा वड़ाकोप करके बोली कि इस पारिजातकी इन्द्रा  
 णी कौन होती है व देवोंके स्वामी इन्द्र इसके कौन होते है यदि यह अमृतमथन स  
 मय समुद्र से निकला है तो सब समार का इसमें सत्य है फिर अकेले इन्द्रही क्यों  
 इसे ग्रहण करते हैं जैसे अमृत, जैसे चन्द्रमा जैसे लक्ष्मी ये सब समुद्रसे निकले  
 पदार्थ हैं तैसेही यह कल्पवृक्षभी है जो अपने पतिभी मुजाओंके बलसे महा  
 घमण्डसे इन्द्राणी इसे रोकी है तो चलेजावो अभी कहो वे ज्ञायन रहे जो  
 होसके करें सत्यभामा वृक्ष उलड़ाये, लिसे, जार्ता है शीघ्रही जाय हमार गवित  
 वचन इन्द्राणीसे कहो यदि वे अपने पतिको प्यारीही शौर यदि वृत्तके वग उन  
 का पतिहो तो हमार पति वृक्ष, लिये जाता है रोके हग तुम्हारे पतिको जानती  
 हैं कि इन्द्र देवताओंके पति है तथापि मनुष्यही की स्त्रीही पारिजात, तो उल  
 डवायेही लिये जाती है पराशरगुनि, बोले रखवार जोग जब इस प्रकार कहेगये  
 तो जाय ज्योंका त्यों उन्हींने इन्द्राणी से कहा उन्हींने अपने पतिको कहसुन  
 लड़ने को तैयार किया कि सब देवोंको सगले पारिजातके छोडने के लिये इन्द्र  
 लड़ने को पहुँचे, जब पुरन्दर ने वज्र उठाया तो सब देवगण भी शूल पटिश  
 परिघ स्रहगादिने लड़नेमें प्रवृत्त हुये महाराज सकल वैरिगर्दन जनार्दन जी ने भी  
 अवलोकन किया कि मत्त ऐरावत पै चढ़े वज्र उठाये इन्द्र व सब देवगण भी अल  
 शूल धारण किये आन पहुँचे, आपने प्रथमही कोटिवाणों की वर्षा देवोंके ऊपर  
 करी कि सब ओर बाणही बाण दृष्टि परनेलगे देवोंने भी यह दशा देख एक २ बार  
 सवोंने अपने शस्त्रास्त्र चलाये, पर मधुसूदन ने एक आयुध के अपने बाणों से  
 सहस्र २ करडाले गरुड़ने वरुण की चलाई हुई फासीको चोंच से पकड़ कैसे  
 ली ललिया जैसे वे बाल मर्षिणीको लीलजाते हैं यमराज ने अपना कालदह  
 चलाया उसे हरिने गदासे चूर्णीभूत करदिया कुशकी पालकी चक्रसे निल २  
 उड़ादी सूर्यकी ओर ऐसी कड़ी दृष्टिसे देख दिया कि उनका तेजही जातार  
 बाणोंमें अग्निके सेक्यों भांग करडाले वसुलोगोंको ऐसा भगाया कि वे टिगा

विदिशों में भागगये रुद्रों के शूल चक्र से काट २ घराणी में गिरादिवा साध्य विश्वदेव पवन गन्धर्व इनको बाणों से ऐसा मारा कि सेमर की रुईके समान आकाश में उड़नेलगे गरुड़जी भी अपने मुस्र पट्ट नखादिकों से देवोंको विदातेहुये इधर उधरसघाममें दौड़ते फिगने तब इन्द्र व जनार्दन दोनों महात्माओं ने दोनोंओर से ऐसी बाणावारी एक दूसरे के ऊपर की गानो दो बादल जल धारा उगँगि २ घरसाते ह अब ऐसा जुटाव होगया कि ऐरावत व गरुड़से लड़ाई होनेलगी और सप्तदेवताओं व इन्द्रमे जनार्दन भगवान्से जब सहस्रों लक्षों अर्बुदों नखाम्त्र छिन्न भिन्न होगये तो इन्द्रने वज्रउठाया व मधुमूदन ने सुदर्शनचक्र तब देवराज व जनार्दन को वज्र चक्र धारण किये देव चराचर जगत् ने हाहाकार मचाय इन्द्रने वज्रमारा श्रीहरिने हाथ से पकड़ लिया पर अपना चक्र नहीं चलाया केवल यही कहा खड़ेहो खड़ेहो कहा जातेहो जब इन्द्र का वज्र भी नष्टहोगया वाहन ऐरावत को गरुड़ने ठौर २ नोंच फोंचडाला तब भागतेहुये पुरन्दर को देख सत्यभामा बोली हे त्रैलोक्येश्वर इन्द्र। शची के पतिहो तुमको भागना उचित नहीं अब पारिजात के पुष्पोंकी माला पहिन शची तुम को उठके आदर करेंगी हे देवराज। व पारिजात की माला धारण करना तुम्हारा कैमाहै जोकि अब जैसे आगे प्रसन्न चित्त रँगीचुही शची को देखने थे न देखोगे इन्द्र अब भागनेमे कुछ नहीं लज्जितहो यह पारिजात लेजाव देवता लोगोंकी व्यथा मिटे निश्चिन्त होवें हमने तो केवल इममे यह विग्रह कथया था कि जब हग तुम्हारे घरमें गईथी तो तुम ऐसे पतिके घमण्डमे शचीने हगारा अच्छी भाति मान सत्कार नहीं कियाथा सो श्री तो हगभी ह स्त्रियों का चिन्त गरू तो होताही नहीं हमने भी अपने पतिके वनके घमण्ड मे ३ पति की वड़ाईके लिये शापके साथ चिगार किया सो इस परागे पारिजात मे हमारा कुछ भी प्रयोजन नहीं जिम स्त्री को रूपका गर्व है वह आने पति मे रुपा २ नहीं करासक्ती हमारा पति हमारे रूपहीसे राजी है पारिजातके फूलों मे कराहे परा शरमुनि बोले यह सुन इन्द्र लौटे व सत्यभामासे बोले अपि सत्यभामे। मन्त्रियों के सह ऐमा खेद न करना चाहिये अब श्री ३ लौड़िये हगें समाप्त भी सृष्टि पालन संहार करनेवाले विश्वरूप श्रीहरिसे परानिन होनेसे कुछ लज्जा नहीं ॥

चौ० आदि मध्यगन अहि हरि मार्ग। सकल जगत् यह मलय नहीं ॥

जासों होत होत ज्यहि कारण । जो पालन जग, पुनि, जो हारण ॥ १ ॥  
 तासु जगत पालन उपजावन । हरणकरण हरिसौं जितिजावन ॥  
 या महँ लार्जन कौनिउँ भाती । क्रोध करहु जनि हरिप्रिय पाती ॥ २ ॥  
 सकल सुवन भय कारण जोई । अल्प, सूक्ष्म भूति प्रसु सोई ॥  
 निममागम मुनि सुरं, समुदाई । जासु भेद कयहु नाई पाई ॥ ३ ॥  
 त्यहि अज अद्वय ईश अनादिहि । स्वेच्छाचारि शत्रुभयकारिहि ॥  
 कहु को जग महँ जीतनहारा । हारिहि सदा लड़े ससारा ॥ ४ ॥

## इकतीसवां अध्याय ॥

दो० एक त्रिंश अध्याय महँ पारिजात ले, द्रवाम ॥  
 यकसै सोरह सहस तिय ब्याही अपने घाम ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले जब इस भाति पुरन्दर ने सत्यगामा से कह २ हरि की स्तुतिकी तो श्रीभगवान् हम भगवम्भीर वचन बोले हे देवराज । हे जगत्पति । आप इन्द्र हैं व हमलोग मनुष्य ठहरे इस लिये हमारे किये हुये अपराध आपही क्षमा कीजिये व पारिजातवृक्ष यह तुम्हींको उचितहै ले जाइये हमने तो सत्यभामा के कहनेसे लेलिया था यह अपना वज्र भी लीजिये हमारे ऊपर निष्कल होगया यह शत्रुओं के नाश करनेवाला तुम्हाराही आयु है इन्द्र बोले हे ईश । हम मनुष्य हैं यहकह हमको क्या मोहिन करतेहो हम यद्यपि बड़े सूक्ष्म स्त्री नहीं पर आपको जानते फिर हे नाथ । जोहो सोहो पर आज कल तो जगत्के मूढचिन्तार्थ में ठिकेहो व इसके कण्टक रूप देवोंको मारतेहो अब यह कल्पवृक्ष दारकापुरी को लेजाइये जब आप मर्त्यलोक छोड़देंगे तब फिर यहा मँगालिया जायगा हरि अन्दा कह पारिजातको ले पृथिवीतलको आय चलते समय देव सिद्ध मुनियोंने स्तुतिकी दारका के निकट पहुँचतेही हरिने शङ्क घनाया जिसके मुननेसे वहाँ के बाँसी परमानन्दिन हुये सत्यभामा सहित गरुडसे उतर पारिजात सत्यभामा की पुनवापि में लगादिया जिसके नीचे जानेसे सब लोगोंको पूर्वजाति का स्मरण होजानेलगा व उमकी सुगन्धि से तीन योजन तक पृथिवी चारोंओर सुगन्धित होनेलगी सब यदुवर्गीलोग जब उस वृक्ष के नीचे खुड़ेहोते थे तब अपना को अपनी पूर्वजाति देवता रूप देवने कृष्णपद्मने कि मीमांसुरके

किङ्करो के साथ जो हाथी घोड़ रत्न कन्यादि भेजे थे देखे जो कन्या भोगासुर ने जहा तहाभे लाय पकत्र की थीं उनका विवाह हरिने एक शुभमूर्त्त में १६१०० गन्दिरो में इननेही बनाय कालिया जिसमे एकही समय में एक एक कन्या के साथ विवाह हुआ इससे उनमें से प्रत्येक कन्या ने चही जाना कि मेराही विवाह हरि के सङ्ग हुआ है और रात्रि को विश्रुत हरि उसके घरमें एक एक मूर्त्ति से सोये ॥

## वत्तिसवा अध्याय ॥

दो० वत्तिसयं अध्याय महँ हरि सुत शेष ज्ञान ॥

अरु ऊपा अनिरुद्धकर व्याह कहन जस ज्ञान ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले प्रद्युम्नादि हरिके पुत्र रुक्मिणी गे से उत्पन्न तुम से कह चुके अब अन्यस्त्रियों के भी सुनिये भानु व भैरविक सत्यभामा के पुत्र हुये दीप्तिमान् आदि रोहिणी के और जाम्बवती के साम्नादिक महावली उत्पन्न हुये नाग्निजिनी भद्रविन्दाके बड़े प्रतापी पुत्र हुये सग्रामजित आदि गेव्या से जन्में माद्रीके वृकादि हुये लक्ष्मणा के मात्रवान् आदि कालिन्दी के श्रु तादिक हुये इनको छोड़ अन्य स्त्रियां में सप्त ८०८०० पुत्र हुये इन सप्त में रुक्मिणी के सुत प्रद्युम्न सप्त से बड़े हैं प्रद्युम्न से अनिरुद्ध तिन से वज्र अनिरुद्ध का विवाह बलिभी पौत्री वाणासुरकी कन्या ऊपाके भी साथ हुआ जिस विवाहमें हरि हरमे बड़ा सग्राम हुआ जिसमें वाणासुरके १००० भुजों में मे ६६६ हरि ने काटहाले इतनी कथासुन गेत्रयजी पढ़ने लगे कि हे मुनिगज ! ऊपा के निमित्त शङ्कर मे रूपवन्द मे कैये युद्ध हुआ व हरि ने वाणासुर के बाहु कैमे काटे यह कथा सुनने को हमारी रड़ी इच्छा है आप कृपाकर सुनाये पराशरजी बोले वाणासुरकी कन्या ऊपा ने महादेव पार्वती को एकसह दर्शन क्रीड़ा करने हुये देखा उसने भी चाहा कि मुझको भी जो पति मिलता तो क्रीड़ा करती गौरी जी तो सब के चित्त की बात जाननेवाली है उन्होंने कहा उपताप न करो तुम भी अपने पति के साथ विहाय करोगी जब ऊपा ने ऐसा सुना तो अपने मन में कहा कर हम पति के भग विरोगी व दौन हमारा पति होगा जब ऐसा विचार किया तो पार्वती जी ने कहा तू मज्जुषि ! वेणासुरकी शुक दादगी को समझो जो तेरे भग भोग करेगा तू तेरा भग

होगा यह सुन ऊषा अपने घर आई जब वह तिथि आई तो स्वप्न में एक पुरुष ने आय अच्छीरिति से उसके सग मैथुन किया उसमें उसकी प्रीति भी बहुत बढ़ गई जब जागी तो पति को अपने पास न देख कहा गये २ निर्हाज्जहो सखी से ऐसा कहने लगी वाणासुर का गन्त्री कुम्भारह था उसकी कन्या का चित्रलेखा नाम था वही ऊषा की सखी थी वह बोली यह कौन है जिससे ऐसा कहती हो जब लज्जा में आय उसने कुछ न बताया तब उस सखी ने विश्वास में लाय उस से सकल वृत्त पूछ लिये जब सखी मंत्र जान गई तो ऊषा ने कहा पार्वती जी ने हमसे कहा है कि स्वप्नों तेरे सग विहार करने हीवाला तेरा पति होगा सो अयि मखि ! अब वह उपाय बता जिसमें वह हंगारा पति हो तब चित्रलेखा वस्त्र में प्रधान २ देवासुर गन्धर्व मनुष्य लिख उसे देखाने लगी तब वह देवासुर गन्धर्वादिकों को छोड़ मनुष्यों को देखने लगी मनुष्यों में भी रुष्णिवशियों को बहुत उनमें भी जब कृष्णचन्द्र व बलदेव जी को देखा तो लज्जा के गारे जड़ होगई प्रद्युम्न को देख गारे लज्जा के अनग मुख करलियां जब प्रद्युम्न के तनय अनिरुद्ध को देखा तो लज्जा छोड़ एकटक देखने लगी व कहने कि सो यही है सो यही है यह सुन चित्रलेखा अपनी सखी ऊषा को समझाय द्वारका को योगाभासके कारण शीघ्र गई ॥

## तेतीसवां अध्याय ॥

तेतिसवें अध्याय महें प्राणयुद्ध विस्तार ॥

जहें बहु ब्राह्मिणाहु भाषण कृष्ण करदार ॥ १ ॥

पगशरमुनि बोले कि एक दिन वाणासुरने महादेवजी से हाथ जाड़ कहा हे देव ! ये जो सहस्रबाहु आपने मुझको दिये हैं ये बिना किसी से लड़े हुये गारूप हैं सो बनाइये इनभुजोंकी साकल्य कानेवाला सयाम कहाँ होगा नहीं तो बिना सुख गारूप भुजों से मुझको कौन लागे यह सुन गण्डरजीबोले हे वाणासुर ! जल्दी न करो जब यह तुम्हारी पताका अपने आप गिरपै तब ऐसा रणहोगा जिसमें गामार्गी जीव परमानन्दित होंगे यह सुन शिवसे अनिर्दिष्ट हो प्रणामकर वाण घरको आया देखे तो पताका टूटी परी है उसे देन जो

हर्षित हुआ कि भला लड़ने वाला तो भिनेगा इसी बीचमें योगव्रियाके वनमें  
 चित्रलेखा अनिरुद्धको द्वारकामे सोतेदृश्य महितपलंग उठलाई व अपनी सखी  
 ऊपाकोदिया कि वह उनके संग भोग विलास करने करानेलगी रखवार दैत्योंको  
 जब ये समाचार मिले तो उन्होंने ने जाय बाणासुरसे कहा उसने तुरन्त अनिरुद्ध  
 के मारने व पर करने के लिये सेनाभेजी पहुचतेही अनिरुद्धजी ने मारडाली तब  
 स्थावरुद्धो मारडालने के विचारमे वहा आप आया पर पराजित हुआ तब  
 षड् लज्जितहुआ मन्त्री के कहनेसे मायायुद्ध करनेलगा जिसमें कि नागपारा  
 में अनिरुद्धजी को बंधुआ कर लिया वहा यदुनशियों में वडा हला मचा कि  
 अनिरुद्ध कहा गये उसी समय नारदमुनि ने बताया कि वेतो बाणासुरके यहा  
 बंधुआ हैं यह सुनतेही कि योगबलसे कोई स्त्री उठालेगई है यदुनशियां ने  
 लड़ाई की तैयारी भी श्रीहरि गरुड़ को बुलाय मन्त्रारह्ये वल्लराग प्रभुनादि  
 सब को सगले बाणासुरकी पुत्री शोषित पुरको गये पुरी में प्रवेश करतेही  
 महादेवके गण प्रमथसन्नक जो पुरकी रक्षाकरते थे उनमे लड़ाईहुई उन्हें तुरन्त  
 मार हरिपुरमें पैठे पैठेही बाणासुरकी रक्षाके लिये तीन पाथ व तीनशिर का  
 महादेव का ज्वर वहा रहताथा उससे हमसे युद्ध होनेलगा उस ज्वरका ऐसावेग  
 था कि कृष्णचन्द्र व बलदेव दोनोंभाई तिमके तापसे तापित दृश्ये तब हरिने  
 अपनी देहमे शीतज्वर निकाला जिसमे उनदोनों ज्वरों से नड़ाई होनेलगी  
 वैष्णव ज्वरमे माहेश्वर ज्वर द्वारगया तो ब्रह्माजी के शाणगया उन्होंने आय  
 क्षमाकराया माहेश्वर ज्वर व वैष्णव दोनों जानहोगये हरिने कहा जो दगाग  
 तुम्हाला सनाद मनुष्य स्मरण करगे तो उनको ज्वरकी पीडा न होगी तिमके  
 आगे ५ अग्नियों की रखवारी थी उन्हेंभी हरिनेजीता आगे दानकोकीसेनाकी  
 उभे भी हरिने सहारा तदनन्तर सबमेनाले बाणासुर फारिकेय शरु जी सबके  
 मन श्रीहरिसे लड़नेलगे इम हरि नरुके महाघोर युद्धमें मन्त्रयोग मारने लगे  
 देवताओंने माना कि अब त्रिगोत्री की प्रलयहोगे चाइती हे हरिने उमीचीचम  
 जृम्भणास्र छोडा तिमके लगने से महादेवजी जंगुगाने लगे उमीचीचम श्रि  
 ने सकल दैतपण व प्रमथ गणाना महार कथिया महादेव जी मारे भाई के  
 पेसे व्याकुलहुने कि रथे मोपदे तदनेकी मामल्प जानी ही पडानाके दान  
 मय को तो गरुड़ने प्रायण किया प्रभुमन्त्रीने भी उनको बहुत पीछिन किया



कृष्णचन्द्रने पेमी हकीमरी कि कार्तिकेय रूपमे चलेगये जब कृष्णचन्द्रने शिव  
 को जृम्भित दैत्यो को विनाश कार्तिकेयको पराजय व प्रमथ सैन्यका नाश  
 किया तो तो बड़े भारीरथपै सवारहो कृष्ण व बलराम व प्रद्युम्नके साथलड़ने के  
 लिये बाणासुर आपआया बलरामजी ने आनेही के साथ उसकी सवमेना मा  
 डाली जो कुछ वचीवचाई भागगई जब बाणामुग्ने यह दगादेखी कि पहुँचतेही  
 मेरीसेना बलरामने हलस खींच २ मूसरसे सबकी सब कूटडाली तो कृष्णचन्द्रसे  
 कुद्धहो बाणावरी करने लगा बाणासुरके मारे बाण हरिने अपनेबाणों से काट  
 डाले तब कृष्णचन्द्र के बाणासुर व बाणके हरिने बाण मारे यहाँ तक कि दोनों  
 परस्पर अपनी विजय दूमेरकी महापराजय चाहते थे जब बाणासुरके व हरिके  
 सम्पूर्ण जन्मास लडने २ टूटगये तो हरिने बाणासुरके मारने को मन किया व  
 बाणामुग्ने हरिकेमारनेको इमलिय हरिने तो सुदर्शनचक्र उठाया व बाणामुग्ने  
 सैकरो सूर्योत्तममानवाली शक्ति जब ऐमाहुआ तो जेटिवीनाग दैत्योकी विद्या  
 हरिके आगे स्त्री स्वरूपसे नगीहो आन खड़ी हुई निमको नगी आगे देख हरिने,  
 नेत्र मूद बाणके बाहु काटनेही के लिये सुदर्शन छोड़ा मारडारने के लिये नहीं  
 सुदर्शन ने सब बाहु बाणासुरके काटडाले जब फिर सुदर्शन हरिके हाथमें आये  
 तो हरिने चाहा कि अब फिर चलाने जिसस बाणासुर के प्राणभी जाते रहे  
 यह बात महादेवजी ने भी जाना कि भटपट आय बाहु कटेहुये रुधिर  
 वहते हुये बाणको देख श्री हरिने घाले हे कृष्ण । २ हे जगन्नाथ । हग तुमको  
 जानते हैं कि पुह्योत्तम परेश पग्मात्मा आदि मध्यात हीनहो यह जो नर  
 वेपमें देह धारण कियो सो लीलाही लीला है निमसे प्राग्ज जूजिये हमने इस  
 बाणासुरको अभयदान दियाहै उसे आप मिथ्या न कीजिये हमारे वरदान मे  
 इमको बढ़ावल हुआ और इसी मे इसने आपके साथ अपराध किया इसी हेतु  
 हग क्षमा करातेहैं अब जानेही कीजिये यह अपने कियेको पहुँचगया यह सुन  
 बाणासुरके ऊपर क्रोध मिटाय प्रसन्नवदनहो हरिद्वर से बोले हे शकर । आपने जो  
 वर दियाहै तो अब यह जीतारहे हमने तुम्हारे वचनका गौरव मान सुदर्शन को  
 निवारण किया तुमने जो अभय दिया तो हमनेभी अभय दिया क्योंकि अपना  
 को हगमे भिन्न न जानिये जो तुमने किया हगने भी किया जो हग हे मोई तुम  
 हो व संसारभी हग तुम गपहै जो लोग हगमें तुममें भेद जानने दे वे अज्ञानमें

मोहित हैं यह कह हरि कहा गये जहा अनिरुद्ध नागपारा में वैधुआ ये पहुँ-  
चतेही गरुड़को देव नागपारा में लगे हुये सर्प भाग खड़ेहुये तत्र सहित स्त्री  
अनिरुद्ध को गरुड़ पे चढ़ाय बलभद्र प्रशुम्नादि के सग हरि द्वारकाको आये ॥

## चौतीसवां अध्याय ॥

दो० चौतिसयें अध्यायमहँ पौण्ड्रककाशिमहीप ॥

हरि मारे काशीपुरी कृत्या दहि नानीप ॥ १ ॥

मैत्रेयमुनि बोले हे मुनिराज । मनुष्य देशधारा सुगारि ने बड़े २ अद्भुत कर्मा  
क्रिये इन्द्रको जीत महादेवको भी जीता व सब अन्य वरुण कुंवर आदि देवोंको  
भी जीता इसके उपरान्त और जो २ दिव्य कर्म क्रिय हों उनके सुनने की  
हमको बड़ी इच्छा है कृपाकर सुनाइये यह सुन परानर मुनि बोले हे मैत्रेय ।  
नरावतार में कृष्णचन्दने जैसे काशीपुरी जारीहै वह हम कहतहँ आठरमे मुनि-  
ये पौण्ड्रक देशके राजा का वामदेव नाम था उसमे वहा के रहनेवाले अज्ञानी  
लोग कहने लगे कि वामदेव तुम्हींहो उमन जाना कि सत्य २ वामदेव हगीहँ  
कुछ हमको स्मरण जातारहाहँ यह विचार उमने भगवान् त्रिपुण्ड्रके जो २ चिह्नहँ  
सब अपने लिये बनवाये व कृष्णचन्द्र के पाम अपना दूत भेच यह कहलाभेजा  
कि चक्रादि चिह्न व हगारा वामदेव यह नाम छोड़ने से और नीना चाहनहो तो  
हमारे सारणागत होये जब हरिमे मिथ्या वामदेवके दूतने आय ऐसा कहा तो  
मधुसूदन भगवान् वदत हँमके दूतमे बोले हम अपन चिह्न व सुदर्शनचक्र सब  
छोड़देंगे परन्तु हे दूत । जैसे अपने स्वामी के वचन हगमे तुमन कहेहँ वैसाही  
हगारेगी उन से कहना कि हमने तुम्हारी वाक्य का मव भाव चाहा अब जो  
कर्तव्यहै सो करो हम यहा कोई भी अपना चिह्न न छाड़ेंगे सब चिह्न व सुद-  
र्शनचक्र सहित तुम्हारे पुरमें आने हँ यही तुम्हारा सुदर्शनचक्र भी छाड़देंगे व  
अपने सब चिह्न भी जो २ तुमने आनाही दे सब सुदधान कानही रहा आग  
फेंगे कुछ विनाश नहींहै वहां तुम्हारे शरणमे आय जो कुछ विनाशदि करना  
होगा फेंगे जिसमें फिर तुममे कुछ भय हपको न रहे परानरमुनि बोलेकि इतना  
कह दूतको निदाक्रिया आपने गरुड़को स्मरणक्रिया क्रिये आये भद्रत गरुड़ा-  
रुद्धहो हरि पौण्ड्रक देशको चन दिये रहा काशी के गजाने सुना कि कृष्ण-

चन्द्र पौण्ड्रक के ऊपर चढ़े आते हैं आप भी बड़ी सेना ले मिथ्या वासुदेवकी  
 महायता को गये तब काशिराजकी सेना व अपनी बड़ीभारी फौजले पौण्ड्रक  
 हरि से लड़ने को चला श्रीहरि ने दूरही से देखा कि बहुत चित्र विचित्र रथपै-  
 चढ़ा एक हाथमें चक्र एक में गदा एकमें खड्ग एकमें कमल लिये पुष्पों की  
 माला पहिने धनुषधारण किये पताका में गरुड़का चिह्न बनाये छातीमें श्रीवत्स-  
 चिह्न बनाये किरीट कुण्डल पीताम्बर धारण किये हुये पौण्ड्रक आताहै जब  
 वनाय निरुत्त आया तो भगवान् हँमके लड़ाई करनेलगे इधर उधरसे बहुत अन्न  
 शस्त्रादि चलेचलाये एक क्षणमात्र में जितनी सेना पौण्ड्रक व काशिराजकी  
 थी सब मारी गई तब अपने सब विद्व धारण किये पौण्ड्रक से श्रीहरि बोले  
 हे पौण्ड्रक ! जो तुमने दूतके मुखसे कहलायाथा सो हम सब चित्त अन्न छोड़  
 देते हैं व तुमको देते हैं लेवो यह चक्र भी छोडा गदाभी छोड़ी गरुड़ भी लेवो  
 जल्दी चढ़ो परारामुनि बोले इननारुह चक्रसे तो मारा शिर अलग गिरा गदा  
 से मार चूर्णीभूत करदिया गरुड़ने उसके मिथ्या गरुड़को तूर फारखाला राज्यके  
 लोग हाहाकार करनेलगे तब मित्र का बदना लेनेकेलिये काशिराज लड़नेलगे  
 भगवान् ने बाणों से उनका शिर काटडाला व अद्भुतता देवाने के लिये मारा  
 बाणों से छेदाहुआ काशिराजका शिर जाय काशीपुरी में गिरा वप पौण्ड्रक व  
 काशिराज दोनोंको मार दारका ग आय म्वर्गवासियों के सगन विहार करने  
 लगे जब काशी में काशिराजका शिर गिरा तो वहां के वासी देव विस्मितहो  
 कहने लगे यह क्या है व किसने ऐसा किया उमके पुत्रने जाना कि भगवान्  
 वासुदेवने हमारे पिताको माराहै इमलिये वह अपने पुरोहितकी सगने महादेव  
 जी की स्तुति करनेलगा काशी सिद्ध क्षेत्र तो हैहीहै महादेव प्रसन्नचित्तहो  
 काशिराज के पुत्र मे बोले वरदान मागो यहसुन वह बोला हे भगवन् ! आपके  
 प्रसादमे ऐसी कृत्या उत्पन्नहो जो मेरे पिताके मारनेवाले कृष्णचन्द्रको मारडाने  
 शिवजीने कहा अञ्छा ऐसी कृत्या उत्पन्न होगी वस शिवजी तो इतना यह  
 अन्नर्दान होगये होगकुण्ड से गरु महाकृपा निकली जो कि गारे जाला के  
 अतिकरान देदीपगान केश धारण कियेहुईथी अग्निसे निकलतेही कृष्ण  
 कृष्ण कहनीहुई जाय दारका में पहुंची व चारोंओर मे जारनेहीमी लगी उसे  
 देव महा भयभीतहो सब दारकापानी समार के शरण देनेलाते श्रीहरि के

शरणको गये तब श्रीकृष्णचन्द्र ने विचार कि काशिराजके पुत्रने शिवकी तपस्याके बलसे इसे उत्तम किया है यह श्रोत्र सुदर्शनचक्रको आजादी कि इसे तुरन्त भस्म करडालो आज्ञापातेही सुदर्शनचक्र कृत्याके पीछे लगा चक्रके प्रतापसे विश्वस्त्रहो कृत्या भागी व गागका कार्गीमें पहूची उमके पीछेही सुदर्शनचक्रभी पहूचा तब काशिराजकी सेना व महादेवजीके प्रमथादि गण सब नानाप्रकारके शस्त्रास्त्र धारणके सुदर्शनके सम्मुख आये सब शस्त्रास्त्र चलानेमें चतुर काशिराजकी सेना व शिवके गणोंको सुदर्शनने तुरन्त भस्म करदिया तदनन्तर हाथी घोडा अन्य पशु पक्षी मनुष्य कोप मन्दिर प्राटिका तड़ागादिसहित काशीको भी भस्म करदिया खाई खावों शहरपनाह आदि सब सुदर्शनने जारा जब कुछ वहां बाकी न रहा तो विष्णुवरु किं विष्णु के कमलमें द्वास्का में आय गोभिन होनेनगा ॥

## पैंतीसवां अध्याय ॥

दो० पैंतिसवें अध्याय में कुरुशिशिन उलगम ॥

मन्थन करि माम्बहि तहां ध्याही कहय समाम ॥ १ ॥

इतनीकथा सुन गैत्रेयजीने फिर प्रश्न किया हे मुनिनाथ ! हम फिर श्रीमान् बलदेवजीका पराक्रम सुना चाहते हैं कृपापूर्वक आप मुनाइये यमुना कर्पशादि लीला तो बलदेवजी की मुनी पर और कुछ कियाहो सो भी कहिये यहमुन पाशा मुनि बोने गैत्रेयजी मुनिये अनन्त अमोय ने रायनार घण्डीपर चनगड जीने जो कर्म कियाहै कहते हैं कुरुवरी राजा दुर्वोधन की कन्याका स्वयंवर हुआ उसमें जाम्बवती के पुत्र साम्बजी जवागदस्ती उम कन्याको ले भागे तब महापराक्रमी शूरवीर कर्ण दुर्वोधन भीष्म द्रोणाचार्यादिकोंने बड़ाकोपके लड़ाई में उस बेचारे लड़के साम्बको जीत घेंघुजा कगलिया यहमुन यादवों ने दुर्वो धनादि के ऊपर बड़ा कोपकिया व सब कुरुगणियों के माग्दानने वा उया भी किया तिन सबको पुत्रकार पचहार बलदेवजीने शान्तकिया व कदा टम गये ते कुरुशिशियों के निकट जाने व हमारे कहने से लड़के को मोड़ देंगे यह कद पनसामजी हस्तिनापुर को गये नगरके बाहर एक कुनवागी में उभरे भीतर नदी गये बलदेवजी को जायेमुन वृत्तानादि औरवों ने आपराधपातीय मर

उनको पहुचाया जब सब कुरुवशी बैठे तो बलरामजीने कहा उग्रसेन की आज्ञा है  
 आपलोग साम्बको बहुतही शीघ्र छोड़देवें यहमुन भीष्म द्रोणाचार्य कर्ण दुर्यो-  
 धनादिकों ने बड़ा क्रोधकिया बाह्याकादि कौरव यह देख कि यदुवशियों में तो  
 कोई राजाही नहीं होता बलदेव क्या कहते हैं इसलिये कोपसहित बचन बोले  
 हे बलदेव ! यह क्या तुमने कहा भला कुरुवशियों को किस यदुवशी ने आज्ञा दी  
 है यदि उग्रसेन भी कौरवों को आज्ञा देनेलगे तो राज्य के योग्य श्वेतञ्जय  
 व चमरका कुरुवशियों के यहा कौन प्रयोजन रहा तिसमे बलमद्र चलेजाइये  
 इस अन्यायी पापी साम्बको न हम तुम्हारे कहनेसे छोड़ेंगे न उग्रसेन के हम  
 लोग कौरव यादवों के मान्य हैं सदा वहीलोग हमारे प्रणाम करते रहे अब आज्ञा  
 कैसे करने लगे यह तो ऐमाही हुआ जैसे किसीका सेवक स्वामीही को आज्ञा  
 देनेलगे बाह २ सो कुछ तुमलोगोंका दोष भी नहीं हमीलोगोंका दोष है जो  
 तुमलोगों को अपने साथ बैठाय उठाय भोजन कराय एकरायनपै सोबाय अ  
 हकारी कराय दियाहै सो यह अन्यायही कियागया है क्योंकि नीतिमें लिखा  
 है कि सब छोड़ें वहाँके मरु राजाको भीनि न करनी चाहिये हमलोगोंने जो  
 अर्घ्यपायादि तुमको दियाहै सो भीतिहीके हेतुसे नहीं तो हमारे कुलको यह  
 उचित नहीं जो तुमको पायादिदें परगण्गुनि बोले कुरुवशी बलदेवसे ऐसा  
 कह अपने मनमें यह ठान कि साम्बको न छोड़ेंगे वदा से उठ नगरको चलेगये  
 तब मारे कोप के बलदेव जी ने पृथ्वी से उठके लातमाग व ताल ठोंका जि-  
 सके शब्दसे सब दिशा पूर्ण होगई फिर आँवें नीलीपीलीकर भौंईं ट्रेरी के के  
 बोले बड़े आश्चर्यकी बात है जो इन दुष्टनिर्वृत कौरवोंको इनना घमयइ है अब  
 इनका राज्य हमलोगों से भी बड़ाहोगया सो न कि अब ये उग्रसेनकी भी आज्ञा  
 नहीं मानते जिसका उल्लंघन कोई भी नहीं करसका देवताओंके साथ इन्द्र  
 भी जिसकी आज्ञाकी इच्छा किये रहते जो सुरराज की सुधर्मा ममाको गो-  
 मने तिसउग्रसेन को धिक्कहे जो ऐमे गनुष्यों के जूटे फूटे राज्यकी इच्छाकरें  
 क्योंकि जिसके चौर चारु पारिजातके पुष्पोंकीमाला पहिनेतेहैं फिर ऐसभी  
 उग्रसेन राजा नहीं है तो ये दुष्गजा कन दुये उग्रसेन तो आजकल सब राजा  
 ओंके राजाहै यह नो ठीकहै हमसे आज पृथ्वी में कुरुवशी न रहने पावेंगे सब  
 को उच्छिन्न करदेंगे तब दारकाको जायेंगे क्यों दुर्योधन द्रोणाचार्य भीष्म

बाहीक दुश्शासन भूरि भूरिश्रवा सोमदत्त शत्रु भीम अर्जुन युधिष्ठिर नकुल सहदेव इन सब को सहित सेना हाथी घोड़ोंको मार अभी वीर साम्बको सहित स्त्री दारकाको लियेजाते हैं जाय अपने भाईबन्धु दारकावासियोंको देखते हैं अथवा एक २ को दूढ़दूढ़ कौन मारता फिरेगा पृथ्वीका भार उतारनेके लिये इन्द्रने कहा भी है हस्तिनापुर नगरही गंगा में उतरादेवे जिपमें सबके सब दुष्ट कौरव समाप्त होजावे यह विचार कोपयुक्त हो हल नीनेरु हस्तिनापुरकी गहरपनाह में लगाया व गंगाकी ओरको खींचा खींचेही नगर कम्कराय नदी की ओर झुँका तहाके रहनेवालोंको जानपरा कि वप अब जाताहै यह दशा देख सब कौरव रोते पीटने हाय २ करते आय बलमदजीके चरणोंपै गिरे हे राम २ ॥ क्षमा कीजिये २ कोप शांत कीजिये यह आपका लड़का साम्ब सपत्नीक हाजिरहै लीजिये हमलोग आपके प्रभावको नहीं जानतेये क्षमाकीजिये यह कह सब कौरव सखीक साम्बको रथपै चढ़ाय वहालाये तब भीष्म दोण कृपाचार्य को बलदेवजीने प्रणाम किया व कहा जाव हमने क्षमाकिया व हस्तिनापुर अबभी गंगाजीकी ओरको झुँकाहुआ बलरामजी का पराक्रम सूचित कराता है ऐमे बलदेवजीहैं तब सब कौरवों ने दायजदे साम्बको भब्डी तरह बलदेवजी के सग भेजा पुत्र पुत्रवध् व बहुत देहेज ले बनरामजी दारका को आये ॥

## छत्तीसवां अध्याय ॥

श्लो० छत्तिसयें अध्याय महँ द्विविद् हत्यो बलराम ॥

जो आयो मित्रोपचिति करन हेतु अति वाम ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय । जो कुछ बनदेवजीने और रिषाहे सोभी सुगिये देवपत्नविरोधी नरकामुरका मित्र एक दिविस नाम यानरथा उसने विचारा कि नरकामुर मेरे मित्रको देवताओंके कहनेमे कृष्णचन्द्रने मारदाना इमलिये मे अब देवोंको नहा पाऊ मारू व उनके लिये उपद्रव करू पहिने तो सब यज्ञविषसकरू फिर धीरे २ मर्त्यलोकी नाराकरू क्योंकि इमीलोकने नाम यज्ञ कले काते तो देवता त्वानेपीते है यह सोच यज्ञविषय करने मातृमार्ग ना राने व मनुष्यों को मारनेलगा ऐमा चरनथा जिधा नाता देव प्राप्त नगा

हो तो यही रहिये व हम देव अनुयायियों को आज्ञा देते रहिये यह सुन श्रीहरि बोले हे बृह ! जो २ तुमने कहा वह सब हमभी जानते हैं पर अभी पृथ्वी का भार अन्धरी रीतिसे नहीं उतरा था अब प्रारब्धवश यदुवंश नाश होने के लिये भी ब्राह्मणों का शाप होगया हे ये भी मरेंगे तो धरणीभार उतर जायगा क्योंकि ये बड़ेद्वये यदुवंशी महामाररूप थे इनको कोई भी न मारसक्या सो अब ७ रात्रिमें सबको समाप्त कराय पृथ्वीभार उतार हमभी चलेआते हैं जैसे हमने समुद्र मे भूमि माग डारका बसाई थी वैसे अब फिर समुद्र की भूमि समुद्रको दे स्वर्गको आनेहैं मनुष्य देह छोड़ बलभद्र प्रद्युम्नादिकों के साथ स्वर्ग में पहुँचेहीद्वये महिन देव इन्द्र हमको जाने धरणी भार उतारने के लिये जो जरासन्धादि राजा मारेगये वे यदुवशियों के एक छोटसे लड़के को भी नहीं मारसक्ये थे तिससे इन महामार रूप यादवों को भी सहार करलेवें तो परलोक की रक्षा करने के लियेजावें जाय दोनोंसे कहौ पराशरमुनि बोले जब इस रीतिसे हरिने देववृत्त से कहा तो वह हरिके प्रणामके दिव्यचाल से इन्द्रके पास पहुँचा यहाँ भगवान् भी द्वारकापुरी में पृथ्वी अन्तरिक्षादि के नागाप्रकार के उत्पात देवनेलगे जिनसे द्वारकापुरी का नाश सूचित होनेलगा तब सब यादवों से हरि बोले देखो ये बड़े २ उत्पात होतेहैं इनके शान्त होने के लिये चलो प्रभासक्षेत्र को चलें यह सुन उद्धवने जाना कि उत्पात तो क्या नाशहोंगे नाशहोने के लिये सबको प्रभासक्षेत्र को भेजनेहैं इसलिये वे हरिसे हायजोड़ बोले हे भगवन् ! इस समय जो हमको कर्त्तव्यहो सो आज्ञादीजिये हम जानते हैं कि आप हम कुल को विनाशोगे क्योंकि इन उत्पातों मे इनका नाशही विदित होताहे तब श्रीभगवान् बोले हे उद्धव ! तुम हमारे प्रसाद से दिव्य गति पाय गन्धमादन पर्वत पे बंदरीवन को चलेजावो वहा नरनारायणजी का स्थानहै हममें चित्तलगाय हमारे प्रसादसे हमारी गति पावोगे हमभी यदुकुल का सहारकर स्वर्ग को जायेंगे हमारे चलेजाने पे समुद्र द्वारकापुरी को बोरडालेगा यह सुन हरिके प्रणामकर उद्धवजी नरनारायणश्रमको चलेगये तिसके पीछे सबयदुवंशी रथोंपे चढ़करुष्णचन्द्र बलराम के साथ प्रगामक्षेत्र में पहुँचे वहा सभोंने स्नान दानादि किया यासुदेवभगवान् की प्रसन्नतासे नर्षोंने मद्यपाण भी किया पीनेही परस्पर पेटा वाद विवाद उनमें हुआ जो यंगनाश करने को कराल अग्निही गुना

यहातक कि नाना भानिके गन्नास्र चलनेलगे जब सब आयुव टूटफाटगये तो उसी शापित लोहके चूर्ण से उत्पन्न एम्कानाम खरको सर्वोने उखाड़ा व एक दूसरे को मारनेलगा उस खरके मारने से वज्रके समान चोट लगनी थी प्रत्युत्र साम्ब कृन्वर्मा सात्यकि अनिरुद्ध पृथु विप्रथु चारुवर्मा चारुक व अक्रूरादि ये सब एकरारूप वज्रोसे मारनेलगे श्रीहरिने रोक़ा पर इनको भी सहायक जान सब के सब मारने दौरे तब हरिने भी कोप से एरका लिया व उसमे सब बड़े बड़े श्राततायियों को मार गिराया वने वचाये सब परस्पर फटपिट वरावर होगये तब समुद्र के गन्धहो मैत्रनाम रथ श्रीहरि का दारुक सारथि लेजाया उसपर चक्र गदा धनुष् तरकम खहग शब ये सब धरेधे सर्वोने मनुष्यरूप धारणके हरिके प्रणामकर सूर्यमार्ग हो स्वर्गकी राहली एक क्षणमात्र में कृष्णचन्द्र व दारुक सारथि को छोड़ यादवों में कोई भी जीता न रहा कृष्णचन्द्र व दारुकने देवा तो एक वृक्षके नीचे घायल बलदेवजी बैठेहैं उनके मुखसे बडाभारी सर्प निकल समुद्रमें चलागया वहा उसकी बड़ी पूजाहुई समुद्र अर्घ्यपाद्याचगनीय ले खड़ाहुआ उसे ग्रहणकर सर्पोंसे पूजित जलमें प्रवेश करगया वनदेवजी की यात्रादेख कृष्णचन्द्र ने दारुक से कहा कि तुम जाय उग्रसेन व वसुदेवजी से यादवों का नाश बलदेव की यात्रा सबकहौ हममी अभी योगाभ्यास से शरीर छोड़ निजधाम को जाते हैं जो कोई द्वारका में रहगये हों उनसे यहभी कहना कि अब इस द्वारका को समुद्र घोरडालेगा तिस से रथापै सगरहो अर्जुन के आनेकी प्रत्याशा कियेरहें जैसेही वे आवें तुरन्त सब उनके सग चलेजावें विना उनके क्षणमात्र भी द्वारका में न रहें हस्तिनापुर जाय अर्जुनमे भी हमारा सन्देश कहना कि जो कोई मरते गयते हमारे जन व स्त्रियां बाक्रीरहें उनकी रक्षा करते रहें यह कह अर्जुनको ले दारुका जाना सबको ये लेजायेंगे वज्र राजा किये जायेंगे पराशरमुनि बोने यह मृन दारुक बार बार हरिके प्रदक्षिणाके जैसा बतायाथा वैसा करनेगया अर्जुन को हस्तिनापुर मे बुलाय दारुका लेगया वहां सबके सन्देश कहा भगवान भी यहा वासुदेवात्मक परजस पा प्यान अपना में कर अपनाको सब प्राणियों में धारण करनेहुये भेडे फिर शूर्वासा मुनि ने एक समय कृष्णचन्द्र को कहाथा कि भायके चरण में रात लगने मे शरीर लूटेगा उमे स्मरण कर योगशुक्रहो पत्नी मार वृष के नीचे बैठगये



उसी समय मूसर स वचेहुये लोह को बाण की फोंकपर धराय जरानाम लुब्धक  
 आया उसने दूरसे भगवान् का चरण कमल मृगाकार देख वहीं बाण च-  
 लाया कि हरिके पाद कमल में लगा निकट जाय देखा तो चतुर्भुजी मनुष्य  
 आप बैठहैं भयभीतहो वार २ प्रणाम करने लगा व कहने लगा कि महाराज मैंने  
 विना जाने आपको मारा मेरे अपराध क्षमाकीजिये नहीं तो आपके कोपानल  
 से भस्महोजाऊगा श्रीहरिने कहा तेरी कुब्रगी, भूल नहीं न कुल पापहै जा इ-  
 मारे प्रसाद से तुम्हें स्वर्ग प्राप्त मिलेगा उसीसमय विमान आया, उससे उड़  
 लुब्धक स्वर्गको चलागया जरा के चलेजाने, पें वद्वभूत अथय अचिन्त्यवा-  
 सुदेवमय अमरा अजन्मा जरारहित नाशनीन अपमोय आखिलात्मा आत्मा  
 में आत्मा को सयोजितके श्रीहरि ने विविध मणियों को नैष मनुष्य गरीर  
 त्याग किया ॥

## अइतीसवां अध्याय ॥

दो० अइतिसयं अध्याय महँ हरि तिय लै प्राधि पार्थ ॥

गोपन सों हारे कह्य वज्र सुराज्य यथात्थ ॥ १ ॥

पराशर मुनि बोले कि अर्जुनजीन कृष्णचन्द्र च बलरामजीके मृतक शरीर  
 दृढ़ हुँदाय सब मृतक कर्म किये निसके पीछे अन्यलोगोंके भी कर्म किये करा-  
 ये कृष्णचन्द्र की स्त्री रुक्मिणीजादि = पट्टयानिया कहीथीं सब श्रीहरिके श-  
 रीर के साथ अरिन में जलगई रेवती नाम वनरागजी की स्त्री अरने पतिके  
 शरीर ले भस्महोगई उग्रसेन वसुदेव देवकी मंदिणी यह सब दाल तुन अरिन  
 में प्रवेश करगये व गई तब इनसबोंके भी प्रेतकर्म अर्जुनजी करकथय कृष्ण-  
 चन्द्र ही-गेप स्त्रियों व वज्रको ले हस्तिनापुरको चले मार्गमें सब हरिकी स्त्रियों व  
 वज्रकी पालना करतेहुये धीरे धीरे जातेथे सुधर्मा सभा व कल्पवृक्ष जैसेही हरिने म-  
 र्त्यलोकको छोड़ा स्वर्ग को चलेगये जिगदिन पृथ्वीनल धीठ भगवान् हरिपारम  
 धामको गये उमीदिन यह दुष्ट कलिकाल आया व हरिके जानेके दूसरेही दिन  
 रुक्मिणीजीका मन्दिर छोड़ सारा दारम समुद्र ने चोरडाली सब मन्दिर को  
 अस्तक समुद्र नहीं चोरमहा कर्षोकि वहाँ श्रीहरि नित्य विहार कर्ने आये हैं  
 पद स्थान विष्णुकी कीड़ाका स्थान होनेसे अतीव पुण्यदायक व पवित्र है

जो उसका दर्शनकरता सब पापोंभि छूटजाताहै अर्जुनजी पजावर्गें आय कहीं उत्तमस्थान देख सब जनों के सुख के लिये ठहरागये चोरो ने देखा कि अकेले अर्जुन १६१०० अनाथ स्त्रियां लियेजाते हैं लावो छीनलेवें ये सब अहीर ये एकत्रहो पापियों ने सम्मत् क्रिया कि अकेले धनुर्धारी अर्जुन नाथरहित इन स्त्रियों को हम लोगों का अनादर कर लिये जातेहैं इम से ऐ भाडयो ! सब को धिक्कारहै और इनको भीष्म द्रोण जयद्रथ कर्णादिकों को मारडालने से बडाव मण्ड है हम लोग गवई गावँ के रहनेवालों के बलको कुछ जाननेही नहीं इम से नानाप्रकार की अलौकिक माया करके लाठी पाठीले इम दुष्टको जीतही लेना चाहिये क्योंकि हमलोग नीचों का यह बड़ा अपमान करताहै यदि इमे गी न जीत लिया तो हमलोगों के बाहुबलसे क्याहुथा यह विचार लाठीपाठी लियेहुये सहस्रों चोर अर्जुन के ऊपर दौरे तब अर्जुनजीने हैंमके उन अहीरों से कहा है धर्मज्ञो ! यदि इमी समय मरनेकी इच्छा न हो तो नोटजायो परन्तु उन दुष्टों ने न गाना अर्जुन का अपमानकर मव धन व कृष्ण चन्द्र ही स्त्रियों को ले लिया तब अर्जुन जीने चादा कि गाण्डीव धनुष् चढ़ावें व एकबीवार में सबको विश्वसे पर हरिकी इच्छा तो औगही कुछ थी उनके चढ़ाये धनुष्ही न चढ़ा दैव २ कर बड़े गरिश्रमसे चढ़ाया भी फिर उमरपा तब अर्जुनने बहुत विन्ननाभीकी पर अन्य अस्त्रोंका स्मरण न किया दिठाय गाण्डीवही पर बाण चढ़ाय चलाया जिससे चोरोकी श्वान तो छेदगई पर ग न गी न मग तब अर्जुनने विचारा कि इन्हीं बाणोंके जोरसे अग्नि को खाण्डा बन दिनाया ये अब गोपा की लड़ाई में नहीं काम देते महाभारतमें महस्रों महापाकनी गजा इन्हींमे गोरे धन सब कृष्णचन्द्रही का प्रभावधा हमारे कानेम सुखगी न होना अर्जुनजीके देखतेही देखते अहीर स्त्रियोंको इम उधर सींचनेलगे कुछ ही यह दगा हुं कुछ इधर उधर भागगई जब बाण सब टूटकाट गये तो पारो धनुष्ही उाठे ऊपर रुकने लगे पर उनके देह में कुछ जानही नहींपग तब वे हँसने लगे रुठानक रहे अर्जुन देखतेही रहे जितनी स्त्रियाँ सबको अहीरादि ले चोगये ता अर्जुन अनीबहु स्त्रिन हो कष्ट कष्ट कहने हुये रोदन करने लगे दाय दृष्ण 'हमको त्याग चलेगये दाय सोई धनुष् वही बाण वही रथ वही घाड़े मरुके मव पृथ्वी मग नष्ट होगये जैसे वेदपाठी घातणको जोड़ अन्यको दान देनेमे पट हां जानदि गयो

अग्य बढ़ा बलवान्‌है विना महात्मा भाग्यके हमारी यह दशा हुई व इन नीज गो-  
 की यह प्रबलता हाय हाय वहीतो मेरी भुजा वही सूका वही स्थान वही हम  
 अर्जुन विन हरि सब असार होगया जैसे विना पुरय कोई उत्तम कार्य नहीं  
 ता हमारी अर्जुनता भीगही भीमता सब हरिहीकी कीहुईयीं अबे विना उन  
 चलीगई यदि होती तो ये अहीर न जीतपावे, हाय मार्गमें ऐमेही रोते धोते  
 अर्जुन मथुरा को गये वहा वज्रको राजा बनाय आये वहासे इन्द्रस्य की च-  
 आते थे मार्गमें किसी वनमें व्यासजी को देख प्रणाम किया इनको बहुत  
 दासदेस देसक चिन्तनाके व्यासजी बोले पार्थ बहुत उदासीन श्रीहत क्यों  
 कहौ तो क्या दगाहै क्या कहीं जिस स्त्रीके पति पुत्र नहीं उसके सङ्ग गमन  
 नहीं किया व ब्रह्महत्या तो नहीं की वा कोई बड़ी आशा से तुम्हारे प्राप्त  
 पायाहो उसकी अभिलाषा तो नहीं दृष्टी क्योंकि तुम बहुत अशुच्य देसपरते  
 वा कोई परिवारवाला भूषा नङ्गा तो नहीं आया जिसका पालन पोषण तुम  
 करकेहो वा अगम्य स्त्रीके सङ्ग गमन तो नहीं किया जो प्रमाहीन होगये  
 वा कोई नीरु गीठ पदार्थ वनवाय विना विप्रको दिये तो नहीं भोजन कर-  
 तया वा कृपण मनुष्य का धन तो नहीं हरलिया वा कहीं सूर्यमें लगी गरम  
 यार तो नहीं लगगई व किसीने इष्टदृष्टि तो नहीं लगादी यदि यह नहीं तो  
 गिहत कैसे होगये व कहीं तस इन्द्राहुआ जल तो नहीं ऊपर परगया वा कोई  
 झा लियेजाना था उससे उद्धन तुम्हारे ऊपर पानी तो नहीं परगया व सभाम  
 अपना से छोटोसे तो नहीं हरे तिसमे ऐसे होगयेहो यह सुन बड़ी अर्ध्वास-  
 अर्जुन बोले हे भगवन् ! मेरा निभदर सुनिये वज तेज वीर्य पराक्रम शोभा  
 या व धन धर्म जो कुछ हमलोगों के हरिये सो अब चलेगये जिनके मन्द  
 सुकाय बोलनेसेही हम लोगका गौरवया मो तिन विना तृणके समान ह-  
 के होगये जो पुरुषोत्तम हमारे अस्र बाण गाण्डीव व हमारे सारांशरूप ये वे  
 व चलेगये जिस हरिके अत्रंलोकनगात्रसे श्री जय सम्पत्ति उँचाई आदि गुण  
 पलोगों को नहीं छोड़ते थे मो हरि सबको छोड़ चनेगये भीष्म द्रोण दुर्ष-  
 नादि राजा तिस हरिके प्रभाव से मस्मीभूत होगये सो हरि महीतल छोड़  
 ये मो कुछ उनके चनेजाने से हरी नहीं श्रीहन होगये पारन निरावन भी-  
 न अशुच्यया यह पृथिवीही होगईहे जिन कृप्य नन्दके प्रभाव से अग्नि

हममें भीष्मादि महारथी पालीके समान जरे गोपोंने तिन हगको जीत लिया जिमके अनुभाव से गाण्डीव धनुष् का नाम त्रिलोकी मे हुआ तिनके विना गोपोंने लाठियों से गाण्डीव महिन हमारा अनादर किया हमारे माथ सहनों स्त्रिया यदुवशी व यदुवशविभूषण हरि की आनीधीं तो मार्ग में अहीरोंने लाठी वाप २ हमारा अति निरस्कारकर स्त्री तलिया सो निश्च्रीकना होजानेका कुछ आश्चर्य नहीं हय जीतेवने हे यही अद्भुतहै क्योंकि नीचोंके अपमानके कीचड़ के चिह्न मेरेअगमें होगये अब मुझमे अधिक कौन निर्द्वज्ज होगा यह मुन व्यासमुनि बोले हे अर्जुन ! तुग क्यों लजानेहो सत्र प्राणियों में कालही पेये ही गति जानो कालही प्राणियोंको बनाना वही विगाहना इमससारको काल मूलजान वैर्य धारण करो नदी समुद्र पर्वत मय धग्णी देवता मनुष्य पशु वृक्ष सर्प ये सत्र कालही के बनाये हुएहैं व कालही से इनका नाश होना हे इन ससार को कालरूप जान शान्तहोवो जैसा कृष्णचन्द्र का माह लय तुगने व ताया वैसाही हैं वे पृथिवी भाग उतारने के लिये अत्ररे थे क्योंकि इष्टराजाओं देत्योंके भाससे दबीहुई पृथिवी पूर्वहीं हरिके शरण को गईथी उसका भारही उतारने आये थे कुछ अन्य प्रयोजन यहां न था सो सब उन्हेले किया महागा रतादि में अनेक राजाजा को विनाया रहेसुहे महाभाररूप यदुवशी थे उन्हे भी सहाय तिसके पीछे अपने भागको चलेगये अब कोई काम बाकी नहीं रहा सो यह तो उनका कार्यही है रागयपर मृष्टि करते फिर पालने अन्न में नारा करते सोई इससण्यभी किया निममे ह पार्थ । पराजित होनेमे परिनाप न करो पुरुषोंके पराक्रम उतराचिहीवे समय होना? जिमकाल के प्रतापसे अकेले तुगने भीष्म द्रोणादिकों को जीता सो तिलोमों का निरात्र कालयग म क्या न्यून भी नहीं हुआ वह ईश्वर ओगोंके अरीर में पैठ इस विश्वसी पापना करना फिर अन्तकाल में नाश भी सबको करना सो जब सत्तारसी मृष्टिकृती थी मय ईश्वर ने सबको उत्पन्न किया था जब नाश का मगनजाय तो उन्हीं लोगोंको तुम्हारे वैगी बनाय गयाडाला नहीं तो इम विषय । कौन विश्वास मानेगा कि सहित भीष्म कौरवों को तुगने गागहो व अब अहीमें मे हागये इनदेना का विश्वास न मानाजाता पर यह मय ईश्वरका विराट् ता है तो तुमने कौर्वा को जीता था व अब अहीमें मे हागये ओग तो तुग किया तो निम चारये

भाग्य बढ़ा बलवान् है विना महात्मा भाग्यके हमारी यह दशा हुई है इन नीच गों-  
 पोंकी यह प्रबलता हाय हाय वहीती मेरी भुजा वही मूका वही स्पान वही हम  
 अर्जुन विन हरि सब असार होगया जैसे विना पुण्य कोई उत्तम कार्य नहीं  
 होता हमारी अर्जुनता भीमकी भीमता सब हरिदीकी की हुई थी अब विना उन  
 के चली गई यदि होती तो ये अहीर न जीतपाने हाय मार्गमें ऐसे ही रोते धोते  
 अर्जुन मथुरा को गये वहा वज्रको राजा बनाय आये वहासे इन्द्रप्रस्य की च-  
 लेआते थे मार्गमें किसी वनमें व्यासजी को देख प्रणाम किया इनको बहुत  
 उदासदेख देरसक चिन्तनाके व्यासजी बोले पार्थ बहुत उदासीन श्रीहृत् क्यों  
 हो कहो तो क्या दशा है क्या कहीं जिस स्त्रीके पति पुत्र नहीं उसके सङ्ग गमन  
 तो नहीं किया व ब्रह्महत्या तो नहीं की वा कोई बड़ी आशा से तुम्हारे पास  
 आया हो उसकी अभिलाषा तो नहीं दूटी क्योंकि तुम बहुत अष्टव्याय देखपरते  
 हो वा कोई परिवारवाला भूखा नङ्गा तो नहीं आया जिसका पालन पोषण तुम  
 न करसके हो वा अगम्य स्त्रीके सग गमन तो नहीं किया जो प्रभाहीन होगये  
 हो वा कोई नीच मीठ पदार्थ बनवाय विना विप्रको दिये तो नहीं भोजन कर  
 लिया वा रूपण मनुष्य का धन तो नहीं हरलिया वा कहीं सूर्यमें लगी गरम  
 बयार तो नहीं लग गई व किसीने दृष्टदृष्टि तो नहीं लगादी यदि यह नहीं तो  
 श्रीहृत् कैसे होगये व कहीं नख दूबादूबा जल तो नहीं ऊपर परगया वा कोई  
 घड़ा लिये जाता था उससे उखल तुम्हारे ऊपर पानी तो नहीं परगया व संग्राम  
 में अपना से छोटोंसे तो नहीं हारे निसमे ऐसे होगयेहो यह सुन बड़ी ऊर्ध्ववास  
 ले अर्जुन बोले हे भगवन् ! मेरा निरादर सुनिये चल तेज वीर्य पराक्रम शोभा  
 छाया व धन धर्म जो कुछ हमलोगों के हरिये सो अब चलेगये जिनके मन्द  
 सुसुकाय बोलनेसेही हम लीगोंका गौरवथा सो तिन विना टणके समान ह  
 लके होगये जो पुरुषोत्तम हगारे अस्त्र बाण गाण्डीव व हमारे सारांशरूप ये वे  
 अब चलेगये जिस हरिके अबलोकनगात्रमे श्री जय सम्पत्ति उंचाई आदि गुण  
 हमलोगोंको नहीं छोड़ते ये सो हरि सबको छोड़ चलेगये भीष्म द्रोण दुर्यो-  
 धनादि राजा तिस हरिके प्रभाव से मस्मीभूत होगये सो हरि महीतल छोड़  
 गये सो कुछ उनके चनेजाने से हमी नहीं श्रीहृत् होगये नारन निर्यावन श्री-  
 हीन अष्टव्याय यह प्रथिवीही होगईहे जिन रूपण चन्द्रके प्रभाव से अग्नि

हम भीष्मादि महारथी पाण्डुके सगान जरे गोपोंने तिन हमको जीत लिया जिमके अनुभाव से गाण्डीव धनुष् का नाग त्रिलोकी में हुआ तिनके पिता गोपोंने लाठियों से गाण्डीव मठिन हमारा अनादर किया हमारे साथ सहस्रों स्त्रिया यदुवर्णा व यदुवर्णादिभूषण हरि की आनीधीं रो मार्ग में अहीरोंने लाठी धात्र २ हमारा अति निरस्कारकर छीनलिया मो निश्च्रीकना होजानेका कुछ आश्चर्य नहीं हम जीतेवने हें यही अद्भुतहै क्योंकि नीचोंके अपमानके फीचड़ के चिह्न गेरेअगमें होंगये अब मुझमे अधिक कौन निर्छेज्ज होगा यह सुन व्यासमुनि बोले हे अर्जुन ! तुम क्यों लजातेहो मम प्राणिया में कालकी ऐंसे ही गति जानो कालही प्राणियोंको बनाता वही विगाड़ना इम ससारको काल मूलजान धैर्य धारण करो नदी समुद्र पर्वत सप्त धरणी देवता मनुष्य पशु वृक्ष सर्प ये सब कालही के बनाये हुएहें व कालही मे इनका नाग होना हें इन ससार को कालरूप जान शान्तहोरो जैसा कृष्णचन्द्र का ग्राह रूप तुमने व ताया बैसाही हे वे पृथिवी भार उतारने के लिये अवनरे थे क्योंकि दुष्टगजाओं दैत्योंके भारसे दबीहुई पृथिवी पृर्वही हरिके शरण को गईथी उसका भारही उतारने आये ये कुछ अन्य प्रयोजन यहाँ न थासो सब उन्हेंते किया महागा रतादि में अनेक राजाओं को विनागा रहेखुहे महाभाररूप यदुवर्शी थे उन्हें भी सहाय तिसके पीछे अपने भागको चलेगये अब कोई काम बाकी नहीं रहा मो यह तो उनका कार्यही हे सागपर मृष्टि करने फिर पालने अन्न में नाश करते सोई इससाम्यभी किया निमगे हे पार्थ ! पराजिन होनेमे परिनाप न करो पुरुषोंके पराक्रम उदात्तिहके समय होनाहै निमकाल के प्रतापमे अने तुमने भीष्म द्रोणादिकों को जीता मो निगलोमों का निरात्म कालपण मे क्या न्यून भी नहीं हुआ वह ईश्वर ओंगेके शरीर में पैठ इम विश्वकी पालना करना कि अन्तकाल में नाश भी सबको करेगा मो जब ममारही मृष्टिकनी थी तब ईश्वर ने सबको उत्तरन किया वा जब नाशका समयआवा तो उन्हीं लोगको तुम्हारे बैरी बनाय मखाडाना नहीं तो इम विषय नौन विचार मानेगा कि सहित भीष्म कौरवों से तुमने माराहो व अब अहीमें से रागमे इनदोना का विश्वास न मानाजाना पर यह सब ईश्वरका विनाश है जो तुमने कौरव को जीता था व अब अहीमें से रागमे जो जो तुम चिये हो विना जानये

मार्ग में चोरोंने छीनलिया उसकेगी समाचार तुमको सुताने हैं अष्टावक्रमुनि  
 बहुत दिनोंतक जलशायीही सनातनब्रह्म जपने रहे जब देवोंने दैत्योंको जीता  
 तो मुमेरुषर्वत पै चढ़ा उत्सवहुआ उसके देखने को स्त्रिया वहा जाती थीं  
 मार्ग में अष्टावक्रजी को देखा उसमें रम्मा तिलोत्तमादि सैकरों स्त्रियार्थी सचकी  
 सब मुनिकी स्तुति करनेलगीं मुनितो आकण्ठ जल में खड़े तपस्या करते ये  
 इनलोगों ने बड़ीगारी स्तुतिकी जैसे वे प्रसन्न होतेगये तैसे तैसे वे और स्तुति  
 करती रहीं तब मुनिराज बोले हम तुम लोगोंकी स्तुतिसे प्रसन्नहुये जाहेइच्छम  
 भी पदार्थ मांगोगी तो देंगे उनमें रम्मा तिलोत्तमादि उत्तम अम्परों ने तो कहा  
 आप प्रसन्नहुये हम् लोगोंने क्या क्या नहींपाया अन्य स्त्रियोंने कहा महाराज  
 यदि प्रसन्नहो तो हम पुरुषोत्तम श्रीविष्णुको चाहती हैं कि हमारेपति हों मुनि  
 ने कहा बहुत अच्छा हरि तुम्हारे पतिहोंगे, इतनाकह जलमें बाहरहुये स्त्रियोंने  
 मुनिको देखा तो आठ स्थानों से टेढ़े महाकुरूप थे मुनिको देख, तिन २ स्त्रियों  
 को हँसाई, आई तिन तिनको मुनिने शापदिया कहा हमको कुरूपदेख जाहेसे  
 तुम हँसतीहो जावो, पुरुषोत्तम पति तो तुमको अवश्य हमारे प्रसाद से मिलेंगे  
 पर हमारे शापसे जब तुम्हारे पति न रहेंगे तो चोर तुमको लेजावेंगे तब उन्हीं  
 ने फिर मुनिकी गार्थना की मुनिने कहा अच्छा चोरोंके यदागे फिर इन्द्रपुरीको  
 जावोगी हे अर्जुन ! इसीहेतु वे देवस्त्रिया कृष्णचन्द्र को तो प्राप्त हुई पर अत  
 में उन्हें चोरोंनेलूटा तिमसे अर्जुन तुम कुछ भी शोच न करो उन्हीं हरिने सब  
 सहार किया, अब बहुतही गीघ्र तुम लोगोंका भी सहार किया चाहते हैं इसीसे  
 ब्रह्म तेज पराक्रम अग्नीमें हर लियाहै जो उत्पन्न होनाहै उसका गरण अवश्य  
 होनाहै इसी भाति जो अत्युच्च होता बह पतित गी होना यह सयोग नश्वर है  
 सदा नहीं रहसक्ता ॥

श्लो० यासों जो अति पण्डित ज्ञानी । तेन हर्ष अस करारहिं गलानी ॥  
 तिनकी शिक्षा तामस लोगी । केरतरहत नहिं पावत, शोगी ॥ १  
 तासों तुम निज बन्धु समेता । सेमुझि जाहु बच तपके हेता ॥  
 छोड़ि सफल धनधामरु राज् । चले जाहु लै भाइ समाज् ॥ २  
 तासों जाहु घर्म सुत पाहीं । कहहुजाय ममवचन मुदाहीं ॥  
 परमों भाइन सहित विहाई । राज्य तपस्या भरै मनलाई ॥ ३

यहसुन अर्जुन मे ततकाला । जो कुळ देवा सुना हवाला ॥  
 सो सब निज भाइनसों भाखा । तनिजनहींजियसशय राखा ॥ ४ ॥  
 अर्जुनसों सुनि व्यास सुवानी । धर्मराज आदिक विज्ञानी ॥  
 दीन परीक्षित कहँ सब राजू । आपगये धन सहित समाजू ॥ ५ ॥  
 यह मैत्रेय सहित विस्तारा । नुममनचरित कृष्णअतारा ॥  
 यादव भूषण केर निरूपा । सकल विलक्षण बहुरिअनूपा ॥ ६ ॥  
 इति श्रीमद्विष्णुपुराणेपद्मर्गेऽरोऽष्टत्रिंशोऽध्याय ॥ ३८ ॥

## अथ विष्णुपुराणस्य ॥

पष्ठोऽश ॥ ६ ॥

### पहिला अध्याय ॥

घो० या छठयें शुभ अक्ष महँ अहँ आठ अध्याय ॥  
 मुक्तियुक्ति साधन विरति कलिप्रभाव सवगाय ॥ १ ॥  
 तहँ पहिले अध्याय महँ श्रवण दुखद कलिगान ॥  
 हरिपाण्डव निर्व्याण सब कहँस सहित विधान ॥ २ ॥

पचमअश की कथा सुन मैत्रेयमुनि पुछनेलगे हे ब्रह्मन् ! आपने सृष्टिग-  
 न्दन्तर कथा व तिनके वर्गोंके चरित विस्तार सहित कहे अब ह्य मदाप्रत्यके  
 सगाचार सुना चाहते हैं जो कल्पान मे होनेहे पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय !  
 प्राकृत प्रलय व कल्पान्न प्रलय में जिस रीतिसे उपमहार होताहै ह्यमे यथा-  
 विधि सुनिषे एकमासमें पितरों की श्राद्ध गति होतीहै वर्षभर में देवोंकी व जब  
 चारोंयुग महत्कार घीतते हे तो ब्रह्माका दिन व रात्रि हानीके मरणयुग त्रेसा टापर  
 व कलियुग ये ४ युगोंके देवताओं के वास इत्थार वर्ष मे चारोंहोने हे प्रथम न-  
 त्ययुग व अन्तिम कलियुग को छोड़ सबयुग सदा जाने २ युग के समान  
 होने हे श्राद्ध सत्ययुग में ब्रह्मा सृष्टिकरते व जन्त्य कलियुग में अक्षर पदी इन  
 दोनों में विशेषता हे इनकी कथा सुन मैत्रेयमुनि बोले निम्न कलियुग में गार



मार्ग में चोरोंने छीनलिया उसकेगी समाचार तुमको सुनाने है अष्टावक्रमुनि बहुत दिनोंतक जलगायीहो सनातनब्रह्म जपने रहे जब देवोंने दैत्योंको जीता तो सुमेरुपर्वत पे चढ़ा उत्सवहुआ उसके देखने को लिया ब्रह्मा जाती थीं मार्ग में अष्टावक्रजी को देखा उसमें स्मृता तिलोत्तमादि मेकरों स्त्रियार्थी सबकी सब मुनिकी स्तुति करनेलगीं मुनितो आकण्ठ जल में खड़े तपस्या करते थे इनलोगों ने बड़ीभारी स्तुतिकी जैसे वे प्रसन्न होतेगये तैसे तैसे वे और स्तुति करती रहीं तब मुनिराज बोले हम तुम लोगोंकी स्तुतिसे प्रसन्नहुये चाहेदुर्द्धम भी पदार्थ मांगोगी तो देंगे उनमें स्मृता तिलोत्तमादि उत्तम अप्परों ने तो कहा आप प्रसन्नहुये हम लोगोंने क्या क्या नहींपाया अन्य स्त्रियोंने कहा महाराज यदि प्रसन्नहो तो हम पुरुषोत्तम श्रीविष्णुको चाहती हैं कि हमारेपति हों मुनि ने कहा बहुत अच्छा हरि तुम्हारे पतिहोगे इतनाकह जलमे बाहरहुये स्त्रियोंने मुनिको देखा तो गाठ स्थानों से टेढ़े महाकुरूप थे मुनिको देखाजिन २ स्त्रियोंको हँसाई आई तिन तिनको मुनिने शापदिया कहा हगको कुरूपदेख जाहेसे तुम हँसतीहो जावो पुरुषोत्तम पति तो तुमको अवश्य हमारे प्रसाद से मिलेंगे पर हमारे शापमे जब तुम्हारे पति न रहेंगे तो चोर तुमको लेजावेंगे तब उन्हीं ने फिर मुनिकी गार्थराकी मुनिने कहा अच्छा चोरोंके यहाँमे फिर इन्द्रपुरीको जावोगी हे अर्जुन । इसीहेतु वे देवस्त्रिया कृष्णचन्द्र को तो प्राप्त हुई पर अत में उन्हें चोरोंनेलूटा तिससे अर्जुन तुम कुछ भी शोच न करो उन्हीं हरिने सब सहार किया जब बहुतही शीघ्र तुम लोगोंका भी सहार किया चाहते हैं इसीसे बल तेज पराक्रम अभीमे हर लियाहै जो उत्पन्न होताहै उसका गरण अवश्य होताहै इसी भाँति जो अत्युच्च होता वह पतित गी होता यह सयोग नश्वर है सदा नहीं रहसकता ॥

चौ० चासों जो अति पण्डित ज्ञानी । तेन हर्ष अरु करहिँ गलानी ॥

तिनकी शिक्षा तामस लोगा । करतरहत नहिँ पावत, शोगा ॥ १ ॥

तासों तुम निज बन्धु समेता । समुझि जाहु वन तपके हेता ॥

छोड़ि सफल धनधामरु राज । चले जाहु लै भाइ समाज ॥ २ ॥

तासों जाहु घरमें सुत पाहीं । कहहुजाय समबचन सुहाहीं ॥

परसों भाइन सहित विहाई । राज्य तपस्या भएँ मनसाई ॥ ३ ॥

यहसुन अर्जुन मे ततकाला । जो कुछ देखा सुना हवाला ॥  
 सो सब निज भाइनसां भाग्वा । तनिरुनहींजियसशय राग्वा ॥ ४ ॥  
 अर्जुनसां मुनि व्यास सुवानी । घर्म्मराज आदिक विज्ञानी ॥  
 दीन परीक्षित कहँ सब राजू । आपगये धन सहित समाजू ॥ ५ ॥  
 यह मैत्रेय सहित विस्तारा । तुमसनचरित कृष्णअवनारा ॥  
 यादव भूषण केर निरूपा । सकल विलक्षण बहुविअनूपा ॥ ६ ॥  
 इति श्रीमद्विष्णुपुराणेपञ्चमोऽशोऽष्टत्रिंशोऽध्याय ॥ ३८ ॥

## अथ विष्णुपुराणस्य ॥

पष्ठोऽश ॥ ६ ॥

### पहिला अध्याय ॥

षो० या छठयें शुभ अश महुँ अहुँ आठ अध्याय ॥  
 मुक्तियुक्ति साधन विरति कलिप्रभाव गवगाय ॥ १ ॥  
 तहुँ पहिले अध्याय महुँ श्रवण दुखद कलिगान ॥  
 हरिपाण्डव निर्य्याण सब कहँसै सहित विधान ॥ २ ॥

पञ्चमअश की कथा सुन मैत्रेयमुनि पूछनेलगे हे ब्रह्मन् ! आपने सृष्टिग  
 न्वन्तर कथा व तिनके वशोंके चरित विस्तार सहित कहे अब हम मठापलयके  
 समाचार सुना चाहते हैं जो कल्पान में होतेहैं परानरमुनि बोले हे मैत्रेय !  
 प्राकृत प्रलय व कल्पान् प्रलय में जिस रीतिसे उपभदार होताहै हममे यथा-  
 विधि सुनिये परगावमें पित्तों की शिवा रात्रि होतीहै वर्षारमें दवोंकी व जब  
 चारोंयुग सहस्रवार घीततेहैं तो अत्राका दिन व रात्रि होतीहै मध्ययुग त्रेना द्यार  
 व कलियुग ये ४ युगहैं त्रेनामों के चार हजार वर्षों में चारोंहोतेहैं परम न-  
 त्ययुग व अन्तिम कलियुग को छोड़ सबयुग सदा अपने २ युग के समान  
 होतेहैं पाच सत्ययुग में प्रकृतिसृष्टिरगते व अन्तर कलियुग में सदा यदी इन  
 दोनों में विशेषता है इनकी कथा सुन मैत्रेयमुनि बोले जिस कलियुग में पा

चरण के धमका एकही पाद रद्विजाना है तिम का स्वरूप आप कृपाकर कहिये  
 पराशरमुनि बोले मैत्रेयजी कलियुगका स्वरूप जो आप पूछनेहो इम विस्तर  
 से बखानने हँ सुनिये कलियुग में मनुष्यों की प्रकृति यर्णाश्रमों के आचार में  
 निष्ठ नहीं होती न माम ऋक यजुर्वेद के पढ़ने पढ़ाने में हार्ती धर्म सहित-  
 कलियुगमें विवाह नहीं होते न गुरु शिष्यका गावहोता स्त्री पुरुषोंका बगवहारभी  
 यथावस्थित नहीं न अग्नि व अन्वदेवोंका क्रम यज्ञादि होता कलि में चाहे  
 जिस देश व जिस कुल में उत्पन्नहो पर जो बली हो उही सबका गर्जा होता  
 विवाह के विषय में सब वयों से बड़ा उही कन्या का वर होगा जो धनवान्  
 होगा अन्य जातिपाँतिका नियम कुछभी नहीं नक्षत्र क्षत्रिय वैश्य इनकी कोई  
 जीविका न नियत रहेगी जो जौनचाहेगा बड़ी करेगा कलि में जिराके सुखसे  
 आँय बाँय साँय जो कुछ निकल गया बड़ी गाल्छ होगया व देवताभी सबी हँ  
 सब आश्रम भी सब के हँ कुछ नियत नहीं उपवास तीर्थयात्रा दान देना व  
 धर्म कलि में जिसकोजैसा नीकलगता वैनाही करता चाहे गाल्छकी आज्ञाहो  
 वा न हो लोगोंको थोडेसेही धन में धनाढ्योंकासा धमयड होजाना स्त्रियोंको  
 केवल अच्छे काले चीकने आदि वालोंसेही रूपका मद होजाता रजादि पहिरने  
 की कुछ आवश्यकता नहीं जब वनाय कलियुग सरायगा तो सुवर्णमणि रत्न  
 वस्त्रादिकों के क्षयहोजाने के कारण स्त्रिया केवल धारही का शृङ्गार करेंगी व  
 धनहीन पतिको कलिमें स्त्रिया छोड़देगी क्योंकि इम युगमें स्त्रियोंका धनहीपुरुष  
 भर्त्ता होसकताहै फिर स्त्रियोंके विवाय अन्वलोनोंकी भी जो कोई बहुतकुछ देगा  
 वही स्वामीहोगा कुछ यह नियम नहीं रहेगा कि कुनीनही मोई स्वामीहो व नीच  
 ही सेवकहो फिर मनुष्यों को इननीही समाप्ति मिलेगी जिसमें घर धनवासके  
 न कि दानादि देनेके लिये लोगोंकी मनिभी द्रव्यही बचोरेनेनक पत्रुवेगी न  
 कि आत्मज्ञान कनितक द्रव्यभी आने खाने पीनेही को कठिनता भे अटेगी  
 न कि दानादि के लिये भी कलि में स्त्रिया व्यभिचारिणी बहुधाहोंगी क्योंकि  
 सुन्दरेही पुरुष की इच्छा उनकी होगी पुरुषभी परधन पर स्त्रीही की वाञ्छा  
 किया करंगे व चाहे कोई इष्ट मित्र भाई बन्धु प्रार्थना भी करे पर मनुष्य अपनी  
 आधीकोठी की भी हॉनिकरं उनको कुछ न देंगे कलि में अन्य शूद्रादि भी  
 ब्राह्मणोंको अपने समान समझेंगे गायोंकी गुरुता वृध परहीहोगी बहूषा कलि

में अनाशुष्टिही हुआकरेगी उससे भूलण्यासके मारे प्रजा सदा वादगेंकीही ओर देखाकरेगी कि कब पानी बरमानाहै जब बार २ ऐनाहोगा तो अन्य लोगभी त पस्त्रियों के सगान कन्दमूलादि आहार करनेहुये नाश को पढ़वेंगे सदा सर्वदा फलि में अकालही पराकरेगा इम मे लोग उमका क्लेश जब न सहमकेगे तो इधरउधर जाय मरमराय जायेंगे लोग विना स्नान पूजा पाठ अग्निदेव अतिथि के पूजा करेही भोजन करलेंगे जल पिण्डदानादि पितृक्रिया कोई मी न करेगा व स्त्रियां अनिचबल छोटे २ डीलकी बहुत २ अन्न खानेवाली एरु २ बहुत २ सन्तान उत्पन्न करनेवाली थोड़ी भाग्य व बड़ी अभिलाषा रखनेवाली होंगी व दोनों हाथोंसे मूड़ खजुभातीहुई अनादर पूर्वक स्त्रिया सामु श्वशुर पतिआदि श्रेष्ठजनोंकी आज्ञाभङ्ग करदालेंगी फिर अपने पालन पोषणमें तरार सुदस्वभाव देह मस्कार रहित कठोर व मिथ्यावचन बोलनेवाली होंगी फिर कलिकी स्त्रिया ऐसी कुरशील होजायेंगी कि कुप्टस्वभाव अन्यपुरुषोंकी वाञ्छा सदाकरेंगी व अपने पुरुषोंके साथ दुराचारहीकरेंगी ब्रह्मचारी लोग वेद न पढ़ेंगे न व्रतरहेंग गृहएर लोग हवन दानादि क्रिया न करेंगे वानप्रस्थ लोग ग्रामोंमें आय २ भोजन पत्र स्त्री आदि ग्रहण करेंगे सन्न्यासी लोग सन्न्यास छोड़ अन्य लोगोंसे नानाप्रकार के स्नेह करेंगे राजालोग पोतके ओदर से प्रजाकी द्रव्य तो हरिनेंगे पर रक्षा न करेंगे तिथी भांति व्यापारियों के ऊर कर तो पा उदेंगे पर उगने मानअमवाय की रक्षा न करेंगे जिमके २ हाथी घोड़े पालरी आदि हांग वे मत्र राजा क हायेंगे जो २ लोग दीन धनहीन होंगे वे सेवक कदावेंगे वैश्य लोग कृपी वा- णिज्य गोरक्षादि अपनी वृत्तिलोड़ परसेवा धानि छप्पर आदि धाना शूद्रों की वृत्ति अगीतार करेंगे व इष्टशूद्रलोग सन्न्यामियों तपस्त्रियोंकी वृत्ति छो धारण करनेके लिये यद्यपि मस्कार रहिन भी होंगे तथापि पाषण्ड वृत्ति में न- त्परहेंगे अकालमें भी पोत पानेके भयमे पीड़ितहो भाग २ प्रजाजोग जिन देशोंमें गेहू यव धान आदि अन्नहोने हागे वटा बर्षमें नववेदपार्ग नष्टहोजाये व जनोके पाषण्डी होने अधर्म की वृद्धि दाने धर्म लोप होने नाटिमे मनु- ष्यों की आयुष् थोड़ी होने लगेगी सबलोग नाम विधिसे विपरीत तप करने लगेंगे व राजालोग पाषण्डि से प्रजा के सग पर्वार बर्षेगे इसलिये धानकी कीही मृत्युहोने लगेगी ५ । ६ । ७ वर्षकी स्त्रियोंके २ ८ । ६ । १० वर्षके पुरुषों

के लड़ ही लड़के होनेलगे १२ वर्षों लोगोका बुढ़ापा आजावेगा प्रयोजन कि २० वर्षसे आगे कोई न जीवेगा सबजन अल्पबुद्धि भूटाआचरण करने वाले अन्तःकरण के दृष्टहो योड़ेई कालमें जहा तश नाश होजायेंगे हे मैत्रेया! जब २ पाखण्ड की बढ़ती देखपरै तब २ कलियुगकी बढ़ती जाननी चाहिये जब जब वेदमार्गानुमार चननेवाले महात्माओंकी हानि जानिपरै तब २ भी कलियुगकी वृद्धि समझनी चाहिये जब धर्मात्मा मनुष्य कुछ धर्म कर्म करनेका प्रारम्भ करें व उसकी सिद्धि न हो तो कलियुगकी बढ़ी प्रधानता जाननी चाहिये जब २ यज्ञ करनेवाले लोग विष्णु भगवान् पुराण पुरुषोत्तम के लिये यज्ञ न करें तब २ कलियुगही का बल बूझना जब वेदवचनमें मनुष्यों की प्रीति न हो व पाखण्डमें हो तब अवश्य कलिकाल की प्रचलता समझनी चाहिये कलियुगमें जगत्पति जगत्सर्ता परमेश्वर विष्णुकी पूजा पाखण्ड मार्गों में आय मनुष्य न करेंगे पाखण्ड के गारे सत्यानाशहो लोग कहने लगेंगे कि देवता पूजन विप्रोंको भोजन देने वेदवचन मानने से क्या है व गेघ घोड़ी वर्षा करेंगे अन्न रुम उरजेगा फलोंमें बहुत रुम गूदा निकलेगा सब वस्त्र सन सुतरी आदि केही होजायेंगे सब वृक्षोंके पत्ते फल शमी वृक्षके पत्ते फलोंके समान छोटे होजायेंगे ब्राह्मणादि वर्ण सब शूद्रनय होंगे लोगोके बढ़े मान्य गुरु सामु श्वशुर होंगे सारेआदि सब सुहृद गिनेजायेंगे लोग श्वशुरोंके पीछे लगेहुये यह बकने फिरेंगे कि किसकी माता किसके पिता जन पुरुष अपने कर्मही के अनुमार भोगनाहै तो ये क्या करते व करेंगे कायिक वाचिक मानस पापों के करनेसे यद्यपि लोगोको बढ़े २ फटहोते भी रहेंगे तथापि अल्पबुद्धि नर प्रति दिन पाप करनेही जायेंगे मिथ्यालापी शौचहीन निर्लज्ज मनुष्यों के लिये जो २ वस्तु कलिकाल में होगी दु सहीके लिये न कि ऐमे दुर्गोंको कुछभी सुख हो ऐना कोई २ कहीं कहीं मनुष्य मिलेगा जो वेदाध्ययन स्वाहा स्वाहा बपट कारहीन न हो परन्तु ॥

चौ० जप तप नियम धर्म व्रतधारी । कृत त्रेता द्वापर नर नारी ॥

जो फलपाशत सो कलि माहीं । हरिसुभिरणसों लहतअहाहीं ॥ १ ॥

## दूसरा अध्याय ॥

श्री० कृष्ण द्वितीयाध्याय महँ कलियुग एक गहान ॥

नारिशूद्र आविहु लहत मुक्ति करत हरिगान ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय ! कलियुग के विषयमें व्याममुनिने भी जो कुछ कहा है तुम्हें सुनाते हैं एक समय सब मुनियों को यह विचार आया कि किस युगमें कौन ऐसा थोड़ासा गुण है जो बड़ा फल देता है यह सन्देह मिटाने के लिये सब मुनिलोग व्यासजीके निकटगये जाय देखा तो हमारे पुत्र व्यामजी गङ्गाजी में अधनहाये खड़े हैं सब मुनिलोग जबतक व्यासजी स्नानके नि कलाचाहें एक वृक्षके नीचे खड़े हो रहे जब व्यामजीने बुझीमार शिर ऊपर उठा या तो मुनियोंने सुना कि व्यास कहते हैं कलियुग साधु है फिर बुझीमार शिर उठाया कहा हे शूद्र ! तूभी धन्य है फिर बुझीमार शिर उठाया कहा स्त्रिया सभमे धन्य है इनके समान और कौन है ऐसा कह जब विधिपूर्वक स्नान के व्यामजी जलसे निकले तो मुनिलोगोंने आय प्रणाम किया व्यामजी ने भी उनके यथोचित प्रणामादि के आसनादि दे बैठाय पूछा आप लोग किसलिये यहा आये सो सुनाइये मुनिगण बोले हमलोग कुछ सशय आप से पूछने आये ये पर उसे तो भ्रम रहने दीजिये भ्रम औरही सन्देह दृजा उमे निवारण कीजिये आपने कहा कलियुग साधु है शूद्र धन्य है स्त्रिया अतीव धन्य है सो इमका आशय जो गुप्त न हो तो कृपा सहित सुनाइये इसका प्रयोजन हमलोगोंके विचारमें नहीं आया यह सुन व्यासजी बोले हे मुनिधेष्टो ! हमने जो साधु २ कहा है उसका प्रयोजन सुनाते हैं जो जप तप ब्रह्मचर्यादि करनेसे मत्स्ययुगमें १० वर्ष में पुरुष को फल मिलता था वह जेतामें एक वर्षमें टापर में एक मासमें रही फल कलियुग में मात्रि दिनमें मिलता है इसी कारण सब युगोंमे कलियुगकी हमने साधु कहा ॥

श्री० कृतयुग महँ जो प्यावत पावत । प्रता यधु तिये मद् जायत ॥

टापर पूजन में फल सोई । हरिहर्ष में सो कलिमई सोई ॥ १ ॥

व ये ईश्वरी मुक्ति कर्म से मनुज्य कलियुग में बड़ाधर्म पाता है इसी से हम

इस युगके ऊपर अतीव सन्तुष्ट हैं व शूद्रोंके ऊपर इससे हम प्रमत्त हैं व उनको धन्य कहने हैं कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य नानाप्रकार के वननियम पूजासामग्री एकत्र कर प्रथम वेद पढ़ने फिर धर्म पानेके लिये विविध गतिके यज्ञ करते करते फिर श्रीकृष्णकीर्त्तन सहित सब प्रकारकी कथा कहते कहते विना हरिके अर्पण कियेमी श्राद्धादिमें भोजन करते हग्नीर्त्थ छोड़ अन्य निन्द्य तीर्थोंमें भी फिरते फिरते जो सब नरकपातके सिवाय और कुछ नहीं देते फिर यज्ञ तपस्यादि जो कुछ करें विधि पूर्वकही करें अविधि कम्मे कराते से दोष होता फिर अच्छे २ पदार्थ भोजनपान करने के योग्य विना सप्त अतिथि आदिकों को दिये इच्छा पूर्वक भोजन करने को नहीं गिलने इस रीतिमें जितने कार्य ब्राह्मणादि तीन वर्णोंके हैं सब परतन्त्र हैं इससे बड़े २ क्लेशों से अपने २ लोकोंको पाते हैं व शूद्र केवल द्विजातियों की सेवारूप एकही यज्ञसे अपने लोकको जाते हैं इसमें वे धन्यतर हैं फिर इन शूद्रोंके लिये भक्ष्याभक्ष्य पेयापेयके लिये कोई नियम नहीं सब समय सप्त दिन सब वस्तु स्वा पीमक्रे हैं इसीमें इनको हमने साधु कहा व स्त्रियों को इसलिये हमने धन्य कहा जिससे पुरुष लोग अपने धर्मही के अनुसार तो धन दौलत इकट्ठा करते फिर यथाविधि योग्यायोग्य विचार माणियों को देते शास्त्रानुसार यज्ञ करते तिस धनके घटोरने व खनने में बड़े २ कष्ट होते हैं फिर उसको अच्छे प्रकार घनने में अनेक कष्ट होनेही हैं इन्हें आदि नानाप्रकार के कर्मका कराय तो कहीं बड़े क्लेशमें पुरुष प्राजापत्यादि लोकोंको क्रम २ से जाने पृष्ठाकी नहीं और स्त्रियां तो मनसा वाचो कर्मणा अपने पति ही सेवा केवल एकही कर्म के करने से अपने गतिके लोकको सीधी चली जाती हैं कुछ जैसे पुरुषों को पल्लोक साधन में बड़े २ ऊरा होने स्त्रियों को नहीं इसीमें तीमरीवार स्त्रियोंके विषयमें साधु पद हमने कहा यह बात तो हमने तुमसे घनाई अब जिम लिये यथा आयेहों पूछो सब वनावेगे-परांगरमुनि बोले कि जब मुनिलोगों से व्यासजी ने प्रेमा कहा तो उनलोगों ने कहा जो हृणको पूंछना था वह तो आपने औरही प्रश्नके उत्तरमें कह दिया यह सुन व्यासजी चतुर्त हैस कहनेलगे हे मुनिलोगो ! हमने दिव्यदृष्टि से तुम्हारा अंगिभाष जानलिया था इसीमें उमी प्रसङ्गों कलिमुगादिकों को धन्यकरियाया थोड़ेही उपायसे कलि युगमें धर्म सिद्ध होना है व हम मनुष्यों के हाथ है कि अपने धर्म पे चलेना

व हरिर्नार्त्तन जनरूप कर्म मे पापरूप कीचड़ घोषडालें व शूद्रलोग ब्राह्मणादि तीनवर्णों की मेरामे अपना पाप धोवें स्त्रिया अनायास अपने २ पानि की सेवासे धोवें तिसी भाति तुमसे कलियुग की भी प्रशमा की मत्पयुगादि में द्विजातियों को जप तपस्या आदि में बडा क्लेश होताथा अब कलियुग में भगवत्कीर्त्तनसे सब काम मिट्टि कगे यह विना तुम्हारे पृथ्वीही दग्ने कह दिया अब अन्य क्याकरना है परशु मुनि बोले ॥

चौ० यहमुनि मुनि गण पूज्यहुव्यासा । करिप्रणाम सद्यगे निजवासा ॥  
 व्यास कथन सों गयहु सँदेह । सुमिरन लगे हरिहि करिनेह ॥ १ ॥  
 तुमहूसों यह रहस ब्रह्मना । अतिखल कलिमहँमुगुणमहाना ॥  
 जो हरिकीर्त्तनहों सों भानी । मुक्तहोत चहु बड़ अज्ञानी ॥ २ ॥  
 प्राकृत अन्त प्रलय जा तुमहू । जगत सहार हेतुकी सबहू ॥  
 पृथ्वी कहत सुनहु चित लाई । मुनिनिजाचित गुनि कहुचड़ाई ॥ ३ ॥

## तीसरा अध्याय ॥

दो० कहत तृतीयाध्याय मह काल मान सक्षेप ॥  
 अरुनेमिच्चिक प्रलय अति भयद प्रिरति हितलेप ॥ १ ॥

परशुरमुनि बोले सब प्राणियों के लिये नैमित्तिक प्राकृतिक आत्पन्निकये तीन प्रलयह जो त्रयाके प्रतिद्वुआकरता है पर नैमित्तिक प्रलय कहाना ब्रह्माके मरणान्त प्राकृतिक सबजीवोंको मासहोने को अ त्पत्तिक प्रलय कहते मैत्रेयजी बोले हे भगवन् ! परार्द्ध मरुपाके प्राकृतिक प्रलयबनाइये परशुर मुनि बोले हे द्विज ! एक दश जन सहस्रादिकी दश गुणी गिनती कग्ने म अठारहें अङ्को परार्द्ध सप्तक प्रलय होना इमपरार्द्ध के दूने को प्राकृतिक प्रलय कहते हे इसमें सब सृष्टि ईश्वरमें लीनहोजाती है मनुष्यों के पाक गागे को निमेष कश्च १५ निमेष को काण्डा ३० काण्डाको कता १५ कता को नादिका कहते यह नादिका साद्विषारहटका भू तावकी फटेगी ४ आंगूर देवी बाराय मानामा मोनेकी ४ आंगूर की शलाकाम छेडकरे निवने समय में उसकी मद में नर के आनेमें कठोरी पूर्णहो उगी मगरके प्रमाणकी होनी दोनादिका का सृष्ट्य ३० गुरुकीका दिन मात्र ३० दिगत्रकाम १ १२ मासका ३१ पक्ष वर्ष में देवी



का दिन रात्र ३६० मनुष्यों के वर्षों का देवों का वर्षद्वेना देवों के १२०००  
 वर्षों में ४ युग बीतते हैं इन चारोंयुग के महत्त्व वार बीतने का ब्रह्माका एकदिन  
 होता उतनीही फिर रात्रिहोती उसीको कल्प कहते हैं इस कल्पमें १४ मनु बीतते  
 हैं इसके अन्तमें ब्राह्म नैमित्तिक प्रलय होता इस नैमित्तिक प्रलयका अति  
 कठोर प्रलय हम से सुनिये प्राकृत प्रलय पीछे कहेंगे जब चारोंयुग सहस्र वार  
 बीतजाते हैं तो पृथिवीतल अन्नादि से हीन होजाना क्योंकि अत्युग्र १०० वर्ष  
 तक अनावृष्टिहोती है तब नितने अल्पमार पृथिवी के पदार्थ हैं नाश होजाने  
 क्योंकि अन्न किसीको मिलताही नहीं जब भगवान् कृष्णचन्द्र रुद्ररूप से सब  
 पूजाओंको नाश अपनामें मिलना चाहते व भगवान् त्रिणु सूर्य की किरणों  
 में आय सब धराणीका रस पीलेते जब प्राणी व भूमिगत सब जलपान करतेते  
 तो पृथिवीतल बनाय सूखजाना समुद्र नदी पर्वत भिन्ना फटना पातालादि  
 सब ऊर्हीका जल नाश होजाना तब निसी हरि ने कृपासे जलपान का वर्द्धित  
 हो सानों किरण ७ सूर्य होजाने हैं ये सानों सूर्य नीचे ऊंचे से तप तपाय ग  
 हिन पाताल त्रि लोक भस्म करदेने इनके जाने से नदी पर्वत समुद्रादि सब  
 अति नीरम होजाते जरते व वृक्ष वल्ली समुद्र पर्वतादि ऐभे नष्ट होजाते कि  
 पृथिवी के छुहाकी पीठके समान होजानी तब सबके हरनेवाले हरि कालाग्नि  
 रुद्रस्वरूपी है अपे सूर्यकी श्वासके सन्तापसे पातालाकी ओरमे भस्म करनेल  
 गते सब पातालको जार काल रुद्राग्नि भूतल में आय इसे भी गसीमून कर  
 देते इस गीतिसे शुरुव स्व तीनलोक व पाताल भस्म होजाते जब इन लोकों  
 में राक्षसीराक्ष देवपरने लगती तो भुतलोक के सिद्ध मुनि गन्धर्वादि महर्षी  
 को चलेजाने व जन महर्षीको भी जरनेलगता तो सब जनलोकको जाते तब  
 रुद्ररूपी जनार्दन सबलोक जार अपने मुखमें श्वास निकाल वादर उत्पन्न करने  
 तो हाथीकी सूङ्के समान वारों म मांयर्षकनाग मेघवन गदावृष्टि करनेलगते  
 इन वादरों में कोई २ अञ्जन के समान कालि कोई २ कुमुद के समान उज्ज्वल  
 कोई २ युगाके रंगके कोई २ पीले कोई २ गदहा के रंगके कोई २ लालके रंग  
 के समान कोई वैदूर्यमणि के समान कोई इन्द्रनीलमणिके रंग कोई गजकुन्द  
 के वर्ण के कोई अतिकाके अञ्जनके समान कोई वीरखट्टी के वर्णके कोई गेने  
 धार के रंगवाले कोई नीलोग्गके कोई २ मानों श्रेष्ठप्राण के आकार के व कोई ३

पर्यन्तकार कोई गोलैकान के आकार कोई भेड़ाके डोलके ये मन महाकाय महामार मेघ आकाशगण्डल में गरजने आकाश पूर्ण होने के पीछे जब घम घमाय अतिवेगसे रपनेलगने तो त्रिनोकी मे फैलीहुई आग शान्नपरनेलगती अग्नि शान्त होजानेपर भी १०० वर्षनकरात्रि दिन ये मेघ वपा करने बड़ी २ धाराओं से झूलों ४ पूर्ण भै भुवनोंको भी भर देने हैं तो कमें अन्य हार होजाता स्यापर जगम मन नष्ट होजाने पर वे १०० वर्षनकर वर्षा निरन्तर करतेही रहते ॥

## चौथा अध्याय ॥

श्लो० कव्य चतुर्थ्याध्याय मह प्राकृत प्रकृति मलीन ॥

जहां ब्रह्म मह जीव मय लीन होत हैं दीन ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले पानाल से ले मधुपर्षियों के लोकनरु सब जलही जल देखाई देता त्रिलोकी एकार्णवाकार होजाती तब विष्णु भगवान् के श्वासों से अतिवेग पवन चलनेलगता जिमसे सबमेव जहा तहा चले जाते यह भी रात्रि दिन निरन्तर १०० वर्ष तक चलाकरता तब विश्व के आदि अनादि सर्व भूतमय अचिन्त्य भूतभावन श्रीभगवान् विष्णु सब वायु पीन्ते हैं पीन के पीछे ब्रह्मरूपधार शपगध्या पे गयन करइने तब जालो न निवागी मनसादिमुनि व ब्रह्मलोक निवासी भिद्धगण शपो ० स्थानों से स्तुति करने रहने उमसमय अपनीगाया योगनिद्राको प्राप्तहो वासुदेवाय परमपुरुष निजरूप को ध्यावने लगने इसी फा नैमित्तिक प्रलय कहते हैं इसमें ब्रह्मरूप धारणके दृष्टि शयन करनाही निमित्तहै इसी से इनका नैमित्तिक नाम हुआहै जब फिर मर्वात्मा भगवान् ब्रह्मरूपधारी जागने हैं तब तगच्छी राना छोटी है जब फिर सोने हैं तो सब उन्हीं में लीन होजानाहै चितना चतुर्विंश सहस्र पर्यन्त ब्रह्मा का दिन होता उनीटी रात्रि भी होना तब तगच्छी नमारणार्णव १ । रचना जब रात्रि बीनजाती तो ब्रह्मरूपधारी हरि जाग दिन सृष्टि करने लगने होता कि कहते हैं इसमें दे टिज । यह नैमित्तिक प्रलय मुगने रहा पर प्राकृतिक प्रलयकहते हैं सुनो तब अन्नावस्था में चतुर्ग त्रिों तब अग्राष्टि रत्नी फिर कात्ताग्निरूप शेषके मुसानन्तमे सम्प होना मेवर्षि जनमय कमे इनका नाव ऊपर सात नीचेके बौद्धहो भुवन नाम छोता उमका प्रग रह दे कि वा

महदादि विकार हरिकी इच्छा से नाश करये जाते तो प्रलय होने लगता प्रथम भूमिका गंधगुण जन सौचलेना जब पृथिवी में गन्ध नहीं रहिजाता तो प्रलय को प्राप्तहोजाती गन्धनन्मात्रा जन पृथिवीमे जानी रहती तो भव जलरूप होजाती है तब जल में बड़ा वेग व शब्द होजाता है तब जल बड़ी बड़ी लहरों से सब लोकोंको पूर्णकर बोग डारता है जल का गुण जो रस तिसे फिर अग्नि पीलेताहै तब रस तन्मात्रक नष्ट होने से जन नाश होजाता जब जल रस हीन होजाता है तो अग्नि में गिनजाना तब चारों ओर अग्निही अग्नि देखाई देता क्योंकि जल भव अग्नि में लीन होजाता ससार में ऐसा कोई स्थान नहीं रहता जहा अग्नि न हो तदनन्तर जब ऊँचे नीचे अँजरे पैजरे अग्निही अग्नि रहजाता तो अति वेग पवन अग्नि को खायजाता जब रूप तन्मात्र प्रणष्ट होजाती तो अग्नि का रूप जाता रहता व अग्नि सहित वायु अति वेगसे चलने लगता प्रलय समय जान नीचे ऊँचे अगल बगल जहा देखो वायुही वायु फिर वायुका जो स्पर्श गुण उमे आकाश अपना में गिना लेता वायु शान्त होजाता आकाश सर्वव्यापी होजाता अब इसका आवरण मुख्यनहीं रहता अरु अरु स्पर्श गन्धहीन मूर्ति रहित ऐसा भवके धारण करनेवाला आकाश प्रकाशिन होनेलगता उमगे केवल शब्दही गुणहै सो सर्वत्र शब्दही शब्द रहजाता तब आकाशके गुण शब्दको सजप तागम सत्त्वात्मक तीनप्रकारका अहकार, उमे अतिन कगलेना अहकारको महत्तर इम क्रमसे पृथिवी ब्रह्मांड की आदि व महत्तर अन्तहै इमप्रकार पृथिवी महत्तरे पर्यंत ये सातो आवरण पृथ्वी में महाप्रलय के समय भित्तजाने हैं तिमगे धेराहुआ यह अण्डकटाह जलमेंलीन होजाता इस अण्डमें सप्तद्वीप ७ समुद्र सर्वगत लोक सब लीन रहने जलावरण को अग्नि गोपना अग्न्यावरण को वायु वायु को आकाश आकाशको अहकार अहकारको महत्तर इनमनों के साथ महत्त्वको प्रकृतिप्रमती है इमसबका हेतु महतिहै वह प्रधानगी कारणहै इसलिये इसप्रलयका प्राकृतिक नागहै यह प्रकृति सर्वोत्तीन भवसे बाहरहै इसको कोई विकार नहींहोता व परमात्मा तो एक रूपशुद्ध चैतन्यपन अक्षर नित्य सर्व व्यापी परम पुरुष वह भी सर्व मूलगय परमात्मा परब्रह्म का अण्डहै इमसबप्राणियोंके स्वामी ईश्वरकी नाग ज्ञान्यादिकी कल्पनानहीं क्योंकि वह चैतन्यमात्र

ज्ञानात्मा आत्मासे परब्रह्मरूप परमभाग परमात्मा ईश्वर सर्व मय विष्णु है जिससे यह सब समारहोता है व जिमों पद्वच फिग प्राणी लौटाहीं आना सो प्रकृति व पुरुष ये दोनों उसी परमात्मा शमुदेव रूपमें लीनहो जाते हैं परमात्मा यहनाम वेद व वेदान्त में सबके आवार भूत विष्णुका कहा है सो विष्णु वेद के प्रवृत्त निवृत्त दोनों कर्मों के द्वारा पुरुषोंमें पूजित होनेहै सो ऋक् यजु साम इन वेदों के मार्गसे नाना प्रकारके यज्ञोंसे जो यज्ञपुरुष विष्णु को पुरुष पृजते वह प्रवृत्त कर्म कहता है व योगी लोग ज्ञान मार्गसे जो ज्ञानात्मा ज्ञानमूर्ति विष्णुकी पूजा करते जिससे मोक्ष होतीहै उसे निवृत्त कर्म कहते हैं जो कृच्छ्र वस्तु ह्रस्व दीर्घप्लुत स्वरोंसे कही जाती है व जो वचन के कहनेही के योग्य नहीं उसी वस्तुका अव्यय विष्णुनामहै व्यक्त अव्यक्त अव्यय पुरुषोत्तम परमात्मा विश्वात्मा विश्वरूपये भी उन्हीं के नाम हैं इन्हीं में व्यक्ताव्यक्त स्वरूपिणी प्रकृति व इन्हीं गुणोंका पुरुष दोनों लीनहोते जितने दिनोंतक पुरुष प्रकृति में व प्रकृतिपुरुष में लीन रहती उतने दिनकी एक रात्रि भी होनी यत्रपि हस्त चरणादिरहित प्रकृति पुरुषके लिये रात्रि नहीं होनी न उमका वहां कुछ प्रयोजन है तथापि उस पुरुष के दिन रात्रि उपचारमात्र मे कहदिये है कुछ वास्तव में नहीं ॥

चौ० यहप्राकृतिकप्रलयमुनि राजा । तुममन रहासकलमृगिसाजा ॥

अत्रआत्यन्तिकप्रलयवर्णनत । मुनहुजाहिसुनिसप्तसुवर्णनत ॥ १ ॥

## पांचवां अध्याय ॥

दो० यहवपञ्चमाध्यायमहं मोक्षवस्तुहितजोय ॥

त्रिधिषट् स्वधाराअपर परिचादिकस्तोय ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय । आध्यात्मिकादि तीनों तापोंको जान ज्ञान वैराग्यपाप पुरुष आत्यन्तिक प्रलयको पाना है आध्यात्मिक ताप शारीरिक मानस के भेद से दो प्रकार का है फिर शरीर में बहुत भेद है तिनको कहने है मुनिये जैसे शिरोरोग पीनस ज्वर शूल उठना भगन्तर रोग मुरमरोग वज्रासीर लामी शोथ वमन नेत्र रोग अतीमार कोट्ट इन्द्रं आदि अनेक रोग शरीरमें इ सब देनेवालेहैं इन्हींके कारण शरीरताप नाम हुआ अब मानसताप कहते हैं काम क्रोध भय वैर लोभ मोह विषाद शोक निन्दा अपमान ईर्ष्या अहंकारादिमें

उत्पन्न जो ताप निमीको मानम ताप कहने है यह मानम तापभी एरही प्रकार  
 का नहीं इसमें अनेक भेदहैं इन्हीं आदि भेदोंमें आध्यात्मिक ताप कहाता व जो  
 ताप मनुष्यों मृग पशु पक्षी मनुष्य भूत प्रेत पिशाच सर्प राक्षस अन्य क्रीट  
 पतंगोंआदिमें होना उसे आधिभौतिक ताप कहने हैं व जो ताप-हीन उष्णवायु  
 वर्षा जल विजुजी आदिमें होना उसे आधिदैविक ताप कहने हैं इन्हें आदि  
 बहुत दुःख मनुष्योंको होते हैं जैसे गर्भावस जन्म समय-वृद्धावस्था फोड़ा  
 आदि मृत्यु मगय में व नरक यातना में हजारों होने उनके कुछ भेद सुनाने भी  
 हैं जब जन्तु गर्भ में रहता उसके सब अंग सुकुमार होने वशा विष्ठा मूत्रके बीच  
 में रहने का स्थान मिलता फिर एक ओफ्री नाम खालमें लपेटा रहता जिसमें  
 पीठ झुकी रहती गनाभी झुका हाथ पैर बँधे हुये रहते फिर ऐसी दशामें बहुत  
 खड़ी करू तीन गरग लोन खार आदि माताके क्रिये भोजन अणों में लागतेह  
 उनमें बड़ाही मारी दुःख होना फिर अपने हाथ पैर आदि अंगके तने सिकोरने  
 की सामर्थ्य नहीं रहती ज्यों के त्यों अगररहने विष्ठा मूत्रके बीचमें परा जन्तु  
 सब ओरमें पीड़ित होता तब गर्भ वामही में जब चैन्य हुआ तो सैकड़ों जन्म  
 के पाप पुण्यकी सुधि आतीहै होने व उत्पन्न होने का मगय आनाहै तो  
 विष्ठा मूत्र रुधिर वीर्यने लपेटा हुआ प्रमूनि पवनका टकेजा जीव नीचे मुच  
 क्रिये मकुचित गलीके निरुलने के अनेक षष्ट सहसा हुआ भूमिमें आना यहा  
 की पवन लागतेही मूर्च्छा आजानी है उसीके सगु ज्ञानभी चलाजाता होने के  
 समय बड़ीदिरतक उसे इनती पीड़ा रहती कि जानों काटों से छेदागयाहै व आरा  
 से चीरडालागया महा दुर्गन्धिये स्थानमें निरुक्त कृषि समान भूमिमें पगरहना  
 अवश क्या करे हाथपैर अवभीकात्रूम नहीं जो चलावे खजु नाने फरवैट देने आदि  
 में भी शक्ति नहीं स्नान पान त्वागो आदि चैत्र परारीही इच्छा में मिते बड़ी  
 गेली कथरी आदिों जिममें छोटे २ चीलर जुवा आदि सैकड़ों जीव भरेहै रहना  
 परना उनके काटनेकी व्यथा न किमी से कदसकान आपकी सांगर्भ्य फिति  
 वाणकरे जन्मसमय के इन्हें आदि अनेक दुःखहैं जन्मके पीड़े वालाभाव में  
 नानाप्रकारके आदि भौतिकदि दुःखसहना मारे यज्ञानके अन्तःकरण में ऐसी  
 अधियारी छाया जानीहै कि वह नहीं जानता कि हम कहाँसे आयेहैं व कहाँजा  
 नाहै व कौनहैं किसबँधोई में बँधेहैं बँधनेका कौनकारण व कौन अकारणहै

क्या करना चाहिये क्या न करना चाहिये क्या कहने के योग्य है क्या न कहना चाहिये कौन धर्म है कौन अधर्म फिर किसमें किनगति वर्तना चाहिये क्या कर्तव्य क्या अकर्तव्य किमर्थ गुणद्वे किसमें दोष ये बातें नहीं जानते ऐसे होते होते युवावस्था आय जाती जिममें अनेक शिशुतोदर के व्यापार पशुओं के समान करने जिनसे महादुःख पाने है अज्ञानवशा से तागमी म्बभाव धारण करते जिससे किमी अच्छे कर्मों का प्रारम्भही नहीं करते इसीसे अज्ञानियों के कर्म लोप होजाते हैं जिन कर्मों के लोप का फल नरकवाम होनाहै निममे अज्ञानियों को इमलोक परलोक दोनों स्थानों में दृक् नहीं होना यही शिशुतोदरदि के भोग करने कराने वृद्धावस्था आजाती है जिममें बुढ़ापके गते देह कापने लगती सबअंग शिथिल होजाते दान सब दिल हिल गिरपस्ते खान ठौर ठौर सिकुरजानी दृग्मे देख नहीं परता गनी गें चलने ममय ऊार नेत्र उठाय उठाय देखने हैं नासिका के भीतरके रंग बाहर निरुलजाने देह जानो कापही करनी हाइ ठौर ठौर निरुलजाने पीठ करिहायें आदि म्फुनाने पेटही आग गन्धोग्रजाने के कारण बोझाही भोजन किया जाता इममे कार्य भी मनुष्यों के विना बल बोझेही होनेलगते बडे कष्टमे बैठना उठना चनना मोना खाना पीना आदि कर्म होते है कान आंख मच मन्द होजाते मुखमे तार बढा करती होते होते सब इन्द्रिया अपने अधीन नहीं रहजाती इ रगिये दुःख सटते सदते गरणोन्मुख होजाता है चाहे उम कागफो बहून दिनमे करनाहो पर वण क्षय पर सुधिजाती रहती है ए क्वार भी धोने में बड़ा परिश्रम करना परना जलद २ श्वास खासी आदिजाने से नींद कभीजातीही नहीं अब और हीके उठाये उठने व और ही के बैठये पौढ़ाये बैठो पौढ़ने हैं अपने जोकर चारर पुत्र स्त्री सब अपमान करते उसे सहना परता सब जोचादि क्रिया छुटजाती पर विचार आहागदि की इच्छा नहीं गिटनी परिवार जाने देम २ हँमनेहें सब भाई वन्द्य ऊबजाते है कि कच मोंगे बड़ी ऊँची ज्जामें ले २ जानी युवावस्था की बातों की सुधि करते पर जानपरना कि जानो अन्ग जन्मगे वे मच कार्य गिये घे ऐसी बातों से धिच व्याकुल बनारहा इहें अतिअनेक दुःख बुढ़ापे म भोग मरने में जो जो दुःखहोते हैं सुनिये जब मरनेके ति ३ भापे तो अर मन पैर हाथ सब बनाग मुस्तपरगये नगि ४ २ चारो लगा ५ २ मूर्त्ती खानेनगी

क्षणमें कुछ ज्ञान हो आया तब गोचनेलगे कि धन वान्य पुत्र स्त्री नौकर चाकर  
 व घर पशु पक्षी आदि ये कैसे निवर्द्धगे व कैसे वर्द्धगे इस बात भी गमना से व्याकुल  
 होगये शरीर में आराके समान अति दारुणरोग गर्भस्थल में भेदन करने मानो  
 यमराज के सब बाण हैं जो इधरमे उभर छिन्न भिन्न किये देते हैं इसमे सब अङ्गों  
 के बन्धन कट जाते जानों कोई अङ्ग किसी में लगाही नहीं है ऐसा होते २ आलें  
 घूर्णजाती हाथ पाँव वार २ पेट कने लगते तत्तु ओठ सब सूख जाते कि गला  
 घुघुराने लगता अब उर्द्धश्वास चलने के कारण कण्ठ परीधन हो जाता इससे  
 बहुत पीडाहोती उस समय प्रेमीगर्भी लगती कि आरवार पानी पीने की इच्छा  
 होती वस इसी दशा में प्राण निकल जाते यमराज के किङ्कर लोहके दण्डों से  
 गाते पीठते घमीटने हुये यमद्वार से ले चलते उनमें अनेक हूष होते हैं इन्हें  
 आदि और भी बहुत दुःख मरण समय में होते हैं अब नरक के दुःख सुनिये जो  
 मरे हुये मनुष्यों को भोगने होने जैसे ही लोचले प्रथम तो यमदूतों के लोहके  
 सोंटोंकी गार फासी आदिमें बाँधना लोनों मूकोंमे गारना आदि कष्ट फिर अति  
 मयानक यमके दर्शन अनिकठीर रस्ता देखना निर्मके देखने ही से सब शोक सङ्गे  
 होजाते जैसे कि भुजवाके गारसे भी गरम तालू गली में गाठि २ तक गीहें निस  
 में ठौर २ नानाप्रकार के शत्रु शस्त्रादिभी वीन २ परे हैं मत्पेक नरक में जो २  
 लयाननाहें मष अति दुःखमे सहनेलायक हैं कहीं तो कर्मगतो आरा चल रहे  
 हैं जातेही सर्वांग चीम फार डारे जाने कर्हा २ खनापैन झल रहे हैं उनमें डार  
 तपाते कहीं कुच्छांगि से चीने कहीं पेसेही सुगि में गाड़ लेने शूरीगर बढ़ाने  
 बाध के मुखमें पैठ देते गीवों से भिलाये बांधा मे चववाते चल चलाने हुये तेल  
 में डारने सारीकीचड़ों डार गाँजते ऊँचे मे नीचे गिराने उच्चालनेवाले यन्त्रों  
 पे चढ़ाय उच्चालते इन्हें आदि अनेक दुःख होने नरकों गितने दुःख पापी  
 प्राणी पाते हैं उनकी गनती नहीं है दिजगज ॥ केवल नरकही में दुःख समूह  
 नहीं वरन स्वर्ग में भी पुण्यक्षीण होजानेपे नीचे गिराने का मय रात्रिदिन  
 वनाग्रहता है इसमे वहाँ भी सुख नहीं क्योंकि स्वर्ग से आय फिर गर्भमास  
 होता जन्मादि के दुःख फिर भोगने होने कोई तो जन्मलेनेही करते कोई बाल  
 भाव में कोई ज्वानी में कोई अधवैभू होने में कोई बुढ़ापे में जवनक जीते नव  
 तक नानाप्रकार के दुःख महाकरने जैसे तपास के भी रमें सुखी भोग रहे नदि

जब बोधाजाये अन्तर्भो मूत्रही मूत्र पने प्राणी के शरीर में दुःख भरे हैं त्राहे जडा जावे भोगने परते हैं द्रव्य उपाज्जन धन नाश उत्तरत्यान इत्यादिगो अनेक दुःख होने हैं निमी भानि इष्ट मित्र भाई कन्धुओं के मग्ने पर भी दुःखही दुःख होते जो जो वस्तु पुरुष को प्यारी होती है वही दुःख वृत्त का बीजरूप है स्त्री पुत्र मित्र पुत्र पुत्र भेन आदि मे पुरुषों को उतना वदुन सुख नहीं मिलता जितना कि इनमे दुःख मिलता है मा इरीगीति मे मनाग पाये दुःख का सूर्य के विमके नाप से तपाये हुये प्राणियों के जुड़ाने के निचे मोक्षरूप वृक्ष ही छाया बिना अन्यत्र कहा सुख है निमसे गर्भ जन्म जरादि मययों में आध्यात्मिकादि ३ दुःखों मे पीड़ित मनुष्यों के लिये भगवान् श्रीविष्णु में अनेक सुख देनेवाणी अत्यन्तिक प्रीति है निममे परिडन नरोंको चाहिये कि विष्णुप्रीतिके लिये अवश्य प्रयत्न करनेरहें उमके मिलने के अर्थ ज्ञान व कर्मा दो उपाय हैं फिर ज्ञान भी दो प्रकारका है एक शास्त्र के पढ़ने लिखने श्रवण मननादि करने से दुमग अपने आप विवेक होजाने से शास्त्रमे उत्पन्न ज्ञानको शब्दब्रह्मज्ञान कहने व जो विवेक से उत्पन्न होता परब्रह्म ज्ञान उममें शास्त्रोत्पन्न ज्ञान तो इन्द्रिया के द्वारा दीपरूप प्राप्त हो अज्ञानान्प्रकार को दूरकरता व जो विवेक से उत्पन्न ज्ञान है वह सूर्यममान प्रकाशमान सर्वजनों के अज्ञानान्प्रकार का नाशक है इस विषय में वेदात्तर स्वरण पर मनुजी ने भी कुछ कहा है मो तुम्हें सुनाने हैं ब्रह्म दो हैं एक शब्दब्रह्म दूसरा परब्रह्म प्रथम शब्दब्रह्म वेदशास्त्रमें अच्छीभांति अभ्यास करने मे शुद्धान्न रूप होजाना तो फिर परब्रह्म की पुरुष पहचाना है अथर्ववेद की भी श्रुति इन विषय में है कि विद्या देवे एक शब्दब्रह्मिया दूसरी ब्रह्मविद्या मो शब्दब्रह्मिया वेदादि पढ़ता उनके अनुसार कर्मकरना कि जर अच्छा विवेक होगया तो ब्रह्मविद्या को पहचाना परब्रह्म में लीन होजाया यह परब्रह्म अव्यक्तता नरागणगहित अविन्त्य जन्महीन नाशगहित देनेके योग्य नहीं अरु पर चण्णादि अगहीन समर्त सर्वगत चित्त प्राणियों के उत्पन्न होने का स्थान सर्वव्यापी मग्ने बाह्य जिममे मय उत्पन्नगोना है पण्डितलोग उमे ऐसा देखनेरहें वी ब्रह्म बदी परब्रह्म बदी मोक्षही इच्छादि पदुये लोगोंके ध्यान करने नायक वेदगणित विष्णु का परमपद है वही भगवदत्तन परमात्मा का स्वरूप भगवत् शब्द को जानाये ऐसे परमात्माके इमभांति जाननेके प्रयत्नको



पात्रद्वयज्ञान कहते इसमें भिन्नवेदमय ज्ञान कर्मकाण्डादिविषयक हैं यद्यपि वद  
 ब्रह्म अशब्दगोचर हैं नामादि उसके नहीं होमकै तथापि रीति है कि उसका  
 पूजा भी भगवान् ऐसा कह करते हैं नहीं तो भगवान् यह शब्द तो महाविभूति  
 पुरुष शुद्धस्वरूप सर्वकारण के कारण परमात्मा के विषय में कहा जाता है  
 सम्भर्त्ता व भर्त्ता म हारके दो अर्थ हैं संसारके प्रेरक व चलाना ये दो गकारके  
 व सव ऐश्वर्य मत्र वीर्य सव यश सव लक्ष्मी ज्ञान वैराग्य इन छ्वा को भग कहते  
 जिसमें ये सबों उसे भगवान् कहते व वकार का यह अर्थ है कि जिसमें सब  
 प्राणी वषै व जो सबके रहनेका स्थानहो व मत्र प्राणियों में जो टिकाहो इसी  
 से वकारका नाशरहित भी अर्थ है इसमानि भगवान् यह महाशब्द बनता है  
 इसलिये परब्रह्मरूप वासुदेवही का भगवान् नाम है और का नहीं होसका  
 उसमें तो यह शब्द कहना पूजामें भी सब प्रकार ठीकहै अन्य देवादिकों को  
 भगवान् कहना एक उपचारमात्र है वास्तव नहीं क्योंकि ये सब पदार्थ उनमें  
 नहीं क्योंकि भगवान् शब्दका यहभी अर्थ है प्राणियों की उत्पत्ति प्रलय  
 आना जाना विद्या अविद्या जो जाने सो भगवान् व यह भी कि ज्ञानशक्ति  
 बल ऐश्वर्य वीर्य सम्पूर्ण तेज ये पदार्थ जिसमें यह भगवान् है और भी जिस  
 परमात्मा में महाप्रलयके समय सब प्राणी जाय वमने व जो सदा सब प्राणियों  
 में चैतन्यरूप वसा है उमका भगवान् वासुदेवनाम है आगे की कथाहै कि के  
 शिष्यजने पूजने पर स्वाण्डिक्य जनकमें आन्त वासुदेवके नामकी व्याख्या  
 निश्चय र कही है सो सुनने हैं जो मत्र प्राणियों में वषै व जिसमें सब प्राणी  
 वषै व जो जगत्को धारण पालनकरे उसको वासुदेव कहते हैं वद वासुदेव सब  
 प्राणियों की प्रकृति विकार गुणादि दोषों से अलगहै व उनके आगमस कोई  
 जावरण नहीं मत्र ममार उसी में रहता सब सुवन उनीके वनाये हुये है कि  
 सब कल्पाणादि गुणरूप व अपनी शक्तिके लेशमें सब प्राणियों को घेरे है  
 जय इन्द्रा होनीहै तब बहुतदेह धारण करताहै व मत्र जगत् के सकल दिन भिन्न  
 करना तेज बन ऐश्वर्य वीर्य शक्त्यादि गुणों का स्थान वगणहै सब परोंमें  
 पर व निमग्न क्लेशादि कोई विचार नहीं सोई सबका ईश्वर व सकर्षणादि वासु-  
 देव रूप अदिगुप्त अनिभक्त स्वरूप सर्वेश्वर मत्र को विशेष रीति से जानने  
 वाना सर्वशक्तिमान् परमेश्वर परमात्मा है ॥

- चौ० जा परोक्ष त्रिधि मे मन आरत । अरु साक्षात वृत्ति मों भारत ॥  
 दोषरहित निर्मल यक रूपा । शुद्ध स्वरूप अनूप निरूपा ॥ १ ॥  
 जहा अपिद्या फारज नार्ही । त्रिद्या परम ज्ञान ज्याहि माहीं ॥  
 नहिं अज्ञान लेशकी चर्चा । गावत वेद फरत नित फर्चा ॥ २ ॥  
 यासों जो सत्र गति भगवाना । शब्द निरुक्ति किये गुणवाना ॥  
 सो हरिपद नहिं तहां उपेक्षा । करन चही नरको कहूं स्वेक्षा ॥ ३ ॥

## छठवां अध्याय ॥

- दो० कहय छटे अध्याय महँ वेद पाठ अरु योग ॥  
 जिमि कीन्हें हरि दर्श अरु केशिध्वजीनियोग ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले ॐकार जपने व इन्द्रिय अपने वश कर ध्यान करने से पुराण पुरुषोत्तम भगवान् के दर्शन होते हैं तिससे चाहिये कि भगवान् के मिलने का कारण ॐकार जपना व ध्यान करे इनमें चाहिये कि प्रथम ॐकारादि जपकरे फिर योगाभ्यास ध्यानादि करे क्योंकि ॐकार जपने वेदपाठ करने से परमात्मा प्रकाशित होता तिस परमात्मा के देखनेके लिये स्वाध्याय ॐकारादि जप व योगाभ्यास यही दो नेत्रों हैं और अन्य नेत्रों से परमेश्वर को कोई नहीं देखसका यह सुन भैत्रेयजी बोले हे मुनिराज ! अब हम यह योग जानना चाहते हैं जिसके जानने से परमात्मा के दर्शन होते हैं पराशरजी बोले जिस भाति खाण्डिक्य जनक से केशिध्वज ने योग कहा है हम तुमसे कहने हैं कि भैत्रेयजी बोले हे ब्रह्मन् ! खाण्डिक्य व केशिध्वज कौनसे व उनदोनों के सवादा से ऐसा सयोग कैसे हुआ कि उन्हीं का सवन्धी वद योग कदाता है पराशरजी बोले धर्मध्वज नाम जनक राजा हुये तिनके पुत्रका मितध्वज नाम हुआ इन्हीं के अन्धध्वज भी हुये ये आप्पात्मविद्या में बड़े निपुण थे अन्धध्वज के अतिधन्य केशिध्वज हुये व मितध्वज के खाण्डिक्य जनक नाम हुये ये खाण्डिक्यजी कर्ममार्ग में पृथिवीतल में बड़े चतुर हुये हैं केशिध्वज भी अतीव आत्मविद्याविशारद हुये ये दोनोंका जीतने की इन्द्रदाने परमात्मज्ञानके केशिध्वज ने परमात्मिके खाण्डिक्य से राज्यास विद्या दिया था मिश्रध्वजो मृद घोड़ाही मान भगवान् ने पुण्डित व मर्त्री के माप पाठने

चलेगये यहा केशिभुज ने वेद शास्त्रानुसार मृत्यु जीतने के लिये बहुत यत्न किये एकसमय उनके यज्ञमें दूध देनेवाली गाय वनको चरने गई थी वहाँ उसे बाधने मारहाला तो राजाने अश्विजों मे पूछा कि यज्ञकी गाय मारहाली गई अब इस पाप के मिटाने के लिये कौन गायश्चित्त करना चाहिये अश्विजों ने कहा हम इसका प्रायश्चित्त नहीं जानने आठ कशेरुमुनिसे पूछिये जब कशेरु से पूछा गया तो उन्होंने ने कहा हमभी नहीं जानने भृगुवशी शुकसे पूछिये राजाने जाय शुक से पूछा उन्होंने ने कहा इसका प्रायश्चित्त न अश्विजही जानते न कशेरु न हम किन्तु तुम्हारे शत्रु खाण्डिक्य जिनको तुमने जीत लिया व अब वनमें हैं वे जानते हैं उनके मित्राय सप्तारमें हगलोग क्या कोई नहीं जानता यह सुन राजाने कहा कि अच्छा हम अपने शत्रुमें पूछने जायेंगे जो वे हमको मारभी डालेंगे तो भी यज्ञका फल हम पावेंगे यदि प्रायश्चित्त बता देंगे तो जानो विलकुलही यश फल पावेंगे कुछ सन्देह नहीं पराशरमुनि बोले यह कह वैसेही मृगचर्मधारण किये कुशादि लिये घोड़े पे मवार दो केशिभुज वनमें खाण्डिक्य के पासगये खाण्डिक्य ने देखा कि हमारा शत्रु बला आता है इसलिये बड़ा क्रोधके धनुष पे तीरचढ़ाय कहा हम जानने हैं कि तुम मृगचर्मही को कबच वस्त्र समझ धोखे से हमको मारोगे क्योंकि हम को तो जानतेही हो कि मृगचर्मधारण किये द्रुये हमको ये न मारेंगे सो हे मुझ मृगचर्मधारण करने से क्या होता है क्या मृगों की पीठपर मृगचर्म नहीं होता जिनको हमने व तुमने सहस्रों वाण मारेहोंगे तिमसे हम आज तुमको मारही डालेंगे जीते न छोड़ेंगे क्योंकि तू आनदायी दुर्बुद्धि है हमारा गज चूने लेलियाहै यहसुन केशिभुज बोले हे खाण्डिक्य ! हम तुममे सशय पूछो पाये है तुम्हें मारने नहीं आये। इस बातकी विचारलो तो किनो हमारे ऊपर कोपही छोड़ देना व वाणही छोड़ देना पराशरमुनि बोले कि तब खाण्डिक्य जी ने अपने मन्त्री व पुत्रोहित मे परान्त में सलाह की मन्त्रियों ने कहा यह आपका शत्रु है देवयोगसे वश हुआ है अब हमे मारही डालिये कि मर राज्य मिलजावे खाण्डिक्य ने कहा हा इसमें ता कुछ सन्देह नहीं हमके मा टालने से सब श्रुथी तो मिलजावगी परन्तु जो हमको मारने हैं तो यह परलोक जीतगा व हम सब श्रुथी यदि हम ऐसे समय में इनको न मारेंगे तो

परलोक को हम जीतेंगे व हमकी जानो पृथिवी बनीही है सो परलोक जय तो अनन्त समयतक सुख देनेवाला है व पृथिवी जय स्वल्पकाल तक सुखदेगा इससे हम इसे न मारेंगे जो पूछेगा अवश्य बतावेंगे यग्यगमुनि बोले कि तब स्वाण्डिक्य जनक अपने बैरी मे आय बोले जो पृथ्वीनाहो पृथ्वी मव तुम मे बतावेंगे तब केशिध्वज ने सब वृत्त धर्म धेनु मारेनाने आदि के रहे व उमर प्रायश्चित्त पृच्छा तब जो कुछ उमर प्रायश्चित्त था केशिध्वज से स्वाण्डिक्यजीने विधिमहित बताया केशिध्वज अच्छीतरह मव विधिजान स्वाण्डिक्य से आज्ञाले अपने यथा भाये यज्ञस्थान में जाय सब प्रायश्चित्त जैसे सुनाथा क्रम सहित किया जब यज्ञ पूर्ण हुआ यज्ञान्स्नानादि होगया तो राजा प्रमत्तहो अपने मनमें चिन्तना करनेलगे कि हमने ऋत्विजा की पूजाकी मव सभामर्दो मान किया जो कोई धनादि की इच्छा से यज्ञमग्य भाये उन को भी वाञ्छित वस्तु दे प्रमत्त किया अब मव कुछ जा इम लार्कमें करना था कश्चुके पर हमारा चित्त प्रसन्न नहीं अब नहीं जाननेक्या काने को वाकी रहा इतने में सुधियाई कि और मव तो हमने किया पर स्वाण्डिक्य को गुरुदक्षिणा न दी यह विचार फिर घोड़ेपै चढ़ उसी गहन वनको राजागये जहा स्वाण्डिक्य तपस्या करते थे स्वाण्डिक्यजी ने भी देखा कि अब फिर केशिध्वज आते हैं तो मारने के लिये अस्त्रउठाये तब फिर केशिध्वज बोले हे स्वाण्डिक्य ! हम तुम्हारा अपकार करने के लिये नहीं आये कोप न कीजिये ह्य गुरुदक्षिणा देनेकेलिये आये हैं आप समझने आपके उपदण मे हमने मव यज्ञ पूर्णकिया अत्र गुरुदक्षिणा दिया चाहते है जो चाहिये मागिये तब फिर स्वाण्डिक्यजीने मंत्रियों मे पूछा कि ये गुरुदक्षिणा देने आये है क्या मागना चाहिये मंत्रियों ने कहा आप सब राज्य गुरुदक्षिणा में मागलीजिये क्योंकि वनुरोग जब उनके पाम सेना नहीं रहनी व किपी यत्र से राज्य गित्तन की युक्ति लगनी है तो राज्यही मागते है यह सुन बहुत दम महामनि स्वाण्डिक्यजी मंत्रियों मे बोले कि घोड़े समयतक सुखदायक राज्य जा हमारे समान वित्तानी दें केमे मांगें तुम्हारी भी भून नहीं क्योंकि तुमरोग तो अर्थसाधनके मर्त्रीहो पर परमात्में केमे व कौन यथा है इम विषय में तुमको । नष्ट नहीं जो यह कहते केशिध्वज के निरुत्साह बोले कि क्या तुम जय नहीं गुरुदक्षिणा दिया मागते है केने

श्वज ने कहा हँ तब स्वाण्डिक्य बोले यदि आप अध्यात्मज्ञान के परमार्थ को जानतेहों तो हमको वह गुरुदक्षिणा दीजिये जो अध्यात्मज्ञान परमार्थ जानने में जो क्लेश परते हैं उन क्लेशों के नाश करने में समर्थहो ॥

## सातवां अध्याय ॥

दो० कह्य सप्तमाध्याय महँ जिमि केशिध्वज दीन ॥

स्वाण्डिक्यहि अध्यात्मिकी विद्या बहूत प्रवीन ॥ १ ॥

यह बातसुन केशिध्वज बोले कि आपने अकण्ठरु हमारा राज्य क्यों नहीं मागा क्षत्रियों को राज्यलाभ को छोड़ और कुछ नहीं भिय होता स्वाण्डिक्य बोले हे केशिध्वज ! जिस राज्यको पूर्वलोग इच्छाकरते हैं उसे हमने जिस हेतु नहीं मागा सो सुनिये क्षत्रियोंका धर्म प्रजापालन करना व जो राज्यमें क्रमागर्गी पुरुषहों व राज्य में उनसे कोई खराबी पाईजाती हो तो उन्हें धर्मयुद्ध से मारनाहै जिस राज्यमें अब तुम्हारे खेलेने से हमको कुछ दोष नहीं रहा नहीं तो इसी में हम लगे रहते अविद्या के कारण बन्ध नहीं होता व जो हमको कुछ राज्यके लेनेकी वाञ्छाथी भी तो इस जन्मके वितानेही के लिये थी कुछ इसमें परमार्थगिद्ध करनेकी इच्छा न थी उसकेलिये तो कुछ अन्यही उपाय कररहे थे कुछ अन्य लोगों के समान हम राज्यामक न होजाते कि यह राज्य जैपे तन लोगों के धर्मको रोकता है वैसे हमारे से न रोकता परन्तु क्षत्रियोंको यान्त्रा करने का निषेधहै इसलिये अब तुम्हारा राज्य हमने नहीं मांगा जो लोगों का चित्त ममतासे धरादृष्टा होना वे मूढ़ राज्यकी वाञ्छा करते यह अहंकार व मान महामदिरा के पानके समानहै जो लोग उससे मत्त रहने वही राज्यकी अभिलाषा रखने न कि हमारे समान लोग पराशरमुनि बोले कि तब प्रसन्नहो बहूत भन्दा यह कह केशिध्वज स्वाण्डिक्य जनकसे बोले कि हमारे व्रतन सुनिये जो आपने कहा कि राज्य अविद्या के अन्तर्गतहै सो सत्यहै हमभी इस राज्यको अभी लिये करते हैं कि अविद्या से मृत्युकी तरजावें अर्थात् त्रिविध प्रकार के राज्य के सुखभोगने व उल्लास करने से पुण्यक्षय होजायगी तो विद्यामें मोक्षमाधनकर लेंगे निममे अहां भाग्यहै कि तुम्हारा मन विवेकी ऐश्वर्यना को प्राप्तहै अब हम विद्याका स्वरूप कहने के लिये देहाणियों आत्मबुद्धि और इन्द्रियादि में अगना

स्वत्व मानना यही दो अविद्यातक के बीज हैं प्राणी मोहान्धकारमे घेरा हुआ इस पृथिवी जल वायु अग्नि आकाश ५ तत्त्वोंसे बने हुये शरीरमें आय कहते हैं कि हम ऐसे हैं यह हमारा है इष्ट ऐसी बुद्धि करता है नहीं तो जब इम देहके आकार पृथ्वी जल वायु अग्नि ये जब देहमे अलग होजायें तो देहमें आत्मभाव कौन करेगा ये गृह क्षेत्रादि सब शरीर बना है तब भी अच्छीरीतिमे भोगके काममें नहीं आवे फिर जब शरीरही नहीं तो कौन ऐसा परिदृश्य है जो इमे अपना समझे जब शरीरहीका ठीक नहीं तो देहहीमे उत्पन्न पुत्र पौत्रादिकों को कौन परिदृश्य अपने वश समझेगा व अपना को उनका स्वामी मानेगा सब कर्म मनुष्य देहहीके भोगके लिये करता है यदि पुरुषका देहही वशमें नहीं तो उसके लिये कर्म करना बन्धनही के अर्थ है जैसे माटीका घर चीकन होनेके लिये माटी व जलसे लीपते हैं तैसेही यह पृथिवी से उत्पन्न देह अन्न जनके लेपन से टिकाटे पृथिवी जल वायु अग्नि आकाश इन पाँच तत्त्वों से बना हुआ देह व इन्हीं पाँचों से उत्पन्न भोगों से पाला पोषा जाता तो पुरुष इम विषयों काहेको गर्व करे यह जीव अनेक जन्मों के सहस्रों तक ससार में घूना हुआ नामना धूलि लगाय मोहरूप श्रमको प्राप्त होता है जब ज्ञानरूप उष्ण जनसे वह वासना रूप धूलि धोईजाय तो ससाररूप पथिक का मोह श्रम नाश हो जब मोह श्रम नाश होजाय तो पुरुष स्वस्थान् करण हो सब दोषगृहित मोक्षपद को पावे यह आत्मा तो सदाहीका मोक्षमय ज्ञानमय व निर्मल है ये बु व अज्ञान मनादि तो प्रकृति के धर्म हैं आत्माके नहीं जैसे जन का समर्ग अग्नि ने नहीं होना किन्तु जिम पात्रों अग्नि पर चढ़ाया जाता उमकाही समर्ग होना पर ज्यों १ भाजनमें अग्निका तेज लगना त्यों २ पानी भी गल हो गव्व करनेलगता तैसेही प्रकृतिके सङ्ग वशमे अट्मगानादि मे दूषित हो आत्माभी प्राकृत्यात्मों की सेवा करनेलगता है पर वस्तुत आत्मा नाशगृहित निर्मल शुद्धस्वरूप प्रकृति के गुणों से अलग है निममे यह अविद्याका बीज हमने आपसे कहा क्रैयोंका नाश करनेवाला योगाभ्याससे बढ़ अन्य कोई नहीं यह मुन सापिण्डरूपजी बोले हे कोशिध्वज ! आप इस राजा निमित्तके वशमे योगशास्त्र के अर्थ अच्छीभाँति जानतेहो इसलिये ज्ञेयनाशर योग कहिये केशिध्वज बोले हे सापिण्डरूप ! जिम योगमें स्थित हो ब्रह्मलपमे मुनिनाम कि नही पतिव होवे निम योगका

स्वरूप कहते हैं मुनिप्रे मनुष्यों का मनही बन्धन मोक्षता काण्डे फिर जन्म  
 बन्धनमें परता तो विषय वाचना में लीन रहता जब मुक्तहो जाना तो विषये चा-  
 सना से दूर गागता निममे चाहिये किस्ती पुत्रादि विषय वाचना से मन खींच  
 विज्ञानीलोग ब्रह्मभूत परमात्मा की चिन्तना गीक्षकेलिये करें तब ब्रह्मकी चिन्तना  
 मुनि करने हैं तो वह ब्रह्म खींच अपनामें मिलाय लेनाहै जैसे कि बुध्क अप-  
 नेही विचार लोह को जब अपने नामने देवता खींचनेता है यम नियमादि  
 अपने प्रयत्नहैं तिन के करने से जो धारशाशक्ति होती उमरेमाय जो मनकी  
 धारणा निसका जब ब्रह्म के साथ भयोग हो अर्थात् जीवात्मा व ब्रह्मकी एरता  
 की योग कहते जबतक योगी योग करही रहाहै तबतक योगयुक्त कहाता जब  
 योगभ्यास करने २ समाधि ज्ञान सिद्ध होजाता तो ब्रह्मोपलब्धिगानु कहाता  
 है यदि योगयुक्त होने केसमय आलस्य व्याधि अतिप्रमोद अश्रद्धा अन्त्यादि  
 विघ्नो से योगी का मन दूषित न हो तो तो ब्रह्मरूप होही जाना यदि करने २  
 इनना विघ्नो में भी फँसगया तो बहुत जन्मों के पीछे ब्रह्म में लीन होता और  
 जिस योगी की यागसमाधि सिद्ध होगई वह तो उसी जन्म में मुक्त होजाता  
 क्योंकि योगाग्नि से बहुत जन्मोंके बटोरे कर्म भस्म होजाते हैं योगीको चाहिये  
 कि ब्रह्मचर्य रहे किसी जीवकी हिंसा न करे सत्य बोले चोरी न करे किसीका  
 दान न ले इसमानि निष्कामहो अपने मनकी योग्यता को प्राप्त करे फिर ओ  
 द्वार जपना शौच सन्नोप तपस्या करना जितेन्द्रिय होना ब्रह्ममें व अन्यमें मन  
 नम्र करना ये योगीके सागहै ये १० यम नियमहैं जो कामनामे इनको करवा  
 उमको तो विशेष फलदेते जो निष्कामहो करवा उमे मुक्ति देने यम व नियम  
 सहित भ्रमनादि आमन जो योगशास्त्र में कहे हैं उनमेंमे पूरु क्रिमी शासन  
 पर बैठ जितेन्द्रिय हो योगीको योग करना चाहिये असायमे दृश्यमें जो प्राण  
 वायु है उसके वश्य करने को प्राणायाम कहते हैं उमके करने केसमय बीज  
 मन्त्रमी जपना होनाहै श्वास लेनेसे मुस नासिका से जो वायु निकलना उमे  
 प्राण कहते व जो श्वासमे भीतर को गैठनाहै उसे अगान वायु कहते इन  
 दोनोंको थॉमर धीरे २ छोड़ने को रवक प्राणायाम कहते वायु के ऊपर को  
 खींचने को पूरक व रोकने को कुम्भक प्राणायाम कहते इन प्राणायामों के  
 अभ्यास करने में मद्दर्पणादि अन्न के स्वतः रुतोंका प्यान करना चाहिये

रूप रस गन्ध शब्दादि देखने खाने सूत्रने मुननेआदि के किये जो इन्द्रियों के मार्ग खुले हैं उनको योगी को चाहिये अपने वश किये रहे इन्द्रियगण वड़े बलवान् हैं योगाभ्यास में इनका वश करनाही बडा भारी काम है जिस योगी के इन्द्रियगण वश नहीं वह योग को नहीं मिद्धरसका प्रथम पूणा-यामों से पवन जीने फिर इन्द्रियों को वशीभूत करे तिमके पीछे चित्तको शुभ स्थानमें लगावे यह सुन खाण्डिक्य बोले हे महाभाग ! मनके ठहरने का नि-श्चलस्थान बताइये जहा ठहरनेमे फिर चलायमान न हो । अनेक दोष भिडजायें केराध्वज बोले हे ब्रह्मन् ! चित्तके आशय स्थान दोह एक मूर्त्तिमान् दूसरा अमूर्त्तिमान् व इम विश्वमें तीन प्रकार की भावना है एक ब्रह्मरूपिणी दूसरी कर्म रूपिणी तीसरी इन दोनोंसे मिली हुई ब्रह्मरूपिणी में ब्रह्म ही भावना होती कर्म रूपिणी में कर्मकी जिसमें दोनों की भावना होती उर तीसरी हैं इनके मनन्-त्तादि गुनीश्वर तो ब्रह्मभावा भावनार्थ तत्पर हैं अन्य देवादि स्थावर जगत् कर्म भावना में तत्परहैं ब्रह्मा कश्यपादि ब्रह्म कर्मात्मिका भावना मानने जगत्की मृष्ट्यादि व आत्मतत्त्वयोधयुक्त वस्तुमें मात्र भावनाहै जब कथं ज्ञानकर्म विश्व मानहो तब यह भावनाहो कि यह विश्व परहै कि अन्य यह भेद जपनक अच्छी रीतिसे विचार नहीं आता तभीतरक हैं नहीं तो ब्रह्म तो भेदगहित सत्तामात्र अ-गोचर पचनसे जाननेके योग्य एसाहै तिमसे इमप्रकारके ब्रह्म की चिन्तना योगी कभी नहीं करसका उसी निर्विकार अगोचर अक्षर विष्णु का अक्षर परम रूपहै इममें विश्वके स्वरूपकी वैराक्षणताहै जिममे निर्गुण निराकागदि होने से योगीलोग इसकी चिन्तना नहीं करसकत तिममे जो विश्व म परहै हृदिके स्वरूपहै उमकी चिन्तनाकें स्वरूप बढ़है तथा इन्द्र प्रजापति पवन उरु रद सूर्य नक्षत्रगण ग्रह गधर्व वक्ष दैत्यादि सकादेवगोनि मनुष्य पशु पक्षी पर्वत समुद्र नदी वृत्त अन्य सधषणी अन्य जो प्राणियों के हेतु उर धेनव एकपाद द्विपाद बहुपाद पादहीन ये जिनने हैं सब तीनों भावनासामे मिलेहूये धीरुषि के मूर्त्तस्वरूप हैं यही सब उराचर विश्व परब्रह्मस्वरूप विष्णुगणवान की शक्ति सहित स्वरूप है एक विष्णुशक्ति दूसरी वेदशक्ति तीसरी ज्ञानिचा कर्म शक्ति इनमें विष्णुर्हा को विष्णुशक्ति कहने भावनाशांक्रमे सुखाने के कारण सब समारंभे प्राणो क्षेत्रज्ञशक्ति ममादे सब तापाना प्राणदेवीसुख क्षेत्रज्ञ शक्ति



स्वरूप कहते हैं सुनिचे मनुष्योंका मनही बन्ध व मोक्ष का कारण है फिर जब बन्धनमें परता तो विषय वामना में लीन रहता जब मुक्तहोना तो विषय वासना से दूर भागता तिससे चाहिये किसी पुत्रादि विषय वामना से मन खींच विज्ञानीलोग ब्रह्मभूत परमात्मा ही चिन्तना मोक्षकेलिये करें जब ब्रह्मकी चिन्तना मुनि करने हैं तो वह ब्रह्म खींच अपनामें मिलाय लेताहै जैसे कि चुम्बक अपनेही विकार लोह को जब अपने नामने देना खींचनेता है यम नियमादि अपने प्रयत्न हैं तिन के करने से जो धारणागति होती उमकेमाय जो मनकी धारणा तिसका जब ब्रह्म के साथ मयोग हो अर्थात् जीवात्मा व ब्रह्मकी एकता की योग कहते जबतक योगी योग करही रहाहै तबतक योगयुक्त रहता जब योगाभ्यास करते २ समाधि ज्ञान मिद्ध होजाता तो ब्रह्मोपलब्धिमान् कहता है यदि योगयुक्त होने केसमय आलस्य व्याधि अतिप्रमोद अश्रद्धा भ्रन्तिपादि विघ्नो से योगी का मन दूषित न हो तो तो ब्रह्मरूप होहीजाता यदि करने २ इतना विघ्नो में भी फँसगया तो बहुत जन्मों के पीछे ब्रह्म में लीन होना और जिस योगी की योगसमाधि सिद्ध होगई वह तो उसी जन्म में मुक्त होजाता क्योंकि योगागि से बहुत जन्मोंके बटोर कर्म भसग होजाते हैं योगीको चाहिये कि ब्रह्मचर्य रहे किसी जीवकी हिंसा न करे सत्य बोले चोरी न करे किसीका दान न ले इसमात्रि निष्कामहो अपने मनकी योग्यता को प्राप्त हो फिर ओझार जपना शौच सन्नोप तपस्या करना जितेन्द्रिय होना ब्रह्ममें व अन्यमें मन नम्र करना ये योगीके कामहैं ये १० यम नियमहैं जो कामनासे इनको करना उमको तो विशेष फलदेते जो निष्कामहो करना उमे मुक्ति देते यम व नियम सहित भद्रामनादि आमन जो योगशास्त्र में कहे हैं उनमेंमे एक क्रिमी आसन पर बैठ जितेन्द्रिय हो योगी हो योग करना चाहिये अभ्यासमे दृश्यमें जो प्राण वायु है उसके वश्य करने को प्राणायाम कहते हैं उमके कर्न केसमय बीज मन्त्रमी जपना होनाहै श्वास लेनेमे मुत्त नाभिहा से जो वयु निकलना उसे प्राण कहते व जो श्वासमे भीतर को पैठनाहै उमे अपान वायु कहते इन दोनोंको थामकर धीरे २ छोडने को रेचक प्राणायाम कहते वायु के ऊपर को खींचने को पूरक व रोकने को कुम्भक प्राणायाम कहते इन प्राणायामों के अभ्यास करने में सङ्घर्षणादि अनन्त्र के स्युत रूरोका ध्यान करना चाहिये

रूप रस गन्ध शब्दादि देवने खाने सूंघने सुननेआदिके लिये जो इन्द्रियों के मार्ग खुले हैं उनको योगी को चाहिये अपने वश लिये रहे इन्द्रियगण वहे बलवान् हैं योगाभ्यास में इनका वश करनाही बड़ा भारी काम है जिस योगी के इन्द्रियगण वश नहीं वह योग को नहीं मिच्छन्सक्या प्रथम प्राणायामों से पवन जीतै फिर इन्द्रियों को वशीभूत करे तिमक पीछे चित्तका शुभ स्थानमें लगाने यह सुन आदिहृदय बोले हे महाभाग ! मनके ठहरने का निश्चलस्थान बताइये जहा ठहरनेमे फिर चलायमान न हो व अनेक दोष भिडजायें केशिध्वज बोले हे ब्रह्मन् ! चित्तके आश्रय स्थान दोहे एक मूर्त्तिमान् दूमरा अपूर्त्तिमान् व इम विश्वमें तीन प्रकार की भावना हे एक ब्रह्मरूपिणी दूसरी कर्मरूपिणी तीसरी इन दोनोंसे मिली हुई ब्रह्मरूपिणी में ब्रह्म की भावना होती कर्मरूपिणी में कर्मकी जिसमें दोनों की भावना होती वद तीसरी है इनग मनन्तनादि मुनीश्वर तो ब्रह्मभाव भावनामें तत्पर हैं अन्य देवादि स्वावर जगत्कर्मी भावना में तत्परहैं ब्रह्मा कश्यपादि ब्रह्मरुपीत्मिका भावना मानने जगत्की सृष्ट्यादि व आत्मतत्त्वबोधयुक्त वस्तुमें भाव भावनाहे जब सर्वो ज्ञानकर्म प्रिय मानदी तब यह भावनाहो कि यह विश्व परहै कि अन्य यह भेद जपनक अच्छी रीतिसे विचार नहीं आता तभीतक है नहीं तो ब्रह्म तो भेदगहित सत्तामात्र अगोचर वचनसे जाननेके योग्य ऐमाहै तिसमें इमप्रकारके ब्रह्म की चिन्तना योगी करी नहीं करसक्या उसी निर्विचार अगोचर अक्षय विष्णुका अज अक्षर परम रूपहे इममें विश्वके स्वरूपकी चिन्तनाहो जिमम निर्गुण निराकारादि होने से योगीलोग इसकी चिन्तना नहीं करसकते तिममे तो विश्व म प्रकृतिके स्वरूपहो उमकी चिन्तनाकर स्वरूप यहहै ब्रह्मा इन्द्र प्रजापति परम तपुस्व सूर्य नक्षत्रगण ग्रह गंधर्व यक्षदेव्यादि मकतदेवयोनि गन्तुष्य पशु पक्षी पर्वत समुद्र नदी वृक्ष जन्म सभषाणी जन्म जो प्राणियों के तनु जड़ पवन एतदद द्विपाद बहुपाद पादहीन ये जितने हैं तब तीनों भावनाओंमे मिलेहुये श्रीहरी के मूर्त्तस्वरूप हैं यही मम अगचर विरा पत्यस्यस्वरूप विष्णुसमवाय की शक्ति सहित स्वरूप है एक विष्णुशक्ति इमही भेदशक्ति तीसरी शक्ति कर्म शक्ति इनमें विष्णुही को विष्णुशक्ति कहने शक्तिशक्तिमे यमही के तपुस्व तब समारो प्रामहो क्षेत्रज्ञशक्ति सत्ताके मय तापहो शारदा ही यह क्षेत्रज्ञशक्ति

सब प्राणियों में सदा बनी रहती बगन निज्जीवों में भी रहती है निज्जीव में थोड़ी से थोड़ी रहती वृक्षवल्पादि स्थावरों में निज्जीवों की-अपेक्षा कुछ अधिक रहती सर्पोदि जीवों में उनमें अधिक इनमें अधिक पक्षियों में इनसे अधिक वन्यपशुओं में इनमें भी अधिक ग्राम्यपशुओं में पशुओं से अधिक मनुष्यों में इनसे अधिक नाग गन्धर्व यक्ष देवताओं में देवों में भी इन्द्रमें सब से अधिक इन्द्रसे अधिक प्रजापति में प्रजापति से अधिक ब्रह्मामें ये सब रूप जिससे कि विष्णुही की शक्तिने आकाशवत् व्याप्त हैं तिमसे विष्णुही के रूप हैं यह तो विष्णु का मूर्त्तस्वरूप हुआ दूसरा अमूर्त्त विष्णुस्वरूप जो सब में चैतन्यरूप सत्तामात्र विद्यमान है तिम विश्वरूप हरि में सब ये शक्तियाँ टिकी हैं वह हरिको महारूप है वही रूप सब शक्तिरूप देव दैत्य मनुष्योंदिकों को अपनी लीला से बनाता है जो ससार के उपकारार्थ वह चेष्टा है न कि कर्मों के भोगसे क्योंकि केवल सबमें वह चेष्टा व्याप्त रहती जीवों के माथ सुबहु सनहीं सहती है राजर्षि योगी को चाहिये कि विश्वरूप भगवान् का यही रूप अपने विशुद्ध हृदि के लिये चिन्तना करें क्योंकि उससे मन पाप बिलोपित हैं जैसे पवन के चलने से अग्नि प्रबल हो सूखेवर को भस्म करता त्रिमीमांसा योगियों के चित्तमें टिकेहुये श्रीविष्णु वनके सकल पापोंको भस्म करते तिससे सब शक्तियों के आधाररूप विष्णुभगवान् के लीला स्वरूपमें चित्त की धारणा करनी चाहिये क्योंकि इसी का शुद्ध धारणा नाम है जब योगियोंका आत्मा शुभाश्रय चित्त सहित तीनों भावनाओं से अलग होजाय तो उनकी मुक्ति का कारण हो व अन्य जो चित्त के रहने के स्थान देवगण हैं वे कर्मयोनि होने के कारण अशुद्ध हैं यद्यपि सब देवादि भी भगवान् विष्णु के मूर्त्तिस्वरूप हैं व सब आश्रयों से निस्पृह हैं व मूर्त्त स्वरूपमें भी धारणा करनी चाहिये यह निश्चय है उसका प्रयोजन यह है कि निर्गुण में चित्त धारणा नहीं होमक्ती तिमसे किसी न किसी प्रकार देवादि जो हरिके मूर्त्तस्वरूप हैं उन्हीं में हो वास्तवमें तो जिस प्रकारका हरिको मूर्त्तस्वरूप चिन्तनीय है उसे हम बखानते हैं मुनिये अनाधारमें धारणा नहीं होमक्ती इसलिये श्रीहरिको प्रेमा रूप चिन्तनीय है तिमका कि प्रमत्त रमणीक मुख कमल समान नेत्र सुन्दर कपोल बड़ागरी लिलार कणों में समान अतिगनोहर कुण्डल शंखसे मान तीन रेखासहितगल श्रीवन्तप्रिय चिद्भित छाती नाभि उन्नेर त्रिवलीसहित

प्रलम्ब चतुर्भुजधारित समान स्थान भं पल्लवीगारे वेडे कमल पुष्प हाथमें लिये जाघके ऊपरधरे निर्मल पीताम्बर ओढ़े मुकुट केयूर सुद्रघण्टिकादि धारण किये धनुष् शंख गदा सङ्ग चक्र कङ्कण हाथों विराजित ऐसे ब्रह्मस्वरूप हरिके मूर्त्तस्वरूपकी चिन्तना ध्यान समय योगीको तबतक ध्यान करतारहै जबतक धारणा वनाय दृढ़ न होजाय जबतक बोलते वेडे खाते पीने व स्नेच्छापूर्वक अन्य कर्म करते में वह रूपकी धारणा न मिटिजाय अर्थात् इनकामों के करनेमेंभी पनीरहे तबतक ध्यानमें अभ्यास करता रहै जब ऐसा होजाय तो धारणाको निद्विगाने तिसके पीछे शंख गदा चक्र धनुषादिमहित प्रशान्तचित्त कमलास की गान्धा धारण किये यज्ञोपवीत पडिने भगवान् की मूर्त्ति ही चिन्तना करे फिर जब इम मूर्त्ति में भी वैसीही धारणा होजाय तो मुकुट क्यूगदि भूषणरहित भगवन् मूर्त्ति का स्मरण करे इस ध्यान में प्रत्येक भङ्गोंको अलग अलग ध्यावे जब सब भङ्गों का ध्यान आजावे व अन्यत्र किसी पदार्थ के देवनको कोई इन्द्रिय न चल तो निश्चल ध्यान समझे इसीको जब पनाय मन लागजावे हटाने से भी न हटे तो समाधि कहने हैं हे राजन् ! विज्ञान परब्रह्म में आत्माको पहुँचानेवाला है व आत्मा पहुँचने के योग्य जबतक सब भावना नहीं छूटनी आत्मा परब्रह्ममें नहीं लीन होसका व भावना जानो विज्ञान में छूटीही हैं इसीमें विज्ञान आत्माको ब्रह्म में पहुँचानेवाला है जब ब्रह्मके भावकी भावना में जीव ऐसा करते करते युक्त होजाता है तो ब्रह्म और उममें कुछ अन्तर नहीं रहजाता यह जो जीव व ब्रह्ममें भेद जान परताहै सो अज्ञानरुत है जब भेद उत्पन्न करनेवाला अज्ञान जानारहा सो ब्रह्म व आत्मामें कौन भेद कमकाहै हे सात्विक्य ! सक्षेप व विस्तार दोनों रीतों से सब योग तुममें कहे अब तुम्हारा कौन दामरों सो कहिये वा गिदक्यजी यह मुन बोले कि तुमने योगका अच्छा भाव कहा दमारा सब मुक्त किया क्योंकि तुम्हारे उपदेशमें दमारे चिन्तना सब मन नष्ट होगया जो कि हमने दमारा तुम्हारा यह कहा म गो मत्स्य मत्स्य समी रीत नहीं है क्योंकि ऐसा भेदीहीलोग कहमकरहै अगोत्री नहीं कहमके अहमग इत्यादि ज्ञान शरीरवादी है इसमें सदेह नहीं अविद्याके वा ब्रह्ममें परमानन्द करनेके योग्य नहीं क्योंकि परमात्स्य कहनेनक वचन पहुँची नहीं सका नियम है वैशिष्ट्य । जाय ताइ ये जो योग हमसे वहादर सब दमारे कल्याणकी प लिये दृष्टा ययोकि हम में

मुक्ति छोड़ी जायगी पराशर मुनि बोले कि यह कह खारिडक्य ने वड़ी पूजा की उसे अङ्गीकारके राजा केशिध्वज अपने नगरको आये खारिडक्यको राज्य भी खारिडक्य को देदिया परतु खारिडक्य ॥ १ ॥

चौ० सुतहि राज्य है आप सिधाये । योग सिद्धहित वत्त कहँ आये ॥  
 तहँ हरिचरण कमल मन दीन्हा । आपनजन्म सफलकरि लीन्हा ॥ १ ॥  
 नियम यगादि कीन बहुभांती । शुद्धचित्तमे सब मल शांती ॥  
 निर्मल विष्णु ब्रह्महँ जाई । दीन भये नृप अतिहरयाई ॥ २ ॥  
 केशिध्वजहु मुक्ति हित नीके । निज सब कर्म मिटावत ठीके ॥  
 राज्यभोग कीन्हँ सब भांती । तनु नहिँ लगी कर्मकी पांती ॥ ३ ॥  
 सदा कीन कल्याण सुभोगा । क्षीणपाप भे गत सब शोगा ॥  
 सापरहित सिधिलही महीशा । जायमिल्यो तनु श्रीजगदीशा ॥ ४ ॥

## आठवाँ अध्याय ॥

चौ० कहव अष्टमाध्याय महँ पुनि सवाद मुनीश ॥

सर्वात्मतानुवाद अरु श्रवण पुराण फलीश ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले शश्वत ब्रह्ममें जो आत्यन्तिक लीन होताहै यही तीसरा आत्यन्तिक पूजयहै सो कह सर्ग प्रतिसर्ग वश व मन्वन्तर वशानुचरित सब तुमसे कहा और सब पापनाशक मकलशास्त्रों से विशेष पुरुषपुराण विष्णुके अर्थको कहनेवाला यह श्रीविष्णुपुगण तुम्हारे पूछने से तुमसे कहा अब अन्य जो कुछ पूछनाहो पूछिये यह सुत भैत्रेयजी बोले कि जो कुछ हगने पूछा आपने सब कहा व हगने सब भक्तिपूर्वक सुना अब कुछ भी हमको पूछना नहीं रहा सब सन्देह रहित ज्ञान तुम्हारे प्रसादसे हमको मिला व संसारकी उत्पत्ति पालना विनाश सब जाना सृष्टि स्थिति विनाश सब चार २ प्रकारके सुने विष्णुराक्ति क्षेत्रज्ञशक्ति अविद्याकर्मशक्ति ये तीन शक्तिया सुनी सब प्रकारके विज्ञान व सब भावना भी सुनी गई जैसे यह संसार विष्णु से बाहर नहीं तिसी प्रकार हगने जो कुछ आपसे जाना उसके बाहर अब कुछ नहीं है जिससे कि वर्णाश्रमादिकों के सब धर्म सुने इससे अब सब सन्देह जातेरहे व कृतार्थ हुये प्रसूति निशुचि मय कर्म भी आपके बनाने से हगने जाना अब कृपा कीजिये

कुछ भी पूछना नहीं रहा जो कि इस पुराण के कहने के लिये हमने आपको परिश्रम दिया सो क्षमाकीजिये क्योंकि पुत्र व शिष्यमें कुछ अन्तर नहींहोता पराशरमुनि बोले यह जो वेदसम्मित पुराण तुमसे हमने कहाहै इसके सुनने से मत्र दोषों मे उठी पापराशि नष्टहोजाती है इसमें सर्ग प्रतिसर्ग वग मन्वन्तर वगानुचरित जो कि पुगणके ५ लक्षणहैं सब तुमसे कहे इस पुगणमें हम ने देवता दैत्य गन्धर्व मर्ष राक्षस यक्ष विद्याधर मिद्ध अप्सरा शक्तिपस्वी मुनि लोगों के चरित्र ब्राह्मणादि ४ वर्ण व विगेष २ मनुष्यों की कथा पृथिवी के पुण्य देश प्रदेश पुण्य नदिया समुद्र महापुण्यदायक पर्वत भरतादि बुद्धिगानोंके चरित्र वर्ण धर्मादि धर्म मत्र वेदोंकी शाखा जिनके सुनने से पुरुषतुरन्त ही सब पापों से छूटजाताहै ये सब इसमें कहेगये हैं व ससारकी उत्पत्ति पालन नाशके करनेवाले नाराहित सर्वभूतमय सव्यात्मा श्रीमगवान् हरिका वर्णन सब ग्रन्थ में है जिसका नाम पुरुष अग्रहोके भी लेनेसे तुरन्त सब पापोंसे छूट जानाहै जैसे सिंहके शब्दमात्रमे भेड़िया लोखड़ीआदि जीव स्थान छोड़ भाग जाते हैं फिर जिसके नामोंका शक्तिमहित कीर्तन मत्र पापोंको जैसे नागरना जैसे अग्नि सब लोहा सोना चादीआदि धातुओंका गन् दूगकरताहै फिर एक वार भी जिसकानाम स्मरण करनेमे नरकके दुःख देनेवाले कलियुगकाभी पाप तुरन्त नाश होजाताहै व ब्रह्मा इन्द्र रुद्र आदित्य अश्विनीकुमार पवन किन्नर वसु साध्य विश्वेदेवादि देवता यक्ष राक्षस मिद्ध दैत्य गन्धर्व दानव अप्सरा तारागण नक्षत्र सूर्यादि ग्रह सप्तर्षिआदि स्थानों के स्वामी व स्थान व ब्राह्मणादि मनुष्य पशुगण मृगगण मर्ष वृश्चिआदि पत्नी भेतादि वृक्षरत्पादि वन पर्वत मागर नदी पाताल पृथिवी अन्तर म त्पादि मडिन वदमत्र ब्रह्माण्ड व सब जगत् त्रिम विष्णुमें अतीव सूक्ष्म जान परते जैसे सुगेठरुर्वन में सत्र छोटे २ पगिमाणु विदित होते सो विष्णु सर्वरूप मत्र जाननेवाले सर्वस्वरूप रूपरहित मत्र पापनाशक इस पगण मे कहेगये हैं ॥

श्री० अरण्यमेव अत्रभूयात् नहार्ह । जो फलप्राप्त नर समुदाई ४

सो फल यह पुगणमुनिलीट । पापन जायिन मन्त्रयोगीटे ॥ १ प्र

जो प्रयाग पुष्कर कुक्षेत्रा । अर्जुनमहें उपपासादिने ॥ १

एवमकन्त गो मुनत पुता । नृहृतनरन् अपने नामान् ॥ २ ॥

जो फल वर्ष एकलगि कीन्दे । अरिन्होत्र होयत मनईन्दे ॥  
 सो फल लहत पुराण सुनेते । सुनि निजमनमहँ फेरि सुनेते ॥ ३ ॥  
 ज्येष्ठशुक्लद्वादशि ; महँ जोई । मथुरा हरिदर्शन फल होई ॥  
 ज्येष्ठ मास शुचि पत्रहि माहीं । जो यमुना जल माहीं नहार्हीं ॥ ४ ॥  
 अरु पूजत अच्युत चित लार्ई । मथुरा अश्वमेध फल पाई ॥ ५ ॥

जब कोई लोग ज्येष्ठमासके शुक्लपक्ष में मथुराजी में जाय यमुना स्नान करते व अपने पितरों को नरकसे निकलि स्वर्गादि को पठाते तो उन्हें देख अन्य लोगोंके पितर कहने लगते कि कोई हगारे कुर्नों उत्तरत्रहो मथुराजी में जाय यमुना नहाय व्रत रह हरिकी पूजा करेगा कि हमलोग भी नरकसे निकल स्वर्गवासी होंगे इससे जो कोई ज्येष्ठमास के सितपक्ष में यमुना स्नान कर तर्पणादि करता व हरिदर्शन करता व पिण्डदान देता उसके पितर धन्यहैं इसलिये उस समय में मथुरा में जाय हरिदर्शन कर यमुना नहाय तर्पणादि करने से जो पुण्य होती है वह इस पुराण के सुनने से मिलती है यह पुराण सारी दुःखों से दरेदृये लोगोंकी रक्षा करनेवाला दुस्स्वप्न विनाशनेहारा सब दुःख मिटानेवाला है इस विष्णुपुराण को नारायणने ब्रह्मासे महाजीने ऋभुसे कहा ऋभुने प्रियव्रतसे उन्होंने भागुरिसे भागुरिने स्वर्गमित्रसे तिसने दधीचि पुत्र से तिसने सारस्वतसे सारस्वतने भृगुसे भृगुने पुरुकृतसे तिन्होंने नर्मदा से नर्मदाने धृतराष्ट्रनाम नागसे व अपूरणनाम नागसे तिन दोनोंने नागराज वासुकि से कहा वासुकि ने वत्सने वत्सने अश्वतरसे तिसने कम्बल से कम्बल ने एलापत्र से तब वेदशिरागुनि पाताल को गये वहासे पद आये यहा उन्होंने प्रमिति से कहा प्रमिति ने जातृकर्य से कहा जातृकर्य ने बहुत पुण्यात्माओंसे कहा वशिष्ठजी के वरदान से हमको भी श्रायगया हमने जैसाका तैसा सब पुराण तुमसे कहा तुगभी यह पुराण कलियुग के अन्तमें शिनीकसे कहेंगे जो कोई परमगुह्य कलिपापनाशन यह पुराण सुनेगा वह सब पापों से छूटेगा जो कोई इस पुराण को प्रतिदिन सुनता है वह जानो पितर यस मनुष्य व सब देवोंकी स्तुति करचुका जो जन इसके १० अध्याय सुनता वह कपिलागाय देने का फल पाता है व जो कोई सर्व स्वरूप सर्वमय सब जगत्के आधार आत्माके आश्रयभूत ज्ञानस्वरूप अन्न आदि रहित जानने के योग्य सब

देवों के हितकारी ऐमे अच्युत भगवान् को मन में स्थापित कै यह सम्पूर्ण पुराण विधिपूर्वक सुनाता वह सर्वाङ्ग पूर्ण अश्वमेध यज्ञका फल पाता है इममें कुछ सन्देह नहीं जिस विष्णुपुराण में चराचरके गुरु ब्रह्मज्ञानमय मरुत सारके आदि मध्य अन्त में रहनेवाले श्रीभगवान् विष्णु कहेगये हैं तिस परम पवित्र पुराण के सुनने व शक्तिमहित पढ़ने से पुरुष जो फल पाता वह समस्त भुवन भवनमें नहीं है क्योंकि इसके सुननेमे तो एकान्तमिष्टिरूप हगिही फलरूप मिलने फिर हरिके लक्षण तो भुवन में दुर्लभही हैं जिस अच्युत में बुद्धि लगानेसे पुरुष नरकको नहीं जाता व जिसके चिन्तनगात्र मे स्वर्ग भी मिलता व जिसमें जीव मन लगाने से ब्रह्माके भी लोकको अतिनद्यु समझता व जो विमलमति पुरुषोंके चित्तमें स्थित हो मुक्तिदेते व आप नागरहित हे तिन अच्युतके कीर्त्तन करने में जो पाप नाश हो तो कौन आश्चर्यकी बात है फिर जिस हरिको यज्ञ जाननेवाले कर्माकाण्डीलोग यज्ञके ईश्वर समझ यज्ञों से पृजते व जिसको ज्ञानीलोग ब्रह्ममय कर्त्तृ कारणमे भिन्न ध्यावते है व जिसको पाप जीवात्मा फिर न उत्पन्न होता न मरता न बढ़ता न घटना न कार्य कारण होना इससे हरिको छोड़ और कौन सुननेके योग्य है जो हरि पितरोंके रूपसे विधिपूर्वक होग करने से कव्य भोजन करने व देवस्वरूपीहो हव्य क्योंकि आदि मध्य अन्नहीन सथा स्वाहारूप वही है व जिम सर्वशक्तिके स्थान ब्रह्मरूप में मानीलोगों के गान निष्ठाकेलिये नहीं समर्थहोते सो हरि कानोंमें परतेही सब पाप हटते हैं इमसे वही सुननेके योग्य है जिम हरिको न तो अन्न है न उदरति न वृद्धि क्योंकि वह परिणामहीन है कभी रूपान्तर उमका नहीं होता न कभी उमका नाशही होता क्योंकि यह सकल्प विमल रहित ब्रह्मस्वरूप है तिस पुस्तोत्तमके नमस्कार है फिर जो निम ईश्वरके पीछे गुणात्मक प्रधानके गुणोंको भोगता व जो एही गृह्यस्वरूप दे परब्रह्मरूप धारण करने से बहुतमकार व अशुद्धि जान पड़ता है न तो वह तो पद्मज्ञानी सब जीवात्मा कर्त्ता है निम नाशरहित पुस्तोत्तमके प्रयाग दे फिर ज्ञानकी प्रवृत्ति व तिसके नियमोंके कर्त्ता सबको भोग देनेमें मग्य रजोगुण मत्त्वगुण तमोगुणरूप स्थायित्व होने कवानेके योग्य अने नाश मिष्टस्वरूप मदा एकम ग्रीहि के वन्ता बने है ॥



भागवत की अष्टादशोत्तरह से सम्भवता है यदि पुराण मत्पेक्ष विद्वान् के पास रहनी चाये  
 क्योंकि भागवत बड़ा कठिन पुराण है बिना ऐसे सहज भाषा टीका के सबको ग्लोहाये नहीं  
 सम्भव पड़ता है इसका मूल श्रीधर्म और भाषा टीका नीचे ऊपर रखकर अत्यन्त शुद्धता में  
 पत्रेनुमा छपाई कागज दिनाई है और छापा पत्थर है ॥

**बृहन्नारदीयपुराण की० १३)**

पण्डित देवीसहायशर्मा नारनौलनिवासीकृत भाषा है-जिसमें भीनारदभी और सनत्कुमार  
 सहादद्वारा श्रद्धामक्ति निरूपण, भगवद्भक्ति माहात्म्य वर्णन, उत्तम तीर्थोंका निरूपण, सगर-  
 रंगीय सौदास राजाकी कथा, भीमराजा की उत्पत्ति, राजा वलिका वृष्टान्त दानविधि का  
 निरूपण व्रतों और श्राद्धों का विधान, तिथिनिर्णय, प्रायश्चित्तविधान, यमार्थका निरूपण  
 संसार के दुःखोंका कथन, मोक्षोपायवर्णन, वेदमाला और विसके पुत्र यज्ञमाला का मुमानीकी  
 कथा और विष्णुजी के चरखोदक का माहात्म्य इत्यादि कथा वर्णित हैं ॥

**मुखसागर की० ७) पु०**

मुखसागरों का तनुमा पत्राव के रहनेवाले धर्म मवलनलालजी ने किया है इस मुखसागर  
 में बहुतही मोटेइसक और अत्यन्तही समझा समझीरे इत्यादि सब सामान हैं कि जिसकी तारीफ  
 नहीं होसकी देखनेही से हाल मालूम होगी ॥

**गणेशपुराण भाषा की० २१) पु०**

इसको मुन्शीनवलकिशोरजी की अज्ञानुसार नारनौलनिवासी पण्डित देवीसहायजी ने  
 रक्तवसे रत्नोक २ का देशभाषा में रचना किया है इसमें गणेशजीका सम्पूर्ण चरित्र विस्तार  
 पूर्वक व और भी अनेक विषय वर्णित हैं ॥

**श्रीवाराहपुराण पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध की० १) पु०**

जिसका जयपुरनिवासी पण्डित माधनमसादजी ने मुन्शीनवलकिशोरजी के अर्थ में रचना  
 से देवनागरी में भाषा किया और पण्डित दुर्गाप्रसाद और पण्डित सरयूप्रसादजी अशुद्धकिया  
 है इसमें श्रीभगवान् चाराह नारायण ने धरती से चौकीर हजार रत्नोंको में धर्म, धर्म, धर्म  
 और मोक्ष सिद्धहोने के लिये इतिहाससयुक्त कथाये वर्णन की हैं ॥

**गरुडपुराण की० ६) ॥**

इसमें १४ अध्याय अतकरा के बीच में मूल और नीचे ऊपर भाषा टीका रखकर धर्म  
 है जिसमें सम्पूर्ण भेदही का वर्ण है और भेदही की सम्पूर्ण मोहणी माण्डवदन शक्ति द्वारा  
 इत्यादि क्रिया भी विस्तारपूर्वक वर्णित हैं ॥

**नरसिंहपुराण भाषा की० १३)**

भाषा पण्डित मदेशइणमुकुल कृत-इस में सत्यत नरसिंहपुराण से प्रतिशलाभ शनिचरम  
 मति पदवा टीका अति सरल व मधुर, भाषामें विधागया है-जिस में सृष्टि वर्णन, सर्ग रचनी,  
 सृष्टिरचना प्रकार, पुंसवनापाठयान, मार्कण्डेय मुनिजा सपोषत्तसे मृत्युत्व जीवना, यदनीता,  
 यमार्थकी वर्णन मार्कण्डेय चरित्र, यमीयम सयाद् ज्ञान गरी व पतिव्रता सवाद्, एक ब्राह्मण का  
 इतिहास जिसने परीस्वर कृष्णजीका ध्यानकर देहत्यागकिया और प्यासभी का उद्धार  
 पितारुकी मुक्तको वर्णन करना अर्थ व नाम्द करके अन्तरने भी क्रिया का वर्णन और सृष्टि का  
 मात्र माहात्म्य इत्यादि अनेक विषय सम्यक् है ॥

